॥ भविष्य महापुराणम् ॥

(प्रथम खण्ड)

अनुवादक

पण्डित बाबूराम उपाध्याय

भविष्य महापुराणम्

(प्रथम खण्ड)

ब्राह्मपर्व

(हिन्दी-अनुवाद सहित)

✪

अनुवादक

पण्डित बाबूराम उपाध्याय

शक १९३४ : सन् २०१२

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रवर्तित पुराण प्रकाशन योजना के अन्तर्गत पुराण साहित्य के संवर्द्धन हेतु राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी के आकाक्षानुरूप अब तक ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, अग्निपुराण, बृहन्नारदीयपुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण तथा स्कन्द पुराणान्तर्गत केदार खण्ड का मूलपाठ सहित हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जा चुका है। जिसका समादर सुधीजनों द्वारा व्यापक स्तर पर हुआ है। फलस्वरूप सम्मेलन को अनेक पुराणों का द्वितीय संस्करण प्रकाशित कराना पड़ा।

सुधी पाठकों की पिपासा को शान्त करने तथा अपनी गौरवशाली पुराण प्रकाशन योजना को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु सम्मेलन ने २६,३०७ श्लोक वाले भविष्यमहापुराण के प्रकाशन का गुरुतर कार्य अपने हाथ में लिया, जिसका प्रथम खण्ड ''**ब्राह्मपर्व**'' आपके सम्मुख प्रस्तुत है। सम्पूर्ण भविष्य महापुराण का अनुवाद राजर्षि टण्डन जी ने श्री बाबूराम उपाध्याय से स्वयं कराया था। परन्तु दुःख है कि उन दोनों के जीवनकाल में इसका प्रकाशन न हो सका। आज इसे प्रकाशित हो जाने से उन दोनों की आत्मा को शान्ति मिलेगी, ऐसा विश्वास है।

'**भविष्यमहापुराण**' को प्रकाशन की दृष्टि से कुल तीन खण्डों में विभक्त किया गया है। जबकि यह पुराण चार पर्वों में निबद्ध है। (१) ब्राह्मपर्व, (२) मध्यमपर्व, (३) प्रतिसर्गपर्व, (४) उत्तरपर्व।

भविष्यपुराण के ब्राह्मपर्व में ८९१७ श्लोक हैं, जिनमें सर्वांशतः भगवान् सूर्य की ही महिमा-गरिमा वर्णित है।

इस पुराण की पाण्डुलिपि एवं विस्तृत भूमिका उपलब्ध कराने के लिए गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डॉ० रामजी तिवारी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

ग्रन्थ के प्रथम संस्करण के सुष्ठु सम्पादन हेतु पण्डित रुद्रप्रसाद मिश्र, डॉ० जनार्दनप्रसाद पाण्डेय 'मणि' तथा श्री शेषमणि पाण्डेय के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

मुझे आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि भविष्यमहापुराण 'ब्राह्मपर्व' का द्वितीय संस्करण सुधीजनों द्वारा समादृत होगा तथा जनकल्याणकारी एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

विभूति मिश्र
प्रधान मंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३

कृष्ण जन्माष्टमी
संवत् २०६९

आमुख

प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास के मर्मज्ञ भलीभाँति जानते हैं कि अष्टादश पुराणों में 'भविष्यमहापुराण' का कितना उच्च स्थान है और उसमें कितनी महत्त्वपूर्ण सामग्रियों का समावेश हुआ है। 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' ने इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद जिस वर्तमान वैज्ञानिक पद्धति को अपनाकर और जिस रीति से उसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, वह सभी जिज्ञासुओं एवं पुराणज्ञों के लिए बहुत ही उपयोगी है। 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति' ॥ अर्थात् वेदों के उपबृंहण रूप होने के कारण पुराणों का महत्त्व स्वतः प्रमाणित है। यह नितान्त सत्य है कि पुराण संस्कारकों ने वेदों के रहस्यात्मक मंत्रों को सरल प्रयोग द्वारा जन-सामान्य के लिए उपयोगी एवं सम्प्रेषणीय बना दिया है।

भविष्यमहापुराण भारतीय धर्म, कर्मकाण्ड, इतिहास और राजनीति का एक विशाल कोश है। इसमें अनेक प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का सार संगृहीत है। कुछ प्राचीन विशिष्ट ग्रन्थ भी इसमें समाहित हो गये हैं। इसकी रमणीयता भी अवर्णनीय है। सूर्याराधन की विशेषताओं, व्रतों एवं नियमों की प्रामाणिकता के लिए हेमाद्रि, अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिकाकार देवण्णभट्ट (११२५-१२२५) आदि निबन्धकारों ने भी इसी का आश्रय लिया है। वास्तव में क्रान्तद्रष्टा ऋषियों की मौलिक सूझ-बूझ भविष्यमहापुराण में ही मिलती है। वैदिक सामग्रियों का सरलतम भाषा में सम्यक् विश्लेषण भविष्यपुराण का वर्ण्य-विषय है। आदि से लेकर अन्त तक भविष्य-महापुराण ने एकतारूपता बनाये रखने का सफल प्रयत्न किया है।

भविष्यमहापुराण का नाम भारतीय साहित्य—विशेषकर पुराणों में अत्यन्त प्रसिद्ध है और यह अनेक कारणों से लोगों में लोकप्रिय है। इतिहास के जिज्ञासुओं के ऐतिहासिक दृष्टिकोण के लिए तो यह बहुत ही आवश्यक ग्रन्थ है। इसलिए अनेक लोगों ने उर्दू, अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि भाषाओं में लिखे गये इतिहासों के साथ इसकी तुलना की है। पार्जीटर, स्मिथ और पं० भगवद्दत्त ने भी बड़ी छानबीन के बाद भविष्यमहापुराण को ही इतिहास के लिए सर्वाधिक प्राचीन आधार माना है। भविष्यमहापुराण को देखकर एक स्वाभाविक उत्कण्ठा होती है कि आखिर यह कौन-सी विचित्र रचना है, जो प्राचीन काल में लिखी गयी है और भविष्य की बातों को भी अपने में सँजोये हुए है। 'पुराणमाख्यानम्' के द्वारा तो प्राचीन आख्यानों को ही पुराण की संज्ञा दी गयी। चूँकि सभी भारतीय आदर्शवादी दृष्टिकोण रखते हैं, इसलिए भविष्य की ओर अधिक दृष्टि लगाये रहते हैं। अपने भविष्य को जानने और दूसरे के भविष्य की इच्छा प्रबलवती होती है।

पुराणों की अनेकधा व्युत्पत्ति सर्वत्र मिलती है, इसलिए यहाँ पृथक् से उस पर कोई व्याख्या देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। ऐतरेयब्राह्मणोपक्रम में सायणाचार्य ने अपने भाष्य में लिखा कि "वेद के अन्तर्गत देवासुर युद्ध इत्यादि का वर्णन इतिहास कहलाता है और आगे यह असत् था, अन्यथा कुछ नहीं था इत्यादि जगत् की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सृष्टि-प्रकिया का

वर्णन पुराण कहलाता है।" बृहदारण्यकभाष्य में शंकराचार्य का स्पष्ट मत है कि 'उर्वशी पुरुरवा आदि संवाद स्वरूप ब्राह्मणभाग को इतिहास कहते हैं और पहले असत् ही था इत्यादि सृष्टि प्रकरण को पुराण कहते हैं'। इन व्याख्याओं से यह प्रकट है कि सर्गादि का वर्णन पुराण और ऐतिहासिक कथाएँ इतिहास हैं।

वर्तमान में प्राप्त भविष्यमहापुराण के संस्करणों के आधार पर उसकी समीक्षा समीचीन है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के हस्तलिपि संग्रहालय में क्रम सं० १६५१६ पर एक भविष्यपुराण की प्रति उपलब्ध है, जिसमें पांच पर्वों-ब्राह्म, शैव, त्वाष्ट्र, वैष्णव और प्रतिसर्गपर्व का उल्लेख है, किंतु उक्त हस्तलिपि में सभी पर्वों की विषय-सामग्री नहीं मिलती। 'बँगला विश्वकोश' के पृ० सं० ३०५ पर मुद्रित है कि 'क्लीवलिंग' (भविष्यपुराण) स्वतंत्र पुराण नहीं है, बल्कि यह पुराण का एक भेद है। शशिभूषण विद्यालंकार द्वारा रचित 'भारतीय पौराणिक जीवनी कोश' जो रंगून (वर्मा) से प्रकाशित है, के पृष्ठ सं० १२२० पर भविष्यपुराण का उल्लेख है। तदनुसार भविष्यमन्वन्तर के प्रारम्भ में प्रसूत, भव्य, पृथुग, लेख और आद्य—ये पाँच देवता थे। इन्हीं में से भव्य के नाम पर भविष्यपुराण की रचना हुई। आफ्रेक्ट के 'कैटलागस कैटलागारम' के अनुसार लन्दन के इण्डिया आफिस की क्रमसंख्या ३४४७ पर भविष्यपुराण की एक लिखित प्रति की चर्चा है, किंतु यह प्रति सप्तमी कल्प तक होने के कारण अपूर्ण है। विल्सन ने भी भविष्यपुराण की एक प्रति का उल्लेख किया है, जिसमें १४,००० श्लोक और १२६ अध्याय हैं। डॉ० हरप्रसाद शास्त्री ने बिहार के गोपालगंज जिलान्तर्गत हथुआराज के पुस्तकालय में स्थित एक प्रति का हवाला दिया है, जो उनके १९२८ ई० में प्रकाशित 'डिस्क्रिप्टिव कैटलाग' के पृष्ठ संख्या ४२८ पर अंकित है।

वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित भविष्यमहापुराण ही समग्र रूप में हमारे समक्ष वर्तमान में उपलब्ध है, उसके अनुसार उसमें कुल चार पर्व हैं-ब्राह्म, मध्यम, प्रतिसर्ग तथा उत्तरपर्व। उक्त प्रकाशित प्रति में जिस क्रम से और जितने अध्यायों में उनका वर्णन है, उसका सम्पूर्ण विवरण अधोलिखित है :—

पर्व	खण्ड	कुल अध्याय	श्लोक संख्या
१. ब्राह्मपर्व		२१६	८९११
२. मध्यमपर्व	प्रथम भाग	२१	८९८
	द्वितीय भाग	२१	१४७२
	तृतीय भाग	२०	५७१
३. प्रतिसर्गपर्व	प्रथम खण्ड	७	४०६
	द्वितीय खण्ड	३५	१११८
	तृतीय खण्ड	३२	२३९०
	चतुर्थ खण्ड	२६	२१०२
४. उत्तरपर्व		२०८	८४३९

भविष्यमहापुराण के इस संस्करण में प्रतिसर्ग पर्व के सम्बन्ध में कहा गया है कि इसमें यह प्रकाशन के समय जोड़ा गया। मूल रूप में प्राप्त भविष्यमहापुराण में यह पर्व प्रकाशक को नहीं प्राप्त हुआ था। आगे कहा गया है कि अमृतसर के ठाकुर महान् चन्दर के यहाँ इस पर्व की प्रति मिली, जिसका परिष्कार करके प्रकाशक ने प्रकाशित किया। इस पर्व के भविष्यपुराण में जुड़ जाने पर भी इसकी अति प्राचीनता अन्य पर्वों से ही सिद्ध हो जाती।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥[1]

सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय और उसके बाद की सृष्टि), वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित (सूर्य, चन्द्र, कश्यप, दक्ष आदि के वंशों का सम्यक् निरूपण) पञ्चलक्षण कहलाता है।

किसी भी पुराण को महापुराण की श्रेणी में तभी रखा जा सकता है, जब वह इन उपर्युक्त पञ्चलक्षणों से सम्पन्न हों। किंतु श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में पुराणों के दशलक्षणों का विवेचन है। पञ्चलक्षणात्मक श्लोक भविष्यपुराण में दो बार मिलता है। इससे स्पष्ट है कि भविष्यपुराणकार पञ्चलक्षणों को आश्रित कर इस पुराण को रचने के प्रति सचेष्ट थे। सर्वत्र उनका यही प्रयास देखने को मिलता है कि अष्टादश पुराणों की श्रृंखला में भविष्यमहापुराण अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने में समर्थ हो। इसी कारण पुराणों की सूची जहाँ भी प्राप्त होती है, उसमें भविष्यमहापुराण ९ वें स्थान पर है। उसका तात्पर्य है कि भविष्यपुराण की रचना के समय तक ८ पुराण रचे जा चुके थे। भविष्यमहापुराण में आद्योपान्त नैरन्तर्य मिलता है। इसकी जो अनुक्रमणिका अन्य पुराणों[2] में उपलब्ध है, उसके अनुसार वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित भविष्यमहापुराण नहीं मिलता। इस संस्करण के ब्राह्मपर्व में भविष्यमहापुराण के श्लोकों की संख्या ५०,००० (पचास हजार) बतायी गयी है[3], किंतु गिनने पर श्लोकों की कुल संख्या २६३०७ ही है। यह विचारणीय है कि पचास हजार श्लोकों वाला भविष्यमहापुराण कहाँ गया।

भविष्यमहापुराण की विषय-सामग्री इतनी मनोहर एवं आकर्षक है कि विद्वत्समाज सहज ही इसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में इसका उल्लेख मिलने के कारण इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की आशंका निर्मूल है। यह बात अलग है कि नानक, कबीर, सूर, तुलसी, जयचन्द्र, पृथ्वीराज इत्यादि से सम्बन्धित विवरण प्राप्त होने के कारण कुछ विद्वानों ने इसे अर्वाचीन पुराणों की श्रेणी में रखने का प्रयत्न किया है। परन्तु

---

१. भविष्यमहापुराण—१/२/४-५, ४/२/११; विष्णुपु० ३/६/२४; मत्स्यपु० ५३/६४; मार्क० १३४/१३ ; देवीभा० १/२/१८; शिवपु० वा० सं० १/४१; अग्निपु० १/१४; ब्रह्मवैवर्तपु० १३३/६ ; स्कन्दपु० प्र० ख० २/८४; कूर्मपु० पू० १/१२; ब्रह्माण्डपु० प्रक्रियावाद १/३८; वराहपु० २/४।

२. नारदपु० (१/१००), मत्स्यपु० (५३/३१), अग्निपु० (२७२/१२)।

३. भविष्यमेतदृषिणा लक्षार्द्धं संख्यया कृतम्॥ भविष्यमहापु० १/१/१०५।

यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि यदि प्रतिसर्गपर्व को इस पुराण से अलग कर दिया जाय, तो इसकी अति प्राचीनता स्वयमेव सिद्ध हो जायेगी। कुछ इतिहासकारों ने तो मध्यकालीन इतिहास का प्रमुख आधार इसी पुराण को माना है तथा इसमें उल्लिखित विषयों की भूरि-भूरि सराहना की है। भविष्यमहापुराण में निर्दिष्ट कर्मकाण्ड-सम्बन्धी प्रकरण इतना ओज और प्रवाह लिये हुए है कि लगता है कि यह समग्र रूप में कर्मकाण्ड शास्त्र ही है।

इसके ब्राह्मपर्व में पुराणों को पापहरण का प्रधान साधन बताते हुए भविष्यमहापुराण की विशेष रूप से प्रशंसा की गयी है और उसके बाद सृष्टि को निरूपित किया गया है। इसी प्रकार क्रमशः सम्पूर्ण जागतिक प्रक्रिया का सुन्दर नमूना इस पुराण मे देखने को मिलता है। गर्भाधान-संस्कार से लेकर अन्य संस्कारों का क्रमशः वर्णन करते हुए स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों पर अत्यन्त गवेषणा पूर्वक विचार वर्णित है। प्रारम्भ में ही यह विवेचित है कि जनमेजय के पुत्र शतानीक के यहाँ समस्त ऋषिगण जाकर प्रार्थना करने लगे तथा उनसे निवेदन किया कि हे ब्रह्मन्! त्रिभुवन में जो ज्ञान है, वह तो 'श्रुत' है, परन्तु शूद्रों की स्थिति अलग है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए तीन वेद तथा मनुस्मृति इत्यादि अनेक शास्त्र भी उन्हीं के कल्याणार्थ बनाये गये है। इनमें शूद्रों की अत्यन्त हीन स्थिति है। अतः हे ब्रह्मन्! आप यह बतायें कि शूद्रगण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने मे कैसे समर्थ हों?[१] इससे स्पष्ट है कि भविष्यपुराण की रचना के समय शूद्रों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। इसलिए जगत् के कल्याण के प्रति सचेष्ट ऋषियों के हृदय में उनके प्रसंस्कार की बात आयी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही वेद-शास्त्रों पर अपना अधिकार समझते थे तथा शूद्रों को सदैव उनका स्पर्श भी नहीं करने देते थे। एक ऐसा भी समय था, जब पढ़ने-लिखने का कोई साधन नहीं था, केवल भोजपत्र ही लिखने के साधन थे। उन लिखित भोजपत्रों को अमूल्य निधि की भाँति सुरक्षित करके रखा जाता था। शूद्र कृषि इत्यादि कार्यों में इतने संसक्त रहते थे कि ज्ञान-विज्ञान में उनकी कोई रुचि ही नहीं रहती थी। कालान्तर में समय परिवर्तित हुआ तथा वेदों के उपबृंहण रूप में बोधगम्य भाषा में पुराणों की रचना का प्रारम्भ हुआ। उसी कड़ी में भविष्यमहापुराण की भी रचना हुई।

भविष्यमहापुराण के रचना-काल के सम्बन्ध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। किंतु जो साक्ष्य मिले हैं, उनके अनुसार इसकी रचना ईसा पूर्व पाँचवीं-छठी शताब्दी में हुई लगती है।

भविष्यमहापुराण की विषय-सामग्री को देखने से यह स्पष्ट झलक मिलती है कि 'कर्म ही प्रधान है'। चाहे व्यक्ति किसी भी वर्ण का हो, यदि वह उत्तम कार्य में प्रवृत्त होता है, तो जाति

---

४. **भवन्ति द्विजशार्दूल श्रुतानि भुवनत्रये।**
विशेषतश्चतुर्थस्य वर्णस्य द्विजसत्तम॥
ब्राह्मणादिषु वर्णेषु त्रिषु वेदा प्रकल्पिताः।
मन्वादीनि च शास्त्राणि तथांगानि समन्ततः॥
शूद्राश्चैव भृशं दीनाः प्रतिभान्ति द्विजप्रभो।
धर्मार्थकाममोक्षस्य शक्ताः स्युरवने कथम्॥ —भविष्यपु० १/१/४८-५१

उसमें बाधक नहीं हो सकती। पुराणकार ने नारद, मन्दपाल इत्यादि ऋषियों का उदाहरण देते हुए कहा कि ये सभी जाति से हीन होते हुए भी अपने उत्तम कार्यों से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। इससे प्रकट है कि यह पुराण कर्म को प्राथमिकता देनेवाला महापुराण है तथा इसमें विवेचित विषय भी तदनुरूप ही है। इस पुराण में सृष्टि-रचना, दैव-शक्ति तथा आध्यात्मिक ज्ञान अत्यन्त व्यवस्थित रूप में निर्दिष्ट है।

भविष्यमहापुराण के आदि में ही समाज के दीन-हीन लोगों के प्रति जो सहानुभूति प्रदर्शित की गयी है, उससे लगता है कि या तो भविष्यमहापुराणकार उससे किसी रूप में प्रभावित था या तत्कालीन दीन-हीन लोगों के प्रति उसमें आस्तिकी बुद्धि आयी, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने उनके सम्मान में इस पुराण की रचना की। वर्ण्य विषय को देखकर सहज ही उस समय के ऐतिहासिक, राजनीतिक, भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक परिदृश्य की झलक मिल जाती है। 'षष्ठीकल्प' के विवेचनप्रसंग में इस पुराणकार ने घोषणा की है कि वर्ण और जाति का अन्तर जन्म से न करके कर्म से करना चाहिए। शूद्र कुल में उत्पन्न होकर भी यदि कोई व्यक्ति अत्यन्त शुद्ध आचार-विचार वाला है तथा त्याग एवं दया-भावना से पूर्णतः आवेष्टित है, तो निःसन्देह वह ब्राह्मण कहलाने योग्य है तथा वह वेद का अधिकारी है। ब्राह्मण शब्द से तात्पर्य ब्रह्मज्ञानी से है। चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—कोई भी हो, ब्रह्मज्ञान में प्रवृत्त हो सकता है और वेदों का सम्यक् अध्ययन कर क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र व्यक्ति भी ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर सकता है। उदाहरण के रूप में रावण, श्वाद, चाण्डाल, दास, लुब्धक, आभीर, धीवर को देते हुए पुराणकार का कहना है कि वे लोग भी उत्तम कार्यों में लगकर वेदों के अध्ययन पूर्वक अपना विकास कर सकते हैं। साथ ही वृषल जाति के लोग भी उन्हीं की भाँति वेदों का अध्ययन कर सकते हैं।[1] वेदों का अध्ययन कर शूद्र भी दूसरे देश में जाकर अपने को ब्राह्मण घोषित कर सकता है। क्योंकि कोई भी मनसा, वाचा, कर्मणा उसको शूद्र नहीं कह सकता। इसका मूल अर्थ यही निकला कि केवल वेदाध्ययन से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती, प्रत्युत उसके लिए तदनुसार कर्म की आवश्यकता होती है। किसी भी जाति का प्रतिभावान् व्यक्ति समस्त वेदों, दो वेद या एक ही वेद का यथाक्रम अध्ययन करके शुद्ध ब्राह्मण से उत्पन्न होनेवाली कन्या से विवाह कर सकता है। इसी प्रकार दाक्षिणात्य और गौड़पूर्वा जातियाँ बन गयीं। इस कारण वेदों के अध्ययन के आधार पर जाति का निर्धारण भविष्यपुराण को मान्य नहीं है।[2]।

---

१. वेदाध्ययनमप्येतद् ब्राह्मण्यं प्रतिपद्यते। विप्रवद्वैश्यराजन्यौ राक्षसा रावणादयः॥
श्वादचाण्डालदासाश्च लुब्धकाभीरधीवराः। येऽन्येऽपि वृषलाः केचित्तेऽपि वेदानधीयते॥
शूद्रा देशान्तरं गत्वा ब्राह्मण्यं क्षत्रियं श्रिताः। व्यापाराकारभाषाद्यैर्विप्रतुल्यैः प्रकल्पितैः॥
भवि०पु० १/४१/१-३

२. वेदानधीत्य वैदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्। प्रोद्वहंति शुभां कन्यां शुद्धब्राह्मणजां नराः॥
अथवाधीत्य वेदांस्तु क्षत्रवैश्येस्तु वा नराः। गौड़पूर्वा कृतामेयुर्जातिं वा दाक्षिणात्यजाम्॥
वही—१/४१/४-५

अब भविष्यपुराण के पर्वों के अनुसार पृथक्-पृथक् विषयवस्तु जान लेना उचित होगा।

ब्राह्मपर्व के अन्तर्गत जीवनोपयोगी उन सभी विषयों का समावेश है, जिनका सम्यक् अनुसरण करते हुए विवेकी मनुष्य परम पद को प्राप्त कर सके। गृहस्थी को चलाने के लिए जिन-जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उन साधनों का सांगोपांग विवेचन इसमें है। स्त्रियों के कर्तव्याकर्तव्यों की भी चर्चा करने में पुराणकार ने अपनी विशेष रुचि दिखायी है। प्रतिपदा से लेकर सभी कल्पों, सूर्य देवता के विविध रूपों, अनेक प्रकार के व्रतों का निरूपण करते समय भविष्यपुराण ने कर्मकाण्ड की पद्धतियों का समुचित विश्लेषण किया है। इसी में सम्पूर्ण साम्बपुराण किंचिदन्तर से संकलित है। यदि केवल ब्राह्मपर्व पर ही स्वतंत्र रूप से अनुसन्धान किया जाय, तो संस्कृत साहित्य का बड़ा उपकार होगा। सम्मेलन ने इस ग्रन्थ के उद्धार का जो संकल्प लिया है, वह केवल स्तुत्य ही नहीं, सराहनीय एवं सामयिक भी है। क्योंकि आज के समाज को ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता है, जो समाज एवं व्यक्ति को प्रगति के मार्ग पर ले जाने में समर्थ हों।

भविष्यमहापुराण का द्वितीय पर्व मध्यमपर्व के नाम से ख्यात है, जिसमें तीन खण्ड हैं। सम्पूर्ण मध्यमपर्व में इष्टापूर्त से सम्बन्धित विषयों का संकलन है। इष्टापूर्त वेद, श्रौतसूत्रों तथा ब्राह्मणग्रन्थों में विस्तार के साथ प्रतिपादित है अथवा यों कहा जाय कि वेदों से लेकर उनके कर्मकाण्ड प्रतिपादक अङ्ग, उपाङ्ग एवं पद्धति निरूपक ग्रन्थों में भी इसी का वर्णन है, तो अत्युक्ति न होगी। इष्टापूर्त एक पारिभाषिक शब्द है। इसमें दो पद हैं-इष्ट और पूर्त। दोनों का समास होने पर मित्रावरुण, अष्टावक्र, तथा विश्वामित्र इत्यादि शब्दों की भाँति 'अन्येषामपि दृष्यते' (पाणिनि ६/३/१३७) सूत्र से बीच में 'अकार' का दीर्घ होता है। पाणिनि ने (५/२/८८) के गणपाठ में यद्यपि 'इष्ट-पूर्त' शब्दों का पाठ किया है, पर समास में अकार वृद्धि की चर्चा नहीं की है। दीर्घत्व का प्रसंग ६/३/१२८-१३९ सूत्रों के प्रकरण में मिलता है। काशिका के अनुसार इष्ट का अर्थ यज्ञ और पूर्त का अर्थ श्राद्ध आदि है। वेदों से लेकर पुराण एवं स्मृतियों तक के प्रयोगों में इष्टापूर्तम्, इष्टापूर्तौ और इष्टापूर्ते—ये तीनों ही समस्त या असमस्त प्रयोग मिलते हैं। रघुनन्दनभट्ट ने अपने 'मलमासतत्त्व' में जातुकर्ण्य के वचन से अग्निहोत्र, वैश्वदेव, सत्य, तप, वेदाध्ययन एवं उनके अनुकरण को इष्ट तथा वापी, कूप, तडाग, देवमन्दिर, पौंसला, बगीचा तथा सदाव्रत आदि चलाने को पूर्त कहा है[१]। चारों

---

७. अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम्। आस्तिक्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च। अन्नप्रदानमारामाः पूर्तमित्यभिधीयते॥
—मलमासतत्त्व- उद्धृत जातुकर्ण्यवचन।

उपर्युक्त वचन किंचिदन्तर से मनुस्मृति (४/२२७) की मेधातिथि, कुल्लूक आदि की व्याख्याओं तथा अत्रिस्मृति (४३-४४), लघुशंखस्मृति (४-५), लिखितस्मृति (५-६), मार्क० पु० (१८/६-७), अग्निपु० (१०९/२-३) आदि में भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद (१०/१४/८,१०/११/१२), छान्दोग्योप० (५/१०/३), वसिष्ठध० (३०), विष्णुध० (९१-९२) तथा याज्ञवल्क्यस्मृति आदि में भी इष्टापूर्ति की व्याख्या इन्हीं श्लोकों में की गयी है।

वेदों में यह पद बार-बार आया है।

संहिताभाग में इष्टापूर्त का व्यापक वर्णन है[1]। सर्वत्र 'उद्बुध्यस्वाग्ने' इत्यादि मंत्र में ही यह पद प्रयुक्त है। अधिकांश स्थलों पर इतरेतर द्वन्द्व के रूप में भी पुलिंग एवं नपुंसकलिंग में यह पद मिलता। बह्वृचपरिशिष्ट में इष्टापूर्त के सभी अंगो प्रतिमा, कूप, आराम, तड़ाग, वापी आदि की प्रतिष्ठा, यज्ञ, हवन एवं शान्तियों का उल्लेख है।[2] यह जितना शुद्ध, आनुक्रमिक एवं प्रासंगिक है, उतना किसी भी कर्मकाण्ड ग्रन्थ में नहीं मिला। षड्विंशब्राह्मण में भी ठीक यही बातें मिलती हैं।[3] अथर्वपरिशिष्ट में प्रायः इन्हीं शब्दों में देव प्रतिमाद्भुत् का निर्देश हैं।[4] भविष्यपुराण का यह पर्व सर्वथा बह्वृचपरिशिष्ट से मिलता है।

मुइर्स (MUIR'S LECTURS) लेक्चर्स खण्ड ५, धारा २९३ पर इन चारों वचनों और उनकी व्याख्याओं का संग्रह है। बनर्जी तथा थीबूट के ब्रह्मसूत्र के हिन्दी अनुवाद में पृष्ठ १९ तथा ३० पर इष्ट का अर्थ स्वार्थ के लिए तप और पूर्त का अर्थ परोपकार के लिए किया गया धर्म निर्दिष्ट है। शंख तथा लिखित आदि स्मृतियों के अनुसार ये धर्म द्विजातियों के होते हैं। शूद्रों को केवल पूर्त का अधिकारी कहा गया है। किंतु इस तथ्य की व्याख्या में भविष्यपुराण का प्रतिपादन अत्यन्त प्रौढ़ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुराण के निर्माता को सभी प्राचीन, श्रौतसूत्रादि ग्रन्थों का भाष्य देखने को मिला था, क्योंकि श्रौतसूत्रों की ही भाँति भविष्यपुराण में भी ज्ञानसाध्य कर्म को अन्तर्वेदी तथा प्रतिमा आदि को बहिर्वेदी कहा गया है।[5]

मध्यमपर्व के प्रथम खण्ड में पुराणकार ने अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण ढंग से इस पर्व की निर्विघ्न समाप्ति हेतु मंगलाचरण करते हुए भविष्यपुराण के प्रशंसा की परम्परा में धर्म के स्वरूप को व्यक्त किया है। इसी पर्व में विराट् ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को स्थापित करते हुए, स्वर्ग, पाताल आदि लोकों के वर्णन के साथ तीनों वर्णों की प्रशंसापूर्वक ब्राह्मण का लक्षण विवेचित है। इस पर्व का वृक्षारोपण, कूप, वापी इत्यादि की प्रतिष्ठा, देवता-प्रतिमा लक्षण, अष्टादश कुण्ड संस्कार वर्णन, नित्य-नैमित्तिक होम के अवसान पर षोडश उपचार वर्णन, होम हेतु द्रव्यों का प्रमाण, स्रुवा, दर्वी, पात्र निर्माण वर्णन, पूर्णाहुति होम वर्णन और विविध मण्डल निर्माण वर्णन हृदयग्राही है, जो वर्तमान में पर्यावरण को दूषित होने से बचाने की पूरी क्षमता रखता

---

१. **वाजसनेयिसं० (१५/१४), तै० सं० (४/७/३), का० सं० (१८/१८), कपि० सं० (२९/६), काण्वसं (१६/७७, २०/३१), मै० सं० (७/१२,४/२२), अथर्व० (२/१२/४), ३/१२८, ६/१२३/२, १८/१२/५७), ऋ० (१०/१४/८), पै० सं० (२/५/४) में भी इष्टापूर्त का उल्लेख है।**

२. **बह्वृचपरिशिष्ट, अध्याय ४, खण्ड १ से २१ तक।**

३. **षड्विंशब्राह्मण ६/१०/१-३।**

४. **अथर्वपरिशिष्ट ७२/४-६।**

५. **ज्ञानसाध्यं तु यत्कर्म अन्तर्वेदीति कथ्यते।**
देवतास्थापनं पूजा बहिर्वेदिरुदाहृता॥ **भविष्यपु० २/१/९/१-२।**

है। वैज्ञानिक भी अनेक प्रकार का अनुसन्धान करके इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि क्षिति, जल, पावक, गगन एवं समीर को दूषित होने से बचाना है, तो पुराणों का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

द्वितीय खण्ड में याज्ञिक कृत्यों की अत्यन्त विशद विवेचना है। इस खण्ड की रचना का मुख्य उद्देश्य यह जान पड़ता है कि यज्ञ के मंत्रों एवं छन्दों को उनकी विधि के साथ यजमान आचरण कर मोक्ष प्राप्त करे। किसी भी शास्त्र या साहित्य का प्रयोजन यही है कि उसका अध्येता निजी जीवन के लिए उसको उपयोगी समझकर भली प्रकार अपनाये तथा अपने आचरण एवं व्यवहार से ऐसी परम्परा को उद्भूत करे, जिसका आश्रय कर जन-सामान्य ऊपर उठ सके। जहाँ तक मेरी धारणा है; भविष्यमहापुराणकार अपने इस उद्देश्य में सफल हैं, क्योंकि इतनी प्राचीन रचना होते हुए भी आज हमारे बीच यह पुराण लोकप्रिय है।

जाति-विहीन समाज के निर्माण की मान्यता में भविष्यपुराण आगे है। मुझे तो ऐसा लगता है कि वर्तमान युग में सामाजिक बराबरी की बात की जा रही है, वह निश्चयेन इस पुराण से प्रभावित है। इस बात से कथमपि इन्कार नहीं किया जा सकता है कि पुराणों में भी विशेषकर भविष्यपुराण के प्रति लोगों की अधिक आस्था है तथा इसमें पाये जानेवाले विषयों के अनुरूप आचरण को जन-सामान्य ने अपनाया है।

वेदों में यज्ञों के अनेक भेद निर्दिष्ट हैं, जिनमें सोमयाग, पुण्डरीक, अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय आदि प्रमुख हैं, इष्टापूर्त के अन्तर्गत ही यज्ञ भी आ जाता है तथा संस्कार-कर्मों में भी यज्ञ की आवश्यकता होती है। इन सभी यज्ञों में ऋत्विक ब्राह्मणादि का वरण तथा अग्निकुण्ड-संस्कार यजमान के गृह्यसूत्र के अनुसार करता है। गृह्यसूत्रों में पारस्कर, आश्वलायन, गोभिल द्राह्यायण, जैमिनि, भारद्वाज, मानव, लौगाक्षि, बौधायन और सांख्यायन आदि मुख्य हैं। इनके अनुसार प्रणीता के बाद कुशकण्डिका, आधारहोम, महाव्याहृतिहोम और प्रायश्चित्तहोम करना चाहिए। इन्द्र और प्रजापति के नाम की आहुतियाँ आधारहोम कहलाती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ-पद्धति इस खण्ड में वर्णित है।

इस खण्ड में पुराणकार ने क्रौञ्च, घ्राण आदि विविध मण्डलों के निर्माणपूर्वक उनके प्रकारों, दक्षिणा का प्रमाण, कलशस्थापन के भेदों, मास को आश्रित कर कर्म की उपयोगिता से चतुर्विध मास का लक्षण, दैव-पैतृक कर्मों के लिए उपयुक्त तिथियों का निर्णय, गोत्रप्रवर-सन्तान निरूपण, बलिमण्डलपूर्वक वास्तुयाग विधियों, वास्तुदेवता पूजा, अर्घ्यदान, यज्ञ कर्म में कुशकण्डिका और स्थालीपाक विधान, अग्निजिह्वा ध्यान, यज्ञ-कर्मों के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन, गृह-निर्माण के समय देवताओं की पूजा के प्रकार तथा उनकी प्रतिष्ठा-विधियों का अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से उल्लेख किया है। इसी के साथ इस खण्ड के समाप्ति की घोषणा की गयी है।

हम सभी को ज्ञात है कि कण-कण में ईश्वर-जीव का अधिवास होता है। सम्पूर्ण चराचर जगत् ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न होता है और अन्ततः प्रलय काल में उसी में विलीन हो जाता है। यह सब जानते हुए भी मनुष्य की उत्तम कार्यों में प्रवृत्ति नहीं हो पाती तथा वह बार-बार

जन्म-मृत्यु के पाश में बँधकर तड़फड़ाता रहता है और चाहकर भी मुक्ति को नहीं प्राप्त कर पाता है। मुक्ति के जिन साधनों की चर्चा शास्त्रों में निर्दिष्ट है, उनमें पूर्त कर्म भी अपनी प्रधानता रखते हैं। मनुष्य कूप, वृक्ष, तालाब का निर्माण कराकर तथा अनेक प्रकार के उपकारी कार्यों को करके जीवन से मुक्ति पाने हेतु लालायित रहता है। इस दृष्टिकोण के प्रतिपादन में यह खण्ड श्लाघनीय है। पूर्त कर्म पद्धति का जितना सुन्दर विवेचन इस खण्ड में है, उतना अन्यत्र देखने को भी नहीं मिलता। पुराणकार ने वृक्षारोपण—जैसे पुनीत कार्यों को अत्यन्त गम्भीरता से लेते हुए इस खण्ड को मनोहर बनाने का प्रयत्न किया है। इस खण्ड में क्रमशः वृक्षारोपण, गोचर भूमि की प्रतिष्ठा-विधि, सरोवर का निर्माण, पुष्करिणी-निर्माण तथा वापी-निर्माण से मिलनेवाले फलों पर विस्तार से विचार किया गया है। पुनः अश्वत्थ, आम्र, वट, पूग और तुलसी इत्यादि वृक्षों को लगाने से होनेवाले फलों पर अनेक अध्याय लिख डाले गये हैं। इन वृक्षों के रख-रखाव तथा संवर्धन में कोई बाधा न पड़े, इसके लिए महापुराणकार ने शान्ति का विधान निरूपित किया है।

पुराणों में कुछ-न-कुछ ऐतिहासिक सामग्री तो सर्वत्र ही मिलती है, किंतु भविष्यमहापुराण में जिस प्रकार की और जिन ऐतिहासिक सामग्रियों का संचयन हुआ है, वैसी अन्य पुराणों में नहीं मिलती। वैसे तो इस महापुराण का हिन्दी-अनुवाद बहुत पहले हो जाना चाहिए था, किंतु ऐसा लगता है कि इस महान् कार्य का गौरव 'सम्मेलन' को ही मिलना था, इसीलिए किसी ने इधर ध्यान नहीं दिया। इस पुराण में 'प्रतिसर्गपर्व' के जुड़ जाने के कारण कतिपय पुराण मर्मज्ञों ने इसकी प्रामाणिकता पर अपनी आशंका जतायी है, किंतु निःसन्देह इस पर्व को छोड़कर शेष पर्व अति प्राचीन हैं तथा उनमें अवश्यमेव भविष्यत्कालीन घटनाओं का संग्रह है। इसके 'भविष्यपुराण' नाम से ही द्योतित होता है कि इस पुराण के निर्माता ने भविष्यत्कालीन घटनाओं का भूतकाल में निरूपित करने का सफल प्रयत्न किया। वर्तमान में जो घटनाएँ घट रही हैं, उनको पुराणकार ने पहले ही कह दिया है। दृढ़-निश्चयपूर्वक चिन्तन किया जाय, तो इसका यही भाव निकलेगा कि उस समय की जिन घटनाओं का वर्णन इस पुराण में किया गया है, किसी भी अंश में आज दृष्टिगोचर हो रही हैं।

यदि इस प्रकार कहा जाय कि भविष्यमहापुराण का प्रतिसर्गपर्व मध्यकालीन इतिहास का कोश स्रोत है, तो अधिक उचित होगा। इस पर्व को चार खण्डों में विभाजित किया गया है। अब आगे प्रतिसर्गपर्व के पृथक्-पृथक् खण्डों में वर्णित विषयों पर प्रकाश डालना समीचीन है।

इसके प्रथम खण्ड में वैवस्वत मनु से आरम्भ कर अनेक भूपतियों के राज्य-काल का अत्यन्त विस्तृत वर्णन है। सात अध्यायों में इस खण्ड की विषय-सामग्री प्रतिपादित है। म्लेच्छ यज्ञ का विवेचन करते हुए पुराणकार ने विभिन्न म्लेच्छ राजाओं (आदम, श्वेत, न्यूह,) के वृत्तान्त, म्लेच्छ भाषा का विधान, आर्यावर्त में म्लेच्छों के आने के कारण-प्रसंग में काश्यप ब्राह्मण वृत्तान्तवर्णन, बौद्ध धर्म संस्कार वर्णन, चार प्रकार के क्षत्रियों की उत्पत्ति का वर्णन तथा विक्रमादित्यावतार सहित वेताल-विक्रम संवाद का सविस्तार विवेचन किया गया है।

द्वितीय खण्ड में पद्मावती, मधुमती, वीरवर, चन्द्रवती, हरिदास, कामांगी, त्रिलोकसुन्दरी, कुसुमदा, कामालसा, सुखभाविनी, जीमूतवाहन, मोहिनी इत्यादि कन्याओं का वर्णन करते हुए पुराणकार ने सत्यनारायण व्रतकथा विस्तृत रूप से निरूपित किया है। इसका पाणिनि, बोपदेव तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि का व्याख्यान भी कम आकर्षक नहीं है।

इसके तृतीय खण्ड में ऐतिहासिक वृत्तान्त वर्णन-प्रसंग में महाभारत युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए कौरवों, यादवों, पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण इत्यादि के पुनः अवतार का विवेचन है। भरतखण्ड के १८ राज्यों, शालिवाहन, शक, कालिदास, भोजराज, मुहम्मद साहब, ईसामसीह, भोजराज के वंश में उत्पन्न अनेक राजाओं जयचन्द्र, पृथ्वीराज, भीष्मराज, परिमलराज, लक्ष्मणराज, जम्बूकराज, देशराज, वत्सराज, चण्डिकादेवी, इन्दुल, पद्मिनी, चित्रलेखा के वर्णन के साथ पुराणकार ने इस खण्ड को ऐतिहासिक सामग्रियों के कोश के रूप में सजाने का भरपूर प्रयत्न किया है, जो सहज ही इतिहासकारों का मन मोह लेता है।

इसके चतुर्थ खण्ड का वर्णन न केवल इतिहासकारों, बल्कि सामान्य लोगों की उपयोगिता को दृष्टि में रखकर निर्मित किया गया है। इस खण्ड में अग्निवंशीय राजाओं के चरित्र का वर्णन करते हुए पुराणकार का स्पष्ट अभिमत है कि भावी पीढ़ी तभी आगे बढ़ सकती है, जब उसको अपने पूर्वजों के किये हुए कार्यों का सम्यक् ज्ञान हो। इसी को आश्रित कर उन्होंने विक्रमवंशीय भूपाल, अजमेरपुर, द्वारकाराज्य, सिन्धुदेश, कच्छभुज, उदयपुर, कान्यकुब्ज, देहली में स्थित म्लेच्छराजाओं का वृत्तान्त, सूर्यमाहात्म्य, मध्वाचार्य, धन्वन्तरि, कृष्ण चैतन्य, सुश्रुत, शंकराचार्य, गोरक्षनाथ, ढुण्ढिराज, रामानुज, वामदेव, कबीर, नरश्री, पीपा, नानक, नित्यानन्द इत्यादि की उत्पत्ति को वर्णित किया है। इसी क्रम में कण्व ब्राह्मण की पत्नी आर्यावती से उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डे तथा चतुर्वेदी—इन दश पुत्रों के उत्पत्ति की कथा मिलती है। इसके आगे पुराणकार ने अकबर, शिवाजी, मोंगल, कलकत्तानगरी, गुर्जरदेश, विश्वकर्मा इत्यादि का वर्णन करते हुए प्रतिसर्गपर्व का उपसंहार किया है।

प्रतिसर्गपर्व के इन चार खण्डों की विषय-सामग्री आइने अकबरी, तारीख फिरोजशाही, तवकित अकबरी इत्यादि अनेक उर्दू ग्रन्थों में तो प्रकाशित है ही, पार्जीटर, स्मिथ तथा पं० भगवद्दत्त ने भी इतिहास का प्रमुख श्रोत भविष्यमहापुराण को मानते हुए अपने-अपने ग्रन्थों की रचना की है। इन विद्वानों के ग्रन्थों के आधार पर भी स्वतंत्र रूप से अनेक ग्रन्थ लिख डाले गयें हैं।

वस्तुतः ! भविष्योत्तरपर्व नामार्थतः भविष्यपुराण से उत्तरकालीन जान पड़ता है। वेङ्कटेश्वर प्रेस, निर्णयसागर तथा काशी के कई प्रेसों से आदित्य-स्तोत्र भविष्योत्तरपुराण के नाम से प्रकाशित हो चुका है। गम्भीर विचार करने पर यहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि यदि भविष्यपुराण इतना प्राचीन है और जिसका उल्लेख आपस्तम्बधर्मसूत्र में आदर के साथ किया गया है, तो अन्य ब्राह्म आदि पुराण और भी प्राचीन होंगे। इसलिए इनका काल ईसा की सदियों में खोजना पुराणों की आत्मा के विरुद्ध है।

भविष्यमहापुराण का चतुर्थ उत्तरपर्व भारतीयों की आस्था के अनुरूप है, क्योंकि धर्म के स्वरूप से लेकर उसके विभिन्न पक्षों पर इसमें गवेषाणात्मक ढंग से विचार किया गया है। यह खण्ड विशेषकर सभी प्रकार के व्रतों, उत्सवों, कर्मकाण्डों एवं दानों आदि का विश्वकोश है। भारतवर्ष में इसकी इतनी अधिक प्रतिष्ठा थी कि ५ वीं शताब्दी से १७ वीं शताब्दी तक इसी के आधार पर अनेक निबन्ध ग्रन्थ लिखे गये। बंगाल के निबन्धकार रघुनन्दन भट्ट के स्मृतितत्त्व, मदनसिंह के मदनपारिजात, हेमाद्रि के चतुर्वर्गचिन्तामणि, जीमूतवाहन के कालविवेक, व्यवहारमातृका और दायभाग, बल्लालसेन के दानसागर, प्रतिष्ठासागर, अद्‌भुत्सागर और आचारसागर, देवण्णभट्ट की स्मृतिचन्द्रिका, लक्ष्मीधर के कृत्यकल्पतरु के दान एवं व्रतखण्ड, माधवाचार्य के पराशरमाधव, गोविन्दानन्द की व्रतक्रियाकौमुदी, दानक्रिया-कौमुदी, वर्षक्रियाकौमुदी, शुद्धक्रियाकौमुदी, नारायणभट्ट के प्रयोगरत्नाकर, त्रिःस्थलसेतु और शुद्धिचन्द्रिका, चण्डेश्वर के स्मृतिरत्नाकर, गृहस्थरत्नाकर, राजनीतिरत्नाकर, व्यवहार-रत्नाकर, रणवीरसिंह के व्रतरत्नाकर, जयसिंह के व्रतकल्पद्रुम, कमलाकरभट्ट के दानकमलाकर, व्रतकमलाकर, धर्मकमलाकर, निर्णयसिन्धु तथा विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा, अपरार्क के अधिकांश भागों का मूल आधार यही है।

इस खण्ड में कुल २०८ अध्याय हैं। नारदपुराण में भविष्यमहापुराण की जिस सूची का उल्लेख है, उसके अनुसार यह पर्व खरा उतरता है तथा धर्म में आस्था रखनेवाले लोगों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह पर्व धर्माधिकारियों के लिए चुनौतीपूर्ण है। इसका सम्यक् अध्ययन करनेवाला व्यक्ति न केवल सुखमय जीवन व्यतीत करता है, बल्कि अपनी भावी पीढ़ी को भी सन्मार्ग की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करता है। इस खण्ड में व्रत-निरूपण के प्रसंग में क्रमशः तिलक, अशोक, कोकिला, वृहत्तपा, जातिस्मर, यमद्वितीया, तृतीया, गणेशचतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सारस्वत, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, अनंगत्रयोदशी, चतुर्दशी, पाली, रम्भा, आग्नेयी, श्रवणिका, फलत्याग, पूर्णिमा, वटसावित्री, पूर्णमनोरथ, अनन्त, नक्षत्रपुरुष, सम्पूर्ण, वेश्या, शनैश्चर, आरोग्यकरसौर, भद्रा, देवपूजा, सत्येश, काञ्चनपुरी और कौमुदी इत्यादि व्रतों एवं उत्सवों का उल्लेख है।

पुण्यार्जन की दृष्टि से अनेक प्रकार के दानों का विवरण भविष्यपुराण में है। इस क्रम में पुराणकार ने क्रमशः अगस्त्यार्घ्य, चन्द्रार्घ्य, वृषोत्सर्ग, कलात्मक, जलधेनु, सहस्रगोदान, कपिला, महिषी, अवि, भूमि, हलपंक्ति, आपाक, गृह, अन्न, स्थाली, दासी, प्रपा, अग्निष्टिका, विद्या, तुलापुरुष, हिरण्यगर्भ, ब्रह्माण्ड, अश्व, कालपुरुष, सप्तसागर, महाभूत, शय्या, आत्मप्रतिकृति, विश्वचक्र, वराह तथा पर्वत इत्यादि अनेक दानों का उनकी विधियों के साथ निरूपण किया है।

भविष्यमहापुराण एक विशाल ग्रन्थ है और इसमें असंख्य विषयों का समावेश हुआ है। पुराण तो भारतीय ज्ञान-विज्ञान के कोश हैं। वेदों के व्याख्याभूत हैं और विद्या के मानो मूर्त-रूप हैं। भविष्यपुराण भूत, भविष्य की ऐतिहासिक घटनाओं, भाषा, संस्कृति, कला, राजनीति, खगोल, भूगोल तथा अनन्त शास्त्रों का भाण्डार है।

मुझे यह जानकर अतिशय प्रसन्नता है कि 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' इस विशाल

ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद लोकहिताय प्रकाशित कर रहा है। इस पुनीत कार्य में संस्कृत एवं हिन्दी के मर्मज्ञ डॉ० प्रभात शास्त्री जी, जो सम्प्रति सम्मेलन के प्रधानमंत्री हैं, का योगदान अविस्मरणीय है। इससे सभी लोगों को दिशाएँ मिलेंगी और जो विशेषज्ञ हैं, उन्हें सन्तोष। आशा ही नहीं, अपितु विश्वास है कि सम्मेलन के इस साहसपूर्ण प्रयास की सराहना होगी और यह ग्रन्थ विद्वज्जनों का ध्यान आकृष्ट करेगा। अब तो इतने उच्चकोटि के ग्रन्थों का दर्शन दुर्लभ होता जा रहा है, इसलिए जितना कुछ भी लिखा जाय अल्प होगा।

(डॉ० रामजी तिवारी)
प्राध्यापक
संस्कृत विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर

अनुक्रमणिका

●

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

भविष्यमहापुराणम्

ब्राह्मपर्व

अथ प्रथमोऽध्यायः

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१
जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः । यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥२
मूकङ्करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् । यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥३
पाराशर्यवचः सरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटं, नानाख्यानककेसरं हरिकथासम्बोधनाबोधितम् ।
लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा, भूयाद्भारतपङ्कजं कलिमलप्रध्वंसि नः श्रेयसे ॥४
यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति, विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय ।
पुण्यां भविष्यसुकथां शृणुयात्समग्रां, पुण्यं समं भवति तस्य च तस्य चैव ॥५

अध्याय १

ब्राह्मपर्व का वर्णन

नारायण, नरोत्तम (मनुष्यों में श्रेष्ठ) तथा वाग्देवी सरस्वती को नमस्कार करके, जय (महाभारत, पुराणादि पवित्र ग्रन्थों के) आख्यानों का उच्चारण करना चाहिए।१। सत्यवती के हृदय को हर्षित करने वाले, पराशर के पुत्र व्यासदेव की जय हो, जिनके मुखारविन्द से निकले हुए अमृत (रस) रूपी वाक्यों का समस्त संसार पान करता है।२। जिसकी कृपा (दृष्टि) मात्र से ही मूक (गूँगा) पण्डित (शास्त्र-निष्णात होकर प्रवक्ता-वाचाल) हो जाता है और पंगु (लँगड़ा-विकृताङ्ग) पर्वत को लाँघने योग्य (सामर्थ्य से युक्त) हो जाता है, उस परमानन्द स्वरूप माधव (श्रीकृष्ण) की मैं वन्दना करता हूँ।३। इस लोक (संसार) में कलियुग के पापों को विनष्ट करने वाला वह महाभारत रूप कमल हम लोगों (वक्ता-श्रोता) का कल्याण करे जो पराशर-नन्दन व्यास के वचनरूपी सरोवर से उत्पन्न हुआ है। यह जय काव्य अति निर्मल है! गीता के गंभीर भावों की उत्कृष्ट सुगन्धि से सुवासित और विविध प्रकार के सुन्दर आख्यान-परागों से व्याप्त, भगवान् श्रीकृष्ण की (पावन) कथाओं से विकसित है। उस पर भ्रमर बने सत्पुरुष गूँज-गूँजकर उस (काव्य-पराग) का रसास्वादन करते हैं।४। जो व्यक्ति स्वर्ण- मण्डित सींगों से सुसज्जित सौ गौओं को (किसी कर्मकाण्डी वेदज्ञ—बहुश्रुत) ब्राह्मण को दान करता है और जो (कोई दूसरा व्यक्ति इस दान के स्थान पर) भविष्यमहापुराण की कथा का आद्योपान्त श्रवण करता है, उन दोनों

कृत्वा पुराणानि पराशरात्मजः सर्वाण्यनेकानि सुखावहानि ।
तत्रात्मसौख्याय भविष्यधर्मान् कलौ युगे भावि लिलेख सर्वम् ॥६
तत्रापि सर्वर्षिवरप्रमुख्यैः पराशराद्यैर्मुनिभिः प्रणीतान् ।
स्मृत्युक्तधर्मागमसंहितार्थान् व्यासः समासादवदद्भविष्यम् ॥७
अल्पायुषो लोकजनान्समीक्ष्य विद्याविहीनान्पशुवत्सुचेष्टान् ।
तेषां सुखार्थं प्रतिबोधनाय व्यासः पुराणं प्रथितं चकार ॥८

जयति भुवनदीपो भास्करो लोककर्त्ता, जयति च शितिदेहः शार्ङ्गधन्वा मुरारिः ।
जयति च शशिमौली रुद्रनामाभिधेयो, जयति च स तु देवो भानुमांश्चित्रभानुः ॥१
श्रियावृतं तु राजानं शतानीकं महाबलम् । अभिजग्मुर्महात्मानः सर्वे द्रष्टुं महर्षयः ॥२
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । पराशरस्तथा व्यासः सुमन्तुर्जैमिनिस्तथा ॥३
मुनिः पैलो याज्ञवल्क्यो गौतमस्तु महातपाः । भारद्वाजो मुनिर्धीमांस्तथा नारदपर्वतौ ॥४
वैशम्पायनो महात्मा शौनकश्च महातपाः । दक्षोऽङ्गिरास्तथा गर्गो गालवश्च महातपाः ॥५
तानागतानृषीन्दृष्ट्वा शतानीको महीपतिः । विधिवत्पूजयामास अभिगम्य महामतिः ॥६
पुरोहितं पुरस्कृत्य अर्घ्यं गां स्वागतेन च । पूजयित्वा ततः सर्वान्प्रणम्य शिरसा भृशम् ॥७

को समान पुण्य (फल) प्राप्त होता है ।५। पराशर के पुत्र व्यास ने आनन्ददायिनी (चतुर्वर्गफलदायिनी) कथाओं से युक्त अनेक पुराणों की रचना करने के बाद, स्वान्तःसुखाय कलियुग में घटित होने वाले सभी धर्मों को (इस) भविष्य पुराण में लिखा ।६। और उन सभी ऋषियों में प्रमुख पराशर आदि के द्वारा प्रणीत स्मृतियों में कहे गये धर्म (के स्वरूप), वेद एवं संहिताओं के अर्थ (को ग्रहण करके) व्यास ने भविष्य पुराण की संक्षेप में रचना की ।७। अल्पायु, विद्याहीन, पशु के समान कर्म करने वाले (कर्म में निरत रहने वाले) सांसारिक प्राणियों को (दुःखित) देखकर व्यास जी ने उनको जागरित करने के लिए इस विख्यात भविष्य पुराण की रचना की ।८

समस्त भुवनमण्डल को प्रकाशित करने वाले सम्पूर्ण संसार के कर्त्ता सूर्य देव जयशील हों (सूर्यदेव की जय हो)। श्यामवर्ण, मनोहर शरीरवाले, सींग का धनुष धारण करने वाले, मुरारि (मुर नामक दैत्य का नाश करने वाले भगवान् श्री विष्णु) जयशील हों (विष्णु की जय हो)। रुद्र नामवाले मस्तक पर चन्द्रमा धारण करने वाले, भगवान् शिव जयशील हो (शिव की जय हो)। और देव (अग्नि देव) कांति युक्त एवं विचित्र किरणों वाले अग्नि जयशील हों। (अग्नि की जय हो) ।१। महाबलशाली, श्रीसम्पन्न राजा शतानीक को देखने के लिए सभी महर्षिगण उनके समीप गये। उनमें भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, पराशर, व्यास, सुमन्तु, जैमिनि, पैल, मुनि याज्ञवल्क्य, महातपस्वी गौतम, परम बुद्धिमान् मुनि भारद्वाज, नारद, पर्वत, महात्मा वैशम्पायन, परम तपस्वी शौनक, दक्ष, अङ्गिरा, गर्ग और महान् तपस्वी गालव थे ।२-५। अपने यहाँ आये हुए इन महर्षियों को देखकर महामति राजा शतानीक ने अगवानी करके (उन सबकी) विधिवत् पूजा की ।६। अपने पुरोहित को आगे करके अर्घ्य और गौ से स्वागतपूर्वक पूजन करने के उपरान्त राजा ने (उन) सबको नतमस्तक होकर बार-बार प्रणाम किया ।७। जब महर्षिगण

सुखासीनांस्ततो राजा निरातङ्कान् गतक्लमान् । उवाच प्रणतो भूत्वा बाहुमुद्धृत्य दक्षिणम् ॥८
इदानीं सफलं जन्म मन्येऽहं भुवि सत्तमाः । आत्मनो द्विजशार्दूला ! तथा कीर्तिर्यशो बलम् ॥९
धन्योऽहं पुण्यकर्मा च यतो मां द्रष्टुमागताः । येषां स्मरणमात्रेण युष्माकं पूयते नरः ॥१०
श्रोतुमिच्छाम्यहं किञ्चिद्धर्मशास्त्रमनुत्तमम् । आनृशंस्यं समाश्रित्य कथयध्वम् महाबलाः ! ॥११
येनाहं धर्मशास्त्रं तु श्रुत्वा गच्छे परां गतिम् । यथागतो मम पिता श्रुत्वा वै भारतं पुरा ॥१२
तथोक्तास्तेन राज्ञा वै ब्राह्मणास्ते समन्ततः । समागम्य मिथस्ते तु विमृश्य च [1]भृशम् तदा ॥१३
पूजयित्वा ततो व्यासमिदं वचनमब्रुवन् । व्यासं प्रसादय विभो ! एष ते कथयिष्यति ॥१४
तिष्ठत्यस्मिन्महाबाहो ! वयं वक्तुं न शक्नुमः । तिष्ठमाने गुरौ शिष्यः कथं वक्ति महामते ! ॥१५
[2]अयं गुरुः सदास्माकं साक्षान्नारायणस्तथा । कृपालुश्च तथा चायं तथा दिव्यविधानवित् ॥१६
चतुर्णामपि वर्णानां पावनाय महात्मनाम् । धर्मशास्त्रमनेनोक्तं धर्माद्यैः सुसमन्वितम् ॥१७
बिभेति गहनाच्छास्त्राल्लोको व्याधिरिवौषधात् । भारतस्य[3] च विस्तारो मुनिना व्याहृतः स्वयम् ॥१८
यथा स्वादु च पथ्यं च दद्यात्स्वं भिषगौषधम् । तथा रम्यं च शास्त्रं च भारतं कृतवान्मुनिः ॥१९
आस्तिक्यारोहसोपानमेतद् भारतमुच्यते । तच्छ्रुत्वा स्वर्गनरकौ लोकः साक्षादवेक्षते ॥२०

निरातंक एवं मार्ग की थकावट से निवृत्त हो, सुखपूर्वक (अपने अपने) आसनों पर बैठ गये, तब राजा शतानीक ने विनम्र भाव से अपना दाहिना हाथ उठाकर कहा—।८। सज्जनों में श्रेष्ठ, महर्षिगण ! अब इस पृथ्वी पर मैं अपने को सफलजन्मा मानता हूँ । हे ब्राह्मणवृन्दश्रेष्ठ ! हमारे यश एवं बल दोनों सफल हो गये ।९। मैं वस्तुतः धन्य एवं पुण्यकर्मा हूँ, क्योंकि मुझे देखने के लिए आप सब का यहाँ (मेरे स्थान पर) शुभागमन हुआ है, जिन आप लोगों के स्मरण मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है ।१०। महान् पराक्रमशालियों ! मैं कुछ परमोत्तम धर्मशास्त्र की चर्चा सुनना चाहता हूँ । आप कृपापूर्वक मुझसे कहें ।११। जिससे उस पवित्र धर्मशास्त्र की कथाओं को सुनकर मैं भी वैसी ही परम गति प्राप्त करूँ, जैसी पहले महाभारत की (पवित्र) कथा को सुन कर मेरे पूज्य पिता जी ने प्राप्त की ।१२। राजा शतानीक के इस प्रकार निवेदन करने पर उन ब्राह्मणों ने आपस में भलीभाँति विचार कर व्यास को सम्मानपूर्वक (आगे कर) राजा से यह वचन कहा ।१३। हे सर्वशक्तिमान् ! आप इन्हीं व्यास जी को प्रसन्न करें । यही आपसे धर्मशास्त्र की कथा कहेंगे ।१४। हे महाबाहु ! इनके विद्यमान रहते हम लोग नहीं कह सकते । हे महामते ! भला गुरु के रहते शिष्य कैसे बोल सकता है ? ।१५। ये हम सबके सर्वदा से गुरु रहे हैं । साक्षात् नारायण स्वरूप हैं और परम कृपालु हैं तथा दिव्य विधानों का इन्हें अच्छी तरह ज्ञान है ।१६। परम प्रभावशाली चारों वर्णों को पवित्र बनाने के उद्देश्य से धर्मादि (व्रत-नियमादि) से समन्वित धर्मशास्त्र की कथा इन्होंने ही कही है ।१७। कटु ओषधि की तरह लोग कठिन शास्त्रों से डरते रहते हैं, (इसीलिए) मुनिवर व्यास ने स्वयमेव विस्तृत महाभारत की रचना की ।१८। जिस प्रकार वैद्य रोगी को लाभकारी किन्तु सुस्वादु ओषधि स्वयं देता है, उसी प्रकार मुनि ने परम रमणीय एवं शास्त्रीय विषयों से समन्वित महाभारत की रचना की ।१९। यह महाभारत आस्तिक-भावना पर आरोहण करने की सीढ़ी कही जाती

---

१. भृगुम् । २. स्वयंगुरुः सदाध्यक्षो यथा नारायणस्तथा । ३. भारतशास्त्रसारोऽयमतः काव्यात्मना कृत ।

देवतातीर्थतपसां भारतादेव निश्चयः । न जन्यते नास्तिकता तस्य मीमांसकैरपि ।।२१
विष्णौ[1] देवेषु वेदेषु गुरुषु ब्राह्मणेषु च । भक्तिर्भवति कल्याणी भारतादेव धीमताम् ।।२२
धर्मार्थकाममोक्षाणां भरतात्सिद्धिरेव[2] हि । अजिह्मो भारतः पन्था निर्वाणपदगामिनाम् ।।२३
मोक्षधर्मार्थकामानां प्रपञ्चो भारते कृतः । अनित्यतापसन्तप्ता भवन्ति तस्य मुक्तये ।।२४
विपत्तिं भारतान्छ्रुत्वा वृष्णिपाण्डवसम्पदाम् । दुःखावसानाद्राजेन्द्र ! पुण्यं च संश्रयेद्बुधः ।।२५
एवंविधं[3] भारतं वै प्रोक्तं येन महात्मना । सोऽयं नारायणः साक्षात् व्यासरूपी महामुनिः[4] ।।२६
स तेषां वचनं श्रुत्वा प्रतापी यो महीपतिः । प्रसादयामास मुनिं व्यासं शास्त्रविशारदम् ।।२७

शतानीक उवाच

अञ्जलिः शिरसा ब्रह्मन् ! कृतोऽयं पादयोस्तव । ब्रूहि मे धर्मशास्त्रं[5] तु येनाहं पूततां व्रजे ।।२८
समुद्धर भवादस्मात्कीर्तयित्वा कथां शुभाम् । यथा मम पिता पूर्वं कीर्तयित्वा तु भारतम् ।।२९

व्यास उवाच

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा व्यासो वचनमब्रवीत् । एष शिष्यः सुमन्तुर्मे कथयिष्यति ते प्रभो ! ।।३०

है । इसका श्रवण करके लोग स्वर्ग एवं नरक का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ।२०। देवताओं, तीर्थों एवं तपों का महाभारत से ही निश्चय होता है । उसके श्रवण करने वालों के मन में मीमांसक भी नास्तिकता उत्पन्न नहीं कर सकते ।२१। भगवान् विष्णु अन्यान्य देवगण, गुरुजन वेद एवं ब्राह्मणों में बुद्धिमानों की कल्याणदायिनी भक्ति इसी महाभारत के श्रवण करने से होती है ।२२। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति भी महाभारत से ही होती है । निर्वाण पद को प्राप्त करने के लिए यह महाभारत ही सरल एवं सीधा उपाय है क्योंकि धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों दुर्लभ पदार्थों का विवेचन इसी महाभारत में किया गया है । अनित्य संतापों से संतप्त जनों को महाभारत से मुक्ति प्राप्त होती है । महाभारत से यदुवंशियों एवं पाण्डवों की अतुलनीय समृद्धि एवं विपत्ति का वर्णन सुनकर मनुष्य अपनी घोर विपत्तियों से छुटकारा पा जाता है । अतः विद्वान् इसका पुण्य ग्रहण करें । ऐसे महाभारत को जिस महात्मा ने कहा, वह महामुनि जो नारायण स्वरूप एवं व्यास रूप हैं, यहाँ साक्षात् विराजमान हैं ।२३-२६। मुनियों के वचन सुन उस प्रतापी महाराज (शतानीक) ने सर्वशास्त्रविशारद, मुनि व्यास जी को प्रसन्न किया ।२७

शतानीक ने कहा—ब्रह्मन् ! मैं अपनी अंजलि को शिर से लगाकर आपके दोनों चरणों में लगा रहा हूँ, कृपापूर्वक मुझसे धर्मशास्त्र (की कथा) कहें, जिससे मैं पवित्र हो जाऊँ ।२८। परम कल्याणमयी धार्मिक कथाओं का उपदेश कर आप मुझे भी इस संसार (सागर) से पार करें जैसे पहले महाभारत का वर्णन कर मेरे पूज्य पिता जी को तारा है ।२९

व्यास जी बोले—राजा की ऐसी वाणी सुनकर व्यास ने कहा, राजन् ! यह हमारे शिष्य सुमन्तु तुम्हें (उन धार्मिक कथाओं को) सुनायेंगे ।३०। हे महाबाहु ! भरतवंशियों में श्रेष्ठ ! यदि तुम समस्त

---

१. विद्वत्सु । २. सिद्ध्यसंशयः । ३. भारतं वै पञ्चविधम् । ४. महामतिः । ५. सर्वशास्त्रं च ।

यदिच्छसि महाबाहो ! प्रीतिदं चाद्भुतं शुभम् । श्रव्यं भरतशार्दूल ! सर्वपापभयापहम् ।।३१
यथा वैशम्पायनेन पुरा प्रोक्तं पितुस्तव । महाभारतव्याख्यानं ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ।।३२
अथ तमृषयः सर्वे राजानमिदमब्रुवन् । साधु प्रोक्तं महाबाहो ! व्यासेनामितबुद्धिना ।।३३
सुमन्तुं पृच्छ राजर्षे ! सर्वशास्त्रविशारदम् । अस्माकमपि राजेन्द्र ! श्रवणे जायते मतिः ।
अथ व्यासो महातेजाः सुमन्तुमृषिमब्रवीत् ।।३४
कथयास्मै कथास्तात ! याः श्रुत्वा मोदते नृपः । भारतादिकथानां तु यत्रास्य रमते मनः ।।३५
असावपि महातेजाः श्रुत्वा भावं महामतेः । व्यासस्य द्विजशार्दूल ! ऋषीणां चापि सर्वशः ।।३६
चकार वक्तुं स मनस्तस्मै राज्ञे महामतिः । व्यासस्य शासनाद्विप्र ! ऋषीणां चैव सर्वशः ।।३७
अथ राजा महातेजा आजमीढो द्विजोत्तमम् । प्रणम्य शिरसात्यर्थं प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।३८

शतानीक उवाच

पुण्याख्यानं मम ब्रह्मन् ! पावनाय प्रकीर्तय । श्रुत्वा यद्ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मुच्येऽहं सर्वपातकात् ।।३९

सुमन्तुरुवाच

नानाविधानि शास्त्राणि सन्ति पुण्यानि भारत । यानि श्रुत्वा नरो राजन् ! मुच्यते सर्वकिल्विषैः ।।४०
किमिच्छसि महाबाहो ! श्रोतुं यत्त्वां ब्रवीमि वै । भारतादिकथानां तु यासु धर्मादयः स्थिताः ।।४१

पापों एवं भय को दूर करने वाले, प्रीतिदायी, अद्भुतकल्याणप्रद, महाभारत के आख्यानों को सुनना चाहते हो तो, जिस प्रकार पहले वैशम्पायन ने ब्रह्महत्या प्रभृति पापों को दूर करने के लिए तुम्हारे पिता जी को सुनाया था, उसी प्रकार सुमन्तु तुम्हें सुनायेंगे ।३१-३२। व्यास जी के इस कथन के अनन्तर अन्य समस्त ऋषियों ने भी राजा से यह कहा कि—हे महाबाहु ! परम बुद्धिमान् व्यास जी ने बहुत ठीक कहा है । हे राजर्षि ! सभी शास्त्रों में निपुण सुमन्तु जी से आप (इन आख्यानों को) पूछें । हे राजन् ! हम लोगों की भी बुद्धि उसे सुनने को हो रही है ।३३-३४। तदनन्तर महान् तेजस्वी व्यास जी ने सुमन्तु ऋषि से कहा—तात ! तुम इन्हें (राजा को) कथा सुनाओ जिन्हें सुनकर इन्हें प्रसन्नता हो और महाभारतादि कथाओं में तो इनका मन विशेष रूप से लगता है ।३५। द्विजशार्दूल ! परम तेजस्वी सुमन्तु ने परम विद्वान् व्यास जी के भावों एवं ऋषियों की इच्छा को जानकर राजा शतानीक से उन पवित्र कथाओं को कहने का विचार किया । विप्र ! क्योंकि इसके लिए व्यास जी की एवम् अनेक ऋषियों की भी आज्ञा थी । तदनन्तर अजमीढ़ के पुत्र परम तेजस्वी राजा (शतानीक) ने सर्वप्रथम द्विजवर (सुमन्तु) को विशेष रूप से सिर नवाकर कहना प्रारंभ किया ।३६-३८

शतानीक बोले—हे ब्रह्मन् ! मुझे पवित्र करने के उद्देश्य से आप पुण्य कथाएँ कहें जिनको सुनकर मैं समस्त पातकों से दूर हो जाऊँ ।३९

सुमन्तु ने कहा—भरतकुलोद्भव ! हे राजन् । वैसे तो अनेक प्रकार के पवित्र शास्त्र हैं, जिनके सुनने से मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाता है ।४०। हे महाबाहु ! महाभारत आदि की कथाओं में धर्म आदि कहे गये हैं । आप उनमें से कौन-सा सुनना चाहते हैं, जिसे मैं कहूँ ।४१

शतानीक उवाच

मतानि कानि विप्रेन्द्र[1] ! धर्मशास्त्राणि सुव्रत ! । यानि श्रुत्वा नरो विप्र ! मुच्यते सर्वकिल्विषैः ।।४२

सुमन्तुरुवाच

श्रूयन्तां धर्मशास्त्राणि मनुर्विष्णुर्यमोऽङ्गिराः । वसिष्ठदक्षसंवर्तशातातपपराशराः ।।४३
[2]आपस्तम्बोऽथ उशना कात्यायनबृहस्पती । गौतमःशङ्खलिखितौ हारीतोऽत्रिस्तथापि वा ।।४४
एतानि धर्मशास्त्राणि श्रुत्वा ज्ञात्वा च भारत ! । वृन्दारकपुरं गत्वा मोदते नात्र संशयः ।।४५

शतानीक उवाच

यान्येतानि त्वयोक्तानि धर्मशास्त्राणि सुव्रत ! । नेच्छामि श्रोतुं विप्रेन्द्र ! [3]श्रुतान्येतानि हि द्विज ! ।।४६
त्रयाणामपि वर्णानां प्रोक्तानामपि पण्डितैः । श्रेयसे न तु शूद्राणां तत्र मे वचनं शृणु ।।४७
चतुर्णामिह वर्णानां श्रेयसे यानि सुव्रत[4] ! । भवन्ति द्विजशार्दूल ! श्रुतानि भुवनत्रये ।।४८
विशेषतश्चतुर्थस्य वर्णस्य द्विजसत्तम ! ।।४९
ब्राह्मणादिषु वर्णेषु त्रिषु वेदाः प्रकल्पिताः । मन्वादीनि च शास्त्राणि तथाङ्गानि समन्ततः ।।५०

शतानीक बोले—विप्रवर ! उत्तमव्रती ! वे धर्मशास्त्र कौन से हैं, विप्र, उन्हें सुनकर मनुष्य (अपने) समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है ।४२

सुमन्तु बोले—राजन् ! उन धर्मशास्त्रों को सुनिये । मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शंखलिखित, हारीत, अत्रि आदि के रचे हुए धर्मशास्त्र हैं, हे भरतवंशोद्भव ! इन सब धर्मशास्त्रों को सुनकर और जानकर मनुष्य देवताओं के लोक में जाकर आनन्द का अनुभव करता है, इसमें सन्देह नहीं ।४३-४५

शतानीक ने कहा—सुव्रती ! विप्रेन्द्र ! आपने जिन धर्मशास्त्रों की नामावलि अभी कही है इन सब को तो मैं पहले ही सुन चुका हूँ, इन्हें पुनः नहीं सुनना चाहता हूँ ।४६

पण्डितों ने इन सब को तीन ही जातियों के कल्याण के लिए कहा है, शूद्रों के कल्याण की बातें इनमें नहीं हैं, इस विषय में मेरा निवेदन सुनिये ।४७

हे द्विजश्रेष्ठ ! सुव्रती ! त्रिभुवन में जो शास्त्र इस लोक (संसार) में चारो वर्णों के लिए कल्याणदायक कहे गये हैं, विशेषतः चौथे वर्ण (शूद्र) के लिए (मैं) उन्हें सुनना चाहता हूँ । ब्राह्मणादि त्रिवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिए वेद, वेदाङ्ग, मनु द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र हैं हे द्विजवर ! शूद्र (वेदादि के अनधिकारी होने के कारण) अत्यन्त दीन प्रतीत होते हैं ।४८-५०

---

१. ते विप्र । २. आपस्तंबोशना व्यासः । ३. गुह्यानि । ४. सर्वदा ।

शूद्राश्चैव भृशं दीनाः प्रतिभान्ति द्विजप्रभो । धर्मार्थकाममोक्षस्य शक्ताः स्युरवने कथम् ।।५१
आगमेन विहीना हि अहो कष्टं मतं मम । कश्चैषामागमः प्रोक्तः पुरा द्विजमनीषिभिः ।।
त्रिवर्गप्राप्तये ब्रह्मञ्छ्रेयसे च तथोभयोः ।।५२

सुमन्तुरुवाच

साधु साधु महाबाहो ! शृणु मे परमं वचः । चतुर्णामपि वर्णानां यानि प्रोक्तानि श्रेयसे ।।५३
धर्मशास्त्राणि[1] राजेन्द्र ! शृणु तानि नृपोत्तम । विशेषतश्च शूद्राणां पावनानि मनीषिभिः[2] ।।५४
अष्टादशपुराणानि चरितं राघवस्य च । रामस्य कुरुशार्दूल ! धर्मकामार्थसिद्धये ।।५५
तथोक्तं भारतं वीर ! पाराशर्येण धीमता । वेदार्थसकलं योज्य[3] धर्मशास्त्राणि च प्रभो ! ।।५६
कृपालुना कृतं शास्त्रं चतुर्णामिह श्रेयसे । वर्णानां भवमग्नानां कृतं पोतो ह्यनुत्तमम् ।।५७
अष्टादशपुराणानि अष्टौ व्याकरणानि च । ज्ञात्वा सत्यवतीसूनुश्चक्रे भारतसंहिताम् ।।५८
यां श्रुत्वा पुरुषो राजन् ! मुच्यते ब्रह्महत्यया । प्रथमं प्रोच्यते ब्राह्मं द्वितीयं चैन्द्रमुच्यते ।।५९
याम्यं प्रोक्तं ततो रौद्रं वायव्यं वारुणं तथा । सावित्रं च तथा प्रोक्तमष्टमं वैष्णवं तथा ।।६०
एतानि व्याकरणानि पुराणानि निबोध मे । ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।।६१
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् । आग्नेयमष्टमं वीर भविष्यं नवमं स्मृतम् ।।६२

वे अपने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की रक्षा कैसे करेंगे वे (शूद्रादि) आगम से हीन हैं, यह मेरी समझ से कष्टदायक बात है । इन लोगों के लिए ब्राह्मण विद्वानों ने कौन सा आगम (शास्त्र) प्राचीन काल में बनाया था ? जो इनके (शूद्रों के) त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) के पाने में सहायक एवं दोनों लोकों (इहलोक—परलोक) में कल्याणकारक हो ।५१-५२

सुमन्तु बोले—हे महाबाहु ! बहुत ठीक (आपने पूछा है) । आप मेरी बातों को सुनिये जो चारों वर्णों के कल्याण के लिए कही गयी हैं ।५३। हे राजेन्द्र ! नृपोत्तम ! जो धर्मशास्त्रादि विद्वानों द्वारा (चारों वर्णों के लिए) विशेषतः शूद्रों के लिए पावन बताये गये हैं, उन्हें सुनिये ।५४। हे कुरुश्रेष्ठ । अठारहों पुराणों में श्रेष्ठ, रघुकुल में उत्पन्न भगवान् श्री रामचन्द्र का चरित्र-वर्णन धर्म, अर्थ एवं काम की सिद्धि के लिए किया गया है ।५५। हे वीर ! इसी प्रकार परम बुद्धिमान् पराशर के पुत्र व्यास जी द्वारा सकल वेदार्थ एवं धर्मशास्त्र के तत्वभूत महाभारत की रचना की गयी है ।५६। कृपालु व्यास जी द्वारा इस लोक में चारों वर्णों के कल्याण के लिए एवं (चारों वर्णों को) संसार रूपी सागर में निमग्न होने से बचाने के लिए अत्युत्तम नौका रूप महाभारतसंहिता की अठारहों पुराणों और आठों व्याकरणों को हृदयंगम करके रचना की है ।५७-५८

हे राजन् ! जिसे सुनकर मनुष्य ब्रह्महत्या जैसे गम्भीर पाप से छुटकारा पा जाता है । पहला ब्रह्मपुराण एवं दूसरा ऐन्द्र कहा जाता है ।५९। तत्पश्चात् याम्य, रौद्र, वायव्य, वारुण, सावित्र एवं आठवाँ वैष्णव पुराण है ।६०। ये ही आठ व्याकरण कहे गये हैं । (पुराणों) का भी विवरण बतला रहा हूँ, सुनिये । ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लैङ्ग,

---

१. कर्मशास्त्राणि । २. कथितानीति शेषः । ३. त्यवार्षः ।

दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् । वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दं चैव त्रयोदशम् ॥६३
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं स्मृतम् । मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः[1] परम् ॥६४
एतानि कुरुशार्दूल धर्मशास्त्राणि पण्डितैः । साधारणानि प्रोक्तानि वर्णानां श्रेयसे सदा[2] ॥६५
चतुर्णामिह राजेन्द्र श्रोतुमर्हाणि सुव्रत । किमिच्छसि महाबाहो श्रोतुमेषां नृपोत्तम ॥६६

शतानीक उवाच

भारतं तु श्रुतं विप्र तातस्याङ्कगतेन[3] तु । रामस्य चरितं चापि श्रुतं ब्रह्मन्समन्ततः ॥६७
पुराणानि च विप्रेन्द्र भविष्यं न तु सुव्रत । पुराणं वद विप्रेन्द्र ! भविष्यं कौतुकं हि मे ॥६८

सुमन्तुरुवाच

साधु साधु महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि[4] मानद । शृणु मे वदतो राजन् पुराणं नवमं महत् ॥६९
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो नृप ! अश्वमेधफलं प्राप्य गच्छेद्भानौ न संशयः ॥७०
इदं तु ब्रह्मणा प्रोक्तं धर्मशास्त्रमनुत्तमम् । विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः[5] ॥७१
शिष्येभ्यश्चैव वक्तव्यं चातुर्वर्ण्येभ्य एव हि ।अध्येतव्यं न चान्येन ब्राह्मणं क्षत्रियं विना ॥
श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन[6] ॥७२

वाराह, स्कान्द, कौर्म, मात्स्य, गारुड़ और ब्रह्माण्ड हैं। हे कुरुशार्दूल ! पण्डितों ने सभी वर्ण वालों के शाश्वत कल्याण के लिए साधारणतया ये विविध धर्मशास्त्र कहे हैं। हे राजेन्द्र ! ये सभी चारों (वर्णों) के सुनने योग्य हैं। नृपोत्तम ! महाबाहु ! आप इनमें से कौन-सा सुनना चाहते हैं ? ।६१-६६

शतानीक ने कहा—विप्र ! पिता जी की गोद में बैठकर मैं महाभारत की पवित्र कथा का श्रवण कर चुका हूँ, तथा रामचन्द्र जी के चरित को भी आद्योपान्त सुन चुका हूँ।६७। हे विप्रेन्द्र ! सुव्रत ! (इसी प्रकार) अन्यान्य पुराणों का भी (श्रवण कर चुका हूँ) किन्तु (अभी तक) भविष्य पुराण का श्रवण नहीं कर सका हूँ। हे विप्रेन्द्र ! (इसलिए) आप भविष्यपुराण की कथा कहें, उसके विषय में मुझे बड़ा कौतूहल है।६८

सुमन्तु बोले—हे मानव ! हे महाबाहु ! आप ने बहुत ही सुन्दर पूछा। हे राजन्। उस महान् भविष्य पुराण को, जो क्रम से नवम संख्या में है, मैं कह रहा हूँ, सुनिये।६९। हे राजन्। जिसको सुनकर मनुष्य समस्त पापकर्मों से मुक्ति पा जाता है। इस भविष्य पुराण का श्रवण करने वाला अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त कर सूर्यलोक में चला जाता है, इसमें सन्देह नहीं।७०। इस परम श्रेष्ठ धर्मशास्त्र को स्वयं ब्रह्मा ने कहा था, विद्वान् ब्राह्मण को इसका प्रयत्नपूर्वक अध्ययन करना चाहिये।७१। और उसे इसका अपने चारों वर्णों के शिष्यों को उपदेश करना चाहिये। किन्तु ब्राह्मण और क्षत्रिय को छोड़कर इसका अध्ययन अन्य वर्ण वालों को नहीं करना चाहिये। शूद्रों को केवल इसका श्रवण करना चाहिये, अध्ययन तो कभी

---

१. वायुरैव च। २. तदा। ३. आज्ञागतेन मे। ४. पूज्योऽसि सुव्रत। ५. विशेषतः। ६. कथंचन।

देवार्चां पुरतः[1] कृत्वा ब्राह्मणैश्च नृपोत्तम । श्रोतव्यमेव शूद्रैश्च तथान्यैश्च द्विजातिभिः ।।७३
श्रौतं स्मार्तं हि द्वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन्नृपोत्तम । तस्माच्छूद्रैर्विना विप्रान्न श्रोतव्यं कथञ्चन ।७४
इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः संशितव्रतः । मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ।।७५
शृण्वन्ति चापि ये राजन् भक्त्या वै ब्राह्मणादयः । मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्गच्छन्ति च दिवं प्रभो ।।७६
श्रावयेच्चापि यो विप्रः सर्वान्वर्णान्नृपोत्तम । स गुरुः प्रोच्यते तात वर्णानामिह सर्वशः ।।७७
स पूज्यः सर्वकालेषु सर्वैर्वर्णैर्नराधिप । पृथिवीं च तथैवेमां कृत्स्नामेकोऽपि सोऽर्हति ।।७८
इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम् । इदं यशस्यं सततमिदं निःश्रेयसं परम् ।।७९
अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् । चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चापि शाश्वतः ।।८०
आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तश्च नरोत्तम । तस्मादस्मिन्समायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ।।८१
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते । आचारेण च संयुक्तः सम्पूर्णफलभाक्स्मृतः ।।८२
एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् । सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ।।८३
अन्ये च मानवा राजन्नाचारं संश्रिता[2] सदा । एवमस्मिन्पुराणे तु आचारस्य तु कीर्तनम् ।।८४

नहीं करना चाहिये ।७२। नृपोत्तम ! सर्वप्रथम देवता की पूजा कर ब्राह्मणों से उसका श्रवण करना चाहिये । इसी प्रकार अन्य द्विजातियों से भी शूद्र इसका श्रवण ही कर सकता है ।७३। हे नृपोत्तम ! इस भविष्य पुराण में समस्त श्रौत-स्मार्त धर्मों का उपदेश किया गया है । इसलिए शूद्रों को विप्रों के बिना अन्य किसी प्रकार इसका श्रवण नहीं करना चाहिये ।७४। नियम-व्रत-परायण ब्राह्मण इस शास्त्र (भविष्य पुराण) का अध्ययन कर मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक—इन तीनों पाप-कर्मों से उत्पन्न होने वाले दोषों से सर्वदा मुक्ति प्राप्त करता है ।७५। हे राजन् ! जो ब्राह्मणादि योनियों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, प्रभो ! वे भी अपने समस्त पापों से छूटकर स्वर्गलोक को जाते हैं ।७६। नृपोत्तम ! जो ब्राह्मण समस्त वर्णों को इसका श्रवण कराता है, हे तात ! वह सभी वर्णों का गुरु कहा जाता है ।७७। नराधिप ! वह ब्राह्मण सर्वदा सभी वर्णों का पूज्य माना जाता है । इस परम विस्तृत समस्त पृथ्वी के लिए वह अकेला ही योग्य अधिकारी है ।७८। यह परम कल्याणप्रद, श्रेष्ठ तथा बुद्धि को बढ़ाने वाला है । यह परम यशोदायी एवं शाश्वतिक निःश्रेयस का प्रदाता है ।७९। इसमें सभी धर्मों का उपदेश किया गया है, कर्मों के गुणों एवं दोषों को कहा गया है । चारों वर्णों के सदा से चले आने वाले आचारों का भी विवेचन किया गया है ।८०। हे नरोत्तम ! आचार सभी धर्मों में प्रथम माना जाता है, श्रुतियों में इसका उपदेश किया गया है, यही कारण है कि इसमें सर्वदा निष्ठा रखने वाला ब्राह्मण आत्मवान् (मन को वश में करने वाला) होता है ।८१। आचारों से गिरा हुआ विप्र वेदोक्त फलों का उपभोग नहीं करता और आचार से संयुक्त रहने वाला सम्पूर्ण फलों का अधिकारी कहा जाता है ।८२। मुनियों ने आचार द्वारा धर्म की गति को देखकर सभी तपस्याओं का परम मूल आचार ही को ठहराया ।८३। हे राजन् । इसी कारण से अन्यान्य मानवगण भी सर्वदा आचार का ही अवलम्ब लेते हैं । इस

---

१. अग्रतः । २. आचारं फलमाश्रिताः ।

वृत्तान्तानि च राजेन्द्र तथा चोक्तानि पण्डितैः । त्रिलोक्यास्तु समुत्पत्तिः संस्कारविधिरुत्तमः ॥
श्रवणं चेतिहासस्य विधानं कथ्यते नृप ॥८५
तथास्मिन्कथ्यते राजन्माहात्म्यं वाचकस्य तु । व्रतचर्याश्रमाचाराः स्नातकस्य परो विधिः ॥८६
दारादिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् । पुंसां च लक्षणं राजन्योषितां चात्र कथ्यते ॥८७
महायज्ञविधानं च शास्त्रकल्पं च शाश्वतम् । पृथिव्या लक्षणं तात देवार्चायाः सुलक्षणम् ॥८८
वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातकस्य व्रतानि च । भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां शुद्धिरेव च ॥८९
स्त्रीधर्मयोगस्तापस्यं मोक्षः संन्यास एव च । राज्ञश्च धर्मो ह्यखिलः कार्याणां च विनिर्णयः ॥९०
माहात्म्यं सवितुश्चात्र तीर्थानां च विशाम्पते । नारायणस्य माहात्म्यं तथा रुद्रस्य कथ्यते ॥९१
महाभाग्यं च विप्राणां माहात्म्यं पुस्तकस्य च । दुर्गादेव्यास्तथा चोक्तं सत्यस्य च महामते ॥९२
संक्षिप्तं [1]संविधानं च धर्मं स्त्रीपुंसयोरपि । विभागं धर्मद्यूतं च कथकानां च शोधनम् ॥९३
वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभवम् । आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥९४
संध्याविधिं प्रेतशुद्धिं स्नानतर्पणयोर्विधिम् । वैश्वदेवविधिं चापि तथा भोज्यविधिं नृप ॥९५
लक्षणं दन्तकाष्ठस्य चरणव्यूहमुत्तमम् । संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसम्भवम् ॥९६
नैःश्रेयसं कर्मणां च गुणदोषपरीक्षणम् । दाराणां लक्षणं प्रोक्तं तथा पात्रपरीक्षणम् ॥९७

पुराण में उसी आचार का कीर्तन किया गया है ।८४। हे राजेन्द्र ! इसके अतिरिक्त पण्डितों ने उसमें अनेक वृत्तान्तों का वर्णन किया है । तीनों लोकों की उत्पत्ति का वर्णन है, उत्तम संस्कार विधि विस्तार पूर्वक कही गई है । इतिहास के श्रवण का विधान कहा गया है ।८५। हे राजन् ! इसके अतिरिक्त वाचकों का माहात्म्य बतलाया गया है, विविध प्रकार से व्रतों की विधि, आश्रमों के आचार, स्नातक की क्रियाएँ, स्त्रीगमन, विवाह के लक्षण, पुरुषों के लक्षण तथा स्त्रियों के लक्षण कहे गये हैं ।८६-८७। हे तात ! महान् यज्ञों का विधान, शाश्वतिक शास्त्र-कल्प, पृथ्वी के लक्षण, देवपूजा के लक्षण, जीविकाओं के लक्षण, स्नातकों के नियमादि, भक्ष्य, अभक्ष्य, शौचाचार, द्रव्यों की शुद्धि, स्त्री-धर्म, योग तपस्या, मोक्ष व संन्यास, राजाओं के समस्त धर्म तथा उनके कार्यों के निर्णय इसमें वर्णित हैं ।८८-९०। विशाम्पते ! (हे राजन् ! इसके अतिरिक्त) सविता का माहात्म्य, तीर्थों का माहात्म्य, नारायण का माहात्म्य, विप्रों का महाभाग्य, पुस्तक का माहात्म्य तथा हे महामते ! दुर्गा देवी का माहात्म्य और सत्य का माहात्म्य बतलाया गया है ।९१-९२

स्त्री पुरुषों के धर्म, संक्षिप्त उपाय, धर्मद्यूत, उसका विभाग, कथकों का शोधन, वैश्य और शूद्र वर्णों के उपचार, संकीर्ण (संकर) वर्णों की उत्पत्ति, सभी वर्णों के आपत्तिकालिक धर्म, पाप-कर्मों के प्रायश्चित्तों की विधि, सन्ध्या-विधि, प्रेत-शुद्धि, स्नान और तर्पण की विधि, वैश्वदेव की विधि, भोज्य-विधि, दन्तकाष्ठ का लक्षण, उत्तम चरणव्यूह (व्यास का बनाया हुआ एक विशेष ग्रन्थ जिसमें वैदिक शाखाओं का विशेष रूप से वर्णन किया गया है) विविध कर्मों के कारण संसार में जन्म लेने के वृत्तान्त, कर्मों के अनुसार निःश्रेयस् की प्राप्ति, कर्मों के गुणों और दोषों की परीक्षा, स्त्रियों के लक्षण, पात्रों की परीक्षा गर्भ एवं प्रसूतिका के विषय

---

१. इत आरम्य यानि कर्माण्युक्तानि तानि 'तथासौ प्रोक्तवान्विभुः' इत्युत्तरेणानुयन्ति ।

प्रसूतिं चापि गर्भस्य तथा कर्मफलं नृप । जातिधर्मान्कुलधर्मान्वेदधर्मांश्च[1] पार्थिव ॥९८
वैतानव्रतिकानां च तथासौ प्रोक्तवान्विभुः । ब्रह्मा कुरुकुलश्रेष्ठ शंकराय महात्मने ॥९९
शंकरेण तथा विष्णोः कथितं कुरुनन्दन । विष्णुनापि पुनः प्रोक्तं नारदाय महीपते ॥१००
नारदात्प्राप्तवाञ्छक्रः शक्रादपि पराशरः । पराशरात्ततो व्यासो व्यासादपि मया विभो ॥१०१
एवं परम्पराप्राप्तं पुराणमिदमुत्तमम् । शृणु त्वमपि राजेन्द्र मत्सकाशात्परं हितम् ॥१०२
सर्वाण्येव पुराणानि संज्ञेयानि नरर्षभ । द्वादशैव सहस्राणि प्रोक्तानीह मनीषिभिः ॥१०३
पुनर्वृद्धिं गतानीह आख्यानैर्विविधैर्नृप । यथा स्कान्दं तथा चेदं भविष्यं कुरुनन्दन ॥१०४
स्कान्दं शतसहस्रं तु लोकानां ज्ञातमेव हि । भविष्यमेतदृषिणा लक्षार्द्धं संख्यया कृतम्[2] ॥१०५
तच्छ्रुत्वा पुरुषो भक्त्या इदं फलमवाप्नुयात् । ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा श्रीश्च भवन्ति[3] तस्य निश्चितम् ॥१०६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां[4] संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
कथाप्रस्तावने प्रथमोऽध्यायः ।१।

एवं कर्मफल का वर्णन किया गया है तथा जाति-धर्म, कुल-धर्म एवं वैदिक धर्मों की चर्चा की गई है ।९३-९८

हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! तथा वैतानिकों के व्रतों को भगवान् ब्रह्मा ने महात्मा शंकर को बताया था ।९९। कुरुनन्दन ! इसके अनन्तर शंकर ने भगवान् विष्णु को इसका उपदेश किया । महीपते ! पुनः भगवान् विष्णु ने नारद के लिए इसका उपदेश किया । नारद से इन्द्र ने प्राप्त किया, इन्द्र से पराशर ने प्राप्त किया । पराशर से व्यास ने और व्यास से मैंने प्राप्त किया । इस परम्परा से मुझे इस उत्तम पुराण की प्राप्ति हुई है । हे राजेन्द्र ! तुम भी मुझसे इस हितकारक उत्तम पुराण को सुनो ।१००-१०२

हे नरश्रेष्ठ ! समस्त पुराण को पण्डित लोग बारह सहस्र ही बतलाते हैं, किन्तु पीछे के विविध आख्यानों के मिल जाने से उक्त संख्या में बहुत वृद्धि हो गई है । कुरुनन्दन ! स्कन्दपुराण में जिस प्रकार वृद्धि हुई है उसी प्रकार इस भविष्य (पुराण) में भी वृद्धि हुई है ।१०३-१०४

स्कन्दपुराण की श्लोक संख्या एक लाख है । यह बात तो सबको ज्ञात ही है । इस भविष्य पुराण की संख्या ऋषि ने पचास सहस्र निश्चित किया है ।१०५

इस भविष्य पुराण को भक्तिपूर्वक सुनकर मनुष्य सब प्रकार की ऋद्धि, वृद्धि एवं लक्ष्मी को निश्चित रूप से प्राप्त करता है ।१०६

श्री भविष्यमहापुराण के ब्राह्म-पर्व में कथा की
प्रस्तावना में प्रथम अध्याय समाप्त ।१।

---

१. देशधर्मान्कुलधर्मांश्च वै नृप । २. गतम् । ३. तस्य देहं स्तुवन्ति वै । ४. शतसाहस्रार्ध-संहितायाम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सृष्टिवर्णनं पुराणानां ब्रह्मपञ्चमास्यादुत्पत्तिवर्णनञ्च

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वेदं महाबाहो पुराणं पञ्चलक्षणम् । यच्छ्रुत्वा मुच्यते राजन्पुरुषो ब्रह्महत्यया ॥१
पर्वाणि चात्र वै पञ्च कीर्तितानि स्वयम्भुवा । प्रथमं कथ्यते ब्राह्मं द्वितीयं वैष्णवं स्मृतम् ॥२
तृतीयं शैवमाख्यातं चतुर्थं त्वाष्ट्रमुच्यते । पञ्चमं प्रतिसर्गाख्यं सर्वलोकैः सुपूजितम् ॥३
एतानि तात पर्वाणि लक्षणानि निबोध मे । सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ॥४
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् । चतुर्दशभिर्विद्याभिर्भूषितं कुरुनन्दन ॥५
अङ्गानि [1]चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः । पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥६
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः । अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव ताः ॥७
प्रथमं कथ्यते सर्गो भूतानामिह सर्वशः । यच्छ्रुत्वा पापनिर्मुक्तो याति शान्तिमनुत्तमाम् ॥८
जगदासीत्पुरा तात तमोभूतमलक्षणम् । अविज्ञेयमतर्क्यं च प्रसुप्तमिव सर्वशः[2] ॥९

अध्याय २

सृष्टि का वर्णन तथा ब्रह्मा के पञ्चम मुख से पुराणों की उत्पत्ति का वर्णन

सुमन्त बोले—राजन् ! महाबाहु ! पाँचों लक्षणों से समन्वित इस (भविष्य) पुराण को सुनिये, जिसे सुनकर मनुष्य ब्रह्महत्या से छूट जाता है।१। स्वयम्भू ने इसमें पाँच पर्वों की चर्चा की है। इसका पहला पर्व ब्राह्म है, दूसरा वैष्णव है।२। तीसरा शैव है, चौथा त्वाष्ट्र कहा जाता है, पाँचवाँ सभी लोगों द्वारा सुपूजित प्रतिसर्ग नामक पर्व है।३। हे तात (भविष्य महापुराण के) ये पाँच पर्व हैं। उनके लक्षणों को सुनिये। सर्ग (सृष्टिप्रक्रिया) प्रतिसर्ग, (स्वयम्भू की सृष्टि के अनन्तर दक्ष आदि प्रजापतियों द्वारा की गई सृष्टि) वंश, मन्वन्तर एकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है एवं वंशों में उत्पन्न होने वाले राजाओं आदि के चरित—ये पाँच पुराणों के लक्षण कहे गये हैं। हे कुरुनन्दन ! यह पुराण चौदहों विद्याओं से विभूजित है।४-५। चारों वेद, वेदों के छहों अंग, मीमांसा, विस्तृत न्याय शास्त्र, पुराण और धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं।६। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र—इन चारों को मिलाकर वे विद्याएँ कुल अठारह होती हैं।७। इस भविष्यपुराण में सर्वप्रथम समस्त जीवों की सृष्टि का वर्णन किया गया है, जिसे सुनकर मनुष्य पापरहित होकर परम शान्ति प्राप्त करता है।८। हे तात ! यह जगत् पहले अन्धकाराच्छन्न था, इसका कोई लक्षण नहीं था, किसी प्रकार भी इसका ज्ञान नहीं हो सकता था, अतर्क्य एवं चारों ओर से

---

१. चतुरनडुहोः इत्यम्भाव आर्षः। २. सर्वतः।

ततः स भगवानीशो ह्यव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्। महाभूतानि वृत्तौजाः प्रोत्थितस्तमनाशनः[1] ॥१०
योऽसावतीन्द्रियोऽग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः। सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुत्थितः ॥११
योऽसौ षड्विंशको लोके तथा यः पुरुषोत्तमः। भास्करश्च महाबाहो परं ब्रह्म च कथ्यते ॥१२
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। अत एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥१३
यस्मादुत्पद्यते सर्वं सदेवासुरमानुषम्। बीजं शुक्रं तथा रेत उग्रं वीर्यं च कथ्यते ॥१४
वीर्यस्यैतानि नामानि कथितानि स्वयम्भुवा। तदण्डमभवद्धैमं ज्वालामालाकुलं विभो ॥१५
यस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः। सुरज्येष्ठश्चतुर्वक्त्रः परमेष्ठी पितामहः ॥१६
क्षेत्रज्ञः पुरुषो वेधाः शम्भुर्नारायणस्तथा। पर्यायवाचकैः शब्दैरेवं ब्रह्मा प्रकीर्त्यते ॥१७
सदा मनीषिभिस्तात विरञ्चिः कञ्जजस्तथा[2]। आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥१८
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः। अरमित्येव शीघ्राय नियताः कविभिः कृताः ॥१९
आप[3] एवार्णवीभूत्वा सुशीघ्रास्तेन ता नराः। यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥२०
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते। एवं स भगवानण्डे तत्त्वमेव निरूप्य वै ॥२१

सोये हुए की तरह था।९। तदनन्तर सर्वैश्वर्यशाली, वे भगवान् अव्यक्त रूप से जगत् को व्यक्त करते हुए, महान् भूतों को प्रकट करते हुए तथा अन्धकार-राशि को नष्ट करते हुए उठते हैं। जो इन्द्रिय-समूहों से परे, अग्राह्य, सूक्ष्म अव्यक्त, सनातन (सर्वदा एक रूप में स्थिर रहने वाले) सर्वजीवमय एवं अचिन्त्य कहे जाते हैं, वे उस अवसर पर स्वयं उठ पड़ते हैं।१०-११। वे लोक में छब्बीसवें पदार्थ के नाम से विख्यात हैं, उन्हीं की पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्धि है। हे महाबाहु! वे ही भास्कर एवं परम ब्रह्म भी कहे जाते हैं।१२। वे भगवान् उस समय अपने शरीर से विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से चिन्तन करके सर्वप्रथम जल की सृष्टि करते हैं, और उसमें वीर्य छोड़ते हैं।१३। उसी से समस्त देवताओं, असुरों और मनुष्यों समेत इस जगत् की उत्पत्ति होती है। बीज, शुक्र, रेत, उग्र और वीर्य भी उसी को कहते हैं।१४। स्वयंभू ने वीर्य के इन उपर्युक्त नामों का वर्णन किया है। विभु! वह वीर्य ज्वाला-समूह से व्याप्त सुवर्ण के अण्डे के रूप में परिणत हो गया।१५। जिसमें समस्त लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्मा स्वयमेव उत्पन्न हुए। वे पितामह ब्रह्मा समस्त देवगणों में श्रेष्ठ, चार मुख वाले, परमेष्ठी, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, वेधा, शम्भु एवं नारायण—इन पर्यायवाची शब्दों द्वारा पुकारे जाते हैं।१६-१७। हे तात! मनीषी लोग उन्हें विरञ्चि, कमलोद्भव आदि नामों से सर्वदा पुकारते हैं। उनके नारायण नाम पड़ने का कारण यह है कि जल शब्द 'नार' और 'नर-पुत्र' दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है।१८। वह जल (नार) ही सबसे पहले इनका अयन (निवास) रहा है, इसीलिए वे नारायण के नाम से स्मरण किये जाते हैं। कविगण (अरम्) शब्द का शीघ्र अर्थ में प्रयोग करते हैं।१९। जल ही समुद्र होकर (प्रवाह के रूप में) शीघ्रता से युक्त होता है। अतः उसका नाम 'नार' कहा जाता है। जो सबके कारणभूत, अव्यक्त, नित्य, सत् एवं असत् हैं। उनसे उत्पन्न होकर वह पुरुष लोक में 'ब्रह्मा'—नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार सृष्टि करने का विचार-निश्चित कर भगवान् ने उस सुवर्ण-अंड में समस्त तत्त्वों

---

१. तमोनाशनः। २. कर्दमस्तथा। ३. आप एकार्णवीभूता अधिप्राप्ते न ता नराः।

ध्यानमास्थाय राजेन्द्र तदण्डमकरोद्द्विधा । शकलाभ्यां च राजेन्द्र दिवं भूमिं च निर्ममे ।।२२
अन्तर्व्योम दिशश्चाष्टौ वारुणं स्थानमेद हि । ऊर्ध्वं महान्गतो राजन् समन्ताल्लोकभूतये ।।२३
महतश्चाप्यहंकारस्तस्माच्च त्रिगुणा अपि । त्रिगुणा अतिसूक्ष्मास्तु बुद्धिगम्या हि भारत ।।२४
उत्पत्तिहेतुभूता वै भूतानां महतां नृप । तेषामेव गृहीतानि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि तु ।।२५
तथैवावयवाः सूक्ष्माः षण्णामप्यमितौजसाम् ।।२६
संनिवेश्यात्ममात्रासु स राजन्भगवान्विभुः । भूतानि निर्ममे तात सर्वाणि विधिपूर्वकम् ।।२७
यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयाणि षट् । तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ।।२८
महान्ति तानि भूतानि आविशन्ति ततो विभुम् । कर्मणा सह राजेन्द्र सगुणाश्चापि वै गुणाः ।।२९
तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् । सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवत्यव्ययाद्व्ययम्[1] ।।३०
भूतादिमहतस्तात येन व्याप्तमिदं जगत् । तस्मादपि महाबाहो पुरुषाः पञ्च एव हि ।।३१
केचिदेवं परां तात सृष्टिमिच्छन्ति पण्डिताः । अन्येऽप्येवं महाबाहो प्रवदन्ति मनीषिणः ।।३२
योऽसावात्मा परस्तात कल्पादौ सृजते तनुम् । प्रजनश्च महाबाहो सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।।३३

का विनिश्चय करके और पूर्व रचित सृष्टि के क्रम का ध्यान कर उसको दो भागों में विभक्त कर दिया । हे राजेन्द्र ! अण्ड के उन दोनों भागों से आकाश और पृथ्वी का निर्माण किया ।२०-२२। फिर अन्तर्वर्ती आकाश, आठों दिशाएँ और समस्त समुद्रों का निर्माण किया । हे राजन् ! इस प्रकार लोककल्याणार्थ उस महान् ने ऊर्ध्वगत होकर इन सब का निर्माण किया ।२३। महत्तत्त्व से अहंकार, उससे तीनों गुण (सत्त्व, रजस् और तमस् की भी उत्पत्ति हुई) । हे भारत ! वे तीनों गुण परम सूक्ष्म हैं, केवल बुद्धि द्वारा वे जाने जा सकते हैं ।२४। हे नृप ! वे त्रिगुण समस्त महान् भूतों की उत्पत्ति के मूल कारण हैं । उन्हीं के द्वारा पाँचों इन्द्रियाँ शनैः शनैः उत्पन्न हुई हैं ।२५।उन परम तेजोमय छहों के अवयव भी उसी प्रकार परम सूक्ष्म हैं । हे राजन् ! परमैश्वर्यशाली भगवान् ने आत्ममात्राओं में सन्निविष्ट होकर समस्त भूतों की विधिपूर्वक सृष्टि की ।२६-२७। जो मूर्ति के परम सूक्ष्म अवयव हैं, वे ही छह उसके आश्रय कहे जाते हैं। उसी को मूर्ति को मनीषीगण शरीर नाम से बतलाते हैं।२८। हे राजेन्द्र ! वे पूर्व जन्म के कर्मों एवं गुणों के साथ महान् भूतगण उस विभु में आविष्ट हो जाते हैं वे तीनों गुण भी उसी में आविष्ट हो जाते हैं। अविनाशी से महान् तेजस्वी उन सातों पुरुषों की सूक्ष्म मूर्ति मात्राओं द्वारा इस विनाशी जगत् की उत्पत्ति होती है। हे तात ! भूतादि महान् से यह जगत् व्याप्त है। हे महाबाहु ! उससे भी ये पाँच पुरुष ही उत्पन्न होते हैं। हे तात ! कुछ पण्डित जन इस प्रकार परम सृष्टि की इच्छा करते हैं। हे महाबाहु ! अन्य पण्डितजन भी ऐसा ही कहते हैं।२९-३२। हे तात ! जो यह परम आत्मा के नाम से विख्यात है वे ही कल्प के प्रारम्भ में स्वयं शरीर धारण करते हैं, हे महाबाहु ! वे ही इस समस्त सृष्टि के उत्पत्तिकर्त्ता हैं। स्वयं शरीर धारण कर विविध प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करने की इच्छा से वे ही समस्त जगत् की सृष्टि करते हैं।३३। हे राजन् ! उन्हीं के द्वारा सिरजे गये पुद्गल

---

१. द्वयम् ।

तेन सृष्टः पुद्गलस्तु प्रधानं विशते नृप । प्रधानं क्षोभितं तेन विकारान्सृजते बहून् ॥३४
उत्पद्यते महांस्तस्मात्ततो भूतादिरेव हि । उत्पद्यते विशालं च भूतादेः कुरुनन्दन ॥३५
विशालाच्च हरिस्तात हरेश्चापि वृकास्तथा । वृकैर्मुष्णन्ति च बुधास्तस्मात्सर्वं भवेन्नृप ॥३६
तथैषामेव राजेन्द्र प्रादुर्भवति वेगतः । मात्राणां कुरुशार्दूल विबोधस्तदनन्तरम्[1] ॥३७
तस्मादपि हृषीकाणि विविधानि नृपोत्तम । तथेयं सृष्टिराख्याताऽऽराध्यतः कुरुनन्दन ॥३८
भूयो निबोध राजेन्द्र भूतानामिह विस्तरम् । गुणाधिकानि सर्वाणि भूतानि पृथिवीपते ॥३९
आकाशमादितः कृत्वा उत्तरोत्तरमेव हि । एकं द्वौ च तथा त्रीणि चत्वारश्चापि पञ्च च ॥४०
ततः स भगवान्ब्रह्मा पद्मासनगतः प्रभुः । सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ॥४१
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे । कर्मोद्भवानां देवानां सोऽसृजद्देहिनां प्रभुः ॥४२
तुषितानां गणं राजन्यज्ञं चैव सनातनम् । दत्त्वा[2] वीर समानेभ्यो गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ॥४३
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् । कालं कालविभक्तीश्च[3] ग्रहानृतूंस्तथा नृप ॥४४
सरितः सागराञ्छैलान्समानि विषमाणि च । कामं क्रोधं तथा वाचं रतिं चापि कुरूद्वह ॥४५
सृष्टिं ससर्ज राजेन्द्र सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । धर्माधर्मौ विवेकाय कर्मणां च तथासृजत् ॥४६

(परमाणु) प्रधान (प्रकृति) प्रवेश करते हैं, उनके द्वारा क्षुब्ध होकर प्रधान अनेक विकारों की सृष्टि करता है ।३४। जिससे महत् की उत्पत्ति होती है और उसी से (महत् से) आदि भूत की उत्पत्ति होती है । हे कुरुनन्दन ! उन भूतवर्गों से विशाल की उत्पत्ति होती है ।३५। हे तात ! विशाल से हरि और हरि से वृकों की उत्पत्ति होती है । उन वृकों द्वारा बुद्धिमान् जन छिपाये जाते हैं ! हे राजन् ! उसी से समस्त जगत् की उत्पत्ति होती है ।३६। हे राजेन्द्र ! कुरुशार्दूल ! इन्हीं के वेग से मात्राओं के विबोध की उत्पत्ति होती है । उसके अनन्तर मात्राओं का विबोध होता है ।३७। नृपोत्तम ! तदनन्तर उसी से विविध इन्द्रिय समूहों की उत्पत्ति होती है । हे कुरुनन्दन ! इस प्रकार इस सृष्टि की आराधना द्वारा उत्पत्ति कही जाती है ।३८। हे राजेन्द्र ! अब भूतों का विस्तार किस प्रकार हुआ—इसे फिर से सुनिये । हे पृथ्वीपति ! उन सब भूत-समूहों में किसी न किसी गुण का प्राधान्य रहता है ।३९। सर्वप्रथम आकाश की सृष्टि करके उसके उत्तरोत्तर एक, दो, तीन, चार और पाँच भूतों का इस प्रकार निर्माण करते हैं ।४०। तदनन्तर सर्वैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा पद्मासन पर विराजमान होकर सबके नाम एवं काम का पृथक्-पृथक् निर्णय करते हैं ।४१। वेद शब्द से ही सर्वप्रथम सब की अवस्थिति का निर्माण किया । प्रभु ने इस प्रकार पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार शरीर धारण करने वाले देवताओं की सृष्टि की ।४२। हे राजन् ! तुषितों के गण की उत्पत्ति इस प्रकार हुई । फिर सर्वदा प्रचलित रहने वाले यज्ञों की उत्पत्ति हुई । हे वीर ! तदनन्तर समान शक्ति सम्पन्न सबको परम गोपनीय ब्रह्मज्ञान का दान देकर उन्होंने यज्ञों की सिद्धि के लिए ऋक्, यजु, साम नामक वेदों का दोहन किया, फिर काल, काल के विविध भेदों एवं अवयवों, ग्रहों एवं ऋतुओं, नदियों, सागरों, पर्वतों, समान एवं ऊँच-नीच भूमियों, काम, क्रोध, वचन, रति (प्रेम) आदि का निर्माण किया ।४३-४५। हे राजेन्द्र ! इसी प्रकार विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से, धर्म, अधर्म के विवेक के लिए कर्मों की सृष्टि की ।४६।

---

१. हृच्छयस्तदनन्तरम् । २. दत्तवान्सर्वमानेभ्यः । ३. कालविभूतिं च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।

सुखदुःखादिभिर्द्वन्द्वैः प्रजाश्चेमा न्ययोजयत् । अण्व्यो मात्राविनाशिन्यो दशार्धानां तु याः स्मृताः ।।४७
ताभिः सर्वमिदं वीर सम्भवत्यनुपूर्वशः । यत्कृतं तु पुरा कर्म सन्नियुक्तेन वै नृप ।।४८
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानं पुनः पुनः । हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे ऋतानृते ।।४९
यद्यथास्याभवत्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् । यथा च लिङ्गान्यृतवः स्वयमेवानुपर्यये ।।५०
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः । लोकस्येह विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।।५१
ब्रह्म क्षत्रं तथा चोभौ वैश्यशूद्रौ नृपोत्तम । मुखानि यानि चत्वारि तेभ्यो वेदा विनिःसृताः ।।५२
ऋग्वेदसंहिता तात वसिष्ठेन महात्मना । पूर्वान्मुखान्महाबाहो दक्षिणाच्चापि वै शृणु ।।५३
यजुर्वेदो महाराज याज्ञवल्क्येन वै सह । सामानि पश्चिमात्तात गौतमश्च महानृषिः ।।५४
अथर्ववेदो राजेन्द्र मुखाच्चाप्युत्तरान्नृप । ऋषिश्चापि तथा राजञ्छौनको लोकपूजितः ।।५५
यत्तन्मुखं महाबाहो पञ्चमं लोकविश्रुतम् । अष्टादशपुराणानि सेतिहासानि भारत ।।५६
निर्गतानि ततस्तस्मान्मुखात्कुरुकुलोद्वह । तथान्याः स्मृतयश्चापि यमाद्या लोकपूजिताः ।।५७
ततः स भगवान्देवो द्विधा देहमकारयत् । द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।।५८
अर्धेन नारी तस्यां च विराजमसृजत्प्रभुः । तपस्तप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ।।५९
स चकार तपो राजन्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । पतीन्प्रजानामसृजन्महर्षीनादितो दश ।।६०

और उसके अनन्तर सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में इन प्रजाओं को उलझा दिया, जो अणु परिमाण तथा अविनाशिनी पञ्च मात्राएँ कही गयी हैं । हे वीर ! उन सबों से इस समस्त जगत् का क्रमिक उद्भव होता है । हे राजन् ! पहले (ईश्वरेच्छा द्वारा) नियुक्त होकर जीव जो कुछ कार्य करता है, उसे ही पुनः-पुनः सिरजे जाते हुए वह स्वयं प्राप्त करता है । हिंस्र-अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य—इनमें से जैसा जिसका प्राक्तन संचित कर्म रहा, वही इस सृष्टि में भी स्वयं आकर आविष्ट हुआ । हे राजन् ! जिस प्रकार ऋतुएँ अपने-अपने चिह्नों को स्वयमेव प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार शरीरधारी जीव भी अपने-अपने प्राक्तन कर्मों को स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं । हे नृपोत्तम ! लोक की वृद्धि करने के लिए मुख, बाहु, उरु और पैर से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की उत्पत्ति हुई । उनके जो चार मुख थे, उनसे वेदों का प्रादुर्भाव हुआ ।४७-५२। हे तात ! महात्मा वशिष्ठ ने पूर्व दिशा वाले मुख से ऋग्वेद संहिता को प्राप्त किया तथा दाहिने मुख से जो वेद उत्पन्न हुए, उन्हें भी सुनिये ।५३। उस दाहिने मुख से याज्ञवल्क्य ऋषि ने यजुर्वेद को प्राप्त किया । हे तात ! इसी प्रकार पश्चिम वाले मुख से सामवेद को महर्षि गौतम ने प्राप्त किया । हे नृप ! राजेन्द्र ! उनके उत्तर वाले मुख से लोक-पूजित शौनक ऋषि ने अथर्ववेद को प्राप्त किया ।५४-५५। हे महाबाहु ! भारत ! उनका लोक-विख्यात जो पाँचवाँ मुख था, उससे इतिहास के साथ-साथ अठारहों पुराणों का आविर्भाव हुआ । हे कुरुकुलोद्भव ! इसी प्रकार ब्रह्मा के उस पाँचवें मुख से यम आदि की लोक सम्मानित स्मृतियाँ तथा धर्मशास्त्र प्रकट हुए । तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त किया और स्वयं आधे रूप में पुरुषाकार होकर आधे में एक नारी की आकृति उत्पन्न की । हे राजेन्द्र ! उस नारी से प्रभु ने विराट् सृष्टि की । तपस्या करके जिसकी सृष्टि की, वह स्वयं विराट् पुरुष ही था ।५६-५९। हे राजन् ! अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से उसने तपस्या की और सर्वप्रथम दस प्रजापति ऋषियों की सृष्टि की ।६०। उनके नाम ये हैं—नारद, भृगु, वसिष्ठ, प्रचेता, पुलह, क्रतु,

नारदं च भृगुं तात कं प्रचेतसमेव हि । पुलहं क्रतुं पुलस्त्यं च अत्रिमङ्गिरसं तथा ।।६१
मरीचिं चापि राजेन्द्र योऽसावाद्यः प्रजापतिः । एतांश्चान्यांश्च राजेन्द्र असृजद् भूरितेजसः ।।६२
अथ देवानृषीन्दैत्यान्सोऽसृजत्कुरुनन्दन । यक्षरक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ।।६३
मनुष्याणां पितॄणां च सर्पाणां चैव भारत । नागानां च महाबाहो ससर्ज विविधान्गणान् ।।६४
क्षणरुचोऽशनिगणान्रोहितेन्द्रधनूंषि च । धूमकेतूंस्तथाचोल्कानिर्वाताञ्ज्योतिषां गणान् ।।६५
मनुष्यान्किन्नरान्मत्स्यान्वराहांश्च विहङ्गमान् । गजानश्वानथ पशून्मृगान्व्यालांश्च भारत ।।६६
कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकालिक्षकमत्कुणान् । सर्वं च दंशमशकं स्थावरं[1] च पृथग्विधम् ।।६७
एवं स भास्करो देवः ससर्ज भुवनत्रयम् । येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ।।६८
कथयिष्यामि तत्सर्वं क्रमयोगं च जन्मनि[2] । गजा व्याला मृगास्तात पशवश्च पृथग्विधाः ।।६९
पिशाचा मानुषास्तात रक्षांसि च जरायुजाः । द्विजास्तु अण्डजाः सर्पा नक्रा मत्स्याः सकच्छपाः ।।७०
एवंविधानि यानीह स्थलजान्यौदकानि[3] च । स्वेदजं दंशमशकं यूकालिक्षकमत्कुणाः ।।७१
ऊष्मणा चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् । उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ।।७२
ओषध्यः फलपाकान्ता नानाविधफलोपगाः । अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ।।७३

पुलस्त्य, अत्रि, अंगिरा, और मरीचि। हे राजेन्द्र ! ये मरीचि इन सबों में प्रथम प्रजापति थे। हे राजेन्द्र ! इन उपर्युक्त प्रजापति ऋषियों को तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे ऋषियों को, जो इन्हीं के समान परम तेजस्वी थे, ब्रह्मा ने उत्पन्न किया।६१-६२। हे कुरुनन्दन ! इसी प्रकार देवताओं, ऋषियों तथा दैत्यों की सृष्टि की ! हे भारत ! हे महाबाहो ! फिर यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर तथा मनुष्य, पितर, सर्प एवं नागों के विविध गणों की सृष्टि की।६३-६४। इसी प्रकार क्षण भर चमककर छिप जाने वाली बिजलियों इन्द्रधनुष, धूमकेतु-उल्का एवं वातरहित ज्योतिष् चक्रों की सृष्टि की।६५। हे कुरुनन्दन ! इस प्रकार भगवान् ने मनुष्य, किन्नर, मत्स्य, वराह, विहंगम, गज, अश्व, पशु, मृग, व्याल, कृमि, कीट, पतंग, यूका (जूँ), लिक्षा (लीख), खटमल, मच्छर, दंस एवं विविध स्थावरों की सृष्टि की।६६-६७। उस भास्कर देव ने इस प्रकार तीनों भुवनों की सृष्टि की। इस लोक में जिन-जिन भूतों का जो और जैसा कर्म कहा जाता है, उन सबको उनकी उत्पत्ति के साथ-साथ क्रमानुसार मैं बतला रहा हूँ। हे तात ! हाथी, व्याल, मृग एवं विविध पशु जाति के जीव-समूह (इन सबकी उत्पत्ति एवं कर्म) को बतला रहा हूँ। हे तात ! पिशाच एवं जरायुज, मनुष्य और राक्षस, सर्प, नक्र, मत्स्य और कच्छप सभी प्रकार के पक्षी इन अण्डजों का भी कर्म कह रहे हैं।६८-७०। इसी प्रकार भूमि और जल में उत्पन्न होने वाले एवं दंस, मच्छर, जूँ, लीख और खटमल की कोटि के स्वेदज (पसीने) से उत्पन्न होने वाले जीव-समूह हैं। ये सब गरमी से उत्पन्न होते हैं। फिर बीज और काण्ड से उत्पन्न होने वाले जीव उद्भिज्ज कहे जाते हैं।७१-७२। अनेक प्रकार के फलों से युक्त ओषधियाँ फलों के पक जाने तक स्थित रहने वाली होती हैं, अर्थात् फल के पक जाने पर ओषधियाँ सूख जाती हैं। जो पुष्परहित हैं, किन्तु फल लगता है, वे वनस्पति के नाम से प्रसिद्ध हैं।७३। फलने और फूलने वाले को

---

१. स्थविष्ठं च नराधिप। २. कर्मणि। ३. औषधीनि च।

पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः । गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः ॥७४
बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना[1] वल्ल्य एव च । तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ॥७५
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः । एतावत्यस्तु गतयः प्रोद्भूताः कुरुनन्दन ॥७६
तस्माद्देवाद्दीप्तिमन्तो भास्कराच्च महात्मनः । घोरेऽस्मिस्तात संसारे नित्यं सततयायिनि ॥७७
एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं राजँल्लोकगुरुं परम् । तिरोभूतः स भूतात्मा[2] कालं कालेन पीडयन् ॥७८
यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् । यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥७९
तस्मिन्स्वपिति राजेन्द्र जन्तवः कर्मबन्धनाः । स्वकर्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ॥८०
युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि । तदायं[3] सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति भारत ॥८१
तमो यदा समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेन्द्रियः । न नवं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तितः ॥८२
यदा हंमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च । समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥८३
एव स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं जगत्प्रभुः । संजीवयति चाजस्रं प्रनाशयति चाव्ययः ॥८४
कल्पादौ सृजते तात अन्ते कल्पस्य संहरेत् । दिनं तस्येह यत्तात कल्पान्तमिति कथ्यते ॥८५

वृक्ष कहते हैं । गुच्छों और गुल्मों की अनेक कोटियाँ होती हैं । उसी प्रकार तृणों की भी बहुत-सी जातियाँ होती हैं ।७४। बीजों और काण्डों से उत्पन्न होकर वृक्षों पर फैलने वाली लताएँ तथा वल्लियाँ कही जाती हैं। अपने पूर्व जन्म के कर्म-बन्धन से ये सभी प्रकार के अज्ञानान्धकार (तमोगुण) से परिवेष्टित रहते हैं ।७५। इनके अन्तःकरण में चेतना होती है एवं सुख और दुःख का इन्हें भी अनुभव होता है । हे कुरुनन्दन ! जीवों की इतनी गतियाँ प्रकट हैं ।७६। हे तात उस (परम प्रकाशमान) एवं महातमा भास्कर देव (के प्रकाश) से ये सब इस घोर संसार में प्रतिक्षण तथा निरन्तर चलने वाले हैं ।७७। हे राजन् ! काल द्वारा काल को पीड़ित करते हुए, वह भूतों का आत्मा (परमेश्वर) लोक के गुरु एवं अन्य सभी की सृष्टि करने के उपरान्त तिरोहित हो जाता है ।७८। जब वह देव जागता रहता है, तब यह जगत् चेष्टावान् रहता है, जब वह शान्तात्मा शयन करने लगता है, तब यह सारा जगत् भी विलीन हो जाता है ।७९। हे राजेन्द्र ! अपने कर्मों के बन्धन में बँधे हुए जीव-समूह भी उसके सो जाने पर अपने कर्मों से निवृत्त हो जाते हैं और मन ग्लानि को प्राप्त होता है ।८०। हे भारत ! उस महात्मा (परमेश्वर) में सब एक साथ ही जब प्रलीन हो जाते हैं, उस समय सर्वभूतात्मा (भगवान्) सुखपूर्वक शयन करता है ।८१। समस्त इन्द्रियों समेत जब वह तमोगुण का आश्रय लेकर चिरकाल तक स्थित रहता है और कोई नवीन कर्म नहीं करता है उस समय वह मूर्ति से बाहर आता है ।८२। जब वह समस्त स्थावर जङ्गमात्मक बीज में प्रवेश करता है। बीज से जब वह अहंमात्रिक होता है, तब वह उसमें संसृष्ट होकर अपनी मूर्ति को छोड़ देता है ।८३। प्रभावशाली एवं अविनाशी वह भगवान् इस प्रकार जाग्रत् और स्वप्न अवस्था द्वारा निरन्तर इस समस्त जगत्मण्डल को जीवन प्रदान और सीमित करता है ।८४

हे तात ! कल्प के आदि में वह इस जगत् की सृष्टि करता है और कल्प के अन्त में संहार करता है । हे तात ! उसका जो दिन अर्थात् जागरण का समय है, वही कल्पान्त कहा जाता है ।८५। हे भारत ! उस कल्प

---

१. व्रतत्यः । २. पूतात्मा । ३. सः ।

कालसंख्यां ततस्तस्य[1] कल्पस्य शृणु भारत । निमेषा दश चाष्टौ च अक्ष्णः काष्ठा निगद्यते ॥८६
त्रिंशत्काष्ठाः कलामाहुः क्षणस्त्रिंशत्कलाः स्मृताः । मुहूर्तमथ मौहूर्ता वदन्ति द्वादश क्षणम् ॥८७
[2]त्रिंशन्मुहूर्तमुद्दिष्टमहोरात्रं मनीषिभिः । मासस्त्रिंशदहोरात्रं द्वौ द्वौ मासावृतुः स्मृतः ॥८८
ऋतुत्रयमप्ययनमयने द्वे तु वत्सरः । अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ॥८९
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः । पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ॥९०
कर्म चेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी । दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥९१
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् । ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं महीपते ॥९२
एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोध मे । चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ॥९३
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः । त्रेता त्रीणि सहस्राणि[3] वर्षाणि च विदुर्बुधाः ॥९४
शतानि षट् च राजेन्द्र सन्ध्यासन्ध्यांशयोः पृथक् । वर्षाणां द्वे सहस्रे तु द्वापरे परिकीर्तिते ॥९५
चत्वारि च शतान्याहुःसन्ध्यासन्ध्यांशयोर्बुधः । सहस्रं कथितं तिष्ये शतद्वयसमन्वितम् ॥९६
एषा चतुर्युगस्यादि संख्या प्रोक्ता नृपोत्तम । यदेतत्परिसंख्या तमादावेव चतुर्युगम् ॥९७

की अवधि का प्रमाण सुनिये, बतला रहा हूँ । आँख के मूँदने और खोलने में जितना समय लगता है, उसे निमेष कहते हैं, ऐसे अठारह निमेषों की एक काष्ठा कही जाती है ।८६। तीस काष्ठा की एक कला बतलाते हैं, तीस कला का एक क्षण कहा जाता है । मुहूर्तों को जानने वाले पण्डित लोग बारह क्षणों का एक मुहूर्त बतलाते हैं ।८७। मनीषियों ने एक दिन-रात के बीच में तीस मुहूर्त निश्चित किये हैं । तीस दिन-रात का एक महीना होता है, दो-दो महीनों की एक ऋतु होती है ।८८। तीन-तीन ऋतुओं का एक अयन होता है । दो अयनों का एक वर्ष माना जाता है । मनुष्य और देव इन दोनों के रात-दिन का विभाग सूर्य करता है ।८९। भूतों के शयनादि के लिए रात्रि और कर्म-व्यापार चालू रखने के लिए दिन हैं । पितरों के एक रात दिन मनुष्यों के एक मास में पूरे होते हैं ।९०। मनुष्यों का एक पक्ष उनकी रात्रि और एक पक्ष दिन है । कर्म-चेष्टा के लिए मानव का शुक्ल पक्ष उनका दिन और शयन के लिए मानव का कृष्ण पक्ष उनकी रात्रि है । देवताओं का एक दिन रात मानव का एक वर्ष होता है ।९१। उनमें रात्रि ओर दिन का विभाग होता है । उत्तरायण (देवताओं का) दिन और दक्षिणायन (उनकी) रात्रि है । ब्रह्मा के दिन और रात्रि का जो प्रमाण है, हे महीपते ! उसे भी प्रत्येक युगों के क्रम से बतला रहा हूँ, सुनिये । चार सहस्र वर्षों का सतयुग माना जाता है ।९२-९३। और उसकी संध्या (संधिकाल) तथा संध्यांश भी उतने ही सौ अर्थात् चार सौ वर्षों का होता है । संध्या के अन्त का प्रमाण भी इतना ही कहा जाता है । पण्डित लोग त्रेता को तीन सहस्र वर्षों का बतलाते हैं ।९४। हे राजेन्द्र ! त्रेता की संध्या और संध्यांश दोनों का प्रमाण छः सौ वर्षों का है । द्वापर का प्रमाण दो सहस्र वर्ष कहा जाता है ।९५। पण्डित लोग उसकी संध्या और संध्यांश दोनों का प्रमाण चार सौ वर्ष बतलाते हैं । हे नृपोत्तम ! कलियुग का प्रमाण एक सहस्र वर्ष का तथा उसकी संध्या और संध्यांश का प्रमाण दो सौ वर्षों का कहा जाता है ।९६। हे नृपोत्तम ! चारों युगों की संख्या ऊपर बतलाई गई है । यह जो चारों युगों का प्रमाण मैंने

---

१. तात । २. त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु अहोरात्रं मनीषिभिः । ३. महाबाहो ।

एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते । दैविकानां युगानां तु सहस्रपरिसंख्यया ॥९८
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरुच्यते । एतद्युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः ॥९९
रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः । ततोऽसौ युगपर्यन्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ॥१००
प्रतिबुद्धस्तु सृजति मनः सदसदात्मकम् । मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं[1] सिसृक्षया ॥१०१
विपुलं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः । विपुलात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः ॥१०२
बलवाञ्जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः । वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ॥१०३
उत्पद्यते विचित्रांशुस्तस्य रूपं गुणं विदुः । तस्मादपि विकुर्वाणादापो जाताः स्मृता बुधैः ॥१०४
तासां गुणो रसो ज्ञेयः सर्वलोकस्य भावनः[2] । अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥१०५
यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुक्तं सौमनसं युगम् । तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥१०६
मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च । तथाप्यहे सदा ब्राह्मे मनवस्तु चतुर्दश ॥१०७
कथ्यन्ते कुरुशार्दूल[3] संख्यया पण्डितैः सदा । मनोः स्वायम्भुवस्येह षड्वंश्या[4] मनवोऽपरे ॥१०८

अभी आपको बतलाया है, वही बारह सहस्र वर्ष देवताओं का युग बतलाया जाता है । देवताओं के एक सहस्र युगों का ब्रह्मा का एक दिन जानना चाहिए और उतने ही की एक रात्रि भी कही जाती है । इस प्रकार (पण्डित लोग) देवताओं के सहस्र युग की समाप्ति पर ब्रह्मा का एक पुण्य दिन समाप्त होना बतलाते हैं ।९७-९९। और उतने ही प्रमाण की रात्रि भी बतलाते हैं। इस रात्रि के व्यतीत होने पर जब कि देवताओं का एक सहस्र युग व्यतीत होता है, भगवान् अपने शयन से निवृत्त होकर जाग उठते हैं।१००। प्रतिबुद्ध होकर अपने सत्-असदात्मक मन की सृष्टि करते हैं, सृष्टि विस्तार करने की भावना से प्रेरित होकर वह मन ही सृष्टि करता है ।१०१

उससे विपुल आकाश की उत्पत्ति होती है । उस आकाश का गुण शब्द कहा जाता है । आकाश में विकार होने से सब की सुगन्धि को वहन करने वाले, पवित्र, बलवान् और स्पर्शगुणात्मक वायु की उत्पत्ति होती है । तदनन्तर विकारयुक्त वायु से अंधकार को नष्ट करने वाले, विचित्र किरणों से समन्वित तेज की उत्पत्ति होती है, उसका गुण रूप कहा जाता है । उससे भी विकार युक्त होने पर जल की उत्पत्ति हुई—ऐसा बुद्धिमान् लोग स्मरण करते हैं।१०२-१०४। उस जल का गुण रस है, जो समस्त लोकों को (भावन) जीवन दान करने वाला है । जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, जो गन्ध गुण विशिष्ट है, यही सृष्टि का आदि क्रम है ।१०५। अभी जिन देवताओं के बारह सहस्र वर्षों के एक युग की चर्चा की गयी है, उसके एकहत्तर गुने का एक 'मन्वन्तर' कहा जाता है।१०६। यद्यपि ऐसे मन्वन्तरों की संख्या परिगणित नहीं की जा सकती एवं सृष्टि तथा प्रलय की भी कोई इयत्ता नहीं है, तथापि ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु का कार्य-काल समाप्त होना कहा जाता है।१०७। हे कुरुशार्दूल ! सर्वदा पण्डितगण संख्या द्वारा ऐसा ही निश्चय करते हैं । स्वायम्भुव मनु के वंश में उत्पन्न होने वाले अन्य छह मनु गण, जो महान् ऐश्वर्यशाली एवं परम तेजस्वी थे, प्राचीन काल

---

१. बोध्यमानम् । २. पावनः । ३. मुनिशार्दूल इत्यपि पाठः । ४. एवं स्युर्मनवः परे ।

सृष्टवन्तः प्रजाःस्वाःस्वाः महात्मानो महौजसः । सावर्णेयस्तथा पञ्चभौत्यो रौच्यस्तथापरः ॥१०९
एते भविष्या मनवः सप्त प्रोक्ता नृपोत्तम । स्वस्वेऽन्तरे सर्वमिदं पालयन्ति चराचरम् ॥११०
एवंविधं दिनं तस्य विरिञ्चेस्तु महात्मनः । तस्यान्ते कुरुते सर्गं यथेदं कथितं तव ॥१११
क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी नराधिप । चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ॥११२
नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्याणां प्रवर्तते । इतरेष्वागमास्तात धर्मश्च कुरुनन्दन ॥११३
यादृशाः परिहीयन्ते यथाह भगवान्मनुः[1] । चौर्याच्चाप्यनृताद्राजन्मायाभिरमितद्युते ॥११४
पादेन हीयते धर्मस्त्रेतादिषु युगेषु वै । अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ॥११५
कृतत्रेतादिषु ह्येषां वयो ह्रसति पादशः । वेदोक्तमायुराशीश्च मर्त्यानां कुरुनन्दन ॥११६
कर्मणां तु फलं तात फलत्यनुयुगं सदा । प्रभावश्च तथा लोके फलत्येव शरीरिणाम् ॥११७
अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे । अन्ये कलियुगे नृणां युगधर्मानुरूपतः ॥११८
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते । द्वापरे यज्ञमित्याहुर्दानमेकं[2] कलौ युगे ॥११९
सर्वस्य राजन्सर्गस्य गुप्त्यर्थं च महाद्युते । मुखबाहूरुपादानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ॥१२०

में अपनी-अपनी प्रजाओं की सृष्टि कर चुके हैं। नृपोत्तम ! सावर्णेय, पञ्चभौत्य तथा रौच्य प्रभृति सात मनु गण, जो भविष्य में उत्पन्न होंगे, अपने-अपने समय में अपनी-अपनी प्रजाओं की सृष्टि करके इस चराचर जगत् का पालन करेंगे। १०८-११०। महात्मा ब्रह्मा का दिन इस प्रकार का होता है। उसके अन्तिम समय में वह सृष्टि-कार्य इसी तरह सम्पन्न करता है, जैसा अभी आपसे बतला चुका हूँ ।१११

नराधिप ! वह परमेष्ठी इस समस्त चराचर जगत् की सृष्टि खेलते हुए की तरह कर डालता है। सतयुग में सभी प्रकार के धर्म अपने चारों चरणों से सम्पन्न रहते हैं।११२। उस युग में मनुष्यों की प्रवृत्ति अधर्म में तनिक भी नहीं होती। हे कुरुनन्दन ! अन्यान्य युगों में, मनुष्यों की प्रवृत्ति एवं धर्म जिस प्रकार हीन कोटि के हो जाते हैं, उसे भगवान् मनु ने इस प्रकार बतलाया है। हे राजन् ! चोरी करने से तथा असत्य भाषण करने से एवं मायावीपन से त्रेता आदि युगों में सभी धर्म एक-चरण से हीन हो जाते हैं। सतयुग में मनुष्य रोगरहित एवं सम्पूर्ण सिद्धियों तथा इच्छाओं को प्राप्त करने के कारण सुखपूर्वक चार सौ वर्ष की आयु वाले होते थे। ११३-११५। त्रेता आदि में एक-एक चरण आयु का भी ह्रास होता जाता है। हे कुरुनन्दन ! मनुष्यों को वेदों में कही गयी आयु, आशीर्वचन एवं कर्मों के शुभाशुभ फल युगों के अनुरूप ही सर्वदा फलित होते हैं। शरीरधारियों का प्रभाव भी युगों के अनुसार ही फलित होता है। ११६-११७। सतयुग में दूसरा धर्म था, त्रेता में दूसरा, द्वापर में दूसरा और कलियुग में दूसरा। तात्पर्य यह कि मनुष्यों के ये धर्म युग-धर्मों के अनुसार बदलते रहते हैं।११८। कृतयुग में तपस्या ही परम (धर्म) था, त्रेता में ज्ञान को ही (परम धर्म) कहा जाता है। द्वापर में यज्ञ को और कलियुग में एकमात्र दान को (परमश्रेष्ठ) धर्म बतलाया जाता है।११९। हे परमकान्तिमान् ! राजन् ! सभी सृष्टि की रक्षा के लिए भगवान् ने अपने मुख, बाहु, उरु एवं चरणों से उत्पन्न होने वालों के कर्मों का भी विभाजन किया है ।१२०

---

१. मुनिः । २. एव ।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥१२१
प्रजानां पालनं राजन्दानमध्ययनं तथा । विषयेषु प्रसक्तिं च तथेज्यां क्षत्रियस्य तु ॥१२२
पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । वणिक्पथं[1] कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च ॥१२३
एकमेव तु शूद्रस्य कर्म लोके प्रकीर्तितम्[2] । एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनुपूर्वशः ॥१२४
पुरुषस्य सदा श्रेष्ठं नाभेरूर्ध्वं नृपोत्तम । तस्मादपि शुचितरं मुखं तात स्वयम्भुवः ॥१२५
तस्मान्मुखाद्द्विजो जात इतीयं वैदिकी श्रुतिः । सर्वस्यैवास्य धर्मस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥१२६
स[3] सृष्टो ब्रह्मणा पूर्वं तपस्तप्त्वा कुरूद्वह । हव्यानामिव कव्यानां सर्वस्यापि च गुप्तये ॥१२७
अश्नन्ति च मुखेनास्य हव्यानि त्रिदिवौकसः । कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः ॥१२८
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः । बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥१२९
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः । कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥१३०
जन्म विप्रस्य राजेन्द्र धर्मार्थमिह कथ्यते । उत्पन्नः सर्वसिद्ध्यर्थं[4] याति ब्रह्मसदो नृप ॥१३१

अध्यापन, अध्ययन, यज्ञाराधन, यज्ञ का अनुष्ठान कराना, दान देना और दान लेना—ये सब कर्म ब्राह्मणों के लिए निश्चित किये गये ।१२१। हे राजन् इसी प्रकार प्रजाओं का भलीभाँति पालन, दान, अध्ययन, विषय-सेवन एवं यज्ञाराधन—ये सब क्षत्रियों के कर्म हैं ।१२२। पशुओं की रक्षा, दान, यज्ञाराधन, अध्ययन, वाणिज्य, ब्याज लेकर कर्ज देना और कृषि—ये वैश्यों के कर्म हैं ।१२३। इस लोक में शूद्रों का केवल एक ही कर्म कहा जाता है—इन उपर्युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों की क्रमानुसार शुश्रूषा करना ।१२४। नृपोत्तम ! मनुष्य के शरीर में नाभि के ऊपर का भाग सर्वदा श्रेष्ठ माना जाता है, हे तात ! उस ऊपरी भाग में भी मुख पवित्रतर है । स्वयम्भू भगवान् के उसी पुनीत मुख से द्विजों की उत्पत्ति हुई है—ऐसा वेदों में भी सुना जाता है । ब्राह्मण सभी धार्मिक कार्यों में अपने धर्म से ही अधिकारी माना गया है ।१२५-१२६। हे कुरुश्रेष्ठ ! ब्रह्मा ने प्रचुर तपस्या करके सर्वप्रथम इन्हीं ब्राह्मणों की उत्पत्ति हव्यों (देवता के उद्देश्य से यज्ञादि में जो कुछ दिया जाता है उसे हव्य कहते हैं) और कव्यों (पितरों के निमित्त श्राद्ध आदि में जो कुछ दिया जाता है उसे कव्य कहते हैं ।) की तरह सब की रक्षा के लिए की थी ।१२७। देवगण इन्हीं के मुख से हव्यों का भक्षण करते हैं, इसी प्रकार पितरगण भी उनके मुख से कव्य पदार्थों का भक्षण करते हैं—इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ।१२८। सभी भूतों में प्राणधारी श्रेष्ठ माने जाते हैं, प्राणियों में वे श्रेष्ठ हैं, जो बुद्धिजीवी हैं, बुद्धिजीवियों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ।१२९। ब्राह्मणों में बुद्धिमान् ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, बुद्धिमान् ब्राह्मणों में वे श्रेष्ठ हैं, जो दृढ़ बुद्धि हैं, उनमें भी वे श्रेष्ठ हैं, जो वैसा आचरण करते हैं किन्तु वैसे आचरण करने वालों में भी वे अधिक श्रेष्ठ हैं, जो ब्रह्मवेत्ता हैं ।१३०। हे राजन् ! ब्राह्मणों का जन्म धर्म के लिए हुआ है—ऐसा कहा जाता है । नृप ! (इस भूतल पर) वह सभी सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए उत्पन्न हुआ है । अन्त में भी वह ब्रह्म-लोक को प्राप्त करता है ।१३१। वह इस पृथ्वी पर जन्म धारण कर समस्त

---

१. वाणिज्यं तु । २. प्रतिष्ठितम् । ३. ससृजे । ४. सर्वधर्मार्थम् ।

स चापि जायमानस्तु पृथिव्यामिह जायते । भूतानां प्रभवायैव धर्मकोशस्य गुप्तये ॥१३२
सर्वं हि ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चित्पृथिवीगतम् । जन्मना चोत्तमेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ॥१३३
स्वकीयं ब्राह्मणो भुङ्क्ते विदधाति च सुव्रत । करुणां कुर्वतस्तस्य भुञ्जन्तीहेतरे जनाः ॥१३४
त्रयाणामिह वर्णानां भावाभावाय वै द्विजः । भवेद्राजन्न सन्देहस्तुष्टो भावाय वै द्विजः ॥१३५
अभावाय भवेत्क्रुद्धस्तस्मात्पूज्यतमो हि सः । ब्राह्मणे सति नान्यस्य प्रभुत्वं विद्यते नृप ॥१३६
कामात्करोत्यसौ कर्म कामगश्च नृपोत्तम । तस्माद्वृन्दारकपुरी तस्मादपि महः पुनः ॥१३७
महर्लोकाज्जनोलोकं ब्रह्मलोकं च गच्छति । ब्रह्मत्वं च महाबाहो याति विप्रो न संशयः ॥१३८

शतानीक उवाच

ब्रह्मत्वं नाम दुष्प्रापं ब्रह्मलोकेषु सुव्रत ॥१३९
ब्रह्मत्वं कीदृशं विप्रो ब्रह्मलोकं च गच्छति । नाममात्रोऽथ किं विप्रो ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः सदा ॥
याति ब्रह्मन्गुणाः के स्युर्ब्रह्मप्राप्तौ ममोच्यताम् ॥१४०

सुमन्तुरुवाच

साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः ॥१४१
ये प्रोक्ता वेदशास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु । गर्भाधानादयो ये च[1] संस्कारा यस्य पार्थिव ॥१४२

प्राणियों के ऊपर आधिपत्य करने के लिए तथा धर्मकोश की रक्षा के लिए उत्पन्न होता है।१३२। इस पृथ्वी पर जो कुछ है, वह सब ब्राह्मण का ही है, क्योंकि उत्तम जन्म लेने के कारण वही सब कुछ पाने योग्य है।१३३। हे सुव्रत ! ब्राह्मण अपना ही भोजन करता है । फिर भी लोककल्याण के लिए प्रयत्न करता है जिसका अन्य लोग उपभोग करते हैं।१३४। हे राजन् ! ब्राह्मण इस पृथ्वी पर तीनों वर्णों के भाव (कल्याण) तथा अभाव (अकल्याण) को करने में समर्थ हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर कल्याण करता है।१३५। और (उसी प्रकार) क्रुद्ध होकर अकल्याण कर सकता है। अतः वह सबसे बढ़कर पूजनीय है। हे नृप ! ब्राह्मण के विद्यमान रहते हुए, दूसरे वर्ण का प्रभुत्व नहीं रह सकता।१३६। हे नृपोत्तम ! ब्राह्मण केवल अपनी इच्छा से कर्म करता है । वह इच्छानुसार गमन करने में समर्थ है। इस लोक से वह देवलोक को प्राप्त करता है, वहाँ से भी महर्लोक की उसे प्राप्ति होती है।१३७। महर्लोक से जनलोक और (जनलोक से) ब्रह्मलोक जाता है। हे महाबाहु ! इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मण ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।१३८

शतानीक बोले—हे सुव्रत ! ब्रह्मलोक में ब्रह्मत्व की प्राप्ति करना परम दुर्लभ है।१३९। ब्राह्मण किस प्रकार ब्रह्मलोक एवं ब्रह्मत्व की प्राप्ति करता है ? नाममात्र के लिए ही क्या ब्राह्मण सदा ब्रह्मपद की प्राप्ति करता है ? हे ब्रह्मन् ! उस ब्रह्मपद के प्राप्ति के साधन भूत गुण कौन से हैं ? यह सब मुझे बतलाइए।१४०।

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु ! आपको अनेकशः साधुवाद है। मेरी उत्तम बात सुनिये।१४१। ब्राह्मण के लिए वेदों एवं शास्त्रों में जो संस्कार बतलाये गये हैं, हे पार्थिव ! गर्भाधान आदि जो अड़तालीस

---

१. चेह।

चत्वारिंशतथाष्टौ च निर्वृत्ताः शास्त्रतो नृप । स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणत्वं च मानद[1] ॥
संस्काराः सर्वथा हेतुर्ब्रह्मत्वे नात्र संशयः ॥१४३

शतानीक उवाच

संस्काराः के मता ब्रह्मन्ब्रह्मत्वे ब्राह्मणस्य तु । शंस मे द्विजशार्दूलं कौतुकं हि महन्मम ॥१४४

सुमन्तुरुवाच

साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः । ये प्रोक्ता वेदशास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु ॥
मनीषिभिर्महाबाहो शृणु सर्वानशेषतः ॥१४५
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । जातकर्मान्नप्राशनं च चूडोपनयनं[2] नृप ॥१४६
ब्रह्मव्रतानि चत्वारि स्नानं च तदनन्तरम् । सधर्मचारिणीयोगो यज्ञानां[3] कर्म मानद ॥१४७
पञ्चानां कार्यमित्याहुरात्मनः श्रेयसे नृप । देवपितृमनुष्याणां भूतानां ब्राह्मणस्तथा ॥१४८
एतेषां चाष्टकाकर्म पार्वणश्राद्धमेव हि । श्रावणी चाग्रहायणी चैत्री चाश्वयुजी तथा ॥१४९
पाकयज्ञास्तथा सप्त अग्न्याधानं[4] च सत्क्रिया । अग्निहोत्रं तथा राजन्दर्शं च विधुसन्क्षये ॥१५०
पौर्णमासं च राजेन्द्र चातुर्मास्यानि चापि हि । निरूपणं[5] पशुवधं तथा सौत्रामणीति च ॥१५१
हविर्यज्ञास्तथा सप्त तेषां चापि हि सत्क्रिया । अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोमस्तथोक्थ्यः[6] षोडशी विदुः ॥१५२

संस्कार शास्त्रों में बतलाये गये हैं, वे जिस ब्राह्मण के शास्त्रीय विधि के अनुसार हुए रहते हैं, हे मानद ! वही ब्राह्मण ब्रह्मा के स्थान को प्राप्त करता है और वही सच्चे ब्रह्मत्व की भी प्राप्ति करता है। ब्रह्मत्व की प्राप्ति में सर्वथा ये संस्कार ही कारण हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है ।१४२-१४३

शतानीक बोले—हे द्विजशार्दूल ! ब्रह्मन् ! ब्राह्मण की ब्रह्मत्व-प्राप्ति में साधनभूत वे संस्कार कौन-कौन माने गये हैं ? मुझे उनके सुनने का बड़ा कुतूहल है, मुझे सुनाइये ।१४४

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु ! आपको अनेकशः साधुवाद है, मेरी उत्तम बातें सुनिये । हे महा-बाहो ! मनीषियों द्वारा वेदों एवं शास्त्रों में ब्राह्मणों के लिए जो संस्कार बतलाये गये हैं, उन सब संस्कारों को सुनिये ।१४५। हे राजन् । गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, चार प्रकार के ब्रह्मचर्यावस्था के व्रत (अभिषव) स्नान, सहधर्मिणी के साथ संयोग अर्थात् विवाह (पाँचों) यज्ञों का सदनुष्ठान इनको आत्मकल्याण के लिए परम उपयोगी बतलाया जाता है ।१४६-१४७। देव, पितर, मनुष्य, भूत एवं ब्रह्म—इन सबके अष्टकाकर्म (अष्टमी के दिन किया जाने वाला धार्मिक कृत्य), श्रावण, अगहन, चैत्र एवं आश्विन की पूर्णिमा को पार्वण श्राद्ध, सात पाकयज्ञ, अग्नि-स्थापना, सत्क्रिया, अग्निहोत्र, अमावस्या को दर्शश्राद्ध, पौर्णमास श्राद्ध, चातुर्मास्य-निरूपण, पशुवध, सौत्रामणियाग, हविर्यज्ञ, जो सात प्रकार के होते हैं, उनकी सत्क्रिया, अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरा,

---

१. मानव । २. चूडाकरणमेखलाः । ३. जन्तूनां कर्म मानद । ४. अग्न्याधेयम् । ५. निरूढपशुबन्धं च । ६. ज्योतिष्टोमो ह्यग्निष्टोमः ।

वाजपेयोऽतिरात्रश्च आप्तोर्यामेति वै स्मृतः[१]। संस्कारेषु स्थिताः सप्त सोमाः कुरुकुलोद्वह[२] ॥१५३
इत्येते द्विजसंस्काराश्चत्वारिंशन्नृपोत्तम। अष्टौ चात्मगुणास्तात शृणु तानपि भारत ॥१५४
अनसूया दया क्षान्तिरनायासं च मङ्गलम्। अकार्पण्यं तथा शौचमस्पृहा च कुरूद्वह ॥१५५
य एतेऽष्टगुणास्तात कीर्त्यन्ते वै मनीषिभिः। एतेषां लक्षणं वीर शृणु सर्वमशेषतः ॥१५६
न गुणान्गुणिनो हन्ति न स्तौत्यात्मगुणानपि। प्रहृष्यन्ते नान्यदोषैरनसूया प्रकीर्तिता ॥१५७
अपरे बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा। आत्मवद्वर्तनं यत्स्यात्सा दया परिकीर्तिता ॥१५८
वाचा मनसि काये च दुःखेनोत्पादितेन च। न कुप्यति न चाप्रीतिः सा क्षमा परिकीर्तिता ॥१५९
अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः। आचारे च व्यवस्थानं शौचमेतत्प्रकीर्तितम् ॥१६०
शरीरं पीड्यते येन शुभेनापि च कर्मणा। अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥१६१
प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम्। एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥१६२
स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनान्तरात्मना। अहन्यहनि यत्किंचिदकार्पण्यं तदुच्यते ॥१६३
यथोत्पन्नेन सन्तुष्टः स्वल्पेनाप्यथ वस्तुना। अहिंसया परस्वेषु[३] साऽस्पृहा परिकीर्तिता ॥१६४
वपुर्यस्य तु इत्येतैः संस्कारैः संस्कृतं द्विजः। ब्रह्मत्वमिह सम्प्राप्य ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥१६५

आप्तोर्याम—ये सब संस्कार कहे जाते हैं। हे कुलश्रेष्ठ! इन संस्कारों में सात सोमयज्ञ भी स्थित हैं।१४८-१५३। हे नृपोत्तम! ये चालीस ब्राह्मणों के संस्कार कहे जाते हैं। हे भारत। आठ उनके स्वाभाविक गुण हैं, उन्हें भी सुनिये।१५४। अनसूया, दया, क्षान्ति, अनायास, मङ्गल, अकार्पण्य, शौच तथा अस्पृहा।१५५। हे तात! मनीषियों के द्वारा जो ये आठ ब्राह्मणों के स्वाभाविक गुण कहे जाते हैं, हे वीर! इन सद्गुणों के सम्पूर्ण लक्षणों को भी बतला रहा हूँ, सुनिये।१५६। जिसमें गुणवान् गुणों का हनन नहीं करता है तथा अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करता है तथा दूसरे के दोषों से प्रसन्न नहीं होता, उसे 'अनसूया' कहते हैं।१५७। अन्य जनों तथा बन्धु-वर्ग (आत्मीय जनों) में, मित्र अथवा शत्रु में सर्वदा जो आत्मवत् व्यवहार हुआ करता है, उसे 'दया' कहते हैं।१५८। मन और शरीर में कष्ट उत्पन्न करने वाली वाणी से न क्रोध किया जाता है और न दुःखानुभव होता है, उसे 'क्षमा' कहते हैं।१५९। अभक्ष्य का त्याग, प्रशंसनीय का सम्पर्क और सदाचार में रहने को 'शौच' कहते हैं।१६०। जिस शुभ कार्य के द्वारा शरीर को क्लेश होता है, उस कर्म का सर्वथा त्याग करना चाहिए। इस त्याग को 'अनायास' कहते हैं।१६१। प्रशंसनीय कर्म के आचरण तथा निन्दित कर्म के सर्वथा त्याग को ब्रह्मवादी मुनियों ने 'मङ्गल' कहा है।१६२। प्रतिदिन प्रसन्नचित्त होकर, थोड़े में से भी जो दान दिया जाता है, उसे अकार्पण्य कहते हैं।१६३। स्वल्प मात्रा में भी प्राप्त वस्तु से सन्तुष्ट होने तथा अन्य जन (के धन) में अहिंसा भाव रखने को 'स्पृहा' कहते हैं।१६४। हे द्विज! इन संस्कारों से जिसका शरीर संस्कृत है, वह इस लोक में ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त कर, अन्त में ब्रह्मलोक को जाता है।१६५। इस लोक और परलोक को सफल बनाने

---

१. नृप। २. मासाः। ३. परार्थेपु।

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकाद्यैर्द्विजन्मनाम् । कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ।।१६६
गर्भशुद्धिं ततः प्राप्य धर्मं चाश्रमलक्षणम् । याति मुक्तिं न सन्देहः पुराणेऽस्मिन्नृपोत्तम ।।१६७
उशन्ति कुरुशार्दूल ब्राह्मणा नात्र संशयः । [1]आश्रितानां विशेषेण ये नित्यं स्वस्तिवादिनः ।।१६८
निकटस्थान्द्विजान्हित्वा योऽन्यान्पूजयति द्विजान् । सिद्धं पापं तदपमानात्तद्वक्तुं नैव शक्यते ।।१६९
तस्मात्सदा समीपस्थः सम्पूज्यो विधिवन्नृप । पूजयेदतिथींस्तद्वदन्नपानादिदानतः ।।१७०
ब्राह्मणः सर्ववर्णानां ज्येष्ठः श्रेष्ठस्तथोत्तमः । एवमस्मिन्पुराणे तु संस्कारान्ब्राह्मणस्य तु ।।१७१
शृणोति यश्च जानाति यश्चापि पठते सदा । ऋद्धिं वृद्धिं तथा कीर्तिं प्राप्येह श्रियमुत्तमाम् ।।१७२
धनं धान्यं यशश्चापि पुत्रान्बन्धून्सुरूपताम् । सावित्रं लोकमासाद्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।।१७३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां
ब्राह्मे पर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ।२।

के निमित्त द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) को प्रशस्त वैदिक कर्म द्वारा शरीर का पवित्र संस्कार करना चाहिए ।१६६। इस तरह शरीर संस्कृत होने पर गर्भ-शुद्धि और आश्रमानुसार धर्म को प्राप्त कर, पुराणवचनानुसार हे राजन्, वह व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करता है, इसमें संदेह नहीं है ।१६७। हे कुरुवंश में श्रेष्ठ राजन् ! आश्रित जनों के प्रति स्वस्तिवाचन करने वाले ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है ।१६८। समीपस्थ ब्राह्मणों को त्यागकर जो अन्य ब्राह्मणों की पूजा करते हैं, वे निकटस्थ ब्राह्मण के अपमान से निश्चित ही पाप के भागी होते हैं, उस पाप का वर्णन नहीं किया जाता ।१६९। हे राजन् ! इसलिए निकटस्थ ब्राह्मण की सदा पूजा करनी चाहिए । इसी प्रकार भोजन और पेय पदार्थों से अतिथियों का सम्मान करना चाहिए ।१७०। ब्राह्मण सभी वर्णों में ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा उत्तम है । इस प्रकार इस पुराण में (प्रतिपादित) ब्राह्मण के संस्कारों को जो व्यक्ति सदा श्रवण करता है या जानता है पाठ करता है, वह इस संसार में ऋद्धि, वृद्धि, कीर्ति, उत्तम श्री, धन, धान्य, यश, पुत्र, बन्धु तथा सुन्दर स्वरूप को प्राप्त करके सविता के लोक में जाता है और अनन्तर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ।१७१-१७३

श्रीभविष्यमहापुराण में शतार्धसाहस्री नामक संहिता के
ब्रह्मपर्व में दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

---

१. एत ( ) च्चिह्नान्तर्गतोऽयं पाठः कस्मिंश्चिदेकस्मिन्पुस्तके दृश्यते । स च किंचित्प्रकरणादूरवर्तीति हेतोश्चिह्नं प्रवेशितम् । इति बोध्यम् ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

गर्भाधानादारभ्य समासात्सर्वसंस्कारवर्णनमाचमनादिविधिवर्णनञ्च

शतानीक उवाच

जातकर्मादिसंस्कारान्वर्णानामनुपूर्वशः । आश्रमाणां च मे धर्मं कथयस्व द्विजोत्तम ॥१

सुमन्तुरुवाच

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । जातकर्मान्नप्राशश्च चूडामौञ्जीनिबन्धनम् ॥२
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते । स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया श्रुतैः ॥३
महायज्ञैश्च ब्राह्मीयं यज्ञैश्च क्रियते तनुः । शृणुष्वैकमना राजन्यथा सा क्रियते तनुः ॥४
प्राङ्नाभिकर्तनात्पुंसो जातकर्म विधीयते । मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥५
नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छन्ति पार्थिव । द्वादश्यामपरे राजन्मासि पूर्णे तथा परे ॥६
अष्टादशेऽहनि तथाऽन्ये वदन्ति मनीषिणः । पुण्ये तिथौ मुहूर्ते च नक्षत्रे च गुणान्विते ॥७
मङ्गल्यं तात विप्रस्य शिवशर्मेति पार्थिव । राजन्यस्य विशिष्टं[1] तु इन्दुवर्मेति कथ्यते[2] ॥८

अध्याय ३

गर्भाधान से लेकर संक्षेप में समस्त संस्कारों एवं आचमन आदि की विधियों का वर्णन

शतानीक बोले—हे द्विजोत्तम ! सभी वर्णों के जातकर्म आदि जितने संस्कार एवं आश्रमों के धर्म हैं, उन्हें हमें क्रमशः बतलाने की कृपा कीजिये ।१

सुमन्तु ने कहा—राजन् ! गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूडाकरण और उपनयन इन संस्कारों के करने से द्विजों के बीज एवं गर्भ सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं । स्वाध्याय, व्रत; हवन, तीनों वेदों के अध्ययन, महान् यज्ञों एवं सामान्य यज्ञों के अनुष्ठान से यह शरीर ब्रह्मवर्चस् से संयुक्त किया जाता है । हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर सुनिये कि इन संस्कारों से वह शरीर किस प्रकार ब्रह्मतेजोमय होता है ।२-४। पुरुष संतान के नाल काटने से पहिले ही जातकर्म संस्कार किया जाता है और वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए सुवर्ण, मधु और घृत प्राशन कराया जाता है ।५। हे पार्थिव, हे राजन्! कोई कोई आचार्य दसवीं तिथि को नामकरण संस्कार करने की इच्छा करते हैं, कुछ लोग बारहवीं तिथि को तथा कुछ लोग एक मास पूरे होने पर ।६। कुछ अन्य पण्डित लोग अठारहवें दिन के लिए बतलाते हैं । पुण्य तिथि, अच्छे नक्षत्र, शुभमुहूर्त में, जबकि सब प्रकार के गुण संयुक्त हों, हे तात ! ब्राह्मण का शिव-शर्मा इस प्रकार मांगलिक नामकरण संस्कार करना चाहिए, क्षत्रियों का इन्द्रवर्मा ऐसा

---

१. बलिष्ठं तु । २. कीर्त्यते ।

वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य च जुगुप्सितम् । धनवर्धनेति वैश्यस्य सर्वदासेति हीनजे ॥९
मनुना च तथा प्रोक्तं नाम्नो लक्षणमुत्तमम् । शर्मवद्‌ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ॥१०
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् । स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थमनोरमम् ॥११
मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् । द्वादशेऽहनि राजेन्द्र शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ॥१२
चतुर्थे मासि कर्तव्यं तथान्येषां मतं विभो । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यथेष्टं मङ्गलं कुले ॥१३
चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामनुपूर्वशः । प्रथमेऽब्दे तृतीये[1] वा कर्तव्यं कुरुनन्दन ॥१४
गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् । गर्भादेकादशे राजन्क्षत्रियस्य विनिर्दिशेत् ॥१५
द्वादशेऽब्देऽपि गर्भात्तु वैश्यस्य व्रतमादिशेत् । ब्रह्मवर्चसकामेन कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ॥१६
बलार्थिना तथा राज्ञः षष्ठेऽब्दे कार्यमेव हि । अर्थकामेन वैश्यस्य अष्टमे कुरुनन्दन ॥१७
आषोडशाद्‌ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते । द्वाविंशतेः क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥१८
अत ऊर्ध्वं तु ये [2]राजन्यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते[3] क्रतोः ॥१९

विशिष्ट नामकरण करना चाहिए ।७-८। वैश्य का धन संयुक्त नाम रखना चाहिये । शूद्र का कुछ जुगुप्सित नामकरण करना चाहिये जैसे वैश्य का नाम धनवर्धन और शूद्र का नाम सर्वदास ।९। मनु ने नाम के ये उत्तम लक्षण बतलाये हैं कि ब्राह्मण के नाम के साथ शर्मा, क्षत्रिय के साथ रक्षार्थक (वर्मा), वैश्य के साथ पुष्टिप्रदायक नाम (कोई संज्ञा) तथा शूद्र के साथ (दास्यभाव) युक्त कोई नाम हो । स्त्रियों के नाम सुख देने वाले, मृदु भावना के प्रतीक, सरल, स्पष्ट, मनोहारी, मांगलिक, अन्त में दीर्घवर्ण युक्त तथा आशीर्वाद व्यंजित करने वाले हों । हे राजेन्द्र ! बारहवें दिन शिशु का घर से बाहर के लिए निष्क्रमण होता है ।१०-१२। हे विभो ! कुछ अन्य आचार्यों का मत है कि शिशु को चौथे मास घर से बाहर निकालना चाहिये । छठे मास में अन्नप्राशन करने से परिवार में यथेष्ट मङ्गल की प्राप्ति होती है ।१३। हे कुरुनन्दन ! सभी द्विज कही जाने वाली जातियों में क्रमशः शिशुओं का चूडाकर्म संस्कार प्रथम अथवा तीसरे वर्ष में करना चाहिए ।१४। ब्राह्मण शिशु का उपनयन संस्कार गर्भ से आठवें वर्ष में करना चाहिये । हे राजन् ! क्षत्रिय का उपनयन संस्कार गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में करना चाहिये ।१५। वैश्यों के लिए यह व्रत बारहवें वर्ष में भी वैध माना गया है । किन्तु इसके अतिरिक्त अधिक ब्रह्मवर्चस की कामना हो तो ब्रह्मण शिशु का यज्ञोपवीत संस्कार पांचवें वर्ष में करना चाहिये ।१६। राजाओं के शिशुओं को अधिक बली होने की कामना से छठे वर्ष में यज्ञोपवीत करा देना चाहिये । हे कुरुनन्दन ! इसी प्रकार विशेष धन उपार्जित करने की कामना से वैश्य का आठवें वर्ष में उपनयन संस्कार सम्पन्न करना चाहिये ।१७। सोलह वर्ष की अवस्था तक ब्राह्मण कुमार की सावित्री अतिक्रमण नहीं करती (अर्थात् १५वें वर्ष तक भी ब्राह्मण कुमारों का यज्ञोपवीत संस्कार हो सकता है ।) उसी प्रकार क्षत्रियों का बाईस वर्ष से पूर्व तथा वैश्यों का चौबीस वर्ष की अवस्था तक भी उपनयन संस्कार हो सकता है ।१८। हे राजन् ! किन्तु इससे ऊपर हो जाने पर भी जिनका उपनयन संस्कार नहीं होता वे असंस्कृत हैं । सावित्री के पतित होने पर वे व्रात्य हो जाते हैं, और व्रात्यस्तोम यज्ञ के बिना कुछ नहीं हो सकता ।१९। ऐसे अपवित्र के साथ

---

१. द्वितीये वा । २. त्रयोऽप्येते । ३. न ते संस्कारभागिनः ।

न चाप्येभिरपूतैस्तु आपद्यपि हि कर्हिचित् । ब्राह्मं यौनं च सम्बन्धमाचरेद्ब्राह्मणैः सह ।।२०
भवन्ति राजंश्चर्माणि व्रतिनां त्रिविधानि च । कार्ष्णरौरवबास्तानि ब्रह्मक्षत्रविशां नृप ।।२१
वंशीरंश्चानुपूर्व्येण वस्त्राणि विविधानि तु । ब्रह्मक्षत्रविशो राजञ्छाणक्षौमादिकानि च ।।२२
मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला । क्षत्रियस्य च मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ।।२३
मुञ्जालाभे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः । त्रिवृत्ता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव च ।।२४
कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् । शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ।।२५
पुष्कराणि तथा चैषां भवन्ति त्रिविधानि तु । ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ तृतीयं प्लक्षजं नृप ।।२६
वाटखादिरौ क्षत्रियस्तु तथान्यं वेतसोद्भवम् । पैलवोदुम्बरौ वैश्यस्तथाश्वत्थजमेव हि ।।२७
दण्डानेतान्महाबाहो धर्मतोऽर्हन्ति धारितुम् । केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः ।।२८
ललाटसम्मितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः । ऋजवस्ते तु सर्वे स्युर्ब्राह्मणाः सौम्यदर्शनाः ।।२९
अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचो नाग्निदूषिताः । प्रगृह्य चेप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् ।।३०
सम्यग्गुरुं तथा पूज्य चरेद्भैक्ष्यं यथाविधि । भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः ।।३१

कभी आपत्ति में भी अध्ययन, अध्यापन, अथवा यौन सम्बन्ध ब्राह्मण को नहीं रखना चाहिये ।२०। हे राजन् ! उपनयन व्रत पालन करने वाले व्रतियों के लिए तीन प्रकार के चर्म भी होते हैं, ब्राह्मण के लिए कृष्ण मृग चर्म, क्षत्रिय के लिए रुरु मृग चर्म और वैश्य के लिए बकरे का चर्म ।२१। हे राजन् ! इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों को सन, रेशमी आदि विविध प्रकार के वस्त्र क्रमानुसार धारण करने चाहिये ।२२। (इन उपनयन संस्कार में) ब्राह्म की मेखला मूँज की बनी हुई त्रिसूती तीन लड़ियों वाली, समान तथा चिकनी करनी चाहिए । क्षत्रिय के लिए मूर्वा की बनी होनी चाहिये । तथा वैश्य के लिए सन् के रेशों की होनी चाहिये ।२३। मूँज न मिलने पर ब्राह्मणों के लिए कुश, अश्मन्तक अथवा बल्वज (बगही) की मेखला बनानी चाहिये । उसे एक गाँठ बाँधकर तीन लड़ की बना लेनी चाहिये अथवा तीन गाँठ या पाँच गाँठ बाँधनी चाहिये ।२४। ब्राह्मण का उपवीत कपास का (अर्थात् सूती) होना चाहिये, जो तीन लड़ियों में हो और ऊर्ध्ववृत हो राजाओं अर्थात् क्षत्रियों का यज्ञोपवीत सन के सूतों से बना हुआ तथा वैश्यों का भेंड़ के रोम के सूतों का बना हुआ होना चाहिये ।२५। इन तीनों वर्णों में ब्रह्मचारियों के दण्ड भी तीन प्रकार के होने चाहिये । नृप ! ब्राह्मण बेल, पलाश अथवा पाकर का दण्ड ग्रहण करे ।२६। क्षत्रिय बरगद, खदिर (खैर) अथवा बेंत का तथा वैश्य, पीलु वृक्ष का, गूलर अथवा पीपल का दण्ड ग्रहण करें ।२७। हे महाबाहु ! इन दण्डों को (उपनयन संस्कार के समय) धर्मतः धारण करना चाहिये । ब्राह्मणों का दण्डमाप उनके केशांत (भाग) तक होना चाहिये ।२८। राजाओं का दण्ड ललाट पर्यन्त का तथा वैश्यों का नासिका के अन्त तक का होना चाहिये । वे सब दण्ड देखने में सीधे तथा सुन्दर हों जिनके देखने से मनुष्यों के मन में किसी प्रकार की उद्वेग-भावना न फैले । उन पर उत्तम बकला लगा हो, कहीं अग्नि से जले हुए न हों । इस प्रकार अपनी इच्छानुसार दण्ड ग्रहण कर भास्कर की उपासना कर भली-भाँति गुरु की पूजा कर ब्रह्मचारी यथाविधि भिक्षाटन करे । उपनीत ब्राह्मण पहले भवत् शब्द का प्रयोग कर भिक्षाटन करे, क्षत्रिय वाक्य के मध्य में भवत् शब्द का प्रयोग करे और वैश्य वाक्य के अन्त में भवत् शब्द का प्रयोग करे ।

भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्य भवदुत्तरम् । मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ॥३२
भिक्षेत भैक्ष्यं प्रथमं या चैनं नावमानयेत् । सुवर्णं रजतं चान्नं सा पात्रेऽस्य विनिर्दिशेत् ॥३३
समाहृत्य ततो भैक्ष्यं यावदर्थममायया । निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥३४
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः । श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं[1] भुङ्क्ते उदङ्मुखः ॥३५
उपस्पृश्य द्विजो राजन्नन्नमद्यात्समाहितः । भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत् ॥३६
तथान्नं पूजयेन्नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् । दर्शनात्तस्य हृष्येद्वै प्रसीदेच्चापि भारत ॥३७
अभिनन्द्य ततोऽश्नीयादित्येवं मनुरब्रवीत् । पूजितं त्वशनं नित्यं बलमोजश्च यच्छति ॥३८
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्[2] । नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैतत्तथान्तरा ॥३९
यस्त्वन्नमन्तरा कृत्वा लोभादत्ति नृपोत्तम । विनाशं याति स नर इह लोके परत्र च ॥
यथाभवत्पुरा वैश्यो धनवर्द्धनसंज्ञितः ॥४०

शतानीक उवाच

स कथमन्तरं पूर्वमन्नस्य द्विजसत्तम । किमन्तरं तथान्नस्य कथं वा तत्कृतं भवेत् ॥४१

माता, बहिन, अथवा अपनी मौसी से सर्वप्रथम भिक्षा की याचना करनी चाहिये । जो ब्रह्मचारी की अवमानना न करे । उसे अर्थात् देने वाली को सुवर्ण या चाँदी के पात्र में अन्न रखकर दान करने का निर्देश है ।२९-३३। इस प्रकार भिक्षाटन कर ब्रह्मचारी मायारहित हो सब धन गुरु को समर्पित कर पवित्र भाव से आचमन कर पूर्वाभिमुख हो भोजन करे ।३४। पूर्वाभिमुख भोजन करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है, दक्षिण मुख से यश की प्राप्ति होती है, पश्चिम मुख करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । तथा उत्तर मुख करने से ऋत की प्राप्ति होती है ।३५। हे राजन् ! द्विज समाहित चित्त होकर विधिपूर्वक आचमन कर अन्न का भक्षण करे । भोजन करने के उपरान्त भी जल से अच्छी तरह आचमन कर सब इन्द्रियों का स्पर्श करे ।३६। अन्न की सर्वदा पूजा करे, कुत्सित भावना का सर्वथा परित्याग कर उसका भक्षण करे । हे भरत ! उसको देखकर प्रसन्नता और सन्तोष प्रकट करे ।३७। अन्न का अभिनन्दन (प्रशंसा) करने के बाद भोजन करे—ऐसा मनु ने कहा है । पूजित अन्न सर्वदा बल एवं ओज प्रदान करता है ।३८। और अपूजित अन्य के भोजन से वह उन दोनों का विनाश होता है । अपना जूठ किसी को न दें और न स्वयं किसी का जूठा खाय ।३९। इसी प्रकार बचे हुए अपने ही जूठे अन्न को कुछ देर बाद फिर से न खाय । हे नृपोत्तम ! लोभवश जो अपने ही जूठे अन्न को दूसरे समय में खाता है, वह दोनों लोकों में नष्ट होता है, जैसे प्राचीन काल में धनवर्धन नामक वैश्य का नाश हुआ था ।४०

शतानीक बोले—हे द्विजसत्तम ! अन्न शब्द होने के पहले वह कैसा था वह और अन्न शब्द के पीछे वह कैसा हुआ तथा उससे क्या हुआ ।४१

---

१. सत्यं । २. नृप । ३. अभूत्पुण्यकर्मकृत् ।

सुमन्तुरुवाच

पुरा कृतयुगे राजन्वैश्यो वसति पुष्करे । धनवर्धननामावै समृद्धौ धनधान्यतः ॥४२
निदाघकाले राजेन्द्र स कृत्वा वैश्वदेविकम् । सपुत्रभ्रातृभिः सार्धं तथा वै मित्रबन्धुभिः ॥
आहारं कुरुते राजन्भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्[1] ॥४३
अथ तद्भुञ्जतस्तस्य[2] अन्नं शब्दो महानभूत् । करुणः कुरुशार्दूल अथ तं स प्रधावितः ॥४४
त्यक्त्वा स भोजनं यावन्निष्क्रान्तो गृहबाह्यतः । अथ शब्दस्तिरोभूतः स भूयो गृहमागतः ॥४५
तमेव भाजनं गृह्य[3] आहारं कृतवान्नृप । भुक्तशेषं महाबाहो आहारं स तु भुक्तवान् ॥४६
भुक्त्वा स शतधा जातस्तस्मिन्नेव क्षणे नृप । तस्मादन्नं न राजेन्द्र अश्नीयादन्तरा क्वचित् ॥४७
च चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् । रसो भवत्यत्यशनाद्रसाद्रोगः प्रवर्तते ॥४८
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवाभिपूजनम् । न भवन्ति रसे जाते नराणां भरतर्षभ ॥४९
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् । अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥५०
यक्षभूतपिशाचानां रक्षसां च नृपोत्तम । [4]गम्यो भवति वै विप्र उच्छिष्टो नात्र संशयः ॥५१
शुचित्वमाश्रयेत्तस्माच्छुचित्वान्मोदते दिति । सुखेन चेह रमते इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥५२

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! बहुत दिन पहले की बात है, सतयुग में पुष्कर नामक नगर में धनवर्धन नामक एक वैश्य निवास करता था, जो धन धान्यादि से परिपूर्ण था ।४२। हे राजेन्द्र ! (एक बार) ग्रीष्म ऋतु में वह अपने मित्र, बन्धु-बान्धव, पुत्र, भाई आदि के साथ वैश्वदेवादि का विधान सम्पन्न कर विविध प्रकार के भक्ष्य भोज्य पदार्थों का आहार कर रहा था कि बीच में ही अन्न शब्द हुआ जो उसे सुनाई पड़ा । हे कुरुवंश सिंह ! (धन वर्धन उस शब्द को सुनकर) उसी ओर दौड़ पड़ा ।४३-४४। अपने भोजन को छोड़कर जब तक वह घर से बाहर निकला तब तक वह शब्द तिरोहित हो गया, जिससे वह फिर अपने घर लौट आया ।४५। हे राजेन्द्र ! घर आकर उसने वही पात्र लेकर फिर आहार किया । हे महाबाहु उस शेष भोजन का ही भक्षण उसने किया ।४६। किन्तु भोजन करने के क्षण में ही वह सौ टुकड़ों में परिणत हो गया । हे राजेन्द्र ! इसलिए भोजन कभी भी बीच में व्यवधान करके नहीं करना चाहिये ।४७। इसीलिए कभी भी अधिक भोजन नहीं करना चाहिए और न जूठ मुँह रखकर कहीं जाना ही चाहिये । अत्यन्त ठूस ठूस कर भोजन करने से शरीर में रस की वृद्धि होती है, और रस से रोगों की उत्पत्ति होती है ।४८। हे भरतवर्य ! शरीर में रस की वृद्धि होने पर स्नान, दान, जप, हवन और देव-पितृ-पूजा मनुष्यों द्वारा नहीं हो पाती ।४९। अत्यन्त भोजन करना आरोग्य, आयुष्य और स्वर्ग इन सबको न देने वाला है । उससे पुण्य की भी हानि होती है एवं लोक में भी द्वेष बढ़ता है । इसलिए (मनुष्य को) अत्यन्त भोजन करने की प्रवृत्ति को छोड़ देनी चाहिये ।५०। इसी प्रकार हे राजन् ! उच्छिष्ट ब्राह्मण यक्ष, भूत, पिशाच राक्षसों का गम्य बन जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ।५१।

---

१. भक्ष्यपेयसमन्वितम् । २. भुञ्जानस्य । ३. गृहीत्वा । ४. भक्ष्यः ।

शतानीक उवाच

शुचितामियात्कथं विप्रः कथं चाशुचितामियात् । एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र कौतुकं परमं मम ।।५३

सुमन्तुरुवाच

उपस्पृश्य शुचिर्विप्रो भवते भरतर्षभ । विधिवत्कुरुशार्दूल भवेद्विधिपरो ह्यतः ।।५४

शतानीक उवाच

उपस्पर्शविधिं विप्र कथय त्वं ममाखिलम् । शुचित्वमाप्नुयाद्येन आचान्तो ब्राह्मणो द्विजः ।।५५

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र शृणु विप्रो यथा भवेत् । शुचिर्भरतशार्दूल विधिना येन वा विभो ।।५६
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा । उपविश्य शुचौ देशे बाहुं कृत्वा च दक्षिणम् ।।५७
जान्वन्तरे महाबाहो ब्रह्मसूत्रसमन्वितः[1] । सुसमौ चरणौ कृत्वा तथा बद्धशिखो नृप ।।५८
न तिष्ठन्न च संजल्पंस्तथा चानवलोकयन् । न त्वरन्कुपितो वापि त्यक्त्वा राजन्सुदूरतः ।।५९
प्रसन्नाभिस्तथाद्भिस्तु आचान्तः शुचितामियात् । नोष्णाभिर्न सफेनाभिर्युक्ताभिः कलुषेण च ।।६०
वर्णेन रसगन्धाभ्यां हीनाभिर्न च भारत । सबुद्बुदाभिश्च तथा नाचामेत्पण्डितो नृप ।।६१

अतएव शुद्धता को अपनाना चाहिए। शुद्धता से ही दिति प्रसन्न होती हैं। मनुष्य यहाँ पर भी सुखपूर्वक आनन्दित होता है। ऐसा वेदवाङ्मय में कहा गया है।५२

शतनीक ने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! ब्राह्मण कैसे पवित्रता को प्राप्त होता है कैसे अपवित्रता को प्राप्त होता है, यह मुझे बताइये, मेरे मन में महान् कौतूहल हो रहा है।५३

सुमन्तु ने कहा—हे भरतवंश में उत्पन्न होने वाले कुरुशार्दूल! ब्राह्मण उपस्पर्श करके पवित्र होता है तथा इसी से ही विधिपूर्वक विधिज्ञाता होता है।५४

शतनीक ने कहा—हे ब्राह्मण! तुम मुझे सारी उपस्पर्शविधि को बताओ। जिससे आचार्य ब्राह्मण एवं द्विज पवित्रता को प्राप्त करते हैं।५५

सुमन्तु ने कहा—हे भरतशार्दूल श्रेष्ठ राजेन्द्र! तुमने सही पूछा है। सुनो, जैसे अथवा जिस विधि से ब्राह्मण पवित्र हो जाता है।५६। अपने हाथ पैर को धोकर पूरब की ओर या उत्तर की ओर मुँह करके पवित्र स्थान पर बैठकर दाहिनी भुजा को दक्षिण की ओर करके, कन्धे पर यज्ञोपवीत (ब्रह्मसूत्र) को धारण करके अपने चरणों को समान करके शिखा को बाँध करके न तो बैठते हुए न तो बात करते हुए, न तो देखते हुए, न तो क्रुद्ध होकर, न तो दूर से किसी वस्तु का परित्याग कर अत्यन्त निर्मल एवं समुज्ज्वल जल से आचमन करके, हे महाबाहु राजन्! ब्राह्मण पवित्र हो जाता है। हे भरतवंशी राजन्! न तो गर्म, न तो फेनयुक्त, न तो कलुषित, न तो वर्ण एवं रसगन्ध से हीन तथा न तो बुद्बुद् करती हुई जलबिन्दुओं से पण्डित को आचमन करना चाहिए।५७-६१। हे सम्माननीय राजन्! ब्राह्मण के दाहिने

---

१. यज्ञसूत्रसमन्वितः।

पञ्चतीर्थानि विप्रस्य श्रूयन्ते दक्षिणे करे । देवतीर्थं पितृतीर्थं ब्रह्मतीर्थं च मानद ॥६२
प्राजापत्यं तथा चान्यत्तथान्यत्सौम्यमुच्यते । अङ्गुष्ठमूलोत्तरतो येयं रेखा महीपते ॥६३
ब्राह्मं तीर्थं वदन्त्येतद्वसिष्ठाद्या द्विजोत्तमाः । कायं कनिष्ठिकामूले अङ्गुल्यग्रे तु दैवतम् ॥६४
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पित्र्यं तीर्थमुदाहृतम् । करमध्ये स्थितं सौम्यं प्रशस्तं देवकर्मणि ॥६५
देवार्चाबलिहरणं प्रविक्षपणमेव च । एतानि देवतीर्थेन कुर्यात्कुरुकुलोद्वह ॥६६
अन्ननिर्वपणं राजंस्तथा स्पदनं[1] नृप । लाजाहोमं तथा सौम्यं प्राजापत्येन कारयेत् ॥६७
कमण्डलूपस्पर्शनं दधिप्राशनमेव च । सौम्यतीर्थेन राजेन्द्र सदा कुर्याद्विचक्षणः ॥६८
पितॄणां तर्पणं कार्यं पितृतीर्थेन धीमता । ब्राह्मेण चापि तीर्थेन सदोपस्पर्शनं परम् ॥६९
[2]घनाङ्गुलिकरं कृत्वा एकाग्रः सुमना द्विजः । त्रिः कृत्वा यः पिबेदापो[3] मुखशब्दविवर्जितः ॥७०
[4]शृणु यत्फलमाप्नोति प्रीणाति च यथा सुरान् । प्रथमं यत्पिबेदाप ऋग्वेदस्तेन तृप्यति ॥७१
यद्द्वितीयं यजुर्वेदस्तेन प्रीणाति भारत । यत्तृतीयं सामवेदस्तेन प्रीणाति भारत ॥७२
प्रथमं यन्मृजेदास्यं दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः । अथर्ववेदः प्रीणाति तेन राजन्नसंशयः ॥७३
इतिहासपुराणानि यद्द्वितीयं प्रमार्जति । यन्मूर्धानं हि राजेन्द्र अभिषिञ्चति वै द्विजः ॥७४

हाथ में पाँच तीर्थ सुने जाते हैं जिन्हें देवतीर्थ, पितृतीर्थ, ब्राह्मतीर्थ, प्रजापत्यतीर्थ तथा सौम्यतीर्थ कहा जाता है। अंगूठे के मूल भाग से जो रेखा प्रारम्भ होती है उसे वशिष्ठ आदि द्विजोत्तम ब्राह्मतीर्थ कहा करते हैं। कनिष्ठिका के मूल में (कायतीर्थ) प्राजापत्यतीर्थ एवं अंगुलियों के अग्रभाग में देवतीर्थ विद्यमान है।६२-६४। तर्जनी एवं अगूठे के मध्य का भाग पितृतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। देवकार्य में प्रशस्त सौम्यतीर्थ हाथ के मध्य में स्थित है।६५। हे कुरुकुल में उत्पन्न! देवता की अर्चना करना, बलि का हरण तथा उसका प्रक्षेपण करना इत्यादि कार्यों को देवतीर्थ से करना चाहिए।६६। अन्न का दान (भेंट करना) सञ्चय तथा लाजाहोम (लावे की आहुति) इत्यादि सौम्य कार्य प्राजापत्य तीर्थ से करना चाहिए।६७। हे राजेन्द्र! कमण्डलु का उपस्पर्श एवं दधि का सेवन विचक्षण व्यक्ति को सदैव सौम्यतीर्थ से करना चाहिए।६८। बुद्धिमान व्यक्ति के द्वारा पितरों का तर्पण (पिण्डदान आदि) पितृतीर्थ से करना चाहिए। श्रेष्ठ उपस्पर्श को सदैव ब्रह्मतीर्थ से करना चाहिए।६९। अंगुलियों को घना करके एकाग्र होकर सुन्दर मन से जो ब्राह्मण बिना मुख से शब्द किये हुए तीन बार जल को पीता है, वह जो फल प्राप्त करता है तथा जिस प्रकार देवताओं को प्रसन्न करता है, उसे सुनो। पहले जो जल पीता है उससे ऋग्वेद तृप्त होता है। हे भारत! दूसरी बार जो जल पीता है उससे यजुर्वेद तृप्त होता है, तीसरी बार जो जल पीता है उससे सामवेद प्रसन्न होता है।७०-७२। पहले पहल जो दाहिने हाथ के अंगूठे के मूलभाग से मुख को साफ करता है, हे राजन्! उससे निश्चित रूप से अथर्ववेद प्रसन्न हो जाता है।७३। जो दो बार मार्जन करता है। (कुशादि से जल छिड़कता है) उससे इतिहासपुराण प्रसन्न होते हैं। हे राजेन्द्र! जो ब्राह्मण अपने मस्तक का अभिषेक करता है, तथा अपनी

---

१. संचयनम्। युताङ्गुलिकरम्। ३. अपः ४. स सम्यक्फलमाप्नोति।

तेन प्रीणाति वै रुद्रं शिखामालभ्य वै ऋषीन् । यदक्षिणी चालभते रविः प्रीणाति तेन वै ॥७५
नासिकालम्भनाद्वायुं प्रीणात्येव न संशयः । यच्छ्रोत्रमालभेद्विप्रो दिशः प्रीणाति तेन वै ॥७६
यमं कुबेरं वरुणं वासवं चाग्निमेव च । यद्बाहुमन्वालभते एतान्प्रीणाति तेन[1] वै ॥७७
यन्नाभिमन्वालभते प्राणानां ग्रन्थिमेव च । तेन प्रीणाति राजेन्द्र इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥७८
अभिषिञ्चति यत्पादौ विष्णुं प्रीणाति तेन वै । यद्भूम्याच्छादकं वारि विसर्जयति मानद ॥७९
वासुकिप्रमुखान्नागांस्तेन प्रीणाति भारत । यद्बिन्दवोऽन्तरे भूमौ पतन्तीह नराधिप ॥८०
भूतग्रामं ततस्तत्तु प्रीणन्तीह चतुर्विधम् । अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या लभेत चाक्षिणी नृप ॥८१
अनामिकाङ्गुष्ठिकाभ्यां नासिकामालभेन्नृप । मध्यमाङ्गुष्ठाभ्यां मुखं संस्पृशेद्भरतर्षभ ॥८२
कनिष्ठिकाङ्गुष्ठकाभ्यां कर्णमालभते नृप[2] । अङ्गुलीभिस्तथा बाहुमङ्गुष्ठेन तु मङ्गलम् ॥८३
नाभिं कुरुकुलश्रेष्ठ शिरः सर्वाभिरेव[3] च । अङ्गुष्ठोऽग्निर्महाबाहो प्रोक्तो वायुः प्रदेशिनी ॥८४
अनामिका तथा सूर्यः कनिष्ठा माघवा विभो । प्रजापतिर्मध्यमा ज्ञेया तस्माद्भरतसत्तम ॥८५
एवमाचम्य विप्रस्तु प्रीणाति सततं जगत् । सर्वाश्च देवतास्तात लोकांश्चापि न संशयः ॥८६
तस्मात्पूज्यः सदा विप्रः सर्वदेवमयो हि सः । ब्राह्मेण विप्रतीर्थेन नित्यकालमुस्पृशेत् ॥८७

शिखा का स्पर्श करता है उससे रुद्र एवं ऋषिगण प्रसन्न हो जाते हैं। जो अपनी आँखों का स्पर्श करता है, उससे सूर्य देवता प्रसन्न हो जाते हैं।७४-७५। नासिका का स्पर्श करके वह निःसन्दिग्ध रूप से वायु को प्रसन्न कर देता है। जो ब्राह्मण अपने कान का स्पर्श करता है, उससे दिशायें प्रसन्न हो जाती हैं।७६। जो अपनी भुजाओं का स्पर्श करता है उससे यम, कुबेर, वसु, वरुण तथा अग्नि प्रसन्न हो जाते हैं।७७। जो प्राणों की ग्रन्थि एवं नाभि का स्पर्श करता है, उससे राजेन्द्र प्रसन्न हो जाते हैं, ऐसा वैदिक साहित्य से बोध होता है।७८। जो अपने पैरों का अभिषेक करता है उससे विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। हे सम्मान्य! जो पृथ्वी पर, चारों तरफ से ढक लेने वाले जल का विसर्जन करता है, उससे वासुकि प्रमुख सूर्य प्रसन्न हो जाते हैं। हे नरेश भारत! जिसके जल की बूँदें पृथ्वी के अन्तरतम में गिरती हैं, उससे चारों प्रकार के भूतग्राम प्रसन्न हो जाते हैं। हे राजन्! अँगूठे एवं अंगुली से आँख का स्पर्श करना चाहिए।७९-८१। हे राजन्! अनामिका एवं अँगूठे से नाक का स्पर्श करना चाहिए। हे भरतवंश में उत्पन्न! मध्यमा एवं अँगूठे से मुख का स्पर्श करना चाहिए।८२। हे राजन् कनिष्ठिका एवं अँगूठे से कान का स्पर्श करना चाहिए। अंगुली से हाथ का तथा अँगूठे से समूचे मण्डल का स्पर्श करना चाहिए।८३। नाभि एवं सिर का स्पर्श सभी अँगुलियों से करना चाहिए। हे कुरुकुल में श्रेष्ठ महाबाहु! अँगूठा अग्नि कहा गया है तथा तर्जनी वायु कही गयी है। हे श्रेष्ठ! अनामिका सूर्य कही गयी है तथा कनिष्ठा इन्द्र कही गयी है। हे भरतवंश में श्रेष्ठ! मध्यमा को प्रजापति कहा गया है।८४-८५। हे बन्धु! इस प्रकार आचमन करके ब्राह्मण समग्रलोक को, संसार को, देवताओं को निःसन्दिग्ध रूप से निरन्तर प्रसन्न करता है।८६। इसलिए सर्वदेवमय ब्राह्मण सदैव पूज्य हैं। ब्राह्म विप्ररूपी तीर्थ के द्वारा प्रतिदिन काल का उपस्पर्श करना चाहिए इस पैत्रिक शरीर एवं त्रैदेशिक

---

१. भारत। २. नरः। ३. सर्ववेदमयः।

कायत्रैदेशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन । हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः ।।८८
वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः । उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते बुधः ।।८९
सव्येन प्राचीनावीती निवीती कण्ठसंज्ञिते । मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ।।९०
अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवित् । उपवीत्याचमेन्नित्यमन्तर्जानु महीपते ।।९१
एवं तु विप्रो ह्याचान्तः शुचितां याति भारत । यास्त्वेताः करमध्ये तु रेखा विप्रस्य भारत ।।९२
गङ्गाद्याः सरितः सर्वा ज्ञेया भारतसत्तम । यान्यङ्गुलिषु पर्वाणि गिरयस्तानि विद्धि वै ।।९३
सर्वदेवमयो राजन्करो विप्रस्य दक्षिणः । हस्तोपस्पर्शनविधिस्तवाख्यातो महीपते ।।९४
एषु सर्वेषु लोकेषु येनाचान्तो दिवं व्रजेत् ।।९५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां
ब्राह्मे पर्वण्युपस्पर्शनविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३।

(मन) द्वारा कभी भी नहीं। हृदय के गीतों (स्तोत्रों) द्वारा ब्राह्मण पवित्र (सन्तुष्ट) होते हैं। कण्ठ में विद्यमान गीतों (स्तोत्रों) द्वारा राजा पवित्र (सन्तुष्ट) होता है ।८७-८८। वैश्य जल से पवित्र होता है तथा अन्त में स्पष्ट मुक्त जल से शूद्र पवित्र होता है। दक्षिण (दाहिने) हाथ के उद्धृत होने पर (उठने पर) विद्वान् लोग उपवीती की स्थिति बताते हैं ।८९। सव्य होने पर प्राचीनावीती और कण्ठ में लटकते रहने पर निवीती कहते हैं। मेखला, चर्म, दण्ड, उपवीत और कमण्डलु—इनमें से किसी के नष्ट होने पर मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल प्राशन करने से पवित्रता प्राप्त होती है। हे राजन् ! यज्ञोपवीत को बाएँ कन्धे पर रखकर दाहिने हाथ को दोनों जानुओं के मध्य भाग में रखकर आचमन करने वाला ब्राह्मण पवित्रता को प्राप्त होता है। हे भरतवंश सिंह ! ये ब्राह्मण के हाथ में जो रेखाएँ दिखाई पड़ती हैं, उन्हें गङ्गा आदि पुण्य सलिला नदियाँ जानना चाहिये। उनकी अँगुलियों में पोर दिखाई पड़ते हैं उन्हें पुण्य पर्वत जानना चाहिये ।९०-९३। हे राजन् ! इस प्रकार ब्राह्मण का दाहिना हाथ सर्वदेवमय कहा है। हे महीपति ! हाथ से आचमन करने की विधि तुम्हें बतला चुका ।९४। इस प्रकार विधिपूर्वक आचमन करके इस सभी लोकों में निवास करने वाला स्वर्ग प्राप्त करता है ।९५

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में आचमनविधि
नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रणवार्थसावित्रीमाहात्म्योपनयनविधिवर्णनञ्च

सुमन्तुरुवाच

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते । राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य त्र्यधिके ततः ।।१
अमन्त्रिका सदा कार्या स्त्रीणां चूडा महीपते । संस्कारहेतोः कायस्य यथाकालं विभागशः ।।२
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो नैगमः स्मृतः । निवसेद्वा गुरोर्वापि गृहे वाग्निपरिक्रिया ।।३
एष ते कथितो राजन्नौपनायनिको विधिः । द्विजातीनां महाबाहो उत्पत्तिव्यञ्जकः परः ।।४
कर्मयोगमिदानीं ते कथयामि महाबल । उपनीय गुरुः शिष्यं प्रथमं शौचमादिशेत् ।।५
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च । अध्यापयेत्तु सच्छिष्यान्सदाचान्त उदङ्मुखः ।।६
ब्रह्माञ्जलिकरो नित्यमध्याप्यो विजितेन्द्रियः । लघुवासास्तथैकाग्रः सुमना सुप्रतिष्ठितः ।।७
ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ पूज्यौ गुरोः सदा । संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ।।८
व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसङ्ग्रहणं गुरोः । सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः ।।९

अध्याय ४

प्रणव के अर्थ, सावित्री के माहात्म्य तथा उपनयन की विधि का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! । ब्राह्मण का केशान्त संस्कार सोलहवें वर्ष में किया जाता है । क्षत्रियों का बाईसवें और वैश्य का तेईसवें वर्ष में करने का विधान है ।१। हे महीपति ! स्त्रियों का चूड़ा संस्कार सर्वदा मंत्र रहित करना चाहिये । शरीर की रक्षा के लिए उसके संस्कारों का कालक्रमानुसार विभाग किया गया है ।२। स्त्रियों का केवल वैवाहिक संस्कार वेदानुमित कहा जाता है । उक्त उपनयन संस्कार के पूर्व (ब्रह्मचारी) गुरु के घर पर निवास करे अथवा अपने ही घर पर अग्न्याधान करता रहे ।३। हे राजन्! ब्राह्मणादि के उपनयन संस्कार को मैं बतला चुका । हे महाबाहु ! यह (उपनयन संस्कार) द्विजातियों के लिए भावी उत्पत्ति का व्यंजक है ।४। हे महाबल ! अब मैं कर्मयोग के बारे में तुमसे बतला रहा हूँ । सर्वप्रथम गुरु शिष्य का उपनयन संस्कार करके शौच का आदेश करे ।५। फिर आचमन अग्नि कार्य और सन्ध्योपासन का उपदेश करे । आचार्य सर्वदा उत्तराभिमुख हो आचमन करके योग्य शिष्यों को पढ़ाये ।६। शिष्य सर्वथा अपनी इन्द्रियों को वश में रख ब्रह्माञ्जलि बाँधकर अध्ययन करे । लघु वस्त्र धारण करे । एकाग्रचित्त रहे । मन प्रसन्न रखे ।७। दृढ़ रखे । वेदाध्ययन के प्रारम्भ और समाप्ति पर सर्वदा गुरु के दोनों चरणों की पूजा करनी चाहिये । दोनों हाथों को जोड़कर रखना चाहिये । यही ब्रह्माञ्जलि कही जाती है ।८

शिष्य अपने हाथों को गुरु के चरणों (व्यत्यस्त) का पाणि से स्पर्श करना चाहिये अर्थात् उस समय अपने दाहिने हाथ से गुरु के दाहिने चरण का तथा बाएँ हाथ से बाएँ चरण का स्पर्श करना

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः । अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति वारयेत् ॥१०
ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा । स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ॥११
श्रूयतां चापि राजेन्द्र यथोङ्कारं द्विजोऽर्हति । प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ॥१२
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्ततस्त्वोङ्कारमर्हति । ॐकारलक्षणं चापि शृणुष्व कुरुनन्दन ॥१३
अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः । वेदत्रयात्तु निर्गृह्य भूर्भुवः स्वरितीति च ॥१४
त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादंपादमदूदुहत् । तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥१५
एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् । सन्ध्ययोरुभयोर्विप्रो वेद पुण्येन युज्यते ॥१६
सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः । महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥१७
एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया । विप्रक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥१८
शृणुष्वैकमनाराजन्परमं ब्रह्मणो मुखम् । ॐकारपूर्विकास्तिस्रोमहाव्याहृतयोऽव्ययाः ॥१९
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेया ब्रह्मणो मुखम् । योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ॥२०

चाहिये ।९। सर्वदा पढ़ाते समय गुरु निरालस भाव से शिष्य को यह आज्ञा करे कि अब पाठ प्रारम्भ करो। और इसी प्रकार पाठ समाप्ति पर 'अब बन्द करो' ऐसी आज्ञा दे ।१०।

ओंकार का स्वरूप—वेदाध्ययन करते समय आरम्भ और समाप्ति पर सदा प्रणव का उच्चारण करे । क्योंकि वेदाध्ययन के पूर्व ओंकार का उच्चारण न करने से पाठ व्यर्थ हो जाता है । और समाप्ति पर न करने से सारा पाठ विशीर्ण हो जाता है ।११। हे राजेन्द्र !' सुनो, मैं बतला रहा हूँ कि ब्राह्मण को इस प्रणवोच्चारण करने की क्यों आवश्यकता होती है ? सुन्दर सरोवर अथवा नदी आदि के तट पर आसीन होकर भाव पूर्वक केवल तीन प्राणायाम करने से वह पवित्र हो जाता है, यही कारण है कि ब्राह्मण के लिए इसकी विशेष महत्ता है । हे कुरुनन्दन ! इस ओंकार के लक्षण को भी बतला रहा हूँ, सुनिये ।१२-१३। (इस ओंकार के) अकार, उकार तथा मकार प्रजापति ने तीनों वेदों से तथा भूः, भुवः और स्वः को ग्रहण कर इन तीनों वेदों से ही इनके एक एक पादों का दोहन किया है । इस सावत्री की ये तीनों ऋचाएँ हैं । इन उपर्युक्त तीनों अक्षरों को व्याहृतिपूर्वक दोनों सन्ध्याओं के अवसर पर जप करने वाला ब्राह्मण वेदाध्ययन का पुण्य प्राप्त करता है ।१४-१६। एकान्त में बाहर जाकर इस त्रिक् अर्थात् व्याहृति पूर्वक प्रणव का एक सहस्र बार जप करने वाला ब्राह्मण एक मास में घोर से घोर पाप से भी उसी प्रकार छूट जाता है जैसे सर्प अपने पुराने चर्म से ।१७। इस ऋचा से तथा अपनी क्रिया से विहीन होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य सत्पुरुषों में निन्दा के पात्र बनते हैं ।१८। हे राजन् ! आप एकाग्र मन से इसे फिर से सुन लीजिये कि ओंकारपूर्वक ये तीनों अक्षय महाव्याहृतियाँ ब्रह्मा का परमोत्तममुख हैं । [1]तीनों चरणों वाली सावित्री को ब्रह्मा का मुख समझना चाहिये । जो ब्राह्मण निरालस भाव से तीन वर्षों तक प्रतिदिन इसका अध्ययन करता है वह आकाश की भाँति व्यापक मूर्तिमान् वायु का स्वरूप धारण कर परम ब्रह्म में

---

१. ओऽम् भूर्भूवः स्वः प्रथम पाद, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि द्वितीय पाद तथा धियो योनः प्रचोदयात् तृतीय पाद है ।

स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् । एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तप ।।२१
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते । तपः क्रिया होमक्रिया तथा दानक्रिया नृप ।।२२
अक्षयान्ताः सदा राजन्यथाह भगवान्मनुः । अवरं त्वक्षरं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ।।२३
विधियज्ञात्सदा राजञ्जपयज्ञो विशिष्यते । नानाविधैर्गुणोद्देशैः सूक्ष्माख्यातैर्नृपोत्तम ।।२४
उपांशुः स्याल्लक्षगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः । ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञेन चान्विताः ।।२५
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् । जपादेव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ।।२६
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते । पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ।।२७
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् । दिनस्यादौ भवेत्पूर्वा शर्वर्यादौ तथा परा ।।२८
सनक्षत्रा परा ज्ञेया अपरा सदिवाकरा । जपंस्तिष्ठन्परां सन्ध्यां नैशमेनो व्यपोहति ।।२९
अपरां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् । नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते पश्चिमां नृप ।।३०
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः । अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ।।३१

विलीन हो जाता है । एकाक्षर (ओंकार साक्षात्) पर ब्रह्म स्वरूप है । प्राणायाम सभी तपों में बढ़कर है ।१९-२१। सावित्री से बढ़कर माहात्म्य किसी का नहीं है, मौन की अपेक्षा सत्यभाषण की विशेषता है । हे राजन् ! जैसा कि भगवान् मनु ने कहा, तपस्या, हवन एवं दान—ये सारी प्रणय क्रियाएँ सर्वदा अक्षय फलदायिनी होती हैं । इनके अतिरिक्त एकाक्षर प्रणव भी अक्षय फलदायी है, इसे साक्षात् प्रजापति ब्रह्मा का स्वरूप जानना चाहिये ।२२-२३। हे राजन् ! हे नृपोत्तम विधानपूर्वक किये जाने वाले यज्ञ की अपेक्षा जप यज्ञ की विशेषता मानी जाती है । विविध प्रकार के गुणों एवं नामोच्चारण और सूक्ष्म से जप का कार्य उच्चारण के कारण उपांसु[1] जप का लाख गुना फल होता है, मानसिक जप का सहस्र गुणित फल स्मरण किया जाता है । जो विधि यज्ञों से समन्वित चारों पाक[2] यज्ञ हैं, वे सभी जपयज्ञ की सोलहवीं कला की भी योग्यता नहीं रखते । ब्राह्मण को जप से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है—इसमें सन्देह नहीं ।२४-२६। कुछ दूसरा कार्य करे अथवा न करे पर वह ब्राह्मण कहलाता है क्योंकि वह जप यज्ञ करता है । प्रातःकाल सूर्य के दर्शन होने तक खड़े-खड़े गायत्री का जप करना चाहिये और उसे इसी प्रकार सायंकाल की सन्ध्या को भी भली-भाँति नक्षत्रों के आकाश में समुदित हो जाने तक बैठकर करना चाहिए । दिन के प्रारम्भ में पूर्व सन्ध्या और रात्रि के प्रारम्भ में पर सन्ध्या होती है । पर अर्थात् सायंकाल की सन्ध्या सनक्षत्रा और पूर्व अर्थात् प्रातःकाल की सन्ध्या सदिवाकरा जाननी चाहिए। परासन्ध्या का जप करने से रात्रि का तथा अपरा का जप करने से दिन का पापकर्म नष्ट होता है। हे नृप ! जो ब्राह्मण इन पूर्वा और परा सन्ध्याओं की उपासना नहीं करता वह द्विजाति के सभी अधिकारों से शूद्र के समान बाहर कर देने योग्य है । इसकी उपासना जलाशय के समीप संयमपूर्वक नित्यविधि के साथ करनी

---

१. बहुत धीरे-धीरे इस प्रकार जप करना, जिसमें कोई दूसरा न सुन सके और प्रत्येक अक्षर का स्पष्ट उच्चारण भी हो । अर्थात् अपने ही सुनने योग्य ।

२. दर्शपूर्णमासचारदि ।

सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः । वेदोपकरणे राजन्स्वाध्याये चैव नैत्यके ॥३२
नात्र दोषोस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु वा विभो । नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् ॥३३
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् । ऋगेकां यस्त्वधीयीत विधिना नियतो द्विजः ॥३४
तस्य नित्यं क्षरत्येषा पयो मेध्यं घृतं मधु । अग्निशुश्रूषणं भैक्षमधः शय्यां गुरोर्हितम् ॥३५
आसमावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः । आचार्यपुत्रशुश्रूषां ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ॥३६
आप्तः शक्तोऽन्नदः साधुः स्वाध्याप्या दश धर्मतः । नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ॥३७
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् । अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ॥३८
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वा निगच्छति । धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा चापि तद्विधा ॥
न तत्र विद्या वप्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥३९
विद्ययैव समं कामं मर्तव्यं ब्रह्मवादिना । आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामीरिणे वपेत् ॥४०
विद्या ब्राह्मणमित्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम् । असूयकाय मा प्रादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥४१
शेवं सुखमुशन्तीह केचिज्ज्ञानं प्रचक्षते । तौ धारयति वै यस्माच्छेवधिस्तेन सोच्यते ॥४२

चाहिए ।२७-३१। अथवा अरण्य में जाकर समाहित चित्त हो इसका अध्ययन (जप) करना चाहिए । हे राजन् ! वेदोक्त नैत्यिक स्वाध्याय एवं हवन के मन्त्रों में अनध्याय का दोष नहीं लगता, क्योंकि ये सब ब्रह्मसूत्र कहे जाते हैं ।३२-३३। ब्रह्म अर्थात् वेदमन्त्रों का उच्चारण करना, मन्त्रोच्चारण पूर्वक आहुति देना, अनध्याय का विचार कर अध्ययन करना तथा वषट्कार करना पुण्य है । जो ब्राह्मण नियमपूर्वक सविधि एवं ऋचा का भी अध्ययन करता है, उसे वह (ऋचा) पवित्र दूध, घृत, मधु देती है। अग्नि की शुश्रूषा, भिक्षाटन, भूमिशयन, गुरु का हित (इन सब कर्तव्यों का पालन) उपनयन संस्कार से संस्कृत द्विज समावर्तन संस्कार पर्यन्त करे । आचार्य पुत्र, सेवक, ज्ञानदाता, धार्मिक, पवित्र यथार्थवक्ता, समर्थ, अन्नदाता, साधु प्रकृति वाले इन दशों को धर्मपूर्वक पढ़ाना चाहिए । बिना पूछे किसी से कुछ न बोले और न अन्यायपूर्वक पूछे जाने पर ही बोले ।३४-३७

(अन्याय का जहाँ सम्बन्ध हो) उसे जानता हुआ भी मेधावी जड़ बनकर चुप रह जाय क्योंकि जो अधर्म से बोलता है अथवा जो अधर्मपूर्वक किसी से (कुछ कहलाने के लिए) पूछता है, उन दोनों में से एक मर जाता है अथवा (लोगों के साथ) शत्रुता को प्राप्त करता है । जिस शिष्य को पढ़ाने से धर्म अथवा अर्थ की प्राप्ति न हो और यथोचित शुश्रूषा भी न मिले, वहाँ पर ऊसर भूमि में अच्छे बीज की तरह विद्या को नहीं बोना चाहिये ।३८-३९। ब्रह्मवेत्ता को विद्या ही के साथ भले मर जाना पड़े, किन्तु कठिन से भी कठिन आपत्ति आने पर भी वह अपात्र में विद्या को न बोये ।४०। विद्या ने ब्राह्मण के समीप आकर कहा कि तुम मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी निधि हूँ मुझे एसे व्यक्ति को न देना, जो गुणों में भी दोष दिखलाता है । यदि तुम ऐसा करोगे तो मैं तुम्हारे लिए परम बलवती सिद्ध होऊँगी ।४१। कुछ लोग शेष शब्द का अर्थ सुख बतलाते हैं और कुछ ज्ञान बतलाते हैं, इन दोनों को यतः वह धारण करती है, अतः शेवधि नाम से उसकी प्रसिद्धि है ।४२। (विद्या ने आगे चलकर ब्राह्मण से कहा कि) तुम जिस ब्रह्मचारी को नियमनिष्ठ एवं पवित्र भावों तथा आचरण वाला समझना उसी परम सावधान चेता एवं निधि की यथार्थ रक्षा करने

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं ब्रह्मचारिणम् । तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ।।४३
ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् ।।४४
लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च । स याति नरकं घोरं रौरवं भीमदर्शनम् ।।४५
अणुमात्रात्मकं देहं षोडशार्धमितं स्मृतम् । आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ।।४६
सावित्रीसारमात्रोऽपि वरो विप्रः सुयन्त्रितः । नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ।।४७
शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् । शय्यासनस्थश्चैवेनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ।।४८
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आगते । प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ।।४९
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो बलम् ।।५०
अभिवादपरो विप्रो ज्यायांसमभिवादयेत् । असौ. नामाहमस्मीति स्वनाम परिकीर्तयेत् ।।५१
नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते । तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ।।५२
भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने । नाम्नः स्वरूपभावो हि भो भाव ऋषिभिः स्मृतः ।।५३
आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने । अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ।।५४

वाले ब्राह्मण को ही मुझे सौंपना ।४३। जो वेद का अध्ययन करते हुए, बिना उसकी आज्ञा से वेद-ज्ञान अथवा लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता है, वह भयंकर रौरव नरक को जाता है ।४४-४५। अणुमात्रात्मक देह (सूक्ष्म शरीर) को आठ तत्वों से निर्मित कहा गया है। जिससे ज्ञान प्राप्त करे उसका पहले (उठकर) अभिवादन करना चाहिए ।४६। केवल सावित्री का ज्ञान रखने वाला भी संयमी ब्राह्मण जो अनियन्त्रितचित्त, सर्वभक्षी तथा सर्वविक्रमी है उस त्रिवेदज्ञ ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ है ।४७

शय्या एवं आसन पर गुरु के सामने बैठकर अध्ययनादि कार्य करने वाला कल्याणभाजन नहीं होता। यदि शय्या पर स्थित भी हो तो गुरु के आने पर उठकर अभिवादन करे ।४८। वृद्धों अर्थात् गुरुजनों के सामने आने पर युवकों के प्राण ऊपर की ओर खिंच उठते हैं अर्थात् बाहर निकल जाना चाहता है और अभिवादन करने से वह उनको पुनः प्राप्त करता है ।४९। सर्वदा वृद्धों अर्थात् गुरुजनों की सेवा में निरत रहने वाला तथा उन्हें अभिवादन करने वाले की आयु, बुद्धि, यश और बल इन चार वस्तुओं की अभिवृद्धि होती है ।५०। अपने से बड़े लोगों को प्रणाम करने से पूर्व 'असौ नाम अहमस्मि' मैं अमुक नामक व्यक्ति हूँ—इस प्रकार अपना परिचय देते हुए अभिवादन करे ।५१। जो लोग अज्ञानता के कारण उपर्युक्त नामोच्चारणपूर्वक अभिवादन करने के अर्थ को न समझते हो उन्हें 'मैं हूँ' ऐसा स्पष्ट कहते हुए अभिवादन करें। सभी स्त्रियों में भी ऐसा ही व्यवहार करें ।५२। अपने नाम का उच्चारण कर प्रणाम करते समय अन्त में 'भोः' अर्थात् अभिवादन में "असौ नाम अहमस्मि भोः' शब्द का उच्चारण करना चाहिए। नाम का स्वरूप ही भोः शब्द का स्वरूप है—ऐसा ऋषियों ने बतलाया है ।५३। अभिवादन करने पर ब्राह्मण को हे सौम्य ! दीघार्यु हो, ऐसा आशीर्वाद देना चाहिए। उसके नाम के अन्त में अकार का उच्चारण करना चाहिए। नाम का पूर्वाक्षर प्लुत अर्थात् त्रिमात्रिक उच्चारित होना चाहिए ।५४।

यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ।।५५
अभिवादे कृते यस्तु न करोत्यभिवादनम् । आशीर्वा कुरुशार्दूल स याति नरकं ध्रुवम् ।।५६
अभीति भगवान्विष्णुर्वादयामीति शङ्करः । द्वावेव पूजितौ तेन यः करोत्यभिवादनम् ।।५७
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् । वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव तु ।।५८
न वाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् । भो भवत्पूर्वकत्वेन इति स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।५९
परपत्नी तु या राजन्नसम्बद्धा तु योनितः । वक्तव्या भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च ।।६०
पितृव्यान्मातुलान्राजञ्छ्वशुरानृत्विजो गुरून् । असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय जघन्यजः ।।६१
मातृष्वसा[१] मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा । सम्पूज्या गुरुपत्नी च समास्ता गुरुभार्यया ।।६२
ज्येष्ठस्य भ्रातुर्या भार्या सवर्णाहन्यहन्यपि । [२]पूजयन्प्रयतो विप्रो याति विष्णुसदो नृप ।।६३
प्रवासादेत्य सम्पूज्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः । पितुर्या भगिनी राजन्मातुश्चापि विशाम्पते ।।६४

जो ब्राह्मण अभिवादन करने पर प्रत्यभिवादन (अभिवादन का उत्तर) करना नहीं जानता, उसका अभिवादन विद्वान् पुरुष न करें, क्योंकि जैसे एक शूद्र है, वैसा ही वह भी है ।५५

जो ब्राह्मण किसी के अभिवादन करने पर प्रत्यभिवादन नहीं करता, अथवा आशीर्वाद नहीं देता, हे कुरुवंश शार्दूल ! वह निश्चय ही नरकगामी होता है ।५६। अभिवादयामि (आपको प्रणाम कर रहा हूँ) इस वाक्य में 'अभि' इस शब्द से भगवान् विष्णु और 'वादयामि' इस शब्द से शंकर—ये दोनों देवता उसमें पूजित हो जाते हैं, जो अभिवादन करता है ।५७

ब्राह्मण को अभिवादन करने पर 'कुशल' शब्द कहकर वार्ता पूछनी चाहिये । क्षत्रियों 'अनामय' (स्वस्थ) कहकर वार्ता पूछनी चाहिए । वैश्य का क्षेम (धन का संरक्षण, और परायेधन का अपहरण न करना) कुशल और शूद्र का आरोग्य पूछना चाहिये ।५८। अपने से छोटा भी हो यदि वह दीक्षित हो चुका है तो उसे नाम लेकर नहीं पुकारना चाहिये, प्रत्युत उसे पुकारते समय आदर व्यक्त करने के लिए भो अथवा भवत् (आप) शब्द का प्रयोग करना चाहिये । ऐसा स्वायम्भुव मनु ने बतलाया है ।५९। हे राजन् ! परकीय स्त्री के साथ जिसका अपने साथ यौन सम्बन्ध नहीं है, बातचीत करते समय 'भवती' (श्रीमती) सुभगे अथवा भगिनि (ऐसे) शब्दों का उच्चारण करना चाहिये ।६०। हे राजन् ! अपने चाचा, मामा, श्वसुर, पुरोहित एवं गुरुजनों को उठकर 'असौ अहम्' (मैं यह हूँ) ऐसा सादर निवेदन करते हुए प्रणाम करे, क्योंकि उनके सामने वह स्वयं छोटा है ।६१। मौसी, मामी, सास, फूआ और गुरु पत्नी ये सभी गुरु पत्नी के ही समान पूज्य हैं ।६२। हे राजन् ! सवर्ण ज्येष्ठ भाई की जो स्त्री हो उसकी प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये । नियतेन्द्रिय होकर इस प्रकार का आचरण करने वाला ब्राह्मण विष्णुलोक को प्राप्त करता है ।६३। परदेश से लौटकर अपनी जाति बिरादरी की स्त्रियों की भी सादर पूजा करनी चाहिये । हे राजन् ! हे भरत कुल श्रेष्ठ ! कुरुकुलनन्दन !

---

१. माता मातृष्वसा चैव । २. पुरुषोत्तम ।

आत्मनो भगिनी या च ज्येष्ठा कुरुकुलोद्वह । सदा स्वमातृवद्वृत्तिमातिष्ठेद्भरतोत्तम ॥६५
गरीयसी ततस्ताभ्यो माता ज्ञेया नराधिप । पुत्रमित्रभागिनेया द्रष्टव्या ह्यात्मना समाः ॥६६
दशाब्दाख्यं पौरसंख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम् । अब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥६७
ब्राह्मणं दशवर्षं च शतवर्षं च भूमिपम् । पितापुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ॥६८
इत्येवं क्षत्रियपिता वैश्यस्यापि पितामहः । प्रपितामहश्च शूद्रस्य प्रोक्तो विप्रो मनीषिभिः ॥६९
वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी । एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥७०
पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च । यस्य स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः ॥७१
चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः[1] स्त्रियाः । स्नातकस्य तु राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥७२
एषां समागमे तात पूज्यौ स्नातकपार्थिवौ । आभ्यां समागमे राजन्स्नातको नृपमानभाक् ॥७३
अध्यापयेद्यस्तु शिष्यं कृत्वोपनयनं द्विजः । सरहस्यं सकल्पं च वेदं भरतसत्तम ॥

अपने पिता की बहिन, माता की बहिम, अपनी बड़ी बहिन, इन सबके साथ सर्वदा माता के समान व्यवहार करना चाहिये ।६४-६५। इन सबों से माता अधिक श्रेष्ठ है—ऐसा विचार भी रखना चाहिये । हे नराधिप, अपने पुत्र, मित्र तथा भांजे को सर्वदा अपने ही समान देखना चाहिये ।६६। एक ग्राम में निवास करने वाले के साथ दस वर्ष में मित्रता कही जाती है । कलाकारों अर्थात् कला से जीविका उपार्जित करने वालों के साथ पाँच वर्ष में मित्रता कही जाती है, श्रोत्रियों के साथ तीन वर्ष में मित्रता होती है, किन्तु अपने कुल अथवा परिवारादि के सम्बन्ध में बहुत स्वल्प काल (दो वर्ष) में ही मित्रता सम्पन्न होती है ।६७। दस वर्ष की अवस्था का ब्राह्मण सौ वर्ष की अवस्था का क्षत्रिय इन दोनों को परस्पर पिता पुत्र की भाँति जानना चाहिये । इन दोनों में ब्राह्मण पिता है । और इस प्रकार वह दस वर्षीय ब्राह्मण क्षत्रिय का तो पिता है, वैश्य का पितामह और शूद्र का प्रपितामह है, मनीषियों ने इस विषय में ऐसा ही निर्णय दिया है ।६८-६९। धन, बन्धु, अवस्था, कर्म और विद्या—ये पाँच माननीय होने के कारण होते हैं, (अर्थात् सम्मान के यही कारण हैं) इनमें एक की अपेक्षा दूसरा, दूसरे की अपेक्षा तीसरा, अर्थात् उत्तरोत्तर एक दूसरे से अधिक श्रेष्ठ हैं ।७०। तीनों उच्च जातियों में ये पाँचों गुण जिनमें अधिक मात्रा में हों, वही सम्मान का पात्र होता है, शूद्र भी यदि अपनी दसवीं अवस्था पर है, अर्थात् बहुत वृद्ध हो चुका है, तो वह भी सम्माननीय है ।७१। रथ चलाने वाले अतिवृद्ध रोगी, भारवाहक, स्त्री, स्नातक और राजा एवं (विवाह करने के लिए जाते हुए) वर इनके जाने के लिए मार्ग छोड़ देना चाहिये ।७२। हे राजन् ! उन सबों के एकत्र समागम होने पर स्नातक और राजा—ये दो पूजा के योग्य हैं । इन दोनों के साथ समागम में स्नातक राजा से भी सम्मान का अधिकारी है (अर्थात् वही सर्वप्रथम पूज्य है) ।७३

जो ब्राह्मण उपनयन संस्कार सम्पन्न कर शिष्य को सरहस्य तथा कल्प समेत वेद का अध्यापन

---

१. भाविनः ।

तमाचार्यं महाबाहो प्रवदन्ति मनीषिणः ॥७४
एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः । योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥७५
निषेकादीनि कार्याणि यः करोति नृपोत्तम । अध्यापयति चान्येन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥७६
अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् । यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥७७
य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ । स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कथञ्चन[1] ॥७८
उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता । सहस्रेण पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥७९
उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता । ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥८०
कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः । सम्भूतिं तस्य तां विद्याद्योनावभिजायते ॥८१
आचार्यस्तस्य तां जातिं विधिवद्वेदपारगः । उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजरामरा ॥८२
उपाध्यायप्रभृतिः कृत्वा ये पूज्याः कथितास्तव । महागुरुर्महाबाहो सर्वेषामधिकः स्मृतः ॥८३

कराता है, हे महाबाहु ! मनीषी पण्डित लोग उसे 'आचार्य' कहते हैं ।७४

वेद की कोई शाखा, अथवा वेदाङ्गों को जो अपनी जीविका निर्वाह के लिए अध्यापन करता है, वह 'उपाध्याय' कहा जाता है ।७५

हे नृपोत्तम ! जो गर्भाधानादि संस्कार कर्म करता है, और अन्नादि से पालन करते हुए विद्याध्ययन कराता है, वह ब्राह्मण 'गुरु' कहा जाता है ।७६। अग्न्याधान पाकयज्ञादि तथा अग्निष्टोम प्रभृति यज्ञों को वरण लेकर जो सम्पन्न करता है, वह इस लोक में 'ऋत्विक्' कहा जाता है ।७७। जो शुद्धस्वरादि को उच्चारणपूर्वक दोनों कानों को भरता है (अर्थात् सिखाता है) उसी को माता और पिता अर्थात् अध्यापक जानना चाहिये, उनके साथ कभी द्रोह भावना नहीं रखनी चाहिये ।७८। उपाध्याय से दस गुना अधिक सम्मान एवं प्रतिष्ठा आचार्य की है, आचार्य से सौ गुना अधिक सम्मान पिता है। पिता की अपेक्षा सहस्र गुणित अधिक सम्मान माता का है ।७९। उत्पन्न करने वाले और वेद ज्ञान प्रदान करने वाले इन दोनों में ब्रह्मज्ञान प्रदान करने वाला ही पिता और श्रेष्ठ है, क्योंकि ब्राह्मण के लिए ब्रह्म अर्थात् वेद जानने के लिए जन्म अर्थात् उपनयन संस्कार ही इह लोक परलोक—दोनों में शाश्वत कल्याण देने वाला है ।८०। माता और पिता तो परस्पर कामना से उसकी उत्पत्ति करते हैं। जिसके द्वारा वह माता के गर्भ में आकर स्वरूप धारण करता है ।८१। विधिवत् वेदों का पारगामी आचार्य उसको ही सावित्री का दान करके जो जाति जन्म देता है वह सत्य अजर एवं अमर है ।८२। महाबाहो ! ऊपर मैंने जिन उपाध्याय आदि पूज्य वर्गों की चर्चा की है, उन सबों में महागुरु श्रेष्ठ कहा जाता है ।८३। एक लाख अधिक गुण वाले

---

१. कदाचन ।

सहस्रशतसंख्योऽसावाचार्याणामिदं मतम् । चतुर्णामपि वर्णानां स महागुरुरुच्यते ॥८४

शतानीक उवाच

य एते भवता प्रोक्ता उपाध्यायमुखा द्विजाः । विदिता एव मे सर्वे न महागुरुरेव हि ॥८५

सुमन्तुरुवाच

जयोपजीवी यो विप्रः स महागुरुरुच्यते । अष्टादशपुराणानि रामस्य चरितं तथा ॥८६
विष्णुधर्मादयो धर्माः शिवधर्माश्च भारत । कार्ष्णं वेदं पञ्चमं तु यन्महाभारतं स्मृतम् ॥८७
श्रौता[1] धर्माश्च राजेन्द्र नारदोक्ता महीपते । जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥८८
एवं विप्रकदम्बस्य धारकः[2] प्रवरः स्मृतः । यस्त्वेतानि समस्तानि पुराणानीह विन्दति ॥८९
भारतं च महाबाहो स सर्वज्ञो मतो नृणाम् । तस्मात्स पूज्यो राजेन्द्र वर्णैर्विप्रादिभिः सदा ॥९०
किं त्वया न श्रुतं वाक्यं यदाह भगवान्विभुः । अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः ॥
तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया[3] ॥९१
ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता । बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः[4] ॥९२
अध्यापयामास पितृञ्छिशुराङ्गिरसः कविः । पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥९३
ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः । देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यं वै शिशुरुक्तवान् ॥९४

हैं—ऐसा आचार्यों का मत है। वह महागुरु चारों वर्णों में कहा जाता है।८४

शतानीक बोले—आपने उपाध्याय प्रभृति जिन ब्राह्मणों की अभी चर्चा की है, उन सबको तो मैं जानता हूँ किन्तु महागुरु को नहीं जानता।८५

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! जो ब्राह्मण 'जय' से जीविका उपार्जित करने वाला है। वही महागुरु कहा जाता है। (अब सुनिये कि जय का क्या तात्पर्य है) अठारहों पुराण, भगवान् रामचन्द्र के पुण्य चरित, विष्णु तथा शिव सम्प्रदाय के धर्म, कृष्ण द्वैपायन का पाँचवा वेद, जिसे लोग महाभारत भी कहते हैं, हे राजेन्द्र ! नारद के कहे गये श्रौत धर्म—इन सबों को पण्डित लोग जय नाम बतलाते हैं।८६-८८। जो इन समस्त पुराणादि एवं महाभारत को भलीभाँति अधिगत कर लेता है, वह ब्राह्मण समुदाय का धारक (अध्यक्ष) नेता एवं श्रेष्ठ जन कहा जाता है। हे महाबाहु ! मनुष्यों में वह सर्वज्ञ समझा जाता है। हे राजेन्द्र ! यही कारण है कि वह विप्रादि वर्णों द्वारा सर्वदा पूजनीय है।८९-९०

क्या तुमने वह बात नहीं सुनी है, जिसे परमैश्वर्यशाली भगवान् ने स्वयं कही है। थोड़ा या बहुत, वेद ज्ञान के बारे में जो कोई उपकार करता है, उसे भी इस वेद ज्ञान के सहायक होने के नाते इस लोक में गुरु जानना चाहिये।९१। ब्रह्मज्ञान के विषय में जन्म देने वाला अर्थात् वेदज्ञान कर्त्ता और अपने धर्म का पालक विप्र बालक होकर भी वृद्ध धर्मतः पिता होता है।९२। आंगिरस (अंगिरा के पुत्र) कवि ने शैशवावस्था में अपने पितरों को ज्ञान का उपदेश किया और यह बात जानते हुए भी कि

---

१. सौराः। २. वाचकः। ३. मिथः। ४. धार्मिकः।

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः । अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥९५
पितामहेति जयदमित्यूचुस्ते दिवौकसः । जयो मन्त्रास्तथा वेदा देहमेकं त्रिधा कृतम् ॥९६
नहायनैर्न पलितैर्न मित्रेण न बन्धुभिः । ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥९७
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च विशांपते । ज्येष्ठं वदन्ति राजेन्द्र सन्देहं शृणु वै यथा ॥९८
ज्ञानतो वीर्यतो राजन्धनतो जन्मतस्तथा । शीलतस्तु प्रधाना ये ते प्रधाना मता मम ॥९९
न तेन स्थविरो भवति येनास्य पलितं शिरः । यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥१००
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः । यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम[1] बिभ्रति ॥१०१
यथा षोषाऽफला स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला । यथा चाज्ञेऽफलं दानं यथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥१०२
वैश्वदेवेन ये हीना आतिथ्येन विवर्जिताः । सर्वे तु वृषला ज्ञेयाः प्राप्तवेदा अपि द्विजाः ॥१०३
नानृग्ब्राह्मणो भवति न वणिङ्न कुशीलवः । न शूद्रः प्रेषणं कुर्वन्नस्तेनो न चिकित्सकः ॥१०४

ये हमारे पितर हैं, उनको पुत्र कहकर बुलाया ।९३। उनके इस व्यवहार से क्रुद्ध पितरगण ने देवगणों से इसका कारण पूछा। देवताओं ने उन्हें एकत्रित कर उनसे कहा कि शिशु (कवि) ने आप लोगों को उचित ही कहा है ।९४। क्योंकि जो अज्ञ होता है वही बालक है और जो मंत्र का उपदेश करता है, वही पिता होता है। लोग अज्ञ को बालक, मन्त्रदाता को पिता तथा जयदाता (उक्त महाभारत पुराण, रामायणादि के उपदेशक) को पितामह कहते हैं—ऐसा देवताओं ने उन पितरों से कहा। जय, मंत्र तथा वेद—ये तीनों एक ही शरीर के तीन भाग किये गये हैं ।९५-९६। ऋषियों ने धर्म की व्यवस्था अवस्था में बहुत वर्षों के होने से, बाल पक जाने से, मित्र अथवा बंधु होने से नहीं की, जो षडङ्गवेद का अधिकारी प्रवक्ता है, वही हम सबों में महान माना गया है ।९७। हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चारों जातियों में जिसे ज्येष्ठ कहते हैं, उसे बतला रहा हूँ, सुनो ।९८। हे राजन् ! (ब्राह्मणों में) ज्ञान से ज्येष्ठ होते हैं, (क्षत्रियों में) पराक्रम से, (वैश्यों में) धन से, एवं (शूद्रों में) जन्म से और शील से ज्येष्ठ माने जाते हैं—ऐसा हमारा मत है ।९९। यदि किसी के शिर के बाल पक गये हैं तो वह उससे वृद्ध नहीं हो जाता जो जवान है और षडङ्ग वेदों का परिशीलन करने वाला है वही वृद्ध है क्योंकि देवता लोग उसी को वृद्ध जानते हैं ।१००। निंद्य ब्राह्मण जैसे काष्ठ का बना हुआ हाथी और चमड़े का मृग केवल नामधारी रहता है, उसी प्रकार बिना अध्ययन का ब्राह्मण भी नामधारी रहता है—ये तीनों केवल नाम धारण करते हैं ।१०१। जैसे नपुंसक स्त्रियों के साथ स्त्री (संतान उत्पन्न करने में) विफल है, गौओं के साथ वंध्या गौ विफल है और मूर्ख को दान देना विफल है, उसी तरह वेद विहीन ब्राह्मण भी विफल है ।१०२। किन्तु वेद प्राप्त करने वाले भी वे द्विज शूद्र हैं, जो बलिवैश्वदेव, और आतिथ्य सत्कार से विमुख रहते हैं ।१०३

जिस प्रकार वेदज्ञान विहीन ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है, उसी प्रकार वणिक् वृत्ति करने वाला, नट व कथक की वृत्ति से जीविका प्राप्त करने वाला, दूसरे की सेवा करने वाला या अन्य प्रकार का शूद्र व्यापार करने वाला, चोरी करने वाला तथा चिकित्सा करने वाला भी ब्राह्मण नहीं है ।१०४।

---

१. नामधारकाः ।

अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः । तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥१०५
सन्तुष्टो यत्र वै विप्रः साग्निकः कुरुनन्दन ! याति साफल्यतां वेदैर्देवैरेवं हि भाषितम् ॥१०६
वेदैरुक्तं यथा वीर सुरज्येष्ठमुपेत्य वै । वेपन्ते ब्राह्मणा भूमावभ्यस्यन्ति ह्यनग्निकाः ॥
क्लिश्यन्ते ते किमर्थं हि मूढा वै फलकाङ्क्षया ॥१०७
अनुष्ठानविहीनानामस्मानभ्यसतां भुवि । क्लेशो हि केवलं देव नास्मदभ्यसने फलम् ॥१०८
अनुष्ठानं परं देवमस्मत्स्वभ्यसनात्सदा । इत्येवं राजशार्दूल वेदा ऊचुर्हि वेधसम् ॥
तस्माच्च वेदाभ्यसनादनुष्ठानं परं मतम् ॥१०९
चत्वारो वा त्रयो वापि यद्ब्रूयुर्वेदपारगाः । स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥११०
यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममजानतः[1] । तत्पापं शतधा भूत्वा वक्तॄनेवानुगच्छति ॥१११
शौचहीने व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते । दीयमानं रुदत्यन्नं किं मया दुष्कृतं कृतम् ॥११२
जपोपजीविने दत्तं यदात्मानं प्रपश्यति । नृत्यति स्म तदाराजन्करावुद्धृत्य भारत ॥११३

जहाँ पर व्रतविहीन, बिना पढ़े लिखे, भिक्षा पर जीविका निर्वाहित करने वाले ब्राह्मण निवास करते हों, उस ग्राम के ऊपर राजा को दण्ड लगाना चाहिये, क्योंकि वह चोरी वृत्ति को प्रोत्साहन देने वाला (ग्राम) है।१०५। हे कुरुनन्दन ! जिस ग्राम में ब्राह्मण सन्तुष्ट हों वह ग्राम साग्निक (यज्ञ भूमि) है क्योंकि उसकी सफलता वेद से होती है—ऐसा देवताओं ने बतलाया है।१०६। हे वीर ! वेदों ने देवताओं में सर्वश्रेष्ठ पितामह ब्रह्मा के पास जाकर इस प्रकार निवेदन किया था। हे देव ! पृथ्वी पर ब्राह्मण इसलिए दुःखी होते हैं कि आग्निक लोग वेदों का अभ्यास करते हैं। वे मूर्ख (वेदाभ्यास द्वारा) फल की आकांक्षा करके क्यों बेकार में कष्ट भोगते हैं? ।१०७। अनुष्ठान से हीन होकर केवल हमारा (वेद) अभ्यास करने से तो केवल कष्ट मिलेगा क्योंकि (कोरे) वेदाभ्यास से कोई फल नहीं मिलता।१०८। हे देव ! सर्वदा वेदाभ्यास करने से क्रियाओं का अनुष्ठान श्रेष्ठ होता है। हे राजसिंह ! वेदों ने इस प्रकार की बातें ब्रह्मा जी से कही। अतः वेदाभ्यास से (उनमें कहे गये अग्निहोत्रादि का) सदनुष्ठान श्रेष्ठ है—ऐसा हमारा भी मत है।१०९। वेदों के पारङ्गत विद्वान् चार अथवा तीन ही जो भी कुछ करें वही धर्म है, उनके अतिरिक्त ऐसे सहस्रों लोग जो वेदों के अधिकारी नहीं हैं, व्यवस्था करें तो वह धर्म नहीं कहा जा सकता।११०। धर्म के माहात्म्य को न जानने वाले अज्ञानावृत्त मूर्ख लोग (धर्म के विषय में) जो कुछ उलटी-पलटी बातें कहते हैं वह सैकड़ों पापों के रूप में (उनके) बोलने वाले के ही पीछे-पीछे चलता है।१११। वेदविवर्जित, शौचाचार विहीन, व्रत नियमादि से भ्रष्ट ब्राह्मण को दिया जाने वाला अन्न रोता है कि 'हाय मैंने ऐसा कौन दुष्कर्म किया (जो इस पापात्मा के) हाथों पड़ा।११२। हे भरतकुल श्रेष्ठ ! जप द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले को अपने को दिये जाते अन्न जब देखता है तो दोनों हाथों को ऊपर (उठाकर) अपने सौभाग्य पर नाच उठता है।११३

---

१. अजानानाः।

विद्यातपोभ्यां सम्पन्ने ब्राह्मणे गृहमागते । क्रीडन्त्यौषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ।।११४
[1]अव्रतानाममन्त्राणामजपानां च भारत । प्रतिग्रहो न दातव्यो न शिलातारयेच्छिलाम् ।।११५
श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि नित्यशः । अश्रोत्रियाय दत्तानि न पितॄन्नापि[2] देवताः ।।११६
यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः । बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खव्यतिक्रमः ।।११७
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे जपविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ।।११८
न चैतदेव मन्यन्ते पितरो देवतास्तथा । सगुणं निर्गुणं वापि ब्राह्मणं दैवतं परम् ।।११९
नातिक्रमेद्गृहासीनं ब्राह्मणं विप्रकर्मणि[3] । अतिक्रमन्महाबाहो रौरवं याति भारत ।।१२०
गायत्रीमात्रसारोऽपि ब्राह्मणः पूज्यतां गतः । गृहागतो विशेषेण न भवेत्पतितस्तु सः ।।१२१
धान्यशून्यो यथा ग्रामो यथा कूपश्च निर्जलः । ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ।।१२२
यस्त्वेकपङ्क्त्यां विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि वार्थहेतोः ।
वेदेषु दृष्टमृषिभिश्च गीतं तां ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ।।१२३
अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् । वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममीप्सता ।।१२४

हे राजन् ! वह अन्न विद्या एवं तपस्या से सुसम्पन्न ब्राह्मण के अपने घर आने पर समस्त औषधियाँ (अन्नादि) क्रीड़ा करने लगती हैं कि हम सब परम गति प्राप्त करेंगी ।११४। हे भारत ! जो व्रत नियमादि के पालन करने वाले नहीं हैं, मंत्र नहीं जानते, जप नहीं करते, उन्हें कभी दान नहीं करना चाहिये, क्योंकि एक शिला कभी भी दूसरी शिला को नहीं तार सकती ।११५। सर्वदा हव्य, कव्यादि श्रोत्रिय ब्राह्मणों को देना चाहिये, अश्रोत्रियों को दिया गया हव्य, कव्यादि न देवताओं को प्राप्त होता है न पितरों को ।११६। जिसके घर में मूर्ख हैं और बहुश्रुत विद्वान् दूरी पर हैं, उसे भी बहुश्रुत को ही बुलाकर दान देना चाहिये, इससे मूर्ख का व्यतिक्रम नहीं होता । (अर्थात् मूर्ख के अपमान की कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये ।११७। जप रहित मूर्ख ब्राह्मण को किसी कार्य में अतिक्रमण (दोष) नहीं होता, जैसे जलती हुई अग्नि को छोड़कर राख में आहुति नहीं दी जाती ।११८। पितर और देवगत इस प्रकार का दान प्रशस्त नहीं मानते । ब्राह्मण सगुण हो अथवा निर्गुण वह परमदेवता है ।११९। ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न होने वाले यज्ञादि शुभ कार्यों में अपने घर पर बैठे ब्राह्मण का अतिक्रम नहीं करना चाहिये । हे महाबाहु भारत ! जो ऐसे ब्राह्मण का अतिक्रमण करता है वह रौरव नरक प्राप्त करता है ।१२०। केवल गायत्री जानने वाला भी ब्राह्मण पूज्य है, विशेषतया यदि वह घर में हो तो उसकी पूजा करनी चाहिए ।१२१। अन्न रहित ग्राम, जल रहित कूप तथा वेद न पढ़ता हुआ ब्राह्मण—ये तीनों केवल नामधारी हैं ।१२२। जो किसी स्वार्थवश, भयवश अथवा स्नेहवश होकर एक पंक्ति में बैठे हुए को भेद करके दान करता है वह ब्रह्महत्या का भागी होता है—ऐसा नियम वेदों में देखा गया है, ऋषियों और मुनियों ने ऐसी व्यवस्था बतलाई है ।१२३

धर्म की इच्छा करने वाले को सभी जीवों के ऊपर कल्याण का अनुशासन अहिंसक भावना से करना

---

१. अधमानाम् । २. तर्पयन्तीति शेषः । ३. हि विकर्मणि ।

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सत्यगुप्ते च भारत । स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥१२५
नारुन्तुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः । ययास्यो द्विजते लोको न तां वाचमुदीरयेत् ॥१२६
यत्करोति शुभं वाचा[1] प्रोच्यमाना मनीषिभिः । श्रूयतां कुरुशार्दूल सदा चापि तथोच्यताम् ॥१२७

न तथा शशी न सलिलं न चन्दनरसो न शीतलच्छाया ।
प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी ॥१२८

अर्हणाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव । अमृतस्येव चाकांक्षेदपमानस्य[2] सर्वदा ॥१२९
सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते । सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥१३०
अनेन विधिना राजन्संस्कृतात्मा द्विजः शनैः । गुरौ वसन्संचिनुयाद्ब्रह्माधिगमिदं तपः ॥१३१
तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्चविविधोदितैः । वेदः कृत्स्नोधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥१३२
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं तपस्तप्यंद्विजोत्तमः । वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥१३३
आहैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः । यः सुप्तोऽपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ॥१३४
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥१३५

चाहिए, मधुर और कोमल वाणी का प्रयोग करना चाहिये ।१२४। हे भारत ! जिस व्यक्ति के मन और वचन शुद्ध सत्य सुरक्षित हैं, वह वेदान्त प्रतिपादित समस्त फलों को प्राप्त करता है ।१२५। आर्त होकर भी कभी किसी की भावना को चोट न पहुँचाये, दूसरे का द्रोह करने का विचार न करे। जिस वाणी को सुनकर लोगों का मन उद्विग्न हो जाय, उस वाणी का उच्चारण कभी न करे ।१२६। हे कुरुशार्दल ! मनीषी पण्डितों द्वारा मधुर वचन का प्रयोग कर जो शुभ कार्यों को सम्पन्न करते हैं उन्हें सुनिये और वैसा ही प्रयोग कीजिये ।१२७। चन्द्रमा, जल, चन्दन का रस और शीतल सुखदायिनी छाया पुरुष को उतनी आह्लादित नहीं करती जितनी उसकी मधुर वाणी ।१२८। ब्राह्मण को सर्वदा सम्मान एवं प्रतिष्ठा से विष की भाँति उद्विग्न होना चाहिये (अर्थात् सम्मान और प्रतिष्ठा से बहुत दूर रहना चाहिए) सर्वदा अमृत की तरह उसे अपमान की आकांक्षा करनी चाहिये ।१२९। क्योंकि जिसका अपमान हुआ रहता है वह तो सुखपूर्वक शयन करता है सुखपूर्वक जागता है और सुखपूर्वक अपना कार्य करता है परन्तु अपमान करने वाला इस लोक में विनष्ट हो जाता है ।१३०

हे राजन् ! इस प्रकार से शनैः-शनैः परिशुद्ध आत्मा होकर गुरु के आश्रम में निवास करते हुए ब्रह्मा को प्राप्त करने वाले तप का संचयन करना चाहिये ।१३१। विविध प्रकार के व्रतों एवं तपस्याओं द्वारा गूढ़ स्थलों समेत समस्त वेदों का अध्ययन द्विजाति को करना चाहिये ।१३२। उत्तम द्विज को सर्वदा तपों का विधिपूर्वक पालन करते हुए वेदाभ्यास में ही निरत रहना चाहिये । इस लोक में ब्राह्मण के लिए वेदाभ्यास ही परम श्रेष्ठ तप कहा गया ।१३३। जो ब्राह्मण सोते हुए भी अपनी शक्ति के अनुकूल प्रतिदिन स्वाध्याय करता है वह नख पर्यन्त समस्त शरीर से परम तपस्या करता है ।१३४। जो ब्राह्मण वेदों का अध्ययन कर करके अन्य कार्यों में श्रम करता है वह जीता हुआ ही

---

१. भागुरिमते टापू, अजादित्वाद्वा । २. कर्मणः सम्बन्धविवक्षया षष्ठी ।

न यस्य वेदो न जपो न विद्याश्च विशाम्पते । स शूद्र एव मन्तव्य इत्याह भगवान्विभुः ।।१३६
मातुरग्रे च जननं द्वितीयो मौञ्जिबन्धनम् । तृतीयो यज्ञदीक्षायां द्विजस्य विधिरीरितः ।।१३७
तत्र यद्ब्रह्म जन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ।।१३८
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते । वेदप्रदानादाचार्यं पितरं मनुरब्रवीत् ।।१३९
न ह्यस्य विद्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् । नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते[1] ।।१४०
शूद्रेण तु समं तावद्यावद्वेदे न जायते । कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ।।
ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ।।१४१
यत्सूत्र चापि यच्चर्म या या चास्य च मेखला । वसनं चापि यो दण्डस्तद्वै तस्य व्रतेष्वपि ।।१४२
सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी[2] गुरौ वसन् । सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः ।।१४३
वृन्दारकर्षिपितृणां कुर्यात्तर्पणमेव हि । नराणां च महाबाहो नित्यं स्नात्वा प्रयत्नतः ।।१४४
पुष्पं तोयं फलं चापि समिदाधानमेव[3] च । नानाविधानि काष्ठानि मृत्तिकां च तथा कुशान् ।।१४५

परिवार समेत बहुत शीघ्र शूद्रता को प्राप्त करता है।१३५। हे राजन्! जिस ब्राह्मण के पास न वेद है, न जप है, न विद्या है, उसे शूद्र ही मानना चाहिये—ऐसा भगवान् ने स्वयं कहा है।१३६। ब्राह्मण का जन्म सर्वप्रथम माता के उदर से होता है, दूसरा जन्म मौञ्जीबन्धन (अर्थात् यज्ञोपवीत) संस्कार से होता है, तीसरा जन्म यज्ञ की दीक्षा लेने से होता है।१३७। उपनयन संस्कार का महत्त्व इन तीनों जन्मों से उसका दूसरा जन्म जो मौञ्जीबन्धन के समय होता है, उसमें उसकी माता सावित्री और पिता आचार्य होता है। वेदों के दान करने के कारण मनु ने आचार्य को पिता बतलाया है।१३८-१३९। मौञ्जीबन्धन संस्कार के पूर्व ब्राह्मण का कोई (वैदिक और स्मार्त) कर्म नहीं होता (अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार होने के पहले ब्राह्मण कोई (वैदिक और स्मार्त) कर्म नहीं कर सकता। 'स्वधा' कहने के अधिकारी हुए बिना (अर्थात् श्राद्धमंत्रों के अतिरिक्त) वेद का उच्चारण नहीं करना चाहिये।१४०। जब तक वेद में अधिकार नहीं प्राप्त कर लेता तब तक वह भी शूद्र के समान है। उपनयन संस्कार के बाद उसे सभी कर्मों के करने का आदेश दिया जाता है। उसके बाद ही वेदाध्ययन क्रमशः विधिपूर्वक करना चाहिये।१४१। यज्ञोपवीत संस्कार में उसके पास जो सूत्र, धर्म, मेखला, वस्त्र और दण्ड रहता है, वह सब वेदाध्ययन के व्रत में भी रखना चाहिये।१४२

ब्रह्मचारी गुरु के समीप निवास करता हुआ इन समस्त नियमों का सेवन करे, अपनी तपः शक्ति बढ़ाने के लिए उसे अपने इन्द्रिय समूहों को वश में करना चाहिये।१४३। हे महाबाहु! सर्वदा देवताओं, ऋषियों, पितरों और मनुष्यों का विधिपूर्वक स्नानकर तर्पण करना चाहिये।१४४। पुष्प, जल, फल, समिधा, विविध प्रकार के काष्ठ, मृत्तिका और कुश का उसे संचयन

---

१. विलयनादृते। २. गुरावधिवसन्सदा। ३. संचिनुयादितिशेषः।

वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धमाल्यरथान्स्त्रियः। शुक्लानि चैव सर्वाणि प्राणिनां[1] चैव हिंसनम् ॥१४६
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्। संकल्पं कामजं क्रोधं लोभं गीतं च वादनम् ॥१४७
नर्तनं च तथा द्यूतं जनवादं तथानृतम्। परिवादं चापि विभो दूरतः परिवर्जयेत् ॥१४८
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भो रपवीतं[2] परस्य च। पुंश्चलीभिस्तथा सङ्गं न कुर्यात्कुरुनन्दन ॥१४९
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्। कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमेव तु ॥१५०
सुप्तः क्षरन्ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः। स्नात्वार्कमर्चयित्वा तु पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥१५१
मनोरपि तथा चात्र श्रूयते परमं वचः। उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकां कुशान् ॥
आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं चापि हि नित्यशः ॥१५२
गृहेषु येषां कर्तव्यं ताञ्छृणुष्व नृपोत्तम। स्वकर्मसु रता ये वै तथा वेदेषु ये रताः ॥
यज्ञेषु चापि राजेन्द्र ये च श्रद्धासमाश्रिताः ॥१५३
ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्। गुरोः कुले न भिक्षेत् स्वज्ञातिकुलबन्धुषु ॥१५४
अलाभे त्वन्यगोत्राणां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत्। सर्वं चापि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे ॥

करना चाहिये।१४५। नियमकाल में उसे मधु, मांस, चन्दन, माला, वाहनादि स्त्रियाँ सभी प्रकार की श्वेत वस्तुयें तथा प्राणियों की हिंसा—इस सबों से वर्जित रहना चाहिये।१४६। हे विभो! आँख में अंजन लगाना, शरीर में उबटन लगाना, जूता, छाता, कामजनित संकल्प, क्रोध, लोभ, गीत वादन, नाचना, द्यूत क्रीडा, असत्य प्रचार, असत्य भाषण, परकीय निन्दा—इन सबको ब्रह्मचारी को दूर से ही छोड़ देना चाहिये।१४७-१४८। हे कुरुनन्दन! ब्रह्मचारी को स्त्रियों की ओर देखना, स्त्रियों का आलिंगन, दूसरे के अपकार, पुंश्चली स्त्री का साथ कभी नहीं करना चाहिये।१४९। उसे सब जगह अकेले ही शयन करना चाहिये, कहीं वीर्यपात नहीं करना चाहिये। कामवश यदि वह कहीं अपने वीर्य का क्षरण करता है तो अपने व्रत को ही नष्ट करता है।१५०। ब्रह्मचारी शयन करते समय यदि बिना कामोपासना के वीर्य क्षरण करे तो स्नान कर सूर्य की पूजा करते हुए 'पुर्नमाम...' इस ऋचा का (तीन बार) जप करे।१५१। ब्रह्मचारियों के व्रत एवं नियमादि के बारे में मनु का भी बहुमूल्य वचन सुना जाता है। जल कलश, पुष्प, गोबर, मृत्तिका, कुश आदि प्रतिदिन अपनी शक्ति के अनुकूल एकत्र करे और भिक्षाटन कर जीविका निर्वाहित करे।१५२। हे नृपोत्तम! ब्रह्मचारी किन-किन घरों में भिक्षा की याचना करे—इसका भी निश्चय किया गया है, सुनो। हे राजेन्द्र! जो अपने कर्म में निरत हों, वेदों में आस्था रखते हों, यज्ञादि करने वाले और श्रद्धालु प्रकृति के हों, उनके घर से ब्रह्मचारी अपनी भिक्षा का संग्रह करे।१५३। प्रतिदिन चित्त एवं इन्द्रियों को निरुद्ध कर उसे गृहस्थों के घरों से भिक्षा की याचना करनी चाहिये। अपने गुरु के एवं परिवार वर्ग के घर भिक्षाटन नहीं करना चाहिये।१५४। यदि अन्यत्र न मिले तो पूर्व-पूर्व को अर्थात् ऊपर कहे हुए घरों में पहले वालों को छोड़ देना चाहिये। और क्रमशः अन्त से लेना चाहिये। हे महाबाहु! यदि अन्यत्र मिलना एकदम असम्भव

---

१. वंचनाम्। २. उपरोधम्।

अन्त्यवर्जं महाबाहो इत्याह भगवान्विभुः ॥१५५
वाचं नियम्य प्रयतस्त्वग्निं शस्त्रं च वर्जयेत् । चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्षमलाभे कुरुनन्दन ॥१५६
आरादाहृत्य समिधः सन्निदध्याद् गृहोपरि । सायंप्रातस्तु जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः ॥१५७
भैक्षाचरणमकृत्वा न तमग्निं समिध्य वै । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥१५८
वर्तन चास्य भैक्षेण प्रवदन्ति मनीषिणः । तस्माद्भैक्षेण वै नित्यं नैकान्नाशी भवेद्व्रती ॥१५९
भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता । दैवत्ये व्रतवद्राजन्पित्र्ये कर्मण्यथर्षिवत् ॥
काममभ्यर्थितोऽश्नीयाद्व्रतमस्य न लुप्यते ॥१६०
ब्राह्मणस्य महाबाहो कर्म यत्समुदाहृतम् । राजन्यवैश्ययोर्नैतत्पण्डितैः कुरुनन्दन ॥१६१
चोदितोऽचोदितो[1] वापि गुरुणा नित्यमेव हि । कुर्यादध्ययने योगमाचार्यस्य हितेषु च ॥१६२
बुद्धीन्द्रियाणि मनसा शरीरं वाचमेव हि । नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥१६३
नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारस्तु संयतः । आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥१६४

हो तो शूद्र को छोड़कर ग्राम भर में भिक्षाटन करना चाहिये—ऐसा स्वयं भगवान् ने कहा है।१५५। ब्रह्मचारी को मन एवं इन्द्रियों को वश में कर वचन को भी नियन्त्रित करना चाहिये, (अपने कार्य के लिए) अग्नि एवं शस्त्र का भी प्रयोग उसे नहीं करना चाहिये। हे कुरुनन्दन! यदि सर्वथा असम्भव हो तो चारो वर्णों में भिक्षाटन करना चाहिये।१५६। दूर के वन प्रान्त से समिधाएँ लाकर उसे अपनी कुटी के ऊपर रख देना चाहिये उन्हीं समिधाओं से सावधानीपूर्वक आलस्यादि छोड़कर सायंकाल एवं प्रातःकाल हवन करना चाहिये।१५७। ब्रह्मचारी भिक्षाटन एवं अग्नि में हवन कार्य—इन दोनों नैत्यिक कर्मों को यदि नहीं करता है तो उसे सात रात तक सुस्थिर एवं व्यवस्थित चित्त से अवकीर्ण प्रायश्चित्त का पालन करना चाहिये।१५८। जब ब्रह्मचारी को जीविका के लिए भिक्षाटन का ही विधान बतलाते हैं इसलिए उसे सर्वदा भिक्षा द्वारा ही जीविका निर्वाहित करनी चाहिये। एक व्यक्ति का अन्न खाने वाला व्रती नहीं कहा जा सकता।१५९। भिक्षाटन द्वारा जीविका चलाने वाले ब्रह्मचारियों का भोजन भी उपवास के समान स्मरण किया जाता है। हे राजन्! देव कर्म में व्रती के समान पितृकर्म में ऋषियों के समान व्यवहार करना चाहिये—इनमें यदि कोई भोजन ग्रहण करने के लिए बहुत अनुरोध करे तो भोजन कर लेना चाहिये। इस प्रकार उसका व्रत नष्ट नहीं होता।१६०। हे कुरुनन्दन! महाबाहु! ये ब्राह्मण ब्रह्मचारी के कर्म बतलाये गये हैं, पण्डितों ने क्षत्रिय एवं वैश्यों के लिए इनके अतिरिक्त अन्यान्य नियम बनाये हैं।१६१। गुरु प्रेरणा करे या न करे, सर्वदा अध्ययन में चित्त लगाना चाहिये। उसी प्रकार गुरु के कल्याण की भी उसे सर्वदा चिन्ता करनी चाहिये।१६२। बुद्धि, इन्द्रिय समूह, मन, शरीर और वाणी इन सबको नियन्त्रित कर गुरु के मुख की ओर देखते हुए उसे अंजलि बाँधकर स्थित रहना चाहिये।१६३। अपने दाहिने हाथ को सदैव उत्तरीय से बाहर रखना चाहिए और सर्वदा साधु आचरण करना चाहिये। तथा

---

१. चोदितो वापि गुरुणा नित्यमेव हि पाथव।

वस्त्रवेषैस्तथान्नैस्तु हीनः स्याद्गुरुसन्निधौ । उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य जघन्यं चापि संविशेत् ॥१६५
प्रतिश्रवणसम्भाषे तल्पस्थो न समाचरेत् । न चासीनो न भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥१६६
आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंश्च तिष्ठतः । प्रत्युद्गन्ता तु व्रजतः पश्चाद्धावंश्च धावतः ॥१६७
पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् । नमस्कृत्य शयानस्य निदेशे तिष्ठेत्सर्वदा ॥१६८
नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ । गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥१६९
नामोच्चारणमेवास्य परोक्षमपि सुव्रत । न चैनमनुकुर्वीत गतिभाषणचेष्टितैः ॥१७०
परीवादस्तथा निन्दा गुरोर्यत्र प्रवर्तते । कर्णौ तत्र पिधातव्यो गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥१७१
परीवादाद्रासभः स्यात्सारमेयस्तु निन्दकः । परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥१७२
दूरस्थो नार्चयेदेनं नक्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः । यानासनगतो राजन्नवरुह्याभिवादयेत् ॥१७३
प्रतिकूले समाने तु नासीत गुरुणा सह । अशृण्वति गुरौ राजन्न किञ्चिदपि कीर्तयेत् ॥१७४

शरीर को वस्त्र से आच्छादित रखें। गुरु यदि कहे कि बैठ जाओ, तब उसे गुरु के अभिमुख होकर बैठना चाहिये।१६४। गुरु के समीप में उसे हीन (अल्प) वस्त्र हीनवेश (अल्प) तथा हीन भोजन अन्न (अल्प अन्न) से करना चाहिये। गुरु के उठने के पहले ही उठ जाना चाहिये और बैठने के बाद बैठना चाहिये।१६५। गुरु के उपदेश सुनते समय, सम्भाषण करते समय, उसे विस्तर पर नहीं बैठना चाहिये। इसी प्रकार बैठकर भोजन करते हुए खड़े-खड़े एवं पराङ्मुख होकर भी गुरु से सम्भाषणादि नहीं करना चाहिये।१६६। गुरु बैठे हों तो (उनकी आज्ञा से) उठकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य तथा बात-चीत करे। यदि वे खड़े हों तो उनकी ओर दो चार पग चलकर आज्ञा को सुने और बात-चीत करें। वे जब आयें तो उनके सम्मुख जाकर आज्ञा स्वीकार एवं बात-चीत कर और यदि वे दौड़ रहे हों तो उनके पीछे दौड़कर सुने।१६७। यदि गुरु अपनी ओर से पराङ्मुख हों तो उनके सम्मुख स्वयं हो जाना चाहिये, वे दूर हों तो स्वयं उनके समीप जाकर बातचीत प्रारम्भ करनी चाहिये। उनके शयन करते समय नमस्कार करके आदेश का सर्वदा पालन करना चाहिये।१६८। सर्वदा गुरु के समीप में अपनी शय्या निम्न स्थान में रखे। गुरु की जहाँ तक दृष्टि पड़े वहाँ तक स्वतंत्रता से (अर्थात् पैर फैलाकर आदि) न बैठें।१६९। हे सुव्रत ! गुरु के नाम का कभी परोक्ष में भी उच्चारण नहीं करना चाहिये, गमन, भाषण एवं चेष्टाओं से भी कभी उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये।१७०। जहाँ पर गुरु की निन्दा अथवा अप्रतिष्ठा की चर्चा हो रही हो, वहाँ अपने कानों को मूँद लेना चाहिये अथवा वहाँ से अन्यत्र हट जाना चाहिये।१७१। गुरु की अपमानसूचक बातें करने से गर्दभ योनि में जन्म होता है, निन्दा करने वाला कुत्ता होता है। इसी प्रकार गुरु का अन्नादि भक्षण करने वाला कृमि होता है, गुरु के सम्मुख मत्सर प्रकट करने वाला कीट योनि में उत्तम होता है।१७२

दूर से ही गुरु की पूजा नहीं करनी चाहिये, क्रोधावेश में एवं स्त्रियों के समीप में भी नहीं करनी चाहिये। हे राजन् ! इसी प्रकार वाहन एवं आसन से उतर कर गुरु का अभिवादन करना चाहिये।१७३। गुरु के साथ प्रतिकूल एवं समान स्थिति में नहीं बैठना चाहिये। हे राजन् ! उस समय जब कि गुरु का ध्यान किसी अन्य विषय में हो, अर्थात् अपनी बात वह न सुन रहा हो, शिष्य को कोई बातचीत नहीं करनी चाहिये।१७४। किन्तु बैलगाड़ी, ऊँटगाड़ी, अट्टालिका प्रस्तर खण्ड, चटाई, शिलाखण्ड

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च । आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ।।१७५
गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् । गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ।।१७६
बालः समानजन्मा वा विशिष्टो यज्ञकर्मणि । अध्यापयन्गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ।।१७७
उत्सादनमथाङ्गानां स्नापनोच्छिष्टभोजने । पादयोर्नेजनं राजन्गुरुपुत्रेषु वर्जयेत् ।।१७८
गुरुवत्प्रतिपूज्यास्तु सवर्णा गुरुयोषितः । असवर्णास्तु सम्पूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः ।।१७९
अभ्यञ्जनं स स्नपनं गात्रोत्सादनमेव च । गुरुपत्न्याः न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ।।१८०
गुरुपत्नीं तु युवतीं नाभिवादेत पादयोः । पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ।।१८१
स्वभाव एव नारीणां नराणामिह दूषणम् । [२]अतोर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रतिपाद्य विपश्चितः ।।१८२
अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः । प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ।।१८३
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।।१८४
राजेन्द्र गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि । विधिवद्वन्दनं कुर्यादसावहमिति ब्रुवन् ।।१८५

नौका में गुरु के साथ भी बैठना चाहिये ।१७५। गुरु के गुरु यदि वर्तमान हों तो उनके साथ भी गुरुवत् व्यवहार करना चाहिये, इसी प्रकार श्रेष्ठ गुरु पुत्रों एवं गुरु के परिवार वर्ग वालों के साथ भी गुरुवत् व्यवहार करना चाहिये ।१७६। गुरु का पुत्र यदि बालक है, अथवा समान अवस्था का है, तब भी यज्ञ कर्म में उसकी विशेषता है । गुरु का पुत्र यदि पढ़ाता है तो वह गुरु के समान ही सम्माननीय है ।१७७। हे राजन् ! (गुरुपुत्र के साथ गुरुवत् व्यवहार करते हुए भी इन कार्यों को वर्जित रखे) अंगों में उबटन लगाना, स्नान करवाना, जूठा भोजन करना, पैरों का धोना ।१७८। गुरु की पत्नी यदि सवर्णा हैं, (अर्थात् उन्हीं की वर्ण वाली हैं) तो वह भी गुरु के समान ही पूजनीय हैं । और यदि असवर्णा हैं तो वह भी उठकर सम्मान व्यक्त करके तथा अभिवादन करके सम्माननीय है ।१७९। गुरु की पत्नियों के अंगों में तेल लगाना, दबाना, स्नान करवाना, शरीर में उबटन लगाना एवं केशों की रचना करना आदि कार्य नहीं करना चाहिये ।१८०। गुरु की पत्नी यदि युवती है तो संसार के गुण दोष जाननें वाले, उसके बीस वर्ष के शिष्य को उसके चरणों का स्पर्श करके अभिवादन नहीं करना चाहिये । क्योंकि इस संसार में स्त्री एवं पुरुष दोनों की स्वाभाविक प्रवृत्ति[१] दोषों की ओर होती है । जो परम विवेकशील एवं बुद्धिमान हैं, वे इसीलिए स्त्रियों के प्रति असावधानी नहीं करते ।१८१-१८२। स्त्रियाँ काम एवं क्रोध के वशीभूत अविद्वान् तथा विद्वान् को भी अनुचित मार्ग में ले जाने को समर्थ होती हैं ।१८३। अपनी ही माता, बहिन एवं कन्या हों, तब भी उनके साथ एकान्त में नहीं बैठना चाहिये, ये इन्द्रिया बड़ी बलवान् हैं, बड़े-बड़े पण्डित को भी ये खींच लेती हैं ।१८४। हे राजेन्द्र ! इसलिए युवा शिष्य को इस पृथ्वी पर युवती गुरुपत्नियों के साथ दूर से ही 'अमुक' मैं प्रणाम कर रहा हूँ, कहकर प्रणाम करना चाहिये ।१८५। प्रवास

---

१. भार्यासु । २.अतोऽर्थान्न प्रमाद्यंति प्रमदासु विपश्चितः । ३. अमृतम् ।

१. तरुणावस्था प्रायः अनुभवहीनता के कारण मूर्खता ही के समान मानी जाती है ।

विप्रोऽस्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम् । गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ।।१८६
यथा खनन्खनित्रेण जलमाप्नोति[१] मानवः । तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ।।१८७
मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथ वा स्याच्छिखी जटी ।
नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेदर्को नाभ्युदियात्क्वचित् ।।१८८
तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामकारतः । निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ।।१८९
सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः । प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा ।।१९०
उपस्पृश्य महाराज उभे सन्ध्ये समाहितः । शुचौ देशे जपञ्जप्यमुपासीत यथाविधि ।।१९१
यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किञ्चित्समाचरेत् । तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वा रमते मनः ।।१९२
धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्ममेव च । अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति संस्थितिः ।।१९३
पिता माता तथा भ्राता आचार्याः कुरुनन्दन । नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ।।१९४
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः । माताप्यथादितेर्मूर्तिर्भ्राता स्यान्मूर्तिरात्मनः ।।१९५

से आने पर शिष्य को सत्पुरुषों के चलाये हुए धर्म का स्मरण कर प्रतिदिन गुरु पत्नी का पाद स्पर्श एवं अभिवादन करना चाहिये।१८६। जिस प्रकार कुदाल आदि खनने वाले हथियारों से लगातार खनते रहने पर मनुष्य अन्त में जल प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरु सेवा में निरत रहने वाला शिष्य गुरु की समस्त विद्याओं को प्राप्त कर लेता है।१८७

ब्रह्मचारी चाहे मुंडित शिर हो, चाहे जटाधारी हो चाहे जटा की भाँति शिखाधारी हो, उसको ग्राम में शयन करते हुए सूर्य का अस्त एवं उदय नहीं देखना चाहिये।१८८। यदि इस नियम को जान बूझकर इच्छानुकूल शयन करते-करते उसके सूर्य अस्त हो जायँ वा उदित हो जायँ तो दिन भर उपवास रखकर जप करना चाहिये।१८९। सूर्योदय अथवा सूर्यास्त तक सोकर जो उक्त प्रायश्चित्त नहीं करता है वह महान् पापकर्म से युक्त होता है।१९०। हे महाराज ! समाहित चित्त हो दोनों सन्ध्याओं को विधिपूर्वक पवित्र देश में बैठकर आचमन कर जप एवं उपासना करनी चाहिये।१९१। यदि स्त्री (अथवा शूद्र) कुछ श्रेयस्कर कार्य करे तो स्वयमेव उन सब कर्मों को करना चाहिये अथवा अपना मन जिस कार्य में लगे वह काम करना चाहिये।१९२। कुछ लोग धर्म और अर्थ को श्रेय कहते हैं, कुछ काम और अर्थ को श्रेय कहते हैं। इस लोक में कुछ लोग अर्थ को ही श्रेय मानते हैं—इन्हीं तीनों को त्रिवर्ग कहते हैं।१९३

हे कुरुनन्दन ! पिता, माता, भ्राता एवं आचार्य इन सबका अपमान विशेष आर्त्त अवस्था में होने पर भी कभी नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण को तो इस नियम का विशेषतया पालन करना चाहिये।१९४। आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति है, पिता प्रजापति की मूर्ति है, माता अदिति की मूर्ति है, भाई अपनी ही मूर्ति है।१९५। मनुष्य को उत्पन्न करने में माता और पिता जो कष्ट सहते हैं, उसका बदला सैकड़ों

---

१. अमृतम्।

यन्माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् । न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ।।१९६
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च भारत । तेषु हि त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ।।१९७
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते । न तैरनभ्यनुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ।।१९८
त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः[1] । त एव च त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ।।१९९
माता वै गार्हपत्याग्निः पिता वै दक्षिणः स्मृतः । गुरुराहवनीयश्च साग्नित्रेता गरीयसी ।।२००
त्रिषु तुष्टेषु चैतेषु त्रींल्लोकाञ्जयते गृही । दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ।।२०१
इमं लोकं पितृभक्त्या मातृभक्त्या तु मध्यमम् । गुरुशुश्रूषया चैव गच्छेच्छक्रसलोकताम् ।।२०२
सर्वे तेनादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः । अनादृतास्तु येनैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ।।२०३
यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यत्समाचरेत्। तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ।।२०४
तेषामनुपरोधेन पार्थक्यं[2] यद्यदाचरेत् । तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ।।२०५
त्रिष्वेतेष्विति कृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते । एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ।।२०६
श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि । अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।।२०७

वर्ष में भी नहीं किया जा सकता ।१९६। हे भारत ! इसलिए मनुष्य को सर्वदा उन दोनों अर्थात् माता-पिता का तथा आचार्य का कल्याण साधन करना चाहिये । इन तीनों के सन्तुष्ट रहने पर सभी तपस्याएँ समाप्त हो जाती हैं ।१९७। इन तीनों की शुश्रूषा करना ही परम तपस्या कही गयी है । इनकी आज्ञा को बिना प्राप्त किये हुए किसी अन्य धर्म का पालन नहीं करना चाहिये ।१९८। वे ही तीनों-तीनों लोक हैं तीनों आश्रम हैं, तीनों वेद हैं, और तीनों अग्नियाँ[1] हैं ।१९९। माता गार्हपत्याग्नि है, पिता दक्षिण अग्नि कहा जाता है, गुरु आहवनीय अग्नि है ये तीनों अग्नियाँ परम गौरवास्पद हैं ।२००। गृहस्थ पुरुष यदि इन तीनों को सन्तुष्ट कर लेता है तो वह तीनों लोकों को जीत लेता है । (इसके माहात्म्य से) वह अपनी दिव्य शरीर कान्ति से संयुक्त होकर देवताओं के समान स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है ।२०१। पितृभक्ति से इस लोक को मातृभक्ति से मध्यलोक को एवं गुरु भक्ति से इन्द्रलोक को प्राप्त करता है ।२०२। जिसने इन तीनों का आदर किया उसने सब धर्मों का आदर कर लिया और जिसने इन तीनों का अनादर किया उसकी सारी क्रियाएँ निष्फल हैं ।२०३। जब तक ये तीन जीवित हैं तब तक किसी अन्य धर्म का पालन नहीं करना चाहिये सर्वदा उनके प्रिय एवं कल्याणदायी कार्यों में लगे रहकर उनकी शुश्रूषा करते रहना चाहिये ।२०४। उनकी अनुमति से यदि उनसे अलग रहकर कुछ कार्य करे भी तो उन सबको मनसा वाचा कर्मणा उनसे निवेदित कर देना चाहिए ।२०५। गृहस्थ पुरुष के सारे कर्त्तव्य सारे धर्म इन्हीं तीनों की सेवा में समाप्त हो जाते हैं । यही परम धर्म है, इसके अतिरिक्त सब उपधर्म कहे जाते हैं ।२०६। अपने से निम्न कोटि के व्यक्ति से भी कल्याणदायिनी, विद्या श्रद्धापूर्वक लेनी चाहिये । शूद्र भी हो यदि उसके पास कोई श्रेष्ठ धर्म है तो उसे ले लेना चाहिये । इसी

---

१. आगमाः । २. पवित्रम् ।

१. गार्हपत्य, दाक्षिणाग्नि और आहवनीय ।

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् । अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ।।२०८
स्त्रियो रत्नं नयो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् । विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वशः ।।२०९
अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते । अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ।।२१०
नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत् । ब्राह्मणे चाननूचाने काङ्क्षन्गतिमनुत्तमाम् ।।२११
यदि त्वात्यन्तिको वासो रोचते च गुरोः कुले । युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ।।२१२
आ समाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् । स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्राह्मणः सद्म शाश्वतम् ।।२१३
न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित् । स्नानार्थं गुरुणाऽऽज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् ।।२१४
क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमेव च । धान्यं वासांसि शाकं वा गुरवे प्रीतमाहरेत् ।।२१५
स्वर्गते गां परित्यज्य गुरौ भरतसत्तम । गुणान्विते गुरुसुते गुरुदारेऽथ वा नृप ।।
सपिण्डे वा गुरोश्चापि गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ।।२१६
एतेष्वविद्यमानेषु स्थानासनविहारवान् । प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ।।
वीरस्य कुर्वञ्छुश्रूषां याति वीरत्वलोकताम् ।।२१७
चरत्येवं हि यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः । स गत्वा ब्रह्मसदनं ब्रह्मणा सह मोदते ।।२१८

प्रकार दुष्ट कुल से भी स्त्रीरत्न ले लेना चाहिये ।२०७। विष से भी अमृत ले लेना चाहिये, बच्चा भी है यदि कोई सच्ची और सुन्दर बात कह रहा है तो उसे ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार शत्रु से भी सदाचरण की शिक्षा लेनी चाहिये, और अपवित्र स्थल से भी सुवर्ण ले लेना चाहिए ।२०८। स्त्री, रत्न, नीति, विद्या, पवित्रता, धर्म सुभाषित एवं विविध प्रकार के शिल्प कर्म—इन्हें सम स्थानों से ले लेना चाहिये ।२०९

आपत्ति काल में अब्राह्मण से भी अध्ययन करने का विधान है । जब तक अब्राह्मण गुरु के समीप अध्ययन चले तब तक उसकी भी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये ।२१०। कोई ब्राह्मण यदि वेदों का अधिकारी विद्वान् नहीं हैं, किन्तु शिष्य वेदाध्ययन कर परमोत्तम गति प्राप्त करने की इच्छा से अब्राह्मण गुरु से अध्ययन करता है तो उसे उस अब्राह्मण गुरु के समीप सर्वदा निवास नहीं करना चाहिये ।२११। यदि गुरु के कुल में सर्वदा निवास करने की रुचि शिष्य को है तो उसे अपने शरीर छोड़ने तक निष्ठा एवं भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए निवास करना चाहिये ।२१२। इस प्रकार जो ब्राह्मण शिष्य अपने शरीर के त्याग पर्यन्त गुरु की शुश्रूषा करता है वह शीघ्र ही ब्रह्म के शाश्वत पद को प्राप्त करता है । धर्म की मर्यादा जानने वाले शिष्य को अध्ययन समाप्ति के पूर्व उपकार नहीं करना चाहिये, उसे दीक्षा स्नान के लिए गुरु की आज्ञा प्राप्त करने के अनन्तर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये ।२१३-२१४। श्वेत, सुवर्ण, गौ, अश्व, छत्र, जूता, धान्य, वस्त्र, शाकादि गुरु के प्रसन्नार्थ लाना चाहिये ।२१५। हे भरतकुल सत्तम ! गुरु के इस पृथ्वी को छोड़कर स्वर्ग चले जाने पर गुणयुक्त गुरुपुत्र गुरु पत्नी वा गुरु के सपिण्डज के साथ भी गुरुवत् व्यवहार करना चाहिये ।२१६। इन सबों के न रहने पर उचित स्थान, आसन एवं बिहार से युक्त अग्नि की शुश्रूषा करते हुए अपने शरीर को उचित ढंग से साधन में लगावे । वीर की शुश्रूषा करने से वीरता की प्राप्ति होती है ।२१७। इन उपर्युक्त नियमों के अनुसार जो विप्र अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त कर ब्रह्मा

इत्येष कथितो धर्मः प्रथमं ब्रह्मचारिणः । गृहस्थस्यापि राजेन्द्र शृणु धर्ममशेषतः ॥२१९
काले प्राप्य व्रतं विप्र ऋतुयोगेन भारत । प्रपालयन्व्रतं याति ब्रह्मसालोक्यतां विभो ॥२२०
सदोपनयनं शस्तं वसन्ते ब्राह्मणस्य तु । क्षत्रियस्य ततो ग्रीष्मे प्रशस्तं मनुरब्रवीत् ॥२२१
प्राप्ते शरदि वैश्यस्य सदोपनयनं परम् । इत्येष त्रिविधः कालः कथितो व्रतयोजने ॥२२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
उपनयनविधिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।४।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

स्त्रीणां शुभाशुभलक्षणवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् । तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव च ॥१
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि नृपोत्तम । अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥२
तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः । स्रग्विणं तल्प[1] आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥३

के साथ आनन्द का अनुभव करता है ।२१८। प्रथम ब्रह्मचारी के धर्म का यह वर्णन मैं कर चुका, हे राजेन्द्र ! अब गृहास्थाश्रम में निवास करने वालों के समस्त धर्मों को भी बतला रहा हूँ, सुनो ।२१९। हे भारत ! हे विभो ! इस प्रकार उचित समय एवं ऋतु काल के अवसर पर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर मनुष्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है ।२२०

ब्राह्मण का यज्ञोपवीत संस्कार सर्वदा वसन्त ऋतु में प्रशस्त माना गया है, मनु ने क्षत्रियों का यज्ञोपवीत संस्कार ग्रीष्म ऋतु में श्रेयस्कर बतलाया है ।२२१। वैश्यवर्ण का उपनयन संस्कार सर्वदा शरद् ऋतु के आने पर श्रेष्ठ है। यज्ञोपवीत संस्कार के लिये तीनों वर्णवालों के ये तीन समय बतलाये गये हैं।२२२
श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में यज्ञोपवीत संस्कार विधि वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५

स्त्रियों के शुभ और अशुभ लक्षणों का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—गुरु के समीप रहकर छत्तीस वर्ष तक त्रैवेदिक व्रत अर्थात् तीनों वेदों के अनुसार, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये अथवा उसके आधे वा चौथाई या वेद के अध्ययन समाप्त करने पर्यन्त समय तक करना चाहिये ।१। हे नृपोत्तम ! तीनों वेदों का या दो वेदों का अथवा एक वेद का विधिवत् अध्ययन कर अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने वाला ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे ।२। पिता के द्वारा वेद का अध्ययन समाप्त करने वाले उस प्रख्यात ब्रह्मवर्चस् एवं धन सम्पत्ति के उत्तराधिकार को प्राप्त करने (अथवा गृहस्थाश्रम में आने के लिए उद्यत) ब्रह्मचारी का अपने नैष्ठिक धर्म से समन्वित उस गुरु को सुन्दर आसन पर बिठा कर माला से विभूषित कर सर्व प्रथम गौ (मधुपर्क) द्वारा

---

१. तत्र ।

गुरुणा समनुज्ञातः समावृत्तौ यथाविधि । उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥४

शतानीक उवाच

लक्षणं द्विजशार्दूल स्त्रीणां वद महामुने । कीदृग्लक्षणसंयुक्ता [1]कन्या स्यात्सुखदा नृप ॥५

सुमन्तुरुवाच

यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं स्त्रीलक्षणमनुत्तमम् । श्रेयसे[2] सर्वलोकानां शुभाशुभफलप्रदम् ॥६
तत्ते वच्मि महाबाहो शृणुष्वैकमना नृप । श्रुतेन येन जानीषे कन्यां शोभनलक्षणाम् ॥७
सुखासीनं सुरश्रेष्ठमभिगम्य महर्षयः । पप्रच्छुर्लक्षणं स्त्रीणां यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना ॥८
प्रणम्य शिरसा देवमिदं वचनमब्रुवन् । भगवन्ब्रूहि नः सर्वं स्त्रीणां लक्षणमुत्तमम् ॥९
श्रेयसे सर्वलोकानां शुभाशुभफलप्रदम् । प्रशस्तामप्रशास्तां च जानीमो येन कन्यकाम् ॥१०
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विरिञ्चो वाक्यमब्रवीत् । शृणुध्वं द्विजशार्दूला वच्मि युष्मास्वशेषतः ॥११
प्रतिष्ठिततलौ सम्यग्रताम्भोजसमप्रभौ । ईदृशौ चरणौ धन्यौ योषितां भोगवर्धनौ ॥१२
करालैरतिनिर्मांसै रूक्षैरर्धशिरान्वितैः । दारिद्र्यं दुर्भगत्वं च प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥१३

पिता या आचार्य की पूजा करे ।३। इस प्रकार गुरु की आज्ञा से यथाविधि समावर्तन संस्कार सम्पन्न होकर ब्राह्मण अपने वर्ण में उत्पन्न शुभलक्षण समन्वित स्त्री के साथ विवाह संस्कार करे ।४

शतानीक बोले—हे महामुनि ! द्विज शार्दूल ! मुझे स्त्रियों के लक्षण बतलाइये । हे नृप, किस प्रकार के लक्षणों वाली कन्या पति को सुख देने वाली होती है ? ।५

सुमन्तु ने कहा—समस्त लोक के कल्याणार्थ स्त्रियों के शुभाशुभ फल देने वाल जिन लक्षणों को पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने बतलाया है, उन्हें तुम्हें बतला रहा हूँ, हे महाबाहो, हे नृप ! एकाग्र होकर सुनिये ! उन सबके सुन लेने पर तुम भी शुभलक्षणान्वित कन्या के पारखी बन जाओगे ।६-७। तुमने स्त्रियों के जिन लक्षणों को मुझसे अभी पूछा है, उन्हीं को एक बार ऋषियों ने सुखपूर्वक विराजमान सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा जी के पास जाकर पूछा था ।८। देव ब्रह्मा जी को शिर नम्र कर विधिवत् प्रणाम करने के बाद ऋषियों ने यह वचन कहा—'हे भगवन् ! समस्त लोक के कल्याणार्थ स्त्रियों के शुभाशुभ फल प्रदान करने वाले लक्षणों को हमें बतलाइये । जिससे हम लोग उत्तम एवं निकृष्ट कोटि की कन्याओं की परख कर सकें ।९-१०। (ऋषियों) उनके वचन सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा—स्त्रियों के समस्त लक्षणों को बतला रहा हूँ, सुनिये ।११। सुन्दर लाल कमल दल के समान कान्तिमान् एवं प्रतिष्ठित (भूमि में समान रूप से बैठने वाले) तलुओं वाले पैर, धन्य हैं, वे स्त्रियों के भाग्य की वृद्धि करनेवाले हैं ।१२। जो कराल मांस रहित, रूखा और नसों के उभाड़ से युक्त हो, वे स्त्रियों का चरण निस्सन्देह दारिद्र्य, दौर्भाग्य का देने वाला होता है ।१३। सघन, गोली,

---

१. धन्या । २. ऋषीणां कुरुशार्दूल ।

अङ्गुल्यः संहता वृत्ताः स्निधाः सूक्ष्मनखास्तथा । कुर्वन्त्यत्यन्तमैश्वर्यं राजभावं च योषितः ॥१४
ह्रस्वाः सुजीवितं ह्रस्वा विरला वित्तहानये । दारिद्र्यं मूलमग्नासु प्रेष्यं च पृथुलासु च ॥१५
परस्परसमारूढैस्तनुभिर्वृत्तपर्वभिः । बहूनपि पतीन्हत्वा दासी भवति वै द्विजाः ॥१६
अङ्गुष्ठोन्नतपर्वाणस्तुङ्गाग्राः कोमलान्विताः । रत्नकाञ्चनलाभाय विपरीता विपत्तये ॥१७
सुभगत्वं नखैः स्निग्धैराताम्रैश्च धनाढ्यता । पुत्राः स्युरुन्नतैरेभिः सुसूक्ष्मैश्चापि राजता ॥१८
पाण्डुरैः स्फुटितै रूक्षैर्नीलैधूमैस्तथा खरैः[1] । निःस्वता भवति स्त्रीणां पीतैश्चाभक्ष्यभक्षणम् ॥१९
गुल्फाः स्निग्धाश्च वृत्ताश्च समारूढशिरास्तथा । यदि स्युर्नूपुरान्दध्युर्बान्धदाहौः समाप्नुयुः ॥२०
अशिरा शरकाण्डाभाः सुवृत्ताल्पतनूरुहाः । जङ्घाः कुर्वन्ति सौभाग्यं यानं च गजवाजिभिः ॥२१
क्लिश्यते रोमजङ्घा स्त्री भ्रमत्युद्धतपिण्डिका । काकजङ्घा पतिं हन्ति वाचाटा कपिला च याः ॥२२
जानुभिश्चैव मार्जारसिंहजान्वनुकारिभिः । श्रियमाप्य सुभाग्यत्वं प्राप्नुवन्ति सुतांस्तथा ॥२३
घटाभैरध्वगा नार्यो निर्मांसैः कुलटाः स्त्रियः । शिरालैरपि हिंस्राः स्युर्विश्लिष्टैर्धनवर्जिताः ॥२४

चिकनी एवम् छोटे सुन्दर नखों वाली पैर की अँगुलियाँ स्त्रियों को परम ऐश्वर्य एवं राज्यपद को देने वाली होती है ।१४। छोटी अँगुलियों वाली स्त्रियाँ दीर्घजीवी होती हैं । किन्तु छोटी और बिरली जो एक में मिली न हों, अँगुलियाँ धन हानि करने वाली होती हैं । मूल स्थान पर टेढ़ी रहनेवाली अँगुलियाँ दारिद्र्य की सूचक हैं, मोटी अँगुलियों से दासता की प्राप्ति होती है ।१५। हे द्विज वृन्द ! अत्यन्त सूक्ष्म, परस्पर एक दूसरे पर चढ़ी हुई एवं गोले पर्व (पोरों) वाली अँगुलियों से युक्त स्त्री अनेक पतियों को मारकर दासी होती है ।१६। उच्च पर्व (पोरों) से युक्त अँगूठे, उन्नत अग्रभागवाली कोमल अंगुलियाँ रत्न एवं सुवर्ण लाभ की सूचना देती हैं, इससे विपरीत जो होती हैं वे विपत्ति में डालने वाली होती हैं ।१७। चिकने नखों से सौभाग्य की प्राप्ति होती है, लाल नखों से प्रचुर धन मिलता है । उन्नत नखों से अनेक पुत्रों की प्राप्ति होती है एवं सूक्ष्म नखों से राजत्व की प्राप्ति होती है ।१८। स्त्रियों के पाण्डुर टूटे, फटे, रूखे, नीले एवं धूमिल तथा खर नखों से निर्धनता बढ़ती है, उनके पीले नख अभक्ष्य-भक्षण की सूचना देते हैं ।१९। इसी प्रकार यदि स्त्रियों के चिकने, गोले, शिराओं (नसों) को ढंके हुए गुल्फ (ऐंड़ी के ऊपर की गाँठ) हों तो वे नूपुर से सर्वदा शब्दायमान रहने वाले तथा बांधवों से युक्त करने वाले होंगे ।२०। शिराओं से रहित, शरकाण्ड (सरकण्डा) के समान गौरवर्ण से युक्त, सुन्दर गोले एवं छोटी-छोटी रोमावलियों से सुशोभित स्त्रियों की जंघाएँ परम सौभाग्य एवं हाथी घोड़े की संवारी देने वाली होती हैं ।२१। रोमावलि से युक्त जंघावाली स्त्री कष्ट का अनुभव करती है, इसी प्रकार जिसकी पिण्डली ऊपर की ओर खिंची हुई-सी हो वह बहुत भ्रमण करने वाली होती है । कौओं के समान जंघेवाली और भूरी स्त्री अत्यन्त बकवादिनी और पति का नाश करने वाली होती है ।२२। बिल्ली और सिंह के घुटनों के अनुकरणशील घुटनों वाली स्त्रियाँ लक्ष्मी की प्राप्ति कर सौभाग्य एवं अनेक पुत्रों को भी प्राप्त करने वाली होती हैं ।२३। इसी प्रकार कलश के समान घुटनों वाली स्त्रियाँ अधिक मार्ग चलने वाली होती हैं, मांसरहित घुटनोवाली स्त्रियाँ कुलटा होती हैं । शिराओं से व्याप्त घुटनों वाली स्त्रियाँ हिंसक स्वभाव वाली होती

---

१ आयतै ।

अत्यन्तकुटिलै रूक्षैः स्फुटिताग्रैर्गुडप्रभैः । अनेकजैस्तथा रोमैः केशैश्चापि तथाविधैः ।।२५
अत्यन्तपिङ्गला नारी विषतुल्येति निश्चितम् । सप्ताहाभ्यन्तरे पापा पतिं हन्यान्न संशयः ।।२६
हस्तिहस्तनिभैर्वृत्तै रम्भाभैः करभोपमैः । प्राप्नुवन्त्यूरुभिः शश्वत्स्त्रियः सुखमनङ्गजम् ।।२७
दौर्भाग्यं बद्धमांसैश्च बन्धनं रोमशोरुभिः । तनुभिर्वधमित्याहुर्मध्यच्छिद्रेष्वनीशता ।।२८
सन्ध्यावर्णं समं चारु सूक्ष्मरोमान्वितं पृथु । जघनं शस्यते स्त्रीणां रतिसौख्यकरं द्विज ।।२९
अरोमको भगो यस्याः समः सुश्लिष्टसंस्थितः । अपि नीचकुलोत्पन्ना राजपत्नी भवत्यसौ ।।३०
अश्वत्थपत्रसदृशः कूर्मपृष्ठोन्नतस्तथा । शशिबिम्बनिभश्चापि तथैव कलशाकृतिः ।।
भगः शस्ततमः स्त्रीणां रतिसौभाग्यवर्धनः ।।३१
तिलपुष्पनिभो यश्च यश्चाग्रे खुरसन्निभः । द्वावप्येतौ परप्रेष्यं कुर्वाते च दरिद्रताम् ।।३२
उलूखलनिभैः शोकं मरणं विवृताननैः । विरूपैःपूतिनिर्मांसैर्गजसन्निभरोमभिः ।।
दौःशील्यं दुर्भगत्वं च दारिद्र्यमधिगच्छति ।।३३

हैं, दुर्बल एवं असुन्दर घुटनों से धनहीन होती हैं ।२४। अत्यन्त कुटिल, रूखे, टूटे फूटे अग्रभाग वाले, गुड़ के समान लाल वर्णवाले, एक-एक रोम कूप से अनेक संख्या में उत्पन्न होने वाले रोम एवं केशों से युक्त अत्यन्त पिंगल वर्ण की नारी विषतुल्य समझनी चाहिये—यह निश्चित मानिये । वह पापिनी एक सप्ताह के भीतर ही अपने पति का नाश करती हैं—इसमें सन्देह मत मानिये ।२५-२६। हाथी के शुण्डादण्ड के समान चढ़ाव उतार वाले, कदली के रंग के समान गोरे, चिकने एवं शीतल करभ[1] के समान मनोहर एवं स्निग्ध उरु प्रदेशों से स्त्रियाँ सर्वदा कामदेव का सुखभोगने वाली होती हैं ।२७। बँध गये हैं मांस पिण्ड जिनमें—ऐसे उरुओं से युक्त स्त्रियाँ परम दुर्भाग्य शील होती हैं । बहुत रोमावलि से युक्त उरुओं से उसे बन्धन की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार सूक्ष्म उरुओं वाली स्त्रियों का वध होता है—ऐसा लोग कहते हैं । मध्य में छिद्र भाग वाले उरुओं से प्रभुत्वहीनता की प्राप्ति होती है ।२८। हे द्विज ! संध्या के समान मनोहर वर्णवाले (लालिमा युक्त) सूक्ष्म रोमावलि से सुशोभित, स्थूल जंघे स्त्रियों के परम प्रशंसनीय माने जाते हैं, वे विशेष रति सुख प्रदान करने वाले होते हैं ।२९। जिस स्त्री का योनि प्रदेश रोम रहित, समान एवं संधियों से सुश्लिष्ट हो, वह चाहे नीच कुल में ही उत्पन्न क्यों न हुई हों—राजा की पत्नी होती हैं ।३०। पीपल के पत्ते के समान कछुए की पीठ के समान ऊपर की ओर उन्नत चन्द्रबिम्ब की भाँति कलश के समान आकारवाला योनि प्रदेश स्त्रियों के लिए परम प्रशस्त बतलाया गया है, वह उनके रति एवं सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है ।३१। जो तिल के पुष्प की भाँति हो, आगे की ओर पशु की खुरों की भाँति दिखाई पड़ता हो—ऐसे दो प्रकार के योनि प्रदेश दरिद्रता एवं दूसरे की दासता करने वाले होते हैं ।३२। उलूखल के समान योनियों से शोक प्राप्ति होती है, जिसका मुख प्रदेश सर्वदा फैला हुआ हो—ऐसा योनि प्रदेश मरण की सूचना देता है । असुन्दर, दुर्गन्धियुक्त, मांसरहित, हाथी के समान रोमावलि युक्त प्रदेश स्त्रियों की दुःशीलता, दौर्भाग्य एवं दारिद्र्य के सूचक होते हैं ।३३। हे द्विजगण ! कैथे के फल के समान

---

१. हथेली में मणिबन्ध से लेकर कनिष्ठिका तक का वह भाग जो बाहर की ओर रहता है ।

कपित्थफलसंकाशः पीनो वलिविवर्जितः। स्फीताः प्रशस्यते स्त्रीणां निन्दितश्चान्यथा द्विजाः ॥३४
पयोधरभरानम्रप्रचलत्त्रिवलीगुरुः । मध्यः शुभावहः स्त्रीणां रोमराजीविभूषितः ॥३५
पणवाभैर्मृदङ्गाभैस्तथा मध्ये यवोपमैः । प्राप्नुवन्ति भयावासक्लेशदौःशील्यमीदृशैः ॥३६
अवक्रानुल्बणं पृष्ठमरोमशमनगर्हितम् । नानास्तरणपर्यङ्करतिसौख्यकरं परम् ॥३७
कुब्जमद्रोणिकं पृष्ठं रोमशं यदि योषितः। स्वप्नान्तरे सुखं तस्या नास्ति हन्यात्पतिं च सा ॥३८
विपुलैः [1]सुकुमारैश्च कुक्षिभिः सुबहुप्रजाः । मण्डूककुक्षिर्या नारी राजानं सा प्रसूयते ॥३९
उन्नतैर्बलिभिर्वन्ध्याःसुवृत्तैः कुलटाः स्त्रियः । [2]जारकर्मरतास्ताः स्युः प्रव्रज्यां च समाप्नुयुः ॥४०
उन्नता च नतैः क्षुद्रा विषमैर्विषमाशया । आयुरैश्वर्यसम्पन्ना वनिता हृदयैः समैः ॥४१
सुवृत्तमुन्नतं पीनमदूरोन्नतमायतम् । स्तनयुग्ममिदं शस्तमतोऽन्यदसुखावहम् ॥४२
उन्नतिः प्रथमे गर्भे द्वयोरेकस्य भूयसी । वामे तु जायते कन्या दक्षिणे तु भवेत्सुतः ॥४३
दीर्घे तु [3]चूचुके यस्याः सा स्त्री धूर्ता रतिप्रिया । सुवृत्ते तु पुनर्यस्या द्वेष्टि सा पुरुषं सदा ॥४४

गोले, पुष्ट, सिकुड़न रहित एवं चिकने योनि प्रदेश स्त्रियों के प्रशंसनीय माने गये हैं, इनके अतिरिक्त सभी निन्दित हैं।३४। उन्नत स्तनों के भार से झुका हुआ एवं चञ्चल तीन सिकुड़न की रेखाओं से युक्त, रोमावलि से विभूषित मध्यभाग स्त्रियों का परमकल्याणदायी एवं प्रशंसनीय बतलाया गया है।३५। पणव, मृदङ्ग, एवं जौ की तरह मध्यभाग वाली स्त्रियाँ भय, निवास का कष्ट एवं दुःशीलता को प्राप्त करती हैं।३६। अवक्र, सीधे एवं समान, अव्यक्त अर्थात् ऊपर की ओर न उठा हुआ, रोमावलिरहित पृष्ठ प्रदेश प्रशंसनीय माना गया है। वह विविध प्रकार के बिछावन, पर्यंक एवं रति का सुख प्रदान करने वाला होता है।३७। स्त्री का पृष्ठ प्रदेश (पीठ) यदि कुबड़ा, असुन्दर एवं रोमावलि से व्याप्त हो तो उसे कभी स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं होती, वह अपने पति को मारने वाली होती है।३८। विस्तृत एवं सुकुमार कुक्षि प्रदेश (उदर) से स्त्रियाँ अनेक सन्तानों वाली होती हैं। जो स्त्री मेढक के समान उदर वाली होती है वह राजा को उत्पन्न करती है।३९। उदर प्रदेश में स्थित बलियों (सिकुड़न की रेखाओं) के उन्नत होने से स्त्रियाँ बन्ध्या होती हैं, गोलाकार होने से कुलटा होती हैं। ऐसी स्त्रियाँ सर्वदा जार (छिनाले) कर्म में निरत रहकर भगेली बनी रहती हैं।४०। नीचे की ओर झुके हुए हृदय प्रदेश से स्त्रियाँ उन्नत स्वभाव वाली होती हैं। ऊँचे-नीचे हृदय प्रदेश से क्षुद्र स्वभाववाली एवं कठोर होती हैं। समान हृदय प्रदेश से युक्त स्त्रियाँ दीर्घायु एवं परम ऐश्वर्य सम्पन्न होती हैं।४१। सुडौल, गोल, उन्नत, पुष्ट, सघन एवं आयताकार दोनों स्तनों के मण्डल स्त्रियों के लिए परम प्रशंसनीय माने गये हैं, इनके विपरीत जो हों वे दुःख देने वाले कहे जाते हैं।४२। प्रथम गर्भावस्था में यदि स्त्रियों के दोनों स्तनों में सेकिसी की पहले विशेष वृद्धि हो तो उसका फल इस प्रकार होता है। वाम स्तन की वृद्धि से कन्या एवं दक्षिण स्तन की वृद्धि से पुत्र की उत्पत्ति होती है।४३। जिस स्त्री के चूचक लम्बे होते हैं वह परमधूर्त एवं रति को विशेष पसन्द करने वाली होती है। इसके विपरीत जिसके चूचक बहुत गोले होते हैं वह सर्वदा अपने पति से द्वेषभाव

---

१. कुसुमाकारैः। २. परकर्म। ३. चुबुके।

स्तनैः सर्पफणाकारैः श्वजिह्वाकृतिभिस्तथा । दारिद्र्यमधिगच्छन्ति स्त्रियः पुरुषचेष्टिताः ॥
अवष्टब्धघटीतुल्या भवन्ति हि तथा द्विजाः ॥४५
सुसमं मांसलं चारु शिरो रोमविवर्जितम् । वक्षो यस्या भवेन्नार्या भोगान्भुक्ते यथेप्सितान् ॥४६
हिंस्रा भवति वक्रेण दौःशील्यं रोमशेन तु । निर्मांसेन तु वैधव्यं विस्तीर्णे कलहप्रिया ॥४७
चतस्रो रक्तगम्भीरा रेखाः स्निग्धाः करे स्त्रियाः । यदि स्युः सुखमाप्नोति विच्छिन्नाभिरनीशता ॥४८
रेखाः कनिष्ठिकामूलाद्यस्याः प्राप्ताः प्रदेशिनीम् । शतमायुर्भवेत्तस्यास्त्रयाणामुन्नतौ क्रमात् ॥४९
संवृत्ताः समपर्वाणस्तीक्ष्णाग्राः कोमलत्वचः । समा ह्यंगुलयो यस्याः सा नारी भोगवर्धिनी ॥५०
बन्धुजीवारुणैस्तुंगैर्नखैरैश्वर्यमाप्नुयात् । खरैर्वक्रैर्विवर्णाभैः श्वेतपीतैरनीशता ॥५१
रक्तैर्मृदुभिरैश्वर्यं निश्छिद्राङ्गुलिभिर्द्विजाः । स्फुटितैर्विषमै रूक्षैः क्लेशं पाणिभिराप्नुयुः ॥५२
समरेखा यवा यासाङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वसु । तासां हि विपुलं सौख्यं धनं धान्यं तथाऽक्षयम् ॥५३
मणिबन्धोऽव्यवच्छिन्नो रेखात्रयविभूषितः । ददाति न चिरादेव भोगमायुस्तथाक्षयम् ॥५४
श्रीवत्सध्वजपद्माक्षगजवाजिनिवेशनैः । चक्रस्वस्तिकवज्रासिपूर्णकुम्भनिभाङ्कुशैः ॥५५

रखने वाली होती हैं ।४४। सर्प के फण एवं कुत्ते की जीभ के समान आकार वाले स्तनों से स्त्रियाँ पुरुष के समान चेष्टा करने वाली तथा दरिद्रता को प्राप्त करने वाली होती हैं। हे द्विजवृन्द ! इसी प्रकार छोटे कलश के समान स्तनों वाली स्त्रियाँ भी पुरुषवत् चेष्टाशील तथा दरिद्र होती हैं ।४५। जिस स्त्री का वक्षस्थल समान, मांसल, शिरा (नस) एवं रोमावलि से रहित होते हैं वह मन चाहे भोग विलास का आनन्द उठाती है ।४६। वक्र वक्षस्थल से हिंसक स्वभाव वाली तथा रोमावलि युक्त वक्षस्थल से स्त्रियाँ दुःशील होती हैं। मांसरहित वक्षस्थल वैधव्य का सूचक तथा विस्तृत वक्षस्थल कलह प्रिय का सूचक होता है ।४७। स्त्री के हाथ में चिकनी गम्भीर लालिमायुक्त चार रेखाएँ यदि हों तो वह प्रचुर सुख प्राप्ति करती है, यदि ये ही रेखाएँ टूटी-फूटी और अपूर्ण हों तो वह प्रभुत्वहीन होती हैं ।४८। जिस स्त्री के हाथ में कनिष्ठिका अँगुली के मूल से निकलने वाली रेखा प्रदेशिनी (तर्जनी) अँगुली तक पहुँचने वाली हो और क्रमशः तीनों अँगुलियों तक उत्तरोत्तर उन्नत हो उसकी आयु सौ वर्ष की होती है ।४९। जिस स्त्री के हाथ की अंगुलियाँ सुन्दर, गोली, समान पर्वोंवाली, आगे की ओर पतली, कोमल चमड़ी से युक्त एवं समान हों, वह स्त्री भोग की वृद्धि करने वाली होती है ।५०। दोपहरी के पुष्प के समान अत्यन्त रक्तवर्ण एवं ऊपर की ओर उठे हुए नखों से स्त्रियाँ ऐश्वर्य की प्राप्त करने वाली होती हैं। प्रखर, टेढ़े-मेढ़े, विवर्ण, श्वेत एवं पीले नखों से अप्रभुत्व को प्राप्त करने वाली होती हैं ।५१। हे द्विजवृन्द ! रक्तिम, मृदुल एवं छिद्ररहित अँगुलियों वाले मनोहर पाणि से स्त्रियाँ ऐश्वर्यशालिनी होती हैं। इसके विपरीत टूटे-फूटे, ऊँचे नीचे एवं रूखे हाथों से वह क्लेशयुक्त रहती हैं ।५२। जिन स्त्रियों के हाथ में समान रेखाएँ तथा अँगूठे में जौ के आकार की रेखा हो, उनको विपुल सुख-साधन तथा अक्षय धन-धान्य की प्राप्ति होती है ।५३। तीन लम्बी रेखाओं से विभूषित अव्यवच्छिन्न मणिबन्ध जिस स्त्री का हो उसे बहुत शीघ्र ही अक्षय भोग ऐश्वर्य एवं दीर्घायु प्राप्त होता है ।५४। श्रीवत्स, ध्वज (पताका) कमल, अक्ष, हाथी, घोड़ा, भवन, चक्र, स्वस्तिक, वज्र, तलवार, पूर्णकलश, अंकुश, राजभवन, छत्र, मुकुट, हार, केयूर, कुण्डल, शंख, तोरण एवं व्यूह के चिह्न

प्रासादच्छत्रमुकुटैर्हारकेयूरकुण्डलैः । शङ्खतोरणनिर्व्यूहैर्हस्तन्यस्तैर्नृपस्त्रियः ।।५६
यस्याः पाणितले रक्ता यूपकुम्भाश्च कुण्डिकाः । दृश्यन्ते चरणे यस्या यज्ञपत्नी भवत्यसौ ।।५७
वीथ्यापणतुलामानैस्तथा मुद्रादिभिः स्त्रियः । भवन्ति वणिजां पत्न्यो रत्नकाञ्चनशालिनाम् ।।५८
दात्रयोक्त्रयुगाबन्धफलोलूखललाङ्गलैः । भवन्ति धनधान्याढ्याः कृषीवलजनाङ्गनाः ।।५९
अनुन्नतशिरासन्धि पीनं रोमविवर्जितम् । गोपुच्छाकृति नारीणां भुजयोर्युगलं शुभम् ।।६०
निगूढग्रन्थयो यस्याः कूर्परौ रोमवर्जितौ । बाहू द्वै ललितौ यस्याः प्रशस्तौ वृत्तकोमलौ ।।६१
उन्नतावनतौ चैव नातिस्थूलौ न रोमशौ । सुखदौ तु सदा स्त्रीणां सौभाग्यारोग्यवर्धनौ ।।६२
स्थूले स्कन्धे वहेद्भारं रोमशे व्याधिता भवेत् । वक्रस्कन्धे भवेद्वन्ध्या कुलटा चोन्नतानने ।।६३
स्पष्टं रेखात्रयं यस्या ग्रीवायां चतुरङ्गुलम् । मणिकाञ्चनमुक्ताढ्यं सा दधाति विभूषणम् ।।६४
अधनाः स्त्री कृशग्रीवा दीर्घग्रीवा च बन्धकी । ह्रस्वग्रीवा मृतापत्या स्थूलग्रीवा च दुःखिता ।।६५
अनुन्नता समांसा च समा यस्याः कृकाटिका । सुदीर्घमायुस्त्वस्यास्तु चिरं भर्ता च जीवति ।।६६
निर्मांसा बहुमांसा च शिराला रोमशा तथा । कुटिला विकटा चैव विस्तीर्णा न च शस्यते ।।६७

जिनके हाथ में हों वे राजा की स्त्रियाँ होती हैं।५५-५६। जिस स्त्री के हाथ में रक्तवर्ण के स्तम्भ तथा कलश एवं चौकोर कुण्डिका पैर में हों वह स्त्री किसी यज्ञकर्त्ता की पत्नी होती है।५७। गली, बाजार, तराजू एवं मुद्राओं के चिह्न जिन स्त्रियों के हाथ में हों वे सुवर्ण रत्न के महान् व्यापारी की पत्नी होती हैं।५८। दात्र (काटने वाले हथियार) योक्त्र (नाधा) जूआ, फाल, उलूखल (ओखली) एवं हल के चिह्नों वाली स्त्रियाँ धन-धान्य सम्पन्न एवं किसान की गृहिणी होती हैं।५९। जिनकी नसें एवं संधियाँ बहुत उन्नत न हों, पुष्ट, मांसल एवं रोमावलि रहित हों, गौ की पूँछ के समान आकार वाली हों ऐसी स्त्रियों की दोनों भुजाएँ कल्याणकारक होती हैं।६०। जिसकी ग्रन्थि (गाठ) ढँकी हुई हो, ऐसी कुहने वाली रोमरहित, गोल, कोमल, ललित भुजाएँ स्त्रियों की प्रशंसनीय मानी गई हैं।६१। उचित स्थान पर उन्नत एवं उचित स्थान पर अवनत बहुत भद्दे, मोटापे से रहित, रोम विहीन बाहुएँ स्त्रियों की सौभाग्य एवं आरोग्य की वृद्धि करने वाली तथा सर्वदा सुखदायिनी होती हैं।६२। जिस स्त्री के दोनों कन्धे बहुत मोटे होते हैं, वह भार ढोनेवाली होती हैं, रोमावलि युक्त कन्धेवाली स्त्री व्याधियुक्त होती है। टेढ़े कंधेवाली बन्ध्या तथा ऊँचे नीचे कन्धे वाली व्यभिचारिणी होती है।६३। जिस स्त्री के कण्ठ में चार अंगुल तक स्पष्ट तीन रेखाएँ हों, वह मणिजटित सुवर्ण के अलंकारों को धारण करने वाली होती है।६४। जिस स्त्री का कण्ठ प्रदेश बहुत दुर्बल रहता है वह निर्धन होती है। लम्बी ग्रीवा वाली स्त्री बंधकी अर्थात् छिनाल होती है। जिस स्त्री का कण्ठ प्रदेश बहुत अल्प होता है उसकी सन्ततियाँ नहीं जीतीं, इसी प्रकार स्थूल ग्रीवा वाली स्त्री सर्वदा दुःख भोगने वाली होती है।६५। जिस स्त्री की कृकाटिका (ग्रीवा की ऊँची ग्रन्थि, जो रीढ़ को जोड़ती है) अनुन्नत अर्थात् ऊँची उठी हुई न हों, मांसल एवं समान होती हैं उसकी आयु बहुत लम्बी होती है, उसका पति भी दीर्घजीवी होता है।६६। वह ग्रन्थि यदि मांस रहित अथवा अत्यन्त मांसल, नसों से व्याप्त, रोमावलियुक्त, वक्र, विकट एवं विस्तीर्ण हो तो वह प्रशंसनीय नहीं है।६७। न अत्यन्त स्थूल, न कृश, न

न स्थूलो न कृशोऽत्यर्थं न वक्रो न च रोमशः । हनुरेवंविधः श्रेयांस्ततोऽन्यो न प्रशस्यते ॥६८
चतुरस्रमुखी धूर्ता मण्डलास्या शिवा[1] भवेत् । अप्रजा वाजिवक्रा स्त्री महावक्रा च दुर्भगा ॥६९
श्ववराहवृकोलूकमर्कटास्याश्च याः स्त्रियः । क्रूरास्ताः पापकर्मिण्यः प्रजाबान्धववर्जिताः ॥७०
मालतीबकुलाम्भोजनीलोत्पलसुगन्धि यत् । वदनं मुच्यते नैतत्पानताम्बूलभोजनैः ॥७१
ताम्राभः किञ्चिदालम्भः स्थौल्यकार्श्यविवर्जितः । अधरो यदि तुङ्गश्च नारीणां भोजदः सदा ॥७२
स्थूले कलहशीला स्याद्विवर्णे चातिदुःखिता । उत्तरोष्ठेन तीक्ष्णेन वनिता चातिकोपना ॥७३
जिह्वा तनुतरा वक्रा ताम्रा दीर्घा च शस्यते । स्थूला ह्रस्वा विवर्णा या वक्रा भिन्ना च निन्दिता ॥७४
शङ्खकुन्देन्दुधवलैः स्निग्धैस्तुङ्गैरसन्धिभिः । मिष्टान्नपानमाप्नोति दन्तैरेभिरनुन्नतैः ॥७५
सूक्ष्मैरतिकृशैर्ह्रस्वैः स्फुटितैर्विरलैस्तथा । रूक्षैश्च दुःखिता नित्यं विकटैर्भामिनी भवेत् ॥७६
सुमृष्टदर्पणाम्भोजपूर्णबिम्बेन्दुसन्निभम् । वदनं वरनारीणामभीष्टफलदं स्मृतम् ॥७७
न स्थूला न कृशा वक्रा नातिदीर्घा समुन्नता । ईदृशी नासिका यस्याः सा धन्या तु शुभङ्करी ॥७८
उन्नता मृदुला या च रेखा शुद्धा न सङ्गता । भ्रूर्वक्रतुल्या सूक्ष्मा च योषितां सा सुखावहा ॥७९

वक्र, न रोमावलियुक्त—ऐसा चिबुक स्त्रियों का परम कल्याणदायी होता है। इसके विपरीत जो हों, वे **प्रशंसनीय** नहीं माने गये हैं ।६८। चौकोर मुखवाली स्त्री धूर्त स्वभाव की होती है । मण्डलाकार अर्थात् **गोले मुखवाली** कल्याणदायिनी होती है । घोड़े के समान मुँह वाली स्त्री सन्तानविहीन एवं लम्बे **मुखवाली स्त्री** दुर्भगा होती है ।६९। इसी प्रकार कुत्ते, शूकर, भेड़िया, उल्लू, बन्दर के समान मुखवाली **स्त्रियाँ क्रूर स्वभाव** वाली पापिनी, सन्तान एवं बन्धु-बान्धवादि से विहीन होती हैं ।७०। मालती, मौलसिरी, लाल कमल एवं नीलकमल के समान सुगन्धि जिससे निकलती हो, स्त्रियों का ऐसा मुख सुस्वादु पेय, ताम्बूल एवं सुभोजन से कभी वञ्चित नहीं होता ।७१। लालिमायुक्त स्निग्ध, स्थूलता एवं कृशता से रहित, ऊपर की ओर उठे हुए स्त्रियों के अधर सर्वदा भोग देने वाले होते हैं ।७२। स्थूल अधरोंवाली स्त्री कलहप्रिय होती है, विवर्ण अधरों वाली अत्यन्त दुःखभागिनी होती है । ऊपर का ओठ यदि बहुत पतला हो तो वह स्त्री अत्यन्त क्रोधी स्वभाव वाली होती है ।७३। जो अत्यन्त पतली, टेढ़ी, लम्बी एवं लालिमायुक्त हो—ऐसी जिह्वा स्त्रियों के लिए प्रशंसनीय मानी गई है । इसके विपरीत मोटी, छोटी, विवर्ण, टेढ़ी एवं भिन्न दिखाई पड़ने वाली जिह्वा निन्दनीय मानी गई है ।७४। शंख, कुन्दपुष्प एवं चन्द्रमा के समान श्वेत, चिकने, ऊँचे, संधि रहित (एक दूसरे में एकदम सटे हुए) एवं अनुन्नत दाँतों से स्त्रियाँ मिष्ठान एवं सुन्दर सुस्वादु पेय प्राप्त करती हैं ।७५। इसके विपरीत बहुत छोटे-छोटे अत्यन्त कमजोर, फूटे हुए, विरल रूखे एवं विकट दाँतों से स्त्रियाँ सर्वदा दुःख भोगने वाली होती हैं ।७६। परम स्वच्छ, सुन्दर, दर्पण, कमल एवं पूर्णिमा के चन्द्रबिम्ब की भाँति आकर्षक एवं मनोहर मुख परमश्रेष्ठ स्त्रियों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाले कहे जाते हैं ।७७। न अत्यन्त मोटी न अत्यन्त कृश, न अत्यन्त लम्बी, समुन्नत नासिका जिसकी हो वह कल्याणी स्त्री धन्य है ।७८। उन्नत, मृदुल (कोमल) शुद्ध रेखाङ्कित, मुख के समान आकार वाली सूक्ष्म भौंहें

---

१. अदृशाा, अदशा ।

[1]धनुस्तुल्याभिः सौभाग्यं वन्ध्या स्याद्दीर्घरोमभिः। पिङ्गलासङ्गता ह्रस्वा दारिद्र्याय न संशयः॥८०
नीलोत्पलदलप्रख्यैराताम्रैश्चारुपक्ष्मभिः । वनिता नयनैरेभिर्भोगसौभाग्यभागिनी ॥८१
खञ्जनाक्षी मृगाक्षी च वराहाक्षी वराङ्गना । यत्रयत्र समुत्पन्ना महान्तं भोगमश्नुते ॥८२
अगम्भीरैरसंश्लिष्टैर्बहुरेखाविभूषितैः । राजपत्न्यो भवन्तीह नयनैर्मधुपिङ्गलैः ॥८३
वायसाकृतिनेत्राणि दीर्घापाङ्गानि योषिताम्। अनाविलानि चारूणि भवन्ति हि विभूतये ॥८४
गम्भीरैः पिङ्गलैश्चैव दुःखिताः स्युश्चिरायुषः। वयोमध्ये त्यजेत्प्राणानुन्नताक्षी तु[2] याङ्गना ॥८५
रक्ताक्षी विषमाक्षी च [3]धूम्राक्षी प्रेतलोचना । वर्जनीया सदा नारी श्वनेत्रा चैव दूरतः ॥८६
उद्भ्रान्तकैः करैश्चित्रैर्नयनैस्त्वङ्गनास्त्विह । मद्यमांसप्रिया नित्यं चपलाश्चैव सर्वतः ॥८७
करालाकृतयः कर्णा नभःशब्दास्तु संस्थिताः । वहन्ति विकसत्कान्तिं हेमरत्नविभूषणम् ॥८८
खरोष्ट्रनकुलोलूककपिलश्रवणाः स्त्रियः । प्राप्नुवन्ति महद्दुःखं प्रायशः प्रव्रजन्ति च ॥८९
ईषदापाण्डुगण्डा या सुवृत्ता पर्वणि त्विह । प्रशस्ता निन्दिता त्वन्या रोमकूपकदूषिता ॥९०
अर्धेन्दुप्रतिमाभोगमरोम तु समाहितम् । भोगारोग्यकरं श्रेष्ठं ललाटं वरयोषिताम् ॥९१

स्त्रियों को सुख देने वाली होती हैं ।७९। धनुष के समान टेढ़ी भौहें सौभाग्य देने वाली होती हैं, दीर्घ रोमावलि युक्त स्त्रियों की भौहें उनके वन्ध्यापन की सूचना देती हैं । इसी प्रकार पिङ्गल वर्णवाली, असंगत एव छोटी भौहें निस्सन्देह दरिद्रता देनेवाली होती हैं ।८०। नीले कमल दल के समान मनोहर, कुछ लालिमा लिये हुए, सुन्दर, भौहों से विभूषित नेत्रों वाली स्त्री सौभाग्य एवं भोग विलास को प्राप्त करने वाली होती हैं ।८१। खञ्जन, मृग एवं शूकर के समान नेत्रोंवाली सुन्दरी स्त्री जहाँ तहाँ उत्पन्न होकर महान् भोग एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाली होती हैं ।८२। गंभीरता रहित असंश्लिष्ट, बहुत रेखाओं से विभूषित मधु के समान लाल वर्ण के नेत्रों वाली स्त्रियाँ इस लोक में राजपत्नी के रूप में उत्पन्न होती हैं ।८३। कौअे के आकार के समान, लम्बे कोण वाले स्वच्छ सुन्दर स्त्रियों के नेत्र उनके धन सम्पत्ति की सूचना देने वाले होते हैं ।८४। अत्यन्त गम्भीर (गहरे) पीले वर्ण के नेत्रों वाली स्त्रियाँ लम्बी आयु प्राप्त कर दुःख भोगने वाली होती हैं । जो स्त्री उन्नत नेत्रों वाली होती है वह अपनी जवानी में ही मृत्यु को प्राप्त करने वाली होती है ।८५। लाल, विषम, धूमिल एवं प्रेतों के समान नेत्रों वाली स्त्री सर्वदा वर्जनीय है, इसी प्रकार कुत्ते के समान नेत्रवाली स्त्री को भी दूर से ही छोड़ देना चाहिये ।८६। उद्भ्रान्त (टपरे) केकर (ऐंचाताना) एवं विचित्र वर्ण वाले नेत्रों से स्त्रियाँ मद्य मांस को पसन्द करने वाली तथा सर्वत्र चञ्चल रहती हैं ।८७। कराल आकृति वाले लम्बे कान स्त्रियों के सुवर्ण एवं कणों के आभूषण से युक्त मनोहर कान्ति प्राप्त करनेवाले होते हैं ।८८। गधा, ऊँट, नेवला एवं उलूक के समान कानों वाली एवं कपिल वर्ण के कानों वाली स्त्रियाँ महान् दुःख भोगती हैं और प्रायः इधर-उधर भ्रमण करने वाली होती हैं ।८९। कुछ पाण्डु वर्ण वाले गोल कपोल स्त्रियों के प्रशंसनीय माने गये हैं । इसके विपरीत रोम कूपों से दूषित कपोल वाली स्त्रियाँ दूषित बतलायी गई हैं ।९०। अर्धचन्द्रमा के समान आकार वाले, रोमावलि रहित, समान, सुन्दर ललाट सुन्दरी स्त्रियों के भोग एवं आरोग्य की वृद्धि करने वाले होते हैं ।९१। जैसा

---

१. नेत्रतुल्याभिः । २. रुजं गता । ३. वृत्ताक्षी ।

द्विगुणं परिणाहेन ललाटं विहितं च यत् । शिरः प्रशस्तं नारीणामधन्या हस्तिमस्तका ॥९२
सूक्ष्माः कृष्णा मृदुस्निग्धाः कुञ्चिताग्राः शिरोरुहाः । भवन्ति श्रेयसे स्त्रीणामन्ये स्युः क्लेशशोकदाः ॥९३
हंसकोकिलवीणालिशिखिवेणुस्वराः स्त्रियः । प्राप्नुवन्ति बहून्भोगान्भृत्यानाज्ञापयन्ति च ॥९४
भिन्नकांस्यस्वरा नारी खरकाकस्वरा च या । रोगं व्याधिं भयं शोकं दारिद्र्यं चाधिगच्छति ॥९५
हंसगोवृषचक्राह्वमत्तमातङ्गगामिनी । स्वकुलं द्योतयेन्नारी महिषी पार्थिवस्य च ॥९६
श्वशृगालगतिर्निन्द्या या च वायसवद्व्रजेत् । दासी मृगगतिर्नारी द्रुतगामी च बन्धकी ॥९७
फलिनी रोचना हेमकुङ्कुमप्रभ एव च । वर्णः शुभकरः स्त्रीणां यश्च दूर्वाङ्कुरोपमः ॥९८
मृदूनि मृदुरोमाणि नात्यन्तस्वेदकानि च । सुरभीणि च गात्राणि यासां ताः पूजिताः स्त्रियः ॥९९
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् । नालोमिकां नातिह्रस्वां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥१००
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥१०१
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् । तनुलोमकेशदशनां मृदङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥१०२
महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः । स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥१०३

कि ललाट बतलाया गया है, विस्तार में उससे द्विगुणित शिर स्त्रियों के प्रशंसनीय माने गये हैं। हाथी के समान विशाल शिर वाली स्त्री प्रशंसनीय नहीं समझी जाती है।९२। सूक्ष्म (महीन) काले, मृदुल चिकने, आगे की ओर कुञ्चित (घुंघराले) शिर के केश स्त्रियों के कल्याण के लिए होते हैं, इसके विपरीत जो हैं वे क्लेश और शोक देने वाले कहे जाते हैं।९३। हंस, कोकिल, वीणा, भ्रमर, मयूर और वेणु के समान स्वर वाली स्त्रियाँ बहुत भोग एवं ऐश्वर्य की अधिकारिणी होती हैं, वे नौकरों पर शासन चलाने वाली होती हैं।९४। जो स्त्री फूटे हुए कांसे के वर्तन के समान स्वर वाली एवं गधे और कौओ के समान स्वरवाली होती है वह रोग, शोक, व्यादि, भय एवं दरिद्रता को प्राप्त करने वाली होती है।९५। हंस, गौ, वृषभ, चक्रवाक एवं मतवाले हाथी के समान गमन करने वाली स्त्री अपने कुल को प्रकाशित करने वाली अथवा राजा की स्त्री होती है।९६। कुत्ते और सियार के समान गमन करने वाली स्त्री निन्दित मानी गई है, इसी प्रकार जो कौओ के समान चलती है वह भी निन्दनीय है। मृग के समान गमन करने वाली स्त्री दूसरे की दासी एवं शीघ्र गमन करने वाली व्यभिचारिणी होती है।९७। मेंहदी, हरिद्रा, गोरोचन, सुवर्ण, केसर और चम्पे के पुष्प के समान शरीर का वर्ण स्त्रियों के लिए कल्याणकारी होता है।९८। इसी प्रकार दूब के अंकुर के समान (गोरे) वर्ण भी स्त्रियों का प्रशस्त बतलाया गया है। मृदुल, मनोहररोमावलि से विभूषित अत्यन्त पसीना न होने वाले सुगन्धित शरीर जिन स्त्रियों के हों वे पूजनीय हैं।९९। कपिल (भूरे) वर्ण की कन्या का विवाह न करें। इसी प्रकार रुग्ण, अधिक अंगों वाली, लोम विहीन, वामनाकृति, वकवादिनी एवं पिंगल वर्णवाली कन्याओं के साथ विवाह नहीं करना चाहिये।१००। नदी, वृक्ष, नक्षत्र, पर्वत, पक्षी, सर्प, दासादि भाव व्यञ्जक तथा भयानक नाम जिन कन्याओं के हों उनके साथ भी विवाह नहीं करना चाहिये।१०१। मनोहर अंगोंवाली सुन्दर नाम से विभूषित, हंस एवं हाथी के समान गमन करमे वाली, सूक्ष्म लोम, सूक्ष्म केश एवं सूक्ष्म दांतों वाली कोमलाङ्गी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये।१०२। प्रचुर धन-धान्य सम्पत्ति के समूह हों, गौ, अज, (बकरी) अवि (भेंड़) आदि दूध देने वाले पशुओं की भी अधिकता हो, किन्तु फिर भी इन दस कुलों को स्त्री सम्बन्ध करते हुए छोड़ देना चाहिये।१०३।

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दोरोमशार्शसम् । क्षयामयाव्यपस्मारिश्वित्रकुष्ठिकुलानि च ॥१०४

पादौ सुगुल्फौ प्रथमं प्रतिष्ठौ जङ्घे द्वितीयं च सुजानुचक्रे ।
मेढ्रोरुगुह्यं च ततस्तृतीयं नाभिः कटिश्चेति चतुर्थमाहुः ॥१०५
उदरं कथयन्ति पञ्चमं हृदयं षष्ठमथ स्तनान्वितम् ।
अथ सप्तममंसजत्रुणी कथयन्त्यष्टममोष्ठकन्धरे ॥१०६
नवमं नयने च सभ्रुणी सललाटं दशमं शिरस्तथा ।
अशुभेष्वशुभं दशाफलं चरणं चरणाद्यशुभेषु शोभनम् ॥१०७
इदं महात्मा स महानुभावः शचीनिमित्तं गुरुरब्रवीद्द्विजाः ।
शक्रेण पृष्टः सविशेषमुत्तमं संलक्ष्यमुक्तं वरयोषलक्षणम्[1] ॥१०८

मत्सकाशात्पुनः श्रुत्वा लक्षणं पुरुषस्य च । यथाधुना भवद्भिस्तु श्रुतं मत्तो द्विजोत्तमाः ॥१०९
लक्षणेभ्यः प्रशस्तं तु स्त्रीणां सद्वृत्तमुच्यते । सद्वृतमुक्त्वा या स्त्री सा प्रशस्ता न च लक्षणैः ॥११०
ईदृग्लक्षणसम्पन्नां सुकन्यामुद्वहेत्तु यः । ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा कीर्तिस्तत्र तिष्ठति नित्यशः ॥१११

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीलक्षणवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५।

क्रियाहीन, पौरुषरहित, वेदविहीन, अधिकरोमवाले, अर्श रोग वाले, क्षय रोगवाले, मृगी रोग वाले, सर्वदा किसी न किसी रोग में ग्रस्त रहने वाले, श्वेत कुष्ठ एवं गलित कुष्ठ वाले कुलों के साथ विवाह संस्कार न करे ।१०४। स्त्रियों के दोनों पैर और गुल्फ प्रथम प्रशंसनीय माने गये हैं । फिर सुन्दर जानु (घुटने) भाग से सुशोभित जंघाओं की प्रशंसा में द्वितीय स्थान हैं । फिर मेढ्र (लिङ्ग) उरु एवं गुह्याङ्ग का तृतीय स्थान है, कटि एवं नाभि का चतुर्थ स्थान बतलाया गया है ।१०५। पाँचवाँ स्थान सुन्दरता में उदर का है, स्तनमण्डल समेत हृदय का छठाँ स्थान है । कंधा और उसकी सन्धि का सातवाँ तथा दोनों ओठों का आठवाँ स्थान है ।१०६। नवाँ स्थान सुन्दर भौंहों से युक्त नेत्रों का तथा दसवाँ स्थान सुन्दर ललाट से सुशोभित शिर का है । इन चरणादि अङ्गों के उपर्युक्त लक्षणों के अनुसार शुभ होने पर शुभ दशा एवं फल भोगना पड़ता है, अशुभ होने पर अशुभ भोगना पड़ता है ।१०७। द्विजवृन्द ! महानुभाव एवं परममहात्मा बृहस्पति ने इन्द्र द्वारा शची के लिए पूछे जाने पर स्त्रियों के इन समस्त लक्षणों को विशेषता पूर्वक बतलाया था ।१०८। हे द्विजवृन्द ! जिस प्रकार आप लोगों ने स्त्रियों के समस्त शुभाशुभ लक्षणों को सुना है उसी प्रकार पुरुषों के समस्त लक्षणों को मुझसे सुनकर अवगत कर लीजिये ।१०९। मैंने जिन शुभाशुभ फलदायक लक्षणों की ऊपर चर्चा की है, उनसे बढ़कर स्त्रियों के सदाचरण की प्रशंसा की गई है। अच्छे लक्षणों वाली भी स्त्री यदि सदाचरण विहीन है तो वह प्रशंसनीय नहीं है ।११०। इन उपर्युक्त शुभ लक्षणों से सुशोभित सुकन्या के साथ जो विवाह करता है, उसके गृह में सर्वदा ऋद्धि, वृद्धि एवं कीर्ति का निवास रहता है ।१११

श्री भविष्यमहापुराण के ब्रह्मचर्य पर्व में स्त्रीलक्षण वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।५।

---

१. वरयोषाचिह्नमित्यर्थः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणसद्वृत्तवर्णनम्

शतानीकउवाच

सद्वृत्तं श्रोतुमिच्छामि देवस्त्रीणां सुविस्तरात् । उत्तमाधममध्यं च सम्बन्धे स्त्रीकृते यथा ॥१

सुमन्तुरुवाच

शतानीक महाबाहो ब्रह्मलोके पितामहः ! उक्त्वा सलक्षणं स्त्रीणां सद्वृत्तं चोक्तवान्पुनः[1] ॥२
यथोक्तं ब्रह्मणां[2] तेषामृषीणां कुरुनन्दन । स प्रेयो वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥३
शृणुध्वं द्विजशार्दूलाः स्त्रीणां सद्वृत्तमादितः । वक्ष्ये युष्मानशेषं वै लोकानुग्रहकाम्यया ॥४
त्रिवर्गप्राप्तये वक्ष्ये स्त्रीवृत्तं गृहमेधिनाम् । प्राग्विद्यादीनुपादाय तैरर्थांश्च यथाक्रमम् ॥
विन्देत सदृशीं भार्यां शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥५
गृहाश्रमो हि निःस्वानां महत्येषा विडम्बना । तस्मात्पूर्वमुपादेयं वित्तमेव गृहैषिणा ॥६
वरं सोढा मनुष्येण तीव्रा नरकवेदना । न त्वेव च गृहे दृष्ट पुत्रदारक्षुधार्दितम् ॥७

अध्याय ६

स्त्रीलक्षण-सद्वृत्त वर्णन

शतानीक बोले—हे मुनि जी ! अब मैं उन देवस्त्रियों के सदाचार को सविस्तार सुनना चाहता हूँ स्त्रियों के सम्बन्ध में जिनका उत्तम, मध्यम एवं अधम कोटि का स्थान माना गया है ।१

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु शतानीक ! ब्रह्मलोक में स्त्रियों के लक्षण सुना चुकने के उपरान्त पितामह ब्रह्मा ने स्त्रियों के सदाचार के सम्बन्ध में पुनः बोले ।२। हे कुरुनन्दन ! जिस प्रकार उन ऋषियों एवं ब्राह्मणों से स्त्रियों के सदाचार के सम्बन्ध में कहा था, उस कल्याणदायक वचन को सुन कर ब्रह्मा ने कहा ।३। द्विजशार्दूलगण ! प्रारम्भ से स्त्रियों के सदाचार का श्रवण कीजिये । लोक पर अनुग्रह करने की इच्छा से मैं स्त्रियों के समस्त सदाचारों को बतला रहा हूँ ।४। गृहस्थाश्रम में निवास करने वालों को विवर्ग धमार्थकाम की प्राप्ति हो जाय इस पवित्र उद्देश्य से ही मैं स्त्रियों के इन सदाचारों को बतला रहा हूँ । सर्वप्रथम विद्या आदि का उपार्जन कर एवं उनसे धन प्राप्ति कर शास्त्रीय विधिपूर्वक अपने अनुरूप स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये ।५। निर्धन व्यक्तियों के लिए गृहस्थी एक बड़ी बाधा एवं बिडम्बना के रूप में दुःखदायिनी हो जाती है अतः गृहस्थी की इच्छा रखने वाले को प्रथमतः धन का ही उपार्जन करना चहिये ।६। मनुष्य को तीव्र नाटकीय वेदना सह लेना श्रेष्ठ है, पर घर में भूख से व्याकुल

---

१. स नः । २. विप्राणाम् ।

असम्भवे शिशुं दृष्ट्वा रुदन्तं प्रार्थनापरम् । वज्रसारमयं मन्ये हृदयं यन्न दीर्यते ॥८
साध्वीं भार्यां प्रियां दृष्ट्वा कुचैलां क्षुत्कृशीकृताम् । अस्य दुःखस्य तन्नास्ति सुखं यत्समतां व्रजेत् ॥९
रूक्षान्विवर्णान्क्षुधितान्भूमिप्रस्तरशायिनः । पुत्रदारान्निजान्दृष्ट्वा किमकार्यं भवेन्नृणाम् ॥१०
बाह्योत्तरीयं क्षुत्क्षामं दृष्ट्वा दीनमुखं सुतम् । मृत्युरेवोत्सवः पुंसां व्यसनं जीवितं द्विजाः ॥११
परिसीदत्स्वपत्येषु दृष्ट्वा दीनमुखीं प्रियाम् । वज्रकार्यशरीरास्ते ये न यान्ति सहस्रधा ॥१२
तस्मादर्थविहीनस्य पुंसो दारपरिग्रहात् । कुतस्त्रिवर्गसंसिद्धिर्यातनैव हि तस्य सा ॥१३
अभार्यस्याधिकारोऽस्ति न द्वितीयाश्रमे यथा । तद्वदर्थविहीनानां सर्वत्र नाधिकारिता ॥१४
केचित्त्वपत्यमेवाहुस्त्रिवर्गावाप्तिसाधनम् । पुंसामर्थः कलत्रं च येऽन्ये नीतिविदो विदुः ॥१५
धर्मोऽपि द्विविधो यस्मादिष्टापूर्तक्रियात्मकः । स च दारात्मकः सर्वं ज्ञेयमर्थैकसाधनम् ॥१६
निजेनापि[1] दरिद्रेण लोको लज्जति बन्धुना । परोऽपि हि मनुष्याणामैश्वर्यात्स्वजनायते ॥१७
न दरिद्रं समीपेऽपि स्थितवन्तं प्रपश्यति । दूरस्थमपि वित्ताढ्यमादराद्भजते जनः ॥१८

पुत्र स्त्री का देखना उचित नहीं है ।७। असमर्थता में प्रार्थनापूर्वक किसी वस्तु के लिए लालायित होकर रोने वाले बालक को देखकर जो हृदय फट नहीं जाता वह मानो वज्र के सारभाग से रचा गया है ।८। अपनी साध्वी प्रियतमा को मलिन वस्त्र धारण किये हुए क्षुधा से दुर्बलाङ्गी देखने के समान संसार में कोई दुःख नहीं है जो इसकी समानता कर सके ।९। क्षुधा से पीड़ित रुखे मकान सुख पत्थर की शिला एवं भूमि पर शयन करने वाले अपने स्त्री पुत्रों को देखकर मनुष्य के लिए संसार में कुछ भी अकरणीय नहीं है ।१०। द्विजगण ! क्षुधा से अतिशय पीड़ित वस्त्रहीन दीनमुख पुत्र को देखकर पुरुष को मर जाना ही श्रेष्ठ है, ऐसा जीवन तो विडम्बना मात्र है ।११। बच्चों को क्षुधा से व्याकुल देख अपनी प्रियतमा जब अतिशय दीनमुखी हो जाती तो उसे देखकर जो सहस्रों टुकड़ों में चूर्ण नहीं हो जाता वह वज्र का शरीर है ।१२। इसलिए धनहीन पुरुष को विवाह करने से धर्मार्थकाम की सिद्धि भला किस प्रकार हो सकती है उसके लिए तो स्त्री केवल दुःख देने वाली ही होगी ।१३। जिस प्रकार स्त्री विहीन पुरुष को गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने का कोई अधिकार नहीं है उसी प्रकार धन विहीन पुरुषों का किसी भी कार्य में अधिकार नहीं है ।१४। कुछ लोग सन्तानों को ही त्रिवर्ग-धर्मार्थ काम की प्राप्ति में साधनभूत बतलाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य नीतिज्ञ जन हैं वे स्त्री और धन को ही त्रिवर्ग का साधक बतलाते हैं ।१५। धर्म भी इष्ट अर्थात् अग्निहोत्र, तप, सत्य, यज्ञ, दान, वेदरक्षा, आतिथ्य, वैश्वदेव और ध्यान आदि कार्य दूसरा पूर्व अर्थात् बावली, कुआ, तालाब, देवमंदिर धर्मशाला, बगीचा आदि का निर्माण करवाना ये दोनों धर्मकार्य स्त्री के बिना नहीं सम्पन्न हो सकते धन तो इन सबका मुख्य सहायक ही है, अतः दोनों को धर्मों का एक मात्र साधन धन को ही जानना चाहिये ।१६। लोग अपने ही दरिद्र भाई से लज्जा करते हैं, और दूसरी ओर ऐश्वर्य के कारण दूसरे के साथ भी जिसका अपने साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, स्वजन की भाँति व्यवहार करते हैं ।१७। अपने पड़ोस में भी रहने वाले दरिद्र को लोग नहीं पहचानते, दूसरी ओर

---

१. लोको निजोऽप्यपार्थस्य शत्रुर्भवति भूमिप—इति पाठान्तरम् ।

तस्मात्प्रयत्नतः पूर्वमर्थमेव प्रसाधयेत । स हि मूलं त्रिवर्गस्य गुणानां गौरवस्य[१] च ।।१९
सर्वेऽपि हि गुणा विद्याकुलशीलादयो नृणाम् । सन्ति तस्मिन्नसन्तोऽपि सन्ति सन्तोऽपि नासति ।।२०
शास्त्रं शिल्पं कलाः कर्म यच्चान्यदपि चेष्टितम् । साधनं[२] सर्वमर्थानामर्था धर्मादिसाधनाः ।।२१
साधनानां त्रिवर्गोऽस्ति तं विना केवलं नृणाम् । अजागलस्तनस्येव निधनायैव संभवः ।।२२
प्राक्पुण्यैर्विपुला सम्पद्धर्मकामादिहेतुका । भूयो धर्मेण सामुत्र तयां[३] तामिति[४] च क्रमः ।।२३
एकचक्रकमेतद्धि प्रोक्तमन्योन्यहेतुकम् । पूर्वपश्चिमबाहुभ्यामुत्तराधरमध्यमाः ।।२४
विज्ञाय मतिमानेवं यस्त्रिवर्गं निषेवते । संख्याशतसमायुक्तैरवाप्नोत्युत्तरोत्तरम् ।।२५
नाभार्यस्याधिकारोऽस्ति त्रिवर्गे निर्धनस्य वा । ना भार्यायामतः पूर्वमर्थमेव प्रसाधयेत् ।।२६
तस्मात्क्रमागतैरर्थैः स्वयं वाधिगतैर्युतः । क्रियायोग्यैः समर्थश्च कुर्याद्दारपरिग्रहम् ।।२७
अनुरूपे कुले जातां श्रुतवित्तक्रियादिभिः । लभेतानिन्दितां कन्यां मनोज्ञां धर्मसाधनाम् ।।२८
पुमानर्धपुमांस्तावद्यावद्भार्यां न विदन्ति । तस्माद्यथाक्रमं काले कुर्याद्दारपरिग्रहम् ।।२९

दूर निवास करने वाले धनिक की भी आदरपूर्वक सेवा करते हैं ।१८। इन सब बातों को जान कर मनुष्य को सर्वप्रथम प्रयत्नपूर्वक धन सञ्चय करना चाहिये वही त्रिवर्ग का एकमात्र साधक है यही नहीं वह गौरव एवं समस्त गुणों का मूल स्थान है ।१९। विद्या कुलीनता, शील आदि मनुष्यों के सभी गुण धनवान् व्यक्तियों में न रहने पर भी रहते हैं, और दूसरी ओर निर्धन व्यक्तियों में ये रहने पर भी नहीं रहते ।२०। शास्त्र, शिल्प, कलाएँ, कर्म एवं संसार के जितने भी व्यापार हैं, वे सब धन प्राप्त करने के साधन हैं, और धन धर्मादि (पुण्य कार्यों) का साधन हैं ।२१। इसलिए यह धन ही त्रिवर्ग का साधनभूत है उसके बिना मनुष्य की उत्पत्ति बकरी के गले में लटकते हुए निरर्थक स्तनों की भाँति केवल मृत्यु के लिए है ।२२। पूर्व जन्म के महान पुण्यकर्मों से धर्मार्थकाम की साधनभूत विपुल धन सम्पत्ति की प्राप्ति होती है और उस सम्पत्ति से धर्मादि पुण्य कार्य होते हैं । इस प्रकार ये दोनों धन और धर्मादि परस्पर आश्रित रहते हैं ।२३। ये दोनों एक ही चक्र के अवयव कहे जाते हैं इनका अन्योन्यहेतुक सम्बन्ध है । पूर्व और पश्चिम के बाहुओं से उत्तर अधर एवं मध्यम का ज्ञान होता है अर्थात् रथ के दोनों चक्र से उसके आगे पीछे और मध्य भाग का ज्ञान होता है । इस प्रकार जानबूझकर जो बुद्धिमान् त्रिवर्ग का अर्जन करता है वह पूर्ण सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त कर उत्तरोत्तर कल्याण एवं सुख का अनुभव करता है ।२४-२५। किन्तु इस त्रिवर्ग में स्त्री विहीन एवं धनविहीन का अधिकार नहीं है । धनविहीन का तो जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका स्त्री पर भी अधिकार नहीं है, अतः सर्वप्रथम धन का अर्जन करना चाहिए ।२६। अतः क्रमानुसार शनैः शनैः अर्जित किये गये अथवा बिना परिश्रम किये हुए प्राप्त पर्याप्त धन का संग्रह कर क्रियाओं को सम्पन्न करने में समर्थ बनकर स्त्री ग्रहण करना चाहिये ।२७। अपने समान विद्या, धन एवं क्रियाओं से सम्पन्न कुल में उत्पन्न होने वाली मनोहर धर्म की साधन भूत प्रशंसनीय कन्या का ग्रहण करना चाहिये ।२८। पुरुष तब तक आधा पुरुष है जब तक वह पत्नी को प्राप्त नहीं कर लेता इसलिए उसे उपर्युक्त क्रम से उचित समय आने पर स्त्री को ग्रहण करना चाहिए ।२९।

---

१. रक्षणाय च । २. सम्पदा । ३. धर्मार्थौ ।

एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः । अभार्योऽपि [1]नरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु ।।३०
पत्नीपरिग्रहाद्धर्मस्तथार्थो बहुलाभतः । सत्प्रीतियोगात्कामोऽपि त्रयमस्यां विदुर्बुधाः ।।३१
त्रिधा विवाहसम्बन्धो हीनतुल्याधिकैः सह । तुल्यैः सह समस्तेषामितरौ नीचमध्यमौ ।।३२
असमैर्निन्द्यते साद्भिरुत्तमैः परिभूयते । तुल्यैः प्रशस्यते यस्मात्तस्मात्साधुतमो मतः ।।३३
कृत्वैवाधिकसम्बन्धमपमानं समश्नुते । न दैशमानतिं गच्छेन्नैव नीचैः सहेच्यते[2] ।।३४
उत्तमोऽपि च सम्बन्धो नीचैस्तत्समतां व्रजेत् । अतस्तं वर्जयेद्धीमान्निन्दितं सदृशोत्तमैः ।।३५
विजातीयैश्च सम्बन्धं सहेच्छन्ति न सूरयः । उभयोर्भ्रश्यते तेन यथा कोकिलया शुकः ।।३६
तद्भाति कुलबाह्यत्वाददश्यं चावमानतः । प्रतिपत्तेरशक्यत्वाच्चोत्तमोऽपि न शस्यते ।।३७
एकेऽपि परिहर्तव्या अन्ये परिहरन्त्युत । तस्माद्द्वावपि नैवेष्टौ सम्बन्धावधमोत्तमौ ।।३८
एकपात्रादिभिर्येषामुपचारैः परस्परम् । प्रत्यहं वर्धते स्नेहः सम्बन्धः सोऽभिधीयते ।।३९
यत्रावाहविवाहादावन्योऽन्याः प्रतिपत्तयः । स्पर्धयैव प्रवर्धन्ते तं सम्बन्धं विदुर्बुधाः ।।४०

जिस प्रकार एक चक्के का रथ और एक पंख का पंक्षी अपना कार्य नहीं कर सकता, बेकार है, स्त्रीविहीन पुरुष भी सभी कार्यों में अयोग्य है ।३०। पत्नी के ग्रहण करने पर धर्म अनेक प्रकार के लाभ से धन एवं परस्पर सच्ची प्रीति से काम की प्राप्ति होती है इस प्रकार पण्डित लोग तीन प्रकार के विवाह सम्बन्ध स्त्री के ग्रहण में तीनों वर्गों की प्राप्ति बतलाते हैं ।३१। विवाह कर्म तीन प्रकार के बतलाये गये हैं, हीन, समान एवं उच्च के साथ । इनमें अपने बराबर वाले के यहाँ विवाह करने को समान और दोनों को नीच और मध्यम कहा है ।३२। असमान के यहाँ विवाह करने को साधुलोग निन्दित बतलाते हैं । उत्तम के यहाँ करने से अनादर होता है अतः तुला स्थिति वालों के साथ विवाह करने को सभी लोग बहुत अच्छा बतलाते हैं ।३३। अपने से अधिकवाले के यहाँ सम्बन्ध करने से सर्वथा अपमान भोगना पड़ता है, अतः मनुष्य को ऐसे लोगों के साथ अपमान नहीं सहना चाहिये इसी प्रकार नीच स्थिति वाले के साथ भी उसे विवाह करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए ।३४। जिस प्रकार उत्तम के साथ सम्बन्ध वर्जनीय है उसी प्रकार (उत्तम को) नीचों के साथ सम्बन्ध करने से नीच बनना पड़ता है । यह सब जान बूझ कर बुद्धिमान् को उत्तम के समान ही नीच को भी वर्जित रखना चाहिये ।३५। पण्डितजन विजाति वालों के साथ सम्बन्ध करने की इच्छा नहीं करते क्योंकि विजातिवालों के साथ सम्बन्ध करने से दोनों भ्रष्ट हो जाते हैं जैसे कोकिला के साथ शुक ।३६। अपने कुल से उच्चकुल के साथ सम्बन्ध होने के कारण यद्यपि नीच कुल वाला शोभा पाता है पर अपमान और सामर्थ्य के अभाव के कारण दुःख सहना पड़ता है इसलिए विवाह में उत्तम कुल वाला भी प्रशंसनीय नहीं है ।३७। एक होने पर भी नीच के या ऊँच के साथ विवाह संस्कार परिवर्जनीय है, अन्य सभी लोग ऐसे बेमेल विवाहों को वर्जित करते हैं, इसीलिए विवाह सम्बन्ध में उत्तम और अधम ये दोनों विवाह वर्जनीय हैं ।३८। जिन सत्पात्र के व्यवहारादि से परस्पर प्रेम प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है वही सम्बन्ध कहा गया है ।३९। जिनके विवाहादि के अवसरों पर एक दूसरे के गौरव एवं सम्मानादि की रक्षा के लिए स्पर्द्धा बढ़ती रहती है पण्डित लोग उसी को सम्बन्ध कहते

---

१. त्याज्यः सर्वेषु कर्मसु २. सम्बन्ध इति शेषः ।

व्यसनेऽभ्युदये वापि येषां प्राणैर्धनैरपि । सहैकप्रतिपत्तित्वं सम्बन्धानां स उत्तमः ॥४१
स्नेहव्यक्तौ मनुष्याणां द्वावेव निकषोपलौ । तथा कृतज्ञतायां च व्यसनाभ्युदयागमौ ॥४२
स च स्नेहो नृणां प्रायः समेष्वेव[1] हि दृश्यते । साम्यं चाप्युपगन्तव्यं वित्तशीलकुलादिभिः ॥४३
तस्माद्विवाहसम्बन्धं संख्यमेकान्तकारिणाम् । सदृशैरेव कुर्वीत नोत्तमेनाप्यनुत्तमैः[2] ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
स्त्रीलक्षणसद्वृत्तवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६।

अथ सप्तमोऽध्यायः

विवाह-धर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच[3]

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥१
सहजो न भवेद्यस्या न च विज्ञायते पिता । नोपयच्छेत[4] तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥२
ब्राह्मणानां प्रशस्ता स्यात्सवर्णा दारकर्मणि । कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोऽवराः ॥३

हैं ।४०। अभ्युदय तथा संकट के अवसर पर जो परस्पर प्राणों एवं धनों से एक दूसरे की सहायता के लिए साथ साथ सन्नद्ध रहते हैं, वही सम्बन्धों में उत्तम माना जाता है ।४१। मनुष्यों की कृतज्ञता एवं स्नेह को प्रकट करने के लिए उस की दो कसौटी मानी गयी हैं, अभ्युदय और और संकटावस्था ।४२। मनुष्यों में वह स्नेह सम्बन्ध प्रायः समान स्थिति वाले के साथ ही होता है अतः धन, शील सदाचार एवं कुल में समान के साथ ही स्नेह सम्बन्ध भी करना चाहिए ।४३। इन सब बातों को जानकर विद्वान् पुरुष को मित्रता एवं विवाह सम्बन्ध सर्वदा समान स्थिति वाले के साथ ही करना चाहिये । उत्तम अथवा नीच स्थिति वाले के साथ नहीं ।४४

श्री भविष्यमहापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्रीलक्षण एवं सदाचार वर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

विवाह धर्म वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—राजन् ! अपनी माता की सपिण्ड (सात पीढ़ी) तथा अपने पिता की सगोत्र कन्या को छोड़कर अन्य कन्याओं के साथ द्विजाति का मैथुन एवं विवाहादि संस्कार करना प्रशंसनीय माना गया है ।१। जिसका कोई सगा भाई न हो जिसके पिता का कोई पता न हो, बुद्धिमान् पुरुष को उस कन्या के साथ पुत्रिका की आशंका से विवाह नहीं करना चाहिये ।२। ब्राह्मण का विवाह संस्कार सवर्ण (ब्राह्मण) के यहाँ ही प्रशस्त माना गया है कामवश उसे अन्य तीनों वर्णों की कन्याओं के साथ भी क्रमशः विवाह करना बताया गया है किन्तु वे तीनों स्त्रियाँ नीच कही गयी हैं ।३।

---

१. तस्मिन्काले हि दृश्यते । २. नापि चाधमैः । ३. इतः प्रागेकस्मिन्पुस्तकेऽध्यायार्थकथानुसंधानार्थम्—"अथोत्रिविधसंबंधनिर्णयः" । ४. उद्वहेदित्यर्थः—'उपायम' इत्यात्मनेपदम् ।

क्षत्रस्यापि सवर्णा स्यात्प्रथमा द्विजसत्तमाः । द्वे चावरे तथा प्रोक्ते कामतस्तु न धर्मतः ॥४
वैश्यस्यैका वरा प्रोक्ता सवर्णा चैव धर्मतः । तथावरा कामतस्तु द्वितीया न तु धर्मतः ॥५
शूद्रैव[1] भार्या शूद्रस्य धर्मतो मनुरब्रवीत् । चतुर्णामपि वर्णानां परिणेता द्विजोत्तमः ॥६
न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः । कस्मिंश्चिदपि वृतान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥७
हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः । कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम् ॥८
शूद्रमारोप्य वेद्यां[2] तु पतितोऽत्रिर्बभूव ह । उतथ्यः पुत्रजननात्पतितत्वमवाप्तवान ॥९
शूद्रस्य पुत्रमासाद्य शौनकः शूद्रतां गतः । भृग्वादयोप्येवमेव पतितत्वमवाप्नुयुः ॥१०
शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् । जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥११
देवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु । नादन्ति पितरो देवाः स च स्वर्गं न गच्छति ॥१२
वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च । तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥१३
चतुर्णामपि विप्रेन्द्राः प्रेत्येह च हिताहितम् । समासतो ब्रवीम्येष विवाहाष्टकमुत्तमम् ॥१४
ब्राह्मो दैवस्तथा चार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः । गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥१५

द्विजवर्य वृन्द ! इसी प्रकार क्षत्रिय के लिए भी धर्मानुसार क्षत्रिय कन्या के साथ विवाह संस्कार करना प्रशस्त बतलाया गया है कामवश दो अन्य वर्ण वालों वैश्यों तथा शूद्रों के साथ भी उसे विवाह करने का विधान बतलाया गया है पर धर्मानुसार नहीं ।४। वैश्य के लिए सवर्ण कन्या के साथ विवाह करने का विधान है, उसे केवल एक वर्ण शूद्र की कन्या के साथ कामवश विवाह करने का विधान है धर्मानुमोदित नहीं ।५। शूद्र की स्त्री को शूद्रकुलोत्पन्ना ही होना चाहिये—ऐसा मनु ने बतलाया है। उत्तम द्विज ब्राह्मण, चारो वर्णों की कन्याओं के साथ विवाह करने का अधिकारी है ।६। किन्तु महान् आपत्ति काल में भी किसी परिस्थिति में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय को शूद्र कुलोत्पन्न कन्या को स्त्री नहीं बनाना चाहिये ।७। द्विजाति वर्ग अज्ञानवश नीच कुलोत्पन्न स्त्रियों के साथ विवाह करके सन्ततियों समेत अपने कुल को भी शीघ्र ही शूद्र बना देते हैं ।८। ऐसी प्रसिद्धि है कि महर्षि अत्रि अपनी वेदी पर शूद्र को आरोपित करके पतित बन गये । उतथ्य पुत्र उत्पन्न करने के कारण पतित बन गये ।९। शौनक शूद्र के पुत्र को प्राप्त कर स्वयं शूद्र बन गये इसी प्रकार भृगु आदि भी पतित बन गये ।१०। शय्या पर शूद्रा स्त्री को आरोपित कर अर्थात् स्त्रीरूप में अंगीकार कर ब्राह्मण अधोगति को प्राप्त हो जाता है उसमें पुत्र उत्पन्न करके वह ब्रह्मतेज से च्युत हो जाता है ।११। जो दैव, पितर और आतिथ्यादि कर्म को ऐसे शूद्र की प्रधानता में करते हैं उसके यहाँ पितर एवं देवगण भोजन नहीं करते हैं, और वह स्वयं स्वर्ग नहीं जाता ।१२। वृषली अर्थात् शूद्रा के फेन को पीने वाले निःश्वास से स्पष्ट तथा उससे उत्पन्न होने वाले का निस्तार नहीं होता ।१३

हे विप्रवर्यवृन्द ! चारों वर्णों को उभय लोक में सुख और दुःख देने वाले आठ विवाहों का मैं संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ सुनिये ।१४। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व राक्षस और सब से अधम पैशाच ये आठ प्रकार विवाह होते हैं ।१५

---

१. जातित्वाट्टाप् । २. शय्यां तु ।

ये यस्य धर्मा वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ । शृणुध्वं तद्द्विजश्रेष्ठाः प्रसवे च गुणागुणम् ॥१६
विप्रस्य[1] चतुरः पूर्वान्क्षत्रस्य चतुरोऽवरान् । विट्शूद्रयोस्तु त्रीनेव विद्याद्धर्मानराक्षसान् ॥१७
चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः । राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥१८
क्षत्रियाणां त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ[2] स्मृताविह । पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कथञ्चन ॥१९
पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ । गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥२०
आच्छाद्य चार्चयित्वा तु श्रुतशीलवते स्वयम् । आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥२१
वितते चापि यज्ञे तु कर्म कुर्वति चार्त्विजि । अलङ्कृत्य सुतादानं दैवो धर्म उदाहृतः ॥२२
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः । कन्याप्रदानं विधिवदार्षोयो धर्म उच्यते ॥२३
सहोभौ चरतं धर्ममिति वाचानुभाष्य तु । कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥२४
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायाश्चैव शक्तितः । कन्याप्रदानं स्वच्छन्दादासुरो धर्म उच्यते ॥२५
इच्छयान्योऽन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च । गान्धर्वः स विधिर्ज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥२६

जिस वर्ण का जो विवाह कहा गया है उनकी संतानों में दोष हैं, उन्हें आप सुने ! ।१६। ब्राह्मणों के लिए पहले वाले चार (ब्राह्म, दैव, आर्ष एवं प्राजापत्य) विवाह संस्कार प्रशस्त बतलाये गये हैं और क्षत्रिय के लिए पिछले चार असुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच विवाह करणीय है वैश्यों और शूद्रों को राक्षस विवाह छोड़कर पिछले चार विवाहों में से शेष तीन ही विहित माने गये हैं ।१७। पण्डितों ने पूर्व चार विवाहों को ही ब्राह्मणों के लिए प्रशस्त बतलाया है, राक्षस विवाह क्षत्रियों के लिए प्रशस्त माना है असुर विवाह वैश्य और शूद्रों के लिए विहित है ।१८। इस लोक में क्षत्रियों के लिए तीन विवाह धर्मानुमोदित है किन्तु पैशाच और आसुर ये दो विवाह उसके लिए अधर्ममय हैं, अतः किसी भी अवस्था में इन दो विवाहों को उसे नहीं करना चाहिये ।१९। पूर्वकथित दो दो विवाहों को परस्पर सम्मिलित कर के अथवा पृथक् पृथक् करके भी करने का विधान है । गान्धर्व और राक्षस ये दो विवाह क्षत्रियों के लिए धार्मिक बतलाये जाते हैं ।२०। आठों विवाहों के लक्षण श्रुति ज्ञान सम्पन्न एवं सुशील वर को स्वयं अपने घर बुलाकर सम्मानपूर्वक पूजित एवं वस्त्र से आच्छादित कर कन्या दान करने की विधि को ब्राह्म धर्म (विवाह) कहा गया है ।२१। विवाह यज्ञ के व्याप्त होने पुरोहित के विधिपूर्वक कर्म करते हुए ऋतुक कन्या को अलंकार वस्त्राभूषण आदि से अलंकृत कर कन्या देना देव धर्म (विवाह) कहा गया है ।२२। धर्म पूर्वक वर से एक अथवा दो गौ के जोड़े को लेकर विधिपूर्वक दिये गये कन्या दान को आर्य धर्म (विवाह) कहा जाता है ।२३। तुम दोनों एक साथ धर्माचरण करो—ऐसा कहकर वर और कन्या को एक साथ रहने के नियमादि की शिक्षा देकर विधिपूर्वक दिये गये कन्यादान को प्राजापत्य विवाह माना गया है ।२४। अपनी सामर्थ्य के अनुकूल कन्या के बन्धुओं तथा कन्या को धन देकर स्वच्छन्दता पूर्वक कन्या दान करने की विधि को असुर विवाह कहा गया है ।२५। कन्या और वर की इच्छा से कामवासना जनित जो परस्पर अन्योन्य संयोग होता है इसे गान्धर्व विवाह जानना चाहिये ।

---

१. षडानुपूर्व्या विप्रस्य । २. द्वौ धर्म्यौ वैश्यशूद्रयोः ।

हृत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् । प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ।।२७
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां च रहो यत्रोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः कथितोऽष्टमः ।।२८
जलपूर्वं द्विजाग्र्याणां कन्यादानं प्रशस्यते । इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ।।२९
यो यस्यैषां विवाहानां विभूनां कीर्तितो गुणः । तं निबोधत वै विप्राः सम्यक्कीर्तयतो मम ।।३०
कुलानि दश पूर्वाणि तथान्यानि दशैव तु । स हि तान्यात्मना चैव मोचयत्येनसो ध्रुवम् ।।३१
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृद्दैवोढाजं सुतं शृणु । दैवोढाजः सुतो विप्राः सप्त सप्त परावरान् ।।
आर्षोढाजः सुतः स्त्रीणां पुरुषांस्तारयेद्द्विजः ।।३२
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः । ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः ।।३३
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः । पुत्रवन्तोऽथ धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ।।३४
इतरेषु निबोधध्वं नृशंसानृतवादिनः । जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः[1] सुताः ।।३५
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा । निन्दितैर्निंदिता नृणां तस्मान्निद्यान्विवर्जयेत् ।।३६
करग्रहणसंस्काराः सवर्णासु भवन्ति वै । असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि ।।३७

।२६। बन्धनों को तोड़कर भवनादि को फोड़ फाड़कर पिता के घर से चिल्लाती रोती हुई कन्या को जबरदस्ती अपने गृह उठा ले जाने को राक्षस विवाह कहते हैं ।२७। एकान्त में सोई हुई मद से उन्मत अथवा प्रमाद से दूषित स्त्री के साथ जो छिपकर समागम किया जाता है वह पापमय आठवाँ पैशाच नामक विवाह कहा गया है ।२८। ब्राह्मण का कन्यादान जल संयुक्त प्रशस्त कहा जाता है अन्य वर्ण वालों में एक दूसरे की इच्छा से चाहे जिस किसी पदार्थ को लेकर किया जा सकता है ।२९। हे विप्रगण ! इन सामर्थ्यशील विवाहों में जिसका जैसा गुण बतलाया गया है उसे मैं अच्छी तरह बतला रहा हूँ सुनिये ।३०। ब्राह्म विवाह से उत्पन्न सत्कर्मपरायण पुत्र दस पूर्वज एवं दस पीछे उत्पन्न होने वाली पीढ़ियों के साथ स्वयं अपने को भी महान पापकर्मों से उबारता है । ऐसा निश्चय मानिये ।३१। अब देव विवाह से उत्पन्न होने वाले पुत्र को सुनिये । विप्रवृन्द ! वह देवविवाह से उत्पन्न होने वाला धर्मपरायण पुत्र सात पूर्वज एवं सात बाद में उत्पन्न होने वाली पीढ़ियों के साथ अपने को उबारता है । हे द्विजवृन्द ! इसी प्रकार आर्ष विवाह से विवाहित स्त्रियों से उत्पन्न पुत्र भी सात पूर्वज एवं सात पश्चात् की पीढ़ियों का उद्धार से उत्पन्न पुत्रों के गुण ब्राह्म आदि विवाह करता है ।३२। ब्राह्म आदि चार विवाहों में क्रमशः उत्पन्न होने वाले पुत्र गण ब्रह्मतेजोमय, शिष्टानुमोदित, रूपवान्, पराक्रमी, गुणवान्, धनवान, यशस्वी, पुत्रवान् एवं धार्मिक होते हैं वे एक सौ वर्ष की दीर्घायु तक जीवित रहने वाले होते हैं ।३३-३४। अब अन्य चार विवाहों से उत्पन्न होने वाले पुत्रों को सुनिये । वे दूषित विवाहों से उत्पन्न होने वाले पुत्र गण मिथ्यावादी ब्राह्मण एवं धर्म से द्वेष रखने वाले होते हैं ।३५। अनिन्दित विवाहों से विवाहित स्त्रियों से सन्ततियाँ भी अनिन्दित होती हैं । इसी प्रकार निन्दित विवाहों से निन्दित संततियाँ पैदा होती हैं । अतः मनुष्यों को इन निन्दित विवाहों से वर्जित रहना चाहिये ।३६। यह निश्चय है कि सवर्ण कन्याओं के साथ पाणिग्रहण संस्कार होता है असवर्ण कन्या के साथ विवाह करते समय इन वस्तुओं को ग्रहण करना

---

१. परं ब्रह्मद्विषः ।

बाणः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया । वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ।।३८
न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि । गृह्णन्हि शुल्कं लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ।।३९
स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः । नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ।।४०
आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव[1] तत् । अल्पो वापि महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः ।।४१
यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः । अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम् ।।४२
इत्थं दारान्समासाद्य देशमग्र्यं समावसेत् । ब्राह्मणो द्विजशार्दूल य इच्छेद्विपुलं यशः ।।४३

ऋषय ऊचुः

को देशः परमो ब्रह्मन्कश्च पुण्यो मतस्तव । प्रवसन्यत्र विप्रेन्द्र यशः प्राप्नोति कञ्जज ।।४४

ब्रह्मोवाच

न[2] हीयते यत्र धर्मश्चतुष्पात्स कलौ द्विजाः । स देशः परमो विप्राः स च पुण्यो मतो मम ।।४५
विद्वद्भिः सेवितो धर्मो यस्मिन्देशे प्रवर्तते । शास्त्रोक्तश्चापि विप्रेन्द्राः स देशः परमो मतः ।।४६

चाहिये—यही विधि जाननी चाहिये ।३७। असवर्ण विवाह के अवसर पर क्षत्रिय कन्या को बाण धारण करना चाहिये वैश्य कन्या को एक चाबुक ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार उत्कृष्ट जातिवालों के साथ विवाह होते समय शूद्र कन्या को वस्त्र का छोर (अंचल) ग्रहण करना चाहिये ।३८। विद्वान् कन्या पिता को चाहिये कि वह रत्ती भर का किसी प्रकार का शुल्क जामाता से न ग्रहण करे लोभवश शुल्क ग्रहण करने पर वह अपनी सन्तान का विक्रय करता है ।३९। अज्ञान वश जो पिता बन्धु आदि परिवार के लोग कन्या के कारण मिले हुए धन का उपभोग करते हैं अथवा उसके कारण मिले हुए वस्त्र को ब्राह्मणादि धारण करते हैं वे पापी अधोगति को प्राप्त होते हैं ।४०। कुछ लोगों ने आर्य विवाह में शुल्क रूप में जो गौ के जोड़े देने की प्रथा बतलाई है वह झूठी है चाहे अल्प मात्रा में हो या अधिक मात्रा में हो वह भी एक विक्रय ही होता है ।४१। वर द्वारा दिये गये कन्याओं के धन को दान में उनके बंधु आदि कुछ शुल्क नहीं लेते वह विक्रय नहीं कहलाता क्योंकि वह उस कन्या के सत्कार में दिया गया है और वही उसके साथ परम दया और कृपा है ।४२। हे विप्रशार्दूल ! इस प्रकार जो ब्राह्मण विपुल यश का अभिलाषी हो उसे उपर्युक्त विधियों से स्त्री को अंगीकार कर किसी श्रेष्ठ देश में आवास करना चाहिये ।४३

ऋषियों ने कहा—पंकजोद्भव ! ब्रह्मन् ! कौन से देश परम पुण्यप्रद तथा उत्कृष्ट माने गये हैं जहाँ पर निवास करने वाला परम यश का भाजन होता है ।४४

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द ! जहाँ पर धर्म अपनी सम्पूर्ण भाषाओं तथा चारों चरणों से हीनता को नहीं प्राप्त होता है वही देश परम श्रेष्ठ तथा पुण्य प्रद माना गया है ।४५। हे विप्रेन्द्रवृन्द ! जिस पुनीत देश में विद्वान् पुरुषों द्वारा आचरित तथा शास्त्र सम्मत धर्म का प्रचलन रहता है वह देश परम श्रेष्ठ माना गया है ।४६

---

१. महर्षयः । २. महीयते ।

ऋषय ऊचुः

विद्वद्भिः सेवितं धर्मं शास्त्रोक्तं च सुरोत्तम । वदास्मासु सुरश्रेष्ठ कौतुकं परमं हि नः ॥४७

ब्रह्मोवाच

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः । हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥४८
कामात्मता न प्रशस्ता न चेहास्त्यप्यकामता । काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥४९
सङ्कल्पाज्जायते कामो यज्ञाद्यानि च सर्वशः । व्रताः नियमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥५०
कामादृते क्रियाकारी दृश्यते नेह कर्हिचित् । यद्यद्धि कुरुते कश्चित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥५१
निगमो[1] धर्ममूलं स्यात्स्मृतिशीले तथैव च । तथाचारश्च साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥५२
सर्वं तु समवेक्षेत निश्चयं ज्ञानचक्षुषा । श्रुतिप्राधान्यतो विद्वान्स्वधर्मे निवसेत वै ॥५३
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्सदा[2] नरः । प्राप्य चेह परां कीर्तिं याति शक्रसलोकताम्[3] ॥५४
श्रुतिस्तु वेदो[4] विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः । ते सर्वार्थेषु मीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥५५
योऽवमन्येत ते चोभे हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः । स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥५६
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतच्चतुर्विधं विप्राः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥५७

ऋषियों ने कहा—सुरश्रेष्ठ ! देवेश ! विद्वान पुरुषों द्वारा आचरित तथा शास्त्र सम्मत धर्मों को सुनने के लिए हमारे मन में बड़ा कुतूहल हो रहा है कृपया कहिये ।४७।

ब्रह्मा बोले—ऋषिवृन्द ! राग द्वेष विहीन सद् विद्वान् पुरुषों द्वारा आचरित एवं अपने हृदयानुमत धर्म को मैं बतला रहा हूँ सुनिये ।४८। इस लोक में फल की इच्छा कर के कर्मों को प्रारम्भ करने की विधि प्रशस्त नहीं मानी गई है और न इच्छा रहित कर्मों की ही प्रशंसा की गई है क्योंकि काम्य कर्मों का विधान भी वेदानुमत है और निष्काम कर्मयोग भी वैदिक है ।४९। संकल्प से कामना की उत्पत्ति होती है यज्ञादि कार्यों में सर्वत्र इस संकल्प का अस्तित्व रहता है यही नहीं व्रत, नियम एवं अन्य धर्म कार्य भी संकल्प से उत्पन्न होने वाले कहे जाते हैं ।५०। इस लोक में कहीं पर इच्छा अथवा कामना के बिना किसी कर्म में प्रवृत्त होने वाला कोई नहीं दिखाई पड़ता । मनुष्य जो कुछ भी कार्य करता है वह सब कामना की ही चेष्टा से करता है ।५१। सभी धर्मों के मूल वेद हैं स्मृतियाँ हैं सत्पुरुषों द्वारा आचरित शील सदाचार एवं जिन कर्मों से अपनी आत्मा को वास्तविक सन्तोष हो ऐसे कर्म इन सबको ज्ञान नेत्र से भली भाँति देखकर धर्म का निश्चय किया जाता है । इन सब पर ध्यान रखकर भी विद्वान् पुरुष को श्रुतियों (वेदों) को विशेषता देते हुए अपने धर्म में विश्वास रखना चाहिए ।५२-५३। श्रुतियों तथा स्मृतियों द्वारा अनुमोदित धर्म का सर्वदा पालन करते हुए मनुष्य इस लोक में परम कीर्ति उपार्जित कर इन्द्र लोक (स्वर्ग) को प्राप्त करता है ।५४। श्रुति को वेद एवं स्मृति को धर्मशास्त्र जानना चाहिए । सभी प्रकार के कार्यों में इन दोनों से मीमांसा कर लेनी चाहिए । क्योंकि सभी धर्म-कार्य इन्हीं दोनों से सुशोभित होते हैं ।५५। जो द्विज हेतुवाद का आश्रय लेकर इन दोनों वेदों तथा स्मृतियों की अवहेलना करता है, सज्जनों को चाहिए कि उसे समाज से बहिष्कृत कर दे, क्योंकि वह वेद निन्दक नास्तिक हैं ।५६। विप्रवृन्द ! वेद स्मृति सदाचार एवं अपनी आत्मा के अनुकूल प्रिय कार्य ये चारों धर्म के साक्षात् लक्षण कहे गये हैं ।५७।

---

१. नियमा धर्ममूलं स्युः । २. हि मानवः । ३. ब्रह्मसलोकताम् । ४. धर्मः ।

धर्मज्ञानं भवेद्विप्रा अर्थकामेष्वसज्जताम् । धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणान्निगमं परम् ।।५८
निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः । अधिकारो भवेत्तस्य वेदेषु च जपेषु च ।।५९
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्[1] । तदेव निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ।।६०
यस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः । वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ।।६१
कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनयः । एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरम् ।।६२
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षन्ति पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।६३
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ।।६४
आ समुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ।।६५
अटते यत्र कृष्णा गौर्मृगो नित्यं स्वभावतः । स ज्ञेयो याज्ञिको देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ।।६६
एतान्नित्यं शुभान्देशान्संश्रयेत द्विजोत्तमः । यस्मिन्कस्मिश्च निवसेत्पादजो[2] वृत्तिकर्शितः ।।६७
प्रकीर्तितेयं धर्मस्य बुधैर्योनिर्द्विजोत्तमाः । सम्भवश्चास्य सर्वस्य समासान्न तु विस्तरात् ।।६८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि विवाहधर्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७।

एवं काम में अतिशय अनुरक्त न रहने वाले और वास्तविक धर्म को जानने के लिए इच्छुक लोगों को ही धर्म का वास्तविक ज्ञान होता है । ऐसे लोगों के लिए सभी प्रमाणों में निगमों अर्थात् वेदों का प्रमाण सर्वश्रेष्ठ माना गया है ।५८। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया तक के सारे संस्कार जिसके लिए मंत्रोच्चारण पूर्वक विहित माने गये हैं । उसी का अधिकार वेदों में और जपों में भी माना गया है ।५९। सरस्वती और दृषद्वती नामक देव नदियों के बीच की जो भूमि है, वह पवित्र देश ब्रह्मावर्त के नाम से कहा जाता है ।६०। जिस देश में जो आचार व्यवहार पुरातन काल से परम्परा में बद्ध होकर चले आते हों, वे ही उस देश के रहने वाले चारों वर्णों के तथा वर्ण संकरों के सदाचार कहे जाते है ।६१। कुरुक्षेत्र मत्स्य पंचाल और सूरसेन ये ब्रह्मावर्त के बाद ब्रह्मर्षियों के प्रदेश कहे गये हैं ।६२। इन देशों में उत्पन्न होने वाले अग्रजन्मा ब्राह्मणों से संसार के सभी मनुष्यगण आकर अपने-अपने चरित्रों की शिक्षा प्राप्त करें ।६३। हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में विनशन अर्थात कुरुक्षेत्र के पूर्व तथा प्रयाग के पश्चिम का सारा प्रदेश 'मध्य देश' के नाम से विख्यात है ।६४। पूर्व में समुद्र पर्यन्त तथा पश्चिम में समुद्र पर्यन्त विस्तृत हिमालय तथा विन्ध्याचल इन दोनों पर्वतों के मध्यभागस्थ प्रदेश को पण्डित जन 'आर्यावर्त' नाम से जानते हैं ।६५। जिस देश में कृष्णा गौ एवं कृष्ण मृग सम्भवतः नित्य विचरण करते हों वह याज्ञिक यज्ञ करने योग्य देश है इसके अनन्तर म्लेच्छ देश हैं ।६६। उत्तम ब्राह्मण को उपर्युक्त कल्याण मय देशों का आश्रय ग्रहण करना चाहिये । चरणों से उत्पन्न होने वाले शूद्र अपनी जीविका की सुविधा से चाहे जिस देश में निवास करे उसके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है ।६७। द्विजवर्यवृन्द ! पण्डित जनों ने धर्म ज्ञान प्राप्त करने की यही शिक्षा बतलाई है उसे बतला चुका हूँ **और सभी** के उत्पन्न होने की कथा भी अति विस्तार में नही प्रत्युत संक्षेप में कह चुका हूँ ।६८

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में विवाह धर्मवर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

---

१. गिरिनद्योः । २. ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितः ।

अथाष्टमोऽध्यायः

विवाहधर्मेषु स्त्रीविषये नरवृत्तवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कर्तव्यं यद्गृहस्थेन तदिदानीं निबोधत । गदतो द्विजशार्दूल विस्तराच्छास्त्रतस्तथा ॥१
वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि । शुभदेशाश्रयश्चैव पत्नी वैवाहिकी गृहे ॥२
स्वाश्रयेण विना शक्यं न यस्माद्रक्षणादिकम् । वित्तानामिव दाराणामतस्तद्विधिरुच्यते ॥३
हेतवो हि त्रिवर्गस्य विपरीतास्तु[1] मानद । अरक्षणाद्भवन्त्यस्मादमीषां रक्षणं मतम् ॥४
निसर्गात्पुंस्यसन्तोषाद्गुणदोषविमर्षतः । दुष्टानां चापि संसर्गाद्रक्ष्या एव च योषितः ॥५
पुरुषस्थानवेश्मानि त्रिविधं प्राहुराश्रयम् । वित्तानां रक्षणाद्यर्थमपूर्वाधिगमाय च ॥६
कुलीनो नीतिमान्प्राज्ञः सत्यसन्धो दृढव्रतः । विनीतो धार्मिकस्त्यागी[2] विज्ञेयः पुरुषाश्रयः ॥७
नगरे खर्वटे खेटे ग्रामे चापि क्रमागते । यात्रावशाद्वा निवसेद्धार्मिकाढ्यजनान्विते ॥८

अध्याय ८

स्त्रियों के दुष्ट और अदुष्ट स्वभाव की परीक्षा के साथ समुचित व्यवहार कथन तथा मानव चरित्र वर्णन

ब्रह्मा बोले—द्विजशार्दूल ! अब इसके उपरान्त गृहस्थाश्रम में निवास करने वालों को जो जो कुछ करना चाहिये शास्त्र सम्मत उन समस्त गृहस्थ कर्तव्यों को मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ सुनिये ।१। (गृहस्थ को) वैवाहिक अग्नि में विधिपूर्वक समस्त गृह्य कर्म करने चाहिये। घर में विवाहिता पत्नी उस स्थान में रहे ।२। अपने आश्रय के बिना स्त्रियों की रक्षा उसी प्रकार नहीं की जा सकती जिस प्रकार (आश्रम के बिना) धन सम्मान आदि की अतः स्त्रियों की रक्षा आदि के नियम बतला रहा हूँ ।३। हे मानियों को मान देने वाले ! ये स्त्रियाँ जिस प्रकार त्रिवर्ग धर्मार्थ काम देने वाली है उसी प्रकार अच्छी तरह रक्षा न किये जाने पर उक्त त्रिवर्ग को नष्ट कर देने वाली भी होती हैं अतः इनकी रक्षा करनी चाहिए ।४। निवास, स्वभाव, दोष विमर्ष में स्वाभाविक असन्तोष, भावना, गुणदोष के व्यत्यय एवं दुष्टों के संसर्ग से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये ।५। पुरुष स्थान और घर ये तीन स्त्रियों के आश्रय स्थल कहे गये हैं। धन सम्पत्ति आदि की रक्षा एवं अपूर्व की प्राप्ति उपर्युक्त तीन प्रकार के आश्रम कहे गये हैं ।६। कुलीन, नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, सत्य प्रतिष्ठा, दृढ़व्रत, विनीत, धार्मिक प्रवृत्ति सम्पन्न एवं त्यागी पुरुष को आश्रम के योग्य समझना चाहिये ।७। यात्रा के प्रसंग में धार्मिक जनों से मुक्त खर्वट (कस्बा) खेट (कस्बे से छोटा सा ग्राम) एवं ग्राम क्रमशः इन्हीं में से किसी को निवास-स्थान के योग्य

---

१. विपरीतार्थसाधकाः । ७. स्वामी ।

गुरुणानुमतस्तत्र ग्रामण्यादिजनेन वा । प्रतिवेश्याद्यबाधेन शुद्धं कुर्यान्निवेशनम् ॥९
द्वारचत्वरशालानां[1] सर्वकारुकवेश्मनाम् । द्यूतसूनासुरावेशनटराजानुजीविनाम् ॥१०
पाखण्डदेववीथीनां राजमार्गकुलस्य च । दूरात्सुगुप्तं कर्तव्या जीविका विभवोचिता ॥११
सापिधानैकनिष्काशं शुद्धपृष्ठं समन्ततः । सद्वृत्ताप्तजनाकीर्णमदुष्टप्रातिवेशिकम् ॥१२
प्रागुदक्प्रवणे देशे वास्तुविद्याविधानतः । प्रविभक्तक्रियाकाङ्क्षं सर्वर्तुकमनोहरम् ॥१३
अर्चास्नानोदकागारगोष्ठागारमहानसैः । युक्तं गोवाजिशालाभिः सदासीभृत्यकाश्रयैः ॥१४
बहिरन्तः पुरस्त्रीकं सर्वोपकरणैर्युतम् । विभक्तशयनोद्देशमाप्तवृद्धैरधिष्ठितम् ॥१५
अरक्षणाद्धि दाराणां वर्णसङ्करजादयः । दृष्टा हि बहवो दोषास्तस्माद्रक्ष्याः सदा स्त्रियः ॥१६
न ह्यासां प्रमदं दद्यान्न स्वातन्त्र्यं न विश्वसेत् । विश्वस्तवच्च चेष्टेत न्याय्यं भर्त्सनमाचरेत् ॥१७
नाधिकारं क्वचिद्दद्यादृते पाकादिकर्मणः । स्त्रीणां ग्रामीणवत्ता हि भोगायालं सुशासिता ॥१८
नित्यं तत्कर्मयोगेन ताः कर्तव्या निरन्तराः । इत्येवं सर्वदाः व्याप्तेः स्यादविद्यनिराश्रया ॥१९

समझना चाहिये ।८। इन उपर्युक्त स्थानों में से किसी एक में गुरुजनों की अनुमति तथा प्रमुख लोगों की सहायता प्राप्त कर पड़ोसियों को किसी प्रकार की असुविधा न देते हुए निर्दोष निवास का निर्माण करना चाहिए ।९। प्रवेश द्वार, चौराहा, राजभवन सभी प्रकार के कारीगरों के मकान द्यूतकर्म में निरत रहने वालों के निवास हिंसक प्रवृत्ति वालों के निवास वेश्या नट एवं राजकर्मचारियों के निवास पाखण्डी लोगों के आवास देवमन्दिर की गली राजमार्ग एवं राजाकुल के लोगों के निवास स्थल से बहुत दूर, अपनी शक्ति के अनुसार सुरक्षित जीविका बनानी चाहिए ।१०-११। छाजयुक्त एक द्वार वाले भवन का जो चारों ओर से स्वच्छ दिखाई पड़े, निर्माण करना चाहिये वह ऐसे स्थान पर हो जिसके चारों ओर सज्चरित्र तथा आप्त लोगों की बस्ती हो, विशेषतया पड़ोसी दुष्ट स्वभाव वाले न हो ।१२। भवन का निर्माण ऐसी जमीन में करना चाहिए जो पूर्व अथवा उत्तर की ओर ढालू हो, वास्तु विद्या के अनुसार उसका इस प्रकार से निर्माण होना चाहिए जिसमें प्रत्येक कार्यों के लिए अलग-अलग सभी ऋतुओं में मनोहर कमरे बन सकें। जैसे पूजा गृह (देवगृह) स्नानगृह, जलागार, गोशाला, रसोई घर, अश्वशाला, दासी एवं नौकरों के गृह स्त्रियों के अन्तःपुर, बाहरी गृह आदि सभी अलग-अलग से सभी सामग्रियों समेत बनाये जा सकें। स्त्रियों का शयनागार सबसे अलग सुरक्षित स्थान में होना चाहिए जहाँ पर श्रेष्ठ वृद्ध जनों का निवास हो ।१३-१५। क्योंकि स्त्रियों की सुरक्षा के बिना वर्णसंकर सन्तान आदि अनेक दोष देखे जाते हैं, अतः सर्वदा स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए ।१६। इनको कभी उन्मादक वस्तुएँ नहीं देनी चाहिए इसी प्रकार न तो कभी स्वतन्त्रता देनी चहिए और न पूर्णरूपेण विश्वास ही करना चहिए। सर्वदा विश्वस्त की भाँति व्यवहार तो करना चाहिए किन्तु अवसर-अवसर पर समुचित भर्त्सना करते रहना चाहिए ।१७। भोजनादि बनाने के कार्यों को छोड़कर कभी इन्हें कोई अधिकार नहीं देना चाहिए। अनुशासन के भीतर रहने वाली स्त्रियों की गृहस्थी के कार्यों की निपुणता ही भोग के लिए पर्याप्त है ।१८। उन्हें सर्वदा किसी न किसी काम में लगे रहना चाहिए किसी समय भी बैठकर व्यर्थ समय नहीं बिताना चाहिये। इस प्रकार से गृहस्थ का गृह अविद्या एवं अलक्ष्मी से रहित हो

---

१. द्वारचत्वरनागाना शस्त्रकारकवेश्मनाम् । अतिन्यूनावरावेशनटरंगानुजीविनाम् । पाखंडदेव-तीर्थानाम् ।

दौर्गत्यमतिरूपं[1] चाप्यसत्सङ्गः स्वतन्त्रता । पानाशनकथागोष्ठीप्रियत्वाकर्मशीलता[2] ॥२०
कुहकेक्षणिकामुण्डाभिक्षुकीसूतिकादिभिः । गोप्रसङ्गैस्तथा [3]सद्भिर्लिङ्गियाचकशिल्पिभिः ॥२१
संवाहोद्यानयात्रासूद्यानेष्वामन्त्रणादिषु । प्रसङ्गस्तीर्थयात्रार्थं धर्मेषु प्रकटेषु च ॥२२
विप्रयोगः सदा भर्त्रा तज्ज्ञातिकुलनिःस्वता । अमाधुर्यकदर्यत्वे भृशं पुंसां च वाच्यता ॥२३
अतिक्रौर्यमतिक्षान्तिरत्यन्ताभीतिपातनम् । स्त्रीभिर्जितत्वमत्यर्थं सत्यं तास्ताः सदोषताः ॥२४
स्त्रीणां[4] पत्युरधीनत्वात्पुमानेव हि निन्द्यते । भर्तुरेव हि तज्जाड्यं यद्भृत्यानामयोग्यता ॥२५
तस्माद्यथोदितास्ता रक्ष्याः शासनताडनैः । ताडनैश्च यथाकालं यथावत्समुपाचरेत् ॥२६
परिगृह्य बहून्दारानुपचारैः समो भवेत् । यथाक्रमोचितैः कर्म दानसत्कारवासनैः ॥२७
प्रथमोऽभिजनो धर्मो योग्यत्वं च सुपुत्रता । पश्चे वित्तं विशेषस्त्रीणां मानस्तत्कारणं तथा ॥२८
तस्मान्मानो न कर्तव्यो हेयश्चापि न तत्कृतः । गुरुत्वे लाघवे वापि सतां कार्यं निबन्धनम् ॥२९
आकस्मिके प्रयुञ्जानः प्रेक्षावान्मानलाघवे । स यत्किञ्चनकारित्वाच्छायमेवैति लाघवम् ॥३०

जाता है ।१९। घर में दुर्गति (दरिद्रता) अत्यन्त सुन्दर रूप असज्जनों की संगति, स्वतंत्रता, मधुपान, सुन्दर भोजन, कथा एवं गोष्ठी को अधिक पसन्द करने की आदत बिना, किसी काम के बैठे रहना, मेला आदि में जाने की विशेष रुचि, भिक्षुकी, कुटनी, नटी, दाई आदि दुष्ट स्त्रियों की संगति, संन्यासी, भिक्षुक, शिल्पकार एवं असत्पुरुषों की संगति अथवा अधिक समागम, वाहन पर आरोहण, उद्यान, क्रीड़ा यात्रा तथा निमंत्रणादि में शरीक होना तीर्थयात्रा एवं धर्म कार्य के प्रसंग से बहुत बाहर घूमना सर्वदा पति का वियोग जाति अथवा कुल की निर्धनता रूखा व्यवहार, कायरता तथा पति की सर्वदा निन्दा सुनते रहना, अतिशय क्रूरता अतिशय शान्ति अतिशय भय एवं अतिशय पतन तथा तुरन्त पराजित होने की अशक्ति ये सब स्त्रियों के लिए परम दोषकारी कारण है ।२०-२४। स्त्रियों के अधीन रहने वाला पति निन्दा का पात्र होता है यह भी स्वामी की अयोग्यता अथवा मूर्खता का परिचय है जो उसके नौकर चाकर अयोग्य बने रहते हैं ।२५। इसलिए जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अनुशासन एवं ताडनादि से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए उसी प्रकार समय पड़ने पर उनका सम्मान भी करना चाहिए ।२६। अनेक स्त्रियों का पाणिग्रहण कर के सब के साथ समानता का व्यवहार रखना चाहिये । उनके क्रम अर्थात् बड़ी छोटी के विचार से उचित दान, सत्कार एवं वस्त्रादि से व्यवहार करना चाहिए ।२७। स्त्रियों की प्रथम योग्यता उनकी कुलीनता है इसके पश्चात् उनके धार्मिक आचरण तथा पुत्रवती होना उनकी योग्यता है । समय का विचार कर उन्हें धनादि भी देना चाहिये । यथोचित सम्मान का ध्यान रखना चाहिये उसके कारण पर ध्यान रखना चाहिए ।२८। इसलिए न तो कभी सामान्य कारणवश विशेष सम्मान करना चाहिए और न किसी कारण वश अपमान ही करना चाहिए । सत्पुरुषों को किसी के गौरव एवं लाघव करने में कुछ नियम बनाना चाहिए ।२९। मनमानी मान एवं लाघव (अपमान) का प्रयोग बिना किसी नियम के आकस्मिक उन्नति एवं स्वयं लघुता प्राप्त करते

---

१. सौगन्ध्यमतिरूपत्वमुत्सृजेच्च पतिव्रता । २. पानगेयकथागोष्ठीप्रियत्वाकर्मशीलता । ३. प्रसंगाद्यैस्तथासत्स्त्रीलिंगधारकशिल्पिभिः । ४. स्त्रीणां पत्युरधीनत्वं प्रमाणैरधिगम्यते ।

यथा मानापमानौ हि प्रयुज्येतानिमित्ततः । तन्निमित्ता जनत्यागे प्रयतन्ते तदाश्रिताः ।।३१
एतदेव ह्यपत्यानां[1] ज्ञेयं माननकारणम् । यत्स्वापत्यनिमित्तेषु[2] प्रधाने कुलयोग्यते ।।३२
तत्संयोगात्सुखं पुंसां महद्दुःखं वियोगतः । तत्प्राप्तिः प्रतिहातव्या स्वार्थायैव प्रियाण्यपि ।।३३
अतः स्वार्थैकनिष्ठोऽयं लोकः सर्वोऽवसीयते । तत्प्रसिद्धिर्भवेदस्तमानाद् भ्रान्तिविधायकः ।।३४
ततो दारादिका भृत्या नियन्तव्यास्तथा द्विजा । यथेहामुत्र वा श्रेयः प्राप्नुयादुत्तरोत्तरम् ।।३५
स्त्रीणां धर्मार्थकामेषु नातिसन्धानमाचरेत् । तासां तेष्वभिसन्धानाद्ध्रुवदात्माभिसंहितः ।।३६
जायात्वर्धं शरीरस्य नृणां धर्मादिसाधने । नातस्तासु व्यथां काञ्चित्प्रतिकूलं समाचरेत् ।।३७
यज्ञोत्सवादौ नाकस्मात्काञ्चिदासां विशेषयेत् । वस्त्रताम्बूलदानादौ प्रतिपत्तौ समो भवेत् ।।३८
प्रियाप्रियत्वं भेदो हि कामतस्तु रहोगतः । उपचारैः पुनर्वाक्यैस्तुल्यवृत्तिः प्रशस्यते ।।३९
आर्तवे तु पुनः सर्वा उपगम्याः प्रिया इव । पूर्वाभिजातधर्मार्था पुत्रिणी चोत्तरोत्तरम् ।।४०
उदगच्छेदनेनैव विधिना नित्यमार्तवे । तुल्यवृत्तिर्यथाकालं स्वं स्वं वासमखण्डयन् ।।४१

हैं ।३०। जिस प्रकार बिना किन्हीं कारणों से मान एवं अपमान का प्रयोग होता है और उसके आश्रय में रहने वाले लोग उन्हीं कारणों से उसके त्याग करने का प्रयत्न करते हैं ।३१। सन्तानों के मान होने में उनकी (माता की) कुल एवं योग्यता की प्रधानता है ।३२। उनके संयोग से पुरुष को सुख होता है और उनके वियोग से महान् दुःख होता है । इसलिए स्वार्थ के लिए उसकी प्राप्ति का ही परित्याग करना चाहिए । उसी भाँति तत्सम्बन्धी प्रिय वस्तुओं का भी परित्याग करना चाहिए ।३३। इन्हीं कारणों से स्वार्थपरायण स्त्रीदायक यह सारा संसार विनाश को प्राप्त हो जाता है । विनाश होने से ही उसकी यह प्रसिद्धि होती है ।३४। द्विजवृन्द ! इन्हीं सब कारणों से मनुष्यों को अपने नौकर-चाकर तथा स्त्रियों आदि का अनुशासन पूर्वक नियमन करना चाहिए । जिससे इस लोक तथा परलोक में उत्तरोत्तर कल्याण की प्राप्ति हो ।३५। धर्म, अर्थ एवं काम सम्बन्धी कार्यों में स्त्रियों के साथ प्रवञ्चना नहीं करनी चाहिए । इन कार्यों में यदि कोई स्त्रियों के साथ छलपूर्ण व्यवहार करता है तो वह अपनी आत्मा के साथ वञ्चना करता है ।३६। धार्मिक कार्यों में स्त्री पुरुष का आधा शरीर मानी गई है । इसलिए उनके साथ ऐसा प्रतिकूल व्यवहार न रखे कि उन्हें व्यथा हो ।३७। यदि कई स्त्रियाँ हों तो पुरुष को यज्ञोत्सव आदि में बिना किसी कारण के किसी एक को विशेष महत्त्व नहीं देना चाहिये । वस्त्र, ताम्बूल आदि के देने में तथा अन्य सामान्य व्यवहारों में सर्वदा समानता रखनी चाहिये ।३८। कामवश यदि कोई विशेष प्रिय है और कोई अप्रिय है तो एकान्त में उनके साथ ही वैसा व्यवहार करना चाहिये । सामान्य व्यवहार एवं बातचीत में तो समानता ही की प्रशंसा की जाती है ।३९। ऋतुकाल में तो सभी के साथ प्रियतमा मानकर समागम करना चाहिये । ज्येष्ठ कुलीन सदाचार परायण धर्मशील एवं पुत्रवती इनमें से क्रमशः एक के बाद दूसरी हो सम्मानीय समझना चाहिये ।४०। इसी नियम से ऋतुकाल में सर्वदा स्त्री के साथ समागम करना चाहिये । समय आने पर अपने निवास को बिना खण्डित किये सब के साथ समान व्यवहार रखना चाहिये । अर्थात क्रम से किसी के घर में अनुपस्थित नहीं होना चाहिये ।४१। सर्वदा

---

१. हि पत्नीनाम् । २. समुत्पद्य निमित्तेषु प्रधाने गुणयोग्यता । यत्सयामाश्रययं पुंसां महदुःखं वियोगवत् ।

नित्यपर्यायवासानामपादानमसून्विदुः । ऋतुदुःखं प्रमोदश्च तथा पूर्वं समागतः ॥४२
अन्यया सह यद्दुःखं सदसद्वा रहोगतम् । उत्कण्ठितं वा यत्किञ्चित्सपत्नीषु न तद्वसेत् ॥४३
यत्किञ्चिदन्यसम्बद्धमन्यथा कथितं मिथः । तस्य कुर्यादनिर्वेदमात्मनैव विचिन्तयेत् ॥४४
अन्योऽन्यमत्सराख्यानैर्न ता वाचापि भर्त्सयेत् । गुणदोषौ च विज्ञाय स्वयं कुर्यान्न निष्कलौ ॥४५
वस्त्रालङ्कारभोज्यादौ तदपत्येष्वनुक्रमात् । मातृदोषाननादृत्य तुल्यदृष्टिः पिता भवेत् ॥४६
अन्यस्यान्यगतैर्दोषैर्दूषणं न हि नीतिमत् । यत्तु तेषामपत्यं तु तत्तुल्यमुभयोरपि ॥४७
प्रीतिं द्वेषमभिप्रायं शौचाशौचगतागमान् । बहिरन्तश्च जानीयाद्दास गूढचरैः सदा ॥४८
आत्मानमपि विज्ञाय चित्तवृत्तेरनीश्वरम् । विश्वसेत कथं स्त्रीषु सर्वाविनयधामसु ॥४९
वृद्धदास्यः क्रमायाता धात्र्यश्च परिचारिकाः । तन्मातृपितृकाद्याश्च षण्डवृद्धाश्चरा मताः ॥५०
विविधैस्तत्कथाख्यानैस्तुल्यशीलदयान्वितैः[१] । प्रविश्यान्तरभिप्रायं विद्यात्काले प्रयोजितैः ॥५१
तेषु तेषु कथार्थेषु कथ्यमानेषु लक्षयेत् । मुखाकारादिभिर्लिङ्गैरभिप्रायं मनोगतम् ॥५२

पर्याय क्रम से निवास करने को प्राण कहते हैं । ऋतुकालीन दुःख, प्रमोद एवं पूर्व समागम एवं सर्वदा पर्याय क्रम से अविच्छिन्न निवास को प्राण कहते हैं ।४२। एकान्त में एक पत्नी के साथ जो कुछ दुःख सुख अथवा सत् असत् व्यवहार का अनुभव पति को हो अथवा पत्नी के मन में पति के लिए जो उत्सुकता एवं उत्कण्ठा हो, उसका वर्णन सपत्नियों के सामने नहीं करना चाहिये ।४३। एक पत्नी पति से दूसरी सपत्नी के सम्बन्ध में यदि कोई शिकायत की बात एकान्त में कहे तो उसको वहीं पर स्वयं उचित समाधान करके दुःख रहित कर देना चाहिये ।४४। एक दूसरे के प्रति मत्सर भावनाओं का प्रचार नहीं करना चाहिये । कभी वचन द्वारा भी स्त्रियों की भर्त्सना नहीं करनी चाहिये । उनके गुण एव दोष को भली भाँति जानकर उनके दूर करने एवं बढ़ाने का उपक्रम करना चाहिये ।४५। सभी स्त्रियों की सन्ततियों के साथ वस्त्र अलंकार एवं भोजनादि में माताओं के क्रम से ध्यान रखना चाहिये,माता के दोष को न देखकर पिता को सब की सन्ततियों के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिये ।४६। एक के दोष को दूसरे पर थोपना नीति के अनुकूल नहीं है । सब की सन्ततियों के साथ माता पिता दोनों को समानता का व्यवहार रखना चाहिये ।४७। स्त्रियों के प्रीति, द्वेष, अभिप्राय, पवित्रता, अपवित्रता बाहर भीतर का गमन एवं आगमन सब का दास एवं भेदियों से सर्वदा पता लगाते रहना चाहिये ।४८। अपने चित्त की वृत्तियों के ऊपर अपना ही अधिकार सर्वदा नहीं रहता (अर्थात् जब अपना ही चित्त अपने अधीन नहीं रहता) तो सभी प्रकार के अविनय की मूर्त रूप स्त्रियों का विश्वास किस प्रकार किया जा सकता है ।४९। चरों के द्वारा स्त्रियों के अभिप्राय को समझना वंश परम्परागत वृद्ध, दासी, धाय, परिचारिका, उनकी माताएँ एवं पिता आदि तथा नपुंसक वृद्ध ये ही (अन्तःपुर में प्रवेश करने के योग्य) चर माने गये हैं ।५०। विविध प्रकार की कथाओं उपाख्यानों एवं प्रवृत्तियों द्वारा समय-समय पर अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर उनके अभिप्रायों का पता लगाना चाहिये ।५१। उन कथाओं के कहे जाने के समय उनकी मुख्य मुख्य घटनाओं पर स्त्रियों के मुख आदि के आकार एवं शरीर के अन्यान्य चिन्हो के द्वारा मनोगत भावों का

---

१. भावं विद्यात्प्रवृत्तिभिः ।

सीतारुन्धतिसम्बन्धैस्तथा शाकुन्तलादिभिः । सदसच्चरिताख्यानैर्भावं विद्यात्प्रवृत्तितः ।।५३
तद्दुष्टानामदुष्टेषु साधूनामितरेषु च । प्रीतिः कथाप्रबन्धेषु स्यात्सख्यं पुरुषेष्वितः ।।५४
एवमागमदुष्टाभ्यामनुमित्या च तत्त्वतः । स्त्रीणां विदित्वाभिप्रायं वर्तेताशु यथोचितम् ।।५५
स्त्रीभ्यो विप्रतिपन्नाभ्यः प्राणैरपि वियोजनम् । दृष्टं हि च यथा[१] राज्ञामतो रक्षेत्प्रयत्नतः ।।५६
वेण्या गूढेन शस्त्रेण हतो राजा शुभध्वजः । मेखलामणिना देव्या सौवीरश्च नराधिपः ।।५७
भ्रात्रा देवीप्रयुक्तेन भद्रसेनो निपातितः । तथा पुत्रेण कारूषो घातितो दर्पणासिना ।।५८
द्वौ काशिराजौ वै वन्द्यौ चानन्दापुरयोषिता । विषं प्रयुज्य पञ्चत्वमानीतौ पूजितात्मकौ ।।५९
एवमादि महाभागा राजानो ब्राह्मणाश्च ह । स्त्रीभिर्यत्र निपात्यन्ते तत्रान्येष्विह का कथा ।।६०
तस्मान्नित्याप्रमत्तेन जाया रक्ष्याश्च नित्यशः । यथावदुपचर्याश्च गुणदोषानुरूपतः ।।६१
वैषम्यादुपचाराणां विकारैश्चानिमित्तजैः । विशेषेण सपत्नीकैरकस्माच्चापि वेदनैः ।।६२
असम्भागे च वाग्दण्डपारुष्यादप्रसङ्गतः । प्रद्वेषो भर्तरि स्त्रीणां प्रकोपश्चापि जायते ।।६३
ततश्चायाति वार्धक्यमुद्वोढुश्चापि शत्रुताम् । तस्मान्न तान्प्रयुञ्जीत दोषान्दाराविनाशकान् ।।६४
न चैताः स्वकुलाचारमधर्मं वापि चाञ्जसा । न गुणांश्चाप्युपेक्षन्ते प्रकृत्या किमु पीडिताः ।।६५

यथार्थतः पता लगा लेना चाहिये ।५२। सीता अरुन्धती शकुन्तला आदि के सत् एव असत् चरित्र सम्बन्धी कथाओं की ओर प्रवृत्ति से स्त्रियों के मनोगत भावों का पता लगाना चाहिये ।५३। इन कथा प्रबन्धों में आने वाले पुरुषों एवं स्त्रियों के दुष्ट एवं सच्चे स्वभाव वाले पुरुषों एवं स्त्रियों के साथ दुष्ट एवं सच्चे स्वभाव वाली स्त्रियों की विशेष रुचि होती है ।५४। इस प्रकार शास्त्र (शब्द प्रमाण), प्रत्यक्ष और अनुमान एवं युक्ति से स्त्रियों के वास्तविकता का पता लगाकर उनके साथ शीघ्र ही वैसा व्यवहार भी करना चाहिये ।५५। विरोध भावना रखने वाली स्त्रियों के कारण कितने राजाओं का भूतकाल में प्राणत्याग तक होता देखा गया है अतः उनसे सर्वदा सतर्कता पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये ।५६। केशपाश में छिपे हुए शस्त्र से राजा शुभध्वज मारे गये । अपनी स्त्री की मेखला मणि से सौवीर नरेश का प्राणान्त हुआ ।५७। अपनी ही स्त्री की प्रेरणा से राजा भद्रसेन भाई द्वारा मारे गये इसी प्रकार कारुष देशाधिपति अपनी स्त्री की प्रेरणा से दर्द नाश करने वाले पुत्र द्वारा मारे गये ।५८। काशी के दो राजा, जो अपनी प्रजा के परम प्रिय एवं वन्दनीय थे विष देकर अन्तःपुर की स्त्री द्वारा मारे गये ।५९। ऐसे परम विद्वान् ब्राह्मण एवं महाभाग्यशाली राजाओं को जब उनकी स्त्रियाँ मार डालती हैं तो अन्य साधारण लोगों के लिए क्या कहा जाय ।६०। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर मनुष्य को सर्वदा सतर्कता से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये तथा उन्हें गुण एवं दोष के अनुरूप नियमन एवं सत्कार करता रहे ।६१। व्यवहार की विषमता, निष्कारण मनोमालिन्य विशेषतया सपत्नि की प्रेरणा से होने वाले दुर्व्यवहार बिना अपराध के दण्ड यथेप्सित सम्भोग का अभाव दण्ड की कठोरता बिना प्रसंग के सर्वदा कठोर वचन बोलते रहना—इन सब कारणों से पति में स्त्रियों की विद्वेष भावना बहुत बढ़ जाती है ।६२-६३। इससे वृद्धता एवं शत्रुता आ जाती है, अतः मनुष्य को ऊपर कहे गये दुर्व्यवहारों का प्रयोग स्त्रियों के प्रति कभी नहीं करना चाहिये—ये स्त्रियों के नष्ट करने वाले होते हैं ।६४। जब ये स्त्रियाँ भलीभाँति प्रसन्न रहने पर भी अपने कुलचार, अधर्म एवं सद्गुणों की ओर सहसा कोई ध्यान नहीं रखतीं, पीड़ित होने पर तो क्या

---

१. तथा ।

सतीत्वे प्रायशः स्त्रीणां प्रदृष्टं कारणत्रयम् । परपुंसामसम्प्रीतिः प्रिये प्रीतिः स्वरक्षणे ।।६६
तस्मात्सुरक्षिता नित्यमुपचारैर्यथोचितैः । सुभृता[1] नित्यकर्माणः कर्तव्याः योषितः सदा ।।६७
उत्तमां सामदानाभ्यां मध्यमाभ्यां तु मध्यमाम् । पश्चिमाभ्यामुभाभ्यां च अधमां सम्प्रसाधयेत् ।।६८
भेददण्डौ प्रयुज्यापि प्रागपत्याद्यपेक्षया । तच्छिष्टानां तदा पश्चात्सामदानप्रसाधने ।।६९
यास्तु विध्वस्तचारित्रा भर्तुश्चाहितकारिकाः । त्याज्या एवं स्त्रियः सद्भिः[2] कालकूटविषोपमाः ।।७०
हृष्टाः[3] कुलोद्गताः साध्व्यो विनीताभर्तृवत्सलाः । सर्वदा साधनीयास्ताः सम्प्रदायोत्तरोत्तरैः[4] ।।७१
एवमेव यथोद्दिष्टं स्त्रीवृत्तं योऽनुतिष्ठति । प्राप्नोत्येव स सम्पूर्णं त्रिवर्गं[5] लोकसम्भवम् ।।७२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि विवाहधर्मेषु
स्त्रीविषये नरवृत्तवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ।८।

अथ नवमोऽध्यायः

आगमप्रशंसावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं स्त्रीषु मनुष्याणां वृत्तिरुक्ता समासतः । साम्प्रतं च मनुष्येषु स्त्रीणां समुपदिश्यते ।।१

रखेंगी।६५। स्त्रियों के सती होने में प्रायः तीन कारण देखे जाते हैं, पारकीय पुरुष के साथ समागम होने का अभाव अपने पति में विशेष्य प्रीति और अपनी रक्षा।६६। इसलिए यथोचित सत्कारादि द्वारा सर्वदा स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए। उन्हें सर्वदा अन्तःपुर में सुरक्षित एवं निरन्तर क्रियाशील बनाना चाहिए।६७। उत्तम स्वभाव वाली स्त्री को साम एवं दान से सन्तुष्ट रखना चाहिये। इसी प्रकार मध्यम स्वभाव वाली स्त्री को दान एवं यथावसर दण्ड के द्वारा वश में रखना चाहिये। अधम स्वभाव वाली स्त्री के लिए दण्ड एवं भेद से काम लेना चाहिये।६८। ऐसी अधम स्वभाव वाली स्त्री को पहले दण्ड एवं भेद द्वारा दण्डित करके बच्चों की रक्षा आदि के लिए कुछ दिनों के बाद पुनः साम दान का प्रयोग करना चाहिये।६९। उनमें जो अत्यन्त दुष्ट चरित्र एवं पति का अकल्याण सोचने वाली हों उन स्त्रियों को सत्पुरुष कालकूट विष के समान (प्राण घातक) समझ कर तुरन्त छोड दे।७०। अपने मन के अनुकूल चलने वाली, उच्च- कुल में उत्पन्न साध्वी, विनीत, सर्वदा पति प्रिया स्त्रियों को उत्तरोत्तर अधिकाधिक सम्मानादि द्वारा सन्तुष्ट करते रहना चाहिये।७१। ऊपर कहे गये नियमों के अनुसार जो मनुष्य अपनी स्त्रियों के साथ व्यवहार रखता है वह इस संसार में प्राप्त धमार्थकाम रूप त्रिवर्ग का यथेष्ट सर्वांशतः उपभोग करता है।७२

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में विवाह धर्म के प्रसंग में स्त्रियों के सम्बन्ध में पुरुषों का कर्त्तव्य वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।८।

अध्याय ९

स्त्रीकर्तव्य-निर्देशपूर्वक आगम (शास्त्र) की प्रशंसा

ब्रह्मा बोले—स्त्रियों के प्रति किये जाने वाले पुरुषों के व्यवहारों का मैं संक्षेप में वर्णन कर चुका हूँ।

---

१. स्वादृताः । २. सर्वाः । ३. हृष्टाः कुलोद्भवाः । ४. अप्रमादोत्तरैः । ५. स्त्रीवर्गलोकसंमतम् ।

सम्यगाराधनात्पुंसां रतिर्वृत्तिश्च योषितः । पुत्राः स्वर्गाद्यष्टं च तस्माद्दिष्टो हि तद्विधिः ॥२
कर्तव्यं नाम यत्किञ्चित्सर्वं [1]विधिमपेक्षते । व्यक्तिमायाति वैफल्यं तदेवारब्धमन्यथा ॥३
विध्यपेक्षीणि सर्वाणि कार्याण्यविफलान्यपि[2] । हेतुभूतास्त्रिवर्गस्य महारम्भा विशेषतः ॥४
सर्वसाध्याविधिज्ञानमागमैकनिबन्धनम् । साध्यं दृष्टमदृष्टं च द्वयं विधिनिषेधयोः ॥५
शास्त्राधिकारो न स्त्रीणां न ग्रन्थानां च धारणे । तस्मादिहान्ये मन्यन्ते तच्छासनमनर्थकम् ॥६
आगमैकक्रियायोगे स्त्रीणामप्यधिकारिता । मृते भर्तरि साध्वी स्यादित्यादौ स्मृतिभाषितम् ॥७
तस्मात्कार्यमकार्यं वा विज्ञाय प्रभुरागमात् । गुणदोषेषु ताः सम्यक्छास्ति राजा प्रजा इव ॥८
सत्येव प्रमदाः काश्चिद्विशेषाधिगतागमाः । यत्तु शास्त्राधिकारित्वं वचनं स्यान्निरर्थकम् ॥९
केचिद्वेदविदो विप्राः कृतवैर्वेषक्रियापराः । तथापि[4] जातिमात्रेण त एवात्राधिकारिणः ॥१०
क्रियन्ते वेदशास्त्रज्ञैः प्रयोगाः शास्त्रलौकिकाः ।स्थितमेषामदूरेऽपि शास्त्रमेव निबन्धनम् ॥११
व्याधधीवरगोपालप्रभृतीनां च दृश्यते । विष्टचं गारकसौर्यादिदिनानां परिवर्जनम् ॥१२
गम्यागम्यादिकार्येषु नियताचारसंस्थितिः । लोकानां शास्त्रवाक्यानां प्राणाः स्वेष्टनिबन्धनाः ॥१३

अब पुरुषों के प्रति किये जाने वाले स्त्रियों के व्यवहारों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये।१। पति की भली भाँति आराधना करने ही से स्त्रियों को रति, जीविका पुत्र, स्वर्ग, एवं अन्यान्य दुर्लभ पदार्थों की प्राप्ति होती है, अतः विधिपूर्वक पति की आराधना करना ही उनके लिए कल्याणकर है ।२। संसार में जो कुछ कर्त्तव्य है वे सब विधान की अपेक्षा रखते हैं, विधान के विपरीत आरम्भ करने से उस कार्य की विफलता स्पष्ट दिखाई देती है ।३। विधिविहित होने के नाते सारे कार्य-कलाप सफल होते हैं यदि वे विशेष सतर्कता पूर्वक प्रारम्भ किये जायँ तो इस लोक में त्रिवर्ग (धर्मार्थकाम) के कारण होते हैं ।४। सब प्रकार के कार्यों एवं उनके विधि निषेधों का ज्ञान एकमात्र शास्त्र से ही होता है । विधि एवं निषेध के दृष्ट और अदृष्ट दोनों ही साध्य हैं ।५। किन्तु स्त्रियों को शास्त्र (वेद) में अधिकार नहीं है और न उनके ग्रन्थों के पढ़ने का ही अधिकार है । इसीलिए उनके संबंध में शासन (उपदेश) देना व्यर्थ मानते हैं ।६। एकमात्र शास्त्रीय कार्य (यज्ञादि) में स्त्रियों का पति के साथ रहने का अधिकार है । पति के मर जाने पर स्त्रियों को सदाचार परायण होना चाहिए-इत्यादि विषयों में स्मृतियों का समर्थन है ।७। पति को चाहिए कि वेद से कार्य तथा अकार्य का ज्ञान प्राप्त कर स्त्रियों के गुण-दोषों के सम्बन्ध में भली भाँति वैसा ही व्यवहार करे जैसा प्रजाओं के साथ राजा व्यवहार करता है ।८। विशेष रूप से वेद के ज्ञान को प्राप्त किये हुए कुछ स्त्रियाँ हैं ही । (ऐसी स्त्रियों के सम्बन्ध में) शास्त्रीय अधिकारों का कथन निरर्थक होता है ।९। कुछ ऐसे ब्राह्मण होते हैं जो वैदिक क्रियाओं के अनुसार अपना वेश भी रखते हैं और तदनुकूल आचरण भी करते हैं किन्तु वेद में उनका अधिकार जाति मात्र से ही है ।१०। वेदों एवं शास्त्रों को जानने वाले शास्त्रीय एवं लौकिक दोनों प्रकार के आचारों को करते हैं, इनके अतिसन्निकट रहने पर भी (शास्त्रीय कार्यों के लिये) शास्त्र ही प्रमाण माने जाते हैं ।११। व्याध, धीवर, गोपाल प्रभृति जातियों में भी भद्रा एवं मंगल रविवार आदि दिनों का परित्याग देखा जाता है ।१२। गम्य (उचित) एवं अगम्य (अनुचित) कार्यादि के लिए आचार व्यवहार की स्थिति उनमें भी नियत रहती है, जिसके लिए किसी से पूंछने की आवश्यकता नहीं होती । शास्त्रीय वाक्यों एवं लौकिक व्यवहारों के प्राण अपनी-अपनी इच्छा

---

१. रतिर्भवति योषिताम् । २. स्थिर । ३. अल्पफलानि च । ४. तत्रापि ।

तस्माच्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च सर्वशः । मुख्यगौणादिभेदानां ज्ञेया शास्त्राधिकारिता ।।१४
पौर्वापर्यं तु विज्ञातुमशक्यं लोकशास्त्रयोः । तच्छास्त्रमेव मन्तव्यं यथा कर्मशरीरवत् ।।१५
आगमे च पुराणे च द्विधैव नास्तिकग्रहम् । मार्गं महद्भिराचीर्णं प्रपद्येताविकल्पधीः ।।१६
मूलं गृहस्थधर्माणां यस्मान्नार्यः पतिव्रताः । तस्मादासां प्रवक्ष्यामि भर्तुराराधने विधिम् ।।१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
आगमनप्रशंसानाम नवमोऽध्यायः ।९।

अथ दशमोऽध्यायः

स्त्रीदुराचारवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आराध्यानां हि सर्वेषामयमाराधने विधिः । चित्त[1] ज्ञानानुवृत्तिश्च हितैषित्वं च सर्वदा ।।१
कन्या पुनर्भूर्वेश्या च त्रिविधा एव योषितः । प्रिया मध्याप्रिया चैव योग्या मध्येतरा तथा ।।२

पर निर्भर रहते हैं ।१३। इसलिए चारों वर्णों एवं आश्रमों में रहने वाले का शास्त्रों पर मुख्य एवं अमुख्य रूप से अधिकार जानना चाहिए ।१४। कर्म और शरीर की भाँति लोक-व्यवहार एवं शास्त्र इन दोनों में कौन पहले का है, कौन बाद का है यह जानना अति कठिन है इसलिए शास्त्र को ही (सबका आधार) मानना चाहिए ।१५। वेदों एवं पुराणों में नास्तिकता का ज्ञान दो ही प्रकार से होता है । अतएव सत्पुरुषों द्वारा अंगीकृत मार्ग को बिना किसी विकल्प (संदेह) के ग्रहण करना चाहिये ।१६। गृहस्थाश्रम के समस्त धर्मकार्यों की मूलस्वरूप पतिव्रता स्त्रियाँ होती हैं अतः इनको अपने पति की आराधना किस प्रकार करनी चाहिए इसकी विधि बतला रहा हूँ ।१७

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में आगम प्रशंसा नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

स्त्रियों के दुराचार का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सभी आराध्यों की आराधना के लिए यही विधि है जिसे मैं बतला रहा हूँ आराधक को सर्व प्रथम अपने आराध्य की चित्तवृत्ति का परिज्ञान करना चाहिये तदनन्तर उसी के अनुरूप अपना व्यवहार रखते हुए सर्वदा उसके कल्याण के कार्यों को करना चाहिये ।१। स्त्रियाँ तीन प्रकार की होती हैं कन्या, पुनर्भू और वेश्या रूप से ये तीनों क्रमशः प्रिया, मध्य प्रिया एवं योग्य मध्येतर (अधमप्रिया) के नाम से पुकारी जाती है । समान श्रेष्ठ एवं नीच इन तीन भेदों से स्त्रियों के पुनः तीन प्रकार बतलाये जाते हैं । प्रिय एवं अप्रिय को छोड़कर इन दोनों बाद वाली स्त्रियों के समस्त कार्यों को पहली ही के कार्यों के समान जानना चाहिये अर्थात् पहली स्त्री की तरह ये बादवाली स्त्रियाँ प्रेम नहीं करती और अपराध भी

---

१. वृत्तज्ञानानुवृत्तिश्च ।

समा श्रेष्ठा च नीचा च भूयोपि त्रिविधाः पुनः । पूर्ववत्परयोर्वृत्तिरिष्टानुक्त्या[1] प्रियाप्रिये ॥३
अधमाप्रिययोरत्र पतिपत्न्यादिका मता । निषिद्धानां तु भक्ष्यादि तद्धि यत्नाद्विधीयते ॥४
एकद्वित्वबहुत्वाद्या[2] ये भेदाः समुदाहृताः । ज्येष्ठादिवृत्ते वक्ष्यामस्तानशेषान्द्विजोत्तमाः ॥५
वृत्तं च द्विविधं स्त्रीणां बाह्यमाभ्यन्तरं तथा । भर्तुरन्यजने बाह्यं तस्याः शारीरमान्तरम् ॥६
ज्ञातीनरविभागेन तद्बाह्यं द्विविधं पुनः । पूज्यं तुल्यं कनिष्ठं च तत्प्रत्येकं पुनस्त्रिधा ॥७
रहोरतं प्रकाशं च शारीरमपि तत्त्रिधा । भर्तुश्चित्तानुकूल्येन प्रयोक्तव्यं यथोचितम् ॥८
माता पिता स्वसा भ्राता पितृव्याचार्यमातुलाः । सभार्या[3] भगिनी भर्ता भर्तृमातृपितृष्वसा ॥९
धात्री वृद्धाङ्गनादिश्च यस्तत्राप्तः समो जनः । प्रथमोढा सपत्नी च स्त्रीणां मान्यतमो गणः[4] ॥१०
एषामेव त्वपत्यादिभगिनीभ्रातरस्तथा । कनिष्ठा भर्तुरित्यादिभार्याश्चाप्तसमो मतः ॥११
हीनोऽन्यः शासनीयस्तु तत्र तावन्न विद्यते । योग्यता सुतसौभाग्यैर्न यावत्स्यात्प्रतिष्ठिता ॥१२
यत्रापि गुरु भर्तॄणामानुकूल्येन सर्वदा । वृत्तिः प्रशस्यते स्त्रीणां पूजाचाराविरोधिनी[5] ॥१३

उससे अधिक करती हैं पर शेष कार्यों में पुत्रादि उत्पन्न करने में अथवा गृहस्थी के अन्य कार्यों में ये दोनों भी उसी के समान होती हैं ।२-३। इस लोक में उन अधम एवं अप्रिय दम्पति में भी पति-पत्नी का व्यवहार माना जाता है निषिद्धों में जो भक्ष्य आदि हैं । द्विजवृन्द ! इनका फलपूर्वक विधान करते हैं ।४। ज्येष्ठ आदि के कार्यों प्रसंग में उन सबको मैं बतलाऊँगा । जो एक दो एवं अनेक भेद (स्त्रियों के) कहे गये हैं स्त्रियों के मुख्यतः व्यवहार होते हैं ।५। एक अभ्यन्तर दूसरा बाह्य पति को छोड़कर दूसरे जितने भी मनुष्य हैं उन सबके साथ किये जाने वाले व्यवहार को बाह्य कहते हैं । अपने शरीर सम्बन्धी जितने कार्य होते हैं उन सब को आभ्यन्तर कहते हैं ।६। जाति बिरादरी वालों के साथ एवं अन्य सर्वसामान्य लोगों के साथ दो प्रकार के व्यवहारों के कारण बाह्य व्यवहार के भी दो भेद हो गये । उनमें भी पूज्य, तुल्य, एवं कनिष्ठ लोगों के साथ (होने वाले व्यवहारों के कारण) उक्त दोनों भेदों में से प्रत्येक के तीन-तीन भेद हुए ।७। इसी प्रकार शरीर व्यवहार के भी रहस्य एवं प्रकाश्य इन तीन प्रकारों से तीन भेद हुए पत्नी अपने पूज्य पतिदेव के चित्र के अनुकूल इनको करे ।८। माता, पिता, बहिन (बड़ी) भाई, चाचा, मामा आचार्य, सपत्नी बहिन (चाचा फूफी आदि की लड़कियाँ) स्वामी और पति की माता पिता की बहिनें, धाय, परिवार की वृद्ध स्त्रियाँ ये सभी स्त्रियों पूज्य के समान समादरणीय हैं । अपने से पहिले चाही गई सपत्नी भी इसकी परम सम्माननीय है ।९-१०। इन सब के लड़के लड़कियाँ पद में लगने वाले छाटे भाई बहने पति की छोटी सपत्नी आदि भी उसके सम्मान के योग्य मानी जाती हैं ।११। वधू के लिये तो पति गृह में तब तक कोई भी छोटा व्यक्ति शासनीय नहीं रहता जब तक पुत्र प्राप्ति एवं अन्यान्य सौभाग्यादि से वह पूर्ण संयुक्त नहीं हो जाती ।१२। अपने गुरुजनों एवं पति की इच्छा के अनुकूल उसे सर्वदा अपना व्यवहार रखना चाहिये । पति एवं गुरुजनों की सेवा के अतिरिक्त किसी भी पूजा एवं व्रतोपवासादि को करने का आचरण स्त्रियों का प्रशंसनीय माना गया है ।१३। अपने देवरों एवं पति के

१. पूर्ववत्परयोर्वृत्तिं विद्यान्मुक्त्वा प्रियागसम् । २. एका द्विर्बहुनारीणाम् । ३. सभक्ता । ४. गुणः । ५. पूज्यदाराविरोधिनी ।

देवरैः पतिमित्रैश्च परिहासक्रियोचितैः । विविक्तदेशावस्थानं वर्जयेदिति नर्म च ।।१४
प्रायशो हि कुलस्त्रीणां शीलविध्वंसहेतवः । दुष्टयोगो रहो नित्यं स्वातन्त्र्यमतिनर्मता ।।१५
दुष्टसङ्गे त्वरा स्त्रीणां युवभिर्नर्म नोचितम् । निर्भेषता स्वतन्त्राणां साफल्यं रहसि व्रजेत् ।।१६
पुंसो दुष्टेङ्गिताकारान्दुष्टभावप्रयोजितान् । भ्रातृवत्पितृवच्चैतान्पश्यती परिवर्जयेत् ।।१७
पुंसोऽन्याग्रहमालापस्मितदिप्रेक्षितानि च । करान्तरेण[1] द्रव्याणां निबन्धं[2] ग्रहणार्पणम् ।।१८
द्वारप्रदेशावस्थानं राजमार्गावलोकनम् । प्रेक्षोद्यानादिशीलत्वं निरुध्याद्देशमालयम् ।।१९
बहूनां दर्शने स्थानं दृष्टिवाक्कायचापलम् । ष्ठीवनत्वं ससीत्कारमुच्चैर्हसितजल्पितम् ।।२०
साङ्गत्यं लिङ्गिदुष्टस्त्रीभिक्षुणीक्षणिकादिभिः । मन्त्रमण्डलदीक्षायां सक्तिः संवसनेषु च ।।२१
इत्येवमादिदुर्वृत्तं प्रायोदुष्टजनोचितम् । वर्जयेत्परिरक्षन्ती कुलत्रितयवाच्यताम् ।।२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
स्त्रीदुर्वृत्तवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ।१०।

मित्रों के साथ उचित परिहासादि एकान्त स्थान में निवास एवं हास्य आदि भी उसे नहीं करना चाहिये ।१४। ये सब प्रायः कुलाङ्गनाओं के शील को भ्रष्ट कर देने के कारण बन जाते हैं दुष्टों की संगति नित्य एकान्त निवास स्वतंत्रता एवं अतिशय हास्य ।१५। दुष्टों की संगति में शीघ्रता एवं युवकों के साथ परिहास ये दो बातें तो स्त्रियों के लिए सर्वथा अनुचित हैं । स्वच्छन्द प्रवृति वाली स्त्रियों की कुचेष्टाएँ एकान्त में बहुत शीघ्र सफल हो जाती हैं ।१६। परकीय पुरुषों के गन्दे इशारों से जो दुष्ट भावना से सम्बन्ध रखने वाले होते हैं उन्हें अपने भाई और पिता की दृष्टि से देखकर उनका परित्याग करे ।१७। परकीय पुरुष के साथ वस्तुओं का आदान-प्रदान वार्तालाप हास्य-परिहास विप्रेक्षण किसी भी दूसरे व्यक्ति के हाथ से रुपये पैसे का लेन-देन, दरवाजे पर खड़ा होना, सड़क की ओर ताकना, खिड़की और झरोखे में बैठकर देखना बाग एवं उपवन की सैर करना, ऐसे स्थान पर खड़ा होना जहाँ बहुतों की दृष्टि पड़े । नेत्र, वचन एवं शरीर की चंचलता, थूकना, उच्च स्वर से हँसना, बेकार की गपें हाँकना, संन्यासी, दुष्ट स्त्री, भिक्षुकी, कुटनी आदि की संगति करना मंत्र मण्डला दीक्षा एवं ग्रामीणों के विशेष उत्सवों में आसक्ति रखना प्रायः ये सभी कार्य दुष्ट प्रकृति वालों के लिए उचित कहे गये हैं । पतिव्रता वधू तीनों कुलों के इन निन्दात्मक कार्यों को अपने शील सदाचार की रक्षा करती हुई छोड़ दे ।१८-२२

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्री दुराचारवर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

---

१. कालान्तरेण । २. विरुद्धम् ।

अथैकादशोऽध्यायः

स्त्रीणां गृहस्थधर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

या पतिं दैवतं पश्येन्मनोवाक्कायकर्मभिः । तच्छरीरार्धजातेव सर्वदा हितमाचरेत् ॥१
तत्प्रियां प्रियवत्पश्येत्तद्द्वेष्यां द्वेष्यवत्सदा । अधर्मानर्थयुक्तेभ्योऽयुक्ता चास्य निवर्तते ॥२
प्रियं किमस्य किं पथ्यं साम्यं चास्य कथं भवेत् । ज्ञात्वैवं सर्वभृत्येषु न प्रमाद्येत वै द्विजाः ॥३
देवतापितृकार्येषु भर्तुः स्नानाशनादिषु । सत्कारेऽभ्यागतानां च यथौचित्यं न हापयेत् ॥४
वेश्मात्मा च शरीरं हि गृहिणीनां द्विधा कृतम् । संस्कर्तव्यं प्रयत्नेन प्रथमं पश्चिमादपि ॥५
कृत्वा वेश्म सुसंमृष्टं त्रिकालविहितार्चनम् । वृत्तकर्मोपभोगानां संस्कर्तव्यं यथोचितम् ॥६
प्रातर्मध्यापराह्णेषु बहिर्मध्यान्तरेषु च । गृहसम्मार्जनं कृत्वा निष्कारान्न निशि क्षिपेत् ॥७
गोमहिष्यादिशालानां तत्पुरीषादिमात्रकम् । व्यपनेयं तु यत्नेन सम्मार्जन्या प्रसाधनम् ॥८
दासकर्मकरादीनां बाह्याभ्यन्तरचारिणाम् । पोषणादिविधिं विद्यादनुष्ठानं च कर्मसु ॥९

अध्याय ११

स्त्रियों के गृहस्थ धर्म का वर्णन

ब्रह्मा बोले—पतिव्रता पत्नी अपने आराध्य पति को सर्वदा मनसा वाचा कर्मणा देवता की भाँति देखे और सर्वदा उसके कल्याण साधन में आधे शरीर से उत्पन्न की भाँति निरत रहे ।१। उसकी प्रिय वस्तुओं एवं व्यक्तियों को प्रिय की तरह और उसकी अप्रिय को अप्रिय की तरह देखे सर्वदा अनर्थ एवं अधर्म कार्यों से पति को बचा कर रखे ।२। द्विजवृन्द ! (पतिव्रता को चाहिये) हमारे पति का प्रिय क्या है (उसी के अनुरूप) दोनों का साम्य कैसा होगा यह मानकर सभी दास दासियों के साथ कभी असावधानी से उनके साथ व्यवहार न करे ।३। देवता एवं पितरों के कार्यों में पति के स्नान भोजनादि कार्यों में अतिथियों के स्वागत सत्कारादि में उसे औचित्य की रक्षा करनी चाहिये ।४। गृहस्थों की पत्नियों के शरीर घर और आत्मा को इन दो भागों में विभक्त किया गया है । इन दोनों में घर को आत्मा से भी बढ़कर प्रयत्न पूर्वक स्वच्छ रखना चाहिये ।५। प्रातः मध्याह्न एवं सायं इन तीनों कालों में खूब झाड़ बुहार कर घर को स्वच्छ रखे और उसकी पूजा करे । इनके अतिरिक्त अपने सभी कार्यों में एवं समस्त घरेलू वस्तुओं में भी यत्नपूर्वक पर्याप्त स्वच्छता रखे ।६। घर के भीतर बाहर एवं मध्य भाग में सर्वत्र प्रातःकाल मध्याह्न एवं अपराह्न में झाड़ू से साफ करके कूड़ा बाहर फेंकना चाहिये । पर रात्रि काल में कूड़े को बाहर नहीं डालना चाहिये ।७। गोशाला एवं भैसों की शाला आदि से उनके मूत्र एवं गोबर आदि को सप्रयत्न झाड़ू से खूब स्वच्छ करना चाहिये ।८। घर के भीतर एवं बाहर काम करने वाले दास-दासी एवं मजदूरों के खान पानादि की व्यवस्था गृहिणी को करना चाहिये, घरेलू सारे कार्यों की निगरानी भी उसे रखनी चाहिये ।९। शाक, मूल, फल, लता, औषधि एवं सभी प्रकार के बीजों का

शाकमूलफलादीनां वल्लीनामौषधस्य च : सङ्ग्रहः सर्वबीजानां यथाकालं यथाबलम् ॥१०
ताम्रकांस्यायसादीनां काष्ठवेणुमयस्य[१] च। मृन्मयानां च भाण्डानां विविधानां च सङ्ग्रहम् ॥११
कुण्डकादिजलद्रोण्या कलशोदञ्चतालुकाः । शाकपात्राण्यनेकानि स्नेहानां गोरसस्य च ॥१२
मुसलं कुण्डनीयं तु यन्त्रकं[२] चूर्णचालनी। दोहन्यो नेत्रकं मन्था मण्डन्य : भृङ्खलानि च ॥१३
सन्दन्शः कुण्डिका शूलाः पट्टपिप्पलको दृषत्। डिविका हस्तको दर्वी भ्राष्टस्फुटलकानि च ॥१४
तुलाप्रस्थादिमानानि मार्जन्यः पिटकानि च । सर्वमेतत्प्रकुर्वीत प्रयत्नेन च सर्वदा ॥१५
हिङ्वादिकमथो जाजी पिपल्यो मरिचानि च। राजिका धान्यकं शुण्ठी त्रिचतुर्जातकानि च ॥१६
लवणं क्षारवर्गाश्च सौवीरकपरूषकौ । द्विदलामलकं चिंचा सर्वाश्च स्नेहजातयः ॥१७
शुष्ककाष्ठानि वल्लूरमरिष्टा पिष्टमाषयोः । विकाराः पयसश्चापि विविधाः कन्दजातयः ॥१८
नित्यनैमित्तिकानां हि कार्याणामुपयोगतः । सर्वमित्यादि संग्राह्यं यथावद्विभवोचितम् ॥१९
यत्कार्याणां समुत्पत्तावुपाहर्तुं न शुश्यते । तत्प्रागेव यथायोगं सङ्गृह्णीयात्प्रयत्नतः ॥२०
धान्यानां घृष्टपिष्टानां क्षुण्णोपहतयोरपि । भृशं शुष्कार्द्रसिद्धानां क्षयवृद्धी निरूपयेत् ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
गृहधर्मवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।११।

समय-समय पर अपनी शक्ति के अनुरूप उसे संग्रह करना चाहिये ।१०। ताँबें, काँसे, लोहे काष्ठ बाँस एवं मिट्टी के गृहस्थी के उपयोगी विविध पात्रों का भी उसे विधिवत् संग्रह करना चाहिये ।११। जल रखने के लिए बनी हुई बड़ी बड़ी द्रोणियाँ (छोडें) कलश, झारी तथा उदंचन (बड़े पात्र से जल निकालने के लिए छोटे जल पात्र) एवं शाक आदि रखने के पात्रों का भी उसे संग्रह करना चाहिये । तेल की एवं गोरस रखने के पात्रों को भी सावधानी से संगृहीत करना चाहिये ।१२। मूसल, ओखली, सूप, चालनी, दोहनी, सिल, चक्की, मथानी, जंजीर, सनसी, कुण्डिका, शूल, परी, चिमटा, करछुल, कड़ाही, बड़े करघे, तराजू, सेर, अधसेरा, आदि के मान, झाड़ू पिटारी इन सब गृहस्थी की परम उपयोगी वस्तुओं का प्रयत्न पूर्वक सर्वदा संग्रह करना चाहिये ।१३-१५। हींग जीरा, पिपली, धनियाँ, राई तीन प्रकार की सोंठ, नमक अन्य सभी प्रकार के क्षार,कांजी, सिरका, दाल, आँवला, इमली, सभी प्रकार के तेल, सूखी लकड़ी, पिसा हुआ उड़द, सूखे हुए मांसादि रीठा इन सबको तथा दूध से बनने वाली सभी वस्तुओं सब प्रकार के कन्दों एवं अन्यान्य प्रकार की गृहस्थी की नित्य उपयोगी वस्तुओं को पहले से ही संगृहीत करना चाहिए । अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप ऐसी सभी वस्तुओं को सोच विचार कर पहले ही से अपने पास रख लेना चाहिये ।१६-१९। इनके अतिरिक्त जो वस्तुएँ कार्यारम्भ हो जाने पर तुरन्त न मँगाई जा सकती हों, उन्हें भी पहले ही से प्रयत्न पूर्वक संग्रह करे । अब इसके बाद घिसे हुए पिसे हुए पकाये गये और कच्चे तथा खूब सूखे हुए एवं गीले अन्नों में कितनी वृद्धि होती है, कितनी न्यूनता होती है इन सबका निरूपण कर रहा हूँ ।२०-२१

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में गृहधर्म वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।११।

---

१. अश्ममयस्य । २. शूर्पवर्धिनी ।

अथ द्वादशोऽध्यायः

स्त्रीधर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

व्रीहीणां कोद्रवाणां च सारधर्ममुदारकः[1] । कङ्गुकोद्रवयोर्ज्ञेयो परटः पञ्चभागकः ॥१
पञ्चभागान्प्रियङ्गूनां शालीनां च त्रयोऽष्ट च । चणकानां तृतीयांशः समक्षुण्णं त्रयं विदुः ॥२
पानीययवगोधूमं[2] पिष्टधान्यचतुष्टयम् । तुल्यमेवावगन्तव्यं मुद्गा माषास्तिला यवाः ॥३
पञ्चभागादिका घृष्टा गोधूमाः सक्तवस्तथा । कुल्माषाः पिष्टमांसं च सम्यगर्धादिकं भवेत् ॥४
सिद्धं तदेव द्विगुणं पुन्नाको यावकस्तथा । कङ्गुकोद्रवयोरन्नं चणकोदारकस्य च[3] ॥५
द्विगुणं[4] चीनकानां च व्रीहीणां च चतुर्गुणम् । शालेः पञ्चगुणं विद्यात्पुराणे त्वतिरिच्यते ॥६
क्रियापाकविशेषास्तु वृद्धिरेवोपदिश्यते । निमित्तस्य वरान्नस्य तद्वृद्धिर्द्विगुणा भवेत् ॥७
तस्माद्भूयो विरूढस्य चतुर्भागो विवर्धते । लाजा धानाः कलायाश्च भृष्टाद्द्विगुणवृद्धयः ॥८
भ्रष्टव्यानामतोऽन्येषां पञ्चभागोऽधिको मतः । चापकानां च पिष्टानां पादहीनाः कलायजाः ॥९

अध्याय १२

स्त्रीधर्म का वर्णन

ब्रह्मा बोले—व्रीहिधान्य (गेहूँ आदि) और कोदो के चावल कूटने में आधा भाग तात्त्विक होता है और आधी भूसी निकल जाती है। काकुन और कोदो का पाँचवा भाग परट होता है।१। इसी प्रकार प्रियंगु धान्य का पाँचवा भाग भी न्यून होता है शाली का एक तृतीयांश तथा अष्टमांश न्यून होता है। चने का एक तृतीयांश निकल जाता है—ऐसा लोग कहते हैं और ये तीनों समान कूटने योग्य हैं।२। पानीय (सिंघाड़ा) ज्वार गेहूँ एवं पीसे हुए चार प्रकार के अन्नों का जलन एक समान ही जानना चाहिये। मूंग, उडद, तिल, तथा जवा इन चारों में समान जलन एवं छीजन जाता है।३। गेहूँ और सत्तू इनमें पीसने पर पाँचवाँ भाग निकल जाता है। कुल्माथ (कुलथी) और पिष्टमांस में भी अच्छी तरह पीसने पर आधे से अधिक जाता है।४। किन्तु पकाने पर वह दुगुना हो जाता है। पुन्नाक और यावक में भी ऐसा ही होता है। काकुन और कोदों के अन्न में चना और उदारक के अन्न को पकाने पर द्विगुणित वृद्धि होती है। चीनी व्रीहि (चावल) पकाने पर चौगुना होता है साठी का पांच गुना होता है पुराने होने पर और अधिक होता है।५-६। पाक क्रिया में विशेषता (निपुणता) रखने वाले तो इससे भी बढ़कर वृद्धि होने का उपदेश देते हैं। शुद्ध श्रेष्ठ अन्न को वे द्विगुणित बड़ा देते हैं।७। उससे भी बढ़कर वे अन्न बढ़ते हैं जो अंकुरित हो जाते है, उनका चतुर्थांश बढ़जाता है। लावा, धान और कलाय ये भूने जाने पर द्विगुणित बढ़ जाते हैं।८। इनके अतिरिक्त जो भूने जाने वाले अन्न हैं उनका भूनने पर पाँचवाँ भाग अधिक माना जाता है। चापक एवं पीसे गये अन्नों के कलायज चौथाई न्यून हो जाते हैं।९

---

१. सारमर्धमुदारकः २. यमनीयवगोधूमम्। ३. यवकोदारवस्य। ४. त्रिगुणम्।

मुद्गमाषमसूराणामर्धपादावरोभवेत् । क्लिन्नशुष्कवरान्नानां हानिर्वृद्धिर्विशिष्यते ॥१०
तथार्धेन तु शोध्यानामाढक्या मुद्गमाषयोः । मसूराणां च जानीयात्क्षयं पञ्चमभागकम् ॥११
षड्भागेनातसीतैलं सिद्धार्थककपित्थयोः । तथा निम्बकदम्बादौ[1] विद्यात्पञ्चमभागकम् ॥१२
तिलेङ्गुदीमधूकानां[2] नक्तमालकुसुम्भयोः । जानीयात्पादकं तैलं खलमन्यत्प्रचक्षते ॥१३
क्षेत्रकालक्रियादिभ्यः क्षयादेर्व्यभिचारतः । प्रत्यक्षीकृत्य तान्सम्यगनुमित्यावधारयेत् ॥१४
क्षीरदोषे गवां[3] प्रस्थं महिषीणां च सर्पिषः । पादाधिकमजावीनामुत्पादं तद्विदो विदुः ॥१५
सुभूमितृणकालेभ्यो वृद्धिर्वा क्षीरसर्पिषाम् । अतस्तेषां विधातव्यो ह्यर्थादेव[4] विनिश्चयः ॥१६
प्रत्यक्षीकृत्य यत्नेन पक्षमासान्तरे तथा । पयोर्वृत्तैर्गवादीनां कुर्यात्सम्भवनिर्णयम् ॥१७
कार्पासकृमिकोशौमौर्णकक्षौमादिकर्तनम् । कुणिपङ्ग्वन्धयोषाभिर्विधवाभिश्च कारयेत् ॥१८
बालवृद्धान्धकार्पण्ये यत्कर्तव्यमवश्यतः । विनियोगं नयेत्सर्वं प्रियोपग्रहपूर्वकम् ॥१९
कर्मणामन्तरालेषु प्रोषिते चापि भर्तरि । स्वयं वै तदनुष्ठेयं नित्यानां चाविरोधतः ॥२०

मूंग, उड़द और मसूर का आठवाँ भाग न्यून हो जाता है। विशेष गीले सूखे एवं श्रेष्ठ पुष्ट अन्नों की हानि (न्यूनता) और वृद्धि इस सामान्य नियम से कुछ बढ़ घट जाती है।१०। ऐसे मूंग उड़द और मसूर में जो शोधनीय रहते हैं अर्थात् खूब साफ नहीं रहते उनके पाँचवे भाग की कमी जाननी चाहिये।११। अलसी का तेल छठवाँ भाग निकलता है, सरसों कपित्थ (कैंथा) नीम और कदम्ब आदि में पाँचवा भाग जानना चाहिये।१२। तिल, ईंगुदी, महुआ, नक्तमाल (करञ्ज) और उसगण में एक चौथाई तेल जानना चाहिये। खल (खरल खली) का लक्षणादि अन्यत्र कहा गया है।१३। खेत, समय, निकालने की प्रक्रिया आदि के कारण इस उपर्युक्त नियम में कुछ व्यभिचार दिखाई पड़ेगा, अर्थात् जितना कहा गया है, उससे अधिकता या न्यूनता हो सकती है अतः उन्हें (खेत, समय एवं प्रक्रिया) को अपनी आँखों से देखकर अनुमान द्वारा घटा बढ़ाकर जान लेना चाहिये।१४। गौओं के दूध में एक सेर घी होता है परन्तु दूध के दोष आदि के कारण सेर आदि में कुछ निश्चित परिमाण भी नहीं बतलाया जा सकता। भैंस बकरी और भेडों में उनकी अपेक्षा चौथाई से कुछ अधिक घी पैदा होता है अर्थात् १६ सेर दूध में सवा सेर से अधिक घी होता है। ऐसा उसके विषय में अधिक जानकारी रखने वाले लोग कहते हैं।१५। अच्छी भूमि घास और समय के अनुसार दूध और घी में इससे अधिक भी वृद्धि होती है। अतः उनके लिए निश्चित परिमाण का निश्चय उन्हीं सब पर विचार करके स्वयं ले करना चाहिये।१६। एक पक्ष अथवा एक महीने तक प्रत्येक खिलाने पिलाने के उपाय से गौओं आदि के दूध एवं घी में उत्पत्ति का निश्चय करना चाहिये।१७। कपास रेशम एवं सन आदि के कीड़ों एवं उनके चुनने एवं काटने आदि का काम गूंगी, लंगड़ी, बहरी एवं विधवा स्त्रियों से कराना चाहिये।१८। बालक, वृद्ध, अन्ध एवं दीन व्यक्तियों को उनकी अभीष्ट वस्तुएँ एवं भोजनादि देकर योग्य कामों में लगाकर सब काम करा लेना चाहिये।१९। नित्य होने वाले कार्यों में पति के विश्राम के अवसर पर तथा उसके परदेश चले जाने पर पत्नी को बिना किसी विरोध के स्वयमेव

---

१. कुसुम्भादेः। २. माषकाणाम्। ३ वद्यान। ४ तत्तद्भागविनिश्चयः।

शूद्राणां स्थूलसूक्ष्मत्वं बहुत्वं च व्ययाव्ययौ । मत्वा विशेषं कुर्वीत चेतनप्रतिपत्तिषु ॥२१
कारयेद्वस्त्रधान्यादि स्वाप्तवृद्धैरधिष्ठितम्[1] । शूद्राणां क्षयवृद्ध्यादि मन्तव्यं वेतनानि च ॥२२
क्षौमकार्पासयोर्विद्यात्सूत्रं पञ्चमभागकम् । देशकालादिभागात्तु प्रत्यक्षादेव निर्णयः ॥२३
अवघातेन तूलस्य क्षयो विंशतिभागकः । छन्नां व्याप्तां तु वातेन तद्वद्वूर्णां प्रचक्षते ॥२४
पञ्चाशद्भागिकीं हानिं सूत्रे कुर्वीत लक्षणात्[2] । वृद्धिस्तु मण्डसम्पर्काद्दशैकादशिका भवेत् ॥२५
सूक्ष्ममध्यमसूत्राणामर्धाधिकसमं भवेत् । स्थूलानां तु पुनर्भूल्यात्पादोनं वालचेतनम् ॥२६
कर्मणो भूरिभेदत्वाद्देशकालप्रभेदतः[3] । तद्विद्भ्य एव बोद्धव्यो वालचेतननिश्चयः ॥२७
स्थूलं दिनत्रयं देयं मध्यमं च त्रिरात्रिकम् । सूक्ष्ममापक्षतो मृष्टं[4] मासात्तत्परिकर्मकम् ॥
यदत्र क्षयवृद्ध्यादि तदुत्सर्गात्प्रदर्शितम् ॥२८
कालकर्त्रादिभेदेन व्यभिचारोऽपि दृश्यते । शय्यासनान्यनेकानि कम्बलाश्चतुराश्रिकाः ॥२९
कञ्चुकाश्चावकोषाश्च मध्या रक्ताश्च भूरिशः । गुरुबालादिवृद्धानामभ्यागतजनस्य च ॥३०

सहयोग करना चाहिये ।२०। शूद्रों (नौकरों) की मोटाई दुर्बलता एवं संख्या की अधिकता को देखकर एवं भलीभाँति विचारकर व्यय सब संचय में विशेषता तथा चतुरता प्राप्त करनी चाहिये ।२१। अपने घर के बड़े और अनुभवी बहुजनों द्वारा बतलाये गये नियमों का वस्त्र एवं अन्न सम्बन्धी कार्यों में पालन करना चाहिये । इसी प्रकार सेवकों की संख्या बढ़ाने घटाने एवं उनके वेतनादि में भी अनुभवी वृद्धों द्वारा जानकारी प्राप्त कर के निश्चय करना चाहिये ।२२। अलसी और कपास में पाँचवाँ हिस्सा सूत जानना चाहिये । किन्तु इस नियम में देश और काल के कारण प्रत्यक्ष देखकर ही निर्णय करना चाहिये ।२३। धुनने पर रूई का बीसवाँ भाग क्षय हो जाता है । भेंड़ आदि के अच्छे ऊन यदि वायु से सुरक्षित स्थल में रखकर धुने जायँ तो वे भी उतने ही न्यून हो जाते हैं ।२४। कपड़ा बिनाने पर इन सूतों का पचासवाँ भाग न्यून हो जाता है । बुनते समय माँड़ के मिला देने से दसवें एवं ग्यारहवें भाग जितनी वृद्धि हो जाती है ।२५। बहुत महीन चिकने और मध्यम कोटि के सूतों में ऊपर के आधे अथवा उससे कुछ अधिक की न्यूनता होती है । मोटे सूतों में वह न्यूनता चौथाई हो जाती है ।२६। किन्तु यह सब बातें बनने वालों की अज्ञता एवं निपुणता पर निर्भर करती है । कार्यों के अनेक भेद होने के कारण तथा देश और काल के भेद से अज्ञों और निपुणों की जानकारी ऐसे अनुभवी लोगों से ही प्राप्त करनी चाहिये जो उक्त विषय के विशेषज्ञ हों ।२७। मोटे सूत का कपड़ा तीन दिन में देना चाहिये, मध्यम कोटि के सूत का तीन रात में तथा बहुत सूक्ष्म और चिकने सूत का कपड़ा एक पक्ष भर में प्रस्तुत कर के दे देना चाहिये । इसमें जो कुछ न्यूनता वा वृद्धि होती है, उसे पहले ही कह चुके हैं ।२८। काल एवं कर्त्ता आदि के भेद से इस नियम में व्यभिचार भी देखा जाता है । अर्थात् कहीं पर उक्त परिमाण से कम और कहीं पर उक्त परिमाण से अधिक क्षय वृद्धि होती है शय्या अनेक प्रकार के आसन, कम्बल, जिस पर कम से कम चार व्यक्ति बैठ सकें कम्बल और चावकोष ये मध्यम कोटि के तथा विशेषतया अधिक रक्त वर्ण के होते हैं । गुरुजन, बालक

---

१. आयुर्वृद्धैः । २. लेखनादिति पाठः । ३. देशकालप्रसिद्धितः । ४. गृष्टम् ।

भोगाय चानुगतो भर्त्ता कुर्याद्विविधमानकम् । यदस्य श्वशुरादीनां कल्पितं शयनादिकम् ॥३१
भर्तुश्चैव विशेषण तदन्येन न कारयेत् । वस्त्रं माल्यमलङ्कारं विधृतं देवरादिभिः ॥३२
न धारयेन्न चैतेषामाक्रमेच्छयनानि वा । पिण्याकनककुट्टाश्च[1] कालरुक्षाणि यानि च ॥३३
हेयं पर्युषिताद्यन्नं गोभक्तेनोपयोजयेत् । कुलानां बहुधेनूनां गोध्यक्षव्रजजीविनाम् ॥३४
किलाटगविकादीनां भक्तार्थमुपयोजनम् । दध्नः समाहरेत्सर्पिर्दुहेद्वत्सान्न पीडयेत् ॥३५
वर्षाशरद्वसन्तेषु द्वौ कालावन्यदा सकृत् । तक्रं वाप्युपयुञ्जीत श्ववराहादिपोषणे ॥३६
पिण्याकक्लेदनार्थं वा विक्रेयं वा तदर्हयेत् । वृत्तिं धान्यहिरण्येन गोपादीनां प्रकल्पयेत् ॥३७
ते हि क्षीरव्रता लोभादुपहन्युस्तदन्वयान् । दोहकालं गवां दोग्धानीतिवर्तेत वै द्विजाः ॥३८
प्रसरोदकयोर्गोपा मन्थकस्य च मन्थकाः । मासमेकं यथा स्तन्यं मासमेकं स्तनद्वयम् ॥३९
सततं पाययेदूर्ध्वं स्तनमेकं स्तनद्वयम् । तिलपिष्टाभिः पिण्डाभिस्तृणेन लवणेन च ॥
वारिणा च यथाकालं पुष्णीयादिति वत्सकान् ॥४०

वृद्ध और अतिथि इन सब की सुविधा एवं भोग के लिए पति के साथ (बहू) विविध प्रकार के कार्यों को करे। श्वसुर आदि बृद्धजनों के लिए जो शैय्या निश्चित है, उसे तथा विशेषतया पति की शैय्या को दूसरे नौकर चाकरादि से नहीं बिछवानी चाहिये। देवर आदि के द्वारा धारण किये गये वस्त्र, माला, पुष्प एवं आभूषणादि को स्वयं कभी नहीं धारण करना चाहिए। इसी प्रकार उनकी शय्या पर भी कभी पैर नहीं रखना चाहिये। खली अन्न के टुकड़े (दलिया और भूसी) सूखे हुए अन्न तथा बासी बचे हुए अन्न को गौ आदि के खाने के लिए रखना चाहिये। बड़े बड़े साँड़ों के साथ चलने वाली अनेक प्रकार की गौओं के समूहों के लिए उन सब का उपयोग करना चाहिये। मथे हुए मट्ठे का उपयोग भी उन्हीं गौओं के लिए करना चाहिये। दही से घी निकाल लेना चाहिये गौओं को यथासमय दुहना चाहिये किन्तु दुहते समय बछड़ों को पीड़ित नहीं करना चाहिये।२९-३५। वर्षा, शरत् और वसन्त ऋतु में दो बार दुहना चाहिये, अन्य ऋतुओं में केवल एक बार दूध से निकले हुए मट्ठे का उपयोग कुत्ते एवं शूकर आदि के पालने के कार्यों में करना चाहिये।३६। अथवा खली के भिगोने के काम में लाना चाहिये अथवा बिक्री कर देना चाहिये। गौओं के चराने एवं पालन करने वाले गोपादिकों का अन्न अथवा सुवर्ण का पारिश्रमिक देना चाहिये।३७। वे दूध बेचने वाले होते हैं उपयुक्त पारिश्रमिक न देने पर वे लोभ से गौओं के बच्चों को पीड़ित करते हैं अतः इनकी देखरेख रखनी चाहिये ठीक समय पर गौओं को अवश्य दुह लेना चाहिये। द्विजवृन्द! उनको दुहने में तनिक देर नहीं करनी चाहिये।३८। वे गौओं की रक्षा करने वाले लोग ही अधिक जल डालकर दुग्ध एवं दही के मथने वाले भी होते हैं। जब गौ व्यावे तो एक मास तक उसे सभी स्तनों का दूध पीने देना चाहिये तदुपरान्त एकमास तक दो स्तनों का।३९। इसके उपरान्त उसे सर्वदा एक स्तन का दूध पीने देना चाहिये। तिल के चूर्ण पिण्ड (पिसान के गोले) तृण (घास) नमक एवं जल

---

१. कोद्राश्च।

जरद्गुर्गर्भिणी धेनुर्दत्सा वत्सतरी तथा । पञ्चानां समभागेन घासं यूथे प्रकल्पयेत् ॥४१
एको गोपालकस्तस्य त्रयाणामथ वा द्वयम् । पञ्चानां वत्सकश्चैकः प्रवरास्तु पृथक्पृथक् ॥४२
गोचरस्यानयनार्थं व्यालानां त्रासनाय[१] च । घण्टा[२] कर्णेषु बध्नीयुः शोभारक्षार्थमेव च ॥४३
पशव्ये व्यालनिर्मुक्ते देशे भूरितृणोदके । अभूतदुष्टे वारण्ये सदा कुर्वीत गोकुलम् ॥४४
सगुप्तमटवीवासं नित्यं कुर्यादजाविकम् । ऊर्णां वर्षे द्विरादद्याच्चैत्राश्वयुजमासयोः ॥४५
यूथे वृषा दशैतासां चत्वारः पञ्चवा गवाम् । अश्वोष्ट्रमहिषाणां च यथा स्युः सुखसेविताः ॥४६
विद्यात्कृषीवलादीनां योगं कृषिककर्मसु । भक्तवेतनलाभं च कर्मकालानुरूपतः ॥४७
क्षेत्रकेदारवाटेषु भृत्यानां कर्म कुर्वताम् । खलेषु[३] च विजानीयात्क्रियायोगं प्रतिक्षणम् ॥४८
योग्यतातिशयं मत्वा कर्मयोगेषु कस्यचित् । ग्रासाच्छदशिरोभ्यङ्गैर्विशेषं तस्य कारयेत् ॥४९
पद्मशाकादिवापानां कन्दबीजादिजन्मनाम् । सङ्ग्रहः सर्वबीजानां काले वापः सुभूमिषु ॥५०
जातानां रक्षणं सम्यग्रक्षितानां च संग्रहः । तेषां च संगृहीतानां यथावन्निवपक्रिया ॥५१

से समय समय पर बछड़ों को पालते रहना चाहिये ।४०। बुड्ढी गौ, गर्भिणी गौ, लगने वाली गौ, बछवा बछिया तथा सद्योजात गौ शिशु इन पाँचों को ही समान भाग से घास देना चाहिये ।४१। गौओं के पीछे एक या दो गोचालक नियुक्त करना चाहिये, उसमें पाँच बछवा बछिया भी रह सकते है उनमें जो बड़े बड़े हों वे परस्पर अलग-अलग हों ।४२। गोचर भूमि से घर तक आने में सर्पादि जीवों को डराने के लिए शोभा वृद्धि एवं रक्षा के लिए गौओं के गले में घण्टी बाँधनी चाहिये ।४३। सर्वदा सर्पादि दुष्ट जीव जन्तुओं से विहीन पशुओं के लिए लाभदायी अधिक घास वाले, चोरों से रहित ग्राम्य स्थान में अथवा जंगल में गौओं के दिन में बैठने व चरने का स्थल निश्चित करना चाहिये ।४४। भेड़ों व बकरियों का चरागाह सर्वदा सुरक्षित जंगली स्थान में करना चाहिये । वर्ष में दो बार चैत्र व आश्विन मास में भेड़ों के ऊनों को काट लेना चाहिये ।४५। बकरियों के समूह में दस के पीछे एक (भेंड़ बकरा) रहना चाहिये इसी प्रकार गौओं के समूह में चार वा पाँच के पीछे एक सांड़ रहना चाहिये । घोड़े, ऊँट एवं भैसों के समूह में जितने ही अधिक हों उतनी ही अधिक सुविधा रहती है उन साडों का विधिवत् पालन करना चाहिये ।४६। कृषि के कामों में कर्मकरों एवं मजदूरों के कार्यों की बराबर देख-रेख रखनी चाहिये । कामों के अनुसार यथासमय उन्हें भोजन एवं वेतनादि का लाभ देना चाहिये ।४७। तैयार फसल वाले खेत में, बाटिका में, हल के पास एवं खलिहान में काम करने वाले मजदूरों के कामों की प्रतिक्षण देख भाल करती रहनी चाहिये । कामों में किसी मजदूर की लगन यदि अतिशय देखी जाय तो उसका ध्यान रख कर भोजन वस्त्र शिर पर लगाने के तेल आदि देकर अन्य मजदूरों की अपेक्षा उसके प्रति विशेषता दिखानी चाहिये ।४८-४९। पद्म, शाक, कन्द मूलादि के बीजों का एवं अन्य गृहस्थी के आवश्यक बीजों का समय-समय पर अच्छा संग्रह रखना चाहिये और उनके ठीक समय आने पर अच्छी भूमि में बो देना चाहिये ।५०। जो फसल पैदा हो गई हो उसकी अच्छी तरह से रक्षा करनी चाहिये और उन सुरक्षित अन्नादि का अच्छी तरह से संग्रह करना चाहिये । और उन संगृहीत अन्नादिकों का बोने आदि की क्रिया

---

१. शासनाय च । २. घण्टाशब्दश्रवणेन गावो मेऽत्र सन्तीति ज्ञानं जायत इत्येततात्पर्यम् । ३. स्थलेषु ।

गृहमूलं स्त्रियश्चैव धान्यमूलो गृहाश्रमः । तस्माद्धान्येषु भक्तेषु न कुर्यान्मुक्तहस्तताम् ।।५२
धान्यं तु सञ्चितं नित्यं मितो भक्तपरिव्ययः । न चान्ने मुक्तहस्तत्वं गृहिणीनां प्रशस्यते ।।५३
अल्पमित्येव नावज्ञां चरेदन्नेषु वै द्विजाः । मधुवल्मीकयोर्वृद्धिं क्षयं दृष्ट्वांजनस्य च ।।५४
ये केचिदिह निर्दिष्टा व्यापाराः पुरुषोचिताः । दाम्पत्योरैक्यमास्थाय तद्विदानप्रसङ्गतः ।।५५
सन्त्येव पुरुषा लोके स्त्रीप्रधानाः सहस्रशः । तेषु तासां प्रयोक्तृत्वाददोष इति गृह्यताम् ।।५६
एवं योग्यतया युक्ता सौभाग्येनोद्यमेन च । सम्यगाराध्य भर्तारं तत्रैनं वशमानयेत् ।।५७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मवर्णनं नाम द्वादशोऽध्याय ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

स्त्रीधर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रथमं प्रतिबुध्येत प्रवर्तेत स्वकर्मसु । पश्चाद्भृत्यजनस्यापि भुञ्जीत च शयीत च ।।१

भी अच्छी तरह सम्पन्न करनी चाहिये ।५१। गृह की सर्वस्व मूलभूत स्त्रियाँ कही जाती हैं, गृहस्थाश्रम अन्न का मूल स्वरूप कहा जाता है, इसलिये अन्न को विशेषतया भोजन को मुक्त हस्त होकर दान नहीं देना चाहिये ।५२। अन्न को सर्वदा संचित करते रहना चाहिये, पकाने में मितव्ययिता करनी चाहिये, निपुण गृहिणी की अन्न के विषय में मुक्त हस्तता प्रशंसित नहीं मानी गई है । (अर्थात् उसे अन्न को इधर-उधर बहुत दान नहीं देना चाहिये) ।५३। द्विजवृन्द ! बहुत थोड़ा है यह जानकर अल्प अन्न की भी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये इसकी वृद्धि के लिए मधु और चीटी के बिल के ऊपर संचित मिट्टी का उदाहरण लेना चाहिये । और उसकी कमी के लिए अंजन का उदाहरण अपनाना चाहिये । (तात्पर्य यह कि जिस प्रकार मधु की मक्खियाँ तनिक तनिक सा मधु एकत्र कर राशि वटोर लेती है चीटियाँ तनिक तनिक सी मिट्टी खोद कर उन्नत ढेर बना देती हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ भी थोड़ा थोड़ा अन्न इकट्ठा कर एक राशि एकत्र कर सकती है और जिस प्रकार अंजन तनिक सा आँख में लगाने पर भी धीरे धीरे बहुत परिमाण में रहने पर भी समाप्त हो जाता है उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा अन्न लापरवाही से छोड़ देने पर वा ऐरे गैरे को झूठी प्रशंसा के लिए दे देने पर एक राशि भी नष्ट हो जाती है ।५४। इस प्रसंग में कुछ काम ऐसे हैं जो पुरुषों के योग्य हैं उनका निर्देश दम्पत्ति की अभेद्य एकता को लेकर किया गया है । स्त्रियों के दान के प्रसंग से इन सबका वर्णन मैंने कर दिया है ।५५। लोक में ऐसे सहस्रों पुरुष भी मिलेंगे जिनमें स्त्री की प्रधानता पाई जाती है, उन पुरुषों को प्रेरणा देने वाली उनकी स्त्रियाँ ही होती हैं । अतः उनके ऐसे व्यवहार में कोई दोष नही है ऐसा जान लीजिए ।५६। इस प्रकार योग्यता सौभाग्य और उद्यम से स्वामी की भलीभाँति आराधना करके उन्हें अपने वश में करें ।५७।

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्री-धर्म वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।१२।

अध्याय १३

स्त्रीधर्म का वर्णन

ब्रह्मा बोले—स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा पहले जग जाना चाहिये और अपने कर्म में लग जाना

भर्त्रा विरहिता स्त्री च श्वशुराभ्यां विशेषतः । देहलीं नातिवर्तेत प्रतीकारे[1] महत्यपि ॥२
उत्थाय प्रथमं भर्तुरविज्ञाता न निष्क्रमेत् । क्षपायां सावशेषायां रात्रौ वा वासरादिषु ॥३
तद्वासभवनस्यैव शनैराहूय कार्मिकान् । स्वव्यापारेषु तान्सर्वांस्तत्रतत्र नियोजयेत् ॥४
विबुद्धस्य ततो भर्तुर्निर्वर्त्यावश्यकं विधिम् । गृहकार्याणि सर्वाणि विदधीताप्रमादतः ॥५
मुक्त्वावासकनेपथ्यं कर्मयोग्यं विधाय च । तत्कालोचितकर्तव्यमनुतिष्ठेद्यथाक्रमम् ॥६
महानसं सुसम्मृष्टं चुल्ल्यादिविहितार्चनम् । सर्वोपकरणोपेतमसम्बाधमनाविलम् ॥७
न चातिगुह्यं प्रकटं प्रविभक्तक्रियाश्रयम् । भर्तुराप्तजनाकीर्णं गूढं कक्षादिवर्जितम् ॥८
तत्र पाकादिभाण्डानि बहिरन्तश्च कारयेत् । निर्णिक्तमलपङ्कानि शुक्तिवल्कादिचूर्णकैः ॥९
निशि कुर्वीत धूमार्चिः शोधितानि दिवातपैः । दधिपात्राणि कुर्वीत सदैवान्तरितानि च ॥१०
साधुकारितदुग्धेषु शोधितेषु दिवातपे । ईषद्गृह्योक्तपात्रेषु स्वच्छं येन भवेद्दधि ॥११
स्नेहगोरसपाकादि कृत्वा सुप्रत्ययेक्षितम् । कुर्यात्स्वयमधिष्ठाय भर्तुः पाकविधिक्रियाम् ॥१२
किं प्रियं च किमाग्नेयं षड्रसाभ्यन्तरेषु च । किं पथ्यं किमपथ्यं च स्वास्थ्यं[2] वास्य कथं भवेत् ॥

चाहिये । नौकर चाकरों के भी बाद में उन्हें भोजन और शयन करना चाहिये ।१। बहुत बड़ी कठिनाई आ पड़ने पर भी स्वामी से और विशेषतया सास-ससुर से विरहित स्त्री अपने घर की देहली भी न डाँके ।२। पति के पहले शैय्या से उठकर उसके बिना जाने हुए कहीं भी बाहर नहीं निकलना चाहिये ।३। (चाहे रात बहुत थोड़ी ही बीत गयी हो, आधी रात हो या दिन का समय हो) अपने निवास के कमरे से ही काम करने वालों को धीरे से बुलाकर उन्हें अपने-अपने व्यापार में नियुक्त कर देना चाहिये ।४। तदनन्दर पति के जान जाने पर आवश्यक कर्मों से निवृत्त होकर धर के समस्त कार्यों को सावधानी पूर्वक सम्पन्न करे ।५। घर का काम काज करते समय स्त्री अपने रात वाले वस्त्राभूषण को उतार कर अलग रख दे और काम के अनुसार वस्त्रादि धारण कर कालक्रमानुसार सब कार्य सम्पन्न करे ।६। रसोईघर को भलीभाँति पोतकर चूल्हे आदि का सविधि अर्चन करके रसोईघर को सभी सामग्रियों एवं सामानों से संयुक्त रखे, तथा सविधि रखते हुए उसे भलीभाँति स्वच्छ किये रहे ।७। वह न तो अत्यन्त छिपी जगह में हो न खुली जगह में सभी प्रकार के भोजनों को बनाने के लिए अलग-अलग स्थान निर्धारित हों । जहाँ पर पति के आप्त जन रहते हों गूढ़ हो और कोठरियों से रहित हो ऐसे गुप्त स्थान पर ही रसोई का स्थान रखना चाहिये ।८। रसोईघर के पात्रों को भीतर-बाहर से खूब स्वच्छ करना चाहिए, उनमें न तो कीचड़ लगा हो न जूठा ।९। दिन में धूप के द्वारा शोधित दही के पात्र को रात में धुआँ देना चाहिए और उन्हें अलग रखना चाहिए ।१०। दिन की धूप में सुखाये गये पात्रों में दुग्ध को सफाई से रखना चाहिये और दधि-पात्र से थोड़ा दही लेकर उसमें रखे जिससे दही भी स्वच्छ बना रहे ।११। तेल गोरस एवं पाक क्रिया आदि की अच्छी तरह देखभाल रखकर पति का भोजन स्वयं तैयार करना चाहिये ।१२। उस समय यह ध्यान रखना चाहिये कि भोजन के छहों रसों में कौन रस पति की

---

१. प्रतीहासे । २. सात्म्यं चास्य यथा भवेत् ।

इति यत्नाद्विजानीयादनुष्ठेयं च तत्तथा । ॥१३
नित्यानुरागं सत्कारमाहारं सुपरीक्षितम् । महानसादौ कुर्वीत जनमाप्तं क्रमागतम् ॥१४
शत्रुं दायादसम्बन्धं क्रुद्धभीतावमानितम् । अवाच्योपगृहीतं वा नैवमादीनि योजयेत् ॥१५
पुनः पुनः प्रतिष्ठाप्य गुप्तं स्वयमधिष्ठितम् । भर्तुराहारपानादि विदध्यादप्रमादतः ॥१६
पाकं निर्वर्त्य मात्राणां कृत्वा स्वेदप्रमार्जनम् । गन्धताम्बूलमाल्यादि किञ्चिदादाय मात्रया ॥१७
यथौचित्यादितत्काले भर्तुर्विनयसम्भ्रमैः । तत्कालानुगतात्यर्थमाहारमुपपादयेत् ॥१८
स्वभावामयकालानां वैपरीत्येन सर्वदा । सर्वमाहारपानादि प्रयोज्यं तद्विदो जगुः ॥१९
हीनतुल्याधिकत्वेन भर्ता पश्यति यं यथा । तं तथैवाधिकं पश्येन्न्यायतः प्रतिपत्तिषु ॥२०
सापत्नकान्यपत्यानि पश्येत्स्वेभ्यो विशेषतः । भगिनीवत्सपत्नीश्च तद्वधूंन्निजबन्धुवत् ॥२१
ग्रासाच्छादशिरोभ्यङ्गस्नानमण्डनकादिकम् । सपत्नीनामकृत्वा तु आत्मनोऽपि न कारयेत् ॥२२
व्याधितानां चिकित्सार्थमौषधादिकमादरात् । विदध्यादात्मनस्तासां सर्वाश्रितजनस्य च ॥२३
तच्छोके शुचमादद्यात्तत्तुष्टौ मुदमावहेत् । भृत्यबन्धुसपत्नीनां तुल्यदुःखसुखा भवेत् ॥२४

जठराग्नि को उद्दीप्त करने वाला है कौन सा पदार्थ प्रिय है क्या पथ्य है और क्या अपथ्य है एवं किस पदार्थ के खाने से पति का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा इन सब बातों को प्रयत्नपूर्वक जान लेना चाहिये और उसी के अनुसार कार्य भी करना चाहिये ।१३। रसोईघर में सर्वदा प्रेम पूर्वक अच्छी तरह पहले से परीक्षित आहार को सत्कार भावना से करना चाहिये भोजन क्रमशः आये हुए श्रेष्ठ जनों को (पहले) परोसना चाहिये ।१४। शत्रु दायाद (हिस्सेदार) जो क्रुद्ध हों भयभीत हों जिनका कभी अपमान हुआ हो, जिन्हें कभी गाली कुवाच्य कहा गया हो ऐसे लोगों को रसोई में नहीं नियुक्त करना चाहिये ।१५। स्वयं अपने हाथों से बनाये गये सुन्दर सुस्वाद सुरक्षित अच्छी तरह परोसे गये पति के भोजन पानादि को समुचित ढंग से सावधानता पूर्वक प्रस्तुत करना चाहिये ।१६। भोजन से निवृत्त होकर सारे शरीर से पसीने को पोंछ डाले और सुगन्धित इत्र एवं ताम्बूल माला आदि को थोड़ा सा लेकर जिस प्रकार उचित हो, पति के हाथों में विनय एवं सत्कारपूर्वक निवेदित करे । समय अथवा ऋतु के अनुसार आहार की व्यवस्था करनी चाहिये ।१७-१८। स्वभाव राग और काल की विपरीतता देखते हुए सभी भोजन पानादि की व्यवस्था करनी चाहिये ऐसा उसके जानकार लोगों ने कहा है ।१९। पति घर में जिस व्यक्ति जिस वस्तु को हीनदृष्टि तुल्य दृष्टि एवं अधिक दृष्टि से देखता है पत्नी को उन व्यक्तियों एवं वस्तुओं के साथ उससे और अधिक रूप में वैसा न्यायतः व्यवहार करना चाहिये ।२०। अपनी सपत्नी के बच्चों को अपने बच्चों से अधिक स्नेह के साथ देखना चाहिये सपत्नियों को अपनी सगी बहन के समान एवं उनके भाइयों को अपने भाइयों के समान देखना चाहिये ।२१। भोजन, वस्त्र शिर के ऊपर तेल रखना स्नान अलंकारों से शरीर की सजावट आदि कामों को सपत्नी के लिए न करके अपने लिए भी नहीं करना चाहिये ।२२। अपने उनके और सभी आश्रित लोगों के बीमार होने पर अत्यन्त आदरपूर्वक चिकित्सा के लिए औषधियों का प्रबन्ध करना चाहिये ।२३। उनके शोकाकुलित होने पर स्वयं शोकमग्न होना चाहिये और उनके सन्तुष्ट होने पर स्वयं सन्तुष्ट होना चाहिये । अपने बन्धु, नौकर सपत्नी इन तीनों के दुःख एवं सुख को

लब्धावकाशा स्वप्याच्च निशि सुप्तोत्थिता क्रमात् । अन्यत्र व्ययकर्तारं पतिं रहसि बोधयेत् ।।२५
यदवद्यं सपत्नीनां स्वयमस्मै न तद्वदेत् । दौःशील्यादि तु सापायं गूढमस्मै निवेदयेत् ।।२६
दुर्भगामनपत्यां वा भर्त्रा चातितिरस्कृताम् । [1]अदुष्टां सम्यमाश्वास्य तेनैतामनुकूलयेत् ।।२७
तथा वाग्दण्डपारुष्यैर्जनं भर्त्रा विपीडितम् । कुर्याद्विधेयमाश्वास्य न चेद्दोषाय तद्भवेत् ।।२८
मत्वात्मनोनपत्यत्वं कालं चापि गतं बहुम् । सन्तानादिकमुद्दिश्य कार्यमात्मनिवेदनम् ।।२९
यच्चान्यदपि जानीयात्किञ्चिदस्य चिकीर्षितम् । तत्किलाजानतीवास्य सिद्धमेव प्रदर्शयेत् ।।३०
वैवाहिकं विधिं भर्तुः सर्वं कृत्वा ससम्भ्रमम् । परिणीतां च तां पश्येन्नित्यं भगिनिकामिव ।।३१
पूजां सम्बन्धिवर्गस्य मङ्गलं मङ्गलानि च । कुर्यादभिनवोढायाः सुप्रहृष्टेन चेतसा ।।३२
मातृवच्छिक्षयेदेनां गृहकृत्येष्वमत्सरा । प्रदेशिकविधिं वास्या विदध्याद्यत्नतः स्वयम् ।।३३
एवं भर्तुरभिप्राय सर्वमित्यादिकारयेत् । सुखार्थं वापि सन्त्यज्य स्त्रीणां भर्ताधिदेवता ।।३४
भर्ताधिदेवता नार्या वर्णा ब्राह्मदेवताः । ब्राह्मणा ह्यग्निदेवास्तु प्रजा राजन्यदेवताः ।।३५

अपने ही समान अनुभव करना चाहिये ।२४। इस प्रकार नित्य कर्मों से अवकाश प्राप्त कर गृहिणी रात में क्रमशः शयन करे और सोकर पहले उठे । निपुण गृहिणी व्यर्थ के कामों में अपव्यय करने वाले पति को नम्रतापूर्वक एकान्त में समझावे ।२५। सपत्नियों के ऐसे अनुचित आचरणों की चर्चा जो कहने योग्य न हो, स्वयं न कहे हाँ यदि उसके आचरण सम्बन्धी दोष बहुत विकृत हो गये हों तो एकान्त में उनके दूर करने के उपायों के साथ पति से भी उनकी चर्चा करे ।२६। अभागिनी, सन्तति विहीन पति से अत्यन्त तिरस्कृत किन्तु दोषरहित सपत्नी को अच्छी तरह आश्वासन देना चाहिये और ऐसे उद्योग करने चाहिये जिनसे पति उससे अनुकूल हो जाये ।२७। इसी प्रकार पति के कठोर वचन दण्ड वा कठोर व्यवहारों से पीड़ित भृत्य वर्गों को भी आश्वासन देते रहना चाहिये किन्तु इसका ध्यान रखना चाहिये कि ऐसा करने से पति के चित्त को क्लेश तो नहीं होता, अन्यथा इससे बहुत अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है ।२८। बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर यदि अपने कोई सन्तति न उत्पन्न हो तो स्वयमेव पति से सन्तति आदि के सम्बन्ध में अपनी बातें करनी चाहिये ।२९। इसके अतिरिक्त यदि पति के किसी गुप्त मनोरथ की सूचना उसे हो तो उसे इस प्रकार पूर्ण करके दिखा दे कि पति को यह न विदित हो कि उसे वह गुप्त अभिप्रायज्ञान हो गया था ।३०। शीघ्रतापूर्वक पति के विवाह के कार्य को भलीभाँति सम्पन्न करके उससे विवाहित पत्नी को अपनी बहिन के समान देखे ।३१। खूब प्रसन्न मन से समस्त सम्बन्धियों की एवं परिवार वर्ग की पूजा तथा अन्य मण्डपादि मांगलिक विधानों को उस नव वधू के विवाह में स्वयं सम्पन्न करे ।३२। घरेलू कार्यों में माता की तरह सर्वदा उस सपत्नी को द्वेषहीन होकर शिक्षा देती रहे पति के साथ प्रथम समागम आदि कार्यों को भी प्रपत्र पूर्वक स्वयं सम्पन्न करे ।३३। इस प्रकार पति के समस्त अभिप्रायों को जानकर पूर्ण करती रहे । पति के सुख के लिए स्त्री इस प्रकार सर्वदा प्रयत्न करती रहे क्योंकि स्त्रियों के लिए पति ही देवता बतलाये गये हैं।३४। ऐसा कहा भी गया है कि स्त्रियों के देवता उनके पति हैं तीनों क्षत्रियादि वर्णों के देवता ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण के देवता अग्नि हैं प्रजाओं के देवता

---

१. अदुष्टा ।

तासां त्रिवर्गसंसिद्धौ प्रदिष्टं कारणद्वयम् । भर्तुर्यदनुकूलत्वं यच्च शीलमविप्लुतम् ॥३६
न तथा यौवनं लोके नापि रूपं न भूषणम् । यथा प्रियानुकूलत्वं सिद्धं शश्वदनौषधम् ॥३७
वयोरूपादिहारिण्यो दृश्यन्ते दुर्भगाः स्त्रियः । वल्लभा मन्दरूपाश्च बह्वयो गलितयौवनाः ॥३८
तस्मात्प्रियत्वं लोकानां निदानं [1]योग्यतापरम् । तां विनान्ये गुणा वन्ध्याः सर्वेऽनर्थकृतोऽपि वा ॥३९
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विदध्यादात्मयोग्यताम् । परचित्तज्ञता चास्या मूलं सर्वक्रियास्विह ॥४०
बहिरागच्छतो ज्ञात्वा कालं संमृज्य भूमिकाम् । सज्जीकृतासना तिष्ठेत्तस्याज्ञां प्रतितत्परा ॥४१
स्वयं प्रक्षालयेत्पादावुत्थाप्य परिचारिकाम् । तालवृन्तादिकैः कुर्याच्छ्रमस्वेदापनोदनम् ॥४२
आहारस्नानपानादौ तत्स्पृहं यत्र लक्षयेत् । तदिंगितज्ञा तत्त्वेन सिद्धमस्मै निवेदयेत् ॥४३
सपत्नीपतिबन्धूनां भर्तृचित्तानुकूल्यतः । प्रतिपत्तिं प्रयुञ्जीत स्वबन्धूनां न वै तथा ॥४४
तेषु चात्मनि च ज्ञात्वा भर्तृचित्तं प्रसादयेत् । प्रतिपत्तिं तथान्येषां नाद्रियेत स्वबन्धुषु ॥४५

राजा लोग हैं ।३५। स्त्रियों के लिए धर्मार्थ काम त्रिवर्ग की सिद्धि के दो कारण बतलाये जाते हैं। प्रथमतः उनका पति के अनुकूल व्यवहार द्वितीय उनके पवित्र शील सदाचार ।३६। स्त्रियों के लिए न तो उनका यौवन उतना सुख देने वाला होता है न रूप होता है न भूषण होता है, जितना पति की अनुकूलता होती है, पति की अनुकूलता ही उनके शाश्वत कल्याण की एकमात्र औषधि है ।३७। सुन्दर जवानी एवं मनोहारी रूपवाली स्त्रियाँ भी अभागिनी एवं दुर्भगा देखी जाती हैं, इसके विपरीत उनसे रूप में हीन कटिवाली ऐसी स्त्रियाँ जिनका यौवन कभी समाप्त हुआ रहता है, पति की परम वल्लभा एवं (सुखी) होती हैं ।३८। इसलिए प्रिय होने का कारण लोक में योग्यता ही है उस योग्यता अर्थात् पति को अपने अनुकूल करने की क्षमता के विना अन्य सारे गुण निष्फल हैं यही नहीं इसके अभाव में सारे गुण भी अनर्थकारी बन जाते हैं ।३९। इसलिए स्त्रियों को सभी उपायों द्वारा अपने में वह योग्यता लानी चाहिये, स्त्रियों की दूसरों के मन की बात जान लेने की विशेषता सारे कार्यों में सफलता मूल होती है ।४०। पति को बाहर से आता हुआ जान कर भी भूमि और आँगन आदि को खूब स्वच्छ करके शय्या को सजाकर प्रतीक्षा करनी चाहिये और आने पर उसकी आज्ञा का तत्परतापूर्वक पालन करना चाहिये ।४१। दासी को हटाकर स्वयं अपने हाथों से पति के चरणों को प्रक्षालित करना चाहिये और ताड़ की पंखी आदि लेकर थकाई के कारण उत्पन्न उसके पसीने को दूर करना चाहिये ।४२। आहार स्नान एवं पान आदि में पति को जिस वस्तु की ओर विशेष रूप से इच्छुक देखे उस वस्तु को प्रस्तुत करके पति की मनोगत इच्छाओं एवं संकेतों को जानने वाली पत्नी पति को निवेदित करे ।४३।पति की चित्तवृत्ति के अनुसार सपत्नी तथा पति के बन्धु आदि के साथ सहानुभूति एवं प्रेम का व्यवहार करना चाहिये अपने बन्धु आदि के साथ उतना नहीं ।४४। इन सबों में तथा स्वयं अपने में पति की चित्त वृत्ति को खूब जान-बूझकर ही व्यवहार करना चाहिये अर्थात् पति जिसे अधिक प्यार करता हो उसे प्यार करना और जिससे द्वेष करता हो उससे द्वेष करना चाहिये। किन्तु इसके पूर्व स्वयं अपने प्रति पति का कैसा भाव है, इसका जान लेना आवश्यक है। सपत्नी एवं पति के बन्धु वर्गादि द्वारा अपने प्रति किये गये आदर सत्कार एवं प्रतिष्ठा आदि सम्मानजनक व्यवहारों की प्रशंसा अपने बन्धु वर्गों के सामने नहीं करनी चाहिये।४५। पति के कुल में

---

१. क्षमता परा।

अपि भर्तुरभिप्रेतं नारी तत्कुलवासिनी । सत्कारैर्निजबन्धूनां तेन नोपैति वाच्यताम् ॥४६
पूज्य एव हि सम्बन्धः सर्वावस्थासु योषिताम् । कस्ततोऽप्युपकारांशं लिप्सेत कुलजः पुमान् ॥४७
सम्पूज्य स्वसुता तस्मै विधिवत्प्रतिपाद्यते । ततोऽस्या लिप्सते नाम किमकार्यमतः परम् ॥४८
कन्यां प्रदाय यैर्वृत्तिरात्मनः परिकल्प्यते । दासभण्डनटादीनां मार्गोऽयं न महात्मनाम् ॥४९
तस्मात्स्त्रीबांधवा नित्यं प्रीतिमात्रैकसाधिनीम् । प्रतिपत्तिं समादद्युः सम्बन्धिभ्यः प्रसंगिनीम् । ५०
तस्या भर्तरि रक्षेत प्रीतिं लोके च वाच्यताम् । आत्मनोऽसत्प्रवादं च चेष्टेरन्साधुवृत्तयः ॥५१
एवं विज्ञाय सद्वृत्तं स्त्री वर्तेत तथा सदा । येन तत्पंरिवर्गस्य भवेद्भर्तुश्च सम्मता ॥५२
प्रियापि साधुवृत्तापि विख्याताभिजनापि च । जनापवादात्सम्प्राप सीतानर्थं सुदारुणम् ॥५३
सर्वस्यामिषभूतत्वाद्गुणदोषानभिज्ञतः । प्रायेणाविनयौचित्यात्स्त्रीणां वृत्तं हि दुष्करम् ॥५४
अगृह्यत्वान्मनोवृत्तेः प्रायः कपटदर्शनात् । निरङ्कुशत्वाल्लोकस्य निर्वाच्या विरलाः स्त्रियः ॥५५
दैवयोगादयोगत्वाद्व्यवहारानभिज्ञतः । वाच्यतापत्तयो दृष्टाः स्त्रीणां शुद्धेऽपि चेतसि ॥५६
तासां दैवप्रतीकारो नोपभोगादृते भवेत् । चारित्रं लोकवृत्तं च एतयोर्विदुरौषधम् ॥५७

निवास करने वाली पति के समस्त अभिप्रायों को समझने वाली स्त्री अपने बन्धु वर्गादि के सत्कारों से सम्मानित होकर कभी निन्दा की पात्र नहीं बनती ।४६। सभी अवस्थाओं में स्त्रियों का सम्बन्ध पूजनीय माना गया है उसके कुल (पिता के कुल) में उत्पन्न होने वाला ऐसा कौन-सा पुरुष होगा जो उससे भी उपकार एवं लाभ की इच्छा करेगा ।४७। लोग अपनी कन्या को विधिपूर्वक पूजित कर जामाता को दान देते हैं तो फिर उसी कन्या से यदि लाभ की वे इच्छा करें तो इससे बढ़कर निन्द्य कर्म क्या होगा ?।४८। जिसे अपनी कन्या दे दिया गया है उसी से अपनी जीविका की भी इच्छा करना यह पद्धति तो दास, भाँड़, नट आदि तुच्छ जाति वालों की है, उच्च विचार वालों की नहीं ।४९। इसलिए वधू के बन्धु बान्धवादि को चाहिये कि वे अपने सम्बन्धी एवं जामाता आदि से केवल प्रेम एवं सहानुभूति को बढ़ाने वाला सद्-व्यवहार रखे जिसकी समय-समय पर वृद्धि होती रहे ।५०। ऐसे सत्कर्म परायण स्त्रियों के बन्धु वर्ग अपने ऐसे व्यवहारों द्वारा पति में वधू की प्रीति की रक्षा लोक में वधू की निन्दा और स्वयं अपने ऊपर उठने वाले अपवादों से अपनी रक्षा कर सकेंगे ।५१। इस प्रकार कुल वधू को चाहिये कि वह अपने सत् कर्त्तव्यों को भली भाँति जान बूझकर सर्वदा उनका पालन करे जिससे अपने बन्धु बान्धवादि एवं पति के सम्मान की पात्र बन सके ।५२। क्योंकि पति की परम प्रिया सत्कर्म परायण उच्चकुलोत्पन्न यशस्विनी सीता को भी लोकापवाद से परम दारुण कष्ट सहना पड़ा ।५३। सब से अधिक आमिष (सुन्दरी एवं आकर्षक) होने के कारण गुण तथा दोषों की अनभिज्ञता के कारण विशेषतया अनुदारता एवं अविनय के कारण स्त्रियों के कर्त्तव्य बड़े कठोर एवं दुष्करणीय होते हैं ।५४। मनोवृत्ति न पकड़ सकने के कारण प्रायः सभी व्यवहारों में कपट करने के कारण तथा लोगों के निरंकुश होने के कारण ऐसी बिरली स्त्रियाँ ही मिल सकेंगी जो निन्दा की पात्र न बन सकें ।५५। दैव योग से अपनी अयोग्यता एवं व्यवहार कुशलता के अभाव के कारण स्त्रियाँ शुद्धचित्त होने पर भी निन्दा की पात्र एवं आपत्ति ग्रस्त होती देखी जाती हैं।५६। उनके इस दुर्भाग्य का प्रतिकार उपभोग के बिना नहीं होता। चरित्र एवं लोक-व्यवहार-पटुता ये

हिंदोलकादिक्रीडायां प्रसक्तां तरुणीं निशि । रममाणां विटैः सार्धं विधवां स्वैरचारिणीम् ॥५८
वृद्धादिभार्यां [1]सज्जायां यानगेयादिसंगिनीम् । कः श्रद्दध्यात्सतीत्येवं साध्वीमपि हि योषितम् ॥५९
यौ चासामिङ्गिताकारौ सन्दिग्धार्थप्रसाधकौ । तयोस्तत्त्वपरिज्ञानं विषयो योगिनां[2] यदि ॥६०
तस्माद्यथोक्तमाचारमनुतिष्ठेत्सुसंयता । मिथ्यालग्नोऽप्यसद्वादः कम्पयत्येव तत्कुलम् ॥६१
त्रिकुल्या वाच्यता रक्ष्या प्रतिष्ठाप्यथ सन्ततिः । भर्तुस्त्रिवर्गसिद्धिश्चसाध्यं तत्कुलयोषिताम् ॥६२
पातयन्त्येव दौःशील्यादात्मानं सकुलोत्रयम । उद्धरन्ति तदैवैताः स्त्रियश्चारित्रभूषणाः ॥६३
भर्तृचित्तानुकूलत्वं यासां शीलमविच्युतम्[3] । तासां रत्नसुवर्णादि भार एव न मण्डनम् ॥६४
लोकज्ञाने परा कोटिः पत्यौ भक्तिश्च शाश्वती । शुद्धान्वयानां नारीणां विद्यादेतत्कुलव्रतम् ॥६५
तस्माल्लोकश्च भर्ता च सम्यगाराधितो यया । धर्ममर्थं च कामं च सैवाप्नोति निरत्यया ॥६६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३।

ही तो ऐसे उपाय हैं जिन्हें उनके अपवाद को दूर करने की औषधि कहा जाता है ।५७। हिंडोला आदि क्रीड़ाओं में रात के समय यदि कोई तरुणी स्त्री बहुत आसक्ति दिखलाती है, अथवा भाँड आदि हीन कोटि के लोगों के साथ सहवास करती है अथवा कोई विधवा होकर अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करती है, अथवा कोई वृद्ध मनुष्य की गृहणी तरुणी स्त्री है, अथवा सच्चरित्र होकर भी कोई सवारी वा गाने बजाने में विशेष सहयोग करती है तो कौन ऐसा पुरुष है जो ऐसी सती स्त्रियों पर श्रद्धा की दृष्टि रखेगा भले ही वे चरित्र से साध्वी हो ।५८-५९। इन स्त्रियों की इंगिति एवं आकार ही संदिग्ध अर्थ की पुष्टि करने वाले होते हैं उनके इंगित एवं आकार का तात्त्विक ज्ञान योगियों को ही ज्ञात हो सकता है । यदि वे योगी जन जानने की विशेष इच्छा करें तो ।६०। इसलिए जैसा ऊपर कहा जा चुका है कुलवधू को संयम एवं शान्तिपूर्वक सदाचारों का पालन करना चाहिये । झूठ-मूठ में भी लगा हुआ अपवाद स्त्रियों के समस्त परिवार तक को कम्पित कर देता है ।६१। कुलवधू को अपने तीन कुल की निन्दा की रक्षा करनी चाहिये अपनी प्रतिष्ठा एवं सन्तति की रक्षा करनी चाहिये । यही नहीं उसे अपने पति के धमार्थ काम त्रिवर्ग की सिद्धि में सहायक होना चाहिये । ये ही उसके जीवन के मुख्य ध्येय हैं ।६२। स्त्रियाँ अपने असद् व्यवहारों से अपने समेत तीनों कुलों को गिरा देती हैं । और इसी प्रकार अपने उत्तम चरित्र रूप भूषण से वे ही अपने समेत तीनों कुलों को भव सागर से उबार लेती है ।६३। जो स्त्रियाँ अपने पति की चित्तवृत्ति के अनुकूल चलने वाली है तथा जिनका शील सदाचार कभी च्युत नहीं हुआ है उनके लिए रत्न एवं सुवर्ण आदि के आभूषण केवल भार हैं आभूषण नहीं अर्थात् वे अपने इन्हीं सद्गुणों से ही सर्वदा आभूषित रहती हैं ।६४। उच्च शुद्ध वंश की स्त्रियों का यह कुलव्रत जानना चाहिये कि वे लौकिक व्यवहारों में परम प्रवीण तथा पति की अनन्य भक्ति में सर्वदा निरत रहने वाली होती हैं ।६५। इन सब बातों को ध्यान में रखने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि जिस कुलवधू ने लौकिक व्यवहारों एवं अपने पूज्य पति की पर्याप्त आराधना कर ली अपने जीवन में उसकी कुछ भी हानि नहीं हो सकती और वही धर्म अर्थ काम की सिद्धि भी प्राप्त करती है ।६६

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्री धर्म कयन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

---

१. सती चासौ जाया चेत कर्मधारयः । २. यदि योगिनां स्यात्तर्हि स्वान्नस्माकमित्यवान्तरवाक्यम् । ३. न विप्लुतम् ।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

पतिपरदेशवासे स्त्रीणां भृङ्गारनिषेधः

ब्रह्मोवाच

प्रोषिते मण्डनं स्त्रीणां पत्यौ मङ्गलमात्रकम् । निष्पादनं च यत्नेन तदारब्धस्य कर्मणः ॥१
शय्यामुपार्जनमर्थानां व्ययानां परिहापणम् ॥२
व्रतोपवासतात्पर्यं तद्वार्तापरिमार्गणम् । दैवज्ञेक्षणिकप्रश्नो देवानामुपयाचनम् ॥३
नित्यं तस्यागमाशंसा क्षेमार्थं देवपूजनम् । न चात्युज्ज्वलवेषत्वं न सदा तैलधारणम् ॥४
ज्ञातिवेश्म न गन्तव्यं सकामगमनेन[1] च । गुरूणामाज्ञया यावद्भर्तुराप्तजनैः सह ॥५
तत्रापि न चिरं तिष्ठेत्स्नानादीन्वापि नाचरेत् । यावदर्थं क्षणं स्थित्वा ततः शीघ्रं समाचरेत् ॥६
आगते प्रकृतिस्थैव कृत्वा तात्कालिकं विधिम् । मुक्तप्रवासने पथ्ये स्नाते भुक्तवति प्रिये ॥७
आत्मानं समलङ्कृत्य सविशेषं मुदान्विता । देवपूजोपहारादीन्दद्यात्प्रागुपपादितान् ॥८

अध्याय १४

पति के परदेश में रहने पर स्त्रियों का भृङ्गार निषेध

ब्रह्मा बोले—ऋषिवृन्द ! पति के परदेश जाने पर कुलवधू केवल सौभाग्य सूचक अलंकारों को धारण करे। और प्रयत्न पूर्वक पहले से आरम्भ किये गये कर्मों को ही निष्पन्न करे।१। उसे उस समय गुरुजनों के समीप में अपनी शैय्या स्थापित करना चाहिये शरीर में विशेष भृङ्गार एवं आभूषणादि की सजावट नहीं करनी चाहिये। यथासम्भव प्रत्येक कार्य में धन अर्जित करने की चेष्टा करनी चाहिये और व्यय को कम करना चाहिये।२। व्रत एवं उपवास में विशेष निष्ठा रखनी चाहिये, पति के कुशल समाचार की सर्वदा खोज करते रहना चाहिये। पति की कुशल वार्ता के लिए ज्योतिषी एवं दैवज्ञ से प्रश्न करके देवप्रार्थना करनी चाहिये।३। नित्य उसके आगमन की आकांक्षा एवं कुशल क्षेम के लिए देवपूजा करनी चाहिये। प्रोषितपत्तिका को अत्यन्त उज्ज्वल वेष नहीं धारण करना चाहिये और न सर्वदा तैल लगाना चाहिये।४। उस अवधि में जब तक कि पति परदेश से नहीं आ जाता उसे अपने पड़ोसी एवं जातिवालों के घर पर नहीं जाना चाहिये यदि किसी आवश्यक कार्य से जाना अनिवार्य हो तो पति के गुरुजनों से आज्ञा प्राप्त कर अपने से श्रेष्ठ जनों के साथ जाना चाहिये।५। और वहाँ जाकर बड़ी देर तक न रुके, न स्नान भोजनादि ही करे। जब तक प्रयोजन रहे उसी समय तक वहाँ रहकर शीघ्र वापस आ जाना चाहिये।६। पति के प्रवास से वापस आ जाने पर स्वाभाविक प्रेम के साथ उस समय समुचित समादरादि से सत्कृत कर प्रवासकालीन वेश-भूषा को उतरवाये फिर पति के विधिपूर्वक स्नान और भोजन कर लेने के उपरान्त परम प्रसन्नता पूर्वक विशेष रूप से अपने को अलंकारादि से सजावे। फिर पहले ही से माने गये देवताओं के उपहारादि को सम्पन्न करे।७-८। कनिष्ठ कुलवधू को ज्येष्ठ सपत्नी के साथ

---

१. अवश्यं गमनेन च।

कनिष्ठामातृवज्ज्येष्ठां तदपत्यानि चात्मवत् । पश्येत्तत्परिवर्गं तु नित्यं स्वपरिवर्गवत् ॥९
तत्पुरोनासने तिष्ठेत्पतिं नामंत्रयेत च । तदभिप्रायतः कुर्यात्प्रवृत्तिं सर्वकर्मसु ॥१०
न संसृजेत तद्द्विष्टैः सख्यं कुर्वीत तत्प्रियैः । जनमाप्ततमं तस्य सदाभर्तुश्च मानयेत् ॥११
पैतृकात्समुपानीतं वसुसौगंधिकादिकम् । तस्मै निवेद्यात्मतया तदा तदुपयोजयेत् ॥१२
सोऽपि तत्प्रीतये किंचिदादद्यादल्पमूल्यकम् । संगोप्य मातृवत्शेषं तत्तथैवोपयोजयेत् ॥१३
तत्प्रीत्यर्थं गृहीतं यद्वैलक्ष्यादिनिवृत्तये । सविशेषं प्रसंगेन तस्यैतत्प्रतिपादयेत्[1] ॥१४
स्त्रीणां यदेतत्सापत्न्यं परं मात्सर्यकारणम् । तस्मात्तत्परिहर्तव्यं परमोदारचर्यया[2] ॥१५
तथा कल्पितनेपथ्या भर्तुः पर्यायवासरे । ह्रियमादयमानेव[3] पतिं गच्छेद्विसर्जिता ॥१६
गत्वा रहसि भर्तारं तत्कालोचितसंभ्रमैः । तद्भावानुगतैस्तैस्तैः सविशेषमुपाचरेत् ॥१७
प्रतिबुध्य ततः काले सविशेषं त्रपान्विता । ज्येष्ठाय वसतिं गच्छेद्विशेषेण तथा पुनः ॥१८
अप्रातिकूल्यं ज्येष्ठाया हितमन्यत्र योषितः । ततः शनैस्त्ववर्च्छिद्य पतिं स्ववशमानयेत् ॥१९

माता के समान व्यवहार करना चाहिये और उसके बच्चों को अपने समान समझना चाहिये उसके परिवार एवं नौकर चाकर आदि को भी अपने ही परिवार एवं नौकरों के समान समझना चाहिये ।९। उसके सामने न तो आसन पर बैठे और न पति को बुलावे। प्रत्युत उसके अभिप्राय को भलीभाँति सोच-विचार कर सभी कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिये ।१०। उसका जिन लोगों के साथ द्वेष हो, उनके साथ कभी संसर्ग न स्थापित करे उसके प्रियजनों के साथ अपनी भी मित्रता करे ।११। पति के गुरुजनों का सर्वदा समादर करे। अपने पिता के घर से आई हुई खाने-पीने अथवा शृङ्गार की सुगन्धित आदि सारी सामग्रियों को सर्वप्रथम आत्म भावना से उसको निवेदित करे और उसके बाद निजी उपयोग के लिए रखे ।१२। उसे (ज्येष्ठ) भी चाहिये कि उसकी (छोटी वधू की) प्रीति की रक्षा के लिए उसमें से कुछ थोड़ा सा भाग जो अल्पमूल्य का हो, लेकर शेष वापस कर दे। और इस प्रकार प्राप्त उन वस्तुओं को माता की भाँति सुरक्षित रखे और उसी के अनुरूप उसका उपयोग करे ।१३। छोटी सपत्नी की शर्म आदि को मिटाने के लिए जो कुछ वस्तु ज्येष्ठ सपत्नी ने ग्रहण किया हो किसी अनुकूल प्रसंग के आने पर उसमें अपनी ओर से कुछ और मिलाकर उसे भेंट करे ।१४। स्त्रियों में सपत्नियों के जो व्यवहार परस्पर अतिशय दुःख एवं मत्सर के कारण बन जाते हैं उन्हें इन्ही प्रकार के परम उदारतापूर्ण कार्यों द्वारा दूर करना चाहिये ।१५। अपनी बारी आने पर अनेक प्रकार के साज शृङ्गार से अपने को विधिवत् विभूषित कर ज्येष्ठ सपत्नी से विसर्जित होकर लज्जा व्यक्त करती हुई सी पति के पास जाय ।१६। और इस प्रकार एकान्त में पति के पास जाकर उस समय के योग्य हास विलास एवं हावभाव आदि से पति की इच्छा के अनुरूप उसे विशेष सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करे ।१७। फिर प्रातःकाल के समय शय्या से उठकर विशेष लज्जापूर्वक ज्येष्ठ सपत्नी के पास जाय और फिर वहाँ से अपने भवन में जाय ।१८। इस प्रकार बाहरी कामों में ज्येष्ठ सपत्नी के विरोध न करने से वधू की सर्वत्र हित-सिद्धि होती है अन्यत्र अर्थात् एकान्त में उसे चाहिये कि धीरे-धीरे पति की इच्छाओं के अनुरूप अपने आचरणों द्वारा वह पति को वश में

---

१. तस्मै। २. परमोदारकर्मणा। ३. दयतेः शानचि रूपम्।

बहिष्पाकादियोगेन चतुःषष्ट्या रहोगतम् । ज्येष्ठामतिशयानेव भर्तारमुपरञ्जयेत् ॥२०
प्रागल्भ्यं रहसि स्त्रीणां लज्जाधिक्यं ततोऽन्यदा । चित्तज्ञानानुवृत्तिश्च पत्यौ संसेवनं परम् ॥२१
एवमाराध्य भर्तारं गृहमाक्रम्य च क्रमात् । गौरवं प्रतिपत्तिं वा ज्येष्ठादिषु न हापयेत् ॥२२
गृहव्यापारदानेषु पतिं गूढं तथा वदेत् । अधिकुर्यादनिच्छन्ती ज्येष्ठेवेनां यथा बलात् ॥२३
सापि विज्ञाय भर्तारं कनिष्ठाकृष्टमानसम् । विश्रामं प्रार्थयेदेनामधिकुर्यात्सुतामिव ॥२४
मत्वा भर्तुरभिप्रेतं रक्षन्ती निजगौरवम् । कृतं भर्त्रनुकूलं स्यात्तदिच्छयानुमोदयेत् ॥२५
स्वामिनो यदभिप्रेतं भृत्यैः किं क्रियतेऽन्यथा । क्लिश्यते तत्र मूढात्मा परतन्त्रो वृथा जनः ॥२६
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः । हितं स्वाम्यनुकूलत्वं नारीणां तु विशेषतः ॥२७
सापि ज्येष्ठापतिं चैव गृहतन्त्रं च सर्वदा । समावर्ज्य[1] गुणैर्धीरा प्रागवस्थां न विस्मरेत् ॥२८
न सौभाग्यमदं कुर्यान्न चौद्धत्यादिविक्रियाम् । नितरामानतिं गच्छेत्सदानार्यभयादिव[2] ॥२९

कर ले ।१९। बाहर खूब अच्छे भोजनादि की व्यवस्था द्वारा एवं अन्तःपुर में चौंसठ कलाओं की निपुणता द्वारा छोटी वधू ज्येष्ठ सपत्नी को अतिक्रान्त कर पति को परम सन्तुष्ट कर अपने अधीन कर लेती है ।२०। एकान्त स्थल में पति के साथ प्रगल्भता (ढिठाई) का व्यवहार करना चाहिये अन्यत्र तो लज्जा की अधिकता ही (उसका भूषण है) पति की चित्तवृत्ति के अनुकूल उसकी सेवा में सर्वदा लगा रहना ही कुल वधू का एकमात्र धर्म है ।२१। इस प्रकार पति की आराधना में तत्पर रहकर और उसमें सफलता प्राप्त कर जिस क्रम से पतिगृह में आगमन हुआ हो, उस क्रम के अनुसार अपने से ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ जनों के गौरव का सम्मान आदि की हानि नहीं करनी चाहिये ।२२। घरेलू कार्यों तथा दानादि सत्कर्मों में पति से गुप्त रूप में बात करनी चाहिये । इस प्रकार बाहर से इच्छा प्रकट किये बिना ही ज्येष्ठ सपत्नी की भाँति पति को अपने अनुकूल कर लेना चाहिये ।२३। ज्येष्ठ कुलवधू को चाहिये कि जब वह देखे कि पति का मन कनिष्ठ सपत्नी में आकृष्ट हो गया है तो वह उस छोटी सपत्नी के साथ अपनी पुत्री के समान व्यवहार करे और उसके विश्राम आदि की प्रार्थना करती रहे ।२४। पति के मनोगत भावों को समझ अपने गौरव एवं मर्यादा की रक्षा करते हुए सब कार्य सम्पन्न करे । पति के अनुकूल समस्त कार्यों को समाप्त कर उसकी इच्छाओं का अनुमोदन करती रहे ।२५। स्वामी को जो कार्य विशेष इष्ट हो उसे स्वयं अपने हाथों से करना चाहिये नौकरों द्वारा वह काम उतना सन्तोषदायी नहीं हो सकता । जो लोग (वधू) ऐसा नहीं करते वे मूढ़ात्मा सर्वदा परतन्त्र रहकर वृथा क्लेश सहन करते हैं ।२६। इसलिए सर्वदा सभी अवस्थाओं में मनसा, वाचा, कर्मणा अपने स्वामी (पति) के अनुकूल एवं हितप्रद कार्यों को करते रहना चाहिये । स्त्रियों को तो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये ।२७। उस विशेष परिस्थिति में जब कि पति कनिष्ठ सपत्नी के प्रेमपाश में निबद्ध हो जाता है, ज्येष्ठ वधू अपने सद्‌गुणों द्वारा सर्वदा पति की चित्तवृत्ति एवं घर के समस्त कार्यों को समझती हुई और यथाशक्य अनुकूलता उत्पन्न करने की चेष्टा करती हुई अपनी पूर्वावस्था का विस्मरण न करे ।२८। उस समय वह अपने सौभाग्य का अभिमान भूल कर भी न करे और न उद्धता एवं चञ्चलता ही दिखलावे । प्रत्युत सर्वदा कार्यभार से खिन्न हुई की तरह विनम्रता

---

१. विज्ञायाथ । २. खिन्ना कार्यभरादिषु ।

यथा योग्यतया पत्यौ सौभाग्यमभिवर्धते । स्पर्धयेच्च कुलस्त्रीणां प्रश्रयोपाधिकं तथा ।।३०
एवमाराध्य भर्तारं तत्कार्येष्वप्रमादिनी । पूज्यानां पूजने नित्यं भृत्यानां भरणेषु च ।।३१
गुणानामर्जने नित्यं शीलवत्परिरक्षणे । प्रेत्य चेह च निर्द्वन्द्वं सुखमाप्नोत्यनुत्तमम् ।।३२
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मेषु
सपत्नीकर्तव्यवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।१४।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

स्त्रीधर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दुर्भगा च पुनर्नित्यमुपवासादितत्परा । बाह्येषु पतिकृत्येषु स्याद्विशेषाभियोगिनी ।।१
न प्रशंसां सपत्नीषु निंदां चापि तथात्मनि । असूयां भर्तुरीर्ष्यां वा प्रणयं वापि दर्शयेत् ।।२
मद्विधा या हि बह्वेतत्तच्चात्यंतिकमश्नुते । यदस्या युष्मतो यास्याद्भार्याशब्दाभिधेयताम् ।।३
न च निर्भूषणा तिष्ठेन्न चाप्युद्धतभूषणा । नान्यदा गंधमाल्यादि ग्राह्यं पत्युपचारतः ।।४
तन्न्यूनं सर्वशो ग्राह्यं वल्लभाया विशेषतः । भूषणं गन्धमाल्यं तु तावत्कालमलक्षितम् ।।५

दिखाते हुए सब कार्य करती रहे ।२९। जिस प्रकार से एवं जिस योग्यता से पति को अनुकूल कर सौभाग्य की वृद्धि होती है उसके लिए कुलवधुओं को परस्पर स्पर्द्धा करनी चाहिये और वैसे सद्‌गुणों को विशेष रूप में प्रश्रय देना चाहिये ।३०। इस प्रकार पति के कार्यों एवं सेवाओं में सावधान रहकर पूजनीयों की पूजा एवं भृत्यवर्गों की पालना में तत्पर रहकर सर्वदा सद्‌गुणों के अर्चन एवं रक्षण में तत्पर रहकर कुलवधू सर्वदा इस लोक में तथा परलोक में परम आनन्द का अनुभव करती है ।३१-३२

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में सपत्नीकर्त्तव्यवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४।

अध्याय १५

स्त्री-धर्म का वर्णन

ब्रह्मा बोले—दुर्भगा स्त्रियों को चाहिए कि सर्वदा उपवास आदि में तत्पर रहकर पति के बाहरी कार्यों में विशेष रूपेण सहयोग प्रदान करती रहें ।१। सपत्नियों के बीच में कभी अपनी प्रशंसा न करे प्रत्युत अपनी निन्दा का ही वर्णन करे, और प्रसंग आने पर पति की ईर्ष्या असूया तथा स्नेह का भी प्रदर्शन करती रहे ।२। ऐसा कहे कि मेरी जैसी हतभाग्या के लिए जो कुछ मिल रहा है वही बहुत है मैं इसी में बहुत (अधिक सुख तथा भोगादि का) अनुभव कर रही हूँ जो इस दीर्घजीवी की भार्या बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकी ।३। उसे न तो कभी बिना आभूषण के रहना चाहिये और न बहुत अधिक आभूषण ही पहनना चाहिये । सुगन्धित पदार्थ इत्र आदि तथा पुष्प माला आदि बेमौके पर उपयोग में नहीं लाना चाहिये केवल पति की प्रसन्नता एवं उनके सेवा के लिए ग्रहण करना चाहिये ।४। उस समय भी अति न्यून रूप में ग्रहण करना चाहिये तथा जो विशेष पति की परम प्यारी हो उससे आभूषण तथा इत्र

सम्बाधानां प्रदेशानां नित्यं स्वेदादिमार्जनम् । दन्तनासादिपङ्कानां विगन्धस्य च शोधनम् ॥६
निमित्तं भर्तुरेतासां यत्किंचिदभिलक्षयेत् । नानेन वा तयोर्यत्नं विदध्यादङ्गमार्जने ॥७
सर्वासां च सपत्नीनां सर्वत्रानुगता भवेत् । वैतसीं वृत्तिमास्थाय वल्लभाया विशेषतः ॥८
अन्यस्या यदनुष्ठेयं यन्न सीदेत्समर्पितम् । भर्तुश्चाविदितं यत्नात्तत्कुर्यादविरोधि चेत् ॥९
कोशवस्त्रान्नताम्बूलगन्धापानौषधादिकम् । तत्सर्वमनियुक्तानां दोषवत्त्वाद्विरुध्यते ॥१०
यत्तु मुक्तमनुष्ठेयं गृहसम्मार्जनादिकम् । स्त्रीणामनधिकारेऽपि प्रायस्तद्विधिरुच्यते ॥११
अभ्यङ्गोद्वर्तनं स्नानं भोजनं मण्डनानि च । कुर्याद्भर्तुरपत्यानां धात्रीकर्माणि सादरम् ॥१२
आत्मवत्तान्यपत्यानि साधयत्यनुयोगतः । स्वेनाप्यमीषां वित्तेन विदध्यान्मण्डनादिकम् ॥१३
भोगः स्वयमपत्यैर्वा स्त्रीवित्तस्य पतिर्विधा । पूर्वे वयस्यभिनन्द्य पश्चिमे चोपयोजनम् ॥१४
उभयोगस्तु वा मा वा कर्मजः पृथगेव सः । सद्वृत्ते त्वधिकां ख्यातिं कुर्वीत क्रियया पुनः ॥१५
न कापि दुर्भगा नाम सुभगा नाम जातितः । व्यवहाराद्भवत्येष निर्देशो रिपुमित्रवत् ॥१६

पुष्पादि का इस प्रकार प्रयोग करना चाहिये कि उस समय भी वे आभूषणादि दिखाई न पड़े ।५। उन्हें अपने उदर कुक्षि आदि गोपनीय शरीराङ्गों की विशेष सफाई करनी चाहिये सर्वदा स्वेदादि रहित कर स्वच्छ रखना चाहिये । इसी प्रकार दाँत, नाक एवं पैरों में लगी हुई कीचड़ आदि तथा दुर्गन्धि की भी सफाई करनी चाहिए ।६। पति की प्रसन्नता के लिए इन्हें चाहिये कि जो कुछ भी उचित समझें करें । यदि सामान्य यत्न से सफलता न मिले तो अङ्ग की स्वच्छता पर और अधिक यत्न करें ।७। सभी कार्यों में सर्वदा सपत्नियों की अनुगामिनी बनी रहे विशेषतया जो सपत्नी पति को बहुत प्यारी है उसकी तो सर्वदा टहल बजाती रहें । ऐसे अवसर पर उसे वैतसी (वेंत की) वृत्ति अपनानी चाहिए ।८। सपत्नी के करने का जो कार्य हो उसे वह स्वयं कर ले और जो कुछ मिले उस पर रोष न प्रकट करे । पति के प्रतिकूल जो कार्य न पड़े उसे गुप्त रूप से करते रहने का प्रयत्न करती रहे ।९। कोश, वस्त्र, अन्न, ताम्बूल, सुगन्धित पदार्थ, पेय पदार्थ तथा औषधियाँ इन सब को बिना दिये हुए लेने पर विरोध बढ़ता है अतः इन सब को पति वा सपत्नी की आज्ञा के बिना न ग्रहण करे ।१०। घर की सफाई झाड़ना बहारना आदि कार्य जिन्हें सेवकादि किया करते हैं कुल वधुओं को उसके करने का अधिकार न रहने पर भी प्रायः ऐसे कार्यों को वह दुर्भगा वधू अपने कल्याण के लिए करे।११। उसे अपने पति के तथा सपत्नियों के सन्तानों के अंगों में उपटन लगाना, अंगो में तेल लगाना, स्नान करना, भोजन निर्माण करना, अलंकृत करना आदि दाइयों के करने योग्य कार्यों को भी आदरपूर्वक करना चाहिये।१२। अपनी सपत्नियों के बच्चों को भी अपने ही बच्चों की तरह प्रत्येक बातों में देखते रहना चाहिये और अपने पास से रुपये व्यय करके उनके आभूषणादि का प्रबन्ध करना चाहिये ।१३। प्रायः स्त्रियों के पास रहने वाली सम्पत्ति का उपभोग उनकी सन्ततियाँ, पति तथा वे स्वयं करती हैं । उन्हें चाहिये कि पूर्वावस्था में धन संग्रह की भावना का अभिनन्दन कर वृद्धावस्था में उसका उपयोग करे।१४। उपयोग हो या न हो वह तो कर्म के अधीन रहता है और उसका संग्रह करने से कोई सम्बन्ध भी नहीं है । अतः पूर्वावस्था में उन्हें धन संग्रह तो करना ही चाहिये । इस प्रकार दुर्भगा कुलवधू को सत्कर्मों के द्वारा अधिक ख्याति प्राप्त करनी चाहिये ।१५। कोई स्त्री जन्म से ही सुभगा वा दुर्भगा नहीं होती वह शत्रु और मित्र की तरह अपने व्यवहार से ही सुभगा व दुर्भगा हो जाती

भर्तृचित्तापरिज्ञानादननुष्ठानतोऽपि वा। वृत्तैर्लोकविरुद्धैश्च यान्ति दुर्भगतां स्त्रियः ॥१७
आनुकूल्यान्मनोवृत्तेः परोऽपि प्रियतां व्रजेत् । प्रातिकूल्यान्निजोप्याशु प्रियः प्रद्वेषतामियात् ॥१८
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः । प्रियं समाचरेन्नित्यं तच्चित्तानुविधायिनी ॥१९
यामन्यां कामयेत्तासां तं तया संप्रयोजयेत् । कुपितां च प्रियां काञ्चिद्यत्नादस्मै प्रसादयेत् ॥२०
तत्पादपरिचर्यायां गात्रसंवाहने[1] तथा । पीडने शिरसश्चैव परं कौशलमभ्यसेत् ॥२१
पीडनं मृदु मध्यं च गात्रावस्थाविशेषतः । मुखगात्रादिभिर्लिङ्गैः प्रयोज्यं तत्सुखावहम् ॥२२
बाहूरुकटिपृष्ठेषु स्कंधे शिरसि पादयोः । गाढमर्दनमिच्छन्ति प्रायोन्यत्राणि मध्यमम् ॥२३
निर्मांसेषु प्रदेशेषु नाभिमूलेषु मर्मसु । हृद्गण्डककपोलादाविच्छन्ति मृदुमर्दनम् ॥२४
गाढं जाग्रदवस्थायामर्धसुप्तस्य मध्यमम् । किञ्चित्तत्सपरिघातं च मृदुसुप्तस्य नेति वा ॥२५
विरुद्धं सर्वगात्रेषु[2] लोमवत्तु विशेषतः । उत्कण्डूयत्सु सोद्धर्षं स्नेहात्तेषु च मर्दनम् ॥२६
स्पर्शाद्रोमाञ्चजननं सनखच्छुरितं शनैः । पुलकोल्लेखनोपेतं शिरःकंडूश्च पार्श्वयोः ॥२७

है ।१६। प्रायः स्त्रियाँ पति की चित्त वृत्ति के न जानने के कारण उसके मनोनुकूल न चलने के कारण एव समाज विरुद्ध कार्यों के करने के कारण दुर्भगा होती हैं ।१७। मनोवृत्ति के अनुकूल चलकर पराया भी प्रिय हो जाता है और मन के विरुद्ध चलकर आत्मीय भी शीघ्र विरोधी बन जाता है ।१८। इसलिए प्रत्येक कार्यों एवं अवस्थाओं में स्त्रियों को मन, वचन, शरीर एवं कर्म से पति के प्रिय कार्यों को करना चाहिये और सर्वदा उसकी चित्तवृत्ति के अनुकूल अपने को रखना चाहिये ।१९। सपत्नियों में वह जिससे अधिक प्रेम करता हो उससे उसको मिलाने का प्रयत्न करना चाहिये विघटन का नहीं और यदि कोई उसकी प्यारी सपत्नी कुपित हो गई हो तो प्रयत्न करके उसके लिए उसे प्रसन्न करना चाहिये ।२०। उसके पैरों को दबाने में शरीर के समस्त अंगों को मीजने में शिर को सहलाने एवं तैल मालिश करने में परम कुशलता प्राप्त करनी चाहिये ।२१। शरीर की स्थिति के अनुसार अंग मीजने के तीन प्रकार होते हैं मृदु, मध्यम और गाढ़ । जिस प्रकार से अधिक सुख मिले ऐसा विचार कर शरीर के अंगों की स्थिति के अनुसार मुखादि का सवाहन (मर्दन) उसे करना चाहिये ।२२। बाहु, वक्षस्थल, कमर, पीठ, कंधे, शिर और दोनों पैरों में गाढ़ मर्दन की इच्छा लोग करते हैं और अन्य स्थलों में मध्यम (न अधिक गाढ़ न अधिक मृदु) मर्दन की ।२३। मांसरहित अंगों में नाभि के मूल भाग मर्मस्थल हृदयगण्ड और कपोल आदि में मृदु मर्दन की इच्छा लोग करते हैं ।२४। जागते समय गाढ़ा मर्दन करना चाहिये अर्ध सुप्त अवस्था में मध्यम मर्दन करना चाहिये । इसी प्रकार सो जाने पर मृदुमर्दन करते रहना चाहिये वा थोड़ी देर बाद मर्दन बन्द कर देना चाहिये ।२५। समस्त अंगों में विशेषतया जिन स्थानों पर रोमावलि अधिक हो मर्दन न करना चाहिये क्योंकि वहाँ मर्दन करना विरुद्ध है तेल से खूब चिकना कर उन स्थानों पर खूब मर्दन करना चाहिये जहाँ खुजली उठती हो ।२६। जिस अंग के स्पर्श करने से रोमांच उत्पन्न हो जाय वहाँ नख से कोमलतापूर्वक स्पर्श करते हुए धीरे-धीरे मर्दन करना चाहिये जिससे पुलकावली उठ पड़े । शिर के दोनों पार्श्वों में शनैः-शनैः खुजलाना चाहिये ।२७।

---

१. पादसंवाहने तथा । २. कटिगुह्येषु ।

तेषु तेषु च गात्रेषु तत्प्रयोज्यं तथातथा । निद्रागमाय तत्काले रागसंधुक्षणाय च ।।२८
तिष्ठतश्चोपविष्टस्य[1] जाग्रतः स्वपतोऽपि वा । संवाहनं प्रशंसंति यदत्यर्थं सुखावहम् ।।२९
नेष्यन्द्यं पुलकोद्भेदो गात्राणामक्षिमीलनम् । तत्प्रदेशार्पणं किञ्चिद्बोधेद्विकृतिदर्शनम् ।।३०
ऊरू मूलादिदेशे च तत्पाणिप्रतिपीडनम् । लक्षयेन्निपुणा[2] यत्र तत्रैवाधिकमाचरेत् ।।३१
एवमेव यथोद्दिष्टं स्त्रीवृत्तं यानुतिष्ठति । पतिमाराध्य सम्पूर्णं त्रिवर्गं साधिगच्छति[3] ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ।१५।

अथ षोडशोऽध्यायः

प्रतिपत्कल्पवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा स्त्रीलक्षणमशेषतः । सद्वृत्तं च तथा स्त्रीणां जगाम स निजालयम् ।।१
ऋषयश्च तथा जग्मुः स्वानि धिष्ण्यान्यशेषतः । स्त्रीलक्षणं तथा वृत्तं श्रुत्वा कृत्स्नं महीपते ।।२
इत्थं लक्षणसम्पन्नां भार्यां प्राप्य महीपते । कर्तव्यं यद्गृहस्थेन तदिदानीं निबोध मे ।।३

उस समय चाहिये कि उन शरीरांगों में कामराग उद्बोधित करने के लिए तथा निद्रा आ जाने के लिए उसी के अनुसार उन-उन अङ्गों में मर्दन करे ।२८। बैठे-खड़े सोते जागते अंगों में मर्दन की लोगों ने बहुत प्रशंसा की है क्योंकि वह अतिशय सुख पहुँचाने वाला होता है ।२९। जिस अंग के मर्दन करने से पति-परम सुख का अनुभव करे पुलकावलि उठ जाय, नेत्र मूंद ले, उसी प्रदेश को बारम्बार अर्पित करे उसमें चतुर स्त्री को विशेष रूप से मर्दन करना चाहिये ।३०। उरु के मूल आदि भाग में पति अपने हाथों से यदि पीट कर मर्दन करने का संकेत करता है तो निपुण वधू को चाहिये कि उस स्थल पर सब से अधिक मर्दन करे ।३१। जैसा ऊपर कह चुके हैं इन नियमों का जो स्त्री सावधानी पूर्वक पालन करती है वह सम्पूर्ण रीति से पति की आराधना कर धर्मार्थ काम रूप त्रिवर्ग को प्राप्ति करती है ।३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्रह्मपर्व में स्त्रीधर्म वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १६

प्रतिपदा कल्प का वर्णन

सुमन्त बोले—ऋषिवृन्द ! इस प्रकार स्त्रियों के समस्त लक्षणों एवं उनके सत्कर्तव्यों को सम्पूर्णतया कह लेने के उपरान्त भगवान् ब्रह्मा अपने स्थल की ओर चले गये ।१। और हे राजन् ! उनसे स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों एवं सत्कर्तव्यों को सुनकर सब ऋषिगण भी अपने-अपने स्थान की ओर प्रस्थित हो गये ।२। हे राजन् ! अब इसके उपरान्त उपर्युक्त शुभलक्षणान्वित गृहिणी को प्राप्त कर

---

१. संविष्टस्योपविष्टस्य । २. न क्षयंति व्रणा यत्र । ३. अधितिष्ठति ।

वैवाहिकाग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि । पञ्चयज्ञविधानं तु पक्तिं कुर्यात्सदा गृही ॥४
पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति । कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भीः प्रमार्जनी ॥५
आसां क्रमेण सर्वासां विशुद्ध्यर्थं[1] मनीषिभिः । पञ्चोद्दिष्टा महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥६
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम् । होमो दैवो बलिर्भौमस्तथान्योऽतिथिपूजनम् ॥७
पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः । स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनोदोषैर्न लिप्यते ॥८
देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः । न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न च जीवति ॥९

शतानीक उवाच

यस्य नास्ति गृहे त्वग्निः स मृतो नात्र संशयः । न स पूजयितुं शक्तो देवादीन्ब्राह्मणोत्तमः ॥१०
निरग्निकस्य विप्रस्य कथं देवादयो द्विज । प्रीताः स्युः शान्तये तस्य परं कौतूहलं मम ॥११

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र श्रूयतां परमं वचः । अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयोऽभिधीयते ॥१२

गृहस्थाश्रमी को जो कुछ करना चाहिये उसे मुझसे सुनिये ।३। वैवाहिक अग्नि में यथा विधि गृह्य सूत्रोक्त विधानों को सम्पन्न करना चाहिये । गृहस्थाश्रमी सर्वदा पंच महायज्ञों तथा पाक का विधान सम्पन्न करे ।४। गृहस्थ को सर्वदा पाँच हिंसाएँ लगती हैं जिनके कारण वह स्वर्ग नहीं जा सकता । वे पाँचो हिंसाएँ हैं । कण्डवी (मूसल से चावल आदि को कूटते समय उनमें रहने वाले जीव मर जाते हैं।) पेषणी (पीसते समय चक्की में कितने जीव मर जाते हैं।) चुल्ली (चुल्हा साफ करते समय कितने जीव मर जाते हैं।) उदकुम्भी (कलश में जल भरते निकालते समय भी कितने जीव मर जाते हैं और प्रमार्जनी भी (झाड़ू देते समय भी अनेक जीव मर जाते हैं।) ।५। इन सब हिंसाओं से शुद्धि प्राप्त करने के लिए बुद्धिमानों को क्रमशः पाँच महायज्ञ (पाक यज्ञ) करने का विधान बतलाया गया है गृहस्थाश्रमी को प्रतिदिन उनका अनुष्ठान करना चाहिए ।६। (शिष्यों को) विद्यादान करना ब्रह्म रूप कहा गया है (पितरों का) तर्पण करना पितृयज्ञ है । हवन करना दैवयज्ञ है । बलि देना भौम (भूत) यज्ञ है तथा अतिथियों की पूजा करना अतिथि यज्ञ कहा गया है ।७। इन पाँचों पाकयज्ञों को जो गृहस्थाश्रमी अपनी शक्ति के अनुकूल कभी नहीं छोड़ता नित्य प्रति करता है वह गृहस्थ होने पर भी इन पाँचों हिंसाओं के दोषों से लिप्त नहीं होता ।८। और इसके विपरीत जो देवता अतिथि भृत्य पितर एवं अपने कल्याण के लिए इन पाँचों यज्ञों का विधान नहीं सम्पन्न करता वह जीवन धारण करके भी मृतक है ।९

शतानीक बोले—द्विजवर्य ! जिस गृहस्थ के घर में अग्नि वैवाहिक विद्यमान नहीं रहती वह मृतक है इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं क्योंकि वह उत्तम ब्राह्मण होकर भी देवादि की आराधना करने में असमर्थ रहता है ।१०। हे द्विज ! किन्तु मेरे मन में इस बात का बड़ा कौतुहल हो रहा है कि उस निराग्नि विप्र के ऊपर उसके कल्याण के लिए देवादिगण किस प्रकार सन्तुष्ट होते हैं ।११

सुमन्तु बोले—राजेन्द्र ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न छेड़ा ! इस परम बात को सुनो । जो निरग्नि

---

१. निष्कृत्यर्थम् ।

व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा[1] नृप । देवादयो भवन्त्येव प्रीतास्तेषां न संशयः ॥१३
विशेषादुपवासेन तिथौ किल महीपते । प्रीता देवादयस्तेषां भवन्ति कुरुनन्दन ॥१४

शतानीक उवाच

भगवंस्त्वं तिथीन्ब्रूहि तिथीनां च विधिं हि मे । प्राशनं गृह्यधर्मांश्च उपवासविधीनपि ॥१५
मुच्येम येन पापौघात्त्वत्प्रसादाद्द्विजोत्तम । संसाराच्चापि विप्रेन्द्र श्रेयसे जगतस्तथा ॥१६

सुमन्तुरुवाच

शृणु कौरव कर्माणि तिथिगुह्याश्रितानि तु । श्रुतानि घ्नन्ति पापानि उपोषितफलानि च ॥१७
प्रतिपदि क्षीरप्राशनं द्वितीयायां लवणवर्जनम् ।
तृतीयायां तिलान्नं प्राश्नीयाच्चतुर्थ्यां क्षीराशनश्च पञ्चम्याम् ॥
फलाशनः सदा षष्ठ्यां शाकाशनः सप्तम्यां बिल्वाहारोऽष्टम्यां तु ॥१८
पिष्टाशनो नवम्यामनग्निपाकाहारो दशम्यामेकादश्यां घृताहारो द्वादश्यां पायसाहारः ।
त्रयोदश्यां गोमूत्राहारश्चतुर्दश्यां यवान्नाहारः ॥१९
कुशोदकप्राशनः पौर्णमास्यां हविष्याहारोऽमावास्यायाम् ।
एष प्राशनविधिस्तिथीनामेव चानेन विधिना पक्षमेकं यो वर्तयति ॥२०

विप्र हैं उनको कल्याण प्राप्ति जिस उपाय से होती है, बतला रहा हूँ ।१२। हे राजन् ! ऐसे ब्राह्मणों के ऊपर देवादि व्रत उपवास नियम एवं अन्याय वस्तुओं के दान करने से प्रसन्न होते ही हैं इससे तनिक भी सन्देह नहीं है ।१३। हे महीपते ! कुरुनन्दन ! विशेषतया कुछ विशेष तिथियों में उपवास रखने से उन पर देवादि प्रसन्न होते हैं ।१४

शतानीक ने कहा—भगवन् ! उन विशेष तिथियों को मुझे बतलाइये और उनमें उपवास रखने की विधियाँ बतलाइये । उपवास एवं उसके बाद प्राशन (भक्षण) करने के गृह्य शास्त्रोक्त जो विधान बनाये गये हैं उन्हें भी सुनना चाहता हूँ ।१५। हे द्विजोत्तम ! जिससे तुम्हारी कृपा से मैं अपने पाप समूह से मुक्त हो जाऊँ हे विप्रेन्द्र ! (इस प्रकार घोर संकटपूर्ण) संसार से भी मेरी मुक्ति हो जायगी और संसार का महान कल्याण भी इससे होगा ।१६।

सुमन्तु बोले—कुरुनन्दन ! उन विशेष पुण्यदायिनी तथा उनमें होने वाले व्रत उपवासादि तिथियों को बतला रहा हूँ सुनो । (उनके उपवास करने से जो पुण्यप्राप्ति होती है) उनके सुनने मात्र से पाप समूह नष्ट हो जाते हैं । उपवास के फल भी सुनो ।१७। प्रतिपदा तिथि को दुग्धाहार, द्वितीया को नमक के बिना भोजन, तृतीया को तिलान्न, चर्तुथी को दुग्धाहार, पञ्चमी को फलाहार षष्ठी को शाकाहार, सप्तमी को बेल का आहार, अष्टमी को (उरदी) का पीसा हुआ आहार, नवमी को बिना अग्नि का पका हुआ भोजन अर्थात् फलाहार, दशमी तथा एकादशी को घृत का आहार, द्वादशी को दुग्धाहार, त्रयोदशी को गोमूत्र का आहार चतुर्दशी को जव का आहार, पौणमासी को कुशमिश्रित जल का आहार अमावास्या को हविष्यान्न का आहार। विभिन्न तिथियों में इन उपर्युक्त आहारों का विधान है। इस विधि से जो एक

---

१. स्तुतिदानैः ।

सोऽश्वमेधफलं दशगुणफलमवाप्नोति । स्वर्गे मन्वन्तराणि यावत्प्रतिवसति ॥२१
उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैर्मासत्रयचतुष्टयम् । सोऽश्वमेधराजसूयानां शतगुणमवाप्नोति ॥२२
स्वर्गे उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैश्चतुर्युगानां दशशतीर्यावत्प्रतिवसति ।
तथाष्टमासपारणे राजसूयाश्वमेधाभ्यां सहस्रगुणफलमवाप्नोति ॥२३
स्वर्गे चतुर्दश मन्वतराणि यावत्प्रतिवसति ।
उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैर्य एवं नियममास्थाय वर्षमेकं वर्तयति ॥२४
स सवितुर्लोके कालं मन्वन्तरं प्रतिवसति ॥२५
य एवं नियमान्राजन्नाश्वयुजनवम्यां माघमासस्य सप्तम्यां वैशाखतृतीयायां कार्तिकपौर्णमास्यां तिथिव्रतानि गृह्णाति ब्रह्मचारी गृहस्थो वनस्थो नारी नरो वा शूद्रः प्रयतमानसः दीर्घायुष्यं सवितुः सालोक्यं व्रजति ॥२६
यैश्चापि पुरा राजन्ननेन विधिना एतासुतिथिष्वन्यजन्मान्तरे उपवासविधिः कृतः दानानि दत्तानि विविधप्रकाराणि ब्राह्मणानां तपस्विजनेषु वा ॥२७
त्रिरात्रोपवासिनां तीर्थयात्रातपोगुरुमातापितृशुश्रूषानिरतानां तेषां स्वर्गादिभोगवासनादिहागतानां फलनिष्पत्तिचिह्नानि मनुष्यलोके प्रत्यक्षत एव दृश्यन्ते ॥२८
हस्त्यश्वयानयुग्यधनरत्नकनकहिरण्यकटककेयूरग्रैवेयककटिसूत्रकर्णालङ्कारमुकुटवरवस्त्रवरनारी-

---

पक्ष तक नियम रखता है वह अश्वमेध यज्ञ के दस गुणित पुण्य फल की प्राप्ति करता है। और स्वर्ग में अनेक मन्वन्तरों तक निवास करता है।१८-२१। तीन चार मास तक इस नियम का पालन करने वाला अप्सराओं एवं गन्धर्वों के समूहों के द्वारा उपगीत होकर अश्वमेध एवं राजसूय यज्ञों के सौगुने अधिक फल को प्राप्त करता है।२२। इसी प्रकार आठ मास तक नियम रखने वाला अप्सराओं एवं गन्धर्वों से उपगीत होकर एक सहस्र चतुर्युगों तक स्वर्ग में निवास करता है और राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के सहस्रगुणित फल प्राप्त होता है।२३। इसी प्रकार एक वर्ष तक जो उपर्युक्त नियम का पालन करता है वह अप्सराओं एवं गन्धर्वों के समूहों द्वारा उपस्तुत होकर चौदह मन्वतरों तक निवास करता है।२४। और एक मन्वन्तर तक सविता के लोक में निवास करता है।२५। हे राजन्! जो व्यक्ति इन नियमों का आश्विन की नवमी, माघमास की सप्तमी, वैशाख की तृतीया तथा कार्तिक की पूर्णिमा को इन तिथियों के व्रतों को प्रारम्भ करता है वह चाहे ब्रह्मचारी हो चाहे गृहस्थ वानप्रस्थ नर नारी अथवा शूद्र हो मन एवं इन्द्रियों को संयत रख कर करता है तो वह दीर्घायु होकर सविता का लोक प्राप्त करता है।२६। हे राजन्! यही नहीं जो मनुष्य पूर्वजन्म में इन उपर्युक्त तिथियों में अन्य जन्मों में उपवास की उक्त विधि का पालन कर चुके हैं विविध प्रकार के दानों को ब्राह्मणों वा तपस्वियों को दे चुके हैं तीर्थयात्रा में तीन रात तक उपवास करने वाले गुरु माता पिता की सेवा शुश्रुषा में निरत रहने वाले तथा स्वर्गादि के भोग करने की वासना से इस मर्त्यलोक में जन्म धारण करने वाले उन मनुष्यों के लिए इसी लोक में उक्त पुण्य फलों की निष्पत्ति प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त होती देखी जाती है।२७-२८। हाथी, घोड़ा, सवारी, रथ, धन, रत्न, सुवर्ण, सुवर्णनिर्मित वलय, कण्ठहार, कटिसूत्र, ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) कुण्डल, मुकुट, सुन्दर वस्त्र, सुन्दरी स्त्री,

वरविलेपनसुरूपगुणदीर्घायुषो विगताधिव्याधयो दानोपवासरतानां फलान्येतानि नृत्यगीत-
वादित्रमङ्गलपाठकशब्दैरिहाद्यापि पुण्यकृतो बोध्यमाना दृश्यन्त इति ॥२९
तथाकृतोपवासा अपि हि दृश्यन्ते ॥३०
तथा अदत्तदाना अकृतपुण्याश्च प्रत्यक्षत एव दृश्यन्ते ॥३१
तद्यथा काणकुष्ठिबधिरजडमूकव्यङ्गा रोगदारिद्र्योपसर्गव्याधिहतायुषश्च दृश्यंतेऽद्यापि मानवाः ॥३२

शतानीक उवाच

द्विजेन्द्र तिथयः प्रोक्ताः समासेन त्वया बुध ! विस्तरेणैव मे भूयः प्रब्रूहि द्विजसत्तम ॥३३
रहस्यं यत्तिथीनां तु देवानां च विचेष्टितम् । यानीष्टानि च देवानां भोज्यानि नियमास्तथा ॥३४
तानि मे वद धर्मज्ञ येन पूतो भवेन्वहम् । निर्द्वन्द्वो हि यथा विप्र लभे यागफलानि तु ॥३५

सुमन्तुरुवाच

रहस्यं यत्तिथीनां च भोजनं फलमेव तु । यावच्च येन नियमो विशेषात्स्त्रीजनस्य च ॥३६
एतत्ते सर्वमाख्यामो रहस्यं तन्निबोध मे । यन्मया नोक्तपूर्वं हि कस्यचित्सुप्रियस्य हि ॥३७
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यस्य देवस्य या तिथिः । देवतानां रहस्यानि व्रतानि नियमास्तथा ॥३८
ताञ्छृणुष्व महाबाहो गदतो मम नारद । सृष्टिं पूर्वं वदिष्यामि संक्षेपेण तिथिं प्रति ॥३९

सुन्दर चन्दनादि सुन्दर रूप, गुण, दीर्घायु, आधिव्याधि से रहित आदि फल इन उपर्युक्त दानों एवं उपवासों में निरत रहने वाले को प्राप्त होता है नाच, गाना, वाद्य एवं मङ्गल पाठकों द्वारा पुण्यात्मा व्यक्ति शयन के बाद जगाये जाते देखे जाते हैं ।२९। इसके विपरीत जो इन पुण्यप्रद उपवासों का पालन नहीं करते उक्त दानों को नहीं देते वे अपुण्यशील भी इस संसार में प्रत्यक्ष रूप से देखे जाते हैं ।३०-३१। वे जैसे काना, कुष्ठी, बधिर, जड़, मूक, विकलाङ्ग रुग्ण, दरिद्र, व्याधिग्रस्त, क्षीण आयु मनुष्य के रूप में पृथ्वीतल पर आज भी देखे जाते हैं ।३२

शतानीक ने कहा—हे द्विजवृन्द ! हे द्विजसत्तम ! आपने संक्षेप में इन तिथियों के माहात्म्य को मुझसे बतलाया है । द्विजवर्य ! कृपया उनके बारे में मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइये ।३३। उक्त तिथियों का जो रहस्य हो देवताओं की जो विशेष चेष्टाएँ हों उनके जो विशेष प्रिय भोज्य पदार्थ हों जो कुछ नियम हों हे धर्मज्ञ ! उन सबका विस्तृत परिचय मुझे दीजिये जिससे मैं पवित्र हो सकूँ । हे विप्र ! जिससे मैं निर्द्वन्द्व होकर यज्ञ फल की प्राप्ति कर सकूँ ।३४-३५

सुमन्तु ने कहा—उक्त तिथियों की जो विशेष रहस्यपूर्ण बातें हैं उनके उन भोज्य सामग्रियों के जो विशेष फल बतलाये गये हैं उनसे जो फल प्राप्ति होती है जिस प्रकार से उनके उपोषित करने के नियम कहे गये हैं उन सब रहस्यपूर्ण बातों को विशेषतया स्त्रियों के लिए मैं तुमसे बतला रहा हूँ । सुनो । वे ऐसी गोपनीय हैं कि मैंने आज से पहिले अपने किसी भी प्रियजन को उनका रहस्य नहीं बतलाया है ।३६-३७। जिस देवता की जो विशेष तिथि कही जाती है जिन देवताओं का जो रहस्य व्रत तथा नियम है, हे महाबाहु नारद जी ! उन सब बातों को मैं बतला रहा हूँ सुनिये । संक्षेप में इन तिथियों के वर्णन प्रसंग में सृष्टिपूर्व

तमोभूतमिदं त्वासीदलक्ष्यमवितर्कितम् । जगद्ब्रह्मा समागत्यासृजदात्मानमात्मना ॥४०
संभूतात्मैव आत्मासादण्डमध्याद्विनिःसृतः । आत्मनैवात्मनो ह्यण्डं सृष्ट्वा स विभुरादितः ॥४१
ब्रह्म नारायणाख्योऽसौ सृष्टिं कर्तुं समुद्यतः । ताभ्यां सोण्डकपालाभ्यां दिवं भूमिं च निर्ममे ॥४२
दिशश्चोपदिशश्चैव देवादीन्दानवांस्तथा । तिथिं पूर्वामिमां राजंश्चकाराथ विभुः स्वयम् ॥४३
तिथीनां प्रवरा यस्माद्ब्रह्मणा समुदाहृता । प्रतिपादितापरे पूर्वे प्रतिपत्तेन तूच्यते ॥४४
अस्मात्पदात्तु तिथयो यस्मात्त्वन्याः प्रकीर्तिताः । अस्यान्ते कथयिष्यामि उपवासविधिं परम् ॥४५
कार्तिक्यां माघसप्तम्यां वैशाखस्य युगादिषु । नियमोपवासं प्रथमं ग्राहयेत विधानवित्[1] ॥४६
यां तिथिं नियमं कर्तुं भक्त्या समनुगच्छति । तस्यां तिथौ विधानं यत्तन्निबोध जनाधिप ॥४७
यदा तु प्रतिपद्यां वै गृह्णीयान्नियमं नृप । चतुर्दश्यां कृताहारः संकल्पं परिकल्पयेत् ॥४८
अमावास्यां न भुञ्जीत त्रिकालं स्नानमाचरेत् । पवित्रो हि जपेन्नित्यं गायत्रीं शिरसा सह ॥४९
अर्चयित्वा प्रभाते तु गन्धमाल्यैर्द्विजोत्तमान् । शक्त्या क्षीरं प्रदद्यात्तु ब्रह्मा मे प्रीयतां प्रभुः ॥५०

के वृतान्त को बतला रहा हूँ ।३८-३९। (सृष्टि के पूर्व) यह समस्त जगन्मण्डल अंधकारमय था जिसका न तो कोई चिह्न शेष था न कोई अनुमान करने का साधन शेष था । भगवान् ब्रह्मा ने ऐसे जगत् में आकर अपने ही द्वारा इसका सर्वप्रथम आविर्भाव किया ।४०। उस विशाल अण्डरूप जगत् के मध्य से संभूतात्मा भगवान ब्रह्मा स्वयं निकल पड़े । सर्वप्रथम सर्वैश्वर्यशाली नारायण उपाधिधारी भगवान् विभु ने सृष्टि करने की कामना से उद्यत होकर उस विशाल अण्ड की सृष्टि भी स्वयं अपने ही से की थी ।४१। उन्होंने उसके दो कपालों (टुकड़ों) से पृथ्वी और भूलोक का निर्माण किया ।४२। हे राजन् ! उन्ही में से तदुपरान्त भगवान् ब्रह्मा ने स्वयं दसों दिशाओं उपदिशाओं देवताओं एवं दानवों की रचना की । इन सब की रचना भगवान् ने सर्वप्रथम इसी पूर्व तिथि प्रतिपदा को ही की थी ।४३। यतः ब्रह्मा द्वारा यह सभी तिथियों में श्रेष्ठ कही गयी और पश्चात् लोगों ने उसका प्रतिपादन किया इसलिए वह तिथि प्रतिपदा कही जाती है ।४४। इसी पद के बाद दूसरी तिथियाँ कही गई है इसके अन्त में उपवास करने का जो परम विधि है उसे कह रहा हूँ सुनिये ।४५। विधानवेत्ता कार्तिक की माघ की सप्तमी तथा वैशाख की युगादि तिथियों में नियमपूर्वक उपवास को सर्वप्रथम अंगीकार करे ।४६। हे जनाधिप ! इन पन्द्रह तिथियों में जिस तिथि को विधान कर्त्ता भक्तिपूर्वक नियम का पालन करता है उसके विधि के विधानादि को बतला रहा हूँ, सुनिये ।४७। हे नृप ! जब प्रतिपदा तिथि को नियम का प्रारम्भ करना चाहे तो चतुर्दशी तिथि को ही आहार ग्रहण करने के बाद इसका संकल्प करना चाहिये ।४८। उसके अनन्तर अमावास्या तिथि को व्रती को बिना आहार ग्रहण किये त्रिकाल स्नान करना चाहिये । और सारे दिन पवित्र भाव से शिर के साथ गायत्री का जप करते रहना चाहिये ।४९। फिर दूसरे दिन प्रतिपदा के प्रातःकाल सुगन्धित द्रव्य, पुष्प एवं माला आदि से उत्तम ब्राह्मणों की पूजा कर "भगवान् परमैश्वर्यशाली ब्रह्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों" इस भावना से दुग्ध का दान करना चाहिये ।५०। हे राजन् ! इस विधि के साथ नियम समाप्ति के अनन्तर व्रती गोदुग्ध के साथ आहार ग्रहण करे । हे नृप ! सभी तिथियों में यही नियम देखा गया

---

१. विधानतः ।

ततो भुञ्जीत गोक्षीरमनेन विधिना नृप । एष एव विधिर्दृष्टः सर्वासु तिथिषु नृप ।।५१
संवत्सरगते काले व्रतमेतत्समाप्यते । व्रतांते यत्फलं तस्य तन्निबोध नराधिप ।।५२
विमुक्तपापः शुद्धात्मा दिव्यदेहस्य देहिनः । ब्रह्मा ददाति संतुष्टो विमानमतितेजसम् ।।
अव्याहतगतिं दिव्यं किन्नराप्सरसैर्युतम् ।।५३
रमित्वा सुचिरं तत्र दैवतैः सह देववत् । इह चागत्य विप्रत्वं दश जन्मान्यसौ लभेत् ।।५४
वेदवेदांगविद्यश्च दीर्घायुश्चैव सुप्रभः । भोगी धनपतिर्दाता जायतेऽसौ कृते युगे ।।५५
विश्वामित्रस्तु राजेन्द्र ब्राह्मणत्वजिगीषया । तपश्चचार विपुलं सन्तापाय दिवौकसाम् ।।
ब्राह्मणत्वं न लेभेऽसौ लेभे विघ्नाननेकशः ।।५६
ततस्तु नियमात्तेषां तिथीनां प्रवरा तिथिः । उपोषिता बहुविधा ज्ञात्वा ब्रह्मप्रियां तिथिम् ।।५७
ततो ददौ ब्रह्मा विश्वामित्राय धीमते । इहैव तेन देहेन ब्राह्मणत्वं सुदुर्लभम् ।।५८
तिथीनां प्रवरा ह्येषा तिथीनामुत्तमा तिथिः । क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा ब्राह्मणत्वमवाप्नुयुः ।।५९
एवं तिथिरियं राजन्कामदा कञ्जजप्रिया । सरहस्या मया प्रोक्ता या नोक्ता यस्य कस्यचित् ।।६०
हैहयैस्तालजङ्घैश्च तुरुष्कैर्यवनैः शकैः । उपोषिता इहात्रैव ब्राह्मणत्वमभीप्सुभिः[1] ।।६१

है ।५१। इस प्रकार एक वर्ष समय व्यतीत होने पर यह नियम समाप्त होता है, नराधिप ! व्रत समाप्ति पर व्रती को जो पुण्य मिलता है उसे सुनिये ।५२। उस व्रती पुरुष के समस्त पाप इस नियम के पालन से छूट जाते है और उसकी आत्मा निर्मल हो जाती है उसे जन्मान्तर में दिव्यगुण सम्पन्न शरीर की प्राप्ति होती है। भगवान् ब्रह्मा परम सन्तुष्ट होकर उसे परम तेजोमय एक ऐसा दिव्य विमान समर्पित करते हैं जिसकी गति कहीं रुद्ध नहीं होती और चारों ओर से जिसे किन्नरों एवं अप्सराओं के समूह घेरे रहते हैं ।५३। उस पुनीत लोक में वह प्राणी देवताओं की तरह सभी सुखों एवं समृद्धियों का चिर काल तक सदुपयोग कर इस लोक में पुनः जन्म धारण कर दस जन्म तक ब्राह्मण कुल प्राप्त करता है ।५४। इसी पुण्य के प्रभाव से वह वेदों तथा वेदाङ्गों समेत समस्त विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर परम तेजस्वी, भोगी धनपति तथा दानी रूप में सतयुग में उत्पन्न होता है ।५५। हे राजेन्द्र ! विश्वामित्र ने ब्राह्मण की पदवी जीतने के लिए और स्वर्गस्थ देवताओं को संताप देने केलिए विपुल तपस्या की किन्तु उन्हें ब्राह्मणत्व की पदवी नहीं मिली प्रत्युत अनेक विघ्न एवं कष्ट झेलने पड़े ।५६। तब उन्होंने समस्त तिथियों में श्रेष्ठ प्रतिपदा तिथि को ब्रह्मप्रिया समझकर नियमपूर्वक अनेक प्रकार के दानादि कर्म करते हुए उपवास किया ।५७। जिससे भगवान् ब्रह्मा ने परम बुद्धिमान् विश्वामित्र के लिए प्रसन्न होकर इसी शरीर द्वारा परम दुर्लभ ब्राह्मणत्व का वरदान दिया ।५८। यह प्रतिपदा तिथि सभी तिथियों में श्रेष्ठ एवं उत्तम पुण्य प्रदान करने वाली है । इसके नियमपूर्वक पालन करने से क्षत्रिय अथवा वैश्य, शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त होते हैं ।५९। हे राजन् ! इस प्रकार यह प्रतिपदा तिथि भगवान् पद्मयोनिब्रह्मा को परम प्रिय एवं व्रती की समस्त कामनाओं को सफल बनाने वाली है । मैने इसे किसी को भी आज तक नहीं बतलाया था आपसे इसके नियम एवं रहस्य को बतला चुका ।६०। इसी मर्त्यलोक में यह परम पुण्यप्रदायिनी प्रतिपदा हैहय, तालजङ्घ, तुरुष्क (तुरुक) यवन, एवं शक प्रभृति

---

१. च लंभितम् ।

इत्येषा परमा पुण्या शिवा पापहरा तथा । पठितोपासिता राजञ्छ्रद्धया च श्रुता[1] तथा ॥६२
माहात्म्यं चापि योऽप्यस्याः शृणुयान्मानवो नृप । ऋद्धिं वृद्धिं तथा कीर्तिं शिवं चाप्य दिवं व्रजेत् ॥६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि प्रतिपत्कल्पवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

प्रतिपत्कल्पविषये ब्रह्मणः पूजा

शतानीक उवाच

ब्रूहि मे विस्तराद्ब्रह्मन्प्रतिपत्कृत्यमादरात्[2] । ब्रह्मपूजाविधानं च पूजने यच्च वै फलम् ॥१

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वैकमना राजन्कथयाम्येष शान्तिदन् । पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥२
स्वयम्भूरभवद्देवः सुरज्येष्ठश्चतुर्मुखः । ससर्ज लोकान्देवांश्च भूतानि विविधानि च ॥३
कायेन मनसा वाचा जङ्गमस्थावराणि च । पिता यः सर्वदेवानां भूतानां च पितामहः ॥४
तस्मादेष सदा पूज्योः यतो लोकगुरुः परः । सृजत्येष जगत्कृत्स्नं पाति संहरते तथा ॥५

ब्राह्मणत्व की पदवी प्राप्ति के अभिलाषियों द्वारा उपोषित की गई है ।६१। यह परम पुण्य प्रदायिनी कल्याण प्रदा एवं पापहारिणी है । हे राजन् ! श्रद्धापूर्वक इस व्रत के नियमादि के सुनने पढ़ने एवं पालन करने से मनुष्य को उक्त फल की प्राप्ति होती है ।६२। हे नृप ! जो मनुष्य केवल इसके माहात्म्य को सुनता है उसे परम ऋद्धि-वृद्धि, कीर्ति कल्याण एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।६३

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में प्रतिपदा माहात्म्य वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६

अध्याय १७

प्रतिपदाकल्प के विषय में ब्रह्मा की पूजा

शतानीक ने कहा—ब्रह्मन् ! अब मुझे विस्तार पूर्वक प्रतिपदा में किये जाने वाले कार्य और उक्त ब्रह्मा की पूजा का विधान सादर बतलाइये और यह भी बतलाइये कि उस पूजन से क्या फल प्राप्त होता है।१

सुमन्तु ने कहा—राजन् ! एकाग्रचित्त होकर सुनिये। इस शान्तिप्रद कथा को मैं कह रहा हूँ। प्राचीनकाल में जब स्वयम्बर एवं जंगम रूप समस्त जगत् एवं घोर महासमुद्र में नष्ट हो गया था उस समय स्वयं उत्पन्न सुरश्रेष्ठ चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने ही समस्त देवाताओं लोकों और अनेक प्रकार के भूतों की सृष्टि की। मनसा वाचा कर्मणा उन्होंने स्थावर जंगम जीव समूहों की पुनः सृष्टि की इसीलिए वे देवताओं के पिता तथा समस्त भूतों के पितामह कहे जाते हैं।२-४। और इसीलिए सदा परम पूज्य भी माने गये हैं क्योंकि लोक में सबसे बढ़कर महान् हैं। वे ही समस्त संसार की सृष्टि करते हैं पालन करते हैं और अन्त में सब का संहार करते हैं।५।

---

१. अत्र विशेषतः । २. प्रतिपत्कल्पम् ।

रुद्रोऽस्य मनसो जातो विष्णुर्जातोऽस्य[1] वक्षसः। मुखेभ्यश्चतुरो[2] वेदा वेदाङ्गानि च कृत्स्नशः ॥६
देवाप्सरसगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः। पूजयन्ति सदा वीर विरिंचि सुरनायकम् ॥७
सर्वो ब्रह्ममयो लोकः सर्वं ब्रह्मणि संस्थितम्। तस्मात्समर्चयेद्ब्रह्मन्य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥८
यो न पूजयते भक्त्या सुरज्येष्ठं[3] सुरेश्वरम्। न स नाकस्य राज्यस्य न च मोक्षस्य भाजनम् ॥९
यस्तु पूजयते भक्त्या विरिंचिं भुवनेश्वरम्। स नाकराज्यमोक्षेषु क्षिप्रं भवति भाजनम् ॥१०
तस्मात्सौम्यमना भूत्वा यावज्जीवं प्रतिज्ञया। अर्चयित्वा सदा देवमापन्नोऽपि नरो नृपः ॥११
वरं देहपरित्यागो वरं नरकसम्भवः। न त्वेवापूज्य भुञ्जन्ति[4] देवं वै पद्मसंभवम् ॥१२
सदा पूजयते यस्तु वीर भक्त्या पितामहम्। मनुष्यचर्मणा नद्धः स वेधा नात्र संशयः ॥१३
न हि वेधोऽर्चनात्किचित्पुण्यमभ्यधिकं भवेत्। इति विज्ञाय यत्नेन पूजनीयः सदा विधिः ॥१४
यो ब्रह्माणं द्वेष्टि मोहात्सर्वदेवनमस्कृतम्। नरो नरकगामी स्यात्तस्य संभाषणादपि ॥१५
ब्रह्मणोर्चां प्रतिष्ठाप्य सर्वयत्नैर्विधानतः। यत्पुण्यं फलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ॥१६
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्फलम्। तत्फलं कोटिगुणितं लभेद्वेधः प्रतिष्ठया ॥१७
कञ्जजं स्थापयेद्यस्तु कृत्वा शालां मनोरमाम्। सर्वागमोदितं पुण्यं कोटिकोटिगुणं लभेत् ॥१८

रुद्र उनके मनसे तथा विष्णु उनके वक्षस्थल से उत्पन्न हुए हैं। उन्हीं के मुखों से चारों वेद एवं समस्त वेदाङ्ग प्रादुर्भूत हुए हैं।६। हे वीर! सुरश्रेष्ठ उन भगवान् विरिंचि की देव अप्सरा, गन्धर्व, यक्ष, उरग एवं राक्षसगण सर्वदा पूजा करते हैं।७। सभी लोक ब्रह्ममय हैं सभी ब्रह्मा में स्थित हैं इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है उसे ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिये।८। सुरेश्वर सुरज्येष्ठ उन भगवानब्रह्मा की जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पूजा नहीं करते वह स्वर्ग राज्य और मोक्ष का भाजन नहीं होता।९। जो मनुष्य भुवनेश्वर विरिंचि की भक्तिपूर्वक पूजा करता है वह शीघ्र ही स्वर्ग राज्य एवं मोक्ष का भाजन बनता है।१०। इसलिए हे राजन्! मनुष्य को चाहिये कि वह चाहे कैसी भी विपत्ति में क्यों न पड़ा हो जब तक जीवित रहे प्रतिज्ञापूर्वक प्रसन्न मन से सर्वदा देवाधिदेव भगवान् ब्रह्मा की पूजा में निरत रहे।११। पद्मयोनि भगवान् ब्रह्मा की पूजा न करके जो लोग भोजन कर लेते है उनके लिए इस जीवन से शरीर का परित्याग करना तथा नरक में गिरना ही श्रेष्ठ है।१२। हे वीर! जो मनुष्य सर्वदा भक्तिपूर्वक पितामह भगवान् ब्रह्मा की पूजा करते हैं वह निस्सन्देह मनुष्य के चमड़े में नधा हुआ साक्षात् ब्रह्मा ही है।१३। भगवान् ब्रह्मा की पूजा से अधिक कोई पुण्य इस संसार में नहीं है ऐसा समझ कर मनुष्य को यत्नपूर्वक ब्रह्मा की सर्वदा पूजा करनी चाहिये।१४। जो मनुष्य सभी देवताओं द्वारा नमस्कृत भगवान् ब्रह्मा के साथ मोहवश द्वेष करता है वह नरकगामी होता है यही नहीं उस पापात्मा के साथ सम्भाषण करने से भी नरकगामी होना पड़ता है।१५। भगवान् ब्रह्मा की प्रतिमा को प्रतिष्ठापित कर सभी यन्त्रों से विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य जो पुण्यफल प्राप्त करता है उसे एकाग्र नन से सुनिये।१६। सब प्रकार के यज्ञ, तप, दान, तीर्थस्नान एवं वेदाध्ययन से जो पुण्य की प्राप्ति होती है उससे कोटि गुणित फल ब्रह्मा की मूर्ति प्रतिष्ठा करने वाले प्राप्त करते हैं।१७। जो मनुष्य उत्तम मन्दिर का निर्माण कर उसमें ब्रह्मा की प्रतिष्ठा करता

---

१ न इ० पा०। २. चत्वारः। ३. विरिंचिं सर्वकामदम्। ४. भुञ्जते।

मातृजान्पितृजांश्चैव यां चैवोद्वहते स्त्रियम् । कुलैकविंशमुत्तार्य ब्रह्मलोके महीयते ॥१९
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्प्रलये समुपस्थिते । ज्ञानयोगं समासाद्य स तत्रैव विमुच्यते ॥२०
अथ वा राज्यमाकाङ्क्षेज्जायते सम्भवान्तरे । सप्तद्वीपसमुद्रायाः क्षितेरधिपतिर्भवेत् ॥२१
त्रिसंध्यं यो जपेद्ब्रह्म कृत्वाष्टदलपंकजम् । पौर्णमास्यां प्रतिपदि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२२
अनेनैव स देहेन ब्रह्मा संतिष्ठते क्षितौ ।पापहा सर्वमर्त्यानां दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥२३
उद्धृत्य दिवि संस्थाप्य कुलानामेकविंशतिम् । तैः कुलैः सहितो नित्यं मोदते गोगतो[1] नृप ॥२४
अप्येकवारं यो भक्त्या पूजयेत्पद्म[2]संभवम् । पद्मस्थं मूर्तिमन्तं वा ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥२५
पुण्यक्षयात्क्षितिं प्राप्य भवेत्क्षितिपतिर्महान् । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो ब्राह्मणश्चापि जायते ॥२६
न तत्तपोभिरत्युग्रैर्न च सर्वैर्महामखैः । गच्छेद्ब्रह्मपुरं दिव्यं मुक्त्वा भक्तिपरात्मकान् ॥२७
मृद्दार्वैष्टकशैलैर्वा यः कुर्याद्ब्रह्मणो गृहम् । त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥२८
मृन्मयात्कोटिगुणितं फलं दार्विष्टाकामये । इष्टकाद्द्विगुणं पुण्यं कृते शैलमये गृहे ॥२९
क्रीडमानोऽपि[3] यः कुर्याच्छालां वै ब्रह्मणो नृप । ब्रह्मलोके स लभते विमानं सर्वकामिकम् ॥३०

है वह सभी शास्त्रों में कहे गये पुण्यों से कोटिगुणित अधिकपुण्य फल की प्राप्ति करता है ।१८। वह महान् पुण्यशाली मनुष्य अपने मातृकुल, पितृकुल तथा जिस स्त्री के साथ विवाह करता है उस कुल की इक्कीस पीढ़ियों को तारता है और स्वयं ब्रह्म लोक में पूजित होता है ।१९। वहाँ पर विपुल भोगों का अनुभव कर प्रलय के अवसर पर ज्ञानयोग की सिद्धि प्राप्त कर वहीं पर मुक्त भी हो जाता है ।२०। अथवा यदि वह ब्रह्मलोक में राज्य प्राप्ति की कामना करता है जो जन्मान्तर में सातों द्वीपों तथा समुद्रों समेत सम्पूर्ण पृथिवी का एकछत्र स्वामी होता है ।२१। जो मनुष्य पूर्णिमा तथा प्रतिपदा तिथियों में अष्टदल कमल का निर्माण कर भगवान् ब्रह्मा के नाम का तीनों संध्याओं में जप करता है उसके पुण्य-फल की कथा सुनो ।२२। उसके लिए अधिक क्या कहा जाय, यही समझना चाहिए कि उसके इस शरीर से भगवान् ब्रह्मा ही पृथ्वी पर निवास कर रहे हैं । उसका दर्शन एवं स्पर्श ही सभी मनुष्यों के पापों को नाश करता है ।२३। वह पुण्यशील मनुष्य अपनी इक्कीस पीढियों को उद्धार कर स्वर्ग में प्रतिष्ठित करता है । हे राजन् ! अपने कुलपुरुषों के साथ वह पुण्यात्मा भूमिलोक में सर्वदा आनन्द का अनुभव करता है ।२४। जो मनुष्य एक बार भी पद्म पर समासीन वा मूर्तिमान् पद्मयोनि भगवान् ब्रह्मा की भक्ति पूर्वक पूजा करता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ।२५। और पुण्य क्षय के बाद वहाँ से पृथ्वी लोक में महान् राजा के रूप में जन्म धारण करता है । समस्त वेद एवं वेदांगों का पूर्व ज्ञान प्राप्त कर श्रेष्ठकुलीन ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होता है ।२६। भक्ति पूर्वक भगवान् ब्रह्मा की पूजा को छोड़कर न तो कठोर तपस्याओं से दिव्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो सकती है और न समस्त महान् यज्ञों के अनुष्ठानों से ।२७। जो मनुष्य मिट्टी, काष्ठ ईंट अथवा पत्थरों से ब्रह्मा का मन्दिर बनवाता है वह अपने इक्कीस कुल पुरुषों के साथ ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।२८। मिट्टी के मन्दिर से ईंट और काष्ठ का मन्दिर कोटि गुणित अधिक फलदायी होता है और ईंट के मन्दिर से द्विगुणित अधिक पुण्य पत्थर द्वारा बनवाने में होता है ।२९। हे नृप ! जो मनुष्य खिलवाड़ में ही ब्रह्मा का आयतन बनवा देता है वह भी

---

१. गां भूमिं गतः—भूमिष्ठ एवेत्यर्थः । २. सर्वकामदम् । ३. क्रीडन् ।

पुष्पमालापरिक्षिप्तं किङ्किणीजालभूषितम् । दोलाविक्षेपसम्पन्नं घण्टाचामरभूषितम् ।।३१
मुक्तादामवितानेन शोभितं सूर्यसुप्रभम् । अप्सरोगणसंकीर्णं सर्वकामसुखप्रदम् ।।३२
तत्रोषित्वा महाभोगी क्रीडमानः सदा सुरैः । पुनरागत्य लोकेस्मिन्राजा भवति धार्मिकः ।।३३
पश्यन्परिहरञ्जन्तून्मृदुपूर्दं महीपते । शनैः सम्मार्जनं कुर्वंश्चान्द्रायणफलं व्रजेत् ।।३४
वस्त्रपूतेन तोयेन यः कुर्यादुपलेपनम् । पश्यन्परिहरञ्जन्तूंश्चान्द्रायणफलं लभेत् ।।३५
नैरन्तर्येण यः कुर्यात्पक्षं सम्मार्जनार्चनम् । युगकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते ।।३६
तस्यान्ते स चतुर्वेदः सुरूपः प्रियदर्शनः । आढ्यः सर्वगुणोपेतो राजा भवति धार्मिकः ।।३७
कपटेनापि यः कुर्याद्ब्रह्मशालां सुमानद । सम्मार्जनादि वै कर्म सोऽपि प्राप्नोति तत्फलम् ।।३८
तावद्भ्रमन्ति संसारे दुःखशोकभयप्लुताः । न भवन्ति सुरश्रेष्ठे यावद्भक्ता महीपते ।।३९
समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे । यद्येवं ब्रह्मणि न्यस्तं को न मुच्येत बन्धनात् ।।४०
खण्डस्फुटितसंस्कारं शालायां यः करोति वै । अरामावसथाद्येषु लभते मौक्तिकं फलम् ।।४१

ब्रह्मलोक में सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले विमान की प्राप्ति करता है ।३०। उसका वह सुन्दर विमान सुगन्धित पुष्पों की मालाओं से चारों ओर घिरा हुआ छोटी-छोटी किंकिणियों से विभूषित झूलों एवं हिंडोले से संयुक्त घंटा तथा चामर से समन्वित रहता है ।३१। उसमें चारों ओर ऊपर मोतियों की लड़ियाँ झूलती रहती हैं उसकी शोभा सूर्य के समान तेजोमयी रहती है । अप्सराओं के समूह चारों ओर से उसमें आकीर्ण रहते हैं । और सब प्रकार की कामनाएँ एवं समस्त सुख प्रदान करती हैं ।३२। पश्चात् उस ब्रह्म लोक में रहकर देवताओं के साथ क्रीड़ा करता हुआ वह महान् भोगी फिर इस लोक में आकर परम धार्मिक राजा होता है ।३३। हे महीपति ! ब्रह्मा के उस आयतन में जन्तुओं को देखकर उन्हें छोड़ते हुए मृदुता के साथ-साथ धीरे-धीरे मार्जन करने से मनुष्य चान्द्रायण व्रत का पुण्य प्राप्त करता है ।३४। वस्त्र से पवित्र किये गये (छाने गये) जल द्वारा जो मनुष्य जन्तुओं को देख कर छोड़ते हुए जो उपलेपन करता है वह चान्द्रायण व्रत का पुण्य प्राप्त करता है ।३५। जो मनुष्य एक पक्ष तक निरन्तर आयतन में मार्जन एवं अर्चन करता है वह शत कोटि युगपर्यन्त ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।३६। उस अवधि के व्यतीत हो जाने के उपरान्त वह चारों वेदों का पारगामी विद्वान्, सुन्दर स्वरूपवान प्रियदर्शी, धन-धान्य सम्पन्न, सर्वगुणान्वित एवं परम धार्मिक राजा होता है ।३७। हे सुमानद ! कपट पूर्वक भी जो व्यक्ति ब्रह्मा के आयतन का निर्माण करता है तथा उसमें सम्मार्जन एवं अर्चन आदि कर्म करता है वह भी उक्त फल की प्राप्ति करता है ।३८। हे महीपति ! लोग इस संसार में विविध प्रकार के दुःख शोक एवं भय में तभी तक फँसे रहते हैं जब तक सुरश्रेष्ठ में उनकी भक्ति नहीं हो जाती।३९। प्राणियों का चित्त जिस प्रकार वाह्य सांसारिक भोग विलासादि विषयों में समासक्त रहता है यदि उसी प्रकार ब्रह्मा में अनुरक्त हो जाय तो ऐसा कौन है जो बन्धनों से मुक्त न हो जाय ।४०। ब्रह्मा के टूटे-फूटे वा अपूर्ण आयतन का जो मनुष्य जीर्णोद्धार करा देता है अथवा पूर्ण करा देता है तथा उसमें वाटिका एवं विश्रामस्थल आदि का निर्माण करा देता है वह भी मोक्ष का फल प्राप्त करता है।४१। ब्रह्मा के समान न

नास्ति ब्रह्मसमो देवो[1] नास्ति ब्रह्मसमो गुरुः । नास्ति ब्रह्मसमं ज्ञानं नास्ति वेधः समं तपः ॥४२
प्रतिपद्यादिसर्वेषु दिवसेषूत्सवेषु च । पर्वकालेषु[2] पुण्येषु पौर्णमास्यां विशेषतः ॥४३
शंखभेर्यादिनिर्घोषैर्महद्भिर्गेयसंयुतैः । कुर्यान्नीराजनं देवे सुरज्येष्ठे[3] चतुर्मुखे ॥४४
यावत्पर्वाणि विधिना कुर्यान्नीराजनं नृप । तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥४५
स्नानकाले त्रिसंध्यं तु यः कुर्यान्नृत्यवादनम् । गीतं वा मुखवाद्यं वा तस्य पुण्य फलं शृणु ॥४६
यावन्त्यहानि कुरुते गेयनृत्यादिवादनम् । तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥४७
कपिलापञ्चगव्येन कुशवारियुतेन च । स्नापयेन्मंत्रपूतेन ब्राह्मं स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥४८
कपिलापञ्चगव्येन दधिक्षीरघृतेन च । स्नानं[4] शतगुणं ज्ञेयमितरेषां नराधिप ॥४९
देवाग्निकार्यमुद्दिश्य कपिलामाहरेत्सदा । ब्रह्मक्षत्रविशश्चैव न शूद्रस्तु कदाचन ॥५०
कापिलं यः पिबेच्छूद्रो देवकार्यार्थनिर्मितम् । स पच्येत महाघोरे सुचिरं नरकार्णवे ॥५१
वर्षकोटिसहस्रैस्तु[5] यत्पापं समुपार्जितम् । सुरज्येष्ठघृताभ्यंगाद्दहेत्सर्वं न संशयः ॥५२
कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम् । पितामहघृतस्नानं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥५३
घृतस्नानं प्रतिपदि सकृत्कृत्वा तु काञ्जजम् । कुलैकविंशमुत्तार्य विष्णुलोके महीयते ॥५४

तो कोई देव है न कोई गुरु है न कोई ज्ञान है न कोई तप है ।४२। प्रतिपदा आदि सभी तिथियों में सभी दिनों में उत्सव के दिन में पर्व के दिन में अथवा किसी भी पुण्य अवसर पर विशेष तथा पूर्णिमा तिथि को शंख भेरी आदि के मांगलिक शब्दों के बीच में सुमधुर संगीत एवं महान् समारोह कराते हुए सुरज्येष्ठ चतुर्मुख देव का नीराजन करना चाहिये ।४३-४४। हे राजन् ! मनुष्य इस प्रकार जितने पर्वों में विधिपूर्वक नीराजन करता है उतने सहस्र युगों तक ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।४५। स्नान के समय तीनों सन्ध्याओं में जो मनुष्य ब्रह्मा के मन्दिर में नृत्य एवं वाद्य का समारोह रचता है गीत गाता है अथवा केवल मुख का वाद्य बजाता है उसका पुण्य फल सुनो ।४६। जितने दिनों तक वह गायन नृत्य तथा वाद्य का समारोह करता है उतने ही सहस्र युगों तक ब्रह्म लोक में पूजित होता है ।४७। कपिला गौ के पञ्च गव्य तथा कुशमिश्रित जल से जो मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित कर स्नान किया जाता है उसे ब्रह्म स्नान कहा जाता है ।४८। हे नराधिप ! इससे शतगुना अधिक पुण्य कपिला के पञ्चगव्य तथा दही, क्षीर और घृत से स्नान कराने की पुण्यपथ की अपेक्षा शत गुना अधिक है ।४९। देवता तथा अग्नि कार्य के उद्देश्य से ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य को सर्वदा कपिला गौ का ही आहरण (प्रयोग) करना चाहिये । शूद्र को कपिला का आहरण कभी नहीं करना चाहिये ।५०। देव कार्यों के लिए विहित कपिला गौ के दूध को जो शूद्र पीता है वह महाघोर नरक समुद्र में चिरकाल तक सन्तप्त होता है ।५१। सहस्रकोटि वर्षों में मनुष्यों द्वारा जो पाप कर्म किये हुए रहते हैं वे सब सुरज्येष्ठ ब्रह्मा को घृत स्नान कराने से निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं ।५२। यहीं नहीं सहस्रों कोटि कल्पों में जो पाप किये गये रहते हैं उन्हें भी पितामह का घृत स्नान इस प्रकार जला देता है जिस प्रकार अग्नि इन्धन को ।५३। प्रतिपदा तिथि को पंकजोद्भव ब्रह्मा जी को केवल एक बार घृत द्वारा स्नान कराने से मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार कर विष्णुलोक में

---

१. लोके । २. सर्वकालेषु । ३. भक्तिपूर्वम् । ४. दशगुणम् । ५. सहस्रे तु ।

अयुतं यो गवां दद्याद्भक्त्या[1] वै वेदपारगे । वस्त्रहेमादियुक्तानां क्षीरस्नानेन यत्फलम् ।।५५
सकृदाज्येन पयसा विरिञ्चिं स्नपयेत्तु यः । गाङ्गेयेन स यानेन याति ब्रह्मसलोकताम् ।।५६
स्नाप्य दध्ना सकृद्वीर कञ्जजं विष्णुमाप्नुयात् । मधुना स्नापयित्वा तु वीरलोके महीयते ।।५७
स्नानभिक्षुरसेनेह यो विरिञ्चेः समाचरेत् । स याति लोकं सवितुस्तेजसा भासयन्नभः ।।५८
शुद्धोदकेन[2] यो भक्त्या स्नपयेत्पद्मसंभवम् । उत्सृज्य पापकलिलं स यात्येव सलोकताम् ।।५९
वस्त्रपूतेन तोयेन स्नपयेद्यः सकृद्विभुम् । स सर्वकालं तृप्तात्मा लोकवश्यत्वमाप्नुयात् ।।६०
सर्वौषधीभिर्यो भक्त्या स्नपयेत्पद्मसंभवम् । काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ।।६१
गन्धचन्दनतोयेन स्नपयेद्योम्बुजोद्भवम् । रुद्रलोकमवाप्नोति तेजसा हेमसन्निभः ।।६२
पाटलोत्पलपद्मानि करवीराणि सर्वदा । स्नानकाले प्रयोज्यानि स्थिराणि सुरभीणि च ।।६३
एषामेकतमं स्नानं भक्त्या कृत्वा तु वेधसि । विधूय पापकलिलं विधिलोके[3] महीयते ।।६४
कर्पूरागरुतोयेन स्नपयेद्यस्तु[4] कञ्जजम् । सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोके महीयते ।।६५
गायत्रीशतजप्तेन विमलेनाम्भसा विभुम् । स्नपयित्वा सकृद्भक्त्या ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।।६६

पूजनीय होता है ।५४। दस सहस्र वस्त्र सुवर्णादि से अलंकृत गौएँ भक्तिपूर्वक वेदज्ञ ब्राह्मणों को प्रदान करने से मनुष्य जो पुण्य प्राप्त करता है और (ब्रह्म को) क्षीर स्नान कराने से प्राप्त होता है ।५५। जो मनुष्य घृत एवं क्षीर द्वारा ब्रह्मा को केवल एकबार स्नान कराता है वह गांगेय यान द्वारा ब्रह्म लोक को प्राप्त करता है ।५६। हे वीर ! पंकजोद्भव ब्रह्मा जी को केवल एक बार दही द्वारा स्नान कराने से विष्णु को प्राप्त करता है और मधु द्वारा स्नान कराकर वीरलोक में भूषित होता है ।५७। जो ईख के रस द्वारा ब्रह्मा को स्नान कराता है वह अपने देदीप्यमान तेज से आकाशमण्डल को भासित करते हुए सूर्य के लोक को प्राप्त करता है ।५८। इसी प्रकार केवल शुद्ध जल से जो मनुष्य पंकजोद्भव ब्रह्मा जी को भक्तिपूर्वक स्नान कराता है वह पापपंक से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को अवश्य प्राप्त करता है ।५९। जो वस्त्र द्वारा शुद्ध किये गये जल से परमैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा को स्नान कराता है वह सर्वदा सन्तुष्टि लाभ करते हुए लोक को वश में करने की क्षमता प्राप्त करता है ।६०। सम्पूर्ण औषधियों द्वारा जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पद्मयोनि ब्रह्मा को स्नान कराता है वह सुवर्णमय विमान द्वारा ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।६१। **सुगन्धित द्रव्य एवं चन्दन के तैल द्वारा जो पद्मज ब्रह्मा को भक्तिपूर्वक स्नान कराता है वह अपनी सुवर्ण के समान निर्मल कान्ति से शोभा सम्पन्न होकर रुद्रलोक को प्राप्त करता है ।६२। ब्रह्मा के स्नान के अवसर पर कमल, पद्म, करवीर आदि स्थिर सुगन्धि वाले पुष्पों का सर्वदा प्रयोग करना चाहिये । ब्रह्मदेव के समक्ष उपर्युक्त सामग्रियों को रखकर जो मनुष्य इनमें से किसी एक स्नान को कराता है तो वह अपने सम्पूर्ण पाप पंकों से छुटकारा प्राप्त कर ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।६३-६४। जो मनुष्य कपूर अथवा अगर मिश्रित जल द्वारा पंकजोद्भव को स्नान करता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त एवं विशुद्धात्मा होकर ब्रह्म लोक में पूजित होता है।६५। सौ बार गायत्री मंत्र से विमल जल द्वारा सर्वैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा को भक्ति पूर्वक एक बार स्नान कराने से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।६६। विभु ब्रह्मा को सर्वप्रथम शीतल जल से**

---

१. विप्रे । २. फलोदकेन । ३. विधुलोकमवाप्नुयात् । ४. पूजयेत् ।

विभु शीताम्बुना स्नाप्य धारोष्णपयसा ततः । ततः पश्चाद् घृतस्नानं कृत्वा पापैर्विमुच्यते ॥६७
एतत्स्नानत्रयं कृत्वा पूजयित्वा तु भक्तितः । अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥६८
मृत्कुम्भैस्ताम्रजैः कुम्भैः स्नानं शतगुणं[1] भवेत् । रौप्ये लक्षोत्तरं प्रोक्तं हैमैः कोटिगुणं भवेत् ॥६९
ब्रह्मणो दर्शनं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं परम् । स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नातमतः परम् ॥७०
वाचिकं मानसं पापं घृतस्नानेन देहिनाम् । क्षिणुते पद्मजो यस्मात्तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥७१
स्नपयित्वार्चयेद्भक्त्या यथा तच्छृणु भारत । शुचिवस्त्रधरः स्नातः कृतन्यासश्च भारत ॥७२
चतुर्हस्तं लिखेत्पद्मं चतुर्भागविभागितम् । मध्ये तस्य लिखेच्चक्रं दलैर्द्वादशभिश्चितम् ॥७३
सरोजानि ततोऽन्यस्य अक्षराणि समन्ततः । अक्षरं विहितं चान्यत्पत्रभागे प्रकीर्तितम् ॥७४
नानावर्णकसंयोगाल्लिखेच्चैवानुपूर्वशः । कृष्णोत्कटं तु मध्यं स्यात्पीतरक्तं तथा परम् ॥७५
सितं शुद्धं तु कर्तव्यं मध्यभागे तु वर्तुलम् । प्रभाकुण्डलकैर्बाह्यैर्वेष्टयेच्चक्रनायकम् ॥७६
एवमालिख्य यत्नेन मूलमन्त्रं ततो न्यसेत् । मूर्ध्नः पादतलं यावत्प्रणवं विन्यसेद्बुधः ॥७७
नादरूपं न्यसेत्तावद्यावच्छब्दस्य शून्यता । तत्कारं[2] विन्यसेन्मूर्ध्नि सकारं मुखमण्डले ॥७८

फिर धारोष्ण दुग्ध से तदनन्तर घृत से स्नान कराने वाला सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है ।६७। उन उर्पयुक्त तीनों स्नानों को कराकर फिर भक्तिपूर्वक पूजा करके मनुष्य सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।६८। मिट्टी के कुंभों से अथवा ताम्र के कुम्भों से स्नान कराने पर शतगुना अधिक पुण्यफल प्राप्त होता है । चाँदी के कुम्भ से लक्षगुणित तथा सुवर्ण के कुम्भ से कोटिगुणित फल प्राप्त होता है ।६९। भगवान् ब्रह्मा का यों तो दर्शन ही परमपुण्यप्रद है किन्तु दर्शन से अधिक पुण्य स्पर्श करने का है । उस स्पर्श से भी अधिक पुण्य पूजन करने का है और उससे भी अधिक पुण्यप्रद घृत-स्नान कहा गया है ।७०। शरीरधारियों के वाचिक एवं मानसिक पापों को भगवान् पद्मसम्भव घृत स्नान से नष्ट कर देते हैं इसीलिए लोग उनके स्नान की महत्ता बतलाते हैं ।७१। हे भरतवंशी ! विधिपूर्वक स्नान करने के बाद जिस प्रकार ब्रह्मा की भक्तिपूर्वक पूजा की जाती है उसे बतला रहा हूँ, सुनिये । भरतकुलोत्पन्न सर्वप्रथम स्नानकर पवित्र वस्त्र धारण कर न्यास कर चार हाथ प्रमाण में कमल का निर्माण करे, जो चार भागों में विभक्त हो । उसे कमल के मध्य भाग में बारह दलों से संयुक्त एक चक्र का विन्यास करे ।७२-७३। और उसके चारों ओर निम्नलिखित सरोज नामक अक्षरों की रचना करे । पत्र भाग में जिन अक्षरों का विन्यास करना चाहिये वे ये कहे गये हैं ।७४। उन्हें क्रमपूर्वक विविध प्रकार के रंगों द्वारा लिखना चाहिए उनमें से जो बहुत काले रंग हों उनका प्रयोग मध्य भाग में होना चाहिये । पीले तथा लाल रंग का प्रयोग उस मध्य भाग के पश्चात् करना चाहिये ।७५। मध्य भाग में वर्तुलाकार श्वेत शुभ्र रंग का प्रयोग करना चाहिए । बाहर से प्रभावान कुण्डलों से उस चक्र को अच्छी तरह आवेष्टित कर देना चाहिए ।७६। इस प्रकार यत्नपूर्वक उक्त चक्र का चित्र अंकित कर मूल मंत्र का न्यास करना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुषमस्तक से लेकर पादतल तक प्रणवाक्षरों का विन्यास करे।७७। तब तक नाद रूप वर्णों का न्यास करे जब तक शब्दों की शून्यता हो, मस्तक भाग में 'तत' का न्यास करे। सकार का न्यास मुखमण्डल पर

---

१. दशगुणम् । २. इत आरम्य गायत्रीप्रत्येकार्णन्यासः प्रोच्यते ।

विकारं कण्ठदेशे तु तुकारं सर्वसंधिषु[1] । वकारं हृदि मध्ये तु रेकारं पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७९
णकारं दक्षिणे कुक्षौ यकारं वामसंज्ञके । भकारं कटिनाभिस्थं र्गोकारं जानुपर्वसु ॥८०
देकारं जंघयोर्न्यस्य वकारं पादपद्मयोः । स्यकारमङ्गुष्ठयोर्न्यस्य धीकारं चोरसि न्यसेत् ॥८१
मकारं जानुदेशे तु हिकारं गुह्यमाश्रितम् । धिकारं हृदये न्यस्य योकारं चौष्ठयोर्न्यसेत् ॥८२
नकारं नासिकाग्रे तु प्रकारं नेत्रमाश्रितम् । चोकारं तु भ्रुवोर्मध्ये दकारं प्राणमाश्रितम् ॥८३
याकारं विन्यसेन्मूर्ध्नि तकारं केशमाश्रितम् । न्यासं कृत्वात्मनो देहे देवे कुर्यात्तथा नृप ॥
सर्वोपचारसम्पन्नं कृत्वा सम्यङ् निरीक्षयेत् ॥८४
कुंकुमागुरुकर्पूरचन्दनेन विमिश्रितम् । गन्धतोयमुपस्कृत्य गायत्र्या प्रणवेन च ॥
प्रोक्षयेत्सर्वद्रव्याणि पश्चादर्चनमाचरेत् ॥८५
चक्रग्रन्थिषु सर्वासु प्रणवं विनिवेशयेत्[2] । भूयः प्लुतं समुच्चार्य प्रणवं सर्वतोमुखम् ॥८६
विन्यसेत्पद्ममध्ये तु पीठनिष्पत्तिहेतवे । आसने पृथिवी ज्ञेया सर्वसत्त्वधरा मता ॥८७
ह्रस्वोङ्कारे मता सा तु दीर्घोङ्कारे तु देवराट् । प्लुतस्तु व्यापयेद्भावं मोक्षदं चामृतात्मकम् ॥८८

करे ।७८। कण्ठ प्रदेश में 'वि' का न्यास किया जाता है । सर्वसन्धि प्रदेशों अथवा अंग सन्धि प्रदेशों में 'तु' कार का न्यास करना चाहिये । हृदय के मध्य में 'व' कार का न्यास किया जाता है । दोनों पाश्र्वप्रदेशों में 'रे' कार का न्यास करना चाहिये ।७९। दाहिनी कुक्षि में 'ण' कार का न्यास होता है । इसी प्रकार वाम कुक्षि में 'य' कार का न्यास करके कटि एवं नाभि प्रदेश में 'भ' कार का न्यास करना चाहिए । दोनों घुटनों के पोरों पर 'र्गो' कार का न्यास करना चाहिये ।८०। इसी प्रकार दोनों जंघाओ में 'दकार' का न्यास कर दोनों चरण कमलों में 'व' कार का न्यास किया जाना चाहिए । दोनों अँगूठों में 'स्या' कार का न्यास कर वक्षस्थल में 'धी' आदि का न्यास करना चाहिए ।८१। जानु प्रदेश में 'म' कार का न्यास कर गुह्य प्रदेश में 'हि' कार का न्यास करना चाहिये । इसी प्रकार हृदय में 'धि' कार का न्यास कर दोनों ओठों पर 'यो' कार का न्यास करना चाहिए ।८२। नासिका के अग्रभाग में 'न' कार का न्यास कर नेत्रों में 'प्र' कार का न्यास करना चाहिए । दोनों भौहों के मध्य भाग में 'च' कार का न्यास कर प्राण स्थान पर दकार का न्यास करना चाहिए ।८३। पुनः मूर्धाभाग में 'या' कार का न्यास कर केशों में 'त' कार का न्यास करना चाहिए । हे राजन् ! इस प्रकार अपने शरीर में न्यास कर देव के शरीर में भी उक्त न्यास करना चाहिए और तदुपरान्त समस्त प्रसाधनों से भलीभाँति सुशोभित कर निरीक्षण करना चाहिए ।८४। कुंकुम, अगर, कपूर तथा चंदन से विमिश्रित सुगन्धित जल से प्रणव सहित गायत्री मंत्र का उच्चारण कर समस्त द्रव्यों का प्रोक्षण (अभिषेचन) करना चाहिए । तदनन्तर पूजा करनी चाहिए ।८५। लिखित चक्र की सब ग्रन्थियों में प्रणव का न्यास करना चाहिये । फिर प्लुत (त्रिमात्रिक आयास एवं समय में) स्वर में उच्चारण कर सर्वतोमुखी प्रणव का पद्म के मध्य भाग में पीठ सिद्धि के लिए न्यास करना चाहिये आसन के रूप में पृथ्वी को भी जानना चाहिए । जो समस्त जीवों को धारण करने वाली मानी गयी है ।८६-८७। पृथ्वी को ह्रस्व ओंकार में माना गया है, दीर्घ ओंकार में देवराज इन्द्र की सत्ता मानी गयी है । प्लुत ओंकार तो मोक्षप्रद अमृतात्मक भावों में

---

१. चांगसंधिषु । २. विनिवेदयेत् ।

यत्नस्थो न निवर्तेत योगी प्राणपरायणः । आवाहनं ततः कुर्यादक्षरेण परेण[1] तु ॥८९
आवाह्य तेजोरूपं तु न्यसेन्मन्त्रवरांस्ततः । ततो विभावयेद्देवं पद्मस्थं चतुराननम् ॥९०
स्रष्टारं सर्वजगतां विष्णुरुद्रविधानगम् । संभाव्य विधिवद्भक्त्या पश्चाच्चार्चनमाचरेत् ॥९१
गन्धपुष्पादिसंभारान्क्रमात्सर्वान्प्रकल्पयेत् । गायत्रीमुच्चरन्मन्त्रं सर्वकर्माणि कारयेत् ॥९२
पुष्पं धूपं तथा दीपं नैवेद्यं सुमनोहरम् । खंडलड्डुकश्रीवेष्टकासाराशोकवर्तिकाः ॥९३
स्वस्तिकोल्लोपिकादुग्धतिलावेष्टतिलाढिकाः । फलानि चैव पक्वानि लग्नखण्डगुडानि च ॥९४
अन्यांश्च विविधान्दद्यात्पूपानि विविधानि च । एवमादीनि सर्वाणि दापयेच्छक्तितो नृप ॥९५
मूलमन्त्रेण देवस्य ततो देहं विभावयेत् । पूजयेच्चापि विधिना येन तं ते ब्रवीम्यहम् ॥९६
प्राणायामत्रयं कृत्वा देहसंशोधनाय वै । आवाहयेत्ततोऽनन्तं धारयन्तं वचः सदा ॥९७
ध्यात्वानन्तं ततो रुद्रं पद्मकिंजल्कमध्यगम् । ध्यायेद्विष्णुं ततो देवं न्यसेत्पद्मोदरोद्भवम् ॥९८
एवं त्रिदेवता रूढं पद्ममध्येऽम्बुजोद्भवम् । पूजयेन्मूलमन्त्रेण पद्मोदरभवं नृप ॥९९
ऋग्वेदं तु यजुर्वेदं सामवेदं च पूजयेत् । ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यं धर्मं संपूजयेद्बुधः ॥१००

व्याप्त माना गया है ।८८। प्राणवायु को वश में करने वाले योगी को यत्न पूर्वक साधनों में निरत रहकर निवृत्त न होना चाहिए। तदनन्तर परम अक्षर का उच्चारण करते हुए देव का आवाहन करना चाहिए ।८९। इस प्रकार तेजोरूप देव का आवाहन करने के उपरान्त श्रेष्ठ मंत्रों का न्यास करना चाहिए। तदनन्तर पद्मदल पर अवस्थित उन भगवान् चतुरानन का ध्यान करे ।९०। जो सम्पूर्ण चराचर जगत् के स्रष्टा एवं विष्णु तथा रुद्र के विधान को अतिक्रान्त करने वाले हैं। इस प्रकार भक्ति के साथ विधिपूर्वक भगवान् को संभावित करने के बाद उनकी पूजा करनी चाहिए ।९१। सुगन्धित द्रव्य पुष्पमाला आदि समस्त पूजा की सामग्रियों को क्रमशः एकत्रित करके ब्रह्मदेव की पूजा करनी चाहिए। उस समय सभी कार्य का आरम्भ मंत्र का उच्चारण करते हुए करना चाहिए।९२। पूजा के द्रव्य मुख्यतया ये हैं। पुष्प, धूप, दीप, मनोहारि नैवेद्य श्रीखण्ड, लड्डू, श्री वेष्टकासार, अशोकवर्तिका, स्वस्तिकोल्लोपिका (?) दुग्ध, तिल मिश्रित मिष्ठान्न, पके हुए विविध फल, खाँड और गुड से बने हुए विविध पदार्थ। इनके अतिरिक्त अन्यान्य विविध प्रकार के फलों का दान करना चाहिए। विविध प्रकार के बने हुए पूए भी हों। हे राजन् ! अपनी शक्ति भर सभी पदार्थों का दान करना चाहिए ।९३-९५। तदनन्तर मूल मंत्र से देव के शरीर का विधिवत् ध्यान करना चाहिए। उस समय जिस विधि से पूजा की जानी चाहिए उसे मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ।९६। शरीर शुद्धि के लिए तीन बार प्राणायाम करके सर्वदा वेदों को धारण करने वाले अनन्त देव का ध्यान करना चाहिए ।९७। अनन्त का ध्यान करने के अनन्तर पद्म के केशर में प्रतिष्ठित रुद्र का ध्यान करना चाहिए तत्पश्चात् भगवान विष्णु का ध्यान कर ब्रह्म देव का न्यास करना चाहिए ।९८। इस प्रकार तीनों देवों से आरूढ़ पंकज के मध्य भाग में प्रतिष्ठित ब्रह्मा की मूलमंत्र द्वारा पूजा करनी चाहिए ।९९। हे राजन् ! तदनन्तर ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य एवं धर्म का पूजन करके ऋग्वेद यजुर्वेद एवं सामवेद की पूजा बुद्धिमान पुरुष को करनी चाहिए ।१००।

---

१. परन्तप—

ईशानादिक्रमाद्राजन्विदिशासु समन्ततः[1] । शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च ।।१०१
ज्योतिषं च महाबाहो उपवेदाश्च कृत्स्नशः । इतिहासपुराणानि यथायोग्यं यथाक्रमम् ।।१०२
शिक्षा कल्पो व्याकरणं देवस्य पुरतः सदा । कल्पादयस्ततश्चान्ये दिशासु विदिशासु च ।।१०३
महाव्याहृतयः सर्वाः प्रणवेन समन्विताः । पूर्वादिक्रमयोगेन पूजयेद्विधिना नृप ।।१०४
शक्तयो ब्रह्मणस्त्वेता लोकरूपा व्यवस्थिताः । पूजनीयाः प्रयत्नेन मन्त्ररूपाः स्थिताः स्वयम् ।।१०५
अरकान्तरसंस्थांश्च[2] षट् समुद्रान्समर्चयेत् । नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव राशयश्च[3] विशेषतः ।।
पूज्याः सर्वे यथान्यायं सुराग्रेषु व्यवस्थिताः ।।१०६
नागाश्च गरुडश्चैव पूजनीयस्तथाग्रतः । देवता ऋषयश्चैव सहिताः कुलपर्वताः ।।
तत्तेजोनिलयाः सर्वे पूजनीयाः प्रयत्नतः ।।१०७
आचम्य विधिवत्पूर्वं मन्त्रपूतेन वारिणा । हृदयादीन्न्यसेदङ्गान्हृदयादिषु कृत्स्नशः ।।१०८
शिखा नेत्रं तथा चर्म अस्त्रं[4] च भरतर्षभ । महेन्द्रादिदिशश्चैताः पूजयेद्विधिवन्नृप ।।१०९
हृदयं पुरतः पूज्यं शिरो देवस्य पृष्ठतः । पूर्वं संपूजयेद्देवं मूलमंत्रेण कृत्स्नशः ।।११०
विसर्जयेद्दर्शयित्वा मुद्रां तु भरतर्षभ । अङ्कुशं[5] नरशार्दूल ह्याह्वाने कंजमादिशेत् ।।१११

ईशान कोण से प्रारम्भ कर सभी दिशाओं एवं कोणों में सभी ओर शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष एवं अन्यान्य उपवेदों की एवं इतिहास पुराणादि की यथायोग्य क्रमशः पूजा करनी चाहिए।१०१-१०२। इन सबों में शिक्षा, कल्प एवं व्याकरण इन तीनों को देव के सम्मुख रखना चाहिए, अन्य कल्पादिकों को अन्यान्य दिशाओं एवं विदिशाओं में निर्दिष्ट करना चाहिए।१०३। हे राजन् ! प्रणव के साथ सम्पूर्ण महाव्याहृतियों की पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः पूजा करनी चाहिए।१०४। ये महाव्याहृतियाँ ब्रह्मा द्वारा व्यवस्थित लोक स्वरूपिणी शक्तियाँ हैं। उनको प्रयत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिए, वे मंत्र रूप में स्थित ब्रह्मा की मूर्तिमान शक्तियाँ हैं।१०५। उस चक्र के मध्य में न्यस्त अरों के अन्तर्भाग में प्रतिष्ठित छहों समुद्रों की भी विधिवत् पूजा करनी चाहिए। देवों के अग्र भाग में व्यवस्थित, नक्षत्रों, ग्रहों एवं विशेषतया राशियों की भी यथाविधि पूजा करनी चाहिए।१०६। उनके अग्रभाग में व्यवस्थित नागों की तथा गरुड़ की भी पूजा करनी चाहिए। जितने भी देवता एवं ऋषियों के समेत कुल पर्वत गण हैं वे सब भी उस (अनन्त) तेजोनिलय (निवास) स्वरूप हैं, अतः उनकी भी प्रयत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिए।१०७। मंत्र से पवित्र जल द्वारा विधि पूर्वक आचमन करके हृदय आदि समस्त अंगों का न्यास करना चाहिए।१०८। हे राजन् ! तदनन्तर सिर, नेत्र, चर्म तथा अस्त्र का न्यास कर पूर्व आदि दिशाओं की पूजा करनी चाहिए।१०९। देव के हृदय भाग की आगे से पूजा करनी चाहिए और शिरोभाग की पीछे से। मूल मंत्र द्वारा सम्पूर्ण अंगों में देव की पूजा करनी चाहिए।११०। भरतवंशियों में श्रेष्ठ ! तदनन्तर मुद्रा दिखला कर विसर्जन करना चाहिए। नरशार्दूल ! ब्रह्मा के आवाहन में अंकुश तथा कमल का आदेश किया गया है।१११। जो मनुष्य पूर्णिमा तिथि को उपवास रखकर सर्वदा

---

१. समाहितः। २. यन्त्रदलान्तवर्तिन इत्यर्थः। ३. ऋषयश्च। ४. अल्पभारं च भारत। ५. मुकुलम्।

यस्त्वेवं पूजयेद्देवं प्रतिपन्नित्यमेव च । उपोष्य पञ्चदश्यां तु स याति परमं[1] पदम् ।।११२

सुमन्तुरुवाच

आपो हिष्ठेति मंत्रोऽयं हृदयं परिकीर्तितम् । ऋतं सत्यं शिखा प्रोक्ता उदुत्यं नेत्रमादिशेत् ।।११३
चित्रं देवानां मस्तमिति सर्वलोकेषु विश्रुतम् । वर्मणा ते च्छादयामि कवचं समुदाहृतम् ।।११४
भूर्भुवः स्वरिति तथा शिरसे परिकीर्तितम् । गायत्रीमूलतन्त्रस्तु साधकः सर्वकर्मणाम् ।।११५
गायत्र्या पूजयेद्देवमोंकारेणाभिमंत्रितम् । प्रणवेनापरान्सर्वानृग्वेदादीन्प्रपूजयेत् ।।११६
आह्वाने पूजने वीर विसर्गे ब्रह्मणस्तथा । गायत्री परमो मंत्रो वेदमाता विभाविनी ।।११७
गायत्र्यक्षरतत्त्वैस्तु पूजयेद्यस्तु देवताम् । स गच्छेद्ब्रह्मणः स्थानं दुर्लभं यद्दुरासदम् ।।११८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्त्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि प्रतिपत्कल्पे ब्रह्मणोऽर्चनविधिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७।

अथाष्टादशोऽध्यायः

प्रतिपत्कल्पसमाप्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

पौर्णमास्युपवासं तु कृत्वा भक्त्या नराधिप । अनेन विधिना यस्तु विरिञ्चिं पूजयेन्नरः ।।१

प्रतिपदा तिथि को उक्त प्रकार से देव की पूजा करता है वह परम पद को प्राप्त करता है ।११२

सुमन्तु बोले— 'आपोहिष्ठा' यह मंत्र हृदय न्यास के लिए कहा गया है०, 'ऋतं च सत्यं च.......इत्यादि' मन्त्र शिखा के लिए प्रयुक्त है । 'उदुत्यं......इत्यादि' मंत्र नेत्र के लिए बतलाया गया है ।११३। 'चित्रं देवानाम्.....इत्यादि' मंत्र मस्तक के लिए सब लोकों में प्रसिद्ध माना गया है । 'वर्मणा तेच्छादयामि......इत्यादि मंत्र कवच के लिए बतलाया गया है ।११४। 'भूर्भुवः स्वः यह मंत्र सिर के लिए कहा गया है । गायत्री मंत्र सभी कर्मों में सिद्धि का प्रदाता कहा गया है ।११५। ॐकार से संयुक्त गायत्री मंत्र द्वारा ही देव की पूजा करनी चाहिए । अन्य ऋग्वेदादि को केवल प्रणव द्वारा पूजित करना चाहिए ।११६। हे वीर ! देव के आवाहन, पूजन एवं विसर्जन में सर्वत्र वेदमाता परम पुण्य प्रदायिनी गायत्री ही प्रमुख मानी गयी हैं ।११७। गायत्री के अक्षर तत्त्वों से जो मनुष्य देव की पूजा करता है, वह ब्रह्मा के उस श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है जो परम दुर्लभ एवं दुष्प्राप्य कहा जाता है ।११८

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में प्रतिपदा तिथि में ब्रह्मा की पूजन विधि का वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

प्रतिपदा कल्प की समाप्ति का वर्णन

सुमन्तु बोले—नराधिप ! जो मनुष्य उक्त विधि से भक्तिपूर्वक पूर्णिमा तिथि को उपवास रखकर

---

१. परमां गतिम् ।

प्रतिपद्यां महाबाहो स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् । ऋग्भिर्विशेषतो[1] देवी विरिञ्चेर्वास्तुदेवताः ॥२
कार्त्तिके मासि देवस्य रथयात्रा प्रकीर्तिता । यां कृत्वा मानवो भक्त्या याति ब्रह्मसलोकताम् ॥३
कार्तिके मासि राजेन्द्र पौर्णमास्यां चतुर्मुखम् । मार्गेण चर्मणा सार्धं सावित्र्या च परन्तप ॥४
भ्रामयेन्नगरं सर्वं नानावाद्यैः समन्वितम् । स्थापयेद्भ्रामयित्वा तु सलोकं नगरं नृप ॥५
ब्राह्मणं भोजयित्वाग्रे शांडिलेयं प्रपूज्य च । आरोपयेद्रथे देवं पुण्यवादित्रनिस्वनैः ॥६
रथाग्रे शांडिलीपुत्रं पूजयित्वा विधानतः । ब्राह्मणान्वाचयित्वा च कृत्वा पुण्याहमंगलम् ॥७
देवमारोपयित्वा तु रथे कुर्यात्प्रजागरम् । नानाविधैः प्रेक्षणकैर्ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः ॥८
कृत्वा प्रजागरं ह्येवं प्रभाते ब्राह्मणं नृप । भोजयित्वा यथाशक्त्या भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ॥९
पूजयित्वा जनं[2] वीर वस्त्रेण विधिवन्नृप । बीजेन च महाबाहो पयसा पायसेन च ॥१०
ब्राह्मणान्वाचयित्वा च च्छांदेन विधिना नृप । कृत्वा पुण्याहशब्दं च रथं च भ्रामयेत्पुरे ॥११
चतुर्वेदविदैर्विप्रैर्भ्रामयेद्ब्रह्मणो रथम् । बह्वृचाथर्वगोच्चारैश्छन्दो गाध्वर्युभिस्तथा ॥१२
भ्रामयेद्देवदेवस्य सुरज्येष्ठस्य तं रथम् । प्रदक्षिणं पुरं सर्वं मार्गेण सुसमेन तु ॥१३
न वोढव्यो रथो वीर शूद्रेण शुभमिच्छता । नारुहेत रथं प्राज्ञो मुक्त्वैकं भोजकं नृप ॥१४

प्रतिपदा तिथि को ब्रह्मा की पूजा करता है, हे महाबाहु ! वह ब्रह्मपद को प्राप्त करता है ।१। ऋचाओं द्वारा विरञ्चि की देवी की पूजाकरनी चाहिए जो उनकी वास्तु देवता मानी गई हैं ।२। कार्तिक मास में देव की रथयात्रा की प्रशंसा की गई है । जिसको सविधि सम्पन्न करने वाला भक्तिमान् पुरुष ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करता है ।३। हे राजेन्द्र ! कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को सावित्री के साथ मृगचर्म पर भगवान् ब्रह्मा को स्थापित कर अनेक प्रकार के वाद्यों के साथ-साथ रथ को नगर में सर्वत्र घुमावें । हे राजन् ! इस तरह नगर में सर्वत्र घुमा लेने के बाद रथ को एक स्थल पर स्थापित कर दे ।४-५। आगे शाण्डिलेय ब्राह्मण को विधिवत् पूजित कर भोजन करवाये । तदनन्तर उस शाण्डिली पुत्र ब्राह्मण को विधिपूर्वक पूजित कर रथ के अग्रभाग में बैठावे । उसके पूर्व ही पुण्यप्रद वाद्य एवं गीतादि के साथ देव को रथ पर स्थापित करे ।६। रथ के अग्रभाग में विधानपूर्वक उस शाण्डिलीपुत्र की पूजा कर फिर ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन के उपरान्त देव को रथ पर आरोपित (प्रतिष्ठित) करते हुए रात भर जागरण करे । उस रात्रि को अनेक प्रकार के ब्रह्म घोष (वेदध्वनि) एवं मांगलिक समारोहों के बीच में जागरण करते हुए वह रात व्यतीत करे । राजन् ! फिर प्रातःकाल होने पर ब्राह्मण को पूजित कर अपनी शक्तिभर भोजनादि करा कर सन्तुष्ट करे ।७-९। हे नृप ! हे वीर ! तदनन्तर उस ब्राह्मण को वस्त्र द्वारा पूजित कर बीज दुग्ध एवं दुग्ध से बने हुए अन्यान्य भक्ष्य भोज्य पदार्थों द्वारा सन्तुष्ट करे ।१०। हे नृप ! फिर ब्राह्मणों द्वारा वेदविहित विधि से मन्त्रोच्चारण तथा पुण्याहवाचन कराकर रथ को पुर भर में घुमावें ।११। चारों वेदों के पारगामी पण्डित ब्राह्मणों द्वारा ब्रह्मा के रथ को घुमवाना चाहिये । उनमें बह्वृच, आथर्वण, छन्दोग एवं अध्वर्यु सभी होने चाहिये ।१२। ऐसे उच्चकोटि के पण्डित व वेद ब्राह्मणों द्वारा सुरश्रेष्ठ के उक्त रथ से सुन्दर समतल मार्ग द्वारा समस्त नगर की प्रदक्षिणा करानी चाहिये ।१३। हे वीर ! कल्याण कामी जन को शूद्र द्वारा देवश्रेष्ठ का उक्त रथ नहीं वहन करवाना चाहिये । हे नृप ! इसी प्रकार उक्त भोजक ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी दूसरे को रथ पर

---

१. अग्निः । २. तु तं वीरं वस्त्रेण विधिवन्नृप ।

ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे सावित्रीं स्थापयेन्नृप । भोजको वामपार्श्वेतु पुरतः कञ्जजं न्यसेत् ॥१५
एवं तूर्यनिनादैस्तु शंखशब्दैश्च पुष्कलैः । भ्रामयित्वा रथं राजन्पुरं सर्वं प्रदक्षिणम् ॥
स्वस्थाने स्थापयेद् भूयः कृत्वा नीराजनं बुधः ॥१६
य एवं कुरुते यात्रां भक्त्या यश्चापि पश्यति । रथं चाकर्षते यस्तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१७
कार्तिके मास्यमावास्यां यस्तु दीपप्रदीपनम् । शालायां ब्रह्मणः कुर्यात्स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१८
प्रतिपदि ब्राह्मणांश्चापि गुडमिश्रैः प्रदीपकैः । वासोभिरहतैश्चापि स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१९
गंधपुष्पैर्नवैर्वस्त्रैरात्मानं[1] पूजयेच्च यः । तस्यां प्रतिपदायां तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥२०
महापुण्या तिथिरियं बलिराज्यप्रवर्तिनी । ब्रह्मणः सुप्रिया नित्यं बालेया परिकीर्तिता ॥२१
ब्राह्मणान्पूजयित्वास्यामात्मानं च विशेषतः । स याति परमं स्थानं विष्णोरमिततेजसः ॥२२
चैत्रे मासि महाबाहो पुण्या प्रतिपदा परा । तस्यां यः श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तम ॥२३
न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो नृप । भवन्ति कुरुशार्दूल तस्मात्स्नानं प्रवर्तयेत् ॥२४
दिव्यं नीराजनं तद्धि सर्वरोगविनाशनम् । गोमहिष्यादि यत्किंचित्तत्सर्वं भूषयेन्नृप ॥२५

बैठाना भी नहीं चाहिये ।१४। हे राजन् ! भगवान् ब्रह्मा के दाहिने पार्श्व में सावित्री को स्थापित करना चाहिये । भोजक ब्राह्मण को वाम पार्श्व में रखना चाहिये । सम्मुख भाग में पद्मोद्भव को स्थापित करना चाहिये ।१५। तुरुही आदि सुन्दर वाद्यों की एवं शंखों की तुमुल कराते हुए रथ को पुट की प्रदक्षिणा क्रम से घुमाते हुए अपने स्थान पर लाकर पुनः स्थापित कर देना चाहिये ।१६। जो मनुष्य इस प्रकार की रथयात्रा सम्पन्न कराता है तथा ऐसा रथयात्रा के उत्सव समारोह को भक्तिपूर्वक देखता है जो उक्त रथ को खींचता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है ।१७। कार्तिक मास की अमावास्या तिथि को जो मनुष्य ब्रह्मा के आयतन में दीपदान करता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है ।१८। इसी प्रकार कार्तिक मास से प्रतिपदा तिथि को दीपकों के साथ-साथ गुड़ मिश्रित अन्न एवं नूतन वस्त्रों द्वारा जो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता है वह ब्रह्मपद की प्राप्ति करता है ।१९। उसी प्रतिपदा तिथि को गन्ध पुष्प एवं नवीन वस्त्रों द्वारा अपने को जो मनुष्य पूजित करता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है ।२०। यह प्रतिपदा तिथि महान् पुण्यप्रदा तथा बलि को राज्य प्रदान करने वाली है यह ब्रह्मा की परम प्रिय है इसकी बाले-या (बलिराज्यदायिनी) प्रतिपदा के नाम से ख्यात है ।२१। जो मनुष्य इस परम पुण्यप्रदायिनी तिथि को ब्राह्मणों को विशेष रूप से पूजित कर अपना पूजन भी करता है वह परम तेजस्वी भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करता है ।२२। हे महाबाहु राजन् ! चैत्र मास की परम श्रेष्ठ प्रतिपदा तिथि भी परम पुण्यप्रदायिनी मानी गई है, उस पुण्य तिथि को जो चाण्डाल का स्पर्श कर स्नान मात्र कर लेता है उसे कोई पाप नहीं लगता न कोई आधि-व्याधि ही होती है । हे कुरुशार्दूल ! अतः उक्त तिथि को स्नान अवश्य करना चाहिये ।२३-२४। वह परम दिव्य भाजन है, जो समस्त रोगों का विनाश करने वाला है । हे राजन् ! उक्त पुण्य तिथि को यजमान को चाहिये कि जो भी गौ-भैंस आदि पशु उसके पास हों तेल तथा

---

१. भ्र नैवेद्यैः ।

तैलशस्त्रादिभिर्वस्त्रैस्तोरणाधस्ततो नयेत् । ब्राह्मणानां तथा भोज्यं कुर्यात्कुरुकुलोद्वह ॥२६
तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन । कार्तिकेऽश्वयुजे मासि चैत्रे मासे च भारत ॥२७
स्नानं दानं शतगुणं कार्तिके या तिथिर्नृप ! बलिराज्याप्तिसुखदापांशुलाशुभनाशिनी ॥२८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि प्रतिपत्कल्पसमाप्तिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

शर्यात्याख्याने पुष्पद्वितीया वर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

द्वितीयायां तु राजेन्द्र अश्विनौ सोमपीतिनौ । च्यवनेन कृतौ यज्ञे मिषतो मघवस्य[१] च ॥१

शतानीक उवाच

कथमिन्द्रस्य मिषतः कृतौ तौ सोमपीतिनौ । च्यवनेन हि देवानां पश्यतां तद्वदस्व मे ॥२
अहो महत्तपस्तस्य च्यवनस्य महात्मनः । यदिन्द्रस्य बलादेव देवत्वं प्रापितावुभौ ॥३

शस्त्र तथा वस्त्रादि से भली भाँति विभूषित करे फिर उन्हें तोरण के नीचे से निकाले । हे कुरुकुलोत्पन्न ! उस अवसर पर ब्राह्मणों को विधिवत् भोजन कराना चाहिए ।२५-२६। हे कुरुनन्दन ! ये उपर्युक्त तीन आश्विन कार्तिक एवं चैत्र की प्रतिपदा तिथियाँ सब में परम श्रेष्ठ मानी गई हैं किन्तु हे भारत ! इनमें से कार्तिक की जो तिथि है वह स्नान तथा दान में सौ गुनी अधिक फल देने वाली है । वह परम पुण्यदायिनी कार्तिक की प्रतिपदा बलि को राज्य प्राप्त कराने वाली सुखदायिनी पशु कल्याणकारिणी तथा अशुभ विनाशिनी है ।२७-२८।

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्म पर्व में प्रतिपदा कल्प समाप्ति वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अध्याय १९

शर्याति के आख्यान में पुष्पद्वितीया का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे राजेन्द्र ! द्वितीया तिथि को देवराज इन्द्र को ही धोखा देकर च्यवन के यज्ञ में दोनों अश्विनी कुमारों ने सोमपान किया ।१

शतानीक बोले—ब्रह्मन् ! देवराज इन्द्र को धोखा देकर च्यवन के यज्ञ में देवों के देखते-देखते दोनों अश्विनी कुमारों ने किस प्रकार सोमरस का पान किया ? उस महात्मा च्यवन का महान् तपोबल प्रतीत होता है, जो इन्द्र के बल से ही दोनों अश्विनी कुमारों को (सोम रस का पान कराकर) देवत्व का अधिकारी बनाया ।२-३

---

१. केवलमार्षोऽयं पाठः सर्वेषु पुस्तकेषु ।

सुमन्तुरुवाच

पुरातनयुगे सन्धौ पश्चिमेऽथ नराधिप । च्यवनो योगमास्थाय गंगाकूलेऽवसच्चिरम् ।।४
तत्र शर्यातिरायातः स्नातुमन्तः[१] पुरैः सह । स्नात्वाभ्यर्च्य [२]पितॄन्देवान्गमनायोपचक्रमे ।।५
तत्र मूढं जनपदमपश्यत्पथि चेष्टनम् । विण्मूत्रोत्सर्गसंरुद्धं ज्योतिराक्षिप्तनिष्क्रियम् ।।
भ्रमन्तं तत्रतत्रैव समीक्ष्य स बलं नृपः ।।६
उवाच [३]दुर्मना राजा अमात्यान्स्वान्पुरोगमान् । च्यवनस्याश्रमोऽयं हि नापराद्धं तु केनचित् ।।७
न चोवाच यदा कश्चित्तस्य राज्ञस्तु पृच्छतः । तदा सुता सुकन्यास्य प्रोवाच पितरं वचः ।।८
मया दृष्टं तु यत्तात सखिभिः सह कौतुकम् । तत्ते वच्मि निबोध त्वं शृणु तात महाद्भुतम् ।।९
शिञ्जितारावबहुलाः काञ्चीनूपुरमेखलाः । गायन्त्यो विलपन्त्यश्च क्रीडन्त्यश्चात्र कानने ।।१०
कोकिलध्वनिमश्रौषं व्यक्ताव्यक्ताक्षरं कृशम् । सुकन्ये ह्येहिह्येहीति वल्मीकाद्वचमुद्गिरन् ।।११
तत्र गत्वाद्भुतं तात पश्यामः किल पावकौ । दीपाविवाचलशिखौ भूयः कन्या उवाच ह ।।१२
मया च कौतुकात्तात किमेतदित्यबुद्धितः । सूदितौ दर्भसूच्यग्रैस्ततेजः समुपारमत् ।।१३
तच्छ्रुत्वा नृपतिस्त्रस्तस्तूर्णं तद्वनमागमत् । यत्रास्ते भार्गवः कष्टं वल्मीकान्तर्गतो मुनिः ।।१४

सुमन्तु ने कहा—नराधिप ! प्राचीन युग की अन्तिम सन्धि बेला में च्यवन योगाभ्यासी होकर चिरकाल तक गङ्गा-तट पर निवास करते थे ।४। वहीं पर राजा शर्याति भी अपनी स्त्रियों के साथ स्नान करने के लिए आये थे । स्नान करने के उपरान्त उन्होंने पितरों एवं देवताओं की अर्चना की और फिर राजधानी को लौटने का उपक्रम किया ।५। इसी अवसर पर राजा ने मार्ग में एक जनपद (स्थान) देखा और यह भी देखा कि सारी सेना चेतनाहीन हो गयी है, थोड़ी सचेष्टता उनमें शेष है । सब निरिन्द्रिय-से हैं । एक महान् ज्योति से सबके सब हतप्रभ और निष्क्रिय बन गये हैं । इधर-उधर व्याकुल दशा में घूमती हुई सेना को देखकर राजा ने अपने प्रधान मंत्रियों से व्यथित चित्त होकर कहा—'यह महात्मा च्यवन का पवित्र आश्रम है, यहाँ आकर किसी ने कोई अपराध तो नहीं किया ।६-७। उन लोगों में से जब किसी ने राजा के पूँछने पर कोई उत्तर नहीं दिया, तब उसकी पुत्री सुकन्या ने अपने पिता से यह बात कही ।८। हे तात ! सखियों के समेत मैंने जो कुछ कौतुक देखा है, उसे आपसे निवेदित कर रही हूँ सुनिये । सचमुच वह महान् अद्भुत दृश्य है ।९। इसी कानन प्रदेश की अनेक आभूषणों के ध्वनियों से तथा करधनी, नूपुर और मेखला की मधुर ध्वनियों से गुञ्जार करने वाली अनेक स्त्रियों को मैंने देखा, जो बहुत-सी बातें कर रही थीं और विविध क्रीड़ाओं में निरत थीं ।१०। मैंने कोकिलाओं की मनोहर ध्वनि भी सुनी । उसी अवसर पर बल्मीक प्रदेश से 'सुकन्ये ! यहाँ आओ, यहाँ आओ ।' इस प्रकार की कुछ स्पष्ट तथा कुछ अस्पष्ट एक ध्वनि भी मुझे सुनाई पड़ी ।११। हे तात ! उस बल्मीक प्रदेश के पास जाकर हमने एक अद्भुत प्रकार की अग्नि के समान जाज्वल्यमान एवं वायुरहित अविचल शिखावाले दीपक के समान प्रकाशमान दो ज्योतियाँ देखीं ।१२। देखकर इस कुतूहल से कि 'ये क्या है ?' अपनी निर्बुद्धिता से कुश (सूची) के अग्रभाग से कुरेद दिया और इससे वे ज्योतियाँ शान्त पड़ गईं ।१३। सुकन्या की ऐसी बातें सुनकर राजा त्रस्त हो गया । और शीघ्र ही उस वन्य प्रदेश में गया जहाँ पर बल्मीक के अन्दर भार्गव च्यवन ऋषि

---

१. मंत्रिपुरःसरः । २. अतिथीन् । ३. धर्मेणामात्यांन्पुरोहितपुरोगमान् ।

गत्वा स तत्र प्रोवाच प्रणिपत्य द्विजोत्तमम् । अपराद्धं मया[1] देव तत्क्षमस्व नमोऽस्तु ते ॥१५
स तं प्रोवाच नृपतिं मया ज्ञातं नराधिप । सुकन्यां मे प्रयच्छस्व निवेशार्थी[2] ह्यहं नृप ॥
अनुक्रमन्सुकन्यां तु दत्त्वा राजन्सुखी भव ॥१६
इत्युक्तः प्रददौ राजा सुकन्यामविचारयन् । ततः स्वपुरमागम्य अवसत्सुचिरं सुखी ॥१७
सुकन्यापि पतिं लब्ध्वा सुप्रीताराधयत्तदा । राज्यश्रियं परित्यज्य वल्कलाजिनधारिणी ॥१८
गते बहुतिथे काले वसन्ते समुपस्थिते । तपोद्योतितसर्वाङ्गीं रूपोदार्यगुणान्विताम् ॥
स्नातां स्वभार्यां च्यवन उवाच मधुराक्षरम् ॥१९
एह्येहि भद्रे भद्रं ते शयनीयं समाश्रय । अपत्यं जनयस्वाद्य कुलद्वयविवर्धनम् ॥२०
एवमुक्ता तु सा कन्या प्राञ्जलिः पतिमब्रवीत् । [3]नार्हस्यद्य सुकल्याण सङ्गमं स्थण्डिलेऽसमे ॥२१
मम प्रियं कुरुष्वाद्य ततो मामाह्वयस्व च । पितृगेहे यथातिष्ठं शयनीये सुसंस्कृते ॥२२
बहुगैरिकवर्णाद्यैः श्वेतपीतारुणाकुले । वस्त्रालङ्कारगन्धाद्यैस्तथा त्वमपि तत्कुरु ॥२३

कष्ट के साथ समासीन थे ।१४। वहाँ जाकर राजा ने द्विजवर्य च्यवन को प्रणाम कर निवेदन किया । देव ! मैंने महान् अपराध किया, उसे कृपया क्षमा कीजिये, आपको मेरा नमस्कार है ।१५। च्यवन ने राजा शर्याति से कहा—'राजन् ! मैं आपका अपराध जानता हूँ । तुम सुकन्या को मुझे दे दो, क्योंकि मैं अब गृह पर रहना चाहता हूँ । हे राजन् ! इस अपराध की शान्ति के लिए तुम सुकन्या को देकर सुख प्राप्त करो ।१६। च्यवन के इस प्रकार कहने पर राजा शर्याति ने बिना विचार किये ही सुकन्या को उन्हें समर्पित कर दिया और उसके बाद अपने पुर को वापस लौटकर चिरकाल तक सुखपूर्वक निवास किया ।१७। उधर सुकन्या ने भी पति रूप में च्यवन को प्राप्त कर परम प्रसन्नतापूर्दक उनकी आराधना की । उसने राजोचित वेशभूषा एवं अलङ्कारादि को त्याग दिया और केवल वल्कल तथा मृगचर्म धारण किया ।१८। इस प्रकार उसके बहुत समय बीत गये और वसन्त का सुहावना समय उपस्थित हुआ । उस अनुकूल अवसर पर तपस्या से समस्त अङ्गों की शोभा जिसकी बहुत बढ़ गई थी, अपने अनुपम रूप, उदारता एवं सद्गुणों से जो परम शोभायमान हो रही थी, उस ऋतुस्नान से निवृत्त अपनी पत्नी सुकन्या से ऋषिवर्य च्यवन ने मधुर स्वर से ये बातें कहीं ।१९। 'भद्रे ! यहाँ आओ ! शैय्या पर मेरे साथ शयन करो । तुम्हारा परम कल्याण होगा। आज दोनों कुलों की वृद्धि करने वाली शुभ सन्तति को मुझसे उत्पन्न करो ।२०। पति च्यवन के इस अनुरोध पर सुकन्या ने अञ्जलि बाँधकर निवेदन किया—कल्याणचरण! इस ऊँचे-नीचे स्थण्डिल (चबूतरे) पर हम दोनों का समागम आज उचित नहीं है ।२१। प्रथमतः आज मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये तब मुझे बुलाइये । अपने पिता के घर में मैं जिस प्रकार की सजाई गई सुन्दर शैय्या पर सोती थी, उसी प्रकार की शय्या तुम भी बनवाओ ।२२। वह सुन्दर शय्या अनेक गैरिक लाल, पीले, हरे तथा श्वेत वस्त्रों से सुशोभित रहती थी, यही नहीं उसमें अनेकानेक वस्त्र तथा अलङ्कारादि जहाँ शोभावृद्धि के लिए लगते थे । उसी प्रकार आप भी बनवायें तथा उस सुन्दर और

---

१. मयेति कन्यायां स्वत्वाभिमानात् । परिवारकृतस्यापि कर्मणः स्वामिन्यारापेऽस्य सार्वत्रिकत्वात् । २. निवेशं गच्छ वै नृप । ३. नार्हति ह्यद्य कल्याण आह्वानं स्थंडिले मम ।

आत्मानं वयसोपेतं रूपवन्तं सुवर्चसम् । वस्त्रालङ्कारगन्धाढ्यं पश्येयं येन सादरम् ॥२४
सुकन्याया वचः श्रुत्वा च्यवनः प्राह दुर्मनाः । न मेऽस्ति वित्तं कल्याणि पितुस्तेऽस्ति यथा वने ॥२५
स कथं रूपयाम्यद्य सुरूपश्च कथं वद । प्रोवाच सा पतिं भूयः प्रहसन्ती कृताञ्जलिः ॥
वित्तं ददावैलविलो रूपं वैरोचनोऽददत् ॥२६
च्यवनः प्राह भार्यां तां न[1] करिष्ये तपोव्ययम् । एवमुक्त्वा तपश्चोग्रं तताप सुचिरं तदा ॥२७
अथ तत्रागतौ वीरावश्विनौ कालपर्ययात् । दृष्टवन्तौ सुकन्यां तौ दीप्त्या वै देवतामिव ॥२८
उपगम्योचतुस्तां तौ का त्वं सुन्दरि रूपिणी । किमर्थमिह एका त्वं तिष्ठसे कस्तवाश्रयः ॥२९
सा तावुवाच तन्वङ्गी[2] शर्यातिदुहिता ह्यहम् । भर्ता च च्यवनो मह्यं कौ च वां मे तथोच्यताम् ॥३०
ऊचतुश्चाश्विनौ देवावावां विद्धि नृपात्मजे । किं करिष्यसि तेन त्वं जीर्णेन च कृशेन च ॥
आवयोर्वृणु भर्तारमेकमेव यमिच्छसि ॥३१

रमणीक शय्या पर अपने ही समान अवस्था वाले, सुरूपवान्, परमतेजस्वी, विविध प्रकार के वस्त्रों तथा अलङ्कारों तथा सुगन्धित पदार्थों से सुशोभित आपको मैं आदरपूर्वक देखूँ ।२३-२४। सुकन्या की ऐसी बातें सुनकर च्यवन ने व्यथित मन से कहा—'हे कल्याणि ! यहाँ वन में मेरे पास तो ऐसा धन है ही नहीं जैसा तुम्हारे पिता के पास धन है ।२५। पर उस धन से आज वन्य प्रदेश में वे सामग्रियाँ किस प्रकार प्रस्तुत हो सकती हैं । तो फिर उन सब सामग्रियों से मैं शय्या को तथा अपने को कैसे सजा सकता हूँ । यही नहीं मैं सुरूप भी कैसे हो सकता हूँ, कोई उपाय भी तो बतलाओ ।' पति के इस प्रकार उत्तर देने पर सुकन्या ने हँसते हुए अञ्जलि बाँधकर पति से पुनः निवेदन किया।—'आराध्यचरण ! पूर्वकाल में ऐलविल ने अपने तपोबल के माहात्म्य से धन का दान किया था और विरोचन के पुत्र बलि ने रूप का दान किया था ।२६। च्यवन ने अपनी स्त्री सुकन्या से कहा 'कल्याणि !' (बात तुम्हारी सच तो है) पर मैं ऐसे कार्य के लिए अपनी तपस्या का व्यय नहीं कर सकूँगा ।' पति से इस प्रकार के उत्तर प्राप्त होने पर सुकन्या ने चिरकाल तक भीषण तपस्या की ।२७। बहुत समय बीत जाने पर (उसकी उस कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर) परमवीर दोनों अश्विनी कुमार वहाँ आये । उन्होंने वहाँ आकर देवता की भाँति अपनी अनुपम कान्ति से परम शोभायमान सुकन्या को देखा ।२८। उसके समीप जाकर उन्होंने पूछा—हे सुन्दरि! परम रूप सौन्दर्यशालिनी तुम कौन हो ? किस कार्य के लिए यहाँ अकेली स्थित हो ? तुम्हारा आश्रय कौन है ।२९। अश्विनी कुमारो के इन प्रश्नों के उत्तर में सुन्दरी सुकन्या ने कहा—मैं राजर्षि शर्याति की कन्या हूँ । मेरे पति महर्षि च्यवन मेरे आश्रय हैं । आप दोनों कौन हैं—मुझे कृपया यह बताइये ।३०। सुकन्या के इस प्रकार पूछने पर दोनों अश्विनी कुमारों ने कहा—राजपुत्रि ! हम दोनों को तुम अश्विनी कुमार देवता समझो । उस परम दुर्बल एवं वृद्ध पति को लेकर तुम क्या करोगी ? हम दोनों में से किसी एक को जिसे पसन्द करो, पति रूप में वरण करो ।३१। अश्विनी कुमारों की ऐसी बात सुनकर

---

१. तत्करिष्ये तपोव्ययात् । २. तत्त्वज्ञा ।

सा त्वब्रवीच्च मा नैवं वक्तुमर्हौ दिवौकसौ। भर्तारमनुरक्ताङ्गी यथा स्वाहा विभावसोः ॥३२

अश्विनावूचतुः

आयातु च विशत्वद्य च्यवनो वैष्णवीजलम्। ततो नौ मध्यगं ह्येकं वृणीष्वान्यं यमिच्छसि ॥३३
तावब्रूतां सुकन्यां तु गत्वा पृच्छ स्वकं पतिम्। तं च पृष्ट्वा पुनश्चात्रागच्छ नौ सन्निधौ पुनः ॥३४
आयान्तत्रैव तिष्ठावो यावदागमनं तव। सा गत्वा प्राह भर्तारमश्विनादेसूचतु[1] ॥३५
रूपवन्तं च भर्तारं करिष्यावो यमिच्छसि। अथ मध्यगतं ह्येकं भर्तृत्वेन वरिष्यसि ॥३६
एवमस्त्विति तां प्राह भार्यां च्यवनस्त्वरन्। सा तं गृह्य जगामाशु यत्र तौ भिषजावुभौ ॥३७
सा तावुवाच च्यवनो यथोक्तं भवतोर्वचः। कुरुतं ह्यश्विनौ क्षिप्रं सुकन्या चेप्सितं [2]वृणोत् ॥३८
तौ तं सङ्गृह्य गङ्गायां प्रविष्टौ मुनिना सह। मुहूर्तात्तु समुत्तिष्ठन्रूपतश्च श्रिया वृताः ॥३९
शोभन्ते स्म महाबाहौ कम्बुद्भिद्य तपोयुताः। कल्पादौ कलशे यद्वत्कञ्जाजा व्योम वेधसः ॥

सुकन्या ने कहा, 'महाराज!' आप लोगों को देवता होकर ऐसी बातें नहीं करनी चाहिये। मैं अपने पतिदेव के चरणों में उसी प्रकार अनुरक्त हूँ जैसे स्वाहा विभावसु (अग्नि) में।३२

दोनों अश्विनी कुमारों ने कहा—सुकन्ये! प्रथमतः यह होना चाहिये कि च्यवन यहाँ आवें और इस वैष्णवी (गङ्गा) के जल में प्रवेश करें। फिर हम लोगों में से तुम किसी एक को जिसे चाहो पसन्द कर लो।३३। पुनः उन दोनों ने सुकन्या से कहा—'तुम जाकर ऐसी बात अपने पति से पूछो, और उनसे पूछकर फिर यहाँ आकर हम लोगों को बतला जाओ।३४। जब तक तुम्हारा आगमन होगा, तब तक हम लोग यहीं पर रुके हुए हैं।' अश्विनी कुमारों के इस प्रस्ताव को सुनकर सुकन्या ने अपने पति च्यवन के पास जाकर कहा कि अश्विनी कुमार लोग ऐसी बातें कर रहे हैं।३५। कि 'हम तुम्हारे पति को अति रूपवान् बना देंगे और उस समय हम तीनों में से किसी एक को, जिसे पसन्द करना, पति रूप में वरण कर लेना।३६। सुकन्या की ऐसी बातें सुनकर च्यवन ने शीघ्रतावूर्पक उससे कहा—'ठीक है ऐसा ही करो।' च्यवन के सहमत हो जाने पर सुकन्या शीघ्रतापूर्वक उन्हें साथ लेकर वहाँ पहुँची, जहाँ वे दोनों सुर वैद्य विराजमान थे।३७। वहाँ पहुँचकर च्यवन ने अश्विनी कुमारों से कहा—'सुरवैद्य, जैसा कि आप लोगों ने सुकन्या से कहा है, शीघ्र अपने वचन का पालन कीजिए, और सुकन्या हम तीनों में से जिसे चाहेगी अपनी इच्छा के अनुसार वरण कर लेगी।३८। च्यवन के इस प्रकार कहने पर दोनों अश्विनी कुमारों ने उन्हें साथ लेकर गङ्गा में प्रवेश किया और थोड़ी देर उसमें रहकर रूप सौन्दर्य सम्पन्न होकर जल से बाहर निकले।३९। हे महाबाहु राजन्! परम तपस्वी वे तीनों जल का भेदन कर जब बाहर आये तो इस प्रकार शोभित हुए, जिस प्रकार कल्प के प्रारम्भ काल में ब्रह्मा के कलश में आकाश सुशोभित होता है। वे तीनों

---

१. इदम्। २. अडभाव आर्षः।

उदकादुत्थितास्तस्मात्सर्वे ते समरूपकाः ॥४०
सुकन्या तु ततो दृष्ट्वा भर्तारं देवरूपिणम् । हर्षेण महताविष्टा न च तं वेद भारत ॥४१
समकायाः समवयः समरूपाः समश्रियः । वस्त्रालङ्कारसदृशान्दृष्ट्वा चिन्तां गता चिरम् ॥४२
सा चिन्तयित्वा सुचिरं वैद्यदेवादुवाच ह । बीभत्सोऽपि मया भर्ता परित्यक्तो न कर्हिचित् ॥४३
भर्तृद्रूरात्मसंसदृशं कथं[1] त्यक्त्वा वृणे परम् । तस्मात्तमेव भर्तारं प्रयच्छध्वं दिवौकसः ॥४४
तया सबहुमानं तौ प्राञ्जल्या प्रार्थितौ तदा । देवचिह्नानि स्वान्येव धारयन्तौ सुपूजितौ ॥४५
सुकन्या निपुणं तौ तु सुनिरीक्ष्य च विह्वला । न रजो न निमेषो वै न स्पृशेते धरां पदे ॥४६
अयं च सरजा म्लानो भूमिमाश्रित्य तिष्ठति । निमेषं चैव तस्यैवं ज्ञात्वा वै च्यवनो वृतः ॥४७
च्यवने वृते सुकन्यया पुष्पवृष्टिः पपात ह । देवदुन्दुभयश्चैव प्रावाद्यन्त अनेकशः ॥४८
ततस्तु च्यवनस्तुष्टो दिव्यरूपधरस्तदा । उवाच तौ तु सुप्रीत अश्विनौ किं करोमि वाम् ॥४९
भार्या दत्ता कृतं रूपं देवानामपि दुर्लभम् । उपकारं वरिष्ठं यो न करोत्युपकारिणः ॥५०

एक ही समान रूप वाले होकर जल से बाहर निकले ।४०। भरत कुलोत्पन्न राजन् ! सुकन्या देव रूप में उपस्थित अपने पति को देखकर परम प्रसन्न तो हुई किन्तु पहचान नहीं सकी ।४१। क्योंकि वे सब समान शरीर वाले, समान अवस्था वाले तथा रूपवाले और समान कान्तिवाले थे । यही नहीं, वे वस्त्र अलंकार आदि भी एक ही समान धारण किये हुये थे । इस प्रकार उन तीनों को एक स्थिति में देखकर सुकन्या बहुत देर तक परम चिन्तित रही ।४२। और बहुत देर तक सोचने विचारने के बाद (जब उसे कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ा) तब अश्विनी कुमारों से बोली—'सुरवैद्यों ! आप लोग यह भली भाँति जानते हैं कि मैंने अपने वीभत्स एवं रुग्ण पति का भी कभी परित्याग नहीं किया ।४३। तो फिर आपके समान सुन्दर आकृति एवं वय वाले उसी पति को छोड़ दूसरे को कैसे वरण कर सकती हूँ ? इसलिए आप लोग कृपापूर्वक हमारे उसी पति को प्रदान करें ।४४। सुकन्या द्वारा हाथ जोड़कर अत्यन्त प्रार्थना एवं पूजा करने के बाद उन दोनों अश्विनीकुमारों ने अपने देव-चिह्नों को धारण किया ।४५। पति के संशय में पड़ी हुई, विकल सुकन्या ने उन दोनों को भली भाँति पहचाना, उसने देखा कि उन दोनों के शरीर में न तो धूलि लगी हुई है न आँखों की पलकें गिरती हैं, पृथ्वी पर उनके दोनों पैर भी स्पर्श नहीं कर रहे हैं ।४६। और यह (च्यवन) धूल से धूसरित होकर पृथ्वी पर ही बैठा है, यही नहीं इसकी पलकें भी नीचे ऊपर आ जा रही हैं । इस प्रकार खूब पहचान लेने के बाद सुकन्या ने च्यवन का वरण किया ।४७, सुकन्या द्वारा च्यवन के वरण करने के अवसर पर आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई । देवगण अनेक प्रकार के बाजन तथा दुन्दुभि बजाने लगे ।४८। तदनन्तर दिव्य स्वरूपधारी च्यवन परम सन्तुष्ट होकर उन दोनों देववैद्यों से बोले— अश्विनी कुमारों ! मैं तुम लोगों पर परम प्रसन्न हूँ, बोलो, तुम्हारे लिए मैं इस समय क्या करूँ ।४९। क्योंकि तुम लोगों ने मुझे ऐसी गुणवती स्त्री प्रदान किया है और देवताओं को भी दुर्लभ ऐसा सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है, जो व्यक्ति अपने उपकार करने वाले का कोई महान् प्रत्युपकार नहीं करता वह क्रम से

---

१. कृतम् ।

एकविंशत्तगच्छेच्च नरकाणि क्रमेण वै । तस्मादहं वरिष्ठं वै करिष्येऽहममानुषम् ।।५१
उपकारं भवद्भ्यां तु प्रीतः कुर्यां सुनिश्चितम् । यज्ञभागफलं दद्यां यद्देवेष्वपि दुर्लभम् ।।५२
एवमुक्त्वा तु देवेशौ विससर्ज महामुनिः । आजगामाश्रमं पुण्यं सहभार्यो मुदान्वितः ।।५३
अथ शुश्राव शर्यातिश्च्यवनं देवरूपिणम् । जगाम च महातेजा द्रष्टुं मुनिवरं वशी ।।५४
तं दृष्ट्वा प्रणिपत्यादौ प्रतिपूज्य यथार्हतः । सुकन्यां तु ततो दृष्ट्वा प्रणिपत्याभिनन्द्य च ।।५५
सस्वजे मूर्ध्नि आघ्राय ततोत्सङ्गं[1] समानयत् । सा[2] तस्याः[3] सस्वजे प्रेम्णा आनन्दाश्रुपरिप्लुता ।।
संस्थाप्य तां मुदा युक्तो नृपतिः सह भार्यया ।।५६
भूयोऽब्रवीत्सुसंतुष्टं च्यवनस्तं नराधिपम् । संभारं कुरु यज्ञार्थं याजयिष्ये नराधिप ।।५७
एवमुक्तः स नृपतिः प्रणिपत्य महामुनिम् । जगाम स्वपुरं हृष्टो यज्ञार्थं यत्नमाचरत् ।।५८
सप्रेष्यान्प्रेषयत्क्षिप्रं यज्ञार्थे द्रव्यमाहरत् । मंत्रिपुरोहिताचार्यानानयामास सत्वरम् ।।५९

इक्कीस पीढ़ी तक नरक को प्राप्त करता है । इसलिए तुम लोगों के उपकार से प्रसन्न होकर मैं भी तुम्हारा कोई महान् प्रत्युपकार अवश्य करूँगा, जिसे सर्वसामान्य मनुष्य नहीं कर सकते, यह हमारा सुनिश्चित मत है । मैं इस प्रकार के बदले में तुम लोगों को यज्ञ में भाग प्राप्त करने का अधिकारी बनाता हूँ, जिसे देवगण भी कठिनाई से प्राप्त करते हैं ।५०-५२। इस प्रकार वरदान देने के उपरान्त महामुनि च्यवन ने उन दोनों देव वैद्यों को विदा किया और स्वयं स्त्री समेत परम प्रसन्न होकर अपने पुण्य आश्रम को आये ।५३। कुछ समय बीतने के बाद जितेन्द्रिय एवं महान् तेजस्वी राजा शर्याति को भी च्यवन के दिव्य स्वरूप धारण करने की बात ज्ञात हुई तब वे देखने के लिए च्यवन के आश्रम को आये ।५४। सर्वप्रथम च्यवन को तथोक्त स्वरूप सम्पन्न देखकर राजा ने प्रणाम किया और उचित पूजनादि द्वारा सत्कृत किया तदनन्तर अपनी पुत्री सुकन्या का चरण-स्पर्श तथा अभिनन्दन किया ।५५। उस अवसर पर राजा शर्याति ने सुकन्या को अपने अङ्कों में लेकर वात्सल्य भावना से अभिभूत होकर आलिङ्गन किया, उसके शिर का आघ्राण किया और पुनः गोद में उठा लिया । इसी प्रकार सुकन्या की माता ने भी आँखों में आनन्द के आँसू भरकर उसे गोद में उठाकर अपना वात्सल्य प्रेम प्रकट किया । कुछ देर बाद पत्नी समेत परम हर्षातिरेक से अभिभूत राजा ने सुकन्या को सादर बैठा दिया ।५६। तदनन्तर परम सन्तुष्ट राजा से च्यवन ने कहा—नराधिप ! यज्ञ के लिए समारम्भ करो । मैं तुमसे यज्ञ कराऊँगा ।५७। महामुनि च्यवन की ऐसी आदेशपूर्ण बात सुनकर राजा शर्याति ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और सुप्रसन्नचित्त होकर अपने पुर को प्रस्थान किया ।अपनी राजधानी में पहुँचकर राजा ने यज्ञ के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किया ।५८। यज्ञीय सामग्रियों को एकत्र करने के लिए शीघ्र ही भृत्यों को चारों ओर भेज दिया, यज्ञ में व्यय करने के लिए द्रव्य को भी कोश से अलग करवाया । शीघ्रही मंत्री, पुरोहित, आचार्य आदि को भी

---

१. सन्धिरार्षः । २. सुकन्या । ३. मातुरित्यर्थः । तस्य इत्यस्य प्रेम्णेत्यनेन सम्बन्धः स्वस्वजे इत्यनेन तामिति विभक्तिपरिणामः ।

समानीतेषु सर्वेषु तेषु द्रव्येषु भारत । आजगाम विशुद्धात्मा च्यवनः सह भार्यया ।।६०
सम्पूजितश्च शुश्राव महान्तं त्यागभौजसम् । अन्यैश्च बहुभिः सार्द्धमत्र्याङ्गिरसभार्गवैः ।।६१
प्रवर्तिते महायज्ञे यजमाने नृपोत्तमे । ऋत्विक्स्वकर्मनिरते हूयमाने हुताशने ।।
आहूताः स्वागताः सर्वे भागार्थं त्रिदिवालयाः ।।६२
यज्ञभागे प्रवृत्ते तु शास्त्रोक्तेन विधानतः । आगतावश्विनौ तत्र आहूतौ च्यवनेन तु ।।६३
आह्वाने क्रियमाणे तु अश्विभ्यां तु तदा नृप । प्रोवाचेन्द्रोऽथ च्यवनं नैतौ भागान्वितौ कुरु ।।
देवानां भिषजावेतौ न भागार्हौ न दैवतौ ।।६४
च्यवनस्त्विदमाहेदं देवौ ह्येतावुभावपि । ममोपकारिणावेतौ दद्मि भागं न संशयः ।।६५
ततो ह्युवाच सक्रोधः स शक्रश्च्यवनं रुषा । विप्रर्षे प्रहरिष्यामि यदि भागं प्रयच्छसि ।।६६
एवमुक्तस्तु विप्रर्षिर्न चोवाचापि किञ्चन । भागौ ददौ च सोऽश्विभ्यां स्रुवमुद्यम्य मन्त्रतः ।।६७
अथ उद्यम्य भिदुरं मोक्तुकामो दिवस्पतिः । स्तम्भितश्च्यवनेनाथ सवज्रः स नराधिप ।।६८
स स्तम्भयित्वात्विन्द्रं तु भागं दत्त्वाश्विनोर्वशी । समापयामास तदा यज्ञकर्म यथार्थवत् ।।६९

राजदरबार में बुलवाया ।५९। भरतकुलोत्पन्न ! यज्ञ की समस्त सामग्रियों के जुट जाने पर विशुद्धात्मा महामुनि च्यवन भी पत्नी समेत राजा के पुर में उपस्थित हुए ।६०। उस समय उनके साथ मुनिवर अत्रि, अंगिरा तथा भार्गव भी थे । राजा शर्याति ने उन सबका विधिवत् सत्कार किया । महामुनि च्यवन ने पुर में राजा के त्याग, निष्ठा एवं महत्ता की चर्चा सुनी । तदनन्तर महायज्ञ प्रारम्भ हुआ ।६१। राजश्रेष्ठ शर्याति ने यजमान का आसन ग्रहण किया । ऋत्विग् गण अपने अपने कर्मों में निरत हो गये, हुताशन (अग्निदेव) में आहुति छोड़ी जाने लगी । महायज्ञ में भाग प्राप्त करने के लिए समस्त स्वर्गलोक निवासी देवगण स्वागत सत्कारपूर्वक अपने भाग ग्रहण के लिए समीप स्थित हो गये ।६२। शास्त्रोक्त विधि से उन सब को यज्ञ में भाग प्रदान करते समय उस महायज्ञ में च्यवन द्वारा आवाहित दोनों अश्विनीकुमार भी समुपस्थित हुए ।६३। इन्द्र ने च्यवन द्वारा दोनों अश्विनीकुमारों को आवाहित करते हुए जब देखा तब च्यवन से कहा—'इन दोनों को यज्ञ में भाग मत लेने दो । ये तो देवताओं के वैद्य हैं, देवता नहीं हैं, अतः यज्ञ में भाग प्राप्त करने के अधिकारी भी नहीं हैं ।६४। इन्द्र की बातें सुनकर च्यवन ने इस प्रकार कहा— 'देवराज ! ये दोनों भी सुर हैं । इन दोनों ने हमारा महान् उपकार किया है, मैं इन्हें निश्चय ही यज्ञ में भाग दूँगा ।६५। च्यवन की दृढ़तापूर्ण बातें सुनकर इन्द्र ने रोषपूर्वक कहा— 'विप्रर्षिच्यवन ! यदि तुम उन्हें भाग प्रदान करोगे तो यह जान लो कि मैं तुम पर (अनन्योपाय होकर) अवश्य प्रहार करूँगा ।६६।' इन्द्र की इन बातों को सुनकर भी महामुनि च्यवन कुछ नहीं बोले, एकदम चुप रहे । और यथाविधि उन्होंने मंत्रों का उच्चारण करते हुए अपने स्रुवे को उठाकर दोनों अश्विनी कुमारों के लिए भाग प्रदान किया ।६७। च्यवन को यज्ञभाग प्रदान करते देख दिवस्पति इन्द्र ने अपने वज्र को उठाकर उन पर प्रहार करने की चेष्टा की । किन्तु हे राजन् ! ऐसा करने का विचार करते ही वे वज्र समेत च्यवन द्वारा स्तम्भित (जडीभूत) कर दिये गये ।६८। इस प्रकार जितेन्द्रिय एवं महामुनि च्यवन ने इन्द्र को स्तम्भित करने के उपरान्त अश्विनी कुमारों के लिए विधिवत् यज्ञ भाग प्रदान किया । और इस प्रकार समस्त तत्त्वों के जानने वाले उस महामुनि ने उक्त महायज्ञ की समस्त क्रियाएँ विधिवत् सम्पन्न कीं ।६९। उसी

कञ्जजोऽथाजगामाशु आह च च्यवनं तदा । उत्तंभ्यता मयं लेखो भागश्चास्त्वश्विनोरिह ।।७०
तथेन्द्रस्तमुवाचेदं च्यवनं प्रीतमानसः । जानामि शक्तिं तपसश्च्यवनेह तवोत्तमाम् ।।७१
ख्यापनार्थं हि तपसस्तव एतत्कृतं मया । अद्यप्रभृति भागोऽस्तु देवत्वं चाश्विनोस्तथा ।।७२
यस्त्विमां तपसः ख्यातिं त्वदीयां वै पठिष्यति । शृणुयाद्वापि शुद्धात्मा तस्य पुण्यफलं शृणु ।।७३
विरोचनसदो गत्वा गत्वा पुष्पसदस्तथा । कालेऽथ वामदेवस्य मुञ्जकेशसदस्तथा ।।
यौवनयुक्तः स क्रीडास्तिष्ठतीति न संशयः ।।७४
एवमुक्त्वा जगामाशु देवः स्वभवनं वशी । च्यवनोऽपि सभार्यो वै शर्यातिश्चाश्रमं गतः ।।७५
अथापश्यद्विमानाभं भवनं देवनिर्मितम् । शय्यासनवरैर्जुष्टं सर्वकामसमृद्धिमत् ।।७६
[1]उद्यानवापिभिर्जुष्टं देवेन्द्रेण समाहृतम् । [2]गोखण्डसन्निभं रेजे गृहं तद्भुवि दुर्लभम् ।।७७
सुभूषणानि दिव्यानि रत्नवन्ति महान्ति च । अरजांसि च वस्त्राणि दिव्यप्रावरणानि च ।।७८
दृष्ट्वा तत्सर्वमखिलं सह पत्न्या महामुनिः । मुदं परमिकां लेभे शक्रं च प्रशशंस ह ।।७९
एवमिष्टा तिथिरियं द्वितीया अश्विनोर्नृप । देवत्वं यज्ञभागं च सम्प्राप्ताविह भारत ।।८०

अवसर पर शीघ्रतापूर्वक कहीं से भगवान् ब्रह्मा आ गये और उन्होंने च्यवन से कहा—मुनिवर ! इस देवपति का स्तम्भन अब मुक्त कर दो । आज से दोनों अश्विनी कुमारों का भी यज्ञों में भाग रहेगा ।७०। तदनन्तर देवराज इन्द्र भी परम प्रसन्न होकर च्यवन से बोले—'महामुनि च्यवन मैं तुम्हारी तपस्या की परमशक्ति को जानता हूँ ।७१। तुम्हारे तप की ख्याति को अधिक बढ़ाने के लिए मैंने ऐसा किया है । आज से मैं इनके देवत्व प्राप्त करने को भी स्वीकारता हूँ ।७२। तुम्हारी यशः ख्याति की इस पुनीत कथा को जो पढ़ेगा अथवा विशुद्ध चित्त होकर सुनेगा, उसका फल सुनो ।७३। वह प्राणी विरोचन (सूर्य-चन्द्रमा) की सभा में जाकर पुष्प (?) की सभा में जाकर पुनः समय पर वामदेव तथा मुञ्जकेश की सभा में जाकर, युवा होकर क्रीड़ा करता हुआ निवास करता है-- इसमें तनिक सन्देह नहीं ।७४। देवराज इन्द्र च्यवन से इस प्रकार की बातें कर अपने लोक को चले गये, जितेन्द्रिय महामुनि च्यवन भी पत्नी समेत अपने आश्रम को गये, राजा शर्याति भी अपने नगर को गये ।७५। च्यवन ने आकर अपने देव-निर्मित आश्रम को देखा, जो सुन्दर देव विमान की भाँति शोभित हो रहा था, उसमें परम सुन्दर शय्या तथा आसन यथास्थान लगे हुए थे, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली वस्तुओं की अधिकता थी ।७६। आश्रम के समीप उद्यान तथा बावली भी देवेन्द्र की प्रेरणा से विराज रही थी। इस प्रकार उनका वह पवित्र आश्रम समस्त भूलोक में दुर्लभ सूर्यमण्डल के स्वर्ग की भाँति परम शोभित हो रहा था ।७७। परम सुन्दर दिव्य रत्नजटित आभूषणों से भवन की शोभा-वृद्धि हो रही थी। निर्मल वस्त्र तथा सुन्दर दिव्य फर्श एवं चँदोवों की निराली शोभा थी ।७८। पत्नी समेत महामुनि च्यवन अपने आश्रम की इन सारी विभूतियों को देखकर परम आनन्द के समुद्र में गोता लगाने लगे और देवराज इन्द्र की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ।७९

हे राजन् ! इस प्रकार यह द्वितीया तिथि अश्विनी कुमारों की परम इष्ट तिथि कही जाती है । भारत ! इसी पुण्यतिथि को उन्होंने देवत्व एवं यज्ञों में भाग प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त किया ।८०।

---

१. वापीभिरित्यर्थः । २. आदित्यकलापसमं वा स्वर्गसदृशम् ।

उपोष्या विधिना येन तं शृणुष्व नराधिप । रूपं सुरूपं यो वाञ्छेद्द्वितीयायां नराधिप ॥८१
कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां नराधिप । पुष्पाहारो वर्षमेकं भवेत्स नियतात्मवान् ॥८२
कालप्राप्तानि यानि स्युर्हविष्यं कुसुमानि तु । भुञ्जीयात्तानि दत्त्वा तु ब्राह्मणेभ्यो नराधिप ॥८३
सौवर्णरौप्यपुष्पाणि अथ वा जलजानि[1] च । व्रतान्ते तस्य सन्तुष्टौ देवौ त्रिभुवनेऽश्विनौ ॥८४
ददतुः कामगं दिव्यं विमानममिततेजसम् । सुचिरं दिवि नारीभिर्लोकेऽसौ रमतेऽश्विनोः ॥८५
इह चागत्य कल्पान्ते जातो विप्रः पुरस्कृतः । वेदवेदांगविदुषः सप्तजन्मान्तराण्यसौ ॥८६
जातो जातो भवेद्विद्वान्ब्राह्मणोऽसौ कृते युगे । दाता यज्ञपतिर्वाग्मी आधिव्याधिविवर्जितः ॥८७
पुत्रपौत्रैः परिवृतः सह पत्न्याऽवसच्चिरम् । मध्यदेशे सुनगरे[2] धर्मिष्ठो राज्यभाग्भवेत् ॥८८
इत्येषा कथिता तुभ्यं द्वितीया पुष्पसंज्ञिता । फलसंज्ञा तथान्या स्यात्सुते वै मुञ्जकेशिनि ॥८९
सुष्ठु पुण्या पापहरा विष्टरश्रवसः प्रिया । अशून्यशयना लोके प्रख्याता कुरुनन्दन ॥९०

हे राजन् ! इस पुण्यतिथि में उपवास करने का विधान बता रहा हूँ, सुनिये ! हे राजन् ! जो लोग सुन्दर स्वरूप प्राप्त करने की कामना करते हैं, वे कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि को प्रारम्भ कर एक वर्ष तक प्रत्येक द्वितीया को आत्मनिष्ठ एवं संयत होकर केवल पुष्पाहारी बनें ।८१-८२। हे राजन् ! उक्त नियम के अङ्गीकार कर लेने पर यथा समय जो-जो पुष्प मिलें, उन्हीं की हवि बनावें और उन्हीं को ब्राह्मणों को दान देकर स्वयं भक्षण करें ।८३। हे नराधिप ! इसी प्रकार सुवर्ण का चाँदी का तथा जल में उत्पन्न होने वाले (कमल, कुमुदिनी) पुष्पों का भी इस व्रत में उपयोग किया जा सकता है । इस व्रत के समाप्त होने पर त्रिभुवन में रहने वाले यजमान के ऊपर दोनों अश्विनीकुमार परम सन्तुष्ट होते हैं ।८४। और उसे अमित तेजस्वी दिव्य विमान प्रदान करते हैं, जो इच्छानुसार चलने वाला होता है । स्वर्गलोग में वह प्राणी अश्विनी कुमारों की कृपा से दिव्य रमणियों के साथ निवास करता है ।८५। एक कल्प व्यतीत हो जाने के बाद पुनः मर्त्यलोक में आकर वह वेद वेदाङ्ग पारङ्गत ब्राह्मण के रूप में जन्म धारण करता है और प्रत्येक कार्यों में पुरस्कृत रहता है । इसी प्रकार सात जन्मों तक ब्राह्मण जाति में उत्पन्न होता है ।८६। इस प्रकार कृत युग में परम विद्वान् ब्राह्मण का जन्म धारण कर वहाँ पर दानी, यज्ञकर्त्ता, प्रवक्ता, आदिव्याधि रहित होकर पुत्र, पौत्रादि से समन्वित होकर चिरकाल तक जीवन धारण करता है ।८७। वह मध्य प्रदेश में किसी सुन्दर नगर में परम् धार्मिक प्रवृत्ति सम्पन्न तथा राज्य पद का अधिकारी होता है ।८८। मैंने तुमसे इस प्रकार पुष्प द्वितीया की सारी कथा बतला दी अब इसके उपरान्त दूसरी फल द्वितीया नामक द्वितीया की कथा बतला रहा हूँ । जो पुत्र प्राप्ति के लिए मुञ्जकेश में परमप्रीति रखकर सम्पन्न की जाती है ।८९। हे कुरुनन्दन ! वह फल द्वितीया भगवान् की परम प्रिया, पुण्य प्रदायिनी तथा मंगलदायिनी है, लोक में उसकी अशून्य शयना द्वितीया के नाम से भी प्रसिद्धि है ।९०। हे राजन् ! उस

---

१. काञ्चनानि तु । २. तु नगरे ।

तामुपोष्य नरो राजञ्छ्रद्धाभक्तिपुरस्कृतः । ऋद्धिं वृद्धिं श्रियं वाप्य भार्यया सह मोदते ॥९१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्त्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि द्वितीयाकल्पे शर्यात्याख्याने पुण्यद्वितीयावर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९।

अथ विंशोऽध्यायः

अशून्यशयना नाम्न्याः द्वितीयातिथेर्महत्त्वम्

शतानीक उवाच

ब्रूहि मे द्विजशार्दूल द्वितीयां फलसंज्ञिताम् । यामुपोष्य नरो योषिद्वियोगं नेह गच्छति ॥१
पत्न्या नरो मुनिश्रेष्ठ भार्या च पतिना[1] सह । तामहं श्रोतुमिच्छामि विधवा स्त्री न जायते ॥
उपोषितेन येनार्द पत्न्या च सहितो नरः ॥२
तन्मे ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ श्रेयोऽर्थं नरयोषिताम् । येन मे कौतुकं ब्रह्मञ्छ्रुत्वापूर्वं प्रसर्पति ॥३

सुमन्तुरुवाच

अशून्यशयनां नाम द्वितीयां शृणु भारत । यामुपोष्य न वैधव्यं स्त्री प्रयाति नराधिप ॥
पत्नीवियुक्तश्च नरो न कदाचित्प्रजायते ॥४

परम पुण्यप्रदायिनी द्वितीया को श्रद्धा एवं भक्ति से युक्त होकर उपोषित करने वाला ऋषि-वृद्धि, लक्ष्मी तथा प्रियतमा पत्नी के समेत आनन्द का अनुभव करता है ।९१
श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में द्वितीयाकल्प में राजा शर्याति के यज्ञाराधन प्रसङ्ग में पुष्प द्वितीयावर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अध्याय २०

अशून्यशयना नामक द्वितीया तिथि का महत्त्व

शतानीक बोले—द्विजशार्दूल ! अब आप मुझसे उस फल द्वितीया का माहात्म्य बतलाइये जिसे उपोषित करने वाला इस लोक में कभी वियोग नहीं प्राप्त करता ।१। हे मुनिश्रेष्ठ ! उस परम पुण्यदायिनी द्वितीया के समग्र माहात्म्य को बतलाइये, जिसे उपोषित करने वाली पत्नी कभी अपने पति के साथ तथा पति अपनी स्त्री के साथ वियुक्त नहीं होता । पुण्यशाली व्रत की उपोषिका (व्रत करने वाली) स्त्री कभी विधवा नहीं होती । इसी प्रकार विधिपूर्वक उपोषक (व्रत करने वाला) पुरुष भी सर्वदा पत्नी सहित रहता है ।२। हे द्विजश्रेष्ठ ! मानव स्त्रियों के कल्याण के लिए उस परम प्रभावशाली द्वितीया को (द्वितीया का व्रत विधान) मुझे बताइये । हे ब्रह्मन् । उसको सुनने के लिए मेरे मन में अपूर्व कौतूहल हो रहा है ।३

सुमन्तु ने कहा—भारत ! उस अशून्यशयना नामक द्वितीया को सुनो । हे नराधिप ! जिसे उपोषित करने वाली स्त्री कभी वैधव्य नहीं प्राप्त करती और पुरुष कभी विधुर जीवन नहीं बिताता

---

१. पत्या ।

शेते जगत्पतिः कृष्णः श्रिया सार्धं यदा नृप । अशून्यशयना नाम तदा ग्राह्या हि सा तिथिः ।।५
कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणे मासि भारत । इदमुच्चारयेत्स्नातः प्रणम्य जगतः पतिम् ।।
श्रीवत्सधारिणं देवं भक्त्याभ्यर्च्य श्रिया सह ।।६
श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीवत्स श्रीपतेऽव्यय । गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् ।।७
गावश्च मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु मे जनाः ।।८
जामयो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः । लक्ष्म्या वियुज्येऽहं देव न कदाचिद्यथा भवान् ।।९
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यताम् । लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा ।।१०
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा तु मधुसूदन । एवं प्रसाद्य पूजां च कृत्वा लक्ष्म्यास्तथा हरेः ।।११
फलानि दद्याच्छायायामभीष्टानि जगत्पतिम् । नक्तं[1] प्रणम्यायतने हविर्भुञ्जीत वाग्यतः ।।१२
ब्राह्मणाय द्वितीयेऽह्नि शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।।१३

शतानीक उवाच

कानि तानि अभीष्टानि केशवस्य फलानि तु । योज्यानि शयने विप्र देवदेवस्य कथ्यताम् ।।१४
किं च दानं द्वितीयेऽह्नि दातव्यं ब्राह्मणस्य तु । भक्तैर्नरैर्द्विजश्रेष्ठ देवदेवस्य शक्तितः ।।१५

।४। हे राजन् ! जिस समय भगवान् कृष्ण (विष्णु) लक्ष्मी के साथ शयन करते हैं, उसी समय वह अशून्यशयना नामक द्वितीया उपोषित करनी चाहिए।५। भारत ! श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि को यजमान स्नान कर जगत्पति, श्रीवत्सचिह्नधारी विष्णुदेव को भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और लक्ष्मी समेत उनकी विधिवत् पूजा करे।६। उस समय यह प्रार्थना करे—'श्रीवत्सधारिन् ! श्रीकान्त ! श्रीवत्स ! श्रीपति ! अव्यय भगवन् ! धर्म, अर्थ, काम स्वरूप त्रिवर्ग को देने वाली मेरी गृहस्थी कभी विनाश को न प्राप्त हो।७। मेरी गौएँ नष्ट न हों, मेरे परिवार के लोगों का नाश न हो।८। हमारी बहनें तथा कुल-वधुएँ नष्ट न हों, उनके दाम्पत्य-प्रेम में किसी प्रकार की मेरी ओर से बाधा न पड़े। हे देव ! जिस प्रकार आप कभी लक्ष्मी से वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार मैं भी इस लोक में कभी लक्ष्मी से वियुक्त न होऊँ—यह मेरी कामना है।९। हे देव ! उसी प्रकार मेरा स्त्री सम्बन्ध भी कभी खण्डित न हो। हे वरद ! जिस प्रकार आपकी शय्या कभी लक्ष्मी से सूनी नहीं रहती, उसी प्रकार मेरी भी शय्या कभी सूनी न हो।१०। हे मधुसूदन ! ऐसी कृपा मेरे ऊपर कीजिए। यजमान उपर्युक्त रीति से लक्ष्मी तथा हरि की पूजा कर छाया में जगत्पति के उद्देश्य से फल प्रदान करे। रात के समय मन्दिर में (भगवान को) प्रणाम कर संयत भाव से हवि का भक्षण करे।११-१२। फिर दूसरे दिन अपनी शक्ति के अनुकूल ब्राह्मणों को दक्षिणा दें।१३

शतानीक बोले—हे विप्र ! भगवान् केशव के अभीष्ट वे कौन से फल हैं, जिन्हें उनकी शय्या पर दान करना चाहिये।१४। और दूसरे दिन भगवान् के निमित्त यथाशक्ति ब्राह्मण को कौन-सा दान करना चाहिये ? हे द्विजश्रेष्ठ ! इन दोनों बातो का ठीक उत्तर हमें दीजिए।१५

---

१. नक्षत्रं च प्रणम्याशु।

सुमन्तुरुवाच

यानि तत्र महाबाहो काले सन्ति फलानि तु। मधुराणि सुतीव्राणि न नापि कटुकानि तु ॥१६
दातव्यानि नृपश्रेष्ठ स्वशक्त्या शयने नृप । मधुराणि प्रदत्तानि नरो वल्लभतां व्रजेत् ॥१७
योषिच्च कुरुशार्दूल भर्तुर्वल्लभतामियात् । तस्मात्कटुकतीव्राणि स्त्रीलिङ्गानि विवर्जयेत् ॥१८
खर्जूरमातुलिङ्गानि श्वेतेन शिरसा सह । फलानि शयने राजन्यज्ञभागहरस्य तु ॥१९
देयानि कुरुशार्दूल स्वशक्त्या मुञ्जकेशिने । एतान्येव तु विप्रस्य गाङ्गेयसहितानि तु ॥२०
द्वितीयेऽह्नि प्रदेयानि भक्त्या शक्त्या च भारत । वासोदानं तथा धान्यफलदानसमन्वितम् ॥
गाङ्गेयस्य विशेषेण धान्यदानं प्रचक्षते ॥२१
एवं करोति यः सम्यङ्नरो मासचतुष्टयम् । ततो जन्मत्रयं वीर गृहभङ्गो न जायते ॥२२
अशून्यशयनश्चासौ धर्मकामार्थसाधनः । भवत्यव्याहतैश्वर्यः पुरुषो नात्र संशयः ॥२३
[1]नारी च राजन्धर्मज्ञा व्रतमेतद्यथाविधि । या करोति न सा शोच्या बन्धुवर्गस्य जायते ॥२४
वैधव्यं दुर्भगत्वं च भर्तृत्यागं च सत्तम । नाप्नोति जन्म त्रियतमेतच्चीर्त्वा[2] महाव्रतम् ॥२५
अदत्त्वा कटुकानीह फलानि कुरुनन्दन । खर्जूरमातुलिङ्गानि वृहत्फलशिरांसि च ॥२६

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु ! अपने समय में जो न अत्यन्त मधुर न अत्यन्त तीव्र, न अत्यन्त कड़वे (फल) हों, हे नृपश्रेष्ठ ! उन्हें अपनी शक्ति के अनुकूल भगवान् की शय्या पर प्रदान करना चाहिए। मधुर फलों के दान करने से यजमान प्रिय होता है।१६-१७। हे कुरुश्रेष्ठ ! इसी प्रकार मधुर फल प्रदान करने वाली स्त्री भी पति की प्रियतमा होती है। इसलिए कड़वे, तीव्र और स्त्री भावना की अभिव्यक्ति करने वाले फलों को नहीं देना चाहिये।१८। हे कुरुशार्दूल ! विशेषतया खजूर, मातुलिङ्ग (मातुलिङ्ग अर्थात् बिजौरा) श्वेत शिर अर्थात् नारियल का फल यज्ञ भाग प्राप्त करने वाले भगवान् की शय्या पर निवेदित करना चाहिये।१९। हे राजन् ! इन उपर्युक्त फलों का दान अपनी शक्ति के अनुसार मुञ्जकेशी को देना चाहिये। और यही वस्तुएँ गङ्गा जल समेत दूसरे दिन ब्राह्मण को यथाशक्ति भक्तिपूर्वक दान भी देना चाहिये।२०। उस समय वस्त्र दान, अन्नदान, अन्य फलदानादि के साथ ही उक्त दान देना चाहिये। सुवर्ण दान की विशेषता मानी गई है, यों धान्य दान की भी प्रशंसा की जाती है।२१। जो मनुष्य इस प्रकार चार मास तक उपर्युक्त नियमों का भली भाँति पालन करता है, हे वीर ! उसके तीन जन्म तक कभी गृहभङ्ग नहीं होता (अर्थात् तीन जन्म तक उसकी गृहस्थी नहीं बिगड़ती)।२२। धर्मार्थ काम का मुख्य साधन रूप यह अशून्य शयन नामक व्रत कहा जाता है, इसका पालन करने वाले पुरुष का ऐश्वर्य कभी न्यून नहीं होता—इसे निश्चय समझिये।२३। उक्त व्रत को यथाविधि पालन करने वाली धर्मज्ञ स्त्री भी अपने परिवार वर्ग के लिए शोचनीय नहीं होती (अर्थात् उस स्त्री के विषय में परिवार के लोगों को कोई चिन्ता नहीं होती)।२४। हे सत्तम ! वह पुण्यशीला नारी कभी वैधव्य, दुर्भगत्व एवं पति के द्वारा त्याग देने जैसी दुःस्थिति को इस महा व्रत को सम्पन्न करने के कारण तीन जन्म तक नहीं प्राप्त होती।२५। हे कुरुनन्दन ! कड़वे फलों को न देकर जो व्यक्ति इस महाव्रत में खजूर, बिजौरा व नारियल के फलों का ब्राह्मणों के लिए दान करता है, अथवा अन्यान्य मधुर फलों का दान

---

१. भवति। २. चरित्वा।

दत्त्वा द्विजेभ्यो राजेन्द्र मधुराणि पराणि च । तस्मात्स्वशक्त्या यत्नेन देयानि मधुराणि च ॥२७
इत्येषा कथिता कृष्णद्वितीया तिथिरुत्तमा । यामुपोष्य नरो राजन्नृद्धिं वृद्धिं तथा व्रजेत् ॥२८

शतानीक उवाच

भवता कथितेयं वै द्वितीया तिथिरुत्तमा । अश्विभ्यां द्विजशार्दूल कथमस्यां जनार्दनः ॥२९
सम्पूज्यः फलसंज्ञायां कथितः पद्मया सह । तदत्र कौतुकं मह्यं सुमहज्जायते द्विज ॥३०

सुमन्तुरुवाच

एवमेतन्न सन्देहो तथा वदसि भारत । अश्विनोर्वै तिथिरियं किं तु वाक्यं निबोध मे ॥३१
अशून्यशयना दत्ता [1]विष्णोरमिततेजसः । अश्विभ्यां कुरु शार्दूल प्रीतये मुञ्जकेशिनः ॥३२
तावेव कुरुशार्दूल पूज्येतेऽत्र महीपते । नासत्यौ भगवान्विष्णुर्दस्त्रश्च श्रीर्विभाव्यते ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
द्वितीयाकल्पसमाप्तौ विंशोऽध्यायः ।२०।

करता है—वह उपर्युक्त फल अवश्यमेव प्राप्त करता है। इसलिए यजमान को प्रयत्नपूर्वक मधुर फलों का दान करना चाहिये ।२६-२७। हे राजन् ! उस परम उत्तम फल प्रदान करने वाली कृष्ण द्वितीया तिथि को इस प्रकार मैं बतला चुका, जिसको उपोषित करने वाला ऋद्धि एवं वृद्धि को प्राप्त होता है ।२८

शतानीक ने कहा—द्विज शार्दूल ! आपने उत्तम (अशून्य शयना) द्वितीया तिथि की पुण्यदायिनी कथा अश्विनी कुमारों के साथ जो सुनाई है, और जो यह बतलाया है कि इसमें तथा पुष्प फल द्वितीया में लक्ष्मी के साथ भगवान् जनार्दन की पूजा किस प्रकार होती है ? हे द्विज ! उन सब को सुनकर हमारे मन में महान् कौतूहल हो रहा है ।२९-३०

सुमन्तु बोले—हे भरतकुलोत्पन्न राजन् ! जैसा तुम कह रहे हो, वह सब सत्य है। ये दोनों तिथियाँ उन दोनों अश्विनी कुमारों की पूजा के लिए हैं, किन्तु मेरी बात फिर से स्पष्ट सुनिये ।३१। इन तीनों में से अशून्य शयना जो है, वह अमित तेजस्वी भगवान् विष्णु के लिए है, जिसे मुञ्जकेशी भगवान् की प्रीति के लिए अश्विनी कुमारों ने दिया था ।३२। उन दोनों अश्विनी कुमारों की इन्हीं दिनों पूजा होती है और उनमें नासत्य साक्षात् भगवान् विष्णु हैं और दस्र लक्ष्मी रूप जाने गये हैं ।३३

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में द्वितीया कल्प समाप्ति नामक
बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२०।

---

१. अतुलतेजसः ।

अथैकविंशोऽध्यायः

तृतीयातिथिव्रतमाहात्म्यम्

सुमन्तुरुवाच

पतिव्रता पतिप्राणा पतिशुश्रूषणे रता । एवंविधापि या प्रोक्ता शुचिः संशोभना सती ॥१
सोपवासा तृतीयां तु [1]लवणं परिवर्जयेत् । सा गृह्णाति च वै भक्त्या व्रतमामरणान्तिकम् ॥२
गौरी ददाति सन्तुष्टा रूपं सौभाग्यमेव च । लावण्यं ललितं हृद्यं श्लाघ्यं पुंसां मनोरमम् ॥३
पुंसो मनोरमा नारी भर्ता नार्या मनोरमः । गौरीव्रतेन भवति राजँल्लवणवर्जनात् ॥४
इदं व्रतं प्रति विभो धर्मराजस्य शृण्वतः । उमया च पुरा प्रोक्तं यद्वाक्यं तन्निबोध मे ॥५
मया व्रतमिदं सृष्टं सौभाग्यकरणं नृणाम् । मर्त्ये तु नियता नारी व्रतमेतच्चरिष्यति ॥
सह भर्त्रा स मोदेत यथा भर्ता हरो मम ॥६
याच कन्या न भर्तारं विन्दते शोभना सती । सा त्विदं व्रतमुद्दिश्य भवेदक्षारभोजना ॥
मच्चित्ता मन्मनाः कुर्यान्मद्भक्ता मत्परिग्रहा ॥७

अध्याय २१

तृतीया तिथि व्रत का माहात्म्य

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! परम पतिव्रता, पतिप्राण, पति की शुश्रूषा में रात दिन निरत रहने वाली एवं इसी प्रकार के अन्यान्य सद्‌गुणों से समन्वित परम सुन्दरी पवित्र भावनाओं से पूत जो सती कही गई हैं, उसको तृतीया व्रत को उपवास रखकर लवण का त्याग करना चाहिये। इस पुनीत व्रत को जो स्त्री भक्तिपूर्वक मरण पर्यन्त रखती है उसे सन्तुष्ट होकर गौरी देवी रूप एवं सौभाग्य प्रदान करती हैं। पुरुषों की दृष्टि में परम मनोहर रूप लावण्य एवं हृदय को वश में करने वाली सरलता भी उसे गौरी के प्रसाद से प्राप्त होती है।१-३। हे राजन् ! पुरुष की दृष्टि में मनोरमा नारी एवं स्त्री की दृष्टि में मनोरम पति गौरी के व्रत से एवं नमक वर्जित करने से होते हैं।४। विभो ! इस पुनीत व्रत के विषय में पार्वती ने धर्मराज से पुराकाल में जो कुछ कहा है उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये।५। पार्वती ने कहा था—'मैंने इस परम पुनीत व्रत का निर्माण मृत्युलोक में मनुष्यों के सौभाग्य की वृद्धि के लिए किया है। नियमों का पालन करती हुई स्त्रियाँ मर्त्यलोक में इसका पालन करेंगी। इस व्रतपालन के माहात्म्य से वे स्त्रियाँ अपने मनोनुकूल पति के द्वारा ठीक उसी प्रकार का आनन्दानुभव करेंगी जैसे मैं अपने पति शिव के साथ।६। जो कुमारी सुन्दरी कन्या उत्तम पति को शीघ्र नहीं प्राप्त करती वह हमारे इस व्रत का पालन करते हुए नमक वर्जित भोजन करे। उस समय उसका चित्त मुझमें हो, उसका मन मुझमें हो, उसकी भक्ति मुझमें हो, उसकी समस्त आकांक्षाएँ मुझमें ही निहित हों।७। उसे उस समय सुवर्णमयी गौरी की स्थापना करनी चाहिये,

---

१. अशनम् ।

गौरीं संस्थाप्य सौवर्णीं गन्धालङ्कारभूषिताम् । वस्त्रालङ्कारसंवीतां पुष्पमण्डलमण्डिताम् ॥८
लवणं गुडं घृतं तैलं देव्यै शक्त्या निवेदयेत् । [1]कटुखण्डं जीरकं च पत्रशाकं च भारत ॥९
गुडघृष्टांस्तथापूपान्खण्डवेष्टांस्तथा नृप । ब्राह्मणे व्रतसम्पन्ने प्रदद्यात्सुबहुश्रुते ॥१०
शुक्लपक्षे सदा देयः यथा शक्त्या हिरण्मयी । धनहीने तु भक्त्या[2] च मधुवृक्षमयी नृप ॥११
अर्च्या नित्यं संनिधानात्तत्र गौरी न संशयः । अक्षारलवणं रात्रौ भुंक्ते चैव सुवाग्यता ॥१२
गौरी सन्निहिता नित्य भूमौ प्रस्तरशायिनी[3] । एवं नियमयुक्तस्य[4] देव्या यत्समुदाहृतम् ॥१३
तच्छृणुष्व महाबाहो कथ्यमानं महाफलम् । भर्तारं तु लभेत्कन्या यं वाञ्छति मनोऽनुगम् ॥१४
सुचिरं सह वै भर्त्रा क्रीडयित्वा[5] इहैव सा । सन्ततिं च प्रतिष्ठाप्य सह तेनैव गच्छति ॥१५
हेलिलोकं चन्द्रलोकं लोकं चित्रशिखण्डिनः । गत्वा याति सदो राजन्वामदेवस्य भारत ॥१६
विधवा तु यदा राजन्देव्या व्रतपरायणा[6] । भर्तारं नियता नित्यं सदार्चनपरायणा ॥१७

और उस मूर्ति को सुगन्धित द्रव्य एवं अलंकारों से विधिवत् विभूषित करना चाहिये । सुन्दर वस्त्र, अलंकार एवं पुष्प, माला से विभूषित करना चाहिये। इसके उपरान्त नमक, गुड़, घी और तैल यथाशक्ति देवी के लिए समर्पित करें। फिर कटुखण्ड (गोलमिर्च), जीरा, पत्रशाक, गुड़ मिश्रित अथवा खाँड से लपेटे गये पूप किसी ऐसे बहुश्रुत ब्राह्मण को दान करे, जो ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त कर गृहास्थाश्रम में हो।८-१०। शुक्लपक्ष की तृतीया को सर्वदा यथाशक्ति सुवर्णमयी प्रतिमा दान करनी चाहिये। हे राजन् ! निर्धनता की अवस्था में मधु (महुआ) वृक्षमयी प्रतिमा दान करनी चाहिये।११। देवी की पूजा सर्वदा उसी मूर्ति के समीप से करनी चाहिये, उसमें गौरी का निवास रहता है—इसमें कोई सन्देह नहीं। उस समय व्रत पालन करने वालीस्त्री को वाणी पर संयम रखकर रात्रिकाल में नमक के बिना भोजन करना चाहिये।१२। उस समय सर्वदा भूमि पर अथवा पत्थर की शिला पर शयन करना चाहिये, वहाँ गौरी का सान्निध्य रहता है। इस प्रकार के नियमों से उक्त व्रत को पालन करने वाली स्त्री को जिस महा फल के मिलने की बात देवी ने बतलायी है, हे महाबाहु ! उसे मैं कह रहा हूँ, सुनिये। जो कुमारी इस व्रत का पालन करती है वह अपनी इच्छा के अनुकूल जिस पति की कामना करती है उसे प्राप्त करती है।१३-१४। उसका वह पति उसके मन के अनुकूल चलने वाला होता है। अपने उस पति के साथ बहुत दिनों तक इस लोक के समस्त आनन्दों का अनुभव कर अपनी सन्ततियों को पूर्ण प्रतिष्ठित कर पति के साथ ही परलोक की यात्रा करती है।१५। भरत कुलोत्पन्न ! राजन् ! वह व्रत के अनुष्ठान को करने वाली स्त्री इस लोक के उपरान्त सूर्यलोक, चन्द्रलोक, सप्तर्षियों के लोक में तथा भगवान् वामदेव की सभा में पति के साथ स्थान प्राप्त करती है।१६। हे राजन् ! जो व्रत परायणा विधवा सर्वदा अपने स्वर्गीय पति के चरणों में मन लगाकर देवी के उक्त व्रत को पूजनादि में तत्पर रहकर सम्पन्न करती है वह भी इस लोक में अपने शरीर को छोड़कर हरि

---

१. तथा खण्डम् । २. शक्त्या । ३. स्वास्तरशायिनी । ४. एवं नियमयुगिति विशेषणसामर्थ्याद्व्रतमित्यध्याहार्य्यम्, व्रतस्य देव्या यन्महाफलं समुदाहृतं तच्छृण्वित्यर्थः । एवं नियमयुक्तस्येत्येकं वा पदम्, अत्रापि पक्षे व्रतस्येवेदं विशेषणम्। ५. क्रीडित्वा। ६. नीतिपरायणा।

इह चोत्सृज्य देहं स्वं दृष्ट्वा हरिपुरे प्रियम् । आक्षिप्य यमदूतेभ्यः सह भर्त्रा रमेद्दिवि ॥१८
वर्षकोटिं दशगुणां रमित्वा सा इहागता । भर्त्रा सहैव पूर्वोक्तं लभते फलमीप्सितम् ॥१९
इन्द्राण्यापि व्रतमिदं पुत्रार्थिन्या नराधिप । लब्धः पुत्रो व्रतस्यान्ते जयन्तो नाम नामतः ॥२०
अरुन्धत्या तथा चीर्णं वशिष्टं प्रति कामतः । दृश्यते दिवि चाद्यापि वशिष्ठस्य समीपतः ॥२१
रोहिण्या लवणत्यागात्सपत्नीगणमर्दनम् । लब्धं देव्याः प्रसादेन सौभाग्यमचलं दिवि ॥२२
इत्येषा तिथिरित्येव तृतीया लोकपूजिता । सदा विशेषतः पुण्या वैशाखे मासि या भवेत् ॥२३
पुण्या भाद्रपदे मासि माघेप्येव न संशयः । माघे भाद्रपदे चापि स्त्रीणां धन्या[१] प्रचक्षते ॥२४
साधारणी तु वैशाखे सर्वलोकस्य भारत । माघमासे तृतीयायां गुडस्य लवणस्य च ॥
दानं श्रेयस्करं राजन्स्त्रीणां[२] च पुरुषस्य च ॥२५
गुडेन तुष्यते दत्तो लवणेन तु विश्वभूः । गुडपूपास्तु दातव्या मासि भाद्रपदे तथा ॥२६
तृतीयायां तु माघस्य [३]वामदेवस्य प्रीतये । वारिदानं प्रशस्तं स्यान्मोदकानां च भारत ॥२७
वैशाखे मासि राजेन्द्र तृतीया चन्दनस्य च । वारिणा तुष्यते वेधा मोदकैर्भीम एव हि ॥

के पुर में अपने पति का दर्शन करती है और यमदूतों का आक्षेप करती हुई पति के साथ स्वर्गलोक में सुख का अनुभव करती है ।१७-१८। वहाँ पर दश कोटि वर्ष तक पति के साथ रमण कर वह पुनः इह लोक में जन्म धारण करती है और यहाँ आकर पति के साथ इच्छित फलों का भोग करती है ।१९। हे नराधिप ! पुत्र प्राप्ति की इच्छुक इन्द्राणी ने भी इस व्रत का विधिवत् अनुष्ठान किया था और उसी के माहात्म्य से व्रत के अवसान में जयन्त नामक पुत्र की प्राप्ति की थी ।२०। इसी प्रकार अरुन्धती ने पति रूप में वशिष्ठ की कामना करके इस व्रत का पालन किया था, जिसके फलस्वरूप स्वर्ग में आज भी वह वसिष्ठ के समीप निवास करती है ।२१। रोहिणी ने नमक का त्यागकर उक्त व्रत का पालन किया था, और देवी के प्रसाद से सपत्नियों के मान मर्दन करने का अवसर प्राप्त किया था, स्वर्गलोक में उसका सौभाग्य आज भी निश्चल है ।२२। इस प्रकार यह पुण्य तृतीया तिथि यूं तो साधारणतया लोक में परम ख्यात है पर इन सबमें वैशाख मास की जो होती वह परम पुण्यदायिनी है ।२३। इसी प्रकार भाद्रपद मास में भी वह परम पुण्यदायिनी है। माघ मास की तृतीया के पुण्यप्रद होने में भी कोई सन्देह नहीं है । माघ तथा भाद्रपद की तृतीया विशेषतया स्त्रियों के लिए धन्य कही जाती है ।२४। हे भरतकुलोत्तपन्न ! वैशाख मास की तृतीया सर्व सामान्य लोगों की है । हे राजन् ! माघ मास की तृतीया को गुड़ और नमक का दान स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अधिक श्रेयस्कर माना गया है ।२५। उक्त तिथि को गुड़ तथा नमक के दान करने से विश्वात्मा भगवान् परम सन्तुष्ट होते हैं । भाद्रपद मास में गुड़मिश्रित पूआ का दान करना चाहिये ।२६। हे भारत ! माघ मास की तृतीया को भगवान् वामदेव की सन्तुष्टि तथा अपनी समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिए मोदक दान तथा वारि (जल) दान की प्रशंसा की गई है ।२७। हे राजन् ! वैशाख मास की तृतीया को चन्दन, जल तथा बड़े-बड़े मोदकों से ब्रह्मा सन्तुष्ट होते हैं।

---

१. धर्मम् । २. सर्वकामफलप्रदम् । ३. सर्वकामार्थसिद्धये ।

दानात्तु चन्दनस्येह कञ्जजो नात्र संशयः ॥२८
यात्वेषा कुरुशार्दूल वैशाखे मासि वै तिथिः । तृतीया साऽक्षया लोके गीर्वाणैरभिनन्दिता ॥२९
आगतेयं महाबाहो भूरि चन्द्रं वसुव्रता । कलधौतं तथान्नं च घृतं चापि विशेषतः ॥
यद्यद्दत्तं त्वक्षयं स्यात्तेनेयमक्षया स्मृता ॥३०
यत्किञ्चिद्दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु । तत्सर्वमक्षयं स्याद्वै तेनेयमक्षया स्मृता ॥३१
योऽस्यां ददाति करकन्वारिबीजसमन्वितान् । स याति पुरुषो वीर लोकं वै हेममालिनः ॥३२
इत्येषा कथिता वीर तृतीया तिथिरुत्तमा । यामुपोष्य नरो राजन्नृद्धिं वृद्धिं श्रियं भजेत् ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां ब्राह्मे पर्वणि तृतीयाकल्पविधिवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ।२१।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

चतुर्थीतिथिव्रतमाहात्म्यम्

सुमन्तुरुवाच

चतुर्थ्यां तु सदा राजन्निराहारव्रतान्वितः । दत्त्वा तिलान्नं विप्रस्य स्वयं भुंक्ते तिलौदनम् ॥१

इस वैशाख तृतीया को चन्दन दान से पद्मोद्भव सन्तुष्ट होते हैं इसमें सन्देह नहीं ।२८। कुरुशार्दूल ! वैशाख मास की जो यह पुण्यदायिनी तृतीया तिथि है वह इस लोक में अक्षय तृतीया के नाम से देवगणों द्वारा अभिनन्दित है ।२९। हे महाबाहु ! यह पुनीत अक्षय तृतीया प्रचुर धन-धान्य देने के लिए इस पृथ्वीतल पर आई हुई है । इसमें सुवर्ण, अन्न, विशेषतया घृत आदि जो जो पदार्थ दिये जाते हैं, वे सब अक्षय रूप में प्राप्त होते हैं, इसी से यह अक्षय तृतीया नाम से स्मरण की जाती है ।३०। इसमें जो कुछ भी दान किया जाता है वह परिमाण में चाहे स्वल्प हो या बहुत अधिक हो, अक्षय रूप में प्राप्त होता है । इसी से यह अक्षय तृतीया नाम से प्रसिद्ध है ।३१। जो वारि बीज (कमल) युक्त कमण्डलु का दान करता है वह सूर्यलोक प्राप्त करता है ।३२। हे राजन् ! इस पुण्यप्रद अक्षय तृतीया को उपवास करने वाला ऋद्धि, वृद्धि एवं लक्ष्मी को प्राप्त करता है ।३३

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में तृतीया कल्पविधि वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।२१।

अध्याय २२

चतुर्थी तिथि के व्रत का माहात्म्य

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! चतुर्थी तिथि को जो मनुष्य निराहार व्रत का पालन करके ब्राह्मण को तिल का दान करता है तथा अन्त में स्वयं तिल मिश्रित ओदन (भात) का भोजन करता है, और इस प्रकार

---

१. अस्यां दत्तम् ।

वर्षद्वये समाप्तिर्हि व्रतस्य तु यदा भवेत् । विनायकस्तस्य तुष्टो ददाति फलमीहितम्[1] ।।२
याति भाग्यनिवासं हि क्रीडते विभवैः सह । इह चागत्य पुण्यान्ते दिव्यो दिव्यवपुर्यशाः ।।३
मतिमान्धृतिमान्वाग्मी भाग्यवान्कामकारवान्[2] । असाध्यान्यपि साध्येह क्षणादेव महान्त्यपि ।।४
[3]हस्त्यश्वरथसम्पन्नं पत्नीपुत्रसहायवान् । राजा भवति दीर्घायुः सप्तजन्मान्यसौ नृप ।।
एतद्ददाति सन्तुष्टो विघ्नहन्ता[4] विनायकः ।।५

शतानीक उवाच

विघ्नः कस्य कृतस्तेन येन विघ्नविनायकः । एतद्वदस्व विघ्नेश विघ्नकारणमद्य मे ।।६

सुमन्तुरुवाच

कौमारे लक्षणे पुंसां स्त्रीणां च सुकृते कृते । विघ्नं चकार विघ्नेशो गाङ्गेयस्य विनायकः ।।७
तं तु विघ्नं विदित्वासौ कार्तिकेयो रुषान्वितः । उत्कृष्य दन्तं तस्यास्याद्धन्तु तं च समुद्यतः ।।८
निवार्यापृच्छद्देवेशो रोषः कार्यः कुतस्त्वया । तं चाचख्यौ स पित्रे वै कृतं पुरुषलक्षणम् ।।
तत्र विघ्नकृते मह्यं योषिता न च लक्षणम् ।।९

दो वर्ष तक अपने इस व्रत को निर्विघ्न सम्पन्न कर लेता है उसके ऊपर विनायक प्रसन्न होते हैं तथा उसके समस्त मनोवाञ्छित कार्यों की सिद्धि करते हैं ।१-२। इस व्रत के माहात्म्य से वह भाग्य के निवास को प्राप्त करता है तथा वहाँ समस्त वैभवों एवं ऐश्वर्यों के साथ आनन्द का अनुभव करता है । फिर पुण्य के क्षीण हो जाने पर दिव्य शरीर धारण कर वह पुण्यात्मा प्राणी यशस्वी, मतिमान, धैर्यशील, प्रवक्ता, भाग्यशाली तथा स्वच्छन्दतापूर्वक कार्य करने वाला होकर पुनर्जन्म धारण करता है तथा अपने जीवन में असाध्य एवं महान् कार्यों को भी क्षण भर में साध्य बनाने वाला होता है ।३-४। हाथी, अश्व, रथ आदि सुख साधनों से सम्पन्न पत्नी पुत्रादि के साथ वह दीर्घायु पर्यन्त राजा होता है और सात जन्मों तक इसी प्रकार राजा होता है । विघ्नों के विनाश करने वाले भगवान् विनायक उक्त चतुर्थी व्रत के पालन से सन्तुष्ट होकर उक्त फल प्रदान करते हैं ।५

शतानीक बोले—मुनिवर ! विनायक ने किस कार्य में किसको विघ्न पहुँचाया था ? जिसके कारण उनका विघ्न विनायक नाम पड़ा । कृपया आज मुझसे उनके विघ्नेश एवं विघ्न विनायक होने का कारण बतलाइये ।६

सुमन्तु ने कहा—राजन् ! पूर्वकाल में गाङ्गेय स्वामिकार्तिकेय पुरुषों एवं स्त्रियों के लक्षणों को निर्दिष्ट कर रहे थे । उनके इस कार्य में विघ्नेश विनायक ने विघ्न पहुँचाया ।७। कार्तिकेय विनायक को अपने कार्य में विघ्न डालने वाला जानकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उनके मुख से एक दाँत को निकाल पूर्णतः मार डालने को समुद्यत हो गये । उस समय देवेश शङ्कर ने कार्त्तिकेय को रोककर पूछा—'तुमने ऐसा भीषण क्रोध क्यों किया है ? कार्त्तिकेय ने उत्तर दिया 'तात ! मैंने पुरुषों एवं स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों को लिपिबद्ध करने का विचार किया था, उसमें पुरुषों का तो समाप्त कर चुका था, स्त्रियों का अभी समाप्त नहीं हुआ था, सो उसमें इसने विघ्न पहुँचा दिया है

---

१. ईप्सितम् । २. लभते यशः । ३. हस्त्यन्नस्वार्थसम्पन्नः । ४. विघ्नहर्ता ।

अथोवाच महादेवः प्रहसन्स्वसुतं किल । मम किं लक्षणं पुत्र वक्ष्यसे त्वं वदस्व मे ॥१०
स चोवाच करे तुभ्यं कपालं द्विजलक्षितम् । अविचारेण संस्थाप्यं कपाली तेन चोच्यसे ॥
स तल्लक्षणमादाय समुद्रे प्राक्षिपद्रुषा ॥११
अथ देवसमाजे वै प्रवृत्ते ब्रह्मरुद्रयोः । अहं ज्यायानहं ज्यायान्विवादोऽभूत्तयोर्द्वयोः ॥
तव संभूत्यभिज्ञोऽस्ति मां तु वेद न कश्चन ॥१२
एवं शिवेऽभि ब्रुवति ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः । मुक्त्वाट्टहासं प्रोवाच त्वामहं वेदिता भव ॥१३
एवं ब्रुवत्तु रुद्रेण ब्राह्मं हयशिरो महत् । नखाग्रेण निकृत्तं च तस्यैव च करे स्थितम् ॥१४
करस्थेनैव तेनासावागच्छद्यत्र वै हरिः । तपस्तेपे तदा मेरौ तत्रासौ भगवान्वशी ॥१५
कृत्ते हयशिरे तस्मिन्स्थानात्तस्मात्तु ब्रह्मणः । रोषाद्विनिःसृतस्त्वन्यः पुरुषः श्वेतकुण्डली ॥१६
कवची सशिरस्कश्च सशरः सशरासनः । अनिर्देश्यवपुः स्रग्वी किं करोमि स चाब्रवीत् ॥१७
अथोवाच रुषा ब्रह्मा हन्यतां स सुदुर्मतिः । स तु मार्गेण रुद्रस्य आगच्छद्रोषतो द्रुतम् ॥१८
रुद्रोऽपि विष्णुतेजोभिः प्रदिष्टः स त्वधिष्ठितः । स प्रविश्य तदापश्यत्तपन्तं चोत्तमं तपः ॥

।८-९। अपने पुत्र कार्त्तिकेय की इस बात को सुनकर महादेव हँसते हुए बोले—'पुत्र ! तो देखो मेरे शरीर में कौन लक्षण है ? और उसका क्या फल होगा ?' यह मुझसे बताओ ।१०। कार्त्तिकेय ने कहा—'तात ! आपके हाथ में अविवेक के कारण किसी ब्राह्मण के कपाल (शिर) का स्थापन होगा, और उससे आपकी कपाली नाम से ख्याति होगी' कार्त्तिकेय से ऐसी बातें सुनकर शिव जी ने अति क्रुद्ध होकर उस लक्षण ग्रन्थ को समुद्र में फेंक दिया ।११। इस घटना के बहुत दिनों बाद एक बार शिव और ब्रह्मा में भरी देवसभा के बीच इस विषय पर विवाद उठ खड़ा हुआ कि दोनों में कौन बड़ा है ? उस अवसर पर इन दोनों देवों में मैं बड़ा हूँ, मैं बड़ा हूँ' यह कह-कहकर विवाद होने लगा । इसी बीच शिव ने ब्रह्मा से कहा—'मैं तुम्हारी उत्पत्ति जानता हूँ किन्तु मेरी उत्पत्ति कोई नहीं जानता है ।१२। शिव की उक्त आक्षेप पूर्ण बात को सुनकर ब्रह्मा के पाँचवें शिर ने अट्टहास करते हुए कहा—भव ! मैं भी तुमको भली-भाँति जानता हूँ ।१३। ब्रह्मा के ऐसा कहते ही रुद्रने अपने नख के अग्रभाग से ब्रह्मा के उस महान हय (घोड़े वाले) शिर को धड़ से अलग कर दिया । शरीर से अलग होकर भी वह महान् शिर रुद्र के हाथों में स्थिर हो गया ।१४। अपने हाथों में चिपके हुए उस शिर के साथ रुद्र वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवान् हरि विराजमान थे । जितेन्द्रिय भगवान् उस समय सुमेरु पर्वत पर तपस्या में लीन थे ।१५। इधर पाँचवें हय शिर के कट जाने पर ब्रह्मा के शरीर के उसी स्थान से उनके क्रोध से एक पुरुष आर्विभूत हुआ, जो श्वेत कुण्डल विभूषित, कवच एवं शिरस्त्राण से सुरक्षित तथा धनुष एवं बाण से विमण्डित था । उसका विशाल शरीर अनुपमेय एवं अनिर्देश्य था । उसके विशाल वक्षःस्थल पर एक माला शोभायमान हो रही थी । आविर्भूत होते ही उस क्रोधी पुरुष ने ब्रह्मा से कहा—'भगवन् ! मेरे लिए क्या आज्ञा है ।१६-१७। क्रुद्ध होकर ब्रह्मा ने कहा—'उस पाप बुद्धि शंकर को मार डालो । (ब्रह्मा के आदेश से वह श्वेत कुण्डली) पुरुष क्रोध से अभिभूत होकर उसी मार्ग से दौड़, जिससे रुद्र गये थे ।१८। उधर भगवान् विष्णु के आश्रम में पहुँच कर रुद्र भी भगवान् विष्णु की तेजोविभूति से प्रभावित हो गये वहाँ पहुँचकर उन्होंने कठोर तपः साधना में लीन अपराजित भगवान्

हरो नारायणं देवं वैकुण्ठमपराजितम् ॥१९
हरं दृष्ट्वाथ सम्प्राप्तं कार्यं चास्य विचिन्त्य च। उवाच शूलिनं देवो भिन्धि शूलेन मे भुजम् ॥२०
स बिभेद महातेजा भुजं शूलेन तं हरः ॥२१
शूलभेदादसृक्चोर्ध्वं जगामावृत्य रोदसी । विनिवृत्य ततः पश्चात्कपाले निपपात ह ॥२२
असृक्कपाले पतितं प्रदेशिन्या व्यवर्द्धयत् । यदा हि विनिवृत्तिः स्वाद्देवस्य रुधिरं प्रति ॥२३
तदा तु व्यसृजत्तोयं स कृत्वा वारुणीं तनुम् । तोये प्रवृत्तेऽसृग्भूते कपाले यत्र तच्छिरः ॥२४
कपाले तु प्रदेशिन्या रुद्रोऽसौ रुधिरेऽसृजत् । आमुक्तकवचं रक्तं रक्तकुण्डलिनं नरम् ॥२५
अथोवाच भवं देवं किं करोमीति मानद । असावपि ससर्जाथ श्वेतकुण्डलिनं नरम् ॥२६
तावुभौ समयुध्येतां धनुष्प्रवरधारिणौ । यथा राजन्बलीयांसौ कुजकेतू युगात्यये ॥२७
तयोस्तु युध्यतोरेवं संवर्तश्चाधिको गतः । न चादृश्यत विजय एकस्यापि तदा तयोः ॥२८
अथान्तरिक्षे तौ दृष्ट्वा वागुवाचाशरीरिणी । अवतारोऽथ भविता युवयोर्हि मया सह ॥२९
भारापनोदः कर्तव्यः पृथिव्यर्थे सुरैः सह । तदाश्चर्यो हि भविता देवकार्यार्थसिद्धये ॥३०
भूलोकभावं निर्धूय भूयो गन्ता सुरालयम् । एवमुक्त्वा तु वैकुण्ठो ददावेकं रुदेस्तदा ॥३१

वैकुण्ठ (विष्णु) को देखा।१९। भगवान् ने अपने आश्रम में समुपस्थित हर को देखकर तथा उनके आगमन के प्रयोजन को जानकर त्रिशूलधारी से कहा—'रुद्र! अपने शूल से तुम मेरी बाहु को आहत करो।२०। महान् तेजस्वी हर ने अपने त्रिशूल से विष्णु की बाहु को आहत कर दिया।२१। शूल से बाहु को आहत होने पर रक्त की एक परम तीव्रगामिनी धारा उठी और सारे भूमण्डल में व्याप्त होकर पुनः लौटकर उसी कपाल में आकर गिरी।२२। इस प्रकार सारी रक्तराशि उस कपाल में भर गयी और रुद्र ने अपनी प्रदेशिनी अङ्गुली से उस कपाल स्थल रक्तराशि का विलोडन किया। प्रदेशिनी से रक्त आलोडन जब बन्द हुआ तब देव ने अपनी देह को वरुण की भाँति जलमयीं बनाया और जल उत्पन्न किया। पुनः उस कपाल में जिसमें ब्रह्मा का शिर था, रुद्र ने जल के रक्तमय हो जाने पर प्रदेशिनी द्वारा उस रक्तराशि में एक कवचावृत्त रक्तकुण्डलधारी रक्त शरीर पुरुष की सृष्टि की।२३-२५। उस रक्तकुण्डलधारी पुरुषाकृति ने भव से पूछा—'मानद! मैं आपका कौन सा कार्य करूँ? जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ब्रह्मा से भी श्वेत कुण्डल धारी एक पुरुष की उत्पत्ति हुई थी।२६। हे राजन्। महान् धनुषधारी वे दोनों क्रोध-जात पुरुष एक दूसरे से इस प्रकार भिड़ गये। जिस प्रकार महाप्रलय के अवसर पर मंगल और केतु भिड़ गये हों।२७। घोर युद्ध में लीन उन दोनों पुरुषों के एक कल्प से अधिक समय व्यतीत हो गये, किन्तु उन दोनों में से किसी एक के विजयी होने के लक्षण नहीं दिखाई पड़े।२८। तदनन्तर उन दोनों को देखकर आकाशवाणी हुई कि तुम दोनों का अवतार हमारे साथ होगी।२९। समस्त देवताओं के साथ हमें पृथ्वी लोक के कल्याण के लिए उसका भार उतारना पड़ेगा और उस समय देवकार्यों की सिद्धि के लिए आश्चर्यजनक घटनाएँ घटित होंगी।३०। तब फिर भूलोक की अवस्थिति को समाप्तकर पुनः स्वर्गलोक चले जायेंगे। इस प्रकार आकाशवाणी द्वारा अपने विचारों को व्यक्त कर भगवान् वैकुण्ठ ने उन दोनों में से एक पुरुष को

श्वेतकुण्डलिनं दृप्तं[1] तं जग्राह रविर्मुदा । इन्द्रस्यापि ततः पश्चाद्रक्तकुण्डलिनं ददौ ॥३२
जग्राह च मुदा युक्त इन्द्रः स्वं च पुरं ययौ । गतौ रवीन्द्रौ प्रगृह्य पुरुषौ क्रोधसम्भवौ ॥३३
अथोवाच तदा रुद्रं देवः कमलसंस्थितः । गच्छ त्वमपि कापाले कपालव्रतचर्यया ॥
अवतारो व्रतस्यास्य मर्त्यलोके भविष्यति ॥३४
ये च व्रतं त्वदीयं वै धारयिष्यन्ति मानवाः । न तेषां दुर्लभं किञ्चिद्भवितेह परत्र च ॥३५
एवं संलप्य बहुशः सुमुखं प्रतिनन्द्य च । आहूय च समुद्रं स प्रत्युवाचाविचारयन् ॥३६
कुरुष्वाभरणं[2] स्त्रीणां लक्षणं यद्विलक्षणम् । कार्त्तिकेयेन यत्प्रोक्तं तद्वदस्वाविचारयन् ॥३७
स चाह मम नाम्नेदं भवेत्पुरुषलक्षणम् । देवेन तत्प्रतिज्ञातमेवमेतद्भविष्यति ॥३८
कार्त्तिकेयेन यत्प्रोक्तं तद्वदस्वाविचारयन् ॥३९
प्रयच्छास्य विषाणं वै निष्कृष्टं यत्त्वयाऽधुना । अवश्यमेव तद्भूतं भवितव्यं तु कस्यचित् ॥४०
ऋते विनायकं तद्वै दैवयोगान्न कामतः । गृहाण एतत्सामुद्रं यत्त्वया परिकीर्तितम् ॥४१
स्त्रीपुंसोर्लक्षणं श्रेष्ठं सामुद्रमिति विश्रुतम् । इमं च सविषाणं वै कुरु देवविनायकम् ॥४२

रवि को दे दिया ।३१। उस श्वेत कुण्डलधारी परम गर्वोन्नत पुरुष को रवि ने परमानन्दित होकर अंगीकार किया । इसके उपरान्त रक्तकुण्डलधारी पुरुष को भगवान् ने इन्द्र के लिए प्रदान किया ।३२। उसे अंगीकार कर इन्द्र सहर्ष अपने पुर को चले गये । इस प्रकार ब्रह्मा एवं शंकर के क्रोध से उत्पन्न दोनों पुरुषों को लेकर सूर्य और इन्द्र अपने-अपने पुर को प्रस्थित हो गये ।३३। इस घटना के उपरान्त कमलासन पर स्थित भगवान् ब्रह्मा ने रुद्र से कहा—रुद्र ! तुम भी इस कपाल की व्रतचर्या को सम्पन्न करने के लिए कपाल तीर्थ की यात्रा करो । इस व्रत का अवतार मर्त्यलोक में होगा ।३४। जो मनुष्य तुम्हारे उस व्रत को सम्पन्न करेंगे, उन्हें न तो इस लोक में कुछ दुर्लभ होगा, न परलोक में ।३५। इस प्रकार की बहुत सी बातें करके तथा उस सुन्दर मुख की प्रशंसा कर समुद्र का आवाहन किया । समुद्र के आने पर बिना विचार किये ही उन्होंने कहा ।३६। समुद्र ! तुम स्त्रियों के विलक्षण लक्षणों का निर्माण करो, जो उनकी शोभा के कारण हैं । कार्त्तिकेय ने पुरुषों एवं स्त्रियों के लक्षण को लेकर जो कुछ निश्चित किये हैं, उन्हें विना विचार किये ही यथार्थ रूप में मुझसे प्रकट कर दो ।३७। समुद्र ने कहा—'भगवन् ! मेरे द्वारा प्रकट होने वाले वे लक्षण समूह मेरे ही नाम से ख्याति प्राप्त करें ।' समुद्र के इस अनुरोध को देव ने स्वीकार करते हुए वचन दिया कि 'ऐसा ही होगा' ।३८। तुमसे कार्तिकेय ने जो कुछ कहा है, उसे बिना कुछ विचार किये मुझे बतला दो ।३९। समुद्र के ऐसा कहने के उपरान्त देव ने कार्तिकेय से कहा—'तुम इसके विषाण को दे दो, जो अभी उखाड़ लिया है । किसी के भाग्य में जो कुछ रहता है, वह तो घटित होकर ही रहता है ।४०। दैवयोग से इस विषय को विनायक के अतिरिक्त कोई इच्छा करने पर भी नहीं जान सकता । इस सामुद्रिक विद्या को ग्रहण करो, जिसका तुमने वर्णन किया है ।४१। यह स्त्रियों और पुरुषों का श्रेष्ठ लक्षण समूह सामुद्रिक विद्या के नाम से विख्यात है । देव विनायक को इसके साथ-साथ तुम विषाण से भी संयुक्त करो ।४२। ये

---

१. दृष्ट्वा । २. स्त्रीणां च पुरुषाणां च ।

अथोवाच च देवेशं बाहुलेयः समत्सरम् । विषाणं दद्मि चास्याहं तव वाक्यान्न संशयः ।।४३
यदा त्वयं विषाणं च मुक्त्वा तु विचरिष्यति । तदा विषाणमुक्तः सन्भस्म ऐतं करिष्यति ।।४४
एवमस्त्विति तं चोक्त्वा विषाणं तत्करे ददौ । विनायकस्य देवेशः कार्तिकेयमते स्थितः ।।४५
सविषाणकरोऽद्यापि दृश्यते प्रतिमा नृप ! भीमसूनोर्महाबाहोर्विघ्नं कर्तुं महात्मनः ।।४६
एतद्रहस्यं देवानां मया ते समुदाहृतम् । यत्र देवो न वै वेद देवानां भुवि दुर्लभम् ।।४७
मया प्रसन्नेन तव गुह्यमेतदुदाहृतम् । कथितं तिथिसंयोगे विनायककथामृतम् ।।४८
य इदं श्रावयेद्विद्वान्ब्राह्मणान्वेदपारगान् । क्षत्रियांश्च स्ववृत्तिस्थान्विट्शूद्रांश्च गुणान्वितान् ।।४९
न तस्य दुर्लभं किञ्चिदिह चामुत्र विद्यते । न च दुर्गतिमाप्नोति न च याति पराभवम् ।।५०
निर्विघ्नं सर्वकार्याणि साधयेन्नात्र संशयः । ऋद्धिं वृद्धिं श्रियं चापि विन्देत भरतोत्तम ।।५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२।

बातें सुनकर बाहुलेय कार्तिकेय मत्सरपूर्वक देवेश से बोले—आपकी आज्ञा से ही मैं इसके विषाण को दे रहा हूँ, इसमें सन्देह नहीं ।४३। किन्तु जिस समय यह इस विषाण को छोड़कर इधर-उधर विचरण करेगा, उसी समय यह विषाण इससे मुक्त होकर इसे ही भस्म कर देगा ।४४। ऐसा ही हो—कहकर बाहुलेय ने विषाण को विनायक के हाथ में दे दिया । कार्तिकेय के इस कार्य से देवेश शङ्कर जी सहमत हो गये ।४५। (सुमन्तु कहते हैं) हे राजन् ! आज भी कार्यों में विघ्न पहुँचाने के लिए परम बलशाली महाबाहु भीम (भयंकर) पुत्र विनायक की प्रतिमा विषाण युक्त हाथ से समन्वित दिखाई पड़ती है ।४६। देवताओं की इस रहस्यपूर्ण वार्ता की चर्चा मैंने तुमसे की है, इसे देवताओं में भी कुछ लोग नहीं जानते, पृथ्वी तल पर तो यह दुर्लभ ही है ।४७। अतिशय प्रसन्न होकर ही मैंने इस परम गोपनीय विनायक के कथामृत को तिथिमाहात्म्य के प्रसङ्ग में तुमसे बतलाया है ।४८। जो विद्वान् इस पुण्यकथा को वेद पारगामी ब्राह्मणों, अपनी वर्णाश्रम मर्यादा में स्थित क्षत्रियों, गुणवान् वैश्यों तथा शूद्रों को सुनाता है, उसके लिए इस लोक तथा परलोक में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती । वह कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता और न कभी उसे पराभव मिलता है ।४९-५०। इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने समस्त कार्यों को निर्विघ्न सम्पन्न करता है । हे भरतकुलश्रेष्ठ ! वह विद्वान् ऋद्धि-सिद्धि तथा लक्ष्मी की भी प्राप्ति करता है ।५१

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में चतुर्थी कल्प वर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।२२।

अथ त्रयोविंशोऽध्याय:

विघ्न-विनायककथावर्णनम्

शतानीक उवाच

केनायं भीमजो विप्र प्रमथाधिपतिः कृतः । भर्तृत्वे चापि विघ्नानामधिकारी कथं बभौ ।।१

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र यदर्थं विघ्नकारकः । यैर्वापि विघ्नकरणैर्नियुक्तोऽपि विनायकः ।।
तत्ते वच्मि महाबाहो शृणुष्वैकमनाधुना ।।२
आद्ये कृतयुगे वीर प्रजासर्गमवाप ह । दृष्ट्वा कर्माणि सिद्धानि विना विघ्नेन भारत ।।३
अगतक्लेशां प्रजां दृष्ट्वा गर्वितां कृत्स्नशो नृप । बहुशश्चिन्तयित्वा तु इदं कर्म महीपते ।।४
विनायकः समृद्ध्यर्थं प्रजानां विनियोजितः : गणानां चाधिपत्ये च भीमः कञ्जजसात्त्वतैः ।।
ततोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोध मे ।।५
स्वप्नेवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति । काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति ।।६
अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्टैः सहैकत्रावतिष्ठते । व्रजमानस्तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः ।।७

अध्याय २३

विघ्न-विनायक की कथा का वर्णन

शतानीक बोले—विप्रवर्य ! भीमपुत्र विनायक किसके द्वारा प्रमथगणों के अधिपति बनाये गये ? और वे किस प्रकार विघ्नों के अधिकारी पद पर प्रतिष्ठित हुए ? ।१

सुमन्तु बोले—हे राजेन्द्र ! आपने बड़ा अच्छा विषय पूछा, जिस कारणवश विनायक विघ्नकारक रूप में प्रसिद्ध हुए और जिन-जिन विघ्नों के करने से उन्हें विनायक पद पर नियुक्त किया गया, हे महाबाहु ! उन सब कारणों को मैं तुमसे अब बतला रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो ।२। हे वीर ! हे भारत ! आदिम सतयुग में, जब प्रजाओं की सृष्टि प्रारम्भ हो चुकी थी, तब उनके कर्म बिना विघ्न बाधा के ही सम्पन्न होते थे ।३। हे भारत ! (इस प्रकार निर्विघ्न कार्यों की समाप्ति के कारण) प्रजा को क्लेश से रहित तथा सभी प्रकार से गर्वित स्वभाव वाली देखकर हे महीपते ! भगवान् ब्रह्मा ने इस कर्म के विषय में बहुत सोच-विचार कर विनायक को उन्हीं प्रजाओं की समृद्धि के लिए विनियुक्त किया । भयानक कर्मनिरत विनायक को प्रमथों के आधिपत्य पद पर इस प्रकार कमलयोनि ब्रह्मा ने नियुक्त किया । इसके बाद उनके द्वारा विघ्न पहुचाये गये लोगों के लक्षणों को मुझसे सुनिये ।४-५। स्वप्न में वह व्यक्ति बहुत अधिक जल (तैल) में स्नान करता है, मुण्डित शिर वाले को देखता है । काषाय (गेरूआ) वस्त्र पहनने वाले का दर्शन करता है, तथा कच्ची मांस खाने वाले हिंस्र जानवरों पर आरुढ़ होता है ।६। अन्त्यज गदहे, ऊँट आदि के साथ स्वप्न में एक स्थान पर निवास करता है । पीछे चलने वाले अनेक व्यक्तियों के साथ अपने को गमन करता हुआ देखता है ।७। यही नहीं, वह सर्वदा उन्मन, निष्फल कार्य आरम्भ करने वाला

विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः । करटारूढमात्मानमम्भसोन्तरगं तथा ।।८
पत्तिभिश्चावृतं यान्तं सङ्गमनान्तिकं नृप । पश्यते कुरुशार्दूल स्वप्नान्ते नात्र संशयः ।।९
चित्तं च विकृताकारं करवीरविभूषितम् । तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं पौर्वसंभवम् ।।१०
कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भिणी तथा । आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च शिष्याश्चाध्ययनं तथा ।।
वणिग्लाभं च नाप्नोति कृषिं चैव कृषीवलः ।।११
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽहनि[1] महीपते । गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितेन तु ।।१२
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु वासरे धिषणस्य च । तिष्ये च वीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप ।।१३
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा । भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्ति वाच्य द्विजाञ्छुभान् ।।१४
व्योमकेशं तु सम्पूज्य पार्वतीं भीमजं तथा । कृष्णं सपितरं तात [2]पवमानं सितं तथा ।।१५
धिषणं चेन्दुपुत्र च [3]कोणं केतुं च भारत । विधुन्तुदं बाहुलेयं नन्दकस्य च धारिणम् ।।१६
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ह्रदात् । मृत्तिकां रोचनां गन्धान्गुग्गुलं चाप्सु निक्षिपेत् ।।१७
यदाहृतं ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् । चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्यं भद्रासनं तथा ।।१८

तथा अकारण कष्ट भोगने वाला होता है। हे कुरुशार्दूल ! हे नृप ! विनायक द्वारा विघ्नित व्यक्ति अपने को हाथी के गण्डस्थल पर आरुढ़ तथा जल के भीतर नग्न होता हुआ देखता है।८। इसी प्रकार राजा शत्रु की पैदल सेना से चारों ओर घिरा हुआ अथवा कहीं दूर देश की यात्रा करता हुआ, स्वप्न के अन्त में अपने को देखता है इसमें कोई सन्देह नहीं।९। उसका चित्त विकृत रहता है तथा अपने को स्वप्न में कर-वीर (कनेर के पुष्प) से विभूषित देखता है। इस प्रकार विनायक द्वारा विघ्नित राजा अपने पूर्वजों का अर्जित राज्य नहीं प्राप्त करता।१०। कुमारी पति नहीं प्राप्त करती तथा गर्भिणी स्त्री सन्तान नहीं प्राप्त करती, श्रोत्रिय आचार्यत्व नहीं प्राप्त करता तथा विद्यार्थी ठीक तरह से अपना पाठ नहीं चला पाते। इसी प्रकार वैश्य व्यापार में लाभ नही प्राप्त करता तथा कृषक लोग कृषि में सफलता नहीं प्राप्त करते।११। हे राजन् ! ऐसे व्यक्ति को पुण्य दिन में यथाविधि सफेद सरसों के कल्क से, जिसमें घृत एवं सुगन्धित द्रव्य मिले हुए हों, स्नान करना चाहिये।१२। हे राजन् ! शुक्ल पक्ष में चतुर्थी तिथि को बृहस्पति के दिन पुष्य नक्षत्र में अथवा वीर नक्षत्र में उसी के सम्मुख यह क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए।१३। सब प्रकार के सुगन्धित पदार्थों से विमिश्रित, सब औषधियों से शिर को भलीभाँति लिप्त करके एक शुभ आसन पर बैठकर कुलीन एवं सद्विचार रखने वाले ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन कराये।१४। हे तात ! पहले शिव-पार्वती तथा गणेश जी की पूजा करके उसी प्रकार पितरों समेत कृष्ण, वायु, शुक्र, बृहस्पति, बुध, मंगल कार्तिकेय केतु और तलवार लिए हुए राहु की पूजा करे।१५-१६। एक रङ्ग के सुन्दर एवं जल भरे हुए चार कलशों में घोड़े और हाथी के रहने के स्थान की मिट्टी तथा वल्मीक (चींटी) एवं नदियों के सङ्गम की भूमि सरोवर की मिट्टी, गोरोचन, चन्दन और गुग्गुल आदि सुगन्धित वस्तुओं को डालकर, उसके जल से गणेश जी को, जो लाल रङ्ग के बैल के चमड़े के सुन्दर आसन पर बैठाये गये हों, स्नान कराये।१७-१८। पवित्र,

---

१. अह्नि विधिपूर्वकम्। अब्जमानम्। ३. कोणलक्ष्यं च।

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः[1] पावनं कृतम् । तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ॥१९
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥२०
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु ते सदा ॥२१
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण तु । जुहुयान्मूर्धनि कुशान्सव्येन परिगृह्य तु ॥२२
मितश्च सम्मितश्चैव तथा च शालकंटकः । कूष्माण्डो राजश्रेष्ठास्तेऽग्नयः स्वाहासमन्विताः ॥२३
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः । दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ॥२४
कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पललौदनमेव च । मत्स्यान्पक्वांस्तथैवामान्मांसमेतावदेव तु ॥२५
पुष्पं चित्रं सगन्धं च सुरां च त्रिविधामपि । मूलकं पूरिकाः पूपांस्तथैवोण्डेरिकास्रजम् ॥
दधिपायसमन्नं च गुडवेष्टान्समोदकान् ॥२६
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् । दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥२७
रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥
अचलां बुद्धिं मे देहि धरायां ख्यातिमेव च ॥२८
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥२९

निर्मल एवं ऋषियों द्वारा अभिमंत्रित किये हुए तथा सहस्राक्ष की भाँति सहस्र धारवाले इस जल से तुम्हारा अभिषेक करता हूँ, यह जल तुम्हें पवित्र करे ।१९। राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु और सातों ऋषि—मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ तुम्हें ऐश्वर्य प्रदान करें ।२०। उसी भाँति तुम्हारे शिर के बालों, मस्तक, कान तथा आँखों में स्थित दुर्भाग्य (अशुभसूचक कुलक्षण) को यह जल सदा नष्ट कर दे ।२१। इस प्रकार स्नान कराये जाने के बाद सरसों का तेल उनके मस्तक पर गूलर के स्रुवा द्वारा, बायें हाथ में कुश लिये हुए दिया जाय ।२२। मित, संमित, शालकंटक तथा कूष्माण्ड आदि दुष्ट ग्रह और राजश्रेष्ठ एवं स्वाहा से युक्त अग्नि तुम्हारा कल्याण करें ।२३। इसके अनन्तर चौराहे पर कुश बिछाकर उसके ऊपर सूप रखकर जिसमें कच्चा-पक्का चावल, मांस-भात, मछली, अनेकों प्रकार के पुष्प, इत्र, तीन प्रकार की मद्य, मूली, पूरी, मालपूआ, गुड़हर के फूल की माला, दहीं और खीर, अन्न और गुड़ के बने लड्डू रखा हो, सावधान होकर पृथक्-पृथक् देवताओं का नाम और बलि मंत्रों का उच्चारण करते हुए नमस्कार पूर्वक बलि के रूप में अर्पित करे ।२४-२६। इसके पश्चात् अपनी अंजलि में दूर्वा, पुष्प और और सरसों (राई) लेकर गणेश जी को भगवती अम्बिका को (मंत्रो द्वारा) तीन बार पुष्पांजलि देकर यह मंत्र पढ़े ।२७। हे भगवति ! मुझे सुन्दर रूप, कीर्ति, ऐश्वर्य, धन, पुत्र, पूर्ण मनोरथ एवं निश्चल बुद्धि प्रदान करती हुई आप पृथ्वी के चारों ओर मेरी प्रख्याति करायें ।२८। तदुपरान्त श्वेत वस्त्र, माला और चन्दन से सुसज्जित होकर ब्राह्मणों को भोजन करायें तथा प्रत्येक ब्राह्मणों को चद्दर समेत दो वस्त्र (धोती) देवें। उसी भाँति गुरु को भोजन कराकर उन्हें दो वस्त्र समर्पित करे ।२९। इस

---

१. सूरिभिः पावनं स्मृतम् ।

एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः । कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥३०
आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा । विनायकपतेश्चैव सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥३१

इति श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनम्

शतानीक उवाच

नराणां योषितां चैव लक्षणानि महामते । प्रोक्तानि यानि विप्रेन्द्र व्योमकेशस्य सूनुना ॥१
क्रुद्धेन यानि क्षिप्तानि ईश्वरेण महोदधौ । कृष्णस्य वचनाद्भूयः समुद्रेणार्पितानि वै ॥२
अर्पितानि ततस्तस्य तेन प्राप्तानि वै कथम् । बाहुलेयेन विप्रेन्द्र तानि मे वद सुव्रत ॥३

सुमन्तुरुवाच

यथा गुहेन राजेन्द्र स्त्रीपुंसां लक्षणानि वै । प्रोक्तानि कुरुशार्दूल तथा ते कथयामि वै ॥४
शक्तिपाताद्धते क्रौञ्चे व्योमकेशस्य सूनुना । ब्रह्मा तुष्टोऽब्रवीदेनं वरं वरय मेऽनघ ॥५

प्रकार विधि-विधान सहित गणेश तथा ग्रहों की पूजा करने से निर्विघ्न कार्य की समाप्ति तथा उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।३०। इसलिए अपनी सभी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए सूर्य कार्तिकेय और गणेश की तिलक समेत सविधि पूजा अवश्य करनी चाहिये ।३१

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में चतुर्थी कल्पवर्णननामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।२३।

अध्याय २४

पुरुष-लक्षण वर्णन

शतानीक बोले—हे महामते ! व्योमकेश (शिव) के पुत्र (स्वामिकार्त्तिकेय) ने स्त्री-पुरुषों के जिन लक्षणों को बनाया था, उन्हें क्रुद्ध होकर शिव जी ने समुद्र में डाल दिया था। विप्रेन्द्र ! किन्तु भगवान् कृष्ण के कहने से समुद्र ने फिर उन लक्षणों को स्वामिकार्त्तिकेय जी को लौटा दिया था। और कार्त्तिकेय ने उन्हें किस प्रकार प्राप्त किया । सुव्रत ! अतः आप उसी कथा को सुनाने की कृपा करें।१-३

सुमन्तु ने कहा—हे राजेन्द्र ! मैं उसी कथा को, जिसमें स्वामिकार्तिकेय ने स्त्री-पुरुषों के समस्त लक्षणों को बताया है, तुम्हें कह रहा हूँ ।४। जिस समय व्योमकेश के पुत्र स्वामिकार्तिकेय ने अपनी शक्ति के आघात से क्रौंच पर्वत का विदारण किया था उनसे उसी समय अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने कहा—हे पुण्यात्मन् !तुम्हारे इस कार्य से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अतः मुझसे यथेच्छ वरदान माँगो ।५। इसे सुनकर महा

असावपि महातेजाः प्रणम्य शिरसा विभुम् । पितामहं बभाषेदं लक्षणं ब्रूहि मे विभो ।।६
नराणां युवतीनां च कौतुकं परमं मम । यन्मयोक्तं पुरा देव प्रक्षिप्तं लवणार्णवे ।।७
मत्पित्रा देवदेवेश सक्रोधेन पुरा तथा । प्राप्तं च विस्मृतं भूयस्तन्मे ब्रूहि ह्यशेषतः ।।८

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टोऽस्मि देवेश भीमस्यानन्दवर्धन । लक्षणानि निबोध त्वं पुरुषाणामशेषतः ।।
अधमोत्तममध्यानि यानि प्राप पयोनिधिः ।।९
शिवेऽहनि सुनक्षत्रे ग्रहे सौम्ये शुभे रवौ । पूर्वाह्ले मङ्गलैर्युक्ते परीक्षेत विचक्षणः ।।१०
प्रमाणं संहतिं छायां गतिं सर्वाङ्गलक्षणम् । दन्तकेशनखश्मश्रु एतत्सर्वं विचक्षणः ।।११
पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत् । क्षीरे ह्यायुषि मर्त्यानां लक्षणैः किं प्रयोजनम् ।।१२
जघन्यो नवतिः प्रोक्तो मध्यमस्तु शताङ्गुलः । अष्टोत्तरशतं यस्य उत्तमं तस्य लक्षणम् ।।१३
प्रमाणलक्षणं प्रोक्तं समुद्रेण शुभाशुभम् । यन्मे पुरा देववर मया वै कथितं तव ।।
अतः परं प्रवक्ष्यामि देहावयवलक्षणम् ।।१४
पादैः समांसकैः[1] स्निग्धैः रक्तैः सौम्यैः सुशोभनैः । उन्नतैः स्वेदरहितैः शिराहीनैश्च पार्थिवः ।।१५

तेजस्वी स्वामिकार्त्तिकेय भी नतमस्तक होकर प्रणाम करते हुए ब्रह्मा से बोले—हे विभो ! मुझे उन लक्षणों को बताइये ।६। मैंने स्त्री-पुरुषों के जिन लक्षणों को कहा था, उसे क्रुद्ध होकर मेरे पिता ने समुद्र में डाल दिया था । वह मुझे प्राप्त हो गया था किन्तु मुझे अब उसका स्मरण भी नहीं हैं । अतः देवाधि देव ! विस्तारपूर्वक मुझे उसी को सुनाने की कृपा करें क्योंकि पुरुषों-स्त्रियों तथा मुझे भी उसे सुनने का महान् कौतुक है । देवाधिदेव ! विस्तार पूर्वक मुझे उसी को सुनाने की कृपा करें ।७-८

ब्रह्मा ने कहा—हे देवेश भीम के आनन्दवर्द्धक ! तुम्हारा प्रश्न बड़ा उत्तम है । मैं पुरुषों के उन उत्तम, मध्यम एवं अधम लक्षणों को, जिन्हें समुद्र ने प्राप्त किया है, तुम्हें सुना रहा हूँ ।९। शुभ नक्षत्र, सौम्य ग्रह और सूर्य के शुभ स्थान में रहते समय किसी शुभदिन के मांगलिक कर्मयुक्त पूर्वभाग में पुरुष के प्रमाण (लम्बाई), छाया-गति (चाल) दाँत, केश, नख, दाढ़ी एवं सर्वाङ्ग आदि लक्षणों की परीक्षा विद्वान् को करनी चाहिए ।१०-११। 'परीक्षा करते समय सर्व प्रथम आयु की परीक्षा होनी चाहिए पश्चात् और लक्षणों को कहे इसलिए कि यदि उस पुरुष की अल्पायु मालूम हुई तो लक्षण-परीक्षा व्यर्थ हो जायेगी ।१२। जो पुरुष अपने अंगुल-प्रमाण से एक सौ आठ, सौ एवं नब्बे अंगुल का ऊँचा हो, उसे क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम लक्षण वाला जानें ।' हे देव श्रेष्ठ ! समुद्र ने स्वयं मुझसे इस शुभाशुभ प्रमाण लक्षण को, जो मैंने आपको बताया है, कहा था । इसके पश्चात् मैं शरीर के सभी अंगों का लक्षण बता रहा हूँ ।१३-१४

जिस पुरुष के चरण, मांसल रक्तवर्ण, मनमोहक चिकने हों, सौम्य, सुशोभन, ऊँचे, स्वेद रहित तथा नसें जिसमें दिखाई न पड़ें, तो वह राजा होता है ।१५। जिसके चरण के तलुवे में अंकुश के समान रेखा हो,

---

१. समांसलैः ।

यस्य पादतले रेखा सांकुशेव प्रकाशते । सततं हि सुखं तस्य पुरुषस्य न संशयः ॥१६
अस्वेदनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ । श्लिष्टाङ्गुली[1] ताम्रनखौ सुपार्ष्णी[2] व्योमकेशज ॥१७
उष्णौ शिराविरहितौ गूढगुल्फौ च भीमज । कूर्मोन्नतौ च चरणौ प्रख्यातौ पार्थिवस्य तु ।१८
शूर्पाकृती महाबाहो रूक्षौ श्वेतनखौ तथा । वक्रौ शिरासन्ततौ च संशुष्कौ विरलाङ्गुली ॥१९
दारिद्र्यदुःखदौ ज्ञेयौ चरणौ भीमनन्दन । ब्रह्मघ्नौ देवशार्दूल[3] पक्वमृत्सदृशौ पदौ ॥२०
पीतावगम्यानिरतौ कृष्णौ पानरतौ सदा । अभक्ष्यभक्षणे श्वेतौ ज्ञेयौ सेनाधिपोत्तम ॥२१
अङ्गुष्ठौ पृथुलौ येषां ते नरा भाग्यवर्जिताः । क्लिश्यन्ते विकृताङ्गुष्ठास्ते नराः पादगामिनः ॥२२
चिपिटैर्विकृतैर्भग्नैरङ्गुष्ठैरतिनिन्दिताः । वक्रैर्भग्नैस्तथा ह्रस्वैरङ्गुष्ठैः क्लेशभागिनः ॥२३
शूर्पाकारैश्च विकृतैर्भग्नैर्वक्रैः शिराततैः । सस्वेदैः पाण्डुरूक्षैश्च चरणैरतिनिन्दिताः ॥२४
यस्य प्रदेशिनी दीर्घा अङ्गुष्ठं या अतिक्रमेत् । स्त्रीभोगं लभते नित्यं पुरुषो नात्र संशयः ॥
कनिष्ठायां तु दीर्घायां सुवर्णस्य तु भागिनः ॥२५
चिपिटा विरलाः शुष्का यस्याङ्गुल्यो भवन्ति वै । सभवेद्दुःखितो नित्यं धनहीनश्च वै[4] गुह ॥२६
श्वेतैर्नखैर्विरूक्षैश्च पुरुषा दुःखजीविनः । कुशीलाः कुनखैर्ज्ञेयाः कामभोगविवर्जिताः ॥
विकृतैः स्फुटितैरूक्षैर्नखैर्दारिद्र्यभागिनः ॥२७

वह निःसंदेह सर्वदा सुखी रहता है ।१६। हे कार्तिकेय ! स्वेदरहित, कोमल चरण-तल, कमल की भाँति सुन्दर, मिली हुई अँगुलियाँ, लाल रंग के नख, सुन्दर ऐड़ी, नसों से हीन, गरम घना गुल्फ और कछुवे के समान ऊँचे ऐसे चरण, राजा के ही होते हैं ।१७-१८। हे भीम नंदन, हे महाबाहो ! सूप के समान आकार, रेखा, श्वेतरंग के नख, टेढ़े, नसों मे घिरे हुए तथा सूखे अलग-अलग अंगुली वाले चरण दुःखी और दरिद्र पुरुष के होते हैं । देव शार्दूल ! पक्की मिट्टी के समान चरण वाला पुरुष ब्रह्महत्या करने वाला होता है ।१९-२०। हे सेनानायक ! इसी प्रकार जिसके चरण पीले वर्ण के हों वह अगम्या स्त्री के साथ गमन करने वाला, काले रंग के हो, तो वह शराबी एवं श्वेतरंग के हों तो वह अभक्ष्य का भक्षण करने वाला होता ।२१। जिसके चरण का अँगूठा मोटा हो तो वह भाग्यहीन एवं जिसके अँगूठे में किसी प्रकार का विकार हो, वे खुले पैरों पैदल चलने वाले होते हैं और दुःखी रहते हैं ।२२। चिपटे, विकार सहित और टूटे अंगूठे वाला मनुष्य अतिनिन्दनीय, छोटे, टेढ़े और टूटे अंगूठें वाला दुःखी होता है ।२३। इसलिए सूप के समान आकार, विकारी, टूटे, टेढ़े, नसों से भरे पसीने वाले, पीले वर्ण और रूखे चरण को अति निन्दित जानना चाहिए ।२४। जिसके चरण की तर्जनी अँगुली अँगूठे से बड़ी हो उसे निःसन्देह सदा स्त्री-सुख मिलता है । यदि कनिष्ठा बड़ी हुई तो सुवर्ण की प्राप्ति होती है ।२५। हे गुह ! जिसके चरण की अँगुलियाँ चिपटी, विरल एवं सूखी हुई हों वह सदा दुःखी तथा निर्धन रहता है ।२६। जिसके चरण-नख श्वेत, अति रुखे एवं किसी प्रकार के विकारी हों वह शील रहित दुःखी तथा संसार के सभी सुखों से वंचित रहता है । स्फुटित और रूखे हों वे दरिद्र होते हैं ।२७। हरे रंग के नख वाला पुरुष ब्रह्महत्या करने वाला तथा भाइयों से अलग

---

१. स्निग्धांगुली । २. पादौ वै । ३. नृपशार्दूल । ४. नित्यशः ।

ब्रह्महत्यां च कुर्वन्ति पुरुषा हरितैर्नखैः । बन्धुभिश्चवियुज्यन्ते कुलक्षयकराश्च ते ।।२८
इन्द्रगोपकसंकाशैर्नखैर्नृपतयः स्मृताः । शङ्खावर्तप्रतीकाशैर्नखैर्भवति पार्थिवः ।।२९
ताम्रैर्नखैस्तथैश्वर्यं धन्याः पद्मनखा नराः । रक्तैर्नखैस्तथैश्वर्यं पुष्पितैः सुभगो भवेत् ।।
सूक्ष्मैरुपचितैस्ताम्रैर्नखैर्नृपतयः स्मृताः ।।३०
रोमशाभ्यां च जङ्घाभ्यां दुःखदारिद्र्यभागिनः । बन्धनं ह्रस्वजङ्घानामैश्वर्यं चैव निर्दिशेत् ।।३१
[1]मृगजङ्घाश्च राजानो जायन्ते नात्र संशयः । दीर्घजङ्घाः स्थूलजङ्घा नित्यं भाग्यविवर्जिताः ।।३२
शृगालजङ्घाः पुरुषा नित्यं भाग्यविवर्जिताः । काकजंघा नरा ये तु भवेयुर्दुःखभागिनः ।।३३
[2]पीनजङ्घास्तथैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः । सिंहव्याघ्रसमा जङ्घा धनिनः परिकीर्तिताः ।।३४
पार्थिवानां भवेद्रोम चैकैकं रोमकूपके । पंडितश्रोत्रियाणां च द्वेद्वे ज्ञेये महामते ।।३५
त्रिभिस्त्रिभिस्तथा निःस्वा मानवा दुःखभागिनः । केशाश्चैव महाबाहो निन्दिता पूजितास्तथा ।।३६
निर्मांसजानुर्म्रियते प्रवासे शिवनन्दन[3] ।।३७
सौभाग्यमल्पैः कथितं दारिद्र्यं विकटैस्तथा । निम्नैः स्त्रीजिता ज्ञेयाः समांसै राज्यभागिनः ।।३८
[4]हंसभासशुकानां च तुल्यां यस्य गतिर्भवेत् । स भवेत्पार्थिवः पूज्यः[5] समुद्रवचनं यथा ।।३९
अन्येषामपि शस्तानां पक्षिणां च शुभा गतिः । वृषसिंहगजेन्द्राणां [6]गतिर्भोगविवर्धिनी ।।४०

और कुल का नाश करने वाला होता है ।२८। इन्द्रगोपक कीट के समान लाल रंग, शंख घुमाव के समान आकार वाले नख, राजाओं के होते हैं ।२९। ताम्रवर्ण नख वाले ऐश्वर्यशाली और कमल वर्ण के समान नख वाले धन्य होते हैं तथा रक्तवर्ण नख वाले ऐश्वर्यशाली होते हैं । पुष्पित (विकसित) नख वाले सुन्दर होते हैं । सूक्ष्म उपचित (पुष्ट) तथा ताम्रवर्ण के नख वाले राजा होते हैं ।३०। जिनकी जाँघ में लोम हों वह दुःखी एवं दरिद्र होता है । छोटी जाँघ वालों को बन्धन तथा ऐश्वर्य मिलता है ।३१। मृग के समान जाँघ वाले निःसन्देह राजा होते हैं । लम्बी, मोटी, सियार तथा कौवे की भाँति जाँघ वाले निरन्तर दुःखी एवं भाग्य-हीन होते हैं ।३२-३३। मोटी जाँघ वाले निरन्तर दुःखी एवं भाग्यहीन होते हैं । सिंह तथा बाघ के सामन जाँघ वाले धनी होते हैं ।३४। प्रत्येक रोम कूप में एक-एक रोम हों तो राजा, दो-दो हों तो वैदिक विद्वान् और तीन-तीन हों तो निर्धन एवं दुःखी होता है । हे महाबाहो ! इसी प्रकार लोम तथा केश का शुभ और अशुभ लक्षण जानना चाहिये ।३५-३६

हे शिव नन्दन ! जिसकी जानु (घुटने) मांसरहित हों उसकी मृत्यु विदेश में होती है ।३७। इसी प्रकार छोटी होने से सौभाग्य, विकट से दरिद्रता, नीची होने से स्त्री से पराजय तथा मोटी जानु राज्य प्रदान करने वाली होती है ।३८

जिसकी गति (चाल) हंस, मोर एवं शुक पक्षी के समान हो वह पूज्य राजा होता है । जैसा कि समुद्र ने बताया है ।३९। अन्य उत्तम पक्षियों के समान वाली गति भी शुभ सूचक होती है । बैल, सिंह और

---

१. भवन्ति नृपसत्तम । २. मीनजङ्घा । ३. दाण्डनन्दन, कुरुनन्दन । ४. हन्सभासशिखण्डीनाम् । ५. पृथ्व्याम् । ६. भाग्यविवर्द्धिनी ।

जलोर्मिसदृशी या च काकोलूकसमा च या । गतिर्द्रव्यविहीनानां दुःखशोकभयङ्करा ।।४१
श्वानोष्ट्रमहिषाणां [1]खरसूकरयोस्तथा । गतिर्मेषसमा येषां ते नरा भाग्यवर्जिताः ।।४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।२४।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दक्षिणावर्तलिङ्गश्च नरो वै पुत्रमान्भवेत् । वामावर्ते तथा लिङ्गे नरः कन्यां प्रसूयते ।।१
स्थूलैः शिरालैर्विषमैर्लिङ्गैर्दारिद्र्यमादिशेत् । ऋजुभिर्वर्तुलाकारैः पुरुषा पुत्रभागिनः ।।२
निम्नपादोपविष्टस्य भूमिं स्पृशति मेहनः । दुःखितं तं विजानीयात्पुरुषं नात्र संशयः ।।३
भूमौ पादोपविष्टस्य गुल्फौ स्पृशति मेहनः । ईश्वरं तं विजानीयात्प्रमदानां च वल्लभम्[2] ।।४
सिंहव्याघ्रसमो यस्य ह्रस्वो भवति मेहनः । भोगवान्स तु विज्ञेयोऽशेषभोगसमन्वितः ।।५
रेखाकृतिर्मणिर्यस्य मेहने हि विराजते । पार्थिवः स तु विज्ञेयः समुद्रवचनं यथा ।।६

हाथी वाली गति भोग को बढ़ाती है ।४०। जल की तरंगों, कौवे और उल्लू पक्षी के समान वाली गति, भयंकर एवं दुःख शोक उत्पन्न करने वाली होती है ।४१। इसी प्रकार कुत्ता, ऊँट, भैंसा, गधा, सूकर और भेड़ों के समान वाली गति दुर्भाग्य सूचक होती है ।४२

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में पुरुष-लक्षण वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।२४।

अध्याय २५

पुरुषों के लक्षण का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जिस पुरुष का लिङ्ग दाहिनी ओर झुका हो तो उसके पुत्र तथा बायें ओर झुकने से कन्यायें उत्पन्न होती हैं ।१।, मोटी-मोटी नसों वाला एवं विषम लिंग दरिद्र सूचक होता है । सीधा तथा वर्तुलाकार लिंग पुत्रवान होने का सूचक होता है ।२। नीचे पैर बैठने से जिसका लिंग पृथ्वी में छू जाय उसे निःसन्देह दुःखी जानना चाहिए ।३। इसी प्रकार भूमि में पैर पर बैठने पर यदि गुल्फ (एंड़ी), में लिंग छू जाय तो वह स्त्रियों का प्राणप्रिय और राजा होता है ।४। सिंह तथा बाघ के समान छोटे लिंग वाला पुरुष समस्त भोगों को भोगने वाला होता है ।५। समुद्र के कथनानुसार जिसके लिंग का अग्रभाग रेखा के समान हो वह राजा होता है ।६। इसी प्रकार सुवर्ण, चाँदी, मणि, मोती और पुवाल के समान वर्ण एवं स्निग्ध अग्र

---

१. खड्गशूकरयोस्तथा । २. दुर्लभम् ।

सुवर्णरजतप्रख्यैर्मणिमुक्तासमप्रभैः । प्रवालसदृशैः स्निग्धैर्मणिभिः पार्थिवो भवेत् ॥७
पाण्डुरैर्मलिनै रूक्षैर्दीर्घव्यासैर्दिशो व्रजेत् । समैस्तथोन्नतैश्चापि सुस्निग्धैर्मणिभिर्गृही ॥८
धनरक्षास्तथा स्त्रीणां भोक्तारस्ते भवन्ति हि । मणिभिर्मध्यनिम्नैस्तु पितरस्ते भवन्ति हि ॥९
युवतीनां महाबाहो निःस्वाश्चापि भवन्ति ते । नोल्बणैश्चापि धनिनो नरा वीरा भवन्ति हि ॥१०
मूत्रधारा पतेदेका वलिता दक्षिणा यदि । स भवेत्पार्थिवः पृथ्व्याः समुद्रवचनं यथा ॥११
द्वे धारे च तथा स्निग्धे धनवान्भोगवान्स्मृतः । बहुधारास्तथा रूक्षाः सशब्दाः पुरुषाधमाः ॥१२
मीनगन्धि भवेद्रेतो धनवान्पुत्रवान्भवेत् । हविर्गन्धि भवेद्यस्य धनाढ्यः श्रोत्रियः स्मृतः ॥१३
[1]मूषगन्धिर्भवेत्पुत्री पद्मगन्धिर्नृपः स्मृतः । लाक्षागन्धिर्भवेद्यश्च बहुकन्यः प्रजायते ॥
मद्यगन्धिर्भवेद्योद्धा क्षारगन्धिर्दरिद्रकः ॥१४
शीघ्रमैथुनगामी यः स दीर्घायुरतोऽन्यथा । अल्पायुर्देवशार्दूल विज्ञेयो नात्र संशयः ॥१५
तनुशुक्रः स्त्रीजनको मांसगन्धी च भोगवान् । पद्मवर्णं भवेद्रक्तं स नरो धनवान्भवेत् ॥१६
किञ्चिद्रक्तं तथा कृष्णं भवेद्यस्य तु शोणितम् । अधमः स तु विज्ञेयः सदा दुःखैकभाजनम् ॥१७
प्रवालसदृशं स्निग्धं भवेद्यस्य च शोणितम् । राजानं तं विजानीयात्सप्तद्वीपाधिपं गुह ॥१८

भाग वाला लिंग राजा होने का सूचक होता है ।७। जिसका लिंग पांडु (पीला-सफेद) मलिन, रूखा और लम्बे अग्रभाग वाला हो, तो वह चारों ओर घूमने वाला होता है । सम, ऊँचा और स्निग्ध (चिकना) अग्रभाग जिसके लिंग का हो, वह स्त्रियों का प्रिय एवं धन की रक्षा करने वाला होता है । यदि अग्रभाग के मध्य का भाग नीचा हो, तो वह केवल कन्याओं का पिता और निर्धन होता है । हे वीर ! उसके अस्पष्ट साफ न रहने पर भी वह पुरुष धनी होता है ।८-१०। जिसका मूत्र दाहिनी ओर एक धार होकर गिरे समुद्र के कथनानुसार वह राजा होता है ।११। चिकनाहट लिए हुए दो धार होकर गिरे तो वह धनवान तथा भोगी होता है । अधम पुरुषों का मूत्र, रूखा एवं कुछ ध्वनि करते हुए बहुधार होकर गिरता है ।१२। जिसके वीर्य में मछली की भाँति गंध हो, वह धनवान् एवं पुत्रवान् होता है । अग्नि में हवन करने पर उठे हुए गंध के समान गंध हो तो धनी और वैदिक विद्वान् हो ।१३। भेड़ के समान गन्धवाला पुत्रवान्, कमल की भाँति गंधवाला राजा होता है । लाह की भाँति गंध हो तो उसके अधिक कन्याएँ होती हैं । शराब की भाँति गंध होने से योद्धा तथा क्षार वस्तु के समान गन्ध होने से दरिद्र होता है ।१४। जो मैथुन शीघ्र करता है वह दीर्घायु होता है । हे देव शार्दूल ! इसके विपरीत हो तो उसे निश्चय अल्पायु जानना चाहिए ।१५। जिसके अल्प वीर्य हों उसके कन्यायें होती हैं । यदि मांस के समान गंध हो तो वह भोगी होता है । जिसका रक्त, लाल कमल की भाँति हो वह पुरुष धनवान होता है ।१६। जिसका रक्त, अल्प एवं काले रंग का हो, उसे अधम तथा सदा दुःखी जानना चाहिए ।१७। हे गुह ! जिसका रक्त, मूंगे के समान और चिकनाहट लिए हो, उसे सातों द्वीपों का राजा जानना चाहिए ।१८। पुरुषों की नाभि के नीचे का

---

१. मेषगन्धिर्भवेत्पुत्री ।

विस्तीर्णा मांसला स्निग्धा बस्तिः पुंसां प्रशस्यते। निर्मांसा विकटा रूक्षा बस्तिर्येषां न ते शुभाः ॥१९
गोमायुसदृशी यस्य श्वानोष्ट्रमहिषस्य च। स भवेद्दुःखितो नित्यं पुरुषो नात्र संशयः ॥२०
यश्चैकवृषणस्तात जले प्राणान्विमुञ्चति। स्त्रीचञ्चलस्तु विषमैः समै राज्यं प्रचक्षते ॥२१
ऊर्ध्वगैश्चापि ह्रस्वायुः शतञ्जीवी प्रलम्बधृक्। मानवाश्चापि रक्तैस्तु धनवन्तो भवन्ति वै ॥२२
स्थूलस्फिग्भवति क्षेमी द्रव्ययुक्तः समांसधृक्। व्याघ्रस्फिङ्मण्डलो राजा मण्डूकस्फिङ्नराधिपः॥
द्विमण्डलो महाबाहो सिंहस्फिक्सार्वभौमता ॥२३
उष्ट्रवानरयोर्यस्तु धारयेत्स्फिङ्महामते। धनधान्यविहीनोऽसौ विज्ञेयो भीमनन्दन ॥२४
पुमान्मृगोदरो धन्यो मयूरोदर एव च। व्याघ्रोदरो नरपती राजा सिंहोदरो भवेत् ॥२५
मण्डूकसदृशं यस्य पुरुषस्योदरं भवेत्। स भवेत्पार्थिवः पृथ्व्यां समुद्रवचनं यथा ॥२६
मांसलैर्ऋजुभिर्वृत्तैः पार्श्वैर्नृपतयः स्मृताः। ईश्वरो व्याघ्रपृष्ठस्तु सेनायाश्चैव नायकः ॥२७
सिंहपृष्ठो नरो यस्तु बन्धनं तस्य निर्दिशेत्। कूर्मपृष्ठास्तु राजानो धनसौभाग्यभागिनः ॥२८
विस्तीर्णं हृदयं येषां मांसलोमचितं समम्। शतायुषो विजानीयाद्भोगभाजो महाधनान् ॥२९
विरलाः शुष्कास्तथा रूक्षा दृश्यन्तेऽङ्गुलयः करे। स भवेद्दुःखितो नित्यं नरो दारिद्र्यभाजनम् ॥३०

भाग, चौड़ा मांस भरा हुआ एवं चिकना हो, तो शुभदायक तथा मांसहीन, विकट और रूखा हो तो अशुभ करने वाला होता है।१९। जिसका (मूत्राशय) सियार, कुत्ता, ऊँट और भैंसे के समान हो तो वह निःसंदेह पुरुष दुःखी रहता है।२०। हे तात! जिसके एक अण्डकोष हों, वह जल में प्राण-त्याग करता है। छोटे-बड़े होने; स्त्री-व्यभिचारी एवं सम होने से राज्य-लाभ होता है।२१। ऊपर उठा हो तो अल्पायु, अधिक लम्बा हो तो सौ वर्ष का जीवन तथा लाल रंग का हो तो वह मनुष्य धनवान् होता है।२२। कमर के नीचे का भाग स्थूल हो तो कल्याणकारी, मांस से भरा हो तो धनवान्, बाघ के समान हो तो राजाधिपति, मेढक के समान हो तो राजा और सिंह के समान हो तो दो देशों का सार्वभौम महाराजा होता है।२३। हे महामते! ऊँट और वानर के समान हो तो वह मनुष्य दरिद्र होता है।२४। जिसका उदर, मृग या मोर के समान हो वह उत्तम पुरुष, बाघ के समान हो तो नराधिप, सिंह के समान हो तो राजा होता है।२५। मेढक की भाँति जिसका उदर हो, वह समुद्र के कथनानुसार पृथ्वीपति होता है।२६

जिसका पार्श्व और पीठ मांस से भरा, सीधा एवं गोलाकार हो वह नराधिप होता है। जिसकी पीठ बाघ के समान हो वह सेनाधिपति, सिंह की भाँति हो तो कैदी और कछुवे के भाँति हो तो अनेक प्रकार का सुख भोगने वाला राजा होता है।२७-२८। जिसका हृदय चौड़ा, मांस एवं रोम से भरा हो तथा बराबर हो वह सौ वर्ष जीवित रहने वाला तथा अतुल धन का उपभोग करने वाला होता है।२९

हाथ की अंगुलियाँ, विरल, सूखी और रूखी हों तो वह मनुष्य सदा दुःखी एवं दरिद्र रहे।३०।

यस्य मीनसमा रेखा कर्मसिद्धिश्च तस्य तु । धनवान्स तु विज्ञेयो बहुपुत्रश्च मानवः ॥३१
तुला यस्य तु वेदी वा करमध्ये तु दृश्यते । तस्य सिध्यति वाणिज्यं पुरुषस्य न संशयः ॥३२
सौम्ये पाणितले यस्य द्विजस्य तु विशेषतः । यज्ञयाजी भवेन्नित्यं बहुवित्तश्च मानवः ॥३३
शैलं वाप्यथ वा वृक्षः करमध्ये तु दृश्यते । अचलां श्रियमाप्नोति बहुभृत्यसमन्वितः ॥३४
शक्तितोमरबाणासिरेखा[1] चापोपमा तथा । यस्य हस्ते महाबाहो स जयेद्विग्रहे रिपून् ॥३५
ध्वजश्चाप्यथ वा शंखः करमध्ये तु दृश्यते । समुद्रयायी स भवेद्धनी च सततं गुह ॥३६
श्रीवत्समथ वा पद्मं वज्रं वा चक्रमेव च । रथो वाप्यथ वा कुम्भो यस्य हस्ते प्रकाशते ॥
राजानं तं विजानीयात्परसैन्यविदारणम् ॥३७
दक्षिणे तु कराङ्गुष्ठे यवो यस्य तु दृश्यते । सर्वविद्याप्रवक्ता च भवेद्वै नात्र संशयः ॥३८
यस्य पाणितले रेखा कनिष्ठामूलमुत्थिता[2] । गता मध्यं प्रदेशिन्याः स जीवेच्छरदः शतम् ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५।

जिसके हाथ की रेखा मछली की भाँति हो उसे प्रत्येक कार्य में सफलता मिलती है तथा वह धनवान् और बहु पुत्रवान् होता है ।३१। जिसके हाथ के मध्य में तुला (तराजू) या वेदी की भाँति रेखा हो, उस पुरुष के व्यापार की सफलता में कोई संदेह नहीं रहता ।३२। जिस किसी का विशेषतया द्विज का करतल सुन्दर हो, वह नित्य यज्ञ करने वाला तथा महा धनवान् होता है ।३३। हाथ के भीतर पर्वत या वृक्ष के सामने रेखा दिखाई दे तो वह अचल लक्ष्मी (सम्पत्ति) एवं बहुत से सेवकों से युक्त होता है ।३४। हे महाबाहो ! जिसके हाथ की रेखा शक्ति, गुर्ज, बाण, तलवार और धनुष के समान हो, वह युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ।३५। हे गुह ! हाथ के मध्यम में ध्वज या शंख के समान रेखा हो तो वह सदा धनी एवं समुद्र की यात्रा करता है ।३६। जिसके हाथ में श्रीवत्स, कमल, वज्र, चक्र, रथ अथवा कलश के समान रेखा हो वह शत्रु की सेनाओं का नाश करने वाला राजा होता है ।३७। जिसके दाहिने हाथ के अंगूठे में जव का चिह्न हो तो वह सम्पूर्ण विद्याओं का निःसन्देह प्रवक्ता विद्वान् होता है ।३८। जिसके करतल की रेखा कनिष्ठा के मूल से निकल कर तर्जनी के मध्य में पहुँचती है, वह सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करता है ।३९

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में पुरुष-लक्षण वर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त ।२५।

---

१. पद्मनालोपमा भवेत् । २. उच्छ्रिता ।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

समकुक्षिर्भवेद्भोगी निम्नकुक्षिर्धनापहः । मायावी विषमा[1] कुक्षिस्तथा कुहकस्तदा ॥१
राजा स्यान्निम्नकुक्षिस्तु सार्वभौमो महाबलः । सर्पोदरा दरिद्राः स्युर्बहुभक्षाश्च सुव्रत ॥२
विस्तीर्णाभिर्मण्डलाभिरुन्नताभिश्च नाभिभिः । भवन्ति सुखिनो वीरा धनधान्यसमन्विताः ॥३
निम्नाभिरथ स्वल्पाभिः क्लेशभाजो भवन्ति हि । वलिर्मध्यङ्गता वीरा विषमा च विशेषतः ॥
धनहानिं तथा शूलं नित्यं जनयते विभो ॥४
वामावार्ता सदा शान्तिं करोतीति विदुर्बुधाः । करोति मेधां दक्षिणेन संप्रवृत्ता दिवस्पते ॥५
पार्श्वायता दीर्घमायुरैश्वर्यमूर्ध्वतः स्मृतम् । गवाढ्यतामधस्तात्तु करोतीति विदुर्बुधाः ॥६
शतपत्रकर्णिकाभा नाभिर्यस्य महामते । भूपत्वं कुरुते सा तु पुरुषस्य न संशयः ॥७
समोदरो भवेद्भोगी निस्वः स्याद्विषमोदरः । सूक्ष्मोदरो भवेद्वाग्मी बहुसम्पत्समन्वितः ॥८

अध्याय २६

पुरुषलक्षणवर्णन

ब्रह्मा बोले— सम कोख (पेट की दाहिनी और बाईं बगल) वाला मनुष्य भोगी, नीची-ऊँची कोख वाला चोर, एवं विष (ऊँची-नीची) कोखवाली पुरुष जाल साजी करके सदैव ठगने वाला होता है।१। सुव्रती ! इसी भाँति नीची कोख वाला महाबली एवं सार्वभौमराजा और सर्प की भाँति कोख वाला दरिद्र तथा अधिक भोजन करने वाला है।२। चौड़ी, गोल और ऊँची नाभि वाला मनुष्य सुखी, वीर तथा धन-धान्य से सदैव युक्त रहता है।३। नीची और छोटी नाभिवाला मनुष्य दुःखी रहता है। बलि (त्रिवली) के मध्य भाग में होकर विषम नाभि हो तो धन की हानि एवं सर्वदा शूल की पीड़ा देने वाली होती है।४। उसी प्रकार बाईं ओर से घूमी हुई नाभि सदा शान्तिदायक होती है इसे विद्वान् लोग भली-भाँति जानते हैं। हे दिवस्पते ! दाहिनी ओर से घूमी हुई नाभि मेधा (धारणा शक्ति) दायक होती है।५। जिसकी नाभि पार्श्वभाग (बगल) में लम्बी-चौड़ी हो, तो वह मनुष्य दीर्घायु, ऊपर की ओर लम्बी-चौड़ी हो तो ऐश्वर्यसम्पन्न एवं नीचे की ओर लम्बी-चौड़ी हो तो उसके अधिक गायें होती हैं जिसे पण्डित गण भली-भाँति जानते हैं।६। इसी प्रकार जिसकी नाभि कमल की भाँति हो वह निःसंदेह राजा होता है।७। सम उदर वाला मनुष्य भोगी, विषम (ऊँच-नीच) उदर वाला निर्धन और सूक्ष्म उदर वाला मनुष्य वीर उसी प्रकार वक्ता तथा महान् धनी होता है।८। पेट में एक बलि हो तो उस मनुष्य की शस्त्र से मृत्यु होती

---

१. यस्येति शेषः।

शस्त्रेणान्तं व्रजेद्वीर स्त्रीभोगं चाप्नुयात्तथा । आचार्यो बहुपुत्रश्च यथासङ्ख्यं विनिर्दिशेत् ॥९
वलिभिर्देवशार्दूल इत्याह स पयोनिधिः । अगम्यागामिनो ज्ञेया विषमाभिर्न संशयः ॥१०
ऋजुभिर्वसुभोगी स्यात्परदारविनिन्दकः । मांसलैर्मृदुभिः पार्श्वे राजा स्यान्नात्र संशयः ॥११
अनूर्ध्वचिबुका ये तु सुभगास्ते भवन्ति वै । निर्धना विषमैर्दीर्घैर्भवन्तीह सुवीरज ॥१२
पीनैश्चोपचितैर्निम्नैः [1]स्कन्धैर्भौमाङ्गसम्भव । राजानः सुखिनश्चापि भवन्तीह न संशयः ॥१३
समोन्नतं तु हृदयं समं च पृथु चैव हि । अवेपनं मांसलं च पार्थिवानां न संशयः ॥१४
खररोमचितं वीरशिरालं च विशेषतः । अधनानां भवेदेव हृदयं ऋभवोत्तम ॥
समवक्षसोऽर्थयुताः पीनैः शूराः स्मृता बुधैः ॥१५
तनुभिर्द्रव्यहीनाः स्युरसमैश्चाप्यकिञ्चनाः । वध्यन्ते चापि शस्त्रेण नात्र कार्या विचारणा ॥१६
हनुभिर्विषमैर्वीर जन्महीनो भवेन्नरः । यस्योन्नतो भवेद्धनुः स भोगी स्यान्न संशयः ॥१७
निर्मांसैर्विषमैर्वीर निःस्वो निम्नैः प्रचक्ष्यते । धनवांश्च भवेत्पीनैः सुखभोगसमन्वितः ॥
विषमैरर्थहीनः स्याद्दुःखभागी सदा नरः ॥१८
चिपिटग्रीवको दुष्टो मतो लोके स वै गुह । शूरः स्यान्महिषग्रीवो मृगग्रीवो भयातुरः ॥१९
कम्बुग्रीवो भवेद्राजा लम्बकण्ठोऽग्रलक्षणः । ह्रस्वग्रीवस्तु धनवान्सुसुखी भोगवांस्तथा ॥२०

है दो बलि हो तो स्त्री भोगी, तीन बलि हो तो आचार्य और उसके अधिक पुत्र होते हैं।९। हे देवशार्दूल ! इसी प्रकार समुद्र ने बताया था कि विषम बलि हो तो उसे निःसंदेह अगम्या (जो किसी प्रकार से भोग करने योग्य न हो) स्त्री के साथ गमन करने वाला जानना चाहिये।१०। सीधी बलि हो तो धन का उपभोग करने वाला एवं पर-स्त्री की निंदा करने वाला होता है। यदि दोनों ओर कोमल मांसों से भरी बलि हो तो वह निःसंदेह राजा होता है।११। ऊपर की ओर न बढ़ने वाली ठोड़ी निश्चित शुभदायक होती है। हे सुवीर पुत्र ! उसी प्रकार विषम और लम्बी ठोड़ी निर्धन करने वाली होती है। १२। इसी प्रकार मोटा उन्नत एवं नीचा कंधा राजा एवं सुखी बनाती है, इसमें कोई कोई संशय नहीं है।१३। सम, ऊँचा तथा सम मोटा, निष्कम्प और मांस से भरा हुआ हृदय राजाओं का ही होता है।१४। हे देवश्रेष्ठ ! कठोर रोम तथा नसों से भरा हुआ हृदय निर्धनों का होता है। जिसकी छाती सम हो तो धन देने वाली और मोटी हो तो शूर बनाने वाली होती है, ऐसा पंडितों का कहना है।१५। छोटी हो तो निर्धन और विषम हो तो भी निर्धन तथा अस्त्र से उसकी मृत्यु होती है। यह निर्विवाद सिद्ध है।१६। विषम ठोड़ी वाला मनुष्य जीवन-हीन होता है। जिसकी ठोड़ी ऊँची हो वह निःसंदेह भोगी होता है।१७। मांस-हीन, विषम और नीची ठोड़ी वाला निर्धन होता है। मोटी ठोड़ी हो तो वह धनवान्, सुखी एवं भोगी होता है। उसी भाँति विषम ठोड़ी वाला मनुष्य धनहीन तथा सदा दुःखी रहता है।१८। हे गुह ! जिसकी गर्दन चपटी हो संसार में उसका दुष्ट होना निश्चित बताया गया है। उसी प्रकार भैंसे की भाँति गर्दन वाला मनुष्य शूर, मृग के समान गर्दनवाला भयभीत, शंख के समान गर्दन वाला राजा, लम्बी गर्दन वाला अच्छे लक्षणों से भूषित

---

१. चिबुकैर्ऋभवोत्तम।

निर्मांसौ रोमशौ भग्नावल्पौ वापि विशेषतः। निर्धनस्येदृशावंसौ प्रख्यातौ व्योमकेशज ॥२१
भवेदरोमशं पृष्ठं धनिनां भीमसम्भव। सलोमशं तथा वक्रं निर्धनानां बलाधिप ॥२२
अस्वेदनावुन्नतौ च तथा पीनौ षडानन। समरोमसुगन्धौ च कक्षौ ज्ञेयौ धनान्वितौ ॥२३
अव्युच्छिन्नौ तथा श्लिष्टौ विपुलौ च सुराधिप। शूराणामीदृशावंसौ नगजानन्दवर्धन ॥२४
उद्बद्धबाहुको यस्तु वधबन्धनमाप्नुयात्। दीर्घबाहुर्भवेद्राजा समुद्रवचनं यथा ॥२५
प्रलम्बबाहुर्विज्ञेयो नरः सर्वगुणान्वितः। ह्रस्वबाहुर्भवेद्दासः परप्रेष्यकरोऽपि वा ॥२६
वामावर्तभुजा ये तु दीर्घायतभुजाश्च ये। सम्पूर्णबाहू राजा स्यादित्याह स पयोनिधिः ॥२७
ग्रीवा च [1]वर्तुलाकारा कम्बुरेखासमावृता। स भवेत्पार्थिवो भूमौ सर्वदुष्टनिबर्हणः ॥२८
दीर्घग्रीवा बकग्रीवा शुकग्रीवाश्च ये नराः। उष्ट्रग्रीवाः करिग्रीवाः सर्वे ते निर्धनाः स्मृताः ॥२९
इभाङ्गसदृशौ[2] वृत्तौ समौ पीनौ च सुव्रत। आजानुलम्बिनौ बाहू पार्थिवानां न संशयः ॥३०
दरिद्राणां लोमशौ ह्रस्वौ बाहू ज्ञेयौ सुरोत्तम। तस्कराणां च विषमौ स्थूलौ सूक्ष्मौ च सुव्रत ॥३१
निम्नं करतलं यस्य पितृवित्तं न तस्य वै। भवेदार्भवशार्दूल तथा भीरुश्च मानवः ॥३२
सुवृत्ततनुनिम्नेन धनवान्करतलेन तु। उत्तानकरतलो दाता भवतीति न संशयः ॥३३

और छोटे गर्दन वाला मनुष्य धनी, सुखी एवं भोगी होता है।१९-२०। शिव पुत्र! मांसरहित, रोम से भरा हुआ, टेढ़ा और छोटा कन्धा विशेषकर निर्धनों के लिए ही प्रसिद्ध है।२१। हे सेनानायक! उसी भाँति-रोमहीन पीठ धनिकों की और रोमवाली एवं टेढ़ी निर्धनों की होती है।२२। पीन से रहित, ऊँची मोटी, समान रोम और सुगंध वाली काँख धनवानों की होती है।२३। सुराधिप! पार्वती आनन्दवर्धन! सम, चौड़ा एवं घना, कन्धा शूरों का ही होता है।२४। जिसकी भुजा, ऊपर को ओर खिंची हुई होती है, वह मनुष्य बंधन में जकड़ा हुआ रहकर मरण को प्राप्त होता है। समुद्र के कथनानुसार दीर्घ भुजाओं वाला राजा होता है।२५। अधिक लम्बी भुजाओं वाले पुरुष सब गुणों से युक्त होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। छोटी भुजाओं वाला मनुष्य दास या संदेशवाहक होता है।२६। बाँई ओर से घूमी हुई लम्बी-चौड़ी भुजाओं वाला एवं पूरी भुजाओं वाला पुरुष राजा होता है, इसे समुद्र ने बताया है।२७। जिसकी गर्दन गोल तथा शंख की भाँति रेखाओं से युक्त हो वह पृथ्वी के समस्त दुष्टों का नाश करने वाला राजा होता है।२८। लम्बी-चौड़ी, बकुला, तोता, ऊँट और हाथी के समान गर्दन वाले मनुष्य निर्धन होते हैं।२९। हे सुव्रत! हाथी की सूँड के समान सम, गोल मोटी और घुटने तक वाली लम्बी, निःसंदेह ऐसी भुजाएँ राजाओं की होती है।३०। हे देवश्रेष्ठ! रोमवाली और छोटी भुजाएँ दरिद्रों की तथा ऊँची-नीची, पतली और मोटी भुजाएँ चोरी करने वालों की होती हैं।३१। जिसकी हथेली नीची होती है, उसे पिता का धन नहीं मिलता है और वह अनुत्साही (कायर) भी होता है।३२। सुन्दर, गोल, पतली एवं नीची हथेली वाला मनुष्य धनवान् तथा ऊँची हथेली वाला निःसंदेह दानी होता है।३३। ऊँची-नीची

---

१. बहुला यस्य। २. करिकरोपमावित्यर्थः।

विषमा भवन्ति विषमैर्निम्नाश्चापि विशेषतः । करतलैर्देवशार्दूललाक्षाभैरीश्वराः स्मृताः ॥३४
अगम्यागमनं पीतै रूक्षैर्निर्धनता स्मृता । अपेयपानं कुर्वन्ति नीलकृष्णैः सदैव हि ॥३५
निम्नाः स्निग्धा भवेन्नृणां रेखा करतले गुह । धनिनां न दरिद्राणामित्याह स पयोनिधिः ॥३६
विरलाङ्गुलयो ये तु ते दरिद्राः प्रचक्षते । धनिनस्तु महाबाहो ये घनाङ्गुलयो नराः ॥३७
वदनं मण्डलं यस्य धर्मशीलं तमादिशेत् । शुण्डवक्त्रा नरा ये तु दुर्भगास्ते न संशयः ॥३८
हरिवक्त्रा जिह्मवक्त्रा विकृतास्यास्तथा नराः । भग्नवक्त्राः करालास्याः सर्वे ते तस्कराः स्मृताः ॥३९
सम्पूर्णवक्त्रा राजानो गजसिंहाननास्तथा । छागवानरवक्त्राश्च धनिनः परिकीर्तिताः ॥४०
यस्य गण्डौ सुसम्पूर्णौ पद्मपत्रसमप्रभौ । कृषिभागी भवेन्नित्यं महावित्तश्च मानवः ॥४१
सिंहव्याघ्रगजेन्द्राणां कपोलः सदृशो यदि । महाभोगी स विज्ञेयः सेनायाश्चैव नायकः ॥४२
वदनं तु समं श्लक्ष्णं सौम्यं संवृतमेव हि । पार्थिवानां महाबाहो विपरीतन्तु दुःखदम् ॥४३
महामुखं तु देवेश दुर्भगत्वं प्रयच्छति । स्त्रीमुखं पुत्रनाशाय मण्डलं सुखितां व्रजेत् ॥४४
द्रव्यनाशाय वै दीर्घं पापदं भयदं तथा । धूर्तानां चतुरस्रं स्यात्पुत्रहानिकरं शृणु ॥४५
निम्नवक्त्रं च देवेन्द्र पुत्रहानिकरं भवेत् । ह्रस्वं भवति कीनाशे पूर्णकान्तं च भोगिनाम् ॥४६
रक्ताधरो नरपतिर्धनवान्कमलाधरः । स्थूलोष्ठा हनुमूलाश्च शुष्कैस्तीक्ष्णैश्च दुःखिताः ॥४७

और अधिकतर नीची हथेली अच्छी नहीं होती है । हे देव वीर ! लाह के समान हथेली वाला ऐश्वर्यवान् होता है ।३४। पीली हथेली से मनुष्य अगम्या (जो किसी प्रकार से भोग करने के योग्य न हो) स्त्री के साथ गमन, रूखी हथेली से निर्धन, नीली एवं काली हथेली से अपेय (जो किसी प्रकार पीने के योग्य न हो) वस्तु का सदैव पान करने वाला होता है ।३५। हे गुह ! नीची और चिकनी रेखा धनवानों की हथेली में होती है न कि दरिद्रों की, समुद्र ने बताया है ।३६। जिसकी अंगुलियाँ विरल होती है वे दरिद्र होते हैं । हे महाबाहो ! घनअंगुलियों वाले मनुष्य धनवान् होते हैं ।३७। जिसका मुख गोल होता है वह धार्मिक होता है । हाथी के सूँड़ के समान मुख वाले मनुष्य निःसंदेह भाग्यहीन होते हैं ।३८। सिंह की भाँति, टेढ़े, विकारी टूटे-फूटे और भयंकर मुखवाले सभी मनुष्य चोर होते हैं ।३९। सौन्दर्य-पूर्ण मुख राजाओं का होता है । हाथी, सिंह, बकरा एवं वानर की भाँति मुख वाले धनी होते हैं ।४०। जिसका कपोल पूर्ण-सुन्दर तथा कमल के पत्ते के समान हो, वह खेती का सदैव उपभोग करने वाला एवं महाधनी होता है ।४१। सिंह, बाघ और हाथी के समान कपोल वाला मनुष्य महान् भोगी तथा सेना-नायक होता है ।४२। सम, चिकना, गोल और सुन्दर मुख राजाओं का होता है । हे महाबाहो ! इसके विपरीत मुख, दुःखदायक होते हैं ।४३। हे देवेश ! बड़ा मुख भाग्य-हीन बनाता है । स्त्री के समान मुख पुत्र का नाश एवं गोल मुख सुखी करता है ।४४। लम्बा-चौड़ा मुख धन का नाश, पापी और भयप्रद होता है । उसी भाँति धूर्तों का मुख चौकोर होता है । हे देवेन्द्र ! अब पुत्र की हानि करने वाले (मुख) को बता रहा हूँ सुनो ! ।४५। नीचा मुख पुत्र की हानि करता है । छोटा मुख वाला मनुष्य नीच होता है एवं भोगी पुरुषों का मुख सौन्दर्य-पूर्ण होता है ।४६। लाल रंग के ओंठ वाला मनुष्य नराधिप होता है और कमल की भाँति ओंठ वाला धनवान् एवं मोटे-बड़े, सूखे और उग्र ओंठ वाले मनुष्य दुःखी होते हैं ।४७। हे गुह ! जिसका अग्रभाग फटा न हो,

अस्फोटिताग्रं स्निग्धं च नतं मृदु तथा गुह । सम्पूर्णं च सदा शस्तं श्मश्रु भूमिपतेर्गुह ॥४८
रक्तैश्चाल्पैस्तथा रूक्षैः श्मश्रुभिर्भीमनन्दन । नराश्चौरा भवन्त्येव परदाररतास्तथा ॥४९
निर्मांसौ यस्य वै कर्णौ संग्रामान्नाशमृच्छति[1] । चिपिटाभ्यां भवेद्भोगी ह्रस्वौ च कृपणस्य च ॥५०
शङ्कुकर्णश्च भूनाथः सर्वशत्रुभयङ्करः । दीर्घायू रोमशाभ्यां तु विपुलाभ्यां नराधिपः ।।
भोगी च स भवेन्नित्यं देवब्राह्मणपूजकः ॥५१
शिरावबद्धौ क्रूरस्य व्यालम्बौ च विशेषतः । मांसलौ सुखदौ ज्ञेयौ श्रवणौ व्योमकेशज ॥५२
भोगी स्यान्निगण्डो वै मन्त्री सम्पूर्णगण्डकः । शुभभाक्छुकनासस्तु चिरजीवी शुष्कनासिकः ॥५३
कुन्दकुण्डलसङ्काशैः प्रकाशैर्दशनैर्नृपः । ऋक्षवानरदन्ताश्च नित्यं क्षुत्परिपीडिताः ॥५४
हस्तिदन्ताः खरदन्ताः स्निग्धदन्ता गुणान्विताः । करालैर्विरलै रूक्षैर्दशनैर्दुःखजीविनः ॥५५
द्वात्रिंशदन्ता राजान एकत्रिंशच्च भोगवान् । त्रिंशदन्ता नरा नित्यं सुखदुःखित्वभागिनः ।।
ऊनत्रिंशच्च दशनैः पुरुषाः दुःखभागिनः ॥५६
कृष्णजिह्वो भवेत्प्रेष्यः स्वलया तु जिह्वया । भवेत्कोपस्य कर्ता वै स्थूलरूक्षश्च जिह्वया ॥५७
श्वेतजिह्वा नरा ज्ञेयाः शौचाचारसमन्विताः । पद्मपत्रसमा जिह्वा सूक्ष्मा दीर्घा सुशोभना ।।
स्थूला च न च विस्तीर्णा येषां ते मनुजाधिपाः ॥५८

चिकनी, नीचे की ओर झुकी हुई, कोमल और बालों से भरी हुई (अच्छी दाढ़ी राजा की होती है।४८। हे भीमनन्दन ! उसी प्रकार लाल, थोड़ी और रूखी दाढ़ी वाले मनुष्य चोर तथा व्यभिचारी होते हैं।४९। जिसके कान मांस-हीन हों, लड़ाई द्वारा उसका नाश होता है। चिपटे कान वाला मनुष्य भोगी, छोटे कान वाला कृपण (कंजूस) नुकीले कान वाला समस्त शत्रुओं के लिए भयंकर पृथ्वीपति, रोम से भरे हुए कान वाला दीर्घजीवी एवं बड़े कान वाला मनुष्य भोगी तथा देवता और ब्राह्मण की पूजा करने वाला राजा होता है।५०-५१। नसों से घिरे हुए कान निर्दयी मनुष्य के होते हैं। हे शिवपुत्र ! भली-भाँति लम्बे एवं मांस से भरे हुए कान सुखदायक होते हैं।५२। नीचे की ओर झुके कपोल वाला मनुष्य भोगी और सब भाँति सुन्दर कपोल वाला मन्त्री होता है। तोते के समान नाक वाला उत्तम पुरुष, सूखी नाक वाला दीर्घजीवी होता है।५३। उसी प्रकार कुन्द पुष्प की कली की भाँति चमकीले दाँत राजा के होते हैं। रीछ और बानर के समान दाँत वाले मनुष्य सदैव भूख से अत्यन्त दुःखी रहते हैं।५४। हाथी और गधे के समान तथा चिकने दाँत गुणवानों के होते हैं एवं कराल विरले और रूखे दाँत वालों का दुःखी जीवन होता है।५५। बत्तीस दाँत वाले मनुष्य राजा, एकतीस दाँत वाले भोगी, तीस दाँत वाले मनुष्य सदा समान सुख-दुःख भोगते हैं और उन्तीस दाँत वाले पुरुष सदैव दुःखी रहते हैं। काली और चित्र-विचित्र वर्ण की जीभ वाला मनुष्य सेवक, मोटी एवं रूखी जीभ वाला क्रोधी तथा सफेद जीभ वाला सदाचारी होता है। कमल के पत्ते की भाँति पतली और लम्बी जीभ बहुत अच्छी होती है। जिसकी जीभ अधिक मोटी तथा चौड़ी न हो तो वे राजा होते हैं।५६-५८। यदि नीची-चिकनी, छोटी और लाल रंग की जीभ हो तो वे निःसंदेह विद्याओं

---

१. न स गच्छति ।

निम्ना स्निग्धा च ह्रस्वा च रक्ताग्रा रसना यदि । सर्वविद्याप्रवक्तारस्ते भवन्ति न संशयः ॥५९
कृष्णतालुर्नरो यस्तु स भवेत्कुलनाशनः । सुखभागी दुःखभागी पीततालुर्नराधिपः ॥६०
विकृतं स्फुटितं रूक्षं तालुकं न प्रशस्यते । सिंहतालुर्नरपतिर्गजतालुस्तथैव च ॥
पद्मतालुर्भवेद्राजा श्वेततालुर्धनेश्वरः ॥६१
हंसस्वरा नरा धन्या मेघगम्भीरनिःस्वनाः । क्रौंचस्वनाश्च राजानो भोगवन्तो महाधनाः ॥६२
चक्रवाकस्वना धन्या राजानो धर्मवत्सलाः । कुम्भस्वनो नरपतिर्दुन्दुभिस्वन एव च ॥
रूक्षदीर्घस्वराः क्रूराः पशूनां सदृशा न तु ॥६३
[1]गुर्गुरस्वरसंयुक्ताः पुरुषाः क्लेशभागिनः । चाषस्वना भाग्ययुता भिन्नकांस्यस्वराश्च ये ॥
क्षीणभिन्नस्वरा ये स्युरधमास्ते प्रकीर्तिताः ॥६४
पार्थिवास्तनुनासाश्च दीर्घनासाश्च भोगिनः । ह्रस्वनासा नरा ये तु धर्मशीलास्तु ते मताः ॥६५
हस्त्यश्वसिंहनासाश्च सूचीनासाश्च ये नराः । तेषां सिध्यति वाणिज्यं हयानां चैव विक्रयः ॥६६
विकृता नासिका यस्य [2]स्थूलाग्रा रूपवर्जिता । पापकर्मा स विज्ञेयः सामुद्रवचनं यथा ॥६७
दाडिमीपुष्पसंकाशे भवेतां यस्य लोचने । [4]भूपतिः स तु विज्ञेयः सप्तद्वीपाधिपो गुह ॥६८
व्याघ्राक्षाः कोपना ज्ञेयाः [5]कर्कटाक्षाः कलिप्रियाः । बिडालहंसनेत्राश्च भवन्ति पुरुषाधमाः ॥६९

के विद्वान् होते हैं ।५९। काले रंग का तालू वाला पुरुष, कुल का नाश करने वाला होता है । पीले तालू वाला मनुष्य समान सुख-दुःख भोगने वाला राजा होता है ।६०। विकार समेत, फटी और रूखी तालू अच्छी नहीं होती है । सिंह, हाथी एवं कमल की भाँति तालू वाले मनुष्य राजा और सफेद तालू वाले धनवान् होते है ।६१। हंस की भाँति स्वर वाले मनुष्य प्रशंसा के पात्र होते हैं । मेघ के समान गम्भीर तथा करांकुल पक्षी के समान स्वर वाले मनुष्य भोगी एवं महाधनवान् राजा होते हैं ।६२। चक्रवाक (चकवा) के समान वाणी वाले मनुष्य ख्याति प्राप्त एवं धार्मिक राजा होते हैं तथा घड़े और नगाड़े के समान स्वर वाले राजा होते हैं । रूखी और जोर की वाणी जो पशुओं के समान न हो, बोलने वाले निर्दयी होते हैं ।६३। घर्घर वाणी वाले मनुष्य दुःखी रहते हैं । नीलकंठ के समान स्वर वाले भाग्यशाली और फूटे काँसे (धातु की भाँति) क्षीण एवं टूटी-फूटी वाणी वाले मनुष्य अधम होते हैं ।६४। पतली नाक वाले मनुष्य राजा, लम्बी-चौड़ी नाक वाले भोगी और छोटी नाक वाले मनुष्य धार्मिक होते हैं ।६५। हाथी, घोड़े, सिंह एवं सूई की भाँति नाक वाले मनुष्य सफल व्यापारी तथा घोड़े का रोजगार भी करते हैं ।६६। **जिसकी नाक में विकार अग्रभाग में मोटी एवं भद्दी हो समुद्र के कथनानुसार उन्हें पापी जानना चाहिए ।६७। हे गुह ! जिसकी आँखे अनार के फूल के समान हो वह सातों द्वीप का महाराजा होता है ।६८। बाघ के समान आँखों वाला मनुष्य क्रोधी, केकड़ा की भांति आँख वाला कलह-प्रिय (झगड़ालू) और बिल्ली एवं हंस की भाँति आँखों वाला मनुष्य नीच होता है ।६९। मोर तथा नेवला के समान आँख**

---

१. दुःखी । २. दुर्वाच । ३. मांसला । ४. पुरुषः । ५. कुक्कुटाक्षाः । ६. न स्त्री त्यजति ।

मयूरनकुलाक्षाश्च नरास्ते मध्यमाः स्मृताः । न [1]श्रीस्त्यजति सर्वज्ञ पुरुषं मधुपिङ्गलम् ।।७०
आपिङ्गलाक्षा राजानः सर्वभोगसमन्विताः । रोचना हरितालाक्षा गुञ्जापिङ्गा धनेश्वराः ।।
बलसत्त्वगुणोपेताः पृथिवीचक्रवर्तिनः ।।७१
द्विमात्रावीक्षणा नित्यं जीवन्ति परमाश्रिताः । त्रिमात्रास्यन्दिनो ज्ञेयाः पुरुषाः सुखभागिनः ।।७२
चतुर्मात्रानिमेषैश्च नयनैरीश्वराः स्मृताः । दीर्घायुषो धर्मरताः पञ्चमात्रानिमेषिणः ।।७३
ह्रस्वकर्णा महाभागा महाकर्णाश्च ये नराः । आवर्तकर्णा धनिनः स्निग्धकर्णास्तथैव च ।।७४
दीर्घायुषः शुक्तिकर्णाः शङ्खकर्णा महाधनाः । दीर्घायुषो दीर्घकर्णा लम्बकर्णास्तपस्विनः ।।७५
ललाटेनार्धचन्द्रेण भवन्ति पृथिवीश्वराः । विपुलेन ललाटेन महाधनपतिः स्मृतः ।।
स्वल्पेन तु ललाटेन नरो धर्मरतः स्मृतः ।।७६
रेखा पञ्च ललाटे तु स्त्रिया वा पुरुषस्य वा । शतं जीवति वर्षाणामैश्वर्यं चाधिगच्छति ।।७७
चतूरेखामशीतिं तु त्रिभिः सप्ततिमेव च । द्वाभ्यां षष्टिं तु रेखाभ्यां चत्वारिंशत्तथैकया ।।
अरेखेन ललाटेन विज्ञेया पञ्चविंशतिः ।।७८
रेखाच्छेदैस्तु विज्ञेया हीनमध्योत्तमा नराः । अल्पायुषस्तथाल्पाभिर्व्याधिभिः परिपीडिताः ।।७९
त्रिशूलं पट्टिशं वापि ललाटे यस्य दृश्यते । ईश्वरं तं विजानीयाद्भोगिनं कीर्तिमाश्रितम् ।।८०

वाले मनुष्य अधम श्रेणी के होते हैं। शहद के समान भूरा लिए हुए लाल या पीतवर्ण की आँख वाले का त्याग, लक्ष्मी कभी नहीं करती हैं।७०। एकमात्र लाल या थोड़ी पीली (कंजा) आँख वाले मनुष्य संपूर्ण उपभोग करने वाले राजा होते हैं। गोरोचन, हरताल और घुँघुची के समान आँख वाले सात्विक एवं चक्रवर्ती राजा होते हैं।७१। दो क्षण तक अपलक देखने वाला मनुष्य किसी बड़े के आश्रित रहकर जीवन व्यतीत करता है। तीन क्षण तक अपलक देखने वाला सुखी रहता है।७२। चार क्षण तक अपलक देखने वाला स्वामी होता है और पाँच क्षण तक अपलक देखने वाला मनुष्य दीर्घजीवी और धार्मिक होता है।७३। छोटे कान एवं विशाल कान वाले मनुष्य पुण्यात्मा होते हैं। भँवर की भाँति कान वाले और चिकने कान वाले धनवान् होते हैं।७४। सीप के समान कान वाले दीर्घजीवी, शंख की भाँति कान वाले महाधनवान्, लम्बे कान वाले दीर्घजीवी एवं तपस्वी होते हैं।७५। अर्द्धचन्द्र की भाँति ललाट वाले महीपति, बड़े-चौड़े ललाट वाले महाधनी और छोटे ललाट वाले मनुष्य धर्मप्रिय होते हैं।७६। पुरुष या स्त्री के भाल में पाँच रेखा हो तो वह सौ वर्ष का जीवन एवं ऐश्वर्य प्राप्त करता है।७७। चार रेखा वाले अस्सी वर्ष, तीन रेखा वाले सत्तर वर्ष, दो रेखा वाले साठ वर्ष, एक रेखा वाले चालीस वर्ष और बिना रेखा वाले मनुष्य पच्चीस वर्ष की आयु प्राप्त करते हैं।७८। इस रेखा विभाग द्वारा मनुष्य की आयु उत्तम, मध्यम और अल्पायु जाननी चाहिए। अल्पायु वाले मनुष्य कुछ रोग से सदैव दुःखी भी रहते हैं।७९। जिसके भाल में त्रिशूल या वज्र दिखाई दे वह ख्याति प्राप्त अधिनायक एवं भोगी होता है।८०।

---

१. न स्त्री त्यजति।

उत्क्रान्तनिम्नं तु शिरः स्वल्पोपहतनेव च । चन्द्राकारं[1] नरेन्द्राणां गवाढ्यं मङ्गलं स्मृतम् ॥८१
विषमं तु दरिद्राणां शिरो दीर्घं तु दुःखिनाम् । नागकुम्भनिभं राज्ञः समं सर्वत्र भोगिनः ॥८२
कपिलैः स्फुटितै रूक्षैः स्थूलैश्च शिखरेशयैः । दुःखिता पुरुषा ज्ञेया रोमश्मश्रुभिरेव च ॥८३
रूक्षा विवर्णा निस्तेजाः खराः स्थूलाश्च मूर्धजाः । नातिस्तोका न बहुशो मूर्धजा दुःखभागिनः ॥८४
विरलाश्च मृदुस्निग्धा भ्रमराञ्जनसप्रभाः । कचा यस्य तु दृश्यन्ते स भवेत्पृथिवीपतिः ॥८५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे
पुरुषलक्षणवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ।२६।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षण-वर्णनम्

कार्तिकेय उवाच

संक्षेपतो मम विभो लक्षणानि नृपस्य तु । शुभानि चाङ्गजातानि ब्रूहि मे वदतां वर ॥१

ब्रह्मोवाच

शृणु वक्ष्येङ्गजातानि पार्थिवस्य शुभानि च । पार्थिवो ज्ञायते यैस्तु नराणां मध्यभागतः ॥२

ऊँचाई-नीचाई लिए (चढ़ाव-उतार) कुछ दबे हुए एवं चन्द्राकार शिर राजाओं के लिए माङ्गलिक, अधिक गौओं को देने वाला कहा गया है ।८१। दरिद्रों का ऊँचा या नीचा, दुःखी लोगों का लम्बा, राजा का गजकुंभ के समान और सर्वत्र उपभोग करने वाले मनुष्य का सम, सिर होता है ।८२। कपिल (भूरा) फटे, रूखे एवं मोटे बाल, शिर देह या दाढ़ी के हों तो उस पुरुष को दुःखी जानना चाहिए ।८३। रूखे कांतिहीन, निस्तेज, नुकीले, मोटे, न अति अल्प एवं न अत्यधिक शिर के बाल दुःखी मनुष्य के होते हैं ।८४। विरल, कोमल, चिकने तथा भौंरे की भाँति काले बाल जिसके शिर में हों वह मनुष्य भूपति होता है ।८५

श्रीभविष्य महापुराण में ब्रह्मपर्व के चतुर्थीकल्प में पुरुष लक्षण वर्णन नामक
छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२६।

अध्याय २७

पुरुषों के लक्षण का वर्णन

कार्तिकेय ने कहा—हे कहने वालों में श्रेष्ठ प्रभो ! मुझसे संक्षेप में राजा का लक्षण और उनकी शरीर के शुभसूचक अंगों को भी बताइये ।१

ब्रह्मा बोले—राजा के उन शुभ अंगों को, जिनके द्वारा मनुष्यों के बीच में राजा को जाना जा सके, मैं कहता हूँ, सुनो ! ।२। हे महाबाहो ! हे प्रभो ! जिस मनुष्य के तीन बड़े, छः ऊँचे, तीन गंभीर, चार छोटे, सात

---

१. छत्राकारम् ।

त्रीणि यस्य महाबाहो विपुलानि नरस्य तु । उन्नतानि तथा षड् वै गम्भीराणि च त्रीणि वै ।।३
चत्वारि चापि ह्रस्वानि सप्त रक्तानि वा विभो । दीर्घाणि चापि सूक्ष्माणि भवन्ति यस्य पञ्च वा ।।४
नाभिः संधिः स्वनश्चेति गम्भीराणि च त्रीणि वै । वदनं च ललाटं च दन्तोत्तम उरस्तथा ।।५
विस्तीर्णमेतत्त्रितयं वीर यस्य नरस्य तु । स राजा नात्र सन्देहः शृणुष्वेवोन्नतानि च ।।६
कृकाटिका तथा चास्यं नखा वक्षोऽथ नासिका । कक्षे चापि महाबाहो षडेतानि विदुर्बुधाः ।।७
लिङ्गं पृष्ठं तथा ग्रीवा जङ्घा ह्रस्वानि सुव्रत । नेत्रान्ते हस्तपादौ तु ताल्वोष्ठौ च सुरोत्तम ।।
जिह्वा रक्ताः नखाश्चैव सप्तैतानि महामते ।।८
त्वचः कररुहाः केशा दशना श्चैवोत्तम । सूक्ष्माण्येतानि च गुह पञ्च चापि विदुर्बुधाः ।।९
नासिकालोचने बाहू स्तनयोरन्तरं हनुः । इति दीर्घमिदं प्रोक्तं पञ्चकं भूभुजां नृप ।।१०
क्षुतं राज्ञां सकृद्द्विस्त्रिर्नादितं ह्लादितं तथा । दीर्घायुषां प्रयुक्तं ते हसितं च विदुर्बुधाः ।।११
पद्मपत्रनिभे नेत्रे धनिनां शिवनन्दन । भार्गवीमाप्नुयात्सोऽपि रक्तान्ते यस्य लोचने ।।१२
मधुपिङ्गैर्महात्मानो नरा ज्ञेयाः सुराधिप । भीरवो हि कृशाक्षास्तु चौरा मण्डलचक्रकैः ।।१३
क्रूराः केकरनेत्रास्तु[1] गम्भीरैरर्थसम्पदः । नीलोत्पलाभैर्वेदविदो भृशं कृष्णैस्तथार्थिता ।।
मन्त्रित्वं स्थूलसुदृशो वदन्ति भुवि तद्विदः ।।१४

लाल, पाँच लम्बे एवं पाँच पतले हों । जैसे—जिस पुरुष की नाभि, संधि (गांठ या स्वभाव) और वाणी ये तीनों गंभीर हों तथा हे दन्तोत्तम ! मुख, ललाट एवं छाती ये तीनों चौड़ी हों, वह निःसंदेह राजा होता है। उसी प्रकार ऊँचे स्थानों को भी कह रहा हूँ, सुनो ।३-६। गले की घाँटी, मुख, नख, उरुस्थल, नाक और काँख इन छहों को विद्वानों ने ऊँचे बताये हैं ।७। हे सुव्रत ! लिंग, पीठ, गला एव जाघ ये छोटे, नेत्र का बाहरी कोना, हाथ, पाँव, तालू ओंठ और जीभ एवं नख ये सातों लालरंग के होने चाहिये ।८। हे देवश्रेष्ठ ! उसी भाँति अंगुलियों का पोर देह का ऊपरी चमड़ा, नख, केश एवं दाँत को पतला होना, विद्वानों ने बताया है ।८-९। नाक, आँख, भुजा, स्तनों के बीच का भाग (छाती) एवं ठुड्डी ये पाच राजा के लिए बड़े बताये गये हैं ।१०। उसी भाँति राजा की छींक कुछ ध्वनि के कारण और एक होती है । दो या तीन बार मधुर शब्द सहित छींक दीर्घजीवी लोगों की होती है, ऐसा विद्वानों ने बताया है ।११। हे शिवनन्दन ! कमल के पत्ते की भाँति नेत्र, धनवानों के होते हैं। जिसके नेत्र के बाहरी कोने का भाग लाल रंग हो उसे भी पृथ्वी-लाभ होता है ।१२। शहद की भाँति पिंगलवर्ण (भूरा लिये हुए लाल) वाले मनुष्य महात्मा होते हैं। हे सुराधिप ! पतली या छोटी आँख वाले भीरु और गोल पहिए की भाँति आख वाले चोर होते हैं ।१३। कंजी आँख वाले निर्दयी एवं गहरी आँख वाले धनवान, नीलकमल की भाँति आँख वाले वैदिक-विद्वान् और अत्यन्त काली आँख वाले भी धनवान् होते हैं। संसार में नेत्र के विद्वानों ने बड़ी एवं सौन्दर्यपूर्ण आँख वालों को मंत्री होना बताया है ।१४। श्याम वर्ण की आँख वाले सौभाग्यवान् एवं

---

१. क्रोधनाः कोकनेत्रास्तु ।

श्यामाक्षाः सुभगा ज्ञेया दीनाक्षैश्च दरिद्रता । विस्तीर्णैर्भोगिनो श्रेया विपुलैश्च तथा गुह ।।१५
अभ्युन्नताभिर्ह्रस्वायुर्विशालाभिः सुखी भवेत् । दरिद्रो विषमाभिस्तु ततो ज्ञेयः सुरोत्तम ।।१६
भ्रुवो बालेन्दुसदृशा धनिनामार्भवोत्तम । दीर्घाभिर्निर्धनो ज्ञेयः संसक्ताभिस्तु सुव्रत ।।१७
क्षीणाभिरर्थहीनाः स्युर्नरा ज्ञेयाःसुरोत्तम । मध्ये नतभ्रुवो ये च परदाररतास्तु ते ।।१८
विरलैरुन्नतैः शङ्खैर्धन्याः[1] स्युर्नात्र संशयः । निम्नैः स्तुत्यर्थसंसक्ता[2] उन्नतैश्च जनाधिपाः ।।१९
विषमललाटा विधनाः सदा स्युर्देवसत्तम । आचार्याः शुक्तिसदृशैर्नराः स्युर्नात्र संशयः ।।२०
उन्नतशिरोभिराढ्या नरा ज्ञेयाः सदा गुह । वधबन्धभागिनो वीरा नरा निम्नललाटिनः ।।
कृशमुन्नतैश्च मूर्खाश्च कृपणाश्च तथा नतैः ।।२१
शुभावहं मनुष्याणां वदनं स्याद्यथा शृणु । अदीनमाननं स्निग्धं सस्मितं च विशेषतः ।।२२
साश्रुदीनं तथा रूक्षमस्निग्धं निन्दितं[4] गुह । असम्भाव्यं मुखं ज्ञेयं नराणां नगदारण ।।२३
अकम्पं शुभदं ज्ञेयं नराणां हसितं गुह । निमीलिताक्षं पापस्य हसितं चार्भवोत्तम ।।२४
समामण्डलं शिरो यस्य स गवाढ्यो नरो भवेत् । छत्राकृति शिरो यस्य स भवेद्भूपतिर्नरः ।।२५
चिपिटाकारितशिरा हन्याद्वै पितरौ नरः । घण्टाकृति शिरोऽध्वानमसकृत्सेवते नरः ।।

दीनहीन आँखों वाला दरिद्र होता है। हे गुह ! उसी प्रकार चौड़ी और बड़ी आँखों वाले को भोगी जानना चाहिए।१५। हे सुरोत्तम ! चारों ओर से ऊँची आँख वाला अल्पायु, विशाल नेत्र वाला सुखी और विषम आँख वालों को दरिद्र जानना चाहिए।१६। धनवानों की भौंहें नवीन चन्द्रमा (द्वितीया के चन्द्रमा) की भाँति होती है। हे सुव्रत ! सुरोत्तम ! भली-भाँति आपस में मिली हुई और लम्बी चौड़ी भौंह वाले निर्धन तथा दुबली-पतली भौंह वाले को भी निर्धन जानना चाहिए। जिसकी भौंह का मध्य भाग नीचा हो, वह व्यभिचारी होता है।१७-१८। विरल, ऊँची एवं शंख के समान, भौंह वाले मनुष्य निःसंदेह प्रतिष्ठित होते हैं। नीची भौंह वाले मनुष्य सदैव प्रशंसा करने में लगे रहते हैं और ऊँची भौंह वाले नराधिप होते हैं।१९। हे देवश्रेष्ठ ! विषम ललाट वाले सदैव धन-हीन रहते हैं। सीप की भाँति ललाट वाले निःसंदेह आचार्य होते हैं।२०। हे गुह ! ऊँचे शिर वाले सदा धनवान् होते हैं। नीचे ललाट वाले बंधनों से बँधे हुए होते हैं। और मारे जाते हैं। अत्यन्त ऊँचे मस्तक वाले मूर्ख एवं झुके हुए मस्तक वाले कृपण (कंजूस) होते हैं।२१। पुत्र ! मैं मनुष्यों के शुभसूचक मुख को बता रहा हूँ, सुनो ! उदार, कान्तिमान एवं विशेषकर मन्द मुस्कान वाला मुख उत्तम होता है।२२। हे गुह ! हे पर्वत विदारक ! आसुओं समेत, दीन-हीन, रूखा तथा कान्तिहीन मुख अशुभ कारक होता है। मनुष्यों के ऐसे मुख को सदैव अश्रेयस्कर जानना चाहिए।२३। हे गुह ! मनुष्यों की निष्कंप हँसी शुभदायक होती है। हे देवश्रेष्ठ ! पापी लोग आँख मूँदकर हँसते हैं।२४। चारों ओर से गोल शिर जिसका हो उसे अधिक गायें रहती हैं। जिसका शिर छत्ते के समान हो वह मनुष्य राजा होता है।२५। चिपटे शिर वाले मनुष्य माँ-बाप के घातक होते हैं। घंटे के समान शिर वाला पुरुष सदा पथिक बना रहता है। हे देवश्रेष्ठ ! मनुष्यों का नीचा शिर हानिकारक होता है।२६। गोल,

---

१. धनाढ्याः। २. सुतान्नसंसक्ताः। ३. अदीनानश्रुस्निग्धं च। ४. च तथा गुह।

निम्नं शिरोनर्थदं स्यान्नराणामर्भवोत्तम ॥२६
गुडैः स्निग्धैस्तथा कृष्णैरभिन्नाग्रैस्तथैव हि । केशैर्न चातिबहुलैर्मृदुभिः पार्थिवो भवेत् ॥२७
बहुलाः कपिलाः स्थूला विषमाः स्फुटितास्तथा । परुषा ह्रस्वातिकुटिला दरिद्राणां कचाः घनाः ॥२८
इत्युक्तं लक्षणं नृणां शुभं वाशुभमेव च । योषितां तदिदानीं ते लक्षणं वच्मि भीमज ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।२७।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शृण्विदानीं महाबाहो स्त्रीलक्षणमनुत्तमम् । यन्मयोक्तं पुरा वीर नारदस्य महात्मनः ॥१
तत्त्वं विज्ञायते येन शुभाशुभमवस्थितम् । निन्दितं च प्रशस्तं च स्त्रीणां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥२
मातरं पितरं चैव भ्रातरं मातुलं तथा । द्वौ तु बिम्बौ परीक्षेत समुद्रस्य वचो यथा ॥३
मुहूर्ते तिथिसम्पन्ने नक्षत्रे चाभिपूजिते । द्विजैस्तु सह वागम्य कन्यां वीक्षेत शास्त्रवित् ॥४
हस्तौ पादौ परीक्षेत अङ्गुलीर्नखमेव च । [1]पाणिमेव च जङ्घे च कटिनासोरु एव च ॥५

चिकने, काले, जिसका अग्रभाग फटा न हो, कोमल एवं अधिकता न हो, तो ऐसे केश वाला मनुष्य राजा होता है ।२७। अधिक कपिल, (भूरा) मोटे, विषम, अग्रभाग फूटे, कड़े, छोटे, अत्यन्त टेढ़े और घन केश दरिद्रों के होते हैं ।२८। हे भीमपुत्र ! मैंने इस प्रकार पुरुषों का शुभ एवं अशुभ-सूचक लक्षण बता दिया । अब स्त्रियों का शुभ-अशुभ लक्षण तुम्हें बता रहा हूँ ।२९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में पुरुष-लक्षण नामक सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ।२७।

अध्याय २८

स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—हे महाबाहो ! इस समय स्त्री के उन लक्षणों को, जिन्हें पहले मैंने महात्मा नारद जी को बताया था, कह रहा हूँ, सुनो ! ।१। जिनके द्वारा स्त्रियों का शुभ-अशुभ मालूम होता है, उन अच्छे और बुरे लक्षणों को मैं बता रहा हूँ ।२। माँ-बाप, भाई और मामा (अर्थात् दोनों भ्रातृकुल और पितृकुल) की परीक्षा समुद्र के वचनानुसार होनी चाहिए ।३। किसी शुभ-मुहूर्त, तिथि एवं अच्छे नक्षत्र में लक्षणों का विद्वान्, ब्राह्मणों के साथ जाकर कन्या को देखे ।४। पश्चात् हाथ, चरण, अंगुली, नख, करतल, जाँघ,

---

१. पाणिरेखा च ।

जघनोदरपृष्ठं च स्तनौ कर्णौ भुजौ तथा । जिह्वां चोष्ठौ च दन्ताश्च कपोलं गलकं तथा ।।६
चक्षुर्नासा ललाटं च शिरः केशांस्तथैव च । रोमराजिं[१] स्वरं वर्णमावर्तानि तु वा पुनः ।।७
यस्यास्तु रेखाग्रीवायां या[२] च रक्तान्तलोचना । यस्य सा गृहमागच्छेत्तद्गृहं सुखमेधते ।।८
ललाटे दृश्यते यस्यास्त्रिशूलं देवनिर्मितम् । बहूनां स्त्रीसहस्राणां स्वामिनीं तां विनिर्दिशेत् ।।९
राजहंसगतिर्यस्या मृगाक्षी मृगवर्णिका । समशुक्लाग्रदन्ता च कन्यां तामुत्तमां विदुः ।।१०
मण्डूककुक्षी या कन्या न्यग्रोधपरिमण्डला । एकं जनयते पुत्रं सोऽपि राजा भविष्यति ।।११
हंसस्वरा मृदुवचा या कन्या मधुपिङ्गला । अष्टौ जनयते पुत्रान्धनधान्यविवर्धिनी ।।१२
आयतौ श्रवणौ यस्याः सुरूपा चापि नासिका । भ्रुवौ चेन्द्रायुधाकारौ सात्यन्तं सुखभागिनी ।।१३
तन्वी श्यामा तथा कृष्णा स्निग्धाङ्गी मृदुभाषिणी । शङ्खकुन्देन्दुदशना भवेदैश्वर्यभागिनी ।।१४
विस्तीर्णं जघनं यस्या वेदिमध्या तु या भवेत् । आयते विपुले नेत्रे राजपत्नी तु सा भवेत् ।।१५
यस्याः पयोधरे वामे हस्तेकर्णे गलेऽपि वा । मशकं तिलकं वापिसा पूर्वं जनयेत्सुतम् ।।१६
गूढगुल्फाङ्गुलिशिरा अल्पपार्ष्णिः सुमध्यमा । रक्ताक्षी रक्तचरणा सात्यन्तं सुखभागिनी ।।१७
कूर्मपृष्ठायतनखौ स्निग्धभावविवर्जितौ । वक्राङ्गुलितलौ पादौ कन्यां तां परिवर्जयेत् ।।१८
येन केनचिदंशेन मांसं यस्या विवर्धते । रासभीं तादृशीं विद्यान्न सा कल्याणमर्हति ।।१९

कमर, नाक, घुटना, उदर, पीठ, स्तन, कान, भुजा, जीभ, ओठ, दाँत, कपोल, कण्ठ, आँख, मस्तक, शिर, केश, रोमावली, स्वर, वर्ण और नाभि की परीक्षा करे।५-७। जिसके गले में रेखा तथा आँख के समीप का भाग लाल रंग हो, वैसी स्त्री जिस घर में आती है उस घर में उत्तरोत्तर सुख की वृद्धि होती है।८। जिसके भाल में त्रिशूल का चिह्न हो, वह अनेक सहस्र स्त्रियों की अधिकारिणी होती है।९। जिसकी राजहंस की भाँति गति (चाल), मृग के समान आँखें तथा वर्ण एवं सम और कांतिमान् सामने वाले दाँत हों वह उत्तम कन्या बताई गई है।१०। जिसकी मेढक की भाँति कोख हो और वट वृक्ष के समान मण्डलाकार हो वह स्त्री एक पुत्र उत्पन्न करती है, जो राजा होता है।११। जिस कन्या का हंस के समान स्वर, कोमल वाणी एवं शहद के समान (भूरा लिए हुए लाल) वर्ण हो, वह धन-धान्य की वृद्धि करती हुई आठ पुत्रों को उत्पन्न करती है।१२। जिसके लम्बे कान, सुन्दर नाक और इन्द्रधनुष की भाँति भौंहें हों, वह अत्यन्त सुख का उपभोग करती है।१३। जिसकी पतली देह, साँवला रंग, चिकने एवं कान्तिमान् अंग, कोमल वाणी और शंख, कुंद एवं चन्द्र की भाँति दाँत हों, वह स्त्री ऐश्वर्य का उपभोग करती है।१४। जिसकी चौड़ी जाँघ, वेदी की भाँति (पतली) मध्यम भाग तथा लम्बी चौड़ी आँख हों, वह राजा की स्त्री होती है।१५। जिसके बायें स्तन, हाथ, कान एवं गले में मसा या तिल हो वह पहले पुत्र पैदा करती है।१६। जिसकी एँड़ी के ऊपर की गाँठ और नसें मांसल (मास से छिपी) अंगुलियाँअतिसमीप, छोटी एँड़ी, सुन्दर कमर, आँख और चरण लाल हों वह अत्यन्त सुख का उपभोग करती है।१७। जिसके कछुवे की पीठ की भाँति चौड़े नख, टेड़ी अंगुली, कान्तिहीन चरणताल हो उस कन्या के साथ विवाह न करें।१८। जिसके किसी अंग का मांस बढ़ता हो, ऐसी स्त्रियों को (गधी के समान) जो कल्याण के सर्वथा

---

१. रोमराजिस्तथामध्यमावर्तांगानि। २. यायद्वक्रानुलोमगा।

पादे प्रदेशिनी यस्या अङ्गुष्ठं समतिक्रमेत् । दुःशीला दुर्भगा ज्ञेया कन्यां तां परिवर्जयेत् ॥२०
पादे मध्यमिका यस्याः क्षितिं न स्पृशते यदि । रमते सा न कौमारे स्वच्छन्दा[1] कामचारिणी ॥२१
पादे अनामिका यस्याः क्षितिं न स्पृशते यदि । द्वितीयं पुरुषं हत्वा तृतीये सा प्रतिष्ठिता ॥२२
पादे कनिष्ठा यस्यास्तु क्षितिं न स्पृशते यदि । द्वितीयं पुरुषं हत्वा तृतीये सा प्रतिष्ठिता ॥२३
न देविका न धनिका न धान्यप्रतिनामिका । गुल्मवृक्षसनाम्नी च कन्यां तां परिवर्जयेत् ॥२४
इन्द्रचन्द्रादिपुरुषसनाम्नी च यदा भवेत् । नैताःपतिषु रज्यन्ते याश्च नक्षत्रनामिकाः ॥२५
आवर्तः पृष्ठतो यस्या नाभिं समनुविन्दति । तदपत्यं भवेद्ध्रस्वं ह्रस्वायुश्च विनिर्दिशेत् ॥२६
पृष्ठावर्ता पतिं हन्ति नाभ्यावर्ता पतिव्रता । कट्यावर्ता तु स्वच्छन्दा न कदाचिद्विरज्यते ॥२७
यस्यास्तु हसमानाया गण्डे जायेत् कूपकम् । रमते सा न कौमारे स्वच्छन्दा कार्यकारिणी ॥२८
यस्यास्तु गच्छमानायाष्टिट्टीकायति जङ्घिका । पुत्रं व्यवस्येत्सा कर्तुं पतित्वे नात्र संशयः ॥२९
स्थूलपादा च या कन्या सर्वांगेषु च लोमशा । स्थूलहस्ता च या स्याद्वै दासीं तां निर्दिशेद्बुधः ॥३०
यस्याश्चोत्कटकौ[2] पादौ मुखं च विकृतं भवेत् । उत्तरोष्ठे च रोमाणि सा क्षिप्रं भक्षयेत्पतिम् ॥३१
त्रीणि यस्याः प्रलम्बन्ते ललाटमुदरं स्फिचौ । त्रीणि भक्षयते सा तु देवरं श्वशुरं पतिम् ॥३२

अयोग्य है, जानना चाहिए।१९। जिसके चरण की तर्जनी अंगुली अंगूठे के ऊपर चढ़ी रहती है, उसे दुःशीला और भाग्यहीन जानकर छोड़ देना चाहिए।२०। जिसके चरण की मध्यमा पृथ्वी में न छू जाय, वह कुमारावस्था में रमण तो नहीं करती, पर आगे चलकर स्वतंत्र व्याभिचारिणी होती है।२१। जिसकी अनामिका यदि पृथ्वी में न छू जाय तो वह दूसरे पति को भी मार कर तीसरे के साथ रहे।२२। जिसकी कनिष्ठा भी पृथ्वी में न छू जाय वह भी दूसरे पति को मार कर तीसरे पति के साथ रहती है।२३। किसी देवी के नाम तथा धन, धान्य गुल्म (हाथी, घोड़े, तृण एवं लता) और वृक्ष नाम वाली कन्याओं के साथ विवाह नहीं करना चाहिए।२४। इन्द्र, चन्द्रादि, पुरुष एवं नक्षत्र नाम वाली कन्यायें भी अपने पति से प्रेम नहीं करती हैं।२५। जिसकी पीठ और नाभि में भौंरी हो, तो उसकी सन्तान छोटी एवं अल्पायु होती है।२६। पीठ से भौंरी हो तो पति का नाश करने वाली, नाभि में भौंरी हो, तो उसकी संतान छोटी एवं अल्पायु होती है तो वह ऐसी स्वतन्त्र होती है कि कभी विरागन नहीं होती है।२७। जिसके कपोल में हँसते समय गड्ढे हो जाते हैं वह कुमार अवस्था में रमण तो नहीं करती पर आगे चलकर स्वतन्त्र काम करने वाली होती है।२८। जिसके चलते समय गुल्फ, और जाँघ के मध्य किसी स्थान में टिक-टिक की आवाज होती है, वह ऐसी व्यभिचारिणी होती है कि पुत्र को भी पति बनाने के लिए प्रयत्नशील रहती है इसमें सन्देह नहीं।२९। जिस कन्या के मोटे पैर, समस्त शरीर में रोम तथा मोटे हाथ हों, उसे दासी होना विद्वानों ने बताया है।३०। जिसके पैर का ऊपरी भाग गोला, मुख में विकार और ऊपर वाले ओठ में रोम हों, वह शीघ्र पति का नाश करती है।३१। जिसके मस्तक, उदर और कमर का पिछला भाग तीनों अधिक लम्बे हों, वह देवर, ससुर और पति का शीघ्र नाश करती है।३२। सुन्दर चरित्र, गुरु-भक्त, पतिपरायण और

---

१. दुःखदा कार्यनाशिनी । २. चोत्कम्पकौ ।

सभुद् भूषितचारिश्च गुरुभक्ता पतिव्रता । देवब्राह्मणभक्ता च मानुषीं तां विनिर्दिशेत् ।।३३
नित्यं स्नाता सुगन्धा च नित्यं च प्रियवादिनी । अल्पाशिन्यल्परोषा च देवतां तां विनिर्दिशेत् ।।३४
प्रच्छन्नं कुरुते पापमपवादं च रक्षति । हृदयं स्याच्च दुर्ग्राह्यं मार्जारीं तां विनिर्दिशेत् ।।३५
हसते क्रीडते चैव क्रुद्धा चैव प्रसीदति । नीचेषु रमते नित्यं रासभीं तां विनिर्दिशेत् ।।३६
प्रतिकूलकरी नित्यं बन्धूनां भर्तुरेव च । स्वच्छन्दे ललितां चैव आसुरीं तां विनिर्दिशेत् ।।३७
[1]बह्वाशी बहुवाक्या च नित्यं चाप्रियवादिनी । हिनस्ति स्वपतिं या तु राक्षसीं तां विनिर्दिशेत् ।।३८
शौचाचारपरिभ्रष्टा रूपभ्रष्टा भयङ्करा । प्रस्वेदमलपङ्का च पिशाचीं तां विनिर्दिशेत् ।।३९
नित्यं स्नातां सुगन्धां च मांसमद्यप्रियादिनीम् । वृक्षोद्यानप्रसक्तां च गान्धर्वीं तां विनिर्दिशेत् ।।४०
चपला चञ्चला चैव नित्यं पश्येद्दिशस्तथा । चलस्वभावा लुब्धा[2] च वानरीं तां विनिर्दिशेत् ।।४१
चन्द्राननां शुभाङ्गीं तु मत्तवारणगामिनीम् । आरक्तनखहस्तां तु विद्याद्विद्याधरीं बुधः ।।४२
वीणावादित्रशब्देन वंशगीतरवेण च । पुष्पधूपप्रसक्तां च गान्धर्वीं तां विनिर्दिशेत् ।।४३

देवता एवं ब्राह्मणों की भक्ति करने वाली स्त्री को मानुषी स्त्री बताया गया है ।३३। उसी प्रकार नित्य स्नान एवं सुगंध सेवन करने वाली मधुर बोलने वाली, अल्प भोजन और अल्प क्रोध करने वाली स्त्री को देवता बताया गया है ।३४। गुप्त पाप करने वाली, निन्दित कर्म करके उससे बचाव करने वाली तथा जिसके हृदय का भाव जल्दी न जाना जा सके, उसे मार्जारी (विल्ली) जानना चाहिए ।३५। हँसते और खेलते समय भी जो क्रोधी एवं प्रसन्न होती है, तथा नीचों से सदा प्रेम करती है, उसे रासभी (गधी) कहते हैं ।३६। सदा अपने पति एवं भाइयों के प्रतिकूल कार्य करने वाली और स्वतंत्र विहार करने वाली स्त्री को आसुरी कहते हैं ।३७। अधिक भोजन तथा अधिक एवं सदा अप्रिय बोलने वाली और अपने पति को मारने वाली स्त्री को राक्षसी कहते हैं ।३८। शौच (बाहरी शुद्धि) और आचार से भ्रष्ट, कुरूप, भयंकर स्वभाव, पसीना, मल और कीचड़ लगाने वाली स्त्री को पिशाची कहते हैं ।३९। नित्य स्नान और सुगंध लगाने वाली, मांस मद्य और प्रिय वस्तु सेवन करने वाली एवं बगीचे में विहार करने वाली को गान्धर्वी कहते हैं ।४०। जो स्त्री स्वयं चपल, चञ्चल नेत्र, सदा इधर-उधर देखने वाली एवं स्वभाव की अस्थिर हो, और लोभी हो उसे वानरी कहते हैं ।४१। चन्द्रमा की भाँति मुख, अच्छे लक्षणों से भूषित देह, मतवाले हाथी के समान चाल तथा नख और हाथ भली भाँति लाल रंग के हों उसे पंडित लोग विद्याधरी कहते हैं ।४२। वीणा, मृदग और वंशी की तान में सदैव लीन रहकर पुष्पों और धूप में निमग्न रहने वाली को गान्धर्वी कहते हैं ।४३

---

१. कर्मण्यण्, ततो ङीप् । २. क्रुद्धा च ।

सुमन्तुरुवाच

इत्येवमुक्त्वा स महानुभावो जगाम वेधा निजमन्दिरं वै।
स्त्रीणां तथा पुंस्त्ववतां च वीर यल्लक्षणं पार्थिव लोकपूज्यम् ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थी कल्पे
स्त्रीलक्षणवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।२८।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

गणपतिकल्पवर्णनम्

शतानीक उवाच

गकाराक्षरदेवस्य गणेशस्य महात्मनः । आराधनविधिं ब्रूहि साङ्गं मन्त्रसमन्वितम् ॥१

सुमन्तुरुवाच

न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते । यथेष्टं[1] चेष्टतः सिद्धिः सदा भवति कामिका ॥२
श्वेतार्कमूलं सङ्गृह्य कुर्याद्गणपतिं बुधः । अङ्गुष्ठपर्वमात्रं तु पद्मासनगतं तथा ॥३
चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च सर्वाभरणभूषितम् । नागयज्ञोपवीताङ्गं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥४
दन्तं सव्ये करे दद्याद्द्वितीये चाक्षसूत्रकम् । तृतीये परशुं दद्याच्चतुर्थे मोदकं न्यसेत् ॥५

सुमन्तु ने कहा—हे वीर ! इस प्रकार ब्रह्मा स्त्रियों और पुरुषों के उन लक्षणों को, जो लोगों को प्रिय हैं, कह कर अपने भवन चले गये ।४४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के चतुर्थी कल्प में स्त्री लक्षण नामक
अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।२८।

अध्याय २९

गणपति कल्प वर्णन

शतानीक ने कहा—'ग' अक्षर वाले उन पूज्य गणेशदेव की आराधना करने की वह विधि, जिसमें अंगन्यास और मंत्र हो, आप हमें कृपा करके बताइये ।१

सुमन्तु बोले—वह सदैव मनोरथ सफल करने वाली सिद्धि है, जिसमें तिथि, नक्षत्र और उपवास की आवश्यकता नहीं रहती है ।२। सफेद अर्क (मदार) के जड़ के भाग की, गणेश की एक प्रतिमा, जो अंगूठे के पर्व (पोर) के बराबर एवं कमल के आसन पर स्थित हो, विद्वानों को चाहिए सप्रयत्न बनावें ।३। जिसमें चार भुजाएँ, तीन नेत्र, सम्पूर्ण आभूपणों से सुसज्जित देह में सर्प की भाँति यज्ञोपवीत और भाल में चन्द्रमा हों ।४। उनके बायें हाथ में दाँत, दूसरे में रुद्राक्ष की माला, तीसरे में फरसा एवं चौथे में

---

१. दद्यात्पाद्यानि तस्य वै ।

कुङ्कुमं चन्दनं चापि स्नानालम्भनमुच्यते । वासोभिर्भूषणै रक्तैर्माल्यैश्चाराधयेद्गणम् ॥६
धूपेन च सुगन्धेन मोदकैश्चापि पूजयेत् । एवं पूज्याग्रतस्तस्य भोजयेद्ब्राह्मणं बुधः ॥७
वामनं कुब्जकं चापि भोजयेत्पुरतो द्विजम् । आशीर्वादं ततस्तस्मात्प्राप्य सिद्धिमवाप्नुयात् ॥८
भक्त्या कुरुकुलश्रेष्ठ शृणु मन्त्रपदानि वै । गं स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं प्रणवेन समन्वितः ॥९
गां नमो हृदयं ज्ञेयं गीं शिरः परिकीर्तितम् । शिखा च गूं नमो ज्ञेयो गैं नमः कवचं स्मृतम् ॥१०
गौं नमो नेत्रमुद्दिष्टं गः फट् कामास्त्रमुच्यते । आगच्छोल्कामुखायेति मन्त्र आवाहने ह्ययम् ॥११
गं गणेशाय नमो गन्धमन्त्रः प्रकीर्तितः । पुष्पोल्काय नमः पुष्पमन्त्र एष प्रकीर्तितः ॥१२
धूपोल्काय नमो धूपमन्त्र एष प्रकीर्तितः । दीपोल्काय नमो दीपमन्त्र एष प्रकीर्तितः ॥१३
ॐ गं महोल्काय नमो बलिमन्त्रः प्रकीर्तितः । ओं संसिद्धोल्काय नमोमन्त्रश्चायं विसर्जने ॥१४
ओं महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् गायत्री जपः पूर्वतः ॥१५
महागणपतये वीर[1] स्वाहा दक्षिणतः सदा । महोल्काय पश्चिमतः कूश्माण्डायोत्तरेण तु ॥
एकदन्तत्रिपुरान्तकाय आग्नेय्यां वीर निर्दिशेत् ॥१६
ओं शिवदत्त विकटहरहास प्राणाय स्वा नैर्ऋत्याम् । [2]तुलम्बनात्यचलदन्तकाय स्वाहा वायव्याम् ॥१७
पद्मदन्ष्ट्राय नरायेति ऐशान्यां होमयेद्बुधः । हुं फट् हुं फट् हस्ततालध्वनिर्हसनकूर्दनः ॥१८

मोदक (लड्डू) रखे।५। पश्चात् कुंकुम, चन्दन, वस्त्र, आभूषण और लाल फूलों की माला से गणपति की सावधान होकर आराधना करनी चाहिए। धूप, सुगंधित वस्तु (इत्र) एवं लड्डू से पूजा करके उन्हीं के सामने ब्राह्मणों को भोजन कराये।६-७। उस समय वामन (नाटे) और कूबड़े ब्राह्मण को भी उनके सामने भोजन कराकर उनसे आशीर्वाद लेने पर सिद्धि प्राप्ति होती है।८। हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! भक्तिपूर्वक अब मंत्र का विधान सुनो ! मैं कह रहा हूँ, प्रणव (ओंकार) के सहित 'गं स्वाहा' यही मूल मंत्र है।९। 'गां नमः' कहकर हृदय, 'गीं नमः से शिर, 'गूं नमः' से शिखा चोटी, गैं नमः से कवच एवं 'गौं नमः' से आँखों को छूकर 'गः फट्' नामक कामास्त्र का उच्चारण करे। 'उल्कामुखाय नमः' कहकर आवाहन करना चाहिए।१०-११। 'गं गणेशाय नमः' से गंध, 'पुष्पोल्काय नमः' से फूल, 'धूपोल्काय नमः' से धूप एवं 'दीपोल्काय नमः' से दीप दर्शन करना चाहिए।१२-१३। पश्चात् 'ओं गं महोल्काय नमः' से बलि प्रदान और ओं संसिद्धोल्काय नमः' से विसर्जन करे।१४। 'ओं महाकर्णाय' आदि इस गायत्री मंत्र से पूरब 'महागणपतये स्वाहा' से दक्षिण, 'महोल्काय' से पश्चिम, 'कूष्माण्डाय' से उत्तर, 'एकदंत त्रिपुरांतकाय' से आग्नेय, 'ओं शिवदत्त आदि स्वाहा' से नैऋत्य, 'तुलम्ब आदि स्वाहा से' वायव्य तथा 'पद्मदंष्ट्राय आदि' से ईशान, कोण में पूजन हवन करके 'हुंफट् हुं फट्' के उच्चारणपूर्वक हाथ की ताली बजाते हुए हँसे और कूदे।१५-१८। देव की मुद्रा बनाकर पश्चात् हवन आरम्भ करना चाहिए। यदि वह वशीभूत न हो, तो काले

---

१. अयं वीरशब्दोऽन्यत्र नास्ति। २. ओं उनचावनत्नकाय स्वाहा।

मृदनर्तनगणपतिर्देवस्य मुद्रां ततो होमं समाचरेत् । न यदा वश्या भवति ॥
कृष्णतिलाहुतिमष्टसहस्रं जुहुयात्त्रिरात्रेण राजा वश्यो भवति ॥१९
तिलयवहोमेन सर्वे जनपदा वश्या भवन्ति । अति रूपवती कन्या गच्छन्तमनुच्छति ॥२०
चणतन्दुलहोमेनाजितो भवेत् । निम्बपत्रसमैस्तैलैर्विद्वेषणं करोति ॥
सोमग्रहणे उदकमध्ये अवतीर्य अष्टसहस्रं जपेत् । सङ्ग्रामे अपराजितो भवति ॥२१
(ॐ लम्बराज्ञे नमः ।)
आदित्याभिमुखो भूत्वा अष्टसहस्रं जपेत् । आदित्यो वरदो भवति ॥२२
शुक्लचतुर्थ्यामुपोष्य गन्धपुष्पादिभिरर्चनं कृत्वा तिलतन्दुलाञ्जुहुयात् । शिरसा धारयंस्तैर-
पराजितो भवति ॥२३
अपामार्गसमिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य एकविंशत्याहुतीर्यो जुहुयात् । त्रिरात्राच्छत्रुं व्यापादयति ॥२४
अथोत्तरेण मन्त्रं व्याख्यास्ये । वृक्षमूले कज्जलं सङ्गृह्य सप्तभिर्मन्त्रितं कृत्वा नेत्राण्यञ्जयेद्यं
पश्यति स वशी भवति ॥२५
पुष्पं फलं मूलं चाष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा यस्मै ददाति स वश्यो भवति ॥२६
यत्किञ्चिन्मूलमन्त्रेण करोति तत्सिध्यति । सर्वे ग्रहाः सुप्रीता भवन्ति ॥
नगरद्वारं गत्वा अष्टसहस्रं द्वारं निरूपयेत् ॥२७
पुरं द्वारेण गृह्यते प्राङ्मुखो यजति स उच्चाटयति । सम्मुखो जपति चोरान्विद्रावयति ॥२८

तिल से तीन रात तक आठ हजार आहुति डाले, इससे राजा वश में होता है ।१९। तिल और जवा से होम करने पर सभी मनुष्य वश में होते हैं । परमसुन्दरी कन्या तो उसके पीछे-पीछे चलती है ।२०। चना एवं चावल के हवन से पुरुष अजेय होता है । नीम की पत्ती और तेल होम से शत्रु विद्वेषण होता है। चन्द्रग्रहण में जल के भीतर आठ हजार मन्त्र का जप करे तो युद्ध में कभी पराजय न हो ।२१। 'ओं लम्बराज्ञे नमः' इस मंत्र का आठ हजार जप सूर्य की ओर मुख करके करे तो प्रसन्न होकर आदित्य वर प्रदान करते हैं ।२२। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को उपवास कर गंध-पुष्पों से पूजा करके तिल और चावल का होम करे और शिर से धारण करे तो वह अजेय होता है ।२३। जो अपामार्ग (चिचिरा) की लकड़ी जलाकर अग्नि में इक्कीस आहुति तीन दिन तक अर्पित करता है, उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं ।२४। मैं अब मन्त्र की व्याख्या कर रहा हूँ, सुनो ! जो मनुष्य पेड़ की जड़ का काजल बनाकर सात बार उसे अभिमंत्रित कर आँख में लगाकर जिसे देखता है वह वश में हो जाता है ।२५। फल, फूल एवं मूल को आठ हजार बार अभिमंत्रित करके जिसे दिया जाता है वह वश में होता है ।२६। उसी मूल मंत्र द्वारा जो कुछ किया जाता है वह सिद्ध होता है । सभी ग्रह, प्रसन्न होते हैं । जो नगर के दरवाजे पर जाकर आठ हजार बार जप एवं पूरब की ओर मुख करके पूजन करता है, वह शत्रु का उच्चाटन, संमुख जप करने से चोरों का नाश, तृणों का काटना, काठ में छेद

तृणानि लूनयति । काष्ठानि च्छेदयति ।।२९
[1]गजराजेन युद्धयति । जलमध्ये सप्तरात्रं जपेत् । अकाले वर्षयति । कूपतडागाञ्छोषयति ।।
प्रतिमां नर्त्ययति । आकर्षयति । स्तम्भयति । योजनशतात्स्त्रीपुरुषानाकर्षयति ।।३०
गोरोचनां च सहस्राभिमन्त्रितां कृत्वा हस्ते बद्धा योजनशतसहस्रं गत्वा पुनरागच्छति ।।३१
अथ मारयितुकामः खदिरकीलकं कृत्वा स्त्रीपुरुषं विचिन्त्य हृदये निखनयेत् । क्षणादेव म्रियते ।।३२
सर्वपातकविमुक्तो भवति । अग्नितेजाः सर्वेभ्योऽपराजितो भवति ।।३३
ॐ वक्रतुण्डाय स्वाहा । ॐ एकदंष्ट्राय स्वाहा । ॐ कृतकृष्णाय स्वाहा । ॐ गजकर्णाय स्वाहा ।।
ॐ लम्बोदराय स्वाहा । ॐ विकटाय स्वाहा । ॐ धूम्रवर्णाय स्वाहा । ॐ गगनकूजाय स्वाहा ।।
ॐ विनायकाय स्वाहा । ॐ गणपतये स्वाहा । ॐ हस्तिमुखाय स्वाहा ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे गणपतिकल्पवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।२९।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

विनायकपूजाविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

निम्बमयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा नित्यधूपगन्धादिभिरर्चयित्वा प्रच्छन्नं शिरसि बद्धा गच्छेत् ।।

और हाथी की लड़ाई करा देता है। जल के बीच में सात रात जप करने से अकाल वर्षा, कूएँ-तालाब का सूखना, मूर्ति को नचाना, आकर्षण एवं स्तम्भन और सैकड़ों योजन से स्त्री-पुरुष को आकर्षित करता है ।२७-३०। गोरोचन को हजार बार अभिमंत्रित करके हाथ में बाँधने से हजारों योजन जाकर भी फिर वापस आता है ।३१। और मारने की इच्छा हो तो चाहे स्त्री हो या पुरुष उसके (शत्रु की प्रतिमा के) हृदय में खैर की (लकड़ी की) कील गाड़ देने से उसी समय वह मृतक हो जाता है ।३२। इस प्रकार गणपति की पूजा से मनुष्य समस्त पापों से छूट जाता है और अग्नि के समान तेजस्वी होकर सदैव अजेय रहता है ।३३। हवन के समय 'वक्रतुंडाय' आदि मंत्रों का उच्चारण कर हवन करना चाहिए ।३४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में गणपति कल्पवर्णन नामक उन्नतीसवाँ अध्याय समाप्त ।२९।

अध्याय ३०

विनायक पूजा विधि का वर्णन

सुमन्तु बोले—नीम की लकड़ी की गणेश जी की एक प्रतिमा, जो अँगूठे के पोर के बराबर हो,

---

१. गजं गजेन ।

सर्वजनप्रियो भवति। श्वेतार्कमूलाङ्गुष्ठमात्रं गणपतिं कृत्वा धूपादिभिरर्चयित्वा सर्वान्वर्णान्वशमानयति॥
श्वेतचन्दनमङ्गुष्ठमात्रं गणपतिं कृत्वा पुष्पगन्धादिभिरर्चयित्वा शुक्लचतुर्थ्यामष्टम्यां वा बलिं कुर्यादष्टसहस्रं जुहुयाद्दध्ना पायसेन राजानं वशमानयति।
रक्तचन्दनमयं गणपतिमङ्गुष्ठमात्रं कृत्वा भौतिकं बलिं दद्याद्दधिमधुघृताहुतीनां गणपतिमष्टसहस्रं जुहुयादात्मप्राणिकां प्रजां वशमानयति। रक्तकरवीरमूलाङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत्॥
रक्तपुष्पगन्धोपहारैर्बलिं दद्यात्। तिललवणघृतेनाष्टसहस्रं जुहुयात्। दशग्रामान्वशमानयति॥
श्वेतकरवीराङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा तिलपिष्टदधिघृतक्षीरहरिद्रामिश्रेणाष्टसहस्रं जुहुयाद्वेश्यां वशमानयति ॥
अश्वत्थमूलाङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वागन्धपुष्पधूपबलिं दत्त्वा शतं जुहुयाच्छत्रुं वशमानयति॥
अर्कमूलाङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा गन्धपुष्पधूपबलीन् दद्यात्। तिन्दुकाष्टशतं जुहुयाच्छत्रुं वशमानयति ॥
बिल्वमूलमयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा गन्धपुष्पधूपार्चितं कृत्वा त्रिमध्वक्तानामष्टसहस्रं जुहुयाद्राजामात्यान्वशमानयति ॥
शिरसि धूपान्धृत्वा गच्छेद्राजद्वारं विग्रहे जयो भवति।
हस्तिदन्तमृत्तिकामयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत्॥

बनाकर नित्य धूप एवं गंधादि से पूजन करते हुए उसे शिर में गुप्त रूप से बाँध कर (कहीं भी) जाये तो वह मनुष्य सभी लोगों का प्रिय होता है। सफेद अर्क (मदार) के जड़ की उतनी ही बड़ी मूर्ति गणेश जी की बनाकर धूप आदि से पूजन करे तो सभी जाति के लोग वश में होते हैं। शुक्लपक्ष की चतुर्थी अथवा अष्टमी के दिन सफेद चन्दन की गणपति की वैसी ही मूर्ति बनाकर फूलों से पूजन करके (प्रज्वलित अग्नि में) दही और खीर की आठ हजार आहुति डालने के पश्चात् उन्हें बलि प्रदान करने से राजा वश में होता है। उसी भाँति लाल चन्दन द्वारा गणपति की मूर्ति बनाकर पूजनोपरांत प्रज्वलित अग्नि में दही, शहद और घी की आठ हजार आहुति डालने एवं भूतों की बलि प्रदान करने से प्रजा उसके वश में हो जाती है। लाल करवीर (कनेर) की अँगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनावे, लालफूल एवं गंधादि से पूजन कर बलि प्रदान करे तथा अग्नि में तिल, नमक और घी की आठ हजार आहुति डाले, तो दश गाँव की समस्त जनता वश में होती है। सफेद करील की अंगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनाकर पूजनोपरान्त तिल, दही, घी, दूध और हल्दी मिलाकर आठ हजार की आहुति डालने से वेश्या वश में होती है। पुनः पीपल की उसी भाँति गणपति की मूर्ति बनाकर गंध, पुष्प, धूप और बलि प्रदान कर सौ आहुति डाले तो शत्रुवश में होता है। अर्क (मदार) की अंगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनाकर गंध, फूल, धूप और बलि देवे तथा तेंदू की लकड़ी की प्रज्वलित अग्नि में सौ आहुति डाले तो शत्रुवश में होता है। बेल की जड़ की गणपति की मूर्ति बनाकर गन्ध, पुष्प और धूप से पूजन कर तीन बार शहद में डुबोकर आठ हजार आहुति डाले तो राजा का मंत्री वश में होता है। पुनः शिर को धूप से धूपित कर राजा के यहाँ जाये

गन्धपुष्पधूपार्चितं कृत्वा कृष्णचतुर्थ्यां नग्नो भूत्वाभ्यर्चयेत्।
सप्त वाराञ्जपेन्नित्यं[1] नारीणां सुभगो भवति ।।
वृषभशृङ्गमृत्तिकाङ्गुष्ठमात्रं गणपतिं कारयेत् ।
गन्धपुष्पार्चितं कृत्वा गुग्गुलुधूपं दद्याद्घोषपतिं वशमानयति ।।

अथ वा वल्मीकमृत्तिकांगुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत् । कटुकतैलेन प्रतिमां लेपयेत् ।। उन्मत्तककाष्ठेनाग्निं प्रज्वाल्याहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात्तिलसर्षपमिश्रेण सर्वधूपं दद्यात्त्रिकटुकेन लेपयेत्।। अगरुधूपं दद्याद्राजानं वशमानयति । परेषां च वल्लभो भवति । रक्तचन्दनेनात्मानं धूपयेत्सुभगो भवति।। ॐ गणपतये वक्रतुण्डाय गजदन्ताय गुलगुलेतिनिनादाय[2] चतुर्भुजाय त्रिनेत्राय मुशलपाश-वज्रहस्ताय सर्वभूतदमनाय सर्वलोकवशंकराय सर्वदुष्टोपघातजननाय सर्वशत्रुविमर्दनाय सर्वराज्य-समीहनाय राजानमिह वशमानय हन हन पच पच वज्राङ्कुशेन गणेश फट् स्वाहा ।
ॐ गां गीं गूं गैं गौं गः स्वाहा नमः हृदयं मूलमन्त्रस्य ।
ॐ कः शिरः, ॐ खः शिखा, ॐ गः हृदयम्, ॐ गुः वक्त्र, ॐ गैं नेत्रम् । ॐ घः कवचम्, ॐ ङ आवाहनं हृदयस्य आवाहनाङ्गानिभवन्ति ॐ नमः हृदयं मूलमन्त्रस्य, ॐ गाः शिरः, ॐ गैः नमः शिखा ॐ गौः नमः कवचम्, ॐ गं नमः नेत्रे, ॐ गः फट् अस्त्रम् ।।

तो लड़ाई (वाद-विवाद) में विजय होती है। कृष्णपक्ष की चतुर्थी के दिन नग्न होकर हाथी के दाँत द्वारा खोदी हुई मिट्टी की गणपति की मूर्ति बनाकर गध, पुष्प और धूप से सात रात पूजन करे तो वह स्त्रियों का प्रिय होता है। बैल के सीग द्वारा खोदी हुई मिट्टी की उसी प्रकार गणपति की मूर्ति बनाकर गन्ध-पुष्प से पूजन कर गूगुल की धूप दे तो गायें और अहीर जहाँ रहते हों उनके स्वामी वश में होते हैं। वल्मीक की मिट्टी की अंगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनाकर कड़वा तेल से प्रतिमा का लेपन करे। धतूर की लकड़ी जलाकर तिल और सरसों की आठ हजार आहुति डाले तथा सर्वोषधि का धूप दे और सोंठ मरिच तथा पीपरि का लेपन करके अगुरु की धूप दे तो राजा वश में होता है तथा वह और लोगों का भी प्रिय भाजन होता है किन्तु लाल चन्दन से अपने को धूपित करे तो स्वयं सुभग होता है। उसका मंत्र यह है—

मंत्र—ओं गणपतये वक्रतुण्डाय गजदन्ताय गुलगुलेति निनादाय चतुर्भुजाय त्रिनेत्राय मुशलपाशवज्रहस्ताय सर्वभूतदमनाय सर्वलोकवशंकराय सर्वदुष्टोपघातजननाय सर्वशत्रुविमर्दनाय सर्वराज्यसमीहनाय राजानमिह वशमानय हन हन पच पच वज्रांकुशेन गणेश फट् स्वाहा। 'ओं' गां गीं गूं गैं गौं गः स्वाहा नमः' यह मूल मंत्र का हृदय है। ओं 'कः' से शिर, ओं खः से शिखा, ओं गः से हृदय, ओं गुः से मुख, ओं गैं से नेत्र, ओं गः से कवच, ओं ङ से हृदय का आवाहन करे। 'ओं नमः यह मूलमंत्र का हृदय है, ओं गाः शिर, ओं गैः नमः से शिखा, ओगौः नमः से कवच, ओं गं नमः से नेत्र, ओं गः फट् अस्त्रम्। ओं

---

१. सप्तरात्रम्। २. गुग्गुलचतुर्भुजाय।

ॐ अङ्गुष्ठोल्काय स्वाहा आवाहनं हृदयस्य स्वाहा विसर्जनं हृदयस्य ॐ गन्धोल्काय स्वाहा ॥
गन्धमन्त्रः ॥ ॐ धर्मभूतोल्काय स्वाहा ॥ पुष्पमन्त्रः ॥ दुर्जयाय[1] पूर्वेण । ॐ धूर्जटये दक्षिणेन ।
ॐ लम्बोदराय पश्चिमतः । ॐ गणपतये उत्तरतः । ॐ गणाधिपतये ऐशान्याम् । ॐ महागणपतये
आग्नेय्याम् । ॐ कूश्माण्डाय नैर्ऋत्याम् ।
ॐ एकदन्तत्रिपुरघातिने[2] त्रिनेत्राय वायव्याम् । ॐ महागणपतये विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ॥
तन्नोदान्तिः प्रचोदयात् ॥ गायत्री ॥
पद्मदंष्ट्रामालाप्रकर्षणीपरशवंकुशपाशपटहमुद्रा अष्टौ मुद्रा दर्शयित्वा ततः कर्माणि कारयेत् ॥
कृष्णतिलाहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात् । राजानं वशमानयेत् ॥
आवाहनाद्येकादशमुद्रा नैवेद्यान्त क्रमाद्दर्शयेत् ॥
आराधयेद्येन विधिना त्रिनेत्रं शूलिनं हरम् । तेनैवाराधयेद्देवं विघ्नेशं गणपं नृप ॥१
तदेव मण्डलं चास्य अङ्गन्यासस्तथैव च । ऋते मन्त्रपदानीह समानं सर्वमेव हि ॥२
पूजयेद्यस्तु विघ्नेशमेकदन्तमुमासुतम् । नश्यन्ति तस्य विघ्नानि न चारिष्टं कदाचन ॥३
यश्चोपवासं कृत्वा तु चतुर्थ्यां पूजयेन्नरः । सर्वे तस्य समारम्भाः सिध्येयुर्नात्र संशयः ॥४
यस्यानुकूलो विघ्नेशः शिवयोः कुलनन्दन । तस्यानुकूलं सर्वं स्याज्जगद्वै सर्वकर्मसु ॥५
तस्मादाराधयेदेनं भक्तिश्रद्धासमन्वितः । कुङ्कुमागुरुधूपेन तथैवोण्डीरकस्रजा ॥
[3]पललोल्लापिकाभिश्च जातिकोन्मत्तकैस्तथा ॥६

अंगुष्ठोल्काय स्वाहा से हृदय का आवाहन और विसर्जन करे । ओं धर्मभूतोल्काय स्वाहा से गंध प्रदान करे। ओं दुर्जुयाय से पूर्व, ओं धूर्जटये से दक्षिण, ओं लम्बोदराय से पश्चिम ओं गणपतये से उत्तर, ओं गणाधिपतये से ईशान, ओं महागणपतये से आग्नेय, ओं कूष्माण्डाय से नैर्ऋत्य, ओं एकदंतत्रिपुरघातिने त्रिनेत्राय से वायव्य में पुष्प अर्पित करे पश्चात् 'महागणपतये आदि गायत्रीमंत्र के जप करें । 'पद्म, दंत, माला, प्रकर्षणी, परशु, अंकुश, पाश और पटह नामक इन आठों मुद्राओं को दिखाकर कार्य आरम्भ करे । काले तिल की आठ हजार आहुति डालने से राजा वश में होता है । इसी भाँति क्रमशः आवाहनादि से नैवेद्य तक ग्यारहों मुद्राओं को दिखाना चाहिए । तीन आँख वाले तथा शूल लिए शंकर जी की जिस विधि से आराधना की जाती है उसी भाँति विघ्नेश गणपति देव की भी पूजा करनी चाहिए ।१। केवल मन्त्र को छोड़कर वही मंडल, वही अंगन्यास एवं सभी कुछ समान ही कहा गया है । २। इस प्रकार एक दाँत वाले, उमा के पुत्र गणेश की ज, पूजा करता है, उसके सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं और कभी अरिष्ट नहीं होता ।३। जो मनुष्य चतुर्थी में उपवास कर उनकी पूजा करता है, उसके आरंभ किये हुए सभी कार्य निःसन्देह सफल होते हैं ।४। हे कुलनन्दन ! उमा और महेश के पुत्र गणेश जिसके अनुकूल हों, उसके सभी कार्यों में सारा संसार सहायक रहता है । इसलिए श्रद्धा और भक्तिपूर्वक शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में तोरण वंदनवार बांधकर कुंकुम, गूगुल की धूप, कमल के फूल की माला, कूटा हुआ तिल, जूही एवं धतूर का फूल इन सामग्रियों से

---

१. दुर्गायै पूर्वे । परं चासाधीयानप्रकृतत्वात् । २. एकदंतत्रिपुरान्तकाय । ३. पललान्नविकारैश्च जातीकुरवकैस्तथा ।

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु विधिनानेन पूजयेत् । तस्य सिध्यति निर्विघ्नं सर्वकर्म न संशयः ॥७
एकदन्ते जगन्नाथे गणेशे तुष्टिमागते । पितृदेवमनुष्याद्याः सर्वे तुष्यन्ति भारत ॥८
तस्मादाराधयेदेनं सदा भक्तिपुरःसरम् । कर्णलेपैस्तुण्डिकाभिर्मोदकैश्च[1] महीपते ॥
पूजयेत्सततं देवं विघ्नविनाशाय दन्तिनम् ॥९

श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे
विनायकपूजाविधिनिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।३०।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

शिवाचतुर्थी पूजनम्

सुमन्तुरुवाच

शिवा शान्ता सुखा राजंश्चतुर्थी त्रिविधा स्मृता । मासि भाद्रपदे शुक्ला शिवा लोकेषु पूजिता ॥१
तस्यां स्नानं तथा दानमुपवासो जपस्तथा । क्रियमाणं शतगुणं प्रसादाद्दन्तिनो नृप ॥२
गुडलवणघृतानां तु दानं शुभकरं स्मृतम्[2] । गुडापूपैस्तथा वीर पुण्यं ब्राह्मणभोजनम् ॥३
यास्तस्यां नरशार्दूल पूजयन्ति सदा स्त्रियः । गुडलवणपूपैश्च श्वश्रूं श्वशुरमेव च ॥४

उपरोक्त विधान से पूजा की जाये, तो उसके सभी कार्य निर्विघ्न समाप्त होते हैं ।५-७। हे भारत ! हे महीपते ! एक दाँत वाले एवं जगत् के स्वामी गणेश के प्रसन्न होने पर पितर, देवता और मनुष्य सभी संतुष्ट रहते हैं ।८। अतः विघ्नों के विनाश होने के लिए भक्तिपूर्वक एक दाँत वाले (गणेश) देव की पूजा, चन्दन, कमल और लड्डू आदि सामग्रियों द्वारा सविधि सुसम्पन्न करनी चाहिए ।९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में विनायकपूजा विधि वर्णन नामक
तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३०।

अध्याय ३१

शिवा चतुर्थी का पूजन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! शिवा, शान्ता और सुखा नाम के भेद से चतुर्थी तीन प्रकार की होती है। भादों के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी का नाम शिवा है, वह लोगों में अत्यन्त सम्मानित है ।१। हे नृप ! उसमें किया गया स्नान, दान, उपवास और जप गणेश की कृपा से सौ गुना अधिक होता है ।२। उसमें लवण (नमक) तथा घी का दान अत्यन्त शुभ बताया गया है । हे वीर ! उसी प्रकार उस पूजन में गुड़ का बना मालपूआ ब्राह्मणों को खिलाना विशेष पुण्यप्रद होता है ।३। हे नरशार्दूल ! उसमें जो स्त्रियाँ गुड़ लवण और मालपुआ से सास-ससुर की पूजा अर्थात् मीठे और नमकीन वस्तुएँ खिलाती हैं गणेश की प्रसन्नता से

---

१. पुण्डरीकैः । २. महत् ।

ताः सर्वाःसुभगाः स्युर्वै[1] विघ्नेशस्यानुमोदनात् । कन्यका तु विशेषेण विधिनानेन पूजयेत् ॥५
(इति शिवाकल्पः)

सुमन्तुरुवाच

माघे मासि तथा शुक्ला या चतुर्थी महीपते । सा शान्ता शान्तिदा नित्यं शान्तिं कुर्यात्सदैव हि ॥६
स्नानदानादिकं कर्म सर्वमस्यां कृतं विभो । भवेत्सहस्रगुणितं प्रसादात्तस्य[2] दन्तिनः ॥७
कृतोपवासो यस्तस्यां पूजयेद्विघ्ननायकम् । तस्य होमादिकं कर्म भवेत्साहस्रिकं नृप ॥८
लवणं च गुडं शाकं गुडपूपांश्च भारत । दत्त्वा भक्त्या तु विप्रेभ्यः फलं साहस्रिकं भजेत्[3] ॥९
विशेषतः स्त्रियो राजन्पूजयन्तो गुरुं नृप । गुडलवणघृतैर्वीर सदा स्युर्भाग्यसंयुताः[4] ॥१०
(इति शान्ताकल्पः)

सुमन्तुरुवाच

सुखावहा च सुसुखा सौभाग्यकरणी परम् ॥११
चतुर्थी कुरुशार्दूल रूपसौभाग्यदा शुभा । सुखाव्रतं महापुन्यं रूपदं भाग्यदं तथा ॥१२
सुसूक्ष्मं सुकरं धन्यमिह पुण्यसुखावहम् । परत्र फलदं वीर दिव्यरूपप्रदायकम् ॥१३
हसितं ललितं चोक्तं[5] चेष्टितं च सुखावहम् । सविलासभुजक्षेपभ्रंक्रमश्चेष्टितं शुभम् ॥१४
सुखाव्रतेन सर्वेषां सुखं कुरुकुलोद्वह । कृत्येन पूजिते चेशे विघ्नेशे शिवयोः सुते ॥१५

वे सभी निश्चित सौभाग्यशालिनी होती हैं । विशेषकर कन्याओं को इस विधि से अवश्य पूजन करना चाहिये ।४-५। (इति शिवाकल्प)

सुमन्तु ने कहा—हे महीपते ! माघ के महीने की शुक्ल पक्ष की चौथ का नाम शांतिदायिनी होने के नाते शांता है, वह सदा शान्ति प्रदान करती रहती है ।६। हे विभो ! उसमें स्नान-दान जो कुछ कर्म किये जाते हैं, वे सभी गणेश की कृपा से हजार गुने अधिक फलदायक होते हैं ।७। जो उसमें उपवास करके विघ्नविनायक (गणेश) की पूजा करता है, उसके होमादिक कर्म हजार गुने अधिक फल देते हैं ।८। अतः लवण, गुड़, साग एवं मालपूआ का दान ब्राह्मणों को अर्पित कर हजार गुना अधिक फल अवश्य प्राप्त करना चाहिये ।९। हे राजन् ! विशेषकर स्त्रियाँ गुड़, लवण और घी द्वारा गुरुजनों की पूजा करें, नमकीन मीठी चीज खिलावें तो सौभाग्यवती हों ।१० (इति शांताकल्प)

सुमन्तु बोले—हे कुरुशार्दूल ! सदा सुखस्वरूप महान् सुखों को देने वाली अत्यन्त सौभाग्य करने वाली, मांगलिक एवं रूप-सौन्दर्य देने वाली यह चौथ होती है । हे वीर ! सुखा नामक चौथ का व्रत अधिक पुण्य, रूप देने वाला, अत्यन्त सूक्ष्म, सरल, संसार की प्रतिष्ठा एवं स्वर्गसुख, परलोक का फल तथा दिव्यरूप देने वाला बताया गया है ।११-१३। इसमें हँसना, लीलाकरना, चेष्टा करना, हाथों द्वारा हाव-भाव प्रकट करना और घूमना चक्कर लगाना सुखदायक एवं शुभ होता है ।१४। हे कुरुकुल नायक ! सुखा का व्रत तथा उमा-महेश के पुत्र गणेश की सविधि पूजा करने से भी प्राणियों को सुख मिलता है ।१५।

---

१. नित्यम् । २. दन्तिनो नृप । ३. भवेत् । ४. कुरुनंदन । ५. मैत्रम् ।

यथा शुक्लचतुर्थ्यां तु वारो भौमस्य वै भवेत् । तदा सा सुखदा ज्ञेया चतुर्थी वै सुखेति च ॥१६
पुरा मैथुनमाश्रित्य स्थिताभ्यां तु हिमाचले । भौमोमाभ्यां महाबाहो रक्तबिन्दुश्च्युतः क्षितौ ॥१७
मेदिन्यां स प्रयत्नेन सुखे विधृतोऽनया । जातोस्याः स कुजो वीर रक्तो रक्तसमुद्भवः ॥१८
ममाङ्गतो यतोत्पन्नस्तस्मादङ्गारको ह्ययम् । अङ्गदोङ्गोपकारश्च अङ्गानां तु प्रदो नृणाम् ॥१९
सौभाग्यादिकरो यस्मात्तस्मादङ्गारको मतः । भक्त्या चतुर्थ्यां नक्तेन यो वै श्रद्धासमन्वितः ॥२०
उपवत्स्यति ना राजन्नारी वा नान्यमानसा । पूजयेच्च कुजं भक्त्या रक्तपुष्पविलेपनैः ॥२१
गणेशं प्रथमं भक्त्या योजयेच्छ्रद्धयान्वितः । यस्य तुष्टः प्रयच्छेत्स सौभाग्यं रूपसम्पदम् ॥२२
पूर्वं च कृतसङ्कल्पः स्नानं कृत्वा यथाविधि । गृहीत्वा मृत्तिकां वन्देन्मन्त्रेणानेन भारत ॥२३
इह त्वं वन्दिता पूर्वं कृष्णेनोद्धरता किल । तस्मान्मे दह पाप्मानं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ॥२४
इमं मन्त्रं पठन्वीर आदित्याय प्रदर्शयेत् । आदित्यरश्मिसम्पूतां गङ्गाजलकणोक्षिताम् ॥२५
दत्त्वा मृदं शिरसि तां सर्वाङ्गेषु च योजयेत् । ततः स्नानं प्रकुर्वीत मन्त्रयेत जलं पुनः ॥२६
त्वमापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवदौकसाम् । स्वेदाण्डजोद्भिदां चैव रसानां पतये नमः ॥२७
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु सर्वप्रस्रवणेषु च । तडागेषु च सर्वेषु मानसादिसरःसु च ॥२८
नदीषु देवखातेषु सुतीर्थेषु ह्रदेषु वै । ध्यायन्पठन्निमं मन्त्रं ततः स्नानं समाचरेत् ॥२९
ततः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा गृहमागत्य वै स्पृशेत् । दूर्वाश्वत्थौ शमीं स्पृष्ट्वा गां च मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥३०
दूर्वां नमस्य मन्त्रेण शुचौ भूमौ समुत्थिताम् । त्वं दूर्वेऽमृतनामासि सर्वदेवैस्तु वन्दिता ॥३१

शुक्ल पक्ष में मंगल के दिन वाली चौथ को सुखा कहते हैं जो सुख प्रदान करती है ।१६। हे महाबाहो ! पहले समय में हिमालय पर्वत पर उमा-शिव के सम्भोग करते समय रक्त का बूँद पृथ्वी पर गिरा था ।१७। हे वीर ! उसे पृथ्वी ने सुख एवं यत्नपूर्वक धारण किया उसी रक्त के द्वारा लाल रंग वाले भौम को पृथ्वी ने उत्पन्न किया है ।१८। तथा मेरे अंग से पैदा होने के नाते इन्हें "अंगारक" भी कहते हैं । अंगों के देने वाले, अंगों का उपकार (हृष्ट-पुष्ट) करने वाले तथा मनुष्यों को सदैव अंग प्रदान करने वाले बताये गये हैं ।१९। सौभाग्य आदि प्रदान करने के नाते भी 'अंगारक' कहलाते हैं । अतः हे राजन् ! भक्ति-श्रद्धा पूर्वक जो कोई स्त्री-पुरुष इस चतुर्थी में उपावस करके रात में लाल फल और लेप चन्दन द्वारा एकाग्रचित्त से मंगल की पूजा में सर्वप्रथम गणेश की पूजा करता है, उसे प्रसन्न होकर वे रूप, सौन्दर्य, सौभाग्य प्रदान करते हैं ।२०-२२। हे माता ! पहले संकल्प करके विधिवत् स्नान करते समय मिट्टी लेकर 'इहत्वंवंदिता' आदि मंत्रों द्वारा उसकी वन्दना करते हुए उसे सूर्य को दिखाने और सूर्य की किरणों द्वारा पवित्र गंगा जल के बूँदों से उस मिट्टी को भिगोकर पहले सिर में लगाये फिर समस्त शरीर में लगाने के पश्चात् स्नान करने के लिए 'त्वमायो योनिः सर्वेषाम्' आदि मंत्रों से जल को अभिमंत्रित कर के स्नान करे।२३-२९। तदुपरान्त मंत्र वेत्ता स्नान करके पवित्र हो घर में आकर दूर्वा, पीपल, शमी और गाय का स्पर्श करे।३०। हे महीपते ! पवित्र स्नान में रहने वाली दूर्वा की 'त्वं दूर्वेऽमृते

वन्दिता दह तत्सर्वं दुरितं यन्मया[1] कृतम् ॥३२

शमीमन्त्रं प्रवक्ष्यामि तन्निबोध महीपते । पवित्राणां पवित्रां त्वं काश्यपी प्रथिता श्रुतौ ॥
शमी शमय मे पापं नूनं वेत्सि धराधरान् ॥३३

अश्वत्थालम्भने वीर मन्त्रमेतं निबोध मे । नेत्रस्पन्दादिजं दुःखं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तनम् ॥
शत्रूणां च समुद्योगमश्वत्थ त्वं क्षमस्व मे ॥३४

इमं मन्त्रं पठन्वीर कुर्याद्वै स्पर्शनं बुधः । ततो देव्यै तु गां दद्याद्वीरं कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥
समालभ्य तु हस्तेन ततो मन्त्रमुदीरयेत् ॥३५

सर्वदेवमयी देवि मुनिभिस्तु सुपूजिता । तस्मात्स्पृशामि वन्दे त्वां वन्दिता पापहा भव ॥३६

इमं मन्त्रं पठन्वीर[2] भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । प्रदक्षिणं तु यः कुर्यादर्जुनं कुरुनन्दन ॥
प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी स्यान्न संशयः ॥३७

एवं मौनेन चागत्य ततो वह्निगृहं व्रजेत् । प्रक्षाल्य च मृदा पादावाचान्तोऽग्निगृहं विशेत् ॥
होमं तत्र प्रकुर्वीत एभिर्मन्त्रपदैर्वरैः[3] ॥३८

शर्वाय शर्वपुत्राय क्षोण्युत्सङ्गभवाय च । कुजाय ललिताङ्गाय लोहिताङ्गाय वै तथा ॥३९

ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैः स्वाहाकारसमन्वितैः । अष्टोत्तरशतं वीर अर्धार्धमर्धमेव च ॥४०

एतैर्मन्त्रपदैर्भक्त्या शक्त्या वा कामतो नृप । खादिरैः सुसमिद्भिस्तु चाज्यदुग्धैर्यवैस्तिलैः ॥४१

भक्ष्यैर्नानाविधैश्चान्यैः शक्त्या भक्त्या समन्वितः । हुत्वाहुतीस्ततो[4] वीर देवं संस्थापयेत्क्षितौ ॥४२

सौवर्णं राजतं वापि शक्त्या दारुमयं नृप । देवदारुमयं वापि श्रीखण्डचन्दनैरपि ॥४३

नामासि' इस मंत्र से वन्दना करके शमी की वन्दना करे, उनके मंत्रों को भी कहता हूँ सूनो ! हे वीर ! 'पवित्राणां पवित्रात्वं' आदि । अश्वत्थ (पीपल) के स्पर्श करने का यह 'नेत्र स्पंदादिज' मंत्र को पढ़ कर प्रदक्षिणा करते हुए हाथ से गाय के स्पर्श करते हुए इस 'सर्वदेवमयी देवी' मंत्र का उच्चारण करे और उन्हें गौ दान करे । हे कुरुनन्दन ! जो इस मंत्र को पढ़ते हुए भक्तिश्रद्धापूर्वक अर्जुन की प्रदक्षिणा करता है उसने निःसंदेह समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर ली है ।३१-३७। फिर मौन होकर अग्निशिला (हवन-स्थल) में आये । वहाँ पहले मिट्टी से पैर को शुद्ध कर आचमन करे पश्चात् हवन गृह में प्रवेश कर वहाँ इन 'ओंकार पूर्वक 'स्वाहांत्र शर्वाय शर्वपुत्राय' आदि मंत्रों का उच्चारण करते हुए प्रज्वलित अग्नि में अनेक भाँति के एवं अन्य खाद्य पदार्थ खैर की लकड़ी की घी, दूध, जवा और तिल की एक सौ आठ या उसके आधे भाग या उसके आधे भाग की आहुति डाले। हे नृप ! इसे भक्ति पूर्वक कामना वश अपनी शक्ति के अनुसार ही सुसम्पन्न करना चाहिये। हे वीर ! हवन के पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार सोने, चाँदी, देवदारु या अन्य लकड़ी या चन्दन की बनी हुई देव मूर्ति को ताँबे या चाँदी के पात्र में पृथ्वी पर स्थापित करे। अनन्तर घी, कुंकुम,

---

१. मध्यमणिन्यायेन मयेत्यस्योभयत्र सम्बन्धः, तथा चायमर्थः। हे दूर्वे त्वं देवैर्वन्दिता तु पुनः मया वन्दिता सती यन्मया दुरितं कृतम्, तत्सर्वं दह । इह वन्दितेतिद्विरुक्त्या शब्दावृत्तिदीपकोलङ्कारः । २. नित्यम् । ३. हरिब्रह्मशिवादिभिः । ४. कृत्वा कृत्यम् ।

ताम्रे पात्रे रौप्यमये चाज्यकुङ्कुमकेसरैः । अन्यैर्वा लोहितैर्वापि पुष्पैः पत्रैः फलैरपि ॥
रक्तैश्च विविधैर्वीर अथ वा शक्तितोऽर्चयेत्[1] ॥४४
यावद्विसृजते वित्तं वित्तवान्वीर भक्तितः । तावद्विवर्धते पुण्यं दातुं शतसहस्रिकम् ॥४५
अन्ये ताम्रमये पात्रे वंशजे मृन्मयेऽपि वा । पूजयन्ति नराः शक्त्या कृत्वा कुङ्कुमकेशरैः ॥
पुरुषाकृतिकृतं पात्र इमं मन्त्रैः समर्चयेत् ॥४६
अग्निर्मूर्धेति मन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिस्तथा । धूपैरभ्यर्च्य विधिवद्ब्राह्मणाय प्रदीयते ॥४७
गुडौदनं घृतं क्षीरं गोधूमाञ्छालितण्डुलान् । अवेक्ष्य शक्तिं दद्याद्वै दरिद्रो वित्तवांस्तथा ॥४८
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं विद्यमाने धने नृप । वित्तशाठ्यं हि कुर्वाणो नामुत्र बलभाग्भवेत् ॥४९

शतानीक उवाच

अङ्गारकेण संयुक्ता चतुर्थी नक्तभोजनैः । उपोष्या कतिमात्रा तु उताहो सकृदेव तु[2] ॥५०

सुमन्तुरुवाच

चतुर्थी सा चतुर्थी सा यदाङ्गारकसंयुता । उपोष्या तत्र तत्रैव प्रदेयो विधिवद्गुडः ॥५१
उपोष्य नक्तेन विभो चतस्रः कुजसंयुता । चतुर्थ्यां च चतुर्थ्यां च विधानं शृणु यादृशम् ॥५२
सौवर्णं तु कुजं कृत्वा सविनायकमादरात् । दशसौवर्णिकं मुख्यं दशार्धमर्धमेव च ॥५३
सौवर्णपात्रे रौप्ये वा भक्त्या ताम्रमयेऽपि वा । विंशत्पलानि पात्राणि विंशत्यर्धपलानि वा ॥५४

केसर, लाल फूल एवं फल तथा पत्ते अथवा शक्ति के अनुसार (जो कुछ मिले) पूजन करे।३८-४४। हे वीर! धनवान् पुरुष (इसमें) जितना ही व्यय करता है उसका उससे हजारों गुना पुण्य बढ़ता है।४५। तांबे, बाँस के बने एवं मिट्टी के पात्र में भी कुंकुम और केशर द्वारा मनुष्य लोग उनकी पूजा करते हैं। इसलिए पुरुष की भाँति आकार बनाकर पात्र में रख इस 'अग्नि मूर्धा' आदि मंत्र का उच्चारण करते हुए गंध, फूल और धूप आदि से विधिपूर्वक पूजन करके उसे ब्राह्मण को समर्पित करे।४६-४७। अनन्तर दरिद्र हो या धनी अपनी शक्ति के अनुसार मीठाभात घी, दूध, गेहूँ, और शाही चावल (ब्राह्मण) को समर्पित करे।४८। हे नृप! धन के रहते हुए कृपणता न करनी चाहिये, क्योंकि कृपणता करने वाले मनुष्य को स्वर्गीय फल नहीं मिलता है।४९

शतानीक ने कहा—मंगल की चौथ का व्रत जिसमें रात में भोजन किया जाता है कितने बार सुसम्पन्न करना चाहिए या एक ही बार।५०

सुमन्तु बोले—अंगारक (मंगल) की चौथ ही चौथ कहलाती है, वह समयानुसार जबभी आये उसमें उपवास करते हुए विधिपूर्वक गुड़ का दान देना चाहिये।५१। हे विभो! उसी प्रकार मंगलवाली चौथ के चार बार (व्रत) रहने का आदेश है अतः उसमें जैसा विधान है, कहता हूँ सूनो!।५२। प्रेम पूर्वक दशफल[1] उसके आधे या उसके भी आधे भाग सुवर्ण की गणेश और मंगल की प्रतिमा बनाकर सोने,

---

१. भक्तितः। २. हि।

१. सोलह माशे का एक वर्ष और चार वर्ष का एक पल होता है।

विंशत्कर्षाणि वा वीर विंशदर्धार्धमेव वा । रौप्यसङ्ख्यं पलं कार्यं पलार्धमर्धमेव च ।।५५
शक्त्या वित्तैश्च भक्त्या च पात्रे ताम्रमयेऽपि तु । प्रतिष्ठाप्य ग्रहेशं वै वस्त्रैः सम्परिवेष्टितम् ।।
विविधैः साधकै रक्तैः पुष्पै रक्तैः समन्वितम् ।।५६
ब्राह्मणाय सदा दद्याद्दक्षिणासहितं नृप । वाचकाय महाबाहो गुणिने श्रेयसे नृप ।।५७
इति ते कथिता पुण्या तिथीनामुत्तमा तिथिः । यामुपोष्य नरो रूपं दिव्यमाप्नोति भारत ।।५८
कान्त्यात्रेयसमं वीरं तेजसा रविसन्निभम् । प्रभया रविकल्पं च समीरबलसंश्रितम् ।।५९
ईदृग्रूपं समाप्येह याति भौमसदो नृप । प्रसादाद्विघ्ननाथस्य तथा गणपतेर्नृप ।।६०
पठतां शृण्वतां राजन्कुर्वतां च विशेषतः । ब्रह्महत्यादिपापानि क्षीयन्ते नात्र संशयः ।।
ऋद्धिं वृद्धिं तथा लक्ष्मीं लभते नात्र संशयः । ।।६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे सुखावहाङ्गारकचतुर्थीव्रतनिरूपणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।३१।

(समाप्तश्चायं चतुर्थीकल्पः)

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

नागपञ्चमीपूजनम्

सुमन्तुरुवाच

पञ्चमी दयिता राजन्नागानां नन्दिवर्धिनी । पञ्चम्यां किल नागानां भवतीत्युत्सवो महान् ।।१

चाँदी एवं ताँबे के पात्र में वस्त्र लपेट कर रखे । हे वीर ! वह पात्र भी बीस या दश पल अथवा बीस, दश या पाँच कर्ष सुवर्ण का होना चाहिये । चाँदी का पात्र बीस, दश या पाँच पल का ही होता है इस भाँति ताँबे का पात्र भी भक्ति पूर्वक अपनी धन-शक्ति के अनुसार ही बनाये । हे महाबाहो ! उपरान्त लाल फूल एवं वस्त्र आदि विविध प्रकार की साधनसामग्रियों द्वारा पूजन कर उसे (प्रतिमा) दक्षिणा समेत अपने कल्याण के निहित कथा बाचने वाले किसी विद्वान् ब्राह्मण को समर्पित करे।५३-५७। हे भारत ! इस प्रकार मैंने इस पुण्य-स्वरूपा तिथि (तथा विधानआदि) को जो सभी तिथियों में श्रेष्ठ एवं जिसका व्रत रह कर मनुष्य दिव्य (देवताओं) का रूप प्राप्त करता है बता दिया। जिसके फलस्वरुप चन्द्रमा की भाँति कान्ति, सूर्य के समान प्रखर तेज एवं वायु के समान बल शाली रूप प्राप्त कर विघ्नेश्वर गणपति की कृपा द्वारा वह मनुष्य शिवलोक प्राप्त करता है।५८-६०। हे नृप ! इस आख्यान के पढ़ने, सुनने एवं विशेषकर इसे सुसम्पन्न करने वाले मनुष्य के ब्रह्म हत्या आदि दोष निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं और उसे ऋद्धि-वृद्धि समेत लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।६१

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के चतुर्थी कल्प में सुखावहांगारक चतुर्थी व्रत निरूपण नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३१।

(इति चतुर्थीकल्पः)

अध्याय ३२

नागपञ्चमी पूजन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! नागों (सर्पों) का आनन्द बढ़ाने वाली यह पञ्चमी उन्हें अति प्रिय है

वासुकिस्तक्षकश्चैव कालियो मणिभद्रकः । ऐरावतो धृतराष्ट्रः[1] कर्कोटकधनञ्जयौ ॥
एते प्रयच्छन्त्यभयं प्राणिनां प्राणजीविताम् ॥२
पञ्चम्या स्नपयन्तीह[2] नागान्क्षीरेण ये नराः । तेषां कुले प्रयच्छन्ति तेऽभयप्राणदक्षिणाम् ॥३
शप्ता नागा यदा मात्रा दह्यमाना दिवानिशम् । निर्वापयन्ति स्नपनैर्गवां[3] क्षीरेण मिश्रितैः ॥४
ये स्नपयन्ति वै नागान्भक्त्या श्रद्धासमन्विता । तेषां कुले सर्पभयं न भवेदिति निश्चयः ॥५

शतानीक उवाच

मात्रा शप्ताः कथं नागाः किं समुद्दिश्य कारणम् । कथं चानन्दकरणं कस्य वा सम्प्रसादजम् ॥६

सुमन्तुरुवाच

उच्चैःश्रवा अश्वरत्नं श्वेतो जातोऽमृतोद्भवः । तं दृष्ट्वा चाब्रवीत्कद्रूर्नागानां जननी स्वसाम्[4] ॥७
अश्वरत्नमिदं श्वेतं सम्प्रेक्षेऽमृतसम्भवम् । कृष्णांश्च वीक्षसे बालान्सर्वंश्वेतनुताम्बरे ॥८

विनतोवाच

सर्वश्वेतो ह्ययवरो नास्य कृष्णो न लोहितः । कथं पश्यसि कृष्णं त्वं विनतोवाच तां स्वसाम् ॥९

कद्रूरुवाच

वीक्षेऽहमेकनयना कृष्णबालसमन्वितम् । द्विनेत्रा त्वं तु विनते न पश्यसि पणं कुरु ॥१०

इसीलिए पञ्चमी के दिन नागों का निश्चित महान् उत्सव सुसम्पन्न होता है ।१। वासुकि, तक्षक, कालियानाग, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनंजय ये सभी नागदेव सभी प्राणियों को अभय प्रदान करते हैं ।२। अतः जो लोग पञ्चमी में नागों को दूध से स्नान-पूजन कराते हैं उनके कुल को वे सदैव अभयपूर्वक प्राण दान देते रहते हैं ।३। इसलिए उसीदिन माता के शाप द्वारा रात-दिन पीड़ित रहने वाले नागों को जो श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक गाय के दूध या जल से स्नान कराता है निश्चित ही उसके कुल में साँपों का भय कभी नहीं होता है ।४-५

शतानीक ने कहा— माता ने नागों को शाप क्यों दिया, उनका क्या उद्देश्य था ? तथा किसकी कृपा से उन्हें यह (पंचमी का दिन) आनन्द दायी हुआ ।६

सुमन्तु बोले— समुद्र मथते समय अमृत से उच्चैःश्रवा नामक अश्व की उत्पत्ति हुई जो श्वेत रंग एवं सभी अश्वों में रत्न रूप था । उसे देख कर नागों की माता कद्रू ने अपनी बहन विनता से कहा—अमृत से उत्पन्न हुए इस घोड़े को जो श्वेत एवं घोड़ों में रत्न रूप है, मैं देख रही हूँ पर, वह काला भी है तुम भी आकाश में उसके काले बाल को देखती हो या श्वेत वर्ण ही देखती हो ।७-८

विनता ने कहा— यह उत्तम घोड़ा सर्वाङ्ग श्वेत है, इसके बाल न काले हैं और न लाल तुम इसे काला कैसे देख रही हो ।९

कद्रू ने कहा— विनते ! मेरी तो एक ही आँख है, पर, उस काले बाल वाले को मैं देख रही हूँ और तुम्हारे दो आँखे हैं फिर भी नहीं देख रही हो । तो फिर बाजी लगाओ ।१०

---

१. सार्धं कुर्याद्वै सर्वमेव वा । २. धृतशिरास्तथान्ये ये महोरगाः । ३. पूजयन्ति । ४. च जलैर्गवां क्षीरैरमिश्रितैः ।

विनतोवाच

अहं दासी भवित्री ते कृष्णे केशे प्रदर्शिते । न चेद्दर्शयसे कद्रु मम दासी भविष्यसि ॥११
एवं ते विपणं कृत्वा गते क्रोधसमन्विते । विनता शयने सुप्ता कद्रूर्जिह्यमचिन्तयत् ॥१२
आहूय पुत्रान्प्रोवाच बाला भूत्वा हयोत्तमे । तिष्ठध्वं विपणे जेष्ये विनतां जयगर्द्धिनीम् ॥१३
प्रोचुस्ते जिह्यबुद्धिं तां नागा मातरं[1] विगृह्य तु । अधर्म्मेमेतन्मातस्ते न करिष्याम ते वचः ॥१४
तांश्छशाप रुषा कद्रूः पावको वः प्रधक्ष्यति । गते बहुतिथे काले पाण्डवो जनमेजयः ॥१५
सर्पसत्रं स कर्ता वै भुवि ह्यन्यैः सुदुष्करम् । तस्मिन्सत्रे स तिग्मांशुः पावको वः प्रधक्ष्यति ॥१६
एवं शप्त्वा रुषा कद्रूः किञ्चिन्नोक्तवती तु सा । मात्रा शप्तास्तथा नागाः कर्तव्यं नान्वपत्सत ॥१७
वासुकिं दुःखितं ज्ञात्वा ब्रह्मा प्रोवाच सान्त्वयन् । मा शुचो वासुकेऽत्यर्थं शृणु मद्वचनं परम् ॥१८
यायावरकुले जातो जरत्कारूरिति द्विजः । भविष्यति महातेजास्तस्मिन्काले तपोनिधिः ॥१९
भगिनीं च जरत्कारुं तस्मै त्वं प्रतिदास्यसि । भविता तस्य पुत्रोऽसावास्तीक इति विश्रुतः ॥२०
स तत्सत्रं प्रवृद्धं वै नागानां भयदं महत् । निषेधेत्सुमतिर्वाग्भिरग्र्याभिस्तं भविष्यति ॥२१
तदिमां भगिनीं राजंस्तस्मै त्वं प्रतिदास्यसि । जरत्कारुं जरत्कारोः प्रदद्या अविचारयन् ॥२२

विनता ने कहा—यदि उसके काले बाल को तू दिखायेगी तो मैं आजीवन तेरी दासी रहूँगी नहीं तो तू मेरी दासी होगी ।११। इस प्रकार उन दोनों ने क्रुद्ध होकर बाजी लगाया और जब विनता शयनागार में सो गयी तब कद्रू ने छल करने की सोची ।१२। अपने लड़कों को बुलाकर कहने लगी कि बाल की भाँति पहले हो कर उस सुन्दर घोड़े के अंग में चिपट जाओ, जिससे इस बाजी में जय का लोभ करने वाली उस विनता को जीत लूँ ।१३। इसे सुनकर नागों ने छल करने वाली अपनी उस माँ से कहा—माता ! ऐसा करना अधर्म है अतः हम लोग तुम्हारी इस बात को नहीं मानेंगे ।१४। अनन्तर क्रुद्ध होकर कद्रू ने उन्हें शाप दिया कि तुम्हें अग्नि जला डाले बहुत दिन बीतने पर पाण्डव जनमेजय इस प्रकार की सर्पयज्ञ जो पृथ्वी में दूसरे के लिए महा कठिन हैं आरम्भ करेंगे उसी यज्ञ में प्रचण्ड ज्वाला वाले अग्नि तुम्हें जलायेंगे ।१५-१६। क्रुद्ध होकर कद्रू ने इस प्रकार शाप देकर फिर कुछ नहीं कहा और माँ द्वारा शाप होने पर नाग लोगों को भी उस समय कर्तव्य का ज्ञान न रहा ।१७। उस समय बासुकि को दुःखी देख शांति प्रदान करते हुए ब्रह्मा ने कहा, वासुके ! अधिक चिंता न करो मेरी उत्तम बातें सुनो ।१८। उसी समय में यायावर कुल में महातेजस्वी एवं तपोमूर्ति जरत्कारु नामक एक ब्राह्मण उत्पन्न होगा ।१९। उसे तुम जरत्कारु नामक अपनी बहन (पत्नी रूप में) अर्पित करोगे । उससे आस्तिक नामक पुत्र उत्पन्न होगा, ऐसा (मैंने) सुना है ।२०। तदुपरांत वह बुद्धिमान् ब्राह्मण उत्तमवाणी द्वारा प्रार्थना करके नागों के लिए आरम्भ किये गये उस महान एवं भयंकर यज्ञ को स्थगित करा (रोकवा) देगा ।२१। हे राजन् ! इसलिए तू अपनी इस भगिनी (बहिन) को उस ब्राह्मण को अवश्य अर्पित करना क्योंकि जरत्कारु के लिए जरत्कारु को बिना कुछ सोचे-समझे ही प्रदान करना चाहिये ।२२। यदि अपना कल्याण चाहते हो

---

१. स्वस्वामित्यार्षम्, विनताम् ।

यदासौ प्रार्थतेऽरण्ये यत्किञ्चिद्धि वदिष्यति । तत्कर्तव्यमशङ्केन यदीच्छेः श्रेय आत्मनः ।।२३
पितामहवचः श्रुत्वा वासुकिः प्रणिपत्य च । तथाकरोद्यथा चोक्तं यत्नं च परमास्थितः ।।२४
तच्छ्रुत्वा पन्नगाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्लोचनाः । पुनर्जातमिवात्मानं मेनिरे भुजगोत्तमाः ।।२५
तत्र सत्रं महाबाहो[1] तव पित्रा प्रवर्तितम् । ऋत्विग्भिः स हि तेनेह सर्वलोकेषु[2] दुष्करम् ।।२६
प्रोक्तं च विष्णुना पूर्वं धर्मपुत्रस्य धीमतः । अवश्यं तस्य भविता नागानां भयकारकम्[3] ।।२७
तस्मात्कालान्तराद्राजन्सम्प्राप्ते वर्षशते गते । तत्सत्र भविता घोरं नागानां क्षयकारकम् ।।२८
यास्यन्त्यधर्मभरिता दन्दशूका विषोल्बणाः । कोटिसङ्ख्या महाराज निपतिष्यन्त्यहर्निशम् ।।२९
अपूर्वे तु निमग्नानां घोरे रौद्राग्निसागरे । आस्तीकस्तत्र भविता तेषां नौर्देह्निसागरे ।।३०
श्रुत्वा स चाग्निं राजानमृत्विजस्तदनन्तरम् । निवर्तयिष्यते यागं नागानां मोहनं परम् ।।३१
पञ्चम्यां तत्र भविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान् । तस्मादियं महाबाहो पञ्चमी दयिता सदा ।।
नागानामानन्दकरी दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा ।।३२
कृत्वा तु भोजनं पूर्वं ब्राह्मणानां तु कामतः । विसृज्य नागाः प्रीयन्तां ये केचित्पृथिवीतले ।।३३
ये च हेलिमरीचिस्था येऽन्तरे दिवि संस्थिताः । ये नदीषु महानागा ये सरस्वतिगामिनः ।।
ये च वापीतडागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः ।।३४

तो (वहाँ) जंगल में वह ब्राह्मण जो कुछ याचना करे (मांगे) या कहे उसे निःशंक हो कर करना ।२३। इस भाँति पितामह ब्रह्मा की बातें सुनकर नागवासुकि ने उन्हें प्रणाम करते हुए यत्नपूर्वक उसे सुसम्पन्न करने की स्वीकृति प्रदान की ।२४। इसे सुनकर सभी नागों की आँखें हर्षातिरेक से खिल उठी और वे अपने को फिर से उत्पन्न हुए की भाँति समझने लगे ।२५। हे महाबाहो ! ऋत्विक् (यज्ञ करने वाले) ब्राह्मणों के साथ तुम्हारे पिता ने उस यज्ञ को जो सभी लोकों में महान् कठिन समझा जाता था आरम्भ किया था ।२६। भगवान् कृष्ण ने परम बुद्धिमान् युधिष्ठिर से पहले ही कहा था कि नागों का नाश करने वाला यह यज्ञ अवश्य आरम्भ होगा ।२७। इसलिए हे राजन् ! सौ वर्ष (का समय) बीत जाने पर नागों का नाश करने वाला वह घोर यज्ञ अवश्य आरम्भ होगा ।२८। हे महाराज ! वे विषधर नागगण भी अधर्मी होंगे अतः करोड़ों की संख्या में वे रातदिन (उसमें) गिरेंगे ।२९। किन्तु अपूर्व, घोर एवं प्रचण्ड ज्वाला वाले उस अग्नि के सागर से उन्हें बचाने के लिए समुद्र में नौके की भाँति आस्तीक पहुँचेगा ।३०। और उस यज्ञ को आरम्भ सुनकर क्रमशः अग्नि, राजा एवं ऋत्विकों समेत नागों को मुग्ध करने वाले उस यज्ञ को भी रोक देगा ।३१। ब्रह्मा ने उन सर्पों से कहा था कि इनकी रक्षा का कार्य पञ्चमी में ही होगा । महाबाहो ! इसीलिए यह पञ्चमी नागों को अति प्रिय हुई है प्राचीन काल में ब्रह्मा ने भी इसी पञ्चमी में नागों को वर प्रदान कर आनन्द प्रदान करने वाली यह पञ्चमी उन्हें सौंप दिया था ।३२। अतः उस दिन पहले ब्राह्मणों को भली भाँति भोजन कराकर (भोजन पश्चात्) नागों का विसर्जन करते हुए प्रार्थना करे कि भूतल, हेलि, मदार के वृक्ष, मरीचि (सप्तर्षि) आकाश, सरस्वती, नदी, बावली और तालाब आदि में रहने वाले नाग देव को नमस्कार है । इस प्रकार नागों और ब्राह्मणों

---

१. मातामित्यार्षम् । २. महाराज । ३. सर्वलोकसुदुर्धरम् ।

नागान्विप्रांश्च सम्पूज्य विसृज्य च यथार्थतः । ततः पश्चात्तु भुञ्जीत सह भृत्यैर्नराधिप ॥३५
पूर्वं मधुरमश्नीयात्ततो भुञ्जीत कामतः । एवं नियमयुक्तस्य यत्फलं तन्निबोध मे ॥३६
मृतो नागपुरं याति पूज्यमानोऽप्सरोगणैः । विमानवरमारूढो रमते कालमीप्सितम् ॥३७
इह चागत्य राजासावयुतानां[1] वरो भवेत् । सर्वरत्नसमृद्धः स्याद्वाहनाढ्यश्च जायते ॥३८
पञ्च जन्मान्यसौ राजा द्वापरे द्वापरे भवेत् । आधिव्याधिविनिर्मुक्तः पत्नीपुत्रसहायवान् ॥
तस्मात्पूज्याश्च मान्याश्च[2] घृतपायसगुग्गुलैः ॥३९

शतानीक उवाच

दशन्ति ये नरं विप्र नागाः क्रोधसमन्विताः । भवेत्किं तस्य दष्टस्य विस्तराद् ब्रूहि मे द्विज ॥४०

सुमन्तुरुवाच

नागदष्टो नरो राजन्प्राप्य मृत्युं व्रजत्यधः । अधो गत्वा भवेत्सर्पो निर्विषो नात्र संशयः ॥४१

शतानीक उवाच

नागदष्टः पिता यस्य भ्राता वा दुहितापि वा । माता पुत्रोऽथ वा भार्या किं कर्तव्यं वदस्व मे ॥४२
मोक्षाय तस्य विप्रेन्द्र दानं व्रतमुपोषणम् । ब्रूहि तद्द्विजशार्दूल येन तद्वै करोम्यहम् ॥४३

का पूजन एवं विसर्जन करके हे राजन् ! पश्चात् सेवकों को साथ ले भोजन करे।३३-३५। उस समय सर्वप्रथम मधुर भोजन करना चाहिये पश्चात् जैसी रुचि हो। इस प्रकार नियम पूर्वक इसे सुसम्पन्न करने वाले को जो फल प्राप्त होता है, मैं उसे कह रहा हूँ सुनो।३६। शरीर त्याग करने पर वह प्राणी पहले नाग लोक में जाता है। वहाँ अप्सराएँ उसकी सेवा करती हैं वहाँ उत्तम विमान पर बैठ कर वह अपने मन इच्छित समय तक उनके साथ क्रीडा करता है।३७। और फिर (कभी) इस लोक में आकर इस प्रकार का राजा होता है, जो भूमण्डल का पति होकर समस्त रत्नों एवं सवारियों की अधिकता से सदैव परिपूर्ण रहता है।३८। इसी भाँति वह द्वापर के प्रत्येक युग में पाँच जन्मों तक राजा होता है जो शारीरिक एवं मानसिक कष्टों से सदैव मुक्त रहता है तथा स्त्री और पुत्र उसकी सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते हैं इसलिए इस दिन घी, खीर और गूगुल द्वारा नागों का पूजन और सम्मान अवश्य करना चाहिये।३९

शतानीक ने कहा—हे विप्र ! क्रुद्ध होकर नाग जिसे काट लेते हैं उस (प्राणी) की कौन गति होती है, इसे विस्तार पूर्वक हमें सुनाइये।४०

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! नाग जिसे काट खाते हैं वह मनुष्य मृत्यु प्राप्त कर नीचे पाताल लोक में जाता है और वहाँ जाकर निश्चित विषहीन सर्प होता है।४१

शतानीक ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! जिसके पिता, भाई, लड़की, माँ, पुत्र या स्त्री को साँप काट लेता है उसका (उसके प्रति) क्या कर्तव्य होता है, मुझे बताने की कृपा करे।४२। और उसके मुक्ति के लिए दान, व्रत एवं उपवास आदि क्या किया जाता है ? अथवा जो होता हो मुझे बतायें मैं उसे अवश्य करूँगा।४३

---

१. अयकारम् २.। वसुधायाः।

सुमन्तुरुवाच

उपोष्या पञ्चमी राजन्नागनां पुष्टिवर्धिनी । त्वमेवमेकं राजेन्द्र विधानं शृणु भारत ।।४४
मासि भाद्रपदे या तु कृष्णपक्षे[1] महीपते । महापुण्या तु सा प्रोक्ता ग्राह्यापि च महीपते ।।४५
ज्ञेया द्वादश पञ्चम्यो हायने भरतर्षभ । चर्तुर्थ्यां त्वेकभक्तं तु तस्यां नक्तं प्रकीर्तितम् ।।४६
भुवि[2] चित्रमयान्नागानथ वा कलधौतकान् । कृत्वा दारुमयान्वापि अथ वा मृन्मयान्नृप ।।४७
पञ्चम्यामर्चयेद्भक्त्या नागानां पञ्चकं नृप । करवीरैः शतपत्रैर्जातीपुष्पैश्च सुव्रत ।।४८
तथा गन्धैश्च धूपैश्च पूज्य पञ्चकमुत्तमम्[3] । ब्राह्मणं भोजयेत्पश्चाद् घृतपायसमोदकैः ।।४९
अनन्तो वासुकिः शङ्खः पद्मः कम्बल एव च । तथा कर्कोटको नागो नागो ह्यश्वतरो नृप ।।५०
धृतराष्ट्रः शङ्खपालः कालियस्तक्षकस्तथा । पिङ्गलश्च तथा नागो मासि मासि प्रकीर्तिताः ।।५१
वत्सरान्ते[4] पारणं स्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्बहून् । इतिहासविदे नागं गैरिकेण कृतं नृप ।।
तथार्चना प्रदातव्या वाचकाय महीपते ।।५२
एष वै नागपञ्चम्या[5] विधिः प्रोक्तो बुधैर्नृप । तव पित्रा कृतश्चैव पितुर्मोक्षाय भारत ।।५३
त्वमेकमेकं वै वीर पञ्चम्यां भरतर्षभ । सुवर्णभारनिष्पन्नं नागं दत्त्वा तथा च गाय ।।५४

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! उस प्राणी के निमित्त पञ्चमी का व्रत करना चाहिये जो लोगों को सुदृढ़ बनाती हैं अतः हे राजेन्द्र ! तुम उसका एक विधान सुनो ! हे भारत ! अब मैं उसका विधान बता रहा हूँ सुनो ! हे महीपते ! भादों महीने की [1]कृष्ण पक्ष वाली पञ्चमी अधिक पुण्य प्रदान करती है अतः व्रत पूजा हेतु उसी को ग्रहण करना चाहिये ।४४-४५। हे भरतर्षभ ! वर्ष भर में बारह पञ्चमी होती है । इसलिए (उसके विधान में) पञ्चमी के पूर्व चौथ की रात में एक बार भोजन का विधान कहा गया है । हे नृप ! फिर (दूसरे दिन) पञ्चमी में पाँच नागों की प्रतिमा का जो सोने की चित्रविचित्र, काष्ठ, वा मिट्टी का बना हो, भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए ।४६-४७। हे सुव्रत ! करील, कमल एवं मालती के पुष्पों, गंध और धूपों द्वारा पंचमी में पाँचों (नागों) की पूजा करने के पश्चात् ब्राह्मणोंको मिश्रित घी खीर और लड्डू का भोजन कराना चाहिये।४८-४९। हे नृप ! इसीलिए बारहों महीने के क्रमशः ये अनंत, बासुकी, शङ्ख, पद्म, कंबल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शङ्खपाल, कालिय, तक्षक और पिंगल नामक नाग (पूजन के लिए) बताये गये हैं।५०-५१। वर्ष के पूरे होने के पश्चात् पारण करे और उसमें अधिक ब्राह्मणों का भोजन कराकर सोने की वह (नाग की) प्रतिमा उन कथा वाचक ब्राह्मणों को जो इतिहास आदि के भी पूर्ण विद्वान हों सम्मान पूर्वक अर्पित कर देना चाहिए।५२। हे नृप ! नाग पंचमी के विधान को जो विद्वानों ने बताया है, तुम्हारे पिता ने अपने पिता की मुक्ति के लिए सुसम्पन्न किया था।५३। अतः हे भारत ! तुम भी पंचमी के प्रत्येक व्रत में एक-एक नाग की प्रतिमा जो अधिक सोने की बनी है

---

१. मान्याश्च । २. शुक्लपक्षे । ३. भूरि चन्द्रमयं नागम् । ४. पुस्कांतरे च "भूरि चन्द्रमयं नागमथ वा कलधौतकम् । कृत्वा दारुमयं वापि अथ वा मृन्मयं नृप । पंचम्यामर्चयेद्भक्त्या नागं पंचफणं नृप । करवीरैः शतपत्रैर्जातीपुष्पैश्च सुव्रत । तथा गंधैश्च धूपैश्च पूज्य पन्नगमुत्तमम् । ५. पन्नमम् ।

व्यासाय कुरुशार्दूल पितुरानृण्यमाप्नुयाः । तत्र पित्रा कृता ह्येवं पञ्चम्युपासना नृप ॥५५
उत्सृज्य नागतां वीर तत्र पूर्वपितामहः । पुष्पोत्तरं सदो गत्वा तथा पुष्पसदो नृप ॥५६
सुनासीरसदो गत्वा तदा भर्गसदो गतः । स्वभूसदस्ततो गत्वा कञ्जजस्य सदो गतः ॥५७
अन्येऽपि ये करिष्यन्ति इदं व्रतमनुत्तमम् । दष्टको मोक्ष्यते तेषां शुभं स्थानमवाप्स्यति ॥५८
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं नरः[1] श्रद्धासमन्वितः । कुले तस्य न नागेभ्यो भयं भवति कुत्रचित् ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे
नागपञ्चमीव्रतवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।३२।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

सर्पभेदम्

शतानीक उवाच

सर्पाणां कति रूपाणि के वर्णाः किं च लक्षणम् । का जातिस्तु भवेत्तेषां केषु योनिकुलेषु वा ॥१

सुमन्तुरुवाच

पुरा मेरौ नगवरे कश्यपं तपसां निधिम् । प्रणम्य शिरसा भक्त्या गौतमो वाक्यमब्रवीत् ॥२

गौ समेत व्यास (कथावाचक) को देकर अपने पितृ-ऋण से मुक्त हो जाओ। क्योंकि तुम्हारे पिता ने इसी प्रकार की पञ्चमी की पूजा की थी।५४-५६। हे नृप ! तुम्हारे पूर्व पितामह ने अपनी नाग की शरीर त्याग कर क्रमशः कुबेर, इन्द्र, शिव, ब्रह्म एवं विष्णु के लोक की प्राप्ति की है।५७। इसी प्रकार अन्य जो लोग भी इस व्रत को सुसम्पन्न करेंगे तो प्राणियों को जिन्हें साँप ने काट खाया है नित्य उत्तम स्थान की प्राप्ति होगी।५८। अतः जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक इस कथा को नित्य सुनता है, उसके कुल में साँप का भय कभी भी उपस्थित नहीं होता।५९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के पञ्चमी कल्प में नागपञ्चमी व्रत वर्णन नामक
बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।३२।

अध्याय ३३

साँपों के भेद

शतानीक ने कहा—साँप के कितने रूप, रंग और जाति होती है ? उनका लक्षण क्या है और किस योनि में उनकी गणना होती है ? बताने की कृपा करें।१

सुमन्तु बोले—पहले समय में गौतम जी ने सौन्दर्य पूर्ण मेरु पर्वत पर (रहने वाले) उन तपोमूर्ति कश्यप जी को भक्तिपूर्वक सादर सिर से प्रणाम किया और (उनसे) कहा— हे प्रजापति ! हे प्रभो !

---

१. संवर्तांते पारणं स्यान्महाब्राह्मणभोजनम् ।

सर्पाणां कति रूपाणि किं चिह्नं किं च लक्षणम् । जातिं कुलं तथा वर्णान्ब्रूहि सर्वं प्रजायते ।।३
कथं वा जायते सर्पः कथं मुञ्चेद्विषं प्रभो ! विषवेगाः कति प्रोक्ताः कत्येव विषनाडिकाः ।।४
दंष्ट्राः कतिविधाः प्रोक्ताः किं प्रमाणं विषागमे । गृह्णीते तु कदा गर्भं कथं चेह प्रसूयते ।।५
कीदृशी स्त्री पुमांश्चैव कीदृशश्च नपुंसकः । किं नाम दशनं चैव एतत्कथय सुव्रत ।।६
तस्य[1] तद्वचनं श्रुत्वा कश्यपः प्रत्यभाषत । शृणु गौतम तत्त्वेन सर्पाणामिह लक्षणम् ।।७
मास्याषाढे तथा ज्येष्ठे प्रमाद्यन्ति भुजङ्गमाः । ततो नागोऽथ नागी च मैथुने सम्प्रपद्यते ।।८
चतुरो वार्षिकान्मासान्नागी गर्भमधारयत् । ततः कार्तिकमासे तु अण्डकानि प्रसूयते ।।९
अण्डकानां तु विज्ञेये द्वेशते द्वे च विंशती । तान्येव भक्षयेत्सा तु भोगैकं घृणया त्यजेत् ।।१०
स्वर्णार्कवर्णाद्वै तस्मात्पुमान्सञ्जायतेऽण्डकात् । तान्येव खादते सर्प अहोरात्राणि विंशतिम् ।।११
स्वर्णकेतकवर्णाभाद्दीर्घराजीवसन्निभात् । तस्मादुत्पद्यते स्त्री वै अण्डाद्ब्राह्मणसत्तम ।।१२
शिरीषपुष्पवर्णाभादण्डकात्स्यान्नपुंसकः । ततो भिनत्ति चाण्डानि षण्मासेन तु गौतम ।।१३
ततस्ते प्रीतिसम्बन्धात्स्नेहं बध्नन्ति बालकाः । ततोऽसौ सप्तरात्रेण कृष्णो भवति पन्नगः ।।१४
आयुःप्रमाणं सर्पाणां शतं विंशोत्तरं स्मृतम् । मृत्युश्चाष्टविधो ज्ञेयः शृणुष्वात्र यथाक्रमम् ।।१५
मयूरान्मानुषाद्वापि चकोराद्गोखुरात्तथा[2] । बिडालान्नकुलाच्चैव वराहाद्वृश्चिकात्तथा ।।

साँपों के कितने रूप, चिह्न, लक्षण जाति, कुल एवं रंग हैं ये सभी बाते हमें बताने की कृपा करे ।२-३। साँप कैसे उत्पन्न होते हैं, वे कैसे काटते हैं और विष को कैसे छोड़ते हैं, कितने विष के आवेग एवं कितनी विष की नाड़ियाँ हैं, दाँत के भेद तथा उनके विषधर होने में क्या प्रमाण है ? कब गर्भ धारण करते हैं और कैसे बच्चा उत्पन्न करते हैं ? तथा उनमें किस भाँति की स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक होते हैं एवं काटना किसे कहते है । हे सुव्रत ! ये सभी बाते मुझसे कहें ।४-६। उनकी बातें सुनकर कश्यप ने कहा—गौतम ! सावधान होकर साँपों के लक्षणों को मैं बता रहा हूँ सूनो । आषाढ और जेठ के मास में साँप मतवाले होते हैं तभी नाग और नागिन से भोग करते हैं ।७-८। वर्षा काल में चार मास गर्भिणी रह कर पश्चात् कार्तिक मास में नागिन अंडे उत्पन्न करती है ।९। वे अंडे दो सौ चालीस की संख्या में होते हैं जिन्हें नागिन भक्षण करना आरम्भ करती है पर घृणा वश एक भाग छोड़ भी देती है ।१०। सुवर्ण और सूर्य की भाँति चमकीले उस अंडे से पुरुष (नर) नाग उत्पन्न होते हैं साँप जिन्हें बीस दिन तक सतत खाता रहता है ।११। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इसी भाँति सुवर्ण केतकी एवं लम्बे कमल के समान वाले अंडे से स्त्री (मादा) तथा शिरीष पुष्प की भाँति वाले अंडे से नंपुसक नाग उत्पन्न होता है । हे गौतम ! छठे मास में अंडे फूट जाते हैं पुनः उन बच्चों में माँ का स्नेह उत्पन्न हो जाता है और सात दिन में वे काले हो जाते हैं ।१२-१४। साँपों की आयु एक सौ बीस वर्ष की होती है और उनकी आठ प्रकार की मृत्यु होती है उनके क्रम को सुनो, मैं बता रहा हूँ ।१५। मोर, मनुष्य, चकोर, गौओं का खुर, बिल्ली, नेवला, सुअर और बिच्छू से यदि वे सुरक्षित रह सकें तो वे एक सौ बीस वर्ष का जीवन प्राप्त करते हैं । सात दिन पूरा होने पर दाँत निकल आते हैं और

---

१. श्रद्धाभक्तिसमन्वितः । २. कस्मिंश्चित्पुस्तके पूर्वं प्रोक्तः "सुमन्तुरुवाच" इत्यादिपाठो नास्ति परं त्वत्र-तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुमन्तुः प्राह तत्तदा ।। इममर्थं पुरा पृष्टो गौतमेन च कश्यपः । प्रहृष्टवदनः सौम्यः कश्यपः प्रत्यभाषत ।।" इति पाठोऽस्ति ।

एतेषां यदि मुच्येत जीवेद्विंशोत्तरं शतम् ॥१६
सप्ताहे तु ततः पूर्णे दंष्ट्राणां चाधिरोहणम् । विषस्यागमनं तत्र निक्षिपेच्च पुनः पुनः ॥१७
एवं ज्ञात्वा तु तत्त्वेन विषकर्म्मारभेत वै । एकविंशतिरात्रेण विषदंष्ट्रा सुजायते ॥
नागीपार्श्वसमावर्ती बालसर्पः स उच्यते ॥१८
पञ्चविंशतिरात्रस्तु सद्यः प्राणहरो भवेत् । षण्मासाज्जातमात्रस्तु कञ्चुकं वै प्रमुञ्चति ॥१९
पादानां चापि विज्ञेये द्वे शते द्वे च विंशती । गोलोमसदृशाः पादाः प्रविशन्ति क्रमन्ति च ॥२०
सन्धीनां चास्य विज्ञेये द्वेशते विंशती तथा । अंगुल्यश्चापि विज्ञेया द्वे शते विंशती तथा ॥२१
अकालजाता ये सर्पा निर्विषास्ते प्रकीर्तिताः । पञ्चसप्ततिवर्षाणि आयुस्तेषां प्रकीर्तितम् ॥२२
रक्तपीतशुक्लदन्ताः अनीला मन्दवेगिनः । एते अल्पायुषो ज्ञेयो अन्ये च भीरवः स्मृता ॥२३
एकं चास्य भवेद्वक्त्रंद्वे जिह्वे च प्रकीर्तिते । द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ताः पन्नागानां न संशयः ॥२४
तेषां मध्ये चतस्रस्तु दंष्ट्रा याः सुविषावहाः । मकरी कराली कालरात्री यमदूती तथैव च ॥२५
सर्वासां चैव दंष्ट्राणां देवताः परिकीर्तिताः । प्रथमा ब्रह्मदेवत्या द्वितीया विष्णुदेवता ॥
तृतीया रुद्रदेवत्या चतुर्थी यमदेवता ॥२६
हीना प्रमाणतः सा तु वामनेत्रं समाश्रिता । नास्यां मन्त्राः प्रयोक्तव्या नौषधं नैव भेषजम् ॥२७
वैद्यः पराङ्मुखो याति मृत्युस्तस्या विलेखनात् । चिकित्सा न बुधैः कार्या तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२८
मकरीं मासिकां विद्यात्कराली च द्विमासिका । कालरात्री भवेत्त्रीणि चतुरो यमदूतिका ॥२९

उनमें विष-संचय भी होने लगता है ।१६-१७। इसे जानते हुए भी वे काटना आरम्भ कर देते हैं पर विष वाले दाँत इक्कीस दिन में भली भाँति दृढ होते है । नागिन के साथ रहने वाले साँप को बाल साँप कहते हैं ।१८। इस प्रकार पूरे पच्चीस दिन वाला साँप (काटने पर) तुरन्त प्राण लेता है । (साँप) छठें मास केंचुल का त्याग करते हैं ।१९। गाय के रोम के समान इनके दो सौ चालीस पैर होते हैं जो चलने पर ही निकलते हैं एवं सदा भीतर ही घुसे रहते हैं ।२०। इनकी देह में दो सौ बीस संधियाँ तथा इतनी ही अंगुलियाँ होती हैं ।२१। जो साँप अपने समय पर नहीं उत्पन्न होते हैं वे विष-हीन एवं पचहत्तर वर्ष की आयु वाले होते हैं ।२२। लाल पीले तथा सफेद दाँत वाले नीले रंग से भिन्न रंग वाले मंद वेग वाले (साँप) अल्पायु होते हैं और अन्य भीरु होते हैं ।२३। साँपों के एक मुख दो जिह्वा एवं बत्तीस दाँत होते हैं ।२४। उनमें चार दाँत घोर विष वाले होते हैं जिनके (दाढ़ के) क्रमशः मकरी, कराली, कालरात्री, यमदूती ये चार नाम और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा यम ये क्रमशः उनके देवता कहे गये हैं । (यमदूती नामक दाढ़) अत्यन्त छोटी तथा बायें नेत्र पर रहती है इसके काटने पर मंत्र का प्रयोग, औषधि, या कोई भी उपचार नहीं करना चाहिये ।२५-२७। क्योंकि मृत्यु निश्चित होने से वैद्य हार जाता है इसलिए उसका जीवन वहीं तक था ऐसा समझ कर उसकी चिकित्सा पंडितों को नहीं करनी चाहिए ।२८। एक मास में मकरी, दो मास में कराली, तीन मास में कालरात्री एवं चार मास में यमदूती उत्पन्न होती है ।२९।

मकरीं गुडौदनं[1] दद्यात्कषायान्नं करालिकाम् । कालरात्रीं कटुयुतं दूतीं वै सान्निपातिकम् ।।३०
मकरी शस्त्रकं विद्यात्कराली काकपादिका । कराकृतिः कालरात्रिर्याम्या कूर्माकृतिः स्मृता ।।३१
मकरी वातुला ज्ञेया कराली पैत्तिकी स्मृता । कफात्मिका कालरात्री यमदूती सान्निपातकी ।।३२
शुक्ला तु मकरी ज्ञेया कराली रक्तसन्निभा । कालरात्री भवेत्पीता कृष्णा च यमदूतिका ।।३३
वामा शुक्ला च कृष्णा च रक्ता पीता च दक्षिणा । समासेन तु वक्ष्यामि यथैता वर्णतः स्मृताः ।।३४
शुक्ला तु ब्राह्मणी ज्ञेया रक्ता तु क्षत्रिया स्मृता । वैश्या तु पीतिका ज्ञेया कृष्णा शूद्रा तु कथ्यते ।।
अतः परं प्रवक्ष्यामि दंष्ट्राणां विषलक्षणम्[2] ।।३५
दंष्ट्राणां तु विषं नास्ति नित्यमेव भुजङ्गमे । दक्षिणं नेत्रमासाद्य विषं सर्पस्य तिष्ठति ।।३६
सङ्क्रुद्धस्येह सर्पस्य विषं गच्छति मस्तके । मस्तकाद्धमनीं याति ततो नाडीषु गच्छति ।।३७
नाडीभ्यः पद्यते दंष्ट्रां विषं तत्र प्रवर्तते । तत्सर्वं कथयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।।३८
अष्टभिः कारणैः सर्पो दशते नात्र संशयः । आक्रान्तो दशते पूर्वं द्वितीयं पूर्ववैरिणम् ।।३९
तृतीयं दशते भीतश्चतुर्थं मददर्पितः । पञ्चमं तु क्षुधाविष्टः षष्ठं चेह विषोल्बणः ।।
सप्तमं पुररक्षार्थमष्टमं कालचोदितः ।।४०
यस्तु सर्पो दशित्वा[3] तु उदरं परिवर्तयेत् । बलभुग्नाकृतिं दंष्ट्रामाक्रान्तं तं विनिर्दिशेत् ।।४१

मकरी के लिए गुड़, चावल, कराली के लिए कपास स्वाद के अन्न, कालरात्री के लिए कड़वी वस्तु एवं यमदूती के लिए ये सभी वस्तुएँ एक में मिलाकर देना चाहिये ।३०। शस्त्र की भाँति मकरी, कौवे के पैर की भाँति कराली, हाथ की भाँति कालरात्रि और कछुवे के समान यमदूती का आकार होता है । मकरी में वात की प्रधानता, कराली में पित्त की, कालरात्रि में कफ की एवं यमदूती में तीनों की प्रधानता होती है ।३१-३२। मकरी का सफेद, कराली का लाल, कालरात्री का पीला और यमदूती का काला रंग होता है ।३३। बाँई ओर दाढ़ श्वेत एवं काली तथा दाहिनी ओर की लाल और पीली होती है । अब इनके वर्ण का भी संक्षेप में विवेचन कर रहा हूँ ।३४। श्वेत (दाढ़) ब्राह्मणी, लालवाली क्षत्रिय, पीलीवाली वैश्य और काली वाली दाढ़ शूद्र कही जाती है । इसके पश्चात् 'दातों' में विष कैसे बढ़ जाता है यह बता रहा हूँ ।३५। सापों के दांतों में सदैव विष नहीं रहता है अपितु दाहिनी आँख के समीप विष का स्थान होता है ।३६। साँप के क्रुद्ध होने पर विष (उनके) मस्तक में पहुँच जाता है वहाँ से धमनी नाडी द्वारा अन्य नाड़ियों में पहुँचता है और नाड़ी द्वारा दाँतों में पहुँच जाता है । निश्चित आठ कारणों से साँप (किसी को) काटते हैं । सर्व प्रथम दब जाने से, दूसरे अपने पहले के शत्रु को, तीसरे भयभीत होकर, चौथे मतवाला होकर, पाँचवे भूख से व्याकुल होकर छठें विष की ज्वाला वश, सातवें पुत्र की रक्षा के लिए और आठवें काल की प्रेरणा से (काटते हैं) ।३७-४०। काटने के पश्चात् जो सर्प पेट के बल उलट जाय एवं दाढ़ टेढ़ी कर ले उसे दब जाने से (काटना) जानना चाहिये ।४१। साँप के काटने पर जिसके गहरा व्रण

---

१. गोरखात् । २. शुभौदनम् । ३. विषवर्धने ।

यस्य सर्पेण दष्टस्य गभीरं दृश्यते व्रणम् । वैरदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ।।४२
एकं दंष्ट्रापदं यस्य अव्यक्तं न च कल्पितम् । भीतदष्टं विजानीयाद्यथोवाच प्रजापतिः ।।४३
यस्य सर्पेण दष्टस्य रेखा दन्तस्य जायते । मददष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ।।४४
द्वे च दंष्ट्रापदे यस्य दृश्यन्ते च महाक्षतम् । क्षुधाविष्टं विजानीयाद्यथोवाच प्रजापतिः ।।४५
द्वे दंष्ट्रे यस्य दृश्येते क्वचिद्रुधिरसङ्कुले । विषोल्बणं विजानीयाद्दंशं तं नात्र संशयः ।।४६
अपत्यरक्षणार्थाय जानीयात्तं न संशयः । यत्तु काकपदाकारं त्रिभिर्दन्तैस्तु लक्षितम् ।।४७
महानाग इति प्रोक्तं कालदष्टं विनिर्दिशेत् । त्रिविधं दष्टजातैस्तु लक्षणं समुदाहृतम् ।।४८
दष्टानुपीतं विज्ञेयं कश्यपस्य वचो यथा । विषभागात्तु सर्पस्य त्रिभागस्तत्र संक्रमेत् ।।४९
उदरं दर्शयेद्यस्तु उद्धतं तं विनिर्दिशेत् । छर्दितं विषवेगेन निर्विषः पन्नगो भवेत् ।।५०
असाध्यश्चापि विज्ञेयश्चतुर्दंष्ट्राभिपीडितः । ग्रीवाभङ्गो भवेत्किञ्चित्सन्दष्टो विषयोगतः ।।
इतो दंशस्ततः शुद्धो व्यन्तरः परिकीर्तितः ।।५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे सर्पदंष्ट्रावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।३३।

(छिद्र) हो जाय, कश्यप के कथनानुसार उसे शत्रुता वश (उसका) काटना जानना चाहिये ।४२। (जिसके) एक दाँत का चिह्न हो जो स्पष्ट हो किन्तु कल्पित (बनावटी) न जान पड़े प्रजापति ने कहा है, उसे भयभीत होकर साँप का काटा हुआ जानें ।४३। साँप के काटने पर जिसके दाँत की रेखा (समान) हो जाये, कश्यप के वचनानुसार उसे मतवाले साँप द्वारा काटा गया समझना चाहिये ।४४। जिसके दो दाँतों के चिह्न एवं महान् घाव दिखाई दे उसे प्रजापति के कथनानुसार भूख से पीड़ित साँप का काटा हुआ समझे । जिसके दो दाँतों का चिह्न दिखायी दे जो रक्त से भरे हों निश्चित उसे (काटने को) विष की ज्वाला वश काटा हुआ समझें ।४५-४६। और इसी को सन्तान की रक्षा के निमित्त भी जानना चाहिए । जिसके तीन दाँतों का चिन्ह दिखायी दे जो कौवे के पैर के समान हों उसके काटने का कारण काल की प्रेरणा वश जाने और उस काटने वाले भाग को महानाग जानना चाहिये । इस प्रकार काटने के तीन प्रकार के लक्षण होते हैं उन्हें बता दिया ।४७-४८। कश्यप के कथनानुसार दष्टानुपीत (काटने के द्वारा अनुपान कराना) लक्षण कहा गया है । विष का तीन भाग काटे गये उस प्राणी के अन्दर पहुँच जाता है । जो (साँप) काटने के पश्चात् उलट जाता है, उसे मतवाला जानना चाहिये । जिसकेकाटने से खरोंच जाय उस साँप को विष हीन समझना चाहिए । चारों दाँतों द्वारा काटा गया असाध्य होता है अर्थात् उसमें किसी प्रकार सफलता नहीं मिलती है । जो साँप काटने के पश्चात् अपने गले को मोड़ ले उसके काटने को विष वश जाने । इस भाँति साँप के काटने का विचार कर शुद्ध (उससे मुक्त होने का विचार करेंगें) व्यन्तर का विचार करेंगे ।४९-५१

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के पञ्चमी कल्प में सर्पदंष्ट्रा वर्णन नामक तैतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३३।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

काललक्षणम्

कश्यप उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कालदष्टस्य लक्षणम् । शृणु गौतम तत्त्वेन यादृशो भवते नरः ॥१
जिह्वाभङ्गोऽथ हृच्छूलं चक्षुर्भ्यां च न पश्यति । दंशं च दग्धसंकाशं पक्वजम्बूफलोपमम् ॥२
वैवर्ण्यं चैव दन्तानां श्यावो भवति वर्णतः। सर्वेष्वङ्गेषु शैथिल्यं पुरीषस्य च भेदनम् ॥३
भग्नस्कन्धकटिग्रीव ऊर्ध्वदृष्टिरधोमुखः । दह्यते वेपते चैव स्वपते च मुहुर्मुहुः ॥४
शस्त्रेण च्छिद्यमानस्य रुधिरं न प्रवर्तते । दण्डेन ताड्यमानस्य दण्डराजी न जायते ॥५
दंशे काकपदं सुनीलमसकृज्जम्बूफलाभं घनमुच्छूनं रुधिरार्द्रसेकबहुलं कृच्छ्रान्निरोधो भवेत् ।
हिक्काश्वासगलग्रहश्च सुमहान्पाण्डुस्त्वचा दृश्यते शुष्काङ्गः प्रवदन्ति शास्त्रनिपुणास्तत्कालदष्टं विदुः॥६
दंशे यस्याथ शोथः प्रचलितवलितं मण्डलं वा सुनीलं प्रस्वेदो गात्र भेदः स्रवति च रुधिरं सानुनासं च जल्पेत् ।
दन्तोष्ठाभ्यां वियोग भ्रमति च हृदयं सन्निरोधश्च तीव्रो दिव्यानामेष दंशः स्थलविपुलमयो विद्धि तं कालदष्टम्॥७
दन्तैर्दन्तान्स्पृशति बहुशो दृष्टिरायासखिन्ना स्थूलो दंशः स्रवति रुधिरं केकरं चक्षुरेकम् ॥

अध्याय ३४

काल के काटने का लक्षण

कश्यप ने कहा—हे गौतम ! अब इसके पश्चात् काल के काटने पर मनुष्य की यथार्थ में जो दशा होती है मैं कह रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! ।१। काल के काटने पर जीभ भंग हो जाती है, कलेजे में शूल की पीड़ा एवं आँख से दिखाई नहीं देता है । काटा गया स्थान अग्नि द्वारा जले हुए की भाँति हो जाता है जो पके जामुन के फल के समान (काला) होता है ।२। म्लान मुख काले-पीले मिश्रित रंग की भाँति दाँत, शरीर के सभी अंगों में शिथिलता और गुदा फट जाता है ।३। कंधे, गला एवं कमर टेढ़ी हो जाती है, आँखें ऊपर आ जाती हैं तथा मुख नीचे हो जाता है, जलन, कम्प एवं बार-बार मूर्च्छा आती है ।४। हथियार से काटने पर (शरीर से) रुधिर नहीं निकलता है और दंडे से मारने पर दंडे का चिह्न (शरीर में) नहीं होता है ।५। काटने (के स्थान) पर कौवे के पैर की भाँति चिह्नों जो अत्यन्त नील एवं जामुन के समान होता है, मोटा, सूजन, बार-बार रक्त का निकलना, जो कठिनाई से बन्द किया जा सके, लगातार हिचकी का आना तथा सांस का फूलना, शरीर का पीला रंग, सभी अंगों का सूखना, दिखाई दे, उसे शास्त्र के मर्मज्ञ पंडित काल का काटा हुआ बतलाये हैं।६। काटने पर (उसी स्थान में) शोथ टेढ़ा या गोल, काला धब्बा, पसीना, (किसी अंग का) विदीर्ण होना, रक्त का लगातार निकलना, नाक से बोलना, दाँत-ओंठ का अलग-अलग हो जाना, कलेजे में धड़कन तथा सहसा उसकी गति बन्द हो जाये और बहुत दूर तक काटने का चिह्न हो तो उसे काल का काटा हुआ जानना चाहिए।७। जिसमें बार-बार दाँत से दाँत का रगड़ना, भार से दबी हुई की भाँति आँखे, (काटने के स्थान में) स्थूल चिह्न, रक्त का निकलना, ऊपर नीची आँखों

प्रत्यादिष्टः श्वसिति सततं सानुनासं च भाषेत्पापं ब्रूते सकलगदितं कालदष्टं तमाहुः ॥८
वेपते वेदना तीव्रा रक्तनेत्रश्च जायते । ग्रीवाभङ्गश्चला नाभिः कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥९
दर्पणे सलिले वापि आत्मच्छायां न पश्यति । मन्दरश्मिं तथा तीव्रं तेजोहीनं दिवाकरम्[१] ॥१०
वेपते वेदनात्रस्तो रक्तनेत्रश्च जायते । स याति निधनं जन्तुः कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥११
अष्टम्यां च नवम्यां च कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् । नागपञ्चमीदष्टानां जीवितस्य च संशयः ॥१२
आर्द्राश्लेषामघाभरणीकृत्तिकासु विशेषतः । विशाखां त्रिषु पूर्वासु मूलस्वातीशतात्मके ॥
सर्पदष्टा न जीवन्ति विषं पीतं च यैस्तथा ॥१३
शून्यागारे श्मशाने च शुष्कवृक्षे तथैव च । न जीवन्ति नरा दष्टा नक्षत्रे तिथिसंयुते ॥१४
अष्टोत्तरं नर्म शतं प्राणिनां समुदाहृतम् । तेषां मध्ये तु मर्माणि दश द्वे चापि कीर्तिते ॥१५
शङ्खे नेत्रे भ्रुवोर्मध्ये बस्तिभ्यां वृषणोत्तरे । कक्षे स्कन्धे हृदि मध्ये तालुके चिबुके गुदे ॥१६
एषु द्वादशमर्मेषु[२] दंशैः शस्त्रेण वा हतः । न जीवति नरो लोके कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥१७
अकचटतपयशां वदन्ति प्रोक्ता जीवन्ति न तत्र हि । गतं क्रमाद्यदि स्खलति शिरस्तस्य सम्प्राप्तकालः ॥१८
भवति च यदि दूतो ह्युत्तमस्याधमो वा यदि भवति च दूत उत्तमो वाधमस्य ।

का होना, कुछ कहने पर बार-बार साँस का लेना, नाक से बोलना (पूंछने पर) दुःखी करने वाली बातें कहना आदि लक्षण दिखे तो उसे काल का काटा हुआ बताया गया है ।८। (जिसके शरीर में) कम्प, भारी पीड़ा, गले का लटकना, नाभि का फड़कना मालूम हो उसे काल का काटा जानना चाहिए ।९। जिसे शीशे एवं जल में अपनी छाया न दिखायी दे कांतिहीन चन्द्रमा एवं तेजहीन सूर्य दिखाई दें ।१०। और पीड़ा से दुःखी होकर शरीर काँपता हो तथा आँखें लाल हों तो उसकी मृत्यु हो जाती है और उसे काल का काटा हुआ बताया गया है ।११। अष्टमी, नवमी, कृष्णपक्ष की चर्तुदशी एवं नाग पञ्चमी में काटने पर (प्राणी के) जीवन में संदेह हो जाता है ।१२। आर्द्रा, श्लेषा, मघा, भरणी, कृत्तिका, विशाखा, तीनों पूर्वा, मूल, स्वाती और शतभिषा नक्षत्रों में साँप का काटा हुआ तथा जिसने विष-पान किया हो जीवित नहीं रहता है ।१३। सूने घर, श्मशान एवं सूखे पेड़ या नीचे के तिथि समेत (उपरोक्त) नक्षत्रों में साँप के काटने पर वह (प्राणी) जीवित नहीं रहता है ।१४। प्राणियों के एक सौ आठ मर्मस्थान बताये गये हैं, पर, उनमें मस्तक की हड्डी, भौंह का मध्यभाग नाभि के नीचे दोनों ओर, अंडकोष, काँख, कन्धा, हृदय, कटि, तालू, ठोंड़ी और गुदा इन बारहों स्थानों में साँप काटे या हथियार का आघात हो, तो वह मनुष्य जीवित न रहे तथा उसे काल का काटा हुआ जानना चाहिये ।१५-१७। यदि कहलाने पर क्रमशः अ, क, च, ट, त, प, इन वर्णों एवं य श तक का उच्चारण करे तो जीवित रहता है किन्तु पिछला (अक्षर) कहे या कुछ का कुछ कहे तो उसके शिर पर काल पहुँच गया है ऐसा समझ लेना चाहिये ।१८। ऊँची जाति का प्रथम दूत या नीच जाति का उत्तम दूत हो जो सर्वप्रथम वहाँ पहुँचकर काटे गये (प्राणी) का नाम ही बताये या अन्य किसी से (उसके विषय में) बातें किया हो तथा दोनों में जाति भेद भी रहा तो

---

१. दष्ट्वा । २. निशाकरम् ।

आदौ दष्टस्य नाम यदि वदति क्वचिद्वक्ति तस्याथ पश्चात्तं वर्णभेदो यदि भवति समः प्राप्त कालस्य दूतः ॥१९
दूतो वा दण्डहस्तो भवति च युगलं पाशहस्तस्तथा या रक्तं वस्त्रं च कृष्णं मुखशिरसि गतमेकवस्त्रश्च दूतः ॥
तैलाभ्यक्तश्च तद्वद्यदि त्वरितगतिर्मुक्तकेशश्च याति यः कुर्याद्घोरशब्दं करचरणयुगैः प्राप्तकालस्य दूतः ॥२०
नागोदयं प्रवक्ष्यामि ईशानेन तु भाषितम् । ब्रह्मणा तु पुरा सृष्टा ग्रहा नागास्त्वनेकशः ॥२१
अनन्तं भास्करं विद्यात्सोमं विद्यात्तु वासुकिम् । तक्षकं भूमिपुत्रं तु कर्कोटं च बुधं विदुः ॥२२
पद्मं बृहस्पतिं विद्यान्महापद्मं च भार्गवम् । कुलिकः शंखपालश्च द्वावेतौ तु शनैश्चरः ॥२३
पूर्वपादः शंखपालो द्वितीयः कुलिकस्तथा । नित्यं भागे यथोद्दिष्टे दिनरात्री तथैव च ॥२४
शुक्रसोमौ च मध्याह्ने उदये तु क्षमासुतः । शनिः प्रागष्टमे भागे दिवारात्रे त्विहोच्यते ॥२५
ग्रहाश्च भुञ्जते चैव शेषं भागस्य लक्षणम् । रविवारे सदा ज्ञेयौ पादौ दश चतुर्दश ॥२६
अष्ट द्वादश द्वै चन्द्रे दश षष्ठे कुजे तथा । बुधस्य नवमे पादे राहौ च दिवसस्य च ॥२७
गुरोर्द्वितीयः षष्ठश्च षोडशस्य तु वर्जयेत् । भास्करस्य दिने प्रोक्ते चतुर्थे दशमेऽष्टमे ॥२८
शनैश्चरदिने पादं त्यजेच्चैव सुदारुणम् । द्वितीयं द्वादशं चैव षोडशस्य तु वर्जयेत् ॥२९
मुहूर्तघटिकादूद्ध्र्वं घटिका चतुर्थं भागं विंशतिश्च । कुहूसुतं बुद्बुदं निमेषमेत्कालस्य लक्षणम् ॥३०

इति श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे
दंशदष्टकदूतलक्षणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।३४।

उसे चिकित्सक का दूत नहीं बल्कि काल का दूत जानना चाहिए ।१९। इसी प्रकार हाथ में दंडा या फाँस लिये हुए दो व्यक्ति हों, मुख या शिर पर लाल या काले कपड़े हों, एक ही वस्त्र पहने हों तेल लगाये, जल्दी-जल्दी आते हों, बाल खुले हों एवं हाथ पैर से भयानक शब्द करते हों, उन्हें आये हुए काल का दूत जानें ।२०। नागों के उदय को जिसे शंकर जी ने पहले कहा था, कह रहा हूँ । ब्रह्मा ने सबसे पहले ग्रह और अनेक नागों की सृष्टि की है । अनन्त नाग सूर्य, वासुकी चन्द्रमा, तक्षक मंगल, कर्कोटक बुध, पद्म बृहस्पति, महापद्म शुक्र, कुलिक और शंख पाल शनेश्चर (के रूप) हैं ।२१-२३। दिन और रात की भाँति पूर्व पाद का स्वामी शंख पाल तथा दूसरे पाद का कुलिक है बताया गया है । दिन उदय में मंगल, मध्याह्न में शुक्र और चन्द्रमा तथा दिन-रात में पहले आठ भाग तक शनि का भोग रहता है, शेष भाग में रविवार का दशवाँ, चौदहवाँ, सोमवार का आठवाँ, बारहवाँ, मंगल का छठाँ, दशवाँ, बुध का नवाँ, वृहस्पति का दूसरा, छठाँ, शुक्र का चौथा, आठवाँ एवं दशवाँ, शनि का पहला, दूसरा और बारहवाँ भाग अत्यन्त भयावह होने के नाते त्याज्य हैं, अर्थात् इसमें साँप के काटने पर प्राणी जीवित नहीं रहता ।२४-२९। मुहूर्त की घड़ी से ऊपर की घड़ी चौथा और बीसवाँ भाग भी त्याज्य हैं जो क्रमशः कुहू-सुत-बुद्बुद एवं निमेष के नाम से ज्ञात है । इस प्रकार काल के (त्याज्य) लक्षण को बता दिया गया ।३०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के पञ्चमी कल्प में दंशदष्टक दूत लक्षण
नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३४।

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

यमदूतीलक्षणम्

कश्यप उवाच

सविषा दंष्ट्रयोर्मध्ये यमदूती तु वै भवेत् । न चिकित्सा बुधैः कार्या तं गतायुं विनिर्दिशेत् ॥१
प्रहरार्धं दिवारात्रावेकैकं भुञ्जते बहिः । एकस्य च समानं च द्वितीयं षोडशं तथा ॥२
नागोदयो यमुद्दिश्य हतो विद्धो विदारितः । कालदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥३
यन्मात्रं पतते बिन्दुर्वालाग्रं सलिलोद्धृतम् । तन्मात्रं स्रवते दंष्ट्रा विषं सर्पस्य दारुणम् ॥४
नाडीशते तु सम्पूर्णे देहे सङ्क्रमते विषम् । यावत्सङ्क्रामयेद्बाहुं कुञ्चितं वा प्रसारयेत् ॥५
अनेन क्षणमात्रेण विषं गच्छति मस्तके । वेपते विषवेगे तु शतशोऽथ सहस्रशः ॥६
वर्धते रक्तमासाद्य ततो वातैः शिखी यथा । तैलबिन्दुर्जलं प्राप्य यथा वेगेन वर्धते ॥७
शिखण्डी आश्रयं प्राप्य मारुतेन समीरितः । ततः स्थानशतं प्राप्य त्वचास्थानं विचेष्टितम् ॥८
त्वचासु द्विगुणं विद्याच्छोणितेषु चतुर्गुणम् । पित्ते तु त्रिगुणं याति श्लेष्मे वै षोडशं भवेत् ॥९
वायौ त्रिंशद्गुणं चैव मज्जाषष्टिगुणं तथा । प्राणे चैकार्णवीभूते सर्वगात्राणि सन्धयेत्[1] ॥१०

अध्याय ३५

यमदूतीलक्षण

कश्यप बोले—दाढ़ों के बीच मे विष से भरी हुई यमदूती नामक दाढ़ होती है । उसके द्वारा साँप के काटने पर विद्वानों को किसी प्रकार की चिकित्सा न करनी चाहिए और प्राणी की भी आयु समाप्त समझनी चाहिये जिसे साँप ने काट खाया है ।१। इसी भाँति दिन और रात में एक-एक पहर के आधे आधे भाग और उसी के समान दूसरे और सोलहवें भाग को साँप भोगते हैं । इसलिए उस नागोदय काल में साँप ने जिस पर आघात किया अथवा फाड़ दिया तो कश्यप के कथनानुसार उसे काल द्वारा ही किया गया जानना चाहिए ।२-३। पानी से भीगे हुए बाल के अग्रभाग पर जितनी बड़ी बूंद रह कर गिरजाती हैं साँप के दाढ़ द्वारा उतनी ही मात्रा में घोर विष निकलता है तथा जितनी देर में भुजा समेटी या फैलाई जाती है उतने समय में वह विष उसके सैकड़ों नाड़ियों से पूर्ण देह में पहुँच जाता है । फिर उसी क्षण शिर में भी विष पहुँच जाता है जिससे विष की तीक्ष्णता वश वह प्राणी सैकडों एवं सहस्रों बार काँपता रहता है ।४-६। पश्चात् वह विष रक्त में पहुँच कर वायु द्वारा अग्नि की भाँति विस्तृत होता है । जिस प्रकार तेल की बूँद पानी में तेजी से फैलती है, उसी प्रकार अपने स्थान में पहुँच कर वह विष भी वायु द्वारा प्रफुल्लित होकर बढ़ता है अग्नि की भाँति उसी तेजी से शरीर में फैल जाता है ।७-८। इस प्रकार सैकड़ों स्थानों में पहुँच कर वह विष त्वचा (शरीर के ऊपरी चमड़े) में दुगुना रक्त में चौगुना, पित्त में तिगुना, श्लेष्मा (बलगम) में सोलहगुना, वात में तीस गुना, मज्जा (नली की हड्डी के भीतर के गुदे) में साठ गुना

---

१. मर्मसु ।

श्रोत्रे निरुध्यमाने च याति दष्टस्त्वसाध्यताम् । ततोऽसौ म्रियते जन्तुर्निःश्वासोच्छ्वासवर्जितः ॥११
निष्क्रान्ते तु ततो जीवे भूते पञ्चत्वमागते । तानि भूतानि गच्छन्ति यस्य यस्य यथातथम् ॥१२
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । इत्येषामेव सङ्घातः शरीरमभिधीयते ॥१३
पृथिवी पृथिवीं याति तोयं तोयेषु लीयते । तेजो गच्छति चादित्यं मारुतो मारुतं व्रजेत् ॥१४
आकाशं चैवमाकाशे सह तेनैव गच्छति । स्वस्थानं ते प्रपद्यन्ते परस्परनियोजिताः ॥१५
न जीवेदागतः कश्चिदिह जन्मनि सुव्रत । विषार्तं न उपेक्षेत त्वरितं तु चिकित्सयेत् ॥१६
एकमस्ति विषं लोके द्वितीयं चोपपद्यते । यथा नानाविधं चैव स्थावरं तु तथैव च ॥१७
प्रथमे विषवेगे तु रोमहर्षोऽभिजायते । द्वितीये विषवेगे तु स्वेदो गात्रेषु जायते ॥१८
तृतीये विषवेगे तु कम्पो गात्रेषु जायते । चतुर्थे विषवेगे तु श्रोत्रान्तरनिरोधकृत् ॥१९
पञ्चमे विषवेगे तु हिक्का गात्रेषु जायते । षष्ठे च विषवेगे तु प्राणेभ्योऽपि प्रमुच्यते ॥
सप्तधातुवहा ह्येते वैनतेयेन भाषिताः ॥२०
त्वचः स्थाने विषे प्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु । अङ्गानि तिमिरायन्ते तपन्ते च मुहुर्मुहुः ॥२१
एतानि यस्य चिह्नानि तस्य त्वचि गतं विषम् । तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥२२
अर्कमूलमपामार्गं प्रियङ्गुं तगरं[2] तथा । एतदालोड्य दातव्यं ततःसम्पद्यते सुखम् ॥२३

बढ़कर फिर प्राण और समस्त देहमें व्याप्त हो जाता है ।९-१०। इसलिए कान से न सुनाई देने पर यह असाध्य रोगी हो जाता है और श्वाँस का आना-जाना बन्द होने के नाते उसकी मृत्यु हो जाती है ।११। प्राण के निकल जाने पर शरीर, पृथ्वी, जल आदि पाँचों भूत जहाँ-जहाँ से आते है उसी में पुनः मिल जाते हैं ।१२। क्योंकि पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के इकट्ठे होने को ही शरीर कहते हैं ।१३। अतः मरने पर पृथिवी पृथिवी में पानी पानी में तेज आदित्य में वायु वायु में एवं आकाश आकाश में (प्राण निकलने के) साथ-साथ विलीन हो जाते हैं और अपने-अपने स्थान में पहुँच जाते है । हे सुव्रत ! यहाँ इस लोक में जन्म लेने पर कोई (सदैव) जीवित नहीं रहता है अतः विष-पीड़ित की उपेक्षा न करके अति शीघ्र उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ।१४-१६। जिस प्रकार विष एक ही है और इसी प्रकार का हो जाता है और संसार में वह कई प्रकार का दिखाई देता है, फल भी उसके भिन्न-भिन्न होते हैं उसी भाँति (संखिया आदि) स्थावर विष को भी उनके रूप का जानना चाहिये ।१७। विष के प्रवेश करने पर पहले क्षण में वेग द्वारा (शरीर में) रोमाञ्च, दूसरे में समस्त शरीर में पसीना, तीसरे में कम्प चौथे में कान के भीतरी पर्दे का बन्द होना, पाँचवें में हिचकी और छठें में प्राण वियोग हो जाता है । गरुड़ के कथनानुसार इसी भाँति सातों धातुओं में विष पहुँचता है ।१८-२०। अब त्वचा में विष के पहुँचने पर जो उसकी दशा होती है, मैं कह रहा हूँ सुनो ! विष के भीतर पहुँचने पर शरीर के सभी अंगों में अन्धकार सा दिखाई देता है और ऐंठन व जलन होती है ।२१। इस लक्षण से त्वचा में विष का पहुँचना जानना चाहिए । अब उसके औषध को मैं कह रहा हूँ जिसके सेवन मात्र से उसके रोगी को सुख मिलता है मदार की जड़, चिचिरा, प्रियङ्गु (राई, पीपर, कांगनी और कटुकी) एवं तगर इन्हें एक में घोंट कर (रोगी को) देने से शीघ्र

---

१. वर्धयेत् । २. तैलकम् ।

ततस्तस्मिन्कृते विप्र न निवर्तेत चेद्विषम् । त्वचः स्थानं ततो भित्त्वा रक्तस्थानं प्रधावति ॥२४
विषे च रक्तं संप्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु । दह्यते मुह्यते[1] चैव शीतलं बहु मन्यते ॥२५
एतानि यस्य रूपाणि तस्य रक्तगतं विषम् । तत्रागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥२६
उशीरं चन्दनं कुष्ठमुत्पलं तगरं तथा । महाकालस्य मूलानि सिन्दुवारनगस्य च ॥
हिङ्गुलं मरिचं चैव पूर्ववेगे तु दापयेत् ॥२७
बृहती वृश्चिका काली इन्द्र वारुणिमूलकम्[2] । सप्तगन्धघृतं चैव द्वितीये परिकीर्तितम् ॥२८
सिन्दुवारं तथा हिङ्गुं तृतीये कारयेद्बुधः । तस्य पानं च कुर्वीत अञ्जनं लेपनं तथा ॥२९
एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् । रक्तस्थानं ततो गत्वा पित्तस्थानं प्रधावति ॥३०
पित्तस्थानगते विप्र विषरूपाणि मे शृणु । उत्तिष्ठते निपतते दह्यते मुह्यते तथा ॥३१
गात्रतः पीतकः स्याद्वै दिशः पश्यति पीतिकाः । प्रबला च भवन्मूर्च्छा न चात्मानं विजानते ॥
विषक्रियां तस्य कुर्याद्यया सम्पद्यते सुखम् ॥३२
पित्तस्थानमतिक्रम्य श्लेष्मस्थानं च गच्छति ॥३३
पिप्पल्यो मधुकं चैव मधु खण्डं घृतं तथा । मधुसारमलाबूं च जातिं शङ्करवालुकाम् ॥
इन्द्रवारुणिकामूलं गवां मूत्रेण पेषयेत् ॥३४

शांति मिलती है ।२२-२३। हे विप्र ! इस प्रयोग के द्वारा यदि विष नाश न हुआ तो उसे त्वचा से आगे रक्त में पहुँचा हुआ जानना चाहिए ।२४। रक्त में विष के मिलने पर जो दशा होती है उसे भी कह रहा हूँ सुनो ! देह में दाह और मूर्छा एवं अधिक ठंडी भी लगती है ।२५। जिसकी ऐसी दशा हो उसके रक्त में विष पहुँच गया है, ऐसा जानना चाहिए । उसकी औषधि भी बताता हूँ जिसके द्वारा उस प्राणी को सुख प्राप्त होता है ।२६। उशीर (गड़रा की जड़), चन्दन, कुष्ठ (एक प्रकार का विष), नील कमल, तगर, महाकाल (एक प्रकार की लता) एवं सिन्दुवार (म्यौड़ी) की जड़ हिंगुल (ईंगुर) और काली मरिच इन्हें एक में मिलाकर विष के पहले ही वेग में रोगी को दे देना चाहिए ।२७। दूसरे वेग में भटकटैय्या, वृश्चिका, काली, इन्द्रवारुणी (पीलेफूल और श्वेत जड़वाली एक प्रकार की लता की जड़) सातों गंध और घी देने को कहा गया है ।२८। तीसरे वेग में सिंदुरवार (म्यौड़ी) तथा हींग का पान (नेत्र में) अंजन और (देहों) में लेप करें ।२९। इन्ही के इस प्रकार के उपचार करने से (रोगी को) सुख प्राप्त होता है । रक्त के पश्चात् वह (विष) पित्त में पहुँचता है ।३०। हे विप्र ! पित्त में पहुँच कर जो उसका रूप होता है, मैं कहता हूँ, सुनो ! (बार-बार) उठना, गिरना, जलन, मूर्च्छा, देह का पीला होना और (रोगी को) दिशायें पीली दिखायी देती हैं तथा उसे मूर्च्छा इतनी बड़ी प्राप्त हो जाती है कि वह अपने आप को एकदम भूल जाता है इसलिए उस विष की ऐसी प्रतिक्रिया करनी चाहिए जिससे शीघ्र सुख प्राप्त हो जाय ।३१-३२। पित्त स्थान के पश्चात् वह श्लेष्मा में पहुँचता है ।३३। पीपर, महुआ, शहद, खांड, घी, मधुसार (महुआ की शराब), अलाबू, (जण्ड लौकी) जाती, (चमेली) शंकर बालुका, इन्द्रवारुणी की जड़ इन्हें गो मूत्र में

---

१. तैलकम् । २. चैव तद्देहम् ।

नस्यं तस्य प्रयुञ्जीत पानमालेपनाञ्जनम् । एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् ॥३५
श्लेष्मस्थानं ततः प्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु । गात्राणि[1] तस्य रुध्यन्ते निःश्वासश्च न जायते ॥
लाला च स्रवते तस्य कण्ठो घुरघुरायते ॥३६
एतानि यस्य रूपाणि तस्य श्लेष्मगतं विषम् । तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥३७
त्रिकुटको श्लेष्मातको लोध्रश्च मधुसारकम् । एतानि समभागानि गवां मूत्रेण पेषयेत् ॥३८
तस्य पानं च कुर्वीत अञ्जनं लेपनं तथा । एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् ॥३९
श्लेष्मस्थानमतिक्रम्य वायुस्थानं च गच्छति । तत्र रूपाणि वक्ष्यामि वायुस्थानगते विषे ॥४०
आध्मायते च जठरं बान्धवांश्च न पश्यति । ईदृशं कुरुते रूपं दृष्टिभङ्गश्च जायते ॥४१
एतानि यस्य रूपाणि तस्य वायुगतं विषम् । तस्यागदं प्रक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥४२
शोणामूलं प्रियालं च रक्तं च गजपिप्पलीम् । भार्ङ्गी वचां पिप्पलीं च देवदारुं मधूककम् ॥४३

मधूकसारं सहसिन्दुवारं हिङ्गुं च पिष्टा गुटिकां च कुर्यात् ।
दद्याच्च तस्याञ्जनलेपनादि एषोऽगदः सर्पविषाणि हन्यात् ॥४४

अञ्जनं चैव नस्यं च क्षिप्रं दद्याद्विषान्विते । वायुस्थानं ततो मुक्त्वा मज्जास्थानं प्रधावति ॥४५
विषे मज्जागते विप्र तस्य रूपाणि मे शृणु । दृष्टिश्च हीयते तस्य भृशमङ्गानि मुञ्चति ॥४६

पीस कर नास दे, पान, करायें लेपन और अञ्जन दे, इसी उपचार मात्र से उसे सुख प्राप्त होता है ।३४-३५। विष के श्लेषा में पहुँचने पर प्राणी की जो दशा होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! कान से सुनाई नहीं देता, साँस रूक जाती है, मुँह से लार गिरता है एवं गले में घुरघुराहट होती है ।३६। ऐसी दशा होने पर उसके श्लेष्मा में विष पहुँच गया, जान लेना चाहिए अब उसकी औषधि कह रहा हूँ जिसके सेवन से (रोगी) सुखी होता है । त्रिकटुका (सोंठ मिर्च पीपर) श्लेष्मातक (लसोड़ा) लोध, मधुसार (महुवा का शराब) इनके बराबर भाग को गोमूत्र में पीसकर । उसका पान, अंजन और लेप करे, इसी उपचार से उसे सुख मिलता है ।३७-३९। श्लेष्मा में पहुँच कर वह विष वायु में पहुँचता है । वात में मिलने पर उसकी जो अवस्था होती है, कह रहा हूँ । पेट फूल जाता है भाई-बन्धु को नहीं देख पाता है, और दृष्टि भी नष्ट हो जाती है ।४०-४१। ऐसी दशा होने पर उसके वायु में विष पहुँच गया है जानना चाहिए ऐसे (रोगी) को आरोग्य करने वाली औषधि बता रहा हूँ सुनो ! ।४२। शोणामूल (वनहर की) प्रियाल (द्राक्षा) रक्त गजपीपल, भृङ्गराज, बच पीपरि, देवदारु, महुआ, मधूक सार, (महुआ का शराब) सिंदुरवार (म्यौड़ी) और हिंगु (हींग) इन्हें पीसकर गोली बनाये इस प्रकार उसी का अंजन-लेपन आदि करने से साँप का विष नष्ट हो जाता है ।४३-४४। आँखों में अञ्जन और नाक में नास तुरंत देना चाहिए । उसके पश्चात् वह (विष) मज्जा में पहुँचता है ।४५। विप्र ! मज्जा में पहुँचने पर उसकी जो दशा होती है बता रहा हूँ सुनो ! दृष्टि कम हो जाती है और (सभी) अंग जैसे शरीर से अलग हो गये हों ऐसा मालूम होने लगता है ।४६। ऐसी दशा होने पर मगज में विष

---

१. इंद्रवारुकमूलकम् ।

एतानि यस्य रूपाणि तस्य मज्जागतं विषम् । तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ।।४७
घृतमधुशर्करान्वितमुशीरं चन्दनं तथा । एतदालोड्य दातव्यं पानं नस्यं च सुव्रत ।।४८
ततः प्रणश्यते दुःखं ततः सम्पद्यते सुखम् । अथ तस्मिन्कृते योगे विषं तस्य निवर्तते ।।४९
मज्जास्थानं ततो गत्वा मर्मस्थानं प्रधावति । विषे तु मर्मसंप्राप्ते शृणु रूपं यथा भवेत् ।।५०
निश्चेष्टः पतते भूमौ कर्णाभ्यां बधिरो भवेत् । वारिणा सिच्यमानस्य रोमहर्षो न जायते ।।५१
दण्डेन हन्यमानस्य दण्डराजी न जायते । शस्त्रेण च्छिद्यमानस्य रुधिरं न प्रवर्तते ।।५२
केशेषु लुच्यमानेषु नैव केशान्प्रवेदते । यस्य कर्णौ च पार्श्वे च हस्तपादं च सन्धयः ।।
शिथिलानि भवन्तीह स गतासुरिति श्रुतिः ।।५३
एतानि यस्य रूपाणि विपरीतानि गौतम । मृतं तु न विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ।।५४
वैद्यास्तस्य न पश्यन्ति ये भवन्ति कुशिक्षिताः । विचक्षणास्तु पश्यन्ति मन्त्रौषधिसमन्विताः ।।५५
तस्यागदं प्रवक्ष्यामि स्वयं रुद्रेण भाषितम् । मयूरपित्तं मार्जारपित्तं गन्धनाडीमूलमेव[1] च ।।५६
कुङ्कुमं तगरं कुष्ठं कासमर्दत्वचं तथा । उत्पलस्य च किञ्जल्कं पद्मस्य कुमुदस्य च ।।५७
एतानि समभागानि गोमूत्रेण तु पेषयेत् । एषोऽगदो यस्य हस्ते दष्टो न म्रियते स वै ।।
कालाहिनापि दष्टेन क्षिप्रं भवति निर्विषः ।।५८

पहुँच गया है, जानना चाहिए। उसे आरोग्य करने वाली औषधि बता रहा हूँ। जिससे उसे सुख हो सुनो ! ।४७। घी, शहद एवं शक्कर मिलाकर (गडरे की जड़) और चन्दन को अत्यन्त पिस कर पिलावें और नास दें। हे सुव्रत ! ऐसा करने से रोगी का दुःख दूर हो जाता है और उसे सुख प्राप्त होता है।४८-४९। मज्जा के पश्चात् वह मर्मस्थल में पहुँचता है। विष के मर्मस्थल में पहुँचने पर जो अवस्था प्राप्त होती है, बता रहा हूँ सुनो ! ।५०। निश्चेष्ट (बेहोश) होकर भूमि पर गिर जाता है, कान का बधिर हो जाता है, पानी से नहलाने पर रोमांच (ठंढी) नहीं होता।५१। दंडे से मारने पर दंडे का चिह्न नहीं दिखाई देता है हथियार से काटने पर रक्त नहीं निकलता है।५२। और बालों के नोंचने पर उसे उसका ज्ञान ही नहीं रहता है। इस प्रकार जिसके कान, (दोनों) बगल, हाथ, पैर और (अंगों के) जोड़ शिथिल हो जायें, उसे निश्चित मृतक जानना चाहिये ।५३। हे गौतम ! इसके प्रतिकूल जिसकी अवस्था हो, उसे कश्यप के कथनानुसार मृतक न समझे और उसका उपचार करे पर कुशिक्षित वैद्य को उसकी जानकारी नहीं होगी। जो अत्यन्त चतुर वैद्य है मंत्र एवं औषध द्वारा उन्हें ही (इसका) ज्ञान होता है।५४-५५। उसकी चिकित्सा, जिसे स्वयं रुद्र भगवान् ने कहा है, बता रहा हूँ। मोर एवं बिल्ली का पित्त, चन्दन, नाड़ीमूल (गण्डदूर्वा), कुंकुम, तगर, कुष्ठ, कोसमर्द (वृक्ष) की छाल, नीलकमल, कमल और कुमुद का पराग इनके समान भाग को गोमूत्र में पीस कर आंजन लगाये ओर नासदे, यह औषध जिसके पास हो वह साँप के काटने पर कभी प्राण त्याग नहीं कर सकता है। इसलिए यह मृतसंजीवनी औषधि कही गयी है क्योंकि काल

---

१. श्रोत्राणि तस्य रुध्यन्ते ।

क्षिप्रमेव प्रदातव्यं मृतसञ्जीवनौषधम् । अञ्जनं चैव नस्यं च क्षिप्रं दद्याद्विचक्षणः ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे धातुगतं विषक्रियावर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।३५।

अथ षट्त्रिंशोऽध्याय

नागपञ्चमीव्रतवर्णनम्

गौतम उवाच

कीदृशं सर्पदष्टस्य सर्पिण्याः कीदृशं भवेत् । कुमारदष्टः कीदृक्स्यात्सूतिकादंशितस्य च ॥१
रूपं नपुंसकेनेह व्यन्तरेण च कीदृशम् । एतदाख्याहि मे सर्वमेभिर्दष्टस्य लक्षणम् ॥२

कश्यप उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि नागानां रूपलक्षणम् । सर्पदष्टस्य च तथा समसाद्द्विजपुङ्गव ॥३
अथ सर्पेण दष्टस्य ऊर्ध्वदृष्टिः प्रजायते । सर्पादष्टस्य च तथा अधोदृष्टिः प्रजायते ॥४
कन्यादष्टस्य वामा स्याद्दृष्टिर्द्विजवरोत्तम । कुमारेणापि दष्टस्य दक्षिणा एव जायते ॥५
गर्भिण्या वाथ दष्टस्य तथा स्वेदश्च जायते । रोमाञ्चः सूतिकायास्तु वेपथुश्चापि जायते ॥
नपुंसकेन दष्टस्य अङ्गमर्दः[२] प्रजायते ॥६

के काटने पर भी इस उपचार द्वारा उसका विष शान्त हो जाता है।५६-५९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के पंचमी कल्प में धातुगत विष क्रिया वर्णन नामक पैतीसवाँ अध्याय समाप्त।३५।

अध्याय ३६

नागपञ्चमी व्रत वर्णन

गौतम ने कहा—साँप, साँपिनि, कुमार (बच्चे), प्रसूता, नपुंसक (साँप) तथा व्यंतर के काटने पर (प्राणी की) किन-किन प्रकार की दशाएँ होती हैं इसे तथा इनके काटने के लक्षणों को विस्तार पूर्वक मुझे बताने की कृपा करें।१-२

कश्यप बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! इसके पश्चात् अब मैं बड़े नागों और साँप के काटने पर प्राणी के (विकृत) रूप और लक्षण संक्षेप में कहा रहा हूँ ।३

साँप के काटने पर (प्राणी की) आँखे ऊपर हो आती हैं उसी प्रकार साँपिनी के काटने पर नीची, कुमारी के काटने पर बाँई ओर कुमार के काटने पर दाहिनी ओर हो जाती हैं ।४-५। गर्भिणी साँपिनी के काटने पर पसीना हो आता है प्रसूता के काटने पर रोमाञ्च और कम्पन होता है एवं नपुंसक (सर्प) के

---

१. गंधनानालीमूल मेव च ।

पन्नग्यः प्रभवो रात्रौ दिवा सर्पो विषाधिकः । नपुंसकस्तु सन्ध्यायां कश्यपेन तु भाषितम् ॥७
अन्धकारे तु दष्टो य उदके गहने वने । सुप्तो वा चेत्प्रमत्तो वा यदि सर्पं न पश्यति ॥
दष्टरूपाण्यजानन्वै कथं वैद्यचिकित्सितम् ॥८
चतुर्विधा इह प्रोक्ताः पन्नगास्तु महात्मना । दर्वीकरा मण्डलिनो राजिला व्यन्तरास्तथा ॥९
दर्वीकरा वातविषा मण्डला पैत्तिकाः स्मृताः । श्लेष्मला राजिला ज्ञेया व्यंतराः सान्निपातिकाः ॥१०
रक्तं परीक्षयेद्भेदात् सर्पाणां तु पृथक्पृथक् । कृष्णं दर्वीकराणां तु जायते नाल्पमुल्बणम् ॥११
रक्तं घनं च बहुधा शोणितं मण्डलीकृतम् । पिच्छिलं राजिले स्वल्पं तद्वद्व्यन्तरके तथा ॥१२
सर्पा ज्ञेयास्तु चत्वारः पञ्चमो नोपलभ्यते । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव चतुर्थकः ॥१३
ब्राह्मणे मधुरं दद्यात्तिक्तं दद्यात्तथोत्तरे । वैश्ये कर्षफलं दद्याच्छूद्रे त्रिस्थूणमेव[1] च ॥१४
ब्राह्मणेन तु दष्टस्य दाहो गात्रेषु जायते । मूर्च्छा च प्रबला स्याद्वै नात्मानमभिजानते ॥१५
श्यामवर्णं मुखं च स्यान्मज्जास्तम्भश्च जायते । तस्य कुर्यात्प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥१६
अश्वगन्धाप्यपामार्गः सिन्दुवारं सुरामयम् । एतत्सर्पिः समायुक्तं पाने नस्ये च दापयेत् ॥
एतेनैवोपचारेण सुखी भवति मानवः ॥१७
क्षत्रियेण तु दष्टस्य कम्पो गात्रेषु जायते । मूर्छा मोहस्तथा स्याद्वै नात्मानमभिवेत्ति सः ॥१८

काटने पर (देह के) अंग टूटते हैं ।६। कश्यप ने बताया है कि साँपिनी का प्रभाव रात में और साँप का प्रभाव दिन में एवं नपुंसक का प्रभाव संध्या समय अधिक रहता है ।७। इसलिए अंधेरे में पानी में या घोर जंगल में यदि साँप ने काट लिया और वह प्राणी सोया रहा हो या विशेष मस्ती में हो साँप को नहीं देखा तो उसके काटने के चिह्न को न जानते हुए वैद्य उसकी चिकित्सा कैसे कर सकता है ।८। दर्वीकर (करछी की भाँति फण वाले), मंडली, राजिल (डोंडा साँप) और व्यंतर, ये चार प्रकार के भेद साँप के बताये गये हैं ।९। दर्वीकर का विष, वातप्रधान, मंडली का पित्त प्रधान, राजिल का श्लेष्म प्रधान और व्यंतर का सन्निपात (सब मिला हुआ) प्रधान होता है ।१०। इन साँपों के रक्त की अलग-अलग परीक्षा करनी चाहिए दर्वीकर का रक्त काला और अधिक गरम होता है, गाढ़ा और लाल रक्त मंडली का होता है जो कीचड़ की भाँति और स्वल्प दिखायी देता है राजिल तथा उसी भाँति व्यंतर का भी रक्त होता है ।११-१२। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ये ही चार वर्ण के होते हैं पाँचवा कहीं नहीं मिलता ।१३। ब्राह्मण को मधुर, क्षत्रिय को तीखा, वैश्य को कर्षफल (बहेड़ा) और शूद्र को कुट (कड़ुवा) देना चाहिए ।१४। ब्राह्मण (साँप) के काटने पर शरीर में दाह होता है और मूर्च्छा इतनी बड़ी आती है कि वह अपने आप को कुछ भी नहीं जान पाता ।१५। मुख काला हो जाता है एवं मज्जा में स्तम्भन होने लगता है अतः उसकी प्रतिक्रिया (औषध मंत्रद्वारा) करनी चाहिए जिससे रोगी को सुख प्राप्त हो ।१६। अश्वगंधा, चिचिरा और शराब समेत सिंदुवार (म्यौड़ी) इन्हें घीर में मिलाकर पिलावें और नास दे बस इतने ही उपचार करने से प्राणी सुखी हो जाता है । क्षत्री के काटने पर देह में कम्प तथा मूर्च्छा एवं मोह

---

१. मुखशोषः ।

जायते वेदना तस्य ऊर्ध्वं चैव निरीक्षते । तस्य कुर्यात्प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥१९
अर्कमूलमपामार्गं प्रियङ्गुमिन्द्रवारुणीम्[1] । एतत्सर्पिः समायुक्तं पानं नस्यं च दापयेत् ॥
एतेनैवोपचारेण सुखी भवति मानवः ॥२०
वैश्येनापि हि दष्टस्य शृणु रूपाणि यानि तु । श्लेष्मप्रकोपो लाला च न चोद्वहति चेतनाम् ॥२१
मूर्छा च प्रबला यस्य आत्मानं नाभिनन्दति । तस्य कुर्यात्प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥२२
अश्वगन्धा सगोमूत्रा गृह धूमं सगुग्गुलम् । शिरीषार्कपलाशेन श्वेता च गिरिकर्णिका ॥२३
गोमूत्रेण समायुक्तं पानं नस्यं च दापयेत् । एष वैश्येन दष्टानामगदः परिकीर्त्तितः ॥२४
शूद्रेणापि हि दष्टस्य शृणु तत्त्वेन गौतम । कुप्यते[2] वेपते चैव ज्वरः शीतं च जायते ॥२५
अङ्गानि चुलुचुलायन्ते[3] शूद्रदष्टस्य लक्षणम् । तत्रागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥२६
पद्मं च लोध्रकं चैव क्षौद्रं पद्मस्य केसरम् । मधूकसारं मधु च श्वेतां च गिरिकर्णिकाम् ॥२७
एतानि समभागानि पेषयेच्छीतवारिणा । पानलेपाञ्जनैर्नस्यैः सुखी भवति मानवः ॥२८
पूर्वाह्णे चरते विप्रो मध्याह्ने क्षत्रियश्चरेत् । अपराह्णे चरेद्वैश्यः शूद्रः सन्ध्याचरो भवेत् ॥२९
आहारो वायुपुष्पाणि[4] ब्राह्मणानां विदुर्बुधाः । मूषिका क्षत्रियाणां च आहारो द्विजसत्तम ॥
वैश्या मण्डूकभक्षाश्च शूद्राः सर्वाशिनस्तथा ॥३०

उसे इस प्रकार का होता है कि उसे अपनी सुध-बुध नहीं रहती है ।१७-१८। उसे पीड़ा होती है और वह आँख से ऊपर देखने लगता है। अतः शीघ्र उसकी सुख प्रदान करने वाली प्रतिक्रिया करनी चाहिए।१९। मदार की जड़ चिचिरा प्रियंगु (माल कंगुनी) इन्द्रवारुणी (लता) इन्हें घी में मिलाकर पान करावें तथा नास दे । इसी उपचार से मनुष्य नीरोग हो जाता है ।२०। वैश्य जाति के साँप द्वारा काटे गये प्राणी की दशा मैं कह रहा हूँ सुनो ! श्लेष्मा दूषित हो जाती है जिससे मुख से लार गिरता है तथा चेतना विहीन हो जाता है । उसे भी इतनी बड़ी मूर्छा होती है जिसमें अपने आप का ज्ञान नहीं रहता है उसकी भी वैसी ही सुखदायिनी प्रतिक्रिया करनी चाहिए ।२१-२२। गोमूत्र में मिली अश्वगंधा, गुगुल के साथ शिरीष, (सिरसा) मदार, पलाश और श्वेत अपराजिता (विष्णुक्रान्ता) इन्हें गोमूत्र में मिलाकर पान करावें ।२३। यह प्रतिक्रिया वैश्य के काटने पर बतायी गयी है ।२४। हे गौतम ! अब शूद्र जाति के साँप काटने पर प्राणी की दशा सुनो ! वह प्राणी क्रुद्ध होता है, काँपता है शीतज्वर से पीड़ित होता है । अंगों में चुनचुनाहट होती है, यही शूद्र के काटे गये प्राणी का लक्षण है । अतः उसकी औषधि बता रहा हूँ जो सेवन मात्र से सुख प्रदान करती है ।२५-२६। कमल, लोध कमल मधु छोटे कमल का केसर मधूकसार, (महुआ की शराब) शहद और श्वेत अपराजिता नामक (लता) इनके समान भाग को ठंडे पानी में पीसकर पीने आँजन लगाने और नास देने से मनुष्य नीरोग हो जाता है ।२७-२८। पूर्वाह्ण समय में ब्राह्मण, दोपहर में क्षत्रिय उसके अपराह्ण में वैश्य और संध्या समय में शूद्र वर्ण का साँप घूमता है ।२९। द्विजसत्तम ! पंडितों का कहना है कि ब्राह्मण वायु और फूल का भोजन करता है, क्षत्रिय चूहे, वैश्य मेढक एवं शूद्र सभी कुछ

---

१. कटुकमेव च । २. प्रियंगुमत्तवारुणीम् । ३. क्रुध्यते । ४. चिमिचिमायन्ते ।

अग्रतो दशते विप्रः क्षत्रियो दक्षिणेन तु । वामपार्श्वे सदा वैश्यः पश्चाद्वै शूद्र आदशेत् ॥३१
मदकाले तु सम्प्राप्ते पीडयमाना महाविषाः । अवेलायां दशन्ते वै मैथुनार्ता भुजङ्गमाः ॥३२
पुष्पगन्धाःस्मृता विप्राः क्षत्रियाश्चन्दनावहाः । वैश्याश्च घृतगन्धा वै शूद्राः स्युर्मत्स्यगन्धिनी ॥३३
वासं तेषां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः । वापीकूपतडागेषु[१] गिरिप्रस्रवणेषु च ॥
वसन्ति[२] ब्राह्मणाः सर्पा ग्रामद्वारे चतुष्पथे ॥३४
आरामेषु पवित्रेषु शुचिष्वायतनेषु[३] च । वसन्ति क्षत्रिया नित्यं तोरणेषु सरःसु च ॥३५
श्मशाने भस्मशालासु पलालेषु तटेषु च । गोष्ठेषु पथि वृक्षेषु विप्र वैश्या वसन्ति च ॥३६
अविविक्तेषु स्थानेषु निर्जनेषु वनेषु च । शून्यागारे श्मशाने च शूद्रा विप्र वसन्ति च ॥३७
श्वेताश्च कपिलाश्चैव ये सर्पास्त्वनलप्रभाः । मनस्विनः सात्त्विकाश्च ब्राह्मणास्ते बुधैः स्मृताः ॥३८
रक्तवर्णाः सुवर्णाभाः प्रवालमणिसन्निभाः । सूर्यप्रभास्तथा विप्रस्ते क्षत्रिया भुजङ्गमाः॥३९
नानाविचित्रराजीभिरतसीवर्णसन्निभाः । बाण पुष्पसवर्णाभा वैश्यास्ते वै भुजङ्गमाः ॥४०
काकोदरनिभाः केचिद्ये च अञ्जनसन्निभाः । काकवर्णा धूम्रवर्णास्ते शूद्राः परिकीर्तिताः ॥४१
यस्य सर्पेण दष्टस्य दंशमङ्गुष्ठमन्तरम् । बालदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥४२
यस्य सर्पेण दष्टस्य दंशं द्व्यङ्गुलमन्तरम् । यौवनस्थेन दष्टस्य एतद्भवति लक्षणम् ॥४३
यस्य सर्पेण दष्टस्य सार्धं द्व्यङ्गुलमन्तरम् । वृद्धदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥४४

खाता है ।३०। सम्मुख होकर ब्राह्मण, दाहिनी ओर से क्षत्रिय, बाईं ओर से वैश्य तथा पीछे की ओर से शूद्र काटता है ।३१। मस्ती के समय काम-पीड़ित होने के नाते साँप असमय में भी काट खाता है ।३२। फूल की भाँति गंध ब्राह्मण की, चन्दन की भाँति गंध क्षत्रिय की, घी के समान गंध वैश्य की और मछली की भाँति गंध शूद्र की होती है ।३३। अब इन लोगों का क्रमशः वास-स्थान बता रहा हूँ ! बावली, नदी, कूप, तालाब, पहाड़ों झरनों गाँवों में आने-जाने के मार्ग तथा चौराहे पर ब्राह्मण (साँप) रहता है ।३४। पवित्र बगीचे, साफ-सुथरे घरों तोरण (घर या नगर का बाहरी फाटक) और तालाबों में क्षत्रिय, साँप रहता है । श्मशान, राख के स्थानों में पलाल (पैरा) एवं किनारों पर गोशाला मार्ग और पेड़ों पर वैश्य साँप तथा गंदे स्थानों निर्जन वनों सूने घर एवं श्मशानों में शूद्र साँप रहता है ।३५-३७। श्वेत, कपिल (पीले सफेद नीले), अग्नि के समान कान्ति वाले, मनस्वी और सात्विक साँपों को पंडितों ने ब्राह्मण साँप बताया है ।३८। हे विप्र ! उसी प्रकार लालरंग, सोने के रंग प्रवालरंग एवं मणि की भाँति तथा सूर्य के समान कान्ति वाले सर्प क्षत्रिय कहे जाते हैं ।३९। रंगबिरंगे धारी के समान रेखा और अलसी या बाण पुष्प की भाँति चितकबरे वर्ण वाले साँप को वैश्य कहते हैं ।४०। कौवे के पेट या अंजन की भाँति कान्ति तथा कौवे या धूएँ के समान वर्ण वाले को शूद्र कहते है ।४१। अंगूठे मात्र फासले से जो साँप काटता है, उसे कश्यप के कथनानुसार बालक साँप समझना चाहिये ।४२। जो दो अंगुल की दूरीसे काटता है उसे युवा साँप जानना चाहिए।४३। तथा ढाई अंगुल की दूरी से काटने वाले को कश्यप जी ने वृद्ध बताया है।४४।

---

१. चांतरे । २. आहारं चात्र पुष्पाणि । ३. नदीह्लदतडागेपु ।

अनन्तः प्रेक्षते पूर्वं वामपार्श्वे तु वासुकिः । तक्षको दक्षिणेनेह कर्कोटः पृष्ठतस्तथा ।।४५
चलते भ्रमते पद्मो महापद्मो निमज्जति । विसंज्ञस्तिष्ठते[1] चैव शङ्खपालो मुहुर्मुहः ।।४६
सर्वेषां कुरुते रूपं कुलिकः पन्नगोत्तम । अनन्तस्य दिशा पूर्वा वासुकेस्तु हुताशनी ।।४७
दक्षिणा तक्षकस्योक्ता कर्कोटस्य तु नैर्ऋती । पश्चिमा पद्मनाभस्य महापद्मस्य वायुजा ।।
उत्तरा शङ्खपालस्य ऐशानी कम्बलस्य तु ।।४८
अनन्तस्य भवेत्पद्म वासुकेः स्यात्तथोत्पलम् । स्वास्तिकं तक्षकस्योक्तं कर्कोटस्य तु[2] पङ्कजम् ।।४९
पद्मस्य तु भवेत्पद्मं शूलं पद्मेतरस्य तु । शङ्खपाले भवेच्छत्रं कुलिकस्यार्धचन्द्रकम् ।।५०
अनन्तकपिलौ विप्रौ क्षत्रियौ शङ्खवासुकी । महापद्मस्तक्षकश्च वैश्यो विप्र प्रकीर्तितौ ।।
पद्मकर्कोटकौ शूद्रौ सदा ज्ञेयौ मनीषिभिः ।।५१
अनन्तकुलिकौ शुक्लौ वर्णतो ब्रह्मसम्भवौ । वासुकिः शङ्खपालश्च रक्तौ ह्यग्निसमुद्भवौ ।।५२
तक्षकश्च महापद्म ईषत्पीतौ[3] बभूवतुः । पद्मकर्कोटकौ विप्र सर्पौ कृष्णौ बभूवतुः ।।५३
हयं यानं[4] वृषं छत्रं राजानमथ पावकम् । धरणीमुत्पाद्य धृतानेतान्सिद्धिकरान्विदुः ।।५४
पूर्णकुम्भः पताका च काञ्चनं मणयस्तथा । शिरीषं[5] माणिकं कण्ठे जीवजीवेति सुव्रत ।।
एतेषां दर्शनं श्रेष्ठं कन्या चैकप्रसूयिका ।।५५
चतुःषष्टिः समाख्याता भोगिनो ये तु[6] पन्नगाः । अदृश्यास्तेषु षट्त्रिंशद्दृश्यास्त्रिंशन्महीचराः[7] ।।५६

अनन्त नामक नाग सामने से तथा बायें बगल से वासुकी, दाहिनी ओर से तक्षक, और पीछे की ओर से कर्कोटक देखता है ।४५। पद्मनामक साँप इधर-उधर घूमते हुए चलता है । उसी प्रकार पानी में डूबे हुए की भाँति महा पद्म चलता हैतथा बार-बार चेतना हीन की भाँति शंखपाल दिखाई देता है ।।४६। कुलिक नाम साँप जो साँपों में उत्तम माना गया है अत्यन्त सुन्दर होता है । पूरब दिशा का अनन्त, अग्निकोण का वासुकी, दक्षिण दिशा का तक्षक, नैर्ऋत्यकोण का कर्कोटक, पश्चिम दिशा का पद्मनाभ, वायुकोण का महापद्म उत्तर दिशा का शंखपाल और ईशान कोण का कंबल स्वामी बताया गया है।४७-४८। अनंत का पद्म, वासुकी का उत्पल, तक्षक का स्वास्तिक, कर्कोटक का पंकज, पद्म (नामक साँप) का पद्म, महापद्म का शूल, शंखपाल का छत्र और कुलिक का अर्धचन्द्र, असु (हथियार) है।४९-५०। हे विप्र ! अनंत और कपिल ब्राह्मण, शंख एवं वासुकी क्षत्रिय, महापद्म तथा तक्षक वैश्य और उसी प्रकार पद्म कर्कोटक शूद्र बताये गये हैं।५१। अनंत और कुलिक शुक्र वर्ण एवं ब्रह्मा से उत्पन्न हैं, वासुकी शंखपाल रक्त वर्ण तथा अग्नि से उत्पन्न हैं, तक्षक-महापद्म कुछ पीले वर्ण और (इन्द्र से) उत्पन्न हैं तथा पद्म एवं ककोर्टक काले वर्ण और (यम से) उत्पन्न हुए हैं।५२-५३। घोड़ा, यान, सवारी बैल, छत्र, राजा, अग्नि और पृथिवी इन्हें उत्पन्नकर धारण करने से सिद्धि प्राप्त होती है।५४। पूर्ण कलश, पताका, सुर्वण, मणि, गले में धारण की जाने वाली शिरीष पुष्प की माला जीवञ्जीद, तथा एकबार प्रसव वाली कन्या इनके दर्शन अत्यन्त उत्तम कहे गये हैं अतः कल्याणार्थ नित्य दर्शन करे।५५। अब पुनः प्रसङ्ग की बात कहता हूँ ! चौंसठ प्रकार के सांप होते हैं, जिनमें छत्तीस अदृश्य और

---

१. विप्रो वै वसते नित्यं सदा ब्राह्मणसत्तम । २. विशुद्धायतनेषु च । ३. विमज्जंस्तिष्ठते । ४. त्रिरेखकम् । ५. नृपोत्तम । ६. प्रायः पीतौ । ७. हयपालम् ।

विंशच्च स्रग्विणः प्रोक्ताः सप्त मण्डलिनस्तथा। राजीवन्तो दश प्रोक्ता दर्व्यः षोडश पञ्च च ॥५७
दुन्दुभो डुण्डुभश्चैव चेटभश्चेन्द्रवाहनः[1]। नागपुष्पसवर्णाख्या निर्विषा ये च पन्नगाः ॥
एवमेव तु सर्पाणां शतद्विनवतिं स्मृतम् ॥५८

वराहकर्णीं गजपिप्पलीं च गान्धारिकां पिप्पलदेवदारु।
मधूकसारं सहसिन्दुवारं हिङ्गुं च पिष्ट्वा गुटिका च कार्या ॥५९

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्तवान्पुरा वीर गौतमस्य प्रजापतिः। लक्षणं सर्वनागानां रूपवर्णौ विषं तथा ॥६०
तस्मात्सम्पूजयेन्नागान्सदा भक्त्या समन्वितः। विशेषतस्तु पञ्चम्यां पयसा पायसेन च ॥६१
श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे[2] नराधिप। द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः ॥६२
पूजयेद्विधिवद्द्वारं दधिदूर्वाक्षतैः कुशैः। गन्धपुष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥६३
ये त्वस्यां पूजयन्तीह नागान्भक्तिपुरःसराः। न तेषां सर्पतो वीर भयं भवति कर्हिचित् ॥६४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे श्रावणिकनागपञ्चमीव्रतवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।३६।

अट्ठाइस दिखाई पड़ते हैं ।५६। उनमें बीस प्रकार के मालाधारी सात प्रकार के मंडली दश प्रकार के राजिल और इक्कीस प्रकार के दर्वी साँप होते हैं ।५७। नागपुष्प की भाँति वर्ण वाले साँप विष-हीन होते हैं और दुंदुभ, डुंडुभ (डेड़हा) चेटभ और इन्द्रवाहन नामक साँप को भी वैसा ही जानना चाहिये इस प्रकार साँपों का दो सौ नब्बे भेद बताया गया है ।५८। अतः वराहकर्णी, गजपीपल, गन्धक, पिप्पल, देवदारु, मधूकसार (महुआ का शराब), सिंदुवार (म्यौड़ी) और हींग इन्हें पीसकर गोली बना लेनी चाहिए, यह विष दूर करने की उत्तम औषधि है ।५९

सुमन्तु बोले—हे वीर ! इस प्रकार कश्यप ने गौतम जी को साँपों का लक्षण, रूप-रंग, जाति और विष बताया था। इसलिए साँपों की पूजा भक्ति पूर्वक सदा करनी चाहिए। विशेषकर पंचमी में दूध और खीर से पूजा करनी चाहिए ।६०-६१। मनुष्यों को चाहिए कि सावन के महीने में शुक्लपक्ष की पंचमी के दिन दरवाजे के दोनों पार्श्व भाग में गोबर से साँप की मूर्ति बनाकर दही, दूर्बा, अक्षत, कुश, गंध एवं फूल से विधिवत् उनका पूजन करें और पश्चात् ब्राह्मण भोजन करायें ।६२-६३। हे वीर ! इस पञ्चमी के दिन जो भक्ति पूर्वक साँपों की पूजा करता है उन्हें साँपों का भय कभी नहीं होता ।६४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के पञ्चमी कल्प में श्रावणिक नागपंचमी व्रत वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३६।

---

१. शयनं मणिकं कण्ठे। २. शरसौमाणिकं कण्ठे।

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

भाद्रपदिकनागपञ्चमीवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

तथा भाद्रपदे मासि पञ्चम्यां श्रद्धयान्वितः । अथालेख्य नरो नागान्कृष्णवर्णादिवर्णकैः ॥१
पूजयेद्गन्धपुष्पैश्च सर्पिः पायसगुग्गुलैः । तस्य तुष्टिं समायान्ति पन्नगास्तक्षकादयः ॥२
आसप्तमात्कुलात्तस्य न भयं नागतो भवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नागान्सम्पूजयेद्बुधः ॥३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे
भाद्रपदिकनागपञ्चमीव्रतवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।३७।

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

नागपञ्चमीकल्पसमाप्तिकथनम्

सुमन्तुरुवाच

तथा चाश्वयुजे मासि पञ्चम्यां कुरुनंदन । कृत्वा कुशमयान्नागानांधाद्यैः[1] सम्प्रपूजयेत् ॥१
घृतोदकाभ्यां पयसा स्नपयित्वा विशांपते । गोधूमैः पयसा स्विन्नैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा ॥२

अध्याय ३७

भाद्रपदिक नाग पञ्चमी व्रत वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसी प्रकार जो मनुष्य भादों की पंचमी में श्रद्धा भक्ति पूर्वक काले रंग की साँपों की मूर्ति बनाकर उसे गंध, फूल, घी, खीर, गूगुल से उसकी पूजा करता है, तो तक्षकादिक साँप अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और इसके कुल में सात पीढ़ी तक साँपों का भय कभी नहीं होता है । अतः सभी बुद्धिमानों को साँपों की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।१-३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के पञ्चमी कल्प में भाद्रपदिक नाग पञ्चमी व्रत वर्णन
नामक सैंतसीवाँ अध्याय समाप्त ।३७।

अध्याय ३८

पञ्चमीकल्प समाप्ति कथन

सुमन्त ने कहा—हे कुरुनंदन ! उसी प्रकार कुवार के मास में पंचमी के दिन कुश की साँप की मूर्ति बनाकर गंध आदि से उसकी पूजा करनी चाहिए ।१। हे राजन् ! सर्वप्रथम घी, जल एवं दूध से क्रमशः स्नान कराकर और दूध मिश्रित गेहूँ की भाँति-भाँति की उत्तम भक्ष्य वस्तुओं से उनकी पूजा करनी

---

१. इंद्राण्या सह पूजयेत् ।

यस्तस्यां विधिवन्नागाञ्छुचिर्भक्त्या समन्वितः । पूजयेत्कुरुशार्दूल तस्य शेषादयो नृप ॥३
नागाः प्रीता भवन्तीह शान्तिमाप्नोति वा विभो । स शान्तिलोकमासाद्य मोदते शाश्वतीः समाः ॥४
इत्येष कथितो वीर पञ्चमीकल्प उत्तमः । यत्रायमुच्यते मन्त्रः सर्वसर्पनिषेधकः ॥५
(ॐ कुरुकुल्ले फट् स्वाहा)

इति श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे समाप्तिकथनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ।३८।

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

षष्ठीतिथिमाहात्म्यम्

सुमन्तुरुवाच

षष्ठ्यां फलाशनो राजन्विशेषात्कार्तिके नृप । राज्यच्युतो विशेषेण स्वं राज्यं लभतेऽचिरात् ॥१
षष्ठी तिथिर्महाराज सर्वदा सर्वकामदा । उपोष्या तु प्रयत्नेन सर्वकालं जयार्थिना ॥२
कार्त्तिकेयस्य दयिता एषा षष्ठी महातिथिः । देवसेनाधिपत्यं हि प्राप्तं तस्यां महात्मना ॥३
अस्यां हि श्रेयसा युक्तो यस्मात्स्कन्दो भवाग्रणीः । तस्मात्षष्ठ्यां नक्तभोजी प्राप्नुयादीप्सितं सदा ॥४
दत्त्वार्घ्यं कार्तिकेयाय स्थित्वा वै दक्षिणामुखः । दध्ना घृतोदकैः पुष्पैर्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥५

चाहिए ।२। क्योंकि और पवित्रता पूर्वक जो इस पंचमी में साँपों की पूजा करते हैं, उन्हें शेष आदि नाग अत्यन्त प्रसन्न होकर शांति प्रदान करते हैं और वह पुरुष शांति स्नेह में बहुत दिवस तक निवास करता है । हे वीर ! इस प्रकार यह उत्तम पञ्चमी कल्प सम्पन्न हुआ जिसमें साँपों के विष निवारणार्थ मंत्र कहा गया है 'ॐ कुरु कुल्ले फट् स्वाहा' यह साँप के निवारण का मंत्र है ।३-५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व में पंचमी कल्प वर्णन समाप्ति कथन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३८।

अध्याय ३९

षष्ठी तिथि का माहात्म्य

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! सभी षष्ठी तिथि में केवल फलाहार करके रहना चाहिए, पर, कार्तिक मास की षष्ठी का विशेष महत्त्व है। हे नृप ! जिस राजा का राज्य किसी प्रकार से छूट गया हो, (इसके पूजन से) वह राजा अतिशीघ्र अपने राज्य को प्राप्त करता है।१। हे महाराज ! षष्ठी तिथि सदैव सभी कामनाओं की पूर्ति करती है । अतएव विजय की अभिलाषा वाले सदैव इसका व्रत करते हैं।२। इसी प्रकार कार्तिकेय को भी यह महातिथि षष्ठी अत्यन्त प्रिय है क्योंकि इसी में वे देवसेना के अधिनायक हुए हैं।।३। और स्कंद को शिवजी का ज्येष्ठ पुत्र बनाने का श्रेय इसी षष्ठी को प्राप्त हुआ है। इसलिए इसमें नक्त (दिन में व्रत रहकर रात्रि में) भोजन करने वाले प्राणी अपने मनोरथ सफल करते हैं।४। पूजनोपरांत दक्षिण की ओर मुख करके स्कन्द को

सप्तर्षिदारज स्कन्द स्वाहापतिसमुद्भव । रुद्रार्यमाग्निज विभो गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ।।
प्रीयतां देवसेनानीः सम्पादयतु हृद्गतम् ।।६
दत्त्वा विप्राय चात्मान्नं यच्चान्यदपि विद्यते । पश्चाद् भुङ्क्ते त्वसौ रात्रौ भूमिं कृत्वा तु भाजनम् ।।७
एवं षष्ठ्यां व्रतं स्नेहात्प्रोक्तं स्कन्देन यत्नतः । तन्निबोध महाराज प्रोच्यमानं मयाखिलम् ।।८
षष्ठ्यां यस्तु फलाहारो नक्ताहारो भविष्यति । शुक्लाकृष्णासु नियतो ब्रह्मचारी समाहितः ।।९
तस्य सिद्धिं धृतिं तुष्टिं राज्यमायुर्निरामयम् । पारत्रिकं चैहिकं च दद्यात्स्कन्दो न संशयः ।।१०
यो हि नक्तोपवासः स्यात्स नक्तेन व्रती भवेत् । इह वामुत्र सोऽत्यन्तं लभते ख्यातिमुत्तमाम् ।।
स्वर्गे च नियतं वासं लभते नात्र संशयः ।।११
इह चागत्य कालान्ते यथोक्तफलभाग्भवेत् । देवानामपि वन्द्योऽसौ राज्ञां राजा भविष्यति ।।१२
यश्चापि शृणुयात्कल्पं षष्ठ्याः कुरुकुलोद्वह । तस्य सिद्धिस्तथा तुष्टिर्धृतिः स्यात्ख्यातिसम्भवा ।।१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
षष्ठीकल्पवर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।३९।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

कार्तिकेयवर्णनम्

शतानीक उवाच

अहो व्रतं महत्कष्टं संशयो हृदि वर्तते । कार्तिकेयस्य माहात्म्यं श्रुत्वा जन्म तथा द्विज ।।१

अर्घ्य, दही, घी, जल और फूलों का 'सप्तर्षिदारजस्कन्द' आदि मन्त्रों से अर्घ्य प्रदान कर ब्राह्मण को उत्तम पदार्थ का भोजन करावे जो विविध भाँति से बनाया गया हो पश्चात् शेष अन्न को रात में भूमि पर रख कर स्वयं भी भोजन करे तथा और भी जो कुछ हो वह ब्राह्मण को देवे ।५-७। हे महाराज ! इस प्रकार षष्ठी के जिस व्रत-विधान को स्नेह वश स्कन्द ने यत्नपूर्वक बताया था उस समस्त विधि-विधान को मैं कह रहा हूँ सुनो ! ।८। शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष की षष्ठी में जो ब्रह्मचर्य पूर्वक व्रत रह कर फलाहार करता है, उसे स्कन्द सिद्धि, धैर्य प्रसन्नता, राज्य, आयु एवं लोक-परलोक का सुख प्रदान करते है ।९-१०। इसी प्रकार जो नक्तव्रत (दिन में व्रत रहकर रात में भोजन) करता है, उसकी ख्याति लोक-परलोक दोनों में होती है तथा उसका स्वर्ग में वास नियत रूप से ज्ञात होता है और यदि कभी यहाँ भूतल पर जन्म लिया तो उपरोक्त सभी फल उसे प्राप्त होते हैं । वह देवताओं का वन्दनीय एवं राजाओं का राज होता है । हे कुरुकुल नायक ! जो इस षष्ठी कल्प की कथा ही सुनते हैं, उन्हें भी सिद्धि, धैर्य, प्रसन्नता एवं यश प्राप्त होता है ।११-१३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व में षष्ठीकल्प वर्णन नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।३९।

अध्याय ४०

कार्तिकेय का वर्णन

शतानीक ने कहा—हे द्विज ! कार्तिकेय का माहात्म्य और जन्म सुनकर अत्यन्त कष्ट के साथ मन में

अनेकजनितस्येह कार्त्तिकेयस्य सुव्रत । माहात्म्यं सुमहद्विप्र कथमेतद्विभाव्यते ॥२
जातिः श्रेष्ठा भवेद्वीर उत कर्म भवेद्वरम् । संशयस्तु महानत्र दृष्ट्वा मे कृत्तिकासुतम् ॥३
एतद्वद विनिश्चित्य न यथा संशयो भवेत् । जन्मतः कर्मणश्चैव यज्ज्यायस्तद् ब्रवीहि मे ॥४

सुमन्तुरुवाच

इममर्थं पुरा पृष्टो ब्रह्मा शिष्यैर्मनीषिभिः । यदुक्तं तेन तेषां च तत्ते वच्मि निबोध मे ॥५
सुरज्येष्ठं सुखासीनमभिगम्य महर्षयः । प्रणम्य च महाबाहो विश्वामित्रस्य विप्रताम् ॥६
दृष्ट्वा विस्मयमागत्य कौतूहलसमन्विताः । भक्तिं श्रद्धां पुरोधाय प्रणम्यानतकन्धराः ॥७

ऋषय ऊचुः

भो ब्रह्मन्नादकल्पे हि ब्राह्मण्यं ब्रूहि किं भवेत् । जात्यध्ययनदेहात्मसंस्काराचारकर्मणाम्[1] ॥८
बाह्याभ्यन्तरसामान्यविशेषा यदि कृत्रिमाः । मनोवाक्कर्मशरीरजातिद्रव्यगुणात्मकाः ॥९
सन्त्यक्तव्याः प्रसिद्धा ये जातिभेदविधायिनः । वस्तुभूताः परोक्षैर्वा प्रमाणैर्न विनिश्चिताः ॥१०
अव्यक्तागमसिद्धश्चेज्जातिभेदविधिर्नृणाम् । विकल्पोऽयं न पुष्णाति भवतः शेमुषीबलम् ॥११

यह संदेह हो रहा है कि जब कार्तिकेय जी का जन्म कई व्यक्तियों द्वारा संपन्न हुआ है तब इनका इतना बड़ा माहात्म्य कैसे संभव हो सकता है ।१-२। हे वीर ! कृत्तिका के पुत्र को देख कर मुझे यह भी संदेह उत्पन्न हुआ है कि जाति सर्वश्रेष्ठ है या कर्म ? इसे भली-भाँति निश्चित कर मुझे इस प्रकार बताने की कृपा करें जिससे मेरा संदेह दूर हो जाये अर्थात् जन्म द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त होती है या कर्म द्वारा इसे स्पष्ट मुझसे कहें।३-४

सुमन्तु बोले—(ब्रह्मा के) बुद्धिमान शिष्यों ने भी एकबार इसी विषय को ब्रह्मा से पूछा था। उन्होंने उन लोगों से जो कुछ कहा है वही मैं कह रहा हूँ, सुनो ! ।५। हे महाबाहो ! विश्वामित्र का ब्राह्मण होना देख कर ऋषियों को महान् आश्चर्य हुआ एवं उसकी (जानकारी के लिए) उन्हें कौतूहल भी हुआ। इसीलिए उन लोगों ने सुख पूर्वक बैठे हुए ब्रह्मा के पास जाकर श्रद्धा और भक्ति पूर्वक शिर झुकाकर प्रथम उन्हें प्रणाम किया, और पश्चात् पूछना आरम्भ किया ।६-७

ऋषियों ने कहा—हे ब्राह्मण ! आदि कल्प में जाति, वेदाध्ययन, देह, आत्म-संस्कार, आचार और (वैदिक) कर्म, इनमें किसके द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है अर्थात् ब्राह्मण होने का कौन-सा मुख्य कारण है ? यदि कहा जाय कि कृत्रिम (काल्पनिक) वस्तु प्रभाग है जो मन, वाणी, कर्म, शरीर, जाति (ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व आदि), द्रव्य (पृथ्वी जल, तेज, आदि) गुण (रूप, रसादि द्वारा उत्पन्न होता है तथा बाहरी और भीतरी दोनों दृष्टि से सामान्य या विशेष स्थिति में वर्तमान हो तो प्रसिद्ध होते हुए भी वह जाति भेद विधायक प्रमाण जिसे वस्तु सिद्धि करने में परोक्ष आगम अनुमानादि प्रमाणों द्वारा निश्चित समर्थन नहीं प्राप्त है सर्वथा त्याज्य है, अतः वह जाति का कारण नहीं हो सकता है यदि मनुष्यों का जाति भेद, वेद द्वारा ही सिद्ध है, तो यह कल्पना भी आपके बुद्धि बल को सुदृढ़ बनाने में सर्वथा असमर्थ है।८-११

---

१. संस्काराधानकर्मणाम् ।

ब्रह्मोवाच

एवमेतन्न सन्देहो यथा यूयं वदन्ति[1] ह । शृणुध्वं योगिनो वाक्यं सतर्कं शिष्यश्रेयसे ।।१२

योगेश्वर उवाच

प्रमाणे हि प्रसिद्धे तु भिन्नार्थविषये यतः । स्पष्टयोग्यार्थविषयं प्रत्यक्षं तावदीक्षते ।।१३
समान्यातीन्द्रियग्राही सिद्धान्तोऽभ्युपगम्यते । स एव भगवानेकं प्रमाणमिति चेन्न तत् ।।१४
यस्माद्विविधमे तत्ते सङ्कटं भद्र वर्तते । वेदस्य पौरुषेयत्वं नित्यजातिसमर्थकम् ।।१५
कार्या विशेषा वेदोक्ता न युक्तमकृतं वचः । तात्वादिकरणानां च व्यापारानन्तरं श्रुतेः ।।१६
व्यापारात्परतस्तस्य प्रागभावविशेषतः । तद्भावानुविधायित्वमन्वयव्यतिरकेतः ।।१७
तस्माद्धूमाग्निवद्वार्थफलभावोऽवतिष्ठते । न च व्यापारवचसोरन्यथानुपपत्तितः ।।१८
पुरुषानुगता जातिर्ब्राह्मणत्वादिकास्ति चेत् । द्विवर्णजातिभेदेन प्रत्याक्षार्थोपलक्षणात् ।।१९
गोवर्गमध्यं च गतो यथाश्वो निर्धार्यते ज्ञैः सुविचक्षणत्वात् ।
मनुष्यभावादविशिष्यमाणस्तद्वद्‌द्विजः शूद्रगणान्न भिन्नः ।।२०

ब्रह्मा बोले—जिस प्रकार तुम लोग कह रहे हो, वह ऐसी ही बात है इसमें संदेह नही किन्तु इसके विषय में योगेश्वर की तर्कपूर्ण बातें सुनो । उससे शिष्यों का कल्याण होगा एवं तुम्हारा संदेह भी दूर हो जायगा ।१२

योगेश्वर ने कहा—यद्यपि भिन्न अर्थों और सभी विषयों में प्रमाण प्रसिद्ध हैं तथापि सबसे अधिक योग्य एवं स्पष्ट प्रमाण प्रत्यक्ष ही माना जाता है ।१३। यद्यपि सामान्य और अतीन्द्रिय (विशेष) विषयक सिद्धांत आप स्वीकार करें तो उसमें केवल एक भगवान् ही प्रमाण हैं ऐसी बात नहीं।१४। हे भद्र ! जिस कारण तुम्हें अनेक प्रकार के संकट उपस्थित हुए हैं उसके निवारण के लिए एक बात को कहना आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि वेद का पौरुषेय होना ही जाति के होने में नित्य प्रमाण है।१५। अतः वेदोक्त को ही विशिष्ट प्रमाण मानना चाहिए, न कि अव्यवहारिक वाक्य को प्रमाण मानना युक्ति युक्त है जिस प्रकार ताल्वादि करण-व्यापार होने के अनन्तर ही वर्ण (अक्षर) सुनाई देते हैं।१६। और ताल्वादि व्यापार होने के पूर्व वर्णों का प्रागृभाव रहताहै व्यापार होने पर वर्ण सुनाई देते हैं (इससे यह निश्चय हुआ कि ताल्वादि) व्यापार होने पर (वर्ण) सुनाई देते हैं और (व्यापार) न होने पर नहीं सुनाई देते हैं इसी को शास्त्रों में अन्वय व्यतिरेक (अर्थात् करण के रहने पर कार्य का होना और न रहने पर कार्य का न होना) कहा गया है ।१७। इसलिए धूयें को देख कर अग्नि के निश्चित करने की भाँति (अन्वय-व्यतिरेक के द्वारा) फल की सत्ता का अनुमान करना चाहिए न कि केवल व्यापार द्वारा अन्यथा उसके उत्पन्न होने में ही संदेह होगा ।१८। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति भेद प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं इसलिए पुरुष होना ही ब्राह्मणादि जाति का समर्थक है यह कहना भी उचित नहीं है क्योंकि बुद्धिमान मनुष्य जिस भाँति गौवों के बीच में घोड़े को पहचान लेते हैं उसी प्रकार मनुष्य होने के नाते तथा कोई विशेषता न रहने के कारण

---

१. वदथ ।

मनुष्यजातेर्न परो विशेषो यः कल्प्यते सर्वनरानुयायी।
संस्कारयुक्ता हि क्रियाविशिष्टा द्विजन्मनां शूद्रविवेकहेतुः ॥२१
जीवोऽपि ब्राह्मणः प्रोक्तो यैरतत्त्वज्ञमानवैः। प्रभ्रष्टब्राह्मणत्वास्ते जायन्ते विप्रसङ्गतः ॥२२
जराजन्मान्तरक्लेशदुष्टग्राहकुलाकुलम् । नरतिर्यगसच्छूद्रयोनिदुःखोर्मिसंकटम् ॥२३
दौःस्थित्यरोगशोकार्तिजनावर्तसमन्वितम् । श्वानशूकरचाण्डालकृमिकूर्मादिकायकम् ॥२४
संसारसागरं घोरं मग्नः खलु परिप्लवन्। भूरिपापभराक्रान्तः स जीवो ब्राह्मणः कथम् ॥२५

ब्रह्मोवाच

सप्तव्याधकथा विप्रा मनुना परिकीर्तिताः। तं निशम्य यदुश्रेष्ठ नित्यं जातिपदं त्यजेत् ॥२६
सप्तव्याधा दशार्णेषु[1] मृगाः कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाकाः सरिद्द्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥२७
तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥२८
तस्मान्न जीवे ब्राह्मण्यं पश्यामो हि कथञ्चन ॥२९

शस्त्रादिमद्भार्गवजातियुक्तो गजाश्वगोजोष्ट्रखरादिकानाम्।
शक्त्या कृतो ह्यङ्गजवर्णधर्मैर्भेदः स्फुटं लक्षणतोऽत्र यद्वत् ॥३०

शूद्रों के बीच में ब्राह्मण क्षत्रिय आदि मनुष्य को नहीं पहचान सकते हैं।१९-२०। सभी मनुष्य को एक मानने वाले जो लोग कहते हैं कि मनुष्य जाति से उत्तम कोई दूसरी (जाति) नहीं है, उनके मन में, (यज्ञोपवीत आदि) संस्कार पूर्वक क्रिया का करना ही शूद्रों से उनके पृथक् होने में प्रमाण है।२१। कुछ अज्ञानियों का कहना है कि जीव ही ब्राह्मण है, किन्तु (पतित) ब्राह्मणों के सम्पर्क होने से उनका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है इस कारण यह भी नहीं माना जा सकता है।२२। यह जीव बुढापा जन्मान्तर के ग्रहण करने का दुःख रूपी मगरों से भरा हुआ तथा मनुष्य, पक्षी, अस्पृश्य शूद्र आदि दुःखरूपी लहरों से संकटग्रस्त एवं दुःस्थिति, रोग, शोक आर्तिरूपी मनुष्यों के भँवरों से युक्त और कुत्ते, सुअर, , चांडाल, कीड़े एवं कछुवे आदि की शरीरों में युक्त, घोर संसार सागर में डूबते उतराते हुए अत्यंत पाप के भार से दबे हुए वे जीव भला ब्राह्मण कैसे हो सकते हैं।२३-२५

ब्रह्मा ने कहा—हे विप्र! मनु जी की कही हुई सातों व्याधों की कथा को सुन कर जाति की चर्चा ही छोड़ देनी चाहिए।२६। क्योंकि वे सातों व्याध (बहेलिया) सर्वप्रथम दशार्ण देश में उत्पन्न हुए थे। पुनः वे ही कालंजर पर्वत पर मृग, शरद्वीप में चकोर, मानसरोवर में हंस और कुरुक्षेत्र में वेद के पारगामी ब्राह्मण हुए। अतः इतनी लम्बी यात्रा के लिए प्रस्थित होकर तुम लोग भी अब दुःखी क्यों हो रहे हो। इस प्रकार जीव किसी भी भाँति ब्राह्मण नहीं हो सकता।२७-२९। शस्त्रादिधारी भार्गव जाति तथा हाथी, घोड़े, गाय, बकरी, ऊँट और गधा के अंगों से उत्पन्न वर्ण चर्म द्वारा जिस प्रकार भेद स्पष्ट रूप से प्रकट है। जो शक्ति सम्पन्न लक्षणों से भली भाँति प्रतीत होता है वैसे ही जीव में भेद स्पष्ट है।३०।

---

१. दशारण्ये।

तदुत्तरान्नैव विकर्तनीया ब्राह्मण्यजातिर्नृषु नास्ति काचित् ।
नित्याकृतिर्नानुपभेदरूपा यथा हि भेदः परमोऽत्र सिध्येत् ।।
सिताद्यसाधारणतुल्यरूपाः सनातनोऽङ्गेषु न वर्णभेदः ।।३१
ब्राह्मण्यमध्रुवमिदं किल कृत्रिमत्वादकृत्रिमं भवति सामयिकत्वयोगात् ।
साङ्केतिकं सुकृतलेशविशेषलब्धं वाणिज्यभेजकृतामिव जातिभेदाः ।।३२
किं ब्राह्मणा ये सुकृतं त्यजन्ति किं क्षत्रिया लोकमपालयन्तः ।
स्वधर्महीना हि तथैव वैश्याः शूद्राः स्वमुख्यक्रियया विहीनाः ।।३३
तस्मान्न गोश्ववत्कश्चिज्जातिभेदोऽस्ति देहिनाम् । कार्यशक्तिनिमित्तस्तु सङ्केतः कृत्रिमो भवेत् ।।३४
एवं प्रमाणैः प्रतिषिध्यमानां साङ्केतिकीं याति नरो व्यवस्थाम् ।
स्वकीयसिद्धां स्वमतैर्निषिद्धां न बुध्यते मूढमना वराकः ।।३५
गोमहिष्यजवाज्युष्ट्रवानेयाविगजाधिपाः । प्रेष्यावधुर्षिकाकार्यकरणोद्यतमानसाः ।।३६
वणिक्कारुक्रियाविष्टा[1] दिव्यास्तेऽपि च ये द्विजाः ।
विनष्टास्ते तु विज्ञेयाः क्रव्यादाश्च कुशीलवाः ।।३७
पलाण्डुलशुनादाश्च मृग्युष्ट्रीक्षीरपायिनः[2] । मांससर्वरसक्षीरक्रयविक्रयकारिणः ।।३८

और भी इस उत्तर से ब्राह्मण-जाति विषयक प्रश्न कभी सुलझ नहीं सकता है क्योंकि मनुष्यों में ब्राह्मण आदि कोई जाति है ही नहीं। इसलिए यह जाति नित्य नहीं है और इसका कोई उपभेद भी नहीं है जिसके द्वारा वह महान् भेद सिद्ध किया जा सके और मनुष्य के तो शरीरों में कोई भेद दिखाई भी नहीं देता है। गोरे और काले होने का भेद भी समान होने के नाते जाति भेद का सूचक नहीं है तथा अंगों के रूप रंग का भेद भी सनातन (नित्य) नहीं है।३१। इसलिए कृत्रिम (बनावटी) होने के नाते ब्राह्मण आदि जाति भी अनित्य (काल्पनिक) है, वह सामयिक प्रभाव वश नित्य हो जाया करती है। वैश्य और वैद्य में काल्पनिक जाति-भेद की भाँति जो अल्प या विशेष सुकृत से उत्पन्न होती है वह सांकेतिक वस्तु है।३२। अच्छे कर्तव्य का परित्याग करने वाले ब्राह्मण, जनता का पालन न करने वाले क्षत्रिय, अपने धर्म से च्युत होने वाले वैश्य और अपने कर्तव्य से हीन शूद्र क्या अपने जाति के कहे जा सकते हैं।३३। इसलिए गाय घोड़े के जाति भेद की भाँति जीवों में जाति-भेद नहीं होता है क्योंकि कार्य-शक्ति में निमित्त मात्र होने के नाते संकेत कृत्रिम (काल्पनिक) होना बताया गया है।३४। इस प्रकार मनुष्यों में ब्राह्मण क्षत्रिय आदि जाति व्यवस्था को, जो प्रमाणों द्वारा निषिद्ध है, केवल संकेतमात्र स्वीकार करना चाहिए। उसी को बेचारे मूर्ख लोग नहीं समझ पाते हैं कि यह (व्यवस्था) अपनी ही बनाई है एवं अपने ही मत से निषिद्ध भी है।३५। इसलिए गाय, भैंस, बकरी, घोड़े, ऊँट, भेंड और हाथी की नौकरी करने वाले, संदेश वाहक, ब्याज खोरी करने वाले, बनिए का काम करने वाले, दीवाल पर चित्र बनाने वाले, राक्षसी का काम करने वाले एवं कत्थक (नाच-गान करने वाले) ब्राह्मण यदि तेजस्वी हो तो भी उन्हें भ्रष्ट समझना चाहिए।३६-३७। उसी प्रकार प्याज और लहसुन खाने वाले मृगी एवं ऊंटिनी का दूध पीने वाले, मांस,

---

१. वाणिज्याविष्टहृदयाः। २. मत्स्यादाः स्त्रीषु यायिनः।

पुनर्भूवृषलीवेश्याचाण्डालस्त्रीनिषेविणः । शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गाः प्रेतवस्त्रान्नभोजनाः ॥३९
मृतसूतकलब्धान्नपानाद्यभ्यवहारिणः । ब्रह्मदेवपितृभूतमनुष्येषु बहिष्कृताः ॥४०
मात्सर्यमदविद्वेषतृष्णाकामतमोमयाः । हीनाचारा[1] हि ये केचिदपरे पिशुना द्विजाः ॥
प्रकारैर्बहुभिः सर्वे ते प्रणश्यन्ति नान्यथा ॥४१
एवं शास्त्रोदितन्यायमार्गभ्रष्टास्तु ये नराः । विशिष्टगोत्रसंस्कारकलापसकलात्मकाः ॥४२
वेदानध्यापयन्तोऽपि तेऽधीयानाः श्रुतिक्रमात् । ब्राह्मणत्वाद्विहीयन्ते दुराचारविधायिनः ॥४३
तस्मान्न जातिरेकत्र भूतात्मास्थनदायिनी । नाशित्वादत्र च श्लोकान्मानवाः सम्प्रधीयते ॥४४
सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च । त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥४५
गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान् । प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव शूद्रांस्तान्मनुरब्रवीत् ॥४६
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् । क्षत्रियो याति विप्रत्वं विद्याद्वैश्यं तथैव च ॥४७

इति श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे
कार्तिकेयवर्णने जातिवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।४०।

समस्त रस तथा दूध के क्रय विक्रय करने वाले द्विज और दोबार विवाही हुई स्त्री, शूद्र की स्त्री तथा चांडालिनी के साथ समागम करने वाले, शूद्र के अन्न से जीवन निर्वाह करने वाले एवं प्रेत का वस्त्र पहनने वाले तथा प्रेत कर्म में उनके अन्न खाने वाले मरण या जननाशौच में सर्वत्र भोजन करने वाले, ब्राह्मण देवता, पितर, भूत और इतर मनुष्यों से भी बहिष्कृत हैं, तथा मत्सर, मद, द्वेष एवं तृष्णा करने वाले, कामान्ध, चुगुली करने वाले तथा आचार-हीन ब्राह्मणों को सभी प्रकार से (नष्ट) ब्राह्मणच्युत समझना चाहिए ।३८-४१। क्योंकि शास्त्र में बताये गये न्याय मार्ग से च्युत होने वाला ब्राह्मण विशिष्ट गोत्र एवं शुद्ध संस्कार युक्त होकर तथा वेद पढ़कर उसका अध्यापन करते हुए भी दुराचारी होने के नाते पतित माना गया है ।४२-४३। अतः जीव की जाति अनश्वर वस्तु नहीं है और नश्वर होने के नाते ही मनुष्य इस बात को मानते हैं कि मांस, लाख और नमक बेंचने वाला ब्राह्मण उसी समय पतित हो जाता है तथा दूध बेंचने वाला ब्राह्मण तीन दिन तक शूद्र रहता है ।४४-४५। उसी प्रकार कृषि, गोरक्षा, वैश्य का काम, दीवाल पर चित्र बनाने नाच-गाना करने सेवक और ब्याज का काम करने वाले ब्राह्मण को मनु जी ने शूद्र होना बताया है ।४६। इस प्रकार शूद्र ब्राह्मण हो जाता है ब्राह्मण शूद्र हो जाता है क्षत्रिय ब्राह्मण हो जाता है था ऐसे ऐसे ही वैश्य भी हो जाता है ।४७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में कार्तिकेय के वर्णन में जाति वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४०।

---

१. हीनवाचः ।

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्राह्मणविवेकवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वेदाध्ययनमप्येतद्ब्राह्मण्यं प्रतिपद्यते । विप्रवद्वैश्यराजन्यौ राक्षसा रावणादयः ॥१
श्वादचाण्डालदासाश्च लुब्धकाभीरधीवराः । येन्येऽपि वृषलाः केचित्तेऽपि वेदानधीयते ॥२
शूद्रा देशान्तरं गत्वा ब्राह्मण्यं क्षत्रियं श्रिताः । व्यापाराकारभाषाद्यैर्विप्रतुल्यैः प्रकल्पितैः ॥३
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् । प्रोद्वहन्ति शुभां कन्यां शुद्धब्राह्मणजां नराः ॥४
अथवाधीत्य वेदांस्तु क्षत्रवैश्यैस्तु[1] वा नराः । गौडपूर्वां कृतामेयुर्जातिं वा दाक्षिणात्यजाम् ॥५
अपरिज्ञातशूद्रत्वाद्ब्राह्मण्यं यान्ति कामतः । तस्मान्न ज्ञायते भेदो वेदाध्यायक्रियाकृतः ॥६
शास्त्रकारैस्तथा चोक्तं न्यायमार्गानुसारिभिः । ते साधु मतमाकर्ण्य सन्तः सन्ति विमत्सराः ॥७

आचारहीनान्न पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः[2] ।
शिल्पं हि वेदाध्ययनं द्विजानां वृत्तं स्मृतं ब्राह्मणलक्षणं तु ॥८

अधीत्य चतुरो वेदान्यदि वृत्ते न तिष्ठति । न तेन क्रियते कार्यं स्त्रीरत्नेनेव षण्ढकः ॥९

अध्याय ४१

ब्राह्मणविवेक का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—यदि वेदाध्ययन से ही ब्राह्मण होना है, तो ब्राह्मण की भाँति वैश्य और क्षत्रिय भी ब्राह्मण कहे जायें जैसे रावणादि राक्षस हो गये हैं ।१। इसी प्रकार कुत्ता खाने वाले चांडाल दास, शिकारी, अहीर, मल्लाह शूद्र आदि भी वेद पढ़ते है ।२। जिस भाँति शूद्र कहीं विदेश में जाकर किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय के अधीन रहते हुए उनके व्यापार के अनुसार कार्य भेद एवं भाषा का अनुसरण करके चारों या किसी एक ही वेद को पढ़कर किसी शुद्ध ब्राह्मण की कन्या के साथ विवाह कर लेता है तथा कोई क्षत्रिय या वैश्य वेद पढ़ कर दक्षिण की गौड़ या द्रविड़ जाति में मिल जाता है उसी प्रकार शूद्र भी (लोगों के) अनजान में ब्राह्मण हो जाता है । अतः वेदाध्ययन ही जाति भेद का समर्थक नहीं है ।३-६। इसलिए सज्जन पुरुष न्याय पक्ष के पथिक शास्त्रकारों के कहे हुए वाक्यों को सुनकर किसी से वैर नहीं करते है ।७। छहों अंगों के समेत वेद पढ़ने वाले द्विज को आचार-हीन होने पर वेद पवित्र नहीं कर सकता है । द्विज के लिए वेदाध्ययन ही शिल्प वृति (कारीगरी है) बताया गया है और यही ब्राह्मण का लक्षण भी है ।८। जिसने चारों वेदों को पढ़कर अपने वृत्त धर्म को न अपनाया तो स्त्री रत्न प्राप्त होने पर हींजड़े के समान उसने कुछ भी नहीं किया ।९। शिखा (चोटी) इसका ओंकार पूर्वक संस्कार, संध्योपासन, मेखला

---

१. उद्वहन्ति द्विजस्त्रियः । २. न तैः क्रिया सतां कार्या वैश्यास्ते ब्राह्मणा मताः ।

शिखाप्रणवसंस्कारसन्ध्योपासनमेखलाः । दण्डाजिनपविन्नाद्याः शूद्रेष्वपि निरङ्कुशाः ।।१०
प्रसङ्गोऽपि हि शूद्राणां न शक्यो विनिवारितुम् । देवोत्तमत्रयेणापि निवर्तन्ते नराः स्वयम् ।।११
तस्मान्नैतेऽपि लक्ष्यन्ते विलक्षणतया[1] नृणाम् । यज्ञोपवीतसंस्कारमेखलाचूलिकादयः ।।१२
आभिचारिकमन्त्राद्यैर्दुर्लभत्वादिभाषणैः । ब्राह्मणस्यैव शक्तिश्चेत्केनास्य विनिहन्यते ।।१३
तपः सत्यादिमाहात्म्याद्देवतालमयस्मृतिः । मन्त्रशक्तिर्नृणामेषां सर्वेषामपि विद्यते ।।१४
वञ्चनं दुर्वचस्यापि क्रियते सर्वमानवैः । शूद्रब्राह्मणयोस्तस्मान्नास्ति भेदः कथञ्चन ।।१५
शापानुग्रहकारित्वं शक्तिभेदो न विद्यते । चौरचाटादिराजन्यदुर्जनाभिहते नृणाम् ।।१६
आत्मादुःखोदयापायं स्वेषु जन्तुषु रक्षणम् । कर्तुं न प्रभवेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तद्वदेव हि ।।१७
मा भूद्युगे कलावेतद्देशे चाकार्यकृद्द्विजे । स्यादन्यदेशकालादौ द्विजानामतिशायिनाम् ।।१८
शापानुग्रहसामर्थ्यमन्यद्वाध्यात्मगोचरम् । ब्रह्मसाधनमेतद्धि लिङ्गं केचित्प्रचक्षते ।।१९
संसारारक्तचेतस्का मोहान्धतमसावृताः । पतन्त्युन्मार्गगर्तेषु प्रत्यग्नि शलभा यथा ।।२०
जातिधर्मः स्वयं किञ्चिद्विशेषः श्रुतिसङ्गमात् । असिद्धः शूद्रजातीनां प्रसिद्धो विप्रजातिषु ।।२१
संस्कारो योनिसाध्यो वा सामग्री प्रभवोऽस्य वा । शूद्रेभ्योऽतिशयं धत्ते यः साधारणतागुणः ।।२२

(मूंज की करधनी), दंड और मृग चर्म इन्हें (ब्राह्मण की भाँति) शूद्र भी अपना सकते हैं।१०। शूद्र होने के प्रसंग को ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी रोक नहीं सकते तो मनुष्यों की बात ही क्या है। इसलिए मनुष्यों का यज्ञोपवीत संस्कार, मेखला और चोटी का रखना आदि भी (जाति) सूचक नहीं है। ब्राह्मण की शक्ति यदि तंत्र मंत्रों में और आकस्मिक भाषणों में विशेष है तो उसमें प्रवृत्त शूद्र की शक्ति को कौन नष्ट कर सकता है।११-१३। क्योंकि तप एवं सत्य बोलने आदि के महत्त्व द्वारा देवता की दातों की जानकारी और मंत्र की शक्ति सभी (शूद्रादि) मनुष्यों में भी देखी जाती है।१४। एवं सभी शूद्रादि मनुष्य कठोर बोलने वाले की प्रवंचना करते ही है अतः शूद्र और ब्राह्मण में कोई भेद किसी प्रकार सम्भव नहीं है।१५। शाप और अनुग्रह (क्षमा) करने की शक्ति भी (शूद्रादि में) भिन्न नहीं देखी गई है एवं उसी भाँति चोर, विश्वास घातक, राजपुत्र अथवा किसी दुर्जन द्वारा उपहत होने पर मनुष्यों में कोई भेद दिखायी नहीं देता है। शूद्र जिस प्रकार अपने दुःखों का नाश एवं अपने आत्मीय जीवों की रक्षा नहीं कर सकता है, ब्राह्मण भी उसे करने में वैसे हो असमर्थ है।१६-१७ कलियुग के रहते इस देश में ब्राह्मणों में यह बात (कुकर्म करने वाला कोई) न हो तभी अच्छा है चाहे दूसरे समय में तथा दूसरे देश में श्रेष्ठ ब्राह्मणों में भले ही कोई हो।१८। शाप और अनुग्रह का सामर्थ्य और अध्यात्म विचार करना ही कुछ लोग (ब्राह्मण होने का) लक्षण मानते हैं।१९। किन्तु सांसारिक विषयों में अनुरक्त एवं मोह रूपी अंधकार में पड़े रहने के नाते (सभी) लोग नरक के कुंडो में विवश होकर अग्नि में पतिंगे की भाँति गिरते ही रहते हैं।२०। यद्यपि वेद के प्रभाव वश जाति धर्म की विशेषता कुछ अवश्य है जो वह ब्राह्मणों में (वेदाध्ययन करने के नाते) तो प्रसिद्ध है और शूद्रों में कुछ भी नहीं।२१। संस्कार या उसकी सामग्री अथवा कारण जो दूसरे लोगों में साधारण-सा होता है वही शूद्रों में विशेषता उत्पन्न करता है।२२।

---

१. विचक्षणतया। २. केनान्यस्य विहन्यते।

विप्राणां पञ्चधा भेदः कल्पनीयस्तु पण्डितैः। न जातिजस्त्रयीजो वा विशेषो युक्तिबाधकात्॥
क्रमाक्रमक्रियाः सन्ति न सनातनवस्तुनः ॥२३

नित्यो न हेतुर्विगतक्रियत्वाद्धेतुर्भवेद्वेदविशेषतः सः।
स तत्समस्तत्प्रतिसन्निधानात्कालात्ययेऽक्षित्वमयुक्तमेव ॥२४

स्वान्तः शरीरवृत्तिस्थः श्रुतियोगादुदेति यः। सोऽनन्यवेदविज्ञातस्वभावोऽन्यैर्न गम्यते ।२५
विशिष्टाधीतिधर्मत्वे कृत्रिमा ब्रह्मतङ्गतिः। यस्यास्यतिशयस्तस्य नान्यैः नाश्रयते यदि ॥२६

दृश्यस्वभावं किमभीष्टमेतद्ब्राह्मण्यमाहोस्विददृष्टरूपम्।
सर्वैः प्रतीयेत हि दृश्यरूपं ततोऽन्यथावङ्गतिरेव न स्यात् ॥२७
सामग्र्यभावात्परमं विशेषं भूदेवगात्रस्थमभूमिदेवाः।
स्मरन्ति तेनात्मनि पुण्यपापं यथा तथेत्येतदयुक्तमुक्तम्॥२८
सामग्र्यनुष्ठानगुणैः समग्राः शूद्रा यतः सन्ति समा द्विजानाम्।
तस्माद्विशेषो द्विजशूद्रनाम्नोर्नाध्यात्मिको बाह्यनिमित्तको वा ॥२९
संस्कारतः सोऽतिशयो यदि स्यात्सर्वस्य पुंसोऽस्त्यतिसंस्कृतस्य।
यः संस्कृतो विप्रगणप्रधानो व्यासादिकैस्तेन न तस्य साम्यम्[1] ॥३०

पंडितों ने पाँच प्रकार के ब्राह्मणों के भेद की कल्पना की है पर वह भेद युक्तियुक्त न होने के कारण न जाति द्वारा और न वेद द्वारा ही संभव हो सकता है। क्योंकि सनातन नित्य या अविनाशी वस्तु में क्रमशः यों ही कोई भी क्रिया उत्पन्न ही नहीं होती है।२३। इसीलिए अनश्वर (वस्तु) में कोई क्रिया संभव न होने के नाते वह किसी कारण नहीं हो सकता है, यदि कहीं (कारण) होता भी है तो वेदों की विशेषता वश। वह उसके सन्निहित होने (वेदाध्ययन) से उसके समान हो सकता है किन्तु अवसर चूक जाने पर केवल नाश मात्र (शरीर त्याग और जल ग्रहण) करना ही हाथ आता है जो सर्वथा अनुचित बताया गया है।२४। अपने अंतःकरण में रहने वाले उस संस्कार को जिसका उदय वेदाध्ययन से कहा गया है वेदाध्ययन न करने वाले कोई भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।२५। क्योंकि वेदाध्ययन के करने की विशेषता प्राप्त करना ही ब्राह्मण के लक्षण हैं इसलिए वेदाध्ययन न करने वाले ब्राह्मण नहीं कहे जा सकते हैं।२६। इसी प्रकार दृश्यरूप (प्राकृतिक रूप) अदृष्टरूप इन दोनों में ब्राह्मण होने में कौन कारण है। समस्त व्यक्तियों को दृश्य-रूप (दिखायी देने वाले) की ही प्रयाति होती है और उससे अन्यथा (अदृष्टरूप) की गति ही न होगी। सामग्री के अभाव से पृथ्वी पर न रहने वाले देवता अपनी आत्मा में ही पृथ्वी, देवता एवं शरीर में स्थित अत्यन्त विशिष्ट पुण्य एवं पाप का स्मरण करते हैं। यह निःसन्दिग्ध उक्ति है। सामग्रीपूर्वक अनुष्ठान आदि गुणों से शूद्र भी ब्राह्मणों के समान ही है अतः शूद्र और ब्राह्मणों में आध्यात्मिक भेद नहीं है। किन्तु संस्कारी एवं तेजस्वी शूद्र को देखकर स्मरण की चर्चा नहीं होती है उसी भाँति यह भी कारण सर्वथा अनुपयुक्त ही कहा जायेगा। या बाहरी भेद कारण नहीं हो सकता है।२७-२९। यदि संस्कार ही ब्राह्मण होने में मुख्य है, तो जिसके सभी संस्कार हुए हैं वे ब्राह्मण हैं पर संस्कार हीन व्यासादिक से उनकी तुलना कैसे हो सकती है। इसलिए जाति के

---

१. भाव्यम्। २. विद्यते।

हेतुत्वं घटते[1] नैषां जात्यादीनामसम्भवात् । जातेरकृतकत्वाच्च अधीते न विशेषतः ॥३१
संस्कारातिशयाभावादन्तरस्यागते परैः । भौतिकत्वाच्छरीरस्य समस्तानामसंहतैः ॥३२
किं चान्यनास्तिकम्लेच्छ यवनादिजनेष्वलम्[2] ॥३३
वेदोदितबहिर्दुष्टचरितेषु दुरात्मसु । धर्मादतिशयो[3] दृष्टः क्रूरसाहसिकादिषु ॥
तस्माद्विप्रेषु जात्यादिसामग्रीप्रभवो न सः ॥३४
तस्मान्न च विभेदोऽस्ति न बहिर्नान्तरात्मनि । सुखादौ न चैश्वर्ये नाज्ञायां नाभयेष्वपि ॥३५
न वीर्ये नाकृतौ नाक्षे न व्यापारे न चायुषि । नाङ्गे पुष्टे न दौर्बल्ये न स्थैर्ये नापि चापले ॥३६
न प्रज्ञायां न वैराग्ये न धर्मे न पराक्रमे । न त्रिवर्गे न नैपुण्ये न रूपादौ न भेषजे ॥३७
न स्त्रीगर्भे न गमने न देहमलसम्प्लवे । नास्थिरन्ध्रे न च प्रेम्णि न प्रमाणेषु लोमसु ॥३८
शूद्रब्राह्मण्योर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः । नेक्ष्यते सर्वधर्मेषु संहतैस्त्रिदशैरपि ॥३९
उक्तमात्रा विसम्भूतिर्विचारक्रमकारिभिः । वृद्धवृन्दारकाधीशैरप्रघृष्यमिदं वचः ॥४०

न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुभ्रा न क्षत्रियाः किंशुकपुष्पवर्णाः ।
न चेह वैश्या हरितालतुल्याः शूद्रा न चाङ्गारसमानवर्णाः ॥४१

समर्थन में कोई भी कारण संभव नहीं है। यद्यपि जाति नित्य मानी गई है पर उसके अध्ययन में कोई महत्त्वपूर्ण विशेषता नहीं देखी जाती है और वह जो विशेषता होती है वह वेदारम्भादि संस्कार से भी संभव नहीं है। शरीर भी संस्कार की महत्ता के प्रभाव एवं भौतिक (पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश से बनी) होने के नाते ब्राह्मण होने में कारण नहीं है क्योंकि उसके सभी तत्त्व पृथक्-पृथक् रहने वाले है (कुछ समय के लिए एकत्र रहते हैं) और भी विशेषता यह है कि नास्तिक, म्लेच्छ एवं यवन आदि की भी शरीर सभी के समान ही होती है।३०-३३। इसी प्रकार दुश्चरित्र, दुष्ट, क्रूर, एवं घातक मनुष्यों में भी वेद में कही गयी धार्मिक-विशेषता समान ही देखी जाती है, अतः ब्राह्मण आदि जाति होने में संस्कार आदि कारण नहीं हो सकते।३४। इसलिए (ब्राह्मण शूद्र के) बाहरी और भीतरी तथा सुख-दुःख ऐश्वर्य आज्ञा देने, निर्भय, वीर्य, शरीर, जुआ खेलने, व्यापार आय, शरीर की पुष्टता, दुर्बलता, स्थिर, चंचलता, बुद्धि, वैराग्य, धर्म, पराक्रम, त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम), चतुरता, रूप-रंग, औषधि, स्त्रियों के गर्भ, मैथुन, शरीर के मल, शरीर की हड्डी, शरीर में छिद्र, प्रेम, लम्बाई, चौड़ाई और रोम में कोई भेद नहीं है अतः सभी देवता मिलकर अतिपरिश्रम के साथ शूद्र और ब्राह्मण में उपरोक्त अंगो द्वारा कोई भी भेद निकालना चाहें तो किसी भी तरह संभव नहीं हो सकता है।३५-३९। इस प्रकार इस विचार क्रम में जो बातें निश्चित कह दी गई हैं उन्हें वृद्ध अनुभवी या इन्द्रादि देव भी अनिश्चित नहीं कर सकते हैं।४०। क्योंकि ब्राह्मण चन्द्रमा की किरणों की भाँति धवल, क्षत्रिय किंशुक पुष्प के समान रुद्रवर्ण वैश्य हरिताल के समान पीत वर्ण और शूद्र आधी जली हुई लकड़ी (कोयले) के समान काले ही नहीं होते हैं।४१। अतः पैर से

---

१. विद्यते। २. अपि। ३. योऽस्मात्।

पादप्रचारैस्तनुवर्णकेशैः सुखेन दुःखेन च शोणितेन।
त्वङ्मांसमेदोस्थिरसैः[1] समानाश्चतुष्प्रभेदा हि कथं भवन्ति।।४२
वर्णप्रमाणाकृतिगर्भवासवाग्बुद्धिकर्मेन्द्रियजीवितेषु।
बलत्रिवर्गामयभेषजेषु न विद्यते जातिकृतो विशेषः।।४३
स एक एवात्र पतिः प्रजानां कथं पुनर्जातिकृतः प्रभेदः।
प्रमाणदृष्टान्तनयप्रवादैः परीक्ष्यमाणो विघटत्वमेति।।४४
चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका।
एवं प्रजानां हि पितैक एवं पित्रैकभावान्न च जातिभेदः।।४५
फलान्यथोदुम्बरवृक्षजातेर्यथाग्रमध्यान्तभवानि यानि।
वर्णाकृतिस्पर्शरसैः समानि तथैकतो जातिरतिप्रचिन्त्या।।४६
ये कौशिकाः काश्यपगौतमाश्च कौंडिन्यमाण्डव्यवशिष्ठगोत्राः।
आत्रेयकौत्साङ्गिरसः सगर्गा मौद्गल्यकात्यायनभार्गवाश्च।।४७
गोत्राणि नानाविधजातयश्च भ्रातृस्नुषामैथुनपुत्रभावाः।
वैवाहिकं कर्म न वर्णभेदः सर्वाणि शिल्पानि भवन्ति तेषाम्।।४८
ये चान्ये[2] पण्डिताः प्राहुर्देवब्राह्मणतां नराः। तेषां दुर्दृष्टितिमिरमपनीयानुकम्प्य च।।४९
न्यायाञ्जनौषधैर्दिव्यैः परिणामसुखावहैः। उपनीतैः प्रयत्नेन सुदृष्टिं संविदध्महे।।५०

चलने, शरीर के रंग, केश, दुःख-सुख, रक्त, चमड़े, मांस, मेदा हड्डी और रस में समानता होने के कारण (मनुष्यों में) चार प्रकार (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) का भेद कैसे हो सकता है।४२। जब कि रंग, लम्बाई-चौड़ाई, शरीर-रचना, गर्भ में निवास, वाणी, बुद्धि, कर्मेन्द्रिय (वाक् हाथ, पैर, गुदा एवं मूत्रेन्द्रिय), जीवन, बल, त्रिवर्ग, रोग, और औषध में जाति द्वारा कोई विशेषता नहीं दिखाई देती है।४३। इसलिए वही एक ही (आत्मा) तो प्रजाओं का पति भी है भला उसमें जाति द्वारा भेद कैसे संभव हो सकता है। प्रमाण, दृष्टांत या नीति के द्वारा किसी भी प्रकार से उसे कसौटी पर लाने से सफलता नहीं मिल सकती है।४४। जिस प्रकार किसी पिता के चार लड़के रहते हैं किन्तु उनकी सुनिश्चित एक ही जाति रहती है, इसी प्रकार सभी को उत्पन्न करने वाला पिता एकही है, उसके एक होने से जाति भेद कहाँ हो सकता है।४५। गूलर के फल में जिस प्रकार अग्र भाग, मध्य और अंत में रूप-रंग, रचना, स्पर्श एवं रस समान होता है, उसी प्रकार एक से उत्पन्न इन मनुष्यों में जाति कल्पना करना अनुचित है।४६। इस प्रकार कौशिक, काश्यप, गौतम, कौंडिल्य, मांडव्य, वशिष्ठ, क्षत्रिय, कौत्स, आंगिरस, गर्ग, मौद्गल्य, कात्यायन, और भार्गव गोत्र वालों के भाई पुत्र-वधू (पतोहू) मैथुन पुत्र, जन्म, विवाह, रूप-रंग तथा सभी शिल्प कलाएँ भी समान ही हैं।४७-४८ यद्यपि कुछ पंडित गण देह को ब्राह्मण मानते हैं तथा उनके तिमिराच्छन्न नेत्र के लिए न्याय रूपी अंजन से जो उत्तम औषध के संमिश्रण से बनाया गया है और परिणाम में (लगाने पर) सुख प्रदान करता है उसी को देने की कृपा करके उनकी आँख अच्छी कर रहा हूँ ऐसा बोलते हैं यह गलत है।४९-५०। देह क्योंकि

---

१. त्वङ्मांसकेशास्थिरसैः। २. ये चार्यम्।

मूर्तिमत्त्वाच्च नाशित्वं नाशित्वाच्छेषभूतवत्[1] । देहाधारनिविष्टानां ब्राह्मण्यं न प्रकल्प्यते ।।५१
एकैकोवयवस्तेषां न ब्राह्मण्यं समश्नुते । न चानेकसमूहेऽपि[2] सर्वयातिप्रसङ्गतः ।।५२
पृथिव्युदकवाय्वग्निपरिणामविशेषतः । देहतः सर्वभूतानां ब्राह्मणत्वप्रसङ्गतः ।।५३
देहस्य ब्राह्मणत्वं यैरतत्त्वज्ञैः प्रकल्प्यते । संस्कर्तॄणां शरीरस्य तेषां न ब्रह्मता भवेत् ।।५४
मृग्यमाणे प्रयत्नेन देहे तन्नोपलभ्यते । तस्मान्न देहे ब्राह्मण्यं नापि देहात्मकं भवेत् ।।५५
वर्णापसदचांडालश्वादादीनां[3] प्रसज्यते । यदि देहस्य विप्रत्वं भवद्भिरुपगम्यते ।।५६
देहशक्तिगुणैः क्षीणैः कायभस्मादिरूपवत् । तस्माद्देहात्मकेनैतद्ब्राह्मण्यं नापि कर्मजम् ।।५७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे
ब्राह्मण्यविवेकवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।४१।

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्राह्मणसंस्कारविवेकवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अपरैश्च सदाचारयोगयुक्तैर्मनीषिभिः । यदकारि महासत्त्वैः सुभाषितमिदं शृणु ।।१

मूर्तिमान होने के नाते नश्वर होती है और नश्वर होने के कारण यह देह भूत (पृथिव्यादि) की भाँति नष्ट हो जाती है इसलिए देह को ब्राह्मण कभी नहीं कहा जा सकता है ।५१। इसी प्रकार देह के एक-एक अंग या समस्त अंग (देह) को ब्राह्मण कहना उचित नहीं है ।५२। क्योंकि सर्वथा अति प्रसंग हो जायगा और पृथिवी आदि पाँच भूतों के परिणाम रूप देह होने के कारण सभी भूत ब्राह्मण कहे जायेंगे ।५३। अज्ञानियों ने देह को ब्राह्मण होना स्वीकार किया है संस्कार करने वाले की देह में ब्राह्मणत्व नहीं हो सकता है ।५४। क्योंकि प्रयत्न पूर्वक खोजने पर भी देह में ब्राह्मणत्व नहीं मिलता है इसलिए देह ब्राह्मण नहीं हो सकती और ब्राह्मणत्व देह का स्वरूप भी नहीं है ।५५। उस अवस्था में तो अधम, नीच, चांडाल एवं कुत्ता खाने वाले आदि की शरीर भी ब्राह्मण हो जायगी । यदि देह ही को आप लोग ब्राह्मण मानते रहेंगे ।५६। क्योंकि देह की शक्ति और गुण नष्ट हो जाता है और देह (किसी समय) राख हो जाती है अतः ब्राह्मणत्व न देह की वस्तु है और न देह से उत्पन्न ही होती है।५७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में ब्राह्मण विवेक वर्णन नामक
एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४१।

अध्याय ४२

ब्राह्मण संस्कार विवेक का वर्णन

ब्रह्मा बोले—ऐसे महात्मा लोग जो सदाचारी, योगी एवं धुरन्धर विद्वान हैं, जो कुछ किये और

---

१. वेदाहारविनष्टान्मम् । ६. समस्तोऽपि हि देहोऽयं सर्वल्यातिप्रसङ्गतः । ३. वर्णापसद-चाण्डालनिषादानां प्रसज्यते ।

बहुवनस्पतिशङ्खपिपीलिकाभ्रमरवारणजातिमुदाहरन् ।
गतिषु कर्ममितो नटवत्सदा भ्रमति जन्तुरलब्धसुदर्शनः ॥२
रूपैश्वर्यज्ञानकुलैर्विभवैर्वामितो भूत्वा धर्मपथं चेद्विजहासि ।
न वक्ष्ये व्रजन्भुवनानि त्वमटिष्यंस्तस्मादभिभस्त्रीभूते मद आत्मनः ॥३
जातिकुलरूपवयोवर्णानेकश्रुतमदान्धाः क्लीबाः । परत्र चेह च हितमप्यर्थं न पश्यन्ति ॥४
ज्ञात्वा भवपरिवर्ते जातीनां कोटिशतसहस्रेषु । हीनोत्तममध्यत्वं को जातिमदं बुधः कुर्यात् ॥५
नैकाञ्जातिविशेषानिन्द्रियनिर्वृत्तिपूर्वकान्सर्वान् । कर्मवशाद्गच्छत्यत्र कस्यैका शाश्वती जातिः ॥६
विद्वत्सदसि योऽप्याह संस्काराद्ब्राह्मणो भवन् । न्यायज्ञैः[1] स निराकार्यो वाक्यैर्न्यायानुसारिभिः ॥७
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । जातकर्म नामकर्म तथान्नप्राशनं च वै ॥८
चूडोपनयनं चास्य व्रतादेशस्तथैव च । समावर्तनमप्यन्यत्पाणिग्रहणमेव च ॥९
इत्येवनादिसंस्कारविधानैर्येऽतिसंस्कृताः । त एव ब्राह्मणा येषां नैरन्तर्येण[2] कामनाः ॥१०
यस्माद्वै ब्राह्मणा जाता ब्राह्मणैः कृतसंस्कृतैः । नायुः शक्तिर्हि कान्त्यादिविशेषो विद्यते स्फुटः ॥११
तौ वा ब्राह्मणगात्रोत्थौ संस्कृतासंस्कृतौ नरौ । इष्टानिष्टाप्त्यनाप्तिभ्यां न भिद्येते परस्परम् ॥१२

कहते हैं उनकी सुन्दर वाणियों को मैं बता रहा हूँ । सुनो ! उनका कहना है कि वह जीव, जिसे कभी किसी अच्छे (देवता तीर्थ आदि) का दर्शन नहीं प्राप्त है, भाँति-भाँति के वनस्पति, शंख, चींटी, भौंरे, हाथी आदि योनियों में कर्म वश नर की भाँति भ्रमण किया करता है ।१-२। इसलिए रूप-रंग-ऐश्वर्य, ज्ञान और कुल एवं विभव से सुरक्षित होकर धार्मिक पथ का अनुसरण यदि तुम नहीं करते हो तो मैं नहीं कह सकता कि तुम्हें इस मद के नष्ट हो जाने पर चलते-फिरते किन-किन (नीच) लोकों में नहीं घूमना पड़ेगा ।३। क्योंकि जाति, कुल, रूप-रंग अवस्था एवं भाँति-भाँति की विधाओं के मद से अन्धे होकर हिंजड़े की भाँति लोग इस लोक और परलोक की अपने हित की बातों को ध्यान में नहीं लाते हैं ।४। इस प्रकार संसार एक महान गड्ढा है, जिसके भँवर में सैकड़ों, हजारों एवं करोड़ों जातियाँ पड़ी डूब रही हैं । ऐसा जानते हुए कौन बुद्धिमान् जाति का अभिमान कर सकता है ।५। ऐसे एक नहीं प्रत्युत अनेकों मनुष्य हैं जो अच्छे कुल में उत्पन्न संतुष्ट इन्द्रिय कहे जाते हैं वे कर्म वश यहाँ संसार में आया-जाया करते हैं, इसलिए किसकी एक ही जाति सर्वदा स्थिर रह सकती है ।६। विद्वन्मंडली में जिसमें भी (केवल) संस्कार से ब्राह्मण होना बताया है न्याय का अनुसरण करने वाली अपनी नैतिक बातों से उसकी बातों का खण्डन कर दें ।७। क्योंकि यदि गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन (अन्न खिलाना), चूडा करण (मुंडन), यज्ञोपवीत (जनेऊ), वेदारंभ, समावर्तन और विवाह आदि संस्कार विधि पूर्वक जिसके हो चुके हैं वे ही ब्राह्मण हैं तो संस्कार हीन एवं नीच कर्म करने वाले ब्राह्मण कैसे कहे जा सकते हैं ।८-१०। इसी प्रकार संस्कार किये गये ब्राह्मणों की संतान तथा संस्कारहीन (ब्राह्मणों) संतान की आयु, शक्ति और कांति आदि में कोई विशेषता सामने नहीं दिखाई देती है ।११। जिस प्रकार ब्राह्मण के शरीर से उत्पन्न उन दोनों पुत्रों के जिसमें एक का संस्कार हुआ है और दूसरा संस्कार हीन है, सुख-दुःख तथा (किसी अच्छी

---

१. न्यायज्ञैः सत्क्रियाः कार्याः । २. नेह ते हतकाधमाः ।

ज्ञानाध्ययनमीमांसानियमेन्द्रियनिग्रहैः । विना संस्कारयोगेऽपि पुंसः शूद्रान्न भिन्नता ॥१३
संस्कारः क्रियमाणश्च न शूद्रे च प्रवर्तते । संस्कृताङ्गश्च[1] पापेभ्यो न पश्यति निवर्तते[2] ॥१४
विलासिनीभुजंगादिजनवन्मदविह्वलाः । व्यामुह्यन्ति सदाचाराद्ब्राह्मणत्वात्पतन्ति[3] च ॥१५
संस्कृतोऽपि दुराचारो नरकं याति मानवः । निःसंस्कारः सदाचारो भवेद्विप्रोत्तमः सदा ॥१६
मन्त्रपूतात्मसंस्कारयुक्तोऽपि प्लवते न तु । ब्राह्मण्यादविकल्पं स पश्चाद्दुश्चरितो नरः ॥१७
सामर्थ्यात्पतनं तस्माद्ब्राह्मण्यान्मुच्यते ध्रुवम् । दुरनुष्ठानसक्तानां पुंसां पुरुषपुङ्गवैः ॥१८
किं क्वचिद्दृष्टमेवैतत्किं वा स्पर्धाविदत्ययम् । तुल्यमुत्सहसे कर्तुमप्यदृष्टं तदा वद ॥१९
आचारमनुष्ठिन्तो व्यासादिमुनिसत्तमाः । गर्भाधानादिसंस्कारकलापरहिताः स्फुटम् ॥२०
विप्रोत्तमाः श्रियं प्राप्ताः सर्वलोकनमस्कृताः । बहवः कथ्यमाना ये कतिचित्तान्निबोधत ॥२१
जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः । शुक्याः शुकः कणादाख्यस्तथोलूक्याः सुतोऽभवत् ॥२२
मृगीजोथर्षभृङ्गोपि वशिष्ठो गणिकात्मजः । नन्दपालो[4] मुनिश्रेष्ठो नाविकापत्यमुच्यते[5] ॥२३
माण्डव्यो मुनिराजस्तु मण्डूकीगर्भसम्भवः । बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्ववद्द्विजाः ॥२४

वस्तु के) मिलने न मिलने में कोई भेद नहीं होता है ।१२। इसी प्रकार संस्कार हीन पुरुष के ज्ञान अध्ययन, मीमांसा (विचार), नियम और इंद्रिय संयम में शूद्र की उन बातों से कोई विशेषता नहीं होती ।१३। यद्यपि शूद्रों का संस्कार नहीं होता है तथापि संस्कार किये हुए (किसी ऊँची जाति) के शरीर के कोई भी अंग पाप-युक्त नहीं दिखाई देते हैं ।१४। क्योंकि बिलासी और दुष्ट आदि लोगों की भाँति मदान्ध होकर (संस्कारी) पुरुष मोह में पड़कर सदाचार एवं ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाते हैं और संस्कार किये जाने पर भी दुराचारी होने के नाते नरक में जाते हैं । किन्तु संस्कार हीन पुरुष, सदाचारी एवं उत्तम (श्रेष्ठ) ब्राह्मण हो जाते हैं ।१५-१६। इसलिए मंत्रों द्वारा पवित्र एवं संस्कार युक्त पुरुष भी (माया मोह में) डूबता ही है और ब्राह्मणत्व हीन होकर सर्वदा के लिए दुराचारी भी हो जाता है ।१७। क्योंकि अनुचित कामों में लीन रहने वाले पुरुष अपने ही सामर्थ्य से अन्धे होकर पतित होते हैं और ब्राह्मणत्व से सदैव के लिए निश्चित पृथक् भी हो जाते हैं ।१८। क्या इस प्रकार मनुष्य में जाति भेद न होते हुए भी वहीं आप को भेद दृष्टि गोचर हुआ या केवल द्वेष के कारण ही ऐसी बातें कह रहें हैं यदि दृष्टादृष्ट में कोई विशेषता नहीं है तो आपको यही कहना उचित होगा कि मैंने भेद कहीं नहीं देखा क्योंकि आचार करने वाले व्यास आदि महर्षियों में श्रेष्ठ हो गये हैं, उनके गर्भाधान आदि कोई संस्कार नहीं हुए थे यह बिल्कुल स्पष्ट है ।१९-२०। महर्षियों में अधिकांश ऐसे लोग भी हैं जो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ भी संपन्न और सभी लोकों में वन्दनीय हो गये हैं उनमें से कुछ को कह रहा हूँ, सुनो ।२१। व्यास कैवर्ती (केवट की स्त्री) से, पराशर चांडालिनी से, शुक तोते (पक्षी-स्त्री) से, कणाद उल्लू (पक्षी-स्त्री) से, शृँगी ऋषि मृगी से, वशिष्ठ वेश्या से, मंद (मेद) पाल लावा पक्षी से एवं मांडव्य मेढकी से उत्पन्न हुए हैं और ऐसे बहुतों ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया जो पूर्व के समान (उच्च कोटि के) ब्राह्मण हुए हैं ।२२-२४।

---

१. संस्कृताङ्गस्य पापेभ्यो लावण्यं विनिवर्तते । २. संस्कारेभ्यः । ३. ब्राह्मण्यं हापयन्ति च । ४. मेदपालः । ५. लाविकागर्भसंभवः ।

यच्चैतच्चारुचरितैरर्घ्यमुच्चरितं वचः । तद्विचार्याचरन्युच्चैराचारोपचितद्युतिः ।।२५
हरिणीगर्भसम्भूत ऋष्यशृङ्गो महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ।।२६
श्वपाकीगर्भसम्भूतः पिता व्यासस्य पार्थिव । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ।।२७
उलूकीगर्भसम्भूतः कणादाख्यो महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ।।२८
गणिकागर्भसम्भूतो वशिष्ठश्च महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ।।२९
नाविकागर्भसम्भूतो मन्दपालो महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ।।३०
वेदतन्त्रजसंस्कारकलापनिपुणैरपि । विद्यातपोधनबलादुत्कृष्टं लभ्यते फलम् ।३१
लब्धसंस्कारदेहाश्च महापातकिनो नराः । यस्मान्निवर्तते ब्रह्म तस्मात्साङ्केतिकं विदुः ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
षष्ठीकल्पे ब्राह्मणसंस्कारविवेकवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।४२।

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

वर्णव्यवस्थावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

किं चान्यदपरं यूयं वेदमन्त्रविदो जनाः । प्रष्टव्याः कस्य संस्कारे विशेषमुपगच्छत ।।१

इसलिए सुन्दर चरित्रों के नायक इन लोगों ने जो कुछ आदरणीय वचन कहा है उसके विचार पूर्वक तदनुकूल कार्य करने वाले तेजस्वी होते हैं ।२५। क्योंकि हरिणी के गर्भ से उत्पन्न होकर महामुनि शृङ्गी ऋषि ने तपोबल द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त किया अतः ब्राह्मण होने में संस्कार ही मुख्य हैं। राजन् ! इसी प्रकार व्यास के पिता (पराशर) चांडाली के गर्भ से कणाद उलूकी के गर्भ से, महामुनि वशिष्ठ वेश्या के गर्भ से, और महर्षि मंदपाल लावा के गर्भ से जन्म ग्रहण कर तपोबल द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण हुए हैं इसलिए संस्कार मुख्य कारण हैं ।२६-३०। वैदिक एवं तांत्रिक संस्कार से निपुण भी लोग विद्या तथा तप के द्वारा श्रेष्ठ हो सकते हैं । किन्तु (केवल) संस्कार मात्र से नहीं क्योंकि कुकर्मवश मनुष्य महापापी भी हो जाता है और उस महापातक द्वारा ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है इसलिए ऐसी ब्राह्मणत्द जाति को केवल सांकेतिक (काल्पनिक) ही मानना चाहिए ।३१-३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में ब्राह्मण संस्कार और विवेक वर्णन
नामक बयालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४२।

अध्याय ४३

वर्णव्यवस्था वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—संस्कार द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्ति का विचार भी उन लोगों से भी जो वैदिक मंत्रों के निपुण विद्वान् हैं, पूछना चाहिए कि किसके संस्कार करने पर विशेषता (ब्राह्मणत्व) प्राप्त होती है ।१।

किं देहस्योत येनासौ निसर्गमलिनः स्थितः । शुक्रशोणितसम्भूतः शमलोद्भवकीटवत् ।।२
निषेकादिश्मशानान्तैर्विविधैर्विधिविस्तरैः । देहिनोऽतिशयं केचिदुपगच्छन्ति मानवाः ।।३
तेषां गूढमनः कायवाग्विदुष्टैः सुचेष्टितैः । असंयतमनुष्याणां पक्षोऽयं दूष्यते मया ।।४
वैदिकाखिलसंस्कारसारभूता द्विजातयः । सर्वकार्यकरान्सर्वान्वृजलानतिशेरते ।।५
चण्डकर्मा विकर्मस्थो ब्रह्महा गुरुतल्पगः । स्तेनो गोघ्नः सुरापाणः परस्त्रीरमणप्रियः ।।६
मिथ्यावादी मदोन्मत्तो नास्तिको वेदनिन्दकः । ग्रामयाजकनिर्ग्रन्थौ बहुदोषो दुरासदः ।।७
नि[1]षिद्धाचारसंसेवी चोरश्चाटो मदोद्धतः । धूर्तो नटः शठः पापी सर्वाशी सर्वविक्रयी ।।८
वाङ्मनः कायजैर्दुष्टैर्हता ये ब्राह्मणाधमाः । ते न शुद्धिं व्रजन्तीह अपि यज्ञशतैरपि[2] ।।९
शूद्राणां यान्यनिष्टानि सम्पद्यन्ते स्वभावतः । विप्राणामपि तान्येव निर्विघ्नानि भवन्ति न ।।१०
तस्मान्मन्त्रोऽग्निहोत्रं वा वेद्यां पशुवधोऽपि वा । हेतवो न हि विप्रत्वे शूद्रैः शक्या क्रिया यथा ।।११
ये चापि कर्मबन्धेन बद्धाः सीदन्ति जन्तवः । संसारानलसन्तापविक्लवीकृतमानसाः ।।१२
ते जन्ममरणाटव्यां सुखामृतपिपासवः । कृपणस्याश्रयेऽटन्तो लभन्ते नैव निर्वृतिम् ।।१३

क्या शरीर के जो स्वभावतः मल पूर्ण एवं विष्ठा से उत्पन्न कीड़े की भाँति शुक्र शोणित से बनी है ।२। या गर्भाधान आदि से लेकर श्मशान तक भाँति-भाँति के संस्कार से पूर्ण होने के नाते जीव के । अर्थात् कुछ लोगों का मत है कि संस्कार करने पर जीव द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है ।३। उन संयम न करने वाले मनुष्यों के मन, शरीर, और वाणियों में दुष्टता भरी रहती है, उनकी चेष्टाएँ भी दोष पूर्ण ही हुआ करती हैं । इसलिए इस कथन के द्वारा ही मैं उनके जीव वाले पक्ष का खण्डन करता हूँ ।४। द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) लोग समस्त वैदिक संस्कार के सार रूप हैं और इसीलिए वे (छोटे-बड़े) सभी कार्य करने वाले शूद्रों से श्रेष्ठ भी माने जाते हैं ।५। (किन्तु संस्कार सम्पन्न होने पर भी) उन उग्र कर्म तथा बुरा कर्म करने वाले ब्राह्मण हत्या एवं गुरुपत्नी के साथ मैथुन करने वाले, चोरी करने वाले, गोहत्या करने वाले, शराबी, व्यभिचारी, मिथ्या बोलने वाले, मदान्ध, वेद नास्तिक, वेद की निन्दा करने वाले, गाँव गाँव में घूम कर यज्ञ कराने वाले निर्ग्रन्थ (बौद्ध), अनके भाँति के दोषी, बड़ी कठिनाई से पकड़े जाने वाले निषिद्ध आचरण करने वाले, चोर विश्वासघात द्वारा धन चुराने वाले, मतवाले, धूर्त, नट, शठ, पापी, सभी कुछ खाने वाले सभी कुछ बेंचने वाले, मन, वाणी और शरीर से दुष्टता करने वाले उन ब्राह्मणों की शुद्धि सैकड़ों यज्ञ करने पर भी नहीं हो सकती है ।६-९। शूद्रों के स्वभावतः जो कार्य महान् विघ्नों द्वारा नष्ट होते हैं ब्राह्मणों के भी वे ही (कार्य) निर्विघ्न समाप्त नहीं हो जाते हैं ।१०। इसलिए मंत्र, अग्नि, होम और वेदी (यज्ञ) पर पशुबलि भी ब्राह्मण होने में उसी भाँति कारण नहीं हो सकती है जिस प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार सभी कार्य करने पर भी शूद्र शूद्र ही रहता है ।११। जो संसार रूपी अग्नि की ज्वाला से व्याकुल चित्त वाले जीव कर्मरूपी बंधन में पड़कर (भाँति-भाँति से) दुःख का अनुभव करते हैं ।१२। वे सुख रूपी अमृत का पान करने के लिए जल भरण रूपी संसार जंगल में सदैव घूमते हुए भी कृपण के दरवाजे से निराश होने की भाँति कभी भी निर्वृत्ति (सुख) प्राप्त नहीं करते है ।१३। इसलिए

---

१. निषिद्धाचारसंवीतो यो रथ्यादौ मदोद्धतः । २. वर्षशतैः ।

चतुर्वर्णा नरा ये तु तत्तद्वीर्ये नराधमाः । तेषां सर्वात्मना सर्वैर्धर्मैः साङ्कर्यमीक्ष्यते ॥१४
शूद्रविप्रादयो योनौ न भिद्यन्ते परस्परम् । सर्वधर्मसमानत्वात्संस्कारादि निरर्थकम् ॥१५
तदनुष्ठानवैधर्म्यवियोगमरणादिभिः । असेव्यसेवनैरन्यैः शूद्रविप्रादयः समाः ॥१६
बुद्ध्या शक्त्या स्वभावेन धर्मैर्जात्या[1] दिभिः श्रिया । कर्तव्यैः पुण्यपापाभ्यां शनैः[2] सर्वशरीरगैः ॥१७
बन्धनै रोधनैर्नानायातनोपायपीडनैः । दण्डैरदण्डकरणैर्विषादपरिवेदनैः ॥१८
सात्त्विकैः प्रतिधर्माद्यै राजसैश्चित्रचेष्टितैः । तामसैस्तापमोहाद्यैर्दूयमानाः पुनः पुनः ॥१९
श्लेष्ममारुतपित्ताद्यैर्महाबीभत्सदर्शनैः । क्वचिद्वृत्तिनिवृत्तिभ्याममृतानृतहिताहितैः ॥२०
अलङ्कारोपयोगेन मन्मथाद्यैर्विचेष्टितैः । धनलाभाशयानैकजन्तुसङ्घातपातनैः ॥२१
अर्थसिद्धिर्गतिं याति नानाविधमनोरथैः । आत्मस्नेहपरद्वेषस्वीकृतद्रवरक्षणैः ॥२२
अतिक्षीबत्वसंक्षोभक्षुतक्षामक्षमाभयैः । यातनोपायपैशुन्यशून्यत्वोपशमैस्तथा ॥२३
अप्रशस्तैरनुष्ठानैः समीपस्थापदः समाः । हिंसकाः प्राणिनः पापवितथालापभाषिणः ॥२४
साधूनांभाषकाः स्तेना निर्दयाः पारदारिकाः । नीचकर्मसमाचाराः सर्वभक्षाः पिशाचवत् ॥२५
दुष्कुलीना दुराचारा नृपाणामुपजीविनः । विप्रकार्या विकर्मस्थाधनिनो दुष्टचेतसः ॥२६
लुब्धका हरिणान्हत्वा वासं कृत्वा यथा वने । तथा खादन्ति पिशुना बहवश्च[3] क्रियावशात् ॥२७

चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों) में जितने मनुष्य हैं, वे एक दूसरे के वीर्य से उत्पन्न होने के नाते अधम हो गये हैं और उनमें सभी धार्मिक कार्यों द्वारा वर्ण सांकर्य दिखाई भी देता है ।१४। शूद्र और ब्राह्मण आदि की रचना में कोई भेद नहीं है अतः सभी धर्म समान होने के नाते संस्कार आदि व्यर्थ हैं ।१५। उसी प्रकार अन्यान्य धर्म द्वारा कार्य करना वियोग, जन्म मरण और असेवनीय पदार्थ का सेवन करना तथा अन्य बातों में शूद्रों और ब्राह्मणों में समानता है ।१६। तथा बुद्धि, शक्ति, स्वभाव, धर्म जाति आदि, संपत्ति, समस्त शरीर से किये गये पुण्य पाप, वाले कर्तव्यों के करने, बंधन अवरोधन, भाँति-भाँति के दुःख देने के उपायों से पीड़ित करने दण्ड देने, निषाद, दुःख, सात्विक प्रेम एवं धर्म आदि रजोगुण द्वारा उत्पन्न अनके भाँति की चेष्टाओं के करने आदि तपोगुण द्वारा उत्पन्न संताप तथा मोह में पड़कर बार-बार दुःखी होने के वात, पित्त और कफ द्वारा भयानक दर्शन, कहीं प्रवृत्ति कहीं निवृत्ति कहीं सत्य कहीं असत्य कहीं हित और कहीं अहित, अच्छे-अच्छे अनेक आभूषणों से सज्जित होकर कामवश भाँति-भाँति की चेष्टा करने, धन लोभ के नाते अनेक जीवों के वध करने भाँति-भाँति के मनोरथ सफल करने आत्मीय (अपने) से स्नेह दूसरे से वैर एवं अपने धन की रक्षा करने अत्यन्त मद, मानसिक दुःख, क्षुधा तृषा वाले रोग, दुःखदायी उपाय करने, चुगुली (किसी के घर को सूना करने के लिए उपाय) करने आदि इन अनुचित कार्यों द्वारा जो आपदायें आती हैं वे शूद्रों और ब्राह्मणों के लिए समान ही होती हैं । इसी भाँति हिंसक जीव, पापी एवं झूठ बोलने वाले, कभी अच्छी बात भी बोलने वाले चोर, निर्दयी, व्यभिचारी, नीच कर्म करने वाले , पिशाच की भाँति सभी कुछ खाने वाले, नीच कुल में उत्पन्न,

---

१. धर्मेणेज्यादिभिः । २. मंत्रः। । ३. हरयश्च ।

वेदवादमधीयाना:[1] प्राणिघाताभिशंसिन: । पुष्णन्ति कपटैरर्थान्वेदविक्रयिणोऽधना: ।।२८
मायिनो मत्सरग्रस्ता लुब्धा मुग्धा मदोद्धता: । चाटा: कार्पटिका: क्रूरा: कदर्या: कलहप्रिया: ।।२९
वाचाटदुष्टकुलटा अटन्तो भाटकै: सह । भण्डमान्या भटाटोपै: संक्रुद्धा: सुविलुण्ठका: ।।३०
पर्यटा भाटका जीवा: कण्ठकश्लोकभाषिण: । विक्रीणते ह्यविक्रेयमभक्ष्यद्रव्यभक्षिण: ।।३१
शूद्रकर्मानुतिष्ठन्तो निस्तपास्ते नराधमा: । सेवाध्यापनवाणिज्यकृष्याद्यारम्भलम्भिता: ।।
गृह्णन्त: सम्पदो बाह्याद्द्रव्यधान्यधनादिका: ।।३२
क्रोधादाभ्यन्तरान्दोषांस्तथा दुष्टमनोरथान् । अत्यजन्तो विशिष्टानां श्रेष्ठास्ते कचमर्दिन: ।।३३
नोपदेयानि वस्त्राणि नित्यमाददते द्विजा: । हापयन्ति न हेयानि कथं ते गुरव: क्षितौ ।।३४
दण्डिका डिण्डिका भण्डाश्चण्डाश्चण्डालचेष्टिता । वैतण्डकास्ते निघ्नन्ति यथा सिंहो मृगान्पशून् ।।३५
निर्ग्रन्थं मुनिमालोक्य मन्यमाना: समुन्नतम् । परिभूयादतिष्ठन्ते धिक्तान्निक्तान्सवैरिण: ।।३६
तस्मात्संसारिका: सत्त्वाश्चित्तक्लेशकलङ्किता: । दौ:शील्यदौर्मनस्याद्यैस्तुल्यजातीयबन्धनात् ।।३७

दुराचारी, राजा के सेवक, विरुद्ध कर्म करने वाले, नीच कर्म में सदैव लीन रहने वाले, धनी, दुष्ट, जंगल में रहकर हरिणों का वध कर खाने वाले बहेलिये की भाँति अनेकों प्रकार के काम करने वाले चुगुल खोर भी अनेकों के विनाश करते हैं । वेद के अर्थवाद को पढ़ने वाले जीव वध के लिए सम्मति देने वाले ऐसे नीच पुरुष, जो वेद बेंचने वाले हैं, छल से अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं । उसी प्रकार मायावी मत्सरता से युक्त लोभी, मुग्ध, मदांध, विश्वासघाती, कषाय वस्त्र पहिनने वाले, क्रूर कदर्य, झगड़ालू, अत्यन्त बोलने वाले, दुष्टकुल का साथ करने वाले भौरों के साथ घूमने वाले आडम्बर के नाते भाँड़ों द्वारा सम्मानित क्रोधी चोर ।१७-३०। किराये की सवारी से चारो ओर घूमने वाले, कंठस्थ श्लोकों का हर (सगर्व) उच्चारण करने वाले तथा जो निषिद्ध वस्तु बेंचते हैं एवं अभक्ष्य पदार्थ खाने वाले ऐसे अधम मनुष्य अपने आचरणों द्वारा शूद्रों की भाँति तपोबल से च्युत हो जाते है । इसी भाँति नौकरी, अध्यापक, रोजगार, खेती करते हुए धन, धान्य और संपत्ति जो किसी भी प्रकार की एवं बाहर से प्राप्त होती है इन्हें वे स्वीकार कर लेते हैं । महान् क्रोध के वश में होकर मानसिक दोष एवं दुष्ट भावना को कभी नहीं छोड़ते हैं और नाई का काम करते हुए भी वे अपने को सब से श्रेष्ठ मानते हैं ।३१-३३। इसीलिए जो ब्राह्मण नीच वृत्ति अपना कर नित्य वस्त्रों का आदान प्रदान करते हैं, और हेय (त्याज्य) वस्तु का त्याग नहीं करते हैं वे इस पृथ्वी पर गुरुभावों (ब्राह्मणत्व) से सम्मानित कैसे हो सकते हैं।३४। क्योंकि दंड धारण बाजे, बजाकर याचना, भांड़ों का साथ भीषण काम, चांडाल के समान व्यवहार तथा वैतण्डिक मनुष्य जंगली जानवरों के वध करने वाले सिंह की भाँति (मनुष्य रूप) पशु के वध को करते ही रहते हैं ।३५। बौद्ध साधुओं को देख कर अपने को बहुत बड़ा मानने वाले पराभव को प्राप्त करते हैं अपने में ऐसे निरर्थक वैर करने वाले को बार-बार धिक्कार है।३६। इस प्रकार संसार के जीव सुशीलता, दौर्मनस्य आदि के द्वारा समान जातीय होने के नाते अशान्त चित्त रहते हैं।३७। जिस प्रकार ब्राह्मण मैथुन करने के लिए अनुराग करने वाली

---

१. दयादममधीयाना: ।

शूद्रां प्ररोचते विप्रो रागिणीं मैथुनं प्रति । सा कामदुःखविगमे गर्भं धत्ते समागमे ॥३८
कामकामातुराभ्यस्तु रोचन्ते शूद्रमानवाः । मैथुनं प्रति ब्राह्मण्ये तेऽपि तासां सुखावहाः ॥३९
ये तु जात्यादिभिर्भिन्ना गवाश्वोष्ट्रमतङ्गजाः । ते विजातिषु नो गर्भं कुर्वतेऽपि सुखार्थिनः ॥४०
अनड्वानेव गोरेव कामं पुष्णाति सङ्गमे । घोटकाश्च रतिं सम्यक्कुर्वते वडवासु च ॥४१
पतिं करभमेवाप्य करभी रमते मुदा । गजमेव पतिं लब्ध्वा सुखं तिष्ठति हस्तिनी ॥४२
तिर्यग्जातिः स्त्रिया साकं कुर्वाणाऽपि हि मैथुनम् । न तस्याः कुरुते गर्भं नरो नापि सुखादिकाम् ॥४३
तिरश्चा सह कुर्वाणा मैथुनं मनुजाङ्गना । नाधत्ते तत्कृतं गर्भं न युक्तं मैथुनं तयोः ॥४४
नैवं कश्चिद्विभागोस्ति मैथुने स्त्रीमनुष्ययोः । येन संभाव्यते भेदः प्रस्फुटं द्विजशूद्रयोः ॥४५
वेदपाठच्छलेनायं न क्रियाभिः प्रपद्यते । बहुभिर्जडसङ्घातैरविशिष्टे पदेऽहनि ॥४६
देहे देहिनि चामुष्मिन्नशुचावनवस्थिते । रागद्वेषादिभिर्दोषैरधिकं परिपीडिते ॥४७
कुलालचक्रवद्भ्रान्तमानसे विषयार्णवे । घोरदुःखभयाक्रान्ते समाजेऽनीश्वरात्मनि ॥४८
जन्ममृत्युजराशोकानिष्टयोगाग्निपीडिते । हीनसत्त्वशरीरादौ न विशेषो विभाव्यते ॥४९
तस्मान्मनुष्यभेदोऽयं सङ्केतबलनिर्मितः । ब्राह्मण्यं ब्राह्मणासङ्गाद्ब्राह्मणी चोपसेवते ॥५०

शूद्र स्त्री को चाहता है और वह स्त्री उसके समागम कामपीड़ा समाप्त होने पर गर्भधारण करती है।३८। उसी प्रकार काम पीडित व्राह्मणी भी भोग करने के लिए शूद्र को अत्यन्त चाहती है ओर वे उन्हें सुख भी प्रदान करते हैं। इससे शूद्र भी व्राह्मण के समान ही हैं।३९। जिस प्रकार गाय, घोड़े, ऊँट, हाथी जिनकी जाति पृथक्-पृथक् है, वे अपने से भिन्न दूसरी जाति वाले को चाहते हुए भी उसके साथ भोग आदि नहीं करते हैं।४०। क्योंकि सांड और गाय ही के संयोग में उनकी रति उन्हें आनन्द प्रदान करती है, घोड़े इसी प्रकार से घोड़ी ही के साथ भोग करते हैं, ऊँटिनी अपने पति ऊँट को प्राप्त करके आनन्द पूर्वक रमण करती हैं एवं हथिनी अपने पति हाथी को पाकर सुखी होती है।४१-४२। इसलिए जिस प्रकार पशु-पक्षी आदि से भोग कराने पर मनुष्य स्त्री (उनके द्वारा) गर्भ धारण नहीं कर सकती है इसी प्रकार मनुष्य भी किसी पशु आदि से संभोग कर उनमें गर्भाधान नहीं कर सकता है।४३। यद्यपि यह ठीक है कि मनुष्य स्त्री, पशु, पक्षी द्वारा संभोग करने पर गर्भ धारण नहीं करती है तथापि इन दोनों का आपस में भोग करना भी उचित नहीं है।४४। इसी प्रकार सभी पुरुषों एवं स्त्रियों में कोई ऐसा भेद नहीं है जिसके द्वारा (व्राह्मण आदि से पृथक्) शूद्र एवं (ब्राह्मणी से पृथक्) शूद्र की स्त्री पहचानी जा सके।४५। उसी प्रकार वेदाध्ययन के व्याज से या क्रिया के द्वारा भी जाति विभाग नहीं हो सकता है। क्योंकि अनेक जड़ पदार्थ (पृथिवी जल आदि) के मेल से बनी हुई यह देह तथा अपवित्र अस्थिर और प्रेम, द्वेष आदि दोषों से सदैव दुःखी जीव में (जाति भेद) संभव नहीं हो सकता है। जिस प्रकार विषय रूप समुद्र में कुम्हार के चाक की भाँति मन सदैव घूमा करता है, उसी प्रकार घोर दुःख एवं भय से व्याकुल होने वाले नास्तिक समाज में जन्म-मरण, बुढ़ापा, शोक, दुःख और अग्निदाह से दुःखी होने वाले उन साधारण जीव की शरीर आदि में कोई विशेषता होती भी नहीं है।४६-४९। इसलिए मनुष्यों में जाति भेद की कल्पना के अनुसार ब्राह्मण के साथ समागम न करने

पतिं त्यक्त्वा मुखास्वादलालसैर्मदलालसैः । आसेव्यते विटं गत्वा बन्धकी चेटकैरपि ॥५१
ब्राह्मण्यात्प्रच्यवन्तेऽन्ये महापातकसेविताः । व्यलीककल्पनैवैषा तस्माज्जात्यादिकल्पना ॥५२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्त्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे
वर्णव्यवस्थावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।४३।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

वर्णविभागविवेकवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

हेयोपादेयतत्त्वज्ञास्त्यक्तान्यायपथाश्रमाः । जितेन्द्रियमनोवाचः सदाचारपरायणाः ॥१
नियमाचारवृत्तस्था हितान्वेषणतत्पराः । संसाररक्षणोपायक्रियायुक्तमनोरथाः ॥२
सम्यग्दर्शनसम्पन्नाः समाधिस्था हतक्रुधः । स्वाध्यायभक्तहृदयास्त्यक्तसङ्गा विमत्सराः ॥३
विशोका विमदाः शान्ताः सर्वप्राणिहितैषिणः । सुखदुःखसमालोका विविक्तस्थानवासिनः ॥४
व्रतोपयुक्तसर्वाङ्गा धार्मिकाः पापभीरवः । निर्ममा निरहङ्कारा दानशूरा दयापराः ॥५
सत्यब्रह्मविदः शान्ता सर्वशास्त्रेषु निष्ठिताः । सर्वलोकहितोपायप्रवृत्तेन स्वयंभुवा ॥६

पर भी (सदाचारिणी) ब्राह्मणी ब्राह्मण कहलाती है पर मुख के स्वाद (चटोरापन) या मस्ती में आकर पति का त्याग कर जार पुरुष से सम्भोग कराने तथा व्यभिचारिणी होने पर नौकर चाकर आदि सभी लोगों से भोग करने पर वह ब्राह्मणत्व से च्युत भी हो जाती है।५०-५१। इसी भाँति अन्य महापातक करने वाले भी ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाते हैं। इसलिए ब्राह्मण-क्षत्रिय की कल्पना निश्चित झूठी कल्पना है।५२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्टी कल्प में वर्णव्यवस्था वर्णन नामक
तैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४३।

अध्याय ४४

वर्ण विभाग विवेक वर्णन

ब्रह्मा बोले— (कौन वस्तु) त्याज्य और कौन वस्तु ग्राह्य है, इसका भली-भाँति ज्ञान रखने वाले वे ब्राह्मण जो अनीति मार्ग को त्याग इन्द्रियजित् होकर मन एवं वाणी पर अधिकार रखते हैं, सदाचारी हैं नियम और आचार को अपनाकर हितान्वेषी, संसार की रक्षा के लिए उपायों द्वारा कार्य करने में उत्साही, तत्त्वज्ञानी के लिए समाधि में स्थित, क्रोधहीन और स्वाध्याय का प्रेमी आसक्ति रहित मत्सरहीन, शोक और मद शून्य, शांत, सभी जीवों के हितेच्छु सुख-दुःख में समान देखने वाले एकान्तवासी, तन-मन से व्रती एवं धार्मिक, पाप से डरने वाले निर्मोही, निरभिमानी, दानवीर, दयालु, सत्य रूपी ब्रह्म के ज्ञानी और सभी शास्त्रों के जो नैष्ठिक विद्वान् हैं उन्ही मर्यादा रखने वाले को सभी के हित करने में सदैव लगे रहने वाले को स्वयंभू, वागीश्वर देव, नाभि से उत्पन्न, भव को नाश करने वाले ब्रह्मा ने

वागीश्वरेण देवेन नाभेयेन भवच्छिदा । ब्रह्मणा कृतमर्यादास्त एवं ब्राह्मणाः स्मृताः ॥७
महातपोधनैरार्यैः सर्वसत्त्वाभयप्रदैः । सर्वलोकहितार्थाय निपुणं सुप्रतिष्ठितम् ॥८
बृहत्त्वाद्भगवान्ब्रह्मा नाभेयस्तस्य ये जनाः । भक्त्यासक्ताः प्रपन्नाश्च ब्राह्मणास्ते प्रकीर्तितताः ॥९
क्षत्रियास्तु क्षतत्राणाद्वैश्या वार्ताप्रवेशनात् । ये तु श्रुतेर्द्रुतिं प्राप्ताः शूद्रास्तेनेह कीर्तितताः ॥१०
ये चाचाररताः प्राहुर्ब्राह्मण्यं ब्रह्मवादिनः । ते तु फलं प्रशंसन्ति यत्सदा मनसेप्सितम् ॥११
क्षमा दमो दया दानं सत्यं शौचं धृतिर्घृणा । मार्दवार्जवसन्तोषानहङ्कारतपःशमाः ॥१२
धर्मो ज्ञानमपैशुन्यं ब्रह्मचर्यममूढता । ध्यानमास्तिक्यमद्वेषो वैराग्यं च शमात्मता ॥१३
पापभीरुत्वमस्तेयममात्सर्यमतृष्णता । नैःसङ्ग्यं गुरुशुश्रूषा मनोवाक्काय संयमः ॥१४
य एवम्भूतमाचारमनुष्ठिन्ति मानवाः । ब्राह्मण्यं पुष्कलं तेषां नित्यमेव प्रवर्धते ॥१५
ते स्वमतास्वादलब्धवर्णाचारा महौजसः । सर्वशास्त्राविरोधेन पवित्रीकृतमानसाः ॥१६
सज्जनाभिमताः प्राज्ञाः पुराणागमपण्डिताः । गीतगीतागमाचाराः स्मृतिकाराः पठन्ति च ॥१७
मन्वन्तरेषु सर्वेषु चतुर्युगविभागशः । वर्णाश्रमाचारकृतं कर्म सिद्ध्यत्यनुत्तमम् ॥१८
संसिद्धायां तु वार्तायां ततस्तेषां स्वयं प्रभुः । मर्यादां स्थापयामास यथारब्धं परस्परम् ॥१९
ये वै परिगृहीतारस्तेषां सत्त्वबलाधिकाः । इतरेषां क्षतत्राणान्स्थापयामास क्षत्रियान् ॥२०

ब्राह्मण हैं, ऐसा कहा है ।१-७। उसी प्रकार महातपस्वी तथा सभी जीवों को अभय प्रदान करने वाले आर्यों ने भी समस्त लोकों के कल्याण के निमित्त इस मर्यादा को भली भाँति सुदृढ़ एवं निश्चित कर दिया है ।८। इस प्रकार वृहत् होने के नाते ब्रह्मा और उस महान् पुरुष की नाभि से उत्पन्न होने के कारण नाभिय कहे जाते हैं उनमें जो लोग भक्त एवं प्रपन्न (शरणागत रक्षक) हैं, वे ब्राह्मण कहे गये हैं ।९। इसी भाँति किसी को नष्ट होने से बचाने वाले क्षत्रिय, कृषि एवं व्यापार संबंधी आदि कार्य करने वाले वैश्य और जो वेदाध्ययन से अत्यन्त दूर भागे हैं वे शूद्र कहे गये हैं ।१०। जो सदाचारी ब्रह्मज्ञानी को ब्राह्मण कहते हैं वे उनके कर्म फलों की जो सदाचारियों के मनोरथ के अनुकूल होते हैं प्रशंसा करते हैं ।११। इसलिए क्षमा, इन्द्रिय दमन, दया, दान, सत्य, पवित्रता, धैर्य, धारणा, मृदुता, सरलता, संतोष, निरभिमान, तप, शम, धर्म, ज्ञान, चुगुली न करने, ब्रह्मचर्य, विद्वान्, ध्यान, आस्तिकता, द्वेषहीन, स्वर्ग आदि लोक में विश्वास रखने, वैर न करने, वैराग्य, पाप से डरने, चोरी, मत्सर एवं तृष्णा न करने, संसार से पृथक् रहकर गुरुसेवा करने वाले, मन, वाणी और शरीर का संयम रखने वाले ऐसे सदाचारी मनुष्यों में ब्रह्मतेज पूर्ण रूप से सदैव बढ़ता रहता है ।१२-१५। ऐसे ही लोग वर्ण और आचार की प्राप्ति कर महान् तेजस्वी भी हो गये हैं एवं सभी शास्त्रों की पवित्र भावनाओं द्वारा उनके चित्त निर्विरोध शुद्ध हो गये हैं ।१६। सज्जनों की सम्मति से वे ही प्राज्ञ, पुराण एवं वेद के पंडित, गीता के मर्मज्ञ और सम्पत्तियों के रचयिता हैं । ऐसे ही लोगों का कहना है कि चारों युगों के विभाग द्वारा सभी मन्वन्तरों में समय वर्ण और आश्रम के द्वारा किये गये आचार कर्मो की उत्तम सिद्धि (सफलता) प्राप्त होती रहती है ।१७-१८। इसलिए कर्मसिद्धि के अनन्तर उनमें ब्रह्मा ने परस्पर प्रारम्भ की गयी मर्यादा को स्थापित किया ।१९। जो अधिक शक्तिशाली होने के नाते सभी (जनता) को अपनाने एवं उन्हें नष्ट होने से बचाने का कार्य करेंगे वे क्षत्रिय

उपतिष्ठन्ति ये तान्वै याचन्तो नर्मदाः सदा । सत्यब्रह्म सदाभूतं वदन्तो ब्राह्मणास्तु ते ॥२१
ये चान्येप्यबलास्तेषां वैश्यकर्मणि संस्थिताः । कीलानि नाशयन्ति स्म पृथिव्यां प्रागतन्द्रिताः ॥
वैश्यानेव तु तानाह कीनाशान्वृत्तिमाश्रितान् ॥२२
शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये नराः । निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रांस्तानब्रवीत्तु सः ॥२३
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परस्परम् । कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥२४
शमस्तपो दमः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥२५
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥२६
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् । परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥२७
योगस्तपो दया दानं सत्यं धर्मश्रुतिर्घृणा । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥२८
शिखा ज्ञानमयी यस्य पवित्रं च तपोमयम् । ब्राह्मण्यं पुष्कलं तस्य मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥२९
यत्र वा तत्र वा वर्णे उत्तमाधममध्यमाः । निवृत्तः पापकर्मभ्यो ब्राह्मणः स विधीयते ॥३०
शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो ब्राह्मणादधिको भवेत् । ब्राह्मणो विगताचारः शूद्राद्धीनतरो भवेत् ॥३१
न सुरां सन्धयेद्यस्तु आपणेषु गृहेषु च । न विक्रीणाति च तथा सच्छूद्रो हि स उच्यते ॥३२
यद्येका स्फुटमेव जातिरपरा कृत्यात्परं भेदिनी । यद्वा व्याहृतिरेकतामधिगता यच्चान्यधर्मं ययौ ॥

कहलायेंगे और जो क्षत्रियों के यहाँ आकर उन्हें प्रसन्न कर याचना करते हैं और सत्य रूपी ब्रह्म की नित्यता का प्रचार करते हैं वे ब्राह्मण कहे जाते हैं ।२०-२१। जो लोग निर्बल होते हुए भी वैश्य कर्म करने में संलग्न होकर पृथिवी की गहरी जुताई आदि कृषि एवं व्यापार करते हैं वे वैश्य और शोक ग्रस्त एवं दीन हीन दशा में वर्तमान रहते हुए भी उपरोक्त तीनों वर्णों की जो सेवा करते हैं तथा निस्तेज एवं अल्प शक्ति वाले वे शूद्र कहे जाते हैं ॥२२-२३। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के आपसी कर्म उनके स्वाभाविक गुणों द्वारा पृथक्-पृथक् हैं ।२४। इसलिए शांति, तप, दम, पवित्रता, सहनशीलता, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता (स्वर्गादि में विश्वास एवं श्रद्धा) ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म कहे गये हैं ।२५। क्रूरता, तेज, धैर्य, युद्ध में चतुरता एवं युद्ध से न भागना दान और प्रभुत्व ये क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं ।२६। खेती, गोरक्षा और वाणिज्य (व्यापारादि) वैश्य के तथा सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है ।२७। इस प्रकार योग, तप, दया, दान, सत्य, धार्मिक अध्ययन, घृणा, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता ये ब्राह्मण के लक्षण हैं ।२८। क्योंकि जिसमें ज्ञान रूपी शिखा (चोटी) एवं तप रूपी पवित्रता सन्निहित है उसे स्वयंभू मनु जी ने प्रधान ब्राह्मण बताया है ।२९। तदनुसार जिस किसी वर्ण में उत्तम, मध्यम या अधम कोई भी मनुष्य पाप कर्म न करे वह ब्राह्मण है।३०। क्योंकि अच्छे शीलवाला शूद्र ब्राह्मण से उत्तम बताया गया है और आचार भ्रष्ट ब्राह्मण शूद्र से भी हीन कहा गया है ।३१। इसी भाँति जो अपनी दूकान में या घर में शराब न रखे और न उसका व्यापार ही करे वह सत् (स्पृश्य) शूद्र बताया गया है ।३२। इसीलिए यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि जाति (मानव जाति) एक ही है, किन्तु दूसरी (ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि) जाति के निर्माण केवल भिन्न-भिन्न कर्मों द्वारा किये गये हैं। अथवा व्यवहार रूप में वह (मानव-जाति) एक ही है केवल धर्मों में भिन्नता है, इसलिए निखिल भाव एवं

एकैकाखिलभावभेदनिधनोत्पत्तिस्थितिव्यापिनी ।
किं नासौ प्रतिपत्तिगोचरपथं यायाद्विभक्त्या नृणाम् ॥३३

श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे
वर्णविभागविवेकवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।४४।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

कार्तिकेयवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इदं श्रृणु मयाख्यातं तर्कपूर्वमिदं वचः । युष्माकं संशये जाते कृते वै जातिकर्मणोः ॥१
पुनर्वच्मि निबोधध्वं समासान्न तु विस्तरात् । संसिद्धिं यान्ति मनुजा जातिकर्मसमुच्चयात् ॥२
सिद्धिं गच्छेद्यथा कार्यं दैवकर्मसमुच्चयात् । एवं संसिद्धिमायाति पुरुषो जातिकर्मणोः ॥३
इत्येवमुक्तवान्पूर्वं शिष्याणां बोधने पुरा । योगीश्वरी महातेजाः समासान्न तु विस्तरात् ॥४

सुमन्तुरुवाच

इति पृष्टः पुरा ब्रह्मा ऋषीन्प्रोवाच भारत । सवितर्कमिदं वाक्यं विप्रर्षे जातिकर्मणोः ॥५

भेद मरण, उत्पत्ति तथा स्थिति में व्याप्त रहने वाली यह मानवी जाति इन्हें दिखाई नहीं दे रही है जो मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति द्वारा विभाजन करने के लिए तैयार रहते हैं ।३३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में वर्ण विभाग विवेक वर्णन नामक
चौवालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४४।

अध्याय ४५

कार्तिकेय वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मेरी उस तर्क पूर्ण बात को सुनो जो तुम लोगों के जाति कर्म विषयक संदेह को दूर करने वाली है ।१। मैं विस्तार से नहीं प्रत्युत् थोड़े ही में विवेचन पूर्वक फिर कह रहा हूँ । अतः तुम लोग सावधान होकर सुनो ! मनुष्य को जाति और कर्म इन दोनों के योग से संसिद्धि (सफलता) प्राप्त होती है ।२। जिस प्रकार दैव बल एवं कर्म योग से कार्य की सफलता मिलती है उसी प्रकार जाति और कर्म के (सहयोग) द्वारा पुरुष सफल होता है ।३। शिष्यों की जानकारी के लिए महातेजस्वी योगीश्वर ने पहले ही थोड़े में विवेचन पूर्ण यही (बातें) कहा था ।४

सुमन्तु ने कहा—हे भारत ! ऋषियों के पूछने पर ब्रह्मा ने उनसे यही कहा था कि हे विप्रर्षि ! जाति और कर्म के संबंध में यह बात तर्कपूर्ण है ।५। हे महाबाहो ! इसलिए तुम भी कार्तिकेय के विषय में

तस्मात्त्वया महाबाहो न कार्यो विस्मयो नृप । कार्तिकेयं प्रति सदा देवानां दुर्विदा गतिः ।।६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे कार्तिकेयवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।४५।

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मपर्ववर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

देयं भाद्रपदे मासि षष्ठी च भरतर्षभ । सुपुण्येयं पापहरा शिवा शान्ता गुहप्रिया ।।१
स्नानदानादिकं सर्वं यस्यामक्षय्यमुच्यते । येऽस्यां पश्यन्ति गाङ्गेयं दक्षिणापथमाश्रितम् ।।२
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यन्ते नात्र संशयः । तस्मादस्यां सदा पश्येत्कार्त्तिकेयं नृपोत्तम ।।३
पूजयन्ति गुहं येऽस्यां नराभक्तिसमन्विताः । प्राप्येह ते सुखान्कामान्गच्छन्तीन्द्रसलोकताम् ।।४
यस्तु कारयते वेश्म सुदृढं सुप्रतिष्ठितम् । दार्वं शैलमयं चापि भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ।।
गाङ्गेयं यानमारुह्य गच्छेद्गाङ्गेयसद्म वै ।।५
सम्मार्जनादि यः कर्म कुर्याद्गुहगृहे नरः । ध्वजस्यारोपणं राजन्स गच्छेद्रुद्रसद्म वै ।।६
चन्दनागरुकर्पूरैर्यश्च पूजयते गुहम् । गजाश्वरथयानाढ्यं सैनापत्यमवाप्नुते ।।७

संदेह न करो क्योंकि देवताओं की गति दुर्ज्ञेय होती है ।६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में कार्तिकेय वर्णन नामक पैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४५।

अध्याय ४६

ब्रह्मपर्व वर्णन

सुमंतु ने कहा—हे भरतवर्ष ! भादों मास की षष्ठी तिथि पुण्य प्रदान करने वाली पापनाशिनी कल्याण एवं शांति स्वरूप और कार्तिकेय के लिए अत्यन्त प्रिय बतायी गयी है ।१। इसलिए इसमें स्नान-दान एवं किये हुए सभी कुछ कर्म अक्षय होते हैं जो लोग इस तिथि में दक्षिण देशों में ख्याति प्राप्त कार्तिकेय जी का दर्शन करते हैं उनके ब्रह्म हत्या आदि सभी पाप निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं। हे नृपोत्तम ! इस तिथि में सदैव कार्तिकेय का दर्शन करना चाहिए ।२-३। इस प्रकार जो मनुष्य इस तिथि में श्रद्धा भक्ति पूर्वक कार्तिकेय की पूजा करते हैं वे अपने अभिलषित मनोरथ सफल करते हुए इन्द्र लोक की प्राप्ति करते हैं ।४। तथा जो लोग लकड़ी या पत्थर से कार्तिकेय जी के मन्दिर का सुन्दर एवं दृढ़ निर्माण करते हैं वे कार्तिकेय की सवारी पर बैठकर उनके लोक की यात्रा करते हैं ।५। और जो कार्तिकेय के मन्दिर की सफाई (झाडू वगैरह) करते हैं और उसे ध्वजा से भी सुशोभित करते है वे रुद्र लोक की प्राप्ति करते हैं ।६। इसी प्रकार जो चन्दन, गुग्गुल और कपूर से कार्तिकेय का पूजन करते है वे हाथी, घोड़े, रथ एवं

राज्ञां पूज्यः सदा प्रोक्तः कार्तिकेयो महीपते। कार्त्तिकेयमृते नान्यं राज्ञां पूज्यं प्रचक्षते ॥८
सङ्ग्रामं गच्छमानो यः पूजयेत्कृत्तिकासुतम्। स शत्रुं जयते वीर यथेन्द्रो दानवान्रणे ॥९
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेच्छङ्करात्मजम्। पूजमानस्तु तं भक्त्या चम्पकैर्विविधैर्नृप ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तदा गच्छेच्छिवालयम् ॥१०
तैलं षष्ठ्यां न भुञ्जीत न दिवा कुरुनन्दन। यस्तु षष्ठ्यां नरो नक्तं कुर्यादि भरतर्षभ ॥
सर्वपापैः स निर्मुक्तो गाङ्गेयस्य सदो व्रजेत् ॥११
त्रिकृत्वो दक्षिणामाशां गत्वा यः श्रद्धयान्वितः। पूजयेद्देवदेवेशं स गच्छेच्छान्तिमन्दिरम् ॥१२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां षष्ठीकल्पे कार्त्तिकेयमाहात्मयवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः।४६। ।इति षष्ठी कल्पः समाप्तः।

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

शाकसप्तमीव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

सप्तम्यां सोपवासस्तु नक्ताहारोऽपि वा भवेत्। सप्तम्यां देवदेवेन लब्धं स्वं रूपमादरात् ॥१

भाँति-भाँति की सवारी प्राप्त करते हुए सेना नायक होते हैं।७। हे महीपते! इसलिए कार्तिकेय का पूजन राजाओं को सदैव करना चाहिए क्योंकि कार्तिकेय से पृथक् अन्य कोई राजाओं का पूज्य है भी नहीं।८-९। इस प्रकार कार्तिकेय की पूजा करके जो मनुष्य युद्ध-स्थल में जाता है वह युद्ध में दानवों पर इन्द्र की भाँति सदैव शत्रु पर विजय प्राप्त करता है। अतः प्रयत्न पूर्वक शंकर सुत कार्तिकेय की पूजा अवश्य करनी चाहिये। हे नृप! चम्पा आदि अनेक प्रकार के फूलों से उनका पूजन करने पर वह मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर शिव लोक की प्राप्ति करता है।१०। हे भरतर्षभ! हे कुरुनंदन! इसी प्रकार षष्ठी तिथि में किसी भी समय तैल का भोजन न करना चाहिए। क्योंकि जो मनुष्य षष्ठी में नक्तव्रत (रात में भोजन) रहता है वह सभी पापों से मुक्त होकर कार्तिकेय के लोक की प्राप्ति करता है।११। और जो श्रद्धापूर्वक तीन बार दक्षिण दिशा में जाकर देवाधिदेव कार्तिकेय की पूजा करता है उसे शांति मंदिर (शिवलोक) की प्राप्ति होती है।१२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में कार्तिकेय माहात्म्य वर्णन नामक छियालिसवाँ अध्याय समाप्त।४६।

अध्याय ४७

शाकसप्तमी व्रत-वर्णन

सुमन्तु ने कहा—सप्तमी (तिथि) में उपवास या नक्तव्रत अवश्य करना चाहिये क्योंकि इस तिथि में देवाधिदेव सूर्य ने अपने उत्तम रूप को प्राप्त किया है।१। वे पहले अण्डे के साथ उत्पन्न हुए थे और

अण्डेन सह जातो वै अण्डस्थो बुद्धिमाप्तवान् । अण्डस्थस्यैव दक्षेण भार्या दत्ता स्वकां सुताम् ।।२
नाम्ना रूपेति रूपेण नान्या नारी तथा[1] भवेत् । अण्डस्थ एव सुचिरं स्थितो मार्तण्ड इत्यतः ।।३
दक्षाज्ञया विश्वकर्मा वपुरस्य प्रकाशयन् । प्रकाशतस्ततो नाम तस्य जातं नराधिप ।।
अण्डस्थस्यैव सञ्जातो यमुना यम एव च ।।४
दाक्षायणी तस्य भार्या वैराग्यात्तनुमध्यमा । चिन्तयामास सा देवी दुःखान्निर्वेदमागता ।।५
अहो तेजोमयं रूपं कान्तस्य कान्तिमत् । न चास्य किञ्चित्पश्यामि अङ्गं तेजोविमोहितम् ।।६
शुभं कनकतुल्यं मे रूपं कान्तं सुकान्तिमत् । साम्प्रतं श्यामतां यातं दग्धमेतस्य तेजसा ।।७
तस्मात्तप्स्ये तपश्चाहं गत्वा वै उत्तरान्कुरून् । स्वां छायामत्र निक्षिप्य भयाच्छापस्य रूपिणी ।।८
निक्षिप्योवाच तां बालां मा चास्मै वै वदिष्यसि । एवं सा निश्चयं कृत्वा गता वै उत्तरान्कुरून् ।।९
स्वरूपं तत्र निक्षिप्य वडवारूपधारिणी । चचार सा मृगैः सार्धं बहून्वर्षगणान्नृप ।।१०
असावपि च मार्तण्डश्छायां भार्याममन्यत् । शनिं च तपतीं चैव द्वे अपत्ये च जज्ञिवान् ।।११
अथ च्छायात्मापत्यानि स्नेहेन परिपालयेत् । नातिस्नेहेन चापत्यद्यमुनां यममेव च ।।१२

अण्डस्थ रह कर ही उन्होंने उत्तम ज्ञान भी प्राप्त किया था तथा इसी अवस्था में इन्हें दक्ष प्रजापति ने अपनी रूपा नाम की पुत्री जिसके समान सुन्दरी और कोई अन्य स्त्री नहीं थी, पत्नी रूप में प्रदान किया था । एवं अधिक समय तक अण्डे में रहने के नाते इनका नाम मार्तण्ड भी हुआ ।२-३। हे नराधिप ! दक्ष की आज्ञा पाकर विश्वकर्मा ने इनके शरीर को प्रकाशित किया और प्रकाशित होने के नाते ही इनका (सूर्य) ऐसा नाम पड़ा । अण्डस्थ ही रहकर इन्होंने अपनी स्त्री से यमुना और यम नाम की दो सन्तानें पैदा की हैं ।४। एक बार तनुमध्यमा (कृश मध्य भाग वाली) इनकी दाक्षायणी स्त्री को दुःख के कारण विराग उत्पन्न हो गया था वह दुःख से घबड़ाकर सोचने लगी कि कितने दुःख की बात है कि मैं अपने पति देव के तेजोमय एवं मनोहर उस रूप को जो इनके अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण तेज में विलीन हो गया है कुछ भी नहीं देख पा रहा हूँ ।५-६। मांगलिक एवं सुवर्ण की भाँति सौन्दर्य पूर्ण और मनोहर मेरा यह रूप इस समय इनके तेज से जलकर श्यामल वर्ण हो गया है ।७। इसलिए शाप के भय के नाते (कहा यों ही जाना उचित नहीं है) अपनी छाया को इनकी सेवा में रखकर मैं उत्तर कुरुदेश में जाकर तप करूँगी ।८। इस प्रकार निश्चय कर उसने अपनी छाया उन (अपने पति सूर्य) कीसेवा में रखकर उससे कहा—इस (रहस्य) को इनसे न कहना इसके उपरांत अपने स्वरूप को वहीं रखकर (उत्तर कुरुदेश में जाकर) घोड़ी का रूप धारण कर वहाँ के मृगों के साथ विचरण करने लगी । हे नृप ! इस प्रकार उन मृगों के साथ विचरण करते हुए बहुत वर्ष बीत गये ।९-१०

इधर सूर्य ने भी (इस रहस्य को न जानते हुए उस छाया को ही अपनी स्त्री समझ कर उससे शनि और तपती नामकी दो सन्तानें उत्पन्न किया ।११। इसके पश्चात् छाया स्नेह पूर्वक अपनी सन्तान का पालन करती थी किन्तु यमुना और यम को उतने स्नेह से नहीं देखती थी । (कुछ समय के) अनन्तर

---

१. तथाविधा ।

अथ ताभ्यां विवादोऽभूदादित्यदुहित्रोर्द्वयोः । ते उभे विवदन्त्यौ तु परस्परमसम्मतम् ॥
यमुना तपती चोभे निम्नगे सम्बभूवतुः ॥१३
यमोऽपि यमुनाभ्राता छायया ताडितो भृशम् । पादमुद्यम्य तस्या वै तस्थौ सम्मुख एव सः ॥१४
छाया शशाप तं रोषाद्यस्मात्पादोद्यतो मम। तस्मात्ते कर्म बीभत्सं प्राणिनां प्राणहिंसनम् ॥१५
भविष्यति चिरं मूढ आचन्द्रार्कं न संशयः । पादं च यदि भूमौ त्वमिमं संस्थापयिष्यसि ॥१६
कृमयो भक्षयिष्यन्ति मच्छापकलुषीकृतम् ॥१७
तेषां विवदमानानां मार्तण्डोऽस्यागमत्ततः । यमोऽप्याह महात्मानं मार्तण्डं लोकपावनम् ॥१८
तात नित्यमियं चापि क्रूरभावेन पश्यति । न चास्याः सुसमा दृष्टिरस्मास्वस्तीति लक्ष्यते ॥१९
प्रोवाचाथ स तां छायां मार्तण्डो भृशकोपनः । [1]समे अपत्ये किं मूढे समत्वं नानुपश्यसि ॥२०
यमः प्रोवाच पितरं नेयं माता पितर्मम । मातुश्छाया त्वियं पापा शप्तोऽहमनया पितः ॥
यमुना तपती वृत्तं तत्सर्वं विन्यवेदयत् ॥२१
अथ प्रोवाच मार्तण्डो मा[2] ते पादो महीतले । मांसं रुधिरमादाय कृमयो यान्तु भूतलम् ॥२२
यमुनायाश्च यत्तोयं गङ्गातुल्यं भविष्यति । नर्मदायास्तपत्याश्च समं पुण्येन वै द्विज ॥२३

यमुना और तपती नाम की दो लड़कियों में कलह (झगड़ा) आरम्भ हुआ जिसके परिणाम स्वरूप झगड़ती हुई उन दोनों ने आपस में एक दूसरे से विरुद्ध होकर नदी का रूप धारण किया ।१२-१३। पश्चात् यमुना का भाई यम भी छाया द्वारा अत्यन्त पीटे जाने पर उसके सामने जाकर उसे अपने पैर उठाकर मारने के लिए तैयार हुआ । इस पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर छाया ने उसे शाप किया कि मुझे मारने के लिए तूने अपना पैर उठाया है इसलिए तुम्हारा कर्म वीभत्स प्राणियों की जीव हिंसा ही होगा । हे मूढ़ ! (अल्पकाल के लिए नहीं) प्रत्युत चन्द्र और सूर्य की जब तक स्थित हैं तब तक के लिए मेरा शाप समझना और उठे हुए इस अपने पैर को जो मेरे शाप से कलुषित हो गया है तू यदि भूमि पर रखेगा तो कीड़े इसे खा जायेंगे ।१४-१७

इस प्रकार उन दोनों के झगड़ते हुए मार्तंड भी वहाँ आ गये । यम ने महात्मा मार्तण्ड से जो लोक पवित्र करते हैं कहना आरम्भ किया ।१८। कि हे पिता ! यह मुझे प्रतिदिन क्रूर भाव से देखती है तथा हमें कभी भी अपनी सन्तान की भाँति के समान दृष्टि से नहीं देखती है यह मैं भली भाँति जानता हूँ ।१९। तदुपरांत अत्यन्त क्रुद्ध होकर मार्तंड ने भी उस छाया से कहा मूर्ख ! सभी सन्तानों पर समान होने के नाते समान दृष्टि रखनी चाहिए। तू सभी को समान दृष्टि से क्यों नहीं देखती है।२०। यम ने कहा—हे पिता ! यह मेरी माँ नहीं है प्रत्युत यह पापिनी मेरी माँ की छाया है, इसलिए इसने मुझे शाप दिया है तदुपरांत यमुना और तपती का पूर्ण समाचार भी कह कर उन्हें सुना दिया ।२१। इसके पश्चात् मार्तण्ड ने यम से कहा कि तुम्हारा पैर पृथ्वी पर न जाय प्रत्युत रक्त और मांस लेकर कीड़े ही भूतल पर चले जायें ।२२। यमुना का जल गंगा जल के समान होगा, तपती का जल नर्मदा के समान पवित्र होगा ।२३। इस प्रकार

---

१. समेत्योवाच सच्छायां समत्वं नानुपश्यसि । २. मुंच पादं महीतले ।

विन्ध्यस्य दक्षिणेनेह तपती प्रवहिष्यति । तत्सायुज्यतया सार्धं गङ्गा यास्यति शोभना ॥२४
गङ्गामासाद्य यमुना गङ्गा सैव भविष्यति । सौरसौम्ये उभे पुण्ये सर्वपापप्रणाशने ॥२५
[1]सौरी च वैष्णवी चोभे महापापभयापहे । त्वं पुत्र लोकपालत्वं ब्रह्मणोऽज्ञां सभाजयन् ॥
अद्यप्रभृति च्छायेयं स्वदेहस्था भविष्यति ॥२६
एवं संस्थाप्य स्वां भार्यामपत्यानि तथैव च । आजगाम सकाशं वै दक्षस्याह च कारणम्[2] ॥
दक्षो विज्ञाय तत्सर्वं मार्तण्डमिदमाह वै ॥२७
रूपं न पश्यती तुभ्यं सा भार्या उत्तरान्गता ॥२८
रूपं ते प्रकटिष्यामि यदि शक्ष्यसि वेदनाम् । असौ प्रोवाच शक्ष्येऽहं प्रकाशी कुरु मे वपुः ॥२९
अथ सस्मार तक्षाणं स्मृत एवाजगाम सः । प्रोवाच दक्षस्तक्षाणं मार्तण्ड वै प्रकाशय ॥३०
तक्षा प्रोवाच मार्तण्डं वेदना विसहिष्यसे । विसहिष्येथ प्रोवाच तक्षाणं दक्षचोदितः ॥३१
अथ तक्षा प्रकाशं वै तस्य रूपं विभावसौ । मुखादारभ्य पादान्तं ततक्षकरणैः स्वकैः ॥
किरणैस्तुद्यमानेषु तस्याङ्गेषु पुनः पुनः । क्षणेक्षणे मूर्छयति मार्तण्डो वेदनातुरः ॥३२
तस्य शापभयात्तक्षा पादौ गुल्फादियावतः । चकाराथो निराकारा अङ्गुल्यो न प्रकाशयत् ॥३३

विंध्य पर्वत के दक्षिण तपती का प्रवाह होगा और उससे मिली हुई गंगा प्रवाहित होगी ।२४। गंगा का संगम प्राप्त कर यमुना गंगा के रूप में हो जायगी तथा ये दोनों सौर-सौम्य पुण्य रूप एवं सभी पापों का नाश करने वाली होंगी ।२५। इस प्रकार सौरी (यमुना) और वैष्णवी (गंगा) दोनों ही महान् पापों का नाश करेंगी । हे पुत्र ! ब्रह्मा की आज्ञा से तू लोकपाल हो जाओगे और छाया की स्थिति आज से अपनी देह में ही रहेगी ।२६

इस प्रकार (सूर्य ने) अपनी (छाया नाम की) स्त्री एवं सन्तानों की व्यवस्था करके दक्ष के यहाँ जाकर उन्हें समस्त समाचार सुनाया, दक्ष ने भी सभी बातें सुनकर मार्तण्ड से कहा कि—(अत्यन्त तेज के कारण) तुम्हारे रूप का स्पष्ट दर्शन न करके ही वह तुम्हारी स्त्री उत्तर कुरुदेश में चली गयी है ।२७-२८। इसलिए यदि दुःख को सहन कर सको तो मैं तुम्हारे रूप को (इस प्रचण्ड तेज से पृथक्) प्रकाशित करता हूँ इसे सुनकर सूर्य ने वैसा ही करने के लिए अपनी सम्मति प्रकट की ।२९। तदुपरान्त विश्वकर्मा का स्मरण किया वे आये । दक्ष ने उनसे कहा । सूर्य के रूप को स्पष्ट प्रकाशित करो ! ।३०। विश्वकर्मा ने सूर्य से कहा क्या आप इस भाँति के दुःख का सहन करना स्वीकार करेंगे । दक्ष ने कहा—हाँ इसे सहन करने के लिए ये पहले से ही तैयार हैं ।३१

पश्चात् विश्वकर्मा ने अपने हथियारों से सूर्य के मुख से लेकर पैर तक के समस्त शरीर को (पीतल आदि के बर्तनों की भाँति) खराद किया । किन्तु अंगों के खरादते समय वेदना से व्याकुल होकर सूर्य क्षण-भर पर मूर्च्छित हो जाते थे ।३२। उनके शाप के भय से विश्वकर्मा ने भी उनके पैर से एड़ी तक को खराद कर उनकी अंगुलियाँ खरादना चाहा कि सूर्य ने उससे असह्य वेदना के कारण घबड़ा कर

---

१. गौरी च । २. श्रावणम्

पर्याप्तं तक्षकर्मेदं वेदना मम बाधते । तक्षा प्रोवाच मार्तण्डं वेदनां जहि गोपते ॥३४
करवीरस्य पुष्पाणि रक्तचन्दनमेव च । करादारभ्य गात्राणि विलिम्पे देहजानि ते ॥३५
तत्तत्कृतं तथा तेन स रुजं त्यक्तवान्रविः । अतश्चेमानि चेष्टानि मार्तण्डस्येह भूपते ॥३६
करवीरस्य पुष्पाणि तथा वै रक्तचन्दनम् । इदमाह पुरा देवो ह्यनूरोरग्रतो नृप ॥३७
करवीरस्य पुष्पाणि रक्तचन्दनमेव हि । इतिहासपुराणाभ्यां सुपर्णगुग्गुलं तथा ॥३८
यः प्रयच्छति मे भक्त्या स मे प्राणान्प्रयच्छति । तस्मान्न देयमन्यन्मे भक्तियुक्तेन जानता ॥३९
मार्तण्डस्याण्डजं तेजो गृहीत्वा किल भारत । चकार वज्रमजरं[1] शत्रुलेखादिनाशनम् ॥४०
मार्तण्डः परितुष्टोऽभूल्लब्ध्वा रूपं गतव्यथः । जगाम स कुरून्वेगात्स्वभार्यादर्शनोत्सुकः ॥४१
मृगमध्यगतां दृष्ट्वा वडवारूपधारिणीम् । अश्वरूपं ततः कृत्वा स्वभार्यामधिरुह्य सः ॥
अवासृजत्स्वकं तेजो वेगेनारुह्य सोऽश्ववत् ॥४२
परपुरुषाशङ्कया सा स्थिता देवस्य संमुखी । तेजोनासापुटाभ्यां तु युगपत्साक्षिपत्पुनः ॥४३
तत्र जातौ देवभिषजौ नासत्यावश्विनाविति । रेतसोऽन्ते तुरेवन्तो विरोचनसुतो महान् ॥४४
तपती शनिश्च सावर्णिश्छायापत्यानि वै विदुः । यमुना यमश्च पूर्वोक्तौ संज्ञा[2] याश्च तथात्मजौ ॥४५

विश्वकर्मा से कहा—बस यह अब बहुत हो चुका इसे समाप्त करो क्योंकि मुझे अत्यन्त दुःख हो रहा है ।३३-३४। विश्वकर्मा ने कहा—घबड़ायें नहीं। रक्तचन्दन (देवी चन्दन) और कनेर के फूल इन दोनों का लेप तुम्हारे शरीर में किये देता हूँ, इससे अभी दुःख का शमन हो जायेगा। विश्वकर्मा के वैसा करने पर सूर्य का समस्त दुःख नष्ट हो गया। हे भूपते ! इसलिए ये वस्तुएँ सूर्य को अत्यन्त प्रिय हैं।३५-३६

हे नृप ! पहले समय में भी सूर्य ने अरुण के सामने इन्हीं वस्तुओं के विषय में कहा था ।३७। कनेर का फूल, रक्तचन्दन, इतिहास एवं पुराण प्रसिद्ध सुपर्ण (नाग केशर आदि) और गुगुल इन्हें भक्तिपूर्वक जो मुझे अर्पित करते हैं वे मुझे प्राणदान देते हैं इसलिए ऐसा जानते हुए उन्हें अन्य कोई दूसरी वस्तु न देनी चाहिए, क्योंकि मार्तण्ड के शरीर के खरादते समय उनके निकले हुए तेज का अत्यन्त दृढ़वज्र बनाया गया था, जो शत्रु लेखा आदि का नाश करता है ।३८-४०

उपरोक्त मार्तण्ड स्वस्थ होकर अपने सुन्दर रूप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसी समय अपनी पत्नी को देखने की इच्छा से उत्तर कुरुदेश की ओर शीघ्रता से प्रस्थान भी किया । मृगों के बीच में घोड़ी का रूप धारण कर विचरण करती हुई अपनी स्त्री को देख कर के सूर्य ने भी घोड़े का रूप धारण कर उसमें अपना तेज (वीर्य) निक्षेप किया ।४१-४२। उनके सामने स्थित उनकी पत्नी ने उन्हें पर पुरुष की आशंका करके उनके तेज (वीर्य) को अपनी नाक के दोनों छिद्रों से एक साथ ही निकाल दिया ।४३। जिससे अश्विनी कुमार नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । जो देवों के वैद्य हुए हैं तदुपरांत महातेजस्वी श्वेत नामक पुत्र का जन्म हुआ ।४४। इस भाँति तपती, शनि और सावर्णि छाया की एवं पहले कहे हुए यमुना और यम संज्ञा की सन्तानें हुईं ।४५

---

१. चक्रमजरम् । ३. सवर्णायास्तथात्मजौ ।

भार्या लब्धा वपुर्दिव्यं तथा पुत्राश्च भारत । सप्तम्यां देवदेवस्य सर्वमेवमिदं यतः ॥
अनेन कारणेनेष्टा सदा देवस्य सप्तमी ॥४६
सप्तम्यां सोपवासस्तु रात्रौ भुञ्जीत यो नरः। कृत्वोपवासं षष्ठयां तु पञ्चम्यामेककालभुक् ॥४७
दत्त्वा सुसंस्कृतं शाकं भक्ष्यभोज्यैः समन्वितम्। देवाय ब्राह्मणेभ्यश्च रात्रौ भुञ्जीत वाग्यतः ॥४८
यावज्जीवं नरः कश्चिद्व्रतमेतच्चमेतच्चरेदिति । तस्य श्रीर्विजयश्चैव त्रिवर्गश्चापि वर्धते ॥४९
मृतश्च स्वर्गमायाति[1] विमानवरमास्थितः । सूर्यलोके स रमते मन्वन्तरणान्बहून् ॥
इह चागत्य कालान्ते नृपः शान्ति समन्वितः ॥५०
पुत्रपौत्रैः परिवृतो दाता स्यान्नृपतिश्चिरम् । भुनक्ति हि धरां राजन्विग्रहैश्चाजितः परैः ॥५१
ये नरा राजशार्दूल शाकाहारेण सप्तमीम् । उपोष्य लब्धं तत्तीर्थं पित्र्यं वै राजसंज्ञिकम् ॥५२
कुरुणा तव पूर्वेण शाकाहारेण सप्तमीम् । धर्मक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं कृतं तस्य विवस्वता ॥५३
सप्तमी नवमी षष्ठी तृतीया पञ्चमी नृप । कामदास्तिथयो ह्येता इहैव नरयोषिताम् ॥५४
सप्तमी माघमासे तु नवम्याश्वयुजे मता । षष्ठी भाद्रपदे धन्या वैशाखे तु तृतीयिका ॥५५
पुण्या भाद्रपदे प्रोक्तापञ्चमी नागपञ्चमी । इत्येतास्तेषु मासेषु विशेषास्तिथयः स्मृताः ॥५६
शाकं सुसंस्कृतं कृत्वा यश्च भक्त्या समन्वितः। दत्त्वा विप्रे यथाशक्त्या पश्चाद्भुङ्क्ते निशि व्रती ॥५७

हे भारत ! सूर्य को सप्तमी तिथि में ही स्त्री पुत्र और सुन्दर शरीर की प्राप्ति हुई है, इसी लिए सूर्य को सप्तमी अत्यन्त प्रिय है ।४६। इस प्रकार जो पुरुष पंचमी में एक बार भोजन करके षष्ठी में उपवास एवं सप्तमी की रात में साग एवं उत्तम भक्ष्य पदार्थ सूर्य और ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए स्वयं भी मौन होकर भोजन करता है एवं जीवन पर्यंत इस व्रत को इसी भाँति करता रहता है उसकी भी विजय होती है एवं त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) नित्य उन्नति प्राप्त करते है ।४७-४९। और मरण के पश्चात् सुन्दर विमान पर बैठ कर स्वर्ग तथा सूर्य लोक में अनेक मन्वन्तरों की समयावधि तक रमण करता है और कालान्तर में यहाँ आने पर शांत स्वभाव वाला राजा होता है ।५०। ऐसे व्यक्ति पुत्र पौत्र से युक्त होकर विविध प्रकार का दान करते हुएं अधिक काल तक पृथिवी का उपयोग करते हैं और शत्रुओं द्वारा उनकी पराजय कभी नहीं होती ।५१। हे राजशार्दूल ! जो लोग इस प्रकार रह कर सप्तमी में केवल साग का भोजन करते हैं उन्हें अपना पैतृक राज्य एवं पुष्कर तीर्थ प्राप्त होता है ।५२। तुम्हारे पूर्वज कुरु ने भी इस सप्तमी में केवल शाकाहार किया था इसीलिए भगवान् सूर्य ने उनके कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बना दिया ।५३

हे नृप ! इसी प्रकार सप्तमी, नवमी, षष्ठी तृतीया और पंचमी तिथियाँ स्त्रियों और पुरुषों के मनोरथ को सफल करने वाली हैं ।५४। माघ मास की सप्तमी, आश्विन मास की नवमी, भादों की षष्ठी, वैशाख की तृतीया और भादों की पंचमी जिसे नागपंचमी कहते हैं, ये तिथियाँ इन मासों में पुण्य स्वरूपा एवं विशेषता प्रदान करने वाली हैं ।५५-५६

साग को सुन्दर ढंग से बनाकर व्रती, होकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को भोजन करावे। रात में स्वयं भी

---

१. आप्नोति ।

कार्तिके शुक्लपक्षस्य ग्राह्येयं कुरुनन्दन । चतुर्भिर्वापि मासैस्तु पारणं प्रथमं स्मृतम् ॥५८
अगस्त्यकुसुमैश्चात्र पूजा कार्या विभावसोः । विलेपनं कुङ्कुमं तु धूपश्चैवाप राजितैः ॥५९
स्नानं च पञ्चगव्येन तमेव प्राशयेत्ततः । नैवेद्यं पायसं चात्र देवदेवस्य कीर्तितम् ॥६०
तदेव देयं विप्राणां शाकं भक्ष्यमथात्मना । शुभशाकसमायुक्तं भक्ष्यपेयसमन्वितम्[1] ॥६१
द्वितीये पारणे राजञ्छुभगन्धानि यानि वै । पुष्पाणि तानि देवस्य तथा श्वेतं च चन्दनम् ॥६२
अगुरुश्चापि धूपोऽत्र नैवेद्यं गुडपूपकाः । स्नानं कुशोदकेनात्र प्राशनं गोमयस्य तु ॥६३
तृतीये करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् । धूपानां गुग्गुलश्चात्र प्रियो देवस्य सर्वदा ॥६४
शाल्योदनं तु नैवेद्यं दधिमिश्रं महामते । तमेव ब्राह्मणानां च भक्ष्यलेह्यसमन्वितम् ॥
कालशाकेन च विभो युक्तं दद्याद्विचक्षणः ॥६५
गौरसर्षपकल्केन स्नानं चात्र विदुर्बुधाः । तस्यैव प्राशनं धन्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥६६
तृतीये पारणस्यान्ते महद्ब्राह्मणभोजनम् । श्रवणं च पुराणस्य वाचनं चापि शस्यते ॥६७
देवस्य पुरतस्तात ब्राह्मणानां तथाग्रतः । ब्राह्मणाद्वाचकाच्छ्राव्यं नान्यवर्णसमुद्भवात् ॥
अथ तान्ब्रह्मणान्सर्वान्भक्त्या शक्त्या च पूजयेत् ॥६८
वाचकस्यामले राजन्वाससी सन्निवेदयेत् । वाचके पूजिते देवः सदा तुष्यति भास्करः ॥६९

भोजन करे ।५७। यह व्रत कार्तिक शुक्ल पक्ष से आरम्भ करना चाहिए । हे कुरुनंदन ! इसी प्रकार चार मास का व्रत रहकर अन्त में पारण करे तो वह प्रथम पारण कहा जाता है ।५८। इसमें अगस्त्य के फूल अपराजिता के फूल से सूर्य की पूजा करते हुए कुंकुम का लेपन एवं धूप प्रदान भी करना चाहिए ।५९। इसी प्रकार पंचगव्य से सूर्य को स्नान कराकर नैवेद्य एवं शरीर का भोजन अर्पित करे और यही उत्तम साग के साथ भक्ष्य-पेय ब्राह्मण को भी भोजन कराये ।६०-६१। हे राजन् ! दूसरे पारण में सुगन्धित पुष्प और श्वेत चन्दन, गुग्गुल का धूप, नैवेद्य गुड़ के बने हुए मालपूआ इन वस्तुओं से पूजन एवं गोमय और कुशोदक से स्नान कराकर चरणामृत के रूप में उसको ग्रहण करना चाहिए ।६२-६३। तीसरे पारण में कनेर का फूल, रक्त चन्दन और गुग्गुल का धूप अर्पित करना चाहिए क्योंकि ये वस्तुऐं (सूर्य) देव को अत्यन्त प्रिय हैं ।६४। इसी प्रकार शाली, चावल का भात, दही नैवेद्य-मिश्रित देकर भक्ष्य लेह्य समेत उसे तथा सामयिक शाग भी ब्राह्मण को अर्पित करे ।६५। इसमें व्रत-विधान सफेद सरसों के तेल से मिश्रित स्नान कराना विद्वानों ने बताया है और उसी का भोजन भी करे क्योंकि यह प्रशस्त एवं सभी पापों का नाशक है ।६६। तीसरे पारण के अनन्तर वाले पारण में केवल अनेक ब्राह्मणों के भोजन और पुराण का सुनना या पढ़ना बताया गया है।६७। हे तात ! देव या ब्राह्मण के सामने वाचक (वक्ता) ब्राह्मण ही होना चाहिए। अन्य उससे भी नहीं। उसी से भक्ष्य करें। इसलिए भक्ति पूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार उस वाचक की पूजा करनी चाहिए ।६८। कथा वाचने वाले (ब्राह्मण) को स्वच्छ धवल दो वस्त्र प्रदान करना चाहिए, इसलिए कि वाचक की पूजा करने से सूर्य देव सदा प्रसन्न रहते हैं ।६९। हे कुरुनन्दन ! इस व्रत में

---

१. परभक्ष्यसमन्वितम् ।

करवीरं यथेष्टं तु तथा रक्तं च चन्दनम् । यथेष्टं गुग्गुलं तस्य यथेष्टं पायसं सदा ।।७०
यथेष्टा मोदकास्तस्य यथा वै ताम्रभाजनम् । यथेष्टं च घृतं तस्य यथेष्टो वाचकः सदा ।।
पुराणं च यथेष्टं वै सवितुः कुरुनन्दन ।।७१
इत्येषा सप्तमी पुण्या शाकाह्वा गोपतेः सदा । यामुपोष्य नरो भक्त्या भाग्यवांश्च[1] प्रजायते ।।७२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
शाकसप्तमीव्रतवर्णनंनाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।४७।

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

शतानीक उवाच

विस्तराद्वद विप्रेन्द्र सप्तमीकल्पमुत्तमम् । महाभाग्यं च देवस्य भास्करस्य महात्मनः ।।१

सुमन्तुरुवाच

अत्रैवाहुर्महात्मानः सम्वादं पुण्यमुत्तमम् । कृष्णेन सह सत्वेन स्वपुत्रेण महीपते ।।२
भक्त्या प्रणम्य विधिवद्वासुदेवं जगद्गुरुम् । इहामुत्र हितं शांबः[2] पप्रच्छ ज्ञानमुत्तमम् ।।३
जातो जन्तुः कथं दुःखैर्जन्मनीह न बाध्यते । प्राप्नोति विविधान्कामान्कथं च मधुसूदन ।।४

करवीर (कनेर) का फूल, रक्तचन्दन, गुग्गुल, खीर, लड्डू, ताँबें का पात्र, घी और वक्ता (कथावाचक) एवं सूर्य पुराण का पाठ यथेष्ट होना चाहिए ।७०-७१। सूर्य की शाक नाम की इस सप्तमी में भक्तिपूर्वक उपवास रहकर मनुष्य भाग्यवान् होता है, यह सदैव पुण्य स्वरूप है ।७२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में शाक सप्तमी व्रत वर्णन नामक
सैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४७।

अध्याय ४८

आदित्य माहात्म्य वर्णन

शतानीक बोले—हे विप्रेन्द्र ! सप्तमी कल्प का वर्णन जिसमें महातमा सूर्य देव के प्राप्त सौभाग्य का वर्णन किया गया है, विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए ! ।१।

सुमन्तु ने कहा—हे महीपते ! इसी विषय पर कृष्ण तथा उनके पुत्र शाम्ब का पुण्य रूप संवाद हुआ है, मैं वही बता रहा हूँ, सुनो ! एक बार जगद्गुरु भगवान् कृष्ण को भक्ति पूर्वक प्रणाम कर साम्ब ने अपने उत्तम ज्ञान की प्राप्ति के लिए जो लोक-परलोक दोनों के हित धारक बनाया गया है उनसे पूछा । हे मधुसूदन ! इस संसार में उत्पन्न होकर जीव किस प्रकार अनेक दुःख से मुक्त होते हुए भाँति-भाँति के

---

१. भार्गव्यां न विजायते । २. सर्वत्र शांबशब्दे सांब इति दंत्यादिरपिपाठः पुस्तकान्तरेषु ।

परत्र स्वर्गमाप्नोति सुखानि विविधानि च । अनुभूयोचितं कालं कथं मुक्तिमवाप्नुते ॥५
दृष्ट्वैवं मम निर्वेदो जातो व्याधिर्जनार्दन । दृष्ट्वेमं जीविताशापि रोचते न हि मे क्षणम् ॥६
किं त्वेवमकृतार्थोऽस्मि यन्मे प्राणा न यान्ति हि । संसारे न पतिष्यामि जराव्याधिसमन्विते ॥७
येनोपायेन तन्मेऽद्य प्रसादं कुरु सुव्रत । आधिव्याधिविनिर्मुक्तो यथाहं स्यां तथा वद ॥८

वासुदेव उवाच

देवतायाः प्रसादोऽन्यः सर्वस्य परमो मतः । उपायः शाश्वतो नित्य इति मे निश्चिता मतिः ॥९
अनुमानागमाद्यैश्च सम्यगुत्पादिता मया । कदाचिदन्यथा कर्तुं धीयते केनचित्क्वचित् ॥१०
प्रसादो जायते तस्य सम्यगाराधनक्रिया । यदा तां च समुद्दिश्य कृता तद्वेदिना तथा ॥११
विशिष्टा देवता सम्यग्विशिष्टेनैव देहिना । आराधिता विशिष्टं च ददाति फलमीहितम् ॥१२

शाम्ब उवाच

अस्तित्वे न च सन्देहः केषाञ्चिद्देवतां प्रति । नास्तीति निश्चयोऽन्येषां विशिष्टास्त्वं कथाः कुरु ॥१३

वासुदेव उवाच

सिद्धं तु देवतास्तित्वमागमेषु बहुष्वथ । प्रमाणमागमो यस्य तस्यास्तित्वं च विद्यते ॥१४
अनुमानेन वाप्यद्य तदस्तित्वं प्रसाध्यते । प्रमाणमस्ति यस्येदं सिद्धागमस्येह चास्तिता ॥१५

मनोरथ को सफल करता है ।२-४। अर्थात् स्वर्ग प्राप्त करने पर उसे अनेक भाँति के सुख तथा सांसारिक मुक्ति कैसे प्राप्त होगी ।५। हे जनार्दन ! इस प्रकार (सांसारिक) जीवों को देख कर मुझे महान रोग हो गया है और विरक्ति सी हो गयी है । यहाँ तक कि मुझे अब एक क्षण का जीवन भी अच्छा नहीं लग रहा है ।६। किंतु (क्या करूँ) मेरे प्राण निकल नहीं रहे हैं (प्राण निकलने के लिए प्रयत्न करता हुआ भी) असफल हो रहा हूँ । हे सुव्रत ! जिस उपाय द्वारा बुढ़ापा एवं विविध रोग पूर्ण इस प्रकार संसार में भविष्य में मुझे न आना पड़े तथा इस समय शारीरिक मानसिक रोगों से मुक्ति प्राप्ति हो आप मुझे उसे बताने की कृपा करें ।७-८

वासुदेव ने कहा—सभी लोगों की सम्मति है कि इस विषय में देवताओं की प्रसन्नता के अतिरिक्त कोई अन्य दृढ़ उपाय नहीं है और यही मुझे भी निश्चित है ।९। इसी प्रकार अनुमान एवं प्रमाण आदि द्वारा मैंने देवताओं को उत्पन्न किया है । यदि कोई (रोग आदि का प्रतीकार करके) सुखी जीवन करना चाहे तो देवताओं का ज्ञान रखने कर उसी उद्देश्य से उनकी आराधना करके उन्हें प्रसन्न करे ।१०-११। क्योंकि महत्त्वपूर्ण मनुष्य, महत्वपूर्ण देवता की आराधना करता है तो उसे महत्त्वपूर्ण फल भी प्राप्त होता है ।१२

साम्ब ने कहा—सर्व प्रथम तो यद्यपि कुछ लोगों को देवताओं के होने में संदेह नहीं है पर कुछ लोगों की सम्मति है कि देवता है ही नहीं, तो आप विशिष्ट (देवता) की बातें कैसे कर रहे हैं ।१३

कृष्ण ने कहा—वेदों में देवताओं के होने में प्रमाण अधिक हैं इसलिए जिसमें आगम भी प्रमाणित करता है उसका अस्तित्व होना निश्चित भी है ।१४। अनुमान द्वारा भी उनका अस्तित्व सिद्ध है क्योंकि

प्रत्यक्षेणापि चास्तित्वं देवतायां प्रसाध्यते । तच्चावश्यं प्रमाणं च दृष्टं सर्वशरीरिणाम् ॥१६
यदि नामा विविक्तास्तु तिर्यग्योनिगता अपि । नोत्पद्यते तथा ह्यस्ति व्यवहारो यथा स्थितः ॥१७

शाम्ब उवाच

प्रत्येक्षेणोपलभ्यन्ते सम्यग्वै यदि देवताः । अनुमानागमाभ्यां च तदर्थं न प्रयोजनम् ॥१८

वासुदेव उवाच

प्रत्यक्षेणोपलभ्यन्ते न सर्वा देवताः क्वचित् । अनुमानागमैर्गम्याः सन्ति चान्याः सहस्रशः ॥१९

शाम्ब उवाच

या चाक्षगोचरा काचिद्विशिष्टेष्टफलप्रदा । तामेवादौ ममाचक्ष्व कथयिष्यस्यथापराम् ॥२०

वासुदेव उवाच

प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः । तस्मादभ्यधिका काचिद्देवता नास्ति शाश्वती ॥२१
यस्मादिदं जगज्जातं लयं यास्यति यत्र च । कृतादिलक्षणः कालः स्मृतः साक्षाद्दिवाकरः ॥२२
ग्रहनक्षत्रयोगाश्च राशयः[1] करणानि च । आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ वायवोऽनलः ॥२३

अनुमान प्रमाण वाले का भी अस्तित्व माना ही जाता है ।१५। इस भाँति प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा देवताओं का अस्तित्व तो सिद्ध ही है क्योंकि उस प्रमाण को सभी लोग देखते हैं और इसीलिए वह आवश्यक प्रमाण कहा गया है ।१६। पशु पक्षी आदि योनियों में प्राप्त जीव को सामान्य विशेष विवेचन की शक्ति नहीं होती है उसी भाँति अल्प शक्ति वाले को (पुरुष को) भी किसी विशिष्ट व्यक्ति के अस्तित्व व्यवहार का ज्ञान रखना महा कठिन है ।१७

साम्ब ने कहा—यदि प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा देवताओं का अस्तित्व सिद्ध है तो उसके लिए अनुमान एवं आगम को प्रमाण रूप में स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।१८

वासुदेव बोले—सभी देवताओं का अस्तित्व प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा ही संपन्न होना असंभव है और अनुमान प्रमाण द्वारा हजारों देवताओं का अस्तित्व सिद्ध है अतः इसे भी प्रमाण रूप में अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।१९

साम्ब ने कहा—यदि देवता जो महत्त्वपूर्ण फल प्रदान करता है और सामने दृष्टिगोचर भी हो रहा है तो पहले उसी का महत्त्व मुझे सुनाने की कृपा करें पश्चात् औरों का भी महत्व बताइयेगा ।२०

कृष्ण ने कहा—सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं और संसार के नेत्र भी हैं, दिन को करने वाले हैं अतः इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं नित्य स्थित रहने वाला कोई अन्य देवता नहीं है ।२१। सूर्य द्वारा ही इस जगत् का जन्म हुआ है इन्ही में इसकी स्थिति एवं लय भी होता है और कृत आदि युगों की काल व्यवस्था भी इन्ही द्वारा संपन्न हुई है ।२२। इसलिए ग्रह, नक्षत्र, योग, राशि, करण, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार, वायु, अग्नि, रुद्र प्रजापति, भूलोक, भुवर्लोक एवं स्वर्ग तथा सभी लोक पर्वत, नदियाँ, समुद्र , जीव समूह

---

१. यामदण्डक्षणानि च ।

शक्रः प्रजापतिः सर्वे भूर्भुवःस्वस्तथैव च । लोकाः सर्वे नगा नागाः सरितः सागरास्तथा ॥
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्वयं हेतुर्दिवाकरः ॥२४
अस्येच्छया जगत्सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् । स्थितं प्रवर्तते चैव स्वार्थे चानुप्रवर्तते ॥२५
प्रसादादस्य लोकोऽयं चेष्टमानः प्रदृश्यते । अस्मिन्नभ्युदिते सर्वमुदेदस्तमिते सति ॥
अस्तं यातीत्यदृश्येन किमेतत्कथ्यते मया ॥२६
तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति । यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते ॥२७
इतिहासपुराणेषु अन्तरात्मेति गीयते । बाह्यान्वैति सुषुम्णास्थः स्वप्नस्थो जाग्रतः स्थितः ॥२८
अस्तं यातीत्यदृष्टेन किमेतत्कथ्यते मया । तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥२९
यन्न वाह इति ख्यातः प्रेरकः सर्वदेहिनाम् । नानेन रहितं किञ्चिद्भूतमस्ति चराचरम् ॥३०
यो वेदैर्वेदविद्भिश्च विस्तरेणेह शक्यते । वक्तुं वर्षशतैर्नासौ शक्यः संक्षेपतो मया ॥३१
[1]तस्माद्गुणाकरः ख्यातः सर्वत्रायं दिवाकरः । सर्वेशः सर्वकर्तायं सर्वभर्तायमव्ययः ॥३२
जाता मत्स्यादयः सम्यग्गतिमन्तो महेश्वरात् । मण्डलव्यतिरिक्तं च जानामि परमार्थतः ॥३३
तथास्य मण्डलं कृत्वा[2] यो ह्येनमुपतिष्ठते । प्रातः सायं च मध्याह्ने स याति परमां गतिम् ॥३४
किं पुनर्मण्डलस्थं यो जपते परमार्थतः । विविधाः सिद्धयस्तस्य भवन्ति न तदद्भुतम् ॥३५

आदि ये सभी सूर्य द्वारा ही निष्पन्न होते हैं ।२३-२४। इन्हीं की इच्छा द्वारा यह समस्त संसार जिसमें चर अचर की सृष्टि है उत्पन्न हो कर अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त होता है ।२५। इस प्रकार इन्ही की प्रसन्नता वश संसार की समस्त चेष्टायें उत्पन्न होती हैं अर्थात् इनके उदय से सबका उदय एवं अस्त होने से सब का अस्त होना निश्चित है । इसमें मुझे और कहना नहीं है ।२६। चारों वेदो में इन्हें 'परमात्मा' बताया गया है, अतः इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण देवता न कोई हुआ और न किसी के होने की संभावना है ।२७। इसी प्रकार इतिहास एवं पुराणों में इन्हें 'अन्तरात्मा' भी कहा गया है तथा जागृति स्वप्न सुषुप्ति में इन्हीं को भासित भी बताया गया है ।२८। किन्तु ये भी अदृष्ट वश अस्त होते हैं । और इस प्रकार इनसे बढ़कर न कोई देवता है न हुआ है और न होगा । अतः मुझे इसमें कहना ही क्या है ।२९। यही संसार के होने के नाते ये 'वाह' कहे जाते हैं इनके बिना कोई भी चर अचर है ही नहीं ।३०। कोई भी वैदिक विद्वान् वेद के द्वारा या यों ही विस्तारपूर्वक जिसकी महिमा का ज्ञान सैकड़ों वर्षों में कर सका है उसे मैं कैसे कर सकता हूँ ।३१। क्योंकि सभी जगह सूर्य के गुणविधि होने की ख्याति है यही सब के ईश, कर्त्ता, पालन-पोषण करने वाले एवं अविनाशी हैं ।३२। मछली आदि जितने गतिमान् जीव हैं सभी इन्हीं द्वारा उत्पन्न है, केवल मंडल छोड़ कर और अन्य सभी इनकी वस्तुएँ परमार्थ के लिए ही निहित हैं ।३३

इसलिए प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायंकाल में जो मंडल बनाकर इनकी पूजा करते है उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है ।३४। पुनः जो प्रत्यक्ष मण्डल बनाकर परमार्थतः इनकी आराधना करता है, (उसके लिए क्या कहना है) । भाँति-भाँति की सिद्धियाँ उसे प्राप्त होती हैं । इसमें आश्चर्य की बात ही क्या

---

१. तस्मात्क्षयकरोयोऽसौ । २. दृष्ट्वा ।

मण्डले च स्थितं देवं देहे चैनं व्यवस्थितम् । स्वबुद्ध्यैवमसम्मूढो यः पश्यति स पश्यति ।।३६
ध्यात्वैवं[1] पूजयेद्यस्तु जपेद्यो जुहुयाच्च यः । सर्वान्प्राप्नुयात्कामान्गच्छेद्धर्मध्वजं तथा ।।३७
तस्मात्त्वमिह दुःखानामन्तं कर्तुं यदीच्छसि । इहामुत्र च भोगानां भुक्तिं मुक्तिं च शाश्वतीम् ।।३८
आराधयार्कमर्कस्थो मन्त्रैरिह तदात्मनि । अङ्गैर्वृतं वृते चैव स्थाने शास्त्रेण शोधिते ।।३९
कवचेन च सञ्छन्नं सर्वतोऽस्त्रेण रक्षिते । एवं प्राप्स्यसि यत्नेन सर्वदा फलमीप्सितम् ।।४०
दुःखमाध्यात्मिकं नेह तथा चैवाधिभौतिकम् । आधिदैविकमत्युग्रं न भविष्यति ते सदा ।।४१
न भयं विद्यते तेषां प्रपन्ना ये दिवाकरम् । इहामुत्र सुखं तेषामच्छिद्रं जायते सुखम्[2] ।।४२
सूर्येणेदं ममादिष्टं साक्षाद्यज्ज्ञानमुत्तमम् । आराधितेन विधिवत्कालेन बहुना तथा ।।४३
प्राप्यते परमं स्थानं यत्र धर्मध्वजः स्थितः । एतत्संक्षिप्तमुद्दिष्टं क्षिप्रसिद्धिकरं परम् ।।
यथा नान्यदतोऽस्तीति स्वयं सूर्येण भाषितम् ।।४४
उपायोऽयं समाख्यातस्तव संक्षेपतस्त्विह । यस्मात्परतरो नास्ति हितोपायः शरीरिणाम् ।।४५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।४८।

है ।३५। मंडल में इस देव को अपने देह के भीतर स्थिर अपनी बुद्धि द्वारा जो ज्ञानी जानता है, वही वास्तव में इन्हें जानता है ।३६। इस प्रकार जो इनका ध्यान कर पूजन, जप एवं हवन करता है उसके सभी मनोरथ सफल होते हैं एवं धर्म ध्वज (भगवान्) को प्राप्त होता है ।३७। इसलिए यदि तुम्हें भी दुःखों का अंत (नाश) लोक, परलोक का भाग एवं प्रबल भुक्ति-मुक्ति की इच्छा हो तो सूर्य की जिनके अंग आदि शास्त्र से संशोधित एवं कवच से आवृत्त (ढका) तथा अस्त्रों से रक्षित हैं मंत्र पूर्वक आराधन करे तो सदैव अभिलषित सिद्धि की प्राप्ति होती रहेगी ।३८-४०। उसके परिणाम स्वरूप आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक में अत्यन्त दुःख तुम्हें कभी नहीं होगा ।४१। क्योंकि जो दिवाकर के शरणागत है उन्हें अभयदान तथा लोक-परलोक का पूर्ण सुख प्राप्त होता है ।४२। इसलिए सूर्य के उद्देश्य से मैंने जो कुछ उत्तम ज्ञान तुमसे कहा है, उसे विधि-पूर्वक अधिक दिनों तक करते रहना चाहिए । उससे उत्तम स्थान प्राप्त होता है जहां स्वयं भगवान् विराजमान रहते हैं ।४३। इस प्रकार इस संक्षिप्त कथा को जो शीघ्र मनोरथ सफल करने वाली है और सब से उत्तम है स्वयं सूर्य ने कहा है । मैंने संक्षेप में तुमसे कहा है ।४४। इसलिए संक्षेप में ही इस उपाय को बताया है क्योंकि मनुष्यों के हित के लिए इससे बढ़कर कोई अन्य उपाय नहीं है ।४५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य माहात्म्य वर्णन नामक अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४८।

---

१. देवम् । २. ध्रुवम् ।

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यमाहात्म्यवर्णनम्

वासुदेव उवाच

अथार्चनविधिं वक्ष्ये धर्मकेतोरनुत्तमम् । सर्वकामप्रदं पुण्यं विघ्नघ्नं दुरितापहम् ॥१
सूर्यमन्त्रैः पुरः स्नातो यजेत्तेनैव भास्करम् । यतस्ततः प्रवक्ष्यामि स्नानमादौ समासतः ॥२
आचान्तस्तमुपालभ्य मुद्रया शुचिशुद्धया । कृत्वा नीराजनं पुत्र संशोध्य च जलं ततः ॥३
स्नानाद्धृदयपूतेन[1] मन्त्रेण मत्कुलोद्वह । उत्थायाचम्य तेनैव वाससी परिधाय च ॥४
द्विराचम्याथ सम्प्रोक्ष्य तनुं सप्ताक्षरेण च । उत्थायाचम्य तेनैव रवेः कृत्वार्घ्यमेव च ॥५
दत्वा तेन जपित्वा तं स्वकं ध्यात्वार्कवद्धृदि । गत्वा चायतनं शुभ्रमार्कमार्कीं तनुं यजेत् ॥६
पूरकं कुम्भकं कृत्वा रेचकं च समाहितः । कृत्वोङ्कारेण दोषांस्तु हन्यात्कायादिसम्भवान् ॥७
वायव्याग्नेयमाहेन्द्रवारुणीभिर्यथाक्रमम् । किल्बिषं वारुणाद्भिश्च हन्यात्सिद्धयर्थमात्मनः ॥८
शोषणं दहनं स्तम्भं प्लावनं च यथाक्रमात् । वाय्वग्नीन्द्रजलाख्याभिर्धारणाभिः कृते सति ॥९

अध्याय ४९

सूर्य माहात्म्य वर्णन

वासुदेव बोले—धर्म के केतु (ध्वजा) रूपी सूर्य के पूजन की विधि, जो उत्तम, समस्त मनोरथ सफल करने वाली, पुण्य स्वरूप, विघ्ननाशक एवं पापनाशक है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! ।१। सूर्य के मंत्रों का उच्चारण करते हुए स्नान और सूर्य का पूजन करना चाहिए अतः पहले संक्षेप में स्नान विधि कह रहा हूँ ।२। हे पुत्र ! सर्वप्रथम आचमन करके पवित्र और शुद्ध मुद्रा द्वारा (सूर्य को) देखकर उनका नीराजन करना चाहिए उपरांत जल को अभिमंत्रित कर स्नान करे और पश्चात्-पवित्रता पूर्ण मंत्रों के उच्चारण करते हुए उठकर आचमन करे और उन्हीं मंत्रों द्वारा धोती तथा दुपट्टा धारण करे ।३-४। पुनः दो आचमन करके सप्ताक्षर से उच्चारण पूर्वक शरीर प्रोक्षण (पोंछना) आचमन और उसी से अर्घ्य दान दे अनन्तर जप पूर्वक हृदय में ध्यान करते हुए सूर्य के उत्तम मंदिर में जाय और उनकी शारीरिक अर्चना करे ।५-६। और ओंकार पूर्वक प्राणायाम करके जिसमें पूरक, कुम्भक एवं रेचक का विधान है, उसके द्वारा अपने शारीरिक दोषों का नाश करे ।७। उसी प्रकार वायव्य, आग्नेय, पूरब और पश्चिम दिशाओं में स्थित (कलशों के) जलों से अपनी सिद्धि तथा पाप नाश के लिए मार्जन करे ।८। पश्चात् वायवीय, आग्नेयी, माहेन्द्री और वारुणी धारणाओं द्वारा ध्यान का प्रकार शरीर का शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन की क्रिया क्रमशः सुसम्पन्न करे ।९। उपरांत अपने में अत्यन्त शुद्ध की भावना कर

---

१. स्नानादुदयपूतेन मधुना मत्कुलोद्वह ।

ध्यात्वा विशुद्धमात्मानं प्रणमेदर्कमास्थितम् । देहं तेनैव सञ्चिन्त्य पञ्चभूतमयं परम् ।।१०
सूक्ष्मं स्थूलं तथाक्षाणि स्वस्थानेषु प्रकल्प्य च । विन्यस्याङ्गानि खादीनि हृदाद्यानि हृद्यादिषु ।।११
खस्वाहा हृदयं भानोः खमर्काय शिरस्तथा । उल्का स्वाहा शिखार्कस्य यै च हुं कवचं परम् ।।
खां फडस्त्रं च संहाराश्चादितः प्रणवः कृतः ।।१२
स पूर्वे प्रणवस्याथो मन्त्रकर्मप्रसिद्धये । एभिर्जलं त्रिधा जप्त्वा स्नानद्रव्याणि तेन च ।।१३
सम्प्रोक्ष्य पूजयेत्सूर्यं गन्धपुष्पादिभिः शुभैः । ततो मूर्तिषु सर्वासु रात्रावग्नौ प्रपूजयेत् ।।१४
प्राक्पश्चिमोदगभ्यग्रां प्रातः सायं निशासु वै । सप्ताक्षरेण सन्मन्त्रं ध्यात्वा च पद्मकर्णिकाम् ।।१५
आदित्यमण्डलान्तस्थं तत्र देहं प्रकल्पयेत् । प्रभामण्डलमध्यस्थं ध्यात्वा देहं यथा पुरा ।।
सर्वलक्षणसम्पूर्णं सहस्रकिरणोज्ज्वलम् ।।१६
रक्तैर्गन्धैश्च पुष्पैश्च चरुभिर्बलिभिस्तथा । रक्तचन्दनमिश्रैर्वा वस्त्रैरावरणैः शुभैः ।।१७
आवाहनादिकर्माणि रक्षां तु हृदयेन च । तच्चित्तश्च सदा कुर्याज्ज्ञात्वा कर्मक्रमं बुधः ।।१८
कृत्वा चावाहनं मन्त्रैरेकत्र स्थापनं ततः । यावद्यागावसानं तु सान्निध्यं तत्र कल्प्य च ।।१९
दत्त्वा पाद्यादिकां पूजां शक्त्या वार्घ्यं निवेद्य च । जपित्वा विधिवद्ध्यात्वा ततो देवीं विसर्जयेत् ।।२०
एष कर्म क्रमः प्रोक्तः सर्वेषां यजनक्रमात् । प्रवक्ष्यामि जपस्थानं पद्मेशावरणे तथा ।।२१

अपने में स्थित सूर्य को प्रणाम करे और उसी भाँति उनकी पांच भौतिक शरीर का ध्यान करें ।१०। ध्यान करते समय सूक्ष्म या स्थूल (शरीर) आँख एवं अपने अपने स्थानों में प्रत्येक अंगों इन्द्रियों और हृदय आदि की कल्पना करते हुए ओंकार पूर्वक मंत्रों के उच्चारण 'ख स्वाहा' से हृदय, 'खं अर्काय स्वाहा, से शिर, 'उल्काय स्वाहा' से शिखा, 'हुं से कवच, खां फट् से अस्त्र और संहार करे दूसरे (उनके स्नान के लिए) जल को तीन बार अभिमंत्रित करे और उसी से स्नान द्रव्य का सेचन कर गंध और पुष्पों द्वारा सूर्य का पूजन करें । पश्चात् उनकी सभी मूर्तियों के पूजन रात में अग्नि में करें ।११-१४। इस भाँति प्रातः, सायंकाल और रात में पूर्व-पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं में क्रमशः कमल के बीच में स्थित सूर्य मंडल तथा मंडल में उनकी शरीर का ध्यान और कल्पना करे । पुनः प्रभामंडल के मध्य में उनकी देह का जो समस्त लक्षणों से पूर्ण एवं सहस्रों किरणों द्वारा प्रदीप्त है, ध्यान करते हुए रक्त पुष्प, चंदन, गेरू[1], रक्तचंदनमिश्रित की बलि तथा उत्तम वस्त्रों को उन्हें धारण कराये तथा हृदय से आवाहन आदि कर्म एवं दिग्रक्षा भी उनमें लीन होकर कर्म के क्रमों को जानते हुए नित्य करनी चाहिए ।१५-१८ मंत्रों द्वारा आवाहन पूर्वक एक स्थान में उन्हें स्थापित करके जब तक यज्ञ समाप्त न हो, उनके सानिध्य की कल्पना करते हुए शक्त्यनुसार पाद्य, अर्घ्य, नैवेद्य और जप समर्पित करे और इस प्रकार विधि पूर्वक ध्यान करने के उपरांत देवीका विसर्जन करे ।१९-२०

क्योंकि पूजन करने में सभी लोगों के लिए कर्म का यही क्रम बताया गया है । अब कमलेश सूर्य के आवरण करने में जप का स्थान बता रहा हूँ सुनो ! ।२१। कमल की कर्णिका में सूर्य को स्थापित करके

---

१. जवा या चावल की खीर

आदित्यं कर्णिकासंस्थं दलेष्वङ्गानि पूर्वशः । सोमादीन्राहुपर्यंतान्ग्रहांश्चैवोदगादितः ॥२२
मूर्तिमल्लोकपालांश्च क्रमादावरणेष्वथ । तदस्त्राणि च रक्षार्थं स्वमन्त्रैः पूजयेत्क्रमात् ॥२३
प्रणवैश्चाभिधानैश्च चतुर्थ्या ह्यभियोजितैः । सर्वेषां कथिता मन्त्रा मुद्राश्च कथयाम्यतः ॥२४
व्योममुद्रा रतिः पद्मा महाश्वेतास्त्रमेव च । पञ्चमुद्राः समाख्याताः सर्वकर्मप्रसिद्धये ॥२५
उत्तानौ तु करौ कृत्वा अङ्गुल्यो ग्रथिताः क्रमात् । तर्जनीं यन्ति यावत्ताः समे वाधोमुखे स्थिते ॥२६
तर्जन्यो[1] मध्यमस्यैव ज्येष्ठाग्रे ह्यनुगोपरि । मुद्रेयं सर्वमुद्राणां व्योम मुद्रेति कीर्तिता ॥
मर्दकर्मसु योगोऽयं तथा स्थानं प्रकल्पते ॥२७
पद्मत्प्रसृताः सर्वा महाश्वेता रवेः स्मृता । जवसंनिहितो नित्यं रथारूढो रविः स्मृतः ॥२८
हस्तावूर्द्धमुखौ कृत्वा वामाङ्गुष्ठेन योजितौ । द्रव्याणां शोधने योज्या रक्षार्थं च विशेषतः ॥२९
अनया मुद्रया सर्वं रक्षितं शोधितं भवेत् । अर्घ्यं दत्वा प्रयोक्तव्या पूजान्ते च विशेषतः ॥३०
जपध्यानावसाने च यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः । अनेन विधिना नित्यं जपेदब्दमतन्द्रितः ॥३१
स लभेतेप्सितान्कामानिहामुत्र न संशयः । रोगार्तो मुच्यते रोगाद्धनहीनो धनं लभेत् ॥३२
राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यमपुत्रः पुत्रमाप्नुयात् । प्रज्ञामेधासमृद्धीश्च चिरं जीवति मानवः ॥
सुरूपां लभते कन्यां कुलीना पुरुषो ध्रुवम् ॥३३
सौभाग्यं स्त्री कुलीनापि कन्या च पुरुषोत्तमम् । अविद्यो लभते विद्यामित्युक्तं भानुना पुरा ॥३४
नित्ययागः स्मृतो ह्येष धनधान्यसुखावहः । प्रजापशुविवृद्धिश्च निष्कामस्यापि जायते ॥३५

दलों में उनके अंगों (सहचरों) को पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः स्थापित करे पश्चात् चन्द्र आदि से लेकर राहु तक सभी ग्रहों को भी उत्तर की ओर से स्थापित करना चाहिये।२२। इसी भाँति मूर्तिमान् लोकपालों का जो क्रमशः उनके आवरण की भाँति स्थित रहते हैं और रक्षा के लिए उनके अस्त्रों का भी क्रमशः मंत्र पूर्वक स्थापन पूजन करना चाहिए।२३। इस प्रकार ओंकार पूर्वक (संस्कृत व्याकरण के अनुसार) चतुर्थ्यन्त नामों का उच्चारण करके आवाहनादि समस्त क्रियाएँ सुसम्पन्न करनी चाहिए। उपरान्त सभी के मंत्रों को बता कर अब मैं मुद्राएँ बता रहा हूँ।२४। व्योम, रति, पद्मा, महाश्वेता एवं अस्त्र, ये पांच मुद्रायें सभी कार्यों में सिद्धि दायक है।२५। द्रव्यों के संशोधन तथा उसकी रक्षा के लिए मुद्राओं की विशेषता बतायी गई है। मुद्रा के द्वारा ही सभी लोग संशोधित एवं रक्षित रहते हैं। इसलिए अर्घ्यदान देकर पूजा की समाप्ति में मुद्रा-प्रयोग अवश्य करना चाहिए।२६-३०। अपनी (कार्य) सिद्धि के लिए जप और ध्यान के अंत में भी मुद्राओं के प्रयोग करने चाहिए इसी विधि द्वारा यदि पूरे वर्ष तक जप आदि किये जाँय तो उसके लोक-परलोक के मनोरथ सफल हों। रोगी रोग से मुक्त हो, निर्धन को धन की प्राप्ति हो, तथा राज्य-च्युत को राज्य एवं अपुत्री को पुत्र की प्राप्ति समेत कुशाग्र बुद्धि, समृद्धि तथा दीर्घ जीवन प्राप्त हो। इसी भाँति पुरुष को कुलीन एवं सौन्दर्य पूर्ण कन्या की प्राप्ति स्त्री को उत्तम सौभाग्य कन्या को पुरुष और मूर्ख को विद्या की प्राप्ति हो। इस प्रकार पहले ही सूर्य ने बताया था।३१-३४। इसीलिए इस यज्ञ को नित्य करना चाहिए क्योंकि इसके अनुष्ठान से निष्काम पुरुष को भी धन-धान्य का, सुख सन्तान तथा

तदैकः स्तूयते स्वर्गे शब्दयते च नरोत्तमः । भक्त्या तं पूजयेद्यस्तु नरः पुण्यतरः सदा ॥३६
इह वै कामिकं प्राप्य ततो गच्छेन्मनोः पदम् । द्विजस्तस्य प्रसादेन तेजसा बुधसन्निभः ॥३७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
सूर्यमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनपञ्चशत्तमोऽध्यायः ।४९।

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सप्तमीमाहात्म्यवर्णनम्

वासुदेव उवाच

नैमित्तिकं ततो वक्ष्ये यज्ज्ञात्वा च समासतः । सप्तम्यां ग्रहणे चैव संक्रान्तिषु विशेषतः ॥१
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां हविर्भुक्त्वैकदा दिवा । सम्यगाचम्य सन्ध्यायां वारुणं प्रणिपत्य च ॥२
इन्द्रियाणि च संयम्य कृतं ध्यात्वा स्वपेदधः । दर्भशय्यागतो रात्रौ प्रातः स्नातः सुसंयतः ॥३
ततः सन्ध्यामुपास्याथ पूर्वोक्तं च मनुं जपेत् । जुहुयाच्च तदा वह्निं सूर्याग्नी परिकल्प्य च ॥४
सूर्याग्निकरणं वक्ष्ये तर्पणं च समासतः । अर्चनागारमुल्लिख्य प्रविश्यार्च्य जनैर्जनम् ॥५
प्रक्षिप्यास्तीर्य दर्भश्च पात्राद्यालभ्य च क्रमात् । पवित्रं द्विकुशं कृत्वा साग्रं प्रादेशसम्मितम् ॥६

पशुओं की वृद्धि प्राप्त होती है ।३५। स्वर्ग में वही एक ख्याति प्राप्त राजा कहा जाता है । इस प्रकार भक्ति पूर्वक जो उनका पूजन करता है वह सदैव अधिक पुण्यात्मा होता है ।३६। तथा इस लोक में अपनी कामनाओं की सफलता प्राप्त कर (स्वर्ग में) मनु पद प्राप्त करता है । उनकी प्रसन्नतावश द्विज लोग बुध के समान तेजस्वी होते हैं ।३७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमीकल्प में सूर्य माहात्म्य वर्णन नामक
उनचासवाँ अध्याय समाप्त ।४९।

अध्याय ५०

सप्तमी माहात्म्यवर्णन

वासुदेव बोले—(सूर्य के) नैमित्तिक पूजन को जो विशेषकर सप्तमी तिथि ग्रहण के समय एवं संक्रान्ति के दिनों में ही किया जाता है संक्षेप में बता रहा हूँ सुनो ! ।१। शुक्लपक्ष की सप्तमी के पूर्व षष्ठी में एक बार दिन में हविष्यान्न का भोजन करके संध्या समय में आचमन, सूर्य को नमस्कार एवं इन्द्रिय संयम पूर्वक कुशासन पर स्थित हो ध्यान करते हुए वहीं नीचे शयन भी करके रात व्यतीत करने के पश्चात् प्रातः काल उठकर स्नान संध्योपासन करके पूर्वोक्त मनु मंत्र के जप एवं वह्नि का सूर्य और अग्नि की कल्पनाकर उसमें हवन करे ।२-४। उपरांत सूर्याग्नि करण संक्षेप में एवं तर्पण भी बता रहा हूँ । पूजन करने के मंदिर को चित्रविचित्र मूर्तियों की कारीगरियों से सुशोभित करके (कुशकंडिका) करने के उपरान्त हवन करना चाहिए ।५। (हवन कुंड के चारों ओर) कुश बिछाकर क्रमशः पात्रादि (प्रोक्षणीपात्र एवं प्रणीतापात्र के आचमनपूर्वक कुश के दो दलों से बने हुए पवित्रक को लेकर जिसमें

तेन पात्राणि सम्प्रोक्ष्य संशोध्याथ विलोक्य च । उदगग्रे स्थिते पात्रे प्रज्वाल्याथोल्मुकेन च ॥७
पर्यग्निकरणं कृत्वा तथाज्योत्पवनं त्रिधा । परिमृज्य स्रुवादींश्च दर्भैः सम्प्रोक्षयेत्ततः ॥८
जुहुयात्प्रोक्ष्य तान्वह्नौ तत्रार्कं पूर्ववद् यजेत् । अभूमौ स्थितपात्रेण विष्टरेण तु पाणिना ॥
दानेन यदुशार्दूल नान्तरिक्षे स्थले क्वचित् ॥९
दक्षिणेन स्रुवं गृह्य जुहुयात्पावके बुधः । हृदयेन क्रियाः सर्वाः कर्तव्याः पूर्वचोदिताः ॥१०
अर्कादारभ्य संज्ञार्थं दद्यात्तूष्णीं हुतिं स्थितः । वरुणाय शतैर्माघे सप्तम्यां वरुणं यजेत् ॥११
यथाशक्त्या तु विप्रेभ्यः प्रदद्यात्खण्डवेष्टकान् । दद्याच्च दक्षिणां शक्त्या प्राप्नोति वाञ्छितं फलम् ॥१२
एवं वै फाल्गुने सूर्यं चैत्रे वैशाख एव च । वैशाखे मासि धातारमिन्द्रं ज्येष्ठे यजेद्रविम् ॥१३
आषाढे श्रावणे मासि नभं भाद्रपदे यमम् । तथाश्वयुजि पर्जन्यं त्वष्टारं कार्तिके यजेत् ॥१४
मार्गशीर्षे च मित्रं च पौषे विष्णुं यजेद्यदि । संवत्सरेण यत्प्रोक्तं फलमिष्टं दिनेदिने ॥
तत्फलमाप्नुयात्क्षिप्रं भक्त्या श्रद्धान्वितो व्रती ॥१५
एवं संवत्सरे पूर्णे कृत्वा वै काञ्चनं रथम् । सप्तभिर्वाजिभिर्युक्तं नानारत्नोपशोभितम् ॥१६
आदित्यप्रतिमां मध्ये शुद्धहेम्ना कृतां शुभाम् । रत्नैरलङ्कृतां कृत्वा हेमपद्मोपरिस्थिताम् ॥१७

अग्रभाग हो तथा वह प्रादेश मात्र का हो उसी द्वारा (यज्ञ) पात्रों का प्रोक्षण, संशोधन और (पिघलाये हुए घी का) निरीक्षण करके उत्तर की ओर किये हुए पात्र (आज्यस्थाली) में रखे । पश्चात् जलती हुई एक समिधा से उसे प्रज्वलित करे ।६-८। उपरान्त अग्नि का आज्यस्थाली द्वारा एक प्रदक्षिणा कर व्यस्त हाथ के अंगूठे और कनिष्ठा के द्वारा घी का तीन बार उत्प्लावन (उपर को धीरे से उछालना) रूपक्रिया को सुसम्पन्न करके अनन्तर सूर्य के (मूल, मध्य और अंत भाग को) कुशाओं द्वारा संमार्जन एवं संप्रोक्षण करने के उपरांत उन कुशाओं को अग्नि में डाल देना चाहिए । हे यदुशार्दूल ! फिर पूर्व की भाँति सूर्य की पूजा करनी चाहिए । जिसके विधान में भूमि और अन्तरिक्ष से पृथक् किसी अन्य आधार पर स्थित पात्र में उसके लिए आसन प्रदान पूर्वक आवाहन एवं पूजन सुसम्पन्न कर समस्त क्रियाओं को समाप्त करना विद्वानों ने बताया है। जो पहले कही गयी है।९-१०। अतः पुनः सूर्य से आरम्भ कर (देवों) एवं संज्ञा के लिए भी मौन होकर आहुति डालें । माघ मास की सप्तमी में वरुण नामक सूर्य की पूजा करनी चाहिए जिसमें उनके लिए सौ आहुति डालने का विधान कहा गया है। पश्चात् ब्राह्मणों को मधुर भोजन कराकर यथा शक्ति दक्षिणा देने से अभिलषित फलों की प्राप्ति होती है ।११-१२। इसी प्रकार फाल्गुन मास में सूर्य, चैत्र में श्वेतांशु, वैशाख में धाता, ज्येष्ठ में इन्द्र, आषाढ़ में रवि, सावन में नभ, भादों में यम, आश्विन में पर्जन्य, कार्तिक में त्वष्टा, मार्गशीर्ष (अगहन) में मित्र और पौष में विष्णु नामक सूर्य की पूजा करनी चाहिए इस प्रकार व्रत विधान द्वारा श्रद्धा भक्ति पूर्वक वर्ष के समस्त सूर्यों की पूजा सुसम्पन्न करने से प्रति दिन के सौभाग्य तथा बताये हुए सभी फलों की प्राप्ति होती है ।१३-१५। इस भाँति वर्ष की समाप्ति में सुवर्ण का रथ, जिसमें भाँति-भाँति के रत्नों से सुशोभित सात घोड़े जुते हों, बनाके उसके मध्य भाग में शुद्ध सुवर्ण की बनायी गयी सूर्य की प्रतिमा जो सौन्दर्य पूर्ण रत्नों से अलंकृत एवं सुवर्ण के कमल पर स्थित हो

तस्मिन् रथवरे कृत्वा सारथिं चाग्रतः स्थितम् । वृतं द्वादशभिर्विप्रैः क्रमान्मासाधिपात्मभिः ॥१८
मध्ये कृत्वा स्वमाचार्यं पूजयित्वा यथाश्रुतिः । सञ्चिन्त्यादित्यवर्णं वै वस्त्ररत्नादिनार्हयेत् ॥१९
एवं मासाधिपान्विप्रान्सम्पूज्याथ निवेदयेत् । आचार्याय रथं छत्रं ग्रामं गाश्च महीं शुभाम् ॥२०
अश्वान्मासाधिपेभ्यस्तु द्वादशभ्यो निवेदयेत् । एवं भक्त्या यथाशक्त्या हेमरत्नादिभूषणम् ॥२१
दत्त्वा तस्य नमस्कृत्य व्रतं पूर्णं निवेदयेत् । अत ऊर्ध्वं न दोषोऽत्र व्रतस्याकरणेष्वपि ॥२२
एवमस्त्विति विप्रेन्द्रैः सहाचार्यः पुनः पुनः । बह्वीश्चैवाशिषो दत्त्वा प्रवदेत्प्रीयतामिति ॥२३
आदित्यो येन कामेन त्वया आराधितो व्रतैः । तुभ्यं ददातु तं कामं सम्पूर्णं भवतु व्रतम् ॥२४
आचार्यान्विप्ररूपैस्तु प्रविष्टो भास्करः स्वयम् । दास्यत्येव करं कर्तुमित्युक्तं भानुना स्वयम् ॥२५
विप्रेभ्यो गुणवद्भ्यश्च निस्वेभ्यश्च विशेषतः । दीनान्धकृपणेभ्यश्च शक्त्या दत्त्वा च दक्षिणाम् ॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च व्रतमेतत्समापयेत् ॥२६
कृत्वैवं सप्तमीमब्दं राजा भवति धार्मिकः । पुरुषः स्त्री भवेद्राज्ञां तादृशामथ वल्लभा ॥२७
शतयोजनविस्तीर्णं निःसपत्नमकण्टकम् । निष्पन्नमण्डलं भुङ्क्ते साग्रं वर्षशतं सुखी ॥२८
वित्तहीनोऽपि यो[1] भक्त्या कृत्वा ताम्रमयं रथम् । दद्याद्व्रतावसाने तु कृत्वा सर्वं यथोदितम् ॥
सोऽशीतियोजनं भुङ्क्ते विस्तीर्णं मण्डलं नृपः ॥२९

स्थापित करके उस रथ के अग्रभाग पर सारथी की भी स्थापना करे । इसी प्रकार बारह मास के अधिपति रूप में बारह ब्राह्मणों की जिसके मध्य में आचार्य स्थित हों वस्त्र एवं रत्नों द्वारा पूजा करके उन्हें तथा आचार्य को वे प्रतिमाएँ आदि समर्पित करे । रथ, छत्र, ग्राम, गायें और भूमि का दान आचार्य को तथा उन मासों के अधीन ब्राह्मणों को घोड़े प्रदान करे । और भक्तिपूर्वक सुवर्ण और रत्नों के आभूषण भी देकर एवं उन्हें नमस्कार करते हुए पूर्ण वर्ष के व्रत को पूर्ण होने का निवेदन भी करे । पश्चात् यदि व्रत न भी करे तो कोई दोष नहीं होता है ।१६-२२। पुनः नमस्कार के उपरान्त ब्राह्मण समेत आचार्य उसको 'एवमस्तु' कहकर स्वीकार करे और भाँति-भाँति के आशीर्वाद देते हुए प्रसन्न रहे ।२३। और जिस मनोरथ के लिए तुमने आदित्य की आराधना की है वे उसे सफल करते हुए व्रत को पूर्ण करे । यजमान से यह भी कहे ।२४। क्योंकि आचार्य में ब्राह्मण रूप से सूर्य स्वयं प्रवेश कर तुम्हें समस्त फल देंगे ऐसा सूर्य ने स्वयं कहा है ।२५। इस भाँति व्रतानुष्ठान में गुणवान् एवं निर्धन ब्राह्मणों तथा विशेषकर दीन हीन अंधे एवं निःसहाय व्यक्तियों को शक्त्यनुसार दान-दक्षिणा तथा भोजन कराकर वह व्रत समाप्त करना चाहिए ।२६। इस प्रकार पूर्ण वर्ष की सप्तमी के व्रत विधान सुसम्पन्न करने से वह राजा धार्मिक होता है यदि व्रतानुष्ठान करने वाली स्त्री होतो वह राजा की परम प्रेयसी रानी होती है २७। और सौ योजन का लम्बा चौड़ा राज्य शत्रु रहित एवं निष्कण्टक राज्य मंडल प्राप्त कर सौ वर्ष तक उसका उपभोग करते हुए सुखी जीवन प्राप्त करता है ।२८। यदि कोई निर्धन (व्यक्ति) भी भक्ति पूर्वक ताँबे का रथ बनवा कर विधि पूर्वक व्रत की समाप्ति में दान करता है तो उसे असी योजन के भूमण्डल का राज्य प्राप्त होता है,

---

१. यथाशक्त्या ।

एवं पिष्टमयं योऽपि वित्तहीनः करोति ना । आपष्टियोजनं भुङ्क्ते दीर्घायुर्नीरुजः सुखी ॥
सूर्यलोके च कल्पान्तं यावतिस्थत्वेदमाप्नुयात् ॥३०
मनसापि च यो भक्त्या यजेदर्कमतन्द्रितः । सर्वावस्थासु सोऽप्यत्र व्याधिभिर्मुच्यते भृशम् ॥३१
आपदो न स्पृशयन्त्येनं नीहारा इव भास्करम् । किं पुनर्व्रतसम्पन्नं भक्तं[1] मन्त्रैश्च रक्षितम् ॥३२
यत एवं ततो ज्ञात्वा विधानं कल्पचोदितम् । सुखेन फलसिद्ध्यर्थं कुर्यात्सर्वमशेषतः ॥३३
इत्येतत्कथितं साम्ब पुरा सूर्येण मे शुभम् । कल्पोऽयं प्रथमे कल्पे सर्वदा गोपितो मया ॥३४
अनेन विधिना वत्स विशुद्धेनान्तरात्मना । भानुमाराधयेत्क्षिप्रं यदीच्छेत्फलमुत्तमम् ॥३५
गयास्यैव प्रसादेन प्राप्ताः पुत्राः सहस्रशः । असुरा निर्जिताश्चैव सुराः सर्वे वशीकृताः ॥३६
त्वयाप्ययं गोपितव्यः कल्पः सूर्यस्य सम्मतः । प्रसादादस्य कल्पस्य सदा सन्निहितो रविः ॥
चक्रेऽस्मिन्निर्जिता येन सुरा सुरनरोरगाः ॥३७
यदिनाधिष्ठितं चक्रमिदं सूर्यांशुभिः स्वयम् । सततं स्यात्प्रभायुक्तं कथमभ्याहतं भवेत् ॥३८
अहमेतं जपन्नित्यं यजन्ध्यायंश्च शक्तितः । जातोऽस्मि सर्वकामानां पूज्यः श्रेष्ठश्च तेजसा ।३९
त्वमभ्यस्यैव मनसा वाचा वा कर्मणापि वा । कुरु भक्तिमनेनैव विधिना फलसिद्धये ॥४०
शृणुयाद्भक्तियुक्तो यो नरः श्रद्धासमन्वितः । विधानमादितः पुत्र सप्तमीं कुरुते च यः ॥४१

दीर्घायु, आरोग्य समेत सुखी जीवन प्राप्त होता है तथा अन्त में एक कल्प तक सूर्य का निवास भी प्राप्त होता है ।२९-३०। इस प्रकार जो मनुष्य भक्ति पूर्वक दत्तचित्त होकर सूर्य की केवल मानसिक पूजा करता है तो उसे भी सभी अवस्थाओं में स्वस्थ जीवन प्राप्त हो जाता है ।३१। और सूर्य को नीहार (कुहरा) की भाँति आपत्तियाँ उसे छू तक नहीं सकती । और जो इस विधान को जानते हुए भक्ति पूर्वक फलसिद्धि के लिए सविधि व्रत करते हुए मंत्रों से रक्षित रहते हैं उन्हें क्या कहा जा सकता है (अर्थात् उन्हें असंख्य सुख साधन की प्राप्ति होती है) ।३२-३३। हे साम्ब ! पहले कल्प में कल्याणमय इस कल्प को सूर्य ने मुझसे कहा था और मैंने भी इसे सदैव गुप्त ही रखा था ।३४। हे वत्स ! इसलिए यदि उत्तम फल की कामना हो तो शुद्ध हृदय से इसी विधान द्वारा सूर्य की आराधना करे । ।३५। इन्हीं की प्रसन्नता वश मुझे हजारों पुत्रों की प्राप्ति, असुरों पर विजय एवं सभी देवगण मेरी अधीनता स्वीकार करते है ।३६। अतः तू भी सूर्य-प्रिय इस कल्प को गुप्त रखना, क्योंकि इस कल्प की प्रसन्नता वश सूर्य सदैव मेरे चक्र के समीप ही रहते हैं जिसके द्वारा सुर असुर, मनुष्य और साँपों आदि का पराजय किया है।३७। वे (सूर्य) यदि अपनी किरणों समेत इस चक्र में सन्निहित न रहते तो इसमें इतनी कान्ति एवं हनन की शक्ति कहाँ से होती ।३८। इसीलिए नित्य इनका पूजन, जप और यथाशक्ति ध्यान करता हूँ और इन्हीं की आराधना करने के नाते मनुष्यादि के सभी मनोरथ में तेज के द्वारा श्रेष्ठ और पूज्य हैं।३९। तू भी मन वाणी एवं कर्म द्वारा अपने मनोरथ की सफलता के लिए इसी विधान से इनकी भक्ति करो।४०। हे पुत्र! जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसे सुनता है, यह विधि पूर्वक सप्तमी का व्रत करता है उसे

---

१. उक्तमंत्रैश्च रक्षितम् । २. अतंद्रितः ।

सेह[1] प्राप्याऽखिलं काममारोग्यं च जयं तथा । भार्गव्या परया युक्तो गच्छेद्वैरोचनं सदः ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सप्तमीमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५०।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

महासप्तमीव्रतवर्णनम्

वासुदेव उवाच

माघस्य शुक्लपक्षे तु पञ्चम्यां सत्कुलोद्वह । एकभक्तं तदाख्यातं षष्ठ्यां नक्तमुदाहृतम् ॥१
सप्तम्यामुपवासं तु केचिदिच्छन्ति सुव्रत । षष्ठ्यां केचिद्वदन्तीह सप्तम्यां पारणं किल ॥२
कृतोपवासः षष्ठ्यां तु पूजयेद्भास्करं बुधः । रक्तचन्दनमिश्रैस्तु करवीरैश्च सुव्रत ॥३
गुग्गुलेन महाबाहो संयावेन च सुव्रत । पूजयेद्देवदेवेशं शङ्करं[2] भास्करं रविम् ॥४
एवं हि चतुरो मासान्माघादीन्पूजयेद्रविम् । आत्मनश्चापि शुध्दर्थं प्राशनं गोमयस्य च ॥५
स्नानं च गोमयेनेह कर्तव्यं चात्मशुद्धये । ब्राह्मणान्दिव्यभौमांश्च भोजयेच्चापि शक्तितः ॥६
ज्येष्ठादिष्वथ मासेषु श्वेतचन्दनमुच्यते । श्वेतानि चापि पुष्पाणि शुभगन्धान्वितानि वै ॥७

सभी प्रकार की सफलता आरोग्य, विजय और पूर्व लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तथा कालान्तर में सूर्य के भवन को प्राप्ति होती है ।४१-४२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सप्तमी माहात्म्य वर्णन नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ।५०।

अध्याय ५१

महासप्तमी व्रत वर्णन

वासुदेव बोले—हे सुव्रत ! कुछ लोगों ने माघ शुक्ल पक्ष की पञ्चमी में एक बार भोजन, षष्ठी में नक्त व्रत और सप्तमी में उपवास का विधान बताया है तथा कुछ लोगों ने षष्ठी और सप्तमी में पारण का विधान कहा है ।१-२। किन्तु उपवास करके षष्ठी में सूर्य की पूजा रक्त चन्दन और कनेर के फूलों द्वारा अवश्य सुसम्पन्न करनी चाहिए ।३। हे महाबाहो ! उसी भाँति गूगुल तथा लप्सी द्वारा देवाधिदेव शंकर और सूर्य की पूजा करना बताया गया है ।४। इस प्रकार माघ आदि चारों मासों में आत्म-शुद्धि के लिए सूर्य की पूजा करके गोमय का प्राशन (खाना) करना चाहिए इसमें स्नान भी गोमय मिश्रित का ही करके शक्त्यनुसार दिव्य भौमों और ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए ।५-६। ज्येष्ठ आदि मासों में श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, सुगन्ध आदि गुगूर का धूप, नैवेद्य और खीर से पूजन करके इन्ही द्वारा ब्राह्मणों को

---

१. अत्र पादपूर्त्यर्थं स इत्यस्य सोर्लोपः । २. ग्रहेशं शंकर रविम् ।

कृष्णागरुस्तथा धूपो नैवेद्यं पायसं स्मृतम् । तेनैव ब्राह्मणांस्तुष्टान्भोजयेच्च महामते ॥८
प्राशयेत्पञ्चगव्यं तु स्नानं तेनैव पुत्रक । कार्तिकादिषु मासेषु अगस्तिकुसुमैः स्मृतम् ॥९
पूजयेन्नरशार्दूल धूपैश्चैवापराजितैः । नैवेद्यं गुडपूपास्तु तथा चेक्षुरसं स्मृतम् ॥१०
तेनैव ब्राह्मणास्तात भोजयस्व स्वशक्तितः । कुशोदकं प्राशयेथाः स्नानं च कुरु शुद्धये ॥११
तृतीये पारणास्यान्ते माघे मासि महामते । भोजनं तत्र दानं च द्विगुणं समुदाहृतम् ॥१२
देवदेवस्य पूजा च कर्तव्या शक्तितो बुधैः । रथस्य चापि दानं तु रथयात्रा तु सुव्रत ॥१३
व्रतस्य प्राप्तिहेतोर्वै कर्तव्या विभवे सति । दानं स्वर्णरथस्येह यथोक्तं विभवे सति ॥
इत्येषा कथिता पुत्र रथाह्वा सप्तमी शुभा ॥१४
महासप्तमी विख्याता महापुण्या महोदया । यामुपोष्य धनं पुत्रान्कीर्तिं विद्यामवाप्नुयात् ॥१५
तथाखिलं कुवलयं चन्द्रेण च समोर्चिषा ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
महासप्तमीव्रतवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५१।

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यपूजावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्देवः शङ्खचक्रगदाधरः । अन्तर्धानं गतो वीरं शाम्बस्येह प्रपश्यतः ॥१

ही संतुष्ट करना चाहिए ।७-८। इसमें पञ्चगव्य द्वारा स्नान और उसी का प्राशन करना बताया गया है। हे पुत्र ! कार्तिक आदि मासों में अपराजित और अगस्त पुष्पों द्वारा पूजन धूप, नैवेद्य, गुड का मालपूआ, और ऊख के रस समर्पित कर इन्ही पदार्थों द्वारा बने भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मणों को भी भोजन यथा शक्ति कराये और शुद्धि के लिए इसमें कुशोदक से स्नान और उसी का प्राशन करना बताया गया है ।९-११। महामते ! तीसरे पारण के अंत में जो माघ के मास में होता है भोजन और दान दुगुने तप में करना बताया गया है ।१२। इसीलिए बुद्धिमानों को अपनी शक्ति के अनुसार देवाधि देव (सूर्य) की पूजा, रथ दान और रथयात्रा अवश्य करनी चाहिए ।१३। यदि संपत्ति हो तो अपने व्रत की पूर्ति के लिए सुवर्ण का रथ अवश्य बनवाना चाहिए। हे पुत्र ! इस प्रकार रथ नाम वाली सप्तमी को जो पुण्य रूप, महासप्तमी के नाम से विख्यात, महान् अभ्युदय करने वाली एवं जिसमें उपवास रहकर धन, पुत्र, विद्या की प्राप्ति तथा चन्द्र किरणों की भाँति समुज्ज्वल कीर्ति की प्राप्ति होती है मैनें बता दिया है ।१४-१६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में महासप्तमी वर्णन
नामक एक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।५१।

अध्याय ५२

सूर्यपूजा का वर्णन

सुमन्त बोले—इस प्रकार शंख, चक्र और गदा को धारण करने वाले भगवान् कृष्ण देव साम्ब के

शाम्बोऽपि कृत्वा विधिवत्सप्तमीं रथसप्तमीम् । आदिभिर्व्याधिभिर्मुक्तो जगामाशु स्वमन्दिरम् ॥२

शतानीक उवाच

रथयात्रा कथं कार्या रथः कार्यः रथं रवेः । केनेह मर्त्यलोकेषु रथयात्रा प्रवर्तिता ॥३

सुमन्तुरुवाच

इममर्थं पुरा पृष्टः पद्मयोनिः प्रजापतिः । रुद्रेण कुरुशार्दूल आसीनः काञ्चने गिरौ ॥४
पद्मासनं पद्मयोनिं सुखासीनं प्रजापतिम् । प्रणम्य शिरसा देवो रुद्रोवाचमुदैरयत् ॥५

श्रीरुद्र उवाच

य एष भगवान्देवो भास्करो लोकभास्करः । कथमेष भ्रमेद्देवो रथस्थो विमलः सदा ॥६

ब्रह्मोवाच

यथा दिवि भ्रमेत्तात रथारूढो रविः सदा । तथा ते वर्तयिष्येऽहं रथं चास्य त्रिलोचन ॥७
रथेन ह्येकचक्रेण पञ्चारेण त्रिणाभिना । हिरण्मयेन कान्तेन अष्टबन्धैकनेमिना ॥८
चक्रेण भास्वता चैव दिवि सूर्यः प्रसर्पति । दशयोजनसाहस्रो विस्तारोऽप्यस्य कथ्यते ॥९
त्रिगुणा च रथोपस्थादीषा दण्डप्रमाणतः । युगमस्य तु विस्तीर्णमरुणो[1] यत्र सारथिः ॥१०

देखते देखते अन्तर्धान हो गये ।१। साम्ब ने भी विधि पूर्वक रथ सप्तमी वाली सप्तमी के व्रत आदि द्वारा शारीरिक रोगों से मुक्त होकर अपने मन्दिर को प्रस्थान किया ।२।

शतानीक बोले—सूर्य देव के रथ का निर्माण एवं रथयात्रा कैसे की जाती है और सर्वप्रथम इस भू-लोक में किसने यह रथ यात्रा आरम्भ की है ।३

सुमन्तु बोले—हे कुरुशार्दूल ! किसी समय ब्रह्मा से इसी बात को जो इस समय सुमेरु पर्वत पर सुखासीन थे भगवान् रुद्र देव ने पूछा था ।४। सुख पूर्वक बैठे हुए प्रजापति (ब्रह्म) को, जो कमल पर स्थित एवं कमल से उत्पन्न हुए हैं शिर से नमस्कार करके शिव ने पूछना आरम्भ किया ।५

श्रीरुद्र ने कहा—भगवान् सूर्य जो लोक को प्रकाशित करते हैं सदैव किस प्रकार के स्वच्छ रथ पर स्थित होकर घूमते हैं ? ।६

ब्रह्मा बोले—हे तात ! जिस भाँति के रथ पर बैठकर सूर्य आकाश में सदैव घूमते हैं मैं उनका तथा उनके रथ को बता रहा हूँ ।७। सूर्य प्रदीप्त चक्र वाले उस रथ पर जिसमें देदीप्यमान एक चक्र (चक्का) पाँच आरा, तीन नाभि सौन्दर्य पूर्ण सुवर्ण के आठ बन्धनों से युक्त एक नेमि एवं दश हजार योजन का लम्बे चौड़े (रथपर) बैठकर आकाश में सदैव घूमते हैं ।८-९। रथ के उपस्थ पीछे भाग से ईषा (हरसा) दण्ड प्रमाण के अनुसार तिगुना है और रथ का युग (जुआ), जिस पर अरुण बैठते हैं अत्यन्त चौड़ा है।१०।

---

१. भार्गव्यां न विजायते ।

प्रासङ्गः कांचनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः । छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तु यतश्चक्रं ततः स्थितैः ॥११
येनासौ पर्यटेद्व्योम्नि भास्वता तु दिवस्पतिः । अथैतानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य तु ॥१२
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम् । [१]नाभ्यस्तिस्रस्तु चक्रस्य त्रयः कालाः प्रकीर्तिताः ॥१३
आराः पञ्चर्तवस्तस्य नेम्यः षडृतवः स्मृताः । रथवेदी स्मृते तस्य अयने दक्षिणोत्तरे ॥१४
मुहूर्ता[२] इषवस्तस्य शम्याश्चास्य कलाः स्मृताः । तस्य काष्ठाः स्मृताः कोणा अक्षदण्डः क्षणाः स्मृताः ॥१५
निमेषाश्चास्य कर्षाः स्यादीषादण्डो लवाः स्मृताः । रात्रिर्वरूथो धर्मोऽस्य ध्वज ऊर्ध्वं प्रतिष्ठितः ॥१६
युगाक्षिकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ । अश्वरूपाणि च्छन्दांसि वहन्ते वामतो धुरम् ॥१७
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुबेव च । पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिगेव तु सप्तमी ॥१८
चक्रमक्षनिबद्धं तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः । सहचक्रो भ्रमत्यक्षः स चाक्षो भ्रमति ध्रुवे ॥१९
अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवे स्थितः । एवमक्षवशात्तस्य[३] सन्निवेशो रथस्य तु ॥२०
तथा संयोगभावेन संसिद्धो भास्करो रथः । तेन चासौ रविर्देवो नभः संसर्पते सदा ॥२१
युगाक्षकोटीसम्बद्धे द्वे रश्मी स्यन्दनस्य तु । ध्रुवे ते भ्रमतो रश्मी न चक्रयुगयोस्तु वै ॥२२
भ्रमतो मण्डलान्यस्य रवेरस्य रथस्य तु । कुलालचक्रवद्याति[४] मण्डलं सर्वतोदिशम् ॥२३
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु । ऋग्यजुर्भ्यां गृहीतेन त्रिचक्राश्वेन वै ध्रुवे ॥२४
ह्रसेते तस्य रश्मी तु मण्डलेषूत्तरायणे । दक्षिणेऽथ समृद्धे तु भ्रमतो मण्डलानि तु ॥२५

उसमें पवन की भाँति अत्यन्त वेगवाले घोड़े, जो छन्दोरूप हैं जुते हुए हैं, उनके कंधे पर सुवर्णमय जूआ स्थित है। उन्हीं के द्वारा दिन नायक (सूर्य) चमकते हुए आकाश में घूमते रहते हैं। संवत्सर (वर्ष) के सभी सभी अंग (अवयव) इसके (सूर्य के रथ के) अंग हैं, तीनों काल चक्र की तीनों नाभि, पाँच ऋतु आरा (आरागज) छठीं ऋतु नेमि, दक्षिणायन एवं उत्तरायण दोनों रथ की वेदी (बैठने के स्थान) हैं, मुहूर्त, इषव, कलाएँ, शम्य (जुए की कील) बतायी गई हैं तथा दिशाएँ कोना, क्षण, अक्षदण्ड, निमेष, कर्ष, लव, ईषा, दण्ड, रात, वरूथ (रथ में बैठने का गुप्त स्थान), धर्म ध्वजा एवं अर्थ और काम धुरी के अग्रभाग हैं। छन्दोरूप घोड़े उसमें बाईं ओर जुतकर उसके धुरे को ले चलते हैं। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, वृहती एवं उष्णिक् यही सात घोड़े हैं। धुरी पर चक्का घूमता है, वह धुरी ध्रुव में लगी है और उस धुरी में चक्का लगा है, चक्के के साथ धुरी ध्रुव में लगी हुई घूमती हैं तथा उसी के द्वारा रथ चलता है।११-२०। इस प्रकार एक-दूसरे में संयुक्त होकर सूर्य का रथ, जिसमें बैठकर (सूर्य देव) आकाश में चलते हैं, तैयार हुआ है।२१। जुए और धुरी में बंधी दो रस्सियाँ (घोड़े की बाग) रथ में रहती हैं वे घूमती नहीं हैं।२२। घूमते हुए सूर्य के रथ का मंडल (गोलाई) कुम्हार के चक्के की भाँति चारों दिशाओं में पहुँचता है।२३। दाहिनी ओर रथ के जुए और धुरी को ऋग्वेद एवं यजुर्वेद धारण किये हैं।२४। सूर्य के घूमते हुए उत्तरायण में रश्मि (बाग) न्यून और दक्षिणायन में वृद्धि प्राप्त करती है।२५।

---

१. नेमयस्तस्य । २. अमर्तं बन्धनं तस्य सावाश्चास्य कलाः स्मृताः । ३. चक्रमस्याब्जवंशं तु सन्धिदेशे रथस्य तु । ४. कुलालचक्रवत्तस्य भ्रमंते मंडलानि तु ।

युगाक्षकोटी ते तस्य भ्रमेते स्यन्दनस्य तु । सक्तासक्तं च भ्रमते मण्डलं सर्वतोदिशम् ॥२६
आकृष्येते ध्रुवणेह समं तिष्ठति सुव्रत । तदा साभ्यन्तरं देवो भ्रमते मण्डलानि तु ॥२७
ध्रुवेण मुच्यमाने तु पुना रश्मियुगेन वै । तथैव[1] वाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥२८
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोरपि । सरथोऽधिष्ठितो देवैर्विभ्रमेदृषिभिः सह ॥२९
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सर्पग्रामणिराक्षसैः । एतैर्वसति वै सूर्ये मासौ द्वौ द्वौ क्रमेण तु ॥३०
धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः । खण्डको वासुकिश्चैव सकर्णो रश्मिरेव च ॥३१
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ । क्रतुस्थलाप्सरश्चैव या च सा पुञ्जिकस्थला ॥३२
ग्रामणीरथकृत्स्नश्च रथौजाश्चतरावुभौ । रक्षोहेतिः प्रहेतिश्च यातुधानौ च तावुभौ ॥३३
मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे । तथा ग्रीष्मौ तु द्वौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह ॥३४
ऋषिरत्रिर्वशिष्ठश्च तक्षकोऽनन्त एव च । मेनका सहजन्या च गंधर्वो च हहा हूहः ॥३५
रथस्वनश्च ग्रामण्यौ रथचित्रश्च तावुभौ पौरुषेयो वधश्चैव यातुधानौ महाबलौ ॥३६
शुचिशुक्रौ तु द्वौ मासौ वसन्त्येते दिवाकरे । इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ॥३७
एलापर्णस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च पन्नगाः । प्रम्लोचा दुन्दुकाश्चैव गन्धर्वौ भानुदर्दुरौ ॥३८
यातुधानौ तथा सर्पस्तथा ब्राह्मश्च तावुभौ । एते नभो नभस्यौ च निवसन्ति दिवाकरे ॥३९
शरद्येते पुनः शुभ्रा निवसन्ति स्म देवताः । पर्जन्यश्चैव पूषा च भारद्वाजः सगौतमः ॥४०

इस प्रकार रथ का चक्का एवं धुरी द्वारा घूमते हुए रथ का मण्डल (गोलाकार) सक्तासक्त होकर चारों दिशाओं में पहुँचता है।२६। ध्रुव द्वारा रश्मि आकृष्ट होती रहती है (तन जाती हैं) क्योंकि वह ध्रुव के समान ही सदैव रहती है। हे सुव्रत! उस समय सूर्य उसके भीतर बैठकर गोलाकार घूमते हैं।२७। ध्रुव से पृथक् दोनों घोड़े की बाग द्वारा रथ और उसके द्वारा सूर्य घूमते रहते हैं। इस प्रकार दक्षिणायन और उत्तरायण में घूमते हुए (सूर्य के) एक सौ अस्सी मंडल होते हैं। सूर्य के साथ देवता, ऋषि, गन्धर्व, अप्सराएँ, साँप और प्रधान राक्षस गण ये सभी दो-दो मास तक वहाँ क्रमशः स्थित रहते हैं।२८-३०। जिस प्रकार धाता, अर्यमा, पुलस्त्य, पुलह, खण्डक, वासुकी, कर्ण समेत रश्मि, तुम्बुरु, नारद, गान कुशल दोनों गंधर्व, क्रतुस्थला, पुंजिक स्थला, ग्रामणी, रथकृत्स्न, (रथौजा) दोनों घोड़े, रक्षोहेति एवं प्रहेति यातुधान ये सभी गण चैत्र और वैशाख मास में सूर्य के समीप स्थित रहते हैं।३१-३४। उसी प्रकार जेठ, आषाढ़ में मित्रावरुण, अत्रि, वशिष्ठऋषि, तक्षक, अनंत, साथ उत्पन्न होने वाली मेनका, हाहा-हूहू गन्धर्व, रथस्वन एवं रथचित्र ये दोनों ग्रामणी एवं पौरुषेय और वध दोनों यहाँ बलवान यातुधान भी, जेठ और आषाढ मास में उनके समीप स्थित रहते हैं। वर्षा काल में, इन्द्र, विवस्वान्, अंगिरा, भृगु, एलापर्ण, सर्प तथा शंखपाल नामक साँप, पुम्लोचा, दुंदुका गन्धर्व, भानु और दुर्दुर यातुधान सर्प, व्रह्मा, नभ एवं नभस्वान् सूर्य के निकट रहते हैं।३५-३९। शरद् में धवल देवगण, पर्जन्य, पूषा, भारद्वाज, गौतम, चित्रसेन गंधर्व, वसुरुचि, विश्वाची,

---

१. रथेन वाह्यते सूर्यः ।

चित्रसेनश्च गन्धर्वस्तथा वसुरुचिश्च यः । विश्वाची च घृताची च ते उभे पुण्यलक्षणे ।।४१
नागस्त्वैरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः । सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीस्तथा ।।४२
आपो वातश्च द्वावेतौ यातुधानौ प्रकीर्तितौ । वसन्त्येते तु वै सूर्ये इषोर्जौ कालपर्ययात् ।।४३
हैमंतिकौ तु द्वौ मासौ वसन्त्येते दिवाकरे । अंशौ भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुस्तथा ।।४४
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा । आपो वातश्च द्वावेतौ यातुधानौ प्रकीर्तितौ ।।४५
चित्राङ्गदश्च गन्धर्वोरुणायुश्चैव तावुभौ । सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे ।।४६
पूषा जिष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च । काद्रवेयौ महानागौ कम्बलाश्वतरावुभौ ।।४७
गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च तावुभौ । तिलोत्तमा च रम्भा च सर्वलोके च विश्रुते ।।४८
[1]ग्रामणीः सेनजिच्चैव सत्यजिच्च महातपाः । ब्रह्मोपेतश्च वै रक्षो यज्ञो यज्ञस्तथैव च ।।
एते तपस्तपस्यं च निवसन्ति दिवाकरे ।।४९
अन्येऽपि ये मन्देहा राक्षसाधिपतयो देवदेवगुह्यतमस्य रक्षार्थं सकल देवैरस्मदादिभिः-
सन्नियुक्तास्तान्भवते कथयामि ।।५०

रुद्र उवाच

वद ब्रह्मन्कथां दिव्यां यामहं प्रष्टुमागतः । तामेव विस्तरेणैव कथयाशु मम प्रभो ।।५१
दिविष्ठं भास्करं दृष्ट्वा नमेत्केन विधानतः । किं फलं तस्य वा देव समाप्ते भवति कर्मणि ।।५२

ब्रह्मोवाच

शृणु रुद्र समासेन भास्करस्य नतिक्रियाम् । यां कृत्वा रोगदुःखार्ता मुच्यन्ते पापसञ्चयात् ।।५३
स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः । सद्यो गोमयलिप्ते च तत्रैवावाहयेद्रविम् ।।५४

घृताची, ऐरावत हाथी, धनंजय, सेनजित्, सुषेण, सेनानी, ग्रामणी और वात नामक दोनोंयातुधान सूर्य के समीप रहते हैं ।४०-४३। हेमंत में अंग, भग, कश्यप, क्रतु, भुजंग, महापद्म, कर्कोटक, आप और वात नामक दोनों यातुधान, चित्रांगद, तथा अरुणायु गन्धर्व उनके समीप रहते हैं । शिशिर में पूषा, जिष्णु, जमदग्नि, विश्वामित्र, कद्रू के कम्बल, अश्वतर नामक पुत्र गन्धर्व, घृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, तिलोत्तमा, रम्भा, सेनजित्, सत्यजित् एवं ब्रह्मा समेत यज्ञ ये सभी तप करने की भाँति सूर्य के साथ स्थित रहते हैं ।४४-४९। इसी प्रकार देवाधिदेव (सूर्य) के रक्षा के लिए हम सभी देवों द्वारा नियुक्त मंदेह नामक राक्षसों के गण को जो राक्षसों के अधिपति हैं कह रहा हूँ ।५०

रुद्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जिस दिव्य कथा को पूछने के लिए मैं यहाँ आया हूँ, उसे विस्तारपूर्वक शीघ्र मुझे बताने की कृपा करें ।५१। आकाश में सूर्य को देखकर किस विधि से नमस्कार करना चाहिए और उसके करने से किस फल की प्राप्ति होती है ।५२

ब्रह्मा बोले—हे रुद्र ! सूर्य को नमस्कार करने की विधि को, जिसके द्वारा रोग, दुःख एवं पापसमूह से (लोग) मुक्त होते हैं, मैं कह रहा हूँ, सुनो ।५३। भूमि में बारह अंगुल का मंडल (गोलाकार) बनाकर

---

१. ग्रामाणीर्वातजिच्चैव सत्यजिच्च महावलौ ।

पूजयित्वा गणेशादीन्वासुदेवं च सात्यकिम् । सत्यभामां तथा लक्ष्मीमुमां देवीं च शङ्करम् ॥५५
मण्डलस्य समीपस्थान्पूर्वोक्तान्वेदमन्त्रवित् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य दण्डवत्प्रणमेत्सकृत् ॥५६
शतं सहस्रमयुतं लक्षं वा निजपापतः । दृष्ट्वा शक्तिं प्रणम्याथ सदा संयतमानसः ॥५७
विप्राय दक्षिणां दद्यान्निरुन्छ्वासः समाहितः । रक्तिके च हिरण्यस्य शतमात्रे सहस्रके ॥५८
माषकाणां चतुष्कं चायुतं दशगुणं दिशेत् । दक्षे दशगुणं प्रोक्तं दद्याद्रोगविमुक्तये ॥५९
एवं कृते विरूपाक्ष सर्वरोगाद्विमुच्यते । इदं रहस्यं परमं शृणुयाद्यो हि मानवः ॥६०
तस्य रोगा विनश्यन्ति मार्तण्डस्य प्रसादतः । अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि यच्चापृष्टमुमापते ॥
तच्छृणुष्व मया प्रोक्तं रथयन्तृनियामकम् ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
सूर्यवर्णनं नाम द्विपञ्चशत्तमोऽध्यायः ।५२।

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तत्रारुणो मया पूर्वं सारथ्ये सन्नियोजितः । इन्द्रेण माठरो नाम वायुना कल्मषेण तु ॥१

उसे गोमय से शुद्ध करके पश्चात् उसमें सूर्य का आवाहन करें। और गणेश आदि वासुदेव, सात्यकि, सत्यभामा, लक्ष्मी, उमा देवी, एवं शंकर को मंगल के समीप आवाहित कर प्रदक्षिणा करते हुए उन्हें तथा सूर्य को साष्टांग दण्डवत् की भाँति एक बार प्रणाम करे।५४-५६। अपने पाप के अनुसार तथा संयमपूर्वक सौ, सहस्र, दशहजार एवं लक्ष प्रणाम करना चाहिए।५७। पश्चात् विप्र को दक्षिणा भी देने का विधान है। पर उसमें लम्बी साँस न निकालें अर्थात् पश्चात्ताप न करें। शत बार प्रणाम करने पर दो रती सुवर्ण, सहस्र बार प्रणाम करने पर चार माशा सुवर्ण, दश हजार बार में उसका दशगुना और लक्ष बार प्रणाम करने में उसके दशगुना सुवर्ण का दान करना चाहिए जिससे रोग एकदम शांत हो जाये।५८-५९। हे विरूपाक्ष! इसी भाँति सविधान इसे सुसम्पन्न करने पर सभी रोग शांत हो जाते हैं और इस परम रहस्य को जो मनुष्य सुनते हैं मार्तण्ड की प्रसन्नतावश उसके सभी रोग शांत हो जाते हैं। हे उमापते! इस प्रकार अन्य रथ, सारथी एवं उसके नियामक को जिसका प्रश्न ही नहीं किया गया है, मैं उसे भी बता रहा हूँ, सुनो!।६०-६१

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य पूजा वर्णन
नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त।५२।

अध्याय ५३

सूर्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—उस (सूर्य के) रथ में सर्वप्रथम मैंने अरुण को सारथी बनाकर नियुक्त किया है, उसी

वैनतेयेन ताक्ष्योपरि विमलो नखतुण्डप्रहरणः पुरोगामी नियुक्त इति ।।
कालेन दण्डो महादण्डायुधो भवता शेषा महागणाधिपः ।।२

वैशाखेन राज्ञा वसुभिदायुधाङ्गारिकौ द्वौ अग्निना पिङ्गलः ।
संयन्ता महादण्डायुधो भवता शेषो महागणाधिपः ।।३

हस्तो यमेन पाशहस्तोम्बुपतिना समिन्धनः । अलकाधिपतिना विष्णुः ।।४
अश्विभ्यां कालोपकालो वाक्षप्रधानकौ । नरनारायणाभ्यां क्षारौ धारौ धिषणकृष्णौ ।।५
वैराजशङ्खपालपर्जन्यरजसा दिशासु विदिशासु दिशां पालनं विश्वेदेवा ददुः ।।६
सप्तैता लोकमातरः सर्वमरुतोऽवदन् । ओंकारो वषट्कारो वेदनिस्वनः पिनाकी विनायकः शेषोऽनन्तो वासुकिश्च नागसहस्रेणात्मतुल्येनादित्यस्य रथमनुयान्ति[1] ।।७

गायत्री सावित्री रथे स्थिते उभे सन्ध्ये सदा या देवता या रविमण्डलं नापैति[2] ।
भगवन्तं सहस्रकिरणमवलम्बितुम् ।।८

एतद्वै सर्वदैवत्यं मण्डलं ब्रह्मवादिन ब्रह्मयज्ञवादिनी यज्ञः ।
भगवद्भक्तानां परमादित्योयं विष्णुर्माहेश्वराणाम् ।।९

स्थानाभिमानिनो ह्येते सदा वै वृषभध्वज । सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसां तेज उत्तमम् ।।१०
ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ते ऋषयो रविम् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ।।११

भाँति इन्द्र ने माठर, वायु ने नाग एवं गरुड़ ने ताक्ष्य को, जो नख और चोंच रूपी अस्त्र धारण कर सामने उड़ते चलते हैं, नियुक्त किया है। और काल ने सूर्य को महादंड, अर्पित किया है तदनुसार वसु ने भेदन करने वाला आयुध एवं आंगारिक, अग्नि ने पिंगल, यम ने दंडायुध, वरुण ने पाश, कुबेर ने विष्णु, अश्विनी कुमारों ने काल और उपकाल, नर-नारायण ने वाक्ष एवं प्रधान, विश्वेदेवों ने अर्पित किये हैं भिषण तथा कृष्ण, वैराज, शंखपाल, और पर्जन्य को दिशाओं और उपदिशाओं (दोनों) के रक्षार्थ प्रदान किये हैं।१-६। उसी भाँति सप्त मातृकाओं ने भी सभी मरुत, वेदों ने ओंकार-वषट्कार, शिव ने विनायक तथा शेष ने अनन्त और वासुकी नामक साँपों को दिये हैं, जो हजारों नागों के समान बलवान् हैं और सभी सूर्य के रथ का सदैव अनुगमन करते रहते हैं।७। इस प्रकार गायत्री, सावित्री एवं दोनों संध्याएँ आदि अन्य कोई ऐसे देव नहीं हैं, जो भगवान् सूर्य के मंडल का, जिसमें हजारों किरणें निकलती रहती हैं सदा अनुगमन न करते हों।८। समस्त देवतागणों का यह सुरचित मंडल है, इसमें ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मस्वरूप, याज्ञिक लोग यज्ञ, विष्णुभक्त परमादित्य विष्णु की और महेश्वर भद्रेश्वर की भावना रखते हैं।९। हे वृषभध्वज ! तेजस्वी सूर्य को प्राप्त कर ये सभी गण अपने-अपने स्थान के महत्त्व का अभिमान करते हैं। और तेजस्वी सूर्य के तेज को बढ़ाते हैं। इतना ही नहीं ऋषिगण भी अपनी स्तुतियों द्वारा, गन्धर्व और अप्सराएँ, नृत्य, गान द्वारा सूर्य की स्तुति और उपासना करती हैं।१०-११। ये लोग आकाश में चलते

---

१. उन्नयन्ति। २. चोपैति।

वियद्भ्रमणतो रक्षां कुर्वंतिस्म इषुग्रहम् । सर्पा वहन्ति वै सूर्यं यातुधानास्तु यान्ति च ।।१२
वालखिल्या [1]नमन्त्येतं परिचार्योदयाद्रविम् । दिवस्पतिः स्वभूश्चोभौ अग्रगौ योजनस्य तु ।।१३
भर्गोऽथ दक्षिणे पार्श्वे कञ्जजो वामतः स्थितः । सर्वे ते पृष्ठगा ज्ञेया ग्रहा लोकेषु पूजिताः ।।१४
उपरागशिखी चोभावग्रतो नात्र संशयः । मनुष्यधर्मा दक्षिणत उत्तरेण प्रचेतसः ।।१५
सम्भवन्ति तथा कृष्ण उभावेतौ सदाग्रगौ । वामेन वीतिहोत्रस्तु पृष्ठतस्तु हरिः सदा ।।१६
रथपीठे क्षमा ज्ञेया अन्तराले नभस्तथा । आश्रित्य रथजां कान्तिं स्वं दिवः समयः स्थितः ।।१७
ध्वजो दण्डश्च विज्ञेयो ध्वजाग्रे वृष एव च । ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा श्रीश्च पताका पार्वतीप्रिय ।।१८
ध्वजदण्डाग्रे गरुडस्तदग्रे वरुणालयः । मैनाकश्छत्रदण्डस्तु हिमवांश्छत्रमुच्यते ।।१९
केचिदेवं वदन्तीह लोके चान्ये महामते । छत्रदण्डस्तथा क्लेशः क्लेशं छत्रं विदुर्बुधाः ।।२०
एतेषामेव देवानां यथा वीर्यं तथा तपः । यथायोगं तथा सत्त्वं यथा सत्त्वं तथा बलम् ।।२१
तथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषां सिद्धः स्वतेजसा । एते तपन्ति वर्षन्ति यान्ति विश्वं सृजन्ति च ।।२२
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्ति च कीर्तिताः । एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ते सानुगा दिवि ।।२३
तपन्तश्च जपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै द्विजाः । गोपायन्ति स्म भूतानि इह ते ह्यनुकम्पया ।।२४
प्रीणाति देवानमृतेन सूर्यः सोमेन सूक्तेन विवर्धयित्वा ।

हुए सूर्य की रक्षा करते हैं, साँप रश्मि बनकर रथ का वहन तथा राक्षसगण रथ के पीछे-पीछे चलते हैं और बालखिल्य गण सेवा के बहाने चारों ओर से उन्हें नमस्कार करते हैं। इस प्रकार दिवस्पति एवं स्वयंभू ये दोनों रथ के आगे-आगे एक योजन की दूरी पर स्थित रहते हैं।१२-१३। तथा भर्ग दाहिनी ओर और ब्रह्मा बाँई ओर और सभी ग्रह उनकी दाँई ओर क्रमशः स्थित रहकर चलते हैं।१४। राहु, केतु, रथ के सामने चलते हैं, कुबेर दक्षिण, वरुण उत्तर चलते हैं इस प्रकार ये दोनों तथा कृष्ण आगे ही रहते हैं एवं वीतिहोत्र बाईं ओर, तथा हरि पीछे-पीछे चलते हैं।१५-१६। हे पार्वतीप्रिय ! उस रथ के पीठ स्थान में पृथिवी, मध्य में आकाश, रथ की कान्ति में स्वर्ग, ध्वजा में दण्ड, उसके (ध्वजाग्रमें) सामने धर्म, तथा ऋद्धि-सिद्धि, श्री, पताका और गरुड़ ध्वजदण्ड के सामने रहते हैं एवं उनके सामने वरुण का निवास रहता है। हे महामते ! मैनाक उनके छत्र का दण्ड और हिमवान छत्र हैं। यही अधिकांश लोगों की सम्मति है।१७-१९। किन्तु लोगों का मत है कि क्लेश ही छत्रदंड तथा छत्ररूप है।२०

इन देवताओं के शक्ति के अनुसार तप, तपके अनुसार सत्व एवं सत्व के अनुसार बल है।२१। और इन्हीं के बलानुसार सूर्य सदैव अपने तेज से तपते हैं। इसी भाँति ये समस्त देवगण तपते हैं तथा वर्षा करते हैं तथा विश्व की रचना करते हैं।२२। उसी भाँति जीवों के अशुभ कर्मों का नाश तथा आकाश में सूर्य के साथ भ्रमण किया करते हैं।२३। ब्राह्मणवर्ग भी अपने तप तथा जप द्वारा प्रसन्न करते हुए तुम्हारी अनुकम्पा से जीवों की रक्षा करते हैं।२४। यद्यपि सूर्य अपनी किरणों द्वारा अमृतमय चन्द्र की जो क्रमशः दिन व्यतीत करते हुए शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को पूर्ण होते है, वृद्धि करके उसे कृष्ण पक्ष में देवताओं को

---

१. नयंत्यस्तम् ।

शुक्लेन पूर्णा दिवसक्रमेण तं कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति॥२५
पीतं हि सोमं द्विकलावशेषं कृष्णे तु पक्षे रुचिभिर्ज्वलन्तम्।
सुधामृतं तत्पितरः पिबन्ति ऊर्जाश्च सौम्याश्च तथैव कल्याः॥२६
सूर्येण गोभिश्च समृद्धिताभिरद्भिः पुनश्चैव समुज्झिताभिः।
तथौषधीभिः सततं पिबन्ति अत्यन्तपानेन क्षुधा जयन्ति॥२७
मासार्धतृप्तिस्तु मताभिरद्भिर्मासेन तृप्तिः स्वधया पितॄणाम्।
अन्नेन शश्वद्विदधाति मर्त्यं स्वयं जगच्चैव बिभर्ति गोभिः॥२८
अहोरात्रं रथेनासावेकचक्रेण वै भ्रमन्। सप्तद्वीपसमुद्रान्तां सप्तभिश्च हयैः सह॥२९
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यतश्चक्रं ततः स्थितैः। कामरूपैः सकृद्युक्तैरन्तरस्थैर्मनोजवैः॥३०
हरिभिरव्ययैर्वश्यैः क्षुधाश्रमविवर्जितैः। द्व्यशीतिमण्डलशतमीहन्त्यब्देन वै हयाः॥३१
बाह्यतोऽभ्यन्तरं चैव मण्डलं दिवसक्रमात्। कल्पादौ सम्प्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसम्प्लवम्॥३२
आवृता बालखिल्यैस्तैर्भ्रमन्ति तान्यहानि तु। ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तूयमानो महर्षिभिः॥३३
सेव्यते नृत्यगीतैश्च गन्धर्वैरप्सरोगणैः। पतङ्गः पतगैरश्वैर्वसते भ्रमयन्दिवि॥३४
वीथ्याश्रयया विचरते नक्षत्राणि यथा शशी। मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः॥३५
वैवस्वते संयमने उत्तिष्ठन्दृश्यते तदा। सुखायामर्धरात्रं तु विभायामस्तमेति च॥३६

पान कराते हैं और इस प्रकार अमृतपान के द्वारा वे देवों को सदैव संतुष्ट रखते हैं।२५। तथापि (देवों के) अमृत पान करने पर मनोरम कांतियों से पूर्ण दो कलायें कृष्ण पक्ष में शेष रह जाती हैं। जिसे तेजस्वी एवं सौम्य पितर लोग पान करते हैं।२६। सूर्य (अपनी किरणों द्वारा) जलपूर्ण पृथिवी के रस (जल) को लेकर फिर (वृष्टि रूप में) उसे त्याग देते हैं, जिसके द्वारा इस प्रकार की औषधि उत्पन्न होती है जो पान करने पर क्षुधा को एकदम शांत कर देती है। उसे पितरगण पान करते हैं।२७। उस वृष्टि के जल के द्वारा एक पक्ष में और स्वधा द्वारा दिये हुए जल से पूरे मास में पितर लोग तृप्त होते हैं एवं उससे समृद्ध अन्नों द्वारा नित्य मनुष्यों की तृप्ति होती है। इसी प्रकार अपनी किरणों द्वारा सूर्य समस्त जगत् का पालन-पोषण करते रहते हैं।२८। इसी भाँति एक चक्के वाले रथ पर जिसमें सात घोड़े जुते हुए हैं, बैठकर सूर्य सातों द्वीप के समुद्र-पार की यात्रा अहोरात्र में सम्पन्न करते हैं।२९। सूर्य उस (रथ में जुते हुए) घोड़े द्वारा, जो छन्दोरूप, सौन्दर्यपूर्ण, मन की भाँति शीघ्रगामी, सदैव महाशक्तिशाली, वशीभूत, भूख-प्यास से सैदव मुक्त रहते हैं, पूर्ण वर्ष में एक सौ बयासी मंडल की यात्रा करते हैं।३०-३१। इस प्रकार दिवस के क्रम से (वे घोड़े) कल्प के आरम्भ काल में यात्रा के लिए प्रस्थान करते हैं और महाप्रलय तक उसी भाँति बाहरी एवं भीतरी मंडल को बनाते एवं चलते रहते हैं।३२। उस समय जिस भाँति सूर्य के चारों ओर घेरे हुए बालखिल्य, स्तुति करते हुए महर्षि लोग और नृत्य-गान द्वारा सेवा करती हुई अप्सराएँ तथा गन्धर्व लोग स्थित रहते हैं ऐसे ही चन्द्र की भाँति नक्षत्रों को पार करते हुए सूर्य भी आगे बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा आकाश में सूर्य घूमते रहते हैं। सूर्य द्वारा अमरावती में जब मध्याह्न (दोपहर) होता है, तो उस समय, संयमनी (यमपुरी) में सूर्योदय, (वरुण की) सुखा नगरी में आधीरात

वैवस्वते संयमने मध्यमस्तु रविर्यदा । सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन्दृश्यते तदा ॥३७
रात्र्यर्धं चामरावत्यामस्तमेति यमस्य वै । सोमपुर्यां विभायां तु मध्यगश्चार्यमा यदा ॥३८
माहेन्द्रस्यामरावत्यामुत्तिष्ठति दिवाकरः । अर्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ॥३९
एवं चतुर्षु पार्श्वेषु मेरोः कुर्वन्प्रदक्षिणम् । उदयास्तमने चासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ॥४०
पूर्वाह्ने चापराह्ने च द्वौ द्वौ देवालयौ पुनः । तपत्येकं तु मध्याह्ने ताभिरेव गभस्तिभिः ॥४१
उदितो वर्धमानाभिरामध्याह्नात्तपेद्रविः । ततः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं नियच्छति ॥४२
यत्रोद्यन्दृश्यते सूर्यः स तेषामुदयः स्मृतः । प्रणाशं गच्छते यत्र स तेषामस्तमुच्यते ॥४३
एवं पुष्करमध्येन तदा सर्पति भास्करः । त्रिंशद्भागं तु मेदिन्या मुहूर्तेन स गच्छति ॥४४
योजनाग्रेण सङ्ख्यां[१] तु मुहूर्तस्य निबोध मे । पूर्णं शतसहस्राणां सहस्रं तु त्रिलोचन ॥४५
पञ्चाशच्च तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु । मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ॥४६
योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने । निमेषान्तरमात्रेण दिवि सूर्यः प्रसर्पति ॥४७
स शीघ्रमेव पर्येति भास्करोऽलातचक्रवत् । भ्रमन्वै भ्रममाणेषु ऋक्षेषु विचरत्यसौ ॥४८
इन्द्रः पूजयते सूर्यमुत्तिष्ठन्तं दिने दिने । मध्याह्ने च यमः पश्चादस्तं यान्तमपां पतिः ॥४९
सोमस्तथार्धरात्रे तु सदा पूजयते रविम् । विष्णुर्भवानहं रुद्रः पूजयाम निशाक्षये ॥५०

एवं (चन्द्र की) विभापुरी में सूर्यास्त होता है।३३-३६। उसी भाँति संयमनी में जिस समय मध्याह्न होता है, उस समय सुखानगरी में सूर्योदय, अमरावती में आधी रात तथा संयमनी में सूर्यास्त होता है। और विभा में जिस समय मध्याह्न होता है, उस समय अमरावती में सूर्योदय, संयमनी में आधी रात और (वरुण की) मुखा नगरी में सूर्यास्त होता है।३७-३९। इस प्रकार मेरु पर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणा करते हुए सूर्य का बार-बार उदय और अस्त होता है।४०। दिन का पूर्वार्द्ध (पूर्व भाग) और अपराह्न (उत्तर भाग) रूप दो देवालय हैं, उनके मध्य में सूर्य अपनी प्रखर किरणों द्वारा तपता है।४१। (सूर्य) उदय काल से मध्याह्न तक अपनी, वृद्धि प्राप्त किरणों द्वारा तपते रहते हैं तथा दूसरे समय क्षीण किरणों द्वारा अस्त होते हैं।४२। उदय होते हुए (सूर्य) जिस दिशा में दिखाई पड़े वह उदय (पूर्व) दिशा और जहाँ अस्त होते हुए दिखाई दे वह अस्त (पश्चिम) दिशा होती है।४३। इस प्रकार सूर्य, पुष्कर के मध्य भाग होकर चलते हैं और वे एक मुहूर्त में पृथिवी के विस्तार प्रमाण के तीसवें भाग के समान दूरी की यात्रा कर पाते हैं।४४। हे त्रिलोचन ! इस भाँति योजन के प्रमाण से सूर्य डेढ़ लाख योजन की यात्रा एक मुहूर्त में करते हैं और उनकी एक क्षण की यात्रा दो हजार दो सौ योजन की होती है।४५-४७। अलात चक्र की भाँति अत्यन्त शीघ्र गति से सूर्य घूमते हुए नक्षत्रों के मध्य होकर चलते हैं।४८। उनके उदय काल में इन्द्र, मध्याह्न में यम, अस्त काल में वरुण और अर्धरात्र में चन्द्रमा सूर्य की पूजा करते हैं। हे देवशार्दूल !

---

१. संरक्षाम्। २. त्रिंशच्छतसहस्राणाम्। ३. पूजयन्ति, पूजयामः।

एवमग्निर्निर्ऋतिश्च वायुरीशान एव च । पूजयन्ति क्रमेणैव भ्रममाणं दिवाकरम् ।।
श्रेयोऽर्थं देवशार्दूल सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ।।५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि रथसप्तमीकल्पे
सूर्यगतिवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५३।

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यमहिमवर्णनम्

रुद्र उवाच

अहो हंसस्य माहात्म्यं वर्णितं भवतेदृशम् । कथ्यतां पुनरेवेदं माहात्म्यं भास्करस्य तु ।।१

ब्रह्मोवाच

आदित्यमन्त्रमखिलं त्रैलोक्यं सचराचरम् । भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।।२
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रत्रिदिवौकसाम् । महाद्युतिमतां कृत्स्नं तेजो यत्सार्वलौकिकम् ।।३
सर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः । सूर्य एष त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ।।४
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठति । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।।५

इसी प्रकार रात व्यतीत होने पर विष्णु, आप (जल) तथा रुद्र, अग्नि, राक्षस, वायु, ईशान एवं ब्रह्मादिक देव क्रमशः सभी सूर्य की पूजा करते हैं ।४९-५१

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के रथसप्तमी कल्प में सूर्य गति वर्णन नामक
तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ।५३।

अध्याय ५४

सूर्य की महिमा का वर्णन

रुद्र ने कहा—आपके मुख से इस प्रकार सूर्य के माहात्म्य को सुनकर मेरी अभिलाषा बढ़ रही है मैं चाहता हूँ कि इनके माहात्म्य को आप फिर मुझे सुनायें ।१

ब्रह्मा बोले—तीनों लोकों की जिसमें चर एवं अचर सभी हैं, रचना में मूल कारण आदित्य का मन्त्र ही है । इन्हीं से समस्त जगत्, जिसमें देव, असुर और मनुष्य हैं, उत्पन्न हुआ है ।२। इस प्रकार रुद्र, इन्द्र, विष्णु और चन्द्र आदि देवताओं में इन्हीं महातेजस्वी (सूर्य) का तेज निहित है, क्योंकि इनका तेज सभी लोकों में व्याप्त है ।३। सभी की आत्मा, समस्त लोकों के स्वामी, देवाधिदेव, एवं प्रजापति होने के नाते सूर्य तीनों लोकों के महान् देवता हैं ।४। क्योंकि अग्नि में दी हुई आहुति भी सूर्य को प्राप्त होती है, उनसे वर्षा होती है, वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है और अन्न द्वारा प्रजाओं का जीवन होता है ।५। इस भाँति सूर्य

सूर्यात्प्रसूयते [1]सर्वं तत्र चैव प्रलीयते । भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।।६
एतत्तु ध्यानिनां ध्यानं मोक्षं चाप्येष मोक्षिणाम् । अत्र गच्छन्ति निर्वाणं जायन्तेऽस्मात्पुनः प्रजाः ।।७
क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशाः पक्षाश्च नित्यशः । मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च ।।८
सदादित्यादृते ह्येषा कालसङ्ख्या न विद्यते । कालादृते न नियमो [2]नाग्निर्न हवनक्रिया ।।९
[3]ऋतूनामविभागाच्च पुष्पमूलफलं कुतः । कुतः सस्यदिनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणाः [4] कुतः ।।१०
अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च । जगत्प्रतपनमृते भास्करं वारितस्करम् ।।११
नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिविष्यते । नावृष्ट्या विकृतिं धत्ते वारिणा दीप्यते रविः ।।१२
वसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसप्रभः । श्वेतो वर्णेन वर्षासु पाण्डुः शरदि भास्करः ।।१३
हेमन्ते ताम्रवर्णस्तु शिशिरे लोहितो रविः । इति वर्णाः समाख्याताः शृणु वर्णफलं हर ।।१४
कृष्णोभयाय जगतस्ताम्रः सेनापतिं विनाशयति । पीतो नरेन्द्रपुत्रं [5] श्वेतस्तु पुरोहितं हन्ति ।।१५
चित्रोऽथ वापि धूम्रो रवी रश्मिव्याकुलं करोत्युच्चैः । तस्करशस्त्रनिपातैर्यदि न सलिलमाशु पातयति ।।१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि रथसप्तमीकल्पे
सूर्यमहिमवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५४।

द्वारा ही सभी वस्तुओं का उत्पादन और उन्हीं में लय होता है । लोकों का उत्पन्न और विनाश होना भी सूर्य के ही अधीन है यह पहले से निश्चित है ।६। और यही ध्यान करने वालों के ध्येय, और मोक्ष प्राप्त करने वालों के मोक्ष स्थान हैं । इन्हीं द्वारा निर्वाण पद की प्राप्ति होती है ।७। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु और युग रूप काल की भी व्यवस्था सूर्य के बिना संभव नहीं होती है ।८। तथा समय व्यवस्था के बिना नियम, अग्नि और हवन एवं ऋतुओं के विभाग न होने पर पुष्प, मूल, अन्न, तृण, औषधि, और लोक-परलोक वाली मनुष्य की क्रियाएं भी वास्तविक रूप में सूर्य के बिना सुसम्पन्न नहीं हो सकती हैं ।९-११। बिना वृष्टि के सूर्य में तपन, परिवेष (बादलों से घिरना) और अन्य विकार भी संभव नहीं होते हैं क्योंकि जल से ही सूर्य देदीप्यमान होते हैं ।१२

सूर्य बसंत ऋतु में कपिल, ग्रीष्म ऋतु में सुवर्ण कान्ति की भाँति, वर्षा में श्वेत, शरद में पांडु, हेमन्त, में ताँबे की कान्ति की भाँति और शिशिर में लोहित (रक्त वर्ण) के रहते हैं, अतः अब वर्णों का फल बता रहा हूँ सुनो ! १३-१४। हे हर ! जिस प्रकार कृष्ण वर्ण के सूर्य से समस्त जगत् को भय, उनके ताँबे वाले वर्ण से सेना नायक का विनाश, पीतवर्ण से राजा पुत्र का निधन, श्वेत वर्ण से पुरोहित का नाश होता है, उसी भाँति चित्र-विचित्र वर्ण पर धुएँ के समान वर्ण वाले सूर्य से यदि शीघ्र वर्षा न हो, तो चोरों एवं तस्करों के आघातों द्वारा (जगत् को) पीड़ा प्राप्त होती है ।१५-१६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के रथसप्तमी कल्प में सूर्य महिमा वर्णन नामक
चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।५४।

---

१. विश्वम् । २. नाग्नेर्विहरणक्रिया । ३. ऋतुनामविभागश्च । ४. स्वापजागरणाः कुतः । ५. नराः ।

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यरथयात्रावर्णनम्

रुद्र उवाच

रथयात्रा कथं कार्या भास्करस्येह मानवैः । फलं च किं भवेत्तेषां यात्रां कुर्वन्ति ये रवे[1]: ।।१
विधिना केन कर्तव्या कस्मिन्काले सुरोत्तम । कथं च भ्रामयेद्देवं रथारूढं[2] दिवाकरम् ।।२
देवस्य ये रथं भक्त्या भ्रामयन्ति वहन्ति च । तेषां च किं फलं प्रोक्तं ये च नृत्यकरा नराः ।।३
भ्रमन्ति ये न च देवेन नृत्यगीतपरायणाः । प्रजागरं च कुर्वन्ति भक्त्या श्रद्धासमन्विताः ।।४
तेषां च किं फलं प्रोक्तं रथं यच्छन्ति[3] ये रवेः । बलिं भक्तं च ये भक्त्या दिशन्त्याह्निकभोजनम् ।।५
एतन्मे ब्रूहि निखिलं सुरज्येष्ठ सविस्तरम् । लोकानां श्रेयसे देव परं कौतूहलं हि मे ।।६

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भूतेश गणेशोऽसि त्रिलोचन । शृणुष्वैकमना वच्मि यथाप्रश्नं सविस्तरम् ।।७
देवस्य रथयात्रेयं भास्करस्य महात्मनः । इन्द्रोत्सवस्तथा रुद्र मया ह्येतौ प्रकीर्तितौ ।।८
मर्त्यलोके शान्तिहेतोर्लोकानां लोकपूजित । प्रवर्तितावुभौ यस्मिन्देशे देवमहोत्सवौ ।।९
न तत्रोपद्रवाः सन्ति राजतस्करसम्भवाः । तस्मात्कार्याविमौ भक्त्या दुर्भिक्षस्येह शान्तये ।।१०

अध्याय ५५

सूर्य की रथ यात्रा का वर्णन

रुद्र ने कहा—मनुष्यों को सूर्य की रथ यात्रा किस भाँति करनी चाहिए और जो उनकी रथ यात्रा करते हैं, उन्हें किस फल की प्राप्ति होती है ।१। हे सुरोत्तम ! वह (रथयात्रा) किस समय में किस विधि द्वारा की जाती है तथा देव (सूर्य) को रथ पर बैठाकर किस प्रकार से घुमाया जाता है ।२। भक्तिपूर्वक जो रथ को ले चलते एवं घुमाते हैं, तथा नाच-गान द्वारा जागरण, बलि एवं भोजन समर्पित करते हैं, उन्हें किस फल की प्राप्ति होती है । हे सुरश्रेष्ठ ! मुझे इन बातों के जानने के लिए महान् कोतूहल है और इससे लोगों का महान् कल्याण भी होगा अतः ये सभी बातें विस्तार पूर्वक मुझे बताने की कृपा करें ।३-६

ब्रह्मा बोले—हे भूतेश, हे त्रिलोचन ! आप गणों के स्वामी हैं इसीलिए प्रश्न भी बहुत उत्तम किये हैं, अस्तु सावधान होकर सुनो ! मैं प्रश्न के अनुसार विस्तार पूर्वक इसका उत्तर दे रहा हूँ ।७। हे रुद्र ! महात्मा सूर्य देव की रथयात्रा और इन्द्र का महोत्सव मैंने पहले ही कह दिया है ।८। हे लोकपूजित ! इस मर्त्यलोक में लोगों की शांति प्राप्त करने के लिए जिस प्रदेश में ये दोनों महोत्सव किये जाते हैं, उसमें राजा के द्वारा (अत्याचार) और चरों के द्वारा कोई उपद्रव नहीं होता है, अतः दुर्भिक्ष (अकाल) की शांति के लिए इन महोत्सवों को अवश्य करना चाहिए ।९-१०

---

१. नराः । २. रविं च नभसि स्थितम् । ३. गच्छंति ।

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां मासि भाद्रपदे हर । घृतेनाभ्यङ्गयेद्देवं पञ्चपूताङ्गजेन वै ॥११
अभ्यङ्गयेद्महेशं यः सर्षपैः श्रद्धयान्वितः । दिने दिने जगन्नाथं प्रविष्टं वर्णके रविम् ॥१२
स गच्छेद्यानमारूढो गैरिकं किङ्किणीकृतम् । वैश्वानरपुरं दिव्यं गन्धर्वाप्सिरशोभितम् ॥१३
शाल्योदनं खण्डमिश्रं वज्रं वज्रसमन्वितम् । वर्णभक्तं प्रयच्छेद्यो भास्कराय दिने दिने ॥१४
आरूढः स विमानं तु ज्वालामालाकुलं शुभम् । गच्छेन्मम पुरं देव स्तूयमानो महर्षिभिः ॥१५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भास्कराय नरैः शिव । वर्णभक्तं प्रदातव्यं प्रविष्टस्येह वर्णकम् ॥१६
घृतपूर्णं खण्डवेष्टं कासारं मोदकं पयः । दध्योदनं पायसं च संयावं गुडपूपकान् ॥१७
ये प्रयच्छन्ति देवस्य भास्करस्येह वर्णकम् । ते गच्छन्ति न सन्देहो नरा वै मन्दिरं मम ॥१८
अहन्यहनि यो भक्त्या भास्कराय प्रयच्छति । अभ्यङ्गाय घृतं देवं स याति परमां गतिम् ॥१९
तथा यो वर्णभक्तं च अहन्यहनि भक्तितः । स प्राप्येह शुभान्कामान्गच्छेत्स भवसालयम् ॥२०
चूर्णमुद्वर्तनायेह यः प्रयच्छेच्छुभं रवेः । स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥२१
ततस्तं स्नापयेद्देवं पौषे मासि विधानतः । सप्तम्यां शुक्लपक्षस्य शृणुस्वैकमनास्तथा ॥२२
तीर्थोदकमुपानीय अन्यद्वाथ जलं शुभम् । वेदोक्तेन विधानेन प्रतिमां स्थापयेद्बुधः ॥२३
यजेद्धि तीर्थनामानि मनसा संस्मरन्बुधः । प्रयागं पुष्करं देवं कुरुक्षेत्रं च नैमिषम् ॥२४
पृथूदकं चन्द्रभागां शौरं गोकर्णमेव च । ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं बिल्वकं नीलपर्वतम् ॥२५

भादों मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन सूर्य के अंगों में पंचगव्य समेत घी लगावे और श्रद्धापूर्वक रक्तवर्ण के अंगों में सरसों के तेल द्वारा अभ्यंग करने से ऐसे विमान पर बैठकर जिसमें सुसज्जित सुवर्ण की छोटी-छोटी घंटियों की मनोहर ध्वनि होती हो, गंधर्व एवं अप्सराओं से सुशोभित वैश्वानर लोक की प्राप्ति होती है।११-१३। जो खांड़ मिश्रित शाली चावल (भात) वज्र नामक पुष्प तथा लाल रंग के चावल के भाग सूर्य के लिए प्रतिदिन समर्पित करता है, वह दीप्तिपूर्ण विमान पर बैठकर महर्षियों द्वारा सम्मानित होते हुए मेरे लोक को प्रस्थान करता है।१४-१५। इसीलिए लाल चावल के भात मंडलप्रविष्ट सूर्य को अवश्य समर्पित करना चाहिए।१६। इसी भाँति जो घी मिश्रित खांड, कासार (कमल) लड्डू, दूध, दही, भात, खीर लप्सी और गुड़ का मालपुआ मंडल प्रविष्ट सूर्य को सादर समर्पित करते हैं, वे निःसंदेह मेरे भवन में पहुँचते हैं।१७-१८। भक्तिपूर्वक जो प्रतिदिन लेप के लिए घी प्रदान करते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है।१९। इसी प्रकार जो भक्तिपूर्वक सूर्य को लाल चावल के भात प्रदान करते हैं, वे अपने समस्त मनोरथ को सफल करके पश्चात् सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं।२०। उबटन के लिए जो उन्हें चूर्ण समर्पित करते हैं, वे सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति करते हैं।२१

इस प्रकार जो पौष की शुक्ल पक्ष की सप्तमी में भी सूर्य को स्नान कराता है (उसके फल) सावधान होकर सुनो ! तीर्थ के जल या अन्य किसी जल से स्नान कराकर उनकी प्रतिमा को वैदिक मंत्रों द्वारा स्थापित करना चाहिए।२२-२३। प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, नैमिष एवं पृथूदक, चन्द्रभागा, शोण, गोकर्ण, ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, विल्वक, नील पर्वत, गंगा द्वार, गंगासागर, कालप्रिय, मित्रवन, शृंगी स्वामी, चक्रतीर्थ, रामतीर्थ, वितस्ता, हर्षपन्यो, देविका, गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, नर्मदा, विपाशा,

गङ्गाद्वारं तथा पुण्यं गङ्गासागरमेव च। कालप्रियं मित्रवनं शुण्डीरस्वामिनं तथा ॥२६
चक्रतीर्थं तथा पुण्यं रामतीर्थं तथा शिवम् । वितस्ता हर्षपंथा वै तथा वै देविका स्मृता ॥२७
गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा सनर्मदा । विपाशा यमुना तापी शिवा वेत्रवती तथा ॥२८
गोदावरी पयोष्णी च कृष्णा वेण्या तथा नदी । शतरुद्रा पुष्करिणी कौशिकी सरयूस्तथा ॥२९
तथान्ये सागराश्चैव सान्निध्यं कल्पयन्तु वै । तथाश्रमाः पुण्यतमा दिव्यान्यायतनानि च ॥३०
एवं स्नानविधिं कृत्वा अर्चयित्वा प्रणम्य च । धूपमर्घ्यं प्रदत्त्वा तु प्रतिमामधिवासयेत् ॥३१
त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा मासं मासार्द्धमेव च । स्थितं स्नानगृहे देवं पूजयेद्भक्तितो नरः ॥३२
चत्वरे लेपयेद्वेदिं चतुरस्रां शुभे कृताम् । चतुर्दिशं श्वेतकुम्भैर्वितानवरशोभिताम् ॥३३
कृष्णपक्षे तु माघस्य सप्तम्यां त्रिपुरांतक । कृत्वाग्निकार्यं विधिवत्कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ॥३४
शङ्खभेरीनिनादैस्तु ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः । पुण्याहघोषैर्विविधैर्ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ॥३५
ततोऽस्य परया भक्त्या सूर्यस्य परमात्मनः । रथेन दर्शनीयेन किङ्किणीजालमालिना ॥
सूर्यं च भ्रामयेद्देवं महोत्सवपुरःसरम् ॥३६
शुक्लपक्षे तु माघस्य रथमारोपयेद्रविम् । कृत्वाग्निहोमं विधिवत्तथा ब्राह्मणभोजनम् ॥३७
प्रीणयित्वा जनं सर्वं दक्षिणाभोजनादिना । प्रपूज्य ब्राह्मणान्दिव्यान्भौमांश्चापि सुवाचकान् ॥३८
इतिहासपुराणाभ्यां वाचको ब्राह्मणोत्तमः । ततो देवश्च इष्टश्च सम्पूज्यो यत्नतस्तदा ॥३९
माघस्य शुक्लपक्षस्य पञ्चम्यामेकभक्तकम् । अयाचितं चतुर्थ्यां तु षष्ठ्यां नक्तं प्रकीर्तितम् ॥४०

यमुना, तापी, शिवा, वेत्रवती, गोदावरी, पयोष्णी, कृष्णा, वेण्या, शतरुद्रा, पुष्करिणी, कौशिकी, एवं सरयू आदि नदियाँ, सागरों के पवित्र आश्रमों में देवालयों के सान्निध्य की कल्पना पूर्वक उन्हें स्नान कराकर पूजन, प्रणाम, धूप एवं अर्घ्य प्रदान कर उनकी प्रतिमा को स्थापित करना चाहिए।२४-३१। इस प्रकार तीसरे, सातवें, पन्द्रहवें दिन अथवा मास में भक्तिपर्वूक स्नानगृह में स्थित सूर्य की पूजा करनी चाहिए।३२। किसी चबूतरे पर चौकोर सुन्दर वेदी बनाकर और गोमय से लीपकर जिसको चारों ओर से श्वेत, कलश तथा चाँदनी आदि से सुशोभित किया गया हो, उसी स्थान पर पूजा करनी चाहिए।३२-३३

हे त्रिपुरांतक ! माघ कृष्ण सप्तमी में भी विधिवत् पूजन, हवन और ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करे।३४। शंख एवं दुंदुभी के वाद्यों समेत ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन आदि मांगलिक वेद पाठ करते हुए सूर्यदेव के उस दर्शनीय रथ को, जिसमें छोटी-छोटी घंटियाँ माला की भाँति लगी हों, महोत्सव बनाते हुए घुमाना चाहिए।३५-३६

उसी भाँति माघ शुक्ल पक्ष की सप्तमी को रथ पर सूर्य देव को बैठाकर विधिवत् हवन-पूजन और ब्राह्मण भोजनादि कराकर सभी लोगों को भोजन और दक्षिणा से प्रसन्न करने के उपरान्त दिव्य भौम तथा पाँच बार कथा वाचक की जो इतिहास तथा पुराण के मर्मज्ञ हों एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण हों, पूजा करने के पश्चात् अपने इष्टदेव की पूजा करे।३७-३९

माघ शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में अयाचित अन्न के भोजन पञ्चमी में एक बार भोजन करके षष्ठी में

सप्तम्यामुपवासं तु आश्रमाद्रोपयेद्रथम् । अग्निकार्यं तु वै कृत्वा रथस्य पुरतः शिव ।।४१
षष्ठ्यां च रात्रौ भूतेश रथस्येहाधिवासनम् ।ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु दिव्यान्भौमांश्च वाचकान् ।।४२
रथमारोपयेद्देवं सप्तम्यां भूतभावनम् । सितायां माघमासे तु तस्य देवालयाग्रतः ।।४३
तत्रस्थस्यैव देवस्य कुर्याद्रात्रौ प्रजागरम् । नानाविधैः प्रेक्षणकैर्दीपवृक्षोपशोभितैः ।।४४
शंखतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः । कुर्यात्प्रजागरं भक्त्या देवस्य पुरतो निशि ।।४५
ततोऽष्टम्यां च यत्नेन देवं रथगतं नयेत् । नगरस्योत्तर द्वारं शङ्खभेरी निनादितम् ।।४६
ततः पूर्वं दक्षिणं च द्वारं चापि तथा परम् । एवं हि क्रियमाणायां यात्रायां वत्सरावधौ ।।४७
मानवाः सुखमेधन्ते राजा जयति चाहितान् । नीरुजश्च जनाः सर्वे गवां शान्तिर्भवेत्तथा ।।४८
कर्तारश्चापि यात्रायाः स्वर्गभागो भवन्ति हि । वोढारश्च तथा वत्स सूर्यलोकं व्रजन्ति वै ।।४९

रुद्र उवाच

कथं सञ्चाल्यते ब्रह्मन्स्थापिता प्रतिमा सकृत् । एतन्मे वद देवेश सुमहान्संशयो हि मे ।।५०

ब्रह्मोवाच

पूर्वमेव सहस्रांशोर्यानहेतोर्महात्मनः । संवत्सरस्यावयवैः [1]कल्पितोऽस्य रथो मया ।।५१
सर्वेषां तु रथानां वै स रथः प्रथमः स्मृतः । तं दृष्ट्वा तु ततस्त्वन्ये स्यन्दना विश्वकर्मणा ।।५२

नक्त व्रत करना चाहिए।४०। हे शिव ! इस प्रकार सप्तमी में उपवास करते हुए रथ के सामने हवन आदि करके उसे संचालित करे।४१। हे भूतेश ! सर्व प्रथम षष्ठी की रात दिव्य, भौम एवं कथा वाचक ब्राह्मणों को भोजन कराकर रथ का अधिवासन करे और माघ मास की शुक्ल सप्तमी में भूतभावन सूर्य को उसी रथ पर बैठाकर और उसी देवालय के सामने जो भाँति-भाँति के दर्शनीय दीप (दीपावली) और दीप वृक्षों से सुशोभित हो वेद पाठपूर्वक शंख एवं तूर्य (तुरूही) आदि वाद्यों को निनादित कराते हुए रथस्थित देवता के सम्मुख भक्तिपूर्वक समस्त रात जागरण करे।४२-४५। पश्चात् अष्टमी को प्रयत्नपूर्वक देव के उस रथ को शंख और भेरी के ध्वनि कोलाहल के बीच पहले नगर के उत्तर की ओर तथा फिर पूरब और दक्षिण की ओर पश्चात् पश्चिम की ओर ले जाये। इस प्रकार वर्ष पर्यन्त यात्रा करने पर मनुष्यों को सुख, राजा को शत्रु विजय, अन्य लोगों को आरोग्य और गौओं को शांति प्राप्त होती है।४६-४८। यात्रा करने वाले प्राणी स्वर्ग में निवास करते हैं एवं रथ को ले चलने वाले प्राणी सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं।४९

रुद्र ने कहा—देवेश, ब्रह्मन् ! एक बार जिस प्रतिमा की स्थापना हो जाती है, उसका संचालन कैसे किया जाता है। इसमें मुझे महान् संदेह है, अतः उसकी निवृत्ति के लिए कृपा करें।५०

ब्रह्मा बोले—मैंने सर्वप्रथम महात्मा सूर्य देव के रथ को, जो वर्ष के अवयवों (मासादिकों) द्वारा निर्मित है, बताया है।५१। क्योंकि रथों के पूर्व उसकी रचना हुई है और उसे देखकर ही विश्वकर्मा ने सभी

---

१. कथितः ।

कल्पिताः सर्वदेवानां सोमादीनामनेकशः । विश्वकर्मकृतं प्राप्य रथं देवेन पुत्रक ।।५३
पूजार्थमात्मनो दत्तं मनवे सत्कुलोद्वह । मनुनेक्ष्वाकवे दत्तं मर्त्यैः सम्पूज्यतां रविः ।।५४
अतस्तु रथयानेन [1]चालनं विहितं रवेः । तस्मान्न चालने दोषः सवितुश्चल एव सः ।।५५
यस्माद्रथेन पर्येति भास्करः पृथिवीमिमाम् । गच्छन्न दृश्यते चैतन्मण्डलं सवितुस्तथा ।।५६
अदृष्टं चलते यस्मात्तस्माद्वै पार्वतीप्रिय । तदेवं रथयात्रासु दृष्टं भानोर्मनीषिभिः ।।५७
अन्येषां चालनं नेष्टं देवानां पार्वतीप्रिय । ब्रह्माविष्णुशिवादीनां स्थापितानां विधानतः ।।५८
तस्माद्रथेन देवस्य यात्रा कार्या विधानतः । प्रजानामिह शान्त्यर्थं प्रतिसंवत्सरं सदा ।।५९
काञ्चनो वाथ रौप्यो वा दृढदारुमयोऽपि वा । दृढाक्षयुगचक्रश्च रथः कार्यः सुयन्त्रितः ।।६०
तस्मिन् रथवरे श्रेष्ठे कल्पिते सुमनोरमे । आरोप्य प्रतिमां यत्नाद्योजयेद्वाजिनः शुभान् ।।६१
हरिल्लक्षणसम्पन्नान्सुमुखान्वशवर्तिनः । कुङ्कुमेन समालब्धांश्चामरस्रग्विभूषितान् ।।६२
सदश्वान्योजयित्वा तु रथस्यार्घ्यं प्रदाय च । विबुधान्पूजयित्वा तु धूपमाल्यानुलेपनैः ।।६३
आहारैर्विविधैश्चापि भोजयित्वा द्विजोत्तमान् । दीनान्धकृपणार्दीश्च सर्वान्संतर्प्य शक्तितः[2] ।।६४
न कञ्चिद्विमुखं कुर्यादुत्तमाधममध्यमम् । सूर्यक्रतौ तु वितते एवमाहुर्मनीषिणः ।।६५

देवताओं के रथ की अनेक बार रचना की है। हे पुत्र ! विश्वकर्मा के बनाये हुए उस रथ को प्राप्त कर सूर्य देव ने उसे अपनी पूजा के निमित्त मनु को प्रदान किया और मनु ने इक्ष्वाकु को। अतः सभी मनुष्य को सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।५२-५४। रथ के चलाने से ही सूर्य का संचालन बताया गया है। अतः सूर्य के संचालन में दोष नहीं है क्योंकि वे चलने वाले ही देव बताये गये हैं ।५५। सूर्य जिस रथ द्वारा इस पृथिवी को पार करते हैं और चलते हुए उन्हें कोई भी देख नहीं पाते। उसी भाँति उनके मंडल को भी नहीं देख सकते हैं ।५६। हे पार्वतीप्रिय ! इसीलिए कि उनका चलना दिखाई पड़े, क्योंकि उनका चलना दिखायी नहीं देता है। लोग रथयात्रा करते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की प्रतिष्ठा कर देने पर उनका संचालन (गमन) करना दृष्ट नहीं कहा गया है। अतः प्रजा (जनता) के शान्ति हितार्थ प्रतिवर्ष (सूर्य की) रथयात्रा अवश्य करनी चाहिए ।५७-५९

सोने, चाँदी पर भली-भाँति किसी दृढ़ काष्ठ का सौन्दर्यपूर्ण रथ बनाकर जिसमें धुरी, और जुए अत्यन्त दृढ़ बनाये गये हों। उसे सुसज्जित करे और उसमें उनकी प्रतिमा को स्थापित कर उस रथ में अच्छे-अच्छे हरे रंग एवं वशीभूत घोड़ो को जो स्वयं सुन्दर और कुंकुम से युक्त, चामर, माला से सुशोभित किये हो, जोतकर देवों के अर्घ्य आदि समेत पूजन करे अनन्तर उन्हें धूप एवं चन्दन माला पहनाकर तथा रथ के पूजनोपरांत उसका संचालन करे ।६०-६३। उसमें अनेक भाँति के पदार्थ उत्तम ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिए तथा दीन, अंधे और निःसहाय व्यक्तियों को भी शक्ति के अनुसार संतुष्ट करना आवश्यक बताया गया है ।६४। विद्वानो ने बताया है कि सूर्य के यज्ञ में उत्तम, मध्यम एवं अधम श्रेणी का कोई भी व्यक्ति विमुख होकर वहाँ से न जाने पाये ।६५। क्योंकि वहाँ जाकर कोई भी निराश होकर यदि क्षुधा से

---

१. वाहनम् । २. यत्नतः ।

यश्चिन्तयति भग्नाशः क्षुधावातप्रपीडितः । अदातुर्हि पितृंस्तेन स्वर्गस्थानपि पातयेत् ॥६६
यज्ञश्च दक्षिणाहीनः सवितुर्न प्रशस्यते[1] । तस्मान्नानाविधैः कामैर्भक्ष्यलेह्यसमन्वितैः ॥६७
पूजयित्वा जनं सर्वमिममुच्चारयेन्मनुम् । बलिं गृह्णन्तु मे देवा आदित्या वसवस्तथा ॥६८
मरुतोथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः । असुरा यातुधानाश्च[2] रथस्था यास्तु देवताः ॥६९
दिग्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः । जगतः स्वस्ति कुर्वंतु ये च दिव्या महर्षयः ॥७०
मा विघ्नं मा च मे पापं मा च मे परिपन्थिनः । सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च देवा भूतगणास्तथा ॥७१
वामदेव्यैः पवित्रैश्च मानस्तोकरथन्तरैः । आकृष्णेन रजसा ऋचमेकामुदाहरेत् ॥७२
ततः पुण्याहशब्देन कृतवादित्रनिःस्वनैः । रथक्रमणकं कुर्याद्वर्त्मना सुसमेन तु ॥
पुरुषैश्चापि वोढव्यः सूर्यभक्तिसमन्वितैः ॥७३
सुकृतैः [3]प्रग्रहैर्दान्तैर्बलीवर्दैरथापि वा । यथा पर्यटनं च स्याद्विषमे पथि गच्छतः ॥७४
उपवासस्थितैर्विप्रैर्दिव्यैर्भौमैश्च सुव्रतैः । त्रिंशद्भिः षोडशैर्वापि प्रतिमां भास्करस्य तु ॥७५
स्थानात्प्रचाल्यं वै रुद्र रथमारोपयेच्छनैः । राज्ञी च निक्षुभा रुद्र भार्ये तस्य महात्मनः ॥७६
शनैरारोपयेद्रुद्र उभयोः पार्श्वयो रथे । निक्षुभां दक्षिणे पार्श्वे राज्ञीं चाप्युत्तरे तथा ।७७
द्वावेव ब्राह्मणौ तस्मिन्दिव्यो भौमश्च पार्श्वयोः । ब्रह्मकल्पस्तथा भौमः कूबरस्योपरि स्थितः ।७८

और प्यास से पीड़ित होता है, तो उस यज्ञकर्त्ता के पितरगण स्वर्ग में रहते हुए भी वहाँ से च्युत होते हैं और दुःख का अनुभव करते हैं ।६६। दक्षिणाहीन भी सूर्य का यज्ञ उत्तम नहीं होता है । इसलिए अनेक भाँति के बने हुए भक्ष्य लेह्य पदार्थ के भोजन (स्वादिष्ट चटनी आदि) समेत सभी को खिलाना चाहिए ।६७। पुनः देवताओं का पूजन करके इस प्रकार कहना चाहिए कि आदित्य, वसु, मरुत, अश्विनी कुमार, रुद्र, गरुड़, पन्नग, ग्रह, असुर एवं यातुधान आदि रथस्थ देवता तथा दिक्पाल लोकपाल, विघ्न विनायक और दिव्य महर्षिगण बलि ग्रहण कर जगत् का कल्याण करें ।६८-७०। तथा मेरा कोई विघ्न न हो, मुझे किसी प्रकार का पाप न लगे, मेरे कोई शत्रु न हों और देव, भूतगण आदि सभी लोग सौम्य तथा तृप्त हों ।' ऐसा कहकर वामदेव गान और मानस्तोक, आदि रथन्तर साम से 'आकृष्णेन रजसा, आदि इस ऋचा का पाठ करे ।७१-७२। मंगल पाठ करते हुए मृदङ्गादि बाजाओं समेत सुन्दर और सममार्ग से उस रथ का सूर्य भक्त मनुष्यों द्वारा वहन कराये ।७३। अथवा दृढ़ रस्सी से बँधे तथा मजबूत बैलों को उसमें जोतना चाहिए जिससे ऊँची-नीची भूमि के मार्ग में भी रथ भली-भाँति चल सके ।७४। उपवास करने वाले दिव्य और भौम ब्राह्मणों द्वारा, जिनकी संख्या तीस या सोलह की हो, उस स्थान से सूर्य की प्रतिमा को उठाकर धीरे-से रथ पर स्थापित कराये । हे रुद्र ! उनके पार्श्व भाग (बगल) में रानी और निक्षुभा को भी धीरे से स्थापित करे, जिसमें दाहिनी ओर निक्षुभा एवं बाईं ओर रानी को स्थापित करना बताया गया है ।७५-७७। पुनः देव के पार्श्व में दो ब्राह्मणों को बैठाये जो ब्रह्मनिष्ठ हों एवं जूए के समीप वाले स्थान के

---

१. प्रीणयित्वा । २. यातुधानाद्याः । ३. सुग्रहैः । ४. परम् ।

गरुडं पृष्ठतश्चास्य वल्गमानं प्रकल्पयेत् । आतपत्रं तथा श्वेतं स्वर्णदण्डमनौपमम् ॥७९
सुवर्णबिन्दुभिश्चित्रं मणिमुक्ताफलोज्ज्वलम् । ततस्त्विन्द्रधनुःप्रख्यं स्वर्णदण्डमथाव्रणम् ॥८०
ध्वजं प्रकल्पयेत्तस्य पताकाभिरलङ्कृतम् । भूतेशनानावर्णाभिस्सप्तभिः कामनाशनः ॥८१
ध्वजोपरिचरं[1] व्योम अरुणाधिष्ठितं भवेत् । रथतुण्डगतान्विप्रान्नयेद्रथवरं रवेः ॥८२
सारथ्यं रुद्र कुर्याद्वै श्रेयोऽर्थमात्मनः सदा । नारुहेत रथेऽश्रद्धो[2] यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥८३
रथमारोहतस्तस्य क्षयं गच्छति सन्ततिः । स रथो देवदेवस्य वोढव्यो ब्राह्मणैः सदा ॥८४
क्षत्रियैश्चापि वैश्यैश्च न तु शूद्रैः कदाचन । ये त्वन्यदेवताभक्ता ये च मद्यप्रवर्तकाः ॥८५
नैतै. शूद्रैश्च वोढव्य इतरैस्तु सदोह्यते । उपवासव्रतोपेतैर्वोढव्यः पार्वतीप्रिय ॥८६
स्वस्थानाच्चलितो रुद्र पूर्वद्वारं व्रजेत[3] वै । दिनमेकं वसेत्तत्र पूज्यमानो नृपेण वै ॥८७
नानाविधैः प्रेक्षणकैः पुराणश्रवणेन च । नानाविधैर्ब्रह्मघोषैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥८८
स्थित्वा तु तत्राष्टम्यन्तं नवम्यां चलते पुनः । व्रजेत दक्षिणं द्वारं नगरस्य त्रिलोचन ॥८९
तत्रापि दिनमेकं तु तिष्ठन्तेन्धकसूदन । स्थितेऽत्र तैः पूज्यमानो यथा राज्ञा तथा नृपैः ॥९०
तस्मादपि चलेद्रुद्र द्वारं पश्चात्ततोत्तरम् । तत्रापि पूज्यः शूद्रैस्तु विधिवत्प्रियदर्शन ॥९१

ऊपर स्थित हो। पुनः (देव के) पीछे उछलते हुए गरुड़ बैठाये। पश्चात् सुवर्णदण्ड युक्त एवं अनुपम श्वेत छत्र को जिसमें सोने की बूंदें मणि एवं मोतियों से समुज्ज्वल, इन्द्र धनुष की भाँति चित्र-विचित्र, सुवर्ण-दण्ड से भूषित एवं सर्वाङ्ग नवीन हो, भिन्न-भिन्न रंग के सात पताकाओं से अलंकृत करके लगाये ।७८-८१। हे भूतेश, हे कामनाशन! (शिव)! पश्चात् ध्वजा के ऊपरी भाग में अरुण को बैठा कर बैठे हुए ब्राह्मणों समेत उस रथ को ले चले।८२। हे रुद्र! इस भाँति अपने कल्याण के लिए उनका सारथी भी होना स्वीकार करना चाहिए। इसी प्रकार अपना हित चाहने वाले श्रद्धाहीन व्यक्ति को उस पर कभी भी आरूढ़ न होने देना चाहिए।८३। क्योंकि पीछे कोई अश्रद्धालु रथ पर बैठना चाहेंगे तो उनके बैठते ही उनकी सन्तान नष्ट हो जायगी। देवाधिदेव सूर्य के उस रथ का वहन ब्राह्मणों द्वारा ही करना चाहिए।८४। क्षत्रिय एवं वैश्य भी उसका वहन कर सकते हैं पर शूद्र कदापि नहीं। इसी प्रकार अन्य देवताओं के भक्त शराबी और शूद्रों को छोड़कर अन्य सभी लोग जो उपवास एवं व्रत आदि करते हों (उसका) संवहन कर सकते हैं।८५-८६। हे रुद्र! अपने स्थान से चलकर वह रथ पूरब वाले दरवाजे पर जाये वहाँ एक दिन का निवास करके राजा पूजित होने के उपरान्त जिसमें भाँति-भाँति के दर्शनीय (वस्तुएँ) अर्पित की गयी हों पुराण श्रवण तथा भाँति-भाँति के ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक वेदपाद भी किया गया हो, नवमी के दिन फिर वहाँ से चलकर दक्षिण दरवाजे पर जाये। वहाँ भी एक दिन का निवास कर राजा की भाँति उनके अधिकारियों द्वारा पूजित होकर फिर उत्तर के दरवाजे पर जाये। हे रुद्र! वहाँ शूद्रों द्वारा पूजित होकर गाँव के मध्य भाग में उसे पहुँचाये। वहाँ श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों द्वारा शंख एवं मृदङ्गादि वाद्यों की ध्वनि और उत्तम वस्तुओं के प्रदान होने चाहिए पश्चात् उसके कोलाहल में उसे चारों

---

१. परम्। २. शूद्रः। ३. व्रजेद्रवेः।

तस्माच्च चलते रुद्र व्रजेन्मध्यं पुरस्य तु । तत्रस्थं पूजयन्ति स्म ब्राह्मणाः श्रद्धयान्विताः ॥९२
शंखवादित्रनिर्घोषैस्तथा प्रेक्षणकैर्वरैः । ब्रह्मघोषैश्च विविधैः समन्ताद्दीपकैः शुभैः ॥९३
नानाविधैर्वित्तदानैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः । दीनान्धकृपणानां च तर्पणैस्त्रिपुरान्तक ॥९४
पुरमध्यात्तु चलितस्तिष्ठेत्प्राप्य स्वमंदिरम् । इत्थं प्राप्य स्थितो देवः पुरतो मंदिरस्य तु ॥९५
तत्र स्थितः पूजनीयो भवेत्पौरेण कृत्स्नशः । पूज्यमानस्त्वहोरात्रं रथारूढस्तु तिष्ठति ॥९६
अपरे दिने व्रजेत्स्थानं तच्चिरन्तनमादरात् । त्रयोदश्यां व्यतीतायां चतुर्दश्यां त्रिलोचन ॥९७
सदैवं भ्रामयेद्देवं ग्रहेशं दुरितापहम् । परिवारयुतं रुद्र सानुगं परमेश्वरम् ॥९८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि रथसप्तमीकल्पे
रथयात्रावर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५५।

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यरथयात्रावर्णनम्

श्रीरुद्र उवाच

कथं प्रचालयेद्ब्रह्मन् रथस्थं तमनाशनम् । अनुगाश्च कथं चास्य के च ते अनुगाः क्रमात् ॥१
भूयोभूयः सुरश्रेष्ठ विस्तरान्मम श्रेयसे । [1]वद सर्वं जगन्नाथ परं कौतूहलं हि मे ॥२

ओर दीप से सुसज्जित करते हुए सूर्य की पूजा करनी चाहिए जिसमें, वहाँ भाँति-भाँति के दान द्वारा ब्राह्मण गण प्रसन्न किये गये हों, और दीन, अंधे एवं निराश्रित को संतोष प्राप्त हुआ हो ।८७-९४। पुनः वह रथ वहाँ से मन्दिर को लौटाना चाहिए। वहाँ मन्दिर के सामने सभी गाँव वालों को उनकी पूजा करके पश्चात् उसी रथ पर उस दिन और रात उन्हें रख कर दूसरे दिन त्रयोदशी बीतने पर चतुर्दशी में अपने पुराने देवालय के स्थान में सादर एवं अमंत्रक स्थापित करना चाहिए। हे त्रिलोचन ! इसी प्रकार परिवार समेत देव का जो ग्रह के स्वामी एवं विघ्ननाशक हैं, सदैव रथ यात्रा द्वारा भ्रमण कराना चाहिए।९५-९८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के रथसप्तमी कल्प में रथयात्रा वर्णन नामक
पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।५५।

अध्याय ५६

सूर्य रथयात्रा का वर्णन

रुद्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! रथ पर बैठाकर सूर्य को किस भाँति चलाये, उनके अनुगामी कौन हों तथा उनका अनुगमन भी किस भाँति करना चाहिए ।१। हे सुरश्रेष्ठ ! हे जगन्नाथ ! आप मेरे कल्याण के निमित्त विस्तारपूर्वक उसे बार-बार मुझे सुनाने की कृपा करें क्योंकि मुझे इसके सुनने लिए महान् कौतूहल भी हो रहा है ।२

---

१. वक्षि । २. भयम् ।

ब्रह्मोवाच

शनैर्नयेद्रथं रुद्र वर्त्मना सु समेन तु । यथा पर्यटनं तु स्याद्विषमे पथि गच्छतः ॥३
प्रतीहाररथं पूर्वं नयेन्मार्गविशुद्धये । तस्मादनन्तरं रुद्र दण्डनायकमादरात् ॥४
पिङ्गलं च ततस्तस्य पृष्ठगं चादरान्नयेत् । रक्षको द्वारको यस्माद्रथारूढौ तु पृष्ठतः ॥५
रथारूढस्तथा दिण्डी देवस्य पुरतः स्थितः । तस्मादपि तथा रुद्र लेखको भास्करप्रियः ॥६
शनैःशनैर्नयेद्रुद्र रथं देवस्य यत्नतः । युगाक्षचक्रभङ्गो वा यथा न स्यात्त्रिलोचन ॥७
ईषाभङ्गे द्विजभयं भग्नेऽक्षे क्षत्रियक्षयः । तुलाभङ्गे तु वैश्यानां शम्याशूद्रक्षयो भवेत् ॥८
युगभङ्गे त्वनावृष्टिः पीठभङ्गे प्रजाभयम् । परचक्रागमं[1] विद्याच्चक्रभङ्गे रथस्य तु ॥९
ध्वजस्य पतने चापि नृपभङ्गं विनिर्दिशेत् । [2]व्यङ्गितप्रतिमायां तु राज्ञो मरणमादिशेत् ॥१०
छत्रभङ्गाद्भयं रुद्र युवराज्ञो विनिर्दिशेत् । उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेष्वशुभेषु च ॥११
बलिकर्म पुनः कुर्याच्छांतिहोमं तथैव च । ब्राह्मणान्वाचयेद्भूयो दद्याद्दानानि चैव हि ॥१२
पूर्वोत्तरे च दिग्भागे रथस्याग्निं प्रकल्पयेत् । समिद्भिस्तु घृताक्ताभिर्होमयेज्जातवेदसम् ॥१३
स्वाहाकारान्वदन्सम्यग्दैवतेभ्यस्त्वनुक्रमात् । ग्रहेभ्यश्च प्रजाभ्यश्च नामान्युद्दिश्य होमयेत् ॥१४
प्रथमं चाग्नये स्वाहा स्वाहा सोमाय चैव हि । स्वाहा प्रजापतये च देया आहुतयः क्रमात् ॥१५

ब्रह्मा बोले—हे रुद्र ! उस रथ को, जिस प्रकार मार्ग में धीरे-धीरे चलाया जाता है, उसी भाँति विषम मार्ग में भी चलाये।३। उस मार्ग को सुन्दर बनाने के लिए पहले द्वारपालों को रथ ले जाना चाहिए पश्चात् दंडनायक (सेनाध्यक्ष, एवं पिङ्गल (गजादि) की पातका के अनन्तर द्वार रक्षकों के रथ ले जाना चाहिए। पुनः सूर्यदेव के रथ के सामने दिंडी का रथ तथा उससे भी सन्निकट सूर्य के प्रिय लेखक (मूर्ति रचयिता) का रथ चाहिए।४-६। हे त्रिलोचन ! फिर धीरे-धीरे सूर्य के रथ को इस प्रकार ले चले जिसमें उसके जूआ, धुरी पर चक्के को हानि न पहुँचे, क्योंकि जुए के मध्य वर्ती काष्ठ के टूटने पर द्विजों को भय, अक्ष (मूड़ी) के टूटने पर क्षत्रियों का नाश, धुरा के टूटने पर वैश्यों का एवं बैठने के स्थान के भंग होने पर शूद्रों का नाश होता।७-८। इसी भाँति जुए के भंग होने पर अनावृष्टि, पीठ (आसान) के भंग होने पर जनता को भय एवं चक्के के टूटने पर वह राज्य किसी अन्य के अधीन हो जाता है और ध्वजा के गिरने पर राजा का नाश, प्रतिमा के भंग होने पर राजा का मरण एवं छत्र भंग होने से युवराज को भय होता है। इस प्रकार के उत्पात होने पर बलि और शांतिपाठ हवन को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण द्वारा कथा को सुनकर उन्हें दान द्वारा प्रसन्न करे।९-१२

पश्चात् रथ के ईशान कोण पर अग्नि स्थापन करके घृताक्त समिधा (लकड़ी) का हवन करते हुए क्रमशः देवताओं, ग्रहों और प्रजाओं के नाम का उनके उद्देश्य से 'स्वाहान्त' उच्चारण करे।१३-१४। सर्वप्रथम अग्नि, सोम तथा प्रजापति का स्वाहान्त नामोच्चारण कर क्रमशः आहुति डाले।१५। पश्चात्

---

१. भयम्। २. प्रतिमायां व्यंगितायाम्।

स्वस्त्यस्त्विह च विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञे तथैव च। गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यश्च जगतः शान्तिरस्तु वै ॥१६
शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे। शं प्रजाभ्यस्तथैवास्तु शं सदात्मनि चास्तु वै ॥१७
भूः शान्तिरस्तु देवेश भुवः शान्तिस्तथैव च। स्वश्चैवास्त तथा शान्तिः सर्वत्रास्तु तथा रवेः ॥१८
त्वं देव जगतः स्रष्टा पोष्टा चैव त्वमेव हि। प्रजापाल ग्रहेशान शान्तिं कुरु दिवस्पते ॥१९
इदमन्यत्त्व वक्ष्यामि शान्त्याः परमकारणम्। यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य स्वजन्मनः ॥२०
दुःस्थान्ग्रहांश्च विज्ञाय ग्रहशान्तिं समाचरेत्। प्रादेशमात्राः कर्त्तव्याः समिधोऽथ प्रमाणतः ॥२१
अर्कमय्यो रवेः कार्याः पालाश्यः शशिनः स्मृताः। खादिर्यश्चैव भौमाय आपामार्ग्योऽब्जसूनवे ॥२२
आश्वत्थ्यश्चाथ जीवाय औदुम्बर्यः सिताय च। असिताय शमीमय्यो दूर्वा कार्यस्तु राहवे ॥२३
केतवे तु कुशाः कार्याः दक्षिणाश्चाप्यतः शृणु। सूर्याय शोभनां धेनुं शंखं दद्यादथेन्दवे ॥२४
रक्तमनड्वाहं भौमाय काञ्चनं सोमसूनवे। जीवाय वाससी देये शुक्रायाश्वं सितं हर ॥२५
शनैश्चराय गां नीलां राहवे भाण्डपायसम्। छागं तु केतवे दद्याच्छृण्वेषां भोजनान्यपि ॥२६
गुडौदनं तु सूर्याय सोमाय घृतपायसम्। हविष्यमन्नं भौमाय क्षीरान्नं सोमसूनवे ॥२७
दध्योदनं तु जीवाय शुक्रायाथ घृताशनम्। तिलपिष्टांश्च माषांश्च सूर्यपुत्राय दापयेत् ॥२८

विनम्र भाव से कहे—'ब्राह्मणों, राजाओं, गौओं, प्रजाओं एवं समस्त जगत् तथा मनुष्य पशु-पक्षी एवं प्रजाओं की रक्षा-शांति करने के उपरान्त भूलोक भुवर्लोक तथा स्वर्गलोक में सूर्य कल्याणपूर्वक शान्ति प्रदान करें।१६-१८। इस भाँति कहते हुए पुनः प्रार्थना करे कि हे देव! तुम्हीं इस जगत् को उत्पन्न और पालन करने वाले हो अतः हे प्रजापाल, हे महेशान, हे दिवस्पते! मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करें।१९। ग्रहों की प्रतिकूलता में अशांति उत्पन्न होने पर जो शांति की जाती है, उसके महान कारण को मैं दूसरे स्थान पर विस्तृत रूप में बताऊँगा।२०। किन्तु संक्षिप्त विवेचनानुसार अरिष्ट स्थान में स्थित ग्रहों को देखकर उनकी शांति तो करनी ही चाहिए जिसमें समिधाएँ (लकड़ियाँ) प्रदेशमात्र (फैली हुई तर्जनी और अंगूठे के मध्य भाग के समान ही लम्बी होती है। उन्हें समेत सूर्य के लिए अर्क (मदार), चन्द्रमा के लिए पलाश, मंगल के लिए खैर, बुध के लिए चिचिरा, बृहस्पति के लिए पीपल, शुक्र के लिए गूलर, शनि के लिए शमी (बबूर की भाँति पत्ती वाला एक काँटेदार वृक्ष) राहु के लिए दूर्वा एवं केतु के लिए कुशा की समिधाओं में हवन करके निम्नलिखित क्रमानुसार दक्षिणा प्रदान करना चाहिए। सूर्य के लिए सुन्दर गौ, चन्द्रमा के लिए शंख, मंगल के लिए रक्तवर्ण का बैल, बुध के लिए सुवर्ण, वृहस्पति के लिए लिए दो पीत वस्त्र, शुक्र के लिए उज्ज्वल घोड़ा, शनि के लिए नीली गाय, राहु के लिए खीर, पूर्णपात्र तथा केतु के लिए छाग (छोटा बकरा) का दान करके पुनः उन्हें भोजन भी क्रमशः प्रदान करे इसे मैं कह रहा हूँ सुनो।२१-२६। गुड मिश्रित भात सूर्य के लिए घी समेत खीर चन्द्रमा के लिए हविष्यान्न पदार्थ मंगल के लिए, दूध का भक्ष्य पदार्थ बुध के लिए, दही मिश्रित भात गुरु के लिए, घी का बना हुआ उत्तम भक्ष्य शुक्र के लिए, तिल के चूर्ण और उरद का भक्ष्य पदार्थ शनि के लिए, राहु के लिए मांस तथा केतु के

---

१. दुष्टा ग्रहाश्च विज्ञेयाः पूजाशांतिं समाचरेत्।

राहवे दापयेन्मांसं केतवे चित्रमोदनम् । सौवीरमारनालं च स्विन्नबीजं च काञ्जिकम् ॥२९
यथा बाणप्रहाराणां वारणं कवचं स्मृतम् । तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम् ॥३०
अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च । नित्यं च नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः ॥३१
ग्रहाः पूज्याः सदा रुद्र इच्छता विपुलं यशः । श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत् ॥३२
वृष्ट्यायुःपुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्पुनः । यानपत्या भवेन्नारी दुष्प्रजाश्चापि या भवेत् ॥३३
बाला यस्याः प्रम्रियन्ते या च कन्याप्रजा भवेत् । राज्यभ्रष्टो नृपो यस्तु दीर्घरोगी च यो भवेत् ॥३४
ग्रहयज्ञः स्मृतस्तेषां मानवानां मनीषिभिः । तस्मादसौ सदा कार्यः श्रेयोऽर्थं जानता हर ॥३५
बतपुत्र्यः क्रूरदृक्च पुत्र्यजो धिषणस्तथा । सितासितौ तथा रुद्र उपरागः शिखी तथा ॥३६
एते ग्रहा महाबाहो विद्वद्भिः पूजिताः सदा । ताम्रकात्स्फाटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णकादपि ॥३७
राजतादायसात्सीसाद्ग्रहाः कार्याः [2]प्रयत्नतः । स्वर्णे वाथ पटे लेख्या यथाशास्त्रं महेश्वर[2] ॥३८
यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च । गंधाश्च बलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलः ॥३९
कर्तव्या मन्त्र[3]वंतश्च चरवः प्रतिदैवतम् । आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् ॥४०
उद्बुध्यस्व यथासंख्यमृच एताः प्रकीर्तिताः । बृहस्पते अतिदर्यस्तथैवान्नात्परिस्रुतः ॥४१

लिए चित्र भात (अनेक प्रकार के भात) वैर का फल, धूतर का दण्ड भाग एवं परिपक्व कंजे का फल अर्पित करना चाहिए ।२७-२९

जिस प्रकार बाणों के प्रहारों को कदच रोककर उसे निष्फल कर देता है, उसी भाँति दैव ग्रह द्वारा प्राप्त आघात से रक्षित रखने के लिए (ग्रहों) की शान्ति वारण (कवच) रूप होती है ।३०। इस प्रकार अहिंसक, शुद्धाचार एवं धार्मिक उपायों द्वारा प्राप्त धन वाले तथा नित्य-नियमों के पालन करने वाले प्राणियों के लिए ग्रह सदैव अनुकूल रहते हैं ।३१। हे रुद्र ! इसलिए अत्यन्त ख्याति प्राप्ति करने वाले पुरुष को ग्रहों की पूजा सदैव करनी चाहिए । इसी प्रकार भी और शांति के इच्छुक को भी ग्रह-यज्ञ अवश्य करना चाहिए ।३२। उसी भाँति वर्षा, आयु तथा (शरीर के) अंगों की दृढ़ता के लिए एवं निःसन्तान, दुःखदायी संतान या जिसके लड़के जीवित न रहते हों, अथवा केवल कन्या जन्माने वाली स्त्री, राज्य-च्युत राजा और दीर्घ रोगी को अवश्य ग्रह-यज्ञ (पूजा आदि) करना विद्वानों ने बताया है । हे रुद्र ! इसलिए कल्याण के अभिलाषी मनुष्य को यह (ग्रह यज्ञ) सदैव करते रहना उचित कहा गया ।३३-३५। हे महाबाहो ! इस प्रकार बुध, क्रूर ग्रह रवि, मंगल आदि,) चन्द्र, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु की पूजा विद्वानों को अवश्य करनी चाहिए । जिसमें ताँबे, स्फटिक, रक्तचन्दन, सुवर्ण, चाँदी, लोहे एवं शीशे की ग्रहों की प्रतिमा बनवायी जाये या सुवर्ण के पत्र या वस्त्र पर लिखकर स्थापित करे । उनका जैसा वर्ण है, उसी भाँति के वस्त्र, पुष्प, अर्पित कर, गंध, बलि तथा गुगूल की अर्पित करे ।३६-३९। पीत देवता के लिए चरुमंत्रपूर्वक प्रदान करना पश्चात् हवन करते समय आकृष्णेन, इमं देवा, अग्नि मूर्धा दिवः ककुत्, उद्बुध्यस्व, 'अतियदर्य, 'अन्नात्परिस्रुत, 'शंनोदेवी' एवं 'केतुं कृष्णवम्न् इत्यादि इन

---

१. यथाक्रमम् । २. त्रिलोचन । ३. मनुमं ।

शं नो देवी तथा कांडात्केतुं कृण्वन्निमाः क्रमात् । पूर्वोक्ताः समिधस्त्वत्र यथाशास्त्रं प्रहोमयेत् ।।४२
एकैकस्याष्टशतकमष्टाविंशतिरेव वा । होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव समन्विताः ।।४३
पूर्वोक्तभोजनं यद्धि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । शक्तितो वा यथालाभं दक्षिणा तु[1] विधानतः ।।४४
यश्च यस्य यदा दुःस्थः स तं यत्नेन पूजयेत् । [2]मयैषां हि वरो दत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ ।।४५
ग्रहाधीना नरेंद्राणामुच्छ्रयाः पतनानि च । भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ।।४६
ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च गुरवो ब्राह्मणास्तथा । पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानिताः ।।४७
यथा समुत्थितं यन्त्रं यन्त्रेणैव प्रहन्यते । तथा समुत्थितां पीडा ग्रहशान्त्या[3] प्रशामयेत् ।।४८
यज्वनां सत्यवाक्यानां तथा नित्योपवासिनाम् । जपहोमपराणां च सर्वं दुष्टं प्रशाम्यति ।।४९
एवं कृत्वा प्रजाशान्तिं कृत्वा च स्वस्तिवाचनम् । पुनः सज्जं रथं कृत्वा कुर्यात्प्रक्रमणं हर ।।५०
मार्गं शेषं नयित्वा तु नयेद्देवालयं रविम् । पूजयित्वा ततः [4]पूर्वा याः प्रोक्ता रथदेवताः ।।५१
यथा पूज्या ग्रहाः सर्वे उत्पातेषु त्रिलोचन । रथदेवास्तथा[5] पूज्या याः स्थिता रथमाश्रिताः ।।५२

इतिश्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
आदित्यमहिमवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५६।

ऋचाओं का क्रमशः उच्चारण करते हुए सूर्यादि ग्रहों के लिए समिधा से आहुति डालनी चाहिए ।४०-४२। इस प्रकार प्रत्येक ग्रह के उद्देश्य से एक सौ आठ या अट्ठाइस आहुति दही, घी और मधु, शहद, मिलाकर देनी होती है ।४३। और उपरोक्त बताये हुए भोजन पदार्थ से ब्राह्मणों को भलीभाँति तृप्त कर शक्ति के अनुसार उन्हें विधानपूर्वक दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिए ।४४। इसलिए जिसके जो ग्रह अरिष्ट हों, उसे उसकी पूजा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए क्योंकि मैंने इन्हें वर प्रदान किया है कि 'विश्व में तुम्हारी पूजा होगी, अतः तुम लोग इनकी अवश्य पूजा करो ।४५। राजाओं की उन्नति और पतन एवं जगत् की स्थिति तथा विनाश ग्रहों के अधीन है, इसीलिए ग्रह गण अत्यन्त पूजनीय बताये गये हैं ।४६। इसी भाँति ग्रह, गौयें, नरेन्द्र, गुरु और ब्राह्मण भी पूजित होने पर उन्हें सम्मान प्रदान करते हैं, अन्यथा अपमान करने पर उनके द्वारा कुल का नाश हो जाता है ।४७। जिस प्रकार (विनाश के लिए) प्रेरित यंत्र (अन्य) यंत्र द्वारा ही नष्ट होता है, उसी भाँति किसी प्रकार की उत्पन्न पीड़ा ग्रह की शांति करने से शान्त हो जाती है ।४८। इस भाँति पूजन यज्ञ आदि करने वाले, सत्यवादी, उपवास व्रत रहने वाले तथा जप एवं होम करने वाले मनुष्य के सभी अरिष्ट शांत हो जाते हैं ।४९। इस भाँति प्रजाओं के हितार्थ शांति सुसम्पन्न करते हुए स्वस्त्ययन आदि मांगलिक पाठपूर्वक पुनः उस सुसज्जित रथ को आगे बढ़ाना चाहिए ।५०। पुनः शेष मार्ग को समाप्त कर सूर्य को देवालय में स्थापित करने के उपरान्त पूर्वोक्त रथ के सभी देवताओं के पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए। हे त्रिलोचन ! उत्पात होने पर जिस भाँति ग्रहों की पूजा होती है, उसी भाँति रथ के आश्रित सभी देवताओं की पूजा करनी चाहिए ।५१-५२

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य महिमा वर्णन
नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ।५६।

---

१. च विशेषतः । २. अमीषाम् । ३. शांतिः प्रशोधयेत् । ४. सेविनाम् । ५. सर्वाः । ६. देवताः ।

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रथयात्रावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

क्षीरं यवागूर्ब्रह्मणे स्यात्परमान्नं त्रिलोचन । फलानि कार्तिकेयस्य दद्याद्भूतेशप्रीतये ।।
विवस्वते मधु मांसं तथा मद्यं च सुव्रत ।।१
पुरुहूताय भक्ष्याणि सानुगाय निवेदयेत् । हविरन्नमग्नये स्यादग्रान्नं विष्णवे तथा ।।२
राक्षसेभ्यः समैरेयं दद्यान्मांसौदनं हर ! संस्कृतं पिशितान्नं च रेवताय निवेदयेत् ।।३
तिलान्नं पितृराजाय दद्यात्त्रिपुरसूदन । आश्विनाभ्यामपूपांस्तु वसुभ्यो मांसमोदनम् ।।४
पितृभ्यः पायसं दद्याद्घृताक्तं मधुना सह । कात्यायन्यै यवागूं च श्रियै दद्यात्तथा दधि ।।५
सरस्वत्यै त्रिमधुरं वरुणायेक्षुरसौदनम् । [1]खांडवान्नं धनपतावेव मित्रे त्रिलोचन ।।६
सस्नेहेन तु तक्रेण मरुद्भ्यस्तर्पणं स्मृतम् । मांसान्नभक्तसूपांश्च मातृभ्यो वै निवेदयेत् ।।७
उल्लेपिकाश्च भूतेभ्यो जलं सूर्याय वै हर । दद्याद्गणाधिपतये मोदकांस्त्रिपुरान्तक ।।८
शष्कुल्यस्तु नैर्ऋताय देयाः स्युर्गणनायक । सर्वभक्ष्याणि विश्वेभ्यो दातव्यानि समन्ततः ।।९
क्षीरौदनमृषिभ्यस्तु क्षीरं नागेभ्य एव हि । सूर्यरथाय बलिं दद्यात्कुर्याद्वै सार्वभौतिकम् ।।१०

अध्याय ५७

रथ-यात्रा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे त्रिलोचन ! ब्रह्मा के लिए दूध की लप्सी, कार्तिकेय के लिए फल, विवस्वान (यम) के लिए मधु (शहद), मांस एवं शराब, सेवकों समेत इन्द्र के लिए अन्न के भक्ष्य पदार्थ, अग्नि के लिए हविष्यान्न, विष्णु के लिए अग्रान्न, राक्षसों के लिए शराब समेत मांस भात, रेवत के लिए विशुद्ध पिशितान्न पितृराज के लिए तिलपूर्ण अन्न, अश्विनी कुमार के लिए मालपूआ, वसुओं के लिए मांसभात, पितरों के लिए मधु समेत घी पूर्ण खीर, कात्यायनी के लिए लप्सी, श्री के लिए दही, सरस्वती के लिए घी, मधु एवं शक्कर, वरुण के लिए ईख के रस द्वारा बनाया हुआ भात, कुबेर के लिए खांड से बना अन्न, मरुतों के लिए स्नेहपूर्वक मट्ठा, मातृकाओं के लिए मांस-भात और रसादार पेयवस्त्र, भूतों के लिए उल्लेपिका, सूर्य के लिए जल, गणेश के लिए लड्डू, नैऋतों के लिए पूड़ी, विश्वावसु के लिए सभी भक्ष्य पदार्थ, ऋषियों के लिए दूध-भात, साँपों के लिए दूध, सूर्यरथ के लिए सभी भूतों वाली भाँति-भाँति की बलि, एवं उसी भाँति रथ को वहन करने वालों के लिए लेप, शराब और मांस प्रदान करना चाहिए। पुनः ब्रह्मा के लिए घी, रुद्र के लिए तिल, स्वाहा के पुत्रों के लिए लावा, भास्कर के लिए कचनार, इन्द्र के लिए राजवृक्ष

---

१. खंडं वान्नम् ।

उद्वर्तनं सुरा मांसं तद्वाहेभ्यश्च भारत । आज्यं च ब्रह्मणे दद्यात्त्र्यम्बकाय तिलांस्तथा ॥११
स्वाहातनये वै लाजा दातव्यास्त्रिपुरान्तक । भास्कराय सदा दद्यात्कोविदारं त्रिलोचन ॥१२
राजवृक्षं तथेन्द्राय हविष्यं पावकाय च । चक्रिणे सप्तधान्यं च गरुडे मत्स्यमोदनम् ॥१३
यक्षेभ्यो विविधान्नानि निर्यासं रेवते त्यजेत् । वैकंकतस्रजो रुद्र यमाय परिकीर्तितः ॥१४
देयं स्यात्कर्णिकारं तु अश्विन्यां वृषभध्वज । श्रियै पद्मानि देयानि चंडिकायै सुचंदनम् ॥१५
नवनीतं सरस्वत्यै विनतायै तथामिषम् । पुष्पाण्यप्सरसां रुद्र मालत्याः परिकीर्त्तितम् ॥१६
वरुणायाग्निमन्थं तु फलं मूलं निर्ऋतये । बिल्वं दद्यात्कुबेराय कपित्थं मरुतां तथा ॥१७
गंधर्वेभ्यस्त्वारग्वधं दद्यात्त्रिपुरसूदन । वासवेभ्यस्तु कर्पूरं दद्याद्दारु गणाधिपे ॥१८
पितृभ्यः पिण्डमूलानि भूतेभ्यश्च विभीतकम् । गोभ्यो यवान्प्रदद्याद्वै मातृभ्यश्चाक्षतान्हर ॥१९
गुग्गुलं विघ्नपतये विश्वेभ्यो देयमोदनम् । ऋषिभ्यो ब्रह्मवृक्षं तु नागेभ्यो विषमुत्तमम् ॥२०
भास्करस्येह देयानि सकलानि गणाधिप[१] । मधुसर्पिस्तथोक्तानि गैरिकस्य त्रिलोचन ॥२१
न्यग्रोधं तस्य वाहेभ्यो भक्त्या रुद्र निवेदयेत् । सायं प्रातस्तु मध्याह्ने सदैकाग्रमना हर ॥२२
सर्वेषां शक्तितो भक्त्या [२]दहेद्धूपं विचक्षणः । मन्त्रतो देवशार्दूल यो यस्येह प्रकीर्तितः ॥२३
शान्त्यर्थं ब्राह्मणेभ्यस्तु तिलान्दद्याद्विचक्षणः । वैश्वानरे वा जुहुयाद् घृतेन सहितान्हर ॥२४
देवानाममृतं ह्येते पितॄणां हि स्वधामृतम् । शरणं ब्राह्मणानां च सदा ह्येतान्विदुर्बुधाः ॥२५

(धनबहेड़), पावक के लिए हविष्य, विष्णु के लिए सप्तधान्य, गरुड़ के लिए मछली-भात, यक्षों के लिए अनेक भाँति के पदार्थ, रेवत के लिए गोंद, यम के लिए विकङ्कत (शमी) वृक्ष के फूलों की माला, अश्विनी कुमार के लिए कर्णिकार (कनैलफूल की) माला, लक्ष्मी के लिए कमल, चंडिका के लिए उत्तम चन्दन, सरस्वती के लिए मक्खन, विनता के लिए आमिष, अप्सराओं के लिए मालती के फूल, वरुण के लिए गड़ियारी के फूल, निऋति के लिए फल मूल, कुबेर के लिए बेल, मरुतों के लिए कैथा के फल, गन्धर्व के लिए छितिवन के फूल, वसु के लिए कपूर, गणाधिप के लिए देवदारु, पितरों के लिए पिण्डमूल (गाजर), भूतों के लिए विभीतक (बहेड़ा) गौओं के लिए जवा, मातृकाओं के लिए अक्षत, विघ्नेश्वर के लिए गूगुल की धूप, विश्वदेव के लिए भात, ऋषि के लिए वृक्ष (पलाश), नागों के लिए प्रखर विष (पद्म-पराग), भास्कर के लिए देने योग्य (मधु, घी, एवं सुवर्ण आदि) सभी वस्तुएँ तथा उनके वाहक के लिए भक्तिपूर्वक वरगद के फल। इस प्रकार प्रातःकाल दोपहर तथा संध्या समय एकाग्रचित्त होकर ऊपर कही हुई सभी वस्तुएँ उन-उन देवताओं को प्रेमपूर्वक प्रदान करते हुए मन्त्रसमेत धूपादिक सुगन्ध भी प्रदान करना चाहिए।१-२३। शांति के लिए ब्राह्मणों को तिल दान पर उसमें घी मिलाकर अग्नि में हवन करना बताया गया है।२४। क्योंकि देवताओं के लिए लिए यही सब वस्तुएँ अमृतमय हैं। उसी भाँति पितरों के लिए स्वधा और ब्राह्मणों के लिए शरण-दान अमृत रूप है, ऐसा विद्वानों ने बताया है।२५। कश्यप के अंग

---

१. यथाविधि। २. देयम्।

कस्यपस्याङ्गजा ह्येते पवित्राश्च तथा हर । स्नाने दाने तथा होमे तर्पणेह्यशने पराः ।।२६
इत्थं देवान्ग्रहांश्चैव पूजयित्वा प्रयत्नतः । अवतार्य रथाच्चैनं मण्डले स्थापयेत्पुनः ।।२७
कृत्वा त्वारार्तिकं यत्नाद्दीपतोययवाक्षतैः[1] । कार्पासबीजलवणतुषैर्दुर्दृष्टिशान्तये ।।२८
वेदीमारोपयेत्पश्चात्पत्नीभ्यां सह सुव्रत । तत्रस्थं पूजयेद्देवं दिनानि दश सुव्रत ।।२९
दशाहिकेति विख्याता या पूजा भूतले हर । तया सम्पूजयेद्देवं चतुर्थेऽह्नि तथा हर ।।३०
चतुर्थेऽहनि कर्तव्यं यत्नाद्धि स्नपनं रवेः । अभ्यङ्गभोजनाद्यैस्तु पूजासत्कारमण्डलैः ।।३१
अनेन विधिनापूज्य दशाहानि दिवाकरम् । ततो नयेत्परं स्थानं यत्तत्पूर्वं देवालयम् ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि रथसप्तमीकल्प आदित्यमहिमवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५७।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रथ-यात्रावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अनेन विधिना यस्तु कुर्याद्वा कारयेत वा । यात्रां भगवतो भक्त्या भास्करस्यामितौजसः ।।१

से उत्पन्न होने के नाते ये देवगण परम पवित्र हैं। अतः स्नान, दान, हवन, तर्पण और भोजन आदि सभी कर्मों में इनका अत्यन्त सुसम्मान करना चाहिए।२६। इस प्रकार ग्रह और देवादिकों का सप्रयत्न पूजन करने के अनन्तर रथ से सूर्य को उतार कर पुनः मंडल में स्थापित करे।२७। पश्चात् दुर्भाग्य शांति के लिए कपास के बीज, लवण, तुष (भूसी) जवा अक्षत और दीपक द्वारा आरतीदान करे।२८। पुनः वेदी पर दोनों पत्नियों समेत उन्हें प्रतिष्ठित करके दश दिन तक उनकी पूजा करे।२९। हे हर! पृथिवी में जो इस भाँति की दशाहिक पूजा प्रख्यात है, उसी विधि से चौथे दिन भी उनकी पूजा करे।३०। इसलिए चौथे दिन स्नान, उबटन एवं भोजनादि द्वारा भली भाँति पूजा सत्कार करके मंडल दान समेत उन्हें प्रसन्न करना चाहिए।३१। इस प्रकार दश दिन तक सूर्य का पूजन आदि करके पश्चात् पुनः उन्हें अपने पुराने देवालय के स्थान पर स्थापित करे।३२

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य महिमा वर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त।५७।

अध्याय ५८

रथयात्रा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इस भाँति जो अनुपम तेजस्वी भगवान् सूर्य की रथ यात्रा स्वयं करता या कराता है

---

१. तिलाक्षतैः।

स परार्धं तु वर्षाणां सूर्यलोके महीयते । कुले जायते तस्य दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ॥२
अभ्यङ्गाय घृतं यस्तु भास्कराय प्रयच्छति । कृते तु वर्णतिलके स गच्छेत्सुरभी[१] पुरम् ॥३
तीर्थोदकं तु यो भक्त्या गंगायाश्च तथोदकम् । स्नानार्थमानयेद्यस्तु भास्करस्य त्रिलोचन ॥४
भक्त्या वर्णत्रयं दद्याद्भास्करस्य त्रिलोचन । समाप्येहाखिलान्कामान्प्राप्नुयाद्वरुणालयम् ॥५
रक्तवर्णं तु यो दद्याद्धविष्यान्नं गुडौदनम् । स गच्छेद्दीप्तिमान्रुद्र सूर्यलोकं पुरं वरम् ॥६
गच्छेत्पुरवरे रुद्र यत्र देवः प्रजापतिः । स्नापयेद्यस्तु वा भक्त्या भास्करं पूजयेत्तथा ॥७
स गच्छेद्दीप्तिमान्रुद्र सूर्यलोकं न संशयः । [२]रथमारोपयेद्यस्तु रथमार्गं प्रमार्जति ॥८
स याति वातसालोक्यं वाततुल्यपराक्रमः । रथस्य गच्छतो यस्तु मार्गे कुर्यात्सुमण्डलम् ॥९
स लोकं प्राप्नुयात्पुण्यं मारुतं नात्र संशयः । सूर्यस्य गच्छतो यस्तु मार्गं कुर्यात्सुमण्डलम् ॥१०
स लोकं प्राप्नुयात्पुण्यं यः कुर्यान्मार्गमादरात् । पुष्पप्रकरशोभाढ्यं [३]शुभतोरणमण्डितम् ॥११
शंखतूर्यनिनादाढ्यं तथा[४] प्रेक्षणकान्वितम् । स याति परमं स्थानं यत्र देवो विभावसुः ॥१२
देवेन सहितो यस्तु नृत्यन्गायंस्तथार्चयन् । कुर्यान्महोत्सवं भक्त्या स याति परमं पदम् ॥१३
प्रजागरं यस्तु कुर्याद्देवे रथगते रवौ । स सुखी पुण्यवान्नित्यं मोदते शाश्वतीः समाः ॥१४

वह परार्द्ध वर्षपर्यन्त (अन्तिम संख्या के वर्षों तक) सूर्य में पूजित रहता है और उसके कुल में कभी दरिद्र या कोई रोग नहीं होता है।१-२। इस भाँति जो सूर्य के देह में लगाने के लिए घी का दान तथा तिलक के लिए रंग प्रदान करता है, वह सुरभी (गायों के) लोक को प्राप्त करता है।३। हे त्रिलोचन ! जो सूर्य के स्नान के लिए गंगा जल या अन्य तीर्थों के जल, तथा भक्तिपूर्वक तिलक लगाने के लिए तीनों रंगों को प्रदान करता है, वह इस लोक में अपने सभी मनोरथ सफल करके वरुण लोक को प्राप्त करता है।४-५। जो लाल रंग समेत गुड़, मिश्रित भात हविष्यान्न प्रदान करता है, वह तेजस्वी सूर्यलोक की यात्रा (मरने के बाद) करता है।६। उसी भाँति जो भक्तिपूर्वक सूर्य को स्नान कराता है और पूजन करता है, उसे निःसंदेह प्रजापति लोक की प्राप्ति होती है।७। जो रथ में स्थापित करता है या उनके रथ के मार्ग को साफ-शुद्ध बनाता है, निःसन्देह तेजस्वी होकर सूर्यलोक को जाता है।८। वह वायु की भाँति पराक्रमी होकर वायुलोक में निवास करता है, जो चलते हुए रथ के मार्ग में सुन्दर मंडल की रचना करता है।९। वह पुण्य वायु लोक को निःसन्देह प्राप्त करता है जो सूर्य के चलते हुए उनके मार्ग को मंडल बनाता है।१०। जो उनके मार्ग को आदरपूर्वक सजाता है जो सुन्दर तोरण (बहिर्द्वारि) से मण्डित तथा अधिक पुष्पों से सुशोभित किया गया हो, वह पुण्यलोक प्राप्त करता है।११। शंख, तुरुही आदि वाद्यों के ध्वनि-कोलाहल में मार्ग को सुशोभित कर रखने योग्य बनाता है, वह सूर्य के परम स्थान की प्राप्ति करता है।१२। एवं जो सूर्य की उस यात्रामें पूजनपूर्वक नाचगान करके उसे महोत्सव को सुशोभित करता है, उस परम पद की प्राप्ति होती है।१३। तथा जो सूर्य के इस उत्सव में जागरण करता है, वह सुखी और पुण्यात्मा होकर अनेकों वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त करता है।१४। जो भक्ति और दास आदि उन्हें समर्पण करताहै वह यहाँ अपने

---

१. सवितुः। २. स्नानार्थमानयेद्यस्तु। ३. शुभास्तरणमण्डितम्। ४. दद्यात्।

भक्तदासादिकं[1] सर्वं यो ददाति रवेर्नरः । सम्प्राप्येहाखिलान्कामान्सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥१५
रथारूढस्य सूर्यस्य भ्रमतो दर्शनं हर । दुर्लभं देवशार्दूल विशेषात्पुरतो व्रजन् ॥१६
उत्तराभिमुखं यान्तं तथा वै दक्षिणामुखम् । धन्यः पश्यति देवेशं भास्करं भक्तवत्सलम् ॥१७
अथ संवत्सरे प्राप्ते भानोर्यात्रादिने यदि । रथप्रक्रमणं तत्र न कथञ्चित्कृतं भवेत् ॥१८
ततो वै द्वादशे वर्षे कर्तव्यं भूतिमिच्छता । इन्द्रध्वजस्य चाप्येवं यदि नोत्थापनं कृतम् ॥१९
ततो वै द्वादशे वर्षे कर्तव्यं नान्तरा पुनः । यात्रायाश्चापि ये भङ्गं कुर्वन्ति वृषभध्वज ॥२०
मन्देहा नाम ते ज्ञेया राक्षसा नात्र संशयः । ये कुर्वन्ति तथा यात्रां नरा धर्मध्वजस्य तु ॥२१
इन्द्रादिदेवास्ते ज्ञेया गताश्च परमं पदम् । पुनर्यात्राविधिं चेमं समासात्कथयामि ते ॥२२
यं श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः । वर्तमाने तु वै माघे रथे [2]देवगणाश्रिते ॥२३
स तस्मिन्नेव मनसा स्थापनीयो रथोपरि । द्यौर्मही च द्विमूर्तिस्थे यथापूर्वं प्रतिष्ठिते ॥२४
तथैव राज्ञी द्यौर्ज्ञेया निक्षुभा पृथिवी स्मृता । एताभ्यामपि देवीभ्यां यथैव सवितुस्तथा ॥२५
दिण्डिनः पिंगलादीनां पृथुः कार्यो रथक्रमः । मनसा चिन्तयेदन्यां यथास्थानेषु देवताः ॥२६
दिक्पालांल्लोकपालांश्च कल्पयेन्मनसैव तु । देवो वेदमयश्चायं सर्वदेवमयस्तथा ॥२७
मंडलमृङ्मयं चैव छन्दांस्यास्यं प्रकीर्तितम् । गायत्री चैव त्रिष्टुप्च जगत्यनुष्टुबेव च ॥२८

मनोरथों को सफल करते हुए (अंत में) सूर्य लोक की प्राप्ति करता है।१५। हे देवशार्दूल ! इस प्रकार रथ पर बैठ कर घूमते हुये सूर्य का दर्शन विशेष कर अत्यन्त दुर्लभ होता है, जब वे सामने से होकर जाते हैं ।१६। इसलिए उत्तर या दक्षिण की ओर मुख करके जाते हुए भक्तवत्सल सूर्य का दर्शन जिसे प्राप्त होता है, वह धन्य है।१७। यदि वर्ष के आरम्भ में किसी भाँति रथ की यात्रा न हो सके, तो कल्याण की इच्छा करते हुए मनुष्यों को बारहवें वर्ष में रथयात्रा अवश्य करनी चाहिए। इसी प्रकार इन्द्र की ध्वजा की भी जिसका उत्थापन न हुआ हो, व्यवस्था करने के लिए बतायी गयी है।१८-१९। हे वृषभध्वज ! बारहवें वर्ष उस यात्रा को किसी भाँति अवश्य करके पुनः प्रतिवर्ष सदैव करना चाहिए, क्योंकि यात्रा भंग करने वाले को मन्देह नामक राक्षस ही जानना चाहिए। जो धर्म ध्वज (सूर्य) की रथयात्रा करते हैं, वे इन्द्रदि देवता ही हैं क्योंकि उन्हें परमपद प्राप्त होता है। अतः इस यात्राविधि को मैं पुनः संक्षेप में कह रहा हूँ ।२०-२२। जिसे सुनकर सभी लोग पापों से मुक्त हो जायेंगे।

माघ मास में रथ में देवताओं के बैठने के पश्चात् उसी रथ में आकाश और पृथिवी रूप दो मूर्तियों की भी मानसिक स्थापना करनी चाहिए।२३-२४। क्योंकि रानी को द्यौ (आकाश रूप) और निक्षुभा को पृथिवी रूप बताया गया है। इसलिए इनके समेत ही सूर्य की स्थापना होनी चाहिए।२५। पुनः दिंडी और पिंगलादिकों की भाँति अन्य देवताओं की भी यथास्थान मानसिक कल्पना (स्थापना) करना आवश्यक बताया गया।२५-२६। उसी प्रकार दिग्पाल और लोकपालों की भी मानसिक कल्पना करनी चाहिए। सूर्य वेदमय एवं सर्वदेवमय हैं।२७। उनका मंडल ऋचामय है इसलिए गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती,

---

१. भक्त्या दशाहिकासंज्ञम्। २. वा गगनाश्रिते।

पंक्तिश्च बृहती चैव उष्णिगेव च सप्तमी । ततो देवमयात्वाच्च च्छन्दसां चैव कल्पनात् ॥२९
ततो वेदनयात्वाच्च तरणिर्लोकपूजितः । [1]रथप्रक्रमणात्सूर्यो वोढव्यो ब्रह्मवादिभिः ॥३०
उपवासपरैर्युक्तैर्वेदवेदांगपारगैः । रथं तु नारुहेच्छूद्रो भास्करस्य त्रिलोचन ॥३१
आरुह्य तरणेर्यानं व्रजेच्छूद्रो ह्यधोगतिम् । यथोक्तकरणाद्रुद्र सदा शान्तिर्भवेन्नृणाम् ॥३२
नायकश्चापि सर्वेषां देवानां तु[2] दिवाकरः । विन्यसेत्तु रथानां तु देवतायतनेषु च ॥३३
ततो धूपोपहारैस्तु पूजयेत्प्रथमं रविम् । दिग्देवानुचरांश्चैव पूजयेत्पूज्यते श्रिया ॥३४
अपूज्य प्रथमं सूर्यमपरान्यस्तु पूजयेत् । [3]तत्तद्भूतकृतं पाद्यं न प्रगृह्णन्ति देवताः ॥३५
यात्राकाले तु सम्प्राप्ते [4]सवितुर्दीक्षितां तनुम् । ये द्रक्ष्यंति नरा भक्त्या ते भविष्यन्त्यकल्मषाः ॥३६
पौर्णमास्याममायां च दर्शनं पुण्यदं स्मृतम् । सप्तम्यां च तथा षष्ठ्यां दिने तस्य रवेस्तथा ॥३७
आषाढी कार्त्तिकी माघी तिथ्यः पुण्यतमाः स्मृताः । महाभाग्यं तिथे पुण्यं यथा शास्त्रेषु गीयते ॥३८
कार्त्तिक्यां तु विशेषेण महाकार्तिक्युदाहृता । एवं कालसमायोगाद्यात्राकालो विशिष्यते ॥३९
दर्शनं च महापुण्यं सर्वपापहरं भवेत् । उपवासपरो यस्तु तस्मिन्काले यतव्रतः ॥४०

अनुष्टुप्, पंक्ति, वृहती तथा उष्णिक् ये सातों छन्द उनके मुख हैं। देवमय और वेदमय होने तथा छन्द की कल्पना करने के नाते सूर्य लोकपूज्य हैं। अतः उनके रथ वहन करने के लिए ब्रह्मवादियों को जो उपवास आदि नियम पालन और वेद वेदाङ्ग के कुशल विद्वान् हों, नियुक्त करना चाहिए।२८-३०। हे त्रिलोचन! सूर्य के रथ पर शूद्र को कभी न बैठना चाहिए।३१। क्योंकि यदि उस पर वह बैठता है तो उसकी अधोगति होती है। हे रुद्र! इस प्रकार बतायी गई इस विधि का पालन मनुष्य करे, तो उसे सदैव शांति प्राप्त होती है।३२

क्योंकि सभी देवताओं के नायक दिवाकर हैं। अतः उन्हें तथा देवताओं को रथ में अपने-अपने देवस्थानों में स्थापित करने के पश्चात् धूपादि उपहार द्वारा प्रथम सूर्य की पूजा के पश्चात् अन्य देवताओं एवं अनुचरों की पूजा करने वाला मनुष्य श्री सम्पन्न होकर पूज्य होता है।३३-३४। जो प्रथम सूर्य की पूजा न करके अन्य देवों की पूजा करता है, वे (देव) उसके द्वारा दिये गये पाद्यादि को स्वीकार नहीं करते हैं।३५। इस प्रकार जो भक्तिपर्वूक यात्रा समय में सूर्य के उस दीक्षित (पूजित) शरीर का दर्शन करते हैं, वे निष्पाप हो जाते हैं।३६। इस भाँति पूर्णिमा, अमावस्या, सप्तमी और षष्ठी के दिन सूर्य का दर्शन अत्यन्त पुण्यदायक बताया गया है।३७। आषाढ़, माघ तथा कार्तिक मास की तिथियाँ, पुण्यस्वरूप हैं क्योंकि इन तिथियों का पुण्यस्वरूप महान् सौभाग्यकारक होना शास्त्रों में प्रतिपादित है।३८। विशेषकर कार्तिक में वह पूजा विशेष महत्त्व प्रदान करती है, इसीलिए कार्तिक की पूजा का नाम महाकार्तिकी बताया गया है। इस प्रकार काल-समय के योग द्वारा यात्राकाल की विशेषता कही गई है।३९। उस समय का दर्शन समस्त पापों के नाशपूर्वक महापुण्य प्रदान करता है। जो उस समय व्रती रहकर उपवास करके भक्तिपूर्वक

---

१. रथसंक्रमणे। २. हि। ३. ते तद्भूतकृतं पाद्यं न प्रगृह्णन्ति देवताः। ४. दक्षिणाम्।

पूजयेत्[1] रविं भक्त्या स गच्छेत्परमां गतिम् । देवोऽयं यज्ञपुरुषो लोकानुग्रहकांक्षया ॥४१
प्रतिमावस्थितो भूत्वा पूजां गृह्णात्यनुग्रहात् । स्नानाद्दानाज्जपाद्धोमात्संयोगाद्देवकर्मणः ॥४२
कूर्चानां वपनाच्चैव दीक्षितः पुरुषो भवेत् । कचानां वापनं कार्यं सूर्यभक्तैः सदा नरैः ॥४३
मूर्द्धक्रतौ शुचिस्त्वेवं दीक्षितः पुरुषो भवेत् । चतुर्णामपि वर्णानां भक्त्या सूर्यस्य नित्यदा ॥४४
एवं येऽत्र करिष्यन्ति ते नरा नित्यदीक्षिताः । चीर्णव्रता महात्मानस्ते यास्यन्ति परां गतिम् ॥४५
इत्येषा कथिता रुद्र रथयात्रा दिवस्पतेः । यां श्रुत्वा वाचयित्वा सर्वरोगैर्विमुच्यते ॥४६
कृत्वा च विधिवद्भक्त्या याति सूर्यसदो नरः । रथाह्वा कथिता रुद्र समासात्सप्तमी शुभा ॥४७
भूयोऽपि श्रूयतां रुद्र सप्तमीं गदतो मम ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे रथयात्रावर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय ।५८।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

रथसप्तमी-माहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

माघे मासि तथा देव सिते पक्षे जितेन्द्रियः । षष्ठ्यामुपोषितो भूत्वा गन्धपुष्पोपहारतः ॥१

सूर्य की पूजा करता है, उसे उत्तम गति होती है। इसीलिए लोकोंके के ऊपर विशेष कृपा करने के नाते सूर्य को यज्ञ-पुरुष बताया गया है।४०-४१। प्रतिभा में अवस्थित होकर ये (सूर्य) कृपा करके (उसकी) पूजा ग्रहण करते हैं। सूर्य देव के स्नान, दान, जप एवं होमादि सभी कर्म करने और दाढ़ी के बाल बनवाने से पुरुष दीक्षित होता है। अतः सूर्य के भक्त को सदैव मुंडन कराना चाहिए।४२-४३। सूर्य के यज्ञ में इसी प्रकार चारों वर्णों के पुरुष पवित्र एवं दीक्षित होते रहते हैं।४४। इस भाँति जो सदैव उसे सुसम्पन्न करते रहेंगे वे नित्य दीक्षित होकर परमगति को प्राप्त करेंगे।४५। हे रुद्र ! इस प्रकार यह सूर्य की यात्रा बतायी गई है। जिसे सुनकर या सुनाकर सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।४६। और विधिपूर्वक इसे सुसम्पन्न करने पर मनुष्य सूर्यलोक प्राप्त करता है। हे रुद्र ! रथनाम वाली इस कल्याणमय सप्तमी को संक्षेप में मैंने बता दिया किन्तु फिर भी मैं सप्तमी की ही व्याख्या कर रहा हूँ सुनो ! ४७-४८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में रथयात्रा वर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त।५८।

अध्याय ५९

सूर्य रथ-यात्रा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे देव ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी में इन्द्रियसंयम पूर्वक उपवास रहकर गंध

---

१. यः ।

पूजयित्वा दिनकरं रात्रौ तस्याग्रतः स्वपेत् । विबुद्धस्त्वथ सप्तम्यां भक्त्या भानुं समर्चयेत् ॥२
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्वित्तशाठ्यं[1] विवर्जयेत् । खण्डवेष्टैर्मोदकैश्च तथेक्षुगुडपूपकैः ॥३
अथ संवत्सरे पूर्णे सप्तम्यां कारयेद्बुधः । देवदेवस्य वै यात्रां पूर्वोक्तविधिना हर ॥४
कृष्णपक्षे तु यः कृत्वा रथमारोहितं रविम् । पश्येद्भक्त्या जगन्नाथं स याति परमां गतिम् ॥५
तृतीयायामेकभक्तं चतुर्थ्यां नक्तमुच्यते । पञ्चम्यामयाचितं स्यात्षष्ठ्यां चैवमुपोषणम् ॥६
सप्तम्यां पारणं कुर्याद् दृष्ट्वा देवं रथे स्थितम् । पूजयित्वा च विधिना शक्त्या भक्त्या त्रिलोचन ॥७
सौवर्णं तु रथं कृत्वा ताम्रपात्रोपरि स्थितम् । रथमध्ये न्यसेद्व्योम पूजितं मणिभिर्हर ॥८
पद्मरागं न्यसेन्मध्ये मौक्तिकं पूर्वतो न्यसेत् । इंद्रनीलमथो याम्यां वारुण्यां मरकतं हर ॥९
प्रवालमुत्तरे रुद्र सवज्रं विन्यसेद् बुधः । श्वेतं पीतासितं चापि रक्तं चान्धकसूदन ॥१०
एतानि तात वस्त्राणि दिक्षु सर्वासु विन्यसेत् । पताकाकारसंस्थानं घण्टाभरणभूषितम् ॥११
पुष्पैर्दामैरलंकृत्य रथं रुद्र समन्ततः । यथान्यायं पूजयित्वा भास्कराय निवेदयेत् ॥१२
भोजयित्वाथ वा विप्रानाचार्याय निवेदयेत् । योऽधीते सप्तमीकल्पं सोपाख्यानं च भारत ॥१३
आचार्यः स द्विजो ज्ञेयो वर्णानामनुपूर्वशः । सौराणां वैष्णवानां तु शैवानां पार्वतीप्रिय ॥१४
अलाभे तु सुवर्णस्य रथं राजतमादिशेत् । तद्लाभे ताम्रमयं रथं व्योम च कारयेत् ॥१५

और पुष्पादि उपहार द्वारा सूर्य की पूजा करके रात में उन्हीं के समाने शयन करे। पुनः सप्तमी में प्रातः काल उठकर भक्तिपर्वूक भानु की पूजा करने के अनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार खाँड़ के लड्डू, ऊख के गुड़ के मालपुआ और लड्डू द्वारा ब्राह्मणों को भली-भाँति तृप्त करे उसमें कृपणता न होने पाये। १-३। हे हर! पश्चात् वर्ष की समाप्ति में सप्तमी तिथि के दिन देवाधिदेव सूर्य की (रथ) यात्रा उसे पूर्वोक्त विधि द्वारा सम्पन्न करना बताया गया है। ४। कृष्ण पक्ष में जो रथ पर बैठे हुए जगन्नाथ सूर्य का दर्शन करता है, वह परम गतिप्राप्त करता है। ५। इसी भाँति तृतीया में एक बार भोजन करके चतुर्थी में नक्त व्रत, पञ्चमी में उस अन्न का, जो किसी से याचना द्वारा न प्राप्त हो भोजन कर षष्ठी में उपवास और सप्तमी में रथ पर बैठे हुए सूर्य का दर्शन तथा भक्तिपूर्वक शक्ति के अनुसार पूजन करके पारण करना चाहिए। ६-७

सुवर्ण का रथ बनाकर उसे ताँबे के पात्र के ऊपर स्थापित करे पुनः रथ का मध्य भाग मणियों से सुशोभित करे। ८। उसके मध्यभाग में पद्मराग मणि, पूर्व में मोती, दक्षिण में इन्द्रनील, पश्चिम में मरकत मणि और वज्र समेत प्रवाल (मूँग) उत्तर की ओर सुसज्जित करे। अनन्तर श्वेत, पीत, काले एवं रक्तवर्ण के वस्त्रों से उसके चारों दिशाओं को भूषित करते हुए यथास्थान रखे हुए पताकाओं, घंटा और आचरण एवं पुष्पमालाओं द्वारा रथ को सजाकर उसे सूर्य को यथा विधिपूजन समेत सादर समर्पित करे। ९-१२। पुनः ब्राह्मणों को भोजन करा देने के पश्चात् उसे आचार्य को समर्पित करना चाहिए। हे भारत! एवं पार्वतीप्रिय! उपाख्यान समेत जो सप्तमीकल्प का पाठ करता है, वह द्विज! चारों वर्णों, सौर, वैष्णव तथा शैवों का भी आचार्य होता है। १३-१४। यदि रथ रचना में सुवर्ण की प्राप्ति न हो सके,

---

१. शक्त्या।

अभावे चापि ताम्रस्य रथः पिष्टमयः स्मृतः । सहिरण्यो [1]महादेव ताम्रभाजनमाश्रितः ॥१६
[2]कौशेययुग्मसहितं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । पूर्वोक्ताय महादेव वाचकाय महात्मने ॥१७
पञ्चरत्नसमायुक्तं शुभगन्धाधिवासितम् । स्वशक्त्या तु विरूपाक्ष वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥१८
एषा पुण्या पापहरा रथाह्वा सप्तमी हर । कथिता ते मया रुद्र महतीयं प्रकीर्तिता ॥१९
स्नानं दानमथो होमः पूजा ग्रहपतेर्हर । शतसाहस्त्रं भवेदस्यां कृतं सुधरविद्यते ॥२०
एवमेषा पुण्यतमा माघे प्रोक्ता तु सप्तमी । यामुपोष्य नरो भक्त्या सूर्यस्यानुचरो भवेत् ॥२१
ब्राह्मणो याति देवत्वं क्षत्रियो विप्रतां व्रजेत् । वैश्यः क्षत्रियतां याति शूद्रो वैश्यत्वमेति च ॥२२
विद्याविनयसम्पन्नं भर्त्तारं [3]कन्यका लभेत् । अपुत्रा स्त्री सुतं विन्देत्सौभाग्यं च गणाधिप ॥२३
विधवा चाप्युपोष्येमां सप्तमीं त्रिपुरान्तक । नान्यजन्मसु वैधव्यं प्राप्नुयात्पार्वतीप्रिय ॥२४
बहुपुत्रा बहुधना पत्युर्वल्लभतां व्रजेत् । यावद्वै सप्त जन्मानि स्त्रियस्तु पुरुषास्तथा ॥२५
एवंविधा सप्तमी ते कथिता वृषभध्वज । यां श्रुत्वा मानवो भक्त्या मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे रथसप्तमीमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।५९।

तो चाँदी और उसके अभाव में ताँबे का ही रथ बनाये ।१५। यदि ताँबा भी अप्राप्य हो तो चूर्ण (आटे) का रथ बनाना बताया गया है । हे महादेव ! इस प्रकार सुवर्ण के उस रथ को ताँबे के पात्र में रखकर दो रेशमी वस्त्र तथा कथावाचक ब्राह्मण को अर्पित करके अपनी शक्ति के अनुसार पंचरत्न और इत्र आदि गंधादि द्वारा उनकी पूजा आदि भी सम्पन्न करे । उसमें कृपणता न करे ।१६-१८। हे हर ! हे रुद्र ! पुण्य रूप एवं पाप हारिणी इस रथ नाम वाली सप्तमी को मैंने सुना दिया जिसे महासप्तमी भी कहते हैं ।१९। इसमें सूर्य के स्नान, दान, हवन और पूजन करने से वह सहस्रों गुना अधिक पुण्यप्रद होती है ।२०

इसीलिए इस माघ की सप्तमी को अत्यन्त पुण्यस्वरूप बताया गया है क्योंकि भक्तिपूर्वक मनुष्य इसी का व्रत करके सूर्य का सेवक हो जाता है ।२१। तथा (इसी के प्रभाव से) ब्राह्मण, देवता क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य क्षत्रिय और शूद्र वैश्य हो जाते हैं ।२२। इसी भाँति इस प्रकार कन्या विद्या विनय सम्पन्न पति और स्त्री पुत्र एवं सौभाग्य प्राप्त करती है ।२३। हे त्रिपुरांतक ! एवं पार्वतिप्रिये ! विधवा स्त्रियों को भी इस सप्तमी का व्रत करना चाहिए । क्योंकि उन्हें ऐसा करने पर अन्य जन्म में वैधव्य नहीं प्राप्त होता है ।२४। अपितु सात जन्मों तक बहुत पुत्र, असंख्य धन की प्राप्तिपूर्वक वे सदैव पति की प्रेयसी बनी रहती हैं । इसी भाँति पुरुष को भी सभी फल की प्राप्ति होती है ।२५। हे वृषभध्वज ! इस प्रकार की सप्तमी, जिसे सुनकर मनुष्य ब्रह्महत्या के दोष से मुक्त हो जाता है, मैंने तुम्हें बता दिया ।२६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमीकल्प में रथ सप्तमी माहात्म्यवर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ।५९।

---

१. सपर्याढ्यं देवताजनमाश्रितम् । २. काषाययुग्मसहितम् । ३. कामुकौ ।

अथ षष्टितमोऽध्यायः

रथयात्रावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा स जगामाशु सुरज्येष्ठं त्रिलोचनम् । रथयात्रां महाबाहो सूर्यस्येत्यमितौजसः ॥१

शतानीक उवाच

यमाराध्य जगन्नाथं मम पूर्वपितामहः । तुष्ट्यर्थं ब्राह्मणानां तु अन्नमापुश्चतुर्विधम् ॥२
तस्य देवस्य माहात्म्यं श्रुतं च बहुशो मया । देवर्षिसिद्धमनुजैः स्तुतस्य हि दिनेदिने ॥३
कः स्तोतुमीशस्तमजं[1] यस्यैतत्सचराचरम् । अव्ययस्याप्रमेयस्य विबुध्येतोदयाज्जगत् ॥४
कराभ्यां यस्य देवेशौ कविष्णू लोकपूजितौ । उत्पन्नौ द्विजशार्दूल ललाटात्त्रिपुरान्तकः ॥५
तस्य देवस्य कः शक्या वक्तुं सर्वा विभूतयः । सोऽहमिच्छामि देवस्य तस्य सर्वात्मना द्विज ॥६
श्रोतुमाराधनं येन निस्तरेयं भवार्णवम् । केनोपायेन मन्त्रैर्वा रहस्यैः परिवर्यया ॥७
दानैर्वृतोपवासैर्वा होमैर्जाप्यैरथापि वा । आराधितः समस्तानां क्लेशानां हानिदो भवेत्[2] ॥८
सैका विद्या हि विद्यानां यया तुष्यति सर्वकृत् । श्रुतानामपि तत्पुण्यं यत्र भानोः प्रकीर्तनम् ॥९

अध्याय ६०

रथा-यात्रा का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे महाबाहो ! अमेय तेजस्वी सूर्य की रथ यात्रा का वर्णन देवश्रेष्ठ त्रिलोचन (शंकर) को सुना कर ब्रह्मा ने वहाँ से शीघ्र प्रस्थान कर दिया।१

शतानीक ने कहा—जिस जगन्नाथ की आराधना करके मेरे पूर्वजों ने ब्राह्मणों को संतुष्ट रखने के लिए चार प्रकार के अन्न प्राप्त किये हैं, और जिसकी प्रतिदिन देव, ऋषि, सिद्ध और मनुष्य स्तुति करते रहते हैं, उस देव का माहात्म्य मैंने बहुत बार सुना है।२-३। इसलिए उनकी स्तुति कौन कर सकता है। क्योंकि वे अजन्मा हैं, उन्हीं का यह चर-अचर रूप जगत् है, वे प्रत्यय (अविनाशी) और अप्रमेय (बुद्धि द्वारा जिसकी कल्पना न हो सके) हैं। उन्हीं के उदय होने पर समस्त जगत् जागृत होता है एवं उन्हीं के हाथों द्वारा लोक-पूजित ब्रह्मा और विष्णु, तथा ललाट द्वारा शिव उत्पन्न हुए हैं।४-५। अतः उस देव की समस्त विभूति का वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है। हे द्विज ! पुनः प्रातः उन्हीं देव की आराधना, जो संसार सागर को पार करने वाली है, मेरी सुनने की प्रबल इच्छा है। और उनके मन्त्रों, रहस्यों, सेवा, दान, व्रत, उपवास, हवन एवं जप में किस युक्ति-युक्त उपाय द्वारा उनकी आराधना करने पर समस्त दुःखों का नाश होता है।६-८

क्योंकि विद्याओं में वही एक श्रेष्ठ विद्या बतायी गयी है, जिसके द्वारा वे प्रसन्न होते हैं। और सूर्य

---

१. तपनम्। ३. यथा। ४. यद्भूतम्-इ०, यद्दत्तम्।

रहस्यानां रहस्यं तद्येन हंसः प्रसीदति । एकः श्रेष्ठतमो मंत्रस्तदेकं परमं व्रतम् ।।१०
उपोषितं च तच्छ्रेष्ठं येन भानुः प्रसीदति । सा चैका रसना धन्या मार्तण्डं स्तौति या सदा ।।११
तदेकं निर्मलं चित्तं [१]यद्गतं सततं रवौ । श्लाघ्यानामपि तौ श्लाघ्याविह लोके परत्र च ।।१२
यो सदा द्विजशार्दूल भानोः पूजाकरौ करौ । तदेकं केवलं धन्यं शरीरं सर्वजन्तुषु ।।१३
यदेव पुलकोद्भासि भानोर्नामानुकीर्तने । सा जिह्वा कण्ठतालूकमथ वा प्रतिजिह्विका ।।१४
अथ वा सापरो रोगो या न वक्ति रवेर्गुणम् । नवद्वाराणि सन्त्यस्मिन्पुरे पुरुषसत्तम ।।१५
प्राकारैस्त्वावृते विष्वग्वृथा तानि विदुर्बुधाः । दत्त्वावधानं यच्छब्दे विनैव रविसंस्तुतिम् ।।१६
श्रेयसां न हि सम्प्राप्तौ पुरुषाणां विचेष्टितम् । जन्मन्यविफला सेवा कृता याश्रित्य भास्करम् ।।१७
दुर्गसंसारकांतारमपारमभिधावताम् । एको भानुनमस्कारः संसारार्णवतारकः ।।१८
रत्नानामाकरो मेरुः सर्वाश्चर्यमयं नभः । तीर्थानामाश्रयो गंगा देवानामाश्रयो रविः ।।१९
एवमादिगुणो भोगो भानोरमिततेजसः । श्रुतो मे बहुशः सिद्धैर्गीयमानैस्तथामरैः ।।२०
सोऽहमिच्छामि तं देवं सप्तलोकपरायणम् । दिवाकरमशेषस्य जगतो हृद्यवस्थितम् ।।२१
आराधयितुमीशेशं भास्करं चामितौजसम् । मार्तण्डं भुवनाधारं स्मृतमात्राघदारिणम् ।।२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
सप्तमीकल्पे सूर्यपरिचर्यावर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ।६०।

का गुण-गान वेदों में भी वही पुण्ययुक्त है जिसमें सूर्य हो। उसी भाँति रहस्यों में वही रहस्य उत्तम है, वही एकमन्त्र है वही उत्तमव्रत, तथा वही उपवास श्रेष्ठ है, जिसके द्वारा सूर्य प्रसन्न होते हैं। उसी मनुष्य की जिह्वा धन्य हैं, जो सदैव सूर्य की स्तुति में लगी रहती है।९-११। वही चित्त निर्मल है, जिसमें सूर्य का सतत ध्यान होता रहे। इसी भाँति (मनुष्यों के) हाथ लोक परलोक दोनों स्थानों मे प्रशस्त बताये गये हैं, जिससे सदैव सूर्य की पूजा होती है एवं सूर्य के नाम संकीर्तन में जिसनें हर्षातिरेक से रोमांच हो, वही शरीर सभी जन्तुओं में धन्य है। इसलिए कण्ठ और तालु समेत जो जिह्वा सूर्य के गुण-गान में लगी रहे तो वही जिह्वा और जो सूर्य के गुण का उच्चारण न करे वह जिह्वा नहीं प्रत्युत रोग रूप है। हे पुरुषोत्तम ! चारों ओर से चहार दिवारी की भाँति घिरे हुए इस शरीर में नवद्वार हैं, अतः यदि उनके द्वारा एकाग्र मन से सूर्य की स्तुति के बिना ही शब्द के उच्चारण हो तो वे व्यर्थ हैं।१२-१६। और सूर्य के लिये यदि पुरुषों की चेष्टाएँ न हुईं, तो वे चेष्टाएँ कल्याणप्रद नहीं होती हैं। इस प्रकार सूर्य की जिसने सेवा की है, जीवन में उसकी वही एक सफल सेवा है।१७। इसलिए इस दुर्गम अपार संसार रूपी जंगल में दौड़ने वाले प्राणियों के लिए सूर्य के लिए किया गया एकमात्र नमस्कार ही संसार सागर पार करने वाला है। क्योंकि अक्षय भण्डार मेरु है, एवं सभी भाँति के आश्चर्यमय नभ है तथा तीर्थों की आश्रम गंगा हैं देवों के आश्रय सूर्य हैं।१८-१९। अमित तेज वाले सूर्य के इन गुणों को, जिनके गुण-गान सिद्ध तथा देवगण सदैव किया करते हैं, मैंने अनेकों बार सुना है।२०। वही सातों लोकों के आश्रय, समस्त जगत् के हृदय-निवासी, लोकों के आधार, स्मरण मात्र से पाप नाशक एवं ईशों के ईश हैं। अतः मैं उस देव की आराधना करना चाहता हूँ।२१-२२
श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य परिचर्या वर्णन नामक साठवाँ अध्याय समाप्त।६०।

---

१. यद्भूतम्-इ०, यद्दत्तम्।

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

सूर्य-महिमावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

तमेकमक्षरं धाम परं सदसतोर्महत् । भेदाभेदस्वरूपस्थं प्रणिपत्य रविं नृप ।।१
प्रवक्ष्यामि यथापूर्वं विरिञ्चेन महात्मना । ऋषीणां कथितं पूर्वं तं निबोध नराधिप ।।२
आराधनाय सवितुर्महात्मा पद्मसंभवः । योगं ब्रह्मपरं प्राह महर्षीणां यथा प्रभुः ।।३
समस्तवृत्तिसंरोधात्कैवल्यप्रतिपादकम् । तदा जगत्पतिर्ब्रह्मा प्रणिपत्य महर्षिभिः ।।४
सर्वैः किलोक्तो भगवानात्मयोनिः प्रजाहितम् । योयं योगो भगवता प्रोक्तो वृत्तिनिरोधजः ।।५
प्राप्तुं शक्यः स त्वनेकैर्जन्मभिर्जगतः पते । विषया दुर्जया नृणामिन्द्रियाकर्षिणः प्रभो ।।६
वृत्तयश्चेतसश्चापि चञ्चलस्यापि दुर्धराः । रागादयः कथं जेतुं शक्या वर्षशतैरपि ।।७
न योगयोग्यं भवति मन एभिरनिर्जितैः । अल्पायुषश्च पुरुषा ब्रह्मन्कृतयुगेप्यमी ।।८
त्रेतायां द्वापरे चैव किमु प्राप्ते कलौ युगे । भगवंस्त्वामुपासीनान्प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ।।९
अनायासेन येनैव उत्तरेम भवार्णवम् । दुःखाम्बुमग्नाः पुरुषाः प्राप्य ब्रह्मन्महाप्लवम् ।।१०

अध्याय ६१

सूर्य की महिमा का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे नृप ! मैं उन सूर्य को प्रणाम करके जो अविनाशी, सभी के लिए उत्तम प्राप्ति स्थान एवं भेदाभेद स्वरूप वाले अद्वितीय और सत्, असत् से परे हैं, उनके आराधना-विषय को कह रहा हूँ, जिसे ब्रह्मा ने ऋषियों को बताया था, सुनो ! ।१-२। सूर्य की आराधना के लिए ब्रह्मा ने ऋषियों को वह ब्रह्म-प्रधान योग बताया था, जो समस्त वृत्ति के निरोध रूप होकर कैवल्य प्रदान करता है ।३। उस समय ऋषियों ने जगत्पति ब्रह्मा को प्रणाम करके उनसे कहा—हे जगत्पते, हे प्रभो ! आपने वृत्ति के रोकने से योग बताया है, किन्तु ऐसे योग की सिद्धि अनेक जन्मों में भी नहीं हो सकती है, क्योंकि विषय-वासना मनुष्यों की इन्द्रियों को बलात् आकर्षित कर लेती है, अतः वह मनुष्यों के लिए दुर्जेय है ।४-६। हे ब्रह्मन् ! एक तो मन सर्वथा चञ्चल है, दूसरे उसकी (आसक्ति आदि) वृत्तियों को अपने वश में करना महान् कठिन है, इसलिए हम लोग सैकड़ों वर्षों में भी उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते ।७। इस प्रकार इन्हें बिना जीते हुए सदैव लिप्त रहने वाला मन, योग के योग्य कैसे हो सकता है ? तथा पुरुष अल्पायु भी होते हैं। अतः जब कृत (सत्य) युग, त्रेता और द्वापर की यह बात है तो कलियुग में कुछ कहना ही नहीं है । हे भगवन् ! हम लोग आपके पास इसीलिए आये हैं अतः प्रसन्न होकर आप यह बतायें कि—इस संसार-सागर को वे मनुष्य, जो दुःखरूपी लहरों में सैदव डूबते-उतराते हैं, किस आधार द्वारा पार कर सकेंगे और हम लोग भी कैसे पार करेंगे ।८-१०। उन लोकों के इस प्रकार पूछने पर ब्रह्मा ने उनसे

उत्तरेम भवाम्भोधिं तथा त्वमनुचिंतय । एवमुक्तस्तदा ब्रह्माक्रियायोगं महात्मनाम् ।।११
तेषामृषीणामाचष्ट नराणां हितकाम्यया । आराधयत विश्वेशं दिवाकरमतन्द्रिता: ।।१२
बाह्यलम्बनसापेक्षास्तमजं जगत: पतिम् । इज्यापूजानमस्कारशुश्रूषाभिरहर्निशम् ।।१३
व्रतोपवासैर्विविधैर्ब्राह्मणानां च तर्पणै: । तैस्तैश्चाभिमतै: कामैर्ये च चेतसि तुष्टिदा: ।।१४
अपरिच्छेद्यमाहात्म्यमाराधयत भास्करम् । तन्निष्ठास्तद्गतधियस्तत्कर्माणस्तदाश्रया: ।।१५
तद्दृष्टयस्तन्मनस: सर्वस्मिन्त्स[1] इति स्थिता: । समस्तान्यथ कर्माणि तत्र सर्वात्मनात्मनि ।।१६
संन्यसध्वं स व: कर्त्ता समस्तावरणक्षयम् । एतत्तदक्षरं ब्रह्म प्रधानपुरुषावुभौ ।।१७
[2]यतो यस्मिन्यथा चोभौ सर्वव्यापिन्यवस्थितौ । पर: पराणां परम: सैक: सुमनसां पर: ।।१८
यस्माद्ब्रह्ममिदं सर्वं [3]यच्चेदं यच्च नेङ्गति । मोक्षकारणमव्यक्तमचिन्त्यमपरिग्रहम् ।।
समाराध्य जगन्नाथं क्रियायोगेन मुच्यते ।।१९
इति ते ब्रह्मण: श्रुत्वा रहस्यमृषिसत्तमा: ।।२०
नराणामुपकाराय योगशास्त्राणि चक्रिरे । क्रियायोगपराणीह मुक्तिकारीण्यनेकश: ।।२१
आराध्यते जगन्नाथस्तदनुष्ठानतत्परै: । परमात्मा स मार्तण्ड: सर्वेश: सर्वभावन: ।।२२

कहा—यह क्रियारूपी योग ही मनुष्य के सभी प्रकार का हित कर सकता है। अत: संसार के ईश सूर्य की आराधना, जिसमें शारीरिक योग का भी सम्बन्ध है, सावधान होकर करो।११-१२। इस प्रकार जगत् के स्वामी और अजन्मा उन सूर्य की उपासना—यज्ञ, पूजन, नमस्कार एवं शुश्रूषा (सेवा), व्रत और उपवास द्वारा रात दिन परिश्रमपूर्वक करते हुए ब्राह्मणों को भी भली-भाँति तृप्त करो तथा अन्य भी ऐसे कार्य करो, जिन्हें सुसम्पन्न करने पर मनमें अत्यन्त प्रसन्नता हो।१३-१४। क्योंकि ऐसे ही कार्यों से अतुल माहात्म्य वाले वे सूर्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। अत: उन्हीं में प्रेम-बुद्धि लगाकर एव उन्हीं के आश्रित रहते हुए, उन्हीं में सतत दृष्टि तथा मन लगाकर उन्हीं के सम्बन्ध के समस्त कर्म करे। क्योंकि वे ही सब में स्थित हैं ऐसा जानो और समस्त कर्म भी उन्हीं में सब प्रकार से अर्पित करे। और वे ही तुम्हारे कर्त्ता तथा समस्त आवरणों (दोषों) के नाश करने वाले हैं। यही अनश्वर ब्रह्म एवं प्रधान-पुरुष भी हैं जो दोनों सर्वव्यापी सूर्य में अवस्थित हैं, तथा जो परमोत्तम, देवों से भी परे, एक हैं और जिससे पृथक् होकर यह समस्त ब्रह्माण्ड, न स्थित रह सके न चेष्टा कर सके एवं मोक्ष के कारण, अव्यक्त (मन द्वारा) अचिन्त्य और सभी भाँति दुर्ग्राह्य हैं। इसलिए ऐसे जगत्पति सूर्य की आराधना क्रिया योग द्वारा सफल करके (सभी) मुक्त होते हैं।१५-१९

पश्चात् उन श्रेष्ठ ऋषियों ने इस प्रकार ब्रह्मा से इस रहस्य को सुनकर मनुष्यों के हित के लिए क्रिया रूपी योग के प्रतिपादन करने वाले अनेक योग शास्त्रों की रचना की, जो अनेक भाँति से मुक्तिदायी हैं।२०-२१। उनके भक्त उसी क्रिया द्वारा सूर्य की, जो परमात्मा, मार्तण्ड, सभी के ईश और सभी स्थानों

---

१. महति। २. धाता यस्मिन्यथा चोभौ सर्वथापि व्यवस्थिती। ३. तं जाने सर्वतोगतिम्।

यान्युक्तानि पुरा तेन ब्रह्मणा कुरुनन्दन । तानि ते कुरुशार्दूल सर्वपापहराण्यहम् ।।२३
वक्ष्यामि श्रूयतामद्य रहस्यमिदमुत्तमम् । संसारार्णवमग्नानां विषयाक्रांतचेतसाम् ।।२४
हंसपोतं विना नान्यत्किंचिदस्ति परायणम् । उत्तिष्ठंश्चिंतय रविं व्रजंश्चिंतय गोपतिम् ।।२५
भुञ्जंश्चिंतय मार्तंडं स्वपांश्चिंतय भास्करम् । एवमेकाग्रचित्तस्त्वं संश्रितः सततं रविम् ।।२६
जन्ममृत्युमहाग्राहं संसाराम्भस्तरिष्यसि ।।२७

पहेशमीशं वरदं पुराणं जगद्विधातारमजं च नित्यम् ।
समाश्रिता ये रविमीशितारं तेषां भवो नास्ति विमुक्तिभाजाम् ।।२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्ययोगमहिमवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।६१।

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

सूर्यदिण्डीसंवादम्

सुमन्तुरुवाच

अथान्यं सरहस्यं तु संवादं वच्मि तेऽखिलम् । सूर्यस्य दिण्डिना सार्धं सर्वपापप्रणाशनम् ।।१
ब्रह्महत्याभिभूतस्तु परा दिंडिर्महातपाः । आराधनाय देवस्य स्तोत्रं चक्रे महात्मनः ।।२

में प्राप्त हैं, आराधना करते हैं ।२२। हे कुरुनन्दन ! इसलिए ब्रह्मा के पहले जो कुछ कहा है, उसी को, जो समस्त पापों के नाशक तथा विषय-वासना में ओत-प्रोत होकर संसार सागर में डूबने वाले (प्राणी) के लिए एक गुप्त विषय है, मैं भी कह रहा हूँ, सुनो ! २३-२४। विषयासक्त प्राणी के (संसार-सागर पार करने) लिए सूर्य रूपी नौका के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। इसलिए उठते-बैठते, चलते, भोजन करते और शयन करते आदि सभी समय एकाग्रचित्त से सदैव सूर्य के आश्रित रहते हुए संसार सागर को, जिसमें जन्म और मरण रूप महान् ग्राह (मकर) रहते हैं, पार कर सकोगे ।२५-२७। अतः ग्रहों के स्वामी, वरदानी जगत् के प्राचीन विधाता एवं अजन्मा उस सूर्य के आश्रित होकर जो रहे हैं, उनकी मुक्ति हो जाती है, उन्हें फिर उत्पन्न नहीं होना पड़ेगा ।२८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्ययोग-महिमा वर्णन नामक एकसठवाँ अध्याय समाप्त ।६१।

अध्याय ६२

सूर्य दिंडी संवाद

सुमन्तु बोले—इसके पश्चात् दिंडी के साथ हुए सूर्य के उस अखिल रहस्यमय सम्वाद को, जो समस्त पापों का नाश करता हैं, मैं कहता हूँ ।१। पहले (समय में) महातपस्वी दिंडी को ब्रह्महत्या लगी थी, उस दुःख को दूर करने के लिए उन्होंने भगवान् सूर्य की आराधना का स्तोत्र (पाठ करने के लिए

श्रुत्वा तस्यार्थतः स्तोत्रं तुतोष भगवान्रविः । उवाच देवदेवस्तं दिण्डिनं गणनायकम् ॥३

आदित्य उवाच

हंत दिण्डे प्रसन्नोऽस्मि भक्त्या स्तोत्रेण तेऽनघ[1] । वरं वृणीष्व [2]धर्मज्ञ यत्ते मनसि वर्तते ॥४

दिण्डिरुवाच

एष एव वरः प्राप्यो यत्प्राप्तोऽसि ममान्तिकम् । त्वद्दर्शनमपुण्यानां स्वप्नेष्वपि च दुर्लभम् ॥५
यथैषा ब्रह्महत्या मे आगता लोकगर्हिता । भवाञ्जानाति सर्वेशो हृदिस्थः सर्वदेहिनाम् ॥६
त्वत्प्रसादान्ममेशान[3] नाशमाशु प्रयातु वै । तथा च दुरितं सर्वं यच्चान्यल्लोकगर्हितम् ॥७
यद्यदिच्छाम्यहं तत्तत्सर्वमस्तु दिवस्पते । एतेनैवानुमानेन प्रसन्नो भगवन्निति ॥८
ज्ञातं मया हि मार्तण्डे नाप्रसन्ने विभूतयः । एवं सर्वसुखाह्लादमध्यस्थोऽपि हि भानुमान् ॥९
त्वं मामगाधे संसारे मग्नमुद्धर्तुमर्हसि । सुखानि तानि चैवान्ते तेषां दुःखं न तत्सुखम् ॥१०
यदा तु दुःखमागामि किं[4] वा कस्यैव भक्षणात् । तत्प्रसादं कुरु विभो जगतां त्वं जगत्पते ॥११
ज्ञानदानेन येनैवमुत्तरेयं भवार्णवम् । इत्युक्तस्तेनमार्तण्डः कथयामास योगवित् ॥१२

पद्यात्मक) बनाया था ।२। अर्थ समेत उसे सुनकर भगवान् सूर्य देव ने प्रसन्न होकर गणनायक दिंडी से कहा ।३

आदित्य ने कहा—हे दिंडे ! भक्तिपूर्वक किये हुए तुम्हारे इस स्तोत्र के पाठ से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । हे मर्मज्ञ ! तुम अपने अभिलषित वरदान माँगो ।४

दिंडी ने कहा—आपने यहाँ आकर दर्शन दिया, यही वरदान अति-प्रशंसनीय है, क्योंकि पापियों के लिए आप का दर्शन स्वप्न में भी दुर्लभ है ।५। किन्तु इस मेरी लोक निंदित ब्रह्महत्या को जो मुझे कैसे प्राप्त हुई है, यह वृत्तान्त सभी के ईश होने एवं समस्त प्राणियों के हृदय में रहने के नाते आप जानते ही हैं ।६। इसलिए हे ईशान ! आपकी कृपा द्वारा इसका शीघ्र नाश हो । और मेरे अन्य सभी लोकनिन्दित पाप का भी ।७। हे दिवस्पते ! जिस पदार्थ की इच्छा करूँ, उन सभी की पूर्ति हो जाये, हे भगवन् ! मुझे कुछ ऐसा अनुमान भी तो हो रहा है कि आप मुझ पर प्रसन्न हैं ।८। और मैं भलीभाँति जानता भी हूँ कि सूर्य के अप्रसन्न रहने पर सभी ऐश्वर्यादिक विभूतियाँ प्राप्त नहीं होती हैं, क्योंकि समस्त सुखों एवं प्रसन्नताओं के मध्यस्थ भगवान् ही हैं ।९। अतः इस अगाध संसार से आप मेरे उद्धार करने की कृपा करें, जिससे उस सुख की प्राप्ति कर सकूँ, अन्य की नहीं, क्योंकि जिस सुख के अंत में दुःख भी प्राप्त हो, उसे सुख नहीं कहा जा सकता ।१०। हे विभो, हे जगत्पते ! संसार में किसी प्रकार या किसी वस्तु के भोजन करने से भावी दुःख जो होने वाला है प्रसन्न होकर आप उसका नाश करें ।११। इसलिए ज्ञान-दान किसी उपाय द्वारा मैं तथा (सभी लोग) संसार सागर को पार कर सकें, आप उसे बताने की कृपा करें ! इस प्रकार उनके कहने पर योग के विद्वान् सूर्य ने उन्हें निर्बीज योग का, जो अत्यन्त दुःख का नाशक है, उपदेश दिया। उस निष्कल

---

१. वै तव । २. सर्वज्ञ । ३. अशेषेण । ४. पातकस्यैव लक्षणात् ।

योगं निर्बीजमत्यन्तं दुःखसंयोगभेषजम् । श्रुत्वा योगं तु तं दिण्डिनिर्बीजं निष्कलं बभौ ॥१३
प्रणिपत्य महातेजा इदं वचनमब्रवीत् । देवदेव त्वया योगो यः प्रोक्तो ध्वान्तनाशन ॥
नैष प्राप्यो मया नान्यैर्मानवैरजितेन्द्रियैः ॥१४
विषया दुर्जयाः पुंभिरिन्द्रियाकर्षिणः सदा । इन्द्रियाणां जयो युक्तः कः शक्तानां करिष्यति ॥१५
अहंममेतिनिविष्य।तिर्दुर्जयं चञ्चलं मनः । रागादयस्तथा त्यक्तुं शक्या जन्मान्तरैर्यदि[2] ॥१६
सोऽहमिच्छामि देवेश त्वत्प्रसादादार्निर्जितैः । रागादिभिरमर्त्यत्वं प्रापुः प्रक्षीणकल्मषाः ॥१७

आदित्य उवाच

यद्येवं मुक्तिकामस्त्वं गणनाथ शृणुष्व तम् । क्रियायोगं समस्तानां क्लेशानां हानिकारकम्[3] ॥१८
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥१९
मद्भावना मद्यजना मद्भक्ता मत्परायणाः । मम पूजाकराश्चैव मयि यान्ति लयं नराः ॥२०
सर्वभूतेषु मां पश्यन्समवस्थितमीश्वरम्[4] । कर्तासि केन चैव त्वमेवं दोषान्प्रहास्यसि[5] ॥२१
जङ्गमाजङ्गमे ज्ञाते मय्यासक्ते समन्ततः । रागलोभादिनाशेन भवित्री कृतकृत्यता ॥२२
भक्त्यातिप्रणयस्यापि चञ्चलत्वान्मनो यदि । मय्यावेशं दधद्भूयः कुरु मद्रूपिणीं तनुम् ॥२३

और निर्बीजयोग को सुनकर दिंडी ने प्रणाम करते हुए सूर्य से इस प्रकार कहना आरम्भ किया कि—हे देवाधिदेव ! आपने जिस योग का मुझे उपदेश दिया है, वह मुझे तथा अन्य किसी असंयमी मनुष्य को अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था ।१२-१४। इन्द्रियों को आकर्षित करने के नाते विषय-वासना मनुष्यों के लिए दुर्जेय है, क्योंकि शक्तिशाली इन्द्रियों का पराजय कौन कर ही सकता है ।१५। यह मैं हूँ एवं 'यह मेरी वस्तु है' इसी में मन सदैव (लिप्त होने के नाते) चञ्चल रहता है । इसलिए उस पर विजय प्राप्त करना महान् कठिन है । हे देवेश ! इसीलिए इस मन पर विजय एवं रागादि विषय का त्याग यदि जन्मांतर में भी किसी प्रकार संभव हो सके, तो मैं वही चाहता हूँ । क्योंकि तुम्हारी ही कृपा द्वारा रागादि विषयासक्त प्राणी भी समस्त पापों के नष्ट होने पर अमरत्व प्राप्त किये हैं, अर्थात् वे लोग देवता हो गये हैं ।१६-१७

आदित्य ने कहा—हे गणनाथ ! यदि तुम्हें इस भाँति मुक्ति की इच्छा है, जो क्रिया योग को, जो समस्त दुःखों का नाशक है, सुनो ! १८। और उसे सुनकर मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्तजनों, मेरे लिए यज्ञपूजन और नमस्कार करो । इस भाँति मुझमें अपने (मन) को लगाकर सत्परायण (निरंतर मुझमें लीन) रहने पर मुझे प्राप्त कर सकोगे ।१९। क्योंकि मेरे लिए अपनी भावना याजन, भक्ति एवं सत्परायण होकर मेरी पूजा करने वाले ही मनुष्य मुझे प्राप्त करते हैं ।२०। इस प्रकार सभी प्राणियों में मुझे सब अवस्थित और ईश्वर भाव से देखते हुए 'किसके द्वारा कौन करता है, इसका ज्ञान होने पर तुम्हारे भी (सांसारिक) दोष नष्ट हो जायेंगे ।२१। और चर-अचर सभी मुझमें आसक्त हैं इसका ज्ञान भली भाँति हो जाने पर रागादि नाशपूर्वक सफलता भी प्राप्त हो जायेगी ।२२। अति प्रणयी होने पर भी मन के अधिक चञ्चल होने के नाते, यदि निश्चल न हो सके, तो भक्तिपूर्वक मेरे में आवेश करके अपनी शरीर में

---

१. जगन्नाथ । २. वद । ३. हानिकारणम् । ४. सर्वत्र । ५. प्रशाम्यसि ।

सुवर्णरजताद्यैस्त्वं शैलमृद्दारुलेखनम् । पूजोपहारैर्विविधैः सम्पूजय त्रिलोचनम् ।।२४
तस्याश्रितं समाविश्य सर्वभावेन सर्वदा । पूजिता सैव ते भक्त्या ध्याता चैवोपकारिणी ।।२५
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुञ्जंस्तामेवाग्रे च पृष्ठतः । उपर्यधस्तथा पार्श्वे चिन्तयंस्तन्मयश्च वै ।।२६
स्नानैस्तीर्थोदकैर्हृद्यैः [1]पुष्पैर्गन्धानुलेपनैः । वासोभिर्भूषणैर्भक्ष्यैर्गीतवाद्यैर्मनोरमैः ।।२७
यच्च यच्च तवेष्टं वै किञ्चिद्भोज्यादिकं तव । भक्तिनम्रो गणश्रेष्ठ प्रीणयस्व कृतिं[2] मम ।।२८
रागेणाकृष्यते तात गन्धर्वाभिमुखं यदि । मयि बुद्धिं समावेश्य गायेथा मे कथा मम ।।२९
कथया रमते चेतो यदि तद्भवतो मम । श्रोतव्याः प्रीतियोगेन मत्स्वरूपोदयाः कथाः ।।३०
एवं समर्पितमनाश्चेतसो येऽस्य आश्रयाः । हेयांस्तान्निखिलान्दिण्डे परित्यज्य सुखी भव ।।३१
अक्षीणरागद्वेषोऽपि मत्प्रियः परमः परम् । पदमाप्नोषि मा भैषीर्मय्यर्पितमना भव ।।३२
मयि संन्यस्य सर्वं त्वमात्मानं यत्नवान्भव । मदर्थं कुरु कर्माणि मा च धर्मव्यतिक्रमम् ।।३३
एवं व्यपोह्य हत्यास्त्वं ब्रह्मण मोक्ष्यसे भवात् । एतेनैवोपदेशेन व्याख्यातमखिलं तव ।।३४
क्रियायोगं[3] समास्थाय मदर्पितमनाभव ।।३५

मेरे रूप की कल्पना करो ।२३। इस भाँति सुवर्ण, चाँदी, पत्थर या लकड़ी आदि किसी की मेरी मूर्ति बनवाकर विविध भाँति के उपहार आदि प्रदान करते हुए उस त्रिलोचन की पूजा करो ।२४। उसके आश्रित रहकर सदैव अपनी भावनाएँ उसी के निमित्त करके एकाग्रचित्त द्वारा भक्तिपूर्वक उसके ध्यान और पूजन करने से इष्ट-सिद्धि प्राप्त होगी ।२५। इस प्रकार बैठते, शयन करते, भोजन करते, आगे-पीछे ऊपर-नीचे एवं पार्श्व भाग में उसी की तन्मयता से चिंतन करते हुए तीर्थोदक से स्नान, मनोहर पुष्पों से तथा गंध का लेपन, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, भक्ष्य भोक्ष्य एवं गाने-बजाने आदि से प्रसन्न करने के अनन्तर और भी तुम्हें जो-जो वस्तु प्रिय हों, भक्ति और नम्रता पूर्वक उसे समर्पित कर मेरी उस प्रतिमा को प्रसन्न करो ।२६-२८। हे तात ! यदि उस समय कोई गन्धर्व के सम्मुख होकर राग से आकृष्ट हो जाय तो मुझमें चित्त लगाकर मेरी कथाओ का गान करो ।२९। और उससे तुम्हारे मन में यदि आनन्द हो, तो प्रेमपूर्वक मेरी कथाओं को अवश्य सुनो और हे दिंडे ! इस प्रकार अपने चित्त को मुझमें लगाकर मन के समस्त दोषों को त्याग करके सुखी बनो ।३०-३१। पुनः राग और द्वेष के नष्ट न होने पर भी मुझे अत्यन्त प्रिय होकर उत्तम पद प्राप्त करोगे । अतः भय न करो । चित्त को मुझमें लगाओ ।३२। और मेरे लिए सभी का त्याग करके तुम सवाधान हो जाओ एवं मेरे ही लिए कर्मों को करो, जिससे किसी प्रकार धर्म का व्यतिक्रम न होने पाये ।३३। क्योंकि इससे तुम ब्रह्महत्या से मुक्त होकर संसार से भी मुक्त हो जाओगे । बस, इतने ही उपदेश द्वारा मैंने तुम्हारे लिए सभी कुछ कह दिया है ।३४। अतः क्रिया रूपी योगारम्भ में अब निमग्न रहकर तुम अपने मन को मुझमें अर्पित कर दो ।३५

---

१. पुण्यैः । २. प्रतिकृतिमित्यर्थः ३. मय्यर्पितमना भूत्वा सर्वान्कामानवाप्स्यसि । ४. अस्ति ।

दिण्डिरुवाच

मद्धिताय जगन्नाथ क्रियायोगामृतं मम । विस्तरेण समाख्याहि प्रसन्नस्त्वं हि दुःखहा ॥३६
त्वामृते न हि तद्वक्तुं समर्थोऽन्यो[1] जगद्गुरो । गुह्यमेतत्पवित्रं च तदाचक्ष्व प्रसीद मे ॥३७

आदित्य उवाच

आख्यास्यते तदखिलं निर्विकल्पं गणाधिप । इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः सर्वलोकप्रदीपकः ॥३८
स च दिण्डिर्महातेजा जगामाशु नभोगतिम् ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
दिण्ड्यादित्यसंवादवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।६२।

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

आदित्यमहिमावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

प्रणम्य शिरसा देवं सुरज्येष्ठं चतुर्मुखम् । उवाच स महातेजा दिण्डिर्लोकेशमादरात् ॥१
देवदेवेन भवतादिष्टोऽस्मि च महात्मना । क्रियायोगामृतं[2] सर्वमाख्यास्यति भवान्किल ॥२

दिंडि ने कहा—हे जगन्नाथ ! मेरे हित के लिए आप इस क्रियायोग रूपी अमृत का पान विस्तार पूर्वक यदि (मेरे कानों का) करायेंगे तो बड़ी कृपा होगी क्योंकि सदैव आप प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं एवं दुःख नाशक भी कहे गये हैं।३६। हे जगद्गुरो ! आप के अतिरिक्त अन्य कोई भी उसे बताने में समर्थ नहीं है और यह अत्यन्त गुप्त तथा पवित्र विषय है, अतः मुझ पर प्रसन्न होकर आप कृपया फिर वही कहें।३७

आदित्य बोले—हे गणाधिप ! मैं उस निर्विकल्प योग की समस्त बातें तुमसे अवश्य कहूँगा, इस भाँति कहकर सभी लोकों के प्रदीप रूपी सूर्य अन्तर्धान हो गये । और वह महातेजस्वी दिंडि भी आकाशगामी हो गया ।३८-३९

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में दिंड्यादित्य संवाद वर्णन
नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ।६२।

अध्याय ६३

सूर्य महिमा का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—देव श्रेष्ठ एवं चतुर्मुख ब्रह्मा को शिर से प्रणाम कर महातेजस्वी दिंडी ने सादर उनसे कहा—देवाधिदेव एवं महात्मा सूर्य ने आदेश दिया है कि क्रिया योग की व्याख्या आप करेंगे

---

१. अस्ति । २. क्रियायोगमश्रृणवमाख्यातं भगवन्किल ।

स त्वां पृच्छाम्यहं ब्रह्मन्क्रियायोगं निरन्तरम् । सन्तोषयितुमीशेहं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥३

ब्रह्मोवाच

एह्येहि मत्सकाशं च मत्समीपे गणाधिप । ब्रह्महत्या प्रणष्टा ते दर्शनादेव तस्य तु ॥४
अनुग्राह्योऽसि भूतेश भास्करस्यामितौजसः । आराधनाय भूतेश यदीरो प्रवणं मनः ॥५
यदि देवपतिं भानुमाराधयितुमिच्छसि । भगवन्नाक्षनाद्यन्तं भव दीक्षागुणान्वितः ॥६
न ह्यदीक्षान्वितैर्भानुर्ज्ञातुं स्तोतुं च तत्त्वतः । द्रष्टुं वा शक्यते मूढैः प्रवेष्टुं कुत एव हि ॥७
जन्मभिर्बहुभिः पूता नरास्तद्गतचेतसः । भवन्ति भगवत्सौरास्तदा दीक्षागुणान्विताः ॥८
अनेकजन्मसंसाररचिते पापसमुच्चये । नाक्षीणे जायते पुंसां मार्तण्डाभिमुखी मतिः ॥९
प्रद्वेषं याति मार्तण्डे द्विजान्वेदांश्च निन्दति । यो नरस्तं विजानीयात्पापबीजसमुद्भवम्[1] ॥१०
पाखण्डेषु रतिः पुंसां हेतुवादानुकूलता । जायते विष्णुमायाम्भःपतितानां दुरात्मनाम् ॥११
यदा पापक्षयः पुंसां तदा वेदद्विजादिषु । रवौ च देवदेवेशे श्रद्धा भवति निश्चला ॥१२
यदा स्वल्पावशेषस्तु नराणां पापसञ्चयः । तदा दीक्षागुणान्सर्वे भजन्ते नात्र संशयः ॥१३
भ्रमतामत्र संसारे नराणां पापदुर्गमे[2] । हस्तावलम्बदोप्येको भक्तिप्रीतो दिवाकरः ॥१४

।१-२। हे ब्रह्मन् ! अतः मैं चाहता हूँ कि क्रियायोग की व्याख्या आप यथोचित रीति से प्रदर्शित करें। जिससे मुझे सन्तोष हो जाये ।३

ब्रह्मा बोले—हे गणाधिप ! आओ ! मेरे समीप बैठो क्योंकि उनके दर्शन मात्र से ही तुम्हारी ब्रह्महत्या नष्ट हो गई है ।४। हे भूतेश ! यदि अमित तेजवाले उन सूर्य की आराधना में तुम्हारा मन लग गया है तो तुम अब अनुग्रह के पात्र हो गये हो ।५। अतः यदि देवाधिदेव एवं आदि अन्त हीन भगवान् सूर्य की आराधना करने की इच्छा हे, तो पहले तुम्हें दीक्षा लेना आवश्यक है ।६। क्योंकि दीक्षा हीन मूर्खों के लिए वास्तव में सूर्य का ज्ञान, उनकी स्तुति एवं उनका दर्शन सर्वथा असंभव होता है। और उनमें प्रविष्ट होना तो दूर रहा ।७। और अनेक जन्मों में निरन्तर ध्यान करने से पवित्र होने पर मनुष्य, तब कहीं सूर्य की दीक्षा प्राप्त करता है ।८। क्योंकि संसार में अनेक जन्मो द्वारा संचित हुए पापों का नाश, जब तक नहीं होता है, तब तक सूर्य की भक्ति करने वाली बुद्धि मनुष्यों को नहीं प्राप्त होती है ।९। इस भाँति उन्हें पाप-बीज असुर अंश से उत्पन्न होना मानते हैं, वे सर्वथा सूर्य से द्वेष एवं वेद की निन्दा करते हैं। १०। तथा विष्णु की माया रूपी सागर में डूबने वाले दुरात्मा पुरुषों का प्रेम, पाखंडों में अधिक होता है, क्योंकि वह उनके (वाद-विवाद के) अधिक अनुकूल रहता है। ११। जिस समय पाप का नाश हो जाता है, उसी समय, वेद, ब्राह्मण आदि और देवाधिदेव सूर्य में उसकी अटल श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। १२। इसलिए पापों के नष्ट हो जाने पर ही मनुष्यों की प्रवृत्ति दीक्षा लेने में होती है ।१३। क्योंकि इस संसार में जितने पापो के दुर्ग हैं, उनमें विवश होकर घूमते हुए मनुष्यों के हाथ पकड़कर आश्रय देने वाले एकमात्र सूर्य ही हैं जो

---

१. असुरांशसमुद्भवम्। २. कर्म।

सर्वभागवतो भूत्वा सर्वपापहरं रविम् । आराधयेह तं भक्त्या प्रीतिमेष्यति भास्करः ॥१५

दिण्डिरुवाच

किं लक्षणा नरा दीक्षामर्हन्ति पद्मसम्भव । यच्च दीक्षान्वितैः कार्यं तन्मे कथय पद्मज ॥१६

ब्रह्मोवाच

कर्मणा मनसा वाचा प्राणिनां यो न हिंसकः । भावभक्तश्च मार्तण्डे तस्य दीक्षा गुणान्विता ॥१७
ब्राह्मणांश्चैव देवांश्च नित्यमेव नमस्यति । न च द्रोग्धा[1] परं वादे स मार्तण्डं समर्हति ॥१८
सर्वान्देवान् रविं वेत्ति सर्वलोकांश्च भास्करम् । तेभ्यश्च नान्यनात्मानं स नरः सौरतां व्रजेत् ॥१९
देवं मनुष्यमन्यं वा पशुपक्षिपिपीलिकान् । तरुपाषाणकाष्ठानि भूम्यंभोगगनं दिशः ॥२०
आत्मानं चापि देवेशाद्व्यतिरिक्तं दिवाकरात् । यो न जानाति यतिषु स वै दीक्षागुणान्भजेत् ॥२१
भावं न कुरुते यस्तु सर्वभूतेषु पापकम् । कर्मणा मनसा वाचा स तु दीक्षां समर्हति ॥२२
सुतप्तेनेह तपसा यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः । तां गतिं न नरा यान्ति यां गताः सूर्यमाश्रिताः ॥२३
येन सर्वात्मना भानौ भक्त्या भावो निवेशितः । गणेश्वर कृतार्थत्वाच्छ्लाघ्यः सौरः स मानवः ॥२४
अपि नः स कुले धन्यो जायते कुलपावनः । भगवान्भक्तिभावेन येन भानुरुपासितः ॥२५

भक्ति द्वारा प्रसन्न होते हैं ।१४। अतः सभी भाँति से स्वयं भागवत होकर समस्त पापों का नाशक सूर्य की उपासना भक्तिपूर्वक सम्पन्न करो, वे अवश्य प्रसन्न होंगे ।१५

दिंडि ने कहा—हे पद्मसंभव ! किस भाँति के पुरुष दीक्षा प्राप्त करके योग्य होते हैं और दीक्षित होने पर उनका क्या कर्तव्य होता है, आप मुझसे इसे कहने की कृपा करें ।१६

ब्रह्मा बोले—जो मन, वाणी एवं कर्मों द्वारा हिंसा नहीं करता और सूर्य में भाव-भक्ति रखता है, उसी पुरुष की दीक्षा उत्तम बतायी गई है ।१७। तथा ब्राह्मणों एवं देवताओं को नित्य प्रणाम तथा उनके वाद-विवाद में द्रोह नहीं करता है, वही सूर्य की उपासना के योग्य होता है ।१८। एवं जो सूर्य को सर्व देवमय एवं समस्त लोकमय मानता है, तथा उसके लिए अन्य और कोई है भी नहीं वही सौर (सूर्य का) भक्त होता है ।१९। इसी प्रकार जो देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, चींटियाँ, वृक्ष, पत्थर, काष्ठ, पृथिवी, जल, आकाश, दिशाएँ और अपने को भी देवेश सूर्य से पृथक् नहीं जानता है, वही यतियों में उत्तमदीक्षित होता है ।२०-२१। क्योंकि समस्त प्राणियों में जो मन, वाणी एवं बुद्धिपूर्वक पाप की भावना नहीं रखता, वही दीक्षा के योग्य होता है ।२२। इसीलिए भली-भाँति तपते हुए तप और अत्यन्त दक्षिणा वाले यज्ञों के द्वारा मनुष्यों को वह गति नहीं प्राप्त है, जो सूर्य के भक्तों को प्राप्त होती है ।२३। हे गणेश्वर ! इस प्रकार जिसने सर्वात्म भाव से अपनी भावना को सूर्य में निहित कर दिया है, कृतार्थ होने के नाते वही मनुष्य सूर्य का (प्रशस्त) श्रेष्ठ भक्त बताया गया है ।२४। इसलिए हमारे कुल में (उत्पन्न होकर) जिसने भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्य की उपासना की है, वही धन्य है एवं कुल को पवित्र करने वाला है ।२५। इसी प्रकार जो

---

१. भोगी परस्वादेः ।

यः कारयति देवार्चां हृदयालम्बनं रवेः । स नरो भानुसालोक्यमाप्नोति धुतकल्मषः ।।२६
यस्तु देवालयं भानोर्भक्त्या कारयति ध्रुवम् । स सप्त पुरुषांल्लोकं भानोर्नयति मानवः ।।२७
यावन्त्यब्दानि देवार्चा रवेस्तिष्ठति मन्दिरे । तावद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके [1]महीयते ।।२८
देवार्चा लक्षणोपेता तद्गृहे सन्ततो विधिः । निष्कामं च मनो यस्य स यात्यक्षरसाम्यताम् ।।२९
पुष्पाणि च सुगन्धीनि मनोज्ञानि च यः पुमान् । प्रयच्छति सहस्रांशोः सदा प्रयतमानसः ।।३०
धूपांश्च तांस्तान्विविधान्गन्धाढ्यं चानुलेपनम् । नरः सोऽनुदिनं यज्ञं करोत्याराधनं रवेः ।।३१
यज्ञेशो भगवान्पूषा सदा क्रतुभिरिज्यते । बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः ।।३२
न ते दिण्डिन्नवाप्यन्ते मनुष्यैरल्पसञ्चयैः । भक्त्या तु पुरुषैः पूजा कृता दूर्वाङ्कुरैरपि ।।
भानोर्ददाति हि फलं सर्वयज्ञैः सुदुर्लभम् ।।३३
यानि पुष्पाणि हृद्यानि धूपगन्धानुलेपनम् । दयितं भूषणं यच्च प्रीतये चैव वाससी ।।३४
यानि चाभ्यवहार्याणि भक्ष्याणि च फलानि वै । प्रयच्छ तानि मार्तण्डे भवेथाश्चैव तन्मनाः ।।३५
आद्यं तं भुवनाधारं यथाशक्त्या प्रसादय । आराध्य याति तं देवं तस्मिन्नेव नरो लयम् ।।३६
पुष्पैस्तीर्थोदकैर्गन्धैर्मधुना सर्पिषा तथा । क्षीरेण स्नापयेद्भानुं ग्रहेशं गोपतिं खगम् ।।३७

देवाराधनपूर्वक सूर्य में अपना चित्त लगाता है वह पाप-मुक्त होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है ।२६। तथा जो मनुष्य सूर्य के (सौन्दर्यपूर्ण) मन्दिर की रचना करवाता है, उसकी सात पीढ़ी के वंशज सूर्य लोक को प्राप्त करते हैं ।२७। इसी भाँति मन्दिर में सूर्य की पूजा, जितने वर्षों तक होती है, उतने सहस्र गुने वर्षों तक सूर्यलोक में वह प्राणी सम्मानपूर्वक निवास करता है ।२८। इसलिए यदि विधिपूर्वक देव की अर्चना घर में सदैव होती रहे एवं मन निष्काम हो, तो उसे अविनाशी (सूर्य) का सारूप्य मोक्ष प्राप्त होता है ।२९। जो पुरुष सुगन्धित एवं मनोहर पुष्पों को सूर्य के लिए सादर समर्पित करता है एवं धूप और भाँति-भाँति के सुगन्धित चन्दन प्रदान करता है, वह इस भाँति प्रतिदिन सूर्य की आराधना रूप यज्ञ ही करता है ।३०-३१। इस प्रकार यज्ञेश भगवान् पूषन् (सूर्य) की सदैव इस प्रकार के यज्ञों द्वारा, जिसमें नाना भाँति के साधन एवं जिसकी महान् आयोजना रहती है, लोग उपासना करते हैं । हे दिंडिन् ! यद्यपि निर्धन तथा कुरूप पुरुष उस भाँति के यज्ञ नहीं कर सकते हैं, पर दूर्वांकुर मात्र से ही जो (निर्धन) उनकी भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं उन्हें सूर्य समस्त यज्ञों द्वारा प्राप्त होने वाले वे समस्त दुर्लभ फल प्रदान करते हैं ।३२-३३। अतः मनोहर पुष्पों, धूप, गंध, चन्दन, प्रिय आभूषण तथा युगल वस्त्र, भोजन के योग्य भाँति-भाँति के भक्ष्य अन्न एवं फल को सूर्य की प्रसन्नता के लिए तल्लीन होकर उन्हें समर्पित करे ।३४-३५। क्योंकि वे ही भुवन के आदि आधार हैं । इसलिए शक्त्यनुसार उन्हें प्रसन्न करो । क्योंकि उन्हीं (सूर्य) देव की आराधना करके (मनुष्य) उन्हीं में लय को प्राप्त होता है ।३६। हे गण श्रेष्ठ ! अतः जो पुष्पों, तीर्थजलों, गंधों, मधु, घी एवं दूध द्वारा ग्रहेश, (किरण) पति एवं आकाशगामी सूर्य का स्नान

---

१. स मोदते ।

दधिक्षीरह्रदान्पुण्यांस्ततो लोकान्मधुच्युतः । प्रयास्यति गणश्रेष्ठ निर्वृत्तिं च विलक्षणाम् ।।३८
स्तोत्रैर्गीतैस्तथा वाद्यैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः । मनसश्चैव योगेन आराधय दिवाकरम् ।।३९
आराध्य तं जगन्नाथं मया सर्गः प्रवर्तितः । विष्णुश्च पालयेल्लोकांस्तमाराध्य दिवाकरम् ।।४०
रुद्रश्च प्राप्तवान्देवीं भवानीं तत्प्रसादतः । दीप्यन्ते ऋषयश्चापि तमाराध्य दिवाकरम् ।।४१
स त्वमेभिः प्रकारैस्तमुपवासैश्च भास्करम् । तोषयाब्दं हि तुष्टोऽसौ भानुर्द्वंद्वप्रशान्तिदः ।।४२
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे ब्रह्मदिण्डिसंवादे आदित्यक्रियायोगवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।६३।

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

फलसप्तमीवर्णनम्

दिण्डिरुवाच

उपवासैः सुरश्रेष्ठ कथं तुष्यति भास्करः । परिहारांस्तथाचक्ष्व ये त्याज्याश्चोपवासिभिः ।।१
यद्यत्कार्यं यथा चैव भास्कराराधने नरैः । तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ।।२

ब्रह्मोवाच

स्मृतः सम्पूजितो धूपपुष्पान्नैर्भानुरादरात् । भोगिनामुपकाराय किं पुनश्चोपवासिनाम् ।।३

आदि कराता है, वह मधु से भरा और दही एवं दूध के सरोवर से युक्त पुण्यलोक और विलक्षण (संसार से) निर्वृत्ति प्राप्त करता है।३७-३८। इसलिए उनके स्तोत्र तथा गान और वाद्यों एवं ब्राह्मण को तृप्त करने तथा मनोयोग द्वारा सूर्य की आराधना अवश्य करो।३९। क्योंकि जगन्नाथ उन्हीं सूर्य की उपासना करके मैंने सृष्टि रचना की है तथा उनकी अराधना करके ही विष्णु लोकों का पालन करते हैं।४०। और उन्हीं की कृपा द्वारा रुद्र ने देवी भवानी को प्राप्त किया है तथा ऋषिगण प्रकाशित होते हैं।४१। तुम इसी प्रकार उपवासों के द्वारा पूर्ण वर्ष तक आराधना करके उन्हें प्रसन्न करो क्योंकि प्रसन्न होने पर सूर्य द्वन्द्व रूपी दुःख की शांति करते हैं।४२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्पमें ब्रह्मदिंडि संवाद में आदित्य क्रियायोग वर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त।६३।

अध्याय ६४

फलसप्तमी का वर्णन

दिंडि ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! उपवासों के द्वारा सूर्य कैसे प्रसन्न होते हैं तथा उपवास करने वालों के लिए कौन वस्तु त्याज्य है (स्वीकृत का त्याग) और कौन परिहार्य।१। ब्रह्मन् ! इसी प्रकार मनुष्यों को सूर्य की आराधना में क्या-क्या करना चाहिए। इन सभी बातों को यथोचित ढंग से विस्तारपूर्वक कहने की कृपा करें।२

ब्रह्मा बोले—धूप, पुष्प एवं अन्न आदि द्वारा पूजित होने पर सूर्य भोगी पुरुषों को भी अत्यन्त सुख

उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह । उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ।।४
एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रं नक्तमेव च । उपवासी रविं यस्तु भक्त्या ध्यायति मानवः ।।५
तन्नामजापी तत्कर्मरतस्तद्गतमानसः । निष्कामः पुरुषो दिण्डे स ब्रह्म परमाप्नुयात् ।।६
यं च काममभिध्याय भास्करार्पितमानसः । उपोषति तमाप्नोति प्रसन्ने खगमेऽखिलम् ।।७

दिण्डिरुवाच

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैः स्त्रीभिश्च कञ्जज । संसारगर्ते पङ्कस्थे सुगतिः प्राप्यते कथम् ।।८

ब्रह्मोवाच

अनाराध्य जगन्नाथं गोपतिं ध्वान्तनाशनम् । निर्व्यलीकेन चित्तेन कः प्रयास्यति सद्गतिम् ।।९
विषयग्राहि वै यस्य न चित्तं भास्करार्पितम् । स कथं पापपङ्काक्तो नरो यास्यति सद्गतिम् ।।१०
यदि संसारदुःखार्तः सुगतिं गन्तुमिच्छसि । तदाराध्य सर्वेशं भास्करं ज्योतिषां पतिम् ।।११
पुष्पैः सुगन्धैर्हृद्यैश्च धूपैः सागरुचन्दनैः । वासोभिर्भूषणैर्भक्ष्यैरुपवासपरायणः ।।१२
यदि संसारनिर्वेदादभिवाञ्छसि सद्गतिम् । तदाराध्य मार्तण्डं भक्तिप्रवणचेतसा ।।१३
पुष्पाणि यदि ते न स्युः शस्तपादपपल्लवैः । दूर्वाङ्कुरैरपि दिण्डे तदभावेऽर्चयार्यमम् ।।१४

प्रदान करते हैं इसलिए उपवास द्वारा उनकी आराधना करने वालों को कहना ही क्या है ? ।३। पापों की निवृत्तिपूर्वक समस्त उपभोग पदार्थों के त्याग करते हुए गुणों के साथ रहने को उपवास कहते हैं ।४। हे दिंडे ! इस प्रकार एक, दो या तीन रात तक अथवा नक्तव्रत में उपवास करने वाला मनुष्य भक्तिपूर्वक यदि सूर्य का ध्यान और उनके लिए कर्मों में अनुरक्त एवं समर्पित होकर निष्काम कर्म करता रहे, तो वह परमब्रह्म (मोक्ष) प्राप्त करता है ।५-६। एवं जो किसी कामनावश सूर्य में मन लगा कर उपवास करता है, तो उसे भी उनके प्रसन्न होने पर अखिल वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ।७

दिंडि ने कहा—हे कंजज (कमलज) ! ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों एवं स्त्रियों को संसार रूपी गड्ढे के कीचड़ में फंसने पर उत्तम गति कैसे प्राप्त होती है ? ८

ब्रह्मा बोले—उस जगन्नाथ की, जो गो (किरणों) के पति एवं अंधकार के नाशक हैं, शुद्धचित्त से विना आराधना किये किसकी उत्तम गति हो सकती है ।९। क्योंकि जिसका मन विषयों में अनुरक्त रहने के नाते सूर्य में अर्पित नहीं है तो केवल पाप रूपी कीचड़ में सदैव फंसे हुए उस पुरुष की उत्तम गति कैसे हो सकती है ।१०। अतः संसार के दुःखों से दुःखी होकर यदि उत्तम गति प्राप्त करना चाहते हो, तो भास्कर की, जो सर्वेश एवं ग्रहों के पति हैं, आराधना करो ।११। सुगंधित और मनोहर पुष्पों, धूप, गूगुल, चन्दन, वस्त्रों, भूषणों और भक्ष्य पदार्थों को उन्हें समर्पित करते हुए उपवास भी करो ।१२। इस प्रकार संसार (दुःखों) से विरक्त होकर उत्तम गति प्राप्त करना चाहते हो, तो भक्ति में चित्त लीनकर उनकी आराधना अवश्य करो ।१३। यदि वैसे पुष्प नहीं प्राप्त हो रहे हैं, तो प्रशंसा वृक्षों के मनोहर पल्लवों एवं उसके भी अप्राप्त होने पर केवल दूर्वाङ्कुरों के द्वारा ही सूर्य की अर्चना करो ।१४। क्योंकि

पुष्पपत्राम्बुभिर्धूपैर्यथाविभवमात्मनः । पूजितस्तुष्टिमतुलां भक्त्या यात्येकचेतसा ॥१५
यः सदायतने भानोः कुरुते मार्जनक्रियाम् । स यात्युत्तमके स्थाने सर्वपापं व्यपोहति ॥१६
यावत्यः पांसुकणिका मार्ज्यन्ते भास्करालये । दिनानि दिवि तावन्ति तिष्ठत्यर्कसमो नरः ॥१७
अहन्यहनि यत्पापं कुरुते गणनायक । गोचर्मभात्रं सम्मार्ज्य हन्ति तद्भास्करालये ॥१८
यश्चानुलेपनं कुर्याद्भानोरायतने नरः । सोऽपि लोकं समासाद्य हंसेन सह मोदते ॥१९
मृदा धातुविकारैर्वा वर्णकैर्गोमयेन वा । उपलेपनकृद्याति मत्पुरं यानमास्थितः ॥२०
उदकाभ्युक्षणं भानोर्यः करोति सदा गृहे । सोऽपि गच्छति यत्रास्ते भगवान्यादसां पतिः ॥२१
पुष्पप्रकरमत्यर्थं सुगन्धं भास्करालये । अनुलिप्ते नरो दत्त्वा न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥२२
विमानमतिशोभाढ्यं सर्वर्तुसुखभूषितम् । समाप्नोति नरो दत्त्वा दीपकं भास्करालये ॥२३
यस्तु संवत्सरं पूर्णं तिलपात्रप्रदो नरः । ध्वजं च भास्करे दद्यात्सममत्र फलं लभेत् ॥२४
विधूतो हन्ति वातेन दातुरज्ञानतः कृतम् । पापं कर्तुर्गृहे भानोर्दिवा रात्रौ नराधिप ॥२५
गीतवाद्यादिभिर्भानुं य उपास्ते तमोपहम् । गन्धर्वैर्नृत्यगीतैः स विमानस्थो निषेव्यते ॥२६
जातिस्मरत्वं मेधां च तथैवोपरमे स्मृतिम् । प्राप्नोति गणशार्दूल कृत्वा पुस्तकवाचनम् ॥२७

पुष्प, पत्र, जल तथा धूपादिकों द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार जो प्राप्त किये गये हों, भक्तिपूर्वक एकचित्त होकर उनकी पूजा करने पर अतुल संतोष प्राप्त होता है।१५। इसी भाँति जो सूर्य के मन्दिर में सदैव झाड़ू द्वारा मार्जन (शुद्धि करता) रहता है, वह समस्त पापों का नाश कर उत्तम स्थान प्राप्त करता है।१६। और जो सूर्य के मन्दिर में (झाड़ू द्वारा) सफाई करते समय जितने धूल के कणों की सफाई करता है, उसे उतने दिन का भौतिक स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है।१७। हे गणनायक! इस प्रकार प्रतिदिन (मनुष्य) जितने पाप करते हैं, सूर्य के मन्दिर में केवल गो-चमड़े के परित्याग भाग की सफाई करने पर ही वे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।१८। जो सूर्य के मन्दिर में लीपना, आदि (सफाई की क्रिया) करते हैं, वे भी सूर्य के साथ उनके लोक में आमोद-प्रमोद करते हैं।१९। एवं मिट्टी, धातुविकार या गोमय द्वारा जो मन्दिर को सौन्दर्यपूर्ण करता है, वह विमान पर बैठकर मेरे लोक की प्राप्ति करता है।२०। इसी प्रकार जो सूर्य के मन्दिर को जल से साफ-सुथरा बनाता है, वह भी भगवान् वरुण के लोक को प्राप्त करता है।२१। एवं सूर्य के लीपे हुए मन्दिर में जो पुष्पों और सुगन्धित वस्तुएँ प्रदान कर (उसे सुगन्धित) करता है, उस मनुष्य की कभी दुर्गति नहीं होती है।२२। तथा सूर्य के मन्दिर में दीपक प्रदान करने पर मनुष्य को, उस भाँति का विमान प्राप्त होता है जो सौन्दर्यपूर्ण एवं सभी ऋतुओं में सुख प्रदायक वस्तुओं से भूषित रहता है।२३। जो पूर्ण वर्ष तिल समेत पात्र एवं ध्वजा प्रदान करता है, उसे भी समान फल प्राप्त होते हैं।२४। और वायु द्वारा उस ध्वजा के कम्पित होने पर उसके सभी अज्ञात पाप भी नष्ट हो जाते हैं। हे नराधिप! इस भाँति जो दिन-रात गाने-बजाने के द्वारा, अंधेरे को नष्ट करने वाले सूर्य की उपासना करता है, उसे विमान पर बैठाकर गन्धर्व लोग, नाच-गायन द्वारा सदैव उसकी सेवा करते हैं।२५-२६। हे गण शार्दूल! उनके सामने पाठ करने पर पिछले जन्म के जाति का स्मरण, मरने पर भी सभी बातों का स्मरण होता है।२७। इस

एवं खगेश्वरो भक्त्या येन भानुरुपासित: । स प्राप्नोति गतिं श्लाघ्यां यां यामिच्छति चेतसा ।।२८
देवत्वं मनुजै: कैश्चिद् गन्धर्वत्वं तथा परै: । विद्याधरत्वमपरै: संराध्येह दिवाकरम् ।।२९
शक्र:[1] क्रतुशतेनेशमाराध्य ज्योतिषां पतिम् । देवेन्द्रत्वं गतस्तस्मान्नान्य:[2] पूज्यतम: क्वचित् ।।३०
ब्रह्मचारिगृहस्थानां वनस्थानां गणाधिप । नान्य: पूज्यस्तथा स्त्रीणामृते देवं दिवाकरम् ।।३१
मध्ये परिव्राजकानां सहस्रांशुं महात्मनाम् । मोक्षद्वारं विशन्तीह तं रविं विजितात्मनाम् ।।३२
एवं सर्वाश्रमाणां हि सहस्रांशु: परायणम् । सर्वेषां चैव वर्णानां ग्रहेशो वै गति: परा ।।३३
शृणुष्व गदत: काम्यानुपवासांस्तथापरान् । शृणु दिण्डे महापुण्यफलकां सप्तमीं पराम् ।।३४
आदित्याराधनायैनां सर्वपापहरां शिवाम् । यामुपोष्य नरो भक्त्या मुच्यते सर्वपातकै: ।।३५
तथा लोकमवाप्नोति सूर्यस्यामिततेजस: । अथ भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे समागते ।।३६
सोपोष्या प्रथमं तात विधानं शृणु तत्र वै । अयाचितं चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यामेकभोजनम् ।।३७
उपवासपर: षष्ठ्यां जितक्रोधो जितेन्द्रिय: । अर्चयित्वा दिनकरं [3]गन्धधूपनिवेदनै: ।।३८
पुरत: स्थण्डिले रात्रौ स्वप्याद्देवस्य पुत्रक । प्रध्यायन्मनसा देवं सर्वभूतार्तिनाशनम् ।।३९
सर्वदोषप्रशमनं सर्वपातकनाशनम् । विबुद्धस्त्वथ सप्तम्यां कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।।४०
पूजयित्वा दिनकरं पुष्पधूपविलेपनै: । नैवेद्यं तात देवस्य फलानि कथयन्ति[4] हि ।।४१

भाँति जो आकाशचारी सूर्य की उपासना, भक्तिपूर्वक करता है, उसे मनइच्छित उत्तम गति प्राप्त होती है ।२८। मनुष्यों में किसी ने देवत्व, किसी ने गन्धर्व, तथा किसी ने विद्याधरत्व इन्हीं की उपासना द्वारा प्राप्त की है ।२९। इसी भाँति इन्द्र सौ यज्ञ द्वारा इन्हीं ग्रहेश (सूर्य) की उपास्ना करके देवेन्द्र हुए हैं । अत: (इनके समान) कोई अन्य देव कहीं भी अत्यन्त पूजनीय नहीं है ।३०। हे गणाधिप ! इसलिए ब्रह्मचारी, गृहस्थ, संन्यासी, तथा स्त्रियों के पूज्य, सूर्य के अतिरिक्त कोई अन्य देव नहीं है ।३१। संन्यासियों के लिए सहस्रों किरण वाले सूर्य ही मोक्ष के द्वार हैं, क्योंकि जितेन्द्रिय होने पर वे संन्यासी उन्हीं को प्राप्त करते हैं ।३२। इस भाँति समस्त आश्रमों के लिए सूर्य ही प्रधान एवं सभी वर्णों के लिए उत्तम गति रूप है ।३३। हे दिंडे ! अब काम्य और निष्काम कर्म में उपवास समेत महान् पुण्य प्रदान करने वाली उस उत्तम सप्तमी को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ३४। जो लोग सूर्य की आराधना के लिए इस सप्तमी में, जो समस्त पापों का नाशक, तथा प्रणयस्वरूप हैं, भक्तिपूर्वक उपावस करते हैं, उनके सभी पातक नष्ट हो जाते हैं ।३५। और उसे उस अमेय तेज वाले सूर्य के लोक की भी प्राप्ति होती है । हे तात ! भादों मास के शुक्ल सप्तमी में उपवास के विधान को कह रहा हूँ सुनो ! चतुर्थी में, जो याचना द्वारा न प्राप्त हो, ऐसे अन्न का भोजन करके पंचमी में एक बार भोजन एवं षष्ठी में उपवास करते हुए इन्द्रिय संयम समेत क्रोधहीन होकर गंध धूपादि द्वारा सूर्य की अर्चना करे ।३६-३८। रात में सूर्य के सामने उनका मानसिक ध्यान, जो सभी प्राणियों के दु:ख नाशक, समस्त दोषों को शांत करने तथा सम्पूर्ण पापों के नाशक हैं । तन्मयता से करते हुए भूमि पर शयन करे और सप्तमी को प्रात:काल उठकर पुष्प, धूप और चन्दन, नैवेद्य द्वारा सूर्य की पूजा करे ।३९-४१।

---

१. शक्र: क्रतुशतेनेह समाराध्य दिवस्पतिम् । २. यस्मिन् । ३. पुष्पधूपविलेपनै: । ४.कथयाम्यहम् ।

खर्जूरनालिकेराणि तथा चाम्रफलानि तु । मातुलिङ्गफलान्येव कथितानि मनीषिभिः ॥४२
एतैश्च भोजयेद्विप्रानात्मना च प्रभक्षयेत् । तथैषां चाप्यभावेन शृणु चान्यानि सुव्रत ॥४३
शालिगोधूमपिष्टानि कारयेद्गणनायक । गुडगर्भकृतानीह घृतपाकेन पाचयेत् ॥४४
चातुर्यावकमिश्राणि आदित्याय निवेदयेत् । अग्निकार्यमथो कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥४५
इत्थं द्वादश वै मासान्कार्यं व्रतमनुत्तमम् । मासि मासि फलाहारः फलदायी फलार्दनः ॥४६
वर्षान्ते त्वथ कुर्वीत शक्त्या ब्राह्मणभोजनम् । स्नानप्राशनयोश्चापि विधानं शृणु सुव्रत ॥४७
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । तिलसर्षपयोः कल्कं श्वेता मृच्चापि सुव्रत ॥४८
दूर्वाकल्कं घृतं चापि गोशृंगक्षालितं जलम् । जातिगुल्मविनिर्दासः प्रशस्तः स्नानकर्मणि ॥४९
प्राशने चाप्यथैतानि सर्वपापहराणि वै । आदौ कृत्वा भाद्रपदं यथा संख्यं विदुर्बुधाः ॥५०
इत्थं वर्षान्तमासाद्य भोजयित्वा द्विजोत्तमान् । दिव्यान्भोगान्महादेव ततस्तेभ्यो निवेदयेत् ॥५१
फलानि तात[1] हैमानि यथा शक्त्या गणाधिप । सवत्सामथ वा धेनुं भूमिं सस्यान्वितामथ ॥५२
प्रासादमथ वा भौमं सर्वधान्यसमन्वितम् । दद्यात्छुक्लानि[2] वस्त्राणि तामपात्रं [3]सविद्रुमम् ॥५३
शक्तियुक्तस्य चैतानि दरिद्रस्य तु मे शृणु । फलानि पिष्टकान्येषां तिलचूर्णान्वितानि तु ॥५४
भोजयित्वा द्विजान्दद्याद्राजतानि[4] फलानि तु । धातुरक्तं वस्त्रयुगममाचार्याय निवेदयेत् ॥५५

विद्वानों के कथनानुसार खजूर, नारियल, आम, तथा विजौरा नीबू उन्हें समर्पित करने योग्य हैं ।४२। इन्हें ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए स्वयं भी भक्षण करे । हे सुव्रत ! यदि (उस समय) ये अप्राप्य हों तो चावल या गेहूँ के चूर्ण (आटे) में गुड़ डालकर घी द्वारा पकवान बनाकर उसके साथ चार भाँति की लप्सी भी समर्पित करे, और हवन करने के पश्चात् ब्राह्मण भोजन भी कराये ।४३-४५। इसी भाँति बारह मास के व्रत को सुसम्पन्न करना बताया गया है । इस प्रकार मास-मास में फलाहार, फलदान और फलों द्वारा पूजन करते हुए वर्ष की समाप्ति में शक्त्यनुसार ब्राह्मण भोजन, स्नान और प्राशन करने में उसके विधानों को सुनो ।४६-४७। गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशोदक, पिसी हुई सरसों, सफेद मिट्टी, पिसी हुई दूर्वा, घी, गायों के सींगों द्वारा पूत किये हुए जल, एवं चमेली के पुष्प, स्नान के लिए उत्तम बताये गये हैं ।४८-४९। क्योंकि इनके द्वारा समस्त पापों का नाश भी होता है, अतः इन्हीं का प्राशन भी करना चाहिए। इसी विधि द्वारा भादों में पूजन करके अन्य मासों के पूजन में भी यही विधान जानना चाहिए ।५०। हे तात ! इस भाँति वर्ष की समाप्ति में उत्तम भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मण भोजन के लिए अर्पित करके पुनः सुन्दर फल एवं सुवर्ण के बने फल प्रदान करे और उसके उपरान्त बछड़े समेत गाय, फूली-फली भूमि, धनधान्य-पूर्ण महल या गृह, सफेद वस्त्र, तथा विद्रुम (मूंगा) समेत ताँबे के पात्र प्रदान करना चाहिए । इस प्रकार धनवानों के लिए यह विधान बताया गया है । अब निर्धनों के लिए भी (विधान) बता रहा हूँ । सुनो ! फल या तिलचूर्ण पूर्ण (आटा) के बने पदार्थों का ब्राह्मण भोजन कराकर चाँदी तथा फल समेत लाल रंग के दो वस्त्र आचार्य को समर्पित करते हुए पंचरत्नपूर्वक सुवर्ण के साथ वार्षिक पूजा समाप्ति कर पारण

---

१. तानि । २. भक्त्या, रक्तानि । ३. च निर्मलम् । ४. राजा तानि ।

सहिरण्यं महादेव पञ्चरत्नसमन्वितम् । इत्थं समाप्यते तात पारणं वार्षिकान्तिकम् ॥५६
इत्येषा वै पुण्यतमा सप्तमी दुरितापहा । यामुपोष्य नराः सर्वे यान्ति सूर्यसलोकताम् ॥५७
[1]पूज्यमानः सदा देवैर्गन्धर्वाप्सरसां गणैः । अनया मानवो नित्यं पूजयेद्भास्करं सदा ॥५८
दारिद्र्यदुःखदुरितैर्मुक्तो याति दिवाकरम् । ब्राह्मणो मोक्षमायाति क्षत्रियश्चेन्द्रतां व्रजेत् ॥५९
वैश्यो धनदसालोक्यं शूद्रो विप्रत्वमाप्नुयात् । अपुत्रो लभते पुत्रं दुर्भगा सुभगा भवेत् ॥६०
यामुपोष्य च नारीमां सप्तमीं लोकपूजिताम् । विधवा वा सती भक्त्या अनया पूजयेद्रविम् ॥६१
नान्यजन्मनि वैधव्यं नारी प्राप्नोति मानद । चिन्तामणिसमा ह्येषा विज्ञेया फलसप्तमी ॥६२
पठतां शृण्वतां दिण्डे सर्वकामप्रदा स्मृता ॥६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि ब्रह्मादिण्डिसंवादे सप्तमीकल्पे फलसप्तमीवर्णनं नामचतुःषष्टितमोऽध्याय ।६४।

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रहस्यां नाम सप्तमीम् । सप्तमी कृतमात्रेयं नरांस्तारयते भवात् ॥१

करना चाहिए।५१-५६। क्योंकि इसी प्रकार इस पुण्य स्वरूप एवं पाप नाशिनी सप्तमी का उपवास करके मनुष्य सूर्य लोक प्राप्त करते हैं ।५७। अतः इस विधि द्वारा भास्कर की पूजा करने पर वह प्राणी दारिद्र्य-दुःख से मुक्त होकर सूर्य लोक में पहुँचता है और वहाँ देव, गन्धर्व और अप्सराओं से सदैव पूजित होता है। इस प्रकार ब्राह्मणों को मोक्ष, क्षत्रियों को इन्द्रलोक एवं वैश्यों को कुबेर के लोक और शूद्र को ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है। तथा अपुत्री को पुत्र एवं हतभागिनी को सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।५८-६०। और इस लोक-पूज्य सप्तमी व्रत के प्रभाववश, सती विधवा जन्मान्तर में वैधव्य दुःख से मुक्त हो जाती है। हे दिंडे, हे मानद ! इस प्रकार चिंतामणि की भाँति यह सप्तमी फल-प्रदान करने वाली बतायी गयी है। इसलिए (इसके) पढ़ने-सुनने से भी सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं।६१-६३

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में ब्रह्मादिंडिसंवाद के सप्तमीकल्प में फलसप्तमी वर्णन नामक चौसठवाँ अध्याय समाप्त ।६४।

अध्याय ६५

आदित्य माहात्म्य व्रत वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके पश्चात् मैं रहस्या नाम की सप्तमी बता रहा हूँ जिसमें (व्रतादि) करने से

---

१. पूज्यो मान्यः सदा देवैर्गन्धर्वोरगराक्षसैः ।

सप्तापरान्सप्त पूर्वान्पितॄंश्चापि न संशयः । रोगांश्छिनत्ति दुश्छेद्यान्दुर्जयाञ्जयते ह्यरीन् ॥२
अर्थान्प्राप्नोति दुष्प्रापान्यः कुर्यान्नाम सप्तमीम् । कन्यार्थी लभते कन्यां धनार्थी लभते धनम् ॥३
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् । समयान्पालयन्सर्वान्कुर्याच्चेमां विचक्षणः ॥४
समयाञ्छृणु भूतेश श्रेयसे गदतो मम । आदित्यभक्तः पुरुषः सप्तम्यां गणनायक ॥५
मैत्रीं सर्वत्र वै कुर्याद्भास्करं वापि चिंतयेत् । सप्तम्यां न स्पृशेत्तैलं नीलं वस्त्रं न धारयेत् ॥
न चाप्यामलकैः स्नानं न कुर्यात्कलहं क्वचित् ॥६

दिण्डिरुवाच

किमर्थं न स्पशेत्तैलं सप्तम्यां पद्मसंभव ॥७
कश्च दोषो भवेद्देव नीलवस्त्रस्य धारणात् ।

ब्रह्मोवाच

शृणु दिण्डे महाबाहो नीलवस्त्रस्य धारणे ॥८
दूषणं गणशार्दूल गदतो मम कृत्स्नशः । पालनं विक्रयश्चैव सद्वृत्तिरुपजीवनम् ॥९
पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्धयति । नीलीरक्तेन वस्त्रेण यत्कर्म कुरुते द्विजः ॥१०
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । वृथा तस्य महायज्ञा नीलसूत्रस्य धारणात् ॥११
नीलीरक्तं यदा वस्त्रं विप्रस्त्वंङ्गेषु धारयेत् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥१२

मनुष्य स्वयं तथा उसके सात पूर्व और सात पर पीढ़ी संसार सागर को पार कर लेते हैं ।१। जिस प्रकार इस सप्तमी के व्रत को सुसम्पन्न करने वाले को उसको रोगों का नाश, महान् शत्रुओं पर विजय एवं दुष्प्राप्य (वस्तुएँ) प्राप्त होती हैं, उसी भाँति कन्या के इच्छुक को कन्या, धनार्थी को धन, पुत्रार्थी को पुत्र, तथा धार्मिक भावना वाले को धर्म की प्राप्ति होती है । इसीलिए इसमें सभी बताये गये विधानों का पालन बुद्धिमान् पुरुषों को अवश्य करना चाहिए ।२-४। हे भूतेश ! तुम्हारे कल्याणार्थ मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो । हे गणनायक ! सूर्य-भक्त पुरुष को सर्वत्र मैत्री भाव एवं (सूर्य की भावना) एवं सूर्य की उपासना करना चाहिए और उसे सप्तमी में तेल का स्पर्श, नील वस्त्र का धारण आँवले का स्नान एवं कहीं भी कलह न करना चाहिए ।५-६

दिंडि ने कहा—हे पद्मसंभव ! सप्तमी में तेल का स्पर्श क्यों नहीं करना चाहिए तथा नील वस्त्र के धारण करने से कौन दोष होता है ? ७½

ब्रह्मा बोले—हे महाबाहो ! दिंडे ! नीलवस्त्र के धारण करने पर जितने दोष उत्पन्न होते हैं, मैं उन सभी दोषों को बता रहा हूँ । सुनो ! जिस प्रकार पालन, विक्रय (बेंचना) असद्व्यवहार (अत्याचार) और उपजीवन (किसी भाँति किसी के आश्रित रहने) कर्मों के करने से ब्राह्मण पतित हो जाता है और उसे तीन बार कृच्छ्र नामक व्रत करने पर ही शुद्धि प्राप्त होती है । उसी भाँति नील वस्त्र धारण करके द्विज स्नान, दान, जप, हवन, अध्ययन एवं पितृ-तर्पण आदि जो कुछ करता है वे सभी निष्फल हो जाते हैं । अपने अंगों में नील रंग वाले वस्त्रों को धारण करने पर ब्राह्मण, दिन-रात

रोमकूपे यदा गच्छेद्रक्तं नीलस्य[1] कस्यचित् । पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्धयति ।।१३
नीलीमध्यं यदा गच्छेत्प्रमादाद्ब्राह्मणः क्वचित् । अहोरात्रोषितो[2] भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ।।१४
नीलीदारु यदा भिंद्याद्ब्राह्मणानां शरीरके । शोणितं दृश्यते यत्र द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ।।१५
कुर्यादज्ञानतो यस्तु नीलेर्वा दन्तधावनम् । कृत्वा कृच्छ्रद्वयं दिण्डे विशुद्धः स्यान्न संशयः ।।१६
वापयेद्यत्र नीलीं तु भवेत्तत्राशुचिर्मही । प्रमाणद्वादशाब्दानि तत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत्[3] ।।१७
सप्तम्यां स्पृशतस्तैलमिष्टा भार्या विनश्यति । इत्येष नीलीतैलस्य दोषस्ते कथितो मया ।।१८
न चैव खादेन्मांसानि मद्यानि न पिबेद्बुधः । न द्रोहं कस्यचित्कुर्यान्न पारुष्यं समाचरेत् ।।१९
नावभाषेत चाण्डालं स्त्रियं नैव रजस्वलाम् । न वापि संस्पृशेद्धीनं मृतकं नावलोकयेत् ।।२०
नास्फोटयेन्नातिहसेद्गायेच्चापि न गीतकम् । न नृत्येदतिरागेण न च वाद्यानि वादयेत् ।।२१
न शयीत स्त्रिया सार्धं न सेवेत दुरोदरम् । न रुद्यादश्रुपातेन न च वाच्यं च शौकिकम् ।।२२
आकृषेन्न शिरोयूकाः न वृथावादमाचरेत् । परस्यानिष्टकथनमतिशोकं च वर्जयेत् ।।२३
न कञ्चित्ताडयेज्जन्तु न कुर्यादतिभोजनम् । न[4] चैव हि दिवा स्वप्नं दम्भं शाठ्यं च वर्जयेत् ।।२४
रथ्यायामटनं वापि यत्नतः परिवर्जयेत् । अथापरो विधिश्चात्र श्रूयतां त्रिपुरान्तक ।।२५
चैत्रात्प्रभृति कर्तव्या सर्वदा नाम सप्तमी । धातेति चैत्रमासे तु पूजनीयो दिवाकरः ।।२६

का उपवास करके पंचगव्य का पान करने पर ही शुद्ध होता है ।८-१२। शरीर में रोम के छिद्रों में नील रंग किसी भाँति लग जाये तो ब्राह्मण पतित हो जाता है । और उसकी तीन बार कृच्छ्र करने पर ही उसकी शुद्धि होगी इसी प्रकार कभी प्रभाव वश ब्राह्मण यदि नील के (खेत आदि के) मध्य में पहुँच जाये तो वह दिन रात के उपवास पूर्वक पंचगव्य के पान करने पर शुद्ध होता है ।१३-१४। एवं नील की लकड़ी द्वारा शरीर में चोट लगने पर कदाचित् रक्त दिखाई दे तो उस ब्राह्मण को चान्द्रायण (व्रत) का विधान करना चाहिए ।१५। हे दिंडे ! अज्ञान वश जिसने नील द्वारा दाँत-शुद्धि (दातून) कर लिया तो वह दो बार कृच्छ्र करने पर निःसन्देह शुद्ध होगा ।१६। तथा जिस खेत में नील बोया गया हो वह भूमि बारह वर्ष तक अशुद्ध रहेगी और उसके अनन्तर शुद्ध रहेगी ।१७। उसी भाँति सप्तमी में नील के तेल का स्पर्श करने पर उसकी प्रिय स्त्री का नाश हो जाता है । इस प्रकार नील के तेल का दोष मैंने तुम्हें बता दिया ।१८। इसी भाँति मांस भक्षण, मद्य का पान, किसी से द्रोह एवं किसी प्रकार की कठोरता न करनी चाहिए ।१९। एवं चाण्डाल और रजस्वला स्त्री से किसी भाँति का भाषण, नीच का स्पर्श तथा मृतक (शव) का निरीक्षण न करना चाहिए ।२०। तथा निरर्थक शब्द, अत्यन्त हँसना, गीत का गाना, अति अनुरागपूर्ण नाच पर बाजाओं का बजाना, स्त्री के साथ शयन, जूए का खेलना, अश्रुपात पूर्वक रुदन, तोते की बोली, शिर के वालों में से जूँए का निकालना व्यर्थ दूसरे का अनिष्ट, अत्यन्त शोक, किसी जीव की ताड़ना, अत्यन्त भोजन, दिन में शयन, दम्भ, शठता एवं गलियों में घूमने आदि दोषों को भी त्यागना चाहिए । हे त्रिपुरांतक ! अब दूसरी विधि भी कहा रहा हूँ । सुनो ! ।२१-२५

इस सप्तमी का आरम्भ चैत्र मास में करना चाहिए तथा चैत्र मास के धाता नामक सूर्य, वैशाख के

---

१. वस्त्रस्य । २. त्रिरात्रोपोषितः । ३. विशुध्यति । ४. प्रयतश्च ।

अर्यमेति च वैशाखे ज्येष्ठे मित्रः प्रकीर्तितः । आषाढे वरुणो ज्ञेय इन्द्रो नभसि कथ्यते ।।२७
विवस्वांश्च नभस्येऽथ पर्जन्योऽश्वयुजि स्मृतः । पूषा कार्तिकमासे तु मार्गशीर्षेषुकथ्यते ।।२८
भगः पौषे भवेत्पूज्यस्त्वष्टा माघे तु शस्यते ! विष्णुश्च फाल्गुने मासि पूज्यो वन्द्यश्च भास्करः ।।२९
सप्तम्यां चैव सप्तम्यां भोजयद्भोजकान्बुधः[1] । सघृतं भोजनं देयं भोजयित्वा विधानतः ।।३०
भोजकायैव विप्राय दक्षिणां स्वर्णमाषकम् । सघृतं भोजनं देयं रक्तवस्त्राणि चैव हि ।।३१
[2]अभावे भोजकानां तु दक्षिणीया द्विजोत्तमाः । तथैव भोजनीयाश्च श्रद्धया परया विभो ।।३२
विशेषतो वाचकश्च ब्राह्मणः कल्पवित्सदा । इत्येषा कथिता तुभ्यं सप्तमी गणनायक ।।३३
श्रुता सती पापहरा सूर्यलोकप्रदायिनी ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि ब्रह्मदिण्डिसंवादे सप्तमीकल्पे आदित्यमहात्म्यवर्णने सप्तमीवर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।६५।

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्यवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा जगामादर्शनं विभोः[3] । सूर्यमाराधयद्दिण्डी[4] सूर्यस्यानुचरोऽभवत् ।।१

अर्यमा, ज्येष्ठ के मित्र, आषाढ के वरुण, सावन के इन्द्र, भादों के विवस्वान्, आश्विन के पर्जन्य, कार्तिक तथा अगहन के पूषा, पौस के भग, माघ के त्वष्टा एवं फाल्गुन के विष्णु नामक सूर्य की पूजा तथा वन्दना करनी चाहिए ।२६-२९। इस प्रकार प्रत्येक सप्तमी में भोजन करने वाले ब्राह्मणों को घृत समेत एवं विधान पूर्वक भोजन कराना चाहिए ।३०। तथा उन्हें एक माशे सुवर्ण की दक्षिणा एवं सघृत भोजन तथा रक्त वस्त्र प्रदान करना भी बतलाया गया है ।३१। यदि भोजन करने वाले ब्राह्मण न मिल सकें तो दक्षिण देश के (दक्षिणवेत्ता) ब्राह्मणों को उसी भाँति श्रद्धापूर्वक भोजन करायें।३२। विशेषकर उन्हें कथावाचक एवं कल्पवेत्ता ब्राह्मण होना चाहिए । हे गणनायक ! इस प्रकार तुम्हें यह सप्तमी बता दी गई जिसके सुनने से समस्त पापों के नाश पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।३३-३४।

श्रीभविष्वष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के ब्रह्मदिंडिसंवाद वाले सप्तमी कल्प के आदित्य माहात्म्य वर्णन में सप्तमी वर्णन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।६५।

अध्याय ६६

याज्ञवल्क्य वर्णन

सुमन्तु बोले—हे विभो ! इस भाँति भगवान् ब्रह्मा उनसे कहकर अन्तर्धान हो गये और दिंडी भी सूर्य की आराधना करके उनके अनुचर हुए ।१

---

१. ततः । २. अलाभे । ३. विभो । ४. सूर्यमाहात्म्यतो दिण्डिः ।

शतानीक उवाच

भूयः कथय विप्रेन्द्र माहात्म्यं भास्करस्य मे । शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिरमृतस्येव सुव्रत ।।२

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वावहितो राजन्सम्वादं द्विजशङ्खयोः । यं श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो[1] नृप ।।३
आसीनमाश्रमे शंखं द्विजो द्रष्टुं जगाम ह । फलभारानतच्छाये वृक्षवृन्दसमाकुले ।।४
परस्परमृगशृङ्गकण्डूयितमृगावृते । बर्हिर्वनाम्बरानीततीर्थकन्दोपभोगिनि ।।५
प्रभूतकुसुमानोदषट्पदोद्गीतशालिनी । सिद्धदेवर्षिगन्धर्वतीर्थसेवितवारिणि ।।६
मुण्डैश्च जटिलैश्चैव तापसैरुपशोभिते । आश्रमे तं मुनिश्रेष्ठं शंखाह्वं सुखमास्थितम् ।।७
स्तोत्रैः स्तोतुं सहस्रांशुं तद्भक्तं तत्परायणम् । ततः संहत्य सहसा तं भोजककुमारकाः ।।८
विनीता उपसंगम्य यथावदभिवाद्य च । आसनेषूपविष्टास्त उपविष्टमथाब्रुवन् ।।९
भगवन्सर्ववेदेषु[2] च्छिन्धि नः संशयो महान् । विनयेनोपपन्नानां कुमाराणां ततो मुनिः ।।१०
अनादींश्चतुरो वेदानुवाच प्रीतमानसः । तेषां तु पठतामेव आश्रमं तु यदृच्छया ।।११
मुनिश्रेष्ठोऽथ तं देशमाजगाम द्विजो नृप । यथावदर्चितस्तेन शङ्खेनामिततेजसा ।।१२
वन्दितश्च कुमारैस्तैरभवत्प्रीतमानसः । अथैतान्ब्रवीच्छंखस्तान्भोजककुमारकान् ।।१३

शतानीक ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! अमृत की भाँति सूर्य के इस माहात्म्य को सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, अतः फिर उसे कहने की कृपा करें ।२

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! (इसी विषय के) द्विज एवं शंख ऋषि के संवाद को मैं बता रहा हूँ जिसे सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त होते हैं, सावधान होकर सुनो ! ।३। एक बार शंख ऋषि दर्शन के लिए द्विज के उस आश्रम में गये जहां वे सुखासीन थे और जो फलों के मार से झुकी हुई छाया वाले वृक्षों के समुदायों एवं आपस में एक दूसरे को सीगों द्वारा खुजलाने वाले मृगों से चारों ओर घिरा था और कुशा वन के सुगंधित तीर्थोदक एवं कन्द से परिपूर्ण फूलों पर बैठकर उसके गंध का स्वाद लेते हुए भौरों से गुंजित, सिद्ध, देव, ऋषि तथा गन्धर्व द्वारा सुसेवित जल से परिपूर्ण हो रहा था । जटाधारी तपस्वियों से सुशोभित वहाँ सुख पूर्वक बैठे हुए मुनि श्रेष्ठ शंख को उन्होंने देखा ।४-७। जिस समय स्तोत्र द्वारा सूर्य की स्तुति करने के लिए आसन पर बैठे हुए मुनि के समीप जो सूर्य के भक्त एवं उनके लक्ष्य थे भोजक के कुमारों ने सहसा एकत्रित तथा विनीत होकर पुनः शंख मुनि से अभिवादन पूर्वक आसन पर बैठ कर कहा ।८-९। हे भगवन् ! सभी वेदों में हमें महान् संदेह उत्पन्न हुआ है । अतः आप उस संदेह को नष्ट करने की कृपा करें ।१०। अनन्तर मुनि ने सप्रेम उन अनादि चारों वेदों को भली भाँति विनीत उन कुमारों को बताया और उन लोगों ने भी (सन्देह नष्ट न होने पर) उसका अध्ययन करना प्रारम्भ किया था उसी समय मुनिश्रेष्ठ द्विज का आकस्मिक उस आश्रम में आगमन हुआ । अतुल तेजस्वी शंख एवं उन कुमारों ने उनका आतिथ्य सत्कार सुसम्पन्न किया । कुमारों को देखकर द्विजमुनि भी अत्यन्त प्रसन्न

---

१. नात्र संशय । २. तंत्रेषु ।

शिष्टागमादनध्यायः स च जातो विरम्यताम् । यथाज्ञापयसीत्याहुः कुमारास्ते ऋषिं ततः ॥१४
प्रपच्छ सिद्धिदश्चैतान्के ह्येते किं पठन्ति च । शङ्खोवाच महाराज कुमारा भोजकात्मजाः ॥१५
ससूत्रकल्पांश्चतुरो विप्र वेदानधीयते । तथैव सप्तमीकल्पे परिचर्यां च भास्वतः ॥१६
अग्निकार्यविधानं च प्रतिष्ठाकल्पमादितः । अभ्यङ्गलक्षणं[1] ब्रह्मन् रथयात्राविधिं तथा ॥१७

द्विज उवाच

कथं क्रियेत सप्तम्यां कश्चार्चनविधिक्रमः । गन्धपुष्पप्रदीपानां किं फलं रविमन्दिरे ॥१८
केन तुष्यति दानेन व्रतेन नियमेन च । धूपपुष्पोपहारादि किं च देयं विवस्वते ॥१९
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तन्मे ब्रूहि तपोधन ! विशेषतस्तु माहात्म्यं ब्रूहि मां भास्करस्य हि ॥२०

शङ्ख उवाच

इममर्थं वशिष्ठेन पृष्टः साम्बो यथा पुरा । स[2] चोवाच वशिष्ठाय तदहं कथयामि ते ॥२१
अत्राश्रमे पुण्यतमे तीर्थानामुत्तमे प्रभुः । ववन्दे नियतात्मानं वशिष्ठं मुनिसत्तमम् ॥२२
विनयेनोपसंगम्य ववन्दे चरणौ मुनेः । कृतप्रणामं साम्बं तु भक्तिप्रह्वीकृताननम् ॥२३
विलोक्य[3] परमप्रीतो मुनिः पप्रच्छ तं तदा । सर्वतः स्फुटितं गात्रं कुष्ठेन महता तव ॥२४

हुए । पश्चात् शंख ने उन कुमारों से कहा ।११-१३। किसी शिष्ट (सभ्य) व्यक्ति के आने पर (उसके आतिथ्य सत्कार के निमित्त) कुछ समय अनध्याय हो जाता है, अतः अध्ययन करना बन्द कर दो । कुमारों ने भी 'जैसी आज्ञा' कह कर अपना अध्ययन रोक दिया । तदनन्तर द्विज ने शंख मुनि से पूछा— ये कौन हैं और क्या पढ़ रहे हैं ।

शंख ने कहा—हे महाराज ! ये भोजक के कुमार हैं ।१४-१५। सूत्र एवं कल्प के समेत चारों वेदों के अध्ययन कर रहे हैं और सप्तमी कल्प में सूर्य की पूजा भी ।१६। एवं उसी भाँति हवन, प्रतिष्ठा, सूर्य के अंगों का कल्पनापूर्वक पूजन और रथ यात्रा की विधि का भी ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं ।१७

द्विज बोले—सप्तमी में किस सामग्री और किस विधान द्वारा उनकी अर्चना की जाती है तथा गंध एवं पुष्प प्रदीप उन्हें मन्दिर में प्रदान करने से किस फल की प्राप्ति होती है ।१८। वे किस प्रकार के दान, व्रत एवं नियम से प्रसन्न होते हैं, और सूर्य को धूप, पुष्प एवं उपहारादि किस भाँति प्रदान किये जाते हैं ? हे तपोधन ! इसे सविस्तार कहते हुए आप भास्कर के माहात्म्य को बतायें क्योंकि मुझे उसके जानने की विशेष इच्छा है ।१९-२०

शंख ने कहा—पहले इसी विषय को साम्ब से वशिष्ठ जी ने पहले पूछा था । उन्होंने वशिष्ठ को जो उत्तर दिया है मैं उसी को तुम्हें सुना रहा हूँ ।२१। तीर्थ श्रेष्ठ इसी पुण्य आश्रम में वशिष्ठ जी रहते थे जो जितेन्द्रिय एवं मुनिश्रेष्ठ हैं। सादर नम्रता पूर्वक साम्ब वहाँ पहुँचकर मुनि के चरणों में प्रणाम किया। वशिष्ठ जी ने साम्ब को जो प्रणाम करके अपनी मुख चेष्टाओं द्वारा अत्यन्त भक्ति प्रदर्शित कर रहा था,

---

१. अभ्यंगलक्षणम् । २. अथाचष्टे । ३. वाक्यं च ।

घोररूपेण तीव्रेण कथं तद्विगतं तव[1] । कथं च लक्ष्मीरधिका रूपं चातिमनोहरम् ।।२५
तेजस्वितातिमहती तथैव[2] सुकुमारता ।।२६

साम्ब उवाच

स्तुतो नामसहस्रेण लोकनाथो दिवाकरः । दर्शनं च गतः साक्षाद्दत्तवांश्च वरान्मम ।।२७

वशिष्ठ उवाच

कथमाराधितः सूर्यस्त्वया यादवनंदन । कैश्च व्रततपोदानैर्दर्शनं भगवान्गतः ।।२८

साम्ब उवाच

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन्सर्वमेव मया यथा । तोषितो भगवान्सूर्यो विधिना येन सुव्रत ।।२९
मोहान्मयोपहसितो[3] दुर्वासाः कोपनो मुनिः । ततोऽहं तस्य शापेन महाकुष्ठमवाप्तवान् ।।३०
ततोऽहं पितरं गत्वा कुष्ठयोगाभिपीडितः । लज्जमानोऽतिगर्वेण इदं वाक्यमथाब्रवम् ।।३१
तात सीदति मे गात्रं स्वरश्च परिहीयते । घोररूपो महाव्याधिर्वपुरेष जिघांसति ।।३२
अशेषव्याधिराज्ञाहं पीडितः क्रूरकर्मणा । वैद्यैरोषधिभिश्चैव न शान्तिर्मम विद्यते ।।३३
सोऽहं त्वया ह्यनुज्ञातस्त्यक्तुमिच्छामि जीवितम् । यदि वाहमनुग्राह्यस्ततोऽनुज्ञातुमर्हसि ।।३४

देखकर प्रेमपूर्वक उससे कहा—तुम्हारी शरीर के सभी अंग इस महान् कुष्ठ रोग द्वारा विदीर्ण हो गये हैं। तो इस भयानक रोग से शान्ति पूर्वक तुम्हें भी रूप सौन्दर्य, अतुलतेज और यह कोमलता कहाँ से पुनः प्राप्त हुई है ।२२-२६

साम्ब ने कहा—लोकनाथ भगवान् सूर्य की आराधना मैंने उनकी सहस्रनामावली द्वारा किया था, उससे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे दर्शन दिया एवं यही वर प्रदान किया था ।२७

वशिष्ठ बोले— हे यादव नन्दन ! तुमने सूर्य की आराधना किस भाँति की थी और किस व्रत, तप एवं दान द्वारा तुम्हें भगवान् सूर्य के दर्शन हुए थे ।२८

साम्ब ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जिस विधान द्वारा मैंने सूर्य की आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया था, वह सभी आप से कह रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! ।२९। एक बार मोहान्ध होकर मैंने अत्यन्त क्रोधी दुर्वासा मुनि की हँसी की थी उन्हीं के शाप वश यह कुष्ठ (कोढ़ी) का रोग मुझे हो गया था ।३०। इस कुष्ठ रोग से अत्यन्त पीड़ित होने पर अपने पिता के समीप जाकर इस भाँति लज्जित होते हुए मैंने उनसे बड़े गर्व से कहा ।३१। हे तात ! मेरे शरीर में इतनी पीड़ा हो रही है कि मुझसे बोला नहीं जा रहा है, इस प्रकार यह भयानक महारोग मेरे शरीर को खा रहा है ।३२। मैं क्रूरकर्मा एवं समस्त व्याधियों के राजा इस राज रोग से अत्यन्त दुःखी हो रहा हूँ । वैद्यों के उपचारों एवं औषधि द्वारा मुझे कुछ भी शांति प्राप्ति नहीं हो रही है ।३३। अतः आप आज्ञा प्रदान करें मैं अपना जीवन अब समाप्त करना चाहता हूँ । यदि मेरे ऊपर आप (कुछ) अनुग्रह करते हैं, तो इसके लिए शीघ्र आज्ञा प्रदान करें ।३४। इस प्रकार कहने

---

१. वद । २. तव साम्ब समागमत् । ३. महानुभावो हि हरेर्दुर्वासाः कोपितो मुनिः ।

इत्युक्तवाक्यः स पिता पुत्रशोकाभिपीडितः । पिता क्षणं ततो ध्यात्वा मामेवं वाक्यमुक्तवान् ॥३५
धैर्यमाश्रयतां[1] पुत्र मा शोके च मनः कृथाः । हन्ति शोकार्दितं व्याधिः शुष्कं तृणमिवानलः ॥३६
देवताराधनपरो भव पुत्रक मा शुचः । इत्युक्ते च मया प्रोक्तो देवमाराधयामि कम् ॥३७
कमाराध्य विमुच्येऽहं तात रोगैः समन्ततः । इत्येवमुक्तो भगवान्मामुवाच पिता मम ॥३८
इममर्थं पुरा पृष्टः पद्मयोनिः सनातनः । याज्ञवल्क्येन ऋषिणा योगीशेन महात्मना[2] ॥३९
यदुवाच महातेजास्तस्मै स यदुनन्दन । तच्छृणुष्व शुचिर्भूत्वा आत्मनः श्रेयसे सुत ॥४०
सुरज्येष्ठं सुखासीनं पद्मयोनिं प्रजापतिम् । याज्ञवल्क्यो महातेजाः पर्यपृच्छत्पितामहम् ॥४१
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि किंचिदात्ममनोगतम् । समाराध्य विभो देवं नरो मुच्येत वै भवात् ॥४२
गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । य इच्छेन्मोक्षमास्थातुं देवतां कां यजेत सः ॥४३
कुतो ह्यस्य ध्रुवः स्वर्गः कुतो नैः श्रेयसं सुखम् । स्वर्गतश्चैव किं कुर्याद्येन न च्यवते पुनः ॥४४
देवातानां तु को देवः पितृणां चैव कः पिता । तस्मात्परतरं यच्च तन्मे ब्रूहि पितामह ॥४५
केन सृष्टमिदं विश्वं ब्रह्मन्स्थावरजङ्गमम् । प्रलयो च कमभ्येति तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥४६

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भवता तुष्टश्चास्मि महामते । प्रणम्य शिरसा देवं पुण्योत्तरमनुत्तमम् ॥४७

पर मेरे पिता पुत्र-शोक से अत्यन्त पीड़ित हुए । पश्चात् कुछ देर सोच कर उन्होंने कहा ।३५। हे पुत्र ! धैर्य का आलम्बन करो और मन में किसी प्रकार का शोक न करो । क्योंकि रोग शोक करने वाले प्राणी को सूखे तृण की अग्नि की भाँति नष्ट कर देता है ।३६। अतः पुत्र ! चिंता न कर देवाराधन करो । उनके इस प्रकार कहने पर मैंने कहा—किस देव की आराधना करूँ ।३७। हे तात ! किसी देव की आराधना द्वारा इस महान रोग से मुझे सर्वथा मुक्ति प्राप्त होगी । इसे सुनकर पिता ने कहा ।३८। इसी विषय को, महात्मा एवं योगीश याज्ञवल्क्य ऋषि ने सनातन ब्रह्मा से पूछा था ।३९। हे यदुनंदन ! उन महातेजस्वी ने जो कुछ कहा था उसे मैं कह रहा हूँ तुम अपने कल्याण के लिए पवित्र भावना करके सुनो ।४०। याज्ञवल्क्य ने उन पितामह से जो देवों में बड़े, पद्म से उत्पन्न एवं प्रजाओं के पति हैं, कहा—हे भगवन् ! कुछ मेरे मन में शंकायें उठ रही है, उसे मैं भली भाँति जानना चाहता हूँ । हे विभो ! जब मनुष्य देवता की आराधना करके संसार से मुक्त हो जाता है तो गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं सन्यासी आदि जो कोई मोक्ष चाहें तो किस देव की आराधना करे ।४१-४३। क्योंकि उसे निश्चित रूप से स्वर्ग की प्राप्ति एवं निःश्रेयस् सुख की प्राप्ति इस भाँति होनी चाहिए, जिससे फिर कभी स्वर्ग से वह नीचे न गिरे ।४४। हे पितामह ! इसलिए देवाधिदेव, पितरों के पिता तथा उससे भी श्रेष्ठ कौन देवता हैं उसे मुझे भली भाँति बताने की कृपा करें ।४५। हे ब्रह्मन् ! तथा इस विश्व की जिसमें चर-अचर सभी हैं, किसने रचना की है और इस विश्व का किसमें प्रलय होता है, यह भी बताने की कृपा करें ।४६

ब्रह्मा बोले—हे महामते ! हे द्विजश्रेष्ठ ! आप का प्रश्न बहुत उत्तम है इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।

---

१. स्थैर्यमालंव्यताम् । २. ततः व्याप्त—इत्यर्थः ।

कथयिष्ये द्विजश्रेष्ठ शृणुष्वैकमनाधुना । आत्मनः श्रेयसे विप्र शुचिर्भूत्वा समाहितः ।।४८
उद्यन्य एष कुरुते जगद्वितिमिरं करैः । नातः परतरो देवः किमन्यत्कथयामि ते ।।४९
अनादि निधनो ह्येषः पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः । दीपयत्येव लोकांस्त्रीन्रवी रश्मिभिरुल्बणैः ।।५०
सर्वदेवात्मको ह्येष तपसा चांशुतापनः । सर्वस्य जगतो नाथः कर्मसाक्षी शुभाशुभे ।।५१
क्षपयत्येष भूतानि तथा विसृजते पुनः । एष भाति तपत्येष वर्धते च गभस्तिभिः ।।५२
एष धाता विधाता च पूषा[1] प्रकृतिभावन । न ह्येष क्षयमायति नित्यमक्षयमण्डलः ।।५३
पितृणां हि पिता देवतानां च देवता । ध्रुवं[2] स्थानं स्मृतं ह्येष आधारो जगतस्तथा ।।५४
सर्वकाले जगत्कृत्स्नमादित्यात्संप्रसूयते । प्रलये च तमभ्येति आदित्यं दीप्ततेजसम् ।।५५
योगिनश्चात्र संलीनास्त्यक्त्वा गृहकलेवरम् । वायुभूता विशन्त्यस्मिंस्तेजोराशौ दिवाकरे ।।५६
तस्य रश्मिसहस्राणि शाखा इव विहंगमाः । वसन्त्याश्रित्य मुनयः संसिद्धा दैवतैः सह ।।५७
जनकादयो गृहस्थास्तु राजानो योगधर्मिणः । वालखिल्यादयश्चैव मुनयो ब्रह्मचारिणः ।।५८
व्यासादयो वनस्थाश्च भिक्षुः पञ्चशिखस्तथा । सर्वे[3] ते योगमास्थाय प्रविष्टाः सूर्यमण्डलम् ।।५९
शुको व्यासात्मजः श्रीमान्योगधर्ममवाप्य तु । आदित्यकिरणान्पीत्वा न पुनर्भवमाप्तवान् ।।६०

अतः पुण्य स्वरूप उस देव को प्रणाम कर मैं उसे कह रहा हूँ । सावधान होकर सुनो ! उसमें तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा । इस समय पवित्रतापूर्वक ध्यान लगाओ ।४७-४८। ये (सूर्य) उदय होते ही अपनी किरणों द्वारा समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं, अतः इनसे श्रेष्ठ देव और कौन हो सकता है जिसे मैं कहूँ ।४९। यही सूर्य देव नित्य प्रत्यय (अनश्वर) एवं जन्म मरण से रहित हैं और अपनी प्रखर किरणों द्वारा तीनों लोकों को सदैव प्रकाशित करते हैं ।५०। यह सर्वदेवमय हैं जिसने अपने तप द्वारा इतनी उत्पन्न किरणें प्राप्त की हैं, यही समस्त संसार के स्वामी और शुभाशुभ कर्मों के साक्षी हैं एवं यही प्राणियों का सर्जन विसर्जन भी करते है तथा अपनी किरणों द्वारा सदैव प्रदीप्त रहकर तपते और बढ़ते रहते हैं ।५१-५२। यही (जगत् का) धाता, विधाता तथा पूषा हैं एवं इनका क्षय कभी नहीं होता है क्योंकि ये अक्षय मंडल वाले हैं ।५३। यही पितरों के पिता, देवाधिदेव, ध्रुव स्थान एवं जगत् के आधार हैं । सभी काल में समस्त जगत् इन्ही दीप्त तेजवाले आदित्य से उत्पन्न तथा इन्हीं में लय को प्राप्त होता है ।५४-५५। योगीगण इन्हीं में सतत लीन रहकर अंत में अपने घर एवं शरीर का त्याग करके वायुरूप से इन्हीं तेजोराशि दिवाकर में प्रविष्ट होते हैं ।५६। उन्हीं की किरणों की सहस्रों किरणों के आश्रित होकर शाखा में पक्षी की भाँति देवताओं के समेत मुनिगण सदैव विचरते रहते हैं ।५७। गृहस्थों में योगिराज राजा जनक, बालखिल्यादिक ब्रह्मचारी, वन में रहने वाले व्यासादिक और भिक्षुपञ्चशिख आदि ये सभी योग द्वारा सूर्य के मंडल में प्रविष्ट हुए हैं ।५८-५९। व्यास के पुत्र शुकदेव जी ने योग के द्वारा ही सूर्य की किरणों का पान करके अपुनर्जन्म प्राप्त किया है ।६०। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव केवल कान से

---

१. पूषापूताविभावनः । २. एवम् । ३. सवित्रे ।

शब्दमात्राः श्रुतिसुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रत्यक्षोऽयं स्मृतो देवः सूर्यस्तिमिरनाशनः ॥६१
तस्मादन्यश्रुते भक्तिर्न कार्या शुभमिच्छता । दृष्टेन साध्यते यस्माददृष्टं नित्यमेव हि ॥
त्वयातः सततं विप्र अर्चनीयो दिवाकरः ॥६२

याज्ञवल्क्य उवाच

अहो य एष कथितो भवता भास्करो मम । देवता सर्वदेवानां नैतन्मिथ्या प्रजायते ॥६३
तस्य देवस्य माहात्म्यं श्रुतं सुबहुशो मया । देवर्षिसिद्धमनुजैः स्तुतस्येह महात्मनः ॥६४
कः स्तौति दैवतमजं यस्यैतत्सचराचरम् । अक्षयस्याप्रमेयस्य किरणोद्गमनाद्भवेत् ॥६५
दक्षिणात्किरणाद्यस्य सम्भूतो भगवान्हरिः । वामाद्भवांस्तथा जातः किरणात्किल कञ्जज ॥६६
ललाटाद्यस्य रुद्रस्तु का तुल्या तेन देवता । तस्य देवस्य कः शक्तः प्रवक्तुं गुणविस्तरम् ॥६७
सोऽहमिच्छामि देवस्य तस्य सर्वात्मनः प्रभो । श्रोतुमाराधनं येन निस्तरेयं भवार्णकम् ॥६८
केनोपायेन मन्त्रैर्वा रहस्यैः परिचर्यया । दानव्रतोपवासैर्वा होमैर्जप्यैरथापि वा ॥६९
आराधितः समस्तानां क्लेशानां हानिदो रविः । शक्यः समाराधयितुं कथं शंस प्रजापते ॥७०
धर्मार्थकामसम्प्राप्तौ पुरुषाणां विचेष्टताम्[1] । जन्मन्यवितथा सैका क्रिया यार्कं समाश्रिता ॥७१
दुर्गसंसारकांतारमपारमभिधावताम् । एकः सूर्यनमस्कारो मुक्तिमार्गस्य देशकः[2] ॥७२

ही सुनाई देते हैं, किन्तु तम के नाशक सूर्य प्रत्यक्ष दिखायी देने वाले देव हैं।६१। इसलिए शुभ की अभिलाषा वाले प्राणियों को अन्य की भक्ति कभी न करनी चाहिए, अपितु दृष्ट पदार्थ (सूर्य) द्वारा अपने अदृष्ट (सौभाग्य) को उत्पन्न करना चाहिए। अतः हे विप्र ! तुम भी सदैव सूर्य की उपासना करो।६२

याज्ञवल्क्य ने कहा—आपने मेरे लिए देवाधि देव सूर्य का जो उपदेश किया है, यह कदापि मिथ्या नहीं है प्रत्युत पूर्ण है।६३। क्योंकि देव, ऋषि, सिद्ध एवं मनुष्यों द्वारा महात्मा सूर्य के माहात्म्य को मैंने अनेकों बार सुना है।६४। उस अजन्मा देव की स्तुति जिसने अक्षय और अप्रमेय अपनी किरणों द्वारा इस चराचर को उत्पन्न किया है, कौन कर सकता है।६५। इसलिए जिसके दक्षिण किरण द्वारा विष्णु बायीं किरण द्वारा (अब) (ब्रह्मा) और ललाट से शिव उत्पन्न हुए हैं, उनके समान कौन देवता है और उनके गुण समूह का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है।६६-६७। उस सर्वात्म देव की आराधना, जिसके द्वारा मैं संसार-सागर को पार करना चाहता हूँ, मुझे सुनने की विशेष इच्छा है।६८। अतः उनके मंत्रों अथवा रहस्य या सेवा, दान, व्रत, उपवास, हवन एवं जप इनमें से किस उपाय द्वारा की गई आराधना से प्रसन्न होकर सूर्य सम्पूर्ण दुःखों का नाश करते हैं। हे प्रजापते ! मैं किस भाँति उनकी आराधना करूँ।६९-७०। यद्यपि प्रयत्नशील पुरुषों के जीवन में (उनके) धार्मिक होने के नाते उनके अर्थ एवं काम की सफलता प्राप्त होती ही रहती है, पर, उनकी यही एक क्रिया जिसके द्वारा सूर्य की आराधना की जाये, और की अपेक्षा सफल कही जा सकती है।७१। इसलिए संसार रूपी दुर्गम जंगल में भ्रान्त होकर दौड़ने वाले के लिए सूर्य की आराधना ही उपयुक्त है क्योंकि वही एक मुक्ति-मार्ग के प्रदर्शक हैं।७२। अतः मैं

---

१. विचेष्टितम्। २. दाता।

सोऽहमिच्छामि तं देवं सप्तलोकपरायणम् । कालायनमशेषस्य[1] जगतो हृद्यवस्थितम् ॥७३
आराधयितुं गोपालं ग्रहेशममितौजसम्[2] । शङ्करं जगतो दीपं स्मृतमात्राघनाशनम् ॥७४
तमनाद्यं सुरश्रेष्ठं प्रसादयितुमिच्छतः । उपदेशप्रदानेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥७५
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा भक्तिमुद्वहतो रवौ । जगाम परितोषं स पद्मयोनिर्महातपाः ॥७६

ब्रह्मोवाच

यत्पृच्छसि द्विजश्रेष्ठ सूर्यस्याराधनं प्रति । व्रतोपवासजप्यादि तदिहैकमनाः शृणु ॥७७
अनादि यत्परं ब्रह्म सर्वहेयविवर्जितम् । व्याप्ययत्सर्वभूतेषु स्थितं सदसतः परम् ॥७८
प्रधानपुंसोरनयोर्यतः क्षोभः प्रवर्तते । नित्ययोर्व्यापिनोश्चैव जगदादौ महात्मनोः ॥७९
तत्क्षोभकत्वाद् ब्रह्मांडं सृष्टेर्हेतुर्निरञ्जनः । अहेतुरपि सदात्मा जायते परमेश्वरः ॥८०
प्रधानपुरुषत्वं च तथैवेश्वरलीलया । समुपैति ततश्चैवं ब्रह्मत्वं छन्दतः प्रभुः ॥८१
ततः स्थितौ पालयिता विष्णुत्वं जगतः क्षये । रुद्रत्वं च जगन्नाथः स्वेच्छया कुरुते रविः ॥८२
तमेकमक्षरं धाम सर्वदेवनमस्कृतम् । भेदाभेदस्वरूपं तं प्रणिपत्य दिवाकरम् ॥
[3]वर्णयिष्येऽखिलं विप्र तस्यैवाराधनं रवेः ॥८३
गुह्यं चापि तथा तस्य भास्करस्य शृणुष्व वै । तुष्टेन हि पुरा मह्यं कथितं भास्करेण तु ॥८४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि याज्ञवल्क्यब्रह्मसंवादे सप्तमीकल्पे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।६६।

भी उस देव की, जो सातों लोकों में प्रदत्त, समस्त जगत् के हृदय में अवस्थित, समय के अयन, पृथिवी-पालक, ग्रहों के ईश, अमेय तेजस्वी, कल्याण-कर्ता, जगत्-प्रकाशक, स्मरण मात्र से पापों को नाश करने वाले, अनादि तथा सुरश्रेष्ठ हैं, आराधना करके उन्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ, आप उपदेश द्वारा उस (आराधन-विधान) को बताने की कृपा करें ।७३-७५। इस प्रकार सूर्य की भक्ति में ओत-प्रोत उसकी वाणी सुनकर महातपस्वी ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए ।७६

ब्रह्मा बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! 'व्रत, उपवास एवं जप आदि किसके द्वारा सूर्य की आराधना होती है, यह जो पूंछ रहे हो, मैं बता रहा हूँ उसे सावधान होकर सुनो ।७७। सूर्य देव अनादि, परब्रह्म, सांसारिक हेय पदार्थों से रहित समस्त प्राणियों में अवस्थित, सत् और असत् से पृथक्, नित्य और संसार में व्यापक हैं इन्हीं के द्वारा सृष्टि आदि में प्रधान पुरुष में क्षोभ उत्पन्न होता है । क्योंकि ब्रह्माण्ड में क्षोभ होने के नाते ही सृष्टि हुई है उसके कारण निराकार हेतु रहित, सर्वात्मा और परमेश्वर रूप यही हैं।७८-८०। यही प्रभु, ब्रह्म तथा ईश्वरीय लीलाओं द्वारा प्रधान पुरुष रूप भी होते रहते हैं।८१। और स्वेच्छा द्वारा विष्णु (जगत् के) पालक और उसके क्षय के लिए रुद्र रूप में दृष्टि गोचर होते हैं।८२। अतः उसी सूर्य की, जो, अनश्वर, समस्त देवों के वन्दनीय, भेदाभेद स्वरूप तथा दिवाकर कहे जाते हैं, आराधना मैं कह रहा हूँ ।८३। हे विप्र ! उस की वह गुप्त वस्तु है, जिसे प्रसन्न होकर पहले ही उन्होंने स्वयं मुझसे कहा है सुनो ! ।८४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के याज्ञवल्क्य ब्रह्मसंवादरूपी सप्तमी कल्प में आदित्य माहात्म्य वर्णन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।६६।

---

१. कालालयमतिश्रेष्ठम् । २. आश्रयंतं महौजसम् । ३. वर्तयिष्ये ।

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मयाज्ञवल्क्यसम्वादवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रभाते संस्तुतो देवो मूर्तिहेतोर्मया पुरा । यजन्तं चापरं देवं भक्तिनम्रं महामतिः ॥१
प्रत्यक्षत्वमथो गत्वा रहस्यं प्रोक्तवान्मम । अहं च कृतवान्प्रश्नं दृष्ट्वा प्रत्यक्षतो रविम् ॥२
वेदेषु[1] च पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे । त्वमजः शाश्वतो धाता महाभूतमनुत्तमम्[2] ॥३
प्रतिष्ठितं भूतभव्यं त्वयि सर्वमिदं जगत् । चत्वारो ह्याश्रमा देव सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः ॥४
यजन्ते त्वामहरहर्नानामूर्तिसमाश्रिताः[3] । पिता माता हि सर्वस्य दैवतं त्वं हि शाश्वतम् ॥५
यजसे चैव कं देवमेवं चापि न विद्महे । कथ्यतां मम देवेश परं कौतूहलं हि मे ॥६
इत्थं मयोक्तो भगवानिदं वचनमब्रवीत् । अवाच्यमेतद्वक्तव्यमात्मगुह्यं सनातनम् ॥७
तव भक्तिमतो ब्रह्मन्वक्ष्यामीह यथातथम् । यतः सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम् ॥८
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्वभूतैश्च वर्जितम् । स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चेति कथ्यते ॥९
त्रिगुणव्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चेति कथ्यते । हिरण्यगर्भो भगवान्सैव[4] बुद्धिरिति स्मृतः ॥१०
महानिति च योगेषु प्रधानश्चेति कथ्यते । सांख्ये[5] च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुभिः सदा ॥११

अध्याय ६७

ब्रह्म-याज्ञवल्क्य के संवाद का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—पहले (एकबार) मैंने सभक्ति विनम्र होकर दूसरे देव की पूजा करते हुए भी मूर्तिमान् होने के लिए प्रातः काल में सूर्य देव की आराधना करके उन्हें प्रत्यक्ष किया था, उसी समय में उन्होंने मुझे इस रहस्य को बताने की कृपा की थी । मैंने प्रत्यक्ष देखकर उनसे पूँछा था ।१-२। कि देव ! साङ्गोपाङ्ग वेद, वेदांग, और पुराणों में आप को अजन्मा, सनातन एवं धाता बताया गया है एवं पृथिवी आदि पञ्च महाभूत भविष्य और भूत काल तथा उसके द्वारा उत्पन्न समस्त संसार आप में प्रतिष्ठित है । उसी भाँति ब्रह्मचारी आदि चारों आश्रम जो गृहस्थी के मूल कारण हैं, वे नानामूर्तिधारी प्रतिदिन विविध भाँति की आपकी (मूर्तियों का पूजन करते हैं) । क्योंकि आप सभी के माता-पिता एवं सनातन देवता भी हैं ।३-५। किन्तु हे देवेश ! आप किस देवता की उपासना करते हैं । यह मैं नहीं जानता । अतः इसे बताने की कृपा कीजिए । क्योंकि मुझे इसे जानने के लिए महान् कौतूहल हो रहा है ।६। इस भाँति मेरे कहने पर उन्होंने कहा—यद्यपि यह किसी से न कहने योग्य, अव्यक्त, अत्यन्त गुह्य तथा सनातन विषय है, पर तुम्हारी भक्ति को देखकर मैं अवश्य उसे तथ्यरूप में तुमसे बताऊँगा । यह देव सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, इन्द्रियों, इन्द्रिय विषयों (रूप रसादिकों) तथा समस्त प्राणियों से पृथक्,

---

१. इतिहासपुराणेषु । २. महारूपम् । ३. नानावृत्तीरूपाश्रिताः । ४. स च । ५म वेदे पठ्यते शास्त्रे मुनिभिर्बहुभिः सदा ।

विश्वगो विश्वभूतश्च विश्वात्मा विश्वसम्भवः[1] । धृतं चैवात्मकं येन इदं त्रैलोक्यमात्मना ।।१२
अशरीरः शरीरेषु लिप्यते न च कर्मभिः । ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंज्ञकाः ।।१३
सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ[2] न करोति न लिप्यते । सगुणो निर्गुणो [3]विष्णुर्ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ।।१४
सर्वतः पाणिपादोऽसौ सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः । सर्वतः श्रुतियुक्तोऽसौ सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।१५
विश्वमूर्धा[4] विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः । एकश्चरति क्षेत्रेषु स्वैरचारी यथासुखम् ।।१६
क्षेत्राण्यस्य शरीराणि बीजं चापि शुभाशुभम् । तानि वेत्ति स योगात्मा अतः क्षेत्रज्ञ उच्यते ।।
अव्यक्तके पुरे शेते तेनाऽसौ पुरुषः स्मृतः ।।१७
विश्वं बहुविधं ज्ञेयं स च सर्वत्र विद्यते । तस्मात्स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतः ।।१८
महापुरुषशब्दं हि बिभर्त्येष सनातनः[5] । स तु वै विक्रियापन्नः सृजत्यात्मानमात्मना ।।१९
आकाशात्पतितं तोयं याति स्वाद्वन्तरं यथा । भूमे रसविशेषेण तथा गुणवशात्तु सः ।।२०
एक एव यथा वायुर्देहे तिष्ठति पञ्चधा । एकत्वं च पृथक्त्वं च तथा तस्य न संशयः ।।२१
स्थानान्तरविशेषेण यथाग्निर्लभते परान् । संज्ञां दावाग्निकाद्येषु तथा देवो[6] ह्यसौ स्मृतः ।।२२
यथा दीपसहस्राणि दीप एकः प्रसूयते । तथा रूपसहस्राणि स एवैकः प्रसूयते ।।२३

प्राणियों के अन्तरात्मा, क्षेत्रज्ञ, सत्वादि तीन गुणों से पृथक् होने के नाते प्रधान पुरुष, भगवान् हिरण्य गर्भ (साकार ब्रह्म), बुद्धिरूप, योग में महान् रूप सांख्य में प्रधान रूप, विराट रूप, विश्व का आधार, विश्वात्मा, विश्व के कारण, इन तीनों लोकों को धारण करने वाले, निराकार साकार होते हुए भी कर्मों से लिप्त न होने वाले, मेरे एवं तुम्हारे हृदय-निवासी, सभी प्राणियों के कर्म-साक्षी, सगुण-निर्गुण रूप विष्णु तथा ज्ञान द्वारा जानने के योग्य हैं । इनके चारों ओर अनेकों हाथ, पैर, आंखें, शिर, मुख एवं श्रवण हैं, और आवरण की भाँति वे सभी को घेर कर अब स्थित हैं ।७-१५। यही समस्त विश्व के शिर, भुजाएँ, पैर, आँखें, नासिका रूप हैं, सभी शरीरों में इच्छा पूर्वक घूमने वाले, शरीर रूप एवं शुभाशुभ रूपी बीज भी हैं । वही योग द्वारा समस्त (शरीरों) के ज्ञान रखते हैं । अतः उसे क्षेत्रज्ञ तथा अव्यक्त पुर में शयन करने के नाते पुरुष कहा जाता है ।१६-१७। एवं विश्व के सभी स्थानों में वर्तमान एवं विविध भाँति के रूप धारण करने के नाते विश्व रूप कहे जाते हैं ।१८। इसी भाँति महापुरुष एवं सनातन शब्द भी इन्हीं के लिए प्रयुक्त होता है । यही अपनी आत्मा द्वारा विकारी (सगुण) होकर अवतार धारण करते हैं।१९ आकाश से गिरे हुए जल की भाँति जो पृथिवी के इस ओर गुण विशेष के संपर्क से भिन्न भिन्न स्वाद का हो जाता है।२०। तथा शरीर में स्थित एक ही वायु की भाँति जो पाँच प्रकार के होते हुए भी एक रूप और पृथक्-पृथक् रूप हैं।२१। तथा जिस प्रकार अग्नि जो किसी स्थानान्तर विशेष के कारण दावाग्नि आदि विशेष संज्ञा को प्राप्त करता है, इसी प्रकार ये देव भी एक होते हुए अनेक भाँति के कहे गये हैं।२२
और एक ही दीप द्वारा सहस्रों दीप के जल जाने की भाँति इन्ही एक के द्वारा सहस्रों रूप उत्पन्न

---

१. विश्वभावनः । २. शक्तिभूतः । ३. विश्वः । ४. विश्वमूर्तिः । ५. एकं सनातनम् । ६. देवेष्वसौ स्मृतः ।

स यदा बुध्यतेत्मानं तदा भवति केवलः । एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं स्यात्प्रवर्तने ।।२४
नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम् । ऋते[1] तमेकमीशानं पुरुषं बीजसंज्ञितम् ।।२५
अक्षयश्चाप्रमेयश्च सवर्गश्च स उच्यते । तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं सर्वकारणम् ।।२६
अव्यक्ताव्यक्तभावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते । तां योनिं ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः ।।२७
नास्ति तस्मात्परो ह्यन्यः स पिता स प्रजापतिः । आत्मा मम स विज्ञेयस्ततस्तं पूजयाम्यहम् ।।२८
स्वर्गताश्चापि ये केचित्तं नमस्यन्ति देहिनः । ते तत्प्रसादाद् गच्छन्ति तेनादिष्टाः[2] परां गतिम् ।।२९
तं देवाश्चासुराश्चैव नानामतसमाश्रिताः[3] । भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिं चैषां ददाति सः ।।३०
स हि सर्वगतश्चैव निर्गुणश्चापि कथ्यते । एवं ज्ञात्वा तमात्मानं पूजयामि सनातनम् ।।
भास्करं देवदेवेशं सर्वभूतेशमच्युतम् ।।३१

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवान्पुरा पृष्टो मया देवो दिवाकरः । पूजय त्वं महात्मानं तपन्तं विपुलं तपः ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि ब्रह्मयाज्ञवल्क्यसंवादे सप्तमीकल्पे सूर्यमहिमवर्णनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।६७।

होते हैं ।२३। और जिस समय इन्हें अपने आत्मा का ज्ञान हो जाता है तब वे केवल होते हैं । इस भाँति प्रलय में अकेले और सृष्टि में भाँति-भाँति के अनेक रूप का होना इन्हें जानना चाहिए ।२४। इस स्थावर और जंगम रूप जगत् में इन्ही एक बीजरूप पुरुष के अतिरिक्त कोई नित्य नहीं है ।२५। इन्हीं को अक्षय, अप्रमेय एवं सर्व व्यापक कहा जाता है । इस प्रकार इन्हीं सर्वकारण द्वारा त्रिगुणात्मक अव्यक्त तथा मख प्रकृति उत्पन्न हुई है, जो (प्रकृति) ब्रह्म की योनि है । यही सदसदात्मक, पिता एवं प्रजापति के रूप में है जिससे पर अन्य कोई नहीं है वही मेरी आत्मा है अतः मैं भी इनकी पूजा करता हूँ ।२६-२८। और स्वर्ग जाने वाले सभी जीव इन्हें नमस्कार आदि करते हैं क्योंकि इन्हीं की प्रसन्नता वश उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है।२९। देवता एवं असुर गण प्रथम इन्हीं की भक्तिपूर्वक उपासना मतमतान्तर को अपनाकर करते हैं तथा इन्हीं के द्वारा उन्हें सद्गति प्राप्त होती है।३०। इस भाँति ये सर्वगत एवं निर्गुण हैं केवल उन्हीं की अपनी आत्मा जानकर जो सनातन, भास्कर, देवाधिदेव, भूतेश एवं अच्युत हैं, मैं पूजा करता हूँ।३१

ब्रह्मा ने कहा—इसी प्रकार मेरे पूछने पर दिवाकर देव ने मुझसे कहा था । अतः तुम भी विपुल तपस्वी ओर देदीप्यमान की पूजा करो ।३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के ब्रह्म याज्ञवल्क्य संवाद रूप सप्तमी कल्प में सूर्य महिमा वर्णन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।६७।

---

१. तं विहायैकमीशानम् । २. आदिष्टाम् । ५. नानामतमयस्थिताः ।

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

सिद्धार्थसप्तमीव्रतवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वच्मि ते परमं देवं सर्वदेवैश्च पूजितम् । आराधयन्ति यं देवं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।।१
पद्माकृतिं सदा ब्रह्मा नलिनैर्गुग्गुलेन तु । व्योमरूपं सदा देवं महादेवोर्चते रविम् ।।२
जातिपुष्पैर्द्विजश्रेष्ठ धूपेन विजयेन तु । वृषणं सिह्लकं विप्र श्रीखण्डमगरुस्तथा ।।३
कर्पूरं च तथा मुस्ता शर्करा सत्वचा द्विज । इत्येष विजयो धूपः स्वयं देवेन निर्मितः ।।४
केशवश्चक्ररूपं तु सदा सम्पूजयेद्रविम् । नीलोत्पलदलश्यामो नीलोत्पलकदम्बकैः ।।५
धूपेनागुरुसंज्ञेन भक्तिश्रद्धासमन्वितः । मया स पृष्टो देवेशस्तस्यैवाराधनाय वै ।।६
कानि पुष्पाणि चेष्टानि सदा भास्करपूजने । तेन चोक्तानि पुष्पाणि स्वयं तानि निबोध मे ।।७
मल्लिकायास्तु कुसुमैर्भोगवाञ्जायते नरः । सौभाग्यं पुण्डरीकैश्च भजत्येव च शाश्वतम् ।।८
[१]गन्धकुटजकैः पुष्पैः परमैश्वर्यमश्नुते । भवत्यक्षयमत्यन्तं नित्यमर्चयतो रविम् ।।९
मन्दारपुष्पैः पूजा तु सर्वकुष्ठविनाशिनी[२] । बिल्वपत्रैश्च कुसुमैर्महतीं श्रियमश्नुते ।।१०
अर्कस्रजा भवत्यर्थं सर्वकामफलप्रदः । प्रदद्याद्रूपिणीं कन्यामर्चितो बकुलस्रजा ।।११

अध्याय ६८

सिद्धार्थसप्तमी व्रत का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मैं तुम्हें उस महान् देवों को, जो सभी देवों के पूज्य तथा विष्णु, महेश्वर और मैं जिसकी उपासना करता हूँ बता रहा हूँ ।१। उन्हीं पद्म की भाँति, आकार वाले सूर्य की कमल एवं गुग्गुल द्वारा व्रह्मा अर्चना करते हैं तथा उन्हीं व्योम रूपी सूर्य की चमेली पुष्प एवं विजय नामक धूप द्वारा शिव पूजा करते हैं । हे द्विज ! श्रेष्ठ ! वृषण, लोहबान, श्रीखण्ड चन्दन, गुग्गुल, कपूर मुस्ता एवं शक्कर को विजय धूप कहा जाता है, इसे देव ने स्वयं बताया भी है ।२-४। नील कमल दल के समान श्यामल विष्णु नील कमलों एवं गुग्गुल द्वारा भक्ति पूर्वक चक्र रूपी सूर्य की उपासना करते हैं । सूर्य की आराधना के लिए कौन फूल चाहिए मैंने एकबार विष्णु जी से पूछा उन्होंने जो स्वयं उत्तर दिया है उन्हें सुनो ! मल्लिका (बेला) पुष्पों द्वारा उपासना करने पर मनुष्य समृद्धिशाली होता है और कमल द्वारा उपासना करने पर सौभाग्य, कुटज (कुरैया) पुष्पों द्वारा उपासना करने पर महान् ऐश्वर्य एवं (सूर्य की) नित्य उपासना करने पर अक्षय (संपत्ति) प्राप्त होती है ।५-९। मदार के पुष्पों द्वारा की गई पूजा से सभी भाँति के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं । उन्हें विल्व पत्र और रक्तपुष्प समर्पित करने से असंख्य की (सम्पत्ति) मदार पुष्पों की माला धारण करने से समस्त मनोरथ सफल, बकुल की माला समर्पित करने

---

१. सुगन्धकुब्जकैः । २. सर्वकष्टविनाशिनी ।

किंशुकैरर्चितो देवो न पीडयति भास्करः । पूजितोऽगस्त्यकुसुमैरानुकूल्यं प्रयच्छति ॥१२
करवीरैस्तु विप्रेन्द्र सूर्यस्यानुचरो भवेत् । तथा [1]मुद्गरपुष्पैश्च समभ्यर्च्य दिवाकरम् ॥१३
हंसयुक्तेन यानेन रवेः सालोक्यतां व्रजेत् । शतपुष्पसहस्रैस्तु पूषसालोक्यतां व्रजेत् ॥
बकपुष्पैर्द्विजश्रेष्ठ याति भानुसलोकताम्[2] ॥१४
चतुःसमेन गन्धेन समभ्यर्च्य दिवाकरम् । पञ्चभूतालयस्थानमाप्नुयान्नात्र संशयः ॥१५
देवागारं तु सम्मार्ज्य भक्त्या यस्तु प्रलेपयेत् । स रोगान्मुच्यते क्षिप्रं द्रव्यलाभं च विन्दति ॥१६
तस्य चायतनं भक्त्या गैरिकेणोपलेपयेत् । प्राप्नुयान्महतीं लक्ष्मीं रोगैश्चापि प्रमुच्यते ॥१७
अष्टादशेह कुष्ठानि ये चान्ये व्याधयो नृणाम् । प्रलयं यान्ति ते सर्वे मृदा यद्युपलेपयेत् ॥१८
विलेपनानां सर्वेषां रक्तचन्दनमुत्तमम् । पुष्पाणां करवीराणि प्रशस्तानि प्रचक्षते ॥१९
नातः परतरं किंचिद्भास्वतस्तुष्टिकारकम् । किं तस्य न भवेल्लोके यस्त्वेभिः स्वर्चयेद्रविम् ॥२०
करवीरैः पूजयेद्यो भास्करं श्रद्धयान्वितः । सर्वकामसमृद्धोऽसौ सूर्यकाममवाप्नुयात् ॥२१
विलेप्यायतनं[3] यस्तु कुर्यान्मण्डलकं शुभम् । स सूर्यलोकमासाद्य मोदते शाश्वतीः समाः ॥२२
एकेनास्य भवेदर्थो द्वाभ्यामारोग्यमश्नुते । त्रिभिः सन्तत्यविच्छिन्ना चतुर्भिर्भार्गवीं[4] लभेत् ॥२३

से रूपवती कन्या, किंशुक के पुष्पों को समर्पित करने से भास्कर की प्रसन्नता, अगस्त्य पुष्पों को समर्पित करने से मन इच्छित वस्तु प्राप्त होती है ।१०-१२। हे विप्रेन्द्र ! करवीर के पुष्पों को समर्पित करने पर वह उनका अनुचर हो जाता है । कुँदरू के पुष्पों को समर्पित करने पर हंस वाले विमान पर बैठकर रवि के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है । हे द्विज श्रेष्ठ ! शतपुष्पा (सौंफ) के सहस्र पुष्पों को समर्पित करने पर पूषा सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है एवं बक पुष्पों को समर्पित करने पर स्थान का सालोक्य मोक्ष प्राप्त होता है ।१३-१४। चार भाँति के गन्धों द्वारा सूर्य की अर्चना करने पर पाँच महाभूतों का लय स्थान प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं ।१५। मन्दिर को झाड़ पोंछ कर उसे गोमय आदि से शुद्ध करने पर रोग-मुक्ति एवं शीघ्र सम्पत्ति प्राप्त होती है ।१६। मन्दिर की भक्तिपूर्वक गेरू के रंग से रंगाई करने पर भी अत्यन्त लक्ष्मी तथा रोग-मुक्ति प्राप्त होती है ।१७। मिट्टी द्वारा मन्दिर की शुद्धि करने पर मनुष्यों के अठारह प्रकारके कुष्ठ तथा अन्य रोग नष्ट हो जाते हैं ।१८। लेपनों में रक्त चन्दन का लेपन तथा पुष्पों में करवीर (कनेर) के पुष्पों को उत्तम बताया गया है ।१९। अतः सूर्य को अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान करने वाली इन वस्तुओं से पृथक् कोई अन्य वस्तु नहीं है क्योंकि इन वस्तुओं द्वारा जो सूर्य की अर्चना करता है, उसे किस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् वह सभी कुछ प्राप्त करता है ।२०। इसलिए श्रद्धा समेत जो करवीर पुष्पों द्वारा सूर्य की पूजा करता है, उसे समस्त मनोरथ की सफलता पूर्वक सूर्य की प्रियता प्राप्त होती है ।२१। मन्दिर को लेपनादि से शुद्ध कर उसमें जो सौन्दर्य पूर्ण मंडल बनाता है, वह सूर्य लोक की प्राप्ति करके अनेकों वर्ष वहाँ निवास करता है ।२२। इस प्रकार एक मण्डल की रचना करने पर धन, दो मण्डल की रचना करने पर आरोग्य, तीन मण्डल की रचना करने पर वंश

---

१. कुन्दुरपुष्पैश्च । २. भीमसलोकताम् । ३. उपलेप्यालयं यस्तु । ४. भार्गवीं जामदग्न्योपार्जितत्वात्पृथ्वीमित्यर्थः । वस्तुतस्तु—लक्ष्मीमित्यर्थं एव ज्यायान्, पुराणेषु तस्यां भृगोरुत्पत्तिवर्णनात् ।

पञ्चभिर्विपुलं धान्यं षड्भिरायुर्बलं यशः । सप्तमण्डलकारी स्यान्मंडलाधिपतिर्नरः ॥२४
आयुर्धनसुतैर्युक्तः सूर्यलोके महीयते । घृतप्रदीपदानेन [1]चक्षुष्माञ्जायते नरः ॥२५
कटुतैलप्रदानेन स शत्रुञ्जयते नरः । तिलतैलप्रदानेन सूर्यलोके महीयते ॥२६
मधूकतैलदानेन[2] सौभाग्यं परमं व्रजेत् । संपूज्य विधिवद्देवं पुष्पधूपादिभिर्बुधः ॥२७
यथाशक्त्या ततः पश्चान्नैवेद्यं भक्तितो न्यसेत् । पुष्पाणां प्रवरा जाती धूपानां विजयः परः ॥२८
गन्धानां कुङ्कुमं श्रेष्ठं लेपानां रक्तचन्दनम् । दीपदाने घृतं श्रेष्ठं नैवेद्ये मोदकः परः ॥२९
एतैस्तुष्यति देवेशः सान्निध्यं चाधिगच्छति । एवं संपूज्य विधिवत्कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥३०
प्रणम्य शिरसा देवं देवदेवं दिवाकरम् । सुखासीनस्ततः पश्येद्रवेरभिमुखे स्थितः ॥३१
एकं सिद्धार्थकं कृत्वा हस्ते पानीयसंयुतम् । कामं यथेष्टं हृदये कृत्वा तं वाञ्छितं नरः ॥३२
पिबेत्सतोयं तं विप्र अस्पृष्टं दशनैः सकृत् । द्वितीयायां तु सप्तम्यां द्वौ गृहीत्वा तु सुव्रत ॥३३
तृतीयायां तु सप्तम्यां ग्रहीतव्यास्त्रयोऽपि च । ज्ञेयाश्चतुर्थ्यां चत्वारः पञ्चम्यां पञ्च एव हि ॥३४
षट् पिबेच्चापि षष्ठ्यां तु इतीयं वैदिकी श्रुतिः । सप्तम्यां सप्तमायां तु सप्त चैव पिबेन्नरः ॥३५
आदौ प्रभृति विज्ञेयो मन्त्रोऽयमभिमन्त्रणे । सिद्धार्थकस्त्वं हि लोके सर्वत्र श्रूयसे यथा ॥
तथा मामपि सिद्धार्थमर्थतः कुरुतां रविः ॥३६

अविच्छेद, (संतान परम्परा) चार मण्डल से पृथ्वी, पाँच से अत्यन्त धन, छह मण्डलों से आयु, बल एवं वंश और सात मण्डलों की रचना करने पर वह मण्डलेश्वर होकर आयु, धन एवं पुत्रों की प्राप्ति करके (कालान्तर में) सूर्य लोक की प्राप्ति करता है। उसी भाँति घी के दीप प्रदान करने से मनुष्य आयुष्मान् होता है।२३-२५। कडुवे तेल के दीप प्रदान करने से शत्रु-विजय, तिल के तेल में दीप प्रदान करने से सूर्य लोक में प्रतिष्ठा एवं मधूक (महुवे) के तेल के दीपक प्रदान करने पर महान् सौभाग्य प्राप्त होता है। इस भाँति विधि पूर्वक पुष्पादि द्वारा उनकी पूजा करके पुष्पों में जाती (चमेली), धूपों में विजय, गंधों में कुंकुम, लेपों में रक्त चन्दन का लेप दीपदान में घी का दीपक और नैवेद्यों में मोदक (लड्डू) उत्तम बताये गये हैं।२६-२९। क्योंकि इन्हीं द्वारा पूजित होने पर सूर्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं एवं उसे उनका संविधान भी प्राप्त होता है। इस प्रकार उनकी पूजा एवं प्रदक्षिणा करके शिर से प्रणाम और उनके सम्मुख भली भाँति बैठकर उन्हें अपने सामने देखे।३०-३१। पश्चात् राई का एक दाना और जल हाथ में लेकर अपने मनोरथ का स्मरण हृदय में करते हुए उसे पान करें पर, उस जल का स्पर्श दाँतों से न होने पाये इसी प्रकार दूसरी सप्तमी में दो, तीसरी में तीन, चौथी में चार, पाँचवीं में पाँच, छठवीं मैं छह और सातवीं में सात दानों समेत उस जल के पान करना चाहिए।३२-३५। प्रत्येक बार उसे इसी सिद्धार्थकस्त्वं हिलोके, आदि मंत्र से अभिमन्त्रित भी कर

---

१. चायुष्मान् । २. मधूकतैलदीपेन भोगभाग्यपरं सुखम् ।

ततो हविरुपस्पृश्य जपं कुर्याद्यथेप्सितम् । हुताशनं च जुहुयाद्विधिदृष्टेन कर्मणा ।।३७
एवमेव पराः कार्या सप्तम्यः सप्त सर्वदा । एकात्प्रभृति कार्या सा सर्वदोदकसप्तमी ।।३८
एकं तोयेन सहितं द्वौ चापि घृतसंयुतौ । त्रींस्तथा मधुना सार्धं दध्ना चतुर एव च ।।३९
युक्तान्नपयसा पञ्च षट् च गोमयसंयुतान् । पञ्चगव्येन वै सप्त पिबेत्सिद्धार्थकान्द्विज ।।४०
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्सर्षपसप्तमीम् । बहुपुत्रो बहुधनः सिद्धार्थश्चापि सर्वदा ।।४१
इह लोके नरो विप्र प्रेत्ययाति विभावसुम् । तस्मात्संपूजयेद्देवं विधिनानेन भास्करम् ।।४२

इति श्रीभविष्ये महपुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
सिद्धार्थसप्तमीव्रतवर्णनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।६८।

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

स्वप्नदर्शनवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सप्तम्यामुषितो विप्रः स्वप्नदर्शनमुच्यते । स्वप्ने दृष्टे च सप्तम्यां पुरुषो नियतव्रतः ।।१
समाप्य विधिवत्सर्वं जपहोमादिकं क्रमात् । पूजयित्वा दिनेशं तु यथाविभवमात्मनः ।।२

लेना चाहिए ।३६। पश्चात् घी का स्पर्श करके मन इच्छित जप करके तदुपरान्त विधि पूर्वक हवन करना चाहिए ।३७

इसी प्रकार से सातों सप्तमी में करना बताया गया है। इसका दूसरा भी विधान है। पहली सप्तमी में श्वेत राई का एक दाना जल के साथ, दूसरी में दो घी के साथ, तीसरी में तीन शहद के साथ, चौथी में चार दही के साथ, पाँचवीं में पाँच अन्न एवं दूध के साथ, छठवीं में छह गोमय के साथ और सातवीं सप्तमी में सात दाने पंच गव्य के साथ पान करना चाहिए ।३८-४०।

इस विधि द्वारा जो सर्षप (राई) सप्तमी का व्रत-विधान करता है, बहुत पुत्रों, बहुत धनों की प्राप्ति पूर्वक उसका सदैव के लिए मनोरथ सिद्ध हो जाता है ।४१। हे विप्र ! इसभाँति इस लोक में मनुष्य मनोरथ सफल करके (अंत में) सूर्य लोक की प्राप्ति करता है, अतः इसी विधान-द्वारा तुम भी सूर्य की उपासना करो ।४२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सिद्धार्थ सप्तमी वर्णन
नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ।६८।

अध्याय ६९

स्वप्न दर्शन का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सप्तमी में उपवास पूर्वक व्रत-विधान करने वाले ब्राह्मण को नियत दर्शन होता है ऐसा बताया गया है। सप्तमी में स्वप्न दर्शन करने वाले उस नियत व्रती मनुष्य को चाहिए कि विधान

ततः शयीत शयने देवदेवं विचिन्तयन् । सम्प्रसुप्तो यदा पश्येदुदयन्तं दिवाकरम् ॥३
शक्रध्वजं तथा चन्द्रं तस्य सर्वाः समृद्धयः । दृश्यं जनं तथा शक्तिं[1] स्रग्विगोवेणुनिस्वनाः ॥४
श्वेताब्जचामरादर्शकनकासिसुतोद्भवम् । रुधिरस्य स्रुतिं सेकं पानं चैश्वर्यकारकम् ॥५
श्वेतायाः पञ्चपूतायाः दर्शनं वृद्धिकारकम् । प्रजापतेर्घृताक्तस्य दर्शनं पुत्रदं स्मृतम् ॥६
शस्तवृक्षाभिरोहश्च क्षिप्रमैश्वर्यकारकः । दोहनं महिषीसिंहीगोधेनूनां स्वके मुखे ॥७
धनुषां च शराणां च नाभौ च द्रुतनिर्गतिः । अभिहन्यात्स्वयं खादेत्सिंहान्गा भुजगांस्तथा ॥८
स्वांगशीर्ष[2] हुतवहे तस्य श्रीरग्रतः स्थिता । राजते हैमने पात्रे यो भुंक्ते पायसं द्विजः ॥९
पद्मपत्रे यथा विप्रस्तस्य[3] जन्तोर्बलं भवेत् । द्यूते वादेऽथ वा युद्धे विजयो हि सुखावहः ॥१०
अग्नेस्तु ग्रसनं विप्र आग्नेयं वृद्धिकारकम् । गात्रस्य ज्वलनं विप्र शिरोवेधश्च भूतये ॥११
माल्याम्बराणां[4] शुक्लानां शस्तानां शुक्लपक्षिणाम् । सदा लाभं प्रशंसन्ति तथा विष्ठानुलेपनम् ॥१२
स्वाङ्गस्य कर्तने क्षेपे रथयाने प्रजागमः । नानाशिरोबाहुता च हस्तानां कुरुते श्रियम् ॥१३
अगम्यागमनं चैव शोकमध्ययनं तथा । देवद्विजजनाचार्यगुरुवृद्धतपस्विनः ॥१४
यद्यद्वदन्ति तत्सर्वं सत्यमेव हि निर्दिशेत् । प्रशस्तदर्शनं चैव अभिषेको नृपश्रियाः ॥१५

पूर्वक जप होमादि कर्म क्रमशः समाप्त करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार देवाधि देव सूर्य की पूजा करे और उपरांत शयनासन पर देव-देव की चिन्ता करते हुए शयन करें स्वप्न में यदि उदय कालीन सूर्य इन्द्र ध्वजा एवं चंद्र को देखता है तो उसे सभी समृद्धियां प्राप्त होती हैं, इसी भाँति दर्शनीय और बलवान् पुरुष, माला पहने गाय, वेणु की ध्वनि, श्वेत कमल, चामर, दर्पण, सुवर्ण, तलवार, पुत्र जन्म, रुधिर का बहना सिंचन या पान करना, देखने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।१-५। श्वेतवर्ण के पूर्व दर्शन से वृद्धि, घी में भीगे हुए प्रजापति के दर्शन से पुत्र एवं अच्छे वृक्षों पर चढ़ना, देखने से शीघ्र ऐश्वर्य प्राप्त होता है । तथा इसी प्रकार अपने मुख से भैंस, सिंहिनी और गायों के दुहे जाने को देखने से भी ।६-७। नाभि में धनुष या बाणों का शीघ्र प्रवेश होकर निकल जाना अथवा इनके द्वारा सिंह, गाय एवं सर्पों का वध करने या स्वयं इनका भक्षण करने एवं अपने शिर को अग्नि में डालने को देखने से शीघ्र लक्ष्मी प्राप्ति होती है । इसी भाँति चाँदी के पात्र या सुवर्ण के पात्र एवं कमल पत्र में खीर के भोजन करने को देखने से बल तथा जुए, वाद विवाद और युद्ध में विजय देखने से अत्यन्त सुख, अग्नि के भक्षण से जठराग्नि की वृद्धि, शरीर के जलने या शिर के बंधन से ऐश्वर्य, वस्त्र एवं माला, शुद्ध वर्ण के पक्षी तथा शरीर में विष्ठा (मल) लगने से अत्यन्त लाभ, अपने अंगो के कटने, उन्हें दूर बहा देनें एवं रथ पर बैठने से संतान की उत्पत्ति, अनेक शिर, बाहु एवं हाथों के होने से अगम्या स्त्री का संभोग, शोक और अध्ययन करने से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ।८-१४। इसी प्रकार देवता, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्ध और तपस्वी स्वप्न में जो कुछ कहते हैं उसे सत्य मानना चाहिए । राजा के अभिषेक से सौम्य दर्शन, शिरच्छेदन या उसके कई टुकड़े होने से राज्य

---

१. शक्तम् । २. आशु सीमागतश्चैव । ३. ततश्चन्द्रोपमो भवेत् । ४. सुरावारणशल्याना वस्त्राणा युक्तपक्षिणाम् ।

स्याद्राज्यं शिरश्छेदेन बहुधा स्फुटितेन तु । रुदितं हर्षसम्प्राप्त्यै राज्यं निगडबन्धने ॥१६
तुरङ्गं वृषभं पद्मं राजानां श्वेतकुञ्जरम् । महदैश्वर्यमाप्नोति योभीकश्चाधिरोहति ॥१७
प्रसनानो ग्रहांस्तारा महीं च परिवर्तयन् । उन्मूलयन्पर्वतांश्च राज्यलाभमवाप्नुयात् ॥१८
देहान्निष्क्रान्तिरन्त्राणां तैर्वा वृक्षस्य वेष्टनम् । पातः समुद्रसरितानैश्वर्याणि सुखानि च ॥१९
उदधिं सरितं वापि तीर्त्वा पारं प्रयाति च । अद्रिं लङ्घयतेश्चापि भवन्त्यर्थजयायुषः ॥२०
उज्ज्वला स्त्री विशेदङ्गमाशीर्वादपराः स्त्रियः । भवत्यर्थागमः शीघ्रं कृमिभिर्यदि भक्ष्यते ॥२१
स्वप्ने स्वप्न इति ज्ञातं दृष्टप्रकथनं तथा । मङ्गलानां च सर्वेषां शुभं दर्शनमेव च ॥२२
संयोगश्चैव मङ्गल्यैरारोग्यधनकारकः । ऐश्वर्यराज्यलाभाय यस्मिन्स्वप्न उदाहृतः ॥२३
तैर्दृष्टै रोगिणो रोगान्मुच्यन्ते नात्र संशयः । न स्वप्नं शोभनं दृष्ट्वा स्वप्यात्प्रातश्च कीर्तयेत् ॥
राजभोजकविप्रेभ्यः शुचिभ्यश्च शुचिर्नरः ॥२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे स्वप्नदर्शनवर्णनं नामैकोनसप्ततिमोऽध्यायः ।६९।

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

सर्षपसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततो मध्याह्नसमये स्नातः प्रयतमानसः । तथैव देवान्विधिवत्पूजयित्वा यथासुखम्[1] ॥१

हर्ष से रुदन एवं वेणी में बंधने से राज्य-लाभ, घोड़े, बैल, कमल, राजा, श्वेत वर्ण के गज, एवं अभीक (कामुक, स्वामी एवं निर्दयी) के आरोहण करने से महान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती।१५-१७। ग्रह एवं तारा निगलने पृथिवी के उलटने और पर्वतों के उखाडने से राज्य-लाभ, देह से आँत निकालने अथवा उसे वृक्षों में लपटने, समुद्र या नदी में गिरने से ऐश्वर्य एवं सुख समुद्र या नदी को पार कर पुनः वापस आने और पर्वत के लाँघने से जय तथा आयु की प्राप्ति होती है।१८-२०। उज्ज्वल वर्ण की स्त्री का अंग में प्रविष्ट होने, आशीर्वाद, देती हुई स्त्रियाँ और कीडों द्वारा भक्षित होने से शीघ्र धन की प्राप्ति होती है।२१। स्वप्न में स्वप्न देखने का ज्ञान होने अथवा जागने पर स्वप्नों के कहने, मांगलिक दर्शन, मंगल होने आदि देखने से आरोग्य एवं सम्पत्ति का लाभ होता है। एवं जिस स्वप्न का फल ऐश्वर्य पूर्ण राज्य तथा लाभ बताया गया है यदि उसे रोगी देखें तो निश्चित उसका रोग नष्ट हो जाये। इस प्रकार सुन्दर स्वप्न को देखकर फिर निद्रित न होना चाहिए और प्रातः काल स्नान आदि से शुद्ध होकर सदाचारी राजा भोजक एवं ब्राह्मणों को उसे सुनाना चाहिए।२२-२४

इति श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में स्वप्न दर्शन वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।६९।

अध्याय ७०

सर्षप सप्तमी वर्णन

ब्रह्मा बोले—पश्चात् मध्याह्न में स्नान संध्या से निवृत्त होकर विधान पूर्वक सूर्य एवं अन्य

---

१. दिवाकरम् ।

सम्यक्कृतजपो मौनी नरो हुतहुताशनः । निष्क्रम्य देवायतनाद्भोजकान्भोजयेत्ततः[१] ॥२
तथा पुराणविदुष इतिहासविदो द्विजान् । तथा वेदविदश्चैव दिव्यान्भौमांश्च सुव्रत ॥३
रक्तानि वस्त्राणि तथा च गावः सुगन्धमाल्यादि हविष्यमन्नम् ।
पयस्विनी चाप्यथ भोजकाय देया तथान्यत्प्रियमात्मनो यत् ॥४
भवेदलाभो यदि भोजकानां विप्रास्तदार्हन्ति जयोपजीविनः ।
ये मन्त्रविद्ब्राह्मणपाठकाश्च ये येऽपि सामाध्ययनेषु युक्ताः ॥५
प्रथमं भोजका भोज्याः पुराणविदुषैः[२] सह । तेषामृते मन्त्रविदस्तथा वेदविदो द्विजाः ॥६
कृत्वैवं सप्तमीः सप्त नरो भक्त्या समन्वितः । श्रद्दधानोऽनसूयश्च अनन्तं प्राप्नुयात्सुखम्[३] ॥७
दशानामश्वमेधानां कृतानां यत्फलं लभेत् । तत्फलं सप्तमीः सप्त कृत्वा प्राप्नोति मानवः ॥८
दुष्प्रापं नास्ति तल्लोके अनया यन्न लभ्यते । न च रोगस्त्यसौ लोके अनया यो न शाम्यति ॥९
कुष्ठानि चापि सर्वाणि दुरुच्छेद्यान्यपि ध्रुवम् । अपयान्ति यथा नागा गरुडस्य भयार्दिताः ॥१०
व्रतनियमतपोभिः सप्तमीः सप्तएवं विधिवदिह हि कृत्वा मानवो धर्मशीलः ।
श्रुतधनसुतभाग्यारोग्यपुण्यैरुपेतो व्रजति तदनुलोकं शाश्वतं तिग्मरश्मेः ॥११
इमं विधिं द्विजश्रेष्ठ श्रुत्वा कृत्वा च मानवः । सहस्ररश्मिं स विशेषान्नात्र कार्या विचारणा ॥१२

देवताओं की पूजा, जप एवं मौन रहकर हवन का कार्य समाप्त करके मन्दिर से बाहर भोजक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।१-२। तदुपरांत पौराणिक, ऐतिहासिक तथा वैदिक ब्राह्मणों को भोजन कराना बताया गया है ।३। हे सुव्रत ! पुनः रक्त वस्त्र, गाय, सुगन्ध (इत्र) माला, हविष्यान्न पयस्विनी गाय और अपनी अत्यन्त प्रिय वस्तु भोजक को समर्पित करे ।४। यदि भोजकों के अभाव में जयोपजीवी ब्राह्मण हों जो मंत्रवेत्ता, वेदपाठी एवं सामवेद का पाठन करते हैं तो उनके स्थान पर नियुक्त करें ।५। सर्वप्रथम भोजकों को पौराणिकों के साथ भोजन कराने का विधान है और उनके अभाव में मंत्रवेत्ता एवं वैदिक ब्राह्मणों का विधान है ।६। इस प्रकार श्रद्धा और असूया रहित होकर सातों सप्तमी का विधान करके मनुष्य अनन्त सुख की प्राप्ति करता है ।७। दश अश्वमेध यज्ञ के करने से जो फल प्राप्त होता है, उसे सातों सप्तमी के (व्रत-विधान) द्वारा मनुष्य को प्राप्त होना बताया गया है ।८। इस लिए इस विधान को सुसम्पन्न करने वाले व्यक्ति के लिए कोई वस्तु दुष्प्राप्य इस जगत् में नहीं रहती है तथा कोई ऐसा रोग नहीं है जिसकी इसके द्वारा शान्ति न हो सके ।९। सभी भाँति के कुष्ठ रोग जो दुर्निवार माने गये हैं वे गरुड़ से भयभीत नाग की भाँति (इसके द्वारा) अवश्य नष्ट हो जाते हैं ।१०। व्रत, नियम एवं तप के द्वारा इन सातों सप्तमी के विधान करने के नाते वह धार्मिक मनुष्य सुत, सौभाग्य, आरोग्य एवं पुण्य की प्राप्ति करके पश्चात् तीक्ष्ण रश्मि (सूर्य) के लोक की प्राप्ति करता है ।११

हे द्विजश्रेष्ठ ! इस विधान के सुनने और सुसम्पन्न करने से मनुष्य सूर्य में प्रविष्ट होता है, इसमें विचार करने कीआवश्यकता नहीं है ।१२। इसीलिए देव, मुनि तथा पौराणिक आदि सभी लोग इसका

---

१. नरः । २. आर्षोऽयं पाठः सर्वेषु पुस्तकेषूपलभ्यते । ३. फलम् ।

सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणज्ञैरिदं श्रुतम् । सर्वे ते परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम् ।।१३
इदमाख्यानमार्षेयं यन्मयाभिहितं तव । सूर्यभक्ताय दातव्यं नेतराय[1] कदाचन ।।१४
यश्चैतच्छ्रावयेन्नित्यं यश्चैतच्छृणुयान्नरः । स सहस्राचिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः ।।१५
मुच्येदार्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम् । जिज्ञासुर्लभते कामान्भक्तः[2] सूर्यगतिं लभेत् ।।१६
क्षेमेण गच्छतेऽध्वानं यस्त्विदं पठतेऽध्वनि । यो यं प्रार्थयते कामं स तं प्राप्नोति च ध्रुवम् ।।१७
एकान्तभावोपगत एकान्ते तुसमाहितः । प्राप्यैतत्परमं गुह्यं भूत्वा सूर्यव्रतो नरः ।।१८
प्राप्नोति परमं स्थानं भास्करस्य महात्मनः । लग्नगर्भा प्रमुच्येत गर्भिणी जनयेत्सुतम् ।।१९
वन्ध्या प्रसवनाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितम् । एवमेतन्ममाख्यातं[3] भास्करेणामितौजसा ।।
मयापि तव माख्यातं भक्त्या भानोरिदं द्विज ।।२०
पूजनीयस्त्वया भानुः सर्वपापोपशान्तये । स हि धाता[4] विधाता च सर्वस्य जगतो गुरुः ।।२१
उद्यन्यः कुरुते नित्यं जगद्वितिमिरं करैः । द्वादशात्मा स देवेशः प्रीयतां तेऽदितेः सुतः ।।२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यमाहत्म्ये सर्षपसप्तमीवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।७०।

ज्ञान रखते हुए परमात्मा सूर्य की पूजा करते हैं ।१३। इस प्रकार इस आर्षेय (ऋषियों) के कहे हुए उपाख्यान को जो सूर्य के भक्तों के अतिरिक्त किसी को कभी देने (बताने) योग्य नहीं है, मैनें तुम्हें बता दिया ।१४। इस लिए जो मनुष्य इसे नित्य सुनता या सुनाता है, वह सहस्र किरण वाले (सूर्य) में निःसंदेह प्रविष्ट होता है । अर्थात् सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है ।१५। एवं इस कथा को आरंभ से सुनकर आर्त रोग-मुक्त, जिज्ञासु सफल मनोरथ और भक्त सूर्य की गति प्राप्त करते हैं ।१६। इस भाँति यात्री गण भी मार्ग में इसके द्वारा अपने मार्ग को मंगलमय बनाते हुए जिस जिस वस्तुओं की अभिलाषा करते हैं, उसे वे निश्चित प्राप्त होते हैं ।१७। यदि इस उत्तम और गुह्य (व्रत) की प्राप्ति कर मनुष्य, दृढ़ भावना पूर्वक एकान्त स्थान में भली भाँति ध्यान लगाकर (सूर्य का) व्रत विधान करे तो उसे महात्मा भास्कर के परम स्थान की प्राप्ति होती है और प्रसव करने वाली (स्त्री) प्रसव-पीड़ा से शीघ्र मुक्ति एवं गर्भिणी पुत्र उत्पन्न करती है ।१८-१९। एवं सूर्य के अमेय तेज द्वारा वंध्या (स्त्री) पुत्र पौत्रादिकों की प्राप्ति करती है । हे द्विज ! इस प्रकार तुम्हारी भक्ति के वश होकर मैंने अमेय तेज वाले सूर्य के इस आख्यान को तुम्हें सुना दिया जो उन्होंने मुझसे कहा था ।२०। अतः तुम भी भानु की पूजा अवश्य करो, इससे समस्त पापों की शांति हो जायेगी । क्योंकि वहीं सम्पूर्ण जगत् के धाता, विधाता एवं गुरु हैं ।२१। तथा उदय होते ही अपनी किरणों द्वारा जो समस्त जगत् को अंधेरे से मुक्त करता है, वही द्वादशात्मा, देवाधिदेव एवं अदिति पुत्र सूर्य तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हों ।२२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य माहात्म्य में सर्षप सप्तमी वर्णन नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७०।

---

१. नाभक्ताय । २. भक्त्या स्वर्गगतिं लभेत् ।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मप्रोक्तसूर्यनामवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नामभिः संस्तुतो देवो यैरर्कः परितुष्यति । तानि ते कीर्तयाम्येष यथावदनुपूर्वशः ॥१
नमः सूर्याय नित्याय रवये कार्यभानवे । भास्कराय मतङ्गाय मार्तण्डाय विवस्वते ॥२
आदित्यायादिदेवाय नमस्ते रश्मिमालिने । दिवाकराय दीप्ताय अग्नये मिहिराय च ॥३
प्रभाकराय मित्राय नमस्तेऽदितिसम्भव । नमो गोपतये नित्यं[1] दिशां च पतये नमः ॥४
नमो धात्रे विधात्रे च अर्यम्णे वरुणाय च । पूष्णे भगाय मित्राय पर्जन्यायांशवे नमः ॥५
नमो हितकृते नित्यं धर्माय तपनाय च । हरये[2] हरिताश्वाय विश्वस्य पतये नमः ॥६
विष्णवे ब्रह्मणे नित्यं त्र्यम्बकाय तथात्मने । नमस्ते सप्तलोकेश नमस्ते सप्तसप्तये ॥७
एकस्मै हि नमस्तुभ्यमेकचक्ररथाय च । ज्योतिषां पतये नित्यं सर्वप्राणभृते नमः ॥८
हिताय सर्वभूतानां शिवायार्तिहराय च । नमः पद्मप्रबोधाय नमो वेदादिमूर्तये[3] ॥९
काधिजाय[4] नमस्तुभ्यं नमस्तारासुताय च । भीमजाय नमस्तुभ्यं पावकाय च वै नमः ॥१०
धिषणाय[5] नमोनित्यं नमः कृष्णाय नित्यदा । नमोऽस्त्वदितिपुत्राय नमो लक्ष्याय नित्यशः ॥११
एतान्यादित्यनामानि मया प्रोक्तानि वै पुरा । आराधनाय देवस्य सर्वकामेन सुव्रत ॥१२

अध्याय ७१

ब्रह्मप्रोक्त सूर्य-नामों का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जिन नामों के उच्चारण द्वारा स्तुति करने पर सूर्य प्रसन्न होते हैं, क्रमशः उन्हें मैं बता रहा हूँ।१

सूर्य, रवि, कार्यभानु, भास्कर, मतंग, मार्तण्ड, विवस्वान को नित्य नमस्कार है।२। आदित्य, आदि देव, रश्मिमाली, दिवाकर, दीप्त, अग्नि, मिहिर को नित्य नमस्कार है।३। प्रभाकर, मित्र, अदिति-संभव, गोपति, दिशापति को नित्य नमस्कार है।४। धाता, विधाता, अर्यमा, वरुण, पूजा, भग, मित्र, पर्जन्य, अंशु को नित्य नमस्कार है।५। हितकृत, धर्म, तपन, हरि, हरिताश्व, विश्वपति को नित्य नमस्कार है।६। ब्रह्मा, त्र्यम्बक, आत्मा, सप्तलोकेश, सप्तसप्ति को नित्य नमस्कार है।७। एक एक चक्ररथ, ज्योतिष्पति, सर्वप्राणियों के पोषण करने वाले तुम्हें नित्य नमस्कार है।८। समस्त प्राणियों के हितैषी शिव, अर्तिहर, पद्म-प्रबोधक, वेदादिमूर्ति भीम पुत्र तारासुत, कविज (ब्रह्मपुत्र), पावक, धिषण, कृष्ण, अदिति पुत्र एवं लक्ष्य को नित्य नमस्कार है।९-११। इस प्रकार हे सुव्रत ! सूर्य के इन नामों को जो सभी भाँति के मनोरथ सफल करने के लिए सूर्य देव की आराधना के लिए बताये गये हैं, मैंने पहले ही

---

१. तुभ्यम्। २ हराय। ३. द्वादशमूर्तये। ४. भीमजाय, कविजाय। ५. विकटाय।

सायं प्रातः शुचिर्भूत्वा यः पठेत्सुसमाहितः । स प्राप्नोत्यखिलान्कामान्यथाहं प्राप्तवान्पुरा ।।१३
प्रसादात्तस्य देवस्य भास्करस्य महात्मनः । श्रीकामः श्रियमाप्नोति धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ।।१४
आतुरो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् । राज्यार्थी राज्यमाप्नोति कामार्थी काममाप्नुयात् ।।१५
एतज्जप्यं रहस्यं च संध्योपासनमेव च । एतेन जपमात्रेण नरः पापात्प्रमुच्यते ।।१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे ब्रह्मप्रोक्तसूर्यनामवर्णनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।७१।

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

दुर्वासाशापविसर्जनवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्थं ब्रह्मवचो योगी श्रुत्वा राजन्दिवाकरम् । व्योमरूपं समाराध्य गतः सूर्यसलोकताम् ।।१
तथा त्वमपि राजेन्द्र पूजयित्वा विभावसुम् । गमिष्यसि परं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ।।२

शतानीक उवाच

आद्यं स्थानं रवेः कुत्र जम्बूद्वीपे महामुने । यत्र पूजां विधानोक्तां प्रतिगृह्णात्यसौ रविः ।।३

बता दिया था ।१२। प्रातः काल और सायंकाल पवित्र होकर ध्यानपूर्वक जो इसका पाठ करता है मेरी ही भाँति उसके सभी मनोरथ सफल होते हैं ।१३। महात्मा सूर्य देव की प्रसन्नता के फलस्वरूप धर्मार्थी को धर्म तथा आतुर रोग से बधा हुआ बन्धन मुक्त, राज्यार्थी राज्य एवं धमार्थी काम की प्राप्ति करते हैं ।१४-१५। ये ही संध्योपासन है यही रहस्य है एवं यही जप करने योग्य हैं क्योंकि इनके जपमात्र से मनुष्य पाप मुक्त होते हैं ।१६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में ब्रह्म प्रोक्त सूर्य नाम वर्णन नामक एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७१।

अध्याय ७२

शाम्ब के लिए दुर्वासा द्वारा शाप विसर्जन का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! इस भाँति ब्रह्मा की बातें सुनकर उस योगी ने आकाशरूपी सूर्य की आराधना करके उनके सालोक्य रूपी मोक्ष की प्राप्ति की ।१। हे राजेन्द्र ! तुम भी सूर्य की उपासना करके देव-दुर्लभ उस उत्तम स्थान की अवश्य प्राप्ति करोगे ।२

शतानीक ने कहा—हे महामुने ! इस जम्बू द्वीप में सूर्य का प्रथम स्थान, जहाँ रहकर वे विधान पूर्वक की गई पूजा को स्वीकार करते हैं, कहाँ है ।३

सुमन्तुरुवाच

स्थानानि त्रीणि देवस्य द्वीपेऽस्मिन्भास्करस्य[1] तु । पूर्वमिन्द्रवनं[2] नाम तथा मुण्डीरमुच्यते ॥४
कालप्रियं[3] तृतीयं तु त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । तथान्यदपि ते वच्मि यत्पुरा ब्रह्मणोदितम् ॥५
चन्द्रभागातटे नाम्ना पुरं यत्साम्बसंज्ञितम्[4] । द्वीपेऽस्मिञ्छाश्वतं स्थानं यत्र सूर्यस्य नित्यता ॥६
प्रीत्या साम्बस्य तत्रार्को जनस्यानुग्रहाय च । तत्र द्वादशभागेन मित्रो मैत्रेण चक्षुषा ॥७
अवलोकञ्जगत्सर्वं श्रेयोऽर्थं तिष्ठते[5] सदा । प्रयुक्तां विधिवत्पूजां गृह्णाति भगवान्स्वयम् ॥८

शतानीक उवाच

कोऽयं[6] साम्बः सुतः कस्य कस्य प्रीतो दिवाकरः । यस्य चायं सहस्रांशुर्वरदः पुण्यकर्मणः[7] ॥९

सुमन्तुरुवाच

य एते द्वादशादित्या विराजन्ते महाबलाः । तेषां यो विष्णुसंज्ञस्तु सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥१०
इहासौ वासुदेवत्वमवाप भगवान्विभुः । तस्मात्साम्बः सुतो जज्ञे जाम्बवत्यां महाबलः ॥११
स तु पित्रा भृशं शप्तः कुष्ठरोगमवाप्तवान् । तेनायं स्थापितः सूर्यः स्वनाम्ना च पुरं कृतम् ॥१२

शतानीक उवाच

शप्तः कस्मिन्निमित्तेऽसौ पित्रा चैवात्मसम्भवः[8] । नाल्पं हि कारणं विप्र येनासौ शप्तवान्सुतम् ॥१३

सुमन्तु बोले—इस द्वीप में मित्रवन, मुण्डीर तथा कोलप्रिय नामक ये तीन स्थान सूर्य के बताये गये हैं। इसके अतिरिक्त एक और स्थान है जिसे ब्रह्मा ने पहले बताया था, उसे बता रहा हूँ।४-५। इस द्वीप में चन्द्रभागा नदी के तट पर साम्ब नामक पुरी में सूर्य सदैव रहते हैं, एवं वही उनका नित्य का आवास स्थान भी है।६। शाम्ब के प्रेमवश तथा वहाँ के निवासियों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए सूर्य अपने बारहों भागों द्वारा समस्त जगत् को उसके कल्याणार्थ प्रसन्ननेत्र से देखते हुए सदा वहीं रहते हैं। विधानपूर्वक की हुई पूजा भी वही स्वयं स्वीकार करते हैं।७-८

शतानीक ने कहा—यह शाम्ब कौन है, किसका पुत्र है, तथा वह कौन ऐसा है, जिसके पुण्य कर्मों द्वारा उसके प्रेमपात्र बनकर सूर्य ने उसे वर प्रदान किया है।९

सुमन्तु बोले—इन महाबलशाली बारहों सूर्यों में विष्णु नामक सूर्य सभी लोकों में प्रख्यात हैं।१०। उन्हीं विभु एवं भगवान् को वासुदेव कहा जाता है, और उन्हीं से जाम्बवती में उत्पन्न एवं महाबलशाली शाम्ब नामक पुत्र था।११। पिता द्वारा शाप प्रदान करने के नाते उसे कुष्ठ रोग हो गया था इसीलिए उसने अपने नाम की पुरी जिसमें उसी द्वारा सूर्य स्थापित किये गये थे, बसायी थी।१२

शतानीक ने कहा—उसके पिता ने अपने पुत्र को, जो अपने ही द्वारा उत्पन्न था, क्यों शाप दिया ? हे विप्र ! यह कोई साधारण कारण नहीं जान पड़ता, जिससे उन्होंने अपने ही पुत्र को शाप दिया।१३

---

१. भारतस्य तु । २. मित्रबलम्, मित्रवनम् । ३. कोलप्रियम् । ४. सर्वत्रसांबशब्दे शांब इति तालव्यादिः पा० । ५. विद्यते । ६. कोऽयं सांबः कुतस्तस्य यस्य नाम्ना रवेः पुरम् । ७. पृथुकर्मणः । ८. सांबः स्वयंभुवा ।

सुमन्तुरुवाच

भृणुष्वावहितो राजंस्तस्य यच्छापकारणम् । दुर्वासा नाम भगवान्रुद्रस्यांशसमुद्भवः ॥१४
अटमानः स भगवांस्त्रींल्लोकान्प्रचचार ह । अथ प्राप्तो द्वारवतीं मधुसंज्ञोचितां पुरा ॥१५
तत्रागतमृषिं दृष्ट्वा साम्बो रूपेण गर्वितः । पिङ्गाक्षं [1]क्षुधितं रूक्षं विरूपं सुकृशं तथा ॥१६
अनुकारास्पदं चक्रे दर्शने गमने तथा । दृष्ट्वा तस्य मुखं साम्बो वक्रं चक्रे तथात्मनः ॥१७
मुखं कुरुकुलश्रेष्ठ गर्वितो यौवनेन तु । अथ क्रुद्धो महातेजा दुर्वासा ऋषिसत्तमः ॥१८
साम्बं चोवाच भगवान्विधुन्वन्मुखमात्मनः । यस्माद्विरूपं मां दृष्ट्वा स्वात्मरूपेण गर्वितः ॥१९
गमने दर्शने मह्यमनुकारं समाचरः । तस्मात्तु कुष्ठरोगित्वमचिरात्त्वं गमिष्यसि ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमोकल्पे
साम्बाय दुर्वाससा शापविसर्जनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।७२।

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

साम्बकृतसूर्याराधनवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषिः । ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥१

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! ध्यानपूर्वक उसके शाप के कारण को सुनो ! (मैं कह रहा हूँ) एक दुर्वासा नामक ऋषि, जो रुद्र के अंश से समुत्पन्न हैं, तीनों लोकों में विचरते हुए द्वारवती (द्वारका) पुरी में आये जो पूर्व में मधु नाम से ख्यात थी।१४-१५। आये हुए ऋषि को देखकर साम्ब ने अपने रूप-सौन्दर्य के अभिमान वश ऋषि की कृशित शरीर के अंगों को, जो पीले भूखे, रूखे एवं विरूप थे, अनुकरण करने लगा—उनके मुख की भाँति अपना मुख बनाकर उनके देखने की भाँति देखने एवं चलने की भाँति चलने लगा।१६-१७। हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! उसने अपनी युवावस्था में मदान्ध होकर ही ऐसा किया था। इसके पश्चात् महातेजस्वी एवं ऋषि श्रेष्ठ दुर्वासा ने क्रुद्ध होकर अपने मुख को हिलाते हुए शाम्ब से कहा—अपने रूप-सौन्दर्य के अभिमानवश तुमने मुझे विरूप देखकर देखने एवं चलने में मेरा अनुकरण (नकल) किया है, इसीलिए तुम्हें अति शीघ्र कुष्ठ रोग हो जायेगा।१८-२०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में शाम्ब के लिए दुर्वासा द्वारा शाप विसर्जन नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।७२।

अध्याय ७३

शाम्ब द्वारा सूर्य की आराधना का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसी समय ब्रह्मा के मानस पुत्र भगवान् नारद का भी आगमन हुआ जो तीनों

---

१. जटिलम्।

सर्वलोकचरः सोऽथ अटमानः समन्ततः । वासुदेवं स वै द्रष्टुं नित्यं द्वारवतीं पुरीम् ।।२
आयाति ऋषिभिः सार्धं क्रोधनो मुनिसत्तमः । अथागच्छति तस्मिंस्तु सर्वे यदुकुमारकाः ।।३
प्रद्युम्नप्रभृतयो ये प्रह्वाश्चावनताः स्थिताः । अभिवाद्यार्घ्यपाद्याभ्यां पूजां चक्रुः समन्ततः ।।४
साम्बस्त्ववश्यभावित्वात्तस्य शापस्य कारणम् । अवज्ञां कुरुते नित्यं नारदस्य महात्मनः ।।५
रतः क्रीडासु वै नित्यं रूपयौवनगर्वितः । अविनीतं तु तं दृष्ट्वा चिन्तयामास नारदः ।।६
अस्याहमविनीतस्य करिष्ये विनयं शुभम् । एवं सञ्चिन्तयित्वा तु वासुदेवमथाब्रवीत् ।।७
इमाः षोडशसाहस्रयः स्त्रियो यादवसत्तम । सर्वासां हि सदा साम्बे भावो देव समाश्रितः ।।८
रूपेणाप्रतिमः साम्बो लोकेस्मिन्सचराचरे । सदा ह्रीच्छन्ति [1]तास्तस्य दर्शनं चापि हि स्त्रियः ।।९
श्रुत्वैवं नारदाद्वाक्यं चिन्तयामास केशवः । यदेतन्नारदेनोक्तमन्यदत्र तु किं भवेत् ।।१०
वचनं श्रूयते लोके चापल्यं स्त्रीषु विद्यते । श्लोकौ चेमौ पुरा गीतौ चित्तज्ञैर्योषितां द्विजैः ।।११
पौंश्चल्याच्चलचित्तत्वान्निःस्नेहाच्च स्वभावतः । रक्षिताः सर्वतो ह्येता विकुर्वन्ति हि भर्तृषु ।।१२
नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि निश्चयः । सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ।।१३

लोकों में ख्याति प्राप्त एवं विचरते रहते हैं, और भगवान् वासुदेव (कृष्ण) के दर्शन करने के लिए नित्य द्वारकापुरी में ऋषियों के साथ आया करते हैं। तदुपरांत उस समय पर भी उनके आने पर प्रद्युम्न आदि कुमारों ने प्रतिदिन की भाँति अभिवादन, अर्घ्य एवं पाद्य प्रदान कर उनकी पूजा की।१-४। उनके द्वारा शाप अवश्यंभावी होने के नाते शाम्ब महात्मा नारद का सदैव अपमान ही करता रहा। अपने रूप एवं यौवन के मद से उन्मत्त हो वह सर्वदा क्रीडा (खेल) में निमग्न रहता था। ऐसे अविनयपूर्ण उसके व्यवहार को देखकर नारद ने सोचा कि—मैं ही इस अविनीत को विनीत बनाऊँ तभी इसका कल्याण हो सकेगा। ऐसा विचार करते हुए उन्होंने जानकर वासुदेवजी से कहा।५-७

हे यादव सत्तम! आपकी ये सोलह सहस्र स्त्रियाँ साम्ब से प्रेम करती हैं।८। क्योंकि इस चराचर लोक में उसके समान कोई सुन्दर नहीं है, अतः ये स्त्रियाँ भी उसके दर्शन के लिए सदैव लालायित रहा करती हैं।९। नारद की ऐसी बातें सुनकर कृष्ण ने अपने मन में सोचा कि नारद की कही हुई बात असत्य नहीं हो सकती, और लोक में सुना भी जाता है कि स्त्रियाँ चपल होती हैं तथा (स्त्रियों के) मन की गति को पहचानने वाले विद्वान् ब्राह्मणों का भी कहना है कि—[1]स्वभावतः व्यभिचारिणी, चपल एवं स्नेहहीन होने के नाते स्त्रियाँ (पुरुष द्वारा) भली-भाँति रक्षित रहने पर भी अपने पति से असन्तुष्ट हो जाती हैं।१०-१२। इस भाँति रूप-परीक्षा, अवस्था, सुरूप और विरूप की ओर इनका कुछ भी ध्यान नहीं रहता है, क्योंकि ये केवल पुरुष के आकारमात्र को चाहती हैं।१३

---

१. सांबस्य।

१. उक्त के दो प्राचीन श्लोक यहाँ उद्धृत हैं।

सुमन्तुरुवाच

मनसा चिन्तयन्नेव कृष्णो नारदमब्रवीत् । न ह्यहं श्रद्दधाम्येतद्यदेतद्भाषितं त्वया ।।१४
ब्रुवाणमेवं देवं तु नारदो वाक्यमब्रवीत्[1] । तथाहं तत्करिष्यामि यथा श्रद्धास्यते भवान् ।।१५
एवमुक्त्वा ययौ[2] स्वर्गं नारदस्तु यथागतः । ततः कतिपयाहोभिर्द्वारकां पुनरभ्यागात् ।।१६
तस्मिन्नहनि देवोऽपि सहान्तःपुरिकैर्जनैः । अनुभूय जलक्रीडां पानमासेवते रहः ।।१७
[3]रम्ये रैवतकोद्याने नानाद्रुमविभूषिते । सर्वर्तुकुसुमैर्नित्यं वासिते सर्वकानने ।।१८
नानाजलजफुल्लाभिर्दीर्घिकाभिरलङ्कृते । हंससारससंघुष्टे चक्रवाकोपशोभिते ।।१९
तस्मिन्स रमते देवः स्त्रीभिः परिवृतस्तदा । हारनूपुरकेयूररशनाद्यैर्विभूषणैः ।।२०
भूषितानां वरस्त्रीणां चार्वङ्गीनां विशेषतः । ताभिः सम्पीयते पानं शुभगन्धान्वितं शुभम् ।।२१
एतस्मिन्नन्तरे बुद्ध्वा मद्यपानात्ततः स्त्रियः । उवाच नारदः साम्बं साम्बोत्तिष्ठ कुमारक ।।२२
त्वां समाह्वायते देवो न युक्तं स्थातुमत्र ते । तद्वाक्यार्थमबुद्ध्वैव नारदेनाथ चोदितः ।।२३
गत्वा तु सत्वरं साम्बः प्रणाममकरोत्प्रभोः[4] । साष्टाङ्गं च हरेः साम्बो विधिवद्वल्लभस्य च ।।२४
एतस्मिन्नन्तरे तत्र यास्तु वै स्वल्पसात्त्विकाः । तं दृष्ट्वा सुन्दरं साम्बं सर्वाश्चुक्षुभिरे स्त्रियः ।।२५

सुमन्तु ने कहा—इस प्रकार अपने मन में विचार कर कृष्ण ने नारद से कहा—आपने जो कुछ कहा है, उस पर मुझे सहसा विश्वास नहीं हो रहा है ।१४। नारद ने उनसे कहा—मैं उसके लिए ऐसा ही (प्रयत्न) करूँगा, जिससे आपको उस बात में विश्वास होगा ।१५। ऐसा कहकर नारद स्वर्ग को, जिस मार्ग से आये थे, चले गये । कुछ दिनों के अनन्तर द्वारकापुरी में फिर उनका आगमन हुआ ।१६। उस दिन भगवान् कृष्ण अन्तःपुर की सभी स्त्रियों के साथ जल क्रीड़ा समाप्त करके एकान्त में पान का सेवन कर रहे थे ।१७। रैवतक के उस रमणीक बगीचे में, जो भाँति-भाँति के वृक्षों से अलंकृत, सभी ऋतुओं के पुष्पों द्वारा नित्य सुगंधित था, एवं भाँति-भाँति के खिले हुए कमल, हंस, सारस और चक्रवाक पक्षियों से सुशोभित बावलियों से परिपूर्ण था ।१८-१९। कृष्ण देव स्त्रियों को साथ लेकर सदैव क्रीड़ा करते थे और वहाँ हार, नूपुर, केयूर (बाँह में पहना जाता है), एवं रशना (करधनी) आदि आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित विशेषकर परम सुन्दरियों के साथ सुगन्धित पान भी करते थे ।२०-२१

इसके बाद जब स्त्रियाँ मद्यपान से प्रबुद्ध हो गयीं तब नारद ने (लौटकर) साम्ब से कहा—हे कुमार साम्ब ! शीघ्र चलो, तुम्हें महाराज (कृष्ण) बुला रहे हैं । अतः यहाँ तुम्हारा रहना उचित नहीं है। नारद की बातों को भली-भाँति बिना समझे-बूझे साम्ब उनसे प्रेरित होकर शीघ्र वहाँ गया और अपने प्रिय पिता को सविधि साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगा ।२२-२४। उसी समय अल्प सत्त्वगुण वाली सभी स्त्रियों के मन में जिन्होंने उसे कभी नहीं देखा था, सौन्दर्यपूर्ण साम्ब को देखकर क्षोभ (विकार) उत्पन्न

---

१. प्रत्युवाचह । २. भूयः । ३. पुण्यरैवतकोद्याने नानारत्नविभूषिते । ४. पितुः ।

न स दृष्टः पुरा याभिरन्तःपुरनिवासिभिः[1] । मद्यदोषात्ततस्तासां स्मृतिलोपात्तथा नृप ।।२६
स्वभावतोल्पसत्त्वानां जघनानि विसुस्रुवुः । श्रूयते चाप्ययं श्लोकः पुराणप्रथितः क्षितौ ।।२७
ब्रह्मचर्येऽपि वर्तन्त्याः साध्व्या ह्यपि च श्रूयते । हृद्यं हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः संक्लिद्यते स्त्रियाः ।।२८
लोकेऽपि दृश्यते ह्येतन्मद्यस्यात्यर्थसेवनात् । लज्जां मुञ्चन्ति निःशङ्का ह्रीमत्यो ह्यपि हि स्त्रियः ।।२९
समांसैर्भोजनैः स्निग्धैः पानैः सीधुसुरासवैः । गन्धैर्मनोज्ञैर्वस्त्रैश्च[2] कामः स्त्रीषु विजृम्भते ।।३०
[3]सीधुप्रयुक्तं शुक्रेण सततं साधु हीच्छता । मद्यं न पेयमत्यर्थं पुरुषेण विपश्चिता ।।३१
नारदोप्यथ तं साम्बं प्रेषयित्वा त्वरान्वितः । आजगामाथ तत्रैव साम्बस्यानुपदेन तु ।।३२
आयान्ते ताश्च तं दृष्ट्वा प्रियं सौमनसमृषिम् । सहसैवोत्थिताः सर्वाः स्त्रियस्तं मदविह्वलाः ।।३३
तासामथोत्थितानां तु वासुदेवस्य पश्यतः । भित्त्वा वासांसि शुभ्राणि पत्रेषु पतितानि तु ।।३४
ता दृष्ट्वा तु हरिः क्रुद्धः सर्वास्ता शप्तवान्स्त्रियः । यदस्माद्गतानि चेतांसि मां मुक्त्वान्यत्र च स्त्रियः ।।३५
[4]तस्मात्पतिकृताँल्लोकानायुर्षोन्ते न यास्यथ । पतिलोकपरिभ्रष्टाः स्वर्गमार्गात्तथैव च ।।३६
भूत्वा[5] चाशरणा यूयं दस्युहस्तं गमिष्यथ ।।३७

सुमन्तुरुवाच

शापदोषात्ततस्तस्मात्ताः स्त्रियः स्वर्गते हरौ । हृताः पाञ्चनदैश्चौरैरर्जुनस्य तु पश्यतः ।।
अल्पसत्त्वास्तु यास्त्वासन्गतास्ता दूषणं स्त्रियः ।।३८

हो गया ।२५। हे नृप ! मद्य पान के कारण स्मृति नष्ट हो जाने से तथा अल्प सत्व के नाते स्वभावतः उनकी जाँघे भीग गईं । पुराणों में यह बात प्रसिद्ध है कि ब्रह्मचारिणी होती हुई सती स्त्रियों की भी योनि, अत्यन्त मनोहर पुरुष को देखकर (मैथुन के लिए) तर (रसपूर्ण) होने लगती हैं ।२६-२८। लोक में देखा भी जाता है कि अत्यन्त मद्य पान करने के नाते लज्जाशील स्त्रियाँ अपनी लाज छोड़ कर निर्भय हो जाती हैं। क्योंकि मांस भोजन, उत्तम आसव का पान एवं सुगन्धपूर्ण उत्तम वस्त्रों का धारण करना ये सभी स्त्रियों के कामोत्पादक बताये गये हैं ।२९-३०। लोगों के कल्याणार्थ शुक्राचार्य ने भी कहा है कि—विद्वानों को अत्यन्त मद्य पान न करना चाहिए ।३१। पश्चात् साम्ब को वहाँ भेजकर नारद भी उसके पीछे ही शीघ्र वहाँ पहुँचे ।३२। उत्तम एवं प्रिय नारद ऋषि को वहाँ आये हुए देखकर वे स्त्रियाँ जो (मद्य) पान से विह्वल (नशे में चूर) हो रही थीं, (प्रणामार्थ) शीघ्र उठकर खड़ी हो गईं ।३३। खड़ी होने पर उनके स्खलित वीर्य का बूँद वस्त्रों से चूकर नीचे पत्तों पर गिर पड़ा । उसे देखकर कृष्ण ने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया कि—मुझे त्याग कर तुम्हारे मन औरों में आसक्त हुए इसलिए तुम्हें पतिलोक एवं स्वर्गमार्ग की प्राप्ति अंत में हो सकेगी । और पतिलोक तथा स्वर्ग से भ्रष्ट होकर उस समय अनाथ होने के नाते तुम्हें चोरों के अधीन रहना पड़ेगा ।३४-३७

सुमन्तु बोले—कृष्ण के स्वर्ग प्रस्थान करने के पश्चात् उन स्त्रियों का शापवश अर्जुन के देखते ही पाँचनद (पंजाब) के चोरों ने अपहरण कर लिया । केवल अल्पसत्व होने के नाते उन्हें इस दोष का भागी

---

१. क्लीबभाव आर्षः । २. माल्यैश्च । ३. साधु प्रयुक्तम् । ४. तस्मात्परिहताश्चांते न पेश्यत च मां पुनः । ५. कृत्वा ह्यविनयं यूयं दस्युहस्तं गमिष्यथ ।

रुक्मिणी सत्यभामा च तथा जाम्बवती प्रिया । नैता गता दस्युहस्तं स्वेन सत्त्वेन रक्षिताः ।।३९
शप्त्वैव ताः स्त्रियः कृष्णः साम्बमप्यशपत्ततः । यस्मादतीव ते कान्तं रूपं दृष्ट्वा इमाः स्त्रियः ।।४०
क्षुब्धाः सर्वा यतस्तस्मात्कुष्ठरोगमवाप्नुहि । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा साम्बः कृष्णस्य भारत ।।४१
उवाच प्रहसन्राजन्संस्मरन्नृषिभाषितम् । अनिमित्तमहं तात भावदोषविवर्जितः ।।
शप्तो न मेऽत्र वै क्रुद्धो दुर्वासा अन्यथा वदेत् ।।४२

सुमन्तुरुवाच

अस्मिञ्छप्तेऽनिमित्तेऽसौ पित्रा जाम्बवतीसुतः । प्राप्तवान्कुष्ठरोगित्वं विरूपत्वं च भारत ।।४३
साम्बेन पुनरप्येव दुर्वासाः कोपितो मुनिः । तच्छापान्मुसलं जातं कुलं येनास्य घातितम् ।।४४
श्रुत्वा ह्यविनयाद्दोषान्साम्बेनाप्तान्क्षमाधिप ! नित्यं भाव्यं विनीतेन गुरुदेवद्विजातिषु ।।४५
प्रियं च वाक्यं वक्तव्यं सर्वप्रीतिकरं विभो । किं त्वया न श्रुतौ श्लोकौ यावुक्तौ वेधसा पुरा ।।
[1]शृण्वतो देवदेवस्य व्योमकेशस्य भारत ।।४६

यो धर्मशीलो जितमानरोषो विद्याविनीतो न परोपतापी ।
स्वदारतुष्टः परदारवर्जितो न तस्य लोके भयमस्ति किञ्चित् ।।४७

होना पड़ा ।३८। रुक्मिणी, सत्यभामा एवं प्रिय जाम्बवती आदि स्त्रियाँ, जो अपने अधिक सत्वगुण से सुरक्षित थीं, चोरों के अधीन नहीं हुई ।३९। उन्हें शाप देकर कृष्ण ने साम्ब को भी शाप दिया कि तुम्हारे इस अधिक सौन्दर्यपूर्ण रूप को देखकर इन स्त्रियों के मन में कामवासना उत्पन्न हुई अतः यह सौन्दर्य नष्ट होकर तुम्हें कुष्ट रोग हो जाये । हे भारत ! एवं हे राजन् ! इस प्रकार कृष्ण की बात सुनकर साम्ब ने ऋषि द्वारा कही गयी उस (शापवाली) बात स्मरण करते हुए उनसे हँस कर कहा—हे तात ! उनके प्रति मेरे भाव बुरे नहीं हैं, अतः मैं उसका (स्त्रियों में उत्पन्न विकारों) कारण नहीं हूँ । अतः बिना कारण मुझे शाप मिला । किन्तु आपने अच्छा ही किया, क्योंकि क्रुद्ध होकर दुर्वासा का वह कथन व्यर्थ नहीं हो सकता है ।४०-४२

सुमन्तु ने कहा—जाम्बवती पुत्र साम्ब इस भाँति पिता द्वारा अकारण शाप प्राप्त कर कुष्ठ का रोगी एवं रूपहीन हो गया । इसी प्रकार एक बार और भी दुर्वासा के साथ दुर्व्यवहार करने के नाते उसे शाप हुआ था । जिस शाप के वश उसके मुसल उत्पन्न हुआ और उसी के द्वारा उसके समस्त कुल का नाश हो गया था ।४३-४४

हे क्षमाधिप । हे विभो ! इस प्रकार अविनय दोष के नाते साम्ब की प्राप्त अवस्था को देखकर गुरु, देव एवं ब्राह्मणों में विनीत भाव रखना चाहिए ।४५। और सभी से प्रेम एवं प्रियवाणी बोलना चाहिए । क्या तुमने उन बातों को, जो शिव के सामने ब्रह्मा ने कहा था, नहीं सुना है ।४६। धर्मशील, मान एवं क्रोधहीन, विद्या-विनम्र, दूसरे को संतप्त (दुःखी) न करने वाले और अपनी स्त्री में संतोष तथा परस्त्री में निरत रहने वाले मनुष्य को इस लोक में किसी प्रकार भय नहीं होता है ।४७। क्योंकि जिस प्रकार मधुर

---

१. पुरतः ।

न तथा शीतलसलिलं न चन्दनरसो न शीतला छाया।
प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी।।४८
ततः शापाभिभूतेन सम्यगाराध्य भास्करम्। साम्बेनाप्तं तथारोग्यं रूपं[1] च परमं पुनः।।४९
रूपमाप्य तथाऽऽरोग्यं भास्कराद्धरिसूनुना। निवेशितो रविर्भक्त्या स्वनाम्ना क्ष्माधिपेश्वर।।५०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमोकल्पे
साम्बकृतसूर्याराधनवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।७३।

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

आदित्यद्वादशमूर्तिवर्णनम्

शतानीक उवाच

स्थापितो यदि साम्बेन सूर्यश्चन्द्रसरित्तटे। तस्मान्नाद्यमिदं स्थानं यथैतद्भाषते भवान्।।१

सुमन्तुरुवाच

आद्यं स्थानमिदं भानोः पश्चात्साम्बेन भारत। विस्तरेणास्य चाद्यस्य कथ्यमानं निबोध मे।।२
अत्राद्यो लोकनाथोऽसौ रश्मिमाली जगत्पतिः। मित्रत्वे च स्थितो देवस्तपस्तेपे पुरा नृप।।३

वाणी पुरुष को प्रसन्न करती है, शीतल जल, चन्दन तथा शीतल छाया आदि कोई भी उस प्रकार प्रसन्न नहीं कर सकते हैं।४८। तदुपरांत शाप से दुःखी होकर साम्ब ने भास्कर की भली-भाँति आराधना करके आरोग्य तथा अपने पुराने रूप-सौन्दर्य को पुनः प्राप्त किया।४९। हे क्षमाधिपेश्वर। कृष्ण के पुत्र ने भास्कर द्वारा आरोग्य एवं अपने रूप को प्राप्त करके भक्ति के नाते अपने नाम से सूर्य वहाँ स्थापित किया था।५०

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बकृत सूर्याराधनवर्णन नामक
तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।७३।

अध्याय ७४

सूर्य की द्वादश मूर्तियों का वर्णन

शतानीक ने कहा—चन्द्रभागा नदी के तट पर साम्ब ने सूर्य को स्थापित किया, ऐसा आप कह रहे हैं, वह सूर्य का आदि स्थान कैसे प्राप्त हुआ।१

सुमन्तु बोले—हे भारत! सूर्य का आद्य स्थान यही है, साम्ब ने केवल इसे विस्तृत किया है, मैं बता रहा हूँ, सुनो।२

हे नृप! पहले इसी स्थान में स्थित होकर सूर्यदेव ने, जो लोकनाथ, किरणरूपी माला पहने एवं

---

१. यथाहं मधुसूदनः।

अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च। सृष्ट्वा प्रजापतीन्ब्रह्मा सृष्ट्वा च विविधाः प्रजाः ।।४
ससर्ज मुखतो देवं पूर्वमम्बुजसन्निभम्। कञ्जजस्तं ततो देवं वक्षस्तो निर्ममे नृप ।।५
ललाटात्कुरुशार्दूल नीरजाक्षं दिगम्बरम्[1]। ऋभवः पादतः सर्वे सृष्टास्तेन महात्मना ।।६
ततः शतसहस्रांशुरव्यक्तः पुरुषः स्वयम्। कृत्वा द्वादशधात्मानमदित्यामुदपद्यत ।।७
इन्द्रो धाता च पर्जन्यः पूषा त्वष्टार्यमा भगः। विवस्वानंशुर्विष्णुश्च वरुणो मित्र एव च ।।८
एभिर्द्वादशभिस्तेन आदित्येन महात्मना। कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिस्तु नराधिप ।।९
तस्य या प्रथमा मूर्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता। स्थिता सा देवराजत्वे दानवासुरनाशिनी ।।१०
द्वितीया चास्य या मूर्तिर्नाम्ना धातेति कीर्तिता। स्थिता प्रजापतित्वे सा विधात्री सृजते प्रजाः ।।११
तृतीया तस्य या मूर्तिः पर्जन्य इति विश्रुता। करेष्वेव स्थिता सा तु वर्षत्यमृतमेव हि ।।१२
चतुर्थी तस्य या मूर्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता[2]। मन्त्रेष्ववस्थिता सा तु प्रजाः पुष्णाति भारत[3] ।।१३
मूर्तिर्या पञ्चमी तस्य नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता। वनस्पतिषु सा नित्यमोषधीषु च वै स्थिता ।।१४
षष्ठी मूर्तिस्तु या तस्य अर्यमेति च विश्रुता। प्रजासम्वरणार्थं सा पुरेष्वेव स्थिता सदा ।।१५
भानोर्या सप्तमी मूर्तिर्नाम्ना भग इति स्मृता। भूमौ व्यवस्थिता सा तु क्ष्माधरेषु च भारत ।।१६
अष्टमी चास्य या मूर्तिर्विवस्वानिति संज्ञिता। अग्नौ व्यवस्थिता सा तु [4]पचतेऽन्नं शरीरिणाम् ।।१७
नवमी चित्रभानोर्या मूर्तिरंशुरिति स्मृता। वीर चन्द्रे स्थिता सा तु आप्याययति वै जगत् ।१८

जगत् के स्वामी हैं, (जगत् के) कल्याण के निमित्त तप किया था।३। जन्म-मरणहीन, नित्य, अक्षय एवं ब्रह्मा रूपी (सूर्य) ने प्रजापतियों की सृष्टि रचना करके अनेक भाँति की प्रजाओं की रचना की।४। जिसमें सर्वप्रथम मुख द्वारा कमल की भाँति देव (विष्णु), वक्षस्थल द्वारा ब्रह्मा एवं भाल द्वारा कमलनेत्र दिगम्बर शिव को उत्पन्न किया। एवं उस महात्मा ने अपने चरण द्वारा देवों को उत्पन्न किया है।५-६

पश्चात् उस अव्यक्त, पुरुष एवं सहस्रांशु ने अपने को बारह रूपों में विभक्त कर अदिति में उत्पन्न किया।७। इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, अंशु, विष्णु, वरुण एवं मित्र इन बारहों मूर्तियों द्वारा समस्त जगत् में व्याप्त होकर पुनः इस जगत् को अपने अधीन रखा। हे नराधिप ! उनकी प्रथम मूर्ति को जिसका नाम इन्द्र है, दानव एवं असुरों के नाश करने के लिए देवराज (इन्द्र) की पदवी प्राप्त हुई है।८-१०। दूसरी मूर्ति, जिसे विधाता कहते हैं, वह प्रजापति होकर प्रजाओं का सृजन करती है।११। तीसरी मूर्ति, जिसे पर्जन्य कहा जाता है, वह उनके किरणों में स्थित रहकर अमृत की वर्षा करती है।१२। चौथी मूर्ति, जो पूषा नाम से विख्यात है, मंत्रों में स्थित होकर नित्य प्रजा-पालन करती है।१३। पाँचवी मूर्ति, जिसे त्वष्टा कहते हैं, वह वनस्पतियों की औषधियों में नित्य स्थित रहती है।१४। अर्यमा नाम की छठीं मूर्ति प्रजा-संवरण के लिए नगरों में रहती है।१५। सूर्य की सातवीं मूर्ति जिसे भग कहा जाता है, भूमि में स्थिति बनाकर पृथ्वी के धारण करने वालों (पर्वतों) में वह सदैव स्थित रहती है।१६। हे भारत ! विवस्वान् नामकी उनकी आठवीं मूर्ति अग्नि में स्थित होकर प्राणियों के जाठराग्नि द्वारा अन्न पचाती है।१७। चित्रभानु की नवीं मूर्ति जिसे अंशु कहा जाता है, चन्द्रमा में स्थित होकर जगत् की

---

१. दिवाकरम्। २. भारत। ३. नित्यशः। ४. देवेषु च।

मूर्तिर्या दशमी तस्य विष्णुरित्यभिधीयते । प्रादुर्भवति सा नित्यं गीर्वाणारिविनाशिनी ॥१९
मूर्तिस्त्वेकादशी या तु भानोर्वरुणसंज्ञिता । जीवाययति सा कृत्स्नं जगद्धि तमुपाश्रिता ॥२०
अपां स्थानं समुद्रस्तु वरुणोऽत्र प्रतिष्ठितः । तस्माद्वै प्रोच्यते वीर सागरो वरुणालयः ॥२१
मूर्तिर्या द्वादशी भानोर्नामतो मित्रसंज्ञिता । लोकानां सा हितार्थं तु स्थिता चन्द्रसरित्तटे ॥२२
वायुभक्षा तपस्तेपे युक्ता मैत्रेण चक्षुषा । अनुगृह्णन्सदा भक्तान्वरैर्नानाविधैः सदा ॥२३
एवमाद्यमिदं स्थानं पुण्यं मित्रपदं स्मृतम् । तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्रपदं स्मृतम् ॥२४
तयाराध्य महाबाहो साम्बेनामिततेजसा । तत्प्रसादात्तदादेशात्प्रतिष्ठा तस्य वै कृता ॥२५
आभिर्द्वादशभिस्तेन भास्करेण महात्मना । कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिस्तु नराधिप ॥२६
तस्माद्वन्द्यो नमस्यश्च द्वादशस्वपि मूर्तिषु । ये नमस्यन्ति चादित्यं नरा भक्तिसमन्विताः ॥२७
ते यास्यन्ति परं स्थानं[1] तिष्ठेद्यत्राम्बुजेश्वरः । इत्येवं द्वादशात्मानमादित्यं पूजयेत्तु यः ॥२८
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो याति हेलिसलोकताम् ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यद्वादशमूर्तिवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।७४।

वृद्धि करती है ।१८। उनकी दशवीं मूर्ति, जो विष्णुरूप है, देवों के शत्रुओं का विनाश करने के लिए वह नित्य (समयानुसार) उत्पन्न होती रहती है ।१९। एवं भानु की ग्यारहवीं मूर्ति के जो वरुण नाम से ख्यात है, प्राणियों आदि को (जल द्वारा) प्राणदान देने के नाते समस्त जगत् (उसके) आश्रित रहता है ।२०। हे वीर ! जल का स्थान समुद्र है, उसमें वरुण रहते हैं। इसीलिए सागर वरुणालय कहा जाता है । २१। और सूर्य की बारहवीं मूर्ति, जिसका मित्र नाम है, लोक-कल्याण के लिए वह चंद्रभागा नदी के तट पर स्थित है ।२२। इस प्रकार मित्र भाव से स्थित होकर भक्तों को भाँति-भाँति के वर प्रदान करते हुए उन्होंने वायु भक्षण करके वहाँ तप किया था ।२३। इसीलिए यह आद्य एवं पुण्य स्वरूप मित्र नामक स्थान कहा जाता है, और वहाँ मित्र भाव से स्थित रहने के नाते ही उसे मित्र पद कहा गया है ।२४

हे महाबाहो ! इस भाँति साम्ब ने उनकी आराधना की और प्रसन्न होकर सूर्य के आदेश देने पर उनकी वहाँ प्रतिष्ठा हुई ।२५। इस प्रकार सूर्य अपनी इन बारहों मूर्तियों द्वारा सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर स्थित हैं। हे नराधिप ! इसीलिए सूर्य बारहों मूर्तियों में स्थित रहकर वन्दनीय एवं पूजनीय होते रहते हैं। इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो मनुष्य आदित्य को नमस्कार करता है, उसे कमलेश्वर (सूर्य) के स्थान की प्राप्ति होती है और जो बारह रूप वाले सूर्य की पूजा करता है, समस्त पापों से मुक्त होकर उसे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है ।२६-२९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य की द्वादश मूर्ति वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७४।

---

१. लोकम् ।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

नारदोपसङ्गमनवर्णनम्

शतानीक उवाच

कथं साम्बः प्रपन्नोऽर्कं केन वा प्रतिपादितः । उग्रं शापं च तं प्राप्य पितरं स किमुक्तवान् ॥१

सुमन्तुरुवाच

उक्तमेव पुरा वीर यथा शप्तः स यादवः । पित्रा साम्बो महाराज हरिणाम्बुजधारिणा ॥२
अथ शापाभिभूतस्तु साम्बः पितरमब्रवीत् । [1]विनयावनतो भूत्वा प्राञ्जलिः शिरसा नतः ॥३
किं मयापकृतं देव येन शप्तोस्म्यहं त्वया । अहं त्वदाज्ञया देव त्वरमाणोत्र आगतः ॥४
कस्मान्निपातितः शापो मयितेऽनपकारिणि । न वै जानाम्यहं किञ्चित्प्रसीद जगतः पते ॥५
शापं नियच्छ मे देव प्रसादं कुरु मे प्रभो । कश्मलेनाभिभूतोऽहं येन मुच्येय किल्बिषात् ॥६
तमुवाच ततः कृष्णः साम्बं बुद्ध्वा ह्यनागसम् । नाहं पुत्र पुनः शक्तो रोगस्यास्य व्यपोहने ॥७
[2]अस्यायं जगतो नाथो द्वादशात्मा दिवाकरः[3] । सहस्ररश्मिरादित्यः शक्तः पुत्र व्यपोहितुम् ॥८
ज्ञातं मयाधुना चैव यथा त्वं नारदेन तु । रोषाद्विसर्जितः पुत्र मत्सकाशं महात्मना ॥९

अध्याय ७५

नारदोपसंगमन वर्णन

शतानीक ने कहा—साम्ब ने सूर्य की प्राप्ति कैसे की, उसे किसने बताया तथा पिता द्वारा उग्र शाप पाने पर उसने उनसे क्या कहा ।१

सुमन्तु बोले—हे वीर ! कमलधारी कृष्ण द्वारा साम्ब को शाप जिस भाँति प्राप्त हुआ, मैंने पहले ही बता दिया है ।२

शाप द्वारा दुःखी होकर विनम्र एवं हाथ जोड़कर तथा नतमस्तक होकर साम्ब ने अपने पिता से कहा ।३। हे देव ! मैंने क्या अपराध किया, जिससे आपने मुझे शाप दे दिया । मैं तो आपकी ही आज्ञा से यहाँ शीघ्रतापूर्वक आया था ।और मैंने जब आपका कोई अपकार भी नहीं किया, तो मैं नहीं जानता मुझे शाप क्यों दिया गया । हे जगत्पते ! मैं इस विषय में कुछ भी नहीं जानता हूँ, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर शाप का निवारण करें । हे प्रभो ! मैं इस पाप से दुःखी हूँ, मुझे इस दुःख से बचाइये जिससे पापमुक्त हो जाऊँ ।४-६। इस भाँति साम्ब के कहने पर उसे निरपराधी समझकर कृष्ण ने कहा—हे पुत्र ! इस रोग की शान्ति करने की शक्ति मुझमें नहीं है ।७। जगत् के नाथ, द्वादशात्मा, दिवाकर एवं सहस्र रश्मि वाले सूर्य ही इसे नष्ट कर सकते हैं ।८। इस समय मुझे ज्ञान हो रहा है कि नारद ने क्रुद्ध होकर तुम्हें मेरे समीप भेजा

---

१. चिंतया विनतः । २. अहम् । ३. दिवस्पतिः, जगत्पतिः ।

तस्मात्तमेव पृच्छ त्वं प्रसाद्य ऋषिसत्तमम् । आख्यास्यति स ते देवं शापं यस्तेऽपनेष्यति ।।१०
अथैतत्स पितुर्वाक्यं श्रुत्वा जाम्बवतीसुतः । दीनः [1]शोकपरीतात्मा ततः सञ्चिन्त्य भारत ।।११
द्वारवत्यां स्थितं विष्णुं कदाचिद्द्रष्टुमागतम् । विनयादुपसङ्गम्य साम्बः पप्रच्छ नारदम् ।।१२
भगवन्वेधसः पुत्र सर्वलोकज्ञ सुव्रत । प्रसादं कुरु मे विप्र[2] प्रणतस्य महामते ।।१३
ये मे नीरुजं कायं कश्मलं च प्रणश्यति । तं योगं ब्रूहि मे विप्र प्रणतस्यास्य सुव्रत ।।१४

नारद उवाच

यः स्तुत्यः सर्वदेवानां नमस्यः पूज्य एव च । पूजयित्वाशु तं देवं ततो व्याधिं प्रहास्यसि ।।१५

साम्ब उवाच

कः स्तुत्यः सर्वदेवानां नमस्यः पूज्य एव च । कः सर्वगश्च सर्वत्र शरणं यं व्रजाम्यहम् ।।१६
पितृशापानलेनाहं दह्यमानो महामुने । शान्त्यर्थमस्य कं देवं [3]शरणं च व्रजाम्यहम् ।।१७
एतच्छ्रुत्वा तु साम्बस्य वचनं करुणावहम् । हित्वा तु [4]कामजं वीर नारदो वाक्यमब्रवीत् ।।१८
स्तुत्यो वन्द्यश्च पूज्यश्च नमस्य ईड्य एव च । भास्करो यदुशार्दूल ब्रह्मादीनां सदानघ ।।१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि साम्बोपाख्याने साम्बं प्रति कृष्णशापे साम्बस्य नारदोपसंगमनवर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।७५।

था ।९। इसलिए तुम उन्हीं ऋषि श्रेष्ठ नारद से ही पूछो ! वे उस देव को, जिसके द्वारा तुम्हारा दुःख दूर होगा, बतायेंगे ।१०। इसके पश्चात् पिता की बातें सुनकर दीन एवं शोकग्रस्त होकर जाम्बवती सुत साम्ब ने द्वारकापुरी में कृष्ण के दर्शन के लिए आये हुए नारद से विनयपूर्वक पूछा—हे भगवन् ! हे ब्रह्मपुत्र, सर्वलोकज्ञ, सुव्रत एवं हे महामते ! मैं आप को प्रणाम करता हूँ, मेरे ऊपर कृपा कीजिए ।११-१३। विप्र ! जिसके द्वारा मेरा शरीर आरोग्य हो जाये एवं मेरा पाप नाश हो, उस योग को बताइये । अतः मैं पुनः प्रणाम कर रहा हूँ ।१४

नारद बोले—जो समस्त देवताओं के पूज्य, स्तुत्य एवं नमस्कार करने के योग्य हैं, शीघ्र उसकी पूजा करो, वही तुम्हारे रोग की शान्ति करेंगे ।१५

साम्ब ने कहा—समस्त देवताओं का स्तुत्य, पूज्य, नमस्कार करने योग्य एवं सभी स्थानों में पहुँचने वाला कौन है ? मैं उसी की शरण में जाना चाहता हूँ ।१६। हे महामुने ! पिता के शाप रूपी अग्नि से मैं जल रहा हूँ, इसकी शांति के लिए किस देवता की शरण जाऊँ ।१७। साम्ब की इस कारुणिक बातों को सुनकर नारद का क्रोध शांत हो गया । उन्होंने उससे कहा ।१८। हे यदुशार्दूल ! ब्रह्मा आदि सभी (प्राणियों) के लिए एक भास्कर ही स्तुति करने के योग्य, वन्दनीय, पूज्य, नमस्कार करने एवं ध्यान करने के योग्य हैं ।१९

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के शाम्बोपाख्यान में शाम्ब के प्रति कृष्णशाप में साम्ब के नारदोपसंगमन वर्णन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७५।

---

१. शापपरीतात्मा । २. देव । ३. कतमाख्यम् । ४. कामजं क्रोधमित्यर्थः—"कामात्क्रोधाऽभिजायते" इति भगवद्गीतासु वचनात् ।

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

नारदसाम्बसंवादे सूर्यपरिवारवर्णनम्

नारद उवाच

कदाचित्पर्यटँल्लोकान्सूर्यलोकमहं गतः । तत्र दृष्टो मया सूर्यः सर्वदेवगणैर्वृतः ॥१
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नागैर्यक्षैश्च राक्षसैः । तत्र गायन्ति गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा ॥२
रक्षन्त्युद्यतशस्त्रास्तं यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋचो यजूंषि सामानि मूर्तिमन्तीह सर्वशः ॥
तत्कृतैर्विविधैः स्तोत्रैः स्तुवन्ति ऋषयो रविम् ॥३
मूर्तिमत्यः स्थितास्तत्र तिस्रः संध्याः शुभाननाः । गृहीतवज्रनाराचाः परिवार्य रविं स्थिताः ॥४
अरुणा वर्णतः पूर्वा मध्यमा चेन्दुसन्निभा । तृतीयाक्ष्माजसंकाशा[1] संध्या चैव प्रकीर्तिता ॥५
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतोथाश्विनौ तथा । त्रिसंध्यं पूजयन्त्यर्कं तथान्ये च दिवौकसः ॥६
ईरयञ्जयशब्दं तु इन्द्रस्तत्रैव तिष्ठति । कविस्तु त्र्यम्बको देवस्त्रिसंध्यं पूजयन्ति वै ॥७
[2]दिनादावम्बुजाकारं पूजयेदम्बुजासनम् । चक्ररूपं तु मध्याह्ने घृतार्चिः पूजयेत्सदा ॥८
पूजयेत्सगणं रात्रौ विपुलाज्यस्वरूपिणम् । रविं भक्त्या सदा देवं [3]कंजार्धकृतशेखरः ॥९

अध्याय ७६

नारदसाम्बसंवाद में सूर्यपरिवार का वर्णन

नारद बोले—एक बार मैं घूमता हुआ सूर्य के लोक में पहुँच गया था। वहाँ देखा कि सभी देवगण सूर्य को घेरे हुए बैठे हैं।१। गन्धर्वगण, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, एवं राक्षस लोग भी वहाँ दिखाई पड़े, वहाँ गन्धर्व लोग गान कर रहे थे, उसी प्रकार अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं एवं हथियार लिए हुए यक्ष, राक्षस तथा पन्नग लोग (सूर्य की) रक्षा कर रहे थे और मूर्तिमान ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद की ऋचाओं द्वारा की गई (स्तुति रूपी) रचनाओं को पढ़ते हुए ऋषिगण सूर्य की आराधना कर रहे थे।२-३। उसी भाँति सौन्दर्यपूर्ण एवं मूर्तिमान् होकर तीनों संध्याएँ वज्र तथा बाणों को लिए सूर्य को घेरे स्थित थीं।४। जिनमें रक्तवर्ण की पूर्व (पहली), चन्द्रमा की भाँति मध्यमा (दूसरी) एवं स्थलकमल की भाँति तीसरी (सायंकाल की) संध्या बतायी गई है।५। इस प्रकार आदित्यगण (देवता), वसु, रुद्र, मरुत् तथा अश्विनी कुमार एवं अन्य देवगण ये सभी तीनों संध्याओं में सूर्य की पूजा करते हैं।६। अनन्तर वहाँ इन्द्र जय शब्द (जय-जयकार) का उच्चारण करते थे, शुक्र एवं शिव भी तीनो संध्याओं में उनकी पूजा करते हैं।७। इसलिए उदयकाल में कमल के आसन पर स्थित एवं कमल की भाँति आकार वाले और मध्याह्न में चक्र की भाँति एवं घृतपूर्ण अग्नि की शिखा के समान दिखायी देने वाले उन सूर्य की सदैव पूजा करनी चाहिए।८। क्योंकि रात में भी विपुलघृत की भाँति स्वरूप वाले (सूर्य) की गणों समेत पूजा होती है।

१. पद्मसंकाशः सामरा विप्रकीर्तिता। २. शब्दादावंबुजाधारम्। ३. चन्द्रशेखर इति भावः।

सारथ्यं कुरुते तस्य पतगस्याग्रजः[1] सदा । वहमानो रथं दिव्यं कालावयवनिर्मितम् ॥१०
हरितैः सप्तभिर्युक्तं छन्दोभिर्वाजिरूपिभिः ॥११
द्वे भार्ये पार्श्वयोस्तस्य राज्ञी निक्षुभसंज्ञिता । तथान्यैर्नामभिर्देवाः परिवार्य रविं स्थिताः ॥१२
पिङ्गलो लेखकस्तत्र तथान्यो दण्डनायकः । [2]राजाश्रोषौ च द्वौ द्वारे स्थितौ कल्माषपक्षिणौ ॥१३
ततो व्योम चतुःशृङ्गं मेरोःसदृशलक्षणम् । दिण्डिस्तथाग्रतस्तस्य दिक्षु चान्ये स्थिताः सुराः ॥१४
एवं सर्वगमं देवं प्रदीप्तं जगति द्विज । ब्रह्माद्यैः संस्तुतं देवं गीर्वाणैर्ऋषभोत्तमम् ॥
ग्रहेशं भुनेशानमादित्यं शरणं व्रज ॥१५

साम्ब उवाच

तत्त्वतः श्रोतुमिच्छामि कथं सर्वगतो रविः ॥१६
कति वा रश्मयस्तस्य मूर्तयश्च कति स्मृताः । का राज्ञी निक्षुभाका च कश्चायं दण्डनायकः ॥१७
पिङ्गलश्चापि कस्तत्र किं चासौ लिखते सदा । राजाश्रोषौ च कौ तत्र कौ च कल्माषपक्षिणौ ॥१८
किं दैवत्यं च तद्व्योम मेरोः सदृशलक्षणम् । को दिण्डिरग्रतस्तत्र के देवा दिक्षु ये स्थिताः ॥१९
तत्त्वतो निगमैश्चैव विस्तरेण वदस्व माम । येनाहं तत्त्वतो ज्ञात्वा व्रजामि शरणं द्विज ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने नारदसाम्बसंवादे सूर्यपरिवारवर्णनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।७६।

इसलिए चन्द्रशेखर (शिव) उनकी सदैव पूजा करते हैं।९। तथा गरुड़ के बड़े भाई (अरुण) उनके उस रथ के सारथी हैं जो दिव्य एवं समय रूपी अंगों द्वारा बनाया गया है।१०। और उस रथ में हरे रंग के छन्द रूपी सात घोड़े जोते जाते हैं।११। आकाशरूपी रानी और पृथ्वी रूपी निक्षुभा नाम की दोनों स्त्रियाँ भी उनके पार्श्व (बगल) में स्थित थीं तथा अन्य नाम वाले देवगण उन्हें चारों ओर से घेर कर बैठे थे।१२। उसी भाँति पिंगल नामक लेखक दण्डनायक, चित्र वर्णवाले राजा और श्रौष दो पक्षियाँ दोनों द्वारपाल एवं मेरु के चारों शिखरों की भाँति वहाँ का आकाश सुशोभित हो रहा था। उनके सामने दिंडी और चारों दिशाओं में देवता लोग स्थित थे।१३-१४। हे द्विज ! इस प्रकार जो सर्वत्र व्याप्त जगत् में अत्यन्त प्रकाशित, ब्रह्मादि देवों द्वारा स्तुति करने योग्य, देवश्रेष्ठ ग्रहेश एवं भुवनों के पति हैं, उन आदित्य की शरण में अवश्य जाओ।१५

साम्ब ने कहा—मैं भली भाँति जानना चाहता हूँ कि सूर्य सभी स्थानों में कैसे पहुँचते हैं।१६। उनकी कितनी किरणें, कितनी मूर्ति एवं राज्ञी (रानी) और निक्षुभा नाम वाली स्त्रियाँ कौन हैं। इसी भाँति दंडनायक तथा पिंगल कौन हैं, और वे क्या लिखा करते हैं, और राजा और श्रौष एवं चित्र वर्ण वाले दोनों पक्षी द्वारपाल, मेरु के समान वहाँ का आकाश, दिंडी तथा वहाँ दिशाओं में कौन देवगण स्थित हैं।१७-१९। इन्हें वैदिक रीति के अनुसार एवं विवेचन पूर्वक मुझे बताइये, जिससे मैं भली भाँति समझकर उस देव की शरण जाऊँ।२०

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में शाम्बोपाख्यान के नारदशाम्बसंवाद में सूर्य परिवार वर्णन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।७६।

---

१. वैनतेयाग्रजः सदा २. दौवारिकौ च द्वौ द्वारे ततः कल्माषपक्षिणौ।

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

साम्बोपाख्याने सूर्यवर्णनम्

नारद उवाच

विस्तरेणानुपूर्व्या च सूर्यं निगदतः शृणु । ततः शेषान्प्रवक्ष्येऽहं नमस्कृत्य विवस्वते ॥१
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् । प्रधानं प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥२
गन्धैर्वर्णै रसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् । जगद्योनिं महद्भूतं परं ब्रह्म सनातनम् ॥३
निग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत्किल । अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाप्ययम् ॥४
अनाकारमविज्ञेयं तमाहुः पुरुषं परम् । तस्यात्मना सर्वमिदं जगद्व्याप्तं महात्मनः ॥५
तस्येश्वरस्य प्रतिमा [1]ज्ञानवैराग्यलक्षणा । धर्मैश्वर्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी तस्याभिमानिनः ॥६
अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसा यद्यदिच्छति । चतुर्मुखस्य ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकृद्भवेत् ॥७
सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः । सत्त्वं रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तमः ॥८
सात्त्विकं पुरुषत्वे च गुणवृत्तं स्वयंभुवः । ब्रह्मत्वे सृजते लोकान्कालत्वे चापि संक्षिपेत् ॥९
पुरुषत्वे उदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः । त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रिकालं सम्प्रवर्तते ॥१०

अध्याय ७७

साम्बोपाख्यान में सूर्य का वर्णन

नारद बोले—मैं सूर्य का विस्तारपूर्वक एवं आनुपूर्वी (क्रमशः) वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! तथा फिर सूर्य को नमस्कार करके उनकी शेष बातों को भी बताऊँगा।१। (सूर्य) अव्यक्त कारण, जिसे तत्त्वज्ञ लोग नित्य एवं सद्सदात्मक प्रधान और प्रकृति कहते हैं।२। गंध, वर्ण, रस, शब्द एवं स्पर्श से हीन, जगत् के उत्पत्ति स्थान, महद्भूत, परम तथा सनातन ब्रह्म, सभी प्राणियों के निग्रह करने वाले, अव्यक्त, आदि अंतहीन, अजन्मा, सूक्ष्मरूप, त्रिगुण, उत्पत्ति एवं नाश करने वाले, आकारहीन, अविज्ञेय एवं परम पुरुष हैं, और वही महात्मा समस्त संसार में व्याप्त हैं।३-५

ज्ञान-विज्ञान रूपी उनकी प्रतिमा है तथा उस अभिमानी की धार्मिक ऐश्वर्य से उत्पन्न ब्राह्मी बुद्धि है।६। उस अव्यक्त से मन-इच्छित वस्तुएँ सदैव उत्पन्न होती हैं। वही, चार मुख वाले, ब्रह्मा और कालरूप शिव हैं।७। एवं सहस्रों शिर वाले वही स्वयम्भू पुरुष हैं उनकी सात्विक, राजस, तामस तीन अवस्थाएँ हैं, जिसमें सात्विक-राजस ब्रह्मा की, राजस-तामस शिव की तथा पुरुष (विष्णु) की सात्त्विक (अवस्था) बतायी गई है। यही स्वयंभू का गुण विवेचन है। वे ब्रह्मा रूप से लोकों का सृजन करते हैं। काल (शिव) रूप से संक्षेप और पुरुष रूप से उदासीन रहते हैं। इस प्रकार उस प्रजापति की तीन अवस्थाएँ कही गयी हैं। जो अपने को तीन रूपों में विभक्त कर तीनों कालों के प्रवर्तित करता है।८-१०। इस प्रकार सृजन, संक्षय

---

१. ज्ञानविज्ञानलक्षणा।

सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिः स्वयम् । अग्रे हिरण्यगर्भस्तु प्रादुर्भूतः स्वयम्भुवः ॥११
आदित्यस्यादिदेवत्वादजातत्वादजः स्मृतः । देवेषु समहान्देवो महादेवः स्मृतस्ततः ॥१२
सर्वेशत्वाच्च लोकस्य अधीशत्वाच्च ईश्वरः । बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भवत्वाद्भव उच्यते ॥१३
पातियस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरतः स्मृतः । पुरे शेते च वै यस्मात्तस्मात्पुरुष उच्यते ॥१४
नोत्पाद्यत्वादपूर्वत्वात्स्वयंभूरिति विश्रुतः ॥१५
हिरण्याण्डगतो यस्माद्ग्रहेशो वै दिवस्पतिः । तस्माद्धिरण्यगर्भोऽसौ देवदेवो दिवाकरः ॥१६
आपो नारा इति प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । अयनं तस्य ता आपस्तेन नारायणः स्मृतः ॥१७
अर इत्येष शीघ्रार्थो निपातः कविभिः स्मृतः । आप एवार्णवा भूत्वा न शीघ्रास्तेन ता नराः[1] ॥१८
एकार्णवे पुरा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे । नारायणाख्यः पुरुषः सुष्वाप [2]सलिले तदा ॥
सहस्रशीर्षा [3]सुमनाः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥१९
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो[4] निगद्यते[5] ।
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः पुरुषः पुराणः ॥२०
हिरण्यगर्भः पुरुषोमहात्मा सम्पद्यते वै तमसा परस्तात् ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
साम्बोपाख्याने सूर्यवर्णनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।७७।

तथा निरीक्षण (पालन) का कार्य तीनों मूर्तियों द्वारा वह स्वयं करता है, और वही सर्वप्रथम हिरण्य गर्भ नाम से प्रादुर्भूत हुआ था ।११। वह देवताओं में आदि देव और अनुत्पन्न होने के नाते अजन्मा कहा जाता है। इसी भाँति देवों में महान् होने के नाते महादेव, समस्त लोकों के ईश एवं अधीश्वर होने के नाते ईश्वर, वृहत् के कारण ब्रह्मा, प्रादुर्भूत होने के नाते भव, समस्त प्रजाओं के पालन करने के कारण प्रजापति और पुर में शयन करने के नाते पुरुष कहा गया है ।१२-१४। अनुत्पन्न एवं अपूर्व होने के नाते स्वयंभू, हिरण्य (सुवर्ण) के अण्डे में स्थित रहने के नाते ग्रहेश, दिवस्पति, देवाधिदेव, दिवाकरण एवं हिरण्यगर्भ कहा जाता है ।१५-१६। तत्त्वदर्शी ऋषियों ने नारा को जल बताया है एवं वही जल उनके अपने (गृह) होने के नाते उनका नाम 'नारायण' हुआ ।१७। इसी प्रकार कवियों ने 'अर' शब्द को शीघ्रार्थ में निपातनात् प्रयुक्त किया है, इसीलिए वह जल (अर्णव) (समुद्र) रूप है, जो कभी भी शीघ्रगामी (अपने किनारे से बाहर) नहीं होता है ।१८। इस भाँति उसी एक समुद्र में स्थावर जंगमरूपी समस्त जगत् के विलीन हो जाने पर उस जल में एकमात्र वही नारायण नामक पुरुष शयन करता है, जिसके सहस्र शिर, सुन्दर (विकारहीन) मन, सहस्र आँखे और पैर एवं बाहू हैं और वही सर्वप्रथम प्रजापति तीनों वेदों में पुरुष, आदित्य वर्ण होकर भुवनों का रक्षक, अपूर्व, एक प्राचीन, पुरुष एवं तम से परे हिरण्यगर्भ भी कहा जाता है ।१९-२१

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में शाम्बोपाख्यान में सूर्यवर्णन
नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७७।

---

१. शकन्ध्वादित्वात्पररूपम् । २. शयने । ३., ४. पुरुषः । ५. स उच्यते ।

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सूर्यमहिमावर्णनम्

नारद उवाच

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः । शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥१
सलिलेनाप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा कार्यं विचिन्त्य सः । भूत्वा स तु वराहो वै अपः संविशते प्रभुः ॥२
सञ्चिन्त्यैवं स देवेशो भूमेरुद्धरणे क्षमः । महीं महार्णवे मग्नामुद्धर्तुमुपचक्रमे ॥३
उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षेर्महावराहस्य महीं विधार्य ।
विधुन्वतो वेदमयं शरीरं रोमान्तरस्था मुनयो [1]जपन्ति ॥४
उद्धृत्योर्वीं स सलिलात्प्रजासर्गमकल्पयत् । मनसा जनयामास पुत्रानात्मसमाञ्छुभान् ॥५
भृग्वङ्गिरसमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । मरीचिमथ दक्षं च वशिष्ठं नवमं तथा ॥६
नव प्रजापतीन्सृष्ट्वा ततः स पुरुषोत्तमः । प्रादुर्भूतोऽदितेः पुत्रः प्रजानां हितकाम्यया ॥७
मरीचात्कश्यपं [2]पुत्रं यं वेधा जनयज्जले । प्रजापतीनां दशमं तेजसा ब्रह्मणः समम् ॥८
वृक्षकन्याऽदितिर्नाम्ना पत्नी सा कश्यपस्य तु । अण्डं सा जनयामास भूर्भुवःस्वस्त्रिसंयुतम् ॥९

अध्याय ७८

सूर्यमहिमा का वर्णन

नारद ने कहा—पुनः (वही) सहस्र युग के समान होने वाली रात के समय को व्यतीत कर अन्त में (प्रातःकाल) सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा का रूप धारण करता हूँ ।१। और जल में डूबी हुई पृथिवी को देखकर कार्यों (सृष्टि) का स्मरण करते हुए उसे (लेने के लिए) वह प्रभु वाराह का रूप धारणकर जल के मध्य में प्रवेश करता है ।२। इस प्रकार ऐसा सोचकर पृथ्वी को लाने में समर्थ वह देवाधिदेव महासागर में डूबी हुई पृथ्वी के उद्धार के लिए उपक्रम करता है ।३। तथा पृथ्वी को लेकर जल के भीतर से ऊपर निकलते हुए महावाराह के उस वेदमय शरीर की, जिसे उन्हें उस समय स्वयं कम्पित किया था, तथा उनके रोम के भीतर स्थित मुनिगण पूजा करते हैं ।४। इस भाँति वह जल के मध्य से पृथ्वी को निकाल कर उस पर प्रजाओं की सृष्टि करता है । पहले उसने अपने समान पुत्रों को मानसिक सृष्टि द्वारा उत्पन्न किया ।५। पश्चात् भृगु, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, दक्ष तथा वशिष्ठ इन नव प्रजापतियों की सृष्टि करके वह पुरुषोत्तम प्रजाओं के हित के लिए अदिति का पुत्र होकर प्रादुर्भूत हुआ ।६-७। मरीचि के कश्यप नामक पुत्र हुआ, जिसे ब्रह्मा ने जल में उत्पन्न किया था, और वही दसवाँ प्रजापति भी हुआ, जो तेज में ब्रह्मा के समान था ।८। अदिति नाम की वृक्ष की कन्या थी, वही कश्यप की स्त्री हुई है। एवं उसी के गर्भ से एक इस भाँति का अंडा उत्पन्न हुआ जिसके अन्तःस्थल में भूलोक, भुवर्लोक, और स्वर्गलोक भी निहित था ।९।

---

१. यजंति । २. आहुर्यम् ।

तत्रोत्पन्नः सहस्रांशुर्द्वादशात्मा दिवाकरः । नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महात्मनः ॥
विस्तारास्त्रिगुणश्चास्य परिणाहो विभावसोः ॥१०
यथापुष्पं कदम्बस्य समन्तात्केशरैर्वृतम् । तथैव तेजसां गोलं समन्ताद्रश्मिभिर्वृतम् ॥११
सहस्रशीर्षा पुरुषो ब्राह्मं योगमुदाहरन् । तैजसस्य च गोलस्य स तु मध्ये व्यवस्थितः ॥१२
आदत्ते स तु रश्मीनां सहस्रेण समन्ततः । अपो नदीसमुद्रेभ्यो ह्रदकूपेभ्य एव च ॥१३
सौरी प्रभा या देवस्य अस्तं याते दिवाकरे । अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात्प्रकाशते[1] ॥१४
उदिते च ततः सूर्ये तेज आग्नेयमाविशत् । पादेन तेजसश्चाग्नेस्तस्मात्स तपते रविः ॥१५
प्रकाशत्वं तथोष्णत्वं सूर्येऽग्नौ च प्रकीर्तिते । परस्परानुप्रदेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥१६
व्यापकत्वं च रश्मीनां नामानि च निबोध मे । हेतयः किरणा गावो रश्मयोऽथ गभस्तयः ॥१७
अभीषवो घनं चोस्रा वसवोऽथ मरीचयः । नाड्यो दीधितयः साध्या मयूखा भानवोंऽशवः ॥१८
सप्तार्चयः सुपर्णाश्च कराः पादास्तथैव च । एषां तु नाम्नां रश्मीनां पर्यायाः विंशतिः स्मृताः ॥१९
चन्दनादीनि वक्ष्यामि नामान्येषां पृथक्पृथक् । सहस्रं तात कथितं शीतवर्षोष्णनिःस्रवम् ॥२०
तेषां चतुःशतं नाड्यो वर्षंते चित्रमूर्तयः । [2]चन्दनाच्चैव मन्दाश्च कोतनामानुमास्तथा ॥
अमृता नाम ते सर्वे रश्मयो वृष्टिहेतवः ॥२१
हिमोद्वहास्तु तत्रान्ये रश्मयस्त्रिशतं स्मृताः । चन्द्रास्ते नामतः सर्वे पीतास्ते तु गभस्तयः ॥२२

उसी अंडे से द्वादश रूप सूर्य का आविर्भाव हुआ, जिसका नव सहस्र योजन का विस्तार और सत्ताइस सहस्र योजन की परिणाह (मंडल) है।१०। इस प्रकार चारों ओर केशरों से आवृत्त कदम्बपुष्प की भाँति रश्मियों से चारों ओर से घिरा हुआ वह तेज का एक गोला है।११। इसी प्रकार सहस्र शिर वाला वह पुरुष ब्राह्मयोग को अपनाकर अपने तेज के गोले में स्थित हुआ।१२। वह नदियों, समुद्रों, कूएँ और तालाबों के जलों को अपनी सहस्रों किरणों द्वारा ग्रहण करता रहता है।१३। उनकी सौरी नाम की प्रभा उनके अस्त हो जाने पर रात में अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है, इसीलिए अग्नि दूर से ही प्रकाशित दिखायी देता है।१४। फिर उदयकाल में वह 'आग्नेय' तेज सूर्य को प्राप्त होता है।जिससे अग्नि के द्वारा सूर्य सदैव ताप प्रदान करते रहते हैं। १५। इस भाँति जो प्रकाश एवं उष्णता (गर्मी) सूर्य और अग्नि में बतायी गई है दोनों आपस में अनुप्रवेश (आदान-प्रदान)द्वारा रात तथा दिन में बढ़ते हैं।१६। उन्हीं किरणों की व्यापकता और नाम मैं बता रहा हूँ, सुनो ! हेति, किरण, गो, रश्मि, गभस्ति, अभीपु, धन, उस्र, वसु, मरीचि, नाड़ी, दीधिति, साध्य, मयूख, भानु, अंशु, सप्तर्षि सुपर्ण, कर और पाद (एवं घृणि) ये किरणों के बीस पर्यायवाची नाम हैं।१७-१९। हे तात् ! उनके उन चन्दन आदि पृथक्-पृथक् नामों को भी बताऊँगा। जिनमें से सहस्रों अर्थात् अधिक से अधिक परिमाण में शीत, वर्षा, एवं उष्णता निकलती रहती है।२०। उन्हीं की चार सौ किरणें, जिनके चित्रमूर्ति, चन्दन, मंद, कोतनामानुमा, और अमृत नाम हैं, वर्षा करती हैं। इसीलिए उन्हें ही वर्षा का मूल कारण बताया गया है।२१। उसी प्रकार पीले वर्ण की चन्द्रा नाम की तीन

---

१. त्वग्निः। २. चन्दनाश्चैव चन्द्राश्च केन वा गौतमास्तथा, चन्द्रश्चैव सदाचक्रोरुनानौरुननास्तथा।

सौम्येशाश्चैव[1] वामश्च ह्लादिनो हिमसर्जनाः । शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ।।२३
शुक्लास्ते नामतः सर्वे त्रिशतं धर्मसर्जनाः । समं बिभ्रति ते सर्वे मनुष्या देवतास्तथा ।।२४
मनुष्यानोषधीभिस्तु स्वधया च पितॄनपि । अमृतेन सुरान्सर्वांस्त्रयस्त्रिभिरतर्पयन् ।।२५
वसन्ते चैव ग्रीष्मे च शतैः स तपते त्रिभिः । वर्षाशरत्सु चैवेशस्तपते सम्प्रवर्षते ।।२६
हेमन्ते शिशिरे चैव हिमोत्सर्गं च स त्रिभिः । ओषधीषु बलं धत्ते स्वधायां च स्वधां पुनः ।।
अमरेष्वमृतं सूर्यस्त्रय त्रिषु नियच्छति ।।२७
कालोऽग्निर्वत्सरश्चैव द्वादशात्मा प्रजापतिः । तपत्येषु सुरश्रेष्ठस्त्रींल्लोकान्सचराचरान् ।।२८
एष ब्रह्मा तथा विष्णुरेष एव महेश्वरः । ऋचो यजूंषि सामानि एष एव न संशयः ।।२९
ऋचाभिः स्तूयते पूर्वं मध्याह्ने यजुर्भिः सदा । सामाभिस्त्वपराह्णेषु महेशानैः प्रपूज्यते ।।३०
पूज्यमानस्तु नित्यं वै तपत्येष दिवस्पतिः । सदैष तेजसां राशिर्दीप्तिमान्सर्वलोकगः ।।३१
पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तापयत्येष सर्वतः । ब्रह्मविष्णुमहेशानैः पूज्यमानस्तु नित्यशः ।।३२
यथा सर्वगतो वायुर्वहमानस्तु तिष्ठति । तद्वत्सहस्रकिरणो ग्रहराजो दिवस्पतिः ।।३३
सूर्यो गोभिर्जगत्कृत्स्नमादीपयति सर्वशः । त्रीणि रश्मिशतान्यस्य भूर्लोकं द्योतयन्ति वै ।।३४

सौ किरणें, जो सौम्य, वासवीय, ह्लादिनी एवं हिम सर्जना कही जाती हैं, बर्फ बरसती हैं और शुक्लवर्ण की ककुभ, गो, एवं विश्वभृत नामकी तीन सौ किरणें धर्म का सर्जन करती हैं । इस प्रकार वे किरणें देवताओं और मनुष्यों को समभाव से पालन-पोषण करती हैं ।२२-२४। औषधियों द्वारा मनुष्यों का, स्वधा द्वारा पितरों का और अमृत द्वारा देवताओं का पालन करती हैं ।२५। इसी भाँति वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु में तीन सौ किरणों द्वारा तपना, वर्षा एवं शरत् में तीन सौ किरणों द्वारा, वर्षा तथा हेमन्त और शिशिर में तीन सौ किरणों द्वारा उनका बरसाना बताया गया है । (तीन भाँति की किरणों द्वारा) सूर्य औषधियों में बल, स्वधा में स्वधा तथा देवों में अमृत प्रदान करते हैं ।२६-२७। इस प्रकार काल, अग्नि, वत्सर (वर्ष), द्वादशात्मा और प्रजापति होकर वही देवश्रेष्ठ सूर्य चराचर रूप तीनों लोकों में ताप प्रदान करते हैं ।२८। एवं यही, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, ऋग्वेद, यजुर्वेद और निश्चित सामवेद रूप भी हैं ।२९। इसीलिए ऋचाओं द्वारा उदय काल में, यजुर्वेद द्वारा मध्याह्न में एवं समावेद द्वारा अपराह्न में महेशान (शिव) उनकी आराधना करते हैं ।३०। इस भाँति पूज्यमान् सूर्य, जो तेज पुञ्ज, प्रदीप्त एवं सभी लोगों में गमन करते हैं, नित्य तपते रहते हैं ।३१। तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर द्वारा पूजित होकर वही सूर्य पार्श्व भाग, ऊर्ध्व (ऊपर) और नीचे (रहने वालों को) ताप प्रदान करते हैं ऐसा कहा गया है ।३२। इस प्रकार सभी स्थानों में पहुँचने वाली वायु के चलने फिरने की भाँति ग्रहेश एवं दिननायक सूर्य को भी सर्वगामी जानना चाहिए ।३३। सूर्य अपनी किरणों द्वारा समस्त जगत् को भली-भाँति प्रकाशित करते हैं। जिसमें तीन सौ किरणों द्वारा भूलोक, तीन-तीन सौ किरणों द्वारा अन्य दोनों (भुवर्लोक और स्वर्लोक) तथा

---

१. सौम्याश्च वासवीयाश्च ह्लादिनो हिमसर्जनाः ।

त्रीणित्रीणि तथा चान्यौ द्वौ लोकौ तापयन्त्युत । शतं चापि अधस्तात्तु पातालं तापयन्त्युत ।।३५
इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्वरं हेलिसंज्ञितम्[1] । नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च ।।
विधुऋक्षग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः ।।३६
रवेः करसहस्रं यत्प्राङ्मया समुदाहृतम् । तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहसंज्ञिताः ।।३७
सुषुम्णो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च । सूर्यश्चैवापरो रश्मिर्नाम्ना विष्णुरिति[2] स्मृतः ।।३८
समस्त्वः सर्वबन्धुस्तु जीवायति च वै जगत् । सप्तजः प्रथमस्तत्र कञ्जजश्च तथा परः ।।३९
तारेयश्चापरस्तत्र गुरुः सुमनसां तथा । उग्राह्वः पञ्चमस्तेषां पुत्रोऽन्यो वनमालिनः ।।
कः शेषः सप्तमस्तेषामेते वै सप्त रश्मयः ।।४०
आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं सचराचरम् । भवत्यस्माज्जगत्सर्वं स देवासुरमानुषम् ।।४१
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवौकसाम् । महद्युतिमतः कृत्स्नं तेजो यत्सार्वलौकिकम् ।।४२
सर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः । सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ।।४३
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।।४४
सूर्यात्प्रसूयते सर्वं तस्मिन्नेव प्रलीयते । भावाभावौ तु लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।।४५
एतत्तु ध्यानिनां ध्यानं मोक्षश्चाप्येव मोक्षिणाम् । अत्र गच्छन्ति निर्वाणं जायन्तेऽस्मात्पुनः प्रजाः ।।४६

सौ किरणों द्वारा अधोलोक (पाताल) को प्रकाशित करते हैं ।३४-३५। यही सूर्य का प्रदीप्त एवं शुक्ल मंडल है । इसी प्रकार नक्षत्र, ग्रह और सोम (लता) के उत्पत्ति स्थान एवं चन्द्र, नक्षत्र और ग्रहों का उत्पन्न होना भी इन्हीं के द्वारा जानना चाहिए ।३६ इस भाँति सूर्य के सहस्र किरणें हैं, जिन्हें मैंने पहले ही बता दिया है, उन्हीं की ग्रह नाम की श्रेष्ठ सात किरणें और हैं जो सुषुम्ना, हरिकेश, विश्वकर्मा, सूर्य, रश्मि, विष्णु के नाम से प्रख्यात होकर बलवान् बन्धुओं की भाँति समस्त जगत् को प्राणदान देती हैं ।३७-३८। इसी प्रकार सप्तज, कञ्जज, तारेय, देव, गुरु, उग्र, जल और शेष नामक उनकी सातों किरणें हैं ।३९-४०। इस निखिल चराचर तीनों लोकों जगत् के मूल कारण सूर्य ही हैं क्योंकि इन्हीं द्वारा समस्त विश्व, जिसमें देव, असुर और मनुष्यों आदि की सृष्टि की गयी है, उत्पन्न हुआ है ।४१। हे विप्रेन्द्र ! रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) और चन्द्र देवताओं में इन्हीं महान् प्रकाशमान् सूर्य का तेज समस्त लोकों में गमनशील होने के नाते निहित है ।४२। इस प्रकार सर्वात्मा, समस्त लोकों के ईश, देवाधिदेव एवं प्रजापति रूप सूर्य तीनों लोकों के महान् देवता हैं ।४३। अग्नि में डाली गई आहुति सूर्य को ही प्राप्त होती है जिससे सूर्य द्वारा वर्षा होती है एवं वर्षा द्वारा अन्न और अन्न द्वारा प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं ।४४। इस भाँति सदैव सूर्य द्वारा सभी (जगत्) का सर्जन एवं उन्हीं में प्रलय होता रहता है । अतः लोकों का उत्पन्न और विनाश दोनों सूर्य द्वारा ही होना पहले से निश्चित है ।४५। और यही ध्यान करने वालों के लिए ध्येय एवं मोक्ष के इच्छुकों के लिए मोक्ष रूप हैं। इन्हीं में लोगों को निर्वाण पद की प्राप्त होती है एवं पुनः उन्हीं द्वारा समस्त प्रजाओं की उत्पत्ति भी होती है

---

१. गोलसंज्ञितम् । २. धृष्टव्रतः ।

क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशाः पक्षास्तु नित्यशः । मासाः सम्वत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च ॥
अथादित्यमृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते ॥४७
कालादृते न नियमा नाग्नेर्विहरणक्रिया । ऋतू नामविभागाच्च पुष्पमूलफलं कुतः ॥४८
अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च । जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम् ॥४९
नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिवेष्यते । आदित्यस्य च नामानि सामान्यानीह द्वादश ॥५०
द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यनेकशः । आदित्यः सविता सूर्यो मिहिरोऽर्कः प्रतापनः ॥५१
मार्तंडो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः । रविर्वै द्वादशश्चैव ज्ञेयः सामान्यनामभिः ॥५२
विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोऽर्यमा । विवस्वानंशुमांस्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादश स्मृताः ॥५३
इत्येते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन प्रकीर्तिताः । उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासैर्द्वादशभिः क्रमात् ॥५४
विष्णुस्तपति चैत्रे च वैशाखे चार्यमा तथा । विवस्वाञ्ज्येष्ठमासे तु आषाढे चांशुमांस्तथा ॥५५
पर्जन्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रोष्ठसंज्ञके । इन्द्रश्चाश्वयुजे मासि धाता तपति कार्तिके ॥५६
मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः । माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥५७
तैश्च द्वादशभिर्विष्णू रश्मीनां दीप्यते सदा । दीप्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरर्यमा ॥५८
द्विसप्तकैर्विवस्वांस्तु अंशुमान्पञ्चकैस्त्रिभिः । विवस्वानिव पर्जन्यो वरुणश्चार्यमा इव ॥५९
इन्द्रस्तु द्विगुणैः षड्भिर्धातैकादशभिः शतैः । मित्रवद्भगवत्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च ॥६०

।४६। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु और युगरूपी काल की व्यवस्था बिना सूर्य के कभी भी सम्भव नहीं हो सकती है ।४७। उसी प्रकार बिना काल व्यवस्था के नियम और अग्नि की विहरण क्रिया (हवन) कैसे हो सकती है, और अविभाजित ऋतुओं में फूल, फल एवं मूल कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। ४८। इस भाँति सूर्य के बिना, जो जगत् को प्रताप प्रदान करते एवं जल के अपहर्ता हैं, प्राणियों के लोक-परलोक के व्यवहार (कार्य) सुसम्पन्न नहीं हो सकते हैं ।४९। और बिना वर्षा के सूर्य में ताप एवं (वर्षा के) मंडल सम्भव नहीं होते हैं । अब सूर्य के बारह नाम जो सामान्य रूप से हैं, उन्होंने पृथक्, पृथक् मैं बता रहा हूँ ।५० आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रतापन, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु और दिवाकर एवं रवि यही उनके सामान्य नाम हैं और विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान, त्वष्टा और पर्जन्य ये सूर्य के पृथक्-पृथक् रूप हैं, जिनका बारहों मासों में क्रमशः उदय हुआ करता है ।५१-५४

जिस प्रकार चैत में विष्णु, वैशाख में अर्यमा, ज्येष्ठ में विवस्वान्, आषाढ़ में अंशुमान्, श्रावण में पर्जन्य, भादों में वरुण, आश्विन में इन्द्र, कार्तिक में धाता, मार्गशीर्ष में मित्र, पौष में पूषा, माघ में भग और फाल्गुन में त्वष्टा नामक सूर्य ताप प्रदान करते हैं ।५५-५७। उसी प्रकार क्रमशः विष्णु (नामक सूर्य) बारह सौ रश्मियों द्वारा, अर्यमा तेरह सौ किरणों द्वारा, विवस्वान् चौदह सौ, अंशुमान् पन्द्रह सौ, पर्जन्य विवस्वान् के समान (चौदह सौ) वरुण अर्यमा की भाँति (तेरह सौ), इन्द्र बारह सौ, धाता ग्यारह सौ तथा त्वष्टा मित्र और भग के समान ग्यारह सौ किरणों द्वारा ताप प्रदान करते हैं ।५८-६०। जिस भाँति

उत्तरोपक्रमेऽर्कस्य वर्धन्ते रश्मयः सदा । दक्षिणोपक्रमे भूयो ह्रसन्ते सूर्यरश्मयः ।।६१
एवं रश्मिसहस्रं तु सौर्यं लोकार्थसाधकम् । भिद्यते ऋतुमासैस्तु सहस्रं बहुधा [1]भृशम् ।।६२
एवं नाम्नां चतुर्विंशदेकस्यैषा प्रकीर्तिता । विस्तरेण सहस्रं तु पुनरेवं प्रकीर्तितम् ।।६३
आसां परमयत्नेन ब्रुवते भिन्नदर्शनाः । तामसा बुद्धिमोहाच्च [2] दृष्टान्तानि ब्रुवन्ति हि ।।६४
ब्रह्माणं कारणं केचित्केचिदाहुर्दिवाकरम् । केचिद्भवं परत्वेन आहुर्विष्णुं तथापरे ।।६५
कारणं तु स्मृता ह्येते नानार्थेषु सुरोत्तमाः । एकः स तु पृथक्त्वेन स्वयंभूरिति विश्रुतः ।।६६
वनमालिनमुग्रेशं दिवि चक्षुरिवान्तकम् । तं स्वयंभूरिति प्रोक्तं स सोपर्णिमनौपमम् ।।६७
यथानुरज्यते वर्णैर्विविधैः स्फाटिको मणिः । तथा गुणवशात्तस्य स्वयंभोरनुरञ्जनम् ।।६८
एको भूत्वा यथा मेघः पृथक्त्वेन प्रतिष्ठितः । वर्णतो रूपतश्चैव तथा गुणवशात्तु सः ।।६९
नभसः पतितं तोयं याति स्वादान्तरं यथा । भूमे रसविशेषेण तथा गुणवशात्तु सः ।।७०
यथेन्धनवशादग्निरेकस्तु बहुधायते । वर्णतो रूपतश्चैव तथा गुणवशात्तु सः ।।७१
यथा द्रव्यविशेषाच्च वायुरेकः पृथग्भवेत् । सुगन्धिः पूतिगन्धिर्वा तथा गुणवशात्तु सः ।।७२
यथा वा गार्हपत्योऽग्निरन्यत्संज्ञान्तरं व्रजेत् । दक्षिणाहवनीयादिब्रह्मादिषु तथा ह्यसौ ।।७३

उत्तरायण में सूर्य की किरणें सदैव बढ़ती रहती हैं, उसी भाँति दक्षिणायन में अत्यन्त घटती जाती हैं।६१। इस प्रकार सूर्य की सहस्र किरणें, जो ऋतुओं द्वारा घटती-बढ़ती हैं, प्राणियों के प्रयोजनों को सफल करती हैं।६२। जिस प्रकार इन एक सूर्य के चौबीस नाम हैं इनके सहस्र नाम भी इसी प्रकार विस्तार पूर्वक बताये गये हैं।६३। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के दर्शनवादी इनकी किरणों को कुछ और ही कहने के लिए महान् प्रयत्नशील रहते हैं, जैसे तामस प्रधान पुरुष अपनी बुद्धि के भ्रमवश इन्हें देखते हुए भी (अपने सिद्धान्तों का) त्याग नहीं करते।६४। यद्यपि किसी ने ब्रह्मा, किसी ने सूर्य, किसी ने शिव तथा कुछ लोगों ने विष्णु को (जगत् का) कारण बताया है, पर ये सभी देवता उसी एक (सूर्य) द्वारा जो सभी से पृथक् एवं स्वयंभू नाम से ख्यात है, आविर्भूत होकर भाँति-भाँति के कार्यों में नियुक्त हैं।६५-६६। इसलिए वनमाली, उग्रेश, आकाश के नेत्र और अंतक (काल) रूपी सूर्य को जो देवों में अनुपम हैं, स्वयंभू बताया गया है, इस प्रकार विविध भाँति के वर्णो (रंगों) द्वारा अनेक भाँति की दिखाई देने वाली स्फटिक मणि के समान स्वयम्भू सूर्य भी गुणों के अनुरूप ही दिखायी देते हैं।६७-६८। उस एक मेघ के समान, जो भिन्न-भिन्न रूपों एवं रंगों में परिवर्तित होता रहता है, सूर्य भी अपने गुणानुरूप होते रहते हैं।६९। आकाश से गिरे हुए जल की भाँति, जो पृथिवी के रस विशेष के सम्पर्क से भिन्न स्वाद का हो जाता है, सूर्य का भी गुणानुरूप अनुरंजन होना जानना चाहिए।७०। पुनः एक ही अग्नि के ईंधनवश अनेक भाँति के रूप-रंग होने की भाँति सूर्य में भी गुणवश (रूपरंग का) परिवर्तन होता है।७१। जिस प्रकार एक ही वायु, विशेष के सम्बन्ध से सुगन्ध या दुर्गन्ध के रूप में परिवर्तित होता है, उसी भाँति गुणवश सूर्य में भी परिवर्तन होता रहता है।७२ एवं गार्हपत्य अग्नि के समान, जो कार्यवश दक्षिणाग्नि एवं आह्वनीय आदि नामान्तरों से प्रख्यात हैं, उसी भाँति सूर्य के ब्रह्म नाम-रूपान्तर भी हैं।७३। इस प्रकार उनके एक और

---

१. पुनः। २. दृष्ट्वा नातिक्रमंति हि।

एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् । तस्माद्भक्तिः सदा कार्या देवे ह्यस्मिन्दिवाकरे ।।७४
एषोऽण्डजोऽधिगश्चैव एष एव भृगुस्तथा । एष रजस्तमश्चैव एष सत्त्वगुणस्तथा ।।७५
एष वेदाश्च यज्ञाश्च सर्वश्चैव न संशयः । सूर्यव्याप्तमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।।७६
[1]इज्यते पूज्यते चासावत्र यानात्मको रविः । सर्वत्र सविता देवस्तनुभिर्नामभिश्च सः ।।७७
वसत्यग्नौ तथा वाते व्योम्नि तोये तथा विभो । एवंविधो ह्ययं सूर्यः सदा पूज्यो विजानता ।।७८
आदित्यं वेत्ति यस्त्वेवं स तस्मिन्नेव लीयते । अप्येकं वेत्ति यो नाम धात्वर्थनिगमै रवेः ।।७९
स रोगैर्वर्जितः सर्वैः सद्यः [2]पापात्प्रमुच्यते । न हि पापकृतः साम्ब भक्तिर्भवति भास्करे ।।८०
तथा त्वं परया भक्त्या प्रपद्यस्व दिवाकरम् । येन व्याधिविनिर्मुक्तः सर्वान्कामानवाप्स्यसि ।।८१
यथा तव पिता साम्ब यथा वेधा यथा हरः । यथा गुणवशात्तस्य स्वयम्भोरनुरञ्जनम् ।।८२
एकीभूय यथा मेघः पृथक्त्वेन प्रतिष्ठते । वर्णतो रूपतश्चैव तथा गुणवशात्तु सः ।।८३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यमहिमवर्णनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।७८।

अनेक होने में यही दृष्टान्त बताये गये हैं। अतः इस दिवाकर देव की सदैव भक्ति करनी चाहिए।७४ यही अण्डज (मार्तण्ड) (सर्वत्र) व्यापक, भृगु, रजस्, तमस् एवं सत्वगुण, वेद, यज्ञ और सर्वरूप हैं इसमें संदेह नहीं तथा स्थावर जंगम रूप से समस्त जगत् में व्याप्त हैं।७५-७६। इसी प्रकार यानात्मक सविता सूर्यदेव का बारहों रूपों और नामों द्वारा सर्वत्र यजन और पूजन होता है।७७। इसी भाँति सूर्य को अग्नि, वायु, आकाश, एवं जल के निवासी भी जानते हुए उनकी सदैव पूजा करनी चाहिए।७८। तथा जो इस भौतिक की विशिष्ट जानकारी सूर्य के विषय में प्राप्त करता है, उसे उनका सायुज्यमोक्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार धात्वर्थ एवं निगमों (वेदों) द्वारा उनके एक ही नाम का ज्ञान रखने वाला (पुरुष) रोग एवं पापों से शीघ्र मुक्त हो जाता है। हे साम्ब ! किन्तु पापी मनुष्य सूर्य के भक्त नहीं होते हैं।७९-८०। इसीलिए अत्यन्त भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना करो, जिससे व्याधिमुक्त होकर तुम्हारे सभी मनोरथ सफल हो जाँय।८१। हे साम्ब ! तुम्हारे पिता, ब्रह्मा और शिव की भाँति सूर्य का भी गुणानुरूप मनोरजंन होता है। भिन्न-भिन्न रूप रंग वाले मेघ एक में मिलकर रूपरंग से जिस भाँति भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं सूर्य भी अपने गुणों द्वारा वैसा ही हुआ करते हैं।८२-८३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य महिमावर्णन नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।७८।

---

१. इत्येते द्वादशादित्या जगत्पालात्मको रविः। २. पापैः।

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

आदित्यमहिमवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एतच्छ्रुत्वा तु कार्त्स्न्येन हृष्टो जाम्बवतीसुतः । जातकौतूहलो भूयः परिपप्रच्छ नारदम्[१] ॥१

साम्ब उवाच

अहो सूर्यस्य माहात्म्यं वर्णितं हर्षवर्धनम् । येन मे भक्तिरुत्पन्ना परा ह्यस्मिन्विभावसौ ॥२
ततो राज्ञीं महाभागां निक्षुभां च महामुने । दिण्डिनं पिङ्गलादींश्च सर्वान्कथय मे मुने ॥३

नारद उवाच

प्रागुक्तेऽर्कस्य द्वे भार्ये राज्ञी निक्षुभसंज्ञिते । तयोर्हि राज्ञी द्यौर्ज्ञेया निक्षुभा पृथिवी स्मृता ॥४
सौम्यमासस्य[२] सप्तम्यां द्यावार्कः सह युज्यते । माघकृष्णस्य सप्तम्यां मह्या सह भवेद्रविः ॥
भूरादित्यश्च भगवानगच्छतः सङ्गमं तथा ॥५
ऋतुस्नाता मही तत्र गर्भं गृह्णाति भास्करात् । द्यौर्जलं सूयते गर्भं वर्षास्विह च भूतले ॥६
ततस्त्रैलोक्यभूत्यर्थं[३] मही सस्यानि सूयते । सस्योपयोगसंहृष्टा जुह्वत्याहुतयो द्विजाः ॥७

अध्याय ७९

सूर्य की महिमा का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—विस्तारपूर्वक इसे सुनकर साम्ब ने हर्षित होते हुए कौतूहलवश नारद से फिर पूछा ।१

साम्ब ने कहा—आश्चर्य है ! आपने सूर्य के ऐसे हर्षवर्धक माहात्म्य को सुनाया, जिसके द्वारा मुझमें सूर्य की उत्तम भक्ति उत्पन्न हो गई । हे महामुने ! अब पुण्यवती राज्ञी, निक्षुभा, दिंडी और पिंगल आदि को मुझे बताने की कृपा करें ।२-३

नारद बोले—पहले बतायी हुई सूर्य की राज्ञी और निक्षुभा नामकी दोनों स्त्रियों में प्रथम आकाश, रूप और दूसरी पृथ्वी रूप हैं—ऐसा जानना चाहिए ।४। पौष मास की शुक्ल सप्तमी तिथि में राज्ञी (आकाश) का और माघ कृष्ण सप्तमी में निक्षुभा (पृथिवी) का सूर्य से सम्मिलन होता है। पश्चात् सूर्य और पृथ्वी के संयोग होने पर ऋतुकाल में स्नान की हुई (स्त्री की भाँति) पृथिवी सूर्य द्वारा गर्भधारण करती है। जिसे वर्षा काल में आकाश पृथ्वी को पुनः वृष्टि रूप में प्रदान करता है ।५-६। इस प्रकार तीनों लोकों को ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए पृथ्वी धन-धान्यों को उत्पन्न करती है, जिसके प्राप्त होने पर

---

१. सादरम् । २. पौषस्य शुक्लसप्तम्यां रारयार्कः सह युज्यते । ३. त्रैलोक्यवातीर्थम् ।

स्वाहाकारस्वधाकारैर्यजन्ति पितृदेवताः ॥८
निक्षुभा सूयते यस्मादन्नौषधिसुधामृतैः । मर्त्यान्पितॄंश्च देवांश्च तेन भूर्निक्षुभा स्मृता ॥९
यथा राज्ञी द्विधा भूता यस्य चेयं सुता मता । अपत्यानि च यान्यस्यास्तानि वक्ष्याम्यशेषतः ॥१०
मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रो मरीचेः कश्यपः सुतः । तस्माद्धिरण्यकशिपुः प्रह्लादस्तस्य चात्मजः ॥११
प्रह्लादस्य सुतो नाम्ना विरोचन इति श्रुतः । विरोचनस्य भगिनी संज्ञाया जननी शुभा ॥१२
हिरण्यकशिपोः पौत्री दितेः पुत्रस्य सा स्मृता । सा विश्वकर्मणः पुत्री प्राह्लादी प्रोच्यते बुधैः ॥१३
अथ नाम्ना सुरूपेति मरीचेर्दुहिता शुभा । पुत्री ह्यङ्गिरसः सा तु जननी तु बृहस्पतेः ॥१४
बृहस्पतेस्तु भगिनी विश्रुता ब्रह्मवादिनी । प्रभासस्य तु सा पत्नी वसूनामष्टमस्य तु ॥१५
प्रसूता विश्वकर्माणं सर्वशिल्पकरं वरम् । स वै नाम्ना पुनस्त्वष्टा त्रिदशानां च वार्धकिः ॥१६
देवाचार्यश्च तस्येयं दुहिता विश्वकर्मणः । सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भामिनी ॥१७
राज्ञी संज्ञा च द्यौस्त्वाष्ट्री प्रभा तैव विभाव्यते । तस्यास्तु या तनुच्छाया निक्षुभा सा महीमयी ॥१८
सा[1] तु भार्या भगवतो मार्तण्डस्य महात्मनः । साध्वी पतिव्रता देवी रूपयौवनशालिनी ॥१९
न तु तां नररूपेण सूर्यो भजति वै पुरा । आदित्यस्येह तद्रूपं महता स्वेन तेजसा ॥२०
गात्रेष्वप्रतिरूपेषु नातिकान्तमिवाभवत् । अनिष्पन्नेषु गात्रेषु गोलं दृष्ट्वा पितामहः ॥२१

प्रसन्नतापूर्ण होकर द्विज लोग हवन करते हैं, स्वधाकार द्वारा पितरों और स्वाहाकार द्वारा देवताओं की पूजा होती है ।७-८। इस प्रकार उत्पन्न किये हुए उस अन्न, औषधि एवं सुधा द्वारा मनुष्य, पितर और देवताओं को प्राण प्रदान करने के नाते पृथ्वी को निक्षुभा कहा गया है ।९।

उसी भाँति राज्ञी के दो रूप का होना तथा ये किसकी पुत्री हैं और इनके कितनी सन्तान हैं, मैं बता रहा हूँ सुनो ! ।१०। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के कश्यप, कश्यप के हिरण्यकशिपु, उसके प्रह्लाद और प्रह्लाद के पुत्र विरोचन हैं, ऐसा सुना गया है। विरोचन की भगिनी, जो दितिपुत्र हिरण्यकशिपु की पौत्री, प्रह्लाद की पुत्री और विश्वकर्मा की स्त्री है, संज्ञा की माँ थी ।११-१३

मरीचि की पुत्री सुरूपा, जो अंगिरा की पत्नी थी, बृहस्पति की माँ थी ।१४। एवं बृहस्पति की ब्रह्मवादिनी भगिनी आठवें वसुप्रभा की स्त्री हुई, जिसने सभी शिल्पों का अभिज्ञ विश्वकर्मा नामक पुत्र को उत्पन्न किया है, जिसे देवताओं की वृद्धि करने के नाते त्वष्टा भी कहते हैं ।१५-१६। विश्वकर्मा की वह सुन्दरी कन्या (संज्ञा) जो तीनों लोकों में सुरेणु नाम से भी ख्यात थी राज्ञी, संज्ञा, द्यौ एवं त्वाष्ट्री और प्रभा के नाम से ख्यात हुई। उसी के शरीर की छाया को निक्षुभा (पृथ्वी) कहते हैं ।१७-१८। वही, साध्वी, पतिव्रता जो रूप, सौन्दर्य तथा यौवन पूर्ण थी, भगवान् मार्तण्ड की स्त्री हुई ।१९। किन्तु मनुष्य रूप में सूर्य उससे संगम नहीं करते थे। इसीलिए सूर्य का वह रूप, जो अत्यन्त तेजस्वी था, उस सौन्दर्य की प्रतिमा (संज्ञा) के लिए आकर्षक न हो सका। इसीलिए सूर्य के उस अनुत्पन्न शरीर को गोलाकार देखकर ब्रह्मा

---

१. सा च भार्या मघवतो मार्तंडस्य महात्मनः । शची पतिव्रता देवी रूपयौवनशालिनी—इ० पुस्तकांतरस्थः पाठः अन्येपु पुस्तकेषु तु मूलस्थ एव ।

मार्तस्त्वं भव चाण्डस्तु मार्तण्डस्तेन स स्मृतः। देवानां च यतस्त्वादिस्तेनादित्य इति स्मृतः ॥२२
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रजास्तस्य महात्मनः। त्रीण्यपत्यानि संज्ञायां जनयामास वै रविः ॥२३
वर्षाणां तु सहस्रं वै वसमाना पितुर्गृहे। भर्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनःपुनः ॥२४
अगच्छद्वडवा भूत्वा त्यक्त्वा रूपं यशस्विनी। उत्तरांश्च कुरून्गत्वा तृणान्यनुचचार ह ॥२५
पितुः समीपं या भार्या संज्ञा या वचनेन सा। संज्ञाया धारयद्रूपं छाया सूर्यमुपस्थिता ॥२६
द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्तयन्। आदित्यो जनयामास पुत्रौ कन्यां च रूपिणीम् ॥२७
पूर्वजस्य मनोस्तुल्यौ सादृश्येन च तावुभौ। श्रुतश्रवाश्च धर्मज्ञः श्रुतकर्मा तथैव च ॥२८
श्रुतश्रवा मनुस्ताभ्यां सावर्णियो भविष्यति। श्रुतकर्मा तु विज्ञेयो ग्रहो यो वै शनैश्चरः ॥२९
कन्या च तपती नाम रूपेणाप्रतिरूपिणी। संज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां यथाकरोत् ॥३०
न स्नेहं पूर्वजानां तु तथा कृतवती तु सा। मनुस्तु क्षमते तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥३१
बहुशो यात्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः। स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥३२
पदा सन्तर्जयामास संज्ञां वैवस्वतो यमः। तं शशाप ततः क्रोधात्संज्ञा सा पार्थिवी भृशम् ॥३३
पदा तर्जयते यन्मां पितुर्भार्यां गरीयसीम्। तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः ॥३४
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः। मनुना सह तन्मातुः पितुः सर्वं न्यवेदयत् ॥३५

के कहने पर कि तुम मृत (मिट्टी) के अंडे हो जाओ, सूर्य मार्तण्ड कहे जाते हैं और देवों में आदि होने के नाते आदित्य भी उन्हें कहा जाता है।२०-२२

अब मैं उनकी संतानों को बता रहा हूँ सुनो ! सूर्य द्वारा संज्ञा के गर्भ से तीन सन्तान उत्पन्न हुए।२३। यद्यपि एक सहस्र वर्ष तक पिता के यहाँ रहने पर उसे 'अपने पति (सूर्य) के घर जाओ, इस प्रकार बार-बार उसके पिता ने कहा था।२४। किन्तु उस पुण्य स्वरूपा संज्ञा ने अपने मनुष्य रूप को त्यागकर घोड़ी का रूप धारण किया और उत्तर कुरु देश में जाकर तृणों (घासों) को खाकर वह अपने समय व्यतीत करने लगी थी।२५। (इधर) अपने पिता के यहाँ ही रहते समय उस संज्ञा के कहने से उस की छाया संज्ञा का रूप धारण कर सूर्य के पास जाकर संज्ञा की भाँति ही रहने लगी थी।२६। उसे देखकर 'यह संज्ञा ही है, ऐसा निश्चित कर सूर्य ने दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या उससे भी उत्पन्न किया था।२७। किन्तु वे दोनों श्रुतश्रवा और श्रुतकर्मा नामक धर्मज्ञ पुत्र (रूप गुणादि में) अपने पूर्वज मनु के समान ही हुए।२८। उनमें श्रुतश्रवा भावी सावर्णि मनु और श्रुतकर्मा शनैश्चर नामक ग्रह हुआ।२९। और उस सौन्दर्यपूर्ण कन्या का नाम तपती रखा गया। इधर अपनी सन्तानों की भाँति छाया संज्ञा की संतानों पर स्नेह नहीं करती थी। यद्यपि मनु उस (दुर्व्यवहार) का सहन कर लेते थे, पर यम के लिए उनका सहन करना कठिन हो गया था।३०-३१। पिता की उस स्त्री द्वारा अत्यन्त प्रताड़ित होने से दुःखी होकर (यम ने) एक बार क्रोध में आकर बाल्य-भाव (चञ्चलता) वश और अनिवार्य भावी (घटना) के वश होकर उस (छाया) पर पाद-प्रहार किया। उसने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया—तूने अपने पिता की गौरवशालिनी भार्या (स्त्री) पर जिस पाद से प्रहार किया है, वह निश्चित गिर जायगा।३२-३४। पश्चात् उस शाप के कारण अत्यन्त पीड़ित होने के नाते यम मनु को साथ लेकर पिता के समीप गये। और उनसे उन्होंने माँ द्वारा किये गये सभी (दुर्व्यवहारों को) कह सुनाया।३५। उन्होंने

स्नेहेन तुल्यनस्मासु माता देव न वर्तते । निःस्नेहाज्ज्यायसो ह्यस्मान्कनीयां सं बुभूषति ॥३६
तस्या मयोद्यतः पादो न तु देव निपातितः । बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥३७
शप्तोऽहमस्मिँल्लोकेश जनन्या तपतां वर । तव प्रसादाच्चरणस्त्रायतां महतो भयात् ॥३८

रविरुवाच

असंशयं महत्पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम् । येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं धर्मशालिनम् ॥३९
सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातस्तु विद्यते । न तु मात्राभिशप्तानां क्वचिन्मोक्षो भवेदिह ॥४०
न शक्यमेतन्मिथ्या मे कर्तुं मातुर्वचस्तव । किञ्चित्तेऽहं विधास्यामि पितृस्नेहादनुग्रहम् ॥४१
कृमयो मांसमादाय यास्यन्ति तु महीतले । कृतं तया वचः सत्यं त्वं च त्रातो भविष्यसि ॥४२

सुमन्तुरुवाच

आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किमर्थं तनयावुभौ । तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेह एकत्र क्रियते त्वया ॥४३
सा[1] तत्पुराभवं तस्मै नाचचक्षे विवस्वते । आत्मानं स समाधाय वक्तुं तस्यानपश्यत् ॥४४
तां शप्तुकामो भगवानुद्यतः कुपितस्ततः । ततश्छाया यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते ॥४५
विवस्वांस्तु ततः क्रुद्धः श्रुत्वा श्वशुरमागतः । सा चापि तं यथान्यायमर्चयित्वा दिवाकरम् ॥

कहा—हे देव ! स्नेह के समान पात्र होते हुए भी हम लोगों में माँ समान भाव नहीं रखती है, वह छोटे को अधिक चाहती है हम लोगों को नहीं ।३६। हे देव ! यद्यपि (उसे मारने के लिए) पैर मैंने अवश्य उठाया था, पर प्रहार नहीं किया था । अतः लड़कपन या मोहवश किये गये इस मेरे अपराध को आप क्षमा करें ।३७। हे लोकेश, हे तपस्वियों में श्रेष्ठ ! इसीलिए माँ (छाया) ने मुझे शाप दिया है, अतः आपकी कृपा ही उस महाभय से मेरे चरण को मुक्त कर सकती हैं (यह मुझे विश्वास) है ।३८

सूर्य बोले—हे पुत्र ! अवश्य इसमें कोई महान् कारण है, नहीं तो धर्मशील एवं धर्मज्ञ होते हुए तुम्हें इतना महान क्रोध ही न होता ।३९। यद्यपि सभी प्रकार के शापों का प्रतिकार हो सकता है, पर, माँ द्वारा शाप प्राप्त होने पर पुरुष (उससे) किसी भाँति मुक्त नहीं हो सकता है ।४०। इसलिए तुम्हारी माँ के इस बात (शाप) को असत्य करने में मैं समर्थ नहीं हूँ, किन्तु, पितृस्नेह वश तुम्हारे लिए कुछ कृपा अवश्य करूँगा ।४१। कीड़े ही तुम्हारे चरण के मांस लेकर पृथ्वी पर चले जायेंगे और चरण बच जायेगा, इससे उसकी बात सत्य हो जायगी और तुम्हारी रक्षा भी होगी ।४२

सुमन्तु ने कहा—सूर्य ने छाया से कहा कि स्नेह के समान पात्र इन लड़कों में से किसी एक ही को तू क्यों अधिक चाहती है ? ।४३। उसने संज्ञा की बातों का स्मरण कर सूर्य से कुछ भी न कहा, और सूर्य भी कुछ उत्तर सुनने के लिए) ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखने लगे ।४४। पश्चात् क्रुद्ध होकर शाप देने के लिए तैयार सूर्य को देखकर छाया सभी बातें उनसे कह सुनाई ।४५। उसे सुनकर सूर्य क्रोध के आवेश में श्वसुर के पास पहुँचे, उनके श्वसुर ने सूर्य की यथोचित अर्चना की और (मीठी बातों द्वारा) धीरे-धीरे उन क्रोध

---

१. सा च संज्ञावचः स्मृत्वा ।

निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास तं शनैः ॥४६

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं सुदुःसहम् । असहन्ती तु संज्ञा च वने चरति शाद्वले ॥४७
द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम् । रूपार्थं भवतोरण्ये चरन्तीं सुमहत्तपः ॥४८
रूपं ते ब्रह्मणो वाक्याद्यदि वै रोचते विभो । प्रशातयामि देवेन्द्र श्रेयोऽर्थं जगतः प्रभो ॥४९
सन्तुष्टस्तस्य तद्वाक्यं बहु मेने महातपाः । ततोऽन्वजानात्त्वष्टारं रूपनिर्वर्तनाय तु ॥५०
विश्वकर्मा ह्यनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः । भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास तस्य वै ॥५१
आजानुलिखितश्चासौ निपुणं विश्वकर्मणा । लेखनं नाभ्यनन्दत्तु ततस्तेन निवारितः ॥५२
तत्र तद्भासितं रूपं तेजसा प्रकृतेन तु । कान्तात्कान्ततरं भूत्वा अधिकं शुशुभे ततः ॥५३
ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां वडवां तथा । अदृश्यां सर्वभूतानां तेजसा स्वेन सम्वृताम् ॥५४
अश्वरूपेण मार्तण्डस्तां मुखेन समासदत् । मैथुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसो विशङ्कया ॥५५
सा तं विवस्वतः शुक्रं नासाभ्यां समधारयत् । देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ ॥५६
नासत्यश्चैव दस्रश्च तौ स्मृतौ नामतोऽश्विनौ । अतः परं स्वकं रूपं दर्शयामास भास्करः ॥
तद्दृष्ट्वा चापि संज्ञा तु तुतोष च मुमोह च ॥५७

से भस्म करने की इच्छा वाले सूर्य को शांत किया ।४६

विश्वकर्मा ने कहा—अतितेजस्वी एवं सुदुःसह तुम्हारे इस तेज का सहन न कर सकने के कारण संज्ञा घास-पात के जंगलों में घूम रही है ।४७। इसलिए पुण्यकर्म करने वाली उस स्त्री को, जो आपकी भाँति रूप प्राप्त करने के लिए जंगल में तप कर रही है, आप वहाँ जाकर अवश्य दर्शन दें ।४८। हे विभो ! हे देवेन्द्र ! यदि ब्रह्मा के कहे हुए उस रूप को आप चाहते हों, तो (यन्त्रों द्वारा खरादकर) मैं बनाने को तैयार हूँ, हे प्रभो ! उससे जगत् का कल्याण होगा ।४९। महातपस्वी (सूर्य) ने प्रसन्नतापूर्वक उनकी बातों को स्वीकार किया और उन्हें रूप सौन्दर्य संपादन करने वाले उन त्वष्टा से कहा ।५०। अनन्तर सूर्य की आज्ञा पाकर विश्वकर्मा ने शाकद्वीपयंत्र (खराद वाली मशीन) लगाकर उस पर उन्हें चढ़ाकर (खरादना) तेज का काटना आरम्भ किया ।५१। विश्वकर्मा ने बड़ी चतुरता के साथ उनकी जानु (घुटने) पर्यन्त समस्त अंगों को (खरादकर) सुन्दर बनाया । पश्चात् उन्होंने (सूर्य ने) शेष अंगों को खरादने से अनिच्छा प्रकट कर उसे मना कर दिया था ।५२। किन्तु उतने ही (खरादने) पर पहले से भी अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण उनकी शरीर हो गई ।५३।

पश्चात् योग द्वारा उन्होंने घोड़ी के रूप धारण करने वाली अपनी स्त्री को देखा, जो अपने तेज से आवृत्त होने के नाते सभी प्राणियों से अदृश्य होकर विचरण कर रही थी ।५४। यद्यपि वहाँ पहुँचने पर घोड़े का रूप धारण कर सूर्य ने उसके मुख से अपने मुख को संयुक्त किया, पर, वह मैथुन के लिए प्रवृत्त देखकर उन्हें पर पुरुष की ही आशंका करती रही ।५५। इसके उपरान्त उसने सूर्य के वीर्य को अपनी नासिका के द्वारा धारण किया, और उसी से अश्विनी कुमार नामक दो देव, जो सर्वोत्तम वैद्यों में हैं, उत्पन्न हुए ।५६।

ततस्तु जनयामास संज्ञा सूर्यसुतं शुभम् । रूपेण चात्मनस्तुल्यं रेवतं नाम नामतः ॥५८
पितुर्गृह्याष्टमं सोऽश्वं जातमात्रः पलायत । स तस्मिन्सकृदारूढस्तमश्वं नैव मुञ्चति ॥५९
ततोऽर्केण समादिष्टौ दण्डनायकपिङ्गलौ । अश्वं प्रत्यानयेथां मे मा बलाच्छिद्रतोऽस्य तु ॥६०
पार्श्वस्थौ तिष्ठतस्तस्य अश्वच्छिद्राभिकाङ्क्षिणौ । न च्छिद्रं तु लभेते तौ तस्याद्यापि महात्मनः ॥६१
प्लवनगच्छत्यसौ यस्मात्संज्ञायाः शान्तिदः सुतः । रेवृस्तु च गतौ धातू रेवन्तस्तेन स स्मृतः ॥६२
मनुर्यमो यमी चैव सावर्णिः स शनैश्चरः । तपती चाश्विनौ चैव रेवन्तश्च रवेः सुताः ॥६३
एवमेषा पुरा संज्ञा द्वितीया पार्थिवी स्मृता । या संज्ञा सा स्मृता राज्ञी छाया या सा तु निक्षुभा ॥६४
राजृदीप्तौ स्मृतो धातू राजा राजति यत्सदा । अधिकः सर्वभूतेभ्यो राजते च दिवाकरः ॥६५
अधिकं राजते यस्मात्तस्माद्राजा स उच्यते । राज्ञः पत्नी तु सा यस्मात्तस्माद्राज्ञी प्रकीर्तिता ॥६६
क्षुभ सञ्चलने धातुर्निश्चला तेन निक्षुभा । भवन्तीत्यथ वा यस्मात्स्वर्गीयाः[1] क्षुद्विवर्जिताः ॥
छायां तां विशते दिव्यां स्मृता सा तेन निक्षुभा ॥६७
दृष्ट्वा जनं सदा तात भृशं पीडितमानसम् । धर्मेण रञ्जयामास धर्मराजस्ततः स्मृतः ॥६८

नासत्य और दस्र उनका नामकरण हुआ। पश्चात् सूर्य ने अपने रूप को प्रकट किया जिसे देखकर संज्ञा संतुष्ट और अत्यन्त मुग्ध हुई।५७। उसके अनन्तर संज्ञा ने एक और पुत्र उत्पन्न किया, जो रूप-सौन्दर्य आदि में सूर्य के ही समान था। उसका रेवतक नाम करण हुआ।५८। उत्पन्न होते ही वह अपने पिता के आठवें घोड़े को लेकर भाग गया। यद्यपि एक ही बार उस पर सवार हुआ पर उसका त्याग कभी नहीं कर सका।५९। पश्चात् सूर्य ने दंडनायक और पिंगल को आज्ञा प्रदान की कि मेरे घोड़े को लाओ, किन्तु (लड़के से) बलात् अपहरण कर न लाना, कोई दोष ही देखकर उसका अपहरण करना।६०। यद्यपि उसके पार्श्व भाग में स्थित होकर वे दोनों उसका छिद्रान्वेषण करने लगे, पर, आज तक भी उस महत्त्वपूर्ण बालक में कोई दोष न देख सके।६१। संज्ञा को शांति प्रदान करने वाले उस पुत्र का नाम कूदते हुए चलने और गमनार्थ रेवृ धातु के होने के नाते रेवत हुआ।६२। इस प्रकार मनु, यम, यमी, सावर्णि, शनैश्चर, तपती, अश्विनी कुमार (नासत्य और दस्र) तथा रेवत इतनी सूर्य की सन्तानें हुई।६३

प्रथम संज्ञा और दूसरी छाया नाम की दो स्त्रियाँ उनके थी। संज्ञा का राज्ञी (रानी) और छाया का निक्षुभा (पृथ्वी) भी नामकरण हुआ।६४। यद्यपि प्रदीप्तार्थक राज् धातु के होने के नाते सदैव प्रदीप्त (सुशोभित) होने वाले को राजा कहा जाता है, किन्तु सूर्य तो सभी प्राणियों से अधिक प्रदीप्त (अत्यन्त सुशोभित) है। इसीलिए अधिक सुशोभित होने के नाते सूर्य राजा और उनकी पत्नी होने के नाते संज्ञा राज्ञी (रानी) कही जाती है।६५-६६। इसी प्रकार क्षुभ-धातु संचलनार्थक कही गई है, किन्तु उससे हीन (निश्चल) होने के नाते (पृथ्वी) निक्षुभा कही जाती है। अथवा वह स्वर्गीय भूमि क्षुत् (भूख) हीन होने के नाते दिव्य छाया में प्रविष्ट होती है अतः उसे निक्षुभा कहा गया है।६७

हे तात ! मनुष्यों को सदैव मानसिक पीड़ा से दुःखी देख धर्म द्वारा उन्हें प्रसन्न करने के नाते (सूर्य

---

१. याज्ञियाः।

शुद्धेन कर्मणा तात शुभेन परमद्युतिः । पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमाप च ।।६९
साम्प्रतं वर्तते योऽयं मनुर्लोके महामते । यस्यान्ववाये जातस्तु शङ्खचक्रगदाधरः ।।७०
यमस्य भगिनी या तु यमी कन्या यशस्विनी । साभवत्सरितां श्रेष्ठा यमुना लोकपावनी ।।७१
मनुः प्रजापतिस्त्वेष सावर्णिः स महायशाः । भविष्यन्स मनुस्तात अष्टमः परिकीर्तितः ।।७२
मेरुपृष्ठे तपो दिव्यमद्यापि चरते प्रभुः । भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहत्वं स तु लब्धवान् ।।७३
तपती नाम या नाम्ना तयोः कन्या गरीयसी । सा बभूव शुभा पत्नी राज्ञः सम्वरणस्य तु ।।७४
तापी नाम नदी चेयं विन्ध्यमूलाद्विनिःसृता । नित्यं पुण्यजला स्नाने पश्चिमोदधिगामिनी ।।७५
सौम्यया सङ्गता सा तु सर्वपापभयापहा । वैवस्वती यथा वीर सङ्गता [1]शिवकान्तया ।।७६
अश्विनौ देववैद्यत्वं लब्धवन्तौ यदूत्तम । तयोः कर्मोपजीवन्ति लोकेस्मिन्भिषजः सदा ।।७७
रेवन्तो नाम योऽर्कस्य रूपेणार्कसमः सुतः । [2]अश्वानामाधिपत्ये तु योजितः स तु भानुना ।।७८
क्षेमेण गच्छतेऽध्वानं यस्तं पूजयते पथि । सुखप्रसाद्यो मर्त्यानां सदा यदुकुलोद्वह ।।७९
त्वष्टापि तेजसा तेन मार्तण्डस्यैव चाज्ञया । भोजानुत्पादयामास पूजायै सत्य सुव्रत ।।८०

को) धर्मराज कहा गया है ।६८। हे तात ! इसी प्रकार उन्होंने शुभ और शुद्ध कर्मों एवं परमप्रकाश प्राप्त करने के कारण पितरों का आधिपत्य भी प्राप्त किया है तथा लोक पालन की प्राप्ति भी ।६९। हे महामते ! आधुनिक समय में वर्तमान इसी मनु के कुल को जन्म ग्रहण कर शंख, चक्र, गदाधारी भगवान् ने विभूषित किया था ।७०। यम की पुण्य स्वरूपा वह यमी नाम की भगिनी नदियों में श्रेष्ठ एवं लोक को पवित्र करने वाली यमुना नाम की नदी हुई है ।७१। इसी भाँति मनु प्रजापति भी महायशस्वी सावर्णि होंगे, जिन्हें आठवाँ मनु बताया गया है ।७२। वही प्रभु मनु आदि भी मेरु पर्वत के ऊपर तपश्चर्या कर रहे हैं । और उनके भाई शनैश्चर ग्रह हुए ।७३। उन दोनों (सूर्य एव छाया) की तपती नाम की लघु कन्या राजा संवरण की कल्याणकारिणी स्त्री हुई थी ।७४। पश्चात् यही विन्ध्यपर्वत के मूल भाग से निकल कर तापी नाम की नदी हुई है, जिसका जल स्नान करने के लिए अति पवित्र माना गया है और यह पश्चिम समुद्र की ओर प्रवाहित होती है ।७५। हे वीर ! इस प्रकार उस सौम्य शिवकांता (गंगा) के संगम प्राप्त होने के नाते यह वैवस्वती (तापी) समस्त पापों का नाश करती है ।७६। हे यदूत्तम । अश्विनी कुमार देवताओं के श्रेष्ठ वैद्य हुए, जिनके गुणकर्मों के द्वारा इस लोक के वैद्य सदैव जीवन निर्वाह करते हैं ।७७। सूर्य ने अपने समान तेजस्वी उस रेवतक नामक पुत्र को घोड़ों का आधिपत्य प्रदान किया है ।७८। हे यदुकुलोद्वह ! जो मनुष्य कुशलपूर्वक यात्रा करने के लिए मार्ग में उनकी पूजा करते हैं, वह उन्हें सुख प्रदान करते है । इससे सुखपूर्वक यात्रा समाप्त होती है ।७९। हे सुव्रत ! सूर्य की आज्ञा प्राप्त कर त्वष्टा ने भी उन्हीं की पूजा के लिए उनके तेज द्वारा भोजों को उत्पन्न किया है ।८०। इस भाँति जो

---

१. गंगया । २. अश्वाधिपत्ये पित्रा तु ।

य इदं जन्म देवस्य भृणुयाद्वा पठेत वा । विवस्वतो हि पुत्राणां सर्वेषाममितौजसाम् ।।८१
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति सूर्यसलोकताम् । इह राजा भवत्येव पुनरेत्य न संशयः ।।८२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्त्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।७९।

अथाशीतितमोऽध्यायः

आदित्यमहिमावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्थं श्रुत्वा कथां दिव्यां हेलिमाहात्म्यमाश्रिताम् । साम्बः पप्रच्छ भूयोऽपि नारदं मुनिसत्तमम् ।। १

साम्ब उवाच

सूर्यपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं महत् । प्रणिपाते फलं यच्च गीतवाद्ये च यत् फलम् ।।२
भास्करस्य द्विजश्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि समन्ततः । येन सम्पूजयाम्येष भानुं देवैः[1] सदार्चितम् ।।३

नारद उवाच

इममर्थं पुरा पृष्टो ब्रह्मा लोकपितामहः । दिण्डिना यदुशार्दूल भृणुष्वैकाग्रमानसः ।।४

सूर्य के अनुपम तेज वाले इन पुत्रों की जन्म कथाएँ सुनता या पढ़ता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य के लोक को प्राप्त होता है और फिर यहाँ आकर निश्चित राजा होता है ।८१-८२

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य माहात्म्य वर्णन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।७९।

अध्याय ८०

सूर्य की आराधना का फल

सुमन्तु बोले—इस प्रकार सूर्य के माहात्म्य की दिव्य कथा को सुनकर साम्ब ने फिर देवश्रेष्ठ नारद से पूँछा ।१

शाम्ब ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! सूर्य की पूजा का, महत्वपूर्ण दान का, नमस्कार का, और उनके सम्मुख गाने-बजाने के समस्त फलों को मुझे बताइये, जिससे मैं भी उस देव वन्दनीय सूर्य की पूजा करूँ ।२-३

नारद बोले—हे यदुशार्दूल ! इन्हीं बातों को पहले दिंडी ने लोक पितामह ब्रह्मा से पूछा था, और

---

१. केशैरिति पाठे ब्रह्मशंकरादिभिरित्यर्थः ।

सुखासीनं तथा देवं सुरज्येष्ठं पितामहम् । प्रणम्य शिरसा दिण्डिरिदं वचनमब्रवीत् ॥५

दिण्डिरुवाच

सूर्यपूजाफलं ब्रूहि ब्रूहि दानफलं तथा । प्रणामे यत्फलं देव यच्चोक्तं तौर्यकत्रये ॥६
इतिहासपुराणाभ्यां कारिते श्रवणे तथा । पुरतो देवदेवस्य यत्फलं स्यात्तदुच्यताम् ॥७
मार्जने लेपने यच्च देवदेवस्य मन्दिरे । भास्करस्य कृते ब्रूहि मम लोकपितामह ॥८

ब्रह्मोवाच

स्तुतिजप्योपहारेण पूजया न नरो रवेः । उपवासेन षष्ठ्यां च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९
प्रणिधाय शिरो भूमौ नमस्कारपरो रवेः । तत्क्षणात्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१०
भक्तियुक्तो नरो यस्तु रवेः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणी कृता तेन सप्तद्वीपा [1]भवेन्मही ॥११
सूर्यलोकं व्रजेच्चापि इह रोगैश्च मुच्यते । उपानहौ परित्यज्य अन्यथा नरकं व्रजेत् ॥१२
सोपानत्को नरो यस्तु आरोहेत्सूर्यमन्दिरम् । स याति नरकं घोरमसिपत्रवनं विभो ॥१३
सूर्यं मनसि यः कृत्वा कुर्याद्व्योमप्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणी कृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि ॥१४
परितुष्टाश्च ते सर्वे प्रयच्छन्ति गतिं शुभाम् । सर्वे देवा महाबाहो ह्यभीष्टं तु परन्तप ॥१५

मैं वही कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो ! एक बार देवश्रेष्ठ ब्रह्मा से, जो वहाँ सुखपूर्वक बैठे थे, शिर से नमस्कार करके दिंडी ने इस भाँति कहा ।४-५

दिंडि ने कहा—हे देव ! लोक पितामह ! सूर्य की पूजा का फल, दान फल, नमस्कार-फल एवं उनके सम्मुख नृत्य-गान करने और वाद्यों के बजाने के फल, उसी भाँति देवाधिदेव के सामने इतिहास एवं पुराणों की कथाओं के कहने तथा सुनने के फलों और सूर्य देव के मंदिर के झाड़ने-लीपने के फलों को आप मुझे बताइये ।६-८

ब्रह्मा ने कहा—षष्ठी के दिन सूर्य की स्तुति, जय एवं उपहार-प्रदान रूपी पूजा और उपवास करने के द्वारा (सभी) मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाते हैं ।९। उसी प्रकार भूमि में सूर्य के नमस्कार (साष्टांगदण्डवत्) करने पर वह प्राणी उसी समय समस्त पापों से निश्चित मुक्त हो जाता है ।१०। और भक्तिपूर्वक जो मनुष्य सूर्य की प्रदक्षिणा करता है, उसने सातों द्वीपों समेत समस्त पृथ्वी की निःसन्देह प्रदक्षिणा कर ली ।११। क्योंकि उपानह (जूते आदि) का त्यागकर प्रदक्षिणा करने वाले को सूर्यलोक की प्राप्ति एवं रोगों से मुक्ति होती है और उसके त्याग न करने पर नरक की प्राप्ति होती है ।१२। हे विभो ! इसलिए पैर में उपानह पहनकर जो सूर्य के मन्दिर पर चढ़ता है, उसे असिपत्र नामक घोर नरक की प्राप्ति होती है ।१३। मन में सूर्य का ध्यान करते हुए जो व्योम (आकाश) की प्रदक्षिणा करता है, उसने समस्त देवताओं की प्रदक्षिणा कर ली । इसमें सन्देह नहीं ।१४। हे महाबाहो ! इस भाँति अत्यन्त सन्तुष्ट

---

१. वसुन्धरा ।

एकाहारो नरो भूत्वा षष्ठ्यां योऽर्चयते रविम् । सप्तम्यां वा महाबाहो सूर्यलोकं स गच्छति ॥१६
अहोरात्रोपवासी स पूजयेद्यस्तु भास्करम् । सप्तम्यां वाथ षष्ठ्यां वा स गच्छेत्परमां गतिम् ॥१७
कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः । सर्वरक्तोपहारेण पूजयेद्यस्तु भास्करम् ॥१८
पङ्कजैः करवीरैर्वा कुङ्कुमोदकचन्दनैः । मोदकैश्च गणश्रेष्ठ सूर्यलोकं स गच्छति ॥१९
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासरतः सदा । सर्वशुक्लोपहारेण पूजयेद्यस्तु भास्करम् ॥२०
जातीमुद्गरकैश्चैव श्वेतोत्पलकदम्बकैः । पायसेन [1]तथा देवं सवज्रेणार्चयेद्रविम् ॥२१
सर्वपापविशुद्धात्मा विधुः कान्त्या न संशयः । हंसयुक्तेन यानेन हंसलोकमवाप्नुते ॥२२

दिण्डिरुवाच

ब्रूहि मे विस्तराद्देव सप्तमीकल्पमुत्तमम् । उपोष्य सप्तमीं येन गमिष्ये शरणं रवेः ॥२३

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भवता सप्तमीकल्पमुत्तमम् । यथा सहस्रकिरणः पुरा पृष्टोऽरुणेन वै ॥२४
कथिताः सप्त सप्तम्यो भानुना श्रेयसे नृणाम् । अरुणस्य गणश्रेष्ठ पृच्छतः कारणान्तरे ॥२५
कस्यचित्त्वथ कालस्य देवदेवं दिवाकरम् । ध्यानमाश्रित्य तिष्ठन्तमरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥२६

होकर सभी देवता उसे उत्तम गति प्रदानपूर्वक सफल मनोरथ करते हैं ।१५। हे महाबाहो! जो मनुष्य एकाहारी रहकर षष्ठी या सप्तमी में सूर्य की अर्चना करता है, उसे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है ।१६। तथा केवल दिन रात का उपवास करके जो षष्ठी या सप्तमी में भास्कर की पूजा करता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।१७। और जो इन्द्रिय संयम पूर्वक उपवास रहकर कृष्णपक्ष की सप्तमी में रक्तवर्णमय उपहारों—कमल, करवीर, कुंकुम और चंदनों द्वारा—सूर्य की पूजा करके (उन्हें) मोदक (लड्डू) समर्पित करते हैं तो उन्हें सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।१८-१९। उसी भाँति शुक्ल पक्ष की सप्तमी में उपवास रह कर जो शुक्ल वर्णमय समस्त उपहारों—चमेली, मल्लिका, श्वेतकमल, कदंब, पायस, और वज्र पुष्प (सामग्रियों) द्वारा सूर्य की पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विशुद्ध एवं चन्द्रमा की भाँति कान्तिमान् होकर हंस जुते हुए रथ पर बैठकर हंस लोक को निश्चित प्राप्त करता है।२०-२२

दिंडि ने कहा—हे देव ! मुझे विस्तारपूर्वक उस सप्तमी कल्प को बताइये, जिससे मैं भी सप्तमी में उपवास रहकर सूर्य की शरण प्राप्त करूँ ।२३

ब्रह्मा बोले—आपने सप्तमी कल्प की चर्चा छेड़कर बड़ा उत्तम प्रश्न किया है, पहले अरुण ने भी सूर्य से यही बातें पूँछी थी ।२४। हे गणश्रेष्ठ ! मनुष्यों के हित के लिए सूर्य ने कारणांतर द्वारा अरुण के पूछने पर सातों सप्तमी के विधान आदि को बताया था ।२५। एक बार देवाधिदेव सूर्य को कुछ काल ध्यान लगाये हुए देखकर अरुण ने (उनसे) कहा ।२६। हे देवदेवेश ! आप किसलिए ध्यान लगाकर बैठे

---

१. सदा ।

किमर्थं देवदेवश ध्यानमाश्रित्य तिष्ठसि । दिनं न याति देवेश कारणं मम कथ्यताम् ।।२७
कुरु चङ्क्रमणं देव [1]वहमानो दिवस्पते । इत्येवं भगवान्पृष्ट इदं वचनमब्रवीत् ।।२८
शृणु त्वं द्विजशार्दूल यदर्थं ध्यानमाश्रितः । अर्वावसुर्द्विजश्रेष्ठः स चापुत्रः खगोत्तम ।।२९
आराधयति मां नित्यं गन्धपुष्पोपहारकैः । पुत्रकामः खगश्रेष्ठ न च जानात्ययं यथा ।।३०
पुत्रदोऽहं भवे येन विधिना पूजितः खग । श्रूयतां च विधिः सर्वे येन प्रीतो भवे नृणाम् ।।३१
सप्तमीकल्पसंज्ञो वै विधीनामुत्तमो विधिः । यस्तु मां पूजयेन्नित्यं तस्य पुत्रान्ददाम्यहम् ।।३२
गृह्णीष्व सप्तमीकल्पं गत्वा ब्रूहि द्विजोत्तमम् । येनाहं बहुपुत्रत्वं दद्यां तस्य तथा खग ।।३३
श्रुत्वा भानोः क्षणादेव जगाम स खगोत्तमः । कथयामास तत्सर्वं भानोर्वचनमादितः ।।३४
ब्राह्मणस्य खगश्रेष्ठ स च श्रुत्वा द्विजोत्तमः । चकार सप्तमीकल्पं यथाख्यातं खगेन तु ।।३५
ऋद्धिं वृद्धिं तथारोग्यं प्राप्य पुत्रांश्च पुष्कलान् । गतोऽसौ सूर्यलोकं च तेजसा तत्समोभवत् ।।३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
सप्तमीकल्पमाहात्म्यवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ।८०।

हैं, और यह दिन व्यतीत क्यों नहीं हो रहा है, इसका कारण मुझे बताने की कृपा करें। २७। तथा हे देव, हे दिवस्पते ! आप अब चलने का भी उपक्रम करें। इस प्रकार उनके पूछने पर भगवान् (सूर्य) ने कहा ।२८। हे द्विजशार्दूल ! जिसके लिए ध्यान लगाकर मैं ठहरा हूँ, उसे बता रहा हूँ, सुनो ! हे खगोत्तम ! अर्वावसु नामक एक द्विजश्रेष्ठ के पुत्र नहीं है। अतः वह पुत्र की कामना से गंध एवं पुष्पोपहार द्वारा नित्य मेरी आराधना करता है, किन्तु हे खगश्रेष्ठ ! वह उस विधि को, जिसके द्वारा पूजित होकर मैं पुत्र प्रदान करता हूँ, नहीं जानता है ।२९-३०। हे खग ! इसलिए जिसके द्वारा मनुष्यों पर मैं प्रसन्न होता हूँ वह विधान बता रहा हूँ, सुनो ! ।३१। सभी विधियों में सप्तमीकल्प नामक विधि सर्वोत्तम विधि बतायी गयी है, उसके द्वारा जो मेरी नित्य पूजा करता है, मैं उसे पुत्र प्रदान करता हूँ ।३२। हे खग ! तुम इस सप्तमी कल्प को लेकर वहाँ जाओ और उस ब्राह्मण श्रेष्ठ को इसे बताओ, जिससे मैं उसे अधिक पुत्र प्रदान कर सकूँ ।३३। यह सुनकर उसी समय उस खग श्रेष्ठ (अरुण) ने वहाँ के लिए प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर उन्होंने सूर्य की आदि से अन्त सभी बातें उस ब्राह्मण देव को सुनायीं। ब्राह्मण ने भी अरुण की बताई हुई उस यथावत् विधि द्वारा सप्तमी कल्प के विधान को सहर्ष पूरा किया ।३४-३५। अनन्तर ऋद्धि-वृद्धि, आरोग्य और अनेक पुत्रों की प्राप्ति करके वह ब्राह्मण अन्त में सूर्य लोक की यात्रा कर उनके समान तेजस्वी हुआ ।३६

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में सप्तमी कल्प माहात्म्य वर्णन नामक
अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ।८०।

---

१. ह्यर्च्यमानो दिवस्पते-इ०, चोक्ष्यमाणो दिवस्पते । इ० च पा० ।

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

विजयसप्तमीवर्णम्

ब्रह्मोवाच

जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता । महाजया च नन्दा च भद्रा चान्या प्रकीर्तिता ।।१
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां सूर्यवारो भवेद्यदि । सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम् ।।२
स्नानं दानं तथा होम उपवासस्तथैव च । सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् ।।३
पञ्चम्यामेकभक्तं स्यात्षष्ठ्यां नक्तं प्रचक्षते । उपवासस्तु सप्तम्यामष्टम्यां पारणं भवेत् ।।४
केचिद्देवमुशन्त्येव नेति चान्ये गणाधिप । अभिप्रेतस्तु मे[1] षष्ठ्यामुपवासो गणोत्तम ।।५
चतुर्थ्यामेकभक्तं तु पञ्चम्यां नक्तमादिशेत् । उपवासस्तु षष्ठ्यां स्यात्सप्तम्यां पारणं भवेत् ।।६
उपवासपरः षष्ठ्यामब्देशं पूजयेद्बुधः । गन्धपुष्पोपहारैश्च भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ।।७
प्रकल्प्य पूजां भूमौ तु देवस्य पुरतः स्वपेत् । जपमानस्तु[2] गायत्रीं सौरसूक्तमथापि वा ।।८
अक्षरं वा महाश्वेतं षडक्षरमथापि वा । विबुद्धस्त्वथ सप्तम्यां कृत्वा स्नानं गणाधिप ।।९
ग्रहेशं पूजयित्वा तु होमं कृत्वा विधानतः । ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या शक्त्या च गणनायक ।।१०

अध्याय ८१

विजय सप्तमी वर्णन

ब्रह्मा बोले—जया, विजया, जयंती अपराजिता, महाजया, नंदा और भद्रा यही उन सातों सप्तमियों के नाम हैं ।१। शुक्ल पक्ष की सप्तमी में रविवार पड़े तो उसे विजया सप्तमी कहा जाता है । जिसमें दान रूप में दिया हुआ (सभी कुछ) अत्यन्त फलदायक होता है ।२। इस प्रकार विजया सप्तमी में किये गये स्नान, दान, हवन और उपवास ये सभी महापातक के नाश करते हैं ।३। पञ्चमी में एक बार भोजन करके षष्ठी में नन्द व्रत, सप्तमी में उपवास और अष्टमी में पारण करना बताया गया है ।४। हे गणाधिप ! कुछ लोग इसी रीति से ही देव की आराधना करते हैं किन्तु कुछ लोग तो पूजन स्वीकार करते हैं यही प्रार्थना करते हैं । हे गणोत्तम ! मुझे तो षष्ठी का ही उपवास प्रिय है । इसलिए चतुर्थी में एक भक्त (एक बार भोजन), पंचमी में नक्तव्रत और षष्ठी में उपवास करके सप्तमी में पारण करना चाहिए ।५-६। इस भाँति श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक उपवास रहकर षष्ठी में सूर्य की पूजा गन्ध पुष्पोहार द्वारा सुसम्पन्न करते हैं ।७। हे गणाधिप ! पूजा करने के पश्चात् देवता के सम्मुख बैठकर गायत्री या सूर्य के सूक्त का पाठ अक्षर, महाश्वेता अथवा षडक्षर के जप करते हुए भूमि में शयन करे और सप्तमी में प्रातः काल उठकर स्नान करने के उपरांत विधान पूर्वक सूर्य की पूजा एवं हवन करे । और भक्ति पूर्वक शक्त्यनुसार ब्राह्मण भोजन भी कराये ।८-१०। इस प्रकार शाली (चावल) के भात, मालपुआ, खांड़

---

१. यः । २. यजमानः ।

शाल्योदनमपूपांश्च खण्डवेष्टांश्च शक्तितः । सघृतं पायसं दद्यात्तथा विप्रेषु शक्तितः ।।११
दत्त्वा च दक्षिणां भक्त्या[1] ततो विप्रान्विसर्जयेत् । इत्येषा कथिता देव पुण्या विजयसप्तमी ।।१२
यामुपोष्य नरो गच्छेत्पदं वैरोचनं परम् । करवीराणि रक्तानि कुङ्कुमं च विलेपनम् ।।१३
विजयं धूपमस्यां तु भानोस्तुष्टिकराणि वै । एषा पुण्या पापहरा महापातकनाशिनी ।।१४
अत्र दत्तं हुतं चापि क्षीयते न गणाधिप । स्नानं दानं तथा होमः पितृदेवाभिपूजनम् ।।१५
सर्वं[2] विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् । आदित्यवारेण युता स्मृता विजयसप्तमी ।।१६
इत्येषा कथिता वीर सर्वकामप्रदायिनी । धन्यं यशस्यमायुष्यं कीर्तितं श्रवणं तथा ।।१७
स्मरणं तु तथास्यां तु पुण्यदं त्रिपुरान्तक ।।१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
विजयसप्तमीवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।८१।

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

नन्दवर्णनम्

दिण्डिरुवाच

ये त्वादित्यदिने ब्रह्मन्पूजयन्ति दिवाकरम् । स्नानदानादिकं तेषां किं फलं स्याद्ब्रवीतु मे ।।१

मिश्रित भक्ष्य पदार्थ और शक्त्यनुसार घृत पूर्ण खीर भी ब्राह्मणों को अर्पित करे ।११। पुनः शक्त्यनुसार उन्हें दक्षिणा प्रदान करके भक्ति पूर्वक विसर्जित करे । इस प्रकार पुण्य स्वरूप विजया सप्तमी की व्याख्या मैने सुना दी, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति करता है । सूर्य के पूजन में लाल कनेर के पुष्प, कुंकुम का लेपन और विजय धूप ये उन्हें प्रसन्न करने वाली कही गयी वस्तु है । इस प्रकार यह पुण्यरूपा पापहारिणी एवं महापातक का नाश करने वाली सप्तमी कही गयी है ।१२-१४। इसमें दिया हुआ दान, तथा हवन कभी नष्ट नहीं होता है । इस भाँति स्नान, दान, हवन तथा पितर एवं देवों की पूजा ।१५। ये सभी विजयासप्तमी में महान् पातकों के नाशक बताये गये हैं और रविवार के दिन वाली ही सप्तमी विजया सप्तमी कही जाती है ।१६। हे वीर ! इस प्रकार सभी मनोरथ सफल करने वाली इस सप्तमी को मैंने (विस्तार पूर्वक) बता दिया है । हे त्रिपुरांतक ! इसलिए इसके आख्यान का श्रवण करना, कथा वाचना और स्मरण करना ये सभी प्रतिष्ठा, यश, आयु एवं पुण्य प्रदान करते हैं ।१७-१८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में विजयासप्तमी वर्णन नामक
इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।८१।

अध्याय ८२

नंद विधि वर्णन

दिंडि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो रविवार के दिन सूर्य की पूजा एवं स्नान, दान आदि करते हैं, उन्हें

---

१. शक्त्या । २. शस्तम् ।

पुण्या सा सप्तमी प्रोक्ता युक्ता तेन पितामह । विजयेति तथा नाम वर्ण्यतामस्य[1] पुण्यता ॥२

ब्रह्मोवाच

ये त्वादित्यदिने ब्रह्मञ्छ्राद्धं[2] कुर्वन्ति मानवाः । सप्तजन्मसु ते जाताः सम्भवन्ति विरोगिणः ॥३
नक्तं कुर्वन्ति ये तत्र मानवाः स्थैर्यमाश्रिताः । जपमानाः परं जाप्यमादित्यहृदयं परम् ॥४
आरोग्यमिह वै प्राप्य सूर्यलोकं व्रजन्ति ते । उपवासं च ये कुर्युरादित्यस्य दिने सदा ॥५
जपन्ति च महाश्वेतां ते लभन्ते यथेप्सितम् । अहोरात्रेण नक्तेन त्रिरात्रनियमेन वा ॥६
जपमानो, महाश्वेतामीप्सितं लभते फलम् । विशेषतः सूर्यदिने जपमानो गणाधिप ॥७
षडक्षरं[3] तथा श्वेतां गच्छेद्वैरोचनं पदम् । द्वादशेह स्मृता वारा आदित्यस्य महात्मनः ॥८
नन्दो भद्रस्तथा सौम्यः कामदः पुत्रदस्तथा । जयो जयन्तो विजय आदित्याभिमुख स्थितः ॥९
हृदयो रोगहा चैव महाश्वेतप्रियोऽपरः । शुक्लपक्षस्य षष्ठ्यां तु माघे मासि गणाधिप ॥१०
यः[4] कुर्यात्स भवेद्भूपः सर्वपापभयापहः । अत्र नक्तं स्मृतं पुण्यं घृतेन स्नपनं रवेः ॥११
अगस्त्यकुसुमानीह भानोस्तुष्टिकराणि तु । विलेपनं सुगन्धस्तु श्वेतचन्दनमुत्तमम् ॥१२
धूपस्तु गुग्गुलः श्रेष्ठो नैवेद्यं पूपमेव हि । दत्वा पूपं तु विप्रस्य ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥१३

किस फल की प्राप्ति होती है, इसे मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१। हे पितामह यदि उस दिन की सप्तमी पुण्य रूपा एवं विजय नाम वाली कही जाती है, तो उसकी (विशेषता) का भी वर्णन कीजिये ।२

ब्रह्मा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य रविवार के दिन श्राद्ध करता है वह सात जन्म तक आरोग्य रहता है ।३। एवं स्थिरचित्त होकर जो उस दिन उत्तम आदित्य हृदय के पाठ पूर्वक नक्तव्रत करता है, उसे आरोग्य एवं सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । जो सदैव रविवार के दिन उपवास रहकर महाश्वेता का जप करते हैं उनके सभी मनोरथ सफल होते हैं । इस प्रकार अहोरात्र के नन्द व्रत रहते हुए या जो तीन रात तक नियम पूर्वक महाश्वेता का जप करता है, उसे मनोरथ की सिद्धि प्राप्त होती है । हे गणाधिप ! विशेषतः रविवार में षडक्षर या महाश्वेता के जप करने से सूर्य लोक की प्राप्ति होती है जिस प्रकार सूर्य के बारह दिन बताये गये हैं उसी के अनुसार नंद, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रद, जय, जयंत, विजय, आदित्यभिमुख, हृदय, रोगहा और महाश्वेता प्रिय उनके भी नाम कहे गये हैं । हे गणाधिप ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी में उनका व्रत जो करता है, वह राजा होता है तथा उसके महान् पातक का नाश होता है । इसीलिए उस दिन नक्तव्रत रहकर सूर्य को घी से स्नान कराना बताया गया है ।४-११। अगस्त्य के पुष्प सूर्य को अत्यन्त प्रिय हैं अतः उसे समर्पित करने के अनन्तर सुगंधित लेपन, श्वेतचन्दन, गुगुल की धूप मालपूआ का नैवेद्य भी उन्हें समर्पित करें ।१२। तथा मालपूआ भी प्रथम सूर्य एवं ब्राह्मण को अर्पित करके पश्चात् मौन होकर स्वयं भी उसका भक्षण करें ।१३

---

१. कथ्यतां मम शृण्वतः । २. प्राप्ते । ३. शुभकर्मा । ४. यो भवेत्स भवेन्नद ।

नक्षत्रदर्शनान्नक्तं केचिदिच्छन्ति मानद[1] । मुहूर्तोनं दिनं केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः ।।१४
नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहम्मन्ये गणाधिप । प्रस्थमात्रं भवेत्पूपं गोधूममयमुत्तमम् ।।१५
यवोद्भवं वा कुर्वीत सगुडं सर्पिषान्वितम् । सहिरण्यं च दातव्यं ब्राह्मणे सेतिहासके[2] ।।१६
भौमे दिव्येऽथ वा देयं न्यसेद्वा पुरतो रवेः । दातव्यो मन्त्रतश्चायं मण्डको[3] ग्राह्य एव हि ।।१७
भूत्वादित्येन वै भक्त्या आदित्यं तु नमस्य च । आदित्यतेजसोत्पन्नं राज्ञीकरविनिर्मितम् ।।
श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतीच्छापूपमुत्तमम् ।।१८
कामदं सुखदं धर्म्यं धनदं पुत्रदं तथा । सदास्तु ते प्रतीच्छामि मण्डकं भास्करप्रियम् ।।१९
एतौ चैव महामन्त्रौ दानादाने रविप्रियौ । अपूपस्य गणश्रेष्ठ श्रेयसे नात्र संशयः ।।२०
एष नन्दविधिः प्रोक्तो नराणां श्रेयसे विभो । अनेन विधिना यस्तु नरः[4] पूजयते रविम् ।।
[5]सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ।।२१
न दरिद्रं न रोगश्च कुले तस्य महात्मनः । योऽनेन पूजयेद्भानुं न क्षयः सन्ततेस्तथा ।।२२
सूर्यलोकाच्च्युतश्चासौ राजा भवति भूतले । बहुरत्नसमायुक्त[6]स्तेजसा द्विजसन्निभः[7] ।।२३

नक्तव्रत निर्णय के विषय में कुछ लोग नक्षत्र (तारा) दर्शन के उपरान्त भोजन करने को नक्त व्रत कहते हैं और कुछ बुद्धिमान् व्यक्ति मूहूर्त मात्र दिन शेष रहने पर ही भोजन करने को नक्तव्रत स्वीकार करते हैं। हे गणाधिप ! मैं तो तारादर्शन के अनन्तर ही (भोजन) करने को नक्तव्रत मानता हूँ। इस प्रकार एक सेर गेहूँ के आटे का उत्तम मालपूआ बनाना चाहिए उसके अभाव में जौ के आटे का बनाने का विधान है उसमें गुड़ और घी मिलाये। उपरांत सुवर्ण की दक्षिणा पूर्वक उसे ब्राह्मण को, जो इतिहास का पूर्ण विद्वान हो, अर्पित करे।१४-१६। इस प्रकार मिट्टी के पात्र या अन्य किसी उत्तम पात्र में उसे रखकर सूर्य के सम्मुख (भूत्वादित्येन) वै आदि दोनो मंत्र पूर्वक उन्हें अर्पित करते हुए ब्राह्मण के हाथ में दे देवें और उस ब्राह्मण को भी चाहिए कि कामदं सुखदं आदि मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उसे हाथ में लेकर पुनः (यजमान को) उसी समय लौटा दें। मालपूए के देने लेने के लिए कल्याणार्थ ये दोनों मंत्र सूर्य को निश्चित अत्यन्त प्रिय हैं।१७-२०। हे विभो ! इस भाँति मनुष्यों के कल्याण के लिए मैने इस नंद विधि को बता दिया। इस भाँति इस विधान द्वारा जो मनुष्य सूर्य की उपासना करते हैं, वे समस्त पाप से मुक्त होकर सूर्य के लोक में सम्मानित होते हैं।२१। और उस महात्मा पुरुष के कुल में कभी दारिद्र्य एवं रोग उत्पन्न ही नहीं होता है उसी प्रकार इस विधान द्वारा सूर्य की पूजा करने वाले की सन्तान का नाश (परम्परा विच्छेद) कभी नहीं होता है।२२। एवं (कभी) सूर्य लोक से च्युत होने पर इस भूतल पर वह अत्यन्त

---

१. मानवः । २. दिव्यसंज्ञिके । ३. अपूपः । ४. नन्दम् । ५. सर्वपापविमुक्तात्मा । ६. बह्वानन्दसमायुक्तः-इ०, बहुभर्तृसमायुक्तः । ७. द्विजसत्तमः

पठतां शृण्वतां चेदं विधानं त्रिपुरान्तक । कं[1] ददात्यचलं दिव्यमम्बुजामचलां तथा ॥२४

इति श्री भविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि आदित्यवारकल्पे नन्दविधिवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।८२।

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

भद्रविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मासि भाद्रपदे वीर शुक्ले[2] पक्षे तु यो भवेत् । षष्ठ्यां गणकुलश्रेष्ठ स भद्रः परिकीर्तितः ॥१
तत्र नक्तं तु यः कुर्यादुपवासमथापि वा । हंसयानसमारूढो याति हंससलोकताम् ॥२
मालतीकुसुमानीह तथा श्वेतं च चन्दनम् । विजयं च तथा धूपं नैवेद्यं पायसं परम् ॥३
पूजायां भास्करस्येह कुर्यात्त्रिपुरसूदनम् । इत्थं सम्पूज्य देवेशं मध्याह्ने च दिनाधिपम् ॥४
दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या ततो भुञ्जीत वाग्यतः । पायसं गणशार्दूल सगुडं सर्पिषा सह ॥५
य एवं पूजयेद्भक्त्या[3] मानवस्तिमिरापहम् । सर्वकामानवाप्नोति पुत्रदारधनादिकान् ॥६

रत्न पूर्ण एवं तेजस्वी राजा होता है ।२३। हे त्रिपुरांतक ! इस भाँति विधान के सुनने तथा पढ़ने वाले को भी सुख एवं अचल सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ।२४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में सौम्यविधि वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त ।८२।

अध्याय ८३

भद्रविधि वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे वीर ! हे गण कुलश्रेष्ठ ! भादों मास के शुक्लपक्ष की षष्ठी में रविवार की भद्र संज्ञा बतायी गयी है ।१। जिसमें नक्तव्रत अथवा उपवास करने वाले को हंस जुते सवारी पर बैठ कर हंस (सूर्य) लोक की प्राप्ति होती है ।२। हे त्रिपुर सूदन ! पुष्प, श्वेत चन्दन , विजय धूप; नैवेद्य और उत्तम खीर का नैवेद्य सूर्य की पूजा में इन्हें अर्पित करनी चाहिए । इस प्रकार मध्याह्न काल में देवेश सूर्य की पूजा करने के उपरांत यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान कर स्वयं मौन होकर भोजन करे । हे गणशार्दूल ! गुड़ घी समेत खीर का भोजन कर जो मनुष्य तिमिर के नाशक (सूर्य) की पूजा इस प्रकार करता है, उसके पुत्र, स्त्री एवं धन आदि के सभी मनोरथ सफल होते हैं और सभी पापों से मुक्त होकर वह सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति करता है। हे गणाधिप ! इस प्रकार इस भद्र-विधान को मैंने तुम्हें बता दिया

---

१. सुखम् । २. कृष्णपक्षे । ३. भाद्रे-इ०, भद्रम् ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो व्रजद्भानुसलोकताम् । एष भद्रा विधिः प्रोक्तो मया यस्ते गणाधिप ।।७
श्रुत्वा कृत्वा च यत्पापान्मुच्यते मानवो भुवि ।।८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे भद्रविधिवर्णनं नाम
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।८३।

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

सौम्यविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नक्षत्रं रोहिणी वीर यदा वारेऽस्य वै भवेत् । यात्यसौ सौम्यतां वीर[1] स सौम्यः परिकीर्तितः ।।१
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवादितर्पणम् । अक्षयं स्यान्न सन्देहस्त्वत्र वारे महात्मनः ।।२
नक्तं समाश्रितो योऽत्र पूजयेद्भास्करं नरः । याति लोकं स देवस्य भास्करस्य न संशयः ।।३
रक्तोत्पलानि वै तत्र तथा रक्तं च चन्दनम् । सुगन्धश्चापि धूपस्तु नैवेद्यं पायसं तथा ।।
ब्राह्मणाय च दातव्यं भोक्तव्यं चात्मना तथा ।।४
य एवं पूजयेत्सौम्ये चित्रभानुं गवाम्पतिम् । स विमुक्तस्तु पापेभ्यस्त्वाष्ट्रीं कान्तिमवाप्नुयात् ।।५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि आदित्यवारकल्पे सौम्यविधिवर्णनं
नामचतुरशीतितमोऽध्यायः ।८४।

है । पृथ्वी पर जिसे सुनकर या उसके सम्पन्न करने के द्वारा मनुष्य पाप मुक्त होते रहेंगे ।३-८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में भद्रविधि वर्णन नामक
तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ।८३।

अध्याय ८४

सौम्य विधि वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—हे वीर ! यदि इसी दिन रोहिणी नक्षत्र भी आ जाय तो इसकी सौम्य संज्ञा होती है ।१। इसलिए स्नान, दान, जप, हवन एवं पितृ देव आदि के तर्पण, इस उत्तम दिन में सुसम्पन्न करने से उनके अक्षय फल प्राप्त होते हैं ।२। जो पुरुष इस नक्तव्रत के नियम पालन पूर्वक इनकी पूजा करता है, उसे निश्चित सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।३। अतः इसके अनुष्ठान में रक्त कमल, रक्तचंदन, सुगंध, धूप, नैवेद्य और खीर सर्वप्रथम सूर्य तथा ब्राह्मण को समर्पित कर पश्चात् स्वयं भी उसका उपभोग करे ।४। इस भाँति जो सौम्य के दिन किरणमाली सूर्य की पूजा करता है, उसे पापमुक्त पूर्वक सूर्य की भाँति कान्ति की प्राप्ति होती है ।५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में सौम्यविधि वर्णन नामक
चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ।८४।

---

१. वारः ।

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

कामदविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्राप्ते मार्गशिरे मासि शुक्लषष्ठ्यां तु यो भवेत्। स ज्ञेयः कामदो वारः सदेष्टो भास्करस्य तु ॥१
तत्र यः पूजयेद्भानुं भक्त्या श्रद्धासमन्वितः। विमुक्तः सर्वपापैस्तु प्राप्नुते नन्दनाधिपम्[1] ॥२
रक्तचन्दनमिश्राणि करवीराणि सुव्रत। धूपं घृताहुतिं वीर भास्करस्य प्रयोजयेत् ॥३
नैवेद्यं चापि कृशरं सुगन्धं तीक्ष्णमेव च। कृत्वोपवासमथ वा नक्तं त्रिपुरसूदन ॥४
इत्थं प्रपूजितो ह्यत्र[2] भास्करो लोकभास्करः। कामान्ददाति सर्वान्वै अतोयं कामदः स्मृतः ॥५
स पुत्रं पुत्रकामस्य धनकामस्य वा धनम्। विद्यार्थिने शुभां विद्यामारोग्यं रोगिणे विभो ॥६
अन्यांश्च विविधान्कामान्मन्त्रैः सम्पूजितो रविः। ददाति गणशार्दूल अतोयं कामदः स्मृतः ॥७
दद्याद्यो मण्डकं चात्र गोपतेर्गोत्रभूषणः। गोत्रारितेजसा[3] तुल्यो गोपतेर्गोपुरं व्रजेत् ॥८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि आदित्यवारकल्पे कामदविधिवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।८५।

अध्याय ८५

कामद विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी में प्राप्त रविवार को 'कामद' नामक कहा गया है, जो सूर्य को अत्यन्त प्रिय है। भक्ति पूर्वक श्रद्धालु होकर जो उस दिन सूर्य की आराधना करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर नन्दन का आधिपत्य प्राप्त करता है।१-२। हे सुव्रत! इसके अनुष्ठान में रक्तचन्दन मिश्रित करवीर (कनेर), धूप और घृत की आहुति सूर्य को प्रदान करनी चाहिए। हे वीर! उस पूजन में नैवेद्य, कृशर (खिचडी) के लिए अन्न और तीक्ष्ण सुगन्ध भी उपर्युक्त सामग्री के साथ रहना आवश्यक कहा गया है। हे त्रिपुरसूदन! इसलिए उपवास या नक्त व्रत करते हुए सम्मान पूर्वक उपर्युक्त सामग्रियां प्रदान करनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार पूजित होने पर लोक को प्रकाशित करने वाले सूर्य देव उसके सभी मनोरथ की सफलता प्रदान करते हैं, इसीलिए इसे कामद कहा गया है।३-५। इसलिए यह व्रत पुत्र की कामना वाले को पुत्र, धनार्थी को धन, विद्यार्थी को शुभदायिनी विद्या और रोगी को आरोग्यता प्रदान करता है।६। हे गण शार्दूल! उस दिन मंत्रों द्वारा पूजित होने पर सूर्य भाँति-भाँति के अन्य मनोरथ भी सफल करते हैं इसीलिए इसे 'कामद' कहते हैं।७। जो कोई गोत्र-भूषण (कुलभूषण) गोपति (सूर्य) के लिए मंडक (गुड़ घी समेत) मालपूआ प्रदान करता है तो वह इन्द्र लोक के समान तेजस्वी होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है।८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में कामद विधि वर्णन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त।८५।

---

१ चन्दनाधिपम्। २ चात्र। ३. शक्रतेजसेत्यर्थः।

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

जयवारतिथिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पञ्चतारं भवेद्यत्र नक्षत्रं ते वृषध्वज । वारे तु देवदेवस्य स वारः पुत्रदः स्मृतः ॥१
उपवासो भवेत्तत्र श्राद्धं कार्यं तथा भवेत् । प्राशनं चापि पिण्डस्य मध्यमस्य प्रकीर्तितम् ॥२
सोपवासस्तु यो भक्त्या पूजयेदत्र गोपतिम् । धूपमाल्योपहारैस्तु दिव्यगन्धसमन्वितैः ॥३
एवं पूज्य विदत्वन्त तस्यैव पुरतो निशि । भूमौ स्वपिति वै वीर जपञ्छ्वेतां महानते ॥४
प्रातरुत्थाय च स्नानं कृत्वा दत्त्वार्घ्यमुत्तमम् । रक्तचन्दनसम्मिश्रैः करवीरैर्गणाधिप ॥५
प्रपूज्य ग्रहभूतेशमंशुमन्त त्रिलोचन । वीरं[1] च पूजयित्वा तु ततः श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥६
पञ्चभिर्ब्राह्मणैर्देव दिव्यैर्भौमैश्च[2] सुव्रत । मगसंज्ञौ[3] तत्र दिव्यौ ब्राह्मणौ परिकल्पयेत् ॥७
त्रीनत्र ब्राह्मणान्भौमान्प्रकल्प्यान्धकसूदन । कुर्यादेवं ततः श्राद्धं पार्वणं भास्करप्रियम् ॥८
श्राद्धे त्वथ समाप्ते तु दद्यात्पिण्डं तु मध्यमम् । पुरतो देवदेवस्य स्थित्वा मन्त्रेण सुव्रत ॥९
स एष पिण्डो देवेश योऽभीष्टस्तव सर्वदा । अश्नामि पश्यते तुभ्यं तेन मे सन्ततिर्भवेत् ॥१०
प्रसादात्तव देवेश इति मे भावितं मनः । इत्थं सम्पूजितो ह्यत्र भास्करः पुत्रदो भवेत् ॥११

अध्याय ८६

जयवारतिथि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे वृषध्वज ! तुम्हारे जिस (रवि) दिन में पाँच तार (हस्त) नामक नक्षत्र प्राप्त होताहै वह देवाधिदेव (सूर्य) का 'पुत्रद' नामक वार बताया गया है ।१। उसमें उपवास, श्राद्ध एवं मध्यम पिंड का प्राशन भी करना चाहिए ।२। हे महामते ! इस प्रकार उपवास रहकर भक्ति पूर्वक धूप, माला एवं दिव्य गंध समेत उपहारों द्वारा सूर्य की अर्चना करके रात में उन्हीं के सम्मुख भूमि पर महाश्वेता का जप करते हुए शयन करे और प्रातः काल उठकर स्नान करके रक्तचन्दन मिश्रित कनेर के पुष्पों द्वारा उत्तम अर्घ्य प्रदान करते हुए पुनः ग्रहों एवं भूतों के ईश, सूर्य तथा दीपक की पूजा करने के उपरांत श्राद्ध विधान प्रारम्भ करना चाहिए ।३-६। हे देव ! उस (श्राद्ध) में दिव्य और भौम पाँच ब्राह्मणों को आमन्त्रित करना चाहिए जिसमें दो ब्राह्मणों के दिव्य (सूर्य) रूप और तीन ब्राह्मणों को भौम रूप बताया गया है ।७। हे अन्धक सूदन ! इसी प्रकार का पार्वण श्राद्ध विधान सूर्य को अत्यन्त प्रिय है ।८। पुनः श्राद्ध की समाप्ति में मध्यम पिंड को मंत्र के उच्चारण पूर्वक देवेश (सूर्य) के सम्मुख रखकर (प्रार्थना रूप) इस प्रकार कहे—हे देवेश ! इस तुम्हारे सदैव प्रिय पिंड का तुम्हारे देखते मैं भक्षण कर रहा हूँ, इससे तुम्हारी कृपा द्वारा मुझे संतान की प्राप्ति अवश्य होगी क्योंकि ऐसा मेरे मन में निश्चित हो

---

१. दीपं च । २. धूपैश्च । ३. मघ ।

अतोऽयं पुत्रदो वारो देवस्य परिकीर्तितः । एदमत्र सदा यस्तु भास्करं पूजयेन्नरः ॥१२
उपवासपरः श्राद्धे स पुत्रं लभते ध्रुवम् । धनं धान्यं हिरण्यं च आरोग्यं सुखदं तथा ॥
सूर्यलोकं च सम्प्राप्य ततो राजा भवेन्नृषु ॥१३
प्रभया द्विजसंकाशः कान्त्या वाम्बुजसन्निभः । वीर्येण गोपतेस्तुल्यो गाम्भीर्ये सागरोपमः ॥१४

(इति पुत्रदविधिवर्णनम्)

ब्रह्मोवाच

दक्षिणे त्वयने यः स्यात्स जयः परिकीर्तितः ॥१५
अत्रोपवासो नक्तं च स्नानं दानं जपस्तथा । भवेच्छतगुणं देव भास्करप्रीतये कृतम् ॥१६
तस्मान्नक्तादि कर्तव्यं यत्स्याच्छतगुणं विभो ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि आदित्यवारकल्पे जयवारतिथिवर्णनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ।८६।

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

जयन्तविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

जयन्तो ह्युत्तरे ज्ञेयश्चायने गणनायक । वारो देवस्य यः स्याद्वै तत्र पूज्योदिवाकरः ॥१

रहा है। इस प्रकार विधान पूर्वक पूजित होने पर सूर्य अवश्य पुत्र प्रदान करते हैं, और इसीलिए इसे देव का 'पुत्रद' नामक वार कहा गया गया है। इस भाँति जो पुरुष उपवास रहकर इस दिन सूर्य की सदा आराधना करता है वह निश्चित पुत्र की प्राप्ति समेत धन, धान्य, सुवर्ण, सुख प्रद आरोग्य तथा सूर्य लोक की प्राप्ति करके पश्चात् मनुष्यों का राजा, होता है जिसकी चन्द्रमा की भाँति कान्ति, कमल की भाँति सौंदर्य, सूर्य के समान पराक्रम और सागर के समान गंभीरता रहती है।९-१४

ब्रह्मा ने कहा—सूर्य के दक्षिणायन समय में प्राप्त रविवार को 'जप' नामक बताया गया है। हे देव! उसमें उपवास, नक्त व्रत, स्नान, दान एवं जप आदि सभी पुण्य कर्म सूर्य की प्रसन्नता के लिए करने पर उसके सौगुने फल प्राप्त होते है। इसलिए सूर्य के लिए नक्तव्रत आदि अवश्य करने चाहिए क्योंकि वे सौगुने अधिक फल प्रदान करते रहते हैं।१५-१७

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के आदित्यवार कल्प में जयवार तिथि वर्णन नामक छियासिवाँ अध्याय समाप्त।८६।

अध्याय ८७

जयन्तविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे गणनायक! सूर्य के उत्तरायण रहने के समय में प्राप्त रविवार को 'जयन्त'

---

१. तत्र यां कुरुते पूजाम्।

पूजितस्तत्र देवेशः सहस्रगुणितं फलम् ।ददाति देवशार्दूल स्नानदानादिकर्मणाम् ।।२
घृते पयसि यत्र स्नानमिक्षुरसेन तु । विलेपनं कुङ्कुमं तु प्रशस्तं भास्करे प्रियम् ।।३
धूपक्रिया गुग्गुलेन नैवेद्ये मोदकः स्मृतः । इत्थं सम्पूज्य देवेशं कुर्याद्धोमं ततस्तिलैः ।।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चान्मोदकांस्तिलशष्कुलीः ।।४
इत्थं यः पूजयेद्भानुं मन्त्रेणैव गणाधिप । सहस्रगुणितं तस्य फलं देवो ददाति वै ।।५
स्नानदानजपादीनामुपवासस्य वै विभो ।।६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे जयन्तविधिवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।८७।

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

विजयवारविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां प्राजापत्यर्क्षसंयुतः । स ज्ञेयो विजयो नाम सर्वपापभयापहः ।।१
तत्र कोटिगुणं सर्वफलं पुण्यस्य कर्मणः । ददाति भगवान्देवः पूजितश्चन्दनाधिपः ।।२
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवादिपूजनम् । नक्तं चाप्युपवासस्तु सर्वमत्र दिवाकरः ।।३

नामक कहा जाता है, उसमें अवश्य सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।१। हे देव शार्दूल ! उसमें पूजित होने पर सूर्य स्नान आदि कर्मों के सहस्रगुने फल प्रदान करते हैं ।२। घी, दूध, ऊख के रस द्वारा स्नान और कुंकुम का लेपन सूर्य के लिए उत्तम और अत्यन्त प्रिय बताया गया है ।३। इसी भाँति धूप के लिए गुग्गुल और नैवेद्य के स्थान पर मोदक (लड्डू) प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार देवेश (सूर्य) की पूजा करने के पश्चात् तिल के हवन, मोदक तिल की पूरी का ब्राह्मण भोजन कराना बताया गया है ।४। हे गणाधिप ! इस विधान द्वारा जो सूर्य की मंत्रपूर्वक पूजा करते हैं सूर्य उन्हें स्नान दान, जप आदि और उपवास के सहस्र गुने फल प्रदान करते हैं ।५-६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्य बार कल्प में जयंत विधि वर्णन नामक सतासीवां अध्याय समाप्त ।८७।

अध्याय ८८

विजयवारविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—यदि शुक्ल पक्ष की सप्तमी में रविवार के दिन रोहिणी नक्षत्र भी प्राप्त हो जाये तो उसे समस्त पापों का नाशक एवं 'विजय' नामक रविवार कहा जाता है ।१। क्योंकि उस दिन पूजित होने पर चंदनप्रिय भगवान् सूर्य सभी पुण्य कर्मों के कोटि (करोड़) गुने फल प्रदान करते हैं ।२। तथा स्नान, दान, जप, होम, पितरों एवं देवों की अर्चना, नक्तव्रत और उपवास इन सभी कर्मों के भी कोटिगुने फल

कुर्यात्कोटिगुणं सर्वं पूजितो ह्यत्र गोपतिः । तस्मादत्र सदा देवं पूजयेद्भक्तिमान्नरः ।।४
सर्वेशं सप्तद्वीपेशं सप्तसैन्धववाहनम् । सप्तम्यां तु समाराध्य सप्तप्रकृतिसम्भवम् ।।५
सप्तलोकाधिपत्यं तु प्राप्नुते सप्तरश्मिभिः ।।६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे विजयवारविधिवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।८८।

अथ नवाशीतितमोऽध्यायः

आदित्याभिमुखविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां माघमासे भवेत्तु यः । सादित्याभिमुखो[1] ज्ञेयः शृणु चास्य विधिं परम् ।।१
कृत्वैकभक्तं कृष्णस्य वारे त्रिपुरसूदन[2] । प्रातः कृत्वा ततः स्नानं पूजयित्वा दिवाकरम् ।।२
आदित्याभिमुखस्तिष्ठेद्यावदस्तमनं रवेः । जपमानो महाश्वेतां लाभमाश्रित्य मुव्रत ।।३
चतुर्हस्तमृजं श्लक्ष्णमव्रणं सुसमं दृढम् । रक्तचन्दनवृक्षस्य स्तम्भं कृत्वा गणाधिप ।।४
तमाश्रित्य महाभक्त्या देवदेवं दिवाकरम् । पश्यमानो जपञ्श्वेतां तिष्ठेदस्तमनाद्रवेः ।।५

प्रदान करते हैं। इसलिए भक्तिपूर्वक मनुष्यों को सदैव सूर्य की आराधना करनी चाहिए।३-४। इस भाँति सर्वेश, सातों द्वीपों के स्वामी तथा सात घोड़ों के वाहन वाले (सूर्य) की सप्तमी में आराधना करने पर उसे सूर्य द्वारा सातों प्रकृतियों से उत्पन्न उन सातों लोकों के आधिपत्य की प्राप्ति होती है।५-६।

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में विजयवार विधि वर्णन नामक अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त।८८।

अध्याय ८९

आदित्य विधि वर्णन

ब्रह्मा बोले—माघ मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी में प्राप्त रविवार को 'आदित्याभिमुख' नामक वार जानना चाहिए। उसकी उत्तम विधि को बता रहा हूँ, सुनो! ।१। हे त्रिपुर सूदन ! पहले दिन एक बार भोजन करके उस रविवार में प्रातः स्नान पूर्वक सूर्य की पूजा करने के उपरान्त सूर्यास्त तक सूर्याभिमुख होकर खड़ा और उसमें महाश्वेता का जप भी करते रहना चाहिए।२-३। हे गणाधिप ! इस प्रकार रक्त चंदन के वृक्ष का एक ऐसा स्तम्भ बनाकर जो चार हांथ का लम्बा, सीधा, चिकना, रोगहीन, सम एवं दृढ़ हो।४। देवनायक सूर्य को उसी में स्थापित कर उन्हें देखते हुए श्वेता का जप करे। यही सूर्यास्त तक खड़ा रहने का विधान बताया गया है पश्चात् गन्ध एवं पुष्पादि द्वारा सूर्य की पूजा ब्राह्मणों को भोजन-एवं

---

१. 'सोचि लेपे चेत्' इति सुलोपः। २. च विधिना सदा।

१. बुद्धि, अहंकार और पाँच मात्राएँ यही सातों प्रकृति हैं।

गन्धपुष्पोपहारैस्तु पूजयित्वा दिवाकरम् । ब्राह्मणे दक्षिणां दत्त्वा ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥६
इत्थमेतं तु यः कुर्यादादित्यप्रीतये नरः । भानुमांस्तस्य प्रीतः स्यात्सर्वं प्रीतो ददादि हि ॥७
धनं धान्यं तथा पुत्रमारोग्यं भार्गवीं यशः । तस्मात्सम्पूजयेदत्र गीर्वाणाधिपतिं हर ॥८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे आदित्याभिमुखविधिवर्णनं
नाम नवाशीतितमोऽध्यायः ।८९।

अथ नवतितमोऽध्यायः
हृदयवारविधिवर्णनम्
ब्रह्मोवाच

रविसङ्क्रमणे यः स्याद्रवेर्वारो गणाधिप । स ज्ञेयो हृदयो नाम आदित्यहृदयप्रियः ॥१
तत्र नक्तं समाश्रित्य देवं सम्पूज्य भक्तितः । गत्वा च सदने भानोरादित्याभिमुखस्थितः ॥२
जपेदादित्यहृदयं सङ्ख्ययाष्टशतं बुधः । अथ वास्तमनं यावद्भास्करं चिंतयेद्धृदि ॥३
गृहमेत्य ततो विप्रान्भोजयेच्छक्तितः शिव । भुक्त्वा तु पायसं वीर ततो भूमौ स्वपेद्बुधः ॥४
योऽत्र सम्पूजयेद्भानुं भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । स कामांल्लभते सर्वान्भास्कराद्धृदयस्थितान् ॥५

दक्षिणा प्रदान करने के उपरान्त स्वयं को भी मौन होकर भोजन करना बताया गया है ।५-६। इस भाँति जो मनुष्य सूर्य की प्रसन्नता हेतु उस विधान को सुसम्पन्न करता है उसे प्रसन्न होकर सूर्य सभी (वस्तुएँ) प्रदान करते हैं ।७। हे हर ! इस भाँति उसे धन, धान्य, पुत्र, आरोग्य, भूमि एवं यश समेत सभी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं । इसलिए इस दिन देवनायक सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।८
श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में आदित्याभिमुख विधि वर्णन
नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।८९।

अध्याय ९०
हृदयवारविधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—हे गणाधिप ! सूर्य की संक्राति काल में प्राप्त रविवार को सूर्य के हृदय प्रिय होने के नाते 'हृदय' नामक बताया गया है ।१। अतः इस दिन नक्त व्रत रहकर भक्ति पूर्वक सूर्य की अर्चना करके उनके मंदिर में उनके सम्मुख स्थित होकरआदित्य हृदय का आठ सौ जप (पाठ) अथवा सूर्यास्त तक हृदय में उसका स्मरण (पाठ) करते रहना चाहिए ।२-३। हे शिव ! पश्चात् घर आकर शक्त्यनुसार ब्राह्मण भोजन कराने के उपरान्त स्वयं भी खीर भोजन करके भूमि पर शयन करे ।४। इस प्रकार श्रद्धा भक्ति पूर्वक जो इस दिन सूर्य की आराधना करते हैं, सूर्य उनके हृदय स्थित सभी मनोरथों की सफलता प्रदान करते

तेजसा यशसा तुल्यः प्रभयैषां महात्मनः । शक्रगोपाण्डजानां तु गोपतेर्गोवृषेक्षण ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे हृदयवारविधिवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ।९०।

अथैकनवतितमोऽध्यायः

रोगहरविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पूष्णो भवेद्यदा ऋक्षं भवेच्च भगदैवतम् । वासरः स महाप्रोक्तः सर्वरोगभयापहः ॥१
योऽत्र पूजयते भानुं शुभगन्धविलेपनैः । सर्वरोगविनिर्मुक्तो याति भानुसलोकताम् ॥२
अर्कपत्रपुटे कृत्वा पुष्पाण्यर्कस्य सुव्रत । देवस्य पुरतो रात्रौ भक्त्या यः स्थापयेद्बुधः ॥३
पूजयित्वार्कपुष्पैस्तु अर्कमर्कप्रियं सदा । प्राशयित्वार्कपुष्पं[1] तु दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥४
भक्त्या च पायसं वीर रात्रौ स्वपिति भूतले । अनेन विधिना यस्तु पूजयेदत्र वै रविम्[2] ॥५
स मुक्तः सर्वरोगैस्तु[3] गच्छेद्दिनकरालयम्[4] । तस्मादपि व्रजेल्लोकं फुंकाररवहेतिनः ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यकल्पे रोगहरविधिवर्णनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ।९१।

हैं ।५। हे गोवृषेक्षण ! उसे इन्द्र, गोप और अण्डज तथा सूर्य के समान तेज, यश एवं कान्ति की भी प्राप्ति होती है ।६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में हृदय वार विधि वर्णन नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।९०।

अध्याय ९१

रोगहरण विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सूर्य देव के प्रधान पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्र में प्राप्त रविवार को सभी रोगों के भय नाशक होने के नाते 'रोगहा' नामक बार कहा जाता है ।१। इस दिन जो उत्तम गंध एवं लेपन द्वारा सूर्य की आराधना करते हैं, उसे समस्त रोगो की मुक्ति एवं सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है ।२। हे सुव्रत ! मदार के पत्ते की दोनियाँ में मंदार के पुष्पों को संचित कर भक्तिपूर्वक रात में सूर्य के सम्मुख रखे तथा मदार प्रिय सूर्य की पूजा उन्हीं पुष्पों द्वारा सुसंपन्न करके उसका प्राशन करे एवं पुनः ब्राह्मणों को भोजन दक्षिणा प्रदान करने के उपरांत स्वयं भी खीर का भोजन करके रात में भूमि शयन करे इस भाँति इस दिन जो इस विधान द्वारा सूर्य की पूजा करता है, सभी रोगों से मुक्त होकर वह सूर्य लोक की प्राप्ति पूर्वक फुंकार करने वाले (वज्र) अस्त्र के महान् नायक (इन्द्र) के लोक की प्राप्ति करता है।३-६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्य कल्प में रोगहरविधि वर्णन नामक इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९१।

---

१. पत्रम् । २. द्विजम् । ३. सर्वपापैस्तु । ४. स गच्छेद्भास्करम् ।

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

महाश्वेतवारविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यस्त्वादित्यग्रहस्यास्य वारो देवस्य सुव्रत । शस्यः प्रोक्तः प्रियो लोके ख्यातो गोभुरिभूषणः ॥१
यस्तु पूजयते तस्मिन्पतङ्गं पतगप्रियम् । गन्धपुष्पोपहारैस्तु सूर्यलोकं स गच्छति ॥२
सोपवासो गणश्रेष्ठ आदित्यग्रहणे शुचिः । जपमानो महाश्वेतां खपोषमथवा शिवम् ॥३
पूजयेज्जगतामीशं तमोनाशनमाशुगम् । पूजयित्वा खपोषं तु महाश्वेतां ततो जपेत् ॥४
पूजयित्वा महाश्वेतां रविं देवं समर्चयेत्[1] । महाश्वेतां प्रतिष्ठाप्य गन्धपुष्पैः सुपूजिताम् ॥५
तस्या एव बहिः[2] कार्यं स्थण्डिलं सुसमाहितः । शुचौ भूमिविभागे तु वीरं संस्थाप्य यत्नतः ॥६
कुर्याद्धोमं तिलैः स्नातः सर्पिषा च विशेषतः । आदित्यग्रहवेलायां जपेच्छ्वेतां महामते ॥७
भुक्ते दिनकरे पश्चात्स्नानं कृत्वा समाहितः । पूजयित्वा महाश्वेतां खगोल्कं[3] च ग्रहाधिपम् ॥८
ब्राह्मणान् वाचयित्वा च ततो भुञ्जीत वाग्यतः । आदित्यग्रहयुक्तेऽस्मिन्वारे त्रिपुरसूदन ॥९
यत्कर्म क्रियते पुण्यं तत्सर्वं शुभदं भवेत् । स्नानदानजपादीनां कर्मणां गोवृषध्वज ॥१०

अध्याय ९२

महाश्वेतवारविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे सुव्रत ! सूर्य-ग्रहण के दिन प्राप्त रविवार को महाश्वेत वार कहा जाता है जो, किरण रूपी आभूषणों से विभूषित श्रवण वाले सूर्य को अत्यन्त प्रिय होने के कारण अत्यन्त प्रिय प्रशस्त है ।१। इसलिए उस दिन जो पक्षी प्रिय का (अरुण के ऊपर कृपा करने वाले) गन्ध एवं पुष्पोपहार द्वारा आराधन करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।२। हे गणश्रेष्ठ ! इस प्रकार सूर्य ग्रहण में पवित्र होकर उपवास करते हुए महाश्वेता या शिव के (मंत्र) जप पूर्वक जगदीश तथा तमनाशक सूर्य की आराधना पूजन खपोष (सूर्य) या महाश्वेता का जप करना चाहिए ।३-४। क्योंकि गन्ध एवं पुष्पों द्वारा महाश्वेता की प्रतिष्ठा और पूजन समेत सूर्य की आराधना बतायी भी गयी है ।५। अतः ध्यान पूर्वक उसकी वेदी बाहर किसी पवित्र भूमि में बनाकर सप्रयत्न उस पर सूर्य की स्थापना करके उन्हें स्नान कराये पश्चात् घी और तिल का हवन करके पुनः उनके ग्रहण के समय महाश्वेता का जप करे और ग्रहण मुक्ति के पश्चात् एकाग्रचित्त होकर स्नान महाश्वेता तथा ग्रहेश्वर सूर्य की पूजा करके ब्राह्मण द्वारा वाचन कराये और उन्हें भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करें । हे त्रिपुर सूदन ! इस भाँति उस ग्रहण के दिन स्नान, दान एवं जप आदि जो कुछ पुण्य कर्म किये जाते हैं, वे शुभ फल प्रदान करते हैं ।६-१०। हे वृषध्वज !

---

१. ततोऽर्हयेत् । २. पुरःकुर्याद्रविकार्यम् । ३. रविं देवं समर्चयेत् ।

अनन्तं हि फलं तेषां भवत्यस्मिन्न संशयः। कृतानां तु गणश्रेष्ठा भास्करस्य वचो यथा ॥११
तस्माद्द्विजगणैः कार्यं पुण्यकर्मविचक्षणैः। एकभक्तं च नक्तं च उपवासं गणाधिप ॥१२
ये वादित्यदिने कुर्युस्ते यान्ति परमं पदम्। धर्म्यं पुण्यं यशस्यं च पुत्रीयं कामदं तथा ॥१३
तस्मिन्दानमपूपस्य गोदानेन समं भवेत्। द्वादशैते महाबाहो वीरभानोर्महात्मनः ॥१४
तुष्टिदाः कथितास्तुभ्यं सर्वपापभयापहाः। पठतां शृण्वतां तात कुर्वतां च विशेषतः ॥१५
कृत्वैकमेषां विधिवद्वारं वृषभवाहन। वृषादित्रितयं प्राप्य चास्थिरामचलां तथा ॥१६
ततो याति परं लोकं वृषकेतो महात्मनः। तेजसाम्बुजसंकाशः प्रभयाण्डजसन्निभः ॥१७
पविहेतिसमो वीर्ये कान्त्या चन्द्रसमप्रभः ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे महाश्वेतवारविधिवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ।९२।

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

भानुमहिमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

येषां धर्मक्रियाः सर्वाः सदैवोद्दिश्य भास्करम्। न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ॥१

निश्चित उनकर्मों को सुसम्पन्न करने पर अनन्त फल की प्राप्ति होती है। हे गणश्रेष्ठ! क्योंकि यह सब सूर्य के कथनानुसार ही कहा गया है।११। हे गणाधिप! इस लिए पुण्य कर्मों के परिवेत्ता को एकाहार, नक्तव्रत और उपवास अवश्य करना चाहिए।१२। तथा जो इस दिन इस विधान द्वारा इनकी पूजा करते हैं उन्हें उत्तम पद की प्राप्ति होती है। एवं यह धार्मिक अनुष्ठान पुण्य, यश, पुत्र और अनेक कामनाओं की सफलता प्रदान करता रहता है।१३। उस दिन मालपूए का दान करना गोदान के समान पुण्य प्रदायक बताया गया है। हे महाबाहो! इस भाँति वीर एवं महात्मा सूर्य के ये बारहों वार जिनकी गाथाओं के मनन करने एवं सुनने पर तुष्टि की प्राप्ति पूर्वक समस्त पापों का नाश होता है, मैं ने सविस्तार बता दिया है।१४-१५। हे वृषभवाहन! विधान पूर्वक इनमें एक ही बार के सुसम्पन्न करने से उसे धर्म, अर्थ एवं काम की सफलता पूर्वक स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।१६। पश्चात् वह कमल के समान सौन्दर्य, सूर्य की भाँति प्रभा, इन्द्र के समान पराक्रम और चन्द्रमा के समान कांति प्राप्त कर शिव लोक की यात्रा करता है।१७-१८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में महाश्वेतवार विधि वर्णन नामक बानबेवाँ अध्याय समाप्त।९२।

अध्याय ९३

भानुमहिमा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जिन लोगों की समस्त धार्मिक क्रियाएँ सदैव एकमात्र सूर्य के ही उद्देश्य से होती

देवायतनभूमेस्तु गोमयेनोपलेपनम् । यः करोति नरो भक्त्या सद्यः पापात्प्रमुच्यते ॥२
श्वेतया रक्तया वापि पीतमृत्तिकयापि वा । उपलेपनकर्ता वै चिन्तितं लभते फलम् ॥३
चित्रभानुं विरच्य्यैव[1] कुसुमैर्यः सुगन्धिभिः । पूजयेत्सोपवासस्तु स कामानीप्सितांल्लभेत् ॥४
घृतेन दीपकं ज्वाल्य तिलतैलेन वा रवेः । प्रयाति सूर्यलोकं स दीपकोटिशतैर्वृतः ॥५
दीपतैलप्रदानेन न याति नरकं नरः । दीपतैलं तिलाश्चैव[2] महापातकनाशनाः ॥६
दीपं ददाति यो नित्यं भास्करायतनेषु[3] च । चतुष्पथेषु तीर्थेषु रूपौजस्वी ह जायते ॥७
यस्तु कारयते[4] दीपं रवेर्भक्तिसमन्वितः । स कामानीप्सितान्प्राप्य वृन्दारकपुरं व्रजेत् ॥८
यः समालभते सूर्यं चन्दनागुरुकुङ्कुमैः । कर्पूरेण विमिश्रैश्च तथा कस्तूरिकान्वितैः ॥९
शुभं कालं कोटिशतं विहृत्य[5] च भवालये । पुनः सञ्जायते भूमौ राजराजो न संशयः ॥
सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वलोकनमस्कृतः ॥१०
चन्दनोदकमिश्रैश्च दत्त्वार्घ्यं कुसुमै रवेः । सपुत्रपौत्रपत्नीकः स्वर्गलोके महीयते[6] ॥११
सुगन्धोदकमिश्रैस्तु दत्त्वार्घ्यं कुसुमै रवेः । देवलोके चिरं स्थित्वा राजा भवति भूतले ॥१२
स हिरण्येन चार्घेण रक्तोदकयुतेन वा । कोटीशतं तु वर्षाणां स्वर्गलोके महीयते ॥१३

उनके कुल में दारिद्र्य एवं कोई रोग नहीं होता ।१। अतः जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देव-मंदिरों की भूमि को गोमय (गोबर) से शुद्ध (लीपना) करता है, वह उसी समय पाप मुक्त हो जाता है ।२। और श्वेत या रक्त वर्ण, अथवा पीली मिट्टी द्वारा (मंदिर की दीवाल) आदि लीपने वाले को मनोवांछित फल प्राप्त होते हैं ।३। इस प्रकार जो चित्र भानु (सूर्य) की मूर्ति बनाकर उपवास रहते हुए सुगन्धित पुष्पों द्वारा उनकी अर्चना करता है, उसके अभिलषित मनोरथ की सफलता प्राप्त होती है ।४

जो घी या तिल का दीपक जलाकर सूर्य के सम्मुख स्थापित करता है, वह करोड़ों दीपकों के प्रकाश में प्रस्थापन करते हुए सूर्य लोक की प्राप्ति करता है ।५। और तेल के दीपक प्रदान करने से मनुष्य को नरक की प्राप्ति नहीं होती है क्योंकि दीपक के तेल तथा तिल को महापातकों का नाशक बताया गया है ।६। इस भाँति सूर्य के मन्दिर में चौराहे या तीर्थ में जो नित्य दीपक जलाता है, उसे रूप सौन्दर्य एवं ओज (बल) की प्राप्ति होती है ।७। भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए दीपक प्रदान करने वाले को अभिलषित कामनाओं की सिद्धि पूर्वक देव लोक की भी प्राप्ति होती है ।८

इस प्रकार जो चन्दन, गुगुल, कुंकुम, कपूर एवं कस्तूरी मिश्रित लेप (उबटन) सूर्य के लिए प्रदान करता है, वह करोड़ों वर्ष स्वर्ग में बिहारसुख प्राप्त कर पुनः इस प्रकार का निश्चित राजाधिराज होता है । जो सभी कामनाओं की पूर्ण सफलता प्राप्त कर समस्त लोकों का वन्दनीय होता है ।९-१०

चन्दन-जल मिश्रित पुष्पों द्वारा सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करने वाला पुरुष अपने पुत्र, पौत्र एवं स्त्री समेत स्वर्ग लोक में पूजित होता है ।११। उसी प्रकार सुगन्धित जल मिश्रित पुष्पों द्वारा सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करने वाला पुरुष चिर काल तक देवलोक के (स्वर्ग) में प्रतिष्ठित रहकर पश्चात् इस पृथ्वी का राजा होता है ।१२। तथा सुवर्ण के अर्घ्य पात्र में स्थित रक्तचन्दन मिश्रित जल द्वारा अर्घ्य प्रदान करने वाला प्राणी सौ करोडों वर्षों तक स्वर्ग लोक में सम्मान प्राप्त करता है ।१३

---

१. विचित्रैर्य । २. दिनान्येव । ३. देवतायतनेषु । ४. धारयते । ५. उषित्वा च । ६. मम लोके ।

पद्मैरभ्यर्चनं कृत्वा रवेः स्वर्गगतो नरः । पद्मे वसति वर्षाणां स्त्रीपद्मशतसंवृतः ॥१४
गुग्गुलं सघृतं दत्त्वा रवेर्भक्तिसमन्वितः[1] । तत्क्षणात्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१५
पक्षं तु गुग्गुलं दत्त्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया । संवत्सरेण लभते अश्वमेधफलं शिव ॥१६
धूपेन लभते स्वर्गं तुरुष्केण सुगन्धिना । कर्पूरागुरुधूपेन राजसूयफलं लभेत् ॥१७
पूर्वाह्णे मानवो भक्त्या श्रद्धया योऽर्चयेद्रविम । स तत्फलमवाप्नोति यद्दत्ते कपिलाशते ॥१८
मध्याह्ने योऽर्चयेत्सूर्यं प्रयतात्मा जितेन्द्रियः । लभते भूमिदानस्य गोशतस्य च तत्फलम् ॥१९
पश्चिमायां तु सन्ध्यायां योऽर्चयेद्भास्करं नरः । शुचिः शुक्लाम्बरोष्णीषो गोसहस्रफलं लभेत ॥२०
अर्धरात्रे तु यो हेलिं भक्त्या सम्पूजयेन्नरः । जातिस्मरत्वमाप्नोति कुले जातो वृषान्वितः ॥२१
प्रदोषरात्रिवेलायां यः पूजयति भास्करम् । स गत्वा सहसा वीर क्रीडेत्सौमलसं[2] क्षयम् ॥२२
दण्डनायकवेलायां प्रभातसमये पुनः । पूजयित्वा रविं भक्त्या व्रजेदनिमिषालयम् ॥२३
एवं वेलासु सर्वासु अवेलासु च मानवः । भक्त्या पूजयते योऽर्कमर्कपुष्पैः समाहितः ॥
तेजसादित्यसंकाशो ह्यर्कलोके महीयते ॥२४
अयने तूत्तरे सूर्यमथ वा दक्षिणायने । पूजयेद्यस्तु वै भक्त्या स गच्छेत्कञ्जजालयम् ॥२५

कमलों द्वारा सूर्य की अर्चना करने पर मनुष्य स्वर्ग में सैकड़ों पद्मिनी स्त्रियों (अप्सराओं) के साथ करोड़ों वर्ष तक विहरता रहता है ।१४

उसी प्रकार भक्तिपूर्वक सूर्य के लिए घी समेत गुग्गुल की धूप प्रदान करने पर उसी समय समस्त पापों से निश्चित मुक्ति हो जाती है ।१५। एक पक्ष (१५ दिन) तक नित्य गुग्गुल की धूप प्रदान करने से ब्रह्महत्या से मुक्ति होती है और संपूर्ण वर्ष तक करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।१६। एवं लोहबान की धूप देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है एवं कपूर मिश्रित अगुरु की धूप प्रदान करने से राजसूय (यज्ञ) के फल की प्राप्ति होती है ।१७। जो पुरुष श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक पूर्वार्द्ध में सूर्य की पूजा करता है, उसे सौ कपिला (गौएँ) दान करने के समान फल की प्राप्ति होती है ।१८। इस भाँति जो प्रयत्नशील पुरुष इन्द्रिय संयम पूर्वक मध्याह्न (दोपहर) में सूर्य की पूजा करता है, उसे भूमि दान एवं सौ गौएँ के दान के समान फल की प्राप्ति होती है ।१९। जो पुरुष पश्चिम संध्या (सांयकाल) में पवित्र एवं शुभ्र वस्त्र की पगिया बाँधकर सूर्य की अर्चना करता है, उसे सहस्र गोदान के समान फल की प्राप्ति होती है ।२०। भक्ति- पूर्वक जो मनुष्य आधीरात के समय सूर्य की पूजा करता है, उसकी (अपने) पिछले जन्म के स्मरण समेत धार्मिक कुल में उत्पत्ति होती है ।२१। हे वीर ! जो प्रदोष समय में सूर्य की पूजा करता है, सहसा प्राप्त स्वर्ग में कल्प पर्यंत वह अनेक भाँति की क्रीडाँए करता है ।२२। एवं प्रभा काल में अरुणोदय वेला में भक्तिपूर्वक सूर्य की पूजा करने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।२३। इस प्रकार सभी समय-असमय में एकाग्रचित्त एवं भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना मंदार पुष्पों द्वारा सम्पन्न करने पर सूर्य की भाँति तेज प्राप्त कर सूर्य लोक में सम्मान प्राप्त होता है ।२४। इस प्रकार (सूर्य के) दक्षिणायन एवं उत्तरायण के समय में भक्ति पूर्वक सूर्य की अर्चना करने पर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ।२५। वहाँ सभी देवताओं में

---

१. भक्त्या समाहितः । २. सागरसंक्षयम् ।

तत्रस्थः पूज्यते कशैः[1] सर्वैः सुमनसैस्तथा । गोपतिः पूज्यते यद्वद्गोपतिप्रमुखैः सुरैः ॥२६
विषुवेषूपरागेषु षडशीतिमुखेषु च । पूजयित्वा रविं भक्त्या नात्मानं शोचते नरः ॥२७
विबुध्य[2] वा स्वयं वापि यो नमस्कुरुते रविम् । सन्तुष्टो भास्करस्तस्मै गतिमिष्टां प्रयच्छति ॥२८
कृशरापायसापूपपललोन्मिश्रमोदकैः । बलिं कृत्वा तु सूर्याय सर्वकाममवाप्नुयात् ॥२९
मोदकानां प्रदानेन[3] पायसस्य च सुव्रत । मधुमांसरसैश्चापि[4] प्रीयतेऽतीवभास्करः ॥३०
घृतेन तर्पणं कृत्वा सदा स्निग्धो भवेन्नरः । तर्पयित्वा तु मांसेन सद्यः पापात्प्रमुच्यते ॥३१
घृतेन स्नपनं कृत्वा एकाहमुदये रवेः । गवां शतसहस्रस्य दत्तस्य फलमश्नुते ॥३२
गवां क्षीरेण सन्तर्प्य पुण्डरीकफलं लभेत् । रसेन स्नापयेद्देवमश्वमेधफलं[5] लभेत् ॥३३
सूर्याय तरुणीं[6] धेनुं गामेकां यः प्रयच्छति । कञ्जजामचलां प्राप्य पुनर्लेखपुरं व्रजेत् ॥३४
गोशरीरे तु रोमाणि यावन्ति त्रिपुरान्तक । स तावद्वर्षकोटीस्तु लेखलोके महीयते ॥३५
गोशतं भानवे दत्त्वा राजसूयफलं लभेत् । अश्वमेधफलं तस्य यः सहस्रं प्रयच्छति ॥३६
गुग्गुलं देवदारुं च दहेन्नित्यं घृतस्रवम् । आज्यधूमो हि देवानां प्रकृत्यैव प्रियः सदा ॥३७
भेर्यादीनि च वाद्यानि शङ्खवेण्वादिकानि च । ये प्रयच्छन्ति सूर्याय यान्ति ते हंसमन्दिरम् ॥३८

वह अत्यन्त प्रभापूर्ण होकर प्रमुख देवों द्वारा सूर्य की भाँति, पूजित होता है ।२६। एवं विषुव, ग्रहण एवं संक्रान्ति समय में सूर्य की पूजा करने पर मनुष्य को कभी भी (अपने मुक्त होने के लिए) चिंतित होना नहीं पड़ता है ।२७। जो किसी के कहने से या स्वयं सूर्य को नमस्कार करता है उसे प्रसन्नता पूर्वक सूर्य अभिलषित गति प्रदान करते हैं ।२८। खिचड़ी (मिले अन्नों का भक्ष्य), खीर, मालपुआ, तथा तिलचूर्ण मिश्रित मोदक को बलि रूप में सूर्य के लिये प्रदान करने पर सभी कामनाएँ सफल होती हैं ।२९। हे सुव्रत ! मोदक, खीर और शहद एवं मांसरस प्रदान करने से सूर्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ।३०। घी के तर्पण प्रदान करने से मनुष्य सदैव प्रसन्नता पूर्ण रहता है और मांस तर्पण प्रदान करने से वह उसी समय पापमुक्त हो जाता है ।३१। इस प्रकार उदय काल में किसी एक दिन भी घी द्वारा सूर्य के स्नान कराने से सहस्र गोदान के फल प्राप्त होते हैं ।३२

गाय के दूध द्वारा तर्पण करने से पुण्डरीक (यज्ञ) तथा रस के द्वारा स्नान कराने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।३३। एवं सूर्य के लिए एक धेनु समर्पित करने से निश्चित लक्ष्मी तथा देवलोक की प्राप्ति होती है ।३४। हे त्रिपुरान्तक ! इस भाँति गाय के शरीर में जितने लोम होते हैं, उतने करोड़ वर्ष देवलोक में सम्मानित होता है ।३५। सूर्य के लिए सौ गोदान करने से राजसूय (यज्ञ) और सहस्र गोदान करने से अश्वमेध के समान फल की प्राप्ति होती है ।३६

गुग्गुल एवं देवदारु की घी पूर्ण और घी की धूप देवताओं को स्वभावतः सदैव प्रिय होती है ।३७। जो भेरी, शंख एवं वेणु आदि वाद्यों को सूर्य के लिए समर्पित करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती

---

१. देवैः । २. बिंबमध्यगतं देवम् । ३. प्रयत्नेन । ४. मधुमांसातिवर्षेण । ५. स्नपनं कृत्वा । ६. तर्पणीम् ।

दज्ञग्राहरते यस्तु रवेर्भक्तिसमन्वितः । तीर्थोदकमथैवान्यः स याति विबुधालयम् ॥३९
विमानैः स्त्रीशताकीर्णैः क्रीडयित्वा चिरं नरः । मानुषत्वमनुप्राप्य राजा भवति धार्मिकः ॥४०
छत्रं ध्वजं वितानं च पताकाश्चामराणि च । हेमदण्डानि वै दद्याद्रवेर्यो भक्तिमान्नरः ॥४१
विमानेन स दिव्येन किङ्किणीजालमालिना । सूर्यलोकमतो गत्वा भवत्यप्सरसां पतिः ॥४२
तत्रोष्य सुचिरं कालं स्वर्गात्प्रत्यागतः पुनः । मानुष्ये जायते राजा सर्वराजनमस्कृतः ॥४३
दत्त्वा वासांसि सूर्याय अलङ्कारांस्तथैव च । क्रीडते जनलोकस्थो यावदाभूतसम्प्लवम् ॥४४
गीतवादित्रनृत्यैश्च कुर्याज्जागरणं रवेः । गन्धर्वाप्सरसां मध्ये क्रीडते सुचिरं नरः ॥४५
गन्धैः पुष्पैस्तथा पत्रैः स्तोत्रैर्वा विविधैस्तथा । ये स्तुवन्ति रविं भक्त्या ते यान्ति पतगालयम् ॥४६
उषः स्तुवन्ति ये सूर्यमुपगायन्ति ते सदा । पाठकाश्चारणाश्चैव सर्वे ते स्वर्गगामिनः ॥४७
अश्वयुक्तं युगैर्युक्तं यो दद्याद्रवये रथम् । काञ्चनं वापि रौप्यं वा मणिरत्नान्वितं शुभम् ॥४८
स यानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना । स्वर्गलोकमितो गत्वा क्रीडतेऽप्सरसा सह ॥४९
यस्तु दारुमयं कुर्याद्रवे रथमनुत्तमम् । स यात्यर्कसवर्णेन[१] विमानेनार्कमण्डलम् ॥५०
यात्रां कुर्वन्ति ये भानोर्नराः संवत्सरादपि । षण्मासाद्वा गणश्रेष्ठ तेषां पुण्यफलं शृणु ॥५१

है ।३८। उसी भाँति भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए वज्र पुष्प एवं तीर्थ जल के प्रदान करने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।३९। तथा सैकड़ों स्त्रियों के साथ विमान पर स्थित होकर चिर काल तक क्रीड़ा करने के पश्चात् वह मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर धार्मिक राजा होता है ।४०। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक छत्र, ध्वजा, वितान (चाँदनी) पाताका, एवं सुवर्ण के दंडों से विभूषित चामर सूर्य के लिए समर्पित करता है वह दिव्य विमान पर जिसमें किंकड़ी (छोटी-छोटी घंटिया) माला की भाँति लगी हों, बैठकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है और वहाँ अप्सराओं का हार्दिक पति होता है ।४१-४२। एवं पुनः चिरकाल तक स्वर्ग सुख के अनुभव करने के पश्चात् यहाँ मनुष्य कुल में उत्पन्न होकर वह समस्त राजाओं का वन्दनीय राजा होता है ।४३। इस भाँति सूर्य के लिए वस्त्रों एवं आभूषणों के सप्रेम प्रदान करने से (मनुष्य) इस लोक में प्रलय काल पर्यंत क्रीड़ा करते हुए जीवन व्यतीत करता है ।४४। नृत्य, गान एवं वाद्यों द्वारा सूर्य के लिए जागरण करने वाला पुरुष गन्धर्व एवं अप्सराओं के साथ चिरकाल तक क्रीड़ा करता है ।४५। जो और गंधों, पुष्पों, पत्रों एवं स्तोत्र आदि विविध भाँति से सूर्य की उपासना करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।४६। उषा काल में सूर्य के लिए सदैव स्तुति पाठ एवं गान करने वाले पाठक और चारण अदि सभी लोगों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।४७। इस प्रकार जो कोई सुवर्ण, चाँदी अथवा मणिरत्नों से निर्मित और घोड़े जुते हुए रथ सूर्य के लिए समर्पित करता है, वह सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण एवं किंकड़ी (घंटियों) की मालाओं से सुशोभित विमान पर बैठकर स्वर्गलोक में अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता है ।४८-४९। जो काष्ठ के उत्तम रथ बनवाकर सूर्य के लिए समर्पित करते हैं उन्हें सूर्य के समान विमान पर बैठकर सूर्यमंडल की प्राप्ति होती है ।५०

हे गणश्रेष्ठ ! वर्ष में अथवा छठें मास जो सूर्य की (रथ) यात्रा करते हैं, मैं उनके पुण्यफल को बता

---

१. आज्यधूपः ।

ध्यानिनो योगिनश्चैव प्राप्नुवन्तीह यां गतिम् । तां गतिं प्रतिपद्यन्ते सूर्यवर्त्मावगाहिनः ॥५२
रथं वहन्ति ये भानोर्नरा भक्तिसमन्विताः । अरोगाश्चादरिद्राश्च जातौ जातौ भवन्ति ते ॥५३
कर्तारो रथयात्राया ये नरा भास्करस्य तु । ते भानुलोकमासाद्य विहरन्ति यथासुखम् ॥५४
यात्राभङ्गं तु यो मोहात्क्रोधाद्वा कुरुते नरः । मन्देहास्ते नरा ज्ञेया राक्षसाः पापकारिणः ॥५५
धनं धान्यं हिरण्यं वा वासांसि विविधानि च । ये प्रयच्छन्ति सूर्याय ते यान्ति परमां गतिम् ॥५६
गा वाथ महिषीर्वापि गजानश्वांश्च शोभनान् । य प्रयच्छति सूर्याय तस्य पुण्यफलं शृणु ॥५७
अक्षयं सर्वकामीयमश्वमेधफलं लभेत् । सहस्रगुणितं तच्च दानमस्योपतिष्ठति ॥५८
महीं ददाति योऽर्काय कृष्टां फलवतीं शुभाम् । स तारयति वै वंश्यान्दश पूर्वान्दशापरान् ॥५९
विमानेन च दिव्येन गोपुरं गोपतेर्व्रजेत् । क्रीडत्यप्सरसां मध्ये करीव करिणीगणे ॥६०
ग्रामं ददाति यो भक्त्या सूर्याय मतिमान्नरः[1] । विमानेनार्कवर्णेन स याति परमां गतिम् ॥६१
आरामान्ये प्रयच्छन्ति पत्रपुष्पफलोपगान् । भानवे भक्तियुक्तास्तु ते यान्ति परमां गतिम् ॥६२
मानसं वाचिकं वापि कर्मजं यच्च दुष्कृतम् । सर्वं सूर्यप्रसादेन अशेषं च प्रणश्यति ॥६३

रहा हूँ सुनो ! ।५१। सूर्य की रथयात्रा करने वाले को ध्यानी एवं योगी के समान जाति की प्राप्ति होती है, ऐसा बताया गया है ।५२। इस भाँति भक्तिपूर्वक जो मनुष्य उनके रथ का वहन करते हैं, वे प्रत्येक जन्म में आरोग्य रहते हैं एवं कभी दरिद्र नहीं होते हैं ।५३। सूर्य की रथयात्रा करने वाले मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति करके सुख पूर्वक सदैव विहार करते हैं ।५४

उसी प्रकार से मोह अथवा क्रुद्ध होकर उनकी यात्रा भंग करने वाले पुरुष को पापकर्मा मंदेह नामक राक्षस जानना चाहिए ।५५। इसीलिए धन, धान्य, सुवर्ण और भाँति-भाँति के वस्त्रों को सूर्य के लिए समर्पित करने वाले मनुष्य उत्तम गति की प्राप्ति करते हैं ।५६। और अब मैं गाय, भैंस, हाथी एवं सुन्दर घोड़े सूर्य के लिए प्रदान करने वाले के पुण्य फलों को कह रहा हूँ सुनो ।५७। वह पुण्य वहाँ सहस्र गुने तथा अक्षय होकर समस्त कामनाओं को सफल करने वाले अश्वमेध के समान ही फल प्रदान करता है ।५८। जो सूर्य के लिए इस भाँति की भूमि का, जो जोती हुई एवं सस्य (अन्न) पूर्ण रहती है, दान करता है, वह अपने दश पीढ़ी पूर्व के और दश पीढ़ी बाद के (होने वाले) लोगों का उद्धार करता है ।५९। पश्चात् दिव्य विमान पर बैठकर सूर्य के गोपुर की प्राप्ति करके हस्तिनियों के मध्य में हस्ती (हाथी) की भाँति अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता है ।६०। एवं जो मनुष्य भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए गाँव समर्पित करता है, उसे सूर्य के समान प्रभापूर्ण विमान पर बैठकर उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।६१। जो भक्ति पूर्वक बगीचे को, जो पत्र, पुष्प एवं फलों से पूर्ण हो, सूर्य के लिए समर्पित करता है उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।६२। इस प्रकार मन, वाणी एवं शरीर द्वारा किए गए उसके निखिल दुष्कृत, सूर्य की प्रसन्नता से नष्ट हो जाते

---

१. शुभम् ।

आर्तो वा व्याधितो वापि दरिद्रो दुःखितोऽपि वा । आदित्यं शरणं गत्वा नात्मानं शोचते नरः ।।६४
एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम् । तद्वै क्रतुशतैरिष्टैः प्राप्यते फलमुत्तमम् ।।६५
कृत्वा प्रेक्षणकं भानोर्दिव्यमायतने शुभम् । अक्षयं सर्वकामीयं राजसूयफलं लभेत् ।।६६
वेश्याकदम्बकं यस्तु दद्यात्सूर्याय भक्तितः । स गच्छेत्परमं स्थानं यत्र तिष्ठति भानुमान् ।।६७
पुस्तकं भानवे दद्याद्भारतस्य गणाधिप । सर्वपापविमुक्तात्मा विष्णुलोके महीयते ।।६८
रामायणस्य दत्वा तु पुस्तकं त्रिपुरान्तक । वाजपेयफलं प्राप्य गोपतेः पुरमाव्रजेत् ।।६९
भविष्यं साम्बसंज्ञं वा दत्त्वा सूर्याय पुस्तकम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः ।।७०
सर्वान्कामानवाप्नोति याति सूर्यसलोकताम् । सूर्यलोके चिरं स्थित्वा ब्रह्मलोकं व्रजेत्पुनः ।।
स्थित्वा कल्पशतं तत्र राजा भवति भूतले ।।७१
भानोरायतने यस्तु प्रपां कुर्याद्गणाधिप । स याति परमं स्थानं दिव्यं सौमनसं नरः ।।७२
शीतकाले घनं दद्यान्नराणां शीतनाशनम् । भानोरायतने देव अश्वमेधफलं लभेत् ।।७३
इतिहासपुराणाभ्यां पुण्यं पुस्तकवाचनम् । अश्वमेधसहस्रं यो नित्यं कर्तुं प्रवर्तते ।।
न तत्फलमवाप्नोति यदाप्नोत्यस्य कर्मणः ।।७४
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं पुस्तकवाचनम् । इतिहासपुराणाभ्यां भानोरायतने शुभम् ।।७५

हैं ।६३। क्योंकि आर्त, रोगी एवं दुःख से पीड़ित किसी को भी सूर्य की शरण प्राप्त होने पर अपने (मोक्ष के) लिए चिंतित नहीं होना पड़ता है ।६४। और सूर्य की एक दिन की ही पूजा का फल सौ यज्ञों के समान होता है ।६५। सूर्य के मन्दिर में सुन्दर खेल तमाशे अर्पित करने से अक्षय एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले उस राजसूय के समान फल प्राप्त होते हैं ।६६। सूर्य के लिए वैश्याओं के समूह को नृत्य-गान के हेतु करने से उसे उस परम स्थान की प्राप्ति होती है जहाँ सूर्य स्वयं रहते हैं ।६७। हे गणाधिप ! सूर्य के लिए महाभारत की पुस्तक प्रदान करने वाला पुरुष समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में पूजित होता है ।६८। हे त्रिपुरांतक ! रामायण की पुस्तक समर्पित करने से बाजपेय के समान फल की प्राप्ति पूर्वक सूर्यलोक की प्राप्ति होती है ।६९। सूर्य के लिए राजसूय एवं अश्वमेध के फलों की प्राप्ति होती है ।७०। तथा वह सभी मनोरथों को सफलता पूर्वक सूर्य के सालोक्य रूप (मोक्ष) प्राप्तकरता है तथा सूर्य लोक में चिरकाल तक रहकर पुनः ब्रह्म लोक की भी प्राप्ति करता है । इस प्रकार वहाँ सौ कल्प तक सुखानुभूति करने के पश्चात् इस भूतल में राजा होता है ।७१। हे गणाधिप ! सूर्य के मंदिर में जो (पौसला) स्थापित करता है, उसे देवताओं के दिव्यलोक की प्राप्ति होती है ।७२। इसी भाँति शीत के समय में शीत निवारण के लिए मनुष्यों को सूर्य के मन्दिर में वस्त्र वितरण करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।७३। जो मनुष्य नित्य इतिहास एवं पुराण की पुस्तकों का अध्ययन करता है, उसे सहस्र अश्वमेध के फल से कहीं अधिक फल की प्राप्ति होती है ।७४। इसलिए सूर्य के मन्दिर में इतिहास एवं पुराणों की पुस्तकों का अध्ययन करने के लिए सदैव प्रयत्न शील रहना चाहिए ।७५। क्योंकि सूर्य के

नान्यत्पुष्टिकरं भानोस्तथा तुष्टिकरं परम् । पुण्याख्यानकथा यास्तु यथा तुष्यति भास्करः ॥७६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे भानुमहिमवर्णनं
नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ।९३।

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

पुण्यश्रवणमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अत्राख्यानमुशन्तीह संवादं गणपुङ्गव । पितामहकुमाराभ्यां पुण्यं पापहरं शिवम् ॥१
स्रष्टारं सर्वलोकानां सुखासीनं पितामहम् । प्रणम्य शिरसा देवं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥२
कुमारो देवशार्दूल इदं वचनमब्रवीत् । गतोऽहमद्य भगवन्द्रष्टुं देवं दिवाकरम् ॥३
कृत्वा प्रदक्षिणं देवः स मया पूजितो रविः । प्रणम्य शिरसा भक्त्या परया श्रद्धया विभो ॥४
अनुज्ञातस्ततस्तेन सुखासीनो ह्यहं स्थितः । आसीनेन मया तत्र दृष्टमाश्चर्यमद्भुतम् ॥५
काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना । मणिमुक्ताविचित्रेण वैदूर्यवरवेदिना ॥६
आगतं पुरुषं तत्र दृष्ट्वा देवो दिवाकरः[1] । ससम्भ्रमं समुत्थाय आसनादेव सत्तम ॥७

लिए उतनी पुष्टि एवं तुष्टि प्रदान करने वाली और कोई वस्तु नहीं है, जितनी कि उनके उपाख्यान की पुण्यकथा ।७६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपुराण के सप्तमी कल्प में भानुमहिमावर्णन नामक
तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९३।

अध्याय ९४

पुण्य श्रवण माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे गणश्रेष्ठ ! इस विषय में ब्रह्मा और कुमार के संवाद रूप एक आख्यान (कथा) प्रचलित है जो पुण्यरूप, पापनाशक एवं कल्याण प्रद है ।१। हे देवशार्दूल ! एकबार समस्त लोकों के रचयिता ब्रह्मा सुख पूर्वक बैठे हुए थे, उन्हें श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक नतमस्तक से प्रणाम कर कुमार ने उनसे यह कहा—हे भगवन् ! आज सूर्य के दर्शन के लिए मैं गया था ।२-३। हे विभो ! (मैने) अत्यन्त श्रद्धालु होकर भक्ति पूर्वक एवं नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम किया तथा उनकी प्रदक्षिणा एवं पूजा भी की ।४। पश्चात् उनकी आज्ञा से सुख पूर्वक बैठ गया । तदन्तर मैंने वहाँ बैठे-बैठे एक अद्भुत आश्चर्य देखा ।५

सुवर्ण के विमान पर, जिसमें चारों ओर से छोटी-छोटी घंटियों का जाल सा लगा था, और मणियों मोतियों से चित्र विचित्र तथा वैदूर्य मणि का उत्तम आसन (बैठने का स्थान) बना हुआ था, बैठकर आये हुए पुरुष को देख कर सूर्य देव अपने आसन से सहसा उठकर सामने गये ।६-७। और उसके

---

१. विभावसुः ।

गृहीत्वा[1] दक्षिणे पाणौ पुरतः प्राप्य तं नरम् । शिरस्याघ्राय देवेश पूजयामास वै रविः ॥८
उपविष्टं तु तं भानुरिदं वचनमब्रवीत् । सुस्वागतं भद्र सुखकृता प्रीतास्त्वया वयम् ॥९
समीपे मम तिष्ठ त्वं यावदाभूतसंप्लवम् । पुनर्यास्यसि तत्स्थानं यत्र ब्रह्मा स्वयं स्थितः ॥१०
एतस्मिन्नंतरे चान्यो विमानवरमास्थितः । आगतः पुरुषो देवो यत्र तिष्ठति भास्करः ॥११
स चाप्येवं नरो देव पूजितो भानुना तदा । सामपूर्वं तथोक्तस्तु प्रश्रयावनतः स्थितः ॥१२
तत्र मे कौतुकं जातं दृष्ट्वा पूजां कृतां तयोः । भानुना देवशार्दूल पृष्टो भानुर्मया ततः ॥१३
किमनेन कृतं देव योऽयं पूर्वमिहागतः । नरस्तव सकाशं वै यस्य तुष्टो भवान्भृशम् ॥१४
यदस्य भवता पूजा कृता हि स्वयमेव तु । अत्र मे कौतुकं जातं विस्मयश्च विशेषतः ॥१५
तथैवास्य कृता पूजा द्वितीयस्य नरस्य च । सर्वथा पुण्यकर्माणाविमौ नरवरोत्तमौ ॥१६
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैस्तु पूज्यते भगवान्सदा । यत्त्वमाभ्यां परं पूजां कृतवान्देवसत्तम ॥१७
कथ्यतां मम देवेश किमेतौ कर्म चक्रतुः । यस्येदृक्परमं पुण्यं फलं दिव्यमवापतुः ॥
श्रुत्वा तद्वचनं देव इदं वचनमब्रवीत् ॥१८

सूर्य उवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भवता कर्मणो निर्णयं परम् ॥१९

दाहिने हाथ को पकड़ कर उसके शिर का आघ्राण किया (सूंधा) और तदुपरान्त सूर्य ने उसकी पूजा भी की ।८। पुनः बैठ जाने पर उससे सूर्य ने इस भाँति ये कहना आरम्भ किया हे भद्र ! आप का स्वागत है, आप ने हमें सुख प्रदान किया अतः हम लोग अत्यन्त प्रसन्न हैं । अतः आप महाप्रलय काल पर्यंत यहाँ मेरे समीप हों और पश्चात् जहाँ ब्रह्मा स्वयं स्थित हैं, उस स्थान पर चले जाइयेगा ।९-१०

इसी बीच में अन्य एक सुन्दर विमान पर बैठकर दूसरा पुरुष आया जहाँ सूर्य देव रहते थे ।११। उस पुरुष की उसी प्रकार उन्होंने पूजा तथा शान्ति पूर्ण सुस्वागत किया । तत्पश्चात् पुरुष भी स्वागत के उपरान्त नम्रता पूर्वक (वहाँ) बैठ गया ।१२। हे देव शार्दूल ! सूर्य के द्वारा उन दोनों के इस प्रकार के सम्मान को देखकर मैंने उनसे कौतूहलवश पूछा ।१३। हे देव ! यह जो पहले आप के समीप आया है, इसने ऐसा कौन कर्म किया है, जिससे आप अत्यन्त प्रसन्न हैं ।१४। तथा आप ने स्वयं इसकी पूजा भी की है और यह देख कर मुझें कौतूहल एवं महान् आश्चर्य भी हुआ ।१५। हे देवसत्तम ! इस दूसरे पुरुष की भी पूजा आप ने वैसी ही की है, अतः ये दोनों नरोत्तम सर्वथा पुण्य कर्मा हैं क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आप की पूजा करते हैं और आप ने इन दोनों की पूजा की है ।१६-१७। हे देवेश ! इसलिए इन दोनों ने ऐसे कौन कर्म किये हैं, जिससे इन्हें इस प्रकार के दिव्य पुण्य काल प्राप्त हुए बताने की कृपा करें । इसे सुनकर सूर्य ने कहा ।१८

सूर्य बोले—हे मुनिसत्तम ! आप ने इनके कर्मों का निर्णय रूप बहुत उत्तम प्रश्न किया है । हे

---

१. गृहीत्वा दक्षिणे पादे पुरतः स्थाप्य तं नरम् ।

यदनेन कृतं कर्म नरेण मुनिसत्तम । योऽसौ सूर्यमिहायातस्तच्छृणुष्व महामते ॥२०
येयं मदंशसम्भूतैः पार्थिवैः पालिता सदा । अयोध्या नाम नगरी प्रख्याता पृथिवीतले ॥२१
तत्रासौ वैश्यजातीयो धनपाल इति स्मृतः । तस्याः पुर्यां द्विजश्रेष्ठ दिव्यमायतनं व्यधात्[1] ॥२२
तस्मिन्नायतने दिव्ये ह्याम्नायार्थे तथाश्रितः । ब्राह्मणानां विशिष्टानां पूजयित्वा कदम्बकम् ॥२३
इतिहासपुराणाभ्यां वाचकं च विशेषतः । पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठं मुनश्रेष्ठं महामुनिम् ॥२४
पुस्तकं चापि सम्पूज्य गन्धपुष्पोपहारतः । तस्य विप्रकदम्बस्य व्यासस्य च यथाग्रतः ॥२५
प्रकल्प्योक्तो द्विजोऽनेन पाठको[2] वाचकोत्तमः । एष तिष्ठति देवेशः सहस्रकिरणो रविः ॥२६
चातुर्वर्ण्यमिदं वापि श्रोतुकामं कदम्बकम् । तिष्ठ चेह द्विजश्रेष्ठ कुरु पुस्तकवाचनम् ॥२७
येन मे वरदो भानुः[3] सप्त जन्मानि वै भवेत् । यावत्संवत्सरं विप्र प्रगृह्य वृत्तिमुत्तमाम् ॥२८
स्वर्णनिष्कशतं विप्र ततो दास्ये तथापरम् । पूर्णे वर्षे द्विजश्रेष्ठ श्रेयोऽर्थमहमात्मनः ॥२९
एवं प्रवर्तिते तस्मिन्पुण्ये पुस्तकवाचने । षण्मासागतमात्रे तु काले सुरवरोत्तम ॥
तथैवान्तरतश्चायं कालधर्ममुपेयिवान् ॥३०
मया चास्य विमानं तु प्रेषितं कुर्वतो व्रतम् । इत्येषा कर्मणस्तुष्टिः पुण्याख्यानकजार्चिता ॥३१
गन्धपुष्पोपहारैस्तु न तथा जायते मम । प्रीतिर्देववर श्रेष्ठ पुराणश्रवणे यथा ॥३२

महामते ! जो यहाँ (सूर्य के) मेरे समीप आ कर स्थित करते हैं उनके कर्म मैं बता रहा हूँ सुनो ! ।१९-२०। इस पृथिवी पर अयोध्या नाम की एक प्रख्यात नगरी है जो मेरे अंशों से उत्पन्न राजाओं द्वारा सदैव पाली पोषी जाती है ।२१। उसी पुरी में वैश्य वंश का रत्नरूप धनपाल नामक वैश्य रहता था । हे द्विजश्रेष्ठ ! वहाँ उसने एक सुन्दर मेरा मन्दिर बनवाया था और उसने मन्दिर में विशिष्ट ब्राह्मणों के एक समूह को पूजा सत्कार पूर्वक वेदपाठ करने के लिए नियुक्त किया ।२२-२३। पश्चात् उसने भी ब्राह्मणों विशेष कर इतिहास एवं पुराण के मर्मज्ञ वाचक भी जो द्विजों एवं मुनियों में श्रेष्ठ एवं महामुनि थे, उनकी पुस्तक की गंध एवं पुष्पोपहार द्वारा पूजा करके पुनः उन ब्राह्मणों तथा कथावाचक व्यासों से उसने कहा ।२४-२५। हे देव ! सहस्र किरणों वाले देव नायक सूर्य यहाँ विराजमान हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! चारों वर्णों के मनुष्य एवं यह ब्राह्मण समूह भी कथा सुनने के लिए यहाँ नित्य प्रति उपस्थित रहेंगें इसलिए आप इस पुस्तक का पाठ करना इस प्रकार आरम्भ करें जिसके सुनने से सात जन्म तक मेरे ऊपर सूर्य का वरद हस्त रहे । हे विप्र ! मैं आप की सेवा में पूर्ण वर्ष के लिए सुवर्ण की सौ मोहरें अर्पित कर रहा हूँ अतः इस सुवर्ण रूपी वृत्ति को स्वीकार कीजिए, और अपने कल्याण के निमित्त मैं और भी कुछ देता ही रहूंगा ।२६-२९। हे सुरवरोत्तम ! इस प्रकार उस पुण्य पुस्तक के पाठ (कथा) करने की व्यवस्था करके छह मास के व्यतीत होते ही वह अपने कलेवर के परित्यागरूप मृत्यु की गोद में सदैव के लिए सोगया ।३०। मैं ने उसी व्रती के लिए यह विमान भेजा था और यह वही व्यक्ति है तथा इसके कर्मों से प्रसन्न होने का यही कारण भी है और उस पुण्य कथा की चर्चा से ही मैं प्रसन्न हुआ था ।३१

---

१. मम । २. याचकः । ३. देवः ।

गोसुवर्णहिरण्यानां वस्त्राणां चापि कृत्स्नशः । ग्रामाणां नगराणां च दानं प्रीतिकरं मम ।।३३
न तथा स्यात्सुरश्रेष्ठ यथा प्रीतिकरं गुह । इतिहासपुराणाभ्यां श्रवणं सुरसैन्यप ।।३४
श्राद्धं कुर्वन्ति ये मह्यं भक्ष्यभोज्यैरनेकशः । न करोति तथा प्रीतिर्यथा पुस्तकवाचनम् ।।३५
कर्णश्राद्धे यथा प्रीतिर्मम स्यात्सुरसत्तम । न तथा जायते प्रीतिर्भोज्यश्राद्धे तथैव च ।।३६
अथ किं बहुनोक्तेन नान्यत्प्रीतिकरं मम । पुण्याख्यानादृते देव गुह्यमेतत्प्रकीर्तितम् ।।३७
यश्चायमपरो विप्र इहायातो नरोत्तमः । अयमासीद्द्विजश्रेष्ठस्तस्मिन्नेव पुरोत्तमे ।।३८
एकदा तु गतश्चायं धर्मश्रवणमुत्तमम् । श्रोतुं भक्त्या द्विजश्रेष्ठ श्रद्धया परया वृतः ।।३९
श्रुत्वा तत्र ततो भक्त्या पुण्याख्यानमनुत्तमम् । कृत्वा प्रदक्षिणं तस्य वाचकस्य महात्मनः ।।
एष विप्रोऽमरश्रेष्ठ दत्तवान्स्वर्णमाषकम् ।।४०
दत्त्वा तु दक्षिणां तस्मै वाचकायमितौजसे[1] । आनन्दमगमद्विप्रः प्राप्तवान्काञ्चनं यथा ।४१
एतद्धि सफलं चास्य न चान्यत्कृतवानयम् । यदनेन कृता पूजा वाचकस्य महात्मनः ।।
फलं हि कर्मणस्तस्य यन्मया पूजितः स्वयम् ।।४२
वाचकं पूजयेद्यस्तु श्रद्धाभक्तिसमन्वितः । तेनाहं पूजितः स्यां वै को विष्णुः शङ्करस्तथा ।।४३

हे देवश्रेष्ठ ! इसलिए पुराण के सुनने से मैं जितना प्रसन्न होता हूँ गंध एवं पुष्पोपहार द्वारा उतना प्रसन्न कभी नहीं होता ।३२। हे सुरश्रेष्ठ ! हे गुह ! हे सुरसैन्धव ! गौएँ, सुवर्ण, रत्नों, वस्त्रों, गाँवों एवं नगरों के दान देने से मुझे उतनी प्रसन्नता ही नहीं है, जितनी कि इतिहास एवं पुराण के (पारायण) सुनने, सुनाने से ।३३-३४। एवं जो कोई मेरे उद्देश्य से भाँति-भाँति के भक्ष्य पदार्थों द्वारा श्राद्ध करते हैं, उनके (इस) कर्म से भी मुझे उतनी प्रसन्नता नहीं होती है, जितनी कि पुस्तक के (पाठ) से होती है ।३५। हे सुरोत्तम ! इस प्रकार कर्ण श्राद्ध (कथा सुनने) की भाँति प्रसन्नता मुझे भोज्य श्राद्ध में भी कभी नही प्राप्त होती है ।३६। हे देव ! और अधिक क्या कहूँ, बस पुण्य कथा के अतिरिक्त अन्य कोई भी मुझे प्रिय नहीं है, यह तुम्हें गुप्त (रहस्य) बता रहा हूँ ।३७

हे विप्र ! यह जो दूसरा नर रत्न यहाँ आया है, यह भी उसी नगरी में श्रेष्ठ ब्राह्मण था ।३८। एकबार यह अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक धार्मिक कथा सुनने के लिए वहाँ गया था और भक्तिपूर्वक उस पवित्र कथा को सुनकर इसने उन कथा वाचक महातमा की प्रदक्षिणा की तत्पश्चात् उन्हें एक माशा सुवर्ण भी सर्मपित किया था ।३९-४०। उपरांत उस अतुल तेजस्वी कथा वाचक को दक्षिणा अर्पित करके सुवर्ण प्राप्त किसी दरिद्र की भाँति आनन्द विभोर होता हुआ वहाँ से अपने गृह चला गया था ।४१। बस यही एक सफलता पूर्ण कार्य इसने अपने जीवन में किया और कभी कुछ नहीं किन्तु इसने जो कथावाचक उस महात्मा की पूजा की है उसी कर्म का यह फल है कि मैं ने स्वयं इसकी पूजा की ।४२

अतः श्रद्धालु होकर एवं भक्ति पूर्वक जो मनुष्य कथा वाचक की पूजा करता है, उससे मेरी ही भाँति व्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर भी प्रसन्न होते हैं ।४३। भक्ति पूर्वक जो उत्तम भक्ष्य पदार्थों से कथा

---

१. महात्मने ।

वाचकं भोजयेद्यस्तु भक्त्या भोज्यैरनुत्तमैः । तेनाहं पूजितः स्यां वै दश वर्षाणि पञ्च च ॥४४
न यमो न यमी चापि न मन्दो न मनुस्तथा । तपती न तथान्विष्टा यथेष्टो वाचको मम ॥४५
वाचके सत्कृते देव भोजिते सुरसैन्यप । तृप्तिर्भवति मे देव संवत्सरशतद्वयम् ॥४६
न केवलं मम प्रीतिर्वाचके भोजिते भवेत् । कृत्स्नशो देवतानां च इन्द्रादीनां तथा भवेत् ॥४७
ब्रह्माविष्णुशिवादीनां स चेष्टो वाचको मम । प्रीते तस्मिन्देवताः स्युःसर्वाः प्रीताः न संशयः ॥४८
इत्येतत्कथितं सर्वाभ्यां कर्म महाबल ॥४९
न चान्यच्चक्रतुः कर्म किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि । एतद्दृष्ट्वाहमाश्चर्यं तवाभ्याशमिहागतः ॥
किमत्र तथ्यं देवेश कथ्यतां कौतुकं मम ॥५०
श्रुत्वा कुमारवचनं सर्वलोकपितामहः ॥५१

ब्रह्मोवाच

हन्त भोः साधु पुण्योऽसि नास्ति तुल्यस्त्वयापरः । यद्दृष्टौ भवता तौ हि सुपुण्यौ पुण्यकारिणौ ॥५२
यदुक्तं भानुना वत्स तत्तथा नान्यथा भवेत् । यदासीन्मे मुखं पुत्र प्रथमं लोकपूजितम् ॥५३
तस्मादेतानि सर्वाणि निर्गतानि समन्ततः । इतिहासपुराणानि लोकानां हितकाम्यया ॥५४
यथैतानि ममेष्टानि पुराणानि महामते । न तथा वै चतुर्वेदी न चाङ्गानि महामते ॥५५
शृण्वन्त्येतानि ये भक्त्या नित्यं श्रद्धासमन्विताः । दत्त्वा तु वाचके वृत्तिं ते गच्छन्ति परं पदम् ॥५६

वाचक को भोजन कराता है, उसने यानी पन्द्रह वर्ष तक निरन्तर मेरी ही आराधना की है ऐसा समझना चाहिए ।४४। क्योंकि यम, यमी, शनैश्चर, मनु, एवं तपती ये सभी मेरे सन्तान भी कथा वाचक के समान मुझे उतने प्रिय नहीं है ।४५। हे देव ! हे सुरसैन्य ! कथा वाचक के सत्कार और भोजन कराने, करने से (उस व्यक्ति के उपर) मैं दो सौ वर्ष तक पूर्ण (प्रसन्न) रहता हूँ ।४६। और कथावाचक का भोजन कराने से केवल मैं ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण इन्द्रादिक देवता भी मेरे समान ही प्रसन्न होते हैं ।४७। और मेरी ही भाँति ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को भी वाचक उतना ही प्रिय होता है, क्योंकि उसी के प्रसन्न होने पर समस्त देवता प्रसन्न होते हैं, इसमें संदेह नहीं ।४८

हे महाबल ! इस भाँति इन दोनों अन्य व्यक्तियों के द्वारा किये गये कर्मों को मैंने तुम्हें बता दिया ।४९। इन दोनों ने इसके अतिरिक्त और कोई पुण्य कर्म नहीं किया है अब और क्या सुनना चाहते हो ! हे देवेश ! तदुपरान्त इस आश्चर्य को देखकर मैं आप के पास आया हूँ, मेरे कौतूहल को बताइये कि इसमें क्या सत्य निहित है । कुमार की बातें सुनकर ।५०

ब्रह्मा बोले—आप साधु एवं पुण्यात्मा हैं, आप के समान पुण्य कर्मा दूसरा कोई नहीं है क्योंकि आपने उन दोनों पुण्य कर्म करने वाले पुण्यात्माओं के दर्शन भी किये हैं ।५१-५२। हे वत्स ! सूर्य ने जो कुछ कहा है, उसमें कोई अंश असत्य नहीं है । हे पुत्र ! क्योंकि मेरे इस लोक पूजित प्रथम मुख द्वारा लोक की हित कामना वश ये सभी इतिहास पुराण निकले हैं ।५३-५४। हे महामते ! इसीलिए मुझे आप जैसे ये पुराण प्रिय हैं, वैसे चारों वेद या उनके अंग प्रिय नहीं हैं ।५५। जो इस भाँति श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक कथा वाचक के लिए वृत्ति प्रदान कर नित्य कथा सुनते रहते हैं उन्हें उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।५६। हे

धर्मार्थकाममोक्षाणां स्पष्टीकरणमुत्तमम् । इतिहासपुराणानि मया सृष्टानि सुव्रत ।।५७
चत्वारो य इमे वेदा गूढार्थाः सततं स्मृताः । अतस्त्वेतानि सृष्टानि बोधायैषां महामते ।।५८
यस्तु कारयते नित्यं धर्मश्रवणमुत्तमम् । आदित्याद्भास्करं प्राप्य याति तत्परमं पदम् ।।५९
दत्त्वा तु दक्षिणां तत्र आदित्यस्य पुरं व्रजेत् । किमाश्चर्यं सुरश्रेष्ठ दानपात्रं हि तत्परम् ।।६०
यथा देववरो लेखो यथा हेतिः परं पविः । ब्राह्मणानां तथा श्रेष्ठो वाचको नात्र संशयः ।।६१
हेतिर्यथा तेजसां तु सरसां सागरो यथा । तथा सर्वद्विजेभ्यस्तु वाचकः प्रवरः स्मृतः ।।६२
वाचकं पूजयेद्यस्तु नरो भक्तिपुरः सरम् । पूजितं सकलं तेन जगत्यान्नात्र संशयः ।।६३
सत्यमुक्तं न सन्देहो भानुना मत्कुलोद्वह । वाचकेन समं पात्रं न जात्वन्यद्भवेत्क्वचित् ।।६४
तच्छ्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं कुमारो वाक्यमब्रवीत् ।।६५
अहो हि धन्यता तस्य पुण्यश्रवणकारिणः । दानं च ददतोऽत्यर्थं पुण्यता वाचकाय वै ।।६६

ब्रह्मोवाच

इत्थं दिण्डे सदा यस्तु देवदेवस्य मन्दिरे । कुर्यात्तु धर्मश्रवणं स याति परमां गतिम् ।।६७

श्रीभविष्यमहापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे पुण्यश्रवणमाहात्म्य वर्णनं
नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।९४।

सुव्रत ! धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के रूप को स्पष्ट प्रदर्शित करने के लिए ही मैंने इतिहास एवं पुराणों की रचना की है ।५७। हे महामते ! इन चारों वेदों का अर्थ अत्यन्त गूढ़ है, इसलिए इनके अर्थ का भली भाँति बोध (ज्ञान) होने के लिए भी इनकी रचना हुई है ।५८। अतः जो नित्य इन धार्मिक कथाओं का श्रवण कराता है, वह सूर्य द्वारा तेज प्राप्त कर परम पद की प्राप्ति करता है ।५९। और (कथा वाचक की) दक्षिणा प्रदान करने से उसे सूर्य लोक की भी प्राप्ति होती है, हे सुरश्रेष्ठ ! इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं क्योंकि उससे उत्तम कोई दान का अन्य पात्र हीं नहीं बताया गया है ।६०

देवों में इन्द्र तथा अस्त्रों में वज्र की भाँति ब्राह्मणों में कथावाचक ही सर्वश्रेष्ठ कहे गये हैं इसमें संदेह नहीं ।६१। इस प्रकार तेजस्वी होने के नाते (अस्त्रों में) वज्र और जलाशयों में सागर की भाँति समस्त द्विजों में वाचक ही श्रेष्ठ होता है ।६२। इसलिए भक्ति पूर्वक जो मनुष्य वाचक की पूजा करता है, उसने समस्त जगत् की पूजा की इसमें संदेह नहीं ।६३। हे मेरे कुल श्रेष्ठ ! इस भाँति सूर्य ने जो कुछ कहा है वह ध्रुव सत्य है कि वाचक के समान उत्तम पात्र अन्य कोई नहीं है ।६४। अनन्तर ब्रह्मा की इस प्रकार की बातें सुनकर कुमार ने भी कहा कि—उस पुण्य कथा के सुनने वाले को शतशः धन्यवाद है जो वाचक के लिए दान अर्पित करते हुए पुण्य प्राप्त करता रहता है ।६५-६६

ब्रह्मा ने कहा—हे द्विज ! इस भाँति जो देवाधिदेव सूर्य के मन्दिर में नित्य धर्म की चर्चा सुनता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।६७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में पुण्य श्रवण माहात्म्य वर्णन
नामक चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९४।

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

आदित्यालयमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

त्रिभिः प्रदक्षिणां कृत्वा यो नमस्कुरुते रविम् । भूमौ गतेन शिरसा स याति परमां गतिम् ॥१
सोपानत्को देवगृहमारोहेद्यस्तु मानवः । स याति नरकं घोरं तामिस्रं नाम नामतः ॥२
श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि समुत्सृजति यस्तु वै । देवस्यायतने भानोः स गच्छेन्नरकं क्रमात् ॥३
घृतं मधु पयस्तोयं तथेक्षुरसमुत्तमम् । स्नपनार्थं तु देवस्य ये ददतीह मानवाः ॥
सर्वकामानवाप्येह ते यान्ति हेलिमण्डलम् ॥४
स्नाप्यमानं रविं भक्त्या ये पश्यन्ति वृषध्वज । तेऽश्वमेधफलं प्राप्य लयं यान्ति वृषध्वजे ॥५
स्नपनं ये च कुर्वंति भानोर्भक्तिसमन्विताः । लभन्ते तत्फलं भीम राजसूयाश्वमेधयोः ॥६
यथा न लङ्घयेत्कश्चित्स्नपनं भास्करस्य तु । तथा कार्यं प्रयत्नेन लङ्घितं ह्यसुखावहम् ॥७
तामिस्रं नरकं याति लङ्घयेच्च स रौरवान् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं स्नपनमादितः ॥८
घृतेन स्नापयेद्देवं कञ्जमाप्नोति मानवः । मधुना श्रियमायाति तोयेनापि घृतौकसम् ॥९

अध्याय ९५

आदित्यालय माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जो तीन बार सूर्य की प्रदक्षिणा करके उन्हें भूमि में शिर से (साष्टांग) नमस्कार करता है उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।१। इस भाँति जूते पहने हुए जो मनुष्य मन्दिरों में जाता है, उसे तामिस्र नामक नरक की प्राप्ति होती है ।२। तथा जो सूर्य के मन्दिर में थूकता है अथवा पाखाना, पेशाब करता है, उसे क्रमशः (सभी) नरकों की प्राप्ति होती रहती है ।३। जो मनुष्य घी, शहद, दूध, जल एवं ऊख के रस सूर्य के स्नान के लिए समर्पित करता है, उसे समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक सूर्य के मंडल की प्राप्ति होती है ।४। हे वृषध्वज ! जो स्नान करते हुए सूर्य का दर्शन करता है, उसे अश्वमेध के फल की प्राप्ति पूर्वक शिव में सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है ।५। हे भीम ! भक्ति पूर्वक जो सूर्य को स्नान कराते हैं उन्हें राजसूय तथा अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।६। और सूर्य के स्नान किये हुए जल का उल्लंघन कोई न करे इसका विशेष ध्यान रखते हुए प्रयत्न पूर्वक स्वयं वैसा ही करे क्योंकि उसे लांघने पर ऐसे मनुष्य को फल की प्राप्ति होती है जिसमें रौरव तामिस्र आदि नरकों की प्राप्ति अनिवार्य रहती है । इसलिए प्रयत्न पूर्वक सूर्य के स्नान एकान्त स्थान में ही कराना चाहिए जिससे कोई उसे लाँघ न सके । स्नान कराने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, उसी भाँति शहद द्वारा स्नान कराने से (सूर्य का) प्रिय पात्र जलद्वारा स्नान कराने से देवलोक ऊख, के रस द्वारा स्नान कराने से वायुलोक तथा इन

इक्षुरसेन संस्नाप्य पयसा कञ्जशब्दजम् । एवमेभिः स्नापयेद्वै रविमीहितमाप्नुयात् ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मेपर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यालयमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।९५।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

जयानामसप्तमीवर्णनम्

दिण्डिरुवाच

यच्चैताः सप्त सप्तम्यो भवता कथिता मम । तासां या प्रथमा देव कथिता सा सविस्तरा ॥१
यास्त्वन्या देवशार्दूल ताः सर्वाः कथयस्व मे । येनोपोष्य ततस्तास्तु व्रजेऽहं हेलिसद्म वै ॥२

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां नक्षत्रं पञ्चतारकम् । यदा स्यात्सा तदा ज्ञेया जया नामेति सप्तमी ॥३
तस्यां दत्तां[1] हुतं जापस्तर्पणं देवपूजनम् । सर्वं शतगुणं प्रोक्तं पूजा चापि दिवाकरे ॥४
भास्करस्य प्रिया ह्येषा सप्तमी पापनाशिनी । धन्या यशस्या पुत्र्या च कामदा कञ्जजावहा ॥५
विधिनानेन कर्तव्या तिथिर्या मम विद्यते । तं शृणुष्व विधिं मत्तो येन कृत्वार्थमश्नुमते ॥६

सभी वस्तुओं के मिश्रण द्वारा स्नान कराने से मनुष्य को अभीष्ट की सिद्धि होती है ।७-१०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यालय माहात्म्य वर्णन नामक पंचानबेवां अध्याय समाप्त ।९५।

अध्याय ९६

जयानामक सप्तमी का वर्णन

दिंडि ने कहा—हे देव ! इस प्रकार उन सातों सप्तमियों में जिन्हें आपने पहले बताया था, पहली (सप्तमी) का ही विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है ।१। हे देव शार्दूल ! अतः शेष अन्य सप्तमियों के विधान को भी जिनके आचरण द्वारा सूर्य लोक की प्राप्ति कर सकूँ, मुझे बताने की कृपा कीजिए ।२

ब्रह्मा बोले—शुक्ल पक्ष की सप्तमी में हस्त नक्षत्र की प्राप्ति होने से उसे जया सप्तमी कहा जाता है ।३। उसमें किये गये दान, हवन, जप, तर्पण, देवपूजन तथा सूर्य की पूजा सौगुने फल प्रदान करती है ।४। और यह सूर्य के लिए अत्यन्त प्रिय होने के नाते पापनाशिनी एवं प्रशंसनीय भी है तथा यश, पुत्र, एवं कामनाओं समेत लक्ष्मी प्रदान करती है ।५। अतः जिस विधान द्वारा मेरी इस तिथि (सप्तमी) में व्रत आदि करके मनोरथ सिद्ध करते हैं उसे मैं बता रहा हूँ सुनो ।६

---

१. दानमित्यर्थः, अयं भावनिष्ठान्तः प्रयोगः । एवं हुतमित्त्रापि हवनमित्यर्थो बोध्यः ।

हंसे हंसमारूढे शुक्लेयं सप्तमी पुरा । समुपोष्य च कर्तव्या विधिनानेन शङ्कर ॥७
पारणा तृतीयाऽहे स्यात्कथितं गोवृषावहम् । प्रथमं चतुरो मासान्पारणं कथितं बुधैः ॥८
कथितान्यत्र पुष्पाणि करवीरस्य सुव्रत । चन्दनं च तथा रक्तं धूपार्थं गुग्गुलं परम् ॥९
कांसारं तु सुपक्वं च नैवेद्यं भास्कराय वै । अनेन विधिनापूज्य मार्तण्डं विबुधाधिपम् ॥१०
पूजयेद्ब्राह्मणान्भीम भक्ष्यभोज्यैर्यथाविधि । कांसारं भोजयेद्विप्रान्पारणेऽस्मिन्विचक्षणः ।
स्वयमेव तथाऽश्नीयात्प्रयतो मौनमाश्रितः ॥११
पञ्चम्यामेकभक्तं तु षष्ठ्यां नक्तं प्रवर्तते । कृत्वोपवासं सप्तम्यामष्टम्यां पारणं भवेत् ॥१२
षष्ठ्या समेता कर्तव्या नाष्टम्येयं कदाचन । यस्योपवासनायैव षष्ठ्यामाहुरुपोषितम् ॥१३
यथैकादश्यां कुर्वन्ति उपवासं मनीषिणः । उपवासनाय द्वादश्यां तथेयं परिकीर्तिता ॥१४
सिद्धार्थकैः स्नानमन्त्रः प्राशनं गोमयस्य तु । भानुर्मे प्रीयतामत्र दन्तकाष्ठं तथार्कजम् ॥१५
इत्येष कथितस्तात प्रथमे पारणे विधिः । द्वितीयं श्रूयतां भीम पारणं गदतो मम ॥१६
मालतीकुसुमानीह श्रीखण्डं चन्दनं तथा । नैवेद्यं पायसं भानोर्धूपं विजयमादिशेत् ॥१७
ब्राह्मणान्भोजयेद्वापि तथाऽश्नीयात्स्वयं विभो । रविर्मे प्रीयतामत्र नाम देवस्य कीर्तयेत् ॥१८

हे शंकर ! पहले समय की बात है जबकि सूर्य के एकबार अश्वारुढ़ होने (उदयकाल) के समय यह सप्तमी शुक्लवर्ण की हो गई थी, अतः उपवास पूर्वक इसी विधान द्वारा इसे उसी भाँति सुसम्पन्न करना चाहिए ।७। और इस सप्तमी के व्रतानुष्ठान में तीसरे दिन पारण करना बताया गया है ऐसा शंकर जी से उन्होंने कहा । इस प्रकार चार मास के व्रत विधान सुसम्पन्न करने के उपरान्त यह पहला पारण करना विद्वानों ने बताया ।८। हे सुव्रत ! इसमें करवीर के पुष्प, रक्त चन्दन, गुग्गुल की धूप, पके कसेरू के फल तथा नैवेद्य सूर्य के लिए समर्पित करना चाहिए । हे भीम ! विधान द्वारा देव नामक सूर्य की पूजा सम्पन्न करने के उपरांत उत्तम भक्ष्य पदार्थों द्वारा ब्राह्मणों की पूजा करना एवं इसका पारण बताया गया है बुद्धिमान् को चाहिए कि कसेरु के फल से ब्राह्मणों को तृप्त भोजन कराने के पश्चात् स्वयं भी मौन होकर उसे भक्षण करे ।९-११। यद्यपि उसका इस प्रकार विधान बनाया गया है कि पंचमी में एक भक्त (एकाहार) षष्ठी में नक्तव्रत एवं सप्तमी में उपवास करके अष्टमी में पारण करना चाहिए ।१२। तथापि षष्ठी युक्त ही (व्रत आदि के लिए) इसका ग्रहण करना श्रेष्ठ कहा गया है, अष्टमी युक्त नहीं। क्योंकि उपवास के लिए षष्ठी तिथि ही निश्चित बतायी गयी है ।१३

जिस प्रकार एकादशी के उपवास में शुद्ध एकादशी के प्राप्त न होने पर द्वादशी (युक्ता) में भी विद्वानों ने उपवास करना बताया है, उसी भाँति सप्तमी के उपवास में उसके शुद्ध रूप के प्रभाव होने पर षष्ठी (युक्ता) सप्तमी का ग्रहण करना बताया गया है ऐसा जानना चाहिए ।१४। सरसों के उबटन लगाकर स्नान, मदार की दातून एवं गोमय के प्राशन करके इस भाँति कहे कि मेरे इन कर्मों द्वारा सूर्य प्रसन्न हों ।१५। हे तात ! इसी प्रकार पहले पारण की यह विधि बतायी गई है । हे भीम दूसरे पारण की भी विधि मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ।१६। इसमें मालती के पुष्प, मलयागिरिचंदन, नैवेद्य खीर तथा विजय धूप उनकी सेवा में अर्पित करना बताया गया है ।१७। हे विभो ! ब्राह्मण भोजन तथा स्वयं भोजन करने के अनन्तर मेरे ऊपर रवि प्रसन्न हो ऐसा उनके नाम का कीर्तन करे ।१८। हे वीर !

प्राशयेत्पञ्चगव्यं तु खदिरं दन्तधावने । द्वितीये पारणे वीर विधिरुक्तो मयाधुना ।।१९
तृतीयं पारणं चापि कथ्यमानं निबोध मे । अगस्तिकुसुमैरत्र भास्करं पूजयेद्बुधः ।।२०
समालम्भनमत्रोक्तं श्रीखण्डं कुसुमं तथा । सिह्लको धूप उद्दिष्टो भानोः प्रीतिकरः परः ।।२१
शाल्योदनं तु नैवेद्यं रसालोपरिसंयुतम् । ब्राह्मणानां तु दातव्यं भक्षयेत तथात्मना ।।२२
कुशोदकप्राशनं तु बदर्या दन्तधावनम् । विकर्तनः प्रीयतां मे नाम देवस्य कीर्तयेत् ।।२३
वर्षासु देवदेवस्य पूजा कार्या विधानतः । गन्धपुष्पोपहारैस्तु नानाप्रेक्षणकैस्तथा ।।२४
गोदानैर्भूमिदानैर्वा ब्राह्मणानां च तर्पणैः । इत्थं सम्पूज्य देवेशं देवस्य पुरतः स्थितः ।।२५
कारयेत्परमं पुण्यं धन्यं पुस्तकवाचनम् । वस्त्रैर्गन्धैस्तथा धूपैर्वाचकं पूजयेत्ततः ।।२६
देवस्य पुरतः स्थित्वा ततो मन्त्रमुदीरयेत् । देवदेव जगन्नाथ सर्वरोगार्तिनाशन ।।
ग्रहेश लोकनयन विकर्तन तमोऽपह ।।२७
कृतेयं देवदेवेश जया नामेति सप्तमी । मया तव प्रसादेन धन्या पापहरा शिवा ।।२८
अनेन विधिना वीर यः कुर्यात्सप्तमीमिमाम् । तस्य स्नानादिकं सर्वं भवेच्छतगुणं विभो ।।२९
कृत्वेमां सप्तमीं वीर पुरुषः प्राप्नुयाद्यशः । धनं धान्यं सुवर्णं च पुत्रमायुर्बलं श्रियम् ।।३०
प्राप्येह देवशार्दूल सूर्यलोकं स गच्छति । तस्मादेत्य पुनर्भूमौ राजराजो भवेद्बुधः ।।३१

इसमें पंचगव्य का प्राशन और खैर की दातून भी करनी चाहिए। इस भाँति इस दूसरे पारण के विधान को भी मैंने बता दिया है।१९। अब तीसरे पारण को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! इसके विधान में विद्वानों को अगस्त्य पुष्पों द्वारा सूर्य का पूजन करना बताया गया है। उबटन के लिए श्रीखंड चंदन और पुष्पों को पहले ही बता दिया गया है। एवं सिह्लक धूप, जो सूर्य को अत्यन्त प्रिय है अवश्य समर्पित करना चाहिए।२०-२१। आम के फलों समेत (साली) धान के चावल और नैवेद्य ब्राह्मणों को अर्पित करके स्वयं भी यही भोजन करें।२२। (इसमें) कुशोदक का प्राशन और बैर की लकड़ी की दातून करनी चाहिए। तथा विकर्तन (सूर्य) मेरे ऊपर प्रसन्न हों ऐसा उनके नाम का कीर्तन भी करना चाहिए।२३। इसी भाँति वर्षा काल में देवाधि देव सूर्य की पूजा, विधान द्वारा जिसमें गंध एवं पुष्पोहार तथा भाँति-भाँति की दर्शनीय वस्तुएँ हों, संपादित करके और भूमि के दान एवं ब्राह्मण भोजन कराने के उपरान्त देव (सूर्य) के सम्मुख उपस्थित होकर पुस्तक का वाचन (पाठ कथा) भी कराये जो अत्यन्त पुण्य रूप एवं प्रशंसनीय कार्य हैं। कथा वाचक ब्राह्मण को वस्त्र गंधों एवं धूप द्वारा अवश्य पूजा करनी चाहिए।२४-२६। तदुपरान्त सूर्य के सम्मुख खड़े होकर इस भाँति निवेदन करे कि हे देवाधिदेव ! हे जगन्नाथ ! हे समस्त रोगों के नाशक, हे ग्रहेश, हे लोक तंत्र, तथा हे विकर्तन एवं तमोनाशक ! आप के अनुग्रह द्वारा मैंने इस जया नामक सप्तमी के व्रतानुष्ठान को जो प्रशंसनीय पापहारी एवं कल्याणरूप है, समाप्त किया है।२७-२८। हे वीर ! इस प्रकार इस सप्तमी के व्रतानुष्ठान को जो इस विधान द्वारा समाप्त करते हैं, उनके द्वारा किये गये स्नान आदि सभी कर्म सौगुने अधिक फल प्रदान करते हैं।२९। हे वीर ! इस भाँति विधान पूर्वक इस सप्तमी के व्रतानुष्ठान की समाप्ति करने से पुरुष को यश, धन, धान्य, सुवर्ण, पुत्र, आयु, बल और लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति होती है और पुनः यहाँ आने पर वह राजाओं का

इत्येषा कथिता वीर जया नामेति सप्तमी । कृता स्मृता श्रुता सा तु हेलिलोकप्रदायिनी ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे जयानामसप्तमीमाहात्म्यवर्णनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ।९६।

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

जयन्तीकल्पवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

माघस्य शुक्लपक्षे तु सप्तमी या त्रिलोचन । जयन्ती नाम सा प्रोक्ता पुण्या पापहरा शिवा ॥१
सोपोष्या येन विधिना शृणु तं पार्वतीप्रिय । पारणानि तु चत्वारि कथितान्यत्र पण्डितैः ॥२
पञ्चम्यामेकभक्तं तु षष्ठ्यां नक्तं प्रकीर्तितम् । उपवासस्तु सप्तम्यामष्टम्यां पारणं भवेत् ॥३
माघे च फाल्गुने मासि तथा चैत्रे च सुव्रत । बकपुष्पाणि रम्याणि कुङ्कुमं च विलेपनम् ॥४
नैवेद्यं मोदकांश्चात्र धूप आज्यमुदाहृतः । प्राशनं पञ्चगव्यं तु पवित्रीकरणं परम् ॥५
मोदकैर्भोजयेद्विप्रान्यथाशक्त्या गणाधिप । शाल्योदनं च भूतेश दद्याच्छक्त्या द्विजेषु वै ॥६
इत्थं सम्पूजयेद्यस्तु भास्करं लोकपूजितम् । सर्वस्मिन्पारणे वीर सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥७

राजा (महाराज) होता है।३०-३१। हे वीर ! इस प्रकार जया नामक सप्तमी के महत्त्व को जिसके आचरण स्मरण एवं कथा पारायण करने या सुनने से सूर्य लोक की प्राप्ति होती है, मैंने तुम्हें बता दिया।३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्रह्मचर्य के सप्तमी कल्प में जया नाम सप्तमी माहात्म्य वर्णन नामक छानबेंवाँ अध्याय समाप्त ।९६।

अध्याय ९७

जयंती माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे त्रिलोचन ! माघमास के शुक्लपक्ष की सप्तमी का, जो पुण्य रूप पाप का नाश करने वाली एवं कल्याण रूप है, जयंती नाम बताया गया है ।१। हे पार्वती प्रिय ! जिस विधान द्वारा जिसका उपवास किया जाता है, उसे सुनो (मैं बता रहा हूँ) ! इसमें सप्तमी के व्रतानुष्ठान के पंडितों ने चार पारण बताये हैं ।२। इसके अनुष्ठान-विधान में इस प्रकार बताया गया है कि पंचमी में एक भुक्त षष्ठी में नक्त व्रत करना चाहिए सप्तमी में उपवास तथा अष्टमी में पारण करना चाहिए ।३। हे सुव्रत ! उसी प्रकार माघ, फाल्गुन एवं चैत्र के मास में सुन्दर बक पुष्प, कुंकुम के लेपन, मोदक का नैवद्य एवं घी की धूप उन्हें अर्पित करें ।४। अत्यन्त पवित्र करके पंच गव्य का प्राशन करना चाहिए ।५। हे गणाधिप ! हे भूतेश ! अनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मणों को मोदक समेत भात का भोजन भी अर्पित करें ।६। हे वीर ! इस प्रकार जो लोकपूज्य भगवान् भास्कर की उपासना करता है, उसे सभी पारणों में अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।७

द्वितीये पारणे पूज्य राजसूयफलं लभेत् । वैशाखाषाढज्येष्ठेषु श्रावणे मासि सुव्रत ।।
पूजार्थमथ भानो वै शतपत्राणि सुव्रत ॥८
श्वेतं च चन्दनं भीम धूपो गुग्गुलुरुच्यते । नैवेद्यं गुडपूपास्तु प्राशनं गोमयस्य तु ।।
भोजने वापि विप्राणां गूडपूपाः प्रकीर्तिताः ॥९
द्वितीयमिदमाख्यातं पारणं पापनाशनम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलदं भास्करप्रियम् ॥१०
तृतीयं शृणु देवस्य पूजार्थे भास्करस्य तु । मासि भाद्रपदे वीर तथा चाश्वयुजे विभो ॥११
कार्त्तिके चापि मासे तु रक्तचन्दनमादिशेत् । मालतीकुसुमानीह धूपो विजय उच्यते ॥१२
नैवेद्यं घृतपूपास्तु भोजनं च द्विजन्मनाम् । कुशोदकप्राशनं तु कायशुद्धिकरं परम् ॥१३
तृतीयमपि चाख्यातं पारणं पापनाशनम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलदं भास्करप्रियम् ।।१४
चतुर्थमपि ते वच्मि पारणं पापनाशनम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलदं भास्करप्रियम् ॥१५
तदद्य देवशार्दूल पारणं श्रेयसे शृणु । मासि मार्गशिरे वीर पौषे मासि तथा शिव ॥१६
माघे च देवशार्दूल शृणु पुण्यान्यशेषतः । करवीराणि रक्तानि तथा रक्तं च चन्दनम् ।१७
अमृताख्यस्तथा धूपो नैवेद्यं पायसं परम् । आर्जनीयं तथा तक्रं प्राशनं परमं स्मृतम् ॥१८
अगरुं चन्दनं मुस्तं सिह्लकं त्र्यूषणं तथा । समभागैस्तु कर्तव्यमिदं चामृतमुच्यते ॥१९

और दूसरे पारण में राजसूय के फल की प्राप्ति होती है । हे पूज्य सुव्रत ! इसी भाँति वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ तथा सावन के मासों में सूर्य की पूजा के निमित्त कमल पुष्प, श्वेत चन्दन, गुग्गुल की धूप और नैवेद्य में गुड़ के मालपूए उन्हें अर्पित करते हुए गोमय प्राशन करना बताया गया है । उसी प्रकार ब्राह्मणों को तृप्त भोजन कराने के लिए प्रधान मालपूआ ही कहा गया है ।८-९। इस प्रकार इस दूसरे पारण के विधान को जो पाप नाशक सूर्य प्रिय एवं राजसूय और अश्वमेध के फल प्रदान करता है मैंने तुम्हें बता दिया ।१०। पुनः अब सूर्य की पूजा के लिए तीसरे पारण को सुनो ! बता रहा हूँ । हे विभो ! भादों, आश्विन तथा कार्तिक के मास में रक्त चंदन मालती पुष्प एवं विजय के अर्पण करने के द्वारा पूजा करनी चाहिए उपरान्त नैवेद्य और घी पूर्ण मालपूआ को अर्पित करके वही ब्राह्मणों को भी भोजन कराये । अनुष्ठान में इसके शरीर शुद्धि के लिए कुशोदक का उत्तम प्राशन करना अत्यन्त आवश्यक होता है ।११-१३। इस प्रकार यह तीसरा पारण भी जो पापनाशक एवं राजसूय तथा अश्वमेध के फल प्रदान करता है, बता दिया।१४

उसी भाँति चौथे पारण को भी जो पापनाशक राजसूय और अश्वमेध के फल प्रदान करने वाला एवं सूर्य प्रिय हैं, मैं तुम्हें बता रहा हूँ ।१५। हे देव शार्दूल ! अतः आत्म कल्याण के लिऐ इसे विशेष ध्यान से सुनो ! हे वीर शिव मार्गशीर्ष (अगहन) पौष और माघ मास में प्राप्त होने वाले समस्त पुष्पों को भी (बता रहा हूँ) सुनो ! इस अनुष्ठान-विधि में करवीर, रक्तचंदन, अमृत धूप, नैवेद्य, खीर एवं तक्र (मट्ठे) का उत्तम प्राशन करना बताया गया है।१६-१८। जिससे सूर्य देव परम मुदित होते हैं। अगुरु, चन्दन, (मुस्ता, सिह्लक तथा त्र्यूषण सोंठ मिर्च एवं पीपरी) इन्हीं उपरोक्त सभी वस्तुओं के समभाग को एकत्र करने

नामानि कथितान्यत्र भास्करस्य महात्मनः । चित्रभानुस्तथा भानुरादित्यो भास्करस्तथा ।।२०
प्रीयतामिति सर्वस्मिन्पारणे विधिमादिशेत् । अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्पूजां विभावसोः ।।२१
तस्यां तिथौ देवदेव स याति परमं पदम् । कृत्वैवं सप्तमीं भीम सर्वकामानवाप्नुते ।।२२
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धनार्थी लभते धनम् । सरोगो मुच्यते रोगैः शुभमाप्नोति पुष्कलम् ।।२३
पूर्णे संवत्सरे भीम कार्या पूजा दिवाकरे । गन्धपुष्पोपहारैस्तु ब्राह्मणानां च तर्पणैः ।।
नानाविधैः प्रेक्षणकैः पूजया वाचकस्य तु ।।२४
इत्थं सम्पूज्य देवेशं ब्राह्मणांश्चाभिपूज्य च । वाचकं च द्विजं पूज्य इदं वाक्यमुदीरयेत् ।।२५
धर्मकार्येषु मे देव अर्थकार्येषु नित्यशः । कामकार्येषु सर्वेषु जयो भवतु सर्वदा ।।२६
ततो विसर्जयेद्विप्रान्वाचकं तु द्विजोत्तमम् । इत्थं कुर्यादिदं यस्तु स जयं प्राप्नुयात्फलम् ।।
सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्य्यलोकं स गच्छति ।।२७
विमानवरमारुढः कञ्जजोद्भवमुत्तमम् । तेजसा रविसंकाशः प्रभया पतगोपमः ।।२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे जयन्तीकल्पवर्णनं
नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ।९७।

को अमृत धूप कहा गया है ।१९। पश्चात् महात्मा सूर्य के चित्रभानु, भानु, आदित्य तथा भास्कर नामों के उच्चारण पूर्वक आप मुझ पर सदैव प्रसन्न रहें ऐसी अभ्यर्थना सभी पारणों में करनी चाहिए । हे देवाधिदेव ! इस प्रकार विधान पूर्वक जो इस तिथि में सूर्य की पूजा करता है, उसे उत्तम पद की प्राप्ति होती है । हे भीम ! इस प्रकार सप्तमी के व्रत करने से सभी कामनाएं सफल होती हैं ।२०-२२। इस भाँति पुत्रार्थी पुत्र, धनेच्छुक धन एवं रोगी रोगमुक्ति समेत अति कल्याण की प्राप्ति करता है ।२३

हे भीम ! इस भाँति वर्ष की समाप्ति तक गन्ध एवं पुष्पोहार द्वारा सूर्य की पूजा करते हुए भाँति भाँति के उत्तम भक्ष्य पदार्थों के सुतृप्त ब्राह्मण भोजन कराये तथा भाँति-भाँति की दर्शनीय वस्तुएँ अर्पित करते हुए वाचक की भी अवश्य पूजा करे ।२४। इस प्रकार देवेश (सूर्य) ब्राह्मणों तथा वाचक ब्राह्मण की पूजा सुसम्पन्न करके विनम्र होकर ऐसी अभ्यर्थना करे ।२५। हे देव ! आप के अनुग्रह से धार्मिक, आर्थिक कार्यों एवं कामनाओं की सफलता में सदैव मेरी विजय होती रहे ।२६। हे द्विजश्रेष्ठ ! पश्चात् ब्राह्मणों समेत वाचक ब्राह्मण के विसर्जन करे। इस प्रकार जो सप्तमी के अनुष्ठान को सुसम्पन्न (सप्तमी विधान) करता है उसे ऐसे सुन्दर विमान पर जो लक्ष्मीसंपन्न रवि के समान तेज एवं उन्हीं की भाँति प्रभा पूर्ण हो बैठकर जप फल की प्राप्ति पूर्वक समस्त पापों से मुक्ति एवं सूर्य लोक की प्राप्ति करता है।२७-२८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में जयन्ती कल्प वर्णन
नामक सत्तानबेंवा अध्याय समाप्त ।९७।

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

अपराजितावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मासि भाद्रपदे शुक्ला सप्तमी या गणाधिप । अपराजितेति विख्याता महापातकनाशिनी ॥१
चतुर्थ्यामेकभक्तं तु पञ्चम्यां नक्तमादिशेत् । उपवासं तथा षष्ठ्यां सप्तम्यां पारणं स्मृतम् ॥२॥
पारणान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभिः । पुष्पाणि करवीरस्य तथा रक्तं च चन्दनम् ॥३
धूपक्रिया गुग्गुलेन नैवेद्यं गुडपूपकाः । भाद्रपदादिमासेषु विधिरेष प्रकीर्तितः ॥४
श्वेतानि भीमपुष्पाणि तथा श्वेतं च चन्दनम्। धूपमाज्यमिहाख्यातं नैवेद्यं पायसं रवेः ॥५
मार्गशीर्षादिमासेषु विधिरेष प्रकीर्तितः । ततोऽगस्त्यस्य पुष्पाणि कुङ्कुमं च विलेपनम् ॥६
धूपार्थं सिह्लकं प्रोक्तमथ वा रविवर्णकम् । शाल्योदनं च नैवेद्यं सरसं फाल्गुनादिषु ॥७
रक्तोत्पलानि भूतेश सागुरु चन्दनं तथा । अनन्तो धूप उद्दिष्टो नैवेद्यं खण्डपूपकाः ॥८
श्रीखण्डं ग्रन्थिसहितमगुरुः सिह्लकं तथा । मुस्ता तथेन्द्रं भूतेश शर्करा गृह्यते त्र्यहम् ॥९
इत्येष धूपोऽनन्तस्तु कथितो देवसत्तम । ज्येष्ठादिमासेषु तथा विधिरुक्तो मनीषिभिः ॥१०

अध्याय ९८

अपराजिता माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे गणाधिप ! भादों मास की शुक्ल सप्तमी जो महान् पातकों का नाश करती है, अपराजिता नाम से विराजमान है ।१। उसके व्रतानुष्ठान में चतुर्थी में एक भुक्त, पंचमी में नक्त व्रत, षष्ठी में उपवास करके सप्तमी में पारण करना इस प्रकार का विधान बताया गया है ।२। विद्वानों ने इस के अनुष्ठान करने में चार पारण बताये हैं । पुनः करवीर के पुष्प, रक्त चंदन, गुग्गुल की धूप, नैवेद्य, गुड़ का मालपूआ अर्पित करते हुए भादों आदि मासों में भी इन्हीं वस्तुओं को अर्पित करे ।३-४। हे भीम इस प्रकार श्वेत पुष्प, श्वेत चंदन, घी पूर्ण धूप, खीर का नैवेद्य सूर्य के लिए समर्पित करना मार्गशीर्ष आदि मासों में बताया गया है जिसे दूसरा पारण कहते हैं । इस भाँति अगस्त्य के पुष्प, कुंकुम का लेपन, सिह्लकी अथवा लाल वर्ण की धूप तथा चावल के भात समेत मधुर नैवेद्य इन्हें सूर्य के लिए फाल्गुन आदि मासों के व्रत-विधान में सादर समर्पित करना बताया गया है जिसे तीसरे पारण का विधान बताया गया है ।५-७। हे भूतेश ! लाल कमल, अगुरु, चन्दन, अनंत नामक धूप, खांड के मालपूए का नैवेद्य चौथे पारण में जो ज्येष्ठ आदिमासों के व्रतानुष्ठान में सुसम्पन्न किया जाता है, अर्पित करना चाहिए । श्रीखंड गांठ समेत अगुरु, सिह्लक मुस्ता (मोथा) इन्द्र और शक्कर इन्हीं पदार्थों की बनी हुई धूप को अनन्त धूप कहा जाता है जिसकी तैयारी में तीन दिन लगते हैं ।८-१०

शृणु नामानि देवस्य प्राशनानि च सुव्रत । सुधांशुरर्यमा चैव सविता त्रिपुरान्तकः ॥११
पारणेष्वेव सर्वेषु प्रीयतामिति कीर्तयेत् । गोमूत्रं पञ्चगव्यं तु घृतं चोष्णं पयो दधि ॥१२
यस्त्वेतां सप्तमीं कुर्यादनेन विधिना नरः । अपराजितो भवेत्सोऽसौ सदा शत्रुभिराहवे ॥१३
जित्वा शत्रुं लभेतापि त्रिवर्गं नात्र संशयः । त्रिवर्गमथसम्प्राप्य स्वर्भानोः पुरमश्नुते ॥१४
ततः पूर्णेषु मासेषु पूजयेच्छक्तितः खगम् । गन्धपुष्पोपहारैस्तु पुराणश्रवणेन च ॥१५
अश्वदानेन च विभोर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः । वाचकं पूजयित्वा च भास्करस्य प्रियं सदा ॥१६
भास्कराय ध्वजान्दद्यान्नानारत्नविभूषितान् । य इत्थं कुरुते वीर सप्तमीं यत्नतः सदा ॥१७
स पराजित्य वै शत्रुं याति हंससलोकताम् ॥१८
शुक्लाश्वोद्भवयानेन आपगेन पताकिना । आपगाधिपसंकाश आपगानुचरो भवेत् ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे अपराजितावर्णनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ।९८।

हे सुव्रत ! अब सूर्य के नाम एवं प्राशन को बता रहा हूँ । सुनो ! सुधांशु, अर्यमा, सविता एवं त्रिपुरान्तक, सूर्य मुझ पर सदैव प्रसन्न रहें इस भाँति की विनम्र प्रार्थना सभी पारणों में करनी चाहिए । गाय के मूत्र, गरम दूध (तुरन्त का दुहा), दही, घी, तथा गोमय मिलाकर पंचगव्य कहा जाता है । इस व्रतानुष्ठान में इसी का प्राशन करना बताया गया है ।११-१२। इस प्रकार जो पुरुष इस सप्तमी के व्रत-विधान को सुसम्पन्न करता है, वह युद्ध स्थल में शत्रुओं द्वारा सदैव अपराजित ही रहता है ।१३। पुनः शत्रु विजय होने के पश्चात् त्रिवर्ग (धर्म), अर्थ एवं काम की भी सफलता उसे निश्चय प्राप्त होती है और इसके अनन्तर उसे सूर्य लोक भी प्राप्त होता है ।१४

इस प्रकार व्रतानुष्ठान करते हुए पूर्ण वर्ष की समाप्तिमें शक्त्यनुसार सूर्य की पूजा गंध पुष्पोपहार तथा पुराण श्रवण द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए ।१५। हे विभो ! पुनः उसी प्रकार अश्वदान, ब्राह्मण भोजन तथा सूर्य प्रिय उस वाचक की पूजा करने के उपरांत भाँति-भाँति के रत्नों से विभूषित ध्वजाएँ सूर्य के लिए सादर समर्पित करनी चाहिए । हे वीर ! इस प्रकार जो सदैव सप्तमी के व्रत विधान अनुष्ठान करने में प्रयत्नशील रहता है, उसे शत्रु विजय की प्राप्ति पूर्वक सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है ।१६-१८। ऐसा व्यक्ति श्वेत रंग के घोड़े जुते हुए सवारी पर बैठकर जिसमें श्वेत वर्ण की पताकाएँ लगी हों, वरुण की भाँति धवल कान्ति प्राप्त कर वरुण का अनुचर होता है ।१९

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में अपराजिता वर्णन नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९८।

अथैकोनशततमोऽध्यायः

महाजयाकल्पवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदा संक्रमते रविः । महाजया तदा सा वै सप्तमी भास्करप्रिया ॥१
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवाभिपूजनम् । सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तं भास्करस्य वचो यथा ॥२
यस्तस्यां मानवो भक्त्या घृतेन स्नापयेद्रविम् । सोऽश्वमेधफलं प्राप्य स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥३
पयसा स्नापयेद्यस्तु भास्करं भक्तिमान्नरः । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो याति सूर्यसलोकताम् ॥४
कार्पूरेण विमानेन किङ्किणीजालमालिनो । तेजसा हरिसंकाशः कान्त्या सूर्यसमस्तथा ॥५
स्थित्वा तत्र चिरं कालं राजा भवति चाञ्जसा । महाजयैषा कथिता सप्तमी त्रिपुरान्तक ॥६
तामुपोष्य नरो भक्त्या भवते सूर्यलोकगः । ततो याति परं ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचति ॥७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे महाजयाकल्पवर्णनं नामैकोनशततमोऽध्यायः ।९९।

अध्याय ९९

महाजया कल्प का वर्णन

ब्रह्मा बोले—शुक्ल पक्ष की सप्तमी में (सूर्य की) संक्रान्ति प्राप्त होने पर उस सूर्यप्रिया सप्तमी को 'महजया' नाम की बताया गया है ।१। इसी लिए सूर्य के कथनानुसार उसमें किये गये स्नान, दान, जप, हवन एवं पितरों तथा देवताओं के पूजन आदि ये सभी कोटि गुने अधिक फल प्रदान करते हैं ।२। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक इस तिथि में घी द्वारा सूर्य को स्नान कराता है, उसे अश्वमेध के फल की प्राप्ति पूर्वक स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है ।३। जो कोई भक्त मनुष्य दूध द्वारा सूर्य को स्नान कराता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति करता है ।४। वहाँ कपूर निर्मित विमान पर जिसमें छोटी छोटी घंटियों का जाल सा लगा रहता है, बैठकर सूर्य की भाँति तेजस्वी एवं कान्तिमान् होकर चिरकाल तक वहाँ निवास करता है । पश्चात् यहाँ आकर तेजस्वी राजा होता है । हे त्रिपुरांतक इस महाजया नामक सप्तमी को विधान द्वारा सुसम्पन्न करने पर मनुष्य को सूर्य लोक की प्राप्ति पूर्वक उस ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है जहाँ पहुँच कर किसी भाँति से चिंतित नहीं होना पड़ता है ।५-७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में महाजया कल्पवर्णन नामक निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९९।

अथ शततमोऽध्यायः

नन्दानामसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

या तु मार्गशिरे मासि शुक्लपक्षे तु सप्तमी । नन्दा सा कथिता वीर सर्वानन्दकरी शुभा ।।१
पञ्चम्यामेकभक्तं तु षष्ठ्यां नक्तं प्रकीर्तितम् । सप्तम्यामुपवासं तु कीर्तयन्ति मनीषिणः ।।२
पारणान्यत्र वै त्रीणि शंसन्तीह मनीषिणः । मालतीकुसुमानीह सुगन्धं चन्दनं तथा ।।३
कर्पूरागरुसम्मिश्रं धूपं चात्र विनिर्दिशेत् । दध्योदनं सखण्डं च नैवेद्यं भास्करप्रियम् ।।४
तमेव दद्याद्विप्रेभ्योऽश्नीयाच्च तदनु स्वयम् । धूपार्थं भास्करस्यैष प्रथमे पारणे विधिः ।।५
पलाशपुष्पाणि विभो धूपो यः शक्य एव च । कर्पूरं चन्दनं कुष्ठमगुरुः सिह्लकं तथा ।।६
सग्रन्थि वृषणं भीम कुंकुमं गृञ्जनं तथा । हरीतकी तथा भीम एष यक्षक उच्यते ।।७
धूपः प्रबोध आदिष्टो नैवेद्यं खण्डमण्डकाः । कृष्णागरुः सितं कञ्जं बालकं वृषणं तथा ।।८
चंदनं तगरो मुस्ता प्रबोधशर्करान्विता । भोजयेद्ब्राह्मणांश्चापि खण्डखाद्यैर्गणाधिप ।।
निम्बपत्रं तु सम्प्राश्य ततो भुञ्जीत वाग्यतः ।।९

अध्याय १००

नंदा नामक सप्तमी का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे वीर ! मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को सभी भाँति के आनन्द एवं कल्याण दायिनी होने के नाते 'नंदा सप्तमी' कहा जाता है ।१। इसके व्रत विधान में पंचमी में एक भुक्त (एकाहार), षष्ठी में नक्त व्रत (रात में भोजन) और सप्तमी में उपवास करना विद्वानों ने बताया है ।२। एवं विद्वानों ने इसमें तीन पारण करने के विधान भी बताये हैं । इसके अनुष्ठान में मालती पुष्प, सुगन्ध चन्दन, कपूर, अगुरु मिश्रित धूप (सूर्य के लिए) सादर समर्पित करनी चाहिए । पश्चात् दही भात और खांड समेत नैवेद्य जो सूर्य को अत्यन्त प्रिय है, उन्हें सादर समर्पित कर वहीं ब्राह्मणों को भी तृप्त भोजन कराने के उपरांत स्वयं भी भोजन करना चाहिए । इस प्रकार सूर्य के प्रथम पारण का यह विधान बताया गया है ।३-५

हे विभो (दूसरे पारण में) पलाश के पुष्प शक्त्यनुसार प्राप्त यक्षक धूप, कपूर, चन्दन, कूट, गुग्गुल, सिह्लक, ग्रन्थिपर्णी, कस्तूरी, गृञ्जन तथा हरीतकी को जो (हर्रे) से मिलकर बनता है, सादर समर्पित करना चाहिए ।६-७

उपरान्त खांड द्वारा बनाये गये नैवेद्य तथा प्रबोध नामक धूप, जो काले, अगुरु, सितकंज (सिद्धक) बाला कस्तूरी, चन्दन, तगर एवं मुस्ता (मोथा) से मिल कर बनता है सादर समर्पित करना चाहिए । हे गणाधिप खांड मिश्रित मधुर भोजन ब्राह्मणों को अर्पित करने के पश्चात् स्वयं भी मौन

पारणस्य द्वितीयस्य विधिरेष प्रकीर्तितः ॥१०
नीलोत्पलानि शुभ्राणि धूपं गौग्गुलमाहरेत् । नैवेद्यं पायसं देयं[1] प्रीतये भास्करस्य तु ॥११
विलेपनं चन्दनं तु प्राशने विधिरुच्यते । तृतीयस्यापि ते वीर कथितो विधिरुत्तमः ॥१२
शृणु नामानि देवस्य पावनानि नृणां सदा । विष्णुर्भगस्तथा धाता प्रीयतामुदि्गरेच्च वै ॥१३
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्प्रयतमानसः । सकामानिह सम्प्राप्य नन्दते शाश्वती समाः ॥१४
ततः सूर्यसदो गत्वा नन्दते नन्दवर्धन । एषा तु नन्दजननी तवाख्याता मया शिव ॥१५
यामुपोष्य ततो भुक्त्वा नन्दते हंसमाप्य वै ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे नन्दानामसप्तमीवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः ।१००।

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

भद्राकल्पवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां नक्षत्रं सवितुर्भवेत् । यदा प्रथमता चैव तदा वै भद्रतां व्रजेत् ॥१

होकर भोजन करें इसमें नीम के फल के पत्ते का प्राशन करना बताया गया है । इस भाँति पारण का यह विधान समाप्त किया गाया है ।८-१०

इसी भाँति स्वच्छनीलकमल, गुग्गुल की धूप, खीर का नैवेद्य लेपन के लिए चन्दन, ये सूर्य के लिए अत्यन्त प्रिय वस्तुएँ हैं अतः उन्हें अवश्य समर्पित करना चाहिए । हे वीर ! इस रीति से तीसरे पारण का भी विधान बता दिया गया है ।११-१२

अब सूर्य के उन नामों को, जो मनुष्यों के लिए सदैव पवित्र कारक हैं बता रहा हूँ. सुनो ! विष्णु, एवं धाता सदैव प्रसन्न रहें इस प्रकार नामोच्चारण पूर्वक अभ्यर्थन करे ।१३। हे नन्दवर्धन ! इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक जो इस विधान द्वारा सप्तमी व्रत के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करता है वह कामनाओं की सफलता पूर्वक अनेकों वर्ष आनन्द मग्न जीवन व्यतीत करता है ।१४। पश्चात् वह सूर्य लोक में जाकर आनन्द का अनुभव भी प्राप्त करता है । हे शिव ! इस भाँति आनन्द प्रदान करने वाली इस (सप्तमी) को जिसके अनुष्ठान द्वारा मनुष्य सूर्य की प्राप्ति करके आनंदित होता है, मैंने तुम्हें सुना दिया ।१५-१६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में नंदा नाम सप्तमी वर्णन नामक सौवाँ अध्याय समाप्त ।१००।

अध्याय १०१

भद्रा कल्प का वर्णन

ब्रह्मा बोले—शुक्लपक्ष की सप्तमी में हस्त नक्षत्र के समागम से उस सप्तमी का भद्रा नाम बताया

---

१. मुख्यम् ।

स्नपनं तत्र देवस्य घृतेन कथितं बुधैः । क्षीरेण च तथा वीर पुनरिक्षुरसेन च ।।२
स्नापयित्वा तु देवेशं चन्दनेन विलेपयेत् । दग्ध्वा तु गुग्गुलं तस्य दद्याद्भद्रं तथाग्रतः ।।३
गोधूमचूर्णं निवपन्विमलं शशिसन्निभम् । सवज्रं सगुडं चैव रक्तपुष्पोपशोभितम् ।।४
यदस्य शृङ्गमीशानं तत्र वै मौक्तिकं न्यसेत् । यदाग्नेयं तत्र माणिक्यं न्यसेद्वा लोहितं मणिम् ।।५
नैर्ऋत्ये मकरं दद्याद्वायव्ये पद्मरागिणम् । गाङ्गेयमन्ततस्तस्य स्वशक्त्या विन्यसेद्बुधः ।।६
चतुर्थ्यामेकभक्तं तु पञ्चम्यां नक्तमादिशेत् । षष्ठ्यामयाचितं प्रोक्तं उपवासो ह्यतः परः ।।७
पाषण्डिनो विकर्मस्थान्बैडालव्रतिकान्त्यजान् । सप्तम्यां पालयेत्प्राज्ञो दिवा स्वापं विवर्जयेत् ।।८
अनेन विधिना यस्तु कुर्याद्वै भद्रसप्तमीम् । तस्मै भद्राणि सर्वाणि यच्छन्ति ऋभवः सदा ।।९
भद्रं ददाति यस्त्वस्यां भद्रस्तस्य सुतो भवेत् । भद्रमासाद्य भूतेश सदा भद्रेण तिष्ठति ।।१०

दिण्डिरुवाच

कोऽयं भद्र इति प्रोक्तः कथं कार्यं प्रभूषणम् । दत्त्वा च किं फलं विद्याद्विधिना केन दीयते ।।११

ब्रह्मोवाच

व्योम भद्रमिति प्रोक्तं देवचिह्नमनूपमम् । यद्धृत्वेह नरः सूर्यं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।।१२

गया है (कल्याण प्रदान करने वालों में) वह प्रथम भी है ।१। हे वीर ! विद्वानों ने उसके अनुष्ठान में सूर्य के स्नान के लिए भी बताया है तथा दूध और ईख के रस से भी स्नान कराने का विधान है ।२। पुनः सूर्य का स्नान कराकर उन्हें चन्दन का लेप अर्पित करते हुए गुग्गुल की धूप भी समर्पित करना चाहिए। अनन्तर गेहूँ के चूर्ण आटे द्वारा उनकी विमल भद्र मूर्ति बनाकर जो चन्दन की भाँति धवल कान्तिपूर्ण हो, उसे वज्र पुष्प गुड एवं रक्तवर्ण के पुष्पों से सुशोभित कर पुनः उस मूर्ति में चार सीगों की रचना करके उसके ईशान कोण वाली सींग में मोती, आग्नेय वाले में हीरा अथवा लाल रंग की मणि, नैऋत्य वाले में मकर और वायव्य वाले में पद्मराग मणि सुसज्जित कर शेष अंगों को भी सुवर्ण से विभूषित करे ।३-६। तथा चतुर्थी में एक भक्त, पञ्चमी में नक्त व्रत षष्ठी में अयाचित (अन्न का) भोजन करने के पश्चात् सप्तमी में उपवास किया जाता है। विद्वानों को चाहिए कि (उस दिन) पाखण्डी, दुराचारी और विडाल वृत्तिक (बिल्लैया भक्ति करने वाले) के त्यागपूर्वक दिन में शयन न करें इस प्रकार इस विधान द्वारा जो इस सप्तमी के व्रतानुष्ठान की समाप्ति करता है उसे देव (सूर्य) सदैव कल्याण प्रदान करते हैं ।७-९। तथा जो इसमें उनकी भद्र मूर्ति का निर्माण कर अर्पित करता है उसे भद्र (कल्याणप्रद) पुत्र की भी प्राप्ति होती है। हे भूतेश ! इस भाँति वह भद्र की प्राप्ति कर सदैव भद्र रूप ही रहता है ।१०

दिंडि ने कहा—जिस भद्र को आपने बताया है वह कौन भद्र है, उसे अलंकृत करने के लिए कौन आभूषण होने चाहिए एवं किस विधान द्वारा कौन फल अर्पित करना चाहिए ? बताने की कृपा करें ।११

ब्रह्मा बोले—देवताओं के अनुपम लक्षणों से विभूषित होने के नाते उसे 'व्योम भद्र' कहा गया है एवं उसी सूर्य की प्रतिभा का ध्यान कर मनुष्य सभी पातकों से मुक्त हो जाते हैं ।१२। चावल के चूर्ण

शालिपिण्डमयं कार्यं चतुष्कोणमनूपमम् । गव्येन सर्पिषा युक्तं खण्डशर्करयान्वितम् ।।१३
चातुर्जातकपूर्णं तु द्राक्षाभिश्च विशेषतः । नालिकेरफलैश्चैव सुगन्धं च गणाधिप ।।१४
मध्येन्द्रनीलं भद्रस्य न्यसेत्प्राज्ञः स्वशक्तितः । पुष्परागं मरकतं पद्मरागं तथैव च ।।१५
अनौपम्यं च माणिक्यं क्रमात्कोणेषु विन्यसेत् । वाचकायाथ वा दद्यादथ वा भोजके स्वयम् ।।१६
अनेन विधिना यस्तु कृत्वा भद्रं प्रयच्छति । स हि भद्राणि सम्प्राप्य गच्छेद्गोपतिमन्दिरम् ।।१७
ब्रह्मलोकं ततो गच्छेद्यानारूढो न संशयः । तेजसा गोजसंकाशः कांत्या गोजसमस्तथा ।।१८
प्रभया गोपतेस्तुल्य ऊर्जसा गोपरस्य च । तस्मादेत्य पुनर्भूमौ गोपतिः स्यान्न संशयः ।।
प्रसादाद्गोपतेर्वीर सर्वज्ञाधिपपूजितः ।।१९
इत्येषा कथिता भीम भद्रा नामेति सप्तमी । यामुपोष्य नरो भीम ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।।२०
शृण्वन्ति ये पठन्तीह कुर्वन्ति च गणाधिप । ते सर्वे भद्रमासाद्य यान्ति तद्ब्रह्म शाश्वतम् ।।२१

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्तवान्पुरा ब्रह्मा दिण्डिने सप्तमीव्रतम् । मयाप्युक्तं तव विभो यथाज्ञातं यथाश्रुतम् ।।२२
गृहीत्वा सप्तमीकल्पं मानवो यस्तु भूतले । त्यजेत्कामाद्भयाद्वापि स ज्ञेयः पतितोऽबुधः ।।२३
तस्माद्धारय तद्वीर न त्याज्यं सप्तमीव्रतम् । त्यजमानो भवेद्वीर आरूढपतितो नरः ।।२४

(आटे) द्वारा चार कोने वाली सुन्दर भद्र मूर्ति जिसमें गाय के घी, सफेद शक्कर चातुर्जातक (दाल चीनी, इलायची, तेज एवं नागकेसर) द्राक्षा (मुनक्का) तथा नारियल के फल लगे हों, सुगंध पूर्ण बनाये उस भद्र मूर्ति के मध्य भाग में अपनी शक्ति के अनुसार इन्द्रनील मणि पुष्प राग, मरकत, पद्मराग तथा हीरे को क्रमशः कोने की सीगों में सुसज्जित करके पश्चात् उसे वाचक अथवा भोजक ब्राह्मण को सादर अर्पित कर दें ।१३-१६। इस प्रकार जो भद्र की रचना करके उसे अर्पित करता है वह कल्याणों की प्राप्ति पूर्वक सूर्य के मन्दिर (लोक) की प्राप्ति करता है ।१७। तदुपरांत सूर्य की भाँति, कांति, प्रभा एवं बल प्राप्त करते हुए वह सवारी पर बैठकर ब्रह्म लोक में निश्चय सुखानुभव करता है । हे वीर ! पुनः कभी यहां आकर सूर्य के अनुग्रह वश विद्वान् राजाओं का पूज्य पृथिवी पति (राजा) होता है । हे भीम ! इस प्रकार मैंने भद्रा नामक सप्तमी की व्याख्या सुना दी जिसमें उपवास आदि रहकर मनुष्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है ।१८-२०

हे गणाधिप ! इस भाँति इसके सुनने, पढ़ने एवं अनुष्ठान करने वाले लोग भद्र की प्राप्ति पूर्वक शाश्वत (अविनाशी) ब्रह्म की प्राप्ति करते है ।२१

सुमन्तु ने कहा—इस प्रकार ब्रह्मा ने सप्तमी व्रत के विधान को दिंडी से बताया था । हे विभो ! मैंने भी जिस भाँति सुनकर उसकी जानकारी रखता था तुम्हें बता दिया।२२। इस भाँति इस पृथ्वी में जो मनुष्य काम एवं भयवश सप्तमी कल्प का त्याग करते हैं उन्हें पतित एवं अज्ञानी बताया गया है।२३। हे वीर ! इसलिए इस सप्तमी व्रत के अनुष्ठान को सदैव करना चाहिए, कभी भी उसका त्याग न होने पाये क्योंकि त्याग करने से मनुष्य महान् पतित हो जाता है।२४। इस भाँति जो कोई सप्तमी कल्प के विधानों

श्रावयेद्यस्तु भक्त्या च सप्तमीकल्पमादितः । सोऽश्वमेधफलं प्राप्य ततो याति परं पदम् ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे भद्राकल्पवर्णनं
नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ।१०१।

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रपूजाविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एवं सा देवदेवस्य सप्तमी भास्करस्य तु । यथा बहूनां भार्याणां भर्तुः काचित्प्रिया भवेत् ॥१
सर्वाश्च तिथयो ह्यस्य प्रियाः सूर्यस्य भारत । तस्मादस्यां नरेणेह पूजनीयो दिवाकरः ॥२

शतानीक उवाच

तिथीनामधिपः सूर्यः सर्वासां कथितो यदि । सप्तम्यामेव यागोऽस्य किमर्थं क्रियते बुधैः ॥३

सुमन्तुरुवाच

इदमर्थं पुरा पृष्टः सुरज्येष्ठो दिवि स्थितः । विष्णुना कुरुशार्दूल तेनोक्तं हरये यथा ॥
तथा ते सर्वमाख्यास्ये शृणुष्वैकमना विभो ॥४
सुखासीनं सुरज्येष्ठं पुरा देवं पितामहम् । प्रणम्य शिरसा देव कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥५

को आरम्भ से अन्त तक सुनायेगें उन्हें अश्वमेध के फल की प्राप्ति पूर्वक परम पद की प्राप्ति होगी ऐसा कहा गया है ।२५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में भद्राकल्प वर्णन नामक
एक सौ एक अध्याय समाप्त ।१०१।

अध्याय १०२

नक्षत्र पूजा विधिवर्णन

सुमन्तु बोले—हे भारत ! सूर्य को सभी तिथियाँ प्रिय हैं पर देवाधिदेव सूर्य के लिए यह सप्तमी तिथि अनन्य प्रिय है जिस भाँति किसी पुरुष के अनेक स्त्रियों में कोई एक स्त्री अत्यन्त प्रिय होती है अतः मनुष्य को इसमें सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।१-२

शतानीक ने कहा—यदि सभी तिथियों के अधिनायक सूर्य ही हैं तो किसलिए विद्वान् लोग सप्तमी में ही सूर्य की पूजा आदि करते हैं ।३

सुमन्तु बोले—हे कुरुशार्दूल ! इसी बात को पहले एकबार स्वर्गस्थित ब्रह्मा से विष्णु ने पूछा था । हे विभो ! उस समय विष्णु को जो कुछ बताया था मैं वही सभी बातें तुमसे बता रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो ! एकबार पहले समय में सुख पूर्वक बैठे हुए पितामह ब्रह्मा को शिर से प्रणाम करने के

यद्येष भानुमान्देवस्तिथीनामधिपः स्मृतः । किमर्थं पूज्यते ब्रह्मन्सप्तम्यां ब्रूहि मे विभो ॥६
एवमुक्तः सुरज्येष्ठो विष्णुना प्रभविष्णुना । प्रहस्य भगवान्देव इदं वचनमब्रवीत् ॥७

ब्रह्मोवाच

देवेभ्यस्तिथयो दत्ता भास्करेण महात्मना । मुक्त्वैकां सप्तमीं सर्वां सम्यगाराधनेन वै ॥८
यस्यैव यद्दिनं दत्तं स तस्यैवाधिपः स्मृतः । स्वदिने पूजितस्तस्मात्स्वमन्त्रैर्वरदो भवेत् ॥९

विष्णुरुवाच

अर्केण कतरत्कस्मै दिनं दत्तं महात्मना । स्वदिने पूजितेऽस्मिन्वै स्वमन्त्रैर्जायते ध्रुवम् ॥१०

ब्रह्मोवाच

अग्नये प्रतिपद्दत्ता द्वितीया ब्रह्मणे तथा । तृतीया यक्षराजाय गणेशाय चतुर्थ्यपि ॥११
पञ्चमी नागराजाय कार्तिकेयाय षष्ठ्यपि । सप्तमी स्थापितात्मार्थं दत्ता रुद्राय चाष्टमी ॥१२
दुर्गायै नवमी दत्ता यमाय दशमी स्वयम् । विश्वेभ्यश्चाथ देवेभ्यो दत्ता चैकादशी सदा ॥१३
द्वादशी विष्णवे दत्ता मदनाय त्रयोदशी । चतुर्दशी शङ्कराय दत्ता सोमाय पूर्णिमा ॥१४
पितॄणां भानुना दत्ता पुण्या पञ्चदशी सदा । तिथ्यः पञ्चदशैतास्तु सोमस्य परिकीर्तिताः ॥१५
पीयते कृष्णपक्षे तु सुरैरेभिर्यथोदितैः । शुक्लपक्षे प्रपूर्यन्ते षोडश्या कलया सह ॥१६
अक्षया सा सदैकैका तत्र साक्षात्स्थितो रविः । क्षयवृद्धिकरो ह्येवं तेनासौ तत्पतिः स्मृतः ॥१७

उपरांत कृष्ण ने इस भाँति कहा ।४-५। हे ब्रह्मन् ! यदि तिथियों के अधिनायक सूर्य ही बताये जाते हैं, तो हे विभो ! सप्तमी में ही इनकी पूजा क्यों होती है, इसे प्रायः मुझे स्पष्ट बतायें ।६। प्रभुत्व गुण सम्पन्न विष्णु के इस प्रकार पूछने पर ब्रह्मा ने हँसकर यह कहा ।७

ब्रह्मा बोले—देवताओं के आराधना करने पर प्रसन्न होकर सूर्य ने तुम्हें सप्तमी तिथि के अतिरिक्त सभी तिथियाँ सौंप दी है ।८। इसलिए जिसे जो तिथि दी गयी है वह उसका अधिनायक हो गया है और तभी से अपने तिथि के दिन मंत्र द्वारा पूजित होने पर उन्हें देवों ने वर प्रदान प्रारम्भ किया है ।९

विष्णु ने कहा—सूर्य ने किसे कौन तिथि प्रदान की है जिसमें वह मंत्र द्वारा पूजित होने पर वर प्रदाने करता है ।१०

ब्रह्मा बोले—(सूर्य ने) अग्नि के लिए प्रतिपदा ब्रह्मा के लिए द्वितीया, यक्षराज (कुवेर) के लिए तृतीया, गणेश के लिए चतुर्थी, नागराज के लिए पंचमी, कार्तिकेय के लिए षष्ठी, अपने लिए सप्तमी, रुद्र के लिए अष्टमी, दुर्गा के लिए नवमी, यम के लिए दशमी, विश्वेदेव के लिए एकादशी, विष्णु के लिए द्वादशी, काम के लिए त्रयोदशी, शंकर के लिए चतुर्दशी, सोम (व्रत) के लिए पूर्णिमा और पितरों के लिए पुण्य अमावस्या तिथि प्रदान किया है। ये पन्द्रह तिथियाँ चन्द्रमा की कला के रूप में हैं ।११-१५। इसलिए कृष्ण पक्ष में देवलोग इसका पान करते हैं पश्चात् वे शुक्लपक्ष में सोलहवीं कला के समेत पूरी हो जाती है ।१६। (चन्द्रमा की सोलहवीं) कला अक्षीण रहती है क्योंकि उसमें सूर्य साक्षात् स्थित रहते

ददाति गतिमक्षीणां ध्यानमात्रस्थितो[1] रविः । अन्येपीष्टान्यथाकामान्प्रयच्छन्ति सुखेन वै ॥१८
तथा सर्वं प्रवक्ष्यामि कृष्ण संक्षेपतः शृणु । अग्निमिष्ट्वा च हुत्वा च प्रतिपद्यमृतं घृतम् ॥
हविषा सर्वधान्यानि प्राप्नुयादमितं धनम् ॥१९
ब्रह्माणं च द्वितीयायां सम्पूज्य ब्रह्मचारिणम् । भोजयित्वा च विद्यानां सर्वासां पारगो भवेत् ॥२०
तृतीयायां च वित्तेशं वित्ताढ्यो जायते ध्रुवम् । क्रयादिव्यवहारेषु लाभो बहुगुणो भवेत् ॥२१
गणेशपूजनं कुर्याच्चतुर्थ्यां सर्वकर्मसु । अविघ्नं विद्विषां विघ्नं कुर्याच्चास्य न संशयः ॥२२
नागानिष्ट्वा च पञ्चम्यां न विषैरभिभूयते । स्त्रियं च लभते पुत्रान्परां च श्रियमाप्नुयात् ॥२३
सम्पूज्य कार्तिकेयं तु षष्ठ्यां श्रेष्ठः प्रजायते । मेधावी रूपसम्पन्नो दीर्घायुः कीर्तिवर्धनः ॥२४
सप्तम्यां पूज्य रक्षेशं चित्रभानुं दिवाकरम् । अष्टम्यां पूजितो देवो गोवृषाभरणो हरः ॥२५
ज्ञानं ददाति विपुलं कान्तिं च विपुलां तथा । मृत्युहा ज्ञानदश्चैव पाशहा च प्रपूजितः ॥२६
दुर्गां सम्पूज्य दुर्गाणि नवम्यां तरतीच्छया । सङ्ग्रामे व्यवहारे च सदा विजयमश्नुते ॥२७
दशम्यां यममार्तिष्ठेत्सर्वव्याधिहरो ध्रुवम् । नरकादथ मृत्योश्च समुद्धरति मानवम् ॥२८
एकादश्यां यथोद्दिष्टा विश्वेदेवाः प्रपूजिताः । प्रजां पशुं धनं धान्यं प्रयच्छन्ति महीं तथा ॥२९

हैं। इसी प्रकार सूर्य द्वारा चन्द्रमा का क्षय एवं वृद्धि होती रहती है अतः सूर्य चन्द्र के भी पिता कहे गये हैं।१७। हे कृष्ण ! जिस भाँति आकाश में केवल स्थित मात्र रहने से सूर्य अनश्वर गति एवं अन्य सभी कामनाएँ सुख पूर्वक प्रदान करते रहते हैं, संक्षेप में मैं वह सब बता रहा हूँ सुनो ! प्रतिपदा तिथि में घी की आहुति पूजनोपरांत अग्नि में डालने से समस्त धान्य एवं अमित धन की प्राप्ति होती है।१८-१९। द्वितीया के दिन ब्रह्मा का पूजन करके ब्रह्मचारी के भोजन कराने से वह सभी विधाओं का पूर्ण वक्ता होता है।२०। तृतीया के दिन कुबेर की आराधना करने से निश्चित अत्यन्त धन एवं भाँति-भाँति के अनेक लाभ होते रहते हैं।२१। चौथ में गणेश के पूजन करने से सभी कार्यों की निर्विघ्न समाप्ति तथा शत्रुओं का निश्चित नाश होता है।२२। पञ्चमी के दिन नागों की आराधना करने पर विष के भय से मुक्ति और स्त्री, पुत्र एवं उत्तम लक्ष्मी की भी प्राप्ति होती है।२३। षष्ठी में कार्तिकेय की पूजा करने वाला श्रेष्ठ, मेधावी, रूपवान्, दीर्घायुष्मान् तथा विपुल ख्याति प्राप्त पुरुष होता है।२४। सप्तमी के दिन रक्षेश, चित्रभानु नामक सूर्य की आराधना करके अष्टमी में गोवृष (बैल) वाहन वाले हर महादेव की आराधना करने पर विपुल ज्ञान, विपुल सौन्दर्य, मृत्यु एवं जन्म-मरण रूपपाश से मुक्ति प्राप्त होती है।२५-२६। नवमी के दिन भगवती दुर्गा जी की आराधना करने से वह (संसार के विभिन्न प्रकार के) दुर्गों दुःखों को इच्छा पूर्वक पार करता है और रणभूमि एवं व्यवहार में भी इसकी सदैव विजय होती है।२७। दशमी में यमराज की आराधना करने से सभी रोगों से अटल मुक्ति पूर्वक नरकों एवं मृत्यु से उसका उद्धार हो जाता है।२८। एकादशी में विधान पूर्वक विश्व देव की आराधना करने पर उसे वे सन्तान, पशु, धन, धान्य एवं भूमि प्रदान करते हैं।२९। किरणमाली सूर्य की भाँति विष्णु भी समस्त

---

१. व्योममात्रस्थितः ।

द्वादश्यां विष्णुमिष्ट्वेह सर्वदा विजयी भवेत् । पूज्यश्च सर्वलोकानां यथा गोपतिगोकरः ।।३०
कामदेवं त्रयोदश्यां सुरूपो जायते ध्रुवम् । इष्टां रूपवतीं भार्यां लभेत्कामांश्च पुष्कलान् ।।३१
दृष्ट्वेश्वरं चतुर्दश्यां सर्वैश्वर्यसमन्वितः । बहुपुत्रो बहुधनस्तथा स्यान्नात्र संशयः ।।३२
पौर्णमास्यां तु यः सोमं पूजयेद्भक्तिमान्नरः । स्वाधिपत्यं भवेत्तस्य सम्पूर्णं न च हीयते ।।३३
पितरः स्वदिने दिण्डे दृष्टाः कुर्वन्ति सर्वदा । प्रजावृद्धिं धनं रक्षां चायुष्यं बलमेव च ।।३४
उपवासं विनाप्येते भवन्त्युक्तफलप्रदाः । पूजया जपहोमैश्च तोषिता भक्तितः सदा ।।३५
मूलमन्त्रैश्च संज्ञाभिरंशमन्त्रैश्च कीर्तिताः । पूर्ववत्पद्ममध्यस्थाः कर्त्तव्याश्च तिथीश्वराः ।।३६
गन्धपुष्पोपहारैश्च यथा शक्त्या विधीयते । पूजा बाह्येन विधिना कृतापि च फलप्रदा ।।३७
आज्यधारासमिद्भिश्च दधिक्षीरान्नमाक्षिकैः । यथोक्तफलदो होमो जपः शान्तेन चेतसा ।।३८
मूलमन्त्राश्च संज्ञाभिरङ्गमन्त्राश्च कीर्तिताः । कृत्वा यज्ञान्दश द्वौ च फलान्येतानि भक्तितः ।।३९
यथोक्तानि तथोक्तानि लभेतेहाधिकान्यपि । इह यस्माद्यथान्यस्मिन्यो वसेद्यः सुखी सदा ।।४०
तेषां लोकेषु मन्त्रज्ञो यावत्तेषां तिथिः स्थिता । दहेत्तस्मात्तथारिष्टं तद्रूपो जायते नरः ।।४१
सुरूपो धर्मसम्पन्नो क्षपितारिर्महीपतिः । स्त्री वा नपुंसको वापि जायते पुरुषोत्तमः ।।४२

लोकों के पूज्य हैं, अतः द्वादशी में इनकी पूजा करने से सदैव विजय प्राप्त होती है ।३०। त्रयोदशी में मदन (काम) की पूजा करने से निश्चित ही रूप-सौन्दर्य की प्राप्ति तथा अभिलषित स्त्री समेत सभी कामनाएं भी प्राप्त होती हैं ।३१। चतुर्दशी में शंकर की आराधना करने पर समस्त ऐश्वर्यों, अनके पुत्रों एवं अतुल धन की निश्चित प्राप्ति होती है ।३२। उसी भाँति पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा की पूजा करने पर उस भक्तिमान् पुरुष को अपने सम्पूर्ण आधिपत्य की प्राप्ति होती है, जिससे वह कभी नहीं च्युत होता है ।३३

हे दिंडे ! अपने (अमावास्या के) दिन पूजित होने पर पितर लोग प्रसन्न होकर संतान वृद्धि, धन, रक्षा, आयु एवं बल सदैव प्रदान करते हैं ।३४। बिना उपवास के ही पूजा करने पर ये सभी देव गण उपर्युक्त फल प्रदान करते रहते हैं, अतः केवल भक्ति पूर्वक ही पूजा, जप एवं हवन द्वारा इन्हें सन्तुष्ट करते रहना चाहिए।३५। यदि (उपवास रहकर) मूल मंत्रों, संज्ञाओं (नामों) एवं आंशिक मंत्रों के उच्चारण करते हुए इन तिथियों के अधिनायक को पहले की भाँति कमलासन पर स्थापित करके यथाशक्ति गन्ध एवं पुष्पोहार द्वारा पूजा करें तो निश्चित उपरोक्त फल प्राप्त हों और इसी प्रकार वाह्य विधान पूर्वक पूजा करने पर भी (अत्यन्त) फल की प्राप्ति होती है ।३६-३७। घी की धारा, समिधा (लकड़ी) दही, दूध से बनाया हुआ भक्ष्य कार्य तथा मधु द्वारा हवन एवं शांत चित्त होकर जप करने से उक्त सभी फल प्राप्त होते हैं ।३८। इसमें मूल मंत्रों एवं संज्ञाओं (नामों) के उच्चारण पूर्वक अंश मंत्रों का भी विधान बताया गया है । भक्ति पूर्वक बारह यज्ञ करने पर प्राप्त होने वाले जिन सभी फलों को बताया गया है उससे कहीं अधिक फलों की प्राप्ति अनुष्ठान के द्वारा होती है । जिस तिथि में उसके अधिनायक देव की उपासना की जाती है, उस देव के लोक में उसकी तिथि के स्थायी दिन (महाप्रलय) तक सुखपूर्वक निवास प्राप्त होता है एवं उसके बीच वाले समय में उसके अरिष्ट का नाश हो जाता है । अतः यहाँ (कभी आने पर) उसी देव के समान रूप प्राप्त कर सौन्दर्य पूर्ण, धर्मशील, एवं शत्रु-विजयी राजा होता है । इसके अनुष्ठान द्वारा स्त्री एवं नपुंसक कोई भी हो (इसके प्रभाव वश) उत्तम पुरुष होता है ।३९-४२

इत्येताः कथिताः कृष्ण तिथयो या मया तव । नक्षत्रदेवताः सर्वा नक्षत्रेषु व्यवस्थिताः ॥४३
इष्टान्कामान्प्रयच्छन्ति यास्ता वक्ष्ये महीधर । चन्द्रमा यत्र नक्षत्रे महावृद्ध्या स्थितः सदा ॥४४
उक्तस्तु देवतायज्ञस्तदा सा फलदा भवेत् । देवताश्च प्रवक्ष्यामि नक्षत्राणां यथाक्रमम् ॥४५
नक्षत्राणि च सर्वाणि यज्ञाश्चैव पृथक्पृथक् । अश्विन्यामश्विनाविष्ट्वा दीर्घायुर्जायते नरः ॥४६
व्याधिभिर्मुच्यते क्षिप्रमत्यर्थं व्याधिपीडितः । भरण्यां यम उद्दिष्टः कुसुमैरसितैः शुभैः ॥४७
तथा गन्धादिभिः शुभ्रैरपमृत्योर्विमोचयेत् ॥४८
अनलः कृत्तिकायां तु इह सम्पूजितः परः । रक्तमाल्यादिभिर्दद्यात्फलं होमेन च ध्रुवम् ॥४९
पूज्यः प्रजापतिः प्रीत इष्टो दद्यात्पशूंस्तथा । रोहिण्यां देवशार्दूल पूजनादिह गोपते ॥
मृगशीर्षे सदा सोमो ज्ञानमारोग्यमेव च ॥५०
आर्द्रायां तु शिवं पूज्य पश्चाद्विज यमाप्नुयात् । पद्मादिभिः स दिव्यैश्च पूजितः शं प्रयच्छति ॥५१
तथा पुनर्वस्वदितिः सदा सम्पूज्यते दिवि । गुरूणां तर्पिता चैव मातेव परिरक्षति ॥५२
पुष्ये बृहस्पतिर्बुद्धिं ददाति विपुलां शुभाम् । गीतैर्गन्धादिभिर्नागा आश्लेषायां प्रपूजिताः ॥५३
तर्पिताश्च यथान्यायं भक्ष्याद्यैर्मधुरैः सितैः । रक्षामिषादिभिस्तैस्तैः प्रीतिं कुर्वन्ति मानद ॥५४
मघासु पितरः सर्वे हव्यैः कव्यैश्च पूजिताः । प्रयच्छन्ति धनं धान्यं भृत्यान्पुत्रान्पशूंस्तथा ॥५५

हे कृष्ण ! इस प्रकार मैने समस्त तिथियों को तुम्हें बता दिया । इसी भाँति नक्षत्रों के अधीश्वर भी अपने-अपने नक्षत्रों में सन्निहित होते हैं ।४३। हे महीधर ! जिस प्रकार वे मनुष्य को अभिलषित वस्तुएँ प्रदान करते रहते हैं मैं उन्हें भी बता रहा हूँ । सुनो ! चन्द्रमा जिस नक्षत्र में समृद्ध (चारों चरण समेत) होकर स्थित रहता है, उसी नक्षत्र में उसके अधिनायक के यज्ञ (पूजा) आदि करने को बताया गया है अतः मैं क्रमशः नक्षत्रों के अधिनायक देवताओं को बता रहा हूँ ।४४-४५। एवं सभी नक्षत्रों की भाँति उसके यज्ञ भी पृथक्-पृथक् बताये गये हैं, अश्विनी नक्षत्र में अश्विनी कुमार की पूजा करने पर मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करता है ।४६। तथा अत्यन्त व्याधि-पीड़ित होने पर भी शीघ्र उस रोग से उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है । भरणी में काले वर्ण के सुन्दर पुष्पों एवं उत्तम गन्धों द्वारा यम की पूजा करने पर मनुष्य अल्पमृत्यु (अकाल मृत्यु) से मुक्त हो जाता है ।४७-४८। कृत्तिका नक्षत्र में रक्त वर्ण के पुष्पों के हवन द्वारा अग्नि की पूजा करने पर उत्तम फल की प्राप्ति होती है ।४९। हे देव शार्दूल ! रोहिणी नक्षत्र में पूजा करने से प्रजापति ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर पशुओं की प्राप्ति होती है । हे गोपते ! मृगशीर्ष नक्षत्र में सदैव चन्द्रमा की पूजा करने से ज्ञान एवं आरोग्य की प्राप्ति होती है ।५०। आर्द्रा नक्षत्र में शिव की पूजा करने पर विजय की प्राप्ति होती है तथा उत्तम कमलों द्वारा पूजित होने पर वे समस्त कल्याण प्रदान करते हैं ।५१। पुनर्वसु नक्षत्र में आकाश स्थित अदिति की पूजा करने से अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक वह माता की भाँति रक्षा करती है।५२। पुष्य नक्षत्र में वृहस्पति की आराधना करने पर वे अत्यन्त कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करते हैं। आश्लेषा में गान पूर्वक गन्धादि के मधुर भक्ष्य पदार्थों द्वारा नागों की पूजा करने पर वे प्रसन्न होकर (विषादिकों) के भय से उसकी रक्षा तथा प्रीति प्रदान करते हैं।५३-५४। मघा नक्षत्र में हव्य-कव्य पितरों को तृप्त करने पर धन धान्य, सेवक, पुत्र, एवं पशुओं की प्राप्ति होती

फाल्गुन्यामथ वै पूषा इष्टः पुष्पादिभिः शुभैः । पूर्वायां विजयं दद्यादुत्तरायां भगं तथा ।।५६
भर्तारमीप्सितं दद्यात्कन्यायै पुरुषाय ताम् । इह जन्मनि युज्येत रूपद्रविणसम्पदा ।।५७
पूजितः सविता हस्ते विश्वतेजोनिधिः सदा । गन्धपुष्पादिभिः सर्वं ददाति विपुलं धनम् ।।५८
राज्यं तु त्वष्टा चित्रायां निःसपत्नं प्रयच्छति । इष्टः सन्तर्पितः प्रीतः स्वात्यां वायुर्बलं परम् ।।५९
इन्द्राग्नी च विशाखायां जातरक्तैः प्रपूज्य च । धनधान्यानि लब्ध्वेह तेजस्वी निवसेत्सदा ।।६०
रक्तैर्मित्रमनूराधास्वेवं सम्पूज्य भक्तितः । श्रियो भजन्ति सर्वेषां चिरं जीवन्ति सर्वदा ।।६१
ज्येष्ठायां पूर्ववच्छक्रमिष्ट्वा पुष्टिमवाप्नुयात् । गुणैर्ज्येष्ठश्च[1] सर्वेषां कर्मणा च धनेन च ।।६२
मूले देवपितॄन्त्सर्वान्भक्त्या[2] सम्पूज्य पूर्ववत् । पूर्ववत्फलमाप्नोति स्वर्गस्थाने ध्रुवो भवेत् ।।६३
पूर्वाषाढे ह्यपः पूज्य हुत्वा तत्रैव पूर्ववत् । सन्तापान्मुच्यते क्षिप्रं शारीरान्मानसात्तथा ।।६४
आषाढासु तथा विश्वानुत्तराषाढयोगतः । विश्वेशं पूज्य पुष्पाद्यैः[3] सर्वमाप्नोति मानवः ।।६५
श्रवणे तु सितैर्विष्णुं पीतैर्नीलैश्च भक्तितः । सम्पूज्य श्रियमाप्नोति परं विजयमेव च ।।६६
धनिष्ठासु वसूनिष्ट्वा न भयं भजते क्वचित् । महतोऽपि भयात्त्वेतैर्गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ।।६७
इन्द्रं शतभिषायां च व्याधिभिर्मुच्यते ध्रुवम् । आतुरः पुष्टिमाप्नोति स्वास्थ्यमैश्वर्यमेव च ।।६८

है ।५५। पूर्वा फाल्गुनी में सुन्दर पुष्पों द्वारा पूषा की पूजा करने पर विजय, तथा उत्तरा फाल्गुनी में भग देव की आराधना करने पर कन्या को मन चाहा पति एवं पुरुष को कन्या की प्राप्ति होती है और इसी जन्म में उसे अत्यन्त सौन्दर्य पूर्वक धन की भी प्राप्ति हो जाती है ।५६-५७। हस्त नक्षत्र में विश्व के परम तेजस्वी सविता (सूर्य) की पूजा गंध पूष्पों द्वारा पूजा करने से विपुल धन की प्राप्ति होती है ।५८। चित्रा नक्षत्र में पूजित होने पर त्वष्टा निःसन्देह (शत्रु रहित) राज्य प्रदान करते हैं। स्वाती में विधान पूर्वक वायु को प्रसन्न करने पर अधिक फल की प्राप्ति होती है ।५९। विशाखा में अनुराग पूर्ण होकर इन्द्र और अग्नि की पूजा करने पर वह धन धान्य पूर्ण होकर सदैव तेजस्वी बना रहता है ।६०। अनुराधा नक्षत्र में रक्त वर्ण के पुष्पों द्वारा भक्ति पूर्वक मित्र की आराधना करने पर भी सम्पन्न एवं चिरजीवी होता है ।६१। ज्येष्ठा में इन्द्र की पूर्व की भाँति आराधना करने पर वह पुष्टि प्राप्त करते हुए सभी लोगों में धन, गुण और कर्म के कारण श्रेष्ठ होता है ।६२। मूल नक्षत्र में देव एवं पितरों का पूर्वोक्त की भाँति पूजन करने पर वह पूर्वोक्त फल प्राप्ति पूर्वक ध्रुव स्वर्ग का निवासी होता है ।६३। पूर्वाषाढ़ में जल की पूजा तथा हवन करने पर शारीरिक एवं मानसिक संतापों से शीघ्र मुक्ति प्राप्ति होती है ।६४। उत्तराषाढ में पुष्पों आदि द्वारा विश्वदेव की पूजा करने से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है ।६५। श्रवण में श्वेत, पीत एवं नील वर्ण के पुष्पों द्वारा भक्ति पूर्वक विष्णु की आराधना करने पर लक्ष्मी एवं विजय की प्राप्ति होती है ।६६। धनिष्ठा नक्षत्र में उत्तम गन्ध पुष्पादि द्वारा वसु नामक देवों की पूजा करने पर उसे महान् जप से भी मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।६७। शतभिषा नक्षत्र में इन्द्र की आराधना करने पर व्याधियों से मुक्ति एवं आतुर होने पर उसे पुष्टि तथा स्वास्थ्य एवं ऐश्वर्य का लाभ होताहै ।६८। पूर्वा भाद्रपद में शुद्ध

---

१. गुडैः संपूज्य ज्येष्ठायां युज्यते मधुसूदन। २. शक्त्या। ३. विभवैः।

अजं भाद्रपदायां तु शुद्धस्फटिकसन्निभम् । सम्पूज्य भक्तिमाप्नोति परं विजयमेव च ॥६९
उत्तरायामहिर्बुध्न्यं परां शान्तिमवाप्नुयात् । रेवत्यां पूजितः पूषा ददाति सततं शुभम्[1] ॥
सितैः पुष्पैः स्थितिं चैव धृतिं विजयमेव च ॥७०
एवंवैते समाख्याता यज्ञाः संक्षेपतो मया । नक्षत्रदेवतानां च साधकानां हिताय वै ॥
भक्त्या वित्तानुसारेण भवन्ति फलदाः सदा ॥७१
गन्तुमिच्छेदनन्त्यं वा क्रियां प्रारब्धमेव च । नक्षत्रदेवतायज्ञं कृत्वा तत्सर्वमाचरेत् ॥७२
एवं कृते हि तत्सर्वं यात्राफलमवाप्नुयात् । क्रियाफलं च सम्पूर्णमित्युक्तं भानुना स्वयम् ॥७३
यज्ञात्स विजयं कुर्यात्क्रियां कुर्याद्यथेप्सिताम् । कालचक्रेऽथ वा सूर्यं राशिचक्रे कलात्मना ॥७४
विश्वतेजोनिधिं ध्यात्वा सर्वं कुर्याद्यथेप्सितम् । विभूतिरेषा चोद्दिष्टा क्रियाभिः साध्यते ध्रुवम् ॥७५
उद्दिष्टाभिः प्रयत्नेन भुक्तियोगेन साध्यते । भानोराराधनाद्वापि प्राप्यते मुक्तिरेव हि ॥
तस्मादाराधय रविं भक्त्या त्वं मधुसूदन ॥७६
इज्यापूजानमस्कारशुश्रूषाभिरहर्निशम् । व्रतोपवासैर्विविधैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥७७

स्फटिक की भाँति अज की पूजा करने से भक्ति एवं विजय की प्राप्ति होती है ।६९। उत्तरा भाद्रपद में 'अहिर्बुध्न्य देव' की पूजा करने से उत्तम शांति प्राप्त होती है । रेवती नक्षत्र में पूषा की पूजा श्वेत पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करने पर निरन्तर कल्याण, स्थिति, धृति, एवं विजय की प्राप्ति होती है ।७०

तुम्हारे और नक्षत्र देवताओं के साधनों के हित की कामना वश होकर मैंने संक्षेप में इन यज्ञों को सुना दिया । अपने वित्त (धन) के अनुसार भक्ति पूर्वक पूजित होने पर ये देवगण सदैव फल प्रदान करते रहते हैं ।७१। इसलिए लम्बी यात्रा अथवा किसी कार्य के आरम्भ करने में प्रथम उस नक्षत्र में अधीश्वर देव के यज्ञ को सम्पन्न कर लेना चाहिए ।७२। क्योंकि उनकी आराधना करने पर धन, पात्र के समस्त फल एवं किये गये कार्य के फल प्राप्त होते हैं ऐसा स्वयं सूर्य ने कहा है ।७३। एवं यज्ञ द्वारा विजय तथा अभिलषित कार्य की सफलता प्राप्त होती है । इस प्रकार उपस्थित काल चक्र के राशिचक्र में कलारूप में स्थायी रहने वाले सूर्य की जो समस्त विश्व के तेजो निधि रूप हैं, पूजा-ध्यान करके अपने मनोरथ को सफल करना चाहिए । जिस विभूति (ऐश्वर्य) के उद्देश्य से व्रतानुष्ठान की क्रिया प्रारम्भ की जाती है उसकी निश्चित प्राप्ति होती है इसमें संदेह नहीं ।७४-७५। और प्रयत्न पूर्वक उन्हीं उद्दिष्ट क्रियाओं एवं भुक्ति निमित्तक योग द्वारा अथवा सूर्य की आराधना करने पर भी मुक्ति (जन्म-मरण रूप बन्धनों से छुटकारा) प्राप्त होती है । अतः हे मधुसूदन ! भक्तिपूर्वक तुम सूर्य की आराधना अवश्य करो ।७६। इस प्रकार यज्ञ, पूजा, नमस्कार, शुश्रूषा (सेवा) रात दिन का व्रत उपवास और अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों को ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए जो कोई सूर्य की पूजा एवं उनका हृदयालम्बन (शारीरिक सेवा) करता

---

१. नात्र कार्या विचारणा ।

यः कारयति देवार्चां हृदयालम्बनं रवेः । स नरो भानुसालोक्यमुपैति गतकल्मषः[१] ॥७८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे नक्षत्रपूजाविधिवर्णनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।१०२।

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजामहिमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यश्च देवालयं भक्त्या भानोः कारयते स्थिरम् । स सप्त पुरुषाँल्लोकान्भानोर्नयति मानवः ॥१
यावन्त्यब्दानि देवार्चा रवेस्तिष्ठति मन्दिरे । तावद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके स मोदते[२] ॥२
देवार्चा लक्षणोपेता यद्गृहे सन्ततो विधिः । निष्कामं वा मनो यस्य स याति रविसाम्यताम् ॥३
पुष्पाण्यतिसुगन्धीनि मनोज्ञानि च यः पुमान् । प्रयच्छति हि देवेशं तद्भावगतमानसः ॥४
धूपांश्च विविधांस्तांस्तान्गन्धाढ्यं चानुलेपनम् । दीपबल्युपहारांश्च यच्चाभीष्टमथात्मनः ॥५
नरः सोऽनुदिनं यज्ञात्प्राप्नोत्याराधनाद्रवेः । यज्ञेशोभगवान्भानुर्मखैरपि च तोष्यते ॥६
बहूपकरणा यज्ञा नानसम्भारविस्तराः । प्राप्यन्ते[३] तैर्धनयुतैर्मनुष्यैर्लोकसञ्चयैः ॥७

है, वह निष्पाप होकर सूर्य की सालोक्य मुक्ति प्राप्ति करता है ।७७-७८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में नक्षत्र पूजाविधि वर्णन नामक एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त ।१०२।

अध्याय १०३

सूर्यपूजामहिमा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—भक्तिपूर्वक जो सूर्य के लिए अत्यन्त दृढ मन्दिर बनवाता है, उस पुरुष के सात पीढ़ी के लोग सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं ।१। एवं उस मन्दिर में सूर्य की पूजा जितने वर्ष तक होती है उतने सहस्र वर्ष वह (मन्दिर का निर्माता) सूर्य लोक में आनन्द का अनुभव करता है ।२। इसलिए जिस घर में विधान पूर्वक सूर्य की पूजा निरंतर निष्पाप भाव से होती है उसको (मनुष्य को) सूर्य की समानता प्राप्त हो जाती है ।३। जो पुरुष उनके प्रेम में मुग्ध होकर सुगन्धित एवं मनोहर पुष्प, भाँति-भाँति के धूप, अत्यन्त सुगन्ध पूर्ण लेपन द्वीप एवं बलि उपहार तथा और अन्य अपनी प्रियवस्तु सूर्य के लिए समर्पित करता है, उसे सूर्य के उस नित्य याग करने के द्वारा अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है । क्योंकि भगवान् भास्कर यज्ञेश रूप हैं इसलिए यज्ञ द्वारा उन्हें संतुष्ट किया जाता है ।४-६। यद्यपि यज्ञों के अनेक साधन होते हैं उनका संभार विस्तृत होता है तथा उसे धनवान् ही लोग धनसंचय के नाते सुसम्पन्न करते हैं और इसीलिए उन्हें महान फल की प्राप्ति भी होती है, तथापि निर्धन मनुष्य भी भक्ति पूर्वक केवल दूर्वाङ्कुरों द्वारा सूर्य की

---

१. धुतकल्मषः । २. महीयते । ३. प्रथन्ते ।

भक्त्या तु पुरुषैः पूजा कृता दुर्वांकुरैरपि । रवेर्ददाति हि फलं सर्वयज्ञैः सुदुर्लभम् ॥८
यानि पुष्पाणि भक्ष्याणि धूपगन्धानुलेपनम् । दयितं भूषणं यच्च रक्तके चैव वाससी ॥९
यानि चाभ्युपहाराणि भक्ष्याणि च फलानि च । प्रयच्छ तानि देवेश भवेथाश्चैव तन्मनाः ॥१०
आद्यं तं यज्ञपुरुषं यथाशक्त्या प्रसाद्य ।आराध्य स्थापितं देवं तस्मिन्नेव नरालये ॥११
पुष्पैस्तीर्थोदकैर्गन्धैर्मधुना सर्पिषा तथा । क्षीरेण स्नापयेद्देवं चित्रभानुं दिवाकरम्[1] ॥१२
दधिक्षीरह्रदान्याति स्वर्गलोकान्मधुच्युतान् । प्रयास्यति यदुश्रेष्ठ निर्वृतिं वापि शाश्वतीम् ॥१३
स्तोत्रैर्गीतैस्तथा वाद्यैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः । मनसश्चैकतायोगादाराधय विभावसुम् ॥१४
आराध्य तं विदेहानां पुरुषाः सप्तसप्ततिः । हैहयानां च पञ्चाशदमृतत्वं समागताः ॥१५
स त्वमेभिः प्रकारैस्तमुपवासैस्तु भास्करम् । सन्तोषय हि तुष्टोऽसौ भानुर्भवति शान्तिदः ॥१६

कृष्ण उवाच[2]

उपवासैश्चित्रभानुः कथं तुष्टः प्रजायते । परिचर्या कथं कार्या या कार्या चोपवासिना ॥१७
यद्यत्कार्यं यदा चैवभानोराराधनं नरैः । तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१८

ब्रह्मोवाच

स्मृतः सम्पूजितो धूपपुष्पाद्यैः स सदा रविः । भोगिनामुपकाराय किं पुनश्चोपवासिनाम् ॥१९

आराधना करके समस्त यज्ञों द्वारा प्राप्त होने वाले उन अत्यन्त दुर्लभ एवं सम्पूर्ण फलों की प्राप्ति कर सकता है ।७-८। अतः हे देवेश ! समस्त पुष्पों, भक्ष्य पदार्थों, धूप, सुगन्धित लेपन, सुन्दर भूषण, लाल रंग के दो वस्त्रों, समस्त उपहारों एवं भक्ष्य फलों को सूर्य के लिए समर्पित करते हुए उनके ध्यान में तन्मय होने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा करे ।९-१०। सर्वप्रथम उन यज्ञ पुरुष की अपनी शक्त्यनुसार आराधना करके उन्हें प्रसन्न करे और आराधना के पश्चात् यह बताया गया है कि उन्हें उसी मनुष्य के उसी घर में स्थापित करके पुण्य तीर्थ जल, गंध, शहद, घी, एवं दूध द्वारा उन चित्रभानु नामक सूर्य का स्नान कराना चाहिए।११-१२। इस प्रकार इस अनुष्ठान के सुसम्पन्न करने पर उसे स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है जो दही, दूध के तालाबों से पूर्ण एवं मधुमय रहता है । हे यदुश्रेष्ठ ! इस प्रकार वह सर्वदा के लिए मुक्त भी हो जाता है ।१३। अतः स्तोत्र, गायन, वाद्य एवं ब्राह्मणों की तृप्ति द्वारा तन्मय होकर सूर्य की आराधना अवश्य करे।१४। क्योंकि उनकी आराधना के द्वारा ही विदेह (जनक) की सतहत्तर पीढ़ी और हैहय राजा की पचास पीढ़ी के लोगों ने मुक्ति प्राप्त की है ।१५। तुम भी उसी प्रकार उपवास आदि द्वारा सूर्य को संतुष्ट करो। उससे प्रसन्न होने पर सूर्य शांति (मोक्ष) प्रदान करेंगे ऐसा कहा गया है।१६

कृष्ण ने कहा—उपवास के द्वारा सूर्य कैसे प्रसन्न होते हैं और उपवास रहकर किस प्रकार की सेवा करनी चाहिए । हे ब्रह्मन् ! जिस-जिस समय मनुष्य को जिस भाँति सूर्य की आराधना करनी चाहिए, उसे विस्तार पूर्वक आप मुझसे बताने की कृपा करें ।१७-१८

ब्रह्मा बोले—केवल धूप, पुष्प, आदि द्वारा ही आराधना करने पर सूर्य भोगी पुरुषों की भी

---

१. जगत्पतिम् । २. श्रीविष्णुरुवाच-इति सर्वत्र कृष्ण उवाचेत्यस्य स्थाने पाठः ।

उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्तु वासोगुणैः सह । उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ॥२०
एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रमथ वा हरे । उपवासी रविं यस्तु भक्त्या ध्यायति मानवः ॥२१
तन्नामयाजी तत्कर्मरतस्तद्गतमानसः । निष्कामः पूजयित्वा तं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥२२
यश्च काममभिध्याय भास्करार्पितमानसः । उपोषति तमाप्नोति प्रसन्ने तु वृषध्वजे ॥२३

श्रीकृष्ण उवाच

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैः स्त्रीभिस्तथा विभो । संसारगर्तपङ्कस्थैः सुगतिः प्राप्यते कथम् ॥२४

ब्रह्मोवाच

अथाराध्य जगन्नाथं भास्करं तिमिरापहम् । निर्व्यलीकेन चित्तेन प्रयास्यति च सद्गतिम् ॥२५
विषयाग्राहवैषम्यं न चित्तं भास्करार्पणम् । स कथं पाप कर्ता वै नरो यास्यति सद्गतिम् ॥२६
यदि संसारदुःखार्तः सुगतिं गन्तुमिच्छसि । तदाराधय सर्वेशं[1] ग्रहेशं लोकपूजितम् ॥२७
पुष्पैः सुगन्धैर्हृद्यैश्च धूपैः सागुरुचन्दनैः । वासोविभूषणैर्भक्ष्यैरुपवासपरायणः ॥२८
यदि संसारनिर्वेदादभिवाञ्छसि सद्गतिम् । तदाराधय कालेशं यच्चेष्टं तद चेतसा ॥२९
पुष्पाणि यदि तेन स्युः शस्तं पादपपल्लवैः । दूर्वांकुरैरपि कृष्ण तदभावेऽर्चयेद्रविम् ॥३०

अभिलाषाएँ पूरी करते हैं और जो उपवास रह कर उनकी आराधना करता है उसके लिए कहना ही क्या है ।१९। पाप निवृत्ति पूर्वक भागों के त्याग कर जो रागद्वेषरहित गुणों के साथ व्यतीत करता है उसे 'उपवास' कहते हैं ।२०। हे हर ! इस प्रकार एक दो या तीन रात का उपवास रहकर भक्ति पूर्वक उनके नाम के कीर्तन उन्हीं के लिए कर्मों में अनुरक्त एवं तन्मय होकर निष्काम भावना से जो सूर्य की आराधना करता है उसे पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।२१-२२। उनमें पूर्ण मन लगा कर तथा पूर्ण ध्यान पूर्वक उनकी आराधना जो उपवास रहकर करता है उसकी सकल कामनाएँ वृषध्वज (सूर्य) के प्रसन्न होने पर सफल हो जाती हैं ।२३

श्रीकृष्ण ने कहा—हे विभो ! संसार रूपी गर्त (गढ्ढे) के कीचड़ में फंसे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं स्त्रियां उत्तम गति कैसे प्राप्त करती हैं ? २४

सुमन्तु बोले—शांत चित्त होकर जगत्पति एवं अन्धकार नाशक भास्कर की आरधना करने पर वे उन्हें उत्तम गति प्रदान करते हैं किन्तु विषय में अनुरक्त होने के नाते उसका चित्त सूर्य के लिए समर्पित (तन्मय) न हो सका तो उस पापी मनुष्य को उत्तम गति कैसे प्राप्त हो सकती है ।२५-२६। इसीलिए संसार के दुःखों से दुःखी होकर यदि उत्तम गति की प्राप्ति करना चाहते हो तो लोक पूजित, ग्रहों के ईश एवं स्वाधिपति सूर्य की पुष्प, सुगन्ध, उत्तम धूप, अगुरु चन्दन, वस्त्र, आभूषणों तथा भक्ष्यपदार्थों द्वारा उपवास रहते हुए अवश्य आराधना करो । यदि संसार से विरक्त होकर सद्गति चाहते हो तो काल के ईश सूर्य की आत्मप्रिय वस्तुओं द्वारा आराधना करो । हे कृष्ण ! यदि उस समयमें किसी भाँति पुष्प प्राप्त न हो सकें, तो वृक्षों के सुन्दर पल्लवों तथा उसके अभाव में केवल दुर्वा के अङ्कुरों द्वारा ही

---

१. भूतेशम् ।

पुष्पपत्राम्बुभिर्धूपैर्यथाविभवमात्मनः । पूजितस्तुष्टिमतुलां भक्त्या यात्येकचेतसाम् ।।३१
यः सदायतने भानोः कुर्यात्सम्मार्जनं नरः । स पांसुदेहसंयोगात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।३२
यावत्यः पांसुकणिका मार्ज्यन्ते भास्करालये । दिनानि दिवि दिव्यानि तावन्ति मोदते नरः ।।३३
सबाह्याभ्यन्तरं वेश्म मार्जते भास्करस्य यः । स बाह्याभ्यन्तरस्तस्य कायो निष्कल्मषो भवेत् ।।३४
यश्चानुलेपनं कुर्याद्भानोरायतने नरः । स हेलिलोकमासाद्य मोदते गोगते हरौ ।।३५
मृदा वा मृद्विकारैर्वा वर्णकैर्गोमयेन वा । अनुलेपनकृद्भक्त्या नरो गोपतिमाप्नुयात् ।।३६
उदकाभ्युक्षणं भानोर्यः करोति तथाक्षये । स गच्छति नरः कृष्ण यत्रास्ते गोपतिः सदा ।।३७
पुष्पप्रकरमत्यर्थं सुगन्धं भास्करालये । अनुलिप्ते नरो दद्यात्पूषोत्तरगृहं व्रजेत् ।।३८
विमानवरमभ्येति सर्वरत्नमयं दिवि । सम्प्राप्नोति नरो दत्त्वा दीपकं भास्करालये ।।३९
यस्तु सम्वत्सरं पूर्णं तिलपात्रप्रदो नरः । ध्वजं च भास्करे दद्यात्सममत्र फलं लभेत्[1] ।।४०
विधुनोत्यतिवातेन दातुरज्ञानतः कृतम् । पापं दातुर्गृहे भानुर्दिवारात्रौ न संशयः ।।४१
गीतवाद्यादिभिर्देवं य उपास्ते विभावसुम् । गन्धर्वनृत्यैर्वाद्यैश्च विमानस्थो निषेव्यते ।।४२

सूर्य की अर्चना करो ।२७-३०। क्योंकि भक्तिपूर्वक तन्मय होकर शक्ति के अनुसार पुष्प, पत्र एवं जल द्वारा ही उनकी पूजा करने पर प्रसन्न होने से ये अतुलनीय तुष्टि प्रदान करते हैं ।३१। इस प्रकार जो मनुष्य उनके मंदिर में झाड़ू द्वारा सफाई करता है उसे अपनी देह में (झाड़ू द्वारा उड़ी हुई) धूल स्पर्श होते ही समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।३२। सूर्य के मंदिर में धूल के जितने कणों की सफाई होती है, उतने दिव्य दिन वह मनुष्य दिव्य लोक में आनन्द का अनुभव करता है ।३३। एवं जो सूर्य के मन्दिर में उसके बाहरी तथा भीतरी भाग की सफाई करता है उसी प्रकार उस मनुष्य के शरीर के बाहरी एवं भीतरी भाग भी निष्पाप हो जाते हैं ।३४। तथा जो सूर्य के मन्दिर में लेपन (रंग आदि) लगाता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।३५। मिट्टी या मिट्टी द्वारा बनी हुई (गेरू) आदि वस्तु अथवा रंग एवं गोबर से उनके मंदिर को जो लीपता है उसे सूर्य की प्राप्ति होती है ।३६। हे कृष्ण ! उसी प्रकार क्षय काल में जो जल द्वारा सूर्य का अभिषेक करता है, उसे गो पति (सूर्य) के पुनीत लोक की प्राप्ति होती है ।३७। इस भाँति सूर्य के मन्दिर में लेपन (सफाई) हो जाने के उपरांत जो सुगन्धित पुष्पों को उन्हें समर्पित करता है, उसे पूषा (सूर्य) के उत्तर (आगे) वाले गृह की प्राप्ति होती है ।३८। सूर्य के मन्दिर में दीपक जलाने वाले को रत्नमय सुन्दर विमान पर बैठकर स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।३९। जो मनुष्य पूरे वर्ष सूर्य के लिए तिलपात्र तथा ध्वजा प्रदान करता है, उसे उसके समान ही फल की प्राप्ति होती है ।४०। तथा वायु के अत्यन्त झोंकों द्वारा ध्वजा के कम्पित होने पर उसके दाता (ध्वजा के समर्पित करने वाले) के अज्ञान वश किये गये प्रतिदिन के सभी पाप नष्ट हुआ करते हैं। इसमें संशय नहीं ।४१। जो गायन एवं वाद्यादि द्वारा सूर्य की उपासना करता है उसे सुसज्जित विमान पर आसीन कर गन्धर्व गण नृत्य एवं वाद्यों द्वारा उसकी सेवा करते रहते हैं ।४२। सूर्य के मन्दिर में जो पुरुष कथाओं को

---

१. भुवि-इ० पा० ।

जातिस्मरत्वं वृद्धिं च ततस्तु परमां गतिम् । प्राप्नोति हेलेरायतने पुण्याख्यानकथाकरः ।।४३
तस्मात्कुर्यात्प्रयत्नेन पूजयेदापि वाचकम् । नान्यत्प्रीतिकरं भानोः पुण्याख्यानादृते क्वचित् ।।४४
एकोऽपि हेलेः सुकृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म हेलिप्रणामी न पुनर्भवाय ।।४५
एवं[1] देवेश्वरो भक्त्या येन भानुरुपासितः । स प्राप्नोति गतिं श्लाघ्यां यामिच्छति च चेतसा ।।४६
तमाराध्य मया प्राप्तं ब्रह्मत्वं लोकपूजितम् । सौरेर्यथेप्सितं प्राप्तं त्वया तस्मात्पुरानघ ।।४७
ब्रह्महत्याभिभूतस्तु गोश्रुताभरणो हरः । तमाराध्य रविं भक्त्या मुक्तोऽसौ ब्रह्महत्यया ।।४८
देवत्वं मनुजैः कैश्चिद्गन्धर्वत्वं तथा परैः । विद्याधरत्वमपरैरेवाप्तं हि दिवाकरात् ।।४९
लेखः क्रतुशतेनेशमाराध्यैनं दिवाकरम् । इन्द्रत्वमगमत्तस्मान्नान्यः पूज्यो[2] दिवाकरात् ।।५०
देवेभ्योऽप्यतिपूज्यस्तुस्वगुरुर्ब्रह्मचारिणा । तस्मात्स यज्ञपुरुषो विवस्वान्पूज्य एव हि ।।५१
स्त्रियाश्च भर्तारमृते पूज्योऽत्यन्तं विभावसुः । भर्तुर्गृहस्थस्य सतः पज्यो गोपतिरंशुमान् ।।५२
वैश्यानामपि नाराध्यस्तपोभिस्तमनाशनः । ध्येयः परिव्राजकानां सदा देवो विभावसुः ।।५३

सुनाता है उसकी जन्मान्तरीय, जातिस्मरणी एवं वृद्धि होने के पश्चात् उत्तम गति की भी प्राप्ति होती है ।४३। इसीलिए प्रयत्न पूर्वक (कथा) वाचक की पूजा करनी चाहिए क्योंकि सूर्य के प्रसन्न होने के लिए पुण्य कथाओं के सुनने-सुनाने के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी वस्तु नहीं बतायी गयी है ।४४। एवं भली भाँति एक ही बार सूर्य के लिए प्रणाम करने वाले को दश अश्वमेध यज्ञ करने के समान फल प्राप्त होते हैं और दश अश्वमेध यज्ञ करने वाले को यहाँ (भूमि पर) जन्म लेना पड़ता है पर सूर्य के प्रणाम करने वाले का फिर जन्म नहीं होता है ।४५। इस प्रकार जो भक्ति पूर्वक सूर्य की आराधना करता है, उसे अपने मनोनुकूल उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।४६। हे अनघ ! पहले जिस प्रकार आपने सूर्य की आराधना द्वारा अपने मनोरथ की सफलता प्राप्त की थी उसी भाँति उन्हीं की आराधना के मैंने भी लोकपूजित ब्रह्मत्व की प्राप्ति की है ।४७। ब्रह्म हत्या से अभिभूत (दुःखी) होकर शिव ने भी सूर्य की आराधना करके ब्रह्म हत्या से मुक्ति प्राप्त की है ।४८। इस प्रकार सूर्य के द्वारा ही किसी मनुष्य ने देवत्व किसी ने गन्धर्वत्व और किसी ने विद्यापारण की प्रगति की है ।४९। तथा सौ यज्ञ द्वारा सूर्य की आराधना करके देव ने इन्द्रत्व की प्राप्ति की है अतः दिवाकर से बढ़कर कोई पूज्य नहीं है ।५०। जिस प्रकार ब्रह्मचारी अपने गुरु की आराधना करता है, उसी भाँति सूर्य भी देवताओं के आराध्य देव हैं अतः यज्ञ पुरुष सूर्य ही सभी के आराध्य एवं पूज्य देव हैं ऐसा समझना चाहिए ।५१। पति के मरणान्तर पति के अतिरिक्त सूर्य उन विधवा स्त्रियों के अत्यन्त पूज्य हैं पति के वर्तमान रहते हुए भी अंशुमाली सूर्य उनके पूज्य हैं ।५२। तमनाशक सूर्य तप द्वारा वैश्यों के भी आराध्य देव हैं और संन्यासियों के लिए तो वे उनके सदैव ध्येय है ।५३। इस प्रकार सूर्य सभी आश्रम, सभी वर्णों के परायण (योग्य आदि) हैं अतः उनकी

---

१. देवदेवेश्वरः । २. पूज्यतमो रवेः ।

एवं सर्वाश्रमाणां हि चित्रभानुः परायणम् । सर्वेषां चैव वर्णानां तमाराध्याप्नुयाद्गतिम् ।।५४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे सूर्यपूजामहिमवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।१०३।

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

त्रिवर्गसप्तमीव्रतनिरूपणम्

शृणुष्व संयतः काम्यानुपवासांस्तथापरान् । तांस्तानाश्रित्य यान्कामान्कुरुतेप्सितमानसः ।।१
सप्तम्यां शुक्लपक्षे तु फाल्गुनस्येह मानवः । जपन्हेलीति देवस्य नाम भक्त्या पुनःपुनः ।।२
देवार्चने चाष्टशतं कृत्वैतच्च जपेच्छुचिः । स्नातः प्रस्थानकाले तु उत्थाने स्खलिते क्षुते ।।३
पाखण्डान्पतितांश्चैव तथैवान्यायशालिनः । नालपेत तथा भानुनर्चयेच्छ्रद्धयान्वितः ।।
इदं चोदाहरेद्भानौ मनः संधाय तत्परः ।।४
हंसहंस कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव । संसारार्णवमग्नानां त्राता भव दिवाकर ।।५
एवं प्रसाद्योपवासं कृत्वा नियतमानसः । पूर्वाह्णे एव च सकृत्प्राश्याच्चाचमनीयकम् ।।६
स्नात्वार्चयित्वा हंसेति पुनर्नाम प्रकीर्तयेत् । वज्रधारात्रयं चैव क्षिपेत्त्रिर्देवपादयोः ।।७

आराधना करके उत्तम गति की प्राप्ति अवश्य कर लेनी चाहिए ।५४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य पूजा महिमा वर्णन नामक एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त ।१०३।

अध्याय १०४

त्रिवर्गसप्तमीनिरूपण

संयम पूर्वक उन काम्य एवं अन्य उपवासों को जिसके करने से मन इच्छित फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ सुनो ! ।१। फाल्गुन के शुक्ल सप्तमी के दिन स्नान द्वारा पवित्र होकर मनुष्य को सूर्य देव के 'हेलि' नाम का जप बार बार करते रहना चाहिए । देवार्चन में आठ सौ बार पवित्रतापूर्ण जप करना चाहिए एवं यात्रा के समय स्नान करके शयन से उठने पर स्खलित (मूर्च्छित) अवस्थाओं में एवं छींकने के समय भी सूर्य के उपरोक्त नाम का जप करना आवश्यक होता है । श्रद्धालु होकर सूर्य की आराधना के समय पाखंडी पतित एवं अन्याय करने वाले मनुष्य के साथ बात चीत नहीं करना चाहिए अपितु सूर्य में मन लगाकर यही कहना चाहिए कि हे हंस हंस ! आप कृपालु एक अगति के गति हैं अतः हे दिवाकर ! संसार सागर में डूबे हुए जीवों की आप रक्षा करो ।२-५। इस प्रकार उन्हें प्रसन्न कर संयम पूर्वक उपवास करते हुए (दिन के) पूर्वाह्ण समय में एक आचमन जल का एकबार प्राशन करे पश्चात् स्नान करने के उपरांत उनकी अर्चना पूर्वक उस हंस नाम का बार-बार कीर्तन करते हुए उनके चरण में वज्र पुष्प की तीन अंजलि अर्पित करे ।६-७

चैत्रवैशाखयोश्चैव तद्वज्ज्येष्ठे तु पूजयन् । मर्त्यलोके गतिं श्रेष्ठां कृष्ण प्राप्नोति वै नरः ।।८
उत्क्रांतस्तु व्रजेत्कृष्ण दिव्यं हंसालयं शुभम् । वृषध्वजप्रसादाद्वै संक्रन्दनश्रिया वृतः ।।९
आषाढ़े श्रावणे चैव मासि भाद्रपदे तथा । तथैवाश्वयुजे चैव अनेन विधिना नरः ।।१०
उपोष्य सम्पूज्य तथा मार्तण्डेति च कीर्तयेत् । गोमूत्रप्राशनोत्पूतो धनी धनपुरं व्रजेत् ।।११
आराधितस्य जगतामीश्वरस्याव्ययात्मनः । उत्क्रांतिकाले स्मरणं भास्करस्य तथाप्नुयात् ।।१२
क्षीरस्य प्राशनं कृष्ण विधिं चैव यथोदितम् । कार्त्तिकादि यथान्यायं कुर्यान्मासचतुष्टयम् ।।१३
तेनैव विधिना कृष्ण भास्करेति च कीर्तयेत् । स याति भानुसालोक्यं भास्करं स्मरति क्षये ।।१४
प्रतिमासं द्विजातिभ्यो दद्याद्दानं यथेप्सितम् । चातुर्मास्ये तु सम्पूर्णे कृत्वा पुस्तकवाचनम् ।।१५
कथां तु भास्करस्येह सङ्गीतकमथापि वा । धर्मश्रवणमभीष्टं सदा धर्मध्वजस्य तु ।।१६
वाचकं पूजयित्वा तु तस्मात्कार्यं विपश्चिता । श्राद्धमन्येन पक्वेन वाचकेन द्विजेन तु ।।
दिव्येन च यथायुक्तमभीष्टं भास्करस्य हि ।।१७
एवमेव गतिं श्रेष्ठां देवानामनुकीर्तनात् । प्राप्नुयात्त्रिविधां कृष्ण त्रिलोकाख्यां नरः सदा ।।१८
कथितं पारणं यत्ते प्रथमं गोधराधनम् । आधिपत्यं तथा भोगांस्ततः प्राप्नोति मानुषः ।।१९

चैत्र वैशाख मास के इस विधान की भाँति ज्येष्ठ में भी उनकी पूजा इसी विधान द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। हे कृष्ण! उसी द्वारा इस मर्त्य लोक में उस मनुष्य को उत्तम गति की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं ऐसा बताया गया है।८। हे कृष्ण! मरणानन्तर वह पुरुष वृष ध्वज (सूर्य) की अनुकम्पा वश हर्षातिरेक से मग्न होकर दिव्य हंस (सूर्य) की प्राप्ति करता है।९। इसी प्रकार मनुष्य आषाढ, सावन, भादों तथा आश्विन मास में उपवास पूर्वक इनकी पूजा कर 'मार्तण्ड' नाम का कीर्तन और गो मूत्र का प्राशन करके पवित्र होने पर कुबेर लोक की प्राप्ति करता है।१०-११। तदनन्तर जगत् के ईश्वर एवं अक्षय रूप सूर्य की आराधना के नाते उसे मरण समय में उसी प्रकार भास्कर का स्मरण भी प्राप्त होता है।१२। हे कृष्ण! उसी भाँति कार्तिक आदि चारों मासों में उसी विधान द्वारा यथोचित पूजन और दूध का प्राशन करने के पश्चात् 'भास्कर' नाम का कीर्तन करे और उनका स्मरण करने से मरण काल में (भास्कर) सूर्य के सालोक्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।१३-१४। इस भाँति प्रतिमास में द्विजातियों को मनोनीत दान देते हुए चार्तुमास्य की सप्तमी में पुनः पुस्तक वाचन (कथा) श्रवण करना चाहिए।१५। संगीत के साथ अथवा यों ही कथा का पारायण अवश्य होना चाहिए, क्योंकि उन धर्मध्वज (सूर्य) को धर्म श्रवण अत्यन्त प्रिय है।१६। कथावाचक ब्राह्मण की पूजा करने के उपरान्त बुद्धिमान् को कथा सुनते हुए खीर आदि द्वारा श्राद्ध भी उसी दिव्य ब्राह्मण वाचक के द्वारा सुसम्पन्न कराना चाहिए। क्योंकि सूर्य को दिव्य ब्राह्मण द्वारा श्राद्ध अत्यन्त अभीष्ट रहता है।१७। हे कृष्ण! इस प्रकार देवताओं के कीर्तन करने से उसे त्रिलोक नामक तीन प्रकार की उत्तम गति सदैव प्राप्त होती रहती है।१८

इस भाँति प्रथम पारण जिसके द्वारा मनुष्य आधिपत्य एवं भोगों की प्राप्ति करता है, तुम्हें बता

द्वितीयेन तथा भोगान्गोपतेः प्राप्नुयान्नरः । सूर्यलोकं तृतीयेन पारणे न तथाप्नुयात् ।।२०
एवमेतत्समाख्यातं गतिप्रापकमुत्तमम् । विधानं देवशार्दूल यदुक्तं सप्तमीव्रते ।।२१
यः श्वेतां सप्तमीं कुर्यात्सुगतिं श्रद्धया नरः । तथा भक्त्या च वै नारी प्राप्नोति त्रिविधां गतिम् ।।२२
एषा धन्या पापहरा तिथिर्नित्यमुपासिता । आराधनाय यस्तेषां यदा भानोर्धराधर ।।२३
पठतां शृण्वतां चापि सर्वपापभयापहा । तथा धन्या च पुण्या च त्रिवर्गादीष्टदा सदा ।।२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे त्रिवर्गसप्तमीव्रतनिरूपणं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।१०४।

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

कामदासप्तमीव्रतनिरूपणम्

ब्रह्मोवाच

फाल्गुनामलपक्षस्य सप्तम्यां क्ष्माधराव्यय । उपोषितो नरो नारी समभ्यर्च्य तमोऽपहम् ।।१
सूर्यनाम जपन्भक्त्या मितभोक्ता जितेन्द्रियः । उत्तिष्ठन्प्रस्वपंश्चैव सूर्यमेवाभिकीर्तयेत् ।।२
ततोऽन्यदिवसे प्राप्ते त्वष्टम्यां प्रयतो रविम् । स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।।३

दिया ।१९। इसी प्रकार दूसरे पारण द्वारा मनुष्य सूर्य के भोगों की प्राप्ति करता है और तीसरे पारण द्वारा सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।२०। हे देवशार्दूल ! इस प्रकार मैंने उत्तम विधान को तुम्हें सुना दिया सप्तमी व्रत में अनुष्ठान द्वारा उत्तम गति प्राप्त होती है ।२१। जो पुरुष या स्त्री भक्ति पूर्वक इस श्वेता नामक सप्तमी की समाप्ति विधान पूर्वक सुसम्पन्न करते हैं उन्हें उत्तमगति एवं स्त्री को त्रिविध गति की प्राप्ति होती है ।२२। इसलिए यह तिथि प्रशंसनीय, पापहारिणी एवं नित्य उपासना करने के योग्य कही गयी है ये धराधर ! जो सूर्य की इन तिथियों में सूर्य की आराधना कथा पारायण करने या श्रवण द्वारा करता है उसके समस्त पापों को यह नष्ट करती है एवं यह सदैव प्रशस्त एवं पुण्य रूप होने के नाते धर्म, अर्थ एवं काम की सफलता भी सदैव प्रदान करती रहती है ।२३-२४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में त्रिवर्ग सप्तमी व्रत निरूपण नामक एक सौ चौथा अध्याय समाप्त ।१०४।

अध्याय १०५

कामदा सप्तमीव्रत का निरूपण

ब्रह्मा बोले—हे क्ष्माधर एवं अव्यय ! फाल्गुनमास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में पुरुष या स्त्री को चाहिए कि उपवास रहकर सूर्य की पूजा करके भक्ति पूर्वक सूर्यनाम के जप करें और भोजन के समय मित अन्न भोजन करे तत्पश्चात् संयम पूर्वक जागते एवं शयन आदि करते समय सूर्य के नाम का ही कीर्तन करता रहे। इस प्रकार दूसरे दिन अष्टमी में स्नान करके तन्मय होकर सूर्य की अर्चना, ब्राह्मणों को दक्षिणा

रविमुद्दिश्य वै चाग्नौ घृतहोमकृतक्रियः । प्रणिपत्य जगन्नाथमिति वाणीनुदीरयेत् ॥४
यमाराध्य पुरा देवी सावित्री कामनाय वै । स मे ददातु देवेशः सर्वान्कामान्दिभावसुः ॥५
समभ्यर्च्य इति प्राप्तान्कृत्स्नान्कामान्यथेप्सितान् । स ददात्यखिलान्कामान्प्रसन्नो मे दिवस्पतिः ॥६
भ्रष्टराज्यश्च देवेन्द्रो यमभ्यर्च्य दिवस्पतिः । कामान्सम्प्राप्तवान्राज्यं स मे कामं प्रयच्छतु ॥७
एवमभ्यर्च्य पूजां च निष्पाद्येह विवस्वतः । भुञ्जीत प्रयतः सम्यग्घविष्यं पतगध्वज ॥८
फाल्गुने चैत्रवैशाखज्येष्ठे यस्य समापनम् । चतुर्भिः पारणं मासैरेभिर्निष्पादितं भवेत् ॥९
करवीरैश्चतुरो मासान्भक्त्या सम्पूजयेद्रविम् । कृष्णागुरुं दहेद्धूपं प्राश्यं गोशृङ्गजं जलम् ॥१०
नैवेद्यं खण्डवेष्टांस्तु दद्याद्विप्रेभ्य एव च । ततश्च श्रूयतामन्या ह्याषाढादिषु या क्रिया ॥११
जातीपुष्पाणि शस्तानि धूपो गौग्गुल उच्यते । कूपोदकं समश्नीयान्नैवेद्यं पायसं मतम् ॥१२
स्वयं तदेव चाश्नीयाच्छेषं पूर्ववदाचरेत् । कार्त्तिकादिषु मासेषु गोमूत्रं कायशोधनम् ॥१३
महाङ्गो धूप उद्दिष्टः पूजा रक्तोत्पलैस्तथा । कांसारं चात्र नैवेद्यं निवेद्यं भास्कराय वै ॥१४
प्रतिमासं च विप्राय दातव्या दक्षिणा तथा । कर्पूरं चन्दनं मुस्तागुरुं तगरं तथा ॥१५
ऊषणं शर्करा कृष्ण सुगन्धं सिह्लकं तथा । महाङ्गोऽयं स्मृतो धूपः प्रियो देवस्य सर्वदा ॥१६

अर्पित करने के उपरांत सूर्य के उद्देश्य से अग्नि में घी की आहुति अर्पित करे । अनन्तर उन्हें प्रणाम करके (जगन्नाथ) शब्द का उच्चारण भी करे ।१-४। पश्चात् यह भी कहे कि जिसकी सर्वाङ्गीण आराधना करके सावित्री देवी निखिल कामनाएँ प्राप्त की हैं वही देवनायक सूर्य उन समस्त कामनाओं को मुझे प्रदान कर अनुगृहीत करे ।५। भली भाँति पूजा करने से प्राप्त होने वाली उन समस्त कामनाओं से प्रसन्न होकर सूर्य देव मुझे वर प्रदान करने की कृपा करें ।६। तथा जिस प्रकार राज्यच्युत होने पर स्वर्गपति देवराज इन्द्र को उनकी आराधना द्वारा राज्य समेत अपनी समस्त कामनाएँ पुनः प्राप्त होती है उसी भाँति वही कामनाएँ मुझे भी प्राप्त हों ।७। हे पतगध्वज ! इस प्रकार उस विवस्वान् की पूजा करके संयम पूर्वक हविष्यान्न का भोजन करे ।८। इस प्रकार फाल्गुन, चैत्र, वैशाख एवं ज्येष्ठ, के इन्हीं मासों में इस व्रतानुष्ठान की समाप्ति होने के नाते इसमें चार पारण बताये गये हैं ।९। इन चारों मासों में करवीर (कनेर) के पुष्पों द्वारा सूर्य की पूजा करके काले अगुरु की धूप प्रदान करने के पश्चात् गाय के सींगों द्वारा पूत जल का प्राशन करने के उपरांत नैवेद्य और खांड से बने हुए भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मणों को समर्पित करे अब आषाढ आदि मासों के विधान को भी दता रहा हूँ सुनो ! ।१०-११। इसमें चमेली के उत्तम पुष्पों एवं गुग्गुल की धूप समर्पित कर कूपोदक का प्राशन करना बताया गया है । इस व्रत विधान में खीर का नैवेद्य अर्पित करके स्वयं भी इसी का भक्षण करें और शेष सभी क्रियाओं को पूर्ववत् करना चाहिए । उसी भाँति कार्तिक आदि मासों में गोमूत्र का प्राशन, महांग धूप, रक्त वर्ण के कमल पुष्पों द्वारा उन भास्कर की पूजा करके उन्हें कासार (कसेरु) का नैवेद्य प्रदान करना चाहिए ।१२-१४

एवं प्रति मास की पूजा में ब्राह्मण को दक्षिणा अवश्य प्रदान करना चाहिए । हे कृष्ण ! कपूर, चन्दन, मुस्ता (मोथा) अगुरु, तगर, सोंठ, मिर्च, पिपरामूल एवं सुगन्ध सिंह्लक मिलाकर बने धूप को महांग धूप बताया गया है जो सूर्य के लिए सदैव प्रिय है ।१५-१६। इस प्रकार प्रत्येक पारण में विशेष

प्रीणनं चेष्टया भानोः पारणेदारणे गते । यथाशक्ति यथायोगं वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥१७
सद्भावेनैव सप्ताश्वः पूजितः प्रीयते यतः । पारणान्ते यथाशक्त्या पूजितः स्नापितो रविः ॥१८
प्रीणितश्चेप्सितान्कामान्दद्यादव्याहतं हरे । एषा पुण्या पापहरा सप्तमी सर्वकामदा ॥१९
यथाभिलषितान्कामाँल्लभते गरुडध्वज । उपोष्यैतां त्रिभुवनं प्राप्तमिन्द्रेण वै पुरा ॥२०
पुत्रं प्रापच्च सावित्री पुत्रांस्तु अदितिस्तथा । यदवः कामनां प्राप्ता धौम्यो वेदमवाप्तवान् ॥२१
त्वप्राप्ता भार्गवी कृष्ण शङ्करः शुद्धिमाप्तवान् । पितामहत्वं प्राप्तोऽहं तत्प्रसादाज्जनार्दन ॥२२
अन्यैश्चाधिगताः कामास्तमाराध्य न संशयः । ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैर्योषिद्भिरेव च ॥२३
यं यं काममभिध्यायेत्तं तं प्राप्नोत्युपोषणात् । जनः प्राप्नोत्यसंदिग्धं भानोराराधनाद्यतः ॥२४
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति रोगतश्चापि मोदते । रोगाभिभूत आरोग्यं कन्या विन्दति सत्पतिम् ॥२५
समागत्य प्रवसित उपोष्यैतदवाप्नुयात् । सर्वान्कामानवाप्नोति गोगतश्चापि मोदते ॥२६
नापुत्रो नाधनो वापि न वानिष्टो न निर्घृणः । उपोष्यैतदव्रतं मर्त्यः स्त्रीजनो वापि जायते ॥२७
गोहेलिलोकमासाद्य मोदते शाश्वतीः समाः । गौरिकं यानमारूढस्तेजसा रविसन्निभः ॥२८

चेष्टाओं द्वारा सूर्य को प्रसन्न करना ही मुख्य बताया गया है। इसमें यथाशक्ति धन का व्यय करना चाहिए कृपणता कभी नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसे कार्य में कृपणता निषिद्ध बतायी गयी है।१७। क्योंकि सद्भावना रख कर ही पूजा करने से सात घोड़े पर अधिष्ठित होने वाले सूर्य प्रसन्न होते हैं। इसीलिए प्रत्येक पारण की समाप्ति में यथाशक्ति (सामग्रियों) द्वारा किये गये स्नान एवं पूजा से प्रसन्न होकर सूर्य उसे निर्वाध मनोवांछित सफलता प्रदान करते हैं। अतः हे हर ! यह सप्तमी इस प्रकार पुण्य पापहारिणी, एवं समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाली बतायी गयी है।१८-१९

हे गरुडध्वज ! पहले समय में इन्द्र ने इसी के उपवास आदि द्वारा तीनों लोकों (के आधिपत्य) की प्राप्ति की है।२०। एवं इसी के द्वारा जिस प्रकार सावित्री ने पुत्र, अदिति ने अनेक पुत्रों, यदुवंशियों ने अपनी कामनाएँ, धौम्य ने वेद, तुमने पृथ्वी, शंकर ने आत्मशुद्धि और उसी की कृपावश मैने भी पितामहत्व की प्राप्ति की है।२१-२२। इसी भाँति अन्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं स्त्रियाँ भी उस देव की आराधना करके कामनाएँ सफल की हैं।२३

मनुष्य जिस कामनावश (सप्तमी में) उनकी आराधना उपवास रहकर करता है उसकी वह कामना निश्चित सफल होती है। इसी प्रकार सूर्य की आराधना करके अपुत्री पुत्र, एवं सूर्य की प्राप्ति पूर्वक आनन्दानुभव, रोगी आरोग्य, कन्या उत्तम पति एवं प्रवासी निजगृह की प्राप्ति पूर्वक समस्त कामनाएँ सफल करता है तथा सूर्य लोक में आनन्दानुभव भी प्राप्त करता है।२४-२६। इसीलिए इस व्रत विधान के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने पर कोई भी मनुष्य अपुत्री, निर्धन, दुःखी एवं घृणा का पात्र नहीं रह जाता है अपितु चाँदी द्वारा रचित विमान पर बैठकर सूर्य की भाँति तेजस्वी होकर सूर्य लोक की प्राप्ति कर अनेकों वर्ष आनन्दानुभव करता है।२७-२८। हे कृष्ण उपरोक्त यह (पुरुष) इस पृथ्वी पर कभी जन्मग्रहण कर

पुनरेत्य महीं कृष्ण धनाघनसमो नृपः । क्ष्मातले स्यान्न संदेहः प्रसादाद्गोपतेर्नरः ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे कामदासप्तमीव्रतनिरूपणं
नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।१०५।

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

पापनाशिनीव्रतविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुनश्चैतन्महाभाग श्रूयतां गदतो मम । प्रोक्तं खगेन देवानां तिथिमाहात्म्यमुत्तमम् ॥१

विष्णुरुवाच

विजयातिजया चैव जयन्ती च महातिथिः । त्वत्तः श्रुता सुरश्रेष्ठ ब्रूहि मे पापनाशिनीम् ॥२
तथोत्तरायणं ब्रूहि शस्तं यद्भास्करार्चने । यत्र सम्पूजितो भानुर्भवेत्सर्वाघनाशनः ॥
तन्मे कथय यत्नेन भक्त्या पृष्टोऽक्षयं फलम् ॥३

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदर्क्षं तु रवेर्भवेत् । तदा स्यात्सा महापुण्या सप्तमी पापनाशिनी ॥४

सूर्य की अनुकम्पा द्वारा इन्द्र के समान निश्चित सर्वप्रिय राजा होता है ।२९।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में कामदा सप्तमी व्रत निरूपण नामक
एक सौ पाँचवा अध्याय समाप्त ।१०५।

अध्याय १०६

पापनाशिनीव्रतविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे महाभाग ! देवताओं कि प्रिय इस उत्तम तिथि के माहात्म्य को मैं फिर कह रहा हूँ, सुनो ! १

विष्णु ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! विजया, अतिजया, एवं जयंती नामक महातिथियों को मैने आपसे सुन लिया है अतः अब मुझे पापनाशिनी (सप्तमी) तिथि तथा उत्तरायण के महत्त्व को बताने की कृपा करें जो सूर्य की पूजा के लिए अत्यन्त उत्तम बताया गया है तथा जिसमें पूजित होने पर सूर्य समस्त अघों के नाश करते हैं । मैं जानता हूँ कि भक्ति पूर्वक इस विषय के प्रश्न करने पर भी अक्षय फल की प्राप्ति होती है ।२-३

ब्रह्मा बोले—शुक्ल पक्ष की सप्तमी में हस्त नक्षत्र की प्राप्ति होने से उस महापुण्य रूप वाली सप्तमी को पापनाशिनी बताया गया है ।४। उस तिथि में देवनायक एवं जगद्गुरु सूर्य की आराधना

तस्यां सम्पूज्य देवेशं चित्रभानुं जगद्गुरुम् । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥५
यश्चोपवासं कुरुते तस्यां नियतमानसः । सर्वपापविमुक्तात्मा सूर्यलोके महीयते ॥६
दानं यद्दीयते किञ्चित्तमुद्दिश्य दिवाकरम् । होमो वा क्रियते तत्र तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् ॥७
एक ऋग्वेदः पुरतो जप्तः श्रद्धापरेण तु । ऋग्वेदस्य समस्तस्य यच्छते तत्फलं ध्रुवम् ॥८
सामवेदफलं साम यजुर्वेदफलं यजुः । अथर्वा अथर्वांगिरसो निखिलं यच्छते रविः ॥९
तारका इव राजन्ते द्योतमाना दिवानिशम् । समभ्यर्च्य च सप्तम्यां देवदेवं दिवाकरम् ॥१०
यत्र पापमशेषं वैनाशयत्यत्र भास्करः । कर्तव्या सप्तमी कृष्ण तेनोक्ता पापनाशिनी ॥११
अस्यां समभ्यर्च्य रविं याति सौरपुरं नरः । विमानवरमारुह्य कर्पूरोद्भवमुत्तमम् ॥१२
तेजसा कविसंकाशः प्रभया सूर्यसन्निभः । कान्त्यात्रेयसमः कृष्ण शौर्ये हरिसमः सदा ॥१३
मोदते तत्र सुचिरं वृन्दारकगणैः सह । पुनरेत्य भुवं कृष्ण भवेद्वै क्ष्माधिपाधिपः ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे पापनाशिनीव्रतविधिवर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ।१०६।

करने से सात जन्मों के पापों से मुक्ति प्राप्त होती है । इसमें कोई संशय नहीं ।५। जो संयम पूर्वक इसमें उपवास करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है ।६। उस दिन सूर्य के उद्देश्य से किये गये दान और हवन सभी अक्षय फलदायक होते हैं। जिस भाँति ऋग्वेद के एक मन्त्र के उच्चारण करने से सम्पूर्ण ऋग्वेद के समान फल की प्राप्ति होती है । उसी भाँति यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्व वेदों के एक एक मंत्रों के उच्चारण करने से सूर्य उन वेदों के समस्त फलों को प्रदान करते हैं ।७-९। सप्तमी में देवाधिदेव सूर्य का भली भाँति पूजन करने से ताराओं की भाँति प्रकाशपूर्ण होकर वह रात दिन सुशोभित रहता है ।१०। एवं भास्कर उसके समस्त पापों का नाश करते हैं । हे कृष्ण ! इसी प्रकार वह पापनाशिनी बतायी गयी है । अतः इसके विधान को अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए ।११। क्योंकि इसमें सूर्य की आराधना करके मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति ऐसे विमान पर बैठकर करता है जो कपूर से निर्मित रहता है तथा हे कृष्ण ! वह शुक्र के समान तेज सूर्य की भाँति प्रभा, चन्द्रमा की भाँति कांति और हरि के समान शौर्य की प्राप्ति पूर्वक देवताओं के साथ चिरकाल तक आनन्दानुभव करता है और पश्चात् यहाँ आने पर वह राजाओं का राजा (महाराजा) होता है ।१२-१४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में पापनाशिनी व्रत विधान वर्णन नामक एक सौ छठवाँ अध्याय समाप्त ।१०६।

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

भानुपादद्वयव्रतवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तथान्यदपि धर्मज्ञ शृणुष्व गदतो मम । पदद्वयं जगद्धातुर्देवदेवस्य गोपतेः ॥१
यदेकपादपीठं हि तत्र न्यस्तं पदद्वयम् । स्वयमंशुमता कृष्ण लोकानां हितकाम्यया ॥२
वामनस्य पदं कृष्ण ज्ञेयं तै उत्तरायणम् । देवाद्यैः सकलैर्वन्द्यं दक्षिणं दक्षिणायनम् ॥३
अहं त्वं च सदा कृष्ण दक्षिणं पादमर्च्चतः । श्रद्धान्वितौ भास्करस्य हरीशौ वाममर्चतः ॥४
तस्मिन्यः प्रत्यहं सम्यग्देवदेवस्य मानवः । करोत्याराधनं तस्य तुष्टः स्याद्भानुमान्सदा ॥५

विष्णुरुवाच

कथमाराधनं तस्य देवदेवस्य गोपतेः । क्रियते देवशार्दूल तत्समाख्यातुमर्हसि ॥६

ब्रह्मोवाच

उत्तरे त्वयने कृष्ण स्नातो नियतमानसः । घृतक्षीरादिभिर्देवं स्नापयेत्तिमिरापहम् ॥७
चारुवस्त्रोपहारैश्च पुष्पधूपानुलेपनैः । समभ्यर्च्य ततः सम्यग्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥८
पदद्वयं व्रतं यस्य गृह्णीयाद्भानुतत्परः । वन्देत्स्नातश्चित्रभानुं ततश्च गरुडध्वज ॥९

अध्याय १०७

भानुपादद्वयव्रत विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे धर्मज्ञ ! देवाधिदेव एवं जगत् के धारण करने वाले सूर्य के (उत्तरायण और दक्षिणायन रूप) दोनों पदों (चरणों) को मैं बता रहा हूँ ।१। हे कृष्ण ! लोक के हित के लिए स्वयं अंशुमाली (सूर्य) ने उस सुमेरु पर्वत पर अपने उन दोनों चरणों को स्थापित किया है जिसमें बामन रूप सूर्य के उस देव-वन्दनीय वाम पद को उत्तरायण और दक्षिण पाद को दक्षिणायन बताया जाता है ।२-३। हे कृष्ण ! मैं और तुम उनके दक्षिणपाद की अर्चना करते हो, तथा अन्य इन्द्र आदि देव श्रद्धालु होकर भास्कर के बाम पाद की अर्चना करते हैं ।४। उसमें जो मनुष्य देवाधिदेव की प्रतिदिन पूजा करता है, उसके लिए सूर्य सदैव प्रसन्न रहते हैं ।५

विष्णु ने कहा—हे देवशार्दूल ! देवाधिदेव सूर्य की आराधना कैसे की जाती है आप उसके विधान को बताने की कृपा करें ।६

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! उनके उत्तरायण रहने के दिनों में संयम पूर्वक स्नान करके घी दूध आदि द्वारा अन्धकारनाशक (सूर्य) का स्नान कराये ।७। पश्चात् सुन्दर वस्त्रों के उपहार, पुष्प, धूप एवं लेपन अर्पित करें तथा ब्राह्मणों की तृप्ति करते हुए उनकी अर्चना एवं व्रत की समाप्ति करें ।८। हे गरुडध्वज ! सूर्य के लिए तत्पर होकर उनके पद द्वय (दक्षिणायन और उत्तरायण रूप) व्रत का आरम्भ करना

भुक्त्वान्नं चित्रभानुं तु चित्रभानुं व्रजंस्तथा । स्वपन्विबुध्यन्प्रणमन्होमं कुर्वंस्तथार्चयन् ॥१०
चित्रभानोरनुदिनं करिष्ये नामकीर्तनम् । यावदद्य दिनात्प्राप्तं क्रमशो दक्षिणायनम् ॥११
चलिते हुंकृते चैव वेदारम्भेऽपिवा सदा । तावद्वक्ष्ये चित्रभानुं यावदेवोत्तरायणम् ॥१२
यावज्जीवं च यत्किञ्चिज्ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा । करिष्येऽहं तथा चैव कीर्तयिष्यामि तं प्रभुम् ॥१३
यदानृतं किञ्चिद्वक्ष्ये तदा वक्ष्यामि तद्वचः । अज्ञानादथ वा ज्ञानात्कीर्तयिष्यामि तं प्रभुम् ॥१४
षण्मासमेकमनसा चित्रभानुमयं परम् । त स्मरन्मरणे याति यां गतिं सास्तु मे गतिः ॥१५
षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युर्यदि तस्मिन्भवेन्मम । तन्मया भास्करस्येह स्वयमात्मा निवेदितः ॥१६
परमात्ममयं ब्रह्म चित्रभानुमयं परम् । यमं ते संस्मरिष्यामि स मे भानुः परा गतिः ॥१७
यदि प्रातस्तथा सायं मध्याह्ने वा जपाम्यहम् । षण्मासाभ्यन्तरे न्यासः कृतो व्रतमयो मया ॥१८
तथा कुरु जगन्नाथ स्वर्गलोकपरायणः । चित्रभानो यथा शक्त्या भवान्भवति मे गतिः ॥१९
एवमुच्चार्य षण्मासं चित्रभानुमयं व्रतम् । तावन्निष्पादयेद्यावत्सम्पूर्णं दक्षिणायनम् ॥२०
ततश्च प्रीणनं कुर्याद्यथाशक्त्या विभावसोः । भोजयेद्ब्राह्मणान्दिव्यान्भौमांश्चापि सदक्षिणान् ॥२१

बताया गया है । जिसमें चित्रभानु नामक सूर्य की स्नान पूर्वक चन्दन आदि धारण करके ऐसी प्रतिज्ञा की जाती है कि भोजनोपरांत भी चलते, शयन करते, जागते तथा प्रणाम, हवन और अर्चना करते समय भी मैं चित्रभानु नामका कीर्तन करता रहूँगा। और उसी भाँति के नाम कीर्तन करता रहे ।९-११। तथा प्रतिज्ञा करते समय निम्नलिखित बातें भी उसमें जोड़ देनी चाहिए—चलते समय, हुंकार करते समय (गर्वोक्ति के) समय और वेदारम्भ समय में भी जब तक उत्तरायण का समय रहेगा 'चित्र भानु' नाम का नामोच्चारण (कीर्तन) करता रहूँगा. पश्चात् प्रतिदिन ऐसा कहता रहे कि जब तक मेरा जीवन है, उसमें ज्ञान-अज्ञान वश जो कुछ कर्तव्य करूँगा मैं (प्रतिक्षण) उसी नाम का कीर्तन करता रहूँगा ।१२-१३। एवं कभी कुछ असत्य भाषण के समय भी वही कहता रहूँगा और इस प्रकार मैं ज्ञान-अज्ञानवश उसी प्रभु का निरन्तर कीर्तन ही करता रहूँगा ।१४। इस भाँति छः मास तक एकचित्त होकर चित्रभानु के नामका तन्मय होकर कीर्तन करते हुए मरण हो जोने पर जो गति प्राप्त होती है वही गति मुझे भी तब प्राप्त हो और छः मास के भीतर यदि मेरा जीवन समाप्त भी हो जाये तो भी हानि नहीं होगी क्योंकि इसीलिए तन्मय होकर मैंने अपने आप को उन्हें समर्पित कर दिया है ।१५-१६। परमात्मा ब्रह्म रूप एवं चित्रभानु रूप उस सूर्य का स्मरण मैं अन्त में करता रहूँगा क्योंकि वही मेरी उत्तम गति है ।१७। और प्रातः काल मध्याह्न तथा सायंकाल में उन्हीं के नाम का जप करता रहूँगा । इस प्रकार मैंने छः मास के मध्य में अपने सभी कर्तव्य को व्रतमय कर दिया है ।१८। हे जगन्नाथ ! आप स्वर्ग लोक के निवासी हैं, हे चित्रभानु ! यथाशक्ति मैं (आराधना) करूँगा आप ही मेरी गति रूप हो ।१९। इस प्रकार कहते हुए छः मास के इस चित्रभानुमय व्रत का पालन दक्षिणायन के प्रारम्भ तक करना चाहिए ।२०। पश्चात् यथाशक्ति विभावसु (सूर्य) को प्रसन्न करके दिव्य और भौम ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा प्रेषित

पुण्याख्यानकथां कुर्यान्मार्तण्डस्य तथाग्रतः । पूजयेद्वाचकं भक्त्या यथाशक्त्या[1] च लेखकम् ।।२२
एवं व्रतमिदं कृष्ण यो धारयति मानवः ! इहैव देवशार्दूल मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।।२३
षण्मासाभ्यन्तरे चास्य मरणं यदि जायते । प्राप्नोत्यनशनस्योक्तं यत्फलं तदसंशयम् ।।२४
पदद्वयं च देवस्य सम्यक्स्तेन सदार्चितम् । भवत्येतज्जगौ भानुः पुरा चन्द्राय पृच्छते ।।२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे भानुपादद्वयव्रतवर्णनं
नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।१०७।

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

सर्वार्थावाप्तिसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कृष्णपक्षे[2] तु माघस्य सर्वाप्तिं सप्तमीं शृणु । यामुपोष्य समाप्नोति सर्वान्कामांस्तथा परान् ।।१
पाखण्डादिभिरालापं न कुर्याद्भानुतत्परः । पूजयेत्प्रणतो देवमेकाग्रमनसा शुभम् ।।२
माघाद्यैः पारणं मासैः षड्भिः सांक्रान्तिकं स्मृतम् । मार्तण्डः प्रथमं नाम द्वितीयं कः प्रकीर्तितम् ।।३
तृतीयं चित्रभानुश्च विभावसुरतः परम् । भगेति पञ्चमं ज्ञेयं षष्ठं हंसः स उच्यते ।।४

करे ।२१। पुनः सूर्य के सम्मुख भक्ति पूर्वक कथावाचक तथा लेखक का यथाशक्ति पूजन करके उनके द्वारा पवित्र कथाओं को सुने ।२२। हे देवशार्दूल ! हे कृष्ण ! इस प्रकार का मनुष्य इस व्रत विधान को समाप्त करता है तो उसे यहाँ ही समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।२३। यदि छह मास के मध्य में उसका मरण हो जाये, तो अनशन के सभी फल उसे प्राप्त होंगे इसमें संशय नहीं।२४। और सूर्य के दोनों पदों की विधिपूर्वक अर्चना के फल भी उसे प्राप्त होगें। ऐसा चन्द्रमा के पूछने पर सूर्य ने स्वयं बताया था।२५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में भानुपादद्वयव्रत वर्णन नामक
एक सौ सातवां अध्याय समाप्त ।१०७।

अध्याय १०८

सर्वार्थावाप्तिसप्तमी विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—माघ की शुक्ल सप्तमी जिसमें उपवास आदि करने पर सभी कामनाएँ सफल होती हैं, सर्वाप्ति' नामक बतायी गई है, उसे बता रहा हूँ सुनो ! उस दिन व्रत कर पाखंडी आदिकों से बातचीत न कर केवल एकाग्रचित्त होकर कल्याण रूप देव (सूर्य) की नम्रतापूर्वक सविधान पूजा ही करना बताया गया है । माघ आदि छह मास के पारण विधान जो संक्रान्ति काल में सुसम्पन्न करने के लिए बताये गये हैं उसमें पृथक्-पृथक् मार्तण्ड, अर्क, चित्रभानु; विभावसु भग और हंस के क्रमशः नामोच्चारण पूर्वक कीर्तन और पूजन करना चाहिए ।१-४

---

१. धराधरसमन्वितः । २. शुक्लपक्षे ।

पूर्णेषु षट्सु मासेषु पञ्चगव्यमुदाहृतम् । स्नाने च प्राशने चैव प्रशस्तं पापनाशनम् ।।५
प्रणामं देवदेवस्य कृत्वा पूजां यथाविधि । विप्राय दक्षिणां दद्याच्छ्रद्दधानश्च शक्तितः ।।६
पारणान्ते च देवस्य प्रीणनं भक्तिपूर्वकम् । कुर्वीत भक्त्या विधिवद्रविभक्त्या तु गृह्यते ।।७
नक्तभोजी तथा विष्णो तैलक्षारविवर्जितः । कृष्ण जागरणं रात्रौ सप्तम्यामथ वा दिने ।।८
एतामुषित्वा धर्मज्ञो हंसप्रीणनतत्परः । सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।९
यतः सर्वमवाप्नोति यद्यदिच्छति चेतसा । अतो लोकेषु विख्याता सर्वार्थावाप्तिसप्तमी ।।१०
कृताऽभिलषिता ह्येषा प्रारब्धा धर्मतत्परैः । पूरयत्यखिलान्कामान्संश्रुता च दिनेदिने ।।११
तमाराधयस्व रविं तथाथ गरुडध्वज । यथाराधितवान्भानुं भगणाधिपतिः पुरा ।।१२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे सर्वार्थावाप्तिसप्तमीवर्णनम्
नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।१०८।

छठें मास के व्यतीत होने पर पञ्चगव्य द्वारा स्नान एवं प्राशन करे जो इसके लिए अति उत्तम तथा पापनाशक बताया गया है ।५। इस प्रकार देवाधिदेव (सूर्य) की विधान पूर्वक प्रणाम एवं पूजा समाप्ति के उपरांत भक्ति पूर्वक यथाशक्ति ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान कर पारण के समाप्ति में सूर्य देव को भक्ति पूर्वक प्रसन्न करना नितान्त आवश्यक होता है क्योंकि भक्तिपूर्वक विधान द्वारा (वस्तुएँ) अर्पित करने पर सूर्य उस (भक्त को) अपना आत्मीय बना लेते हैं ।६-७। हे विष्णो ! नक्त व्रत (इसमें भोजन) तेल एवं नमक के त्याग पूर्वक सप्तमी में दिन रात का जागरण करना चाहिए इस प्रकार धर्मज्ञ ! सूर्य की प्रसन्नता के लिए कटिबद्ध उस पुरुष की समस्त कामनाएँ सफल होती हैं एवं उसे समस्त पातकों से मुक्ति भी प्राप्त होती है ।८-९। अतः जिस-जिस पदार्थ की वह प्राणी इच्छा करता है उन सभी की सफलता प्राप्त होती है, अतः लोक में यह सर्वाप्ति सभी मनोरथों को सफल करने वाली सप्तमी के नाम से विख्यात है ।१०। यदि धार्मिक पुरुषों द्वारा (विधान पूर्वक) इसकी सुसमाप्ति की गई हो या केवल उस विषय की अभिलाषा ही की गई हो अथवा प्रतिदिन इसकी चर्चा ही सुनी गई हो तो वैसा करने पर भी यह सप्तमी उसे निखिल कामनाएँ प्रदान करती है ।११। हे गरुडध्वज ! पहले जिस प्रकार चन्द्रमा ने उस विधान की समाप्ति की है, उसी भाँति तुम भी सूर्य की आराधना करो ।१२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सर्वार्थावाप्ति सप्तमी वर्णन नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ।१०८।

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

मार्तण्डसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मार्तण्डसप्तमीं कृष्ण यथान्यां[1] वच्मि तेऽनघ । शृणुष्वैकमना वीर गदतो मे शुभप्रदाम् ॥१
यस्याः सम्यगनुष्ठानात्प्राप्नोत्यभिमतं फलम् । पौषे मासे सिते पक्षे सप्तम्यां समुपोषितः ॥२
सम्यक्सम्पूज्य मार्तण्डं मार्तण्ड इति वै जपेत् । पूजयेत्कुतपं भक्त्या श्रद्धया परयान्वितः ॥३
धूपपुष्पोपहाराद्यैरुपवासैः समाहितः । मार्तण्डेति जपन्नाम पुनस्तद्गतमानसः ॥४
विप्राय दक्षिणां दद्याद्यथाशक्त्या खगध्वज । स्वपन्विबोधन्स्खलितो मार्तण्डेति च कीर्तयेत् ॥५
पाषण्डादिविकर्मस्थैरालापं च विवर्जयेत् । गोमूत्रं गोपयो वापि दधि क्षीरमथापि वा ॥६
गोदेहतः समुद्भूतं प्राश्नीयादात्मशुद्धये । द्वितीयेऽह्नि पुनः स्नातस्तथैवाभ्यर्चनं रवेः ॥७
तेनैव नाम्ना सम्भूय दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । ततो भुञ्जीत गोदोहसम्भूतेन समन्वितम् ॥८
एवमेवाखिलान्मासानुपोष्य प्रयतः शुचिः । दद्याद्गवादिकं विप्रान्प्रतिमासं[2] स्वशक्तितः ॥९
धारिता चेत्पुनर्वर्षे यथाशक्त्या गवादिकम् । दत्त्वा परं रवेर्भूयः शृणु यत्फलमश्नुते ॥१०

अध्याय १०९

मार्तण्डसप्तमी विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे अनघ ! हे कृष्ण ! कल्याणदायिनी उस मार्तण्ड सप्तमी को मैं बता रहा हूँ, जिस के अनुष्ठान करने से अभिलषित (वस्तु) की प्राप्ति होती है एकाग्र चित्त होकर सुनो ।१। पौष मास की शुक्ल सप्तमी में उपवास पूर्वक (सूर्य की) पूजा करके 'मार्तण्ड' नाम का जप करना बताया गया है। इसका विवरण इस प्रकार है। अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक धूप एवं पुष्पादि उपहारों द्वारा उपवास पूर्वक सूर्य की पूजा करने के पश्चात् ध्यानावस्थित होकर 'मार्तण्ड' नाम का जप करे ।२-४। हे खगध्वज ! पुनः यथाशक्ति ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करने के उपरांत सोते जागते एवं मूर्च्छितावस्था में भी मार्तण्ड नाम का ही कीर्तन करता रहे ।५। (उस दिन) पाखण्डी आदि दुराचारियों के साथ बात चीत का भी सम्पर्क न रखे। गोमूत्र, दूध, दही या कोई भी (वस्तु) जो गाय के देह से उत्पन्न हुई हो, आत्म शुद्धि के लिए उसका प्राशन करे। पुनः दूसरे दिन स्नान करके उसी भाँति सूर्य का पूजन तथा उन्हीं के नाम का कीर्तन करते हुए ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करे। पश्चात् दूध मिश्रित वस्तु (खीर) का भोजन कराये।६-८। इस प्रकार सभी मासों के व्रतों की अत्यन्त पवित्रता पूर्वक विधान पूर्वक समाप्ति करते हुए प्रत्येक मास में अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण के लिए गाय आदि वस्तु समर्पित करता रहे ।९। वर्ष के प्रारम्भ में यदि पुनः इस सप्तमी व्रत का अनुष्ठान करे तो अपनी शक्ति के अनुसार सूर्य के लिए अधिक से अधिक गाय आदि वस्तुएँ अवश्य समर्पित करे। इस प्रकार उसके जो फल प्राप्त होते हैं उन्हें मैं बता

---

१. यथान्यायं च वच्मि ते । २. विद्वान् ।

स्वर्णशृंगीं च पञ्चम्यां षष्ठ्यां च वृषभं नरः । प्रतिमासं द्विजातिभ्यो यद्दत्त्वा फलमश्नुते ॥११
तत्प्राप्नोत्यखिलं सम्यग्व्रतमेतदुपोषितः । तं च लोकमवाप्नोति मार्तण्डो यत्र तिष्ठति ॥१२
शाण्डेलेयसमः कृष्ण तेजसा नात्र संशयः । मार्तण्डसप्तमीमेतामुपोष्यैते गणा दिवि ॥१३
विद्योतमाना दृश्यन्ते लोकैरद्यापि भूधर । तस्मात्त्वमादिदेवेशं ग्रहेशं भास्करं रविम् ॥
अनयार्चय गोविन्द गोपतिं गोलसन्निभम् ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे मार्तण्डसप्तमीवर्णनम्
नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ।१०९।

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

सप्तमीकल्पेऽनन्तरसप्तमीव्रतवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां मासि भाद्रपदेऽच्युत । प्रणम्य शिरसादित्यं पूजयेत्सप्तवाहनम् ॥१
पुष्पधूपादिभिर्वीर कुतपानां च तर्पणैः । पाषण्डादिभिरालापमकुर्वन्नियतात्मवान् ॥२
विप्राय दक्षिणां दत्त्वा नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः । तिष्ठन्व्रजन्प्रस्थितश्च क्षुतप्रस्खलितादिषु ॥३

रहा हूँ सुनो ! ।१०। उसी भाँति पञ्चमी में सुवर्ण द्वारा अलंकृत किये हुए सीगों वाली गाय, षष्ठी में बैल के दान प्रतिमास में करने से मनुष्य जिस फल की प्राप्ति करता है, उस समस्त फल की प्राप्ति इस अनुष्ठान द्वारा होती है तथा मार्तण्ड जहाँ स्वयं निवास करते हैं उस लोक की भी प्राप्ति उसको हो जाती है ।११-१२। हे कृष्ण ! निश्चित उसका तेज अग्नि के समान हो जाता है । हे भूधर ! इस मार्तण्ड नामक सप्तमी के अनुष्ठान द्वारा ही आकाश में ये (तारों के) समूह जिन्हें लोक देखते है, आज भी प्रकाशित होकर विद्यमान हैं । अतः हे गोविन्द ! तुम भी इस सप्तमी के अनुष्ठान द्वारा आदि देवनायक, ग्रहेश, भास्कर, किरणमाली एवं गोलाकार उस सूर्य की आराधना करे ।१३-१४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में मार्तण्ड सप्तमी वर्णन
नामक एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त ।१०९।

अध्याय ११०

अनंतरसप्तमीव्रत विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे अच्युत ! भादों की शुक्ल सप्तमी में नतमस्तक होकर (प्रणाम पूर्वक) सात घोड़ों की सवारी पर चलने वाले आदित्य की पूजा करनी चाहिए ।१। हे वीर ! पुष्प एवं धूप आदि द्वारा मन्दोष्ण सूर्य को प्रसन्न करते हुए उस संयमी को चाहिए कि (उस दिन) पाखण्डी आदि अनाचारियों के साथ किसी प्रकार की बातें न करे ।२। तथा ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर रात में मौन होकर स्वयं भी भोजन करे, और कहीं भी ठहरते, चलते, यात्राओं में तथा छींकते एवं मूर्च्छावस्था में भी आदित्य नाम का

आदित्यनामस्मरणं कुर्वन्नुच्चारणं तथा । अनेनैव विधानेन मासान्द्वादश वै क्रमात् ।।४
उपोष्य पारणे पूर्णे समभ्यर्च्य जगद्गुरुम् । पुण्येन श्रावणेनेह प्रीणयन्पुष्टिमश्नुते ।।५
अनन्तं श्रावणेनेह यतः फलमुदाहृतम् । तेनादित्यं समभ्यर्च्य तदेव लभते फलम् ।।६
एवं यः पुरुषः कुर्यादादित्याराधनं शुचिः । प्राप्येह विपुलं भोगं धर्ममर्थं तथाव्ययम् ।।७
अमुत्रा लोकमायाति दिव्ये खे गीतसंयुते । नारी वा स्वर्गमभ्येत्य ह्यनन्तं फलमश्नुते ।।८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तकल्पेऽनन्तरसप्तमीव्रतवर्णनम्
नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ।११०।

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

सप्तमीकल्पेऽभ्यङ्गसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्रावणे मासि देवाग्र्यं सप्तम्यां सप्तवाहनम् । शुक्लपक्षे समभ्यर्च्य पुष्पधूपादिभिः शुचिः ।।१
पाखण्डादिभिरालापमकुर्वन्नियतात्मवान् । विप्राय दक्षिणां दत्त्वा नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः ।।२
अभ्यङ्गं देवदेवस्य वर्षे वर्षे नियोजयेत् । सप्तम्यामन्नमेवाग्र्यं शुभं शुक्लं नवं तथा ।।३

ही उच्चारण करता रहे। इन सुन्दर बारहों मासों के व्रतों को क्रमशः विधान पूर्वक समाप्ति करने के उपरांत पारण में भी उपवास पूर्वक जगद्गुरु (सूर्य) की अर्चना करके पुण्य कथाओं के सुनाने के द्वारा उन्हें (सूर्य को) प्रसन्न करे।३-५। अनन्त की कथा सुनने से जिस काल फल की प्राप्ति होती है, सप्तमी के द्वारा सूर्य की विधान पूर्वक पूजा करने से भी वही फल प्राप्त होता है।६। इस प्रकार जो पुरुष पवित्रता पूर्ण सूर्य की आराधना करता है, अत्यन्त भोग, धर्म तथा अक्षीण धन की प्राप्ति पूर्वक गायन वाद्य से सत्कृत होते हुए उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है। इस भाँति आराधना करने वाली, स्त्री ही क्यों न हो उसे भी स्वर्ग में अनन्त फलों की प्राप्ति होती है।७-८।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में अनंतर सप्तमी व्रत वर्णन
नामक एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त।११०।

अध्याय १११

अभ्यंगसप्तमीव्रत विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—श्रावण मास के शुक्ल सप्तमी में पवित्र होकर पुष्प एवं धूप आदि द्वारा देव श्रेष्ठ सूर्य की आराधना करते हुए उस दिन संयम पूर्वक रहे। क्योंकि पाखण्डी आदि दुराचारियों से किसी प्रकार की बातें न करने के लिए उसे विशेष सर्तक रहना चाहिए, तथा अनुष्ठान में ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान कर रात में मौन होकर उसे भोजन करना बताया गया है।१-२। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष में सूर्य के लिए अंग में लगाने के लिए अभ्यंग (तेल पर उपटन) प्रदान करना चाहिए। उसी प्रकार सप्तमी में सूर्य के लिए शुभ्र, शुक्ल, नवान्न (खीर) अर्पित करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार वाद्य आदि भी प्रदान करे। इस

विभवेषु तथान्येषु वादित्राण्येव वै विदुः । तथा देवस्य मासेऽस्मिन्नभ्यङ्गः परिगीयते ॥४
यस्तुचाराधयेद्भक्त्या भास्करस्य नरोऽच्युत । अभ्यङ्गं विधिवच्छक्त्या कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ॥५
शङ्खतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः । स दिव्यं यानमारूढो लोकमायाति हेलिनः ॥६
अनेनैव विधानेन मासान्द्वादश वै क्रमात् । उपोष्य पारणे पूर्णे दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥७
व्रतं यः पुरुषः कुर्यादादित्याराधनं शुचिः । स गच्छेत्परमं लोकं दिव्यं वै वनमालिनः ॥८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पेऽभ्यङ्गसप्तमीवर्णनम्
नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ।१११।

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

तृतीयपदव्रतवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं कृष्ण सदा भानुर्नरैर्भक्त्या यथाविधि । फलं ददात्यसुलभं सलिलेनापि पूजितः ॥१
न भानुर्जीवदानेन न पुष्पैर्न फलैस्तथा । आराध्यते सुशुद्धेन हृदयेनैव केवलम् ॥२
रागादपेतं हृदयं वाग्दुष्टा नानृतादिभिः । हिंसाविरहितं कर्म भास्कराराधनत्रयम् ॥३

भाँति इस मास की सप्तमी में भी सूर्य के लिए अभ्यंग समर्पित करने का विधान कहा गया है ।३-४। हे अच्युत ! जो मनुष्य भक्ति पूर्वक ब्राह्मण भोजन अभ्यंग प्रदान कर उनकी आराधना करता है उसे शंख भेरी की ध्वनि एवं ब्रह्म घोषों (मांगलिक पाठों) के समेत दिव्य विमान पर बैठकर सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।५-६। इस प्रकार क्रम से बारहों मासों के व्रत विधानों की समाप्ति करके पारण में उपवास पूर्वक (उनकी पूजा के अनन्तर ब्राह्मण को दक्षिणा समर्पित करना चाहिए ।७। जो पुरुष पवित्रतापूर्ण इस व्रत विधान द्वारा सूर्य की आराधना करता है, उसे वनमाली के दिव्य लोक की प्राप्ति होती है ।८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में अभ्यंग सप्तमी वर्णन नामक
एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।१११।

अध्याय ११२

तृतीयपद व्रत के विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! यदि इस प्रकार मनुष्य भक्ति पूर्वक विधान द्वारा केवल जल मात्र से ही सूर्य की सदा पूजा करे तो वे उसे वह समस्त दुर्लभ फल प्रदान करते हैं ।१। क्योंकि किसी प्रकार की हिंसा तथा पुष्पों एवं फलों द्वारा सूर्य की आराधना नहीं की जाती है अपितु केवल शुद्ध हृदय से पूजा की जाती है ।२। रागादि दोष रहित शुद्ध हृदय, असत्य आदि दोष रहित वाणी तथा हिंसा शून्य कर्म ये तीनों सूर्य की आराधना में प्रशस्त बताये गये हैं ।३। क्योंकि समाधि, दोष दूषित चित्त द्वारा आराधना करने पर

रागादिदूषिते चित्ते नास्पन्दी तिमिरापहः । बध्नाति तं नरं हंसः कदाचित्कर्दमाम्भसि ।।४
तमसो नाशनायालं चेन्दोर्लेखा ह्यनारतम् । हिंसादिदूषितं कर्म केशवाराधने कुतः ।।५
जनश्चित्ताप्रसादाद्वै न चाप तिमिरापहम् । तस्मात्सत्यस्वभावेन सत्यवाक्येन चाच्युत ।।६
अहिंसकेन चादित्यो निसर्गादिद तोषितः । सर्वस्वमपि देवाय यो दद्यात्कुटिलाशयः ।।७
स नैवाराधयेदेवं देवदेवं दिवाकरम् । रागादपेतं हृदयं कुरु त्वं भास्करार्पणम् ।।
ततः प्रापयसि दुष्प्राप्यमयत्नेनैव भास्करम् ।।८

विष्णुरुवाच

देवेशः कथितः सम्यक्काम्योऽयं भास्करो मयि । आराधनविधिं सर्वं भूयः पृच्छामि तं वद ।।९
कुले जन्म तथारोग्यं धनवृद्धिश्च दुर्लभा । त्रितयं प्राप्यते येन तन्मे वद जगत्पते ।।१०

ब्रह्मोवाच

मासे तु माघे सितसप्तमेऽह्नि हस्तर्क्षयोगे जगतः प्रसूतिम् ।
सम्पूज्य भानुं विधिनोपवासी सुगन्धधूपान्नवरोपहारैः ।।११
गृही तु पुष्पैः प्रतिपाद्य पूजां दानादियुक्तं व्रतमब्दमेकम् ।
दद्याच्च दानं मुनिपुङ्गवेभ्यस्तत्कथ्यमानं विनिबोध धीर ।।१२

सूर्य कभी प्रसन्न नहीं होते हैं क्या पङ्क दूषित जल में अपने रहने का भ्रम मनुष्य के हृदय में उत्पन्न कर (हंस) वहाँ कभी उसे अपने लिए अनुरक्त कर सकता है । अर्थात् कभी नहीं, क्योंकि वह (हंस) तो ऐसे स्थान में कभी रहेगा ही नहीं ।४। जब चन्द्रमा की किरणें अविरत बादलों से अनावृत होने पर ही तम का नाश करती है, तो भला भगवान् की आराधना के लिए हिंसा आदि दोष दूषित कर्म प्रशस्त कहे जा सकते हैं ।५। उस प्रकार अप्रसन्न होकर (दोष-शक्ति-एवं हृदयहीन) होकर मनुष्य अन्धकार नाशक (सूर्य) को कैसे प्राप्त कर सकता है ? हे अच्युत ! इसलिए सत्यस्वभाव, सत्यवाक्य एवं अहिंसक कर्म द्वारा आराधना करने पर सूर्य स्वभावतः प्रसन्न हो जाते हैं । यद्यपि कुटिल मनुष्य सूर्य के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दे तो भी उससे देवाधिदेव सूर्य की आराधना समुचित रूप से सम्पन्न हुई ऐसा कभी नहीं कहा जायेगा । इसलिए रागादि दोष हीन अपने हृदय को तुम भास्कर के लिए अवश्य समर्पित करो, क्योंकि इसी प्रकार की आराधना करने पर तुम्हें अनायास दुष्प्राप्य भास्कर की प्राप्ति अवश्य होगी ।६-८

विष्णु ने कहा—यद्यपि आप ने मेरे लिए देव नायक सूर्य की काम्य आराधना के विधान को बतादिया है किन्तु मैं फिर भी उसे सुनना चाहता हूँ ।९। हे जगत्पते ! उत्तम कुल में जन्म, आरोग्य एवं दुर्लभ धन की वृद्धि ये तीनों जिसके द्वारा प्राप्त हो सके मुझे आप वही बतायें ।१०

ब्रह्मा बोले—माघ मास की शुक्ल सप्तमी के दिन हस्त नक्षत्र के समागम होने पर उपवास रहकर सुगन्ध, धूप एवं अन्नादि के उपहारों द्वारा जगत् के कारण भूत सूर्य की आराधना करनी चाहिए ।११। इस प्रकार गृहस्थ पुरुष को पुष्पों के समर्पण पूजा तथा दान आदि करने के द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करते हुए अपने पूर्ण वर्ष के व्रत विधानों को सुसम्पन्न करना चाहिए ऐसा कहा गया है जिसमें श्रेष्ठ मुनियों को ही दान लेने का विधान है। हे वीर ! उन सब को मैं विश्वस्त रूप से बता रहा हूँ। सुनो ! ।१२। उपरोक्त

वज्रं तिलान्व्रीहियवान्हिरण्यं यवान्नमम्भः करकामुपानहम् ।
छत्रोपपन्नं गुडफेणिताढ्यं दद्यात्क्रमाद्वस्तु अनुक्रमेण ।।१३
यद्येष[1] वर्षे विधिनोदितेन यस्यां तिथौ लोकगुरुं प्रपूज्य ।
अश्नन्तनान्यात्मविशुद्धिहेतोः सम्प्राशनानीह निबोधतानि ।।१४
गोमूत्रमम्भश्च रसे नु शाकं दूर्वा दधिव्रीहितिलान्यवांश्च ।
सूर्यांशुतप्तं जलमम्बुजाक्ष क्षीरं च मासैः क्रमशः प्रयुज्यः ।।१५
कुले प्रधाने धनधान्यपूर्णे पद्मावृते ह्यस्तसमस्तदुःखे ।
प्राप्नोति जन्माऽविकलेन्द्रियश्च भवत्यरोगो मतिमान्सुखी च ।।१६
तस्मात्त्वमप्येतदमोघवीर्य दिवाकराराधनमप्रमत्तः ।
कुरु प्रभावं भगवन्तमीशमाराध्य कामानखिलानुपेहि ।।१७
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे तृतीयपदव्रतवर्णनं
नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११२।

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यालयवन्दनमार्जनादिवर्णनम्

विष्णुरुवाच

सुरज्येष्ठ पुनर्ब्रूहि यत्पृच्छाम्यहमादितः । यत्फलं समवाप्नोति कारयित्वा रवेर्गृहम् ।।१

व्रत विधान के अनुष्ठान में वज्र, पुष्प, तिल, व्रीहि (धान) यव, सुवर्ण, जलपूर्ण पात्र उपानह (जूते), छत्र (छाता) ओर बताशे, इन वस्तुओं को क्रमशः उन्हें अर्पित करना चाहिए ।१३। इस प्रकार विधान द्वारा वर्ष के जिस मास की तिथि में लोकगुरु सूर्य की पूजा की जाये, उसी के अनुसार आत्मशुद्धि के लिए प्राशन भी करना चाहिए उसे भी बता रहा हूँ सुनो ! ।१४। हे अम्बुजाक्ष ! गोमूत्र, जल, घी, शाक, दूर्वा, दही धान, तिल, जवा, सूर्य की किरणों द्वारा संतप्त जल और क्षीर इन्ही वस्तुओं का प्राशन क्रमशः मासों में करने के लिए बताये गये हैं ।१५। इसे सुसम्पन्न करने पर वह इस भाँति के उत्तम कुल में जन्म ग्रहण करता है जहाँ पूर्ण धनधान्य समेत अथाह लक्ष्मी भरी पड़ी हो और वह सदैव इन्द्रियों की अविकलतृप्ति पूर्वक, बुद्धिमान्, एवं निरन्तर सुखी रहता है ।१६। इसलिए तुम भी सावधान होकर अमोघवीर्य ईश एवं भगवान् दिवाकर की आराधना करके अपनी समस्त कामानाएँ पूरी करो ।१७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में तृतीयपद व्रत वर्णन नामक
एक सौ बारहवां अध्याय समाप्त ।११२।

अध्याय ११३

आदित्यालयवन्दनमार्जन विधि का वर्णन

विष्णु ने कहा—हे सुरज्येष्ठ ! मैं जो कुछ पूँछ रहा हूँ, आप उसे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें।

---

१. पठेच्च पाद्यम् ।

देवार्चां कारयित्वा तु यत्पुण्यं पुरुषोऽश्नुते । पूजयित्वा च विधिवदनुलिप्य च यत्फलम् ॥२
कानि माल्यानि शस्तानि कानि नार्हति भास्करः । के धूपा भानुदयिताः के वर्ज्याश्च जगत्पतेः ॥३
उपचारफलं किं स्यात्किं फलं गीतवादिते । घृतक्षीरादिना यत्तु स्नापिते भास्करे फलम् ॥४
यथोपलेपनादौ च फलमभ्युक्षितेन तु । दिवाकरगृहे तात तदशेषं वदस्व मे ॥५

ब्रह्मोवाच

साधु वत्स यदेतत्त्वं मार्तण्डस्येह पृच्छसि । शुश्रूषणे विधिं पुण्यं तदिहैकमनाः शृणु ॥६
यस्तु देवालयं भानोर्दार्वं शैलमथापि वा । कारयेन्मृन्मयं चापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७
अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यन्महत्फलम् । प्राप्नोति तत्फलं भानोर्यः कारयति मन्दिरम् ॥८
कुलानां शतमागामि समतीतं कुलं शतम् । कारयेद्भगवद्धाम स नयेदर्कलोकताम् ॥९
सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु । भानोरालयविन्यासप्रारम्भादेव नश्यति ॥१०
सप्तलोकमयो भानुस्तस्य यः कुरुते गृहम्[1] । प्रतिष्ठां समवाप्नोति स नरः साप्तलौकिकीम् ॥११
प्रशस्तदेशभूभागे प्रशस्तं भवनं रवेः । कारयेदक्षयाँल्लोकान्स नरः प्रतिपद्यते ॥१२
इष्टकाचयविन्यासो यावद्वर्षाणि तिष्ठति । तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्तुर्दिवि संस्थितिः ॥१३
प्रतिमां लक्षणवतीं यः कारयति मानवः । दिवाकरस्य तल्लोकमक्षयं प्रतिपद्यते ॥१४

सूर्य के लिए मन्दिर बनवाने से किस फल की प्राप्ति होती है इसी प्रकार देव की पूजा करने से पुरुष को प्राप्त होने वाले पुण्य एवं अनुलेपन करने के फल को बतलाते हुए आप सूर्य के लिए कौन प्रमुख प्रशस्त हैं कौन अप्रशस्त तथा जगत्पति सूर्य के लिए कौन धूप प्रिय है कौन अप्रिय इसके निर्णय के समेत उपचार के फल गायन वाद्यों के फल घी, दूध, द्वारा सूर्य के स्नान कराने के फल तथा सूर्य के शरीर में लेपन एवं अभिषेक करने के द्वारा प्राप्त होने वाले इन अशेष फलों को बताने की कृपा करें ! ।१-५

ब्रह्मा बोले—हे वत्स ! मार्तण्ड के निमित्तक यह तुम्हारा साधु प्रश्न करना उनके लिए तुम्हारे अत्यन्त अनुरागी होने का परिचायक है, उसको मैं बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! ।६। जो काष्ठ तथा मिट्टी द्वारा सूर्य के मन्दिर बनवाते हैं उनके पुण्य फल को भी कह रहा हूँ सुनो ! सूर्य के लिए मन्दिर बनवाने वाले को प्रतिदिन यज्ञ करने के समान् महान् फल प्राप्त होते हैं ।७-८। भगवान् (सूर्य) के लिए मन्दिर निर्माण कराने वाले के सौ पूर्व और सौ पर (आगे आने वाली) पीढ़ियों के लोग सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं ।९। सूर्य के लिए मन्दिर के निर्माण आरम्भ करते ही उसके सात जन्मों में पाप थोड़े बहुत जो कुछ रहते हैं (भी) नष्ट हो जाते हैं ।१०। क्योंकि सूर्य सप्त लोकमय हैं, इसलिए उनके मन्दिर की जो रचना करता है उसे सातों लोकों की प्राप्त होती है ।११। इस प्रकार उत्तम देश की भूमि में जो सूर्य के लिए सुन्दर मन्दिर का निर्माण करता है उसे अक्षय लोकों की प्राप्ति होती है ।१२। और उनके लिए बनाये गये ईंट के मन्दिर की स्थिति जितने वर्ष रहती है उतने सहस्र वर्ष तक उसके कर्ता की स्वर्ग में स्थिति रहती है ।१३। इसी भाँति जो (सूर्य की) लक्षणों से युक्त प्रतिमा बनवाता है, उसे अनेक अक्षय

---

१. क्षयम् ।

षष्टिर्वर्षसहस्राणां सहस्राणि स मोदते । लोके सुमनसां वीर प्रत्येकं मधुसूदन ।।१५
प्रतिष्ठाप्य रवेरर्चां सुप्रशस्ते निवेशने । पुरुषः कृतकृत्योऽस्ति न दोषफलमश्नुते ।।१६
ये भविष्यन्ति येऽतीता आकल्पं पुरुषाः कुले । तांस्तारयति संस्थाप्य देवस्य प्रतिमां रवेः ।।१७
अनुशिष्टाः किल पुरा यमेन यमकिङ्कराः । पाशदण्डकराः कृष्ण प्रजासंयमनोद्यताः ।।१८

यम उवाच

विहरन्तु यथान्यायं नियोगो मेऽनुपाल्यताम् । नाज्ञाभङ्गं करिष्यन्ति भवतां जन्तवः क्वचित् ।।१९
केवलं ये जगन्मूलं विवस्वन्तमुपाश्रिताः । भवद्भिः परिहर्तव्यास्तेषां नैवेह संस्थितिः ।।२०
ये तु दैवम्वता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः । पूजयन्ति सदा भानुं ते च त्याज्या सुदूरतः ।।२१
तिष्ठंश्च प्रस्वपन्गच्छन्नुत्तिष्ठन्स्खलिते क्षुते । सङ्कीर्तयति देवं यः स नस्त्याज्यः सुदूरतः ।।२२
नित्यनैमित्तिकैर्देवं ये यजन्ति तु भास्करम् । न चालोक्या भवद्भिस्ते यद्ध्यानं हंति वो गतिम् ।।२३
ये पुष्पधूपवासोऽभिर्भूषणैश्चापि वल्लभैः । अर्चयन्ति न ते ग्राह्या मत्पितुस्ते परिग्रहाः ।।२४
उपलेपनकर्तारः कर्तारो मार्जनस्य ये । अर्कालये परित्याज्यं तेषां त्रिपुरुषं कुलम् ।।२५
ये वायतनं भानोः कारितं तत्कुलोद्भवः । पुमान्स नावलोक्यो वै भवद्भिर्दुष्टचक्षुषा ।।२६

लोकों की प्राप्ति होती है ।१४। हे वीर ! हे मधुसूदन ! वहाँ वह देवताओं के प्रत्येक लोक में साठ सहस्र वर्ष के सहस्र वर्ष (अनन्त काल) तक आनन्द का अनुभव करता है ।१५। इस प्रकार उस सुन्दर मन्दिर में सूर्य की प्रतिष्ठा एवं अर्चना करके पुरुष कृतकृत्य हो जाता है और उसे दोष-फल का भागी कभी नहीं होना पड़ता ।१६। सूर्य की प्रतिमा की (मन्दिर में) प्रतिष्ठा करने वाला (व्यक्ति) अपने अतीत तथा कल्प पर्यंत तक होने वाले परिवारों को (उद्धारक) तार देते हैं ।१७। हे कृष्ण ! पहले समय में एक बार यम ने अपने दूतों को जो प्रजाओं के निग्रह करने के लिए उद्यत होकर प्रस्थान कर रहे थे इसी भाँति की शिक्षा दी थी ।१८

यम ने कहा—न्यायोचित ढंग से चारों ओर अच्छी तरह विचरण करो और मेरी आज्ञा का पालन करो ! कोई भी प्राणी आप्त लोगों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकेगा ।१९। एक बात ध्यान में अवश्य रखना । जगत् के मूल कारण भगवान् सूर्य की उपासना करने वालों के समीप कभी मत जाना क्योंकि वे यहाँ नहीं आ सकते ।२०। इसलिए जो सूर्य के भक्त उन्हीं में लीन होकर तत्परता से सूर्य की पूजा करते हों दूर से ही उनका परित्याग करना ।२१। इसी प्रकार स्थित रहते शयन करते, आते, जाते, उठते, मूर्च्छावस्था तथा छींकते आदि सभी समय जो भगवान् सूर्य के नाम का कीर्तन न करता रहे उन लोगों को सुदूर से ही उसका त्याग करना चाहिए ।२२। और नित्य या नैमित्तिक (किसी पर्व आदि काल) में जो भगवान् भास्कर की पूजा करता है उसकी ओर देखता तक नहीं क्योंकि उसकी ओर देखते ही तुम्हारी शक्ति की गति नष्ट हो जायगी ।२३। इसलिए जो लोग पुष्प, धूप, वस्त्र, एवं सुन्दर आभूषणों द्वारा (उनकी) पूजा करते हैं उन्हें छोड़ देना क्योंकि वे मेरे पिता (सूर्य) के भक्त है ।२४। उसी भाँति जो सूर्य के मन्दिर में लीपने या झाड़ू द्वारा सफाई करता है उसकी तीन पीढ़ियों का त्याग करना ।२५। जिसने सूर्य के लिए सुन्दर, मन्दिर का निर्माण कराया हो, उसके कुल में उत्पन्न पुरुष को आप लोग अपनी

येनार्चा भगवद्भक्त्या मत्पितुः कारिता शुभा । नराणां तत्कुलं वीराः सदा त्याज्यं सुदूरतः ।।२७
भवतां भ्रमतां यत्र भानुसंश्रयमुद्रया । न चाज्ञाभङ्गकृत्कश्चिद्भविष्यति नरः क्वचित् ।।२८
इत्युक्ताः किङ्करास्तेन यमेन सुमहात्मना । अनाश्रित्य वचः कृष्णः सत्राजितमथो गताः ।।२९
तस्य ते तेजसः सर्वे भानोर्भक्तस्य सुव्रत । मोहिताः पतिता भूमौ यथा च विहगा नगात् ।।३०
एतां महाफलां योर्चां भानोः कारयते नरः । तवाख्यानं महाबाहो गृहं कारयितुश्च यत् ।।३१
यज्ञा नराणां पापौघनाशकाः सर्वकामदाः । तथैवेष्टो जगद्भानुः सर्वयज्ञमयो रविः ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यालयवन्दनमार्जनादिवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११३।

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यस्नापनयोगवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

स्थापितां प्रतिमां भानोः सम्यक्सम्पूज्य मानवः । यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।।१
यः स्नापयति देवस्य घृतेन प्रतिमां रवेः । प्रस्थेप्रस्थे द्विजाग्र्याणां स ददाति गवां शतम् ।।२

दुष्ट आँखो (दण्ड देने के विचार) से कभी न देखना ।२६। एवं मेरे पिता भगवान् सूर्य की अर्चा (पूजा) जो स्वयं किया या कराया हो उनके कुल में उत्पन्न प्राणियों का अत्यन्त दूर से ही त्याग करना ।२७। केवल सूर्य के आश्रितों (भक्तों) के अतिरिक्त और कोई भी मनुष्य भ्रमण करते हुए आप लोगों की आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं कर सकता है ।२८। इस प्रकार उन महात्मा यम के कहने पर भी वे किंकर गण उनकी (यमकी) बातों को अवहेलना कर भक्ति शिरोमणि सत्राजित के पास पहुँच ही गये ।२९। हे सुव्रत! उस सूर्य भक्त के तेज से मूर्च्छित होकर वे गण पर्वत के ऊपर से गिरती हुए पक्षियों की भाँति भूमि पर गिर गये ।३०। इसलिए हे महाबाहो! जो सूर्य की इस महान् फल दायिनी पूजा को सुसम्पन्न करता है उसे तथा उनके लिए मन्दिर बनवाने वाले को जो फल प्राप्त होते हैं वे सभी फल इस तुम्हारे आख्यान (कथा के) कहने-सुनने से प्राप्त होंगे ।३१। मनुष्यों के लिए जिस भाँति यज्ञ पाप समूह नाशन एवं समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाले बताये गये हैं उसी भाँति सूर्य भी संसार के लिए प्रिय एवं अभीष्ट प्रदायक कहे गये हैं क्योंकि सूर्य समस्त यज्ञमय रूप हैं ।३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यालय वन्दनमार्जनादि वर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।११३।

अध्याय ११४

आदित्यस्नापनयोग विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सूर्य की प्रतिमा (मूर्ति) की प्रतिष्ठा करके जिन-जिन उद्देश्यों से उनकी पूजा मनुष्य करता है, उसकी सभी कामनाएँ निश्चित सफल होती हैं ।१। जो सूर्य की प्रतिमा का स्नान घी द्वारा

गवां शतस्य विप्रेभ्यो यद्दत्तस्य भवेत्फलम् । घृतप्रस्थेन तद्भानोर्भवेत्स्नातकयोगिनाम् ॥३
भूरिद्युम्नेन सम्प्राप्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा । घटोदकेन मार्तण्डप्रतिमा स्नापिता किल ॥४
प्रतिमामसिताष्टम्यां घृतेन जगतीपतेः । स्नापयित्वा समस्तेभ्यः पापेभ्यः कृष्ण मुच्यते ॥५
सप्तम्यामथ षष्ठयां वा गव्येन हविषा रवेः । स्नपनं तु भवेच्छ्रेष्ठं महापातकनाशनम् ॥६
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यत्पापं कुरुते नरः । तत्क्षालयति सन्ध्यायां घृतेन स्नपनं रवेः ॥७
सर्वयज्ञमयो भानुर्हव्यानां परमं घृतम् । तयोरशेषपापानां क्षालकः सङ्गमो भवेत् ॥८
येषु क्षीरवहा नद्यो ह्रदाः पायसकर्दमाः । मोदते तेषु लोकेषु क्षीरस्नानकरो रवेः ॥९
आह्लादं निर्वृतिस्थानमारोग्यं चारुरूपताम् । सप्तजन्मान्यवाप्नोति क्षीरस्नानपरो रवेः ॥१०
दध्यादीनां विकाराणां क्षीरतः सम्भवो यथा । यथा च विमलं क्षीरं यथा निर्वृतिकारकम् ॥
तथा च निर्मलं ज्ञानं भवत्यपि न संशयः ॥११
ग्रहानुकूलतां पुष्टिं प्रियत्वमखिले जने । करोति भगवान्भानुः क्षीरस्नपनतोषितः ॥१२
सर्वस्य स्निग्धतामेति दृष्टमात्रे प्रसीदति । घृतक्षीरेण देवेश स्नापिते तिमिरापहे ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यस्नापनयोगवर्णनं
नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।११४।

करता है, उसने मानो एक-एक सेर घी के दान में सौ-सौ गायों का दान किया ऐसा समझना चाहिए ।२। क्योंकि ब्राह्मण को सौ गायों के दान देने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वही फल सूर्य के एक सेर घी द्वारा स्नान कराने वाले स्नातक योगी को भी प्राप्त होता है ।३। घड़े के जल द्वारा मार्तण्ड (सूर्य) की मूर्ति के स्नान कराने वाले को असंख्य धन एवं सातों द्वीपों समेत वसुंधरा (पृथ्वी) प्राप्त होती है ।४। हे कृष्ण ! कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में जगत्-पति सूर्य की घी से स्नान कराने से उसे समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।५। सप्तमी अथवा षष्ठी में उसे घृत से स्नान कराना श्रेष्ठ एवं महान् पातक का नाशक बताया गया है ।६। क्योंकि अज्ञान वश जो कुछ पाप मनुष्य करता है वह सभी पाप संध्या समय सूर्य को घी द्वारा स्नान कराने से नष्ट हो जाता है ।७। जिस प्रकार सूर्य सर्व यज्ञमय हैं उसी प्रकार हव्यों में परम श्रेष्ठ भी है, इसलिए उन दोनों (सूर्य एवं घी) का संगम होना निखिल पापों का नाशक बताया गया है ।८। इसलिए जहां सदैव दूध की नदियाँ बहती हैं, और तालाब में खीर रूपी पंक भरे पड़े हैं सूर्य के उन्हीं लोकों में पहुँचकर उन्हें दूध द्वारा स्नान कराने वाले वह व्यक्ति आनन्द का अनुभव करते हैं ।९। एवं प्रतिदिन दूध द्वारा सूर्य के स्नान कराने वाला पुरुष सात जन्म तक, हर्षातिरेक, निर्वृत्ति, आरोग्य एवं सौन्दर्य पूर्ण रूप प्राप्त करता रहता है ।१०। यद्यपि दही आदि (नवनीत, घी) दूध का विकार है, किन्तु उसी भाँति उसकी निर्मलता है इसलिए दूध जितना निर्मल एवं आत्मतुष्टि प्रदान करने वाला होता है, उससे स्नान कराने पर वैसा ही निर्मल ज्ञान भी उसे निश्चित प्राप्त होता है ।११। क्योंकि दूध द्वारा स्नान कराने से प्रसन्न होकर सूर्य ग्रहों की अनुकूलता एवं पुष्टि प्रदान करते हुए उसे लोक प्रिय बना देते हैं ।१२। घी एवं दूध द्वारा स्नान कराने पर देवनायक तथा अन्धकारनाशक (सूर्य), इस पुरुष को सभी लोगों का ऐसा प्रिय बना देते हैं जिसे देखते ही लोग आनन्द विभोर हो जाते हैं ।१३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य-स्नापन योग वर्णन
नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।११४।

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजाविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रशंसन्ति महात्मानः संवादं भास्कराश्रयम् । गौतम्या सह कौशल्या सुमनायां सुरालये ।।१
स्वर्गेऽतिशोभनां दृष्ट्वा कौशल्यां पतिना सह । ब्राह्मणी गौतमी नाम पर्यपृच्छत विस्मिता ।।२

गौतम्युवाच

शतशः सन्ति कौशल्ये देवाः स्वर्गनिवासिनः । देवपत्न्यस्तथैवैताः सिद्धाः सिद्धाङ्गनास्तथा ।।३
न तेषामीदृशो गन्धो न कान्तिर्न सुरूपता । न वाससी शोभने ये यथा ते पतिना सह ।।४
नैवाभरणजातानि तेषां भ्राजन्ति वै तथा । यथा तव यथा पत्युर्न च स्वर्गनिवासिनाम् ।।५
सुस्नातचैलतश्चैव युवयोरतिरिच्यते । लेखाद्यानामपीशानां क्षयातिशयवर्जितः ।।६
तपःप्रभावो दानं वा होमो वा कर्मसंज्ञितः । युवयोर्यत्समाचक्ष्व तत्सर्वं वरवर्णिनि ।।
येन मे विक्रमे बुद्धिर्मनुजा येन सङ्गताः ।।७

कौशल्योवाच

यज्ञो यज्ञेश्वरो भानुरावाभ्यां जातु तोषितः । स्वर्गप्राप्तिरियं तस्य कर्मणः फलमुत्तमम् ।।८

अध्याय ११५

सूर्य-पूजा की विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—स्वर्ग लोक में गौतमी एवं कौशल्या के सूर्य विषयक संवाद को जिसकी महात्मा लोग अत्यन्त प्रशंसा करते हैं, मैं तुम्हें सुना रहा हूँ ।१। एक समय स्वर्ग लोक में पति के साथ स्थित सर्वाङ्ग सुन्दरी कौशल्या के सौन्दर्यादि गुणों से आश्चर्य चकित होकर ब्राह्मणी गौतमी ने उनसे पूछा— ।२

गौतमी ने कहा—हे सुन्दरि ! इस स्वर्ग लोक में यहाँ के निवासी सैकड़ों देवता एवं उनकी स्त्रियाँ सिद्ध तथा सिद्धाङ्गनाएँ वर्तमान हैं ।३। किन्तु हे सुशोभने ! पति के साथ रहने वाली तुम्हारी शरीर की जिस प्रकार कांति, गंध, सौन्दर्य एवं वस्त्र हैं, वैसी इन लोगों में किसी की नहीं है ।४। और जिस भाँति तुम्हारे तथा तुम्हारे पति देव के आभूषण सुशोभित हैं, उस भाँति किसी भी स्वर्ग निवासी के नहीं हैं ।५। एवं भलीभाँति सवस्त्र स्नान करने के उपरान्त इन वस्त्रों के धारण करने से तुम दोनों की (सभी लोगों) से अतुलनीय छवि हो गयी है यहाँ तक कि प्रधान देवताओं से भी अधिक सौन्दर्य पूर्ण हो क्योंकि उनमें कुछ दोष भी हैं पर तुम लोगों में दोष लेश मात्र का भी नहीं है ।६। हे वरवर्णिनि! मुझे ऐसी बात का आश्चर्य हो रहा है कि तुम दोनों ने यह (अनुपम सौन्दर्य) कैसे प्राप्त किया है, यह तप का प्रभाव है ! या दान, हवन अथवा किसी अन्य कर्म का । अस्तु, जो भी कुछ हो मुझसे अवश्य कहो ! मैं भी उसे सुसम्पादित करने के लिए दृढ़ निश्चय कर चुकी हूँ तथा मनुष्य भी उसे करने के लिए तैयार ही होंगे ।७

कौशल्या बोली—एक समय हम दोनों ने यज्ञ एवं यज्ञेश्वर रूप सूर्य को प्रसन्न किया था, उसी कर्म

सुरूपता ततः प्रीतिः पश्यतां चारुवेषिता । यत्पृच्छसि महाभागे तदप्येषां वदामि ते ।।९
तीर्थोदकैस्तथा गन्धैः स्नापितो यद्दिवाकरः । तेन कान्तिरियं नित्यं देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ।।१०
मनःप्रसादः सौम्यत्वं शरीरे ये च निर्वृताः । यत्प्रियत्वं च सर्वं स्यात्तद्घृतस्नपनात्फलम् ।।११
यान्यभीष्टानि वासांसि यच्चाभीष्टविभूषणम् । रत्नानि यान्यभीष्टानि यत्प्रियं चानुलेपनम् ।।१२
ये धृता यानि माल्यानि दयितान्यभवन्सदा । मम भर्तुस्तदैवास्य तदा राज्यं प्रशासतः ।।१३
तानि सर्वाणि सर्वज्ञ सर्वपातरि भानुनि । दत्तानि तं समुत्थोऽयं गन्धधूपात्मको गुणः ।।१४
आहारा दयिता ये च पवित्राश्च निवेदिताः । त्रिलोककर्तुः सवितुस्तृप्तिस्तद्गुणसम्भवा ।।१५
स्वर्गकामेन मे भर्त्रा मया च शुभदर्शने । कृतमेतत्कृतेनाभूदावयोर्भवसंक्षयः ।।१६
ये त्वकामा नराः सम्यक्तत्कुर्वन्ति च शोभने । तेषां ददाति विश्वेशो भगवान्मुक्तिमीश्वरः ।।१७

ब्रह्मोवाच

एवमभ्यर्च्य मार्तण्डमर्कं देवेश्वरं गुरुम् । प्राप्तोऽस्म्यभिमतान्कामान्कृष्णाहं शाश्वतीः समाः ।।१८
चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमोशीरपद्मकैः । अनुलिप्तो नरैर्भक्त्या ददाति[1] सागरोद्भवाम् ।।१९

का यह स्वर्ग प्राप्ति रूप उत्तम फल प्राप्त हुआ है ।८। हे महाभागे ! (हम दोनों के) सौन्दर्य प्रीति एवं उत्तम वेष-भूषा देखकर जो विस्मित भाव से पूंछ रही हो वह सभी बातें मैं आप को बता रही हूँ ।९। तीर्थों के जलों एवं गन्धों द्वारा हम लोगों ने सूर्य को स्नान कराये थे उसी द्वारा त्रिभुवन के ईश्वरों से भी बढ़कर यह कान्ति प्राप्त हुई है ।१०। मन की सफलता, शरीर की सौम्यता शांति एवं और भी जो कुछ प्रिय एवं उत्तम देख रही हो, ये सभी (उन्हीं के) घी द्वारा स्नान कराने के फल स्वरूप प्राप्त हुए हैं ।११। हम लोगों की ये सभी अभीष्ट वस्तुएँ वस्त्र, आभूषण, रत्न जो दिखाई दे रही हैं प्रिय अनुलेपन धूप और प्रिय मालाएँ उस समय राज्य में शासन करते हुए मेरे पति के पास थीं वे समस्त वस्तुएँ सर्वज्ञ एवं सभी की रक्षा करने वाले उस सूर्य के लिए सदैव समर्पित की जाती थीं उसी से (हम दोनों के) शरीर में गन्ध एवं धूप का गुण (सुगन्ध) प्राप्त है ।१२-१४। और उन दिनों आत्मप्रिय एवं पवित्र भोजन भी हम लोगों के द्वारा त्रिलोक नायक सूर्य के लिए समर्पित किये जाते थे जिससे यह परम तृप्ति प्राप्त हुई है ।१५। शुभ दर्शन ! इस प्रकार स्वर्ग की कामना वश मैंने तथा मेरे पति ने इस भाँति की अर्चना की थी उसी के परिणाम स्वरूप हम लोगों को संसार (जन्म-मरण) से छुटकारा मिल गया है ।१६। हे शोभने ! जो मनुष्य निष्काम भाव से उनकी अर्चना के निमित्त ये (सभी बातें) उनके लिए करते रहते हैं उन्हें विश्वेश्वर भगवान् (भास्कर) अवश्य मुक्ति प्रदान करते हैं ।१७

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! इसी प्रकार मैंने भी मार्तण्ड, देवनायक एवं गुरु सूर्य की पूजा करके अनेकों वर्षों के लिए अपनी समस्त कामनाएँ सफल की हैं ।१८। इस भाँति जो चंदन, अगुरु, कपूर, कुंकुम, खश गन्ध उनके अङ्गलेपन के निमित्त अर्पित करता है उसे वे अभिलषित मनोरथ तथा लक्ष्मी प्रदान करते

---

१. ददाति मनसेप्सितान् ।

कालेयकं तुरुष्कं च रक्तचन्दनमेव च । यान्यात्मनि सदेष्टानि तानि शस्यान्यपाकुरु ।।२०
गन्धाश्चापि शुभा ये च धूपा वे विजयोदयाः । दिवाकरस्य धर्मज्ञ निवेद्यास्सर्वदाच्युत ।।२१
न दद्यात्सल्लकीक्षारं नो मुखेन च संहृतम् । दद्यादर्काय धर्मज्ञ धूपमाराधनोद्यतः ।।२२
मालती मल्लिका चैव यूथिका चातिमुक्तिकः । पाटलाः करवीरश्च जपा सेवन्तिरेव च ।।२३
कुङ्कुमस्तगरश्चैव कर्णिकारः सकेशरः । चम्पकः केतकः कुन्दो बाणबर्बरमालिका ।।२४
अशोकस्तिलको लोध्रस्तथा चैवाटरूषकः । शतपत्राणि धन्यानि बकाह्वानी विशेषतः ।।२५
अगस्ति किंशुकं तद्वत्पूजार्थं भास्करस्य तु । अमी पुष्पप्रकारास्तु शस्ता भास्करपूजने ।।२६
बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं वा भृङ्गरस्य च । तमालपत्रं च हरे सदैव भगवत्प्रियम् ।।२७
तुलसी कालतुलसी तथा रक्तं च चन्दनम् । केतकी पत्रपुष्पं तु सद्यस्तुष्टिकरं रवेः ।।२८
पद्मोत्पलसमुत्थानि रक्तं नीलोत्पलं तथा । सितोत्पलं तु भानोस्तु दयितानि सदाच्युत ।।२९
कृष्णलोन्मत्तकं कान्तं तथैव गिरिमल्लिका । न कर्णिकारिकापुष्पं भास्कराय निवेदयेत् ।।३०
कुटजं शाल्मलीपुष्पं तथान्यद् गन्धवर्जितम् । निवेदितं भयं रोगं निःस्वतां च प्रयच्छति ।।३१
येषां न प्रतिषेधोऽस्ति गन्धवर्णान्वितानि च । तानि पुष्पाणि देयानि मानवे लोकभानवे ।।३२
सुगन्धैश्च मुरामांसीकर्पूरागरुचन्दनैः । तथान्यैश्च शुभैर्द्रव्यैरर्चयेद्वनमालिनम् ।।३३
दुकूलपट्टकौशेयवार्क्षकार्पासकादिभिः । वासोभिः पूजयेद्भानुं यानि चात्मप्रियाणि तु ।।३४
भक्ष्याणि यान्यभीष्टानि भोज्यान्यभिमतानि च । फलं च वल्लभं यत्स्यात्तत्ते देयं दिवाकरे ।।३५

हैं ।१९। हे धर्मज्ञ ! हे अच्युत ! इसलिए कालेयक (दारु हल्दी), लोहबान, रक्त चंदन और भी जो आत्म प्रिय हों, उन्हें तथा शुभ गन्ध एवं विजयनाँद धूप ये सभी वस्तुएँ सदैव सूर्य के लिए अर्पित करना चाहिए ।२०-२१। हे धर्मज्ञ ! इस भाँति सल्लकी क्षार (नामक) तथा मुख से स्पर्श की हुई कोई भी वस्तु (सूर्य के लिए) समर्पित न करनी चाहिए आराधना करने वाले को धूप अवश्य करना बताया गया है ।२२। मालती, मल्लिका, जूही, अति मुक्तिक (तिनिश), कुम्हड़े करवीर (कनेर), जयापुष्प, सेवंति, कुंकुम, तगर, बड़हर, चंपा, केतकी, कुंद, भंगरैया, अशोक, तिलक, लोध, अडूसा, कमल, बक, अगस्त्य, किंशुक, ये पुष्प भास्कर की पूजा के लिए उत्तम बताये गये हैं ।२३-२६। हे हर ! इसी प्रकार बिल्व पत्र, शमीपत्र, भंगरैया, तमालपत्र ये सभी भगवान् भास्कर के अत्यन्त प्रिय हैं ।२७। तुलसी, काली तुलसी, रक्तचन्दन, केतकी, इनके पत्र या पुष्प ये सभी अर्पित होने पर भगवान् सूर्य को सद्यः प्रसन्न करते हैं ।२८। हे अच्युत ! कमल, रक्तकमल, नील कमल, श्वेत कमल भानु को सदैव अत्यन्त प्रिय हैं ।२९

हे कृष्ण ! धतूर, कुटज, एवं बड़हल के पुष्प कभी भी सूर्य के लिए समर्पित न करना चाहिए ।३०। क्योंकि कुटज, सेमर तथा इसी भाँति अन्य गन्धहीन पुष्प सूर्य को समर्पित करने पर भय, रोग तथा दरिद्रता प्राप्त होती है ।३१। लोक के प्रकाशक सूर्य के लिए उन पुष्पों को जिनका निषेध न किया गया हो तथा वे गन्ध एवं सौन्दर्य पूर्ण हों सादर समर्पित करना चाहिए ।३२। सुगंध, तालीस पत्र, जटामांसी, कपूर, अगुरु, चन्दन तथा अन्य उत्तम वस्तुओं द्वारा वनमाली की अर्चा अवश्य करनी चाहिए ।३३। उसी भाँति दुपट्टा, रेशम या सूती वस्त्रों एवं अन्य जो आत्मप्रिय वस्तु हों उन वस्त्रों द्वारा सूर्य की पूजा करना बताया गया है ।३४। इसी प्रकार भक्ष्य भोज्य तथा अत्यन्त रुचिकर फल सूर्य के लिए अर्पित करे ।३५।

सुवर्णमणिमुक्तानि रजतं च तथाच्युत । दक्षिणा विविधा चेह यच्चान्यदपि वल्लभम् ॥३६
आत्मानं भास्करं मत्वा यज्ञं तस्मै निवेदयेत् । तत्तदव्यक्तरूपाय भास्कराय निवेदयेत् ॥३७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यमाहात्म्ये सूर्यपूजाविधिवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११५।

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

रविपूजाविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कृष्ण राजा महानासीद्ययातिकुलसम्भवः । सत्राजिदिति विख्यातश्चक्रवर्ती महाबलः ॥१
प्रभावैस्तेजसा कान्त्या क्षान्त्या बलसमन्वितः । धैर्यगम्भीर्यसम्पन्नो वदान्यो यशसान्वितः ॥२
बुद्ध्या विक्रमदक्षश्च सम्पन्नो ब्राह्मणायतः । कृती कविस्तथा शूरः षट्पदाख्यैर्न निर्जितः ॥३
सदा पञ्चसु रक्तश्च वसुमद्भिर्न निर्जितः । रुद्रता वसुभिर्जातैः सत्त्वश्रद्धासमन्वितः ॥४
अम्बुजस्याण्डजस्येव आत्रेयस्य तथाच्युत । अम्बुजायास्तथा कृष्ण वार्यपात्रं स वै विभो ॥५
गाङ्गेयेन बले तुल्यः पौलस्त्यार्चाश्रमो यथा । गाङ्गेयस्य तथा कृष्ण धिषणस्य हरेर्यथा ॥६

हे अच्युत ! सुवर्ण, मणि, मोती तथा चाँदी और भी जो प्रिय एवं उत्तम धातु हों उन भाँति-भाँति के धातुओं को दक्षिणा के रूप में देवाधिदेव सूर्य के लिए समर्पित करनी चाहिए ।३६। इसलिए अपने में भगवान् भास्कर की भावना रख कर उन अव्यक्त रूप भास्कर के लिए यज्ञारम्भ एवं उनकी प्रिय वस्तुएँ समर्पित करना मानव का परमधर्म है ।३७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के आदित्य माहात्म्य में सूर्य पूजा विधि वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।११५।

अध्याय ११६

रविपूजाविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! ययाति के कुल में उत्पन्न चक्रवर्ती एवं महाबली सत्राजित नामक विख्यात राजा हुआ था ।१। प्रभाव, तेज, कांति, क्षमता, बल, धैर्य एवं गांभीर्य गुणों से अलंकृत होता हुआ यह उदार तथा कीर्तिमान् था ।२। ब्राह्मणों के समान बुद्धिसम्पन्न और विक्रम में दक्ष वह कृती (कार्य-कुशल), कवि, शूर एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या तथा मात्सर्य इन छः दोषों का विजेता पाँच (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सूर्य, गणेश अथवा दुर्गा देवों का अनुरागपूर्ण उपासक तथा राजाओं के लिए अजेय था । सत्त्व- श्रद्धा संपन्न होकर उसने (शत्रुओं के लिए) वसुओं द्वारा रुद्रता प्राप्त कर ली अर्थात् रौद्र रूप थी ।३-४। हे अच्युत, ब्रह्मा एवं मार्तण्ड के समान (वह) चन्द्रमा तथा लक्ष्मी का भी प्रिय पात्र था ।५। वह भीष्म की भाँति बलशाली था तथा उसकी पुरी रावण की लङ्का पुरी की भाँति ही उत्तम थी। हे कृष्ण ! वह भीष्म की भाँति पराक्रमी बृहस्पति के समान बुद्धिमान् एवं विष्णु के समान सौन्दर्य पूर्ण

काम्यश्च द्विजभक्तस्तु तथा वाल्मीकिवत्सदा। व्यासस्य देवशार्दूल जामदग्न्यस्य वा विभोः ॥७
एषां नैकैर्गुणैर्युक्तः स राजा क्ष्मातले विभो। शशास स महाबाहुः सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ॥८
यस्मिन्गाथां प्रगायन्ति ये पुराणविदो जनाः। सत्राजिते महाबाहौ कृष्ण धात्रीं समाश्रिते ॥९
यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति। सत्राजितं तु तत्सर्वं क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥१०
स सर्वरत्नसंयुक्तां सप्तद्वीपवतीं महीम्। शशास धर्मेण पुरा चक्रवर्ती महाबलः ॥११
नान्यायकृन्न चाशक्तो वदान्यो बलवत्तरः। तस्याभूत्पुरुषा राज्ञः सम्यग्धर्मानुशासिनः ॥१२
चत्वारः सचिवास्तस्य राज्ञः सत्राजितस्य तु। बभूवुरप्रतिहताः सदा वाति बलस्य वै ॥१३
तस्य भक्तिरतीवासीन्निसर्गादेव भूपतेः। दिवाकरे जगद्भानौ रक्तचन्दनमालिनि ॥१४
तस्योर्ध्वमहिमानं च विलोक्य पृथिवीपतेः। न केवलं जनस्यापि ह्यभवत्तस्य विस्मयः ॥१५
सञ्चिन्तयामास नृपः समृद्धया विस्मितस्तथा। कथं स्यात् सम्पदेषा मे पुनरप्यन्यजन्मनि ॥१६
एवं स बहुशो राजा तदा कृष्ण महायशाः। चिन्तयन्नपि तन्मूलं नासदन्निश्चयान्वितः ॥१७
यदा न निश्चयं राजा स ययौ भार्गवीप्रियः। तदा पप्रच्छ धर्मज्ञान्स विप्रान्समुपागतान् ॥१८
सर्वांश्च ससुखान्वीर विविक्तान्तः पुरस्थितः। प्रणिपत्य महाबाहुर्ग्रहीतुं शासनक्रियाः ॥१९
विश्वासानुग्रहा बुद्धिर्भवतां मयि सत्तमाः। तदहं प्रष्टुमिच्छामि किञ्चित्तद्वक्तुमर्हथ ॥२०

था।६। हे देवशार्दूल ! उस काम्य व्रती एवं ब्राह्मण भक्त ने बालमीकि व्यास तथा परशुराम के समान अनेक गुणों से सुसंपन्न होकर इस पृथ्वी तल के राज्य को अपनाकर सातों द्वीपों समेत इस वसुन्धरा (पृथ्वी) पर शासन किया।७-८। हे कृष्ण ! उस महाबाहु सत्राजित के इस पृथ्वी के अपनाने पर पौराणिक लोग उसके विषय में गाथा के रूप में गाते थे कि सूर्य जिस स्थान से उदय होकर जहाँ रहता (अस्त होता) है उनसब पर सत्राजित का आधिपत्य होने के नाते वे सब उसी राज्य के ही क्षेत्र हैं।९-१०। महाबलशाली उस चक्रवर्ती ने समस्त रत्नों से संयुक्त एवं इस सातों द्वीपों वाली पृथिवी पर एक धार्मिक शासन किया।११। भली भाँति धार्मिक शासन करते हुए उसके राज्य में कोई भी अन्यायी एवं अशक्त नहीं थे अपितु सभी लोग न्यायी एवं अतुल बलशाली और उदार थे।१२। उस अतिबलशाली सत्राजित राजा के अप्रतिहत शक्ति वाले चार सचिव थे।१३। जगत्प्रकाशक तथा रक्तचन्दन की माला धारण करने वाले उन दिवाकर के लिए उस राजा की स्वाभाविक अतिशय भक्ति उत्पन्न हुई थी।१४। जिसके कारण उस राजा की उन्नत महिमा को देखकर लोगों को ही नहीं अपितु स्वयं उस राजा को भी महान् आश्चर्य हुआ था।१५। क्योंकि अपने समृद्धि से आश्चर्य चकित हो कर एकबार वह सोंचने भी लगा था कि इस प्रकार की अतुल संपत्ति मुझे जन्मान्तर में भी किस भाँति प्राप्त हो सकती है।१६। हे कृष्ण ! इस प्रकार बार-बार सोचने-विचारने पर भी अत्यन्त ख्याति प्राप्त वह राजा उसके मूल कारण का कुछ भी निश्चय न कर सका।१७। जब पृथिवी प्रिय राजा स्वयं इसका निश्चय न कर सके तो अपने यहाँ आये हुए उन धर्मज्ञ ब्राह्मणों से उन्होंने पूँछा।१८। हे वीर ! एक समय (शासन भार उठाने के समय) एकान्त अन्तःपुर में स्थित होकर उस महाबाहु ने उन सुखी ब्राह्मणों से नमस्कार करते हुए कहा—आप लोग सब भाँति परम सज्जन हैं, इसीलिए मेरे उपर आप लोगों को पूर्ण विश्वास एवं अनुग्रह (कृपा) हो, तो मैं कुछ पूँछना चाहता हूँ, आप उसे बताने की कृपा करें।१९-२०। सद्विद्या द्वारा

सद्विद्याखिलविज्ञानसम्यग्धौतान्तरात्मभिः । भवद्भिर्यद्यनुग्राह्यः स्यामहं वेदवित्तमाः ॥२१
तद्यथावन्मया पृष्टा भवन्तो मत्प्रसादिनः । वक्तुमर्हथ विद्वांसः सर्वस्यैवोपकारिणः ॥२२

ब्रह्मोवाच

यस्ते मनसि सन्देहस्तं पृच्छाद्य महीपते । वदिष्यामो यथान्यायं यत्ते[1] मनसि वर्त्तते ॥२३
वयं हि नृपशार्दूल भवता पारितोषिताः । सम्यक्प्रजां पालयित्रा ददता भोजनं सदा ॥२४
सन्तुष्टो ब्राह्मणोऽश्नीयाच्छिद्याद्वा धर्मसंशयम् । हितं चोपदिशेद्वर्त्म अहिताद्वा निवर्तयेत् ॥२५
विवक्षुमथ भूपालं भार्या तस्यैव धीमतः । प्रणिपातेन चाहेदं विनयात्प्रणयान्वितम् ॥२६
न स्त्रीणामवनीपाल वक्तुमीदृगिहेष्यते । तथापि भूपते वक्ष्ये सम्पदीदृक्सुदुर्लभा ॥२७
भूयोऽपि संशयान्प्रष्टुमलमीशो भवानृषीन् । नन्वहं पुरुषव्याघ्र सदान्तः पुरचारिणी ॥२८
तत्प्रसादं यदि भवान्करोति मम पार्थिव । तन्मदीयमृषीन्प्रष्टुं सन्देहं पार्थिवार्हसि ॥२९

सत्राजित उवाच

ब्रूहि सुभ्रूर्मतं यत्ते प्रष्टव्या यन्मया द्विजाः । भूयोऽहमात्मसन्देहं प्रक्ष्याम्येतद्द्विजोत्तमान् ॥३०

प्राप्त निखिल ज्ञान विज्ञान में आप की अन्तरात्मा भी भली भाँति निर्मल हो गई है, एवं आप श्रेष्ठ वेदज्ञों में से हैं आप लोग मेरे ऊपर यदि कृपा रखते हैं तो मैं प्रष्टव्य विषय को समझाने की कृपा अवश्य करूँगा (ऐसा मुझे विश्वास है) क्योंकि विद्वान् लोग सभी के उपकारी होते हैं ।२१-२२

ब्रह्मा ने कहा—वे लोग बोले—हे महीमते ! आज आप के मन में जो कुछ सन्देह हो, पूँछिये ! हम लोग यथोचित पाप के मन के संदेह को करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न दूर करेंगे ।२३। हे नृप शार्दूल ! भली भाँति प्रजाओं के पालन करते हुए आपने भोजन आदि प्रदान द्वारा हमें सतत संतुष्ट करने की सर्वथा चेष्टा की है ।२४। सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण भोजन करें और (शास्त्र पढ़कर) धार्मिक संदेहों का नाश करते हुए हितैषी मार्ग उपदेश तथा अहित के त्याग करते-कराते रहें यही नियम है ।२५

तदुपरांत पूछने के लिए तैयार राजा को देख कर उस समय उसकी धर्मपत्नी ने प्रणाम करते हुए विनय पूर्वक उस (राजा) से यह कहा ।२६। हे अवनिपाल ! यद्यपि स्त्रियों के लिए इस प्रकार के कहने का (साहस) करना उचित नहीं है, तथापि हे भूपते ! मैं इस राजा की सम्पत्ति के विषय में कुछ पूँछना चाहती हूँ । मैं यह कह रही हूँ कि क्योंकि इस प्रकार की संपत्ति का प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है ।२७। आप अपने संदेह को ऋषियों से फिर पूंछ सकते हैं क्योंकि ये ऋषिगण सदैव, आपके सम्पर्क में रहा करते हैं । हे पुरुष व्याघ्र ! मैं केवल आप के अन्तःपुर की ही सदैव रहने वाली हूँ इसलिए हे पार्थिव ! यदि आप मेरे ऊपर ऐसी कृपा करें कि (इस समय) आप मेरे ही संदेह को ऋषियों से पूछें तो मुझे महान् सुख होगा ।२८-२९

सत्राजित बोले—हे सुभ्रु ! तुम अपने उस संदेह को बताओ जो मुझे इन ब्राह्मणों से पूछने को कह रहे हो मैं अपने संदेह को इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों से फिर पूँछ लूँगा ।३०

---

१. यत्ते सांशयिकं हृदि ।

विमलवत्युवाच

श्रूयन्ते पृथिवीपाल नृपा ये तु चिरन्तनाः । येषां च सम्पद्भूपाल यथा तेऽद्य किलाभवत् ।।३१
तदीदृक्सम्पदो धाम तवाशेषं क्षितीश्वर । येन कर्मविपाकेन तद्वदन्तु महर्षयः ।।३२
अहं च भवतो भार्या सर्वसीमन्तिनीवरा । अतीव कर्मणा येन तद्विज्ञाने कुतूहलम् ।।३३
तथा सम्पत्समृद्धत्वमन्येष्वपि हि विद्यते । निरस्तातिशयत्वेन नूनं नाल्पेन कर्मणा ।।३४
तदन्यजन्मचरितं नरनाथ निजं भवान् । मुनीन्पृच्छ त्वदा चाहं यन्मया च पुरा कृतम् ।।३५

ब्रह्मोवाच

स तथोक्तस्तया राजा पत्न्या विस्मितमानसः । मुनीनां पुरतो भार्यां प्रशंसन्वाक्यमब्रवीत् ।।३६
साधु देवि मतं यन्मे त्वया यदिदमीरितम् । सत्यं मुनिवचः पुंसां स्वार्द्धं वै गृहिणी तथा ।।३७
सोऽहमेतन्महाभागे पृच्छाम्येतान्महामुनीन् । तेषामविदितं किञ्चित्त्रिषुलोकेषु न विद्यते ।।३८
एवमुक्त्वा प्रियां राजा प्रणिपत्य च तानृषीन् । यथावदेतदखिलं पप्रच्छ धरणीधरः ।।३९

राजोवाच

भगवन्तो ममाशेषं प्रसादादृतचेतसः । कथयन्तु यथावृत्तं यन्मया सुकृतं कृतम् ।।४०
कोऽहमासं पुरा विप्राः किंस्वित्कर्म मया कृतम् । किं वानया तु चार्वंग्या मम पत्न्या कृतं द्विजाः ।।४१

विमलवती ने कहा—हे पृथिवी पाल ! (अनेक पूर्वजों में) जो प्राचीन राजा थे उनकी भी आप के समान ही संपत्ति थी ऐसा सुना जाता है ।३१। हे क्षितीश्वर ! तो इस प्रकार की आप की संपत्ति एवं तेज (ये) दोनों जिन कर्मों के फल स्वरूप प्राप्त हुए हैं, उसे ये महर्षिगण बताने की कृपाकरें तथा जिस कर्म के अनुष्ठान द्वारा मैं आपकी सभी सुन्दरी स्त्रियों में परम सुन्दरी भार्या हुई हूँ उस कर्म के जानने के लिए मुझे महान् कुतूहल है ।३२-३३। यों तो संपत्ति की अधिकता औरों के यहाँ भी देखने में आती है पर हम लोगों की यह अनश्वर एवं अथाह संपत्ति जो प्राप्त हुई है निश्चय है कि किसी अल्प कर्मानुष्ठान का परिणाम नहीं है ।३४। और हे नरनाथ ! अपने जन्मांतर के कर्म जिन्हें आप तथा मैंने सुसम्पन्न किया है आप मुनियों से पूंछें ।३५।

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार उस पत्नी के पूंछने पर आश्चर्य चकित होकर राजा ने मुनियों के सामने (अपनी) स्त्री की प्रशंसा करते हुए (उससे) कहा ।३६। हे देवी ! तुमने जो कुछ कहा है उसमें मेरा भी साधु संमत है, अर्थात् (मैं भी उसी को पूंछना चाहता था) मुनियों का कहना सत्य है कि पुरुष की अपनी आधी (अर्धाङ्गी) उसकी गृहिणी (विवाहिता) स्त्री होती है ।३७। हे महाभाग ! मैं इन्हीं बातों को इन मुनियों से पूंछता हूँ इसलिए कि तीनों लोकों में इन लोगों से कुछ अविदित नहीं है ।३८। इस प्रकार अपनी स्त्री से कह कर धरणीधर उस राजा ने उन ऋषियों से नमस्कार पूर्वक ये सभी बातें पूंछी ।३९

राजा ने कहा—आप लोग सत्य वक्ता हैं अतः हे भगवन् ! मेरे निखिल सत् कर्म को जिसे मैंने (जन्मान्तर में) किया है, आप कृपा कर सुनायें ।४०। हे विप्र ! पहले मैं किस योनि में कहाँ उत्पन्न था और कौन कर्म किया था । हे द्विज ! सर्वाङ्गसुन्दरी इस मेरी पत्नी ने कौन कर्म किया है ।४१। जिससे

येनावयोरियं लक्ष्मीर्मर्त्यलोके सुदुर्लभा । चत्वारश्चाप्रतिहता अमात्या मम गच्छतः ।।४२
अशेषा भूभृतो वश्या धनस्यान्तो न विद्यते । बलं चैवाप्रतिहतं शरीरारोग्यमेव च ।।४३
प्रतिभाति च मे कान्त्या भार्यायामखिलं जगत् । ममापि वपुषस्तेजो न कश्चित्सहते द्विजाः ।४४
सोऽहमिच्छामि तज्ज्ञातुं तथैवेयमनिन्दिता । निजानुष्ठानमखिलं यस्याशेषमिदं फलम् ।।४५

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टा नरेन्द्रेण समस्तास्ते तपोधनाः । परावसुमथोचुस्ते कथ्यतामस्य भूभृतः ।।४६
चोदितः सोऽपि धर्मज्ञैर्महाशूरा महामतिः । योगमास्थाय सुचिरं यथावद्यतमानसः ।।४७
ज्ञातवान्नृपतेस्तस्य पूर्वदेहविचेष्टितम् । स तमाह मुनिर्भूपं विज्ञानेच्छं महामतिम् ।।४८
सत्राजितं महात्मानं जितशत्रुं मनस्विनम् । सपत्नीकं महाबुद्धिं ब्राह्मणान्सत्यवादिनः ।।४९

परावसुरुवाच

शृणु भूपाल सकलं यस्येदं कर्मणः फलम् । तव राज्यादिकं सुभ्रूर्येयं चासीन्महीपते ।।५०
त्वमासीः शूद्रजातीयः परहिंसापरायणः । कुष्ठार्तो दण्डपारुष्ये निःस्नेहः सर्वजन्तुषु ।।५१
इयं च भवतो भार्या पूर्वमप्यायतेक्षणा । नित्यं बभूव त्वच्चित्ता भवच्छुश्रूषणे रता ।।५२
पतिव्रता महाभागा भर्त्स्यमानापि निष्ठुरम् । त्वद्वाक्येषु च सर्वेषु वीर कर्मसु चोद्यता ।५३

इस मर्त्य लोक में हम दोनों को यह सुदुर्लभ लक्ष्मी एवं मेरे पीछे चलने वाले अप्रतिहत (अजेय) चार सचिव प्राप्त हुए हैं ।४२। भूमण्डल के समस्त राजा मेरे अधीन हैं, मेरे धन का अंत नहीं है उसी प्रकार अपरिमित बल एवं शरीर के आरोग्य मुझे प्राप्त हैं ।४३। तथा मेरी स्त्री की सौन्दर्य कांति से सारा संसार पूर्ण प्रकाशित हो रहा है, और हे द्विज ! मेरे शरीर के तेज के सहन करने में कोई भी समर्थ नहीं है ।४४। इसलिए कर्मानुष्ठान द्वारा ये समस्त फल मुझे प्राप्त हुए हैं उन्हें तथा अपनी स्त्री के जन्मान्तरीय कर्मों को यह तथा मैं जानना चाहता हूँ ।४५

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार उस नरेंद्र के पूंछने पर उन तपोधनों ने परावसु से कहा कि आप राजा की उपरोक्त सभी बातें बताने की कृपा करें ।४६। उन धर्मज्ञों (ऋषियों) के कहने पर उस महाशूर एवं महाबुद्धिमान् ने एकाग्रचित्त होकर योग के बल से राजा के जन्मान्तरीय शरीर द्वारा किये गये समस्त कर्मों की जानकारी प्राप्त की। पश्चात् उन्होंने विज्ञान के इच्छुक, महाबुद्धिमान् शत्रुओं के विजेता, मनस्वी एवं सपत्नीक उस महातमा सत्राजित से सत्यवादी ब्राह्मणों के समक्ष कहा ।४७-४९

परावसु ने कहा—हे भूपाल ! जिस कर्म के फल स्वरूप ये समस्त राज्यादि सुन्दर भौंह वाली (स्त्री) तुम्हें प्राप्त हुई है, मैं बता रहो हूँ सूनो ।५०। हे राजन् ! (पहले जन्म में) तुम शूद्र कुल में उत्पन्न होकर सदैव हिंसा में ही निरत रहते थे कुष्ठ रोग से दुःखी भी रहा करते थे एवं सभी जीवों को स्नेहहीन (निर्दयी) होकर कठोर दण्ड दिया करते थे ।५१। और यह विशाल नेत्रवाली (रानी) आपकी सहधर्मिणी भार्या थी उस समय भी जो नित्य दत्त चित्त होकर आपकी सेवा करती थी ।५२। हे वीर ! स्वाभाविक निष्ठुरता के कारण तुम्हारे डांटने फटकारने एवं धिक्कारने पर भी यह सौभाग्यशालिनी पतिव्रता तुम्हारी सभी बातें शिरोधार्य करती एवं सम्पूर्ण कार्यों के करने के लिए सदैव

नैश्वर्यादसहायस्य त्यज्यमानस्य बन्धुभिः । क्षयं जगाम योर्थोऽभूत्सञ्चितः प्रपितामहैः ।।५४
तस्मिन्क्षीणे कृषिपरस्त्वमासीः पृथिवीपते । सापि कर्मविपाकेन कृषिर्विफलतां गता ।।५५
ततो निःस्वं परिक्षीणं परेषां भृत्यतां गतम् । तत्याज साध्वी नेयं त्वां त्यज्यमानापि पार्थिव ।।५६
अनया तु समं साध्व्या भानोरावसथे त्वया । कृतं शुश्रूषणं वृत्त्या भक्त्या सम्मार्जनादिकम् ।।५७
निःस्नेहः सर्वकामेभ्यस्तन्मयस्त्वं तदर्पणः । अहन्यहनि विस्रम्भात्तस्मिन्नावसथे रवेः ।।५८
कान्यकुब्जपुरे वीर महाशुश्रूषितं त्वया । दिवाकरालये नित्यं कृतं तन्मार्जनं त्वया ।।५९
तथैवाभ्युक्षणं भूप नित्यं चैवानुलेपनम् । पत्न्यानया नृप तथा युष्मच्चित्तानुवृत्तया ।।६०
कारितं श्रवणं पुण्यमितिहासपुराणयोः । दत्त्वाङ्गुलीयकं राजन्पितृदत्तं तु वाचके ।।६१
अहन्यहनि यत्कर्मयुवयोर्नृपकुर्वतोः । तत्रैव तन्मयत्वेन पापहानिरजायत ।।६२
भानोः कार्यं मया कार्यं परं शुश्रूषणं तथा । नाप्रभातं प्रभातं वा चिन्तेयमभवन्निशि ।।६३
एवमायतनं रम्यमित्येवं च सुखावहम् । सूर्यवच्चैवमेतस्यादित्यासीत्ते मनस्तदा ।।६४
योगिनां सुखदं कर्म तथैव सुखमित्यपि । भवच्चित्तमभूत्तत्र योगकर्मण्यहर्निशम् ।।६५
एवं तन्मनसस्तत्र कृतोद्योगस्य पार्थिव । भूतानुमानिनः सम्यग्यथोक्ताधिककारिणः ।।६६

तैयार रहती थी ।५३। इसी भाँति आप जब प्रभुत्वहीन असहाय एवं बन्धुओं द्वारा परित्यक्त हो गये तो आप के पास का धन भी जिसे आपके प्रपितामह ने संचित किया था, नष्ट होगया ।५४। हे पृथिवी पते ! उस समय आप ने कृषि (खेती) करना आरम्भ किया पर बुरे कर्मों के परिणाम स्वरूप वह खेती भी निष्फल हो गई ।५५। उसके उपरान्त अत्यन्त दरिद्र एवं कृषित होते हुए भी आप को उस दयनीय दशा में नौकरी करनी पड़ी : हे पार्थिव ! उस समय विक्षुब्ध होकर आपने उस स्त्री को छोड़ दिया था किन्तु तुम्हारे त्याग करने पर भी उस महासती ने तुम्हारा त्याग कभी नहीं किया ।५६

पुनः इस पतिव्रता के साथ तुमने सेवा भाव से भक्ति पूर्वक सूर्य के मन्दिर में झाड़ू आदि द्वारा सफाई करना आरम्भ किया ।५७। सूर्य के उस मन्दिर में उनके सभी काम तन्मयता पूर्वक केवल उन्हीं के लिए निःस्वार्थ भाव से विश्वस्त होकर तुम प्रतिदिन करने लगे थे ।५८। हे वीर ! दिवाकर के मन्दिर की झाड़ू आदि द्वारा सफाई की वह महान् सेवा तुमने कान्यकुब्ज पुर में रहकर किया था । हे भूप ! उनका अभिषेक और नित्य लेप (उबटन) की सेवा करते हुए तुमने इस पत्नी के साथ जो सदैव तुम्हारे चित्त के अनुकूल रहती थी, इतिहास पुराण की पुण्य कथा भी वहाँ करायी थी । हे राजन् ! अपने पिता द्वारा प्राप्त अंगूठी इसने उस अनुष्ठान में कथावाचक के लिए अर्पित कर दी थी ।५९-६१। हे नृप इस प्रकार वहाँ प्रतिदिन तन्मय होकर जब सेवा करने लगे तो उससे तुम दोनों के पाप (उसी समय) नष्ट हो गये ।६२। सूर्य के सभी कार्य मुझे करते रहना चाहिए तथा उनकी महान् सेवा भी और उसके लिए मुझे प्रातः मध्याह्न का विचार भी नहीं करना चाहिए, इसी प्रकार विचार करते हुए तुम्हारी सारी रात बीत जाती थी ।६३। यह (सूर्य) देव का मंदिर उन्हीं की भाँति सदैव रमणीक बना रहे तो यही मेरा सुख है उस समय तुम्हारे मन में यही भावना बनी रहती थी ।६४। योगियों के उन सुखदायक कर्मों की भाँति इनकी सेवा के ये सभी कर्म मेरे लिए नितान्त सुख कर हैं ऐसा सोचकर तुम्हारा मन उस योग्य कर्मों में रात दिन लगा रहता था ।६५। हे पार्थिव ! इस प्रकार मन लगाकर उनकी सेवा में तत्पर रहते हुए जितना कोई

स्मरतो गोपतिं नित्यं चित्तेनापि दृढात्मनः । निःशेषमुपशांतं ते पापं सूर्यनिषेवणात् ।।६७
ततोऽधिकं पुरस्तस्मादगारस्यानुलेपनम् । संमार्जनं च बहुशः सपत्नीकेन यत्कृतम् ।।६८
केवलं धर्ममाश्रित्य त्यक्त्वा वृत्तिमशेषतः । अनया श्रवणं पुण्यं कारितं वाचकात्सदा ।६९
नानाधातुविकारैस्तु गोमयेन मृदा तथा । उपलेपनं कृतं भक्त्या त्वया पूर्वं सुरालये ।।७०
अथाजगाम वै तत्र कुवलाश्वो महीपतिः । महासैन्यपरीवारः प्रभूतगजवाहनः ।।७१
सर्वसम्पदुपेतं तं सर्वाभरणभूषितम् । वृतं भार्यासहस्रेण दृष्ट्वा संक्रन्दनोद्बलम् ।।
स्पृहा कृता त्वया तत्र चारुमौलिनि पार्थिवे ।।७२
सर्वकामप्रदं कर्म क्रियते भास्कराश्रितम् । तेनैतदखिलं राज्यमशेषं प्राप्तवान्महीम् ।।७३
तेजश्चैवाधिकं यत्ते तथैव शृणु पार्थिव ! योगप्रभावतो लब्धं कथयाम्यखिलं तव ।।७४
तत्रैवावसथे दीपः प्रशान्तः स्नेहसंक्षयात् । निजभोजनतैलेन पुनः प्रज्वलितस्त्वया ।।७५
अन्या चोत्तरीयेण वीर वर्त्योरु बृंहितः । तव पत्न्या स्वयं ज्वाल्य कान्तिरस्यास्ततोऽधिका ।।७६
तवाप्यखिलभूपालमनः क्षोभकरं पुनः । तेजो नरेन्द्र एतस्मात्किमुताराध्य भास्करम् ।।७७

प्राणी कर सकता है दृढ़ होकर उससे भी अधिक उनका स्मरण एवं सेवा तुमने की जिससे तुम्हारे समस्त पाप नष्ट हो गये ।६६-६७। तुम पत्नी के साथ उस मन्दिर की (चूना, झाड़ू आदि द्वारा) सफाई भलीभाँति करते थे । अपनी सभी वृत्तियों को छोड़कर केवल धर्म भावना से ही तुम वैसा कर रहे थे । यह तुम्हारी स्त्री भी सदैव कथावाचक द्वारा कथा का पारायण कर उस प्रकार की पुण्य चर्चा सूर्य भगवान् को सुनाती रही ।६८-६९। (एक समय) तुम लोगोंने भाँति-भाँति के रंगों, गोबर एवं मिट्टियों से लीप-पोत कर उस मंदिर को स्वच्छ किया । उस समय कुवलाश्व नामक राजा बहुत बड़ी सेना के साथ वहाँ आये जिसमें अनेकों हाथी आदि सवारियाँ थी ।७०-७१। सभी भाँति की संपत्तियों के समेत, तथा विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित एवं सहस्र रानियों को साथ लेकर आये हुए उस बलशाली राजा को देखकर तुम्हें भी इच्छा हुई कि काश ! मैं भी इसी सुन्दर मुकुट धारी राजा के समान राजा हो जाता ।७२। उस समय से यही इच्छा रख कर तुमने यहाँ सूर्य के निमित्त सभी कार्य किये जो समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं । इसीलिए उस सेवा के परिणास्वरूप इतना बड़ा समस्त भूमण्डल का राज्य तुम्हें प्राप्त हुआ है ।७३

हे पार्थिव ! यह महान् तेज भी जिस योग के प्रभाव से तुम्हें प्राप्त है, मैं बता रहा हूँ सुनो ।७४। एक बार तेल की कमी के कारण उस मन्दिर का दीपक शांत (ठंडा) हो गया था किन्तु तुमने अपने निजी भोजन के लिए रखे तेल से उसे फिर से प्रज्वलित किया था ।७५। और इस रानी ने अपने ओढ़ने वाले वस्त्र (चद्दर) से उस दीपक की बत्ती बनाकर उसे स्वयं जलाया था । हे नरेन्द्र ! इसीलिए इसे (सबसे) अधिक मनमोहक कांति तथा तुम्हें निखिल राजाओं के मन को संतृप्त करने वाला यह तेज प्राप्त हुआ है । तो विधानपूर्वक सूर्य की आराधना के द्वारा तेज आदि प्राप्त करने वाले व्यक्ति को कहना ही क्या

एवं नरेन्द्रः शूद्रत्वाद्भानुकर्मपरायणः । तन्मयत्वेन सम्प्राप्तो महिमानमनुत्तमम् ॥७८
किं पुनर्यो नरो भक्त्या नित्यं शुश्रूषणादृतः । करोति सततं पूजां निष्कामो नान्यमानसः ॥७९
सर्वांमृद्धिमिमां लब्ध्वा सर्वलोकमहेश्वरः ! पूजयित्वार्कमीशेशं तमाराध्य न सीदति ॥८०
पुष्पैर्धूपैस्तथा वान्यैर्दीपैर्वस्त्रानुलेपनैः । आराधयार्कं तद्वेश्म सदा सम्मार्जनादिना ॥८१
यद्यदिष्टतमं किञ्चिद्यद्यन्यत्तु दुर्लभम् । तद्दत्वा च जगद्धात्रे भास्कराय न सीदति ॥८२
सुगन्धागुरुकर्पूरचन्दनागुरुकुंकुमैः । वासोभिर्विविधैर्धूपैः पुष्पैः स्रक्चामरध्वजैः ॥८३
अन्योपहारैर्विविधैः कृतक्षीराभिषेचनैः । गीतवादित्रनृत्याद्यैस्तोषयस्वार्कमादरात् ॥८४
पुण्यरात्रिषु मार्तण्डं नृत्यगीतैरथोज्ज्वलम् । भूप जागरणैर्भक्त्या होमः कार्यः सदा शुचिः ॥८५
इतिहासपुराणानां श्रवणेन विशेषतः । तथा वेदस्वनैः पुण्यैर्ऋक्सामयजुभिर्नृप ॥८६
एवं सन्तोष्यते भक्त्या भगवान्भवभङ्गकृत् । भूयो वैवस्वतो भूत्वा भवहृद्भास्करो नरैः ॥८७
तोषितो भगवान्भानुर्ददात्यभिमतं फलम् । दैवकर्मसमर्थानां प्राणिनां स्मृतिसम्भवैः ॥८८
तोषितो भगवान्कामान्प्रयच्छति दिवाकरः । नैष वृत्तैर्न रत्नौघैः पुष्पैर्धूपानुलेपनैः ॥
सद्भावेनैव मार्तण्डस्तोषमायाति संस्मृतः ॥८९
त्वयैकाग्रमनस्केन गृहसम्मार्जनादिकम् । कृत्वाल्पमीदृशं प्राप्तं राज्यमन्येन दुर्लभम् ॥९०

हे नरेन्द्र ! शूद्र होने पर भी तन्मयता से सूर्य के लिए सभी कर्म करने पर तुम्हें इस अनुपम महिमा की प्राप्ति हुई है ।७८। इस प्रकार भक्ति पूर्वक जो मनुष्य अनन्य भक्त होकर निष्काम भावना से नित्य उनकी पूजा सेवा करता है, उसे क्या और कहना है ।७९। वह सर्व समृद्ध होकर समस्त लोकों का आधिपत्य प्राप्त करता है क्योंकि ईश के ईश (सूर्य) की आराधना करने पर किसी भाँति का दुःख नहीं रह जाता है ।८०। अतः पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, एवं चन्दन प्रदान करते हुए उनके मंदिर की सफाई करने के द्वारा भी उनकी आराधना करो ।८१। जो अपने को अत्यन्त प्रिय हो तथा वह वस्तु अन्य दुर्लभ प्राप्त वस्तुएँ भी उन जगन्नियन्ता सूर्य के लिए अर्पित करने पर किसी भाँति का लेश मात्र भी दुःख कभी नहीं होता है ।८२। (इसलिए) सुगन्ध, अगुरु, कपूर, चन्दन, कुंकुम, वस्त्र, भाँति-भाँति के पुष्प, चामर, ध्वजा एवं अन्य उपहार तथा दूध द्वारा अभिषेचन, गायन, वाद्य एवं नृत्य आदि द्वारा सादर उन्हें प्रसन्न करो ।८३-८४। हे भूप ! भक्तिपूर्वक पुण्य रात्रि में भास्कर मार्तण्ड देव के लिए नृत्य गान, जागरण एवं पवित्रता पूर्ण हवन विशेषकर इतिहास-पुराणों की कथाएँ सुनाने तथा ऋग्वेद, सामवेदों के पुण्य पारायण द्वारा संसार (जन्म-मरण) रूप दुःख के नाशक सूर्य को संतुष्ट करना चाहिए ।८५-८७। क्योंकि अपने आत्मीय मनुष्यों द्वारा प्रसन्न होकर संसार नाशक सूर्य भगवान् उसे अभीष्ट फल प्रदान करते हैं । इसी भाँति देव कार्य करने में दक्ष प्राणियों के सावधान होकर किये गये पूजा द्वारा प्रसन्न होने पर भगवान् दिवाकर समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं । नियम, रत्नादि, पुष्प, धूप एवं लेपन द्वारा पूजित होने पर सूर्य उतने प्रसन्न नहीं होते हैं जितना कि सद्भावना द्वारा की गई आराधना से सन्तुष्ट होते हैं ।८८-८९। एकाग्रचित्त होकर तुमने केवल मन्दिर की सफाई आदि का कार्य किया था और उसी अनन्य आराधना द्वारा इतना महान् राज्य जो अन्य के लिए अत्यन्त दुर्लभ है, तुम्हें प्राप्त हुआ है ।९०। सूर्य के

अनया श्रवणं पुण्यं कारयित्वा गृहे रवेः । ईदृक्प्राप्ता सम्पदियं पूजां कृत्वा तु वाचके ॥९१
प्राप्तोपकरणैर्यस्तमेकाग्रमतिरण्डजम् । सन्तोषयति नेन्द्रोऽपि भवता वै समः क्वचित् ॥९२
तस्मात्त्वमनया देव्या सहात्यन्तविनीतया । भास्कराराधने यत्नं कुरु धर्मभृतां वर ॥९३

ब्रह्मोवाच

एतन्मुनेर्वचो वीर निशम्य स नराधिपः । भार्यासहायः स तदा संप्रहृष्टतनूरुहः ॥९४
कृतकार्यमिवात्मानं मन्यमानस्तदाभवत् । उवाच प्रणतो भूत्वा राजा सत्राजितोऽच्युत ॥९५

सत्राजित उवाच

यथामरत्वं सम्प्राप्य यथा वायुबलं परम् । परं निर्वाणमाप्नोति तथाहं वचसा तव ॥९६
कृतकृत्यः सुखासीनो निर्वृतिं परमां गतः । अज्ञानतमसाच्छन्ने यत्प्रदीपस्त्वया धृतः ॥९७
अहमेषा च तन्वङ्गी विभूतिभ्रंशभीरुकः । द्रव्यमापादितं ब्रह्मन्निहाद्य वचसा तव ॥९८
सम्पदः कथितं बीजमावयोर्भवता मुने । त्वद्वक्त्राद्युद्गतः वाचो विज्ञाता हि द्विजोत्तम ॥९९
न रत्नैर्न च वित्तौघैर्न च पुष्पानुलेपनैः । आराध्यश्च जगन्नाथो भावशून्यैर्दिवाकरः ॥१००

मन्दिर में तुमने कथा करायी तथा कथावाचक की यही (केवल अंगूठी द्वारा) पूजा की थी उससे तुम्हें इस प्रकार की अतुलनीय संपति प्राप्त हुई है। इसलिए साधन संपन्न होकर जो कोई तन्मयता से सूर्य को प्रसन्न करता है तो उसे सभी कुछ प्राप्त होता है। इसीलिए किसी भी अंश में इन्द्र भी तुम्हारी समानता नहीं कर सकता है।९१-९२। अतः हे धार्मिक श्रेष्ठ ! तुम इस धर्म पत्नी के साथ अत्यन्त नम्रता पूर्वक भास्कर की आराधना के लिए प्रयत्न करो।९३

ब्रह्मा बोले—हे वीर ! इस प्रकार मुनि की बातें सुन कर स्त्री समेत राजा (प्रसन्नता से) गद्‌गद् हो गया।९४। उस समय उसने अपने को 'कृतकार्य' होने का अनुभव किया। हे अच्युत ! अनन्तर राजा सत्राजित नम्रता पूर्वक पुनः बोला।९५

सत्राजित ने कहा—जिस प्रकार किसी को अमरत्व एवं वायु के विशाल बल की प्राप्ति के द्वारा निर्वाणपद की प्राप्ति एवं आनन्द का अनुभव होता है, उसी प्रकार मैं आपकी बातें सुनकर परमानन्द में निमग्न हो गया हूँ।९६। अज्ञान रूपी अंधकार से ढके हुए मेरे लिए (ज्ञान रूपी) दीपक जो आपने दिखाया है उससे मैं कृतकृत्य हो गया एवं सुख पूर्वक बैठे हुए मुझे आज परम निर्वृति (सुख) की प्राप्ति हो रही है।९७। मैं तथा यह कृशाङ्गी (हम दोनों) इस विशाल ऐश्वर्य के भविष्य में नष्ट हो जाने की कल्पना से भयभीत हो रहे थे, पर, हे ब्रह्मन् ! आप की बातों से मुझे आज अनश्वर एवं अगाध संपत्ति प्राप्त हुई है मुझे ऐसा भान हो रहा है।९८। क्योंकि हे मुने ! आपने हम दोनों की संपत्ति के मूल कारण को बता दिया हे, और आप के मुख से निकली हुई समस्त बातों को मैं भली भाँति समझ भी गया हूँ।९९। रत्नों, धनों, पुष्पों एवं चन्दनों के द्वारा सूर्य की आराधना नहीं हो सकती है, अपितु जगन्नाथ दिवाकर की आराधना केवल भावशून्य (रागमोह हीन) भावना से ही की जा सकती है।१००। इसलिए बाहर

बाह्यार्थनिरपेक्षैश्च मनसैव मनोगतिः । निःस्वैराराध्यते देवो भानुः सर्वेश्वरेश्वरः ।।१०१
सर्वमेतन्मया ज्ञातं यत्त्वमात्थ महामुने । यच्च पृच्छामि तन्मे त्वं प्रसादसुमुखो वद ।।१०२
कथमाराधितो देवो नरैः स्त्रीभिश्च भास्करः । तोषमायाति विप्रेन्द्र तद्वदस्व महामुने ।।१०३
रहस्यानि च देवस्य प्रीतये या तिथिः सदा । चान्यशेषाणि मे ब्रूहि अर्काराधनकांक्षिणः ।।१०४

परावसुरुवाच

शृणु भूपाल यैर्भानुर्गृहेष्वाराध्यते जनैः । नारीभिश्चातिघोरेऽस्मिन्पतितामिर्भवार्णवे ।।१०५
समभ्यर्च्य जगन्नाथं देवमर्कं समाधिना । एकमश्नाति यो भक्तं द्वितीयं ब्राह्मणार्पणम् ।।१०६
करोति भास्करप्रीत्यै कार्त्तिकं मासमात्मना । पूर्वे वयसि यत्नेन जानताऽजानतापि वा ।।१०७
पापमाचरितं तस्माद्भिद्यते नात्र संशयः । अनेनैव विधानेन मासि मार्गशिरे पुनः ।।१०८
समभ्यर्च्य मरकतं विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति । भगवत्प्रीणनार्थाय फलं तस्य शृणुष्व मे ।।१०९
मध्ये वयसि यत्पापं योषिता पुरुषेण वा । कृतमस्माच्च तेनेक्तो विमोक्षः परमात्मना ।।११०
तथा चैवेकभक्तं तु यस्तु विप्राय यच्छति । दिवाकरं समभ्यर्च्य पौषे मासि महीपते ।।१११
ततच्च प्रीणयत्यर्कं वार्धिकेनैव यत्कृतम् । स तस्मान्मुच्यते राजन्पुमान्योषिद्यथापि वा ।।११२

आडम्बर (पुष्प चन्दन आदि) की अपेक्षा न रखकर केवल मनोयोग धन हीनों की भाँति ही उस सर्वेश्वर भानु की आराधना करनी चाहिए।१०१

हे महामुने ! इस प्रकार मैं इन सभी बातों को जो आपने कहा है समझ गया अब पुनः जो कुछ मैं पूँछ रहा हूँ उसे प्रसन्न मुख मुद्रा से बताने की कृपा करें। हे विप्रेन्द्र ! स्त्री पुरुषों द्वारा किस प्रकार की आराधना करने पर सूर्य प्रसन्न होते हैं आप उसे बतायें ? सूर्य देव के रहस्य उनकी प्रिय तिथि, एवं अन्य सभी बातें भी मुझे बताने की कृपा करें क्योंकि मैं उनकी आराधना करने का महान् अभिलाषी हूँ।१०२-१०४

परावसु बोले—हे भूपाल ! पुरुषों या स्त्रियों द्वारा जो इस अतिघोर संसार सागर में डूब रहे हैं जिस विधान पूर्वक अपने घरों में सूर्य की आराधना सुसम्पन्न की जाती है मैं कह रहा हूँ सुनो।१०५। कार्तिक मास में सूर्य की प्रसन्नता के लिए एकाग्रचित्त होकर उस जगन्नाथ भगवान् सूर्य की अर्चना करके एक बार जो भोजन करता है तथा ब्राह्मण भोजन भी कराता है उसके प्रथम (कुमार) अवस्था के पाप, जो ज्ञान या अज्ञान वश किये गये हों निर्मूल (नष्ट) हो जाते हैं। पुनः इसी भाँति इसी विधान द्वारा मार्गशीर्ष मास में जो सूर्य के प्रसन्नार्थ उनकी अर्चना करके उन ब्राह्मणों के लिए मरकत मणि अर्पित करता है उसके फल को बता रहा हूँ सुनो।१०६-१०९। उस आराधना से प्रसन्न होकर परमात्मा सूर्य मध्यमावस्था (जवानी) में उन स्त्री पुरुषों द्वारा किये समस्त पापों को नष्ट करते हैं।११०। हे महीपते! उसी प्रकार पौष मास में दिवाकर की पूजा करके (रात में) एकाहार करे और ब्राह्मण भोजन कराये तो उससे प्रसन्न होकर सूर्य उसके वृद्धावस्था के समस्त पाप को चाहे वह स्त्री द्वारा किया गया हो या पुरुष द्वारा नष्ट कर देते

त्रिमासिकं व्रतमिदं यः करोति नरेश्वर । स भानुप्रीणनात्पापैर्लघुभिः परिमुच्यते ।।११३
द्वितीये वत्सरे राजन्मुच्यते चोपपातकैः । तद्वत्तृतीयेऽपि कृतं महापातकनाशनम् ।।११४
व्रतमेतन्नरैः स्त्रीभिस्त्रिभिर्मासैरनुष्ठितम् । त्रिभिः संवत्सरैश्चैव प्रददाति फलं नृणाम् ।।११५
त्रिभिर्मासैरनुष्ठानात्त्रिविधात्पातकान्नृप । त्रीणि नामानि देवस्य मोचयन्ति च वार्षिकैः ।।११६
यतस्ततो व्रतमिदं विविधं समुदाहृतम् । सर्वपापप्रशमनं भास्कराराधने परम् ।।११७

सत्राजित उवाच

कतमाय तु विप्राय दातव्यं भक्तितो मुने । द्वितीये द्विजशार्दूल कथयस्वाखिलं मम ।।११८

परावसुरुवाच

देये पुराणविदुषे वस्त्रे विप्रोत्तमाय च । श्रूयतां चापि वचनं यदुक्तं भास्करेण च ।।
अरुणाय महाबाहो पृच्छते यत्पुरा नृप ।।११९
उदयाचलमारूढं भास्करं तिमिरापहम् । प्रणम्य शिरसा नूनमिदं वचनमब्रवीत् ।।१२०
कानि प्रियाणि ते देव पूजने सन्ति सर्वदा । पुष्पादीनां समस्तानामाराधनविधौ सदा ।।
उपरागादिवस्त्रादौ ब्राह्मणानां तथा रवे ।।१२१

भास्कर उवाच

पुष्पाणां करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् । गुग्गुलश्चापि धूपानां नैवेद्ये मोदकाः प्रियाः ।।१२२

हैं ।१११-११२। हे नरेश्वर ! इस प्रकार इस त्रैमासिक व्रत-विधान को सुसम्पन्न करते हुए जो इसकी समाप्ति करते हैं उसके अनुष्ठान से प्रसन्न होकर सूर्य उसे छोटे-छोटे पापों से मुक्त कर देते हैं ।११३। हे राजन् ! दूसरे वर्ष फिर इसी प्रकार से व्रत विधान को सुसम्पन्न करने से वह उपपातक से मुक्त हो जाता है तथा तीसरे वर्ष पुनः इसके विधानानुष्ठान द्वारा उसे महापातक से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।११४। इस भाँति तीन मास में इस व्रत की समाप्ति करना मनुष्यों का परम कर्तव्य है । क्योंकि इसका अनुष्ठान पूरे तीन वर्ष तक अनवरत करते रहने पर मनुष्य को अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है ।११५। हे नृप! इसी प्रकार सूर्यदेव के तीनों नाम तीन मासवाले इस अनुष्ठान के द्वारा पुरुषों के पातकों को तीन वर्षों में समाप्त (नष्ट) करते रहते हैं ।११६ इसीलिए सूर्य की आराधना द्वारा समस्त पातकों के विनाशार्थ यह व्रत विविधभाँति से बताया गया है ।११७

सत्राजित ने कहा—हे मुने ! हे द्विजशार्दूल! भक्तिपूर्वक किस ब्राह्मण को दान समर्पित कर और भोजन कराना चाहिए मुझे बताने की कृपा करें ।११८

परावसु बोले—ब्राह्मणोत्तम एवं पौराणिक विद्वान् को ही वस्त्र आदि समर्पित करना चाहिए । हे महाबाहो ! पहले समय में इसी विषय की बातें अरुण के पूँछने पर सूर्य ने कही थी, मैं वही कह रहा हूँ सुनो ! ।११९। एक बार उदयाचल (पर्वत) पर अन्धकार नाशक सूर्य के पहुँचने पर (प्रातःकाल ही) अरुण ने उन्हें नतमस्तक प्रणाम करते हुए यह कहा।१२०। हे देव ! मनुष्यों द्वारा आपके अपने पूजन सुसम्पन्न करते समय आपको कौन-सी वस्तु सदैव प्रिय लगती है, हे देव ! उसी प्रकार समस्त पुष्पों में जो पुष्प एवं ग्रहण समय में जो प्रिय वस्त्र हों जिन्हें ब्राह्मणों को सादर समर्पित किया जा सके उन्हें बताने की कृपा करें।१२१

भास्कर बोले—जिस प्रकार मुझे पुष्पों में करवीर (कनेर), चंदन, गुग्गुल की धूप एवं नैवेद्य में

पूजाकरो भोजकस्तु घृतदीपस्तथा प्रियः । दानं प्रियं खगश्रेष्ठ वाचकाय प्रदीयते ।।१२३
मामुद्दिश्य च यद्दानं दीयते नानवैर्भुवि । वाचकाय[1] तु दातव्यं तन्मम प्रीतये खग ।।१२४
इतिहासपुराणाभ्यामभिज्ञो यस्तु वाचकः । ब्राह्मणो वै खगश्रेष्ठः सम्पूज्यः प्रीतये मम ।।१२५
पूजितेऽस्मिन्सदा विप्रे पूजितोहं न संशयः । भवामि खगशार्दूल यतस्त्विष्टः स मे सदा ।।१२६
वेदवीणामृदङ्गैश्च नातिगन्धविलेपनैः । तथा मे जायते प्रीतिर्यथा श्रुत्वा खगोत्तम ।।१२७
इतिहासपुराणानि वाच्यमानानि वाचकैः । अतः प्रियो वाचको मे पूजाकर्ता च भोजकः ।।१२८

इति भविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सत्राजितोपाख्याने रविपूजाविधिवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।११६।

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

उपलेपनस्नापनमाहात्म्यवर्णनम्

अरुण उवाच

किमर्थं भोजकस्तुभ्यं प्रियो देवेश कथ्यताम् । नान्ये विप्रादयो वर्णा देवतायतनेषु वै ।।१

मोदक प्रिय हैं, उसी भाँति पूजा करने वालों में भोजक (ब्राह्मण) एवं घी का दीपक, तथा हे खगश्रेष्ठ ! वाचक के लिए समर्पित किया गया दान अत्यन्त प्रिय है ।१२२-१२३। इस पृथिवी तल में मनुष्यों को चाहिए कि मेरे उद्देश्य से जो कुछ दान दिये जाँय उसका ग्राहक वाचक को ही बनायें अन्य को नहीं क्योंकि उससे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती है । हे खगश्रेष्ठ ! इतिहास एवं पुराण के विशद विद्वान् को वाचक बनाकर उसकी पूजा करनी चाहिए उससे मुझे अधिक प्रसन्नता होती है ।१२४-१२५। हे खगशार्दूल ! उस वाचक ब्राह्मण की पूजा करने पर मैं ही पूजित होता हूँ। इसमें कोई संशय नहीं क्योंकि वह मुझे अत्यन्त प्रिय होता है ।१२६। हे खगोत्तम ! वेद, वीणा, मृदङ्ग, अति सुगंधित लेपन द्वारा मैं उतना प्रसंन्न नहीं होता हूँ जितना कि वाचक द्वारा इतिहास एवं पुराण की कथाओं के कहने सुनने से प्रसन्न होता हूँ इसलिए वाचक तथा मेरी पूजा करने वाला भोजक मुझे अत्यन्त प्रिय है ।१२७-१२८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सत्राजित उपाख्यान में रविपूजा विधि वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।११६।

अध्याय ११७

उपलेपन विधि वर्णन

अरुण ने कहा—हे देवेश ! देव मन्दिरों में रहकर अर्चनादि कर्मों के लिए भोजक के अतिरिक्त आप को अन्य ब्राह्मण आदि वर्ण प्रिय नहीं हैं केवल भोजक ही क्यों प्रिय हैं मुझे बताने की कृपा कीजिए ।१। हे

---

१. लेखकाय ।

कश्चायं भोजको देव कस्य पुत्रः किमात्मकः । वर्णतश्चास्य मे ब्रूहि कर्म चास्य समन्ततः ।।२

आदित्य उवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भद्रं ते वैनतेय महामते । शृणुष्वैकमनाः सर्वं गदतो मम खेचर ।।३
विप्रादयस्तु ये त्वन्ये वर्णाः कश्यपनन्दन । ते पूजयन्ति मां नित्यं भक्तिश्रद्धासमन्विताः ।।४
देवालयेषु ये विप्राः प्रीत्या मां पूजयन्ति हि । अन्याश्च देवतावृत्त्या ते स्युर्देवलकाः खग ।।
एतस्मात्कारणान्मह्यं भोजको दयितः सदा ।।५
वर्णतो ब्राह्मणश्चायं स्वानुष्ठानपरो यदि । अनुष्ठानविहीनो हि नरकं यात्यसंशयम् ।।६
न त्याज्यं भोजकैस्तस्मात्स्वकं कर्म कदाचन । मयासौ निर्मितः पूर्वं तेजसा स्वेन वै खग ।।७
पूजार्थमात्मनो नूनं कर्म चास्य प्रकीर्तितम् । प्रियव्रतसुतो राजा शाकद्वीपे महामतिः ।।८
तेन मे कारितं दिव्यं विमानप्रतिमं गृहम् । तस्मिन्द्वीपे तदात्मीये दिव्यं शिलामयं महत् ।।९
स मदर्चां कारयित्वा काञ्चनीं लक्षणान्विताम् । प्रतिष्ठापनार्थं वै तस्याश्चिन्तयामास सुव्रतः ।।१०
कृतमायतनं श्रेष्ठं तेनेयं प्रतिमा कृता । को वै प्रतिष्ठापयिता देवमर्कं शुभालये ।।११
एवं सञ्चिन्तयित्वा तु जगाम शरणं मम । भक्तिं तस्य च सञ्चिन्त्य खगाहं पार्थिवस्य तु ।।१२

देव ! यह भोजक कौन हैं, किसका पुत्र है, इसका वर्ण (जाति) क्या है, तथा उसके कर्म कौन हैं मैं ये सभी बातें जानना चाहता हूँ ।२

आदित्य बोले—हे महामते, वैनेतेय ! तुम्हारा कल्याण हो, तुमने साधु प्रश्न किया है, हे आकाश चारिन् ! मैं इन सभी बातों को कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।३। हे कश्यपनंदन ! ब्राह्मणादि अन्य वर्ण भी भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक नित्य मेरी आराधना करते हैं ।४। हे खग ! जो ब्राह्मण देवालयों में स्थापित मेरी प्रतिमा की प्रेम पूर्वक आराधना करते हैं वे और पूजा को ही अपनी जीविका मानकर सदैव जो उसमें तन्मय रहते हैं उन्हें देवलक कहा जाता है किन्तु, जीविका मानकर तन्मय रहने वाले ये भोजक ही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं ।५। भोजक तो जाति का ब्राह्मण होता ही है, इसलिए उसे अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए । अन्यथा अनुष्टान न करने पर उसे निश्चित नरक की प्राप्ति होती है ।६। हे खग ! इसलिए भोजक को अपने दैनिक (कर्म) का त्याग कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि पूर्व में मैंने उसे अपने तेज से उत्पन्न किया है ।७

अपनी पूजा करने के निमित्त मैंने इनके कर्म भी बता दिये हैं । (अब इसी विषय की कथा) बता रहा हूँ सुनो ! राजा प्रियव्रत का पुत्र शाकद्वीप का महाबुद्धिमान् राजा था जिसने मेरे लिए विमान की भाँति एक उत्तम मन्दिर की रचना करायी थी । उस द्वीप में उसने एक महान् शिला खंड की (मेरी) मूर्ति का जो सुवर्ण से खचित एवं सर्व लक्षण संपन्न थी निर्माण करा कर उसकी स्थापना (प्रतिष्ठा) के लिए सोचा कि इस अनुपम मन्दिर तथा इस प्रतिमा का निर्माण कार्य तो मैंने सुसम्पन्न कर दिया परन्तु इस सुन्दर मन्दिर में इस मूर्ति की (सूर्य देव की) प्रतिष्ठा का कार्य किस विधान द्वारा कराया जाये ।८-११। इस प्रकार विचारते हुए वह मेरी शरण में आया । हे खग ! मैं उस राजा की भक्ति देखकर उसके सामने प्रत्यक्ष हुआ और उससे मैंने कहा—हे राजेन्द्र ! तुम चिंतित क्यों हो रहे हो और तुम्हें चिंता

गतोऽहं दर्शनं तस्य उक्तश्चापि मया खग । किं चिन्तयसि राजेन्द्र कुतश्चिता समागता ॥१३
ब्रूहि यत्ते हृदि प्रौढं चिन्ताकारणमागतम् । संपादयिष्ये तत्सर्वं विमना भव मा नृप ॥१४
अत्यर्थं दुष्करमपि करिष्ये नात्र संशयः । इत्युक्तः स मया राजा इदं वचनमब्रवीत् ॥१५
द्वीपेऽस्मिन्देवदेवस्य कृतमायतनं तव । मया भक्त्या जगन्नाथ तथेयं प्रतिमा कृता ॥१६
प्रतिष्ठां कारयेद्यस्तु तव देवालये खग । यत्र सन्ति त्रयो वर्णा द्वीपेस्मिन्क्षत्रियादयः ॥१७
ते मयोक्ता न कुर्वन्ति प्रतिष्ठां तव कृत्स्नशः । न चाप्यर्चां जगन्नाथ ब्राह्मणश्चात्र विद्यते ॥१८
तेनेयमागता चिन्ता हृदि शल्यं तयार्पितम् । ततो मयोक्तो राजाऽसौ वैनतेय वचः शुभम् ॥१९
एवमेतन्न संदेहो यथात्थ त्वं नराधिपः । क्षत्रियादित्रयो वर्णा द्वीपेऽस्मिन्नात्र संशयः ॥२०
ते च नार्हन्ति मे पूजां न प्रतिष्ठां कदाचन । तस्मात्ते श्रेयसे राजन्प्रतिष्ठामात्मनस्तथा ॥२१
सृजामि प्रथमं वर्णं भगसंज्ञमनौपमम् । इत्युक्त्वा तमहं वीर राजानं खगसत्तम ॥२२
जगाम परमां चिन्तां तस्य कार्यस्य सिद्धये । अथ मे चिन्तयानस्य[1] स्वशरीराद्विनिःसृताः ॥२३
शशिकुन्देन्दुसंकाशाः संख्ययाष्टौ महाबलाः । पठन्ति चतुरो वेदान्सांगोपनिषदः खग ॥२४
काषायवाससः सर्वे करण्डाम्बुजधारिणः । ललाटफलकाद्द्वौ तु द्वौ चान्यौ वक्षसस्तथा ॥२५

कहाँ से आ गई ॥१२-१३। अच्छा, तुम अपने हृदय में वर्तमान विशेष चिंता के कारण को शीघ्र बताओ! हे नृप! मैं अवश्य उस कारण की पूर्ति करूँगा। अतः अपने चित्त को दुःखी न करो।१४। यदि वह कार्य अत्यन्त कठिन भी होगा तो भी मैं उसे सिद्ध कर दूँगा इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार मेरे कहने पर उस राजा ने कहा कि हे देवाधिदेव! इस द्वीप में आपका मन्दिर मैंने बनवाया है, हे जगन्नाथ! भक्तिपूर्वक मैंने इस (आपकी) प्रतिमा का भी निर्माण कराया है।१५-१६। हे आकाशगामिन्! उस मन्दिर में आप की मूर्ति की प्रतिष्ठा कौन कराये क्योंकि उस द्वीप में क्षत्रिय आदि तीन ही वर्ण रहते हैं।१७। तथा मेरे आदेश देने पर भी वे सब आप की मूर्ति की (विधान पूर्वक) प्रतिष्ठा का कार्य सम्पूर्णतया नहीं करा सकते हैं। हे जगन्नाथ! इसी प्रकार प्रतिदिन की पूजा भी नहीं हो सकती है क्योंकि यहाँ कोई ब्राह्मण तो है ही नहीं।१८। इसीलिए इन्हीं कार्यों की चिन्ता मेरे हृदय में शूल की भाँति पीड़ा कर रही है। हे वैनतेय! इसके पश्चात् मैंने उस राजा से इस प्रकार मांगलिक शब्दों में कहा।१९। हे नराधिप! क्षत्रिय आदि तीन ही वर्ण इस द्वीप में है, इसमें कोई संशय नहीं और जो कुछ तुम कह रहे हो वह भी सत्य है।२०। वे मेरी प्रतिष्ठा एवं पूजा सुसम्पन्न कराने के योग्य कभी नहीं हो सकते हैं। हे राजन्! इसीलिए तुम्हारे कल्याण एवं अपनी (मूर्तिकी) प्रतिष्ठा के लिए मैं 'भग नामक' (श्रेष्ठ) वर्ण वाले को उत्पन्न कर रहा हूँ। हे खगसत्तम! इस प्रकार उस राजा से कह कर मैं उस राजा की कार्य-सिद्धि के लिए अधिक नहीं क्षणमात्र चिंतित हुआ कि मेरी शरीर से चन्द्र कुन्द एवं इन्दु की भाँति स्वच्छ वर्ण वाले आठ महाबली पुरुष उत्पन्न हुए। हे खग! वे उस समय सांगोपांग उपनिषद् एवं चारों वेदों का पाठ कर रहे थे।२१-२४। सभी कषाय वस्त्र पहने तथा बाँस का पुण्यपात्र लिए हुए थे जिसमें कमल पुष्प

---

१. चिन्तयमानस्य।

अरणाभ्यां तथा द्वौ तु पादाभ्यां द्वौ तथा खग । अथ ते च महात्मानः सर्वे प्रणतकन्धराः ।।२६
पितरं मन्यमाना मामिदं वचनमब्रुवन् । तातताता महादेव लोकनाथ जगत्पते ।।२७
किमर्थं भवता सृष्टा वयं देवस्य देहतः । ब्रूहि सर्वं करिष्याम आदेशं भवतोऽखिलम् ।।२८
पितास्माकं भवान्देवो वयं पुत्रा न संशयः । इत्युक्तवन्तस्ते सर्वे मयोक्ता देवसम्भवाः ।।२९
प्रियव्रतसुतो योयमस्य वाक्यं करिष्यथ । स चाप्युक्तो मया राजा शाकद्वीपाधिपः खग ।।३०
य एते मत्सुता राजन्नर्घ्या ब्राह्मणसत्तमाः । कारयन्तु प्रतिष्ठां मे सर्वैरेभिर्महीपते ।।३१
कारयित्वा प्रतिष्ठां तु ममार्चायां नराधिप । पश्चादायतनं सर्वमेषामर्पय पूजने ।।३२
एते मत्पूजने योग्याः प्रतिष्ठासु च सर्वशः । समाप्य न प्रहर्तव्यं भोजकेभ्यः कदाचन ।।३३
सर्वमायतनार्थं तु गृहक्षेत्रादिकं च यत् । धनधान्यादिकं राजन्यन्ममायतने भवेत् ।।३४
तत्सर्वं भोजकेभ्यस्तु दातव्यं नात्र संशयः । धनधान्यसुवर्णादि गृहक्षेत्रादिकं च यत् ।।
यन्मदीयं भवेत्किञ्चित्तद्ग्रामे वा नगरे क्वचित् ।।३५
तस्य सर्वस्य राजेन्द्र मदीयस्य समन्ततः । अधिपा भोजकाः सर्वे नान्ये विप्रादयो नृप ।।३६
यथाधिकारी पुत्रस्तु पितृद्रव्यस्य वै भवेत् । तथा मदीयवित्तस्य भोजकाः स्युर्न संशयः ।।३७
इत्युक्तेन मया राज्ञा तथा सर्वं प्रवर्तितम् । कारयित्वा प्रतिष्ठां तु दत्त्वा सर्वस्वमेव हि ।।
भोजकेभ्यः खगश्रेष्ठ ततो हर्षमवाप्तवान् ।।३८

संचित किया गया था। हे खग ! इस प्रकार मेरे मस्तक, वक्षःस्थल, चरण एवं चरणतल द्वारा वे दो-दो व्यक्ति उत्पन्न हुए थे। पश्चात् वे महात्मा लोग मुझे पिता समझते हुए मेरी ओर नतमस्तक हो कर यह कहने लगे कि हे तात ! हे महादेव ! हे लोकनाथ ! एवं हे जगत्पते ! आप ने अपनी देह से हमें किस लिए उत्पन्न किया है आज्ञा प्रदान करें। हम लोग उसे शिरोधार्य कर उसके पालन के लिए तैयार खड़े हैं।२५-२८। आप हम लोगों के पिता हैं तथा हम लोग आपके पुत्र हैं, इसमे संशय नहीं। इस प्रकार उनके कहने पर मैंने उनसे कहा। प्रियव्रत राजा का यह पुत्र सामने उपस्थित है, इसकी मन इच्छित बातें पूरी करो ! हे खग ! पश्चात् मैंने उस-शाकद्वीपाधिपति राजा से भी कहा।२९-३०। हे राजन् ! ये सब ब्राह्मण श्रेष्ठ एवं पूजनीय मेरे पुत्र हैं। हे महीपते ! ये सभी मेरी प्रतिमा की प्रतिष्ठा करायेंगे ! ।३१। हे राजन् ! प्रतिष्ठा कराने के उपरांत मेरी पूजा करने के लिए इन्हें मन्दिर अर्पित कर देना।३२। क्योंकि ये सभी भलीभाँति मेरी प्रतिष्ठा एवं पूजा करने के योग्य हैं प्रतिष्ठा-कार्य की समाप्ति के पश्चात् भोजकों को दी हुई वस्तुएँ उनसे कभी न लेना चाहिए। हे राजन् ! अतः उस मन्दिर में गृहक्षेत्र एवं धन-धान्य आदि जो कुछ भी वस्तु एकत्र किया गया हो वे सभी भोजक को निश्चित रूप से अर्पित कर देना। क्योंकि धन धान्य सुवर्ण आदि तथा गृह एवं क्षेत्र जो कुछ भी मेरे उद्देश्य से किसी ग्राम या नगर में संचित किया गया हो, सभी प्रकार से उसके अधिकारी भोजक ही हैं न कि किसी अन्य ब्राह्मण आदि के।३३-३५। जिस प्रकार पैतृक संपत्ति को अधिकारी उसका पुत्र होता है, उसी भाँति मेरे धन के अधिकारी भोजक हैं, इसमें संशय नहीं।३६-३७। हे खगश्रेष्ठ ! इस प्रकार मेरे कहने पर राजा ने वैसा ही किया। प्रतिष्ठा कराने के पश्चात् उसने वहाँ का सर्वस्व भोजक को समर्पित करते हुए अत्यन्त हर्ष प्रकट किया।३८। हे गरुडाग्रज !

एवमेते मया सृष्टा भोजका गरुडाग्रज । अहमात्मा ततो ह्येषां सर्वे सुमनसस्तथा ।।३९
मत्पुत्रेण समा ज्ञेयास्तथा मम हिताः सदा । तस्मात्तेभ्यः प्रदातव्यं न हर्तव्यं कदाचन ।।४०
भोजकस्य हरेद्यस्तु लोभाद्द्वेषात्तथापि वा । स याति नरकं घोरं तामिस्रं शाश्वतीः समाः ।।४१
तस्माद् ग्रामादिकं द्रव्यं यत्किञ्चिन्मम विद्यते । तत्सर्वं भोजकस्वं हि पितृपर्यागतं मम ।।४२
भोजकश्च भवेद्यादृक्तत्ते वच्मि खगेश्वर । ममाज्ञां पालयेद्यस्तु स्वानुष्ठानपरः सदा ।।४३
वेदाधिगमनं पूर्वं दारसंग्रहणं तथा । अभ्यङ्गधारणं नित्यं तथा त्रिषवणं स्मृतम् ।।४४
पञ्चकृत्वः सदा पूज्यो ह्यहं रात्रौ दिने तथा । देवब्राह्मणवेदानां निन्दा कार्या न वै क्वचित् ।।४५
नान्यादेवप्रतिष्ठा तु कार्या वै भोजकेन तु । ममापि च न कर्तव्या तेन एकाकिना क्वचित् ।।४६
सर्वमेव निवेद्यान्नं नाश्नीयाद्भोजकः सदा । न भुञ्जीत गृहं गत्वा शूद्रस्य गरुडाग्रज ।।४७
शूद्रोच्छिष्टं प्रयत्नेन सदा त्याज्यं हि भोजकैः । येऽश्नन्ति भोजका नित्यं शूद्रान्नं शूद्रवेश्मनि ।।४८
ते वै पूजाफलं चात्र कथं प्राप्स्यन्ति खेचर । गत्वा गृहं तु शूद्रस्य न भोक्तव्यं कदाचन ।।४९
गृहागतं च शूद्रान्नं तच्च त्याज्यं तथैव च । आध्मातव्योम्बुजो नित्यं भोजकेनाग्रतो मम ।।५०
सकृत्प्रवादिते शंखे मम प्रीतिर्हि जायते । षण्मासान्नात्र सन्देहः पुराणश्रवणं तथा ।।५१
तस्माच्छंखः सदा वाद्यो भोजकेन प्रयत्नतः । तस्येयं परमा वृत्तिर्नैवेद्यं यन्मदीयकम् ।।५२

इस भाँति इन भोजकों की सृष्टि मैंने ही की है इसलिए मैं इनकी आत्मा हूँ और ये सब पुत्र की भाँति मेरे सदैव हितैषी हैं अतः उन्हें ही दान आदि देना चाहिए पुनः उनसे लेना कभी नहीं ।३९-४०। क्योंकि लोभ या द्वेष वश जो उनकी संपत्ति का अपहरण करता है उसे अनेकों वर्षों के लिए तामिस्र नामक नरक की प्राप्ति होती है ।४१। इसलिए गाँव आदि द्रव्य जो कुछ मेरे लिए अर्पित किया गया है, वह सब भोजक का है और पिता होने के नाते मेरा भी ।४२

हे खगेश्वर ! भोजक को जैसा होना चाहिए तुम्हें बता रहा हूँ भोजक को चाहिए कि अनुष्ठान को करते हुए मेरी आज्ञा का सदैव पालन करता रहे ।४३। वेदाध्ययन के उपरांत विवाह कर गृहस्थ हो जाये और नित्य अभ्यंग (लेप या उपटन) लगाकर त्रैकालिक स्नान संध्या करे ।४४। रात में पाँच बार मेरी पूजा करे तथा देव, ब्राह्मण एवं वेदों की कभी कहीं निन्दा न करे ।४५। भोजक किसी अन्य देव की प्रतिष्ठा एवं एकाकी रहकर मेरी भी प्रतिष्ठा कहीं न करे ।४६। हे गरुडाग्रज ! समस्त भोज्य पदार्थ मुझे समर्पित कर पुनः स्वयं एकाकी न खाये और वह शूद्र के घर जाकर भोजन भी न करे ।४७। इस प्रकार भोजक को शूद्र के उच्छिष्ट का सर्वथा त्याग करना चाहिए क्योंकि जो भोजक शूद्र के घर जाकर उसके अन्न आदि का नित्य भोजन करता है तो उसे (मेरी) पूजा के फल कैसे प्राप्त हो सकते हैं । इसलिए उसे शूद्र के घर कभी भोजन न करना चाहिए ।४८-४९। भोजक को अपने घर पर आये हुए शूद्रान्न का भी उसी भाँति त्याग करना चाहिए । भोजक को चाहिए कि मेरे सामने नित्य शंख बजाये, क्योंकि एकबार शंख बजाने से भी मुझे उतनी अधिक प्रसन्नता होती है जितनी कि छह मास पुराण के श्रवण द्वारा होती है ।५०-५१। इसलिए भोजक को सदैव सप्रयत्न शंख बजाना चाहिए मेरे लिए समर्पित किये गये नैवेद्य आदि ही भोजक की परम वृत्ति (जीने की) बतायी गयी है ।५२

नाभोज्यं भुञ्जते यस्मात्तेनैते भोजका मताः । मगं ध्यायन्ति ते यस्मात्तेन ते मगधाः स्मृताः ॥५३
भोजयन्ति च मां नित्यं तेन ते भोजका स्मृताः । अभ्यङ्गं च प्रयत्नेन धार्यं शुद्धिकरं परम् ॥५४
अभ्यङ्गहीनो ह्यशुचिर्भोजकः स्यान्न संशयः । यस्तु मां पूजयेद्वीर अभ्यङ्गेन विना खग ॥५५
न तस्य सन्ततिः स्याद्वै न चाहं प्रीतिमान्भवे[1] । मुण्डनं शिरसा कार्यं शिखा धार्या प्रयत्नतः ॥५६
नक्तं चादित्यदिवसे तथा वष्टयां प्रवर्तयेत् । सप्तम्यामुपवासस्तु मम संक्रमणे तथा ॥५७
कर्तव्यो भोजकेनैव मत्प्रीत्यै गरुडाग्रज । त्रिकालं चापि गायत्रीं जपेद्वाचा पुरो मम ॥५८
मुखमावृत्य यत्नेन पूजनीयोऽहमादरात् । मौनं चास्य प्रयत्नेन त्यक्त्वा क्रोधं च दूरतः ॥५९
शूद्रेभ्यो यस्तु वैश्येभ्यो लोभात्कामात्प्रयच्छति । निर्माल्यं मम वै वत्स स याति नरकं ध्रुवम् ॥६०
लोभाद्वै भोजको यस्तु मत्पुष्पाणि खगाधिप । यच्छतेन्यस्य दुष्टात्मा मय्यनारोप्य खेचर ॥६१
स ज्ञेयो मे परः शत्रुः स मामर्हो न चार्चितुम् । निर्माल्यं मम देयं स्याद्ब्राह्मणादिषु वै नृषु ॥६२
नैवेद्यं यन्मदीयं तु तदश्नीयात्सदैव हि । तेनासौ शुद्ध्यते नित्यं हविष्यान्नसमं तथा ॥६३
तत्क्षणादुत्क्षिपेद्यस्तु ममांगात्पुष्पमेव हि । नान्यस्य देयं नैवेद्यं मदीयमुदके[2] क्षिपेत् ॥६४
पञ्चगव्यसमं तस्य मन्मतं नात्र संशयः । ममाङ्गलग्नं यत्किञ्चिद्गन्धं पुष्पमथापि वा ॥६५

अभक्ष्य का भोजन न करने के नाते उसे मेरी संमति से भोजक कहा जाता है तथा मग (याचना) का ध्यान रखने से मगध भी ।५३। मुझे नित्य भोजन कराने के नाते भी उन्हें भोजक कहा जाता है । अतः प्रयत्नपूर्वक अत्यन्त पवित्र कारक अभ्यंग धारण करना चाहिए ।५४। क्योंकि अभ्यंग हीन भोजक अपवित्र होता है, इसमें संशय नहीं । हे वीर ! हे खग ! अभ्यंग हीन होकर जो भोजक मेरी पूजा करता है, उसकी वंशपरम्परा नहीं चलती है और मैं प्रसन्न भी नहीं होता हूँ । उसे सदैव शिर का मुण्डन कराना चाहिए तथा सिर पर शिखा रखनी चाहिए ।५५-५६। सूर्य के दिन (रविवार) में और संक्रान्ति काल में उपवास करना चाहिए ।५७। हे गरुडाग्रज ! भोजक का मेरे प्रसन्नार्थ इन आदेशों के पालन पूर्वक मेरे सम्मुख त्रिकाल गायत्री जप तथा मुख ढाँककर सादर मेरी पूजा करनी चाहिए और उस समय मौन रहकर प्रयत्न पूर्वक क्रोधहीन होना चाहिए ।५८-५९। हे वत्स ! जिस भोजक ने लोभ या काम वश मेरा निर्माल्य शूद्र अथवा वैश्य को प्रदान किया तो उसे निश्चित नरक की प्राप्ति होती है ।६०। हे प्रकाशगामिन् ! जो भोजक लोभवश मेरे पुष्पों का जो मुझे समर्पित करने के लिए सुरक्षित रखे गये हों बिना मुझे अर्पित किये ही किसी को दे देता है, उसे मेरा परम शत्रु समझना चाहिए और वह पुष्प मेरी पूजा के योग्य भी नहीं रह जाता। मेरा निर्माल्य ब्राह्मण आदि मनुष्यों को देना चाहिए।६१-६२। उसी को मेरे नैवेद्य का भक्षण भी सदैव करना चाहिए, क्योंकि उसके भक्षण करने से वह हविष्यान्न भक्षण करने की भाँति शुद्ध रहता है।६३। मुझे समर्पित किये गये पुष्प एवं नैवेद्य का सेवन यदि स्वयं न करे तो किसी को देना भी नहीं चाहिए। अपितु उसे पानी में डाल देना चाहिए ।६४। क्योंकि वह उसके लिए पञ्चगव्य के समान शुद्धिप्रदायक होता है । मेरे अंग में लगे हुए गन्ध पुष्प आदि किसी वैश्य या शूद्र को कभी न देना चाहिए और न उसका

---

१. आर्षः उत्तमपुरुष आत्मनेपदी । २. भोजकेनतु ।

दातव्यं न च वैश्याय न शूद्राय कदाचन । आत्मना तद्ग्रहीतव्यं न विक्रेयं कथञ्चन ।।६६
यस्तु नारोप्य पुष्पाणि अव्यङ्गानि ममोपरि । यः कश्चिदाहरेल्लोके स याति नरकं ध्रुवम् ।।६७
स्नपनं मम निर्माल्यं पावकं यस्तु लङ्घयेत् । स नरो नरकं याति सरौद्रं रौरवं खग ।।६८
भोजकेन सदा कार्यं स्नपनं मे प्रयत्नतः । यथा न लङ्घयेत्कश्चिद्यथा श्वा नापि भक्षयेत् ।।६९
यद्ययत्नपरः कुर्याद्भोजकः स्नपनं मम । यथा वै लङ्घितमतिर्भक्ष्यतां च खगाधिप ।।७०
स याति नरकं रौद्रं तामिश्रं नाम नामतः । एकभक्तं सदा कार्यं स्नानं त्रैकालमेव हि ।।७१
त्रिचैलं परिवर्तेत भवितव्यं दिनेदिने । पूजाकालेऽर्घकाले च क्रोधस्त्याज्यः प्रयत्नतः ।।७२
अमांगल्यं न वक्तव्यं वक्तव्यं च शुभं तदा । ईदृग्भूतो भोजको मे प्रेयान् पूजाकरः सदा ।।७३
सन्मान्यः पूजनीयश्च विप्रादीनां यथास्म्यहम् । यः करोत्यवमानं तु वृत्तिरूपं तु भोजके ।।७४
तस्याहं रोषमेत्याशु कुलं हन्मि समन्ततः । प्रियो मे भोजको नित्यं यथा त्वं विनतासुत ।।७५
उपलेपनकर्ता च सम्मार्जनपरश्च यः ।।

परावसुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्भानुर्बभ्राम रथमास्थितः ।।७६
अरुणोऽपि तथा श्रुत्वा मुदया परया नृपः । पूज्यस्तस्मान्महाराज भोजकस्तु महीपते ।।७७
तस्माद्देयं वाचकाय द्वितीयमशनं नरैः ।।७८

विक्रय ही करना चाहिए स्वयं ही उसका उपभोग करे ।६५-६६। जो कोई मेरे अंगों में पुष्पों को बिना सुसज्जित किये उन्हें लेता है, उसे अवश्य नरक की प्राप्ति होती है ।६७। हे खग ! मेरे स्नान के निर्माल्य एवं अग्नि को लांघने वाला रौद्र एवं रौरव नामक नरक की प्राप्ति करता है ।६८। इसलिए भोजक (ऐसे स्थान में) मेरा स्नान सप्रयत्न कराये जिससे कोई उसका उल्लंघन न कर सके तथा कुत्ता उसका भक्षण भी न कर सके ।६९। हे खगाधिप ! यदि भोजक असावधानी से मेरा स्नान कराये और कुत्ता उसे खा ले तो भयानक तामिस्र नामक नरक उसे प्राप्त होता है । भोजक को एकाहार एवं त्रैकालिक स्नान करना चाहिए ।७०-७१। प्रतिदिन उसे तीन वस्त्र बदलने चाहिए और पूजा तथा अर्घ्य प्रदान के समय क्रोध त्याग के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए ।७२। अमंगलकारी शब्दों के त्याग एवं सदैव शुभदायक वाणी बोलनी चाहिए । क्योंकि इसी प्रकार की पूजा करने वाला भोजक मुझे सदैव प्रिय होता है ।७३। अन्य ब्राह्मणादि के लिए भी भोजक मेरे समान ही सम्मानीय एवं पूजनीय है, वृत्ति के विषय में जो भोजक का अपमान करता है, क्रुद्ध होकर मैं शीघ्र उसके कुल का नाश कर देता हूँ । हे विनतासुत ! तुम्हारी भाँति जो भोजक भी लेप तथा सफाई करता है वह मुझे सदैव प्रिय होता है ।७४-७५

परावसु ने कहा—इस प्रकार कहकर भगवान् भास्कर रथ में बैठकर आगे चले गये ।७६। हे नृप ! अरुण भी इसे सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । हे महाराज ! हे महीपते ! इसीलिए भोजक पूज्य हैं और दूसरे ब्राह्मण के स्थान पर इन्हीं भोजक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।७७-७८

ब्रह्मोवाच

इत्थं श्रुत्वा स राजा तु कर्मणः फलमात्मनः । पुरातनं महाबाहुर्मुदमाप महीपतिः ॥७९
यद्यदायतनं भानोः पृथिव्यां पश्यते नृपः । तस्मिंस्तस्मिन्कारयति उपलेपनमादरात् ॥८०
भार्या तस्यापि सुश्रोणिः पुण्यश्रवणमादरात् । वाचके वेतनं दत्त्वा भानोर्देवस्य मन्दिरे ॥८१
इत्थं राजा सपत्नीकः पूज्य भक्त्या दिवाकरम् । प्राप्तावुभौ परां प्रीतिं गतिं चानुत्तमां तथा ॥८२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्प उपलेपनस्नापनमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११७।

सत्राजितोपाख्यानं समाप्तम्

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

दीपदानफलवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दीपं प्रयच्छति नरो भानोरायतने तु यः । तेजसा रविसंकाशः सर्वयज्ञफलं[1] लभेत् ॥१
कार्त्तिके तु विशेषेण कौमारे मासि दीपकम् । दत्वा फलमवाप्नोति यदन्येन न लभ्यते ॥२
कृष्णकृष्णात्र ते वच्मि संवादं पापनाशनम् । भ्रातृभिः सह भद्रस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥३

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार अपने पुरातन कर्मों के फल को सुनकर वह महाबाहु राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।७९। उस समय से वह राजा इस पृथिवी में जहाँ कहीं सूर्य का मंदिर देखता था उसकी सादर सफाई कराता था और उसकी सुश्रोणी भार्या भी सूर्य के मंदिर में प्रतिदिन कथा कहने के लिए किसी वाचक को वैतनिक वृत्ति प्रदान कर नित्य पुण्य कथा का श्रवण करने लगी थी।८०-८१। इस प्रकार सपत्नीक उस राजा ने भक्ति पूर्वक सूर्य की पूजा करके (उन दोनों ने) प्रसन्नता समेत उत्तम गति की प्राप्ति की।८२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में उपलेपन स्नापन माहात्म्यवर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।११७।

अध्याय ११८

आदित्यायतनदीपदान वर्णन

ब्रह्मा बोले—जो मनुष्य सूर्य के मंदिर में दीप दान करता है उसे सूर्य के समान तेज की प्राप्ति पूर्वक समस्त यज्ञों के फलों की प्राप्ति होती है।१। कार्तिक मास में विशेषकर कौमारावस्था में दीपदान करने से अन्य दुर्लभ फल की प्राप्ति होती है।२। हे कृष्ण ! इसी विषय पर मैं भद्र नामक उस महात्मा ब्राह्मण के पापनाशक संवाद को तुम्हें सुनाता हूँ जो उनके भाइयों में आपस में कहा सुना गया था।३

---

१. सर्वज्ञत्वफलंलभेत् ।

जगत्यस्मिन्पुरी रम्या नाम्ना माहिष्मती पुरा । तस्यामासीद्द्विजः कृष्ण नागशर्मेति विश्रुतः ॥४
तस्य पुत्रशतं जातं प्रसादाद्भास्करस्य च । तेषां कनिष्ठो भद्रस्तु तत्पुत्राणां विचक्षणः ॥५
स च नित्यं जगद्धातुर्देवदेवस्य भास्वतः । दीपवर्तिपरस्तद्वत्तैलाद्याहरणोद्यतः ॥६
भानोरायतने तस्य सहस्रं भार्गवीप्रिय । प्रदीपानां तु जज्वाल दिवारात्रमनिन्दितम् ॥७
तस्य दीप्त्या पराभूतास्तस्य लावण्यधर्षिताः । सर्वे ते भ्रातरो भद्रं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥८
भो भद्र वद वै भ्रातर्भद्रं तेऽस्तु सदा द्विज । कौतूहलपराः सर्वे यत्पृच्छामस्तदुच्यताम् ॥९
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा भद्रो वचनमब्रवीत् । विषये सति वक्तव्यं यन्मया तदिहोच्यताम् ॥१०
नाहं मत्सरयुक्तो वै न च रागादिदूषितः । भवन्तो मम सर्वे वै भ्रातरो गुरवस्तथा ॥११
कथं न कथयाम्येष भवतां पुत्रसम्मितः । तस्माद्ब्रुवन्तु मां सर्वे भ्रातरो यद्विवक्षितम् ॥१२

भ्रातर ऊचुः

न तथा पुष्पधूपेषु न तथा द्विजपूजने । सुप्रयत्नं तु पश्यामो भानोरायतने परम् ॥१३
यथाहनि तथा रात्रौ यथा रात्रौ तथाहनि । तव दीपप्रदानाय यथा भद्र सदोद्यमम् ॥१४
तत्त्वं तत्कथयास्माकं हंत कौतूहलं परम् । यन्नाम दीपदानस्य भवता विदितं फलम् ॥१५
तदेतत्कथयास्माकं सविशेषं महाबल । एवमुक्तस्ततस्तैस्तु भ्रातृभिश्चोदितो मुदा ॥१६
व्याजहार स भ्रातॄणां न किञ्चिदपि सुव्रत । पुनः पुनरसौ तैस्तु भ्रातृभिश्चोदितो मुदा ॥१७

पहले समय में इस पृथ्वी तल पर माहिष्मती नामक एक रम्य पुरी थी । उसमें नागशर्मा नामक कोई ब्राह्मण रहता था ।४। सूर्य की कृपा वश उस ब्राह्मण के सौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें अधिक बुद्धिमान् सबसे छोटा भद्रनामक पुत्र हुआ ।५। वह सदैव देवाधिदेव एवं जगत् के विधाता सूर्य के लिए समर्पित दीपक में उसकी बत्ती तथा तेल आदि के लिए सदैव ध्यान रखता था ।६। हे भार्गवी प्रिय ! इस प्रकार उसके प्रयत्न से दिनरात सूर्य के मन्दिर में कल्याणप्रद सहस्र दीपक जलाये जाते थे ।७। जिससे उसके परिणामस्वरूप प्राप्त उसकी देह की दीप्ति एवं सौन्दर्य से विस्मित होकर उसके सभी भाइयों ने सादर उससे पूछा ।८। भाई भद्र ! तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो, हे द्विज ! एक बात के लिए हम लोगों को महान् कौतूहल हो रहा है, इसलिए पूँछ रहे हैं, बताओ ।९। उनकी बातें सुनकर भद्र ने कहा उस विषय को पूँछो, जो मुझे कहना है ।१०। मुझमें मत्सर या रागादि दोष नहीं है जिससे मैं छिपाने की कोशिश करूँगा और आप लोग भाई हैं तथा बड़े होने के नाते गुरु भी ।११। आप के पुत्र के समान हूँ अतः अवश्य बताऊँगा, इसलिए हे भाइयों ! जो पूँछने की इच्छा हो आप निःसंकोच पूँछे ।१२

भाइयों ने कहा—हे भद्र ! सूर्य के मन्दिर में उन्हीं के लिए दिन रात दीपक जलाने में जितना घोर प्रयत्न देखते हैं उतना (देवता के) पूजनार्थ पुष्प एवं पुष्पादि में तथा ब्राह्मण पूजन के लिए नहीं देखे हैं। इससे हमें महान् विस्मय एवं कौतूहल हो रहा है अतः दीपदान का फल जो तुम्हें विदित हो हमें बताओ ।१३-१५। हे महाबल ! विस्तार पूर्वक इसे कहो । हे सुव्रत व इस प्रकार भाइयों के कहने पर प्रसन्न चित्त होकर भी उसने पहले कुछ नहीं कहा पर भाइयों के बार-बार पूँछने पर दाक्षिण्य गुण सम्पन्न भद्र ने उनके प्रश्न का समुचित उत्तर देना प्रारम्भ किया ।१६-१७। उसने कहा— हे सुव्रत ! इस छोटी

दाक्षिण्यसारो भद्रस्तु कथयामास कृत्स्नशः । भवतां कौतुकं चैतदतीवाल्पेऽपि वस्तुनि ।।१८
तदेष कथयाम्यद्य यद्व्रतं मम सुव्रत । इक्ष्वाकुराज्ञस्तु पुरा वशिष्ठोऽभूत्पुरोहितः ।।१९
तेन चायतनं भानोः कारितं सरयूतटे । अहन्यहनि शुश्रूषां पुष्पधूपानुलेपनैः ।।२०
दीपदानादिभिश्चैव चक्रे तत्र स वै द्विजः । कार्तिके दीपको भक्त्या प्रदत्तस्तेन वै सदा ।।२१
आसीन्निर्वाण एवासौ देवार्चापुरतो निशि । देवतायतने चाहमवसं व्यथितो भृशम् ।।२२
पूयशोणितनिष्यन्दं प्रावहन्कायतः सदा । शीर्णघ्राणो ह्यवरवो दुर्गंधपतितस्तथा ।।२३
दुष्टबुद्ध्या सदा युक्तः सप्ताश्वं प्रति सुव्रत । यदृच्छया दीपदानं वर्त्यादीनां विभावसौ ।।२४
तत्तद्भुक्त्वा तदा तुष्टिं व्रजामि द्विजसत्तमाः । एकदा तु ततस्तस्मिन्भानोरायतने गतः ।।२५
रात्रौ दृष्टा मया तत्र भक्ता जागरणागताः । प्रतिश्रयं प्रार्थिताश्च तैश्च दत्तो दयान्वितैः ।।२६
व्याधितोऽयं सुदीनश्च इति कृत्वा मतिं शुभाम् । ततोऽहमग्निमाश्रित्य स्थितस्तेषां समीपतः ।।२७
दुष्टां बुद्धिं समाश्रित्य हर्तुकामो विवस्वतः । दिव्यमाभरणं भानोश्छिद्रान्वेषी द्विजोत्तमाः ।।२८
स्थितोऽहं भोजका ह्यत्र यदि निद्रां व्रजन्ति ते । येनास्य वैरिवद्भानोर्हराम्याभरणं शुभम् ।।२९
अथ सुप्ता भोजकास्ते निद्रया मोहितास्तदा । निर्वाणश्चापि दीपास्तु ततोऽहमुत्थितस्त्वरन् ।।३०
मुदा परमया युक्तो गतो वैश्वानरं प्रति । प्रज्वाल्य पावकं यत्नाद्दीपवर्तिस्ततो मया ।।३१

सी बात के लिए आप लोगों को जो कौतूहल हो रहा है तो मैं अपने व्रत का विवेचन कर रहा हूँ । सुनो ! ।१८। पहले समय में राजा इक्ष्वाकु के वशिष्ठ पुरोहित थे ।१९। उन्होंने सरयू के तट पर भगवान् सूर्य का मन्दिर बनवाया था । पुष्प, धूप, चन्दन और दीपदानादि द्वारा ये प्रतिदिन सूर्य की सेवा कर रहे थे । कार्तिक मास में वे भक्तिपूर्वक सदैव दीपदान करते थे ।२०-२१। क्योंकि रात्रि में सूर्य देव के सम्मुख मन्दिर में इस प्रकार की दीप-दान रूपी अर्चा करना मुक्ति प्राप्त करना है ऐसा कहा गया है । उसी मन्दिर के सामने रात में मैं रहता था । यद्यपि मैं उस समय अत्यन्त पीड़ित था और मेरे शरीर से सदैव पीब एवं रक्त निकला करता था नाक सूख गई थी एवं स्पष्ट शब्दों में बोल नहीं सकता था, इस प्रकार शरीर की दुर्गंध के नाते मैं और भी पतित हो गया था ।२२-२३। हे सुव्रत ! तथापि सूर्य के प्रति मेरी सदैव दुर्भावना ही रहती थी । हे द्विजसत्तम ! उस मन्दिर में सूर्य के लिए समर्पित किये गये दीपकों की बत्तियाँ आदि मेरे ही काम आती थीं क्योंकि मैं उसे चुरा कर खा लेता था, इस प्रकार मैं उस अपने आचरण से सदैव प्रसन्न भी रहता था ।२४-२५। एक बार रात में उस मन्दिर में गया वहाँ देखा कि भक्तगण जाग रहे हैं मैंने उनसे अपने रहने के लिए प्रार्थना की । यह रोगी एवं दीन है ऐसा सोचकर उन लोगों ने दयावश मुझे वहाँ रहने का स्थान प्रदान किया । उनके समीप ही अग्नि का आश्रय लेकर तापने के ब्याज से मैं वहां बैठ गया ।२६-२७। हे द्विजोत्तम ! उस समय सूर्य के दिव्य आभूषणों को देखकर उसके अपहरण करने के लिए मेरी बुद्धि खराब होने लगी मैं उसके अपहरण करने का उपाय सोंचने लगा ।२८। सोंचा कि मैं यहीं बैठा हूँ और ये भोजक भी यही हैं अतः जब ये लोग निद्रित अवस्था में होंगे (अर्थात्) अच्छी तरह सो जायेंगे तब शत्रु की भाँति सूर्य के उन उत्तम आभूषणों को चुरा लूँगा ।२९। इसके पश्चात् नींद में मस्त होकर वे भोजक गण सो गये एवं दीपक भी बुझ गया । तदुपरांत शीघ्रता से उठकर हर्षमग्न होता हुआ मैं अग्नि के समीप गया

योजयित्वा तु वै दीपे धृतो दीपोऽग्रतो रवेः । हर्तुकामेनाभरणं भानोर्देवस्य सुव्रत ।।३२
अथ ते भोजकाः सर्वे वृद्धा देवस्य पुत्रकाः । तैस्तु दृष्टो ह्यहं तत्र दीपहस्तो विभावसोः ।।३३
पुरः स्थितो द्विजश्रेष्ठा गृहीतश्चापि तैरिह । ततोऽहं तेजसा मूढो भास्करस्य महात्मनः ।।३४
विलपन्करुणं तेषां पादयोरवनिं गतः । तैश्चापि करुणां कृत्वा मुक्तोऽहं भोजकैस्तदा ।।३५
गृहीतो राजपुरुषैः पृष्टश्चापि समन्ततः । किमिदं भवतारब्धं देवदेवस्य मंदिरे ।।३६
दीपं प्रज्वाल्य दुष्टात्मन्कथ्यतां मा चिरं कुरु । इत्युक्त्वा तु ततस्तैस्तु शस्त्रहस्तैः समावृतः ।।३७
ततोऽहं व्याधिना क्लिष्टो भयेन च द्विजोत्तमाः । हित्वा प्राणान्गतो यत्र स्वयं देवो विभावसुः ।।३८
स्थित्वा कल्पं ततस्तत्र युष्माकं भ्रातृतां गतः । एष प्रभावो दीपस्य कार्तिके मासि सुव्रताः ।।३९
दत्तस्यार्कस्य भवने यस्येयं व्युष्टिरुत्तमा । दुष्टबुद्ध्या कृतं यत्तु मया दीपप्रवर्तनम् ।।४०
भगायतनदीपस्य तस्येदं भुज्यते फलम् । क्षुधाभिभूतेन मया देवदेवस्य भूषणम् ।।४१
दीपश्च देवपुरतो ज्वालितो भास्करस्य तु । ततो जातिस्मृतिर्जन्म प्राप्तं ब्राह्मणवेश्मनि ।।४२
कुष्ठिना चापि शूद्रेण प्राप्तं ब्राह्मण्यमुत्तमम् । नानाविधानि शास्त्राणि सांगं वेदं समाप्तवान् ।।४३
दुष्टबुद्ध्या धृताद्दीपात्फलमेतन्महाद्भुतम् । प्राप्तं मया द्विजश्रेष्ठाः किं पुनर्दीपदायिनाम् ।।४४

वहाँ उसे प्रयत्नपूर्वक प्रज्वलित कर दीपक की बत्ती फिर से जलायी और दीप में रख, उसे सूर्य के सामने रख दिया इसलिए कि जिससे मैं सूर्य के आभूषणों का अपहरण भली भाँति कर सकूँ।३०-३२। इसके उपरान्त उन सभी वृद्ध भोजकोंने जो सूर्य के पुत्र के समान थे मुझे देख लिया मैं सूर्य के सामने दीपक हाथ में लिए खड़ा था।३३। हे द्विजश्रेष्ठ ! भगवान् भास्कर के तेज से मैं अन्धों के समान हो गया था। अतः उन लोगों ने मुझे वहीं पकड़ लिया।३४। पश्चात् मैं कारुणिक विलाप करता हुआ उन लोगों के पैरों पर गिर पड़ा इसलिए भोजकों ने भी दयावश मुझे उसी समय मुक्त कर दिया।३५। तदुपरांत मन्दिर से बाहर आने पर राजा के सिपाहियों ने मुझे चारों ओर से घेर कर पकड़ लिया और पूछने लगे कि देवाधिदेव (सूर्य) के मंदिर में दीपक जलाकर तुम क्या कर रहे थे। हे दुष्ट ! इसका कारण शीघ्र बताओ देरी मत करो ! ऐसा कह कर वे लोग हाथ में शस्त्र लेकर चारों ओर से सावधान होकर खड़े हो गये।३६-३७। हे द्विजोत्तम ! तदुपरांत मैं रोग से पीड़ित था ही उस समय मुझे इतना भय भी लगा कि उसी के कारण मेरे प्राण उसी समय निकल गये। पश्चात् मैं सूर्य लोक में गया।३८। वहाँ एक कल्प पर्यंत रह कर अब आप लोगों का भाई हुआ हूँ। हे सुव्रत ! यह सब कार्तिक मास के दीपदान का ही प्रभाव है।३९। जिसका यह उत्तम परिणाम मुझे प्राप्त है। यद्यपि मैने अपने भ्रष्ट विचार से वहाँ उस दीपक को जलाया था तथा उस समय मैं भूख से अत्यन्त व्याकुल था इसीलिए उनके आभूषणों का अपहरण करना चाहता था और उसी के निमित्त मैंने दीपक जलाकर सूर्य के सामने रखा था किन्तु उसी का यह कैसा दिव्य फल प्राप्त हुआ कि पुरातन काल के स्मरण के साथ ब्राह्मण के घर जन्म हुआ।४०-४२ उस जन्म में कुष्ठ रोगी होते हुए भी शूद्र वर्ण से मैं उत्तम ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर भाँति-भाँति के शास्त्र तथा सांगोपाङ्ग वेदों का भी पूर्ण अध्ययन कर लिया।४३। हे द्विज श्रेष्ठ ! मैंने अपनी दुष्ट बुद्धि के कारण ही वहाँ दीपक रखा था किन्तु जब उसका भी यह महान् आश्चर्यजनक फल मुझे प्राप्त हुआ तो शुद्ध भावना से दीपक दान करने वालों का कहना क्या

एतस्मात्कारणाद्दीपानहमेवमहर्निशम् । प्रयच्छामि रवेर्धाम्नि ज्ञातमस्य हि यत्फलम् ।।४५
युष्माकमिदमुक्तं वै स्नेहात्सत्यं न संशयः । एष प्रभावो दीपस्य कार्तिके मासि सुव्रताः ।।४६
अर्कायतनदीपस्य भद्रोवोचद्यथा पुरा । दिनेदिने जपन्नाम भास्करस्य समाहितः ।।४७
ददाति कार्तिके यस्तु भगायतनदीपकम् । जातिस्मरत्वं प्रज्ञां च प्राकाश्यं सर्वजन्तुषु ।।४८
अव्याहतेन्द्रियत्वं च समाप्नोति न संशयः । सर्वकालं च चक्षुष्मान्मेधावी दीपदो नरः ।।४९
जायते नरकं चापि तमः संज्ञं न पश्यति । षष्ठीं वा सप्तमीं वापि प्रतिपक्षं च यो नरः ।।५०
दीपं ददाति यत्नाद्यत्फलं तस्य निबोध मे । काञ्चनं मणियुक्तं च मनोज्ञमतिशोभनम् ।।५१
दीपमालाकुलं दिव्यं विमानमधिरोहति । तस्मादायतने भानोर्दीपान्दद्यात्सदाच्युत ।।५२
तांश्च दत्त्वा न हिंस्याच्च न च तैलवियोजितान् । कुर्वीत दीपहर्ता तु मूषकोन्धश्च जायते ।।५३
तस्माद्दद्यान्नाहरेद्वै श्रेयोऽर्थी दीपकं नरः ।।५४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे भद्रोपाख्यान आदित्यायतनदीपदानफलवर्णनं नामष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११८।

है ।४४। इसीलिए मैं प्रतिदिन सूर्य के मन्दिर में रात-दिन दीपक जलाने का प्रयत्न करता रहता हूँ क्योंकि उसका फल मुझे मालूम है ।४५। हे सुव्रत ! मैंने आप लोगों से स्नेहवश ये सत्य बातें बतायी, इसमें कोई संदेह नहीं है क्योंकि कार्तिक मास में दीप दान का ऐसा प्रभाव होता ही है ।४६

पहले समय में भद्र नामक व्यक्ति ने भी सूर्य के मंदिर में दीपदान के महत्व को ऐसा ही बताया है अतः कार्तिक के मास में सूर्य का ध्यान लगा कर प्रतिदिन उनके नाम का जप पूर्वक जो उनके मंदिर में उनके लिए दीपदान करता है भद्र के कथनानुसार उसे जातिस्मरण बुद्धि सभी प्राणियों में ख्याति तथा नीरोग इन्द्रियाँ निःसंदेह प्राप्त होती हैं । इस प्रकार दीप दान करने वाला मनुष्य सभी समय चक्षुष्मान् एवं मेधावी होता है ।४७-४९। कदाचित् वह नरक भी जाये तो वहाँ भी उसे तम नामक नरक नहीं दिखाई देगा ।

अब प्रत्येक पक्ष में षष्ठी एवं सप्तमी में जो प्रयत्न पूर्वक दीप दान करते हैं उसके फलको कह रहा हूँ सुनो ! सुवर्ण एवं मणि से युक्त मनोज्ञ सौन्दर्यपूर्ण तथा दीपक की मालाओं से सुशोभित उस दिव्य विमान पर वह सुशोभित किया जाता है। अतः हे अच्युत ! सूर्य के मन्दिर में सदैव दीपदान करना चाहिए ।५०-५२। उसी भाँति सूर्य के लिए समर्पित किये गये दीपकों को फोड़ना या तैल आदि की चोरी न करनी चाहिए। क्योंकि दीपक का अपहरण करने वाला प्राणी चूहा एवं अन्धा भी होता है ।५३। इसलिए कल्याण के इच्छुक पुरुषों को चाहिए कि दीपदान कर उसका अपहरण कभी न करें ।५४

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प मे भद्रक उपाख्यान में आदित्यायतन दीपदान फल वर्णन नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।११८।

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

दीपदानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अन्धे तमसि दुष्पारे नरके पतितान्किल । संक्रोशमानांस्तंक्षुब्धानुवाच यमकिङ्करः ।।१
विलापैरलमत्रेति किं वो विलपिते फलम् । यत्प्रमादादिभिः पूर्वमात्मायं समुपेक्षितः ।।२
पूर्वमालोचितं नैतत्कथमन्ते भविष्यति । इदानीं यातनां भुङ्ध्वं किं विलापं करिष्यथ ।।३
देहो दिनानि स्वल्पानि विषयाश्चातिदुर्बलाः । एतत्को न विजानाति येन यूयं प्रमादिनः ।।४
जन्तुर्जन्मसहस्रेभ्य एकस्मिन्मानुषो यदि । स तत्राप्यतिमूढात्मा किं भोगानभिधावति ।।५
पुत्रदारगृहक्षेत्रहिताय सततोद्यताः । न जानन्ति ततो मूढाःस्वल्पमप्यात्मनो हितम् ।।६
वञ्चितोऽहं मया लब्धमिदमस्मादुपागतम् । न वेत्ति मोहितः कश्चित्प्रक्रान्तनरको नरः ।।७
न वेत्ति सूर्यचन्द्रादीन्कालमात्मानमेव च । साक्षिभूतानशेषस्य शुभस्येहाशुभस्य च ।।८
जन्मान्यन्यानि जायन्ते पुत्रदारादिदेहिनाम् । यदर्थं तत्कृतं कर्म तस्य जन्मशतानि तु ।।९

अध्याय ११९

दीपदान विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अत्यन्त घोर एवं दुष्पार होने वाले उस अन्ध-तामिस्र (घोर अन्धकारमय) नामक नरक में पड़े एवं दुःखी होकर विलाप करने वाले लोगों ने एकबार यम के दूतों से (कड़े शब्दों में) कहा था।१। यहाँ रुदन करना बन्द करो! तुम लोगों के रुदन करने से कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि प्रमाद वश अपने आत्मा के उद्धार के लिए जब पहले ही नहीं सोचा और सदैव उसकी उपेक्षा ही करते रहे एवं कभी इस पर विचार ही नहीं किया तो अन्त में यहाँ आने पर क्या हो सकता है अतः इस समय यातनाओं का उपभोग करो, विलाप क्यों करते हो।२-३। क्योंकि इस देह को तथा इसके अल्प जीवन के दिन एवं अत्यन्त सारहीन इस विषय वासना को कौन नहीं जानता है जिसके कारण लोग प्रमाद करते हैं, जैसे तुम लोगों ने किया।४। और सहस्रों जन्म के पश्चात् कहीं एकबार जीव मनुष्यं जन्म प्राप्त करता है किंतु अत्यंत मूढ़ होकर विषयों में अत्यन्त लिप्त और उसके उपभोगों के लिए ही दिन रात दौड़ता फिरता है, तथा पुत्र, स्त्री, गृह एवं क्षेत्र की रक्षा के लिए निरन्तर प्रयत्न शील रहता है यही नहीं अपितु अपने जीवन के स्वास्थ्य के हित का भी ध्यान नहीं रखता है इसीलिए वह मूढ़ कहा जाता है।५-६। इस प्रकार भूतल में रहते समय कोई भी नरकगामी मनुष्य मोहित होने के नाते यह नहीं सोच पाता है कि मैं (आत्मोद्धार से) वंचित हो रहा हूँ और मुझे इसके बदले में वहाँ क्या प्राप्त होगा।७। मोहजाल में फँसे रहने के नाते ही यह शुभ एवं अशुभ कर्मों के साक्षी भूत सूर्य, चन्द्रमा, काल एवं आत्मा का ज्ञान कभी नहीं करता है।८। यद्यपि पुत्र एवं स्त्री आदि अन्य जन्म में जीवों को प्राप्त होते रहते हैं किन्तु उन्हीं के लिए मैंने अपने जीवन के दिन व्यतीत किये हैं और इसी कारण मुझे सैकड़ों योनियों में जाना भी पड़ा है ऐसा जीव कभी नहीं सोचता। आश्चर्य है मोह

अहो मोहस्य माहात्म्यं ममत्वं नरकेष्वपि । क्रन्दते मातरं तातं पीडयमानोऽपि यत्स्वयम् ॥१०
एवमाकृष्टचित्तानां विषयैः स्वादुतर्पणैः । नृणां न जायते बुद्धिः परमार्थविलोकिनी ॥११
तथा च विषयासङ्गं करोत्यविरतं मनः । को हि भारो रवेर्नाम्नि जिह्वायाः परिकीर्तने ॥१२
वर्तितैलेऽल्पमूल्ये च यद्वर्त्तिर्लभ्यते सुधा । अतो वै कतरो लाभः कातश्चिन्ता भवेत्तदा ॥१३
येनायतेषु हस्तेषु स्वातंत्र्ये सति दीपकः । महाफलो भानुगृहे न दत्तो नरकापहाः ॥१४
नरो विलपते किञ्चिदिदानीं दृश्यते फलम् । अस्वातंत्र्ये विलपता स्वातंत्र्ये सति मानिनाम् ॥१५
अवश्यं पातिनः प्राणा भोक्ता जीवोऽप्यहर्निशम् । दत्तं च लभते भोक्तुं कामयान्विषयानपि ॥१६
एतत्स्थानं दुष्कृतैर्वा युक्तं चाद्य मयेक्षितम् । इदानीं किं विलापेन सहध्वं यदुपागतम् ॥१७
यद्येतदनभीष्टं वो यद्दुःखं समुपस्थितम् । तदद्भुतमतिः पापे न कर्तव्या कदाचन ॥१८
कृतेऽपि पापके कर्मण्यज्ञानादघनाशनम् । कर्तव्यमनवच्छिन्नं पूजनं सवितुः सदा ॥१९

ब्रह्मोवाच

नारकास्तद्वचः श्रुत्वा तमूचुरतिदुःखिताः । क्षुत्क्षामकण्ठास्तृट्तापविसंस्फुटिततालुकाः ॥२०

का इतना बड़ा प्रभाव कि नरक में रहते हुए जिसके कारण परिवार के लिए इतनी बड़ी ममता उत्पन्न हो कि यातनाएँ भोगते हुए भी तात-मात कह कर उन्हें स्वयं पुकारते रहें ।९-१०। इसीलिए स्वादिष्ट विषयों से आकृष्ट होकर सदैव उसमें लिप्त रहने के नाते मनुष्यों में परमार्थ प्राप्त करने वाली बुद्धि कभी उत्पन्न नहीं होती है ।११। क्योंकि विषयों को अपनाने के लिए ही उनका मन सदैव लालायित रहता है और उससे मुक्त होने के लिए कभी नहीं। अन्यथा उसकी रसनेन्द्रिय (जिह्वा) के लिए सूर्य का नामोच्चारण करना न प्रतीत होता ।१२। यद्यपि दीपक में जलने वाली बत्ती एवं तेल का मूल्य अत्यल्प होता है अतः वह सहज ही में प्राप्त हो सकता है जिसके संयोग से दीपक प्रदान करने पर सुधा की प्राप्ति होती है इस प्रकार इससे तुम्हें कितना लाभ होता है और उस समय तुम्हें कोई चिन्ता भी न होती ।१३। इसीलिए स्वतंत्र रहने पर जिसने सूर्य के मन्दिर में इन अपने विशाल हाथों द्वारा महाबलशाली एवं नरक नाशक दीप का दान नहीं किया है वही मनुष्य यहाँ आकर रुदन करता है जिसको कुछ अंश में देख ही रहा हूँ। इससे यही निश्चित हो रहा है कि जीव परतन्त्र होने पर रुदन करता है और स्वतन्त्र रहने पर अभिमानी हो जाता है ।१४-१५। प्राण तो अवश्य पाती (एकदिन निकल जायेंगे) हैं ही और जीव, भी रात दिन सुख दुःख भोगने के लिए ही है। एवं दानस्वरूप में देने पर ही इच्छानुकूल विषयों के उपभोग प्राप्त होते हैं ।१६। यह (नरक) स्थान तो पापों के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है, यह भी मैं भली भाँति जानता हूँ अतः इस समय अब तुम्हारे रुदन करने से क्या लाभ होगा ।१७। सामने जो कुछ उपस्थित है एकमात्र उसका सहन करो। क्योंकि यदि सामने उपस्थित अनिच्छित इस दुःख को तुम नहीं चाहते तो वहाँ घर पर रहते समय तुम लोग अपनी निर्मल बुद्धि करते कभी किसी पाप कर्म में न फँसते और यदि अज्ञानवश कोई पाप कर्म हो गया हो तो उन पाप नाशक सूर्य का सदैव पूजन करते रहते ।१८-१९

ब्रह्मा बोले—भूख से सूखे हुए (जल) एवं प्यास से संतप्त होकर फँसे हुए तालु वाले उन नारकीयों ने उनकी बातें सुनकर बड़े दुःख से कहा ।२०। हे साधो ! आप हम लोगों के किये हुए उन कर्मों को बताने

भोभोः साधो कृतं कर्म यदस्माभिस्तदुच्यताम् । नरकस्थैर्विपाकोऽयं भुज्यते यत्सुदारुणः ।।२१

किङ्कर उवाच

युष्माभिर्यौवनोन्मादान्मुदितैरविवेकिभिः । घृतलोभेन मार्तण्डगृहाद्दीपः पुरा हृतः ।।२२
तेनास्मिन्नरके घोरे क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः । भवन्तः पतितास्तीव्रे शीतवातविदारिताः ।।२३

ब्रह्मोवाच

एतत्ते दीपदानस्य प्रदीपहरणस्य च । पुण्यं पापं च कथितं भास्करायतनेऽच्युत ।।२४
सर्वत्रैव हि दीपस्य प्रदानं कृष्ण शस्यते । विशेषेण जगद्धातुर्भास्करस्य निवेशने ।।२५
येऽन्धा मूका बधिरा निर्विवेका हीनास्तैस्तैर्दानसाधनैर्वृष्णिवीर ।
तैस्तैर्दीपाः साधुलोकप्रदत्ता देवागारादन्यतः कृष्ण नीताः ।।२६

इति श्री भविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे दीपदानमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।११९।

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यपूजावर्णनम्

विष्णुरुवाच

भगवन्प्राणिनः सर्वे विषरोगाद्युपद्रवैः । दुष्टग्रहोपघातैश्च सर्वकालमुपद्रुताः ।।१

की कृपा कीजिए जिसके द्वारा नरक में पड़कर हम लोग इस अत्यन्त दारुण फल को भोग रहे हैं ।२१

यम-किंकरों ने कहा—पहले समय में यौवन के उन्माद में अज्ञान से मुग्ध होकर तुम लोगों ने घी के लोभवश सूर्य के मन्दिर से दीपक का अपहरण किया था ।२२। इसीलिए भूख और प्यास से तुम्हें निरन्तर दुःखी होना पड़ रहा है तथा शीतवात द्वारा तुम्हारे अंग विदीर्ण हो गये हैं और ऐसी अवस्था में तुम्हें इस घोर दुःखदायी नरक की प्राप्ति हुई है ।२३

ब्रह्मा बोले—हे अच्युत ! इस प्रकार भास्कर के मन्दिर में दीपदान एवं दीपहरण के पुण्य पाप तुम्हें बता दिया ।२४। हे कृष्ण ! इसी प्रकार दीप दान सर्वत्र प्रशस्त बताया गया है किंतु विशेषकर जगत् के धाता भगवान् भास्कर के मन्दिर में यह दीपदान अत्यन्त (प्रशस्त) है ।२५। हे वृष्णिवीर ! इसलिए जितने अंधे, गूंगे, बहरे अविवेकी, एवं विभिन्नदान साधनों से हीन मनुष्य दिखायी देते हैं वे सभी देवमन्दिरों से साधुजनों द्वारा प्रदत्त दीपों का अपहरण अवश्य किये हैं ।२६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में दीपदान माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।११९।

अध्याय १२०

आदित्यपूजा विधि का वर्णन

विष्णु ने कहा—हे भगवन् ! समस्त जीव विष एवं रोगादि उपद्रवों से तथा ग्रहों के अरिष्ट होने के

आभिचारिककृत्याभिः स्पर्शरोगैश्च दारुणैः । सदा सम्पीडयमानास्तु तिष्ठन्त्यम्बुजसम्भव ॥२
येन कर्मविपाकेन विषरोगाद्युपद्रवाः । प्रभवन्ति नृणां तन्मे यथावद्वक्तुमर्हसि ॥३

ब्रह्मोवाच

व्रतोपवासैर्यैर्भानुर्नान्यजन्मनि तोषितः । ते नरा देवशार्दूल ग्रहरोगादिभागिनः ॥४
यैर्न तत्प्रवणं चित्तं सर्वदैव नरैः कृतम् । विषग्रहज्वराणां ते मनुष्याः कृष्ण भागिनः ॥५
आरोग्यं परमां वृद्धिं मनसा यद्यदिच्छति । तत्तदाप्नोत्यसंदिग्धं परत्रादित्यतोषणात् ॥६
नाधीन्प्राप्नोति न व्याधीन्न विषग्रहबन्धनम् । कृत्यास्पर्शभयं वापि तोषिते तिमिरापहे ॥७
सर्वे दुष्टाः समास्तस्य सौम्यास्तस्य सदा ग्रहाः । देवानामपि पूज्योऽसौ तुष्टो यस्य दिवाकरः ॥८
यः समः सर्वभूतेषु यथात्मनि तथा हिते । उपवासादिना येन तोष्यते तिमिरापहः ॥९
तोषितेऽस्मिन्प्रजानाथे नराः पूर्णमनोरथाः । अरोगाः सुखिनो नित्यं बहुधर्मसुखान्विताः ॥१०
न तेषां शत्रवो नैव शरीराद्यभिचारकम् । ग्रहरोगादिकं वापि पापकार्युपजायते ॥११
अव्याहतानि देवस्य धनजालानि तं नरम् । रक्षन्ति सकलापत्सु येन श्वेताधिपोऽर्चितः ॥१२

कारण सदैव दुःखी रहते हैं ।१। हे कमलोत्पन्न ! इस प्रकार अभिचार (मारण आदि पुरश्चरण तथा विषय योग आदि) कर्मों एवं कठोर स्पर्श (छूत के) रोगों द्वारा यह जीव सदा पीड़ित ही रहता है ।२। अतः जिन कर्मों के परिणाम स्वरूप विष एवं रोगादि उपद्रव मनुष्यों पर अपना प्रभाव प्रकट करते हैं वह मुझे यथोचित ढंग से बताने की कृपा कीजिए ।३।

ब्रह्मा बोले—हे देवशार्दूल ! जिन्होंने पूर्व जन्म में व्रत एवं उपवास आदि द्वारा भगवान् सूर्य को सन्तुष्ट नहीं किया है, वे ही मनुष्य ग्रह एव रोग आदि से पीड़ित होते हैं ।४। हे कृष्ण! इस भाँति जिन मनुष्यों ने सदैव अपने चित्त को सूर्य में तन्मय नहीं किया है, वे ही लोग विष ग्रह एवं ज्वरों के भोग भागी होते हैं ।५। क्योंकि सूर्य की सेवा करने पर आरोग्य तथा परम वृद्धि की प्राप्ति समेत मन से वह जिस-जिस (वस्तु) की इच्छा करता है उसे आदित्य के प्रसन्न होने पर उन सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती है ।६। एवं जिस तिमिरनाशक सूर्य के प्रसन्न होने पर आधि (मानसिक) व्याधि (शारीरिक) पीडाएँ विष और ग्रह तथा कृत्य (अभिचारकर्म) के स्पर्श का भय भी नहीं होता है ।७। इस प्रकार जिसके ऊपर सूर्य प्रसन्न रहते हैं उसके शत्रु सदैव शान्त रहते हैं सभी ग्रह सौम्य होते हैं तथा वह देवताओं का भी पूज्य होता है ।८। एवं जो सभी प्राणियों के लिए अपनी समान दृष्टि रखता है जैसे अपने वर्ग के लिए वैसे ही पराये (दूसरों) के लिए भी तथा जिसने उपवास आदि द्वारा सूर्य को प्रसन्न कर लिया है उन पुरुषों के प्रजानाथ सूर्य के प्रसन्न होने पर सभी मनोरथ भली भाँति सफल हो जाते हैं । वे नित्य आरोग्य, सुखी एवं अत्यन्त धार्मिक होकर सुखी जीवन व्यतीत करते हैं ।९-१०। उसके कोई शत्रु नहीं होता है, न उसके शरीर पर अभिचार (अपहरण आदि) का प्रभाव ही पड़ता है और उनके अरिष्ट ग्रह रोग आदि सभी शान्त हो जाते हैं ।११। उसी भाँति जिसने श्वेताधिप सूर्य की अर्चना की है, उसके ऊपर समस्त आपत्तियों के आने पर सूर्य देव का वह अव्याहत किरण जाल उसकी रक्षा करता है ।१२

विष्णुरुवाच

अनाराधितमार्तण्डा ये नराः दुःखभागिनः । ते कथं नीरुजः सन्तु विज्वरा गतकल्मषाः ॥१३

ब्रह्मोवाच

आराधयन्तु देवेशं पुष्पेणैवमनौपमम् । भास्करं तु जगन्नाथं सर्वदेवगुरुं परम् ॥१४

विष्णुरुवाच

दोषाभिभूतदेहैस्तु कथमाराधनं रवेः । कर्त्तव्यं वद देवेश भक्त्या श्रेयोऽर्थमात्मनः ॥१५
अनुग्राह्योऽस्मि यदि ते ममायं भक्तिमानिति । तन्मयोपदिश त्वं च महदाराधनं रवेः ॥१६
अनन्तमजरं देवं दुष्टसन्देहनाशनम् । आराधयितुमिच्छामि भगवन्तस्त्वदनुज्ञया ॥
येनाहं त्वत्प्रसादेन भवेयमतिविक्रमः ॥१७

ब्रह्मोवाच

अनुग्राह्योऽसि देवस्य नूनमव्यक्तजन्मनः । आराधनाय ते विष्णो यदेतत्प्रवणं मनः ॥१८
यदि देवपतिं भानुमाराधयितुमिच्छसि । भगवन्तमनाद्यं च भव वैवस्वतोऽच्युत ॥१९
न ह्यवैवस्वतैर्भानुर्ज्ञातुं स्तोतुं च शक्यते । द्रष्टुं वा शक्यते मूढैः प्रवेष्टुं कुत एव तु ॥२०
तद्भक्तिप्रार्थिताः पूता नरास्तद्भक्तिचेतसः । वैवस्वता भवन्त्येव विवस्वन्तं विशन्ति च ॥२१

विष्णु ने कहा—जिन्होंने कभी सूर्य की आराधना नहीं की है वे ही भाँति-भाँति के दुःखों से पीड़ित हो रहे हैं अतः वे मनुष्य किस प्रकार नीरोग, ज्वरादि रहित तथा पापों से मुक्त हो सकते हैं बताने की कृपा करें।१३

ब्रह्मा बोले—देवेश, अनुपम, जगत् के नाथ, एवं देवताओं के परम गुरु उस भास्कर की पूजा केवल पुष्पों द्वारा आप अवश्य करें।१४

विष्णु ने कहा—हे देवेश ! दोषादिकों से अभिभूत (पीड़ित) होने वाले को शरीर द्वारा सूर्य की आराधना किस प्रकार से करनी चाहिए इसे आत्मकल्याण के लिए मुझे अवश्य बताने की कृपा करें।१५। 'मेरा यह भक्त है' इस प्रकार के आपके सद्विचार द्वारा यदि मै अनुगृहीत हूँ, तो आप सूर्य के उस महान् सेवा विधान का उपदेश मुझे अवश्य प्रदान करें। हे भगवन् ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर मैं उस अनंत, एवं दुष्टों तथा संदेहों के नाशक सूर्य देव की आराधना करना चाहता हूँ, जिससे आपकी प्रसन्नता वश प्राप्त सूर्य की कृपा द्वारा मैं अत्यन्त पराक्रमी हो जाऊँ।१६-१७

ब्रह्मा बोले—हे विष्णो ! अव्यक्तजन्मा उस देव की आराधना के लिए तुम्हारे मनमें जिस समय निश्चय हुआ है उसी समय तुम (उनसे) अनुगृहीत हो चुके।१८. हे अच्युत ! इसलिए यदि देवपति एवं अनादि भगवान् सूर्य की आराधना करना चाहते हो, तो सर्वप्रथम वैवस्वत (सूर्य) का आत्मीय बनने के लिए प्रयत्न करो क्योंकि बिना सूर्य का आत्मीय हुए उनका ज्ञान स्तुति एवं दर्शन मूढ़ों की भाँति उसे सम्भव ही नहीं हो सकता है तो उनमें प्रवेश कहाँ से हो सकेगा।१९-२०। क्योंकि उनकी भक्ति की भावना करने पर मनुष्य पवित्र हो जाता है और चित्त भक्ति निमग्न होने पर उसे वैवस्वत (सूर्य का

अनेकजन्मसंसारचिते पापसमुच्चये । नाक्षीणे जायते पुंसां मार्तण्डाभिमुखी मतिः ।।२२
प्रद्वेषं याति मार्तण्डे द्विजान्वेदांश्च निन्दति । यो नरस्तं विजानीयादसुरांशसमुद्भवम् ।।२३
पाषण्डेषु रतिः पुंसां हेतुवादानुकूलता । जायते दम्भमायाम्भः पतितानां दुरात्मनाम् ।।२४
यदा पापक्षयः पुंसां तदा वेदद्विजातिषु । भानौ च यज्ञपुरुषे श्रद्धा भवति नैष्ठिकी ।।२५
यदा स्वल्पावशेषस्तु नराणां पापसञ्चयः । तदा भोजकविप्रेषु भानौ पूजां प्रकुर्वते ।।२६
भ्रमतामत्र संसारे नराणां कर्मदुर्गमे । करावलम्बनो ह्येको भक्तिप्रीतो दिवाकरः ।।२७
स त्वं वैवस्वतो भूत्वा सर्वपापहरं हरिम् । आराधय समं भक्त्या प्रीतिमभ्येति भास्करः ।।२८

विष्णुरुवाच

किं लक्षणा भवन्त्येते ना वैवस्वता गुणैः । यच्च वैवस्वतं कार्यं तन्मे कथय कञ्जज ।।२९

ब्रह्मोवाच

कर्मणा मनसा वाचा प्राणिनं यो न हिंसकः । भावभक्तश्च मार्तण्ड कृष्ण वैवस्वतो हि सः ।।३०
यो भोजकद्विजान्देवान्नित्यमेव नमस्यति । न च भोक्ता परस्वादेर्विष्णो वैवस्वतो हि सः ।।३१
सर्वान्देवान्रविं वेत्ति सर्वांल्लोकांश्च भास्करम् । तेभ्यश्चानन्यमात्मानं कृष्ण वैवस्वतो हि सः ।।३२

आत्मीय) कहा जाता है । इसी प्रकार वह सूर्य में प्रवेश कर पाता है ।२१। इसलिए अनेक जन्मों द्वारा संसार में पापसमूह के संचित हो जाने पर जब तक उसका नाश नहीं होता है तब तक मनुष्यों की बुद्धि सूर्याभिमुखी (उनकी पूजा करने वाली) नहीं होती है ।२२। उसी भाँति जो मनुष्य उन्हें असुर, अंश से उत्पन्न मानता है, वह सूर्य से महान् द्वेष रखता है एवं ब्राह्मण और वेदों की निन्दा करता है ।२३। क्योंकि दम्भ रूपी माया जाल में डूबे हुए मनुष्यों की अनुरक्ति पाखण्डों में इसलिए हो जाती है कि उससे उन्हें अनुकूल तर्क वाद-विवाद में सहायता प्राप्त होती है ।२४। इस प्रकार पापों के नाश हो जाने पर वेद, द्विज एवं यज्ञपुरुष सूर्य में उन पुरुषों की नैष्ठिकी श्रद्धा उत्पन्न होती है ।२५। मनुष्यों के संचित पापों में से कुछ ही शेष रह जाने पर तभी से वह भोजक ब्राह्मणों एवं सूर्य की आराधना आरम्भ कर देता है ।२६। क्योंकि इस कर्म रूपी दुर्गम संसार में घूमते हुए मनुष्यों के करावलम्बन (हाथ पकड़ा कर सहारा देने वाले) भक्ति द्वारा प्रसन्न किये गये एक मात्र सूर्य ही हैं ।२७। इसलिए तुम वैवस्वत बन कर समस्त पाप नाशक सूर्य की आराधना अवश्य करो क्योंक भक्ति करने के साथ ही सूर्य भी प्रसन्न हो जाते हैं ।२८

विष्णु ने कहा—हे कंजज (कमलोद्भव) ! वैवस्वत पुरुषों के क्या लक्षण हैं उनमें किस गुण की विशेषता रहती है उनके वैवस्वत कार्य भी मुझे बताने की कृपा करें ।२९

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! जो मन, वाणी, एवं कर्म द्वारा किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता है, और सूर्य के लिए भाव-भक्ति रखता है, उसे वैवस्वत कहा गया है ।३०। हे विष्णो ! उसी भाँति जो भोजक ब्राह्मण तथा देवताओं को नित्य नमस्कार करते हुए दूसरे की वस्तुओं का स्वाद नहीं लेता है (पराये धन या स्त्री का अपहरण नहीं करता है) वह वैवस्वत कहा जाता है ।३१। एवं जो व्यक्ति सभी देवताओं को सूर्य जानता है और सभी लोकों को भी भास्कर के रूप में देखते हुए अपने को उन लोगों को अनन्य मानता

देवं मनुष्यमन्यं वा पशुपक्षिपिपीलिकम् । तरुपाषाणकाष्ठादिभूम्यम्भोधिं दिवं तथा ॥३३
आत्मानं चापि देवशाद्व्यतिरिक्तं दिवाकरात् । यो न जानाति तं विद्यात्कृष्ण वैवस्वतं नरम् ॥३४
सर्वो वैवस्वतो भागो यद्भूतं यद्व्यवस्थितम् । इति वै यो विजानाति स तु वैवस्वतोनरः ॥३५
भवभीतिं हरत्येष भक्तिभावेन भावितः ! विवस्वानिति भावो यः स तु वैवस्वतो नरः ॥३६
भावं न कुरुते यस्तु सर्वभूतेषु पापकम् । कर्मणा मनसा वाचा स च वैवस्वतो नरः ॥३७
बाह्यार्थनिरपेक्षो यः क्रियां भक्त्या विवस्वतः । भावेन निष्पादयति ज्ञेयो वैवस्वतो हि सः ॥३८
नारयो यस्य न स्निग्धा न भेदाधीनवृत्तयः । वीक्षते सर्वमेवेदं भानुं वैवस्वतो हि सः ॥३९
सुतप्तेनेह तपसा यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः । तां गतिं न नरा यान्ति यां तु वैवस्वतो गतः ॥४०
येन सर्वात्मना भिनौ भक्त्या भावो निवेशितः । देवश्रेष्ठ कृतार्थत्वाच्छ्लाघ्यो वैवस्वतो हि सः ॥४१
अपि नः स कुले धन्यो जायेत कुलपावनः । भास्करं भक्तिभावेन यस्तु वै पूजयिष्यति ॥४२
यः कारयति देवार्चां हृदयालम्बिनीं रवेः । स नरोऽर्कमवाप्नोति धर्मध्वजमनौपमम् ॥४३
यश्च देवालयं भक्त्या भानोः कारयते स्थिरम् । स सप्त पुरुषाँल्लोकान्भानोर्नयति मानवः ॥४४
यावन्तोब्दान्हि देवार्चा रवेस्तिष्ठति मंदिरे । तावद्वर्षसहस्राणि पुष्पोत्तरगृहे वसेत् ॥४५
देवार्चालक्षणोपेतो यद्गृहे सन्ततो विधिः । निष्कामं च मनो यस्य स यात्यक्षरसाम्यताम् ॥४६

है वह वैवस्वत कहा जाता है ।३२। हे कृष्ण ! इस प्रकार जो देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, चींटी, वृक्ष, पाषाण, काष्ठादि, सागर, आकाश, एवं स्वयं अपने को भी देवेश दिवाकर से अतिरिक्त नहीं जानता है उस पुरुष को वैवस्वत जानना चाहिए ।३३-३४। तथा भूत और व्यवस्थित (वर्तमान) सभी भाग वैवस्वत हैं, ऐसा जो जानता है वह वैवस्वत पुरुष कहा जाता है ।३५। भक्ति भावना से पूजित होने पर यह सूर्य संसार (जन्म-मरण) रूपी भय का अपहरण कर लेते हैं, इस प्रकार का भाव जिसमें सदैव रहता है वह मनुष्य वैवस्वत कहलाता है ।३६। जो लोग मन, वाणी, एवं कर्म द्वारा समस्त प्राणियों में पाप की भावना नहीं करते हैं वैवस्वत पुरुष हैं ।३७। सूर्य के लिए बाहरी विषयों में निरपेक्ष रहकर जो भक्ति पूर्वक केवल सद्भावना द्वारा ही उनकी आराधना के लिए सतत क्रियाशील रहता है, उसे वैवस्वत जानना चाहिए ।३८। एवं जिसके कोई शत्रु या प्रिय न हों तथा उसके अन्तःकरण में भेदभाव न हो एवं समस्त (विश्व) को भानुमय देखे तो वह प्राणी वैवस्वत है ।३९। क्योंकि जिस गति को वैवस्वत प्राप्त करता है वह गति तपस्या तथा अधिक दक्षिणावाले यज्ञों द्वारा मनुष्यों को कभी नहीं प्राप्त होसकती है । हे देवश्रेष्ठ इसीलिए जो भक्ति पूर्वक अपने को सर्वात्मना सूर्य में निहित कर दिया है वही कृतार्थ होने के कारण प्रशस्त वैवस्वत है ।४०-४१। इस प्रकार जो भक्ति पूर्वक सद्भावना द्वारा भास्कर की पूजा करेगा या करायेगा वह हमारे कुल में धन्य एवं कुल पवित्र करने वाला होगा ।४२। जो सूर्य की हृदयालम्बिनी (शारीरिक) पूजा करता है उसे धर्म ध्वज एवं अनुपम सूर्य की प्राप्ति होती है ।४३। जो भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए दृढ़ मन्दिर का निर्माण कराता है वह मनुष्य अपने सात पीढ़ियों को सूर्य के लोकों की प्राप्ति कराता है ।४४। और उस मन्दिर में जितने वर्षों तक (सूर्य देव की) पूजा होती रहेगी उतने सहस्र वर्ष पुष्पक से भी श्रेष्ठ मन्दिर में उसका निवास होगा ।४५। इसलिए जिस घर में विधान पूर्वक सूर्य की पूजा निरन्तर होती रहती है, तथा पूजा करने वाले का मन कामनाशून्य रहता है उसे अविनाशी (सूर्य) की

पुष्पाण्यतिसुगंधीनि मनोज्ञानि च यः पुमान् । प्रयच्छति जगन्नाथे सप्ताश्वे ज्योतिषां पतौ ।।
स याति परमं स्थानं यत्र ज्योतिः सनातनम् ।।४७
यस्य यस्य विहीनो यो देशो यद्वर्जितं च यत् । धूपांश्च विविधांस्तांस्तान्गंधाढ्यं सुविलेपनम् ।।४८
दीपवर्त्युपहारांश्च यच्चाभीष्टमथात्मनः । नरः सोनुदिनं यज्ञान्करोत्याराधनाद्रवेः ।।४९
यज्ञेशो भगवान्भानुर्यज्ञैरपि स तोष्यते । बहूपकरणा यज्ञा नानासंभारविस्तराः ।।
संप्राप्यन्ते धनयुतैर्मनुष्यैर्नाल्पसंचयैः ।।५०
भक्त्या तु पुरुषैः पूजा कृता दूर्वांकुरैरपि । रविर्ददाति हि फलं सर्वयज्ञैः सुदुर्लभम् ।।५१
यानि पुष्पाणि हृद्यानि धूपगन्धानुलेपनम् । दयितं भूषणं यच्च तथा रक्ते च वाससी ।।५२
यानि चाभ्यवहार्याणि भक्ष्याणि च फलानि च । प्रयच्छ तानि मार्तण्ड भवेथाश्चैव तन्मनाः ।।५३
आद्यं तं यज्ञपुरुषं यथा भक्त्या प्रसादय । आराध्य याति तं देव यत्तद्ब्रह्म परं स्मृतम् ।।५४
पुण्यैस्तीर्थोदकैः पुष्पैर्मधुना सर्पिषा तथा । क्षीरेण स्नापयेद्देवमच्युतं जगतां पतिम् ।।५५
दधिक्षीरह्रदान्पुण्यांस्ततो लोकान्मधुच्युतः । प्रयास्यसि यदुश्रेष्ठ निर्वृतिं चापि ऐश्वरीम् ।।५६
स्तोत्रैर्हृद्यैर्यथा वाद्यैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः । मनसश्चैकतायोगादाराधय दिवाकरम् ।।५७
आराध्यं तं महादेवो महच्छब्दमवाप्तवान् ।।५८
अहं चापि समस्तानां लोकानां सृष्टिकारकः । तमाराध्य विवस्वन्तं तत्प्रसादाज्जनार्दन ।।५९

समानता प्राप्त होती है ।४६। जगन्नाथ एवं सात घोड़े वाले उस ज्योतिष्पति (सूर्य) के लिए जो अत्यन्त सुगन्धित तथा सुन्दर पुष्पों को समर्पित करता है, उसे सनातन (नित्य) ज्योति (ब्रह्म) के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।४७। इस प्रकार भाँति-भाँति के धूप, अत्यन्त सुगन्धित चन्दन दीपक की बत्ती और उपहार एवं अन्य आत्म प्रिय वस्तुओं द्वारा जो सूर्य की आराधना करता है, वह प्रतिदिन यज्ञ ही करता है ऐसा जानना चाहिए ।४८-४९। यद्यपि यज्ञेश एवं भगवान् सूर्य यज्ञों द्वारा भी प्रसन्न किये जाते हैं पर, यज्ञ के साधन अधिक संख्या में होते हैं और भाँति-भाँति के संभार द्वारा उसका आकार-प्रकार विस्तृत होता है, इसीलिए इसे केवल धनवान ही सुसम्पन्न कर सकते हैं न कि अल्प संचित व्यक्ति भी ।५०। भक्ति पूर्वक केवल दुर्वाङ्कुर द्वारा ही मनुष्यों से पूजित होने पर सूर्य उसे समस्त यज्ञों द्वारा प्राप्त होने वाले अत्यन्त दुर्लभ-फल प्रदान करते हैं ।५१। अतः यथाशक्ति संचित किये गये मनोहर पुष्पों धूप सुगन्धित अनुलेपन सुन्दर आभूषण, लाल रङ्ग के दो वस्त्र, तथा उत्तम भक्ष्य फलों को सूर्य के लिए अर्पित करते हुए तुम उनमें सदैव तल्लीन रहो ।५२-५३। सर्व प्रथम अपनी भक्ति द्वारा उस यज्ञ पुरुष (सूर्य) को प्रसन्न करो क्योंकि उसी देवता की आराधना करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।५४। इसीलिए पुण्य तीर्थों के जल, पुष्प, शहद, घी एवं दूध द्वारा जगत्पति तथा अच्युत सूर्य देव को स्नान कराना चाहिए ।५५। हे यदुश्रेष्ठ ! इससे दही, दूध के सरोवर एवं मधु एवं (शहद चूने वाले) उन पुण्य लोकों की प्राप्ति के साथ साथ तुम ईश्वरीय शान्ति भी प्राप्त करोगे ।५६। इसलिए हृदयग्राही स्तोत्रों वाद्यों एवं ब्राह्मणों की प्रसन्नता द्वारा एकाग्र चित्त होकर दिवाकर की आराधना अवश्य करो ।५७। क्योंकि उन्हीं की आराधना करके शिव ने महत्ता प्राप्त की है जिससे वे महादेव कहे जाते हैं और उन्हीं विवस्वान् की आराधना करके उनकी प्रसन्नतावश मैं लोकों का सृष्टिकर्ता हुआ हूँ ।५८-५९। हे हृषीकेष ! इसी प्रकार तुम भी इनकी कृपा

त्वमप्येतं हृषीकेश त्वत्प्रसादान्न संशयः । समर्थो देवशत्रूणां दैत्यानां नाशने सदा ॥६०
दक्षिणः किरणस्तस्य यो देवस्य विवस्वतः । अहं तस्मात्समुत्पन्नो वेदवेदाङ्गसम्मितः ॥६१
वामो यः किरणः कृष्ण रश्मिमालाकुलः सदा । तस्मादीशः समुत्पन्नः पार्वतीदयितोऽच्युत ॥६२
वक्षसस्त्वं समुत्पन्नः शंखचक्रगदाधरः । तथाम्बुजकरा देवी अम्बुजाननवल्लभा ॥६३
तमाराध्य बलं कीर्तिं श्रियं चावाप्तवानहम् । तथा त्वमपि राजेन्द्र तमाराध्य दिवाकरम् ॥
यान्यानिच्छसि कामांस्त्वं तांस्तान्सर्वानवाप्स्यसि ॥६४
य इदं शृणुयान्नित्यं संवादं विधिकृष्णयोः । सोऽपि कामानवाप्याग्र्यांस्ततो लोकमवाप्नुयात् ॥६५
रौप्यकं यानमारुढो युक्तं कुञ्जरवाजिभिः । तेजसाम्बुजसंकाशः प्रभयाण्डज सन्निभः ॥६६
कान्त्या चंद्रसमो राजन्वृन्दारकगणैर्वृतः । गन्धर्वैर्गीयमानस्तु तथा चाप्सरसां गणैः ॥६७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यपूजावर्णनं नाम
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२०।

द्वारा उन समस्त देवशत्रु दैत्यों के नाश करने के लिए सदैव समर्थ होगे इसमें संदेह नहीं ।६०। सूर्य देव की दक्षिण वाली किरण द्वारा वेद-वेदाङ्ग समेत मैं उत्पन्न हुआ हूँ ।६१। हे कृष्ण ! उसी भाँति उनकी रश्मि रूपी माला धारण किये जो बाईं किरण है, उससे पार्वती प्रिय ईश (शिव) उत्पन्न हुए हैं ।६२। और उनके वक्षःस्थल द्वारा शंख, चक्र एवं गदा धारण किये तुम तथा कमल के समान नेत्रवाली वह तुम्हारी वल्लभा लक्ष्मी, देवी हाथों में कमल लिए उत्पन्न हुई हैं ।६३। हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार उन्हीं की आराधना करके मैंने बल कीर्ति, एवं भक्ति की प्राप्ति की है उसी प्रकार तुम भी उन दिवाकर की आराधना द्वारा अपनी भाँति भाँति की समस्त कामनाएँ प्राप्त करोगे ।६४

इस प्रकार ब्रह्मा और कृष्ण के इस संवाद का जो नित्य श्रवण करेगा, उसको भी समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक उत्तम लोक की प्राप्ति होगी ।६५। और इसी से वह ऐसे रजत विमान पर बैठकर उत्तम लोक की याचना करेगा जिसमें हाथी-घोड़े जुते हों और उस समय के समान मनोरम, अण्डज (सूर्य) के समान प्रभा एवं चन्द्र के समान कांति उसे प्राप्ति होगी तथा देवताओं के साथ गन्धर्व गण एवं अप्सराएँ अपने नृत्य-गान द्वारा उसे प्रसन्न करती रहेगीं ।६६-६७।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यपूजा वर्णन नामक
एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२०।

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

विश्वकर्मकृतसूर्यतेजः शातनवर्णनम्

शतानीक उवाच

शरीरलेखनं[1] भानोरुक्तं संक्षेपतस्त्वया । विस्तराच्छ्रोतुमिच्छामि तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ॥१

सुमन्तुरुवाच

पितुर्गृहं तु यातायां संज्ञायां कुरुनंदन । भास्करश्चिंतयामास संज्ञा मद्रूपकारिणी ॥२
एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा तत्रागत्य दिवाकरम् । अब्रवीन्मधुरां वाचं रवेः प्रीतिकरां शुभाम् ॥३
आदिदेवोऽसि देवानां व्याप्तमेतत्त्वया जगत् । श्वशुरो विश्वकर्मा ते रूपं निर्वर्तयिष्यति ॥४
एवमुक्त्वा रविं ब्रह्मा विश्वकर्माणमब्रवीत् । निवर्तस्व मार्तण्डं स्वरूपं तत्सुशोभनम् ॥५
ततो ब्रह्मसमादेशाद्भूमिमारोप्य भास्करम् । रूपं निर्वर्तयामास विश्वकर्मा शनैःशनैः ॥६
ततस्तुष्टाव तं ब्रह्मा सर्वदेवगणैः सह । गुह्यैर्नानाविधैः स्तोत्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥७
स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ धर्मवर्षहिमाकर । शांतिस्ते सर्वलोकानां देवदेव दिवाकर ॥८
ततो रुद्रश्च विष्ण्वाद्याः स्तुवंतस्तं दिवाकरम् । तेजस्ते वर्धतां देव लिख्यतेऽपि दिवस्पते ॥९

अध्याय १२१

विश्वकर्माकृत तेजःशातनविधि का वर्णन

शतानीक ने कहा—हे सुव्रत ! आपने सूर्य के शरीर का लेखन (खरादना) संक्षेप में सुनाया था, मुझे उसे विस्तार पूर्वक सुनने की इच्छा है, इसलिए आप अवश्य सुनाने की कृपा करें।१

सुमन्तु बोले— हे कुरुनन्दन ! संज्ञा के अपने पिताके घर जाने के बाद सूर्य चिन्तित हुए कि संज्ञा मेरे (मनोहर) रूप के लिए इच्छुक हैं।२। उसी समय वहाँ आकर ब्रह्मा ने सूर्य से उस मधुरवाणी द्वारा कहा जो उन्हें शुभ एवं प्रसन्नता प्रदान करने वाली थी। (तुम) देवताओं के आदि देव हो, तथा तुम्हीं इस समस्त जगत् में व्याप्त हो। अतः तुम्हारे श्वसुर विश्वकर्मा तुम्हारे (मनोहर) रूप अवश्य बना देंगे।३-४। इस प्रकार ब्रह्मा ने सूर्य से कहकर विश्वकर्मा से कहा—मार्तंड का सुलक्षण सम्पन्न एवं सौन्दर्य पूर्ण रूप बनाओ।५। पश्चात् ब्रह्मा के आदेशानुसार विश्वकर्मा ने भास्कर को भूमि पर स्थित कर धीरे-धीरे उनका सुन्दर रूप बना दिया।६। तदुपरांत वे वेदाङ्ग निष्णात उन समस्त देवगणों समेत ब्रह्मा ने भाँति-भाँति के गुह्य (रहस्यमय) श्रोतों द्वारा उनकी स्तुति भी की।७। हे जगन्नाथ, धर्मवर्षी, एवं हिमाकर, तुम्हारा कल्याण हो, समस्त लोकों के देवाधिदेव ! तुम्हें शांति प्राप्त हो।८। इसके पश्चात् रुद्र तथा विष्णु आदि देवताओं ने भी उन दिवाकर की स्तुति की कि हे देव ! हे दिवस्पते !

---

१. शरीरलेखनं सूर्ये कतं वै प्रतिपादितम्। दैवतैर्ऋषिभिर्वापि तन्ममाचक्ष्व सुव्रत।

इन्द्रश्चागत्य तं देवं लिख्यमानमथास्तुवत् । जय देव जयस्वेति तत्त्वदोऽसि जगत्पते ॥१०
ऋषयस्तु ततः सप्त विश्वामित्रपुरोगमाः । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ॥११
वेदोक्ताभिरथाशीर्भिर्वालखिल्याश्च तुष्टुवुः । त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनामपि ॥१२
त्वं गतिः सर्वभूतानां त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । प्रजाभ्यश्चैव देवेश शं नोऽस्तु जगतः पते ॥१३
त्वत्तो भवति वै नित्यं जगत्संलीयते त्वयि । त्वमेकस्त्वं द्विधा चैव त्रिधा च त्वं न संशयः ॥१४
त्वयैकेन जगत्सृष्टं त्वयैकेन प्रबोधितम् । ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥१५
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम् । ऊचुरेवंविधा वाचो मनः श्रोत्रसुखप्रदाः ॥१६
सह्यं भवतु ते तेजो भूतानां भूतभावन ! हाहा हूहूस्ततश्चैव तुम्बुरुर्नारदस्तथा ॥१७
उपगातुं समारब्धा गामुच्चैः कुशला रविम् । षड्जमध्यमगांधारग्रामत्रयविशारदाः ॥१८
मूर्च्छनाभिस्ततश्चैव तथा धैवतपञ्चमैः । नानानुभावमन्द्रैश्च अर्धमन्द्रैस्तथैव च ॥१९
त्रिसाधनैः प्रकारैस्तु वाद्यतालसमन्वितैः । विश्वाची च घृताची च उर्वशी च तिलोत्तमा ॥२०
मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसां वरा । हावभावविलासैश्च कुर्वत्योऽभिनयान्बहून् ॥२१
ततोऽतीव कलं गेयं मधुरं च प्रवर्तते । सर्वेषां देवसंघानां मनः श्रोत्रसुखप्रदम् ॥२२

खरादने पर भी तुम्हारे तेज की वृद्धि हो ।९। इन्द्र ने भी आकर खरादे जाने वाले उस सूर्य की प्रार्थना की कि हे देव ! आपकी जय हो, जय हो, ! हे जगत्पते ! आप तत्त्व के प्रदाता हैं ।१०। पश्चात् विश्वामित्र को सामने कर सप्तऋषियों ने स्वस्ति (कल्याण) हो, स्वस्ति हो, कहते हुए भाँति-भाँति के स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुति की ।११। तदुपरांत वेदोक्त आशीर्वाद प्रदान करते हुए बालखिल्य लोगों ने उनकी स्तुति की । हे नाथ ! तूं मोक्षेच्छुकों के लिए मोक्ष तथा ध्यान करने वालों के लिए ध्येय हो सभी प्राणियों का प्राप्ति स्थान तुम्हीं हो और तुम्ही में सब स्थित भी हैं अतः हे देवेश, हे जगत्पते ! हम प्रजाओं के लिए आप कल्याण प्रदान करें ।१२-१३। यह समस्त विश्व आप से ही उत्पन्न होता है तथा आप में ही इसका लय भी होता है । इस प्रकार आप एक होते हुए भी निश्चित दो और तीन प्रकार के रूप धारण करते हैं ।१४। इसलिए तुम्हीं एकाकी ने इस जगत् की सृष्टिकी है और इसे चेतनता भी प्रदान की है । इसके पश्चात् विद्याधर गण, यक्ष, राक्षस एवं पन्नग, ये सभी लोग हाथ जोड़कर शिर से सूर्य को प्रणाम करते हुए मन और श्रवण को सुख प्रदान करने वाली वाणी बोले ।१५-१६

हे भूत-भावन ! आप का तेज प्राणियों को सहन हो अर्थात् उन्हें क्षमता प्रदान करें। तदुपरान्त गायन में निपुण हाहा, हूहू, तुम्बुरु और नारद ने सूर्य के लिए ऊँचे स्वर से गायन आरम्भ किया षड्ज, मध्यम, और गांधार तथा तीनों ग्रामों के ये लोग निष्णात विद्वान् हैं ।१७-१८। इसलिए इनके द्वारा एवं मूर्च्छना, धैवत, पंचम, भाँति-भाँति के अनुभव पूर्वक मंद्र तथा अर्धमंद्र इन स्वरों और तीन प्रकार के साधनों एवं वाद्य तालों द्वारा गायन होने लगा । विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या एवं अप्सराओं में उत्तम रम्भा इन अप्सराओं ने अपने हाव, भाव तथा विलास प्रकट करते हुए भाँति-भाँति के अभिनय दिखाये ।१९-२१। पश्चात् सभी देवताओं का अत्यन्त सुन्दर एवं मधुर गायन आरम्भ हुआ, जो

प्रवाद्यं तु ततस्तत्र वीणावंशादि सुव्रत । पण्वाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहास्तथा ।।२३
देवदुन्दुभयः शंखाः शतशोऽथ सहस्रशः । गायद्भिश्चैव गन्धर्वैर्नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ।।२४
तूर्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् । ततः कृतैः करपुटैः पद्मकुड्मलसन्निभैः ।।२५
ललाटोपरि विन्यस्तैः प्रणेमुः सर्वदेवताः । ततः कोलाहले तस्मिन्सर्वदेवसमागमे ।।२६
तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ।।२७

इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
तदुपरि लिखनं निशम्य भानोर्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोन्ते ।।२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे विश्वकर्मकृतसूर्यतेजः शातनं नामैकविंशोत्तरशततमोऽध्यायः ।१२१।

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यस्तववर्णनम्

शतानीक उवाच

तस्मिन्काले समारूढो लिख्यमानो दिवस्पतिः । ब्रह्मादिभिः स्तुतो देवैर्यथा वै तद्वदस्व मे ।।१

मन एवं श्रवण को अत्यन्त सुख प्रदान कर रहा था ।२२। हे सुव्रत ! उस नृत्य में वीणा वंशी आदि कोमल तान वाले पणव, पुष्कर, मृदङ्ग एवं पटह आदि गम्भीर स्वर वाले वाद्य बज रहे थे ।२३। कहीं देवों की दुंदुभियाँ (नगाड़े) और उसी प्रकार सैकड़ों हजारों शंख भी बज रहे थे । इस प्रकार गंधर्वों के गायन अप्सरागणों के नृत्यों एवं तूर्य (तुरुही) आदि वाद्यों द्वारा सभी स्थानों में कोलाहल (पूर्णतः) (शोर) सा प्रतीत होने लगा । इसके उपरांत मुकुलित कमल की भाँति अञ्जलि बाँधकर उसे मस्तक से लगाते हुए सभी देवताओं ने (उन्हें) प्रणाम किया। अनन्तर समस्त देवताओं के समागम रूप कोलाहल (शोर) में ही विश्वकर्मा ने उनके तेज का धीरे धीरे शातन (खरादकर ठीक) किया।२४-२७। इस प्रकार हिम जल (बर्फ), धूप एवं समय विभाग के हेतु भूत उस सूर्य के जो ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा संस्तुत होते रहते हैं लेखन (शरीर के खराद जाने) की कथा को सुनने से दिवाकर लोक की प्राप्ति होती है।२८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में विश्वकर्मा कृत सूर्य तेजशातन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२१।

अध्याय १२२

आदित्यस्तव विधि का वर्णन

शतानीक ने कहा—उस समय जब कि सूर्य के शरीर का लेखन (खरादना रूप कार्य) हो रहा था, ब्रह्मा आदि देवताओं ने उनकी जिस भाँति स्तुति की है, उसे मुझे बताने की कृपा करें ।१

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वैकमना राजन्यथा देवो दिवस्पतिः । ब्रह्मादिभिः स्तुतो देवैर्ऋषिभिश्च पुराऽनघ ।।२
प्रयत्नतः प्रणतहितानुकम्पिने स्वरूपतो लोकविभाविने नमः ।
दिवस्पते कमलकुलावबोधिने नमस्तमः पटलपटावपाटिने ।।३
पावनातिशयपुण्यकर्मणे नैककामविभवप्रदायिने ।
भासुरामलमयूखमालिने सर्वलोकहितकारिणे नमः ।।४
अजाय लोकत्रयभावनाय भूतात्मने गोपतये प्रियाय ।
नमो महाकारुणिकोत्तमाय सूर्याय लोकत्रयभावनाय ।।५
विवस्वते ज्ञानकृतान्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैषिणे ।
स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः ।।६
निजो दयार्थं सुरगणमौलिमणे जगता त्वं महितस्त्वमुरुमयूखसहस्रतपाः ।
जगति विभो वतमसतुद वनतिमिरासवपावन मदाद्भवति विलोहितदिग्रहतातिमिरदिनाशिनमुग्रं
सुतरां त्रिभुवनभाप्रकरैः ।।७
रथामारुह्य[1] समामयं भ्रमसि सदा जगतो हितदः ।।८

सुमन्तु बोले—हे अनघ राजन् ! पहले समय में ब्रह्मादि देवों एवं ऋषियों ने सूर्य देव की जिस भाँति स्तुति की थी, मैं बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! ।२। प्राणियों के प्रयत्न पूर्वक नमस्कार करने पर उनके हित के लिए अनुकम्पा करने वाले, एवं स्वरूप से लोकों को उत्पन्न करने वाले हे दिवस्पते ! आप को नमस्कार है, तथा कमल समूह को विकसित करने वाले और अन्धकार समूह रूप वस्त्र को विदीर्ण करने वाले आप को नमस्कार है ।३। अतिशय पवित्र एवं पुण्य कर्म वाले, एक कामना ही नहीं अपितु विभव (ऐश्वर्य) के भी प्रदान करने वाले तथा भास्वर और अमल (स्वच्छ) किरणों की माला धारण करने वाले एवं समस्त लोकों के हितैषी (आप) को नमस्कार है ।४। अजन्मा, तीनों लोकों के अभिभावक, भूतात्मा, गोपति, प्रिय, महान् एवं श्रेष्ठ कारुणिक सूर्य के लिए नमस्कार है ।५। विवस्वान् अंतरात्मा को ज्ञान प्रदान करने वाले, जगत् की प्रतिष्ठा एवं हित करने वाले स्वयम्भू समस्त लोकों के नेत्र, देवश्रेष्ठ, एवं अमित तेज वाले को नमस्कार है ।६। हे सुरगणमौलिमणे (देवताओं के शिर के मणिरूप) ! अपने अभ्युदय के लिए संसार ने तुम्हारी पूजा की है तुम अपने सहस्र किरणों रूपी उरु से स्थित होकर सदैव तप करते हो । हे विभो ! जगत् के अन्धकार के नाशक, वन के तिमिर आसन को पवित्र करने वाले मद के नाते ही आपकी शरीर अत्यन्त रक्तवर्ण की हो जाती है । त्रिभुवन के प्रकाश समूह रूप आप के द्वारा समस्त लोकों का अन्धकार नष्ट होता है इस प्रकार उग्र रूप तुम्हें नमस्कार है ।७। रथ पर बैठकर वर्षमय होकर सदैव भ्रमण किया करते हो और जगत् के हितैषी हो ।८। हे

---

१. अर्द्धमेवोपलभ्यते ।

इत्येवं संस्तुतो देवो भास्करो वेधसा पुरा । दैवतैश्च महाबाहो शिवविष्ण्वादिभिर्नृप ॥९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यस्तवो नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२२।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

परिलेखवर्णनम्

शतानीक उवाच

भूयोऽपि कथयस्वेमां कथां सूर्यसमाश्रिताम् । न तृप्तिमधिगच्छामि शृण्वन्नेतां कथां मुने ॥१

सुमन्तुरुवाच

भास्करस्य कथां पुण्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् । वक्ष्यामि कथितां पूर्वं ब्रह्मणा लोककर्तृणा[1] ॥२

ऋषयः परिपृच्छन्ति ब्रह्मलोके पितामहम् । तापिताः सूर्यकिरणैस्तेजसा सम्प्रमोहिताः ॥३

ऋषय ऊचुः

कोऽयं दीप्तो महातेजा हवीराशिसमप्रभः । एतद्वेदितुमिच्छामः प्रभावोऽस्य कुतः प्रभो ॥४

महाबाहो ! इसी भाँति पहले समय में ब्रह्मा ने सूर्य देव की स्तुति की थी, हे नृप ! उसी भाँति देवताओं, शिव एवं विष्णु ने भी आराधना की थी ।९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यस्तव नामक एक सौ बाइसवाँ अध्याय समाप्त ।१२२।

अध्याय १२३

परिलेखन वर्णन

शतानीक ने कहा—हे मुने ! इस सूर्य सम्बन्धी कथा को फिर से सुनाने की कृपा करें क्योंकि इस कथा को सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ।१

सुमन्तु बोले—भास्कर की पुण्य एवं समस्त पापों के नाश करने वाली कथा को जिसे लोक के कर्ता ब्रह्मा ने पहले कहा था, मैं कह रहा हूँ सुनो ! ।२। एकबार ब्रह्म लोक में जाकर ऋषियों ने जो सूर्य की किरणों से संतप्त एवं उनके तेज से मूर्च्छित से हो रहे थे, पितामह से पूँछा ।३

ऋषियों ने कहा—हे प्रभो ! दीप्त, महातेजस्वी एवं (पायस) खीर की भाँति उज्ज्वल प्रभा पूर्ण यह कौन है, मैं जानना चाहता हूँ तथा यह भी कि इसे इस प्रकार का प्रभाव कहाँ से प्राप्त हुआ है ।४

---

१. आर्षो नाभावः ।

ब्रह्मोवाच

तमोभूतेषु लोकेषु नष्टे स्थावरजङ्गमे । प्रवृत्ते गुणहेतुत्वे पूर्वं बुद्धिरजायत ।।५
अहंकारस्ततो जातो महाभूतप्रवर्तकः । वाय्वग्निरापः खं भूमिस्ततस्त्वण्डमजायत ।।६
तस्मिन्नण्ड इमे लोकाः सप्त वै संप्रतिष्ठिताः । पृथ्वी च सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैश्चापि सप्तभिः ।।७
तत्रैवावस्थितो ह्यासमहं विष्णुर्महेश्वरः । प्रमूढास्तमसा सर्वे प्रध्याता ईश्वरं परम् ।।८
ततो भित्त्वा महातेजः प्रादुर्भूतं तमोनुदम् । ध्यानयोगेन चास्माभिर्विज्ञातं सवितुस्तथा ।।९
ज्ञात्वा च परमात्मानं सर्व एव पृथक्पृथक् । दिव्याभिः स्तुतिभिर्देवं संस्तोतुमुपचक्रमुः ।।१०
आदिदेवोऽसि देवानामीश्वराणां त्वमीश्वरः । आदिकर्तासि भूतानां देवदेव सनातन ।।११
जीवनं सर्वसत्त्वानां देवगन्धर्वरक्षसाम् । मुनिकिन्नरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ।।१२
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः । वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान्वरुणस्तथा ।।१३
त्वं कालः सृष्टिकर्ता च हर्ता त्राता प्रभुस्तथा । सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च ।।
प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ।।१४
ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः । शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वर ।।१५
सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः । सहस्रांशुस्त्वं तु देव सहस्रकिरणस्तथा ।।१६
भूरादिर्भूर्भुवः स्वश्च महर्जनस्तपस्तथा । प्रदीप्तं दीप्तिमन्नित्यं सर्वलोकप्रकाशकम्।।

ब्रह्मा बोले—तमोमय (अन्धकारमय) लोकों में स्थावर एवं जंगम रूप सृष्टि के नाश (प्रलय) होने के उपरांत गुण-हेतु के प्रवृत्ति काल में सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है ।५। और उससे महाभूतों का प्रवर्तक अहंकार उत्पन्न होता है । इस प्रकार वायु, अग्नि, जल, आकाश, तथा भूमि के उत्पन्न होने के उपरांत एक अंडा पैदा हुआ ।६। उसी अण्डें में इन सातों लोकों की स्थिति थी, तथा सातों द्वीप एवं सातों समुद्र समेत पृथिवी की भी ।७। उसी भाँति उसी में मैं विष्णु तथा महेश्वर भी स्थित थे पश्चात् तमोगुण अन्धकार में विमूढ़ होकर सभी लोक उस महान् ईश्वर का ध्यान करने लगे ।८। तदुपरांत उस अण्डे का भेदन करके सूर्य का अन्धकार नाशक महातेज उत्पन्न हुआ जिसे ध्यान योग द्वारा हमीं लोगों ने जाना । पश्चात् उस परमात्मा को जान कर सभी लोग पृथक्-पृथक् दिव्य स्तुतियों द्वारा उस देव की स्तुति करना आरम्भ किये ।९-१०। हे देवाधिदेव ! हे सनातन ! तुम देवताओं के आदि देव, ईश्वरों के ईश्वर, तथा प्राणियों आदि के रचयिता हो ।११। सभी जीवों, देव, गन्धर्व, मुनि, किन्नर, सिद्ध, सर्प एवं पक्षियों आदि सभी के जीवन हो ।१२। ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, इन्द्र, सोम, विवस्वान्, तथा वरुण रूप तुम्हीं हो ।१३। तुम्हीं काल, सृष्टिकर्ता, हर्ता, त्राता, एवं प्रभु हो उसी प्रकार सरित (नदियाँ), सागर, पर्वत, विद्युत, इन्द्रधनुष, सभी के प्रलय एवं उत्पत्ति रूप तथा व्यक्त अव्यक्त सनातन हो ।१४। ईश्वर से श्रेष्ठ विद्या बतायी गयी हैं । उससे उत्तम शिव है तथा शिव के अत्यन्त श्रेष्ठ देव (आप) हैं, अतः तुम्हीं परमेश्वर हो ।१५। चारों ओर तुम्हारे हाथ पैर नेत्र, शिर, एवं मुख विद्यमान हैं, तुम सहस्रांशु हो एवं हे देव ! तुम्हारी सहस्र किरणें हैं ।१६। और भू-लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तथा तपलोक तुम हो । प्रदीप्त नित्य प्रभा पूर्ण समस्त लोकों के प्रकाशक एवं सुरेन्द्रों के लिए भी दुर्निरीक्ष्य तुम्हारे उस

दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१७

सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः । शुभं परममव्यग्रं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१८

पञ्चातीतस्थितं तद्वै दशैकादश एव च । अर्धमासमतिक्रम्य स्थितं तत्सूर्यमण्डले ॥

तस्मै रूपाय ते देव प्रणताः सर्वदेवताः ॥१९

विश्वकृद्विश्वभूतं च विश्वानरसुरार्चितम् । विश्वस्थितमचिंत्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२०

परं यज्ञात् परं देवात्परं लोकात्परं दिवः । दुरतिक्रमेति यः ख्यातस्तस्मादपि परं परात् ॥

परमात्मेति विख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२१

अविज्ञेयमचिंत्यं च अध्यात्मगतमव्ययम् । अनादिनिधनं देवं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२२

नमोनमः कारणकारणाय नमोनमः पापविनाशनाय ।

नमोनमो वंदितवंदनाय नमोनमो रोगविनाशनाय ॥२३

नमोननमः सर्ववरप्रदाय नमोनमः सर्वबलप्रदाय ।

नमोनमो ज्ञाननिधे सदैव नमोनमः पञ्चदशात्मकाय ॥२४

स्तुतः स भगवानेवं तेजसां रूपमास्थितः । उवाच वाचं कल्याणीं को वरो वः प्रदीयताम् ॥२५

तवातितेजसा रूपं न कश्चित्सहते विभो । सहनीयं भवत्वेतद्धिताय जगतः प्रभो ॥२६

रूप को नमस्कार है ।१७। देव, सिद्ध, गण, भृगु, अत्रि एवं पुलह आदि महर्षि लोग तुम्हारे जिस शुभ, परम एवं प्रिय रूप की प्रेम पूर्वक उपासना करते हैं उसे नमस्कार है ।१८। हे देव ! पंच (पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश) तन्मात्रा, दश इन्द्रियों और ग्यारहवें मन से अगोचर होने तथा अर्धमास[1] का प्रतिक्रमण करके सूर्य मण्डल में स्थित रहने वाले उस रूप को समस्त देवता प्रणाम कर रहे हैं ।१९। विश्वकर्ता, विश्वरूप, वैश्वानर देव द्वारा पूजित, विश्वस्थित, एवं अचिंत्य उस आपके रूप को नमस्कार है ।२०। श्रेष्ठ, यज्ञ, देव, लोक एवं आकाश स्वर्ग से भी जो दुर्धर्ष बताया गया है उससे भी श्रेष्ठ जो परमात्मा के नाम से विख्यात है, तुम्हारे उस रूप को नमस्कार है ।२१। अज्ञेय, अचिंत्य, अध्यात्म, अव्यय एवं आदि अंतहीन देव के उस रूप को नमस्कार है ।२२। कारणों के कारण (मूलावस्था) पापविनाशी, वंदित के वन्दनीय एवं समस्त रोग विनाशक को (आप को) बार-बार नमस्कार है ।२३। समस्त वर प्रदान करने वाले समस्त बल प्रदायक तथा हे ज्ञान निधे ! आप के पंचदशात्मक (अर्थात् पृथिवी आदि पांचों तत्त्व और दश इन्द्रियों के) उस रूप को सदैव नमस्कार है ।२४

इसके अनन्तर तेजस्वी भगवान् सूर्य देव की इस प्रकार स्तुति किये जाने पर उन्होंने कल्याण प्रदान करने वाली वाणी से कहा । आप लोगों को कौन वरदान दिया जावे ।२५

देवों ने कहा—हे विभो ! आप के इस तेजस्वी रूप के सहन करने में कोई भी समर्थ नहीं है अतः हे प्रभो ! जगत् के हित के लिए आप का यह स्वरूप जिस प्रकार सहन करने के योग्य हो इसे वैसा ही करने

---

१. उत्तरायण तथा दक्षिणायन देवों के शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष हैं इस प्रकार मानव का एक वर्ष देवोंका एकमास होता है ।

एवमस्त्विति तामुक्त्वा भगवान्सर्वकृत्स्वयम् । लोकानां कार्यसिद्ध्यर्थं घर्मवर्षाहिमप्रदः ।।२७
अतः सांख्याश्च योगाश्च ये चान्ये मोक्षकांक्षिणः । ध्यायन्ति ध्यानिनो नित्यं हृदयस्थं दिवाकरम् ।।२८
सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः । सर्वं तरति वै पापं देवकर्मसमाश्रितः ।।२९
अग्निहोत्रं च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः । भानोर्भक्त्या नमस्कारकलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।३०
तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानां च मंङ्गलम् । पवित्रं च पवित्राणां तं प्रपद्ये दिवाकरम् ।।३१
ब्रह्माद्यैः संस्तुत देवैर्ये प्रपद्यन्ति[१] भास्करम् । निर्मुक्ताः किल्बिषैः सर्वैस्ते यान्ति रविमन्दिरम् ।।३२
उपचर्यादिभिः साध्यो यथा वेदे दिवस्पतिः । लोकानामिह सर्वेषां तथा देवो दिवाकरः ।।३३

शतानीक उवाच

शरीरलेखनं सूर्ये कथं वै प्रतिपादितम् । देवैः सऋषिभिर्वापि तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ।।३४

सुमन्तुरुवाच

ब्रह्मलोके सुखासीनं ब्रह्माणं ते सुरासुराः । ऋषयः समुपागम्य[२] इदमूचुः समाहिताः ।।३५
भगवन्देवतापुत्रो य एष दिवि राजते । तेनान्धकारो निकृत्तः सोऽयं जाज्वलितीति हि ।।३६
अस्य तेजोभिरखिलं जगत्स्थावरजंगमम् । नाशमायाति देवेश यथा क्लिष्टं नदीतटम् ।।३७

की कृपा करें। अनन्तर समस्त सृष्टि के कर्ता भगवान् सूर्य ने स्वयं अपने आपको लोकों के कार्य की सिद्धि के लिए धूप, वर्षा एवं शीत दायक के रूप में परिणत किया।२६-२७। इसीलिए सांख्य योग्य मतावलम्बी प्राणी मोक्ष के इच्छुक एवं ध्यानी लोग नित्य अपने हृदय में स्थित उस दिवाकर का ध्यान करते हैं।२८। क्योंकि समस्त लक्षणों से हीन एवं समस्त पातकों से युक्त होने पर भी सूर्य के आश्रित रहने से उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।२९। अग्निहोत्र, वेद एवं अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों से ये सभी भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए किये गये नमस्कार के सोलहवें अंश के समान भी नहीं होते हैं।३०। अतः तीर्थों के परमतीर्थ, मंगलों के मांगलिक, एवं पवित्रों के पवित्र उस सूर्य की शरण में मैं आया हूँ।३१। क्योंकि ब्रह्मादि देवों द्वारा संस्तुत भास्कर की शरण जिसे प्राप्त होती है, वे सभी पाप मुक्त होकर सूर्य के मन्दिर की प्राप्ति करते हैं।३२। जिस प्रकार उपचर्या (सेवा) आदि द्वारा सूर्य देवताओं के लिए वेद में साध्य बताये गये हैं, उसी भाँति यहाँ लोकों में उनमें रहने वाले मनुष्यों के लिए भी आराधना द्वारा दिवाकर देव साध्य हैं।३३

शतानीक ने कहा—हे सुव्रत ! देवता और ऋषियों ने सूर्य के शरीर का लेखन (खराद पर चढ़ाया जाना) किस भाँति बताया आप मुझे उसे बतायें।३४

सुमन्तु बोले—एक समय ब्रह्म लोक में सुख पूर्वक ब्रह्मा बैठे हुए थे वहाँ देव, असुर, एवं ऋषिगण पहुँच कर नम्रतापूर्वक उनसे यह कहे।३५। हे भगवन् ! इस देव पुत्र ने जो आकाश में स्थित होकर सुशोभित हो रहा है अपने तेज द्वारा समस्त अन्धकार का नाश कर दिया है क्योंकि वह अत्यन्त प्रज्वलित रूप है।३६। हे देवेश ! इतना ही नहीं अपितु उसके तेज द्वारा स्थावर जंगम रूप इस समस्त विश्व का नदी के कठोर तट की भाँति (अल्प समय) में ही नाश हो जायेगा।३७। हम लोग उसी के तेज

---

१. नमस्यंति। २. तम्।

वयं च पीड़िता सर्वे तेजसा तस्य मोहिताः। पद्मश्चायं यथा म्लानो योयं योनिस्तव प्रभो ॥३८
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च शर्म नोपलभामहे। तथा कुरु सुरज्येष्ठ यथातेजः प्रशाम्यति ॥३९
एवमुक्तः स भगवान्पद्मयोनिः प्रजापतिः। उवाच भगवान्ब्रह्मा देवान्विष्णुपुरोगमान्[1] ॥४०
महादेवेन सहिता इन्द्रेण च महात्मना। तमेव शरणं देवं गच्छामः सहिता वयम् ॥४१
ततस्ते सहिताः सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादयः सुराः। गत्वा ते शरणं सर्वे भास्करं लोकभास्करम् ॥४२
स्तोतुं प्रचक्रमुः सर्वे भक्तिनम्राः समन्ततः। केशादिदेवताः सर्वा भक्तिभावसमन्विताः ॥४३

ब्रह्मविष्ण्वीशा ऊचुः

नमोनमः सुरवर तिग्मतेजसे नमोनमः सुरवर संस्तुताय वै।
जडान्धमूकान्बधिरान्सकुष्ठान्सश्वित्रिणोन्धान्विविधव्रणावृतान्॥
करोषि तानेव पुनर्नवान्त्सदा अतो महाकारुणिकाय ते नमः ॥४४
यदौदरं ज्योतिरतित्वरन्महद्यदल्पतेजो यदपीह चक्षुषाम्।
यदत्र यज्ञेष्वपनीतमाहितं तवैव तद्रूपमनेकतः स्थितम् ॥४५
सुरद्विषः सागरतोयवासिनः प्रचण्डपाशासिपरश्वधायुधाः।
समुच्छ्रितास्ते भुवि पापचेतसः प्रयांति नाशं तव देव दर्शनात् ॥४६
यतो भवांस्तीर्थफलं समस्तं यज्ञेषु नित्यं भगवानवस्थितः।

से पीड़ित होकर मूर्च्छित से हो रहे हैं और हे प्रभो! आप का उत्पत्ति स्थान वह कमल भी म्लान हो रहा रहा है।३८। हे सुरश्रेष्ठ! आकाश, पृथ्वी, एवं अन्तरिक्ष में कहीं भी हमें शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है। अतः जिस उपाय द्वारा इस तेज की शांति हो सके आप शीघ्र वही करें।३९

उन लोगों के ऐसा कहने पर कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा ने विष्णु प्रमुख आदि उन देवताओं से कहा।४०। महादेव के समेत महात्मा इन्द्र और हम लोग उन्हीं (सूर्य) देव के ही शरण में चलें।४१। पश्चात् ब्रह्मा एवं विष्णु आदि उन समस्त देवगणों ने लोक प्रकाशक उन भगवान् भास्कर के शरण में प्राप्त होकर सर्वथा भक्ति से नम्र होकर प्रेम में मग्न हो उनकी स्तुति करना आरम्भ किया।४२-४३

ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश ने कहा—हे सुरवर! तीक्ष्णतेज वाले आप को नमस्कार है, श्रेष्ठदेवों ने आपकी स्तुति की है अतः हम लोग भी आपको नमस्कार कर रहे हैं और जड़, अन्धे, गूंगे बहिरे, कुष्ठ के रोगी, सफेद कुष्ठ के रोगी एवं भाँति भाँति के व्रण (घाव) वाले को आप सदैव नवीन (सौन्दर्य पूर्ण) रूप प्रदान करते रहते हैं, अतः आप महान् कारुणिक को नमस्कार है।४४। उदर में जठराग्नि, जल में महान वाडवाग्नि प्राणियों की आखों में दिखाई देने वाला अल्पतेज (कनीनिका तारा) तथा यज्ञों में स्थापित अग्नि ये सभी आप के ही भाँति-भाँति के रूपान्तर हैं।४५। हे देव! देवताओं के वे शत्रुगण, जो सागर जल के निवासी, भयंकर पाश, तलवार, एवं फरसा अस्त्रों से सुसज्जित हैं उनका तथा पृथिवी के पापियों का नाश आपके दर्शन मात्र से हो जाता है।४६। आप समस्त तीर्थों के फल स्वरूप हैं यज्ञों में आप नित्य

---

१. वैलक्षमानसान्।

नमोभवन्नत्र विचारणास्ति सदा समः शांतिकरो नराणाम् ॥
यच्चापि लोके तप उच्यते बुधैस्तत्ते महातेज उशंति पण्डिताः ॥४७
स्तुतः स भगवानेवं प्रजापतिमुखैः सुरैः । अवधानं ततश्चक्रे श्रवणाभ्यां महीपते ॥४८
स्तुवन्ति ते ततो भूयः शिवविष्णुपुरोगमाः । कृत्वा मां पुरतः सर्वे भक्तिनम्राःसमन्ततः ॥४९
[1]नमोनमस्त्रिभुवनभूतिदायिने क्रतुक्रियासत्फलसम्प्रदायिने ।
नमोनमः प्रतिदिनकर्मसाक्षिणे सहस्रसंदीधितये नमोनमः ॥५०
प्रसक्तसप्ताश्वयुजे क्षयाय ध्रुवैकरश्मिप्रथिने नमोनमः ।
सवालखिल्याप्सरकिन्नरोरगैः संसिद्धगन्धर्वपिशाचमानुषैः ॥
सयक्षरक्षोगणगुह्यकोत्तमैः स्तुतः सदा देव नमोनमस्ते ॥५१
यतो रसान्संक्षिपसे शरीरिणां गभस्तिभिर्हिमजलघर्मनिस्रवैः ।
जगच्च संशोषयसे सदैव अतोसि लोके जगतो विशोषणम् ॥५२

ब्रह्मोवाच

ज्ञात्वा तेषामभिप्रायमुवाच भगवान्वचः[2] । लब्ध्वानुज्ञां ततः सर्वे सुराः संहृष्टचेतसः ॥५३
त्वष्टारं पूजयामासुर्मनोवाक्कायकर्मभिः । विश्वकर्मा तदादेशात्करोतु तव सौम्यताम् ॥५४

अवस्थित रहते हैं, एवं मनुष्यों के लिए सदैव शांति प्रदान किया करते हैं, इसमें कोई विचार करने की आवश्यकता नहीं है अतः हे भगवन् ! आपको नमस्कार है । इस लोक में विद्वानों ने जिसे तप बताया है, पण्डितों का कहना है कि वह आप का ही महान् तेज रूप है ।४७

हे महीपते ! प्रमुख प्रजापति (ब्रह्मा) द्वारा देवताओं के इस प्रकार स्तुति करने पर उन्हें (देवों को) कानों से कुछ सुनाई पड़ने लगा ।४८। किन्तु फिर भी वे देवगण जिसमें शिव एवं विष्णु आगे आगे चल रहे थे, मुझे प्रमुख बना कर सर्वथा भक्ति से नम्र स्तुति करने लगे ।४९

तीनों लोकों के ऐश्वर्य प्रदान करने वाले एवं यज्ञ की क्रियाओं को सफल करने वाले आप को नमस्कार है, तथा प्रतिदिन के कर्मों के साक्षी सहस्र किरण वाले आप को नमस्कार है ।५०। (अन्धकार के) नाश करने के लिए सात घोड़े वाले रथ पर निरन्तर बैठने वाले, एवं निश्चित एक रश्मि मात्र से बँधे हुए आपको नमस्कार है और बालखिल्य, अप्सरायें, किन्नर, सर्प, सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, मनुष्य, यक्ष, राक्षसगण एवं श्रेष्ठ गुह्यकों द्वारा आपकी सदैव स्तुति होती रहती है, अतः हे देव ! आप के लिए नमस्कार है ।५१। अतः शरीरधारियों के रसों को (शोषण करने के रूप में) अपनी उस किरण द्वारा, जो बर्फ को जल रूप बनाने के लिए धूप रूप होकर निकलती रहती है, संक्षिप्त करते हो और इसी प्रकार सदैव जगत् का शोषण किया करते हो, अतः लोक में जगत् में विशोषक भी कहे जाते हो ।५२

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार उन (देवताओं) के अभिप्राय को समझकर भगवान् (सूर्य) कुछ बोले । उनकी आज्ञा प्राप्त कर अत्यन्त हर्षित होकर सभी देवताओं ने मन, वाणी, एवं कर्मों द्वारा विश्वकर्मा की पूजा की और सूर्य से कहा कि—आपके ही आदेश प्राप्त कर विश्वकर्मा आप को सौम्य (सौन्दर्यपूर्ण)

---

१. त्रिभुवनभूरिदायिने । २. वदतां वरः ।

ततस्तु तेजसो राशिं सर्वकर्मविधानवित् । भ्रमिमारोपयामास विश्वकर्मा विभावसुम् ॥५५
अमृतेनाभिषिक्तस्य तदा सूर्यस्य वै विभोः । तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥५६
आजानुलिखितश्चासौ समुरासुरपूजितः । नाभ्यनन्दत्ततो देव उल्लेखनमतः परम् ॥५७
ततः प्रभृति देवस्य चरणौ नित्यसंवृतौ । तापयन्गलयंश्चैव युक्ततेजोऽभवत्तदा ॥५८
यच्चास्य शातितं तेजस्तेन चक्रं विनिर्मितम् । येन विष्णुर्जघानोग्रान्सदा वै दैत्यदानवान् ॥५९
शूलशक्तिगदावज्रशरासनपरश्वधान् । देवतानां ददौ कृत्वा विश्वकर्मा महामतिः ॥६०
त्रिदेवनिर्मितं स्तोत्रं सन्ध्ययोरुभयोर्जपन् । कुलं पुनाति पुरुषो व्याधिभिर्न च पीडयते ॥६१
प्रजादान्सिद्धकर्मा च जीवेत्सार्धं शरच्छतम् । पुत्रवान्धनवांश्चैव सर्वत्र चापराजितः ॥
हित्वा पुरं भूतमयं गच्छेत्सूर्यमयं पुरम् ॥६२
भूयोऽपि तुष्टुवुर्देवास्तथा देवर्षयो रविम् । वाग्भिरित्थमशेषस्य त्रैलोक्यस्य समागताः ॥६३

देवा ऊचुः

नमस्ते[1] रविरूपाय सोमरूपाय ते नमः । नमो यजुः स्वरूपायाथर्वायाङ्गिरसे[2] नमः ॥६४
ज्ञानैकधामभूताय[3] निर्धूततमसे नमः । शुद्धज्योतिःस्वरूपाय निस्तत्त्वायामलात्मने ॥६५

बनायेंगे ।५३-५४। तदुपरांत सभी कार्य-विधानों के कुशल विश्वकर्मा ने तेज पुञ्ज सूर्य को खरादने वाले चक्के पर स्थित किया ।५५। विश्वकर्मा ने अमृत से अभिसिंचित सूर्य के उस तेज का शातन (खरादना) धीरे-धीरे आरम्भ किया ।५६। सुर और असुर से पूजित सूर्य देव ने घुटने तक (अंगों के) खराद जाने के उपरांत (पैरों के) खरदवाने की अनिच्छा प्रकट की ।५७। तभी से उनके पैर एक में सम्मिलित रहने के नाते अस्फुटित ही रह गये और उसी समय से उसका तेज संतप्त करने तथा गलाने के योग्य हुआ ।५८। खरादते समय जो तेज कट कर गिर गया था विश्वकर्मा ने उसी का चक्र (अस्त्र) बनाया जिसके द्वारा भगवान् विष्णु ने भयंकर दैत्य एवं दानवों का अनेकों बार वध किया है ।५९। तथा महाबुद्धिमान् विश्वकर्मा ने शूल, शक्ति, गदा, वज्र, धनुष एवं फरसा नामक अस्त्र उसी तेज से बनाकर देवताओं को भी वितरण कर दिया था ।६०

इस भाँति त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर) के किये हुए स्तोत्र द्वारा दोनों संध्याओं (प्रातःकाल तथा सायंकाल) में उनकी आराधना करते हुए पुरुष अपना कुल पवित्र करता है तथा कभी व्याधि-पीडित नहीं होता ।६१। एवं संतान, कार्य की सिद्धि, सौ वर्ष से अधिक की आयु, पुत्र, एवं धन की प्राप्ति पूर्वक वह सर्वत्र अजेय होता है। पश्चात् मरणानन्तर वह प्राणी सूर्य लोक में जाता है ।६२। अनन्तर तीनों लोकों के समस्त देवता एवं देवर्षि आ आकर अपनी वाणियों द्वारा सूर्य की पुनः इस प्रकार स्तुति करने लगे ।६३

देव ने कहा—तुम्हारे रवि रूप एव सोमरूप के लिए नमस्कार है, यजुःस्वरूप और अथर्व एवं आंगिरस रूप को नमस्कार है ।६४। ज्ञान का एकमात्र स्थान भूत, अन्धकार के नष्ट हो जाने से अत्यन्त

---

१. नमस्ते रुद्ररूपाय सामरूपाय वै नमः । २. अथर्वशिरसे नमः । ३. ज्ञानैकपादरूपाय ।

नमोऽखिलजगद्व्याप्तिस्वरूपायात्ममूर्तये । सर्वकारणभूताय निष्ठायै ज्ञानचेतसाम् ॥६६
नमोऽस्तु ज्ञेयरूपाय[1] प्रकाशे लक्षरूपिणे । भास्कराय नमस्तुभ्यं तथा शब्दकृते नमः ॥६७
संसारहेतवे[2] चैव संध्याज्योत्स्नाकृते नमः । त्वं सर्वमेतद्भगवाञ्जगदै भ्रमति त्वया ॥६८
भ्रमत्वाविद्धमखिल ब्रह्माण्डं सचराचरम् । त्वदंशुभिरिदं सर्वं संसृष्टं जायते शुचिः ॥६९
क्रियते त्वत्करस्पर्शाज्जलादीनां पवित्रता । होमदानादिको धर्मो नोपकाराय जायते ॥७०
तावद्यावन्न संयोगी जगत्यत्र भवाञ्छुचिः । प्रातर्होमं प्रशस्तं हि उदिते त्वयि जायते ॥७१
ऋचोऽथ सकला ह्येता यजूंषि त्वं जगत्पते । सकलानि च सामानि तपत्येवं जगत्सदा ॥७२
ऋङ्मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च यजुर्मयः । तथा साममयश्चैव ततो नाथ त्रयीमयः ॥७३
त्वमेव ब्रह्मणो रूपं परं चापरमेव च । मूर्तोऽमूर्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपतया स्थितः ॥७४
निमेषकाष्ठादिमयः कालरूपः क्षयात्मकः । प्रसीद स्वेच्छया रूपं स्वतेजोमयमादिश ॥७५
इत्थं संस्तूयमानस्तु देवैर्देवर्षिभिस्तथा[3] । मुमोच स्वं तदा तेजस्तेजसां राशिरव्ययः ॥७६
यत्तस्य ऋङ्मयं तेजो भविता तेन मेदिनी । यजुर्मयेनापि दिवं[4] स्वयं साममयो रविः ॥७७
शातितास्तेजसो भागा ये च स्युर्दश पञ्च च । तस्यैव तेन शर्वस्य कृतं शूलं महात्मना ॥७८

निर्मल शुद्ध ज्योति स्वरूप, निस्तत्त्व एवं अमलात्मा (आप) के लिए नमस्कार है ।६५। निखिल जगत् में व्यापक रूप , आत्ममूर्ति सभी के कारण एवं ज्ञानियों की निष्ठा रूप (आयु) को नमस्कार है ।६६। प्रकाश में ज्ञेयरूप (अप्रकाश में) लक्षरूप तथा शब्द (शब्द शास्त्र) के निर्माता भास्कर को नमस्कार है ।६७। संसार के हेतु एवं संध्या तथा ज्योत्स्ना (चन्द्रकिरण) के रचयिता (आप) के लिए नमस्कार है, इस सब कुछ जगत् के भगवान् आप ही हैं और तुम्हारे ही द्वारा यह जगत् चलता फिरता रहता है ।६८। यह चर, अचर रूप निखिल ब्रह्माण्ड की रचना होने पर तुम्हारी ही किरणों द्वारा संतुष्ट होकर वह पवित्र होता है ।६९। और तुम्हारी ही किरणों के स्पर्श होने से जल आदि के पवित्र होने के नाते हवन एवं दान आदि धर्म तब तक उपकारक (फलदायक) नहीं माने जाते जब तक पवित्रात्मक तुम्हारा इस संसार से संयोग (उदय) न हो । इसीलिए आप के उदय होने पर प्रातः कालीन हवन प्रशस्त बताया गया है ।७०-७१। हे जगत्पते ! समस्त कथाएँ ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद (भी) तुम्हीं हो और उसी द्वारा जगत् में सदैव प्रकाशित होते हो ।७२। हे जगन्नाथ ! ऋग्मय, यजुर्मय, एवं साममय होते हुए आप त्रयीमय कहे जाते हो ।७३। तुम्हीं ब्रह्म के पर तथा अपर रूप हो तथा मूर्त-अमूर्त, सूक्ष्म एवं स्थूल रूप से स्थित हो ।७४। इसलिए निमेष (क्षण) दशों दिशाएँ कालरूप एवं कलात्मक रूप आप प्रसन्न हों और मनइच्छित अपने इस तेजोमय, रूप के लिए आज्ञा प्रदान करें ।७५

इस प्रकार देवों एवं देवर्षियों द्वारा स्तुति करने पर तेजोराशि एवं अव्यय सूर्य ने अपने तेज का त्याग किया ।७६। जिससे ऋङ्मय तेज से मेदिनी (पृथ्वी) यजुर्मय तेज से स्वर्ग एवं साममय तेज से स्वयं सूर्य उत्पन्न हुए ।७७। खरादे गये तेज का जो पन्द्रहवाँ भाग था, उसी का विश्वकर्मा ने शिव के लिए शूल

---

१. सूर्यस्वरूपाय । २. सर्वस्य हेतवे । ३. अपि देवैर्दिवाकरः । ४. त्रिदिवम् ।

चक्रं विष्णोर्वसूनां च शंकरस्य च दारुणम् । षण्मुखस्य तथा शक्तिः शिबिका धनदस्य च ॥७९
अन्येषां चासुराणां शस्त्राण्युग्राणि यानि वै । यक्षविद्याधराणां च तानि चक्रे स विश्वकृत् ॥८०
ततश्च षोडशं भागं बिभर्ति भगवान्रविः । तत्तेजसः[1] पञ्चदश शातिता विश्वकर्मणा ॥८१
ततः सुरूपदृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरून् । ददर्श तत्र संज्ञां च वडवारूपधारिणीम् ॥८२
इत्येतन्निखिलं भानोः कथितं मुनिसत्तमाः । शृणुयाद्यो नरो भक्त्या अश्वमेधफलं लभेत् ॥८३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे ब्रह्मर्षिसंवादे परिलेखवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२३।

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोशवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वक्ष्याम्यहं ते पुनरेव दिण्डे सूर्यस्य सर्वप्रवरप्रधानम् ।
व्योम्नः परं तिष्ठति यस्तु मग्नः स मुच्यते रुद्र इहापि दिण्डी ॥१

बनाया है ।७८। उसी भाँति विष्णु के लिए चक्र, वसुओं एवं शंकर के लिए दारुण (अस्त्र) षडानन के लिए शक्ति तथा कुबेर के लिए शिविका (पालकी की सवारी) भी बनाई गई है ।७९। और अन्य असुर शत्रु पक्ष एवं विद्याधर के जितने तीक्ष्ण अस्त्र हैं विश्वकर्मा ने उन्हें उसी तेज से बनाया है ।८०। क्योंकि उस तेज का एक मात्र सोलहवाँ भाग भगवान् सूर्य ने अपनाया है और उसके शेष पन्द्रहवें भाग तक को विश्वकर्मा ने खराद डाला था ।८१। तदुपरांत सौन्दर्य पूर्ण रूप प्राप्त कर सूर्य ने उत्तर कुरुदेश की यात्रा की और वहाँ जाकर वडवा (घोड़ी) का रूप धारण किये (अपनी स्त्री) संज्ञा को देखा ।८२

हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार मैने सूर्य के निखिल (रहस्य) को बता दिया, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस कथा को सुनेगा उसे अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है ।८३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में ब्रह्मर्षिसंवाद में परिलेखनवर्णन नामक एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।१२३।

अध्याय १२४

भुवनकोश वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे दिंडे ! मैं सूर्य के सर्वश्रेष्ठ अनुयायियों (देवताओं) को पुनः बता रहा हूँ सुनो ! आकाश में (सबके) अग्रभाग में जो (आनन्द) मग्न दिखायी दे रहा है, उसे (लोग) रुद्र कहते हैं और यहाँ वह दिंडी के नाम से ख्यात है ।१

---

१. भागा इति शेषः ।

स्थित्वा पुरा ब्रह्मशिरः किलासौ प्रगृह्य तत्तस्य शिरः कपालम्।
ततो ह्यसावाश्रममुत्तमं शिवो बहूदकैः पुष्पफलैः समृद्धम् ॥२
नग्नो यदा दारुवने मुनीनां दृष्ट्वा च तं भैक्ष्यचरं सुरेशम्।
योषित्सुताः संक्षुभितास्तु सर्वे जग्मुर्हरं तं मुनयः सुतुष्टाः ॥३
स हन्यमानो मुनिमुख्यसंघैर्गृहीतलोष्टैर्ऋषिदण्डकाष्ठैः।
विहायादेण्डिः स तु तान्सुरर्षींस्ततो रवेर्लोकमथाजगाम ॥४
आगच्छमानं प्रमथास्तमूचुर्देवेश नित्यं भ्रमसे किमर्थम्।
स प्राह तान्पापविमोचनार्थमटामि तीर्थानि सुरालयांश्च ॥५
ते भूय ऊचुः प्रमथास्तमेवमत्रैव तिष्ठस्व रवेः पुरस्तात्।
शुद्धिं तवैष प्रकरिष्यतीति शुद्धस्ततो यास्यसि रुद्रलोकम् ॥६
इत्येवमुक्तः प्रमथैस्तु रुद्रस्तत्रैव तस्थौ रवितोषणाय।
नग्नो जटी मुष्टिकपालपाणी रूपेण चैवाप्रतिमस्त्रिलोके ॥७
उक्तः स तुष्टेन ततः सवित्रा प्रीतोऽस्मि देवागमनात्तवाहम्।
मद्दर्शनादेव भवान्विशुद्धो डिण्डीति नाम्ना भवितासि लोके ॥८
अष्टादशैते प्रमथास्तु भानोश्चतुर्दशान्ये तु रवे रथस्थाः।
द्वे देवते द्वौ च ऋषिप्रधानौ गन्धर्वसर्पावपि तावदेव ॥९

पहले (समय में) एक बार ब्रह्मशिरा नामक (किसी) स्थान में अवस्थित होकर ब्रह्मा के शिर का कपाल (आधा) भाग लिये एकदम नग्न होकर उस शिव (रुद्र) ने अत्यन्त जल, पुष्प एवं फलों से समृद्ध किसी उत्तम आश्रम की ओर प्रस्थान किया था।२। अनन्तर उस घोर वन में भिक्षुक के रूप में उस देव श्रेष्ठ को घूमते हुए देखकर मुनिगण उनकी स्त्रियाँ और बच्चे अत्यन्त संक्षुब्ध होकर उनके पास पहुँचे।३। और मुनियों ने हाथ में लिए मिट्टी के ढेले तथा ऋषियों ने काष्ठ के दंडों से उन पर आघात किया। उनसे मार खाने के पश्चात् दिंडी ने उन सुरर्षियों को त्याग कर पुनः सूर्य लोक को प्रस्थान किया।४। उन्हें आते हुए देखकर प्रमथगणों ने (विनम्र भाव से) उनसे कहा—हे देवेश! आप नित्य इस प्रकार क्यों घूमते फिरते हैं उन्होंने उन लोगों से कहा—मैं पाप-मुक्त होने के लिए तीर्थों एवं देवालयों में घूम रहा हूँ।५। प्रमथगणों ने (ऐसा सुनकर) पुनः उनसे कहा—आप यही सूर्य के सामने अवस्थित होवें (सूर्य) आप की भलीभाँति शुद्धि करेंगे उसके पश्चात् आप रुद्र लोक चले जाइयेगा।६। इस प्रकार प्रमथों के कहने पर नग्न, जटाधारी, कपालपाणि (हाथ में कपाल लिये) तीनों लोकों में अनुपम रूप धारण करने वाले भगवान् रुद्र सूर्य की आराधना के लिए उसी स्थान में अवस्थित हो गये।७। पश्चात् (उनकी आराधना से) प्रसन्न होकर सविता (सूर्य) ने उनसे कहा—हे देव! मैं तुम्हारे आगमन से प्रसन्न हूँ, मेरे दर्शन मात्र से ही आप विशुद्ध हो गये और (आज से) लोक में आप 'दिंडी' नाम से विख्यात होंगे।८। इस प्रकार (दिंडी के अतिरिक्त) सूर्य के साथ उनके रथ पर उनके अठारह प्रमथ तथा अन्य और चौदह (व्यक्ति) के समेत दो प्रधान ऋषि, दो गन्धर्व, सर्प, दो यक्ष, दो सिद्ध, दो निशाचर, अप्सराओं में उत्पन्न

यक्षौ च सिद्धौ च निशाचरौ चादित्यात्मजावप्सरसां प्रधानौ ।
वसन्ति ते ह्यस्तभुषश्च सूर्ये तेषामशीतिश्चतुरोत्तरा सा ॥१०
इत्यादिदेवप्रवरास्तु सर्वे धात्वर्थशब्दैश्च भवन्ति सिद्धाः ॥११

ऋषय ऊचुः

विस्तराद्ब्रूहि मे ब्रह्मन्प्रवरान्धातुशब्दजान् । यतश्च कौतुकं ब्रह्मन्नस्माकमिह जायते ॥१२

ब्रह्मोवाच

भूयस्तव प्रवक्ष्यामि दण्डनायकपिङ्गलौ । राजश्रौषादयश्चान्ये दिग्देवा दिण्डिना सह ॥१३
मया सह समागम्य पुरा देवैर्विचारितम् । एष कारुणिकः सूर्यो युध्यते दानवैः सह ॥१४
ते तु लब्धवरा भूत्वा अमात्याद्या ह्यभीक्ष्णशः । आदित्यं मन्यमानास्ते तपन्तं हन्तुमुद्यताः ॥१५
तस्मात्तेषां विघातार्थं प्रवराश्च भवामहे । अस्माभिः प्रतिरुद्धास्ते न द्रक्ष्यन्ति दिवाकरम् ॥१६
सम्मन्त्र्यैवं ततः स्कन्दो वामपार्श्वे रवेः स्थितः । दण्डनायक संज्ञस्तु सर्वलोकस्य स प्रभुः ॥१७
उक्तश्च स तदार्केण त्वं प्रजादण्डनायकः । दण्डनीतिकरो यस्मात्तस्मात्त्वं दण्डनायकः ॥१८
लिखते यः प्रजानां च सुकृतं यच्च दुष्कृतम् । अग्निर्दक्षिणपार्श्वे तु पिङ्गलत्वात्स पिङ्गलः ॥१९
आश्विनौ चापि सूर्यस्य पार्श्वयोरुभयोः स्थितौ । अश्वरूपात्समुत्पन्नौ तेन तावश्विनौ सुरौ ॥२०

दो आदित्य के प्रधान पुत्र, ये सभी उनके अस्तोदय समय में अवस्थित रहते हैं, जिनकी संख्या चौरासी है।९-१०। इन श्रेष्ठ देवों के नाम की सिद्धि (व्याकरण द्वारा) तदर्थ वाचक धातु से निष्पन्न शब्दों से होती है।११

ऋषियों ने कहा—हे ब्रह्मन्! इन देव प्रवरों (श्रेष्ठों) के नाम को धात्वर्थ वाचक शब्दों से निष्पन्न बताया गया है, अतः विस्तार पूर्वक इसे बताने की कृपा करें क्योंकि इसकी जानकारी के लिए हमें महान् कुतूहल हो रहा है।१२

ब्रह्मा ने कहा—मैं तुम्हें (इसे) फिर बता रहा हूँ। सावधान होकर सुनो पहले समय में एकबार मेरे तथा दिंडी के साथ दंडनायक, पिंगल, राज, श्रौषादि एवं दिशाओं के देवता लोग मिल कर विचारने लगे कि करुणानिधान भगवान् सूर्य तो दानवों के साथ तन्मय होकर युद्ध कर रहे हैं।१३-१४। इधर (राक्षसों के) मंत्रीगण भी वरदान प्राप्त किये हैं अतः ये देदीप्यमान सूर्य के प्रतिघात करने के लिए अवश्य तैयार होंगे।१५। इसलिए उनके वध के लिए हमें भी प्रबल होना चाहिए। क्योंकि हम लोगों से अवरुद्ध होने पर वे दिवाकर देव को देख न सकेंगे।१६। इस प्रकार की मंत्रणा कर स्कन्द सूर्य के बाईं ओर अवस्थित हुए, उनका दंडनायक नामकरण हुआ और समस्त लोकों का प्रभुत्व भी उन्हें सौंपा गया।१७। अनन्तर भगवान् सूर्य ने उनसे कहा—तुम्हें दंडनायक बनाया गया है।१८। फिर उन्होंने अग्नि से कहा कि—(मेरे) दाहिनी ओर स्थित होकर प्रजाओं के बुरे-भले सभी कर्मों को लिखो और पिंगल होने के नाते तुम्हारा नाम पिंगल रखा गया है।१९। पुनः अश्विनी कुमार सूर्य के दोनों पार्श्व (बगल) में स्थित हुए, अश्वरूप (सूर्य) से उत्पन्न होने के नाते जिनका नाम अश्विनी कुमार हुआ है।२०। पश्चात् सूर्य के दो

द्वारपालौ स्मृतौ तस्य राज्ञः श्रेष्ठौ महाबलौ। कार्त्तिकेयः स्मृतो राज्ञः श्रेष्ठश्चापि हरः स्मृतः ॥२१
राजृदीप्तौ स्मृतो धातुर्नकारस्तस्य प्रत्ययः। सुरसेनापतित्वेन स यस्माद्दीप्यते सदा॥
तस्मात्स कार्तिकेयस्तु नाम्ना राज्ञ इति स्मृतः ॥२२
स्रुगतौ च स्मृतौ धातुर्यस्य स प्रत्ययः स्मृतः। गच्छतीति रहस्तस्मात्पर्यायात्स्रौष उच्यते ॥२३
प्रथमं यद्द्वेद्द्वारं धर्मार्थाभ्यां समाश्रितम्। तत्रैतौ संस्थितौ देवौ लोकपूज्यौ द्विजोत्तमाः ॥२४
द्वितीयायां तु कक्षायामप्रधृष्यौ व्यवस्थितौ। पक्षिप्रेताधिपौ नाम्ना स्मृतौ कल्माषपक्षिणौ ॥२५
वर्णस्य शबलत्वाच्च यमः कल्माष उच्यते। पक्षावस्येति यः पक्षी गरुडः परिकीर्तितः ॥२६
स्थितो दक्षिणतस्तस्य दण्डहस्तसमन्वितः। उत्तरेण स्थितोऽर्कस्य कुबेरश्च विनायकः ॥२७
कुबेरो धनदो ज्ञेयो हस्तिरूपो विनायकः। कुत्सया कुप्यताशप्तं कुशरीरमजायत॥
कुबेरः कुशरीरत्वात्स नाम्ना धनदः स्मृतः ॥२८
नायकः सर्वसत्त्वानां तेन नायक उच्यते। विविधं नयते यस्मात्स तु तस्माद्विनायकः ॥२९
रैवतश्चैव दण्डिश्च तौ रवेः पूर्वतः स्थितौ। ततो दिण्डिः स्मृतो रुद्रो रेवतस्तनयो रवेः ॥३०
प्लुतं गच्छत्यसौ यस्मात्सर्वलोकनमस्कृतः। रेवृप्लवगतौ धातू रेवतस्तेन स स्मृतः ॥३१

द्वारपाल हुए, जिनमें प्रथम राज्ञ और दूसरे श्रेष्ठ हैं, कार्तिकेय का ही नाम राज्ञ है और श्रेष्ठ हर हुए। एवं ये दोनों महाबली हैं।२१। दीप्ति (प्रकाश) अर्थ में राजधातु (व्याकरण शास्त्र में) पठित है उसमें ऋ (अनुबन्ध) के निकल जाने पर उसके सामने (न) कार के प्रत्यक्ष के रूप में उसके सामने आने पर राज्ञ शब्द निष्पन्न होता है। इसलिए देवताओं के सेनापतित्वेन और सदैव दीप्त होने के नाते कार्तिकेय का राज्ञ नामकरण अत्यन्त युक्त भी है इसीलिए उन्हें इस नाम से स्मरण किया जाता है।२२। गति अर्थ में स्रु धातु पठित है उसके सामने 'स' प्रत्यय के रूप में उपस्थित होने से जिस 'स्रुस' शब्द की उत्पत्ति होती है, उसी का 'एकान्त में प्राप्त' होने के अर्थ में पर्यायवाचक स्रौष शब्द निष्पन्न होता है।२३। हे द्विजोत्तम! पहले दरवाजे पर जो धर्म एवं अर्थ का केन्द्र कहा जाता है ये दोनों लोक पूज्य देवता उसी स्थान पर सुशोभित हैं।२४। दूसरी कक्षा के दरवाजे पर कल्माष एवं पक्षी ये दोनों उपस्थित रहते हैं जो अत्यन्त दुर्धष हैं। और शबल (चितकबरे) वर्ण के होने के नाते यम को कल्माष और जिसके पक्ष हों उसे पक्षी कहा जाता है अतः पक्षी से गरुड का नाम बताया गया है।२५-२६। सूर्य के दक्षिण की ओर दंड हाथ में लिए कुबेर अवस्थित हैं और सूर्य के उत्तर विनायक की स्थिति है।२७। जिनमें धनद को कुबेर एवं हांथी रूप धारी को विनायक बताया गया है। एकबार निन्दावश किसी ने क्रुद्ध होकर इन्हें शाप दे दिया था उसी से उनकी शरीर खराब हो गई, उसी कुशरीर के नाते धनद का नाम कुबेर पड़ा है।२८। इसी प्रकार सभी प्राणियों के नायक होने के नाते नायक, एवं भाँति-भाँति के उपायों द्वारा प्राणियों के कल्याण का नयन (उद्वहन) करने के नाते उन्हें विनायक कहा जाता है।२९। इसी भाँति रैवत एवं दिंडी सूर्य के पूर्व की ओर स्थित हुए जिनमें दिंडी रुद्र का नाम है, तथा रैवत सूर्य के एक पुत्र का नाम है।३०। कूदते हुए चलने के नाते उन समस्त लोकों के वन्दनीय का नाम रैवत हुआ। गमन अर्थ में रेवृ और प्लव धातु है उसी से रैवत शब्द निष्पन्न होता है।३१। उसी प्रकार गमनार्थकडीङ् धातु पठित है, उसी से दिंडि शब्दकी सिद्धि

डीङ्गतावस्य[1] वै धातोर्दिण्डिशब्दो निपात्यते । डयतेऽसौ[2] सदा दिण्डी तेन दिण्डी प्रकीर्तितः ॥३२
इत्येते प्रवराः प्रोक्ता धात्वर्था नैगमैः शुभैः । एषां संक्षेपतो भूयः सङ्ख्यां वो निगदामि वै ॥३३
अश्विनौ तौ ततो ज्ञेयौ दण्डनायकपिङ्गलौ । तौ सूर्यद्वारगौ ज्ञेयौ राज्ञस्रौषौ ततः स्मृतौ ॥३४
रेवतश्चैव दिण्डिश्च इत्येते प्रवरा मया । अष्टादश समाख्याताः संक्षेपात्सङ्ख्यया मया ॥३५
इत्येभिर्नामभिस्त्वन्ये दानवानां जिघांसया । परिवार्य स्थिताः सूर्यं नानाप्रहरणायुधाः ॥३६
सरूपाश्चान्यरूपाश्च विरूपाः कामरूपिणः । परिवार्य स्थिताः सूर्यं गरुडश्च महाबलः ॥३७
धातुर्दिविति वै प्रोक्तो क्रीडायां स तु उच्यते । क्रीडन्ते दिवि वै यस्मात्तस्मात्ते देवताः स्मृताः ॥३८
ऋचो यजूंषि सामानि यान्युक्तानीह वै मया । नानारूपैः स्थितान्येव रवेस्तानि समन्ततः ॥३९

सुमन्तुरुवाच

इत्येवमुक्तवान्ब्रह्मा ऋषीणां पृच्छतां पुरा । ते श्रुत्वाराध्य देवेशं संसिद्धा दिवि संस्थिताः ॥४०

इति श्री भविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे ब्रह्मर्षिसंवादे प्रवरवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२४।

निपातन से होती है । (डयतेऽसौ सदा स दिंडिः) इस प्रकार उसका विग्रह भी बनाया गया है ।३२। व्याकरण के धातु अर्थ वाचक शब्दों द्वारा की गयी व्याख्या सहित इन देव प्रवरों को मैंने बता दिया, अब इनकी संख्या भी संक्षेप में तुम्हें बता रहा हूँ ।३३। दो अश्विनी कुमार, दंडनायक, पिंगल, सूर्य के द्वारपाल राज्ञ एवं श्रौष, रैवत तथा दिंडि इन्हीं प्रवरों को मैंने बताया था जिनकी संख्या संक्षेप में अट्ठारह है ।३४-३५। दानवों की हिंसा करने के लिए ये लोग तथा अन्य लोग भी भाँति-भाँति के अस्त्रों से सुसज्जित होकर सूर्य देव के चारों ओर अवस्थित हैं ।३६। इसी भाँति समान रूप वाले, अन्य रूप वाले, विरूप, एवं कामरूप (स्वेच्छा से रूप धारण) करने वाले तथा महाबली गरुड, ये सभी लोग उन्हें घेर कर अवस्थित रहते हैं ।३७। क्रीडा अर्थ में दिव् धातु पठित है, इसीलिए स्वर्ग में क्रीड़ा करने के नाते (इन्हें) देवता कहा जाता है ।३८। एवं ऋग्, यजु एवं साम आदि जो कुछ मैंने पहले बतला दिया है, वे सभी भाँति-भाँति के रूप धारण कर सूर्य के चारों ओर अवस्थित रहते हैं ।३९

सुमन्तु बोले—पहले समय में ऋषियों के पूँछने पर ब्रह्मा ने ऐसा ही कहा था पश्चात् वे सब ऋषिगण भी उसे सुनकर देवेश सूर्य की आराधना द्वारा सफलता की प्राप्ति करके स्वर्ग में ही सदैव के लिए स्थित हो गये ।४०

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में ब्रह्मर्षि संवाद में प्रवरवर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२४।

---

१. ऋगतावस्य वै धातुः । २. ऋच्छतीति ।

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनवर्णनम्

शतानीक उवाच

यदेतद्दृश्यते व्योम सूर्यस्य पुरतो द्विज । तदुच्यते किमात्मा च कथं भूतश्च कथ्यताम् ॥१

सुमन्तुरुवाच

हन्त व्योम प्रवक्ष्यामि सूर्यप्रहरणं शुभम् । यदात्मकं हि यत्प्रोक्तं यथा वसन्ति देवताः ॥२
पुरस्ताच्च चतुःशृङ्गं तद्व्योमायतनं रवेः । व्योमशब्दं चतुःशृङ्गं सर्वदेवमयं च यत्[1] ॥३
गैरिकार्णवसम्भूतं यदन्तर्गर्भमाश्रितम् । तत्रोत्पन्नमिदं व्योम कलेर्व्योम मही स्मृता ॥४
वरुणस्य यथा पाशो हुङ्कारो वेधसो यथा । विष्णोश्चापि यथा चक्रं त्रिशूलं त्र्यम्बकस्य च ॥५
इन्द्रस्य च यथा वज्रं तथा व्योम रवेः स्मृतम् । तस्मिन्व्योम्नि त्रयस्त्रिंशत्क्रीडन्तो यज्ञियाः सुराः ॥६
हरश्च वर्षशुद्धश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः । वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥
ईश्वरो भुवनश्चैते रुद्रा एकादश स्मृताः ॥७
आदित्यानां च नामानि विष्णोश्चक्रस्य दीयताम् । अर्यमा च तथा मित्रो भगोऽथ वरुणस्तथा ॥८
विवस्वान्सविता चैव पूषा त्वष्टा तथैव च । अंशोभगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥९

अध्याय १२५

भुवन-वर्णन

शतानीक ने कहा—हे द्विज ! यह जो सामने सूर्य का व्योम (नामक अस्त्र) दिखाई दे रहा है, वह किस आकार-प्रकार का है एवं कैसे उत्पन्न हुआ, मुझे बताइये ।१

सुमन्तु बोले—व्योम नामक सूर्य के उस शुभ अस्त्र को मैं बता रहा हूँ कि वह कैसा है उसे क्या कहते हैं और उसमें देवता लोग किस भाँति रहते हैं ।२। सूर्य का व्योम नामक अस्त्र है जो उनका आश्रय भी है उसके सामने चार भृङ्ग हैं उन्हीं चार भृंङ्ग वाले एवं सर्वदेवमय के अर्थ में व्योम शब्द प्रयुक्त होता है ।३। इस प्रकार सुवर्ण के समुन्दर में उसके भीतरी गर्भ में जो तत्त्व स्थित था उसी से यह व्योम उत्पन्न हुआ है । कलि में व्योम के नाम से मही (पृथ्वी) का भी स्मरण किया जाता है । जिस प्रकार वरुण का पाश, ब्रह्मा का हुंकार, विष्णु का चक्र, त्र्यम्बक का त्रिशूल एवं इन्द्र का वज्र (अस्त्र) है, उसी भाँति सूर्य का व्योम नामक अस्त्र है, उसी व्योम में क्रीडा करते हुए तैंतीस याज्ञिक के देवता हैं ।४-६। हर, वर्षशुद्ध, त्र्यम्बक, अपराजित, वृपाकपि, शंभु, कपर्दी, रैवत, ईश्वर, भुवन, और रुद्र ये ग्यारह रुद्र एवं द्वादश (बारह) आदित्य स्थित हैं ।७। तथा इनके के जो नाम हैं, वही विष्णु के चक्र के भी नाम हैं—अर्यमा, मित्र, भग, वरुण, विवस्वान्, सविता, पूषा, त्वष्टा, अंश भग, अर्तितेज एवं आदित्य उनके नाम हैं ।८-९। ध्रुव, धर,

---

1. क्त्—इ०पा० ।

ध्रुवो धरश्च सोमश्च आपश्चैवाऽनिलोऽनल: । प्रत्यूषश्च प्रभातश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता: ॥१०
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावुभौ । विश्वेदेवान्प्रवक्ष्यामि नामतस्तान्निबोधत ॥११
क्रतुर्दक्षो वसु: सत्य: कालकामौ धृति: कुरु: । शङ्कुमात्रो वामनश्च विश्वेदेवा दश स्मृता: ॥१२
वर्तमाना इमे देवा भविष्यानन्तरे शृणु । यमश्च तुषिताश्चैव[1] वसवो[2] वशवर्तिन: ॥१३
सत्याश्च भूतरजस: साध्याश्च तदनन्तरा: । षट्सु मन्वन्तरेष्वेव देवा द्वादशद्वादश[3] ॥
पारावतास्तथा चान्ये ते ह्यासंस्तुषितै: सह ॥१४
साध्यान्देवान्प्रवक्ष्यामि नामतस्तन्निबोध मे । मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नरो नारायणस्तथा ॥१५
वृत्तिलम्बो मनुश्चैव समो[4] धर्मश्च वीर्यवान् । वित्तस्वामी प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिता: ॥१६
एते यज्ञभुजो देवा: सर्वलोकेषु पूजिता: । आदित्यामेव ते धीर कश्यपस्यात्मजा: स्मृता: ॥१७
विश्वे च वसव: साध्या विज्ञेया धर्मसूनव: । एवं धर्मसुत: सोमस्तृतीयो वसुरिष्यते ॥१८
धर्मोऽपि ब्रह्मण: पुत्र: पुराणे निश्चयं गत: । अथ चेन्द्रान्वसूंश्चैव नामभिश्च निबोध मे ॥१९
स्वायम्भुवो मनु: पूर्व: तत: स्वारोचिष: स्मृत: । उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥२०
इत्येते षडतिक्रान्ता: सप्तम: साम्प्रतो मनु: । वैवस्वतेति विज्ञेयो भविष्या: सप्त चापरे ॥२१
एषामाद्योऽर्कसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिरेव च । तस्माच्च भवसावर्णिर्धर्मसावर्णिरित्युत ॥२२
पञ्चमो दक्षसावर्णि: सावर्णि:[5] पञ्च कीर्तिता: । रौच्यो भौव्यश्च द्वावन्यावित्येते मनव: स्मृता: ॥२३

सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभात ये आठ वसु यहाँ हैं ।१०। नासत्य एवं दस्र नामक दोनों अश्विनी कुमार, तथा विश्वदेव भी वहाँ स्थित रहते हैं, उनके नामों को बता रहा हूँ, सुनो ।११। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धृति, कुरु, शंकुमात्र, एवं वामन ये दश नाम हैं ।१२। इस प्रकार उपरोक्त ये सभी देवता नित्य (व्योम में) वर्तमान रहते हैं, इसके अनन्तर भी कह रहा हूँ सुनो ! यम-तुषित एवं वशीभूत ये वसु सूर्य की अधीनता स्वीकार करके रहते हैं । सत्य, भूत रजस, साध्य, इसके पश्चात् छहों मन्वन्तरों में बारह-बारह देवता, पारावत, तथा तुषितों के समेत अन्य देवता भी वहाँ स्थित हैं ।१३-१४। अब साध्यों के नाम बता रहा हूँ सुनो ! मनु, अनुमंता, प्राण, नर, नारायण, वृत्तिलम्ब, मनु, सम, धर्म, वीर्यवान्, वित्तस्वामी, तथा प्रभु यही बारह नाम हैं ।१५-१६। ये सभी देवगण यज्ञ भोक्ता हैं और समस्त लोकों में पूजित हैं । हे धीर ! कश्यप की पत्नी अदिति से होकर ये कश्यप के पुत्र भी कहलाते हैं ।१७। उसी प्रकार विश्वदेव, वसु, और साध्यों को धर्म के पुत्र जानना चाहिए । एवं तृतीय सोम नामक वसु भी धर्म के पुत्र हैं ।१८। और धर्म ब्रह्मा के पुत्र हैं यह पुराण से निश्चित है । अब इन्द्र वसु का नाम बता रहा हूँ सुनो ! ।१९। प्रथम स्वायंभुव मनु हुए थे उनके पश्चात् स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, और चाक्षुष हुए ।२०। इन छह मनुओं का कार्य काल भी समाप्त हो गया है । क्योंकि आधुनिक सातवाँ वैवस्वत मनु है । इनके अनन्तर सात मनु और होगें— ।२१। इनमें प्रथम सूर्य सावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, भव सावर्णि, धर्म सावर्णि, और पाँचवा दक्ष सावर्णि, इन पाँच सावर्णियों के उपरान्त रौच्य एवं भौव्य नामक दो अन्य मनु मिलकर यही सात मनु होंगे ।२२-२३। इन्द्रों में सर्वप्रथम विष्णुभुक्, विद्युति,

---

१. तुषितश्चैव । २. तथैव वशवर्तिन: । ३. वै स्मृता: । ४. हंसो धर्मश्च । ५. एकवचनमार्षम् ।

इन्द्रस्तु विष्णुभुग्ज्ञेयो विद्युतिस्तदनन्तरम् । विभुः प्रभुश्चैव शिखी तथैव च मनोजवः ।।२४
ओजस्वी साम्प्रतिस्त्विन्द्रो बलिर्भाव्यस्ततः परम् । अद्भुतस्त्रिदिवश्चैव दशमस्त्विन्द्र उच्यते ।।२५
सुसात्त्विकश्च[1] कीर्तिश्च शतधामा[2] दिवस्पतिः । इति भूता भविष्याश्च इन्द्रा ज्ञेयाश्चतुर्दश ।।२६
कश्यपोऽत्रिर्वशिष्ठश्च भरद्वाजश्च गौतमः । विश्वामित्रो जमदग्निः सप्तैते ऋषयः स्मृताः ।।२७
अतः परं प्रवक्ष्यामि मरुतोऽग्निपरिग्रहान् । प्रवहोथावहश्चैव उद्वहः संवहस्तथा ।।२८
विवहो निवहश्चैव परिवाहस्तथैव च । अन्तरिक्षचरा[3] ह्येते पृथङ्मार्गविचारिणः ।।२९
सूर्योऽग्निश्च शुचिर्नाम्ना वैद्युतः पावकः स्मृतः । निर्मन्थः पवमानोऽग्निस्त्रयः प्रोक्ता इमेऽग्नयः ।।३०
अग्नीनां पुत्रपौत्रास्तु चत्वारिंशत्तथैव तु । मरुतामपि सर्वेषां विज्ञेयाः सप्तसप्तकाः ।।३१
ऋतुः संवत्सरोऽह्यग्निर्ऋतवस्तस्य जज्ञिरे । ऋतुपुत्राश्च वै पञ्च इति सर्गः सनातनः ।।३२
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः । इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थस्त्वनुवत्सरः ।।३३
पञ्चमो वत्सरस्तेषामित्येवं पञ्च ते स्मृताः । तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः ।।३४
सोम इद्वत्सरस्तेषां वायुश्चैवानुवत्सरः । रुद्रस्तु वत्सरो ज्ञेयः पञ्चैता[4] युगदेवताः ।।३५
आर्तवाः पितरो ज्ञेया ये जाताः ऋतुसूनवः । पितामहास्तु विज्ञेयाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ।।३६
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ये त्रयः । एते वै पितरस्तेषां ये जीवत्पितृका नराः ।।३७
आदित्यश्चैव सोमश्च लोहिताङ्गो बुधस्तथा । बृहस्पतिश्च शुक्रश्च तथा हेलिसुतश्च यः ।।३८

विभु, प्रभु, शिखी, मनोजव, ओजस्वी, बलि, अद्भुत, दशवाँ त्रिदिव, सुसात्त्विक, कीर्ति, शतधामा तथा दिवस्पति, यही चौदह नाम वाले इन्द्र भूत एवं भविष्यकाल में होंगे इनमें ओजस्वी नामक आधुनिक इन्द्र हैं।२४-२६। उसी प्रकार कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, विश्वामित्र एवं जमदग्नि, ये सात सप्तर्षि कहे जाते हैं।२७। इसके पश्चात् मरुत् तथा अग्नि के नाम बता रहा हूँ सुनो ! प्रवह, आवह, उद्वह, संवह, निवह, एवं परिवाह, ये सात नाम वाले मरुत्, अंतरिक्ष में विचरते तथा पृथक्-पृथक् मार्ग में होकर फलते रहते हैं।२८-२९। सूर्य से उत्पन्न अग्नि का नाम शुचि, विद्युत् से उत्पन्न अग्नि का नाम पावक, और अरणि द्वारा निर्मन्थन से उत्पन्न अग्नि का नाम पवमान है। इस प्रकार तीन अग्नि हैं।३०। इन अग्नियों के पुत्र एवं पौत्रों की संख्या चालीस है और उसी प्रकार मरुतों की भी संख्या सात का सात गुना (४९) उनचास जाननी चाहिए।३१। अग्नि नामक संवत्सर को ऋतु कहते हैं और उन्हीं से पाँच पुत्रों का जन्म भी हुआ है। इस प्रकार यह सनातन (नित्य) सर्ग (सृष्टि) कहा गया है।३२। क्रमशः संवत्सर, परिवत्सर, इद्वत्सर, अनुवत्सर, पाँचवा, वत्सर, इस प्रकार उनके पाँच पुत्रों के नाम हैं। उनमें संवत्सर के अग्नि, परिवत्सर के सूर्य, इद्वत्सर के सोम (चन्द्र) अनुवत्सर के वायु, और वत्सर के रुद्र युग देवता हुए हैं।३३-३५।। उपरोक्त ऋतु पुत्र एवं पितर ये ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा के पुत्र पाँच ही वर्ष के समान सदैव रहते हैं।३६। सौम्य, बर्हिषद, एवं अग्निष्टवात्ता, ये जिसके पिता जीवित हैं, उनके पितर हैं।३७। उसी भाँति सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु ये नवग्रह

---

१. सुशांतेश्च सुकीर्तिश्च । २. यातुधानो । ३. अन्तरिक्षवहाः । ४. पंचाब्दा ये युगात्मकाः ।

उपरागः शिखी चोभौ नवैते तु ग्रहाः स्मृताः । त्रैलोक्यस्य त्विमे नित्यं भावाभावनिवेदकाः ॥३९
आदित्यश्चैव सोमश्च द्वावेतौ मण्डलग्रहौ । राहुश्छायाग्रहस्तेषां शेषास्तारा ग्रहाः स्मृताः ॥४०
नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः । पठ्यते चाग्निरादित्य उदकश्चन्द्रमाः स्मृतः ॥४१
आदित्यः पठ्यते ब्रह्मा विष्णुस्तेषां तु चन्द्रमाः । महेश्वरस्तु विज्ञेयस्तृतीयस्तारकग्रहः ॥४२
कश्यपस्य सुतः सूर्यः सोमो धर्मसुतः स्मृतः । देवासुरगुरू द्वौ तु नामतस्तौ[१] महाग्रहौ ॥४३
प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती । बुधः सोमात्मजः श्रीमाञ्छनी रविसुतः स्मृतः ॥४४
सिंहिकायाः सुतो राहुः केतुस्तु ब्रह्मणः सुतः । सर्वेषां च ग्रहाणां हि अधस्ताच्चरते रविः ॥४५
ततो दूरं स्मृतं तावद्विधोर्नक्षत्रमण्डलम् । नक्षत्रेभ्यः कुजबुधौ श्वेताद्रुस्तदनन्तरम् ॥४६
तस्मान्माहेश्वरश्चोर्ध्वं धिषणस्तदनन्तरम् । कृष्णश्चोर्ध्वं ततस्तस्मादथ चित्रशिखण्डिजः ॥४७
एषामेव क्रमः प्रोक्तश्चासक्तं त्रिदिवं ध्रुवे । आदित्यनिलयो राहुः कदाचित्सोममार्गगः ॥४८
सूर्यमण्डलसंस्थस्तु[१] शिखी सर्पति सर्वदा । नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भार्गवस्य[२] तु ॥४९
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शनिनः स्मृतः । त्रिगुणं[३] मंडलं ज्ञेयं नाक्षत्रं विस्तराद्विधोः ॥५०
नक्षत्रमण्डलात्तत्र पादहीनो बृहस्पतिः । बृहस्पतेः पादहीनः शुक्रोऽङ्गारक एव हि ॥५१

बताये गये हैं जो तीनों लोकों की स्थिति एवं नाश होने की सूचना नित्य दिया करते हैं ।३८-३९। सूर्य एवं चन्द्रमा ये दोनों मण्डल ग्रह हैं राहु छाया ग्रह और शेष तारा ग्रह बताये गये हैं ।४०। नक्षत्रों के अधीश्वर चन्द्रमा तथा ग्रहों के राजा सूर्य कहे जाते हैं, इनमें सूर्य अग्नि रूप एवं चन्द्रमा उदक (जल) रूप हैं ।४१। इसी प्रकार आदित्य ब्रह्मा के रूप, चन्द्रमा विष्णु रूप और तीसरा तारक भौम ग्रह महेश्वर का रूप कहा गया है ।४२। सूर्य कश्यप के पुत्र तथा चन्द्रमा धर्म के पुत्र हैं देवताओं तथा असुरों के गुरु, बृहस्पति एवं शुक्र ये दोनों महा ग्रह कहे जाते हैं ।४३। तथा दोनों प्रजापति के पुत्र हैं । धीमान् बुध चन्द्रमा के पुत्र एवं शनि रवि के पुत्र हैं ।४४। राहु सिंहिका का पुत्र तथा केतु ब्रह्मा का पुत्र है एव समस्त ग्रहों के नीचे स्तर में सूर्यविचरते हैं ।४५ उनसे दूर (ऊपर) चन्द्रमा, उनसे ऊपर नक्षत्र मण्डल, एवं उससे ऊपर बुध, उनके पश्चात् शुक्र, उसके अनन्तर भौम, भौम के अनन्तर बृहस्पति उनके अनन्तर शनि, और शनि के ऊपर लोग अवस्थित हैं ।४६-४७। इस भाँति इन लोगों के स्थित होने के विषय में यही क्रम बताया गया है । इसी क्रम से स्वर्ग में स्थित होकर ये सभी ध्रुव में निबद्ध हैं । यद्यपि सूर्य के घर में राहु सदैव रहता है, किन्तु कभी-कभी वह चन्द्र मार्ग का भी अनुयायी हो जाया करता है ।४८।चन्द्र मण्डल में ही अवस्थित होकर केतु सदैव (मन्द) गमन करता रहता है, तब हजार योजन सूर्य के मण्डल का व्यास कहा गया है ।४९। एवं उससे दूना[१] विस्तार शनि एवं चन्द्रमण्डल के व्यास का है और चन्द्रमण्डल के दूने विस्तार में नक्षत्र मण्डल का व्यास हैं ।५०। इस प्रकार नक्षत्र मण्डल की विस्तृत संख्या का चौथाई भाग निकाल देने से वह बृहस्पति का व्यास हो जाता है, और बृहस्पति के व्यास की विस्तृत संख्या का चौथाई भाग निकाल

---

१. सोममंडल । २. ब्राह्मणस्य तु । ३. द्विगुणम् ।

१. तिगुना भी कहा गया है

विस्तारो मण्डलानां तु पादहीनस्तयोर्बुधः । बुधतुल्यानि ऋक्षाणि सर्वऋक्षाणि यानि तु ॥५२
योजनान्यर्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते । राहुः सूर्यप्रमाणश्च कदाचित्सोमसन्निभः ॥५३
नक्षत्रग्रहमानस्तु[1] केतुस्त्वनियतः स्मृतः । अविज्ञातगतिश्चैव चञ्चलत्वन्नराधिप ॥५४
तथालक्षितरूपस्तु बहुरूपधरो हि सः । भूर्लोकः पृथिवी प्रोक्ता अन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ॥५५
स्वर्लोकास्त्रिदिवं ज्ञेयं शेषादूर्ध्वं यथाक्रमम् । भूपतिस्तु सदा त्वग्निस्तेनासौ भूपतिः स्मृतः ॥५६
वायुर्नभस्पतिस्तेन तथा सूर्यो दिवस्पतिः । गन्धर्वाप्सरसश्चैव गुह्यकाः सिद्धराक्षसाः ॥५७
भूर्लोकवासिनः सर्वे अन्तरिक्षचराञ्छृणु । मरुतः सप्तमस्कंधे रुद्रास्तत्रैव चाश्विनौ ॥५८
आदित्या वसवः सर्वे तथैव च गवां गणाः । चतुर्थे तु महर्लोके वसन्ते कल्पवासिनः ॥५९
प्रजानां पतिभिः सर्वैः सहिताः कुरुनन्दन । जनलोके पञ्चमे च वसन्ते भूमिदाः सदा ॥६०
ऋतुः सनत्कुमाराद्या वैराजश्च तथाश्रयाः । सत्यस्तु सप्तमे लोके ह्यपुनर्मार्गगामिनाम् ॥६१
ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणः । इतिहासविदो यत्र क्रीडन्ते कुरुनन्दन ॥६२
शृण्वन्ति च पुराणानि ये सदा भीमनन्दन । महीतलात्सहस्राणां शतादूर्ध्वं दिवाकरः ॥६३

देने से वह शुक्र एवं मंगल का व्यास बन जाता है ।५१। और इनके व्यास की विस्तृत संख्या का चौथाई भाग निकाल देने से वह बुध का व्यास हो जायगा । बुध के समान ही सभी नक्षत्रों का व्यास है ।५२। जिनका प्रमाण आधेयोजन का कहा गया है इन सब से छोटा और कोई ग्रह व्यास नहीं है । राहु का प्रमाण सूर्यमण्डल के प्रमाण के समान है और कभी वह चन्द्रमण्डल के समान भी हो जाता है ।५३। हे नराधिप ! केतु का प्रमाण नियत नही बताया गया है, और चंचल होने के नाते उसकी जाति भी अविदित ही हैं ।५४। इस भाँति यद्यपि वह हमेशा अलक्षित (अदृश्य) रहता है पर कभी कभी अनेक रूप भी धारण कर लेता है । पृथ्वी को भूलोक, अन्तरिक्ष को भुवर्लोक, और स्वर्लोक को त्रिदिव (स्वर्ग) कहा गया है, एवं शेष लोक ऊर्ध्वभाग मे ही क्रमशः अवस्थित हैं । भूलोक के स्वामी होने के नाते अग्नि को भूपति कहा गया है ।५५-५६। इसी प्रकार वायु नभस्पति और सूर्य दिवस्पति हैं । गन्धर्व, अप्सराएँ, गुह्यक, सिद्ध एवं राक्षस ये सब भू लोक के निवासी हैं और अन्तरिक्ष के निवासियों को बता रहा हूँ । सुनो ! मरुत् (वायु) सातवीं कक्षा (स्वर्ग) में रहते हैं तथा उसी स्थान पर रुद्र एवं अश्विनी कुमार, आदित्य, वसु एवं समस्त देवगण रहते हैं । चौथा महर्लोक है, उसमें कल्पवासी लोग निवास करते हैं ।५७-५९। हे कुरुनन्दन ! पाँचवें जनलोक में समस्त प्रजापतियों के समेत भूमिदान करने वाले व्यक्ति सदैव अवस्थित रहते हैं।६०। ऋतु, सनत्कुमार आदि, वैरज ये सभी सातवें सत्य लोक में रहते हैं जहाँ पहुँच कर कोई भी पुर्नजन्म नहीं प्राप्त करता है।६१। इस प्रकार ब्रह्म लोक का अप्रतिघात लक्षण बताया गया है जो उपरोक्त कथन से प्रमाणित होता है। इतिहास के विशेषज्ञ (महाभारत) लोग वहाँ सदैव क्रीड़ा करते रहते हैं ।६२। और हे भीमनन्दन ! पुराण की कथाओं का नित्य श्रवण करने वाला भी उसी लोक का निवासी होता है। पृथ्वी तल से सौ सहस्र (एकलाख) योजन की दूरी पर सूर्य स्थित है ।६३। भूमि से

---

१. तस्माद्ग्रहणमात्रह तु ।

शतयोजनकोटयस्तु[1] भूमेरूर्ध्वं ध्रुवः स्थितः । ततो विंशतिलक्षस्तु त्रैलोक्योत्सेध उच्यते ।।६४
द्विगुणैस्तु सहस्रैस्तु योजनानां शतेषु च । लोकांतरमथो चैवं ध्रुवादूर्ध्वं विधीयते ।।६५
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । भूता विद्याधराश्चैव अष्टौ ते देवयोनयः ।।६६
यस्मिन्व्योम्नि त्विमे लोकाः सप्त वै सम्प्रतिष्ठिताः । मरुतः पितरो ह्येते तस्मिन्नेवाग्रयो ग्रहाः ।।६७
यास्त्वन्येताः समाख्याता मयाष्टौ देवयोनयः । मूर्ताश्चामूर्तयश्चैव सर्वास्ता व्योम्नि संस्थिताः ।।६८
एवंविधमिदं व्योम सर्वव्योममयं स्मृतम् । सर्वदेवमयं चैव सर्वग्रहमयं तथा ।।६९
तस्माद्यो ह्यर्चयेद्व्योम तेन सर्वेऽर्चिताः सुराः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुभार्थी व्योम चार्चयेत् ।।७०
यस्त्वर्चते सदा व्योम भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । वृषध्वजसदो राजन्स गच्छेन्नात्र संशयः ।।७१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे व्योम माहात्म्ये भुवनकोशवर्णनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२५।

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्योममाहात्म्यवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

आकाशं खं दिशोव्योम अन्तरिक्षं नभोऽम्बरम् । पुष्करं गगनं मेरुर्विपुलं च बिलं तथा ।।१

सात करोड़ योजन की दूरी पर ध्रुव अवस्थित है । इस प्रकार बीस लाख योजन तीनों लोकों की ऊँचाई है ।६४। ध्रुव से सौ सहस्र (एकलाख) योजन की दुगुनी दूरी पर ऊपर लोकांतर (दूसरे लोक) स्थित हैं ।६५। देव, दानव, गन्धर्व यक्ष, राक्षस, पन्नग, भूत, एवं विद्याधर ये आठ प्रकार की देवयोनियाँ हैं ।६६। जिस व्योम में ये सातों लोक, मरुत् एवं पितर लोग अवस्थित हैं उसी व्योम में अग्नि, गृह, आठों देव योनियां भी जिन्हें मैंने पहले बताया है एवं मूर्त, अमूर्त सभी कुछ अच्छे प्रकार से स्थित हैं ।६७-६८ इस प्रकार इस व्योम को सर्वव्योममय, सर्व देवमय, तथा सर्व ग्रहमय जानना चाहिए ।६९। इसलिए जो व्योम की पूजा करता है, यह निश्चय है कि उसने सभी देवताओं की पूजा की । अतः शुभेच्छुक प्राणी को प्रयत्न पूर्वक व्योम की पूजा करनी चाहिए ।७०। हे राजन् ! भक्ति एवं श्रद्धा से सम्पन्न होकर जो व्योम की पूजा सदैव करता है, उसे वृषध्वज के सदन की प्राप्ति अवश्य होती है ।७१

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के व्योम माहात्म्य में भुवन कोश वर्णन नामक एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२५।

अध्याय १२६

व्योम माहात्म्य वर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे महीपते ! आकाश, ख, दिशा, व्योम, अन्तरिक्ष, नभ, अम्बर, पुष्कर, गगन, मेरु,

---

१. सप्तयोजन ।

आपोऽछिद्रं तथा शून्यं तमो वै रोदसी तथा । नामान्येतानि ते व्योम्नः कीर्तितानि महीपते ॥२
लवणक्षीरदध्यम्लघृतमध्विक्षवस्तथा । स्वादूदकश्च सप्तैते समुद्राः परिकीर्तिताः ॥३
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो नील एव च । श्वेतश्च शृङ्गवांश्चैव षडेते वर्षपर्वताः ॥४
मध्यसंस्थस्तथैतेषां महाराजतपर्वतः । माहेन्द्री चाप्यथाग्नेयी याम्या च नैर्ऋती तथा ॥५
वारुणी चाथ वायव्या सौम्यैशानी तथैव च । एताः पुर्यस्तु देवानां तथोपरि समाश्रिताः ॥६
पृथिव्यां तु स्थितो वीर लोकालोकस्तु पर्वतः । ततश्चण्डकपालं तु तस्मात्परतस्तु यः ॥७
ततोऽग्निर्वायुराकाशं ततो भूतादिरुच्यते । ततो महानहङ्कारः प्रकृतिः पुरुषस्ततः ॥८
पुरुषादीश्वरो ज्ञेय ईश्वरेणावृतं जगत् । ईश्वरो भगवन्भानुस्तेनेदं पूरितं जगत् ॥९
सहस्रांशुर्महातेजाश्चतुर्बाहुर्महाबलः । ऊर्ध्वमप्यथ लोकास्तु प्राङ्मया ये प्रकीर्तिताः ॥१०
भूयस्तान्सम्प्रवक्ष्यामि अण्डावरणकारकान् । भूर्लोकस्तुभुवर्लोकस्तृतीयः परिकीर्तितः ॥११
महर्जनस्तपः सत्यः सप्तलोकाः प्रकीर्तिताः । तत[1] स्तवंडकपालं तु तस्माच्च परस्तपः ॥१२
ततोऽग्निर्वायुराकाशं ततो भूतादिरुच्यते । ततो महान्प्रधानश्च प्रकृतिपुरुषस्ततः ॥१३
पुरुषादीश्वरो ज्ञेय ईश्वरेणावृतं जगत् । भूमेरधस्तात्सप्तैव लोकानभिमताञ्छृणु ॥१४
तलं सुतलपाताले तलातलं तथातलम् । वितलं च कुरुश्रेष्ठ सप्तमं च रसातलम् ॥१५

विपुल, विल, आप, छिद्र, शून्य, तम, और रोदसी इतने नाम व्योम के बताये गये हैं ।१-२। लवण, क्षीर, खट्टे दधि, घी, मधु, ईख के रस और मीठे जल ये सात समुद्र है । हिमवान् हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, एवं भृंगवान ये छह वर्ष पर्वत हैं ।३-४। इन्हीं के मध्यभाग में अवस्थित महाराजा सुमेरु नामक पर्वत है उसके ऊपरी भाग में (दिव्यपाल) देवताओं की माहेन्द्री, अग्नेयी, याम्या, नैऋति, वारुणी, वायव्या, सौम्या, तथा ऐशानी नाम की पुरियाँ स्थित हैं ।५-६। हे वीर ! पृथिवी में लोकालोक नाम पर्वत अवस्थित है उसके अनन्तर चण्ड कपाल में अग्नि, अग्नि के अनन्तर वायु, वायु के अनन्तर आकाश और आकाश के अनन्तर भूतादि है ऐसा कहा जाता है । उसके पश्चात् महत्, अहंकार, प्रकृति, पुरुष एवं ईश्वर क्रमशः उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण अवस्थित हैं । इस प्रकार यह समस्त जगत् ईश्वर के आवृत (घिरा हुआ) है । भगवान् भास्कर ही ईश्वर शब्द से स्मरण कियेजाते हैं क्योंकि उन्हीं द्वारा इस जगत् की पूर्ति हुई है ।७-९। और उन महातेजस्वी एवं महाबली सूर्य की चार भुजाएँ हैं । इस भाँति ऊर्ध्व भाग में वे लोक अवस्थित हैं जिन्हें मैं पहले बता चुका हूँ ।१०। मैं पुनः उन लोकों का वर्णन कर रहा हूँ जो ब्रह्माण्ड रूपी आवरण से आवृत (घिरे) हैं भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जन लोक, तप लोक, एवं सत्य लोक ये सात लोक (ऊर्ध्व भाग में) बताये गये हैं । उसके पश्चात् अण्ड कपाल अग्नि, वायु, आकाश, भूतादि, महान, प्रधान, प्रकृति, पुरुष, और ईश्वर का वर्णन किया गया है जिनमें पुरुष से ईश्वर की भाँति सभी की महत्ता उत्तरोत्तर अधिक है । इस भाँति ईश्वर से यह सारा जगत् घिरा हुआ है । इसके पश्चात् भूमि से नीचे अवस्थित अपने लोकों को सुनो ! ११-१४। तल, सुतल, पाताल, तलातल, अतल, वितल और

---

१. अण्डकटाहं तु ।

ततोऽग्निर्वायुराकाशं ततो भूतादिरुच्यते । ततो महान्प्रधानश्च प्रकृतिः पुरुषस्ततः ॥१६
पुरुषादीश्वरो ज्ञेय ईश्वरेणावृतं जगत् । एवं मेरोः प्रमाणं तु सर्वमेतत्प्रकीर्तितम् ॥१७
चतुरस्रश्चतुः शृंगः स मेरुः काञ्चनः शुभः । पृथिव्यां संस्थितो मध्ये सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥१८
चतुर्भिः काञ्चनैः शृंगैर्दिव्यैर्दिवमिवोल्लिखन् । योजनानां सहस्राणि चतुराशीतिरुच्छ्रितः ॥१९
प्रविष्टः षोडशाधस्तादष्टाविंशतिविस्तृतः । विस्तारस्त्रिगुणश्चास्य परिणाहस्ततः स्मृतः ॥२०
तस्य सौमनसं नाम शृंगमेकं तु काञ्चनम् । द्वितीयं पद्मरागाभं ज्योतिष्कं नाम नामतः ॥२१
तृतीयं नामतश्चित्रं सर्वदेवमयं शुभम् । चतुर्थं राजतं शुक्लं चन्द्रौजस्कमिति स्मृतम् ॥२२
यत्तु सौमनसं नाम शृंगं गाङ्गेयमुच्यते । तदेव चोदयो नाम्ना यत्रोदन्दृश्यते रविः ॥२३
उत्तरेण परिक्रम्य जम्बूद्वीपं दिवाकरः । दृश्यो भवति भूतानां शिखरं च समास्थितः ॥२४
काञ्चनस्य च शैलस्य तेजसार्कस्य चाहृते । उभे सन्ध्ये प्रकाशेते आताम्रे पूर्वपश्चिमे ॥२५
शृंगे सौमनसे सूर्य उत्तिष्ठत्युत्तरायणे । ज्योतिषे दक्षिणे चापि विषुवे मध्यतस्तयोः ॥२६
ईशेन्द्रोऽग्निश्च ऐशान्यां तत्राग्निः पूर्वदक्षिणे । नैर्ऋतेऽपि ततो ज्ञेयो वायव्ये मरुतस्तथा ॥२७
मध्ये तु कंजजः साक्षाद्ग्रहाः ज्योतींषि चैव हि । आदित्यस्तेन रूपेण तस्मिन्व्योम्नि प्रतिष्ठितः ॥२८

सातवाँ रसातल लोक है ।१५। वहाँ भी पूर्व की भाँति अग्नि, वायु, आकाश, भूतादि, महान्, प्रधान, प्रकृति, पुरुष तथा ईश्वर की उत्तरोत्तर महत्ता अधिक बतायी गयी है और वह भी जगत् ईश्वर से आवृत है । इस प्रकार मेरु का समस्त प्रमाण बता दिया गया ।१६-१७। चौकोर एवं चार शिखरों से युक्त होने के नाते मेरु पर्वत शुभ एवं काञ्चन मय होकर अवस्थित दिखायी देता है पृथिवी के मध्य भाग में उसकी स्थिति बतायी गई है, जो सर्वदा सिद्ध एवं गन्धर्वों द्वारा सेवित होता रहता है ।१८। वह पर्वत जिसके सुवर्ण मय चारों शिखर आकाश मे उभरे हुए रेखा के समान दिखाई पड़ते हैं चौरासी सहस्र योजन ऊँचा है ।१९। और सोलह सहस्र योजन पृथ्वी के भीतर प्रविष्ट हैं, एवं अट्ठाइस सहस्र योजन विस्तृत (चौड़ा) है इस प्रकार उसकी लम्बाई, चौड़ाई के तिगुने योजन की बतायी गयी है ।२०। उसका पहला शिखर, सौमनस नामक सुवर्ण निर्मित है दूसरा ज्योतिष्क नामक शिखर पद्मराग मणि से विनिर्मित है ।२१। तीसरा चित्रनामक शिखर शुभ एवं सर्वदेव मय है और चौथा चन्द्रौजष्क नामक शिखर चाँदी का बताया गया है ।२२। सौमनस नामक शिखर जो सुवर्ण निर्मित बताया गया है, उसी पर उदय होते हुए सूर्य दिखाई पड़ते हैं ।२३। इसीलिए उसका 'उदयाचल तथा गांगेय' नाम सर्व विदित है । उसके उत्तर की ओर से जम्बूद्वीप की परिक्रमा करके सूर्य जब उस शिखर पर स्थित होते हैं उसी समय प्राणी वर्ग उन्हें देखता है ।२४। तथा (मेरु के) काञ्चनमय शिर पर सूर्य तेज के भासित होने पर पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं की दोनों संध्याएँ सम्पूर्ण तांबे की भाँति (लालरङ्ग की) प्रकाशित होने लगती है ।२५। उत्तरायण समय में सूर्य सौमनस् नामक शिखर पर उदय होते हैं, दक्षिणायन काल में ज्योतिष्क नामक शिखर पर तथा विषुव समय में उन दोनों के मध्य भाग से उदय होते हैं ।२६। उस पर्वत के ईशान कोण में ईश इन्द्र, आग्नेय में अग्नि, नैऋत्य कोण में पितर, वायव्य में मरुत् और मध्य भाग में स्वयं ब्रह्मा, ग्रह एवं नक्षत्र तारागण अवस्थित हैं । उसी को व्योम कहा गया है क्योंकि उसमें सूर्य अपने रूप से अवस्थित

इदं देवमयं व्योम तथा लोकमयं स्मृतम् । पूर्वकोणस्थिते शृंगे स्थितः शुक्रो महीपते ।।२९
हेलिजश्चापरे ज्ञेयो धननाथस्तथापरे । सोमश्चापि चतुर्थे तु स्थितः शृंगे जनाधिप ।।३०
मध्ये केशास्थितो राजन्हुङ्कारश्च पिनाकिनः । शृंगे पूर्वोत्तरे राजन्स्थितो देवो विधुक्षये[1] ।।३१
ततः स्थितो महादेवो गोपतिर्लोकपूजितः । पूर्वाग्नेयीस्थिते शृंगे स्थितो वै शाण्डिलः सुतः ।।३२
ततः स्थितो महातेजाः कीनाशो हेलिनन्दनः । स्थितो वै नैर्ऋते शृंगे विरूपाक्षो महाबलः ।।३३
तस्मादनन्तरो देवः स्थितो वै यादसां पतिः । ततः स्थितो महातेजा वीर मित्रो महाबलः ।।३४
वायव्यं शृंगमाश्रित्य सर्वदेवनमस्कृतम् । ततः स्थितो दशबलो नरमारुह्य भारत ।।३५
ब्रह्मा मध्ये स्थितो देवो ह्यनन्तश्चाध एव हि । उपेन्द्रशङ्करौ देवौ ब्रह्मणोऽन्ते समास्थितौ ।।३६
एष मेरुस्तथा व्योम एष धर्मश्च पठ्यते । सर्वदेवमयश्चायं मेरुर्व्योम इति स्मृतः ।।३७
तथा वेदमयश्चापि पठ्यते नात्र संशयः । शृंगाणि वेदाश्चत्वारः पूर्वशृंगादयो विदुः ।।३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे व्योममाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२६।

है ।२७-२८। यह व्योम इस प्रकार देवमय एवं लोकमय बताया गया है । हे महीपते ! पूरब कोण वाले शिखर पर स्थित शुक्र सुशोभित हैं ।२९। उसी प्रकार दूसरे पर हेलिज तीसरे पर धननाथ (कुबेर) और चौथे शिखर पर सोम (चन्द्र) स्थित हैं ।३०। हे राजन् ! उसके मध्य भाग में ब्रह्मा, विष्णु एवं पिनाकी की हुंकार (शिव) स्थित हैं । उस पर्वत के पूर्वोत्तर वाले शिखर पर देव विधुक्षय, महादेव, एवं लोक पूजनीय गोपति स्थित हैं । और पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) वाले शिखर पर शांडिल सुत की अवस्थिति है ।३१-३२। उसके अनन्तर महातेजा, सूर्य पुत्र कीनाश (यम) रहते हैं । नैऋत्य वाले शिखर पर महाबली विरूपाक्ष एवं उनके अनन्तर वरुण देव और उनके पश्चात् महातेजस्वी एवं महाबली मित्र अवस्थित हैं ।३३-३४। हे भारत ! समस्त देवों के वन्दनीय वायव्य वाले शिखर पर मनुष्य को वाहन बनाकर दशबल अवस्थित हैं ।३५। मध्यभाग में ब्रह्मा, अधो (नीचे) भाग में अनन्त तथा विष्णु, शंकर ब्रह्मा के अनन्तर अवस्थित हैं ।३६

इस भाँति यह मेरु, व्योम, एवं धर्म के नाम से कहा जाता है तथा सर्व देवमय होने के नाते भी इसे व्योम के नाम से स्मरण किया जाता है ।३७। और यह निश्चित वेदमय भी है क्योंकि इसके चारों शिखर चारों वेद रूप बताये गये हैं ।३८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में व्योम माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२६।

---

१. विधुक्षयः ।

१. तुला और मेषसंक्रान्ति के समय

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यप्रसादवर्णनम्

शतानीक उवाच

कथमाराधितः सूर्यः साम्बेनामिततेजसा । विमुक्तस्तु कथं रोगैर्ब्रूहि मां द्विजसत्तम ।।१

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र शृणु साम्बकथां पुरा । विस्ताराद्वच्मि ते सर्वां कथां पापविमोचिनीम् ।।२
पुरा संश्रुत्य माहात्म्यं भास्करस्य स नारदात् । विनयादुपसङ्गम्य वचः पितरमब्रवीत् ।।३
कश्मलेनाभिभूतोऽस्मि मलेन व्याधिनाच्युत । वैद्यैरोषधिभिश्चापि न शान्तिर्मम विद्यते ।।४
वनं गच्छामि भगवन्ननुज्ञां दातुमर्हसि । शिवेन पुण्डरीकाक्ष ध्याय मां पुरुषोत्तम ।।५
अनुज्ञातः स कृष्णेन सिन्धोरुत्तरकूलतः । गत्वा सन्तारयामास चन्द्रभागां महानदीम् ।।६
ततो मित्रवनं गत्वा तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । उपवासपरः साम्बं शुष्को धमनिसन्ततः ।।७
आराधनार्थं सूर्यस्य गुह्यं स्तोत्रं[1] जजाप ह । वेदैश्चतुर्भिः समितं पुराणाश्रयबृंहितम् ।।८
यदेतन्मण्डलं शुक्लं दिव्यं ह्यजरमव्ययम् । युक्तं मनोजवैरश्वैर्हारीतैर्ब्रह्मवादिभिः[2] ।।९

अध्याय १२७

सूर्यप्रसाद का वर्णन

शतानीक बोले—हे द्विजसत्तम ! उस अमित तेजवाले साम्ब ने सूर्य की कैसे आराधना की और वह रोग से मुक्त कैसे हुआ, मुझे बताने की कृपा कीजिए ।१

सुमन्तु बोले—हे राजेन्द्र ! आप ने यह अति उत्तम प्रश्न किया है । अतः इस साम्ब की कथा को बता रहा हूँ सुनो ! मैं इस पापमोचनी को विस्तार पूर्वक तुम्हें बताऊँगा ।२। पहले उसने नारद के मुख से भास्कर के माहात्म्य को श्रवण करके सविनय अपने पिता के समीप जाकर उनसे कहा—हे अच्युत ! इस मल वाले (कुष्ठ) रोग से पीड़ित होने के कारण मैं विवश हो रहा हूँ क्योंकि वैद्यों द्वारा दी गई औषधियों से भी मुझे शांति प्राप्त नहीं है ।३-४। हे भगवन् ! अतः मुझे आज्ञा दें मैं अब वन जाने की तैयारी कर रहा हूँ । हे पुण्डरीकाक्ष, हे पुरुषोत्तम ! मेरे कल्याण के लिए आप इस मेरी प्रार्थना पर विशेष ध्यान दें ।५। पश्चात् कृष्ण के द्वारा आज्ञा देने पर उसके सिन्धनदी के उत्तरी तट पर जाकर उस चंद्रभागा नामक महा नदी को पार किया ।६। पश्चात् वहाँ से तीनों लोकों में ख्याति प्राप्त उस मित्रवन नामक तीर्थ स्थान में जाकर उस साम्ब ने जिसकी धमनी आदि नाड़ियाँ उपवास रहने के कारण सूख गई थीं सूर्य की आराधना गुह्य स्तोत्र द्वारा करना आरम्भ किया, जो चारों वेदों से सम्बद्ध एवं पुराणों द्वारा संवर्द्धित है ।७-८। शुक्ल, दिव्य अजर, एवं अव्यय रूप यह मण्डल जो दिखाई दे रहा है, जिसमें मन की भाँति वेग वाले अश्व जुते हुए हैं

---

१. मंत्रम् । २. ब्राह्मणादिभिः ।

आदिरेष[1] हि भूतानामादित्य इति संज्ञितः । त्रैलोक्यचक्षुरेवात्र परमात्मा प्रजापतिः ।।१०
एष वै मण्डले ह्यस्मिन्पुरुषो दीप्यते महान् । एष विष्णुरचिन्त्यात्मा ब्रह्मा चैष पितामहः ।।११
रुद्रो महेन्द्रो वरुण आकाशं पृथिवी जलम् । वायुः शशाङ्कः पर्जन्यो धनाध्यक्षो विभावसुः ।।१२
यष एष मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो दीप्यते महान् । एकः साक्षान्महादेवो वृत्रमण्डनिभः सदा ।।१३
कालो ह्येष महाबाहुर्निबोधोत्पत्तिलक्षणः । य एष मण्डले ह्यस्मिंस्तेजोभिः पूरयन्महीम् ।।१४
भ्राम्यते ह्यव्यवच्छिन्नो वातैर्योऽमृतलक्षणः । नातः परतरं किञ्चित्तेजसा विद्यते क्वचित् ।।१५
पुष्णाति सर्वभूतानि एष एव सुधामृतैः । अन्तस्थान्म्लेच्छजातीयांस्तिर्यग्योनिगतानपि ।।१६
कारुण्यात्सर्वभूतानि पासि त्वं च विभावसो । श्वित्रकुष्ठ्यंधबधिरान्पंगूंश्चापि तथा विभो ।।१७
प्रपन्नवत्सलो देव कुरुते नीरुजो भवान् । चक्रमण्डलमग्नांश्च निर्धनाल्पायुषस्तथा ।।१८
प्रत्यक्षदर्शी त्वं देव समुद्धरसि लीलया । का मे शक्तिः स्तवैः स्तोतुमार्तोऽहं रोगपीडितः ।।१९
स्तूयसे त्वं सदा देवैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । महेन्द्रसिद्धगन्धर्वैरप्सरोभिः सगुह्यकैः ।।२०
स्तुतिभिः किं पवित्रैर्वा तव देव समीरितैः । यस्य ते ऋग्यजुः साम्नां त्रितयं मण्डलस्थितम् ।।२१

और हारीत (पक्षी) एवं ब्रह्मवादी ब्राह्मणों से सुसेवित हो रहा है, वही प्राणियों में सर्वप्रथम आदि है अतः आदित्य नाम से स्मरण किया जाता है। और यही तीनों लोकों का नेत्र परमात्मा तथा प्रजापति है।९-१०। इस प्रकार इस मंडल में देदीप्यपान यह महान् पुरुष जो दिखाई देता है, वही अचिंतनीय विष्णु, पितामह ब्रह्मा, रुद्र, महेन्द्र, वरुण, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, चन्द्रमा, पर्जन्य (मेघ), कुबेर, एवं विभावसु है।११-१२। इस मण्डल में जो एक प्रदीप्त तथा महान् पुरुष दिखाई दे रहा है, वह साक्षात् महादेव ही है और वह सदैव अण्डे की भाँति ही घिरा रहता है।१३। इस प्रकार इसी महाबाहु को जगत् के उत्पत्ति लक्षण वाला काल जानना चाहिए एवं इस मण्डल में अवस्थित होकर यह जो समस्त पृथिवी को अपने तेज से आच्छादित किये हैं, तथा जो अमृतमय है और वायु द्वारा बे रोक टोक भ्रमण कर रहा है, उसके तेज से पृथक् कहीं कुछ भी नहीं, यही अपनी सुधामय किरणों द्वारा समस्त प्राणियों का पोषण करता है तथा (ब्रह्माण्ड के मध्य) में अवस्थित अन्तस्थ म्लेच्छों एवं तिर्यक् (पक्षी) योनियों की भी।१४-१६। हे विभावशो ! जिस भाँति दयालुता के कारण आप (ऊँच नीच) सभी प्राणियों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार श्वेत कुष्टी, अंधे, बहिरे, तथा लंगड़े की भी (आप) रक्षा करते हैं।१७। हे देव ! आप शरणागतवत्सल हैं, इसीलिए इन्हें (उपरोक्त को) सभी प्रकार के जीवों को आप नीरोग करते हैं। हे देव ! चक्रमण्डल में निमग्न, निर्धन एवं अल्पायु वालों का उद्धार प्रत्यक्षदर्शी होने के नाते आप सहज ही में कर देते हैं। इसलिए स्तोत्र द्वारा स्तुति करने की मुझमें शक्ति कहाँ है क्योंकि मैं तो दुःखी एवं रोग पीड़ित हूँ।१८-१९। जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिवादि देव तो आपकी सदैव स्तुति करते हैं उसी प्रकार महेंद्र, गंधर्व, अप्सराएँ एवं गुह्यकों द्वारा आप की सदैव स्तुति होती रहती है। हे देव ! पवित्रता पूर्ण स्तुतियों द्वारा भी क्या आपकी स्तुति की जा सकती है ? जब कि ऋक्, यजु, एवं साम, ये तीनों आप के

---

१. अनादिरेष भूतानामाद्योऽर्क इति संज्ञितः ।

ध्यानिनां त्वं परं ध्यानं मोक्षद्वारं च मोक्षिणाम् । अनन्ततेजसाक्षोभ्यो ह्यचिन्त्याव्यक्तनिष्कलः ।।२२
यदयं व्याहृतः किञ्चित्स्तोत्रेऽस्मिञ्जगतः पतिः । आर्ति भक्तिं च विज्ञाय तत्सर्वं ज्ञातुमर्हसि ।।२३
तमुवाच ततः सूर्यः प्रीत्या जाम्बवतीसुतम् । प्रीतोऽस्मि तपसा वत्से ब्रूहि तन्मां यदिच्छसि ।।२४

साम्ब उवाच

यदि प्रसन्नो भगवानेष एव वरो मम । भक्तिर्भवतु मेऽत्यर्थं त्वयि देव सनातन ।।२५

श्रीसूर्य उवाच

भूयस्तुष्टोऽस्मि भद्रं ते वरं वरय सुव्रत । स द्वितीयं वरं वव्रे तदैव वरदं विभुम् ।।२६
मलः शरीरसंस्थो मे त्वत्प्रसादात्प्रणश्यतु । येन मे शुद्धसलिलं वपुर्भवतु गोपते ।।२७

सुमन्तुरुवाच

स तथास्त्विति तेनोक्तो भास्करेण महात्मना । तां मुमोच रुजं साम्बो देहात्त्वचमिवोरगः ।।२८
ततो रूपेण दिव्येन रूपवानभवत्पुनः । प्रणम्य शिरसा देवं पुरतोऽवस्थितोऽभवत् ।।२९

श्रीसूर्य उवाच

भूयश्च शृणु मे साम्ब तुष्टोऽहं यद्ब्रवीमि ते । अद्य प्रभृति त्वन्नाम्ना मम स्थानानि सुव्रत ।।
क्षितौ ये स्थापयिष्यन्ति तेषां लोकाः सनातनाः ।।३०

मंडल में ही अवस्थित हैं ।२०-२१। हे देव ! तुम ध्यान करने वालों के लिए उत्तम ध्यान, मोक्षार्थियों के लिए मोक्ष द्वार, अनन्ततेज होने के नाते अक्षोम्य, अचिंत्य, अव्यक्त, एवं निष्फल हो ।२२। आप जगत् के पति हैं इस प्रकार इस स्तोत्र में जो कुछ थोड़ा बहुत कहा गया है, मेरी इस दीनावस्था एवं भक्ति को देखते हुए आप उन सभी बातों को समझ सकते हैं ।२३। तदनन्तर सूर्य ने प्रसन्नतापूर्वक जाम्बवती सुत (साम्ब) से कहा हे वत्स ! मैं तुम्हारी आराधना से प्रसन्न हूँ, अपनी अभिलाषा मुझसे कहो ।२४

साम्ब ने कहा—हे देव, सनातन ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यही वरदान चाहिए कि मुझे प्रायः अधिकाधिक आप की भक्ति प्राप्त हो ।२५

श्रीसूर्य बोले—हे सुव्रत ! तुम्हारा कल्याण हो ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ अतः और भी कोई वर माँगो ! अनन्तर उस विभु एवं वरद सूर्य से साम्ब ने उसी समय दूसरे वरदान की इच्छा प्रकट की ।२६। हे गोपते ! मेरे शरीर में स्थित यह मल (रोग) आप के प्रसाद से नष्ट हो जाय ! जिससे मेरी शरीर सर्वांङ्ग शुद्धि पूर्वक निर्मल हो जाय ।२७

सुमन्तु ने कहा—भगवान् भास्कर ने उसके लिए 'तथास्तु' ज्यों ही कहा उसी समय साम्बने देह में अवस्थित केचुल के परित्याग करने वाले साँप की भाँति अपने रोग का त्याग किया ।।२८। पश्चात् दिव्य रूप की प्राप्ति कर वह सूर्य देव को प्रणाम कर उनके सामने स्थित हुआ ।२९

श्रीसूर्य बोले—हे साम्ब ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसदिन तुमसे जो कुछ कहूँ उसे सुनो ! हे सुव्रत ! आज से जो कोई मनुष्य तुम्हारे नाम से मेरे स्थान को पृथ्वी में बनायेंगे, एवं स्थापित

स्थापयस्वैव मामस्मिंश्चन्द्रभागातटे शुभे । तव नाम्ना च साम्बेदं परां ख्यातिं गमिष्यति ।।३१
कीर्तिस्तवाक्षया लोके ख्यातिं यास्यति सुव्रत । भूयश्च ते प्रदास्यामि प्रत्यहं स्वप्नदर्शनम् ।।३२

सुमन्तुरुवाच

एवं दत्त्वा वरं तस्मै वृष्णिसिंहाय चापरम् । प्रत्यक्षदर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधाद्धरिः ।।३३
य इदं पठते स्तोत्रं त्रिकालं भक्तिमान्नरः । त्रिसप्तशतमावर्त्य होमं वा सप्तरात्रकम् ।।३४
राज्यकामो लभेद्राज्यं धनकामो लभेद्धनम् । रोगार्तो मुच्यते रोगाद्यथा साम्बस्तथैव सः ।।३५
सूर्यलोकं व्रजेच्चापि भक्त्या पूज्य दिवाकरम् । रमते च तथा तस्मिन्देवैश्च परिवारितः ।।३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने सूर्यप्रसादवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२७।

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

साम्बस्तववर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अस्तावीच्च ततः साम्बः कृशो धमनिसन्ततः । राजन्नामसहस्रेण सहस्रांशुं दिवाकरम् ।।१
खिद्यमानं ततो दृष्ट्वा सूर्यः कृष्णात्मजं तदा । स्वप्नेऽस्मै दर्शनं दत्त्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ।।२

करेंगे, उनके लिए लोक अचल रहेंगें ।३०। अतः हे साम्ब चन्द्रभागा नदी के उस शुभ तट पर मुझे स्थापित करो । तुम्हारे नाम से उसे विशेष ख्याति प्राप्त होगी ।३१। हे सुव्रत ! लोक में तुम्हारी अक्षय कीर्ति विशेष ख्याति प्राप्त करूँगी और फिर भी प्रतिदिन मैं तुम्हें स्वप्न में दर्शन दिया करूँगा ।३२

सुमन्तु ने कहा—इस प्रकार उस यदुकुल सिंह के लिए वरदान तथा प्रत्यक्ष दर्शन देकर सूर्य उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ।३३। इसलिए भक्तिपूर्वक जो पुरुष तीनों काल में इस स्तोत्र का पाठ अथवा एक सौ इक्कीस बार इसके पाठ पूर्वक हवन सात रात तक करता रहता है, उसे राज्य की इच्छा हो तो राज्य, धन की इच्छा हो तो धन और यदि रोगी हो, तो साम्ब की भाँति ही रोग की मुक्ति प्राप्त होती है ।३४-३५। क्योंकि भक्तिपूर्वक सूर्य की पूजा करने से सूर्य लोक भी प्राप्त होता है जिसमें देवताओं के साथ परिवार की भाँति वह क्रीडा करता रहता है ।३६

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में सूर्य प्रसाद वर्णन नामक एक सौ सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ।१२७।

अध्याय १२८

साम्बस्तववर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! उस साम्ब ने जो इतना दुर्बल हो गया था कि उसकी देह में केवल नाड़ियाँ (नसें) ही शेष रह गई थीं, उनके सहस्र नाम द्वारा सहस्रांशु सूर्य की आराधना करना आरम्भ किया था ।१। तदुपरांत सूर्य ने उस कृष्ण-पुत्र को खिन्नचित्त देखकर स्वप्न में उसे दर्शन देकर यह कहा ।२

श्रीसूर्य उवाच

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु जाम्बवतीसुत । अलं नामसहस्रेण पठ चेमं शुभं स्तवम् ।।३
यानि गुह्यानि नामानि पवित्राणि शुभानि च । तानि ते कीर्तयिष्यामि प्रयत्नादवधारय ।।४
वैकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः । लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ।।५
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा । तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः ।।६
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः । एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टस्सदा मम ।।७
शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्करः । स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।।८
य एतेन महाबाहो द्वे सन्ध्येऽस्तमनोदये । स्तौति मां प्रणतो भूत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।९
मानसं वाचिकं वापि कायिकं यच्च दुष्कृतम् । एकजाप्येन तत्सर्वं प्रणश्यति ममाग्रतः ।।१०
एष जप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च । बलिमन्त्रोऽर्घ्यमन्त्रोऽथ धूपमन्त्रस्तथैव च ।।११
अन्नप्रदाने स्नाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे । पूजितोऽयं महामन्त्रः सर्वपापहरः शुभः ।।१२
एवमुक्त्वा स भगवान्भास्करो जगतां पतिः । आमन्त्र्य कृष्णतनयं तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।।१३
साम्बोऽपि स्तवराजेन स्तुत्वा सप्ताश्ववाहनम् । प्रीतात्मा नीरुजः श्रीमांस्तस्माद्रोगाद्विमुक्तवान् ।।१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बस्तववर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२८।

श्रीसूर्य बोले—साम्ब, साम्ब ! महाबाहो, हे जाम्बवती सुत ! मेरी बात सुनो ! तुम सहस्र नाम का पाठ बन्द करके इस शुभ स्तोत्र का पाठ करो ।३। एवं मेरे गुप्त, पवित्र, एवं शुभ, जितने नाम हैं मैं उन्हें बता रहा हूँ, प्रयत्न पूर्वक उसे भी धारण करो ।४। वैकर्तन, विवस्वान्, मार्तंड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, ग्रहेश्वर, लोक-साक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा, एवं सर्वदेव नमस्कृत इन इक्कीस नामों वाली स्तुति मुझे सदैव प्रिय है ।५-७। यह शरीर के आरोग्य धन की वृद्धि एवं यश फैलाने वाला है क्योंक 'स्तवराज' के नाम से इसकी तीनों लोकों में ख्याति है ।८। हे महाबाहो ! (सूर्य के उदय एवं अस्त होने के पूर्व) दोनों संध्याओं में इस स्रोत्र द्वारा जो विनम्र होकर मेरी स्तुति करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।९। मानसिक, कायिक, एवं वाचिक जो कुछ दुष्कृत हों वे सब मेरे सामने इसके एक बार पाठ करने से नष्ट हो जाते हैं ।१०। इसलिए इसी का जप एवं हवन करना चाहिए । यह संध्योपासन की भाँति ही नित्य कर्म है ओर बलि देने का मंत्र, अर्घ्य' मंत्र, एवं धूप का मंत्र भी यही होता है ।११। अन्नदान, स्नान, एवं भक्ति पूर्वक प्रदक्षिण करते समय भी इस महामंत्र की पूजा करनी चाहिए । क्योंकि यह शुभ तथा समस्त पाप नाशक बताया गया है ।१२। इस प्रकार जगत् के पति भगवान् भास्कर कृष्ण के पुत्र (साम्ब) से विदा हो कर उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और साम्ब भी इस स्तवराज द्वारा सात घोड़ों के वाहन वाले (सूर्य) की आराधना करके प्रसन्नचित्त, आरोग्य, एवं और भी सम्पन्न होकर रोग मुक्त हो गया ।१३-१४

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बस्तव वर्णन नामक एक सौ अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ।१२८।

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

साम्बकृतादित्यमूर्तिस्थापनवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अथ लब्धवरः साम्बो वरं प्राप्य पुरातनम् । मन्यमानस्तदाश्चर्यं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।।१
पूर्वाभ्यासेन तेनैव सार्धमन्यैस्तपस्विभिः । स्नापनार्थं नातिदूरं चन्द्रभागां नदीं ययौ ।।२
कृत्वात्मनमण्डलाकारं श्रद्दधानो दिनेदिने । सस्नौ सञ्चिन्तयामास किं रूपं स्थापयाम्यहम् ।।३
स स्नातः सहसैवाथ प्रणम्य[1] तु प्रभावतीम् । उह्यमानां जलौघेन प्रतिमां सम्मुखीं रवेः ।।४
तां दृष्ट्वा तस्य वीरस्य समुत्पन्नमिदं यथा । देवेन यत्तदाज्ञप्तं तदिदं नात्र संशयः ।।५
स तामुत्तार्य सलिलादानीय च महीपते । तस्मिन्मित्रवनोद्देशे स्थापयामास तां तदा ।।६
निधाय प्रतिमाँल्लोके साम्बस्तस्य महात्मनः । मित्रं मित्रवने रम्ये स्थापयित्वा विधानतः ।।७
ततस्तामेव पप्रच्छ प्रणम्य प्रतिमां रवेः । केनेयं निर्मिता नाथ भवतो ह्याकृतिः शुभा ।।८
प्रतिमा तमुवाचाथ शृणु साम्ब ब्रुवे स्वयम् । निर्मिता येन चाप्येषा मदीया पुरुषाकृतिः ।।९
प्रभातितेजसाविष्टं रूपमासीत्पुरातनम् । असह्यं सर्वभूतानां ततोऽस्म्यभ्यर्चितः सुरैः ।।

अध्याय १२९

साम्बकृतादित्यमूर्तिस्थापन का वर्णन

सुमन्तु बोले—इसके पश्चात् अपने पुरातन वर की प्राप्ति करके (अपने सौन्दर्य पर) हर्षातिरेक से युक्त एवं विस्मित होता हुआ वह साम्ब अन्य तपस्वियों के साथ उसी नित्य के मार्ग से थोड़ी दूर पर रहने वाली चन्द्र भागा नदी में स्नान करने के लिए गया।१-२। वहाँ श्रद्धालु हो कर प्रतिदिन अपने को मण्डलाकार बनाकर स्नान करने लगा और चिंता भी करने लगा कि—यहाँ किस रूप को स्थापित करूँ।३। तदुपरांत (एक दिन) उसने ज्यों ही स्नान किया सहसा निकली हुई प्रभापूर्ण एक मूर्ति को देखा जो सूर्य की ओर मुख किये नदीं की लहरों से टकराती चली आ रही थी, और प्रणाम किया।४। उसे देखते ही उस वीर की ऐसी धारणा हुई कि सूर्य देव ने जो आज्ञा प्रदान की थी, यह वही है। इसमें कोई संशय नहीं है।५। हे महीपते ! पश्चात् उसे जल से निकाल कर उसने उसी समय उस मित्र वन में उसकी स्थापना की।६। साम्ब ने उस महात्मा (सूर्य) की प्रतिमा को वहाँ रखकर उस रमणीक मित्रवन में विधान पूर्वक उसकी स्थापना करायी और उस मूर्तिका नाम मित्र रखा।७। तदनन्तर उसने उस प्रतिमा से प्रणाम पूर्वक पूछा कि— हे नाथ ! इस आपकी शुभ आकृति का निर्माण करने वाला कौन है ? ।८

प्रतिभा ने स्वयं उससे कहा—हे साम्ब ! सुनो ! मैं उसे कह रही हूँ जिसने इस मेरे पुरुष आकृति की रचना की है।९। मेरा प्राचीन रूप अत्यन्त तेज से आच्छन्न था प्राणियों के लिए मेरे उस तेज के असह्य

---

१. प्रापश्यत ।

सह्यं भवतु ते रूपं सर्वप्राणभृतामिति ॥१०
ततो मया समादिष्टो विश्वकर्मा महातपाः । तेजसां शातनं कुर्वन्रूपं निर्वर्तयस्व मे ॥११
ततस्तु मत्समादेशात्तेनैव निपुणं तदा । शाकद्वीपे भ्रमिं कृत्वा रूपं निर्वर्तितं मम ॥१२
प्रीत्या तेषां प्रपञ्चोऽयं स मया कारितः पुनः । तेनेयं कल्पवृक्षात्तु निर्मिता विश्वकर्मणा ॥१३
कृत्वा हिमवतः पृष्ठे पुरा सिद्धनिषेविते । त्वदर्थं चन्द्रभागायां ततस्तेनावतारिता ॥१४
भवतस्तारणार्थं हि ततः स्थानमिदं शुभम् । रुचिरं सर्वदा साम्ब सान्निध्यं मेऽत्र यास्यति ॥१५
सान्निध्यं मम पूर्वाह्णे सुतीरे द्रक्ष्यते जनैः । कालप्रिये च मध्याह्नेऽपराह्णे चात्र नित्यशः ॥१६
पूर्वाह्णे पूजयेद्ब्रह्मा मध्याह्ने चक्रधृत्स्वयम् । शङ्करश्चापराह्णे तु मां पूजयति सर्वदा ॥१७
इत्युक्तोऽसौ भगवता भास्करेण स यादवः । हर्षमाप महाबाहो भास्करोऽन्तर्दधे ततः ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने
साम्बकृतादित्यमूर्तिस्थापनं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९।

होने के कारण देवताओं ने मेरी आराधना की कि हे देव ! आप का तेज सभी प्राणियों के सहन करने के योग्य जिस भाँति हो सके वैसा ही करने की कृपा करें ।१०। पश्चात् मैंने महातपस्वी विश्वकर्मा को आज्ञा दिया कि मेरे तेज को काट छाँटकर मेरा (सौन्दर्यपूर्ण) रूप बनाओ ।११। इसके उपरांत मेरे आदेश देने पर उस निपुण विश्वकर्मा ने शाकद्वीप में खराद पर चढ़ा कर मेरे रूप को सौन्दर्य पूर्ण बनाया ।१२। पुनः उन लोगों के प्रसन्नार्थ मैंने इस मूर्ति को भी बनवाया था । विश्वकर्मा ने कल्पवृक्ष के काष्ठ से ही इस मेरी प्रतिमा का निर्माण किया है ।१३। पहले समय में उसने हिमवान् के सिद्ध निषेवित् उस पीठ स्थान से तुम्हारे लिए ही इसी चन्द्रभागा नदी में मुझे प्रवाहित किया था ।१४। तुम्हारे उद्धार के लिए ही यह स्थान मुझे शुभ एवं सुन्दर लग रहा है अतः हे साम्ब ! मैं यहाँ रहूँगा । पूर्वार्द्धकाल में सुतीर क्षेत्र में मनुष्यों को दर्शन दूँगा, मध्याह्न में कालप्रिया स्थान में रहकर तथा अपराह्न (दूसरे समय) में यहाँ रहूँगा ।१५-१६। क्योंकि पूर्वाह्नकाल में ब्रह्मा, मध्याह्न में चक्रधारी (विष्णु), और अपराह्न दूसरे समय में शंकर मेरी सदैव पूजा करते हैं । हे महाबाहो ! इस प्रकार उस यादव (साम्ब) से भगवान् भास्कर ने सभी बातों को विस्तारपूर्वक कहा था जिससे साम्ब अत्यन्त हर्षित हुआ था । पश्चात् भास्कर वहीं अन्तर्हित हो गये थे ।१७-१८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में साम्बकृतादित्य
मूर्ति स्थापन नामक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२९।

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

प्रसादलक्षणवर्णनम्

शतानीक उवाच

कथं साम्बेन विप्रेन्द्र प्रतिष्ठा कारिता रवेः । कस्य वा वचनात्तेन प्रासादः कारितो रवेः ।।१

सुमन्तुरुवाच

अत्र ते वच्मि राजेन्द्र यथा साम्बेन धीमता । प्रतिष्ठा कारिता भानोः प्रसादश्च महीपते ।।२
सुलब्ध्वा प्रतिमां भानोश्चिन्तयामास नारदम् । स चापि चिन्तितश्चागाद्यत्र जाम्बवतीसुतः ।।३
तमागतमभिप्रेक्ष्य नारदं मुनिसत्तमम् । सम्पूज्य विधिवत्सांबो नारदं वाक्यमब्रवीत् ।।४
प्रासादं कारयेद्यस्तु भास्करस्य नरो द्विज । किं फलं तस्य देवर्षे प्रतिष्ठां यश्च कारयेत् ।।५

नारद उवाच

प्रासादं शोभने देशे यस्तु कारयते रवेः । स याति नरशार्दूल सूर्यलोकं न संशयः ।।६

साम्ब उवाच

कथं कुर्यादायतनं कस्मिन्देशे द्विजोत्तम । कीदृक्छस्तं चायतनं देवदेवस्य[1] वै द्विज ।।७

अध्याय १३०

प्रसादलक्षण का वर्णन

शतानीक बोले—हे विप्रेन्द्र ! साम्ब ने सूर्य की प्रतिष्ठा कैसे करायी थी और किस के कहने से सूर्य के लिए प्रासाद (विशाल भवन) का निर्माण कराया था ।१

सुमन्तु बोले—हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार बुद्धिमान् साम्ब ने सूर्य की प्रतिष्ठा एवं उनके लिए प्रासाद का निर्माण कराया है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ।२। ! जाम्बवती पुत्र साम्ब ने सूर्य की उस प्रतिमा की प्राप्ति के अनन्तर नारद के लिए कुछ सोंचना आरम्भ किया कि उसी समय नारद का भी आगमन वहाँ हुआ ।३। अनन्तर मुनिश्रेष्ठ नारद को आये हुए वहाँ देख कर साम्ब ने विधान पूर्वक उनकी पूजा की और उनसे कहा— ।४। हे द्विज ! जो मनुष्य भास्कर के लिए प्रासाद का निर्माण एवं उनकी प्रतिष्ठा करता है, उसे कौन फल प्राप्त होता है ।५

नारद बोले—हे नरशार्दूल ! जो उत्तम स्थान में सूर्य के लिए सूर्य प्रासाद (विशाल भवन) का निर्माण करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं ।६

साम्ब ने कहा—हे द्विजोत्तम ! किस प्रदेश में किस ढंग के भवन का निर्माण होना चाहिए तथा हे द्विज ! देवाधिदेव (सूर्य) के लिए किस प्रकार का भवन प्रशस्त बताया गया है ।७

---

१. कस्मिन्देशे द्विजोत्तमः ।

नारद उवाच

यत्र प्रभूतं सलिलमागमे च विनाशने । देवतायतनं कुर्याद्यशोधर्मविवृद्धये ॥८
इष्टापूर्तेन लभते लोकांस्तांश्च[1] विभूषितान् । देवानामालयं कार्यं द्वयं यत्र च दृश्यते ॥९
सलिलाद्यं च आरामः कृतेष्वायतनेषु च । स्थानेष्वेतेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः ॥१०
सरःसु नलिनीच्छन्ननिरस्तरविरश्मिषु । हंससंक्षिप्तकह्लारवीथीविमलवारिषु ॥११
हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराविषु । पर्यन्तविमलच्छायाविश्रान्तजनचारिषु ॥१२
क्रौञ्चकाञ्चीसुलापाश्च कलहंसकलस्वनाः । नद्यस्तोयांशुका यत्र शफरीकृतमेखलाः ॥१३
फुल्लद्रुमोत्तमावासाः सङ्गमश्रोणिमण्डलाः । पुलिनाद्युन्नतोरस्का रसहासाश्च निम्नगाः ॥१४
वनोपान्तनदीशैलसंस्करोपान्तभूमिषु । रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ॥१५
भूमयो ब्राह्मणादीनां याः प्रोक्ता वास्तुकर्मणि । ता एवं तेषां शस्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥१६
चतुःषष्टिपदं कुर्याद्देवतायतनं सदा । द्वारं च मध्यमं तस्मिन्समदिक्सम्प्रशस्यते ॥१७
यो विस्तारो भवेत्तस्य द्विगुणा तत्समुन्नतिः । उच्छ्रायस्तु तृतीयोऽथ तेन तुल्या कटिर्भवेत् ॥१८

नारद बोले—वर्षा ऋतु के आगमन काल में एवं उसके निकल जाने के पश्चात् भी जहाँ अत्यन्त जल भरा रहता हो, उस जलाशय के तट पर अपने यश एवं धर्म की वृद्धि की कामनावश देव मन्दिर का निर्माण कराना चाहिए ।८। क्योंकि यज्ञ एवं जलाशय के निर्माण कराने से सौन्दर्य पूर्ण लोकों की प्राप्ति होती है । इसलिए देव मन्दिर का निर्माण ऐसे प्रदेश में होना चाहिए जो सुन्दर जलाशय एवं मनोहर बगीचे से सुशोभित हो ।९। क्योंकि देव मन्दिर के समीप जलाशय एवं बगीचे के लगवाने से उन्हीं स्थानों में देवता लोग निवास करते हैं ।१०। जिस जलाशय में कमलिनी से आच्छन्न होने के नाते सूर्य की किरणें जल तक न पहुँचती हों, हंसों द्वारा सफेद कमल की पंक्तियाँ संक्षिप्त हो गई हों, निर्मल जल हो, हंस, बत्तख, सारस तथा चक्रवाक के कलरवों से कूजित होते हुए उसके चारों ओर वृक्षों की निर्मल छाया हो जिसमें पथिक एवं टहलने घूमने वाले विश्राम लेते हों ।११-१२। ऐसे तालाबों के समीप तथा मधुर ध्वनि करती हुई सारस रूपी करधनी, पहिनने वाली सुंदर हंसों के कलरवों से कूजित, जल रूपी वस्त्र एवं शफरी मछली रूपी मेखला धारण करने वाली नदियों के समीप जिनके फूले हुए वृक्ष रूपी उत्तम आवास स्थान, संगम रूप श्रेणिमंडल, पुलिन (किनारा) रूपी उन्नत छाती, तथा जलरूपी हास विलास हों उस भूमि में जो बने समीपवर्ती नदी एवं पर्वत की सन्निधि मे हों, बगीचे समेत मन्दिर के निर्माण होने पर देवता लोग वहाँ नित्य रमण करते हैं ।१३-१५। तथा ब्राह्मण आदि के लिए गृहनिर्माण के विषय में जिस प्रकार की भूमि की चर्चा की गई है, वैसी ही भूमि देव मन्दिर के लिए भी प्रशस्त बतायी गई है ।१६। अतः चौंसठ पैर (पग) का लम्बा विशाल भवन देवता के लिए होना चाहिए और उसके मध्य भाग में दरवाजा बनाया जाना चाहिए। उनके लिए चौकोर दरवाजा भी उत्तम बताया गया है। विस्तार से दुगुनी कोठी की ऊँचाई होनी चाहिए और उसके तिहाई भाग के समान ऊँचा उसका कटि मध्य भाग रहे।१७-१८। इसी प्रकार

---

१. लोकांस्तांस्तान्स्वभक्तितः ।

विस्तारार्धो भवेद्‌गर्भो भित्तयोन्याः समन्ततः । गर्भपादोनविस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम् ।।१९
उच्छ्रयात्पादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुदुम्बरी । विस्तारात्पादप्रतिमाद्बाहुल्यं शेषयोः स्मृतम् ।।२०
नृपं सप्तनवभिः शाखाभिस्तत्प्रशस्यते । अथ शाखाचतुर्भागे प्रतिहारौ निवेशयेत् ।।२१
शैलमङ्गल्यविहगः श्रीवृक्षः स्वस्तिकैर्घटैः । मानाष्टमेन[1] भागेन प्रतिमा स्यात्सपिण्डिका ।।२२
द्विभागा प्रतिमा तत्र तृतीयो भागपिण्डिका । पूर्वे मेरुर्महाबाहो कैलासश्च तथापरे ।।२३
भवन्ति चापरे वीर विमानच्छवनं तथा । समुद्रपद्मगरुडनन्दिवर्द्धनकुञ्जराः ।।२४
गृहराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः । सिंहो वृषश्चतुष्कोणः षोडशाष्टाश्रयस्तथा ।।२५
इत्येते विंशतिः प्रोक्ताः प्रासादा यदुनन्दन । यथोक्तानुक्रमेणैव लक्षणानि वदामि[2] ते ।।२६
नवत्रिंशदुच्छ्रितमेरुर्द्वादशभौमो विविधकुहरश्च । द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्द्वात्रिंशद्धस्तविस्तीर्णः ।।२७
त्रिंशद्धस्तायामो दशभौमः सप्त मन्दरः । शिखरयुतः कैलासोऽपि शिखरवानष्टाविंशोऽष्टभौमश्च ।।२८
जालगवाक्षैर्युक्तो विमानसंज्ञस्त्रिसप्तकायामः । नन्दन इति वै भौमो द्वात्रिंशत्षोडशाङ्गयुतः ।।२९
वृत्तः समुद्रनामा पद्माकृतिरयं चाष्टौ । शृङ्गेणैकेन भवेदेकेन च भूमिका तस्य ।।३०

विस्तार के पहले अर्ध भाग में मन्दिर का गर्भ एवं दूसरे में चारों ओर की दीवाल होनी चाहिए । और गर्भ के चौथाई भाग के समान चौड़ा तथा उससे दुगुना ऊँचा दरवाजा बनाना चाहिए ।१९। उसी भाँति विस्तार के चौथाई भाग के समान उदुम्बरी गूलर आदि वृक्षों की शाखा बनाये जो ऊँचाई के चौथाई भाग के समान चौड़ी हो ।२०। मनुष्य के लिए पाँच, सात, एवं नव शाखा वाला दरवाजा प्रशस्त बताया गया है । पुनः शाखा के चौथाई भाग में दो द्वारपालों की मूर्ति स्थापित करके शेष द्वार शाखा के स्थान में शैल (पर्वत) मांगलिक पक्षी श्रीवृक्ष, एवं मांगलिक कलशों की रचना करनी चाहिए । शाखा के आँठवें भाग के समान ऊँची चौकी समेत प्रतिमा का निर्माण होना चाहिए ।२१-२२। उसमें दो भागों के समान (ऊँची) प्रतिमा और (तीसरे) भाग के समान ऊँची पिण्डिका (मूर्ति के स्थित होने की नीचे की भूमि) होनी चाहिए । हे महाबाहो ! प्रथम में मेरु, कैलास, विमान, समुद्र, पद्म, गरुड, नन्दिवर्द्धन, कुंजर, गृहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृष, चतुष्कोण नामक ये सोलह एवं आठ मंजिला वाले भवन बताये गये हैं ।२३-२५। इस भाँति बीस प्रकार के विशालभवन बनाये जाते हैं; मैं उन्हें क्रमशः बता चुका अब उनके लक्षण बता रहा हूँ सुनो ।२६। उनतालीस हाथ का लम्बा मेरु नामक विशाल भवन होता है, उसमें बारह भौम (कोठा) भाँति-भाँति के तहखाने एवं चार दरवाजे होते हैं और वह पच्चीस हाथ का चौड़ा होता है ।२७। तीस हाथ का लम्बा दश कोठे एवं सात शिखर वाला मन्दर नामक विशाल भवन होता है । अट्ठाइस हाथ का विस्तृत एवं आठ कोठे वाला कैलास नामक भवन होता है ।२८। जाल की भाँति गवाक्षों (झरोखों) से पूर्ण, तथा इक्कीस हाथ का विस्तृत विमान नामक भवन होता है । बत्तीस हाथ का विस्तृत छह कोठों से युक्त नन्दन नामक भवन होता है ।२९। समुद्र नामक भवन वर्तुलाकार (गोल) होता है पद्म के आकार के समान पद्मनामक भवन होता है जिसका आठ हाथ का विस्तार एक शिखर,

---

१. मिथुनैर्द्वारमारभ्धे भागेन स्यात्सुपिण्डिका । २. निबोध मे ।

गरुडाकृतिश्च गरुडो नन्दी वै षष्टिविस्तीर्णः । कायश्च सप्तभौनो विभूषितोऽर्गैश्च सप्तविंशतिभिः ॥३१
कुञ्जर इति गजपृष्ठः षोडशहस्तोच्छ्रितो मध्ये । गृहराजः षोडशकस्त्रिचन्द्रशाला भवेद्वलभी ॥३२
वृष एवं भूमिभृङ्गो द्वादशहस्तः समुन्नतो वृत्तः ! हंसो हंसाकारो घटोऽष्टसहस्रकलशरूपः ॥३३
द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्बहुशिखरो भवति सर्वतोभद्रः । बहुरुचिरचन्द्रशालः षड्विंशद्भागभूमिश्च ॥३४
सिंहः सिंहाकारो[1] द्वादशकोणोऽष्टहस्तश्च ॥३५
सहस्रत्रितयं चैव कथितं विश्वकर्मणा । प्राहुः स्थापयतश्चात्र मतमेकं विपश्चितः ॥३६
कपोतपालिनीयुक्तमतो गच्छति तुल्यताम् ॥३७

साम्ब उवाच

य एते कथिता विप्र प्रासादा विंशतिस्त्वया । तेषां सूर्यस्य कः कार्यः प्रासादो भास्करस्य तु ॥३८
स्थानानि यानि चोक्तानि प्रासादस्य द्विजोत्तम । तेषां त्वयोक्तं हि पुरं व्ययवद्भिर्नरैर्युतम् ॥३९
तस्मिन्प्रदेशे वै कार्यं भानोर्मन्दिरमुत्तमम् । दिशां भागे च कतमे ब्रूहि शेषं द्विजोत्तम ॥४०

एक ही भूमि (मंजिला) होती है ।३०। गरूड़ के समान गरुड़ नामक भवन होता है । साठ हाथ का विस्तृत नन्दिवर्द्धन नामक भवन होता है जिसमें सात कोठे होते हैं वह सत्ताइस अंगों से सुशोभित होता है ।३१। सोलह हाथ ऊँचा, मध्यमभाग में हाथी की पीठ के समान आकार वाला कुंजर नामक भवन बनाया जाता है । सोलह हाथ का विस्तृत तीन चन्द्रशालाओं से युक्त गृहराज नामक भवन होता है ।३२। बारह हाथ का विस्तृत एक भूमि (मंजिला) एक शिखर एवं गोलाकार वृष नामक भवन होता है । हंस के समान आकार वाला हंस नामक भवन होता है ! आठ सहस्र कलश के समान रूप वाला घट नामक प्रासाद (महल) होता है ।३३। चार दरवाजे, अनेक शिखर, रुचिर चन्द्र शालाओं से पूर्ण, एवं छब्बीस हाथ का विस्तृत सर्वतोभद्र नामक प्रासाद (महल) होता है । एवं बारह कोने वाला और आठ हाथ का विस्तृत तथा सिंह के समान आकार वाला सिंह नामक प्रासाद (महल) होता है ।३४-३५। इस प्रकार पण्डितों ने एक मत होकर इसकी अत्यन्त पुष्टि की है कि विश्वकर्मा ने इसके गृह के तीन सहस्र भेद बताये हैं । गृह के ऊपरी भाग कुछ न्यून रहने पर उसके ऊपर कपोतपालिक (कबूतरों के रहने के स्थान) बना देने से उसकी पूर्ति हो जाती है ।३६-३७

साम्ब ने कहा—हे विप्र ! आप ने बीस प्रकार के प्रासाद (विशाल भवन) बनाने के विधान बताये हैं उनमें कौन-सा प्रासाद (महल) सूर्य के लिए प्रशस्त होता है ।३८। हे द्विजोत्तम ! प्रसाद (महल) के लिए जिन स्थानों को आपने बताया है उनमें तो यह बतला ही चुके हैं कि धार्मिक व्यय करने वाले मनुष्योंको अपने नगर के समीप वाले प्रदेश में सूर्य का उत्तम मन्दिर बनवाना चाहिए। पर हे द्विजोत्तम ! यह बताने की कृपा कीजिए कि दिशा के किस भाग में उस मन्दिर का निर्माण होना चाहिए ।३९-४०

---

१. सिंहाक्रान्तः ।

नारद उवाच

पुरमध्यं समाश्रित्य कुर्यादायतनं रवेः । दिशां भागेऽथ वा पूर्वे पूर्वद्वारसमीपतः ।।४१
भूमिं परीक्ष्य पूर्वं तु कुर्यादायतनं ततः[1] । इष्टगन्धरसोपेता निम्ना[2] भूमिः प्रशस्यते ।।४२
शर्करातुषकेशास्थिक्षाराङ्गारविवर्जिता । मेघदुन्दुभिनिर्घोषा सर्वबीजप्ररोहिणी ।।४३
शुक्ला रक्ता तथा पीता कृष्णा च कथिता क्षितिः । द्विजराजन्यवैश्यानां शूद्राणां च यथाक्रमम् ।।४४
परीक्षितायां तस्यां तु मध्ये तस्याः प्रमाणतः । उपलिप्य चतुर्हस्तं चतुरस्रं[3] समन्ततः ।।४५
हस्तमात्रमधः कृत्वा मध्ये तस्या दशाङ्गुलम् । गर्तमुत्कीर्य तेनैव पांसुना प्रतिपूरयेत्[4] ।।४६
समे समगुणा ज्ञेया हीने हीनगुणा भवेत् । वर्धमाने तु वै पांसौ भवेद्वृद्धिकरी क्षितिः ।।४७
नित्यं सम्मुखमर्कस्य कदाचित्पश्चिमानुखम् । स्थापनीयं गृहं सम्यक्प्राङ्मुखस्थानकल्पनात् ।।४८
भवनाद्दक्षिणे पार्श्वे रवेः स्नानगृहं भवेत् । अग्निहोत्र गृहं कार्यं रवेरुत्तरतः शुभम्[5] ।।
उदङ्मुखं भवेच्छम्भोर्मातॄणां गृहमेव च ।।४९
ब्रह्मा पश्चिमतः स्थाप्यो विष्णुरुत्तरतस्तथा । निम्बस्तु[6] दक्षिणे पार्श्वे वामे राज्ञी प्रकीर्तिता ।।५०
पिंगलो पक्षिणे [7]भानोर्वामतो दण्डनायकः । श्रीमहाश्वेतयोः स्थानं पुरतस्त्वंशुमालिनः ।।५१

नारद बोले—नगर के मध्य भाग में या दिशा के पूर्वभाग अथवा पूरब वाले दरवाजे के समीप भूमि की परीक्षा करके सूर्य मन्दिर का निर्माण कराना चाहिए क्योंकि (मंदिर के लिए) सुगन्ध रस युक्त एवं निम्न भूमि प्रशस्त बतायी गई है ।४१-४२। उसी भाँति रेह वाली भूमि, तुष (भूसी), केश, अस्थि, खार, एवं कोयले वाली भूमि गृह निर्माण के लिए वर्जित की गई है । जहाँ मेघ या नगाड़े की भाँति शब्द सुनाई पड़े, और सभी प्रकार के बीज जहाँ अंकुरित हो सकें, वही भूमि मन्दिर निर्माण के लिए प्रशस्त होती है ।४३। इस प्रकार गृह निर्माण के विधान में शुक्र, रक्त, पीत, एवं काली पृथिवी क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रो के लिए बतायी गयी है ।४४। सर्वप्रथम भूमि की परीक्षा करने के उपरान्त उसके मध्य भाग में चार हाथ लम्बी एवं चौकोर भूमि गोबर से लीप कर उसमें एक हाथ का लम्बा और दश अंगुल का गहरा गढ्ढा खोद कर पुनः उसी मिट्टी से उस गढ्ढे को भर दे । यदि उस खोदी गई मिट्टी द्वारा वह गड्ढा भर जाय तो समान फल, और कुछ कम हो जाय तो वह भूमि निकृष्ट होती है एवं यदि गढ्ढे भरने के उपरांत कुछ मिट्टी ही शेष रह जाय, तो वह भूमि वृद्धि करने वाली होती है ।४५-४७। घर का दरवाजा पूरब दिशा की ओर करना चाहिए, यदि उस ओर कारण वश सम्भव न हो सके, तो पश्चिमाभिमुख भी कर लेना चाहिए परन्तु अधिकतर प्रयत्न पूर्वाभिमुख होने के लिए ही करना चाहिए ।४८। सूर्य-मन्दिर के दाहिने पार्श्व बगल, में स्नान गृह, उत्तर की ओर अग्नि होत्र गृह होना चाहिए उसी प्रकार शम्भु एवं माताओं का गृह उत्तराभिमुख होना चाहिए ।४९। सूर्य के पश्चिम की ओर ब्रह्मा, उत्तर की ओर विष्णु की स्थापना करे । सूर्य के दाहिने बगल निम्ब (निक्षु) एवं बायें बगल राज्ञी की स्थिति होनी चाहिए ।५०। दाहिने ओर पिंगल और बायें की ओर दंडनायक तथा श्री

---

१. महत् । २. त्रिधा । ३. हस्तमात्रम् । ४. परिपूरयेत् । ५. तथा । ६. निम्बं श्रीपर्णवृक्षश्च वामे राज्ञः प्रवर्तिता । ७. पार्श्वे ।

ततः स्थाप्याश्विनोः स्थानं पूर्वदेवगृहाद्बहिः । द्वितीयायां तु कक्षायां राज्ञास्त्रौषौव्यवस्थितौ ॥५२
तृतीयायां तु कक्षायां स्थितौ कल्माषपक्षिणौ । जण्डकामचरौ[1] स्थाप्यौ दक्षिणां दिशमाश्रितौ ॥५३
उदीच्यां स्थापनीयस्तु कुबेरो लोकपूजितः । उत्तरेण ततस्तस्य रेवतः सविनायकः ॥५४
यत्र वा विद्यते स्थानं दिक्षु सर्वा गुहादयः । द्वे मण्डलेऽर्घ्यदानार्थं कार्ये सव्यापसव्यतः ॥५५
दद्यादुदयवेलायामर्घं सूर्याय दक्षिणे । उत्तरे मण्डले दद्यादर्घ्यमस्तमने रवेः ॥५६
चक्राकृतां तथान्यस्मिन्देवस्य प्रतिमां रवेः । स्थापयेद्विधिवद्वीर चतुर्भिः कलशैः शुभैः[2] ॥५७
नानातूर्यनिनादैश्च [3]शङ्खशब्दैश्च पुष्कलैः । तृतीये मण्डले ह्येव[4] पूजनीयो दिवाकरः ॥५८
चतुरस्रं चतुःशृङ्गं व्योम देवगृहाग्रतः । प्रतिमायास्तु सूत्रेण कार्यं मध्येऽस्य मण्डलम् ॥५९
दिण्डी स्थाप्यः पुरस्तस्मादादित्याभिमुखः स्थितः । यदेतत्कथितं व्योम सर्वदेवमयं मया ॥६०
मध्याह्ने तस्य दातव्यमर्घ्यमत्र यदूत्तम । अथ वा मण्डलं चान्यत्तृतीयं चक्रसम्मितम्[5] ॥६१
स्थापयित्वा तु देवेशं दातव्योऽर्घः सुपण्डितैः । देवस्य पुरतः कार्यं व्योमस्थानं समीपतः ॥
पुस्तकवाचनस्थानमथ वा यत्र रोचते ॥६२

महाश्वेता का स्थान सूर्य के सामने होना चाहिए ।५१। मन्दिर के बाहर अश्विनी कुमार की स्थापना दूसरी कक्षा (खंड) के राजा स्रौव की स्थिति एवं तीसरी कक्षा में कल्माष तथा पक्षी की स्थिति होनी चाहिए । दक्षिण दिशा में जड एवं कामचर उत्तर की ओर लोक वन्दनीय कुबेर की स्थिति होनी चाहिए । उनके उत्तर विनायक समेत रैवत की स्थिति होनी चाहिए ।५२-५४। दिशाओं में कहीं भी स्थान दिखाई दे तो वहाँ गुह (स्कन्द) सभी आदि देवताओं की स्थिति करे । इसी प्रकार दक्षिण और उत्तर की ओर (दाहिने बायें) अर्घ्य देने के लिए दो मण्डल बनाये जाते हैं ।५५। उदय काल में सूर्य के लिए दक्षिण वाले मण्डल में अर्घ्य देना चाहिए और अस्त के समय उत्तर के मण्डल में ।५६। हे वीर ! मन्दिर के भीतर सूर्य की चक्राकार की भाँति वह प्रतिमा चार शुभ कलशों के साथ किसी पीठ पर स्थापित करे ।५७। जो भाँति-भाँति के तुरुही आदि वाद्यों एवं शंखों की ध्वनि कोलाहल में स्थापित की जाती है इसी प्रकार तीसरे मण्डल में सूर्य की पूजा करें ।५८। देव-मन्दिर के अग्रभाग में चार शिखर एवं चौकोर का व्योम बनाना चाहिए । जिसके मध्य में सूत्र द्वारा उनका मण्डल बनाया जाता है ।५९। आदित्य के अभिमुख दिंडी की स्थापना होनी चाहिए । यही सर्व देवमय व्योम है, जिसे मैं पहले ही बता चुका हूँ ।६०। हे यदूत्तम ! इस भाँति मध्याह्न काल में सूर्य के लिए इसी स्थान पर अर्घ्य प्रदान करना चाहिए, अथवा चक्राकार बने हुए एक अन्य मण्डल में भी ।६१। इस प्रकार देवेश (सूर्य) को स्थापित करके पण्डितों को चाहिए कि उन्हें नित्य अर्घ्य प्रदान करे । देव के सामने उनके समीप ही व्योम स्थान होना चाहिए और उसी स्थान पर अथवा जहाँ कहीं रुचे पुस्तक वाचन का (कथा) स्थान बनाये ।६२। इस प्रकार क्रमशः

---

१. जानुकामाचरौ । २. सह । ३. गीतशब्दैः । ४. अत्र । ५. चक्रसंज्ञितम् ।

एष स्थानविधिः प्रोक्तो देवतानां यथाक्रमम् । गृहराजोऽथ रुद्रस्तु द्वावेतौ भास्करप्रियौ ।।६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने
प्रासादलक्षणवर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३०।

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दारुपरीक्षावर्णनम्

नारद उवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि प्रतिमाविधिविस्तरम् । सर्वेषामेव देवानामादित्यस्य विशेषतः ।।१
अर्चा[1] सप्तविधा प्रोक्ता भक्तानां शुभवृद्धये । काञ्चनी राजती ताम्री पार्थिवी शैलजा स्मृता ।।२
वार्क्षी चालेख्यका चेति मूर्तिस्थानानि सप्त वै । वार्क्षीविधानं ते वीर वर्णयिष्याम्यशेषतः ।।३
कर्त्रनुकूले दिवसे संवत्सरविशोधिते । शुभैर्निमित्तैः शकुनैः प्रस्थानैश्च वनं विशेत् ।।४
क्षीरिणो वर्जिताः सर्वे दुर्बलास्ते स्वभावतः । चतुष्पथेषु न ग्राह्या ये च पुत्रकवृक्षकाः[2] ।।५
देवतायतनस्था ये तथा वल्मीकसम्भवाः । उत्कीर्णा देवता येषु चैत्यवृक्षाश्च ये स्मृताः ।।६
श्मशानभूमिजा ये च पक्षिणां निलयाश्च ये । सकोटराश्च ये वृक्षाः शुष्काग्रा ये च पादपाः ।।७

देवताओं की यह स्थान-विधि बता दी गई। जिनमें गृह राज एवं सर्वतोभद्र नामक प्रासाद (महल) भास्कर के लिए अत्यन्त प्रिय कहे गये हैं।६३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में
प्रासादलक्षण वर्णन नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त।१३०।

अध्याय १३१

दारुपरीक्षा का वर्णन

नारद बोले—इसके पश्चात् सभी देवताओं की विशेष कर सूर्य की प्रतिमा का विधान, विस्तार पूर्वक तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! ।१। यद्यपि भक्तों की कल्याण वृद्धि के लिए सात प्रकार की प्रतिमाएँ बतायी गई हैं। सुवर्ण, चाँदी, ताँबे, मिट्टी, पत्थर, काष्ठ एवं चित्र ये सात प्रकार की प्रतिमाएँ (पूजन के लिए) बतायी गई हैं। हे वीर ! किन्तु मैं सर्वप्रथम काष्ठ की प्रतिमा का विधान बता रहा हूँ।२-३

अपने अनुकूल दिन के पञ्चांग शुद्ध मूहुर्त में शुभ शकुनों के समय बन जाने के लिए प्रस्थान करे।४। वहाँ पहुँच कर जिस प्रकार इन दूध वाले, स्वभाव से पतले, चौराहे वाले, नवीन, देवालय में स्थित, बल्मीक से उत्पन्न, देव का आवास रूप, चैत्य (आश्रम) वृक्ष, श्मशान पक्षियों के निलय वाले, खोखला वृक्ष, जिसका अग्रभाग सूख गया हो, किसी शस्त्र द्वारा कटा हुआ, हांथियों के भक्ष्य, सामादि रोगी, नींचे फैलने

---

१. प्रतिमा सप्तधा प्रोक्ता। २. पुत्रकवृक्षकाः—नवविरूढाः—बालवृक्षा इत्यर्थः।

शस्त्रेण निहता ये च कुञ्जराशास्तथा कृताः । सामाद्याः सरजोऽग्रश्च व्याधिनश्च तथैव च ॥८
अकाले पुष्पिता ये च काले ते च विवर्जिताः । शीर्णपर्णाश्च तरवो रक्षोध्वांक्षनिषेविताः ॥
एकशाखातिशाखाश्च त्रिशाखाश्च तथाधमाः ॥९
मधूको देवदारुश्च वृक्षराजश्च चन्दनः । बिल्वश्चाम्रातकश्चैव खदिरोथाञ्जनस्तथा ॥१०
निम्बः श्रीपर्णवृक्षश्च पनसः सरलोऽर्ज्जुनः । रक्तचन्दनपर्यन्ताः श्रेष्ठाः स्युः प्रतिमाद्रुमाः ॥११
वर्णानामानुपूर्व्येण द्वौ द्वौ वृक्षौ प्रकीर्तितौ । निम्बाद्याः सर्ववर्णानां वृक्षा साधारणाः स्मृताः ॥१२
कथ्यमानान्विशेषेण शृणु वीर तथापरान् । सुरदारुः शमी चैव मधूकश्चन्दनस्तथा ॥
एते वै तरवस्तात ब्राह्मणानां शुभाः स्मृताः ॥१३
क्षत्रस्य च तथारिष्टः खदिरस्तिन्दुकस्तथा । अश्वत्थश्च तथा साम्ब द्रुमः करकतः शुभः ॥१४
वैश्यानां तद्वदेव स्युः खदिरश्चन्दनस्तथा । पुण्याश्च तरवश्चैते शुभदास्तु तथैव च ॥१५
केसरः सर्जकश्चाम्रः शालवृक्षस्तथेतरः । एते वै तरवः पुण्याः शूद्राणां शुभदायकाः ॥१६
लिङ्गं च प्रतिमां चैवमवस्थाप्य यथाविधि । वृक्षं चाभिमतं गत्वा पूजयेद्बलिपुष्पकैः ॥१७
शुचौ देशे विविक्ते च केशांगारविवर्जिते । प्रागुदक्प्लूचके देशे लोककष्टविवर्जिते ॥१८
विस्तीर्णस्कन्धविटपः पत्रवानृजुवृद्धिगः । आतङ्कहीनो विवशः सत्वक्पर्णः शुभस्तथा ॥१९
स्वेनैव पतिता ये च हस्तिभिः पातितास्तथा । शुष्काश्च वह्निदग्धाश्च पक्षिभिश्चापि वर्जिताः ॥२०

वाले, असमय में फूलने वाले, समय में पुष्प हीन रहने वाले, छिन्न-भिन्न पत्तेवाले, राक्षस एवं कौवों से सुसेवित, एक शाखा, तथा तीन शाखा वाले वृक्षों का (मूर्ति के लिए) त्याग करना चाहिए ।५-९। उसी भाँति महुवा, देवदारु, वृक्षराज, चन्दन, बेल, आँवले, खैर, अञ्जन, नीम, श्री पर्ण, कटहल, सरलार्जुन, एवं रक्तचन्दन के वृक्ष (प्रतिमा के लिए) ग्रहण करना चाहिए क्योंकि उसके लिए ये अत्यन्त श्रेष्ठ बताये गये हैं ।१०-११। महुआ आदि दो-दो वृक्ष क्रमशः चारों वर्णों के लिए बताये गये हैं और उसी निमित्त सभी वर्णों के लिए नीम आदि वृक्ष साधारण बताये गये हैं ।१२। हे वीर ! विशेषकर अन्य वृक्ष भी बता रहा हूँ सुनो ! देवदारु, शमी, महुआ, चन्दन, इतमे वृक्ष, ब्राह्मणों के लिए शुभ बताये गये हैं ।१३। हे साम्ब ! जिस भाँति नीम, खैर, तेंदू, पीपल, तथा अनार के वृक्ष क्षत्रियों के लिए शुभ कहे गये हैं ।१४। उसी भाँति खैर चन्दन के वृक्ष वैश्यों के लिए पुण्य एवं शुभदायक बताये गये हैं ।१५। और केसर, सर्जक, आम, तथा शाल ये वृक्ष शूद्रों के हितार्थ बताये गये हैं ।१६

इस प्रकार काष्ठ की प्रतिमा बनाकर विधान पूर्वक उसकी स्थापना करनी चाहिए । (प्रथम) उस मनचाहे वृक्ष के समीप जाकर बलि एवं पुष्प द्वारा उसका पूजन करे ।१७। जो पवित्र एवं मैदान में स्थित हो और जिसमें केश या अङ्गार (कोयला) और (काँटे) न हो, पूरब तथा उत्तर की ओर ढालू भूमि में उत्पन्न हों एवं जहाँ लोगों को कष्ट का अनुभव न होता हो, चौड़ी शाखाएँ पत्तों से पूर्ण सीधा-लम्बा, आतंक हीन एवं उसकी छाल और पत्ते सुन्दर हों, (प्रतिमा निर्माण के लिए ऐसे ही वृक्ष प्रशस्त होते हैं) ।१८-१९। उसी भाँति जो अपने से गिर गया हो, या इन्द्रियों ने गिराया हो, सूखा, जला तथा पक्षी-रहित, ऐसे वृक्षों का त्याग करके शुभ वृक्ष ग्रहण करना चाहिए—चिकने, पत्र, पुष्प, एवं फल

तरवो वर्जनीयाश्च ग्रहीतव्याः शुभा द्रुमाः । स्निग्धरूपाः सपर्णाश्च सपुष्पाः सफलास्तथा ॥२१
तेषां तु ग्रहणं चाष्टमासेषु कार्त्तिकादिषु । भूत्वा शुभदिने चैव सोपवासोऽधिवासयेत् ॥२२
समन्तादुपलिप्याथ तस्याधस्ताद्वसुन्धराम् । गायत्र्या परिपूतेन परितः प्रोक्ष्य वारिणा ॥२३
शुक्ले च परिधूते च परिधाय च[1] वाससी । पूजयेद्गन्धमाल्यैश्च सधूपबलिकर्मभिः ॥२४
ततः कुशैः परिस्तीर्णे हुत्वाग्नौ तस्य चान्तिके । देवदारुसमिद्भिश्च मन्त्रेणानेन तत्त्ववित् ॥२५
ॐ भूर्भुवः सुवरिति ततो वृक्षं च पूजयेत् ।
ॐ प्रजापतये सत्यसदाय नित्यं श्रेष्ठन्तरात्मन्त्सचराचरात्मन् ॥
सन्निध्यमस्मिन्कुरु देव वृक्षे सूर्यावृतं मण्डलमाविशेश्च नमः ॥२६

नारद उवाच

एवं सम्पूजयित्वा तु वाक्यैस्तं परिसान्त्वयन् । वृक्षलोकस्य शान्त्यर्थं गच्छ देवालयं शुभम् ॥२७
देव त्वं स्थास्यसे तत्र च्छेददाहविवर्जितः । काले धूपप्रदानेन सपुष्पैर्बलिकर्मभिः ॥२८
लोकास्त्वां पूजयिष्यन्ति ततो यास्यसि निर्वृतिम् । वृक्षमूले कुठारं तु धूपमाल्यैः प्रपूज्य च ॥२९
पूर्वतस्तु शिरः कृत्वा स्थापनीयः प्रयत्नतः । परमान्नमोदकौदनपललपूपिकादिभिर्भक्ष्यैः ॥३०
मद्यैः कुसुमैर्धूपैर्गन्धैश्च तरुं समभ्यर्च्य । सुरपितृपिशाचराक्षसभुजङ्गसुरगणविनायकाद्यानाम् ॥३१
कृत्वा पूजां रात्रौ वृक्षं संस्पृश्य च ब्रूयात् ॥३२

पूर्ण रहने वाले वृक्ष शुभ बताये गये हैं ।२०-२१। इस प्रकार कार्तिक आदि आठ मास तक ही उन वृक्ष के ग्रहण करने का विधान है । किसी शुभ दिन में उपवास पूर्वक वहाँ अधिवास करते हुए उस वृक्ष के चारों ओर की भूमि को गोबर से लीप कर गायत्री द्वारा पवित्र किये गये जल से उसका सेचन तथा शुक्ल एवं नवीन पछारे हुए दो वस्त्रों को धारण कर गन्ध, माला, धूप, एवं बलि द्वारा उसकी पूजा करें ।२२-२४। पश्चात् चारों ओर कुश बिछाकर उसके समीप में ही देवदारु की लकड़ी की अग्नि प्रज्वलित करे और 'ओं भूर्भुवः सुवरिति' मंत्र द्वारा हवन सम्पन्न कर वृक्ष की पूजा समाप्त करे । अनन्तर हाथ जोड़ कर इस भाँति कहे हे प्रजापति के सत्य गृह के लिए हे श्रेष्ठान्तरात्मन्, एवं सचराचरात्मन् !, आप के लिए नमस्कार है । हे देव इस वृक्ष में प्रवेश करो तथा सूर्य का मण्डल भी इसमें प्रविष्ट हो ।२५-२६

नारद ने कहा—इस प्रकार वृक्ष की पूजा करके उसे वाक्यों द्वारा शांति भी प्रदान करे—हे वृक्ष ! लोक की शांति के लिए सुन्दर देवमन्दिर में चलो ।२७। हे देव ! वहाँ तुम्हें इस शस्त्र के आघात जनित दाह न होगा, अपितु समय-समय पर लोग धूप, बलि, एवं पुष्पों, द्वारा तुम्हारा पूजन करेंगें ।२८। जिससे तुम्हें परम निर्वृति (शांति) प्राप्ति होगी । पश्चात् वृक्ष के मूल भाग में कुल्हाड़े को रख उसकी धूप एवं मालाओं से पूजा कर पूरब की ओर शिर कर उसे सप्रयत्न वहीं रख दे । पुनः उत्तम अन्न, मोदक, भात आमिष, मालपूआ आदि भक्ष्य पदार्थ, आसव, पुष्प, धूप, तथा गन्धों द्वारा वृक्ष के पूजन पूर्वक देव, पितर, पिशाच, राक्षस, साँप सुरगण, और विनायक आदि की पूजा करे और रात में वृक्ष स्पर्श करते हुए ऐसा

---

१. चापरिभुक्ते ।

अर्चासु देवदेव त्वं देवैश्च परिकल्पितः । नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत्परिगृह्यताम् ।।३३

यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्।
अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु ते चाद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ।।३४

प्रभातायां तु शर्वर्यां पुनः सम्पूज्य तं नगम् । ब्राह्मणेभ्यस्ततो दत्त्वा भोजकेभ्यश्च दक्षिणाम् ।।
छिन्द्याद्वनस्पतींस्तज्ज्ञैस्तैः कृतस्वस्तिवाचनैः ।।३५

पूर्वस्यां दिशि पातोऽस्य ऐशान्यां चापि यो भवेत् । अथवा उत्तरस्यां तु तथा छिन्द्यात्तु[1] नान्यथा ।।३६

ऐन्द्रयैशान्योरुदीच्यां च पातस्त्रिसृषु शस्यते । नैर्ऋत्याग्नेययाम्यासु दिक्षु पातो न शोभनः ।।
वायव्यां चैव वारुण्यां तस्य पातस्तु मध्यमः ।।३७

यस्य चाह्यस्थिता शाखा दिक्षु नष्टा चतसृषु । वास्तुपूर्वं ततः स्थित्वा ततः पश्चादवस्थिता ।।३८

अविलग्नमशब्दं तु पतनं तु प्रशस्यते । उत्पद्येद्द्विदलं यस्य द्रावश्च मधुरो भवेत् ।।३९

सर्पिस्तैलं क्षरेद्यस्य पादपं तं विवर्जयेत् । शुभदं यदुशार्दूल शृणु त्वं कथये शुचि ।।४०

वृक्षं प्रभाते सलिलैर्निषिक्तं पूर्वोत्तरस्यां दिशि सन्निकृत्य ।
मध्वाज्यदिग्धेन कुठारकेण प्रदक्षिणां शोषमभप्रहण्यात् ।।४१
पूर्वोत्तरेऽप्युत्तरदिग्विभागे पाते यदा वृद्धिकरस्तदा स्यात् ।

कहे ।२९-३२। हे देवाधिदेव ! पूजन के लिए ही देवों ने आपकी कल्पना (सृष्टि) की है, अतः आप के लिए नमस्कार है । हे वृक्ष इस मेरी विधान पूर्वक पूजा को आप स्वीकार करो तथा इस (वृक्ष) में जितने (जीव) भूत, आदि रहते हों, विधान पूर्वक दी गई इस बलि को ग्रहण करते हुए कहीं अन्यत्र अपना आवास स्थान बनावें और मुझे क्षमा प्रदान करें मैं उन्हें नमस्कार कर रहा हूँ ।३३-३४। प्रातः में पुनः वृक्ष की पूजा तथा ब्राह्मणों एवं भोजकों को दक्षिणा प्रदान कर स्वास्तिक वाचन पूर्वक उस वृक्ष को किसी चतुर बढ़ई द्वारा कटायें ।३५। पूरब् ईशानकोण या उत्तर की ओर उसका पतन हो ऐसा समझ कर उसे काटना चाहिए अन्यथा न होने पाये ।३६। क्योंकि पूरब ईशान कोण अथवा उत्तर की ओर उसका गिरना प्रशस्त बताया गया है । उसी भाँति नैऋत्य, आग्नेय, एवं दक्षिण की ओर वृक्ष का गिरना शुभ दायक नहीं होता है । एवं वायव्य और पश्चिम की ओर गिरना मध्यम बताया गया है ।३७। इस प्रकार जिस वृक्ष की शाखा घर के चारों ओर फैल कर नष्ट हो गयी हो और घर के समीप वाला वृक्ष भी जो घर के पहले से लगा हो, प्रतिमा बनाने हेतु वह भी त्याग देना चाहिए ।३८। किसी के सम्पर्क से रहित एवं शब्द-हीन (वृक्ष का) गिरना श्रेयस्कर बताया गया है । जो गिरते ही दो टुकड़े हो जाये, शहद की भाँति रस निकले घी एवं तेल, जिसमें से निकले, ऐसे वृक्ष भी वर्जित किये गये हैं। हे यदुशार्दूल ! मैं अब पवित्र एवं शुभदायक वृक्षों को बता रहा हूँ सुनो ! ।३९-४०। प्रातःकाल में वृक्ष को जल से सींच कर शहद तथा घी लगाये गये कुठार द्वारा उसके पूर्वोत्तर (ईशानकोण) में ऊपर वृक्ष प्रदक्षिणा पूर्वक सुखाने योग्य प्रहार करें। क्योंकि ईशान, एवं उत्तर दिशा की ओर यदि वह गिरता है तो बुद्धिकारक होता है और आग्नेय कोण

---

१. तुंगं यथा तथा ।

आग्नेयकोणक्रमशोऽग्निदाह उग्रोग्ररोगाः सुधनक्षयश्च ।।४२
गारुडे दिशि पाषाणं कपोतो गृहगोधिका । सितवर्णं जलं ज्ञेयमङ्गुष्ठाभं भवेत्कृमिः ।।
दोषैरेतैर्विनिर्मुक्तं मुदा कालं समुद्धरेत् ।।४३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे दारुपरीक्षावर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३१।

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

श्रीसूर्यप्रतिमालक्षणवर्णनम्

नारद उवाच

हन्त ते सर्वदेवानां प्रतिमालक्षणं परम् । वच्मि ते यदुशार्दूल आदित्यस्य विशेषतः ।।१
एकहस्ता द्विहस्ता वा त्रिहस्ता वा प्रमाणतः । तथा सार्द्धत्रिहस्ता च सवितुः प्रतिमा शुभा ।।२
प्रसादाद्द्वारतो वापि प्रमाणं च प्रकल्पितम् । तद्वत्प्रयाणं कर्तव्यं सततं शुभमिच्छता ।।३
एकहस्ता भवेत्सौम्या द्विहस्ता धनधान्यदा । त्रिहस्ता प्रतिमा भानोः सर्वकामप्रदा स्मृता ।।४
सार्धत्रिहस्ता प्रतिमा सुभिक्षक्षेमकारिणी । अग्रे मध्ये च मूले च प्रतिमा सर्वतः समा ।।
गान्धर्वी सा तु विज्ञेया धनधान्यावहा स्मृता ।।५

आदि दिशाओं में गिरे तो, क्रमशः उग्र, एवं उग्रतर रोग, किसी अच्छे धन का विनाश होता है ।४१-४२। इसी प्रकार गरुड़ की दिशा में गिरने से उस वृक्ष में पत्थर कपोत (कबूतर) छिपकली दिखाई देती है और सफेद जल निकले तो अगूंठे के समान कीड़े निकलते हैं इसलिए इन दोषों से मुक्त वृक्ष का (प्रतिमा के लिए) शुभ समय में सहर्ष ग्रहण करना चाहिए ।४३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में दारुपरीक्षा वर्णन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३१।

अध्याय १३२

श्रीसूर्यप्रतिमालक्षणवर्णन

नारद बोले—हे यदुशार्दूल ! मैं सभी देवताओं एवं विशेषकर सूर्य की प्रतिष्ठा का उत्तम लक्षण तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! ।१। सूर्य की प्रतिमा एक, दो, तीन, अथवा साढ़ेतीन हाथ की लम्बी होने से शुभ बतायी गई है ।२। अतः प्रासाद या दरवाजे के प्रमाण के अनुसार प्रतिमा का भी प्रमाण शुभेच्छुकों को निरन्तर रखना चाहिए।३। क्योंकि एक हाथ की प्रतिमा, सौम्य, दो हाथ की प्रतिमा धन-धान्य प्रदान करने वाली होती है और तीन हाथ की सूर्य की प्रतिमा समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाली, तथा साढ़े तीन हाथ की प्रतिमा सुभिक्ष एवं कल्याण प्रदान करने वाली कही गयी है। उसी भाँति अग्रभाग, मध्य एवं मूलभाग में चारों ओर से सम रहने वाली प्रतिमा गांधर्वी कही जाती है, जो धन-धान्य की वृद्धि करती है।४-५।

देवागारस्य यद्द्वारं तस्मादष्टांशमुच्यता । त्रिभागैः पिण्डिकाः कार्या द्वौ भागौ प्रतिमा भवेत् ॥६
अङ्गुलैश्च तथा मूर्तिश्चतुरशीतिसंमितैः । विस्तारायामतः कार्या वदनं द्वादशाङ्गुलम् ॥७
मुखात्त्रिभागैश्चिबुकं ललाटं नासिका तथा । कर्णौ नासिकया तुल्यौ पादौ चानियतौ तयोः ॥८
नयने द्व्यंगुले स्यातां त्रिभागा तारका भवेत् । तृतीयतारकाभागात्कुर्याद्दृष्टिं विचक्षणः ॥९
ललाटमस्तकोत्सेधं कुर्यात्तत्समसेव च । परिणाहस्तु शिरसो भवेद्द्वाविंशदङ्गुलः ॥१०
तुल्या नासिकया ग्रीवा मुखेन हृदयांतरम् । मुखमात्रा भवेन्नाभिस्ततो मेढ्रमनन्तरम् ॥
मुखविस्तारणमुरस्ततोऽर्द्धं तु कटिः स्मृता ॥११
बाहू प्रवाहतुल्यौ तु ऊरू जङ्घे च तत्समे । गुल्फाधस्तात्तु पादः स्यादुच्छ्रितश्चतुरङ्गुलः ॥१२
षडङ्गुलसुविस्तारस्तस्याङ्गुष्ठाङ्गुलत्रयम् । प्रदेशिनी च तत्तुल्या हीना शेषा नखैर्युताः ॥१३
चतुर्दशाङ्गुलः पाद आयामात्परिकीर्तितः । एवं लक्षणसंयुक्ता प्रतिमार्च्या भवेत्सदा ॥१४
अंसौ हरेस्तथैवोरू ललाटं च सनासिकम् । नियते नयने गण्डौ मूर्तेः कुर्यात्समुन्नते ॥१५
विशालधवलावामपक्ष्मलायतलोचने । सस्मितानपद्मस्य चारुबिम्बाधरस्तथा ॥१६
रत्नप्रोद्भासिमुकुटकटकाङ्गदहारवान् । अव्यङ्गपदमध्यादिसमायोगोऽपि शोभितः ॥१७

इसलिए देव-मन्दिर के दरवाजे के विस्तार के आठवें भाग के समान ऊँची प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए । उसमें तीसरे भाग के समान ऊँची पिंडिका (मूर्तिस्थापन के लिए चौकी या चबूतरा) और दो भाग के समान प्रतिमा की ऊँचाई बनाये ।६। इस भाँति अपने अंगुल से चौरासी, अंगुल की प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए जिसमें बारह अंगुल का लम्बा-चौड़ा उसका मुख रहता है ।७। एवं मुख के तिहाई भाग के समान उसकी चिबुक (ठोड़ी), और शेष के समान ललाट एवं नासिका की रचना करे । उसी प्रकार नासिका के समान दोनों कान तथा अनियत दोनों चरण और दो-दो अंगुल के नेत्र, एवं उसके तिहाई भाग के समान (आँख की) तारा और उसके तिहाई भाग में बुद्धिमान को दृष्टि की रचना करनी चाहिए ।८-९। यद्यपि ललाट और मस्तक की ऊँचाई समान ही होती है किन्तु शिर का घेरा बाईस अंगुल का होना चाहिए ।१०। क्योंकि नासिका के समान ही ग्रीवा होती है और मुख के समान हृदय का मध्य भाग निर्मित होता है । मुख के तुल्य नाभि होती है और उसके अनन्तर मेढ्र (शिश्न) बनाया जाता है । तथा मुख-विस्तार के समान उरस्थल (छाती) एवं उसके अर्ध भाग के समान कटि (कमर) बनती है ।११। इस भाँति लम्बे बाहू ऊरु, एवं जंघाएं समान होती हैं । गुल्फ़ के नीचे चार अंगुल के ऊँचे चरण बनाये जाते हैं ।१२। जो छह अंगुल के चौड़े होते हैं । चरण के अंगूठे तीन-तीन अंगुल के होते हैं । अंगूठे के समान ही तर्जनी अंगुली होती है । शेष अंगुलियाँ क्रमशः छोटी एवं सभी नख पूर्ण होती हैं ।१३। और चरण की लम्बाई चौदह अंगुल की होती है । इस प्रकार लक्षणों से युक्त प्रतिमा सदैव पूजनीय होती है ।१४। कन्धे, ऊरु, ललाट, नासिका, नेत्र एवं गण्डस्थल प्रतिमा के ये अंग अवश्य उन्नत होने चाहिए ।१५। (प्रतिमा) के विशाल धवल, सुन्दर, पक्ष्म (बरौनी) युक्त बड़े-बड़े नेत्र हों और विकसित कमल की भाँति मुख हो जिसमें मन्द मुस्कान होती है एवं सुन्दर बिम्ब की भाँति अधर होने चाहिए ।१६। रत्नों से अत्यन्त भासित मुकुट कड़े केयूर, विजयगढ़ और हार आदि भूषणों से भूषित उस प्रतिमा का इस भाँति निर्माण होना चाहिए जिसके मध्य भाग आदि अंग सुन्दर एवं सुड़ौल हों जिससे वह सौन्दर्य पूर्ण दिखायी

सुप्रभो मण्डलश्चारुर्विचित्रमणिकुण्डलः । कराभ्यां काञ्चनीं मालां प्रोद्वहन्ससरोरुहाम् ॥१८
एवं लक्षणसंयुक्तां कारयेदीहितप्रदाम् । प्रजाभ्यश्च सदा भानुः शिवारोग्याभयप्रदः ॥१९
अल्पाङ्गायां नृपभयं हीनाङ्गायामकल्पता । खातोदर्यां च क्षुत्पीडा कृशायां तु दरिद्रता ॥२०
सक्षतायां भयं शस्त्रात्स्फुटिता मृत्युकारिणी । दक्षिणावनतायां तु शश्वदायुःक्षयो भवेत् ॥२१
उत्तरावनतायां तु वियोगो भवति ध्रुवम् । नालोक्या नाप्यनालोक्या रक्ष्यामूर्तिः प्रशस्यते ॥२२
तस्माद्भास्करभक्तेन लोकद्वयहितैषिणा । तन्मूर्तेश्चादरः कार्यस्तदधीनास्तु सम्पदः ॥२३
शिरोरुगण्डवदनैः सर्वाङ्गावयवैस्तथा । एवं लक्षणसंपूर्णा प्रतिमा भवते शुभा ॥२४
नासाललाटजङ्घोरुदण्डवक्षोभिरन्विता । कुर्यादादित्यवेषं तु गूढपादोदरं तथा ॥२५
कमलोदरकान्तिनिभः कञ्चुकगुप्तः प्रसन्नमुखः । रक्तोत्पलप्रभामण्डलश्च कर्तुः शुभं करोत्यर्कः ॥२६
कुण्डलभूषितवदनः प्रलम्बहारोऽपि गृहवृत्तः । नृपतिभयं व्यङ्गायां हीनाङ्गायामकल्पना कर्तुः ॥२७
खातोदर्यां क्षुद्भयमर्थविनाशः कृशाङ्गायाम् । मरणं तु सक्षतायां शस्त्रनिपातेन निर्दिशेत्कर्तुः ॥२८
वामोन्नता तु पत्नीं दक्षिणावनता हिनस्त्यायुः । अन्धत्वमूर्द्धवदृष्टिः करोति चिन्तामधोमुखी दृष्टिः ॥२९
सर्वप्रतिमास्वेवं शुभाशुभं भास्करेणोक्तम् । ब्रह्मा कमण्डलुकरश्चतुर्मुखः पङ्कजस्थश्च ॥३०

दे ।१७। उसका चारु मंडल सुन्दर प्रभा पूर्ण हो और विचित्र मणि कुण्डल को धारण किये, हाथों में सुवर्ण की माला तथा कमल को लिए अभीष्ट प्रदान करने वाली दखायी देती हो । ऐसी प्रजाओं के लिए सूर्य सदैव कल्याण एवं आरोग्य प्रदान करते है ।१८-१९। उसी प्रकार प्रतिमा के अल्पांग होने पर नृप-भय, हीनांग होने पर रोग, उदर बड़ा हो तो भूख की पीड़ा, दुर्बल होने पर दरिद्रता, किसी अंग में क्षत होने पर शास्त्र से भय और फूटी-टूटी प्रतिमा मृत्यु कारक होती है दक्षिण की ओर झुकी रहने से निरंतर आयु क्षय तथा उत्तर की ओर झुकी रहने से निश्चित वियोग होता है । अत्यंत प्रकाश पूर्ण अथवा प्रकाश हीन मूर्ति प्रशस्त नहीं होती ।२०-२२। अतः मध्यवर्ग की मूर्ति रक्षा करने वाली एवं प्रशस्त कही गई है । इसलिए लोक द्वय के हितार्थ सूर्य भक्तों को चाहिए कि सूर्य की उस प्रतिमा का विशेष आदर-सत्कार करें क्योंकि (सुख-सामग्री) की निखिल सम्पत्तियाँ उसी (मूर्ति) के ही अधीन रहती हैं ।२३। इसलिए शिर, उरु, गण्डस्थल, मुख एवं समस्त अंगों में युक्त तथा शुभ लक्षणों वाली प्रतिमा आप के लिए शुभ दायक होगी ।२४। एवं नासिका, भाल, जाँघे, ऊरू तथा वक्षःस्थल से युक्त उस मूर्ति के चरण एवं उदर गुप्त हों ऐसा ही वेष आदित्य का बनाना चाहिए ।२५। क्योंकि कमल के समान कान्ति पूर्ण उदर, कंचुकी पहिने, प्रसन्न मुख और रक्त कमल के समान प्रभा मण्डल वाली सूर्य की प्रतिमा कर्ता के लिए अत्यन्त शुभ दायक होती हैं ।२६। जो गोलाकार मन्दिर में स्थित कुण्डल से भूषित तथा लम्बे हार से सुशोभित रहती है क्योंकि व्यंग मूर्ति से राजभय, हीनांग से रोग, गढ़े वाले उदर के निर्माण होने पर भूख से व्याकुलता, कृशांग होने से अर्थनाश, (किसी अंग में) शस्त्राघात से क्षत होने पर मरण फल, कर्ता को निश्चित प्राप्त होते हैं ।२७-२८। उसी प्रकार बाईं ओर उन्नत होने से पत्नी वियोग, दाहिनी ओर उन्नत होने से आयु-नाश, ऊपर की ओर दृष्टि होने से अन्धा नीचे ओर दृष्टि होने से सदैव चिंतित होता है ।२९। इस प्रकार इन समस्त प्रतिमाओं के इस शुभ एवं अशुभ कारक फलों को सूर्य ने ही स्वयं बताया है । कमल पर स्थित, एवं कमण्डलु लिए चारमुख समेत उस ब्रह्मा की प्रतिमा का भी इसी भाँति निर्माण होना चाहिए ।३०। तथा

स्कन्दः कुमाररूपः शक्तिधरो बर्हिकेतुश्च । शुक्लश्चतुर्विषाणो द्विपो महेन्द्रस्य वज्रपाणित्वम् ।।३१
तिर्यगूर्ध्वललाटसंस्थं तृतीयमपि लोचनं चिह्नम् ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने श्रीसूर्यप्रतिमालक्षणवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३२।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

विश्वरूपवर्णनम्

नारद उवाच

ततोऽधिवासनं कुर्याद्विधिदृष्टेन कर्मणा । ऐशान्यां दिशि वै कुर्यादधिवासनमण्डपम् ।।१
चतुस्तोरणसम्पन्नं सर्वाभरणसंयुतम् । दिशासु विदिशास्वेव पताकाभिस्तु भूषितम् ।।२
आग्नेय्यां दिशि रक्ताः स्युः कृष्णाः स्युर्याम्यनैर्ऋते । श्वेता दिश्यपरस्यां तु वायव्यामेव पाण्डुरा ।।३
चित्रा चोत्तर पार्श्वे तु पीता पूर्वोत्तरे तथा । श्रियमायुर्जयं चैव बलं यशो यदूत्तम ।।४
ददाति सा वीर कृता सम्पदर्थे न संशयः । हिताय सर्वलोकानां मृण्मयी प्रतिमा भवेत् ।।५

कुमार रूप, शक्ति के लिए और मयूर आसन एवं ध्वजा से सुशोभित ऐसी प्रतिमा स्कन्द की होनी चाहिए । इसी प्रकार शुक्र वर्ण, एवं चार दाँत वाले हाथी पर बैठे, हाथ में वज्र लिए महेन्द्र की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए ।३१। और शिव की प्रतिमा में भाल के ऊर्ध्व भाग में तीसरी तिर्छी आँख का चिह्न होना आवश्यक होता है ।३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में श्री सूर्य प्रतिमा लक्षण वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३२।

अध्याय १३३

विश्व रूप वर्णन

नारद बोले—इसके पश्चात् विधान पूर्वक अधिवासन कर्म करना बताया जाता है । अधिवासन के लिए मण्डप का निर्माण ईशानकोण में होना चाहिए ।१। पुनः उसे चार तोरणों से सुसज्जित एवं समस्त आभूषणों से अलंकृत करके उसकी समस्त दिशाओं तथा विदिशाओं (कोने) को पताकाओं से विभूषित करना चाहिए ।२। क्योंकि आग्नेय दिशा में रक्तवर्ण, दक्षिण एवं नैऋत्य में काले रंग, पश्चिम में श्वेत वर्ण, वायव्य में पांडुर वर्ण, उत्तर की ओर चित्र-विचित्र, ईशान एवं पूर्व की ओर पीले रंग की पताकाओं से विभूषित करना बताया गया है । हे यमदूत ! हे वीर ! लक्ष्मी प्राप्ति की कामनावश प्रतिमा के निर्माण कराने से वह भी आयु, जप, बल, एवं कीर्ति प्रदान करती है इसमें संशय नहीं । अतः समस्त लोकों के हित के लिए मिट्टी की मूर्ति होनी चाहिए ।३-५। इस प्रकार निर्माण की गई प्रतिमा नित्य सुभिक्ष

सुभिक्षक्षेमदा नित्यं सर्दा मणिमयीकृता । गाङ्गेय[१] पुष्टिदा रौप्या स्याद्वै कीर्तिप्रवर्तिनी ॥६
प्रजावृद्धिं ताम्रमयी कुर्यान्नित्यमसंशयः । भूमेर्लाभं तु विपुलं कुर्यादश्ममयी सदा ॥७
प्रधानपुरुषं हन्ति त्रपुलोहमयी सदा । सर्वदेवमयस्यैवमर्चां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥८

साम्ब उवाच

सर्वदेवमयत्वं हि ब्रूहि मे भास्करस्य तु । सर्वदेवमयो ह्येष कथं नारद कथ्यते ॥९

नारद उवाच

साधु साम्ब महाबाहो शृणु मे परमं वचः । बुधसोमौ स्मृतौ नेत्रे ललाटे चेश्वरः स्थितः ॥१०
सुरज्येष्ठ. शिरस्तस्य कपालेऽस्य बृहस्पतिः । एकादश तथा रुद्राः कण्ठमस्य[२] समाश्रिताः ॥११
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव दशनेषु समाश्रिताः । धर्माधर्मौ च देवस्य ओष्ठसम्पुटके स्थितौ ॥१२
सर्वशास्त्रमयी देवी जिह्वायां च सरस्वती । दिशश्च विदिशश्चैव सर्वाः श्रोत्रेषु संस्थिताः ॥१३
ब्रह्मेन्द्रौ तालुदेशे तु स्थितौ देवैश्च पूजितौ । आदित्या द्वादश विभोर्भ्रुवोर्मध्ये समाश्रिताः ॥१४
ऋषयो रोमकूपेषु समुद्रा जठरे स्थिताः । यक्षकिन्नरगन्धर्वाः पिशाचा दानवास्तथा ॥१५
राक्षसाश्च गणाः सर्वे हृदये स्युः स्थिताः रवेः । नद्यो बाहुगताश्चैव नगाः कक्षान्तरे स्थिताः ॥१६
पृष्ठमध्ये स्थितो मेरुः स्तनयोरन्तरे कुजः । तस्य पुत्रो धर्मराजः स्थितो वै नाभिमण्डले ॥१७
कटिदेशे पृथिव्याद्या लिङ्गे सृष्टिः समाश्रिता । जानुनी चाश्विनौदेवावूरू तस्याचला स्मृताः ॥१८

एवं क्षेम (कल्याण) प्रदान करती है। और सुवर्ण की प्रतिमा पुष्टि, चाँदी की प्रतिमा कीर्ति, ताँबे की प्रतिमा सन्तान वृद्धि, पत्थर की प्रतिमा, सदैव अत्यन्त भूमि लाभ, एवं शीशे तथा लोहे की मूर्ति प्रधान पुरुष का नाश किया करती है। इसलिए देवमय (सूर्य) की अर्चना प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए।६-८

साम्ब ने कहा—हे नारद ! 'भास्कर सर्वदेवमय हैं' इसे तथा सूर्य का सर्वदेव- मय होना भी आप मुझे बतायें।९

नारद बोले—हे महाबाहो ! साम्ब ! मेरे उत्तम वचनों को सुनो ! (सूर्य के) बुध, एवं सोम नेत्र हैं ईश्वर (शिव) मस्तक में स्थित हैं।१०। उसी प्रकार शिर में ब्रह्मा, कपाल भाग में बृहस्पति, कण्ठ में एकादश रुद्र, दाँतों में नक्षत्र एवं ग्रह, ओष्ठ पुट में धर्म-अधर्म, एवं जिह्वा पर सर्वशास्त्रमयी सरस्वती का निवास है। एवं कानों में सभी दिशाएँ, एवं उपदिशाएँ (कोने) स्थित हैं।११-१३। तालु प्रदेश में देवों द्वारा पूजित ब्रह्मा तथा इन्द्र सुशोभित हैं, उन विभु सूर्य के भौहों के मध्य भाग में बारह आदित्य स्थित हैं।१४। रोम कूपों में ऋषिगण, जठर में समुद्र, तथा हृदय में यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, पिशाच, दानव, एवं समस्त राक्षस गण स्थित हैं। एवं बाहुओं में नदियाँ, कक्ष (कौरव) में पर्वत, पीठ के मध्य भाग में मेरु, स्तनों के मध्य भाग में मंगल, नाभि-मण्डल में उनके पुत्र धर्मराज स्थित हैं।१५-१७। कटि प्रदेश में पृथिवी आदि, लिंग में सृष्टि, जानु (घुटने) में अश्विनी कुमार, तथा ऊरु प्रदेश में पर्वतों की स्थिति

---

१. काञ्चनी। २. कण्ठमध्ये।

सप्त पाताललोकास्तु नखमध्ये समाश्रिताः । ससागरवना पृथ्वी पादमध्येऽस्य वर्तते ॥१९
देवः कालाग्निरुद्रो यो दन्तान्तेषु समाश्रितः । सर्वदेवमयो भानुः सर्वदेवात्मकस्तथा ॥२०
व्यंगेषु वायवश्चैव लोकालोकं चराचरम् । व्याप्तं कर्मशरीरेण वायुना तस्य वै विभोः ॥२१
स एष भगवानर्को भूतानुग्रहणे स्थितः । एतत्ते परमं ज्ञानमेतत्ते परमं पदम् ॥२२
तस्य स्थानविभागेन प्रतिमास्थापनं यथा । तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने प्रतिमाप्रतिष्ठाकल्पे विश्वरूपवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३३।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मण्डलविधिवर्णनम्

नारद उवाच

प्रतिपच्च द्वितीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा । दशमी त्रयोदशी चैव पौर्णमासी च कीर्तिता ॥१
सोमः बृहस्पतिश्चैव शुक्रश्चैव बुधस्तथा । एते सौम्या ग्रहाः प्रोक्ताः प्रतिष्ठायज्ञकर्मणि ॥२
त्रिषूत्तरासु रेवत्यामश्विन्यां ब्राह्मभे तथा । पुनर्वस्वोस्तथा हस्ते वासवे[1] श्रवणेऽथवा ॥

बतायी गई है ।१८। इस भाँति नख के मध्य में पाताल आदि सात लोक स्थित हैं । इनके चरण के मध्य भाग में सागरों एवं जंगलों समेत पृथ्वी रहती है ।१९। और दाँतों के अन्त में कालाग्नि रुद्र देव वर्तमान हैं । इस प्रकार सर्वदेवमय भानु सर्वदेवात्मक कहे जाते हैं ।२०। प्रकाशित अप्रकाशित चर-अचर स्थानों में व्याप्त वायु की भाँति सूर्य कर्म शरीर रूपी वायु द्वारा समस्त लोकों में व्याप्त हैं । इस भाँति वायु भी उन्हीं के अंग का निवासी है ।२१। इस प्रकार भगवान् सूर्य जीवों के ऊपर, अनुग्रह करने के लिए ही स्थित हैं और यही तुम्हारे लिए परम ज्ञान एवं परम रूप हैं ।२२। स्थान विभाग द्वारा जिस प्रकार उनकी प्रतिमा की स्थापना (प्रतिष्ठा) की जाती है, उसे ब्रह्मा ने पहले समय में जैसे बताया था, मैं उसे उसी ढंग से तुम्हें बताऊँगा ।२३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान के प्रतिमा प्रतिष्ठा कल्प में विश्व रूप वर्णन नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३३।

अध्याय १३४

मण्डल विधि वर्णन

नारद बोले—प्रतिपदा, द्वितीया, चतुर्थी, पंचमी, दशमी, त्रयोदशी, तथा पूर्णिमा तिथियाँ (प्रतिष्ठा के लिए) शुभ बतायी गई हैं ।१। सोम, बृहस्पति, शुक्र, तथा बुध दिन प्रतिष्ठा रूपी यज्ञ में सौम्य ग्रह कहे गये हैं ।२। इसी प्रकार तीनों उत्तरा, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, पुष्य,

---

१. पुष्येण ।

भरण्यां चैव नक्षत्रे भानोः[1] स्थापनमुत्तमम् ॥३
शोधयित्वा तु वै भूमिं तुषकेशविवर्जिताम् । वालुकाङ्गारपाषाणास्थिविहीनां विशोध्य तु ॥४
चतुर्हस्तसमायुक्ता वेदी विस्तरतो रवेः[2] ॥५
मण्डपस्तु प्रमाणेन दशहस्तः समंततः । मण्डलं वृक्षशाखाभिः कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥६
नदीसङ्गमतीरोत्थां मृत्तिकां[3] च समानयेत् । उपलिप्य ततो भूमिं कारयेत्कुण्डमुत्तमम् ॥७
चतुरस्रं श्रिया युक्तं पूर्वं कुण्डं तु कारयेत् । दक्षिणे चार्धचन्द्रं स्याद्वारुण्यां दिशि वर्तुलम् ॥८
पद्माकारं तु वै कुर्यादुत्तरे[4] च विचक्षणः । तोरणानि ततः कुर्यात्पञ्चहस्तानि सुव्रत ॥९
न्यग्रोधोदुम्बरौ चैव बिल्वपालाशमेव च । अश्वत्थश्च शमी चैव चन्दनश्चेति कीर्तिताः ॥१०
शुक्लवस्त्रसमायुक्तश्चित्रपट्टसमन्वितः । जपमालान्वितः कुर्यात्तोरणानि विचक्षणः ॥११
अग्निमीळेति मन्त्रेण यजेद्वै पूर्वतोरणम् । इषेत्वोर्जेति मन्त्रेण यजेद्दक्षिणतोरणम् ॥१२
अग्न आयाहीति मन्त्रेण पश्चिमं तु समर्चयेत् । शं नो देवीति मन्त्रेण यजेदुत्तरतोरणम् ॥१३
कलशांस्तु समादाय हेमगर्भसमन्वितान् । श्वेतचन्दनपङ्केन कण्ठस्वस्तिकभूषणान् ॥१४
यवशालिशरावान्नवस्त्रालङ्कारविग्रहान् । आजिघ्रेति च मन्त्रेण कलशांस्तु निवेशयेत् ॥१५
दुकूलश्चित्रपट्टैश्च वेष्टयेत्स्तम्भमालिकाम्[5] । ध्वजादर्शपताकाभिश्चामरैस्तु वितानकैः ॥१६
शङ्खघण्टानिनादैश्च गेयमङ्गलवाचनैः । तूर्यभेरीनिनादैश्च वेदध्वनिसमन्वितैः ॥१७

श्रवण, और भरणी नक्षत्रों में सूर्य की प्रतिष्ठा उत्तम बतायी गयी है ।३। ऐसी भूमि का, जिसमें तुष (भूसी), केश, बालू, कोयला, पत्थर, एवं हड्डियाँ न हों, संशोधन करके उसमें चार हाथ की विस्तृत वेदी बनाये ।४-५। मण्डप का प्रमाण दश हाथ का बताया गया है । उसमें विधान पूर्वक वृक्ष की शाखाओं का मण्डल भी बनाना चाहिए ।६। नदी के संगम के तीर के पास की मिट्टी लाकर, भूमि को (गोबर से) लीप कर उसमें उत्तम कुण्ड बनाये ।७। पूरब की ओर चौकोर, एवं सुन्दर कुण्ड की रचना करके, दक्षिण में अर्ध चन्द्र, पश्चिम में वर्तुल (गोलाकार) और बुद्धिमान् को चाहिए कि उत्तर में कमल के समान आकार के कुण्ड बनायें । हे सुव्रत ! उस मण्डल में पाँच हाथ का तोरण होना चाहिए ।८-९। बरगद, गूलर, बेल पलाश, पीपल, शमी, एवं चन्दन वृक्ष तोरण के लिए प्रशस्त बताये गये हैं ।१०। शुभ्र वस्त्र, चित्र (विचित्र) पट्टों से विभूषित, एवं जपमाला समेत तोरण पण्डितों को बनाना चाहिए ॥११। 'अग्नि मीळे' इस मंत्र द्वारा पूर्व वाले तोरण की पूजा करके, 'इषेत्वोर्जेति' मंत्र से दक्षिण वाले 'अग्न आयाहि' इस मंत्र से पश्चिम वाले तथा 'शं नो देवी' ति मंत्र द्वारा उत्तर वाले तोरण की पूजा करनी चाहिए ।१२-१३। एवं उनके भीतर रखे गये सुवर्ण समेत कलशों का जिनके कंठ श्वेत चन्दन द्वारा रचित स्वस्तिका से अलंकृत हों और जवा, या चावल भरे शराबों (कसोरों) एवं अन्न-वस्त्रों तथा अलंकारों से सम्पूर्ण शरीर सुसज्जित हों 'आजिघ्रेति' मंत्र द्वारा स्थापन करना बताया गया है ।१४-१५। पुनः चित्र-विचित्र वस्त्रों से मण्डप के स्तम्भों को आवेष्टित करने के उपरान्त ध्वजा, दर्पण, पताका, चामर, एवं (चाँदनी) से मण्डप सुशोभित करते हुए शंख, घंटा, मांगलिक पाठ, तुरुही, दुन्दुभी, आदि वाद्यों की ध्वनियों से निनादित, तथा पुण्यवेद

---

१. रवेः । २. भवेत् । ३. वालुकां च । ४. उत्तरेण । ५. तान्सुमंगलम् ।

पुण्यैश्च जयशब्दैश्च कारयेत महोत्सवम् । पताकाभिर्विचित्राभिः पूजामाल्योपशोभितम् ॥१८
विचित्रस्रग्वितानाढ्यं प्रकीर्णकुसुमाङ्कुरम् । तन्मध्ये तु कुशास्तीर्णे देवार्चां स्थापयेद् बुधः ॥१९
पताकां पीतवर्णां तु पूर्वे शक्राय दापयेत् । आग्नेय्यां रक्तवर्णाभां[1] [2]यमाशायां यमोपमाम्[3] ॥२०
नीलाञ्जनसमप्रख्यां नैर्ऋत्यां च प्रदापयेत् । वारुण्यां सितवर्णां च कृष्णां वायव्यगोचरे ॥२१
हरितां यक्षराजाय ऐशान्यां सर्ववर्णिकाम् । श्वेतरक्तकचूर्णेन पद्ममालेखयेत्ततः ॥२२
वैद्या वेदीति मन्त्रेण वेद्या आलभनं भवेत् । पूर्वाग्रानुत्तराग्रांश्च कुशानास्तीर्य यत्नतः ॥२३
योगेयोगेति मन्त्रेण कुशैश्चास्तरणं भवेत् । शय्या तत्रैव कर्तव्या दिव्यास्तरणसंयुता ॥२४
गडुके द्वे विचित्रे तु तन्मध्ये स्थापयेद्बुधः । विचित्रदीपमालाभिर्भक्ष्यभोज्यान्नपानकैः ॥२५
धूपकान्सुविचित्रान्वै मोदकांश्च प्रदापयेत् । पायसं कृशरं चैव दध्योदनसमन्वितम् ॥२६
दधि चन्द्रसमप्रख्यं शुभच्छत्रं च विन्यसेत् ॥२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने सूर्यप्रतिष्ठायां मंडलविधिवर्णनं नाम चतुस्त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३४।

ध्वनि द्वारा मुखरित उस महोत्सव को जय जय (कार) शब्दों के महान् कोलाहल समेत सुसम्पन्न करना चाहिए इसी प्रकार विचित्र पताकाओं से भूषित, पूजा की मालाओं से सुशोभित एवं अन्य मालाओंसे अलंकृत उस लम्बी चौडी चाँदनी (चँदोवा) में बिखरे हुए कोमल कली वाले पुष्पों से सुसज्जित उस मण्डल के मध्य में कुशा का स्तरण बिछौना बना कर उसको पुष्पों से आच्छादित करके प्रतिमा पण्डितों को स्थापित करनी चाहिए ।१६-१९। तथा पीले रंग की पताका पूरब की ओर इन्द्र के लिए, लाल रंग की पताका आग्नेय में, यम की भाँति काले रंग की पताका दक्षिण की ओर, नील-कृष्ण रंग की पताका नैऋत्य में, उज्ज्वल वर्ण की पताका पश्चिम में कालेरंग की पताका वायव्य में हरे रंग की पताका कुबेर के लिए उत्तर की ओर, और समस्त रंगों की पताका ईशान में रखनी चाहिए । अनन्तर श्वेत एवं रक्त (रंग) के चूर्ण द्वारा कमल की रचना 'वैद्या वेदी' इस मंत्र द्वारा वेदी का आलंभन करे । पश्चात् उस वेदी पर पूरब एवं उत्तर की ओर अग्रभाग करके प्रयत्न पूर्वक कुशा बिछायें जिसमें कुश का स्तरण (बिछौना) बनाते समय 'योग योग' इस मंत्र का उच्चारण कहा गया है । अतः दिव्य बिछौने से सुसज्जित वहाँ एक शय्या स्थापित करके, उसके मध्य भाग में पंडित को चाहिए कि दो तकियां भी रखें । तदुपरांत विचित्र दीप माला, भक्ष्य-भोज्य, अन्नपान, मालपूआ, उत्तम मोदक के साथ खीर, कृशर (खिचड़ी), दही, भात, तथा दही और चन्द्रमा की भाँति शुभ छत्र भी वहाँ उपस्थापित करें ।२०-२७

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान के सूर्य प्रतिष्ठा में मण्डलविधि वर्णन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३४।

---

१. अग्नये इत्यर्थः । २. याम्यायां यमसंनिभाम् । ९. यमोपमां कृष्णाम् । यमायेति शेषः ।

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

प्रतिष्ठास्नानविधिवर्णनम्

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्नानकर्मविधिं तव । स्नापकस्तु महाप्राज्ञो ब्राह्मणो वेदपारगः ।।१
अभिज्ञः सौरशास्त्राणामरुणो यदुसत्तम[1] । भोजको भोजकैश्चान्यैर्ब्राह्मणैश्च तथा वृतः ।।२
दिशाभागे मण्डलस्य ईशाने वै यथाक्रमम् । हस्तमात्रप्रमाणं तु भद्रपीठं तु विन्यसेत् ।।३
हस्तिना शकटेनापि शक्त्या ब्रह्मरथेन च । मंगलैर्ब्रह्मघोषैश्च देवं प्रासादमानयेत् ।।४
भद्रपीठं समादाय भद्रं कर्णेति मन्त्रतः । सूत्रधारस्तथा प्रोक्ताः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।।५
स्नापयेत्कलशं गृह्य देवदेवं विभावसुम् । सामुद्रं तोयमाहृत्य जाह्नवं यामुनं तथा ।।६
सारस्वतं जलं पुण्यं चान्द्रभागं ससैन्धवम् । पुष्करस्य जलं श्रेष्ठं गिरिप्रस्रवणोदकम् ।।७
अन्यद्वापि शुचि तोयं नदीनदतडागजम् । यथाशक्त्या उपाहृत्य कलशैः काञ्चनादिभिः ।।८
भोजकाश्चाष्टभिः सूर्यं कलशैः स्नापयन्ति वै । ततस्तु मणिरत्नानि सर्वबीजौषधीस्तथा ।।९
सुगन्धीनि च माल्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च । चन्दनानि च मुख्यानि गन्धाश्च विविधास्तथा ।।१०

अध्याय १३५

प्रतिष्ठा स्नानविधि का वर्णन

नारद बोले—इसके उपरान्त सूर्य स्नान-विधानक मैं तुम्हें बताऊँगा सुनो ! ।१। जो महाबुद्धिमान्, ब्राह्मण, वेदनिष्णात, एवं सौर (सूर्यसम्बन्धी) शास्त्रों का भली भाँति ज्ञाता हो ऐसे किसी भोजक को भोजक या अन्य ब्राह्मण लोग सूर्य के स्नान कराने के लिए नियुक्त करें ।२। पुनः मंडल के ईशान कोण में एक हाथ के प्रमाण का भद्रपीठ (सुन्दरआसन) रख कर उसी पर बैठाकर स्नान कराने के हेतु, हाथी गाड़ी अथवा ब्रह्मरथ (ब्राह्मण के द्वारा ले जाये जाने वाले) द्वारा सूर्य की वह प्रतिमा मांगलिक ब्रह्मघोष पूर्वक वहाँ (स्नान गृह में) ले जायें ओर 'भद्रं कर्णे' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस पीठासन पर मूर्ति स्थित कर सूत्र एवं पवित्र शुभ्र वस्त्र धारण कराकर उन देवाधिदेव सूर्य का स्नान कलश के जल द्वारा सुसम्पन्न करायें जो पवित्र समुद्र गंगा एवं पुण्य जल यमुना, सरस्वती चन्द्रभागा, सिंधु, पुष्कर तथा पर्वतों के झरनों और अन्य भी नदी, नद, एवं तालाबों से यथाशक्ति सुवर्ण आदि के कलशों में लाकर रखे गये हों ।३-८। भोजक लोगों को उन आठ कलशों के जल से सूर्य का स्नान कराना बताया गया है उन जल पूर्णकलशों में मणि, रत्न, सर्व बीज, सर्व औषधियाँ सुगन्धित मालाएँ, स्थल कमल मुख्य चन्दन और भाँति-भाँति के गंध, ब्राह्मी, सुवर्चला (सोंचर नामक नमक), मुस्ता (मोथा), विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), शतावरी, दूर्वा, शिवी पुष्पी (गुल्मानामक औषध), प्रियंगु, रजनी (पर्पटी नाम

---

१. यदि सुव्रतः ।

ब्राह्मी सुवर्चला मुस्ता विष्णुक्रान्ता शतावरी। दूर्वा च शिबिपुष्पी च प्रियङ्गु रजनी वचा ॥११
सम्भृत्यैतांस्तु सम्भारान्स्नानकर्मविभागवित्। बलाश्वत्थशिरीषाणां पल्लवैः कुशसंयुतैः ॥१२
कलशोपरि विन्यस्य दद्यादर्घ्यं रवेः सदा। काञ्चनै राजतैस्ताम्रैर्मृण्मयैः कलशैस्तथा ॥१३
साक्षतैः सहिरण्यैश्च सर्वौषधिसमन्वितैः। गायत्र्या परिपूतैस्तु षोडशैः स्नापयेद्रविम् ॥१४
कुशोत्तरां[1] ततः कृत्वा वेदिं पक्वेष्टकामयीम्। तस्यां वेद्यां समारोप्य परिधाप्य च वाससी ॥१५
प्रतिमामभिषिञ्चेच्च सोपवासः प्रयत्नतः। मूर्ध्नि सर्वौषधीः कृत्वा तथैवामलकानि च ॥१६
मन्त्रेण मृत्तिकां चापि मन्त्रतश्च जलं तथा। त्वं देवी वन्दिता देवैः सकलैर्दैत्यदानवैः ॥१७
तेन संस्थापिता मूर्ध्नि मया देवस्य शुद्धये। आदिस्त्वं सर्वभूतानां देवतानां च सर्वथा ॥१८
रसानां पतये तुभ्यमाह्वानं च कृतं मया। इत्थं पौराणिकैर्मन्त्रैर्वैदिकैश्च विशेषतः ॥१९
कार्यं हि वारुणं स्नानं देवस्य यदुनंदन। इत्थमुच्चारयेद्वाचं कुर्यात्स्नानं विचक्षणः ॥२०
देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः। व्योमगङ्गा च पूर्णेन द्वितीयकलशेन तु ॥२१
सारस्वतस्य पूर्णेन कलशेन सुरोत्तम। शक्रादयोभिषिचन्तु लोकपालाः सुरोत्तमाः ॥२२
सागरोदकपूर्णेन चतुर्थकलशो न तु। वारिणा परिपूर्णेन पद्मपत्रसुगन्धिना ॥२३

वाली, वच, ये वस्तुएँ पहले अवश्य डाल देनी चाहिए।, क्योंकि स्नान विधान के ज्ञाता को ऐसा करना आवश्यक बताया गया है। और बरगद, पीपल, एवं शिरीष के कोमल पल्लव तथा कुश, इन्हें कलश के ऊपर रखकर सूर्य के लिए सदैव अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार सुवर्ण, चाँदी, ताँबे, या मिट्टी के कलशों में अक्षत, सुवर्ण, तथा सर्व औषधियाँ डाल कर गायत्री मंत्र से पवित्र किये गये उन सोलहों कलशों के जल से सूर्य का स्नान कराना चाहिए।९-१४। पश्चात् पक्की ईटों से निर्मित वेदी पर कुश बिछाकर दो वस्त्रों को धारण कर उस प्रतिमा को स्थापित करें।१५। और उपवास रहते हुए स्वयं उस मूर्ति का अभिषेक करे। अभिषेक विधान में सर्वप्रथम सर्व औषधियों तथा आमले को शिर पर रखने के उपरान्त मिट्टी एवं जल को इन मंत्रों के उच्चारण द्वारा पवित्र करें—हे देवि! समस्त देव तथा दानवों की तुम वन्दनीया हो।१६-१७। इसीलिए सूर्य प्रतिमा की शुद्धि के लिए मैंने पहले इसे शिर पर ही स्थापित किया है, समस्त भूत (प्राणी) एवं देवताओं की तुम आदि हो और रसों की स्वामी हो इसीलिए तुम्हें मैंने यहाँ आवाहित किया है। हे यदुनन्दन! इस प्रकार पौराणिक एवं विशेषकर वैदिक मंत्रों द्वारा उनका वारुण (जल) स्नान कराये और अपने स्नान करते समय भी इसी प्रकार उच्चारण करते रहना चाहिए।१८-२०। हे सुरोत्तम! अभिषेक के समय पुनः प्रार्थना करें, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव तथा आकाश गंगा आदि देवता तुम्हारा अभिषेक करे, ऐसा कहते हुए दूसरे कलश के जल से स्नान कराये।२१। सारस्वत- जल से पूर्ण तीसरे कलश द्वारा देवश्रेष्ठ इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारा अभिषेक करें।२२। सागर से भरे जल चौथे कलश के जल से सुगन्धित कमल-पत्र एवं पूर्ण पाँचवें कलश के जल से नाग लोक तुम्हारा अभिषेक करे ऐसा कह कर चौथे पाँचवें कलश के जल से स्नान कराये एवं हेमकूट

---

१. चतुरस्राम्।

पञ्चमेनाभिषिञ्चन्तु नागाश्च कलशेन तु । हिमवद्धेमकूटाद्याश्चाभिषिञ्चन्तु वारिणा ।।२४
नैर्ऋतोदकपूर्णेन षष्ठेन कलशेन तु । सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन पद्मरेणुसुवासिना ।।२५
सप्तमेनाभिषिञ्चन्तु ऋषयः सप्त ये वराः । वसवश्चाभिषिञ्चन्तु कलशेनाष्टमेन वै ।।२६
अष्टमङ्गलयुक्तेन देवदेव नमोऽस्तु ते । ततो वै कलशैर्दिव्यैः स्नानकर्म समारभेत् ।।२७
समुद्रं गच्छ यः प्रोक्तो मन्त्रमेतमुदीरयेत् । हिरण्यगर्भेति च यो मन्त्रस्तं समुदीरयेत् ।।२८
समुद्रज्येष्ठेति मन्त्रेण क्षालयेन्मृत्तिकान्वितम् । सिनीवालीति मन्त्रेण दद्याद्वल्मीकमृत्तिकाम् ।।२९
शम्युदुम्बरमश्वत्थं न्यग्रोधं च पलाशकम् । यज्ञं यज्ञेति मन्त्रेण दद्यात्पञ्चकषायिकम् ।।३०
पञ्चगव्यं पवित्रं च आहरेत्ताम्रभाजने । गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।।३१
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि । तेजोऽसीति घृतं तद्वद्देवस्य त्वा कुशोदकम् ।।३२
एवमादिविधियुतं पञ्चगव्यं प्रकीर्तितम् । या[1] ओषधीति मंत्रेण स्नानमोषधिभिः क्रमात् ।।३३
द्रुपदाभिः पुनस्तस्य कुर्याच्चोद्वर्तनं बुधः । शिरः स्नानं ततो दद्यान्मानस्तोकाभिमन्त्रितम् ।।३४
विष्णोरराटमन्त्रेण दद्याद्गन्धोदकं शुभम् । ततो नद्युद्भवेनैव क्षालयेच्छुद्धवारिणा ।।३५

हिमवान् नैर्ऋत्य दिशा में रखे गये छठवें कलशों से तुम्हारा अभिषेक करें ऐसा कहते हुए छठे कलश जल से स्नान करायें। और सभी तीर्थों के जल से पूर्ण, एवं कमल-पराग से वासित उस सातवें कलश के जल से सातों ऋषि गण तुम्हें अभिषिक्त करें। ऐसा कहकर सातवें कलश के जल से तथा आठमंगलों से युक्त उस आठवें कलश जल द्वारा आप का अभिषेक करें अतः देवाधिदेव ! आप के लिए नमस्कार है। इस भाँति की विनम्र प्रार्थना के उपरांत उन आठों दिव्य कलशों के जल से क्रमशः स्नान करायें।२३-२७। 'समुद्रं गच्छे' वि 'हिरण्य गर्भे' ति, तथा 'समुद्र ज्येष्ठे' ति, इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक उस मूर्ति के शरीर में लगायी गई मिट्टी का प्रक्षालन (स्नान) करना बताया गया है। इसलिए 'सिनी वाली' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक मूर्ति के अंगों में बल्मीकं की मिट्टी लगानी चाहिए।२८-२९। इस प्रकार 'यज्ञ यज्ञे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक शमी, गूलर, पीपल, बरगद, एवं पलाश, इन पांचों का कषाय (काढ़ा) बनाकर उसे मूर्ति के शिर पर सर्वप्रथम डालने को कहा गया है।३०। पश्चात् पवित्र गव्य को ताँबें के पात्र में रखे और उससे स्नान करायें जिससे क्रमशः गायत्री मंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रथम गोमूत्र, 'गंध द्वारे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक गोमय (गोबर), 'आप्यास्वे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक दूध दधिकाव्णेति के उच्चारण पूर्वक दधि, 'तेजोऽसी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक घी, और उसी प्रकार 'देवस्य त्वे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक कुशोदक रखा गया हो।३१-३२। इसे ही पंत्रगव्य बताया गया है। तदनन्तर 'या ओषधी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक क्रम प्राप्त औषधि से स्नान कराये।३३। और 'द्रुपदाभिरिति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक पंडित को चाहिए कि उस (मूर्ति) का उद्धर्तन (अंगों को मलें) करें। पश्चात् 'मानस्तोके' इस मंत्र से अभिमंत्रित जल से उस (मूर्ति) का शिरः स्नान करावें।३४। और उसके अनन्तर 'विष्णो रराट' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक गन्धोदक से, पुनः नदियों के शुद्ध जल से, और 'जातं वेदसम्' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वस्त्र-पूत (कपड़े

---

१. आपो हिष्ठेति ऋचा।

जातवेदसमुच्चार्य वस्त्रपूतेन वारिणा । तत आवाहयेद्देवं रक्तमाल्याम्बरं शुभम् ।।३६
एह्येहि भगवन्भानो लोकानुग्रहकारक । यज्ञभागं गृहाणार्घ्यमर्कदेव नमोऽस्तु ते ।।३७
हिरण्येन तु पात्रेण देवायार्घ्यं प्रदापयेत् । इदं विष्णुर्विचक्रमे मन्त्रेणार्घ्यं समर्पयेत् ।।३८
पार्थिवैः प्रथमं कलशैः स्नापयेद्भास्करं बुधः । ततस्त्वौदुम्बरैर्वीर राजतैस्तदनन्तरम् ।।३९
ततस्तु काञ्चनैर्देवं स्नापयेद्यदुनन्दन : सर्वतीर्थजलैर्युक्तं सर्वौषधिसमन्वितम् ।।४०
शङ्खमादाय[1] देवस्य ततो मूर्धनि शङ्कर । दत्त्वा पुष्पाणि देवस्य मूर्ध्नि यत्नाद्विचक्षणः ।।४१
तोयमुत्क्षिप्य यत्नेन ततः स्नपनमाचरेत् । प्रथमं स्नापयेद्देवं वारिणा यदुनन्दन ।।४२
ततस्तु पयसा राजन्पायसेन ततस्तु वै । घृतेन मधुना वापि तथा इक्षुरसेन च ।।४३
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य गोमेधस्य[2] च सुव्रत । ज्योतिष्टोमस्य राजेन्द्र वाजपेयस्य वै विभो ।।४४
राजसूयाश्वमेधाभ्यां घृताद्यैर्लभते फलम् । यस्तु कारयते स्नानं यस्तु भक्त्या प्रपश्यति[3] ।।
क्रियमाणं तु देवस्य स्नानं यदुकलोद्वह ।।४५
य एते कथिता यज्ञा एतेषां क्रमशः फलम् । अर्चां च कुरुशार्दूल दृष्ट्वा वै लभते फलम् ।।४६
स्नानं तु यत्नतः कार्यं देवदेवस्य सुव्रत । यथा न लङ्घयेत्कश्चिद्देवस्य स्नपनं विभोः ।।४७
न प्राश्नन्ति यथा काकास्तीर्थं लोकविगर्हिताः । स्नानोदकं तु देवस्य अथवा पय एव हि ।।४८

से छाने गये) जल से क्रमशः स्नान कराये । (इस भाँति सविधि स्नान कराने के उपरांत) लाल रंग के वस्त्र एवं उसी रंग की माला से सुसज्जित कर उसमें प्रति देवता का आवाहन करे ।३५-३६। हे भगवन् ! आइए, आइए ! (इस मूर्ति में अपनी स्थिति कीजिए) लोक के अनुग्रह करने वाले हे देव इस यज्ञ-भाग रूप अर्घ्य को ग्रहण कीजिए ।३७। हे सूर्य देव ! आप के लिए नमस्कार है । इस प्रकार कहते हुए सुवर्ण के पात्र में सूर्य देव के लिए अर्घ्य प्रदान करे । और अर्घ्य देते समय 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इस मंत्र का उच्चारण करता रहे ।३८। सर्व प्रथम मिट्टी के कलशों के जल से पंडितों को चाहिए उनका अभिषेक करें । हे वीर ! हे यदुनंदन ! पश्चात् चाँदी, एवं सुवर्ण के कलश-जलों से क्रमशः उनका अभिषेक करें । हे शंकर ! तदनंतर उस शंख के जल से, जिसमें समस्त तीर्थों के जल एवं समस्त औषधियाँ पड़ी हों, उस मूर्ति के शिर का स्नान करायें और स्नान के समय बुध-जन को चाहिए कि उस प्रतिमा के शिर पर पुष्प रख कर जल को ऊपर उठाये हुए (वारिधारा से) स्नान करायें ।३९-४२। ये यदुनन्दन ! इसी प्रकार सर्वप्रथम उस मूर्ति का जल से स्नान, पश्चात् दूध, दही, घी, शहद और ऊख के रस से क्रमशः स्नान करायें ।४३। हे सुव्रत, हे राजेन्द्र ! अग्निष्टोम, गोमेध, ज्योतिष्टोम, बाजपेय राजसूय तथा अश्वमेध, इन यज्ञों से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे समस्त फल, इस प्रकार घृतादि द्वारा (देव के) स्नान कराने से प्राप्त होते हैं ।४४-४५। हे कुरुशार्दूल ! उस पूजा-विधान के देखने पर भी वे फल प्राप्त होते हैं ।४६। हे सुव्रत ! देवाधिदेव (सूर्य) का इस भाँति प्रयत्न पूर्वक अभिषेक कराना चाहिए, जिससे कोई भी उस विभु (व्यापक) देव के स्नान कराये गये जलादि का उल्लंघन न करे ।४७। उसी भाँति लोक निन्दित कौवे कुत्ते भी देव के

---

१. चरणोपरि देवस्य । २. गोशतस्य ।

भूमौ गतं यथा चैव प्राश्नाति यदुनंदन । रोगं प्राप्नोति कर्ता वै दुःखं कारयिता तथा ॥४९
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं देवस्य स्नपनं विभोः ॥५०
स्नापयित्वा क्रमेणेत्थं स्नानकर्म विधानवित् । ततो वर्धनिकां गृह्य वारिधारां समुत्सृजेत् ॥५१
त्रिवारान्पुरतोऽर्कस्य आचमस्वेति च ब्रुवन् । नेदोसीति च मन्त्रेण उपवीतं प्रदापयेत् ॥५२
बृहस्पतेति मन्त्रेण वस्त्रयुग्मं प्रदापयेत् । यत्नक्रमं प्रकुर्वाणः पुष्पमालां प्रदापयेत् ॥५३
धूरसीति च मन्त्रेण धूपं दद्यात्सगुग्गलम्[1] । समिद्धोञ्जनमन्त्रेण अञ्जनं तु प्रदापयेत् ॥५४
युञ्जानीति च मन्त्रेण रोचनां तस्य दापयेत् । आरार्तिकं च वै कुर्याद्दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे ॥५५
स्नानकर्म त्विदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः । भोजका ब्राह्मणाश्चैव क्रियां कुर्युः प्रयत्नतः ॥५६
बह्वृचोऽथर्वणश्चैव छन्दोगोऽध्वर्युरेव च । स्नापकस्य च चिह्नानि ये च मूर्तिधरास्तथा ॥५७
तेषां प्रवक्ष्यामि विभो शृणु चैकमनाः किल । सम्पूर्णगात्रो मतिमाञ्छास्त्रज्ञः प्रियदर्शनः ॥५८
कुलीनः श्रद्दधानश्च आर्यदेशसमुद्भवः । न स्थूलो न कृशो दीर्घः सौरशास्त्रविशारदः ॥५९
यश्च युक्तो जितात्मा च गुरुभक्तो जितेन्द्रियः । पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः स्थापकः समुदाहृतः ॥६०
वर्जनीयांश्च वक्ष्यामि यैस्तु कर्म न कारयेत् । हीनाङ्गश्चाधिकाङ्गश्च वामनो विकटस्तथा ॥६१
नातिगौरो न कृष्णश्च स्नापनाय प्रयोजयेत् । चार्वाको याजकश्चैव नित्यं गोमुखदम्भकः ॥६२

स्नान कराये गये दूध या जल का पान न कर सके ।४८। हे यदुनंदन ! क्योंकि भूमि में गिरे हुए उस दूध आदि का पान यदि कोई (निन्दित जीव) करता है, तो कर्ता रोगी हो जाता है और उसके कराने वाले को दुःख की प्राप्ति होती है ।४९। इसलिए विभु सूर्य का स्नान प्रयत्न पूर्वक (गुप्त स्थान में) कराना चाहिए ।५०। इस प्रकार क्रमशः स्नान कराने के उपरांत विधानवेत्ता 'वर्धनिका' (अर्घ्यपात्र) द्वारा वारिधारा समर्पित करके 'आचमस्व' ऐसा कह कर तीनबार देवता के सामने जल गिराये । पश्चात् 'नेदोऽसी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक यज्ञोपवीत, 'बृहस्पते' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक दो वस्त्रों को धारण कराना चाहिए । तदुपरांत पुष्पमाला, 'धूरसी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक गुग्गुल की धूप, 'समिद्धोञ्जन' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक अंजन, 'युञ्जानी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक रोचना (तिलक) 'दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक आरती करनी चाहिए ।५१-५५। महात्मा सूर्य का स्नान कर्म इसी प्रकार सुसम्पन्न करना बताया गया है । अतः भोजक और ब्राह्मणों को प्रयत्न पूर्वक इस क्रिया की समाप्ति करनी चाहिए।५६। हे विभो ! स्नापक (स्नान कराने वाले) के लक्षण अब मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! बह्वृच (ऋग्वेद), अथर्ववेद, छन्दोग (सामवेद) अध्वर्यु यजुर्वेद, इनके ज्ञाता, समस्त अंगों से युक्त, बुद्धिमान् शास्त्र-कुशल, सुन्दर, कुलीन, श्रद्धालु, आयावर्त देश में उत्पन्न, न स्थूल (मोटा), न दुर्बल न लम्बा, सौर शास्त्रों का ज्ञाता, अध्यात्मशील, संयमी, गुरुभक्त, जितेन्द्रिय तथा पच्चीस तत्वों (सांख्यशास्त्र) का पूर्ण पंडित, एवं गुण सम्पन्न स्थापक होना चाहिए।५७-६०। मैं उन्हें भी बता रहा हूँ जिन्हें यज्ञ कर्म न करना चाहिए सुनो ! जो अंगहीन, अधिक अंग वाला, वामन (मोटा), विकट (भयंकर), अति गौर वर्ण, अथवा अत्यन्त काले वर्ण का हो, ऐसे लोगों को स्नापक न बनाना चाहिए।

---

१. प्रणम्यति ।

अशुचिव्रतसंयुक्तः श्यामदन्तोऽथ मत्सरी[1] । कोपनो[2] दुष्टशीलश्च युवा वा वृद्ध एव च ।।६३
श्वित्री कुष्ठी च रोगी च काणो दुर्मतिरेव च । संकीर्णो जातिहीनश्च तथा न वृषलीपतिः ।।६४
कुब्जश्चांधस्तथा व्यंगः खल्वाटो विकलेन्द्रियः । अविनीतो दुरात्मा च विकलः पङ्गुरेव च ।।६५
तिथिनक्षत्रयोगानां वाराणां च तथा विभो । सूचको जीविकार्थं[3] हि यश्च मूल्येन पाठयेत् ।।६६
ईदृशान्स्नापकान्सर्वान्विवर्जयेत प्रयत्नतः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परीक्ष्याः स्नापका बुधैः ।।६७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सांबोपाख्याने
सूर्यप्रतिष्ठास्नानविधिवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३५।

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यप्रतिष्ठावर्णनम्

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि अधिवासनमुत्तमम् । सहस्रशीर्षा पुरुषो मण्डप यत्नतो विशेत् ।।१
ततोऽन्ये च शुचौ देशे असंस्पृष्टोपलेपने । मण्डलं पञ्चवर्णैस्तु आलिखेच्चतुरस्रकम् ।।२
पताकातोरणच्छत्रध्वजमाल्याद्यलंकृतम् । विचित्रसुवितानाढ्यं प्रकीर्णकुसुमोत्करैः ।।३

चार्वाक (नास्तिक) माचक, गौ के समान मुख वाला, दम्भी, अपवित्रतापूर्ण, काले दाँतों वाला, मत्सरी, क्रोधी । दुःशील, युवा, बृद्ध, सफेद कुष्ठ, रोगी, काना, दुर्बुद्धि, संकीर्ण जाति, जातिहीन, शूद्र जाति की स्त्री का पति, कुबड़ा, अंधा, व्यंग, खल्वाट, विकलेन्द्रिय, शठ, दुरात्मा, विकल, पंगु, (लंगड़ा) तथा हे विभो ! तिथि, नक्षत्र, योग एवं दिनों की सूचना देकर अपनी जीविका करने वाला, और मूल्य ग्रहण कर पाठ करने वाला इस प्रकार के सभी व्यक्तियों को स्नापक होने के लिए निषेध किया गया है । इसलिए विद्वानों को चाहिए कि समस्त प्रयत्नों से उनकी परीक्षा करके उस कार्य के लिए नियुक्त करें।६१-६७

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमीकल्प के शाम्बोपाख्यान में
सूर्यप्रतिष्ठास्नान-विधि वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३५।

अध्याय १३६

सूर्यप्रतिष्ठा का वर्णन

नारद बोले—इसके उपरान्त मैं तुम्हें उत्तम अधिवासन का विधान बता रहा हूँ । सुनो ! 'सहस्रशीर्षापुरुषः' इस मन्त्र के उच्चारणपूर्वक मण्डप में प्रवेश कर उस पवित्र-स्थान में लेपन करके पाँच रंगों द्वारा चौकोर मण्डल की रचना करे।१-२। पुनः पताका, तोरण, छत्र, ध्वजा एवं मालाओं से उसे अलंकृत करके चित्र-विचित्र वस्त्र के सुन्दर वितान (ऊपर की चाँदनी) से भूषित करे जो बिखरे हुए अधखिले दिव्य, न अधिक उज्ज्वल, एवं न अधिक रक्त वर्ण के शुभ उस केंचुल को सूर्य ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए अपने मध्य भाग में बाँध लिया। नागराज के अंग (शरीर) से उत्पन्न उसे सूर्य के धारण करने के नाते (सूर्य) के भक्त भी

तस्य मध्ये कुशास्तीर्णे मूर्तिः स्थाप्या विवस्वतः । तत्रास्यावाहनं कृत्वा दद्यादर्घ्यं विवस्वते ।।४
सुवर्णमधुपर्कादि कृत्वा[1] तत्र विधानतः । देवस्य[2] दर्शयेद्गां च सवत्सां रोहिणीं शुभाम् ।।५
नमो गोपतये तुभ्यं सहस्रांशो प्रसीद मे । एवमर्घ्येण सम्पूज्य परिधाय च वाससी ।।६
यज्ञोपवीतमातिथ्यं तथाभ्यङ्गं तथैव च । वत्सरे वत्सरे तस्य नवमभ्यङ्गमाहरेत् ।।७
श्रावणे मासि राजेन्द्र पवित्रं तस्य तद्धि वै । ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु वर्षेवर्षे प्रयोजयेत् ।।८
अभ्यङ्गं यदुशार्दूल श्रावणे मासि भास्करम् । सर्वगन्धैः समालभ्य चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ।।९
अलङ्कारैरलङ्कृत्य कुसुमैश्च सुगन्धिभिः । मालाभिश्च विचित्राभिराबद्धाभिरनेकशः ।।१०
ततो धूपं निवेद्याशु प्रतिमाग्रे प्रयत्नतः । सहस्रशीर्षा पुरुषो मण्डपं च प्रवेशयेत् ।।११
नमः शम्भवेति मन्त्रेण शय्यायां विनिवेशयेत् । विश्वतश्चक्षुरित्येव कुर्यात्कमलनिष्कलम् ।।१२
पुनरेव च वक्ष्यामि सङ्कलीकरणं शुभम् । स्नापने तु यथा कार्यः स्वेदेहे न्यास उत्तमः ।।१३
प्रतिमायां तथा कार्यो यथा चालम्भनं बुधः । ॐ हुं खषोल्काय नमो मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः ।।१४
आदित्योऽयं स्वयं देवो ह्यक्षरेणोपबृंहितः । ॐकारं विन्यसेन्मूर्ध्नि हुंकारं नासिकोपरि ।।१५
खकारं च ललाटे तु षकारं वदने न्यसेत् । लकारं चैव कंठे तु ककारं हृदये न्यसेत् ।।१६

पुष्पों से सुशोभित किया गया है ।३। उपरांत उसके मध्य भाग में कुश का स्तरण (बिछौना) बनाकर सूर्य की मूर्ति उस पर स्थापित करे और आवाहन पूर्वक उन्हें अर्घ्य प्रदान करे ।४। तदनन्तर सुवर्ण तथा मधुपर्क आदि विधान पूर्वक प्रदान कर बछड़े समेत शुभ एवं कल्याण मूर्ति गाय का दर्शन उन्हें कराये ।५। तुम्हें गोपति को नमस्कार है, हे सहस्रांशो ! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हो—यह कहते हुए अर्घ्य द्वारा उनकी पूजा करें उन्हें दो वस्त्र धारण कराये ।६। पश्चात् यज्ञोपवीत, अभ्यंग, एवं आतिथ्य सत्कार से उन्हें सत्कृत करना चाहिए । इस प्रकार प्रत्येक वर्ष में उन्हें नया-नया अभ्यंग प्रदान करना चाहिए ।७। हे राजेन्द्र ! वह अभ्यंग उन्हें श्रावण मास में समर्पित करना बताया गया है क्योंकि उनके लिए वह पवित्रता की वस्तु कही गयी है । इस भाँति प्रति वर्ष ब्राह्मण भोजन पूर्वक उसे सादर समर्पित करना चाहिए ऐसा कहा गया है ।८। हे यदुशार्दूल ! इस भाँति श्रावण मास में सूर्य के लिए वह अभ्यंग जिसमें समस्त गंध, चन्दन, अगुरु, एवं कुंकुम पड़ा हो, समर्पित कर सुगन्धित पुष्पों एवं चित्र-विचित्र मालाओं से उन्हें आबद्ध करते हुए उस (प्रतिमा) के सामने सप्रयत्न धूप समर्पित करना चाहिए । पुनः 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' मंत्र का उच्चारण करते हुए उस प्रतिमा को मंडप में प्रविष्ट कराये ।९-११। और 'नमः शंभवे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे शय्या पर स्थापित करे । 'विश्वतश्चक्षुरि' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक कमलासन पर रखकर शुभ संकलीकरण (न्यास) करे । उसे मैं बता रहा हूँ । सुनो ! स्नान के समय अपनी देह में जिस भाँति-न्यास किया जाता है, वैसे ही उस मूर्ति के अंगों का न्यास करते हुए आलम्भन भी उसी भाँति करें । उसके लिए 'ओं हूं खषोल्काय' यही मूल मंत्र बताया गया है ।१२-१४। उसे अनश्वर सूर्य देव के ओंकार से शिर, हुंकार से नासिका के अग्रभाग, खकार से ललाट, षकार से मुख, लकार से कण्ठ, ककार से हृदय, यकार से बाईं भुजा, नकार से दाहिनी भुजा, मकार से बाईं कुक्षि, एवं विसर्ग से दाहिनी कुक्षि के

---

१. सुमनोधूपदीपकैः । २. दद्यात्तत्र प्रयत्नेन ।

यकारं तु भुजे वामे नकारं दक्षिणे भुजे । मकारं वामकुक्षौ च विसर्गं दक्षिणे न्यसेत् ।।१७
ॐकारं तु सदा ध्यायेज्ज्वालामालासमाकुलम् । हुङ्कारं शुद्धवर्णाभं प्रसुवन्तमलं शुभम् ।।१८
खकारं चिन्तयेत्प्राज्ञो भिन्नाञ्जनसमप्रभम् । तरुणादित्यवर्णाभं खकारं चिन्तयेद्बुधः ।।१९
षोकारं तु महाबाहो हेमवर्णं विचिन्तयेत् । शुक्लपद्मनिभाकारमकारं चिंतयेद्बुधः ।।२०
जातीयकुसुमसंकाशं ह्लींकारं सर्ववर्णकम् । क्षीरवर्णं सकारं तु चिन्तयेत्सततं बुधः ।।२१
नकारं हिमकुन्दाभं मकारममृताक्षरम् । ह्लींकारं विद्युत्संकाशं ह्लींकारं सर्ववर्णकम् ।।२२
क्षीरवर्णं सकारं तु चिन्तयेत्सततं बुधः । नकारं स्वर्णवर्णाभं मकारं कनकप्रभम् ।।२३
ततो देवं महात्मानं सहस्रकिरणं रविम् । प्रसादाभिमुखं देवं शयनीये निवेशयेत् ।।२४
अग्निकार्यं ततः कुर्युरग्निकुण्डेषु वै द्विजाः । ततोऽरण्यां समुत्थाप्य अग्निं लौकिकमेव वा ।।२५
प्रज्वाल्याग्निं विधानेन कुर्याद्धोमं विचक्षणः । बह्वृचः पूर्वकाण्डेषु याम्यां मध्यन्दिनस्तथा ।।२६
पश्चिमे चैव च्छन्दोग उत्तरेऽथर्वणो मतः । मध्ये च भोजकः कुर्याद्धोमं यज्ञे यदुत्तम ।।२७
शमीपालाशोदुम्बराणि ह्यपामार्गस्तथैव च । द्वादश तु सहस्राणि अष्टौ चत्वारि एव च ।।२८
द्वे त्रीणि च सहस्राणि अथ वा एकमेव हि । अग्निर्मूर्धेति मन्त्रेण कुण्डस्यालम्भनं भवेत् ।।२९
उल्लिख्याभ्युक्ष्य तेनैव अग्निं दूतमिति स्मृताः । सम्बुध्यस्वाग्ने मन्त्रेण गर्भाधानं तु कारयेत् ।।३०

न्यास (स्पर्श) करना चाहिए ।१५-१७। उपरान्त ज्वाला रूपी माला से आच्छन्न (अत्यन्त प्रदीप्त) रूप ओंकार का सदा ध्यान करे और शुद्ध वर्ण के समान प्रभापूर्ण, अत्यन्त शुभा वह हुंकार का एवं अंजन (काले) वर्ण के टुकड़े के समान कांति पूर्ण इस खकार का चिंतन प्राज्ञ को करना चाहिए । जो तरुण सूर्य की प्रभा के समान तेज युक्त है ।१८-१९। हे महाबाहो ! सुवर्ण के समान कान्ति वाले षोकार तथा श्वेत कमल की भाँति अकार का भी ध्यान करना बताया गया है ।२०। तथा चमेली के पुष्प की भाँति सर्ववर्णक ह्लींकार, क्षीर के समान वर्ण वाले सकार हिम एवं कुंद की भाँति नकार, अमृत की भाँति मकार, विद्युत तथा सभी वर्णों के समान ह्लींकार, क्षीर वर्ण के समान सकार, एवं सुवर्ण के समान नकार और मकार का भी ध्यान करना चाहिए ।२१-२३। इसके उपरांत सहस्र किरण वाले उन प्रसन्नतोन्मुख महात्मा सूर्य देव को उस हाथ पर शयन कराकर ब्राह्मण वृन्दों द्वारा अग्निकुण्ड में अग्नि कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए जिसमें अरणि द्वारा अग्नि उत्पन्न कर अथवा लौकिक अग्नि को प्रज्वलित करके विधान पूर्वक विद्वानों को हवन संपन्न करना बताया गया है ।२४-२५। उनमें ऋग्वेदी को पूर्व के कुण्ड में, माध्यान्दिन वाले को दक्षिण कुंड में सामवेदी को पश्चिम के कुण्ड में, और अथर्ववेदी को उत्तर वाले कुण्ड में हवन करना चाहिए । और हे यमदूत्तम ! मध्यस्थायी कुंड में भोजको को हवन करना चाहिए ।२६-२७। हवन के लिए अग्नि में शमी, पलाश, गूलर, और चिचिड़ा की लकड़ी को प्रज्वलित कर उसमें बारह, आठ, या चार सहस्र अथवा दो तीन या एक ही सहस्र आहुति डालनी चाहिए । ऐसा बताया गया है । सर्वप्रथम 'अग्नि मूर्धे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक कुंड का आलम्भन करके उल्लेखन तथा अम्युक्षण (सिंचन) भी 'अग्निं दूत' मिति मंत्र के द्वारा सम्पन्न करना चाहिए । एवं 'संवुध्यस्वाग्ने' इस मंत्र के उच्चारणपूर्वक गर्भाधान कराना चाहिए ।२८-३०। पुनः 'सीमन्तेति' इस महामंत्र के द्वारा हवन सम्पन्न

सीमन्तेति पुनस्तत्र महामन्त्रेण होमयेत् । जातकर्म तथा प्रोक्तं प्राणायामं विदुर्बुधाः ॥३१
नमः स्वाहेति मन्त्रेण नामकरणमेव च । अन्नप्राशनमन्त्रेण अन्नप्राशनमादिशेत् ॥३२
ज्येष्ठमग्रेति मन्त्रेण तेन चूडोपकर्मणि । व्रतबन्धस्य मन्त्रेण व्रतबन्धं समादिशेत् ॥३३
समावर्तनमित्येव आकृष्णेति च होमयेत् । पत्नीसंयोजनं चैव स्वयमेव प्रकल्पयेत् ॥३४
अग्निहोत्रादिकं कर्म यज्ञकर्माणि यानि च । महाव्याहृतिमन्त्रेण होतव्यानि समन्ततः ॥३५
मातृणां यज्ञभूतानां बलिकर्म प्रदापयेत् । सर्वकामसमृद्ध्यर्थं कारयेदधिवासनम् ॥३६
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं च अहोरात्रमथापि वा । ततः स्वलङ्कृता स्नातां मणिरत्नैर्विभूषिताम् ॥३७
कृतरक्षां प्रयत्नेन प्रतिमामधिवासयेत् । देवागारादथैशाने दिग्भागे दिव्यमन्दिरम् ॥३८
कृत्वा कुशपरिस्तीर्णे वरास्तरणसंवृते । पूर्वशीर्षां तथा शय्यां शुक्लां शुक्लाम्बरोत्तराम् ॥३९
तस्यामावेशयेत्सम्यङ्महाश्वेतमुपाहरेत् । निक्षुभा[1] दक्षिणे पार्श्वे वामे राज्ञी च कीर्तिता ॥४०
दण्डपिङ्गालकौ चास्य स्थितौ पादप्रवेशितौ । तस्यां संवेशितायां तु शर्वर्यां प्रतिमां रवेः ॥४१
वसेत्तां रजनीं तत्र स्तूयमानश्चतुर्दिशम् । ब्राह्मणैर्बन्दिभिश्चापि गीतज्ञैश्चारणैस्तथा ॥४२
कुर्याज्जागरणं तत्र सूर्यभक्तिसमन्वितः । प्रभातायां तु शर्वर्यां बोधयेदृग्विधानतः ॥४३

करे पश्चात् उसी भाँति जातकर्म और प्राणायाम के करने को विद्वानों ने बताया है ।३१। फिर 'नमः स्वाहे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनका नामकरण, अन्नप्राशन-मंत्र का उच्चारण करते हुए अन्नप्राशन 'ज्येष्ठ मग्रे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक चूड़ाकरण एवं व्रत-वंधके मंत्रों से व्रतबंध (यज्ञोपवीत) करके 'आकृष्णे' ति मंत्र के उच्चारणपूर्वक हवन कर्म जो समावर्तन कर्म कहा गया है सुसम्पन्न करे । तदुपरांत पत्नी संयोजन (विवाह) विधान स्वयं संपन्न करना चाहिए ।३२-३४। इस प्रकार अग्नि होमादि कर्म एवं यज्ञ कर्म बताये गयें हैं उन सभी स्थानों में 'महाव्याहृति' मंत्र द्वारा हवन संपन्न करना चाहिए ।३५। तदनन्तर मातृकाओं और यज्ञ-भूतों के लिए बलि प्रदान करके समस्त कामनाओं के सुसमृद्ध होने के लिए प्रतिमा का अधिवासन कर्म करना आवश्यक होता है ।३६। इस भाँति तीन, पाँच अथवा एक ही दिन रात तक स्नान पूर्वक मणि-रत्नों से विभूषित एवं संप्रयत्न रक्षित उस प्रतिमा का अधिवासन कर्म सुसम्पन्न करना चाहिए। देवमन्दिर के ईशान भाग में एक दिव्यस्थान की रचना करके उस पर कुश बिछाकर एक शुक्रवर्ण की शय्या रखे जिसका शिरोभाग पूरब की ओर हो, एवं शुद्ध वस्त्रों तथा उत्तम स्तरणों से वह सुसज्जित हो ।३७-३९। उसी पर उस सूर्य की प्रतिमा का शयन कराये जिसमें प्रतिमा की दाहिनी ओर निक्षुभा और बाई ओर राज्ञी के स्थित करने का विधान बताया गया है ।४०। उसी प्रकार उस (मूर्ति) के चरण के समीप में दंड, तथा पिंगल को स्थित करे । प्रतिमा के उस शय्या पर शयन करने के समय से प्रारम्भ कर शयन की समस्त रात चारों ओर से स्तुति करते हुए व्यतीत करे क्योंकि ब्राह्मण, बंदी, एवं गीत जानने वाले चारण लोगों को सूर्य की भक्ति पूर्वक गुण-गान द्वारा जागरण करते हुए उस रात का अवसान करना बताया गया है । पुनः प्रातःकाल ऋग्वेद के विधान द्वारा उन्हें जागृत करना

---

१. निक्षुभी ।

हविष्यं भोक्तुकामांस्तु ब्राह्मणान्भोजकांस्तथा । दक्षिणाभिश्च सम्पूज्य तैः कृतस्वस्तिवाचनः ।।४४
ततो गर्भगृहस्थाय मध्ये कृत्वा तु पिण्डिकाम् । विधिवत्तत्र सौवर्णं न्यसेत्सप्तहयं रथम् ।।४५
सर्वबीजौषधैश्चैव तत्र धृत्वा विधानवित् । दत्त्वार्घ्यं स्थापयेत्तत्र यजमानः सहायवान् ।।४६
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्जलधारासहाक्षतैः । कृत्वा पुण्याहशब्दं तु आलयस्य प्रदक्षिणाम् ।।४७
शुभलग्ने दिने ऋक्षे पूर्वाह्णे भानदे क्षणे । मुहूर्ते च शुभे भानोः प्रतिमां स्थापयेद्बुधः ।।४८
नाधोमुखीं नोर्ध्वमुखीं न पार्श्वावनतां तथा । समामभिमुखीं चेमां प्रतिमां तु निवेशयेत् ।।४९
पत्यौ चास्य ततः सम्यक्पार्श्वयोर्विनिवेशयेत् । निक्षुभा दक्षिणे पार्श्वे रवे राज्ञी तु वामतः ।।५०
ततस्तदुपहारार्थं सम्भारैः प्राक्समाहृतैः । मोदकायूषिकापूपशष्कुलीभूतशीर्षकैः ।।५१
कृशरैः पायसोन्मिश्रैः सर्वादिक्षु क्षिपेद्बलिम् । इन्द्राय देवपतये बलिने वज्रपाणये ।।५२
शतयज्ञाधिपतये तस्मै इन्द्राय ते नमः । त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण इन्द्रस्यावाहनं भवेत् ।।५३
अग्नये रक्तनेत्राय ज्वालामालार्दिताय वै । शक्तिहस्ताय तीव्राय तथा चैवाजवाहिने ।।
आग्नेय्यामग्निमन्त्रेण वह्नेरावाहनं स्मृतम् ।।५४
दण्डहस्ताय कृष्णाय महिषोत्तमवाहिने । सूर्यपुत्राय देवाय धर्मराजाय वै नमः ।।५५
यमाय त्विति मन्त्रेण मुद्रास्तस्यैव कीर्तिताः । नैर्ऋते खड्गहस्ताय नीललोहितकाय च ।।५६

चाहिए ।४१-४३। इस भाँति हविष्य भोजन के इच्छुक उन ब्राह्मणों एवं भोजकों की दक्षिणा समेत पूजा करके उनके द्वारा स्वस्ति वाचन कराये ।४४। और गर्भ गृह के मध्य में पिंडिका (वेदी या चौकी) रख कर उस पर सुवर्ण के सात घोड़े समेत उस सुवर्ण निर्मित रथ की स्थापना करे ।४५। और सविधान समस्त बीज एवं औषधियां रख कर वहाँ पत्नी समेत यजमान को सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए ।४६। तदुपरांत शंख एवं नगाड़े की गम्भीर ध्वनियों एवं अक्षत समेत जल धारा के प्रदान पूर्वक मांगलिक शब्द के उच्चारण करते हुए मन्दिर की प्रदक्षिणा करे ।४७। विद्वान् को चाहिए कि शुभलग्न, नक्षत्र एवं दिन के पूर्वार्द्ध समय किसी शुभ मुहूर्त में सूर्य की प्रतिमा की स्थापना करें ।४८। प्रतिमा का मुख नीचे, ऊपर न हो तथा किसी पार्श्व भाग में वह झुकी न हो । इस प्रकार समान तथा संमुखी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिए।४९। पश्चात् उस मूर्ति के दोनों पार्श्व भाग में उनकी दोनो पत्नियों का सन्निवेष स्थापित करे जिसमें सूर्य के दाहिने पार्श्व में निक्षुभा और बायें पार्श्व में राज्ञी की स्थिति हो ।५०। उसके अनन्तर उनके उपहार के लिए एकत्र किये गये सामग्री संभार में से मोदक रसदार बने भोज्य मालपूआ, शष्कुली (पूरी) भूत शीर्षक एवं कृशरान्न, इन्हें खीर समेत सभी दिशाओं में देवों के उद्देश्य से बलिरूप में रखे। उसमें विधानानुसार देवपति, बली, वज्रपाणि एवं सौ यज्ञों के अधिपति उस इन्द्र के लिए नमस्कार है, यह कहकर इन्द्र के लिए बलि प्रदान करें और 'त्रातारमि' ति इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक इन्द्र का आवाहन भी किया जाय ।५१-५३। रक्तनेत्र, ज्वालाओं की माला से पूर्ण, हाथ में शक्ति लिए, तीव्र, अज (छाग) वाहन वाले उस अग्नि के लिए नमस्कार है, इसके उच्चारण पूर्वक अग्नि के लिए बलि तथा 'आग्नेय्यामि' ति अग्नि के मंत्र द्वारा उनका आवाहन करे ।५४। हाथ में दंड लिए, कृष्ण वर्ण, विशाल महिष वाहन वाले, सूर्य पुत्र, एवं देव धर्मराज के लिए नमस्कार है, ऐसा कहते हुए धर्मराज के लिए बलि प्रदान करने एवं 'यमायत्वि' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनका आवाहन तथा उन्हें मुद्रा प्रदर्शित करे । हाथ

सर्वबाह्याधिपतये विरूपाख्याय वै नमः । आयं गौरिति मन्त्रेण नैर्ऋत्यां तु प्रकल्पयेत् ॥५७
वारुण्यां पाशहस्ताय वरुणायेति कल्पयेत् । मन्त्रेणावाहनं विद्यात्पञ्चनद्यः सरस्वतीम् ॥५८
प्राणात्मकाय धूपाय अभ्यङ्गायानिलाय च । ध्वजहस्ताय भीमाय नमो गन्धवहाय च ॥५९
तस्याप्यावाहनं विद्याद्यद्देवादेवहेडनम् । गदाहस्ताय सोमाय शुष्मिणे नृपाय च ॥६०
गदापट्टिशहस्ताय सोमराजाय वै नमः । ईशावास्यं च गुह्या वै सोममन्त्रः प्रकीर्तितः ॥६१
चतुर्मुखाय देवाय पद्मासनगताय च । कृष्णाजिननिषण्णाय नमो लम्बोदराय च ॥६२
गणाधिपतये देव नीलकण्ठाय शूलिने । विरूपाक्षाय रुद्राय त्रैलोक्याधिपते नमः ॥
अभि त्वा शूर नो मन्त्र ईशानाय प्रकल्पयेत् ॥६३
सर्वनागाधिराजाय श्वेतवर्णाय भोगिने । सहस्रफणिने नित्यमनन्ताय नमोनमः ॥६४
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति मन्त्रश्चैव प्रकीर्तितः । पञ्चरात्रादिभिर्न्यासो ह्यंगन्यासः प्रयुज्यते ॥६५
तथोक्षीरपानैश्च स्तुतिस्तोत्रैश्च भास्करम् । विप्रेभ्यो भोजकेभ्यश्च ततो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥६६
सूर्यक्रतुं महापुण्यं नैव कुर्याददक्षिणम् । स्थाप्यतेऽनेन विधिना तद्भक्तैः प्रतिमा च या ॥६७
सा तु वृद्धिकरा नित्यं सान्निध्याच्च सदा भवेत् । सप्तजन्मसु तेषां तु न रोगाः सम्भवन्ति हि ॥६८
उपासते त्रिरात्रं ये भानोर्यात्राभिवासने । गन्धमाल्योपहारैस्तु ते यान्ति भुवनं रवेः ॥६९

में खड्ग लिए नील, एवं लोहित (रक्त) वर्ण वाले, समस्त बाह्य के अभिनायक उस विरूप के लिए नमस्कार है, यह कहते हुए उन्हें बल प्रदान करे और 'अयं गौरी' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनका आवाहन करके नैर्ऋत्य दिशा में उन्हें स्थापित करे।५५-५७। उसी भाँति पाश हाथ में लिए उनके लिए पश्चिम दिशा में बलि प्रदान करते हुए 'पं चनद्यः सरस्वतीम्' इस मंत्र से उनका भी आवाहन करना चाहिए।५८। प्राणात्मक, धूप, अभ्यंग, हाथ में ध्वजा लिये गन्धवह वायु के लिए नमस्कार है, इसके उच्चारण पूर्वक वायु के लिए बलि प्रदान एवं, 'यद्देवादेवऽहे डनमि' ति मंत्र द्वारा उनका आवाहन करे। गदा हाथ में लिए सोम तेजस्वी नृप तथा गदापट्टिश धारण किये उस सोमराज को नमस्कार है, ऐसा कहकर सोमराज को बलि प्रदान करे। 'ईशावास्यं च गुह्य' यह उनके आवाहन का मंत्र है।५९-६१। चारमुख कमलासन पर स्थित तथा काले मृगचर्म पर बैठे उस लम्बोदर देव को नमस्कार है, ऐसा कहकर लम्बोदर के लिए बलि प्रदान करके पुनः गणों के अधिनायक, नीलकंठ, शूल अस्त्र, विरूपाक्ष, तीनों लोकों के अधिपति, उस रुद्र देव के लिए नमस्कार है, यह कहकर उन्हें बलि प्रदान करे। और 'अभि त्वा शूर नो' यह उनके आवाहन करने का मंत्र है।६२-६३। समस्त नागों के अधीश्वर, श्वेत वर्ण वाले, भोगी, सहस्रकण वाले, उस अनंत देव को नित्य नमस्कार है। ऐसा कहकर अंनत के लिए बलि प्रदान पूर्वक, 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इस मंत्र से उनका आवाहन करे। इस प्रकार पाँच रात तक उनके अधिवासन समय में अंगन्यास करते रहना चाहिए।६४-६५। तथा सूर्य के लिए क्षीर का पान समर्पित करते हुए स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुति करते रहें। पश्चात् ब्राह्मणों एवं भोजकों को दक्षिणा प्रदान करें।६६। इस प्रकार सूर्य का यह यज्ञ महान् पुण्य दायक बताया गया है अतः उसे कभी भी दक्षिणा हीन सम्पन्न नहीं करना चाहिए। क्योंकि जो सूर्य भक्त इस विधान द्वारा सूर्य की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करता है तो वह प्रतिमा नित्य वृद्धि कारक होती है, और उस मूर्ति के सान्निध्य में सूर्य देव सदैव वर्तमान रहते हैं तथा उसके सुसम्पन्न करने वाले को सात जन्म तक रोगाभिभूत नहीं होना पड़ता है।६७-६८। और जो तीन रात तक उनके अधिवासन में गंधमाला रूप उपहार पूर्वक उनकी उपासना करता है उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।६९।

आत्मीयं परकीयं वा प्रतिमास्थापनं रवेः । यः पश्यति पुमान्भक्त्या स स्वर्लोकमवाप्नुयात् ॥७०
दशानामश्वमेधानां वाजपेयशतस्य च । फलं प्राप्नोति पुरुषः प्रतिष्ठाप्य दिवाकरम् ॥७१
यावत्कीर्तिः पुण्यकृता भानोः स्थाने निवेशिते । तावत्स तु यदुश्रेष्ठ सूर्यलोके महीयते ॥७२
स्थापने चास्य वै मन्त्रः प्रोक्तो लोकेषु पूजितः । ध्रुवा द्यौश्च ध्रुवा पृथ्वी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ॥
श्रेयसे यजमानस्य तथा त्वं ध्रुवतां व्रज ॥७३
स्थापयित्वा रविं भक्त्या विधिदृष्टेन कर्मणा । मासे मासे क्रतुफलं लभन्ते नात्र संशयः ॥७४
एकाहेनापि यद्भानोः पूजया प्राप्यते फलम् । न तु क्रतुशतैर्वीर प्राप्यते मानवैर्भुवि ॥७५
कृत्वापि सुमहत्पापं यः पश्चात्सेवते रविम् । स याति सूर्यलोकं तु नरो विगतकल्मषः ॥७६
न भवेदिष्टकानां च द्रवणं भूमिसंमिति । स्वर्गे महीयते तावत्कारको देववेश्मनः ॥७७
खण्डस्फुटितसंस्कारं कृत्वा यत्फलमाप्यते । न तु क्रतुसहस्रैस्तु प्राप्यते फलमुत्तमम् ॥७८
सिकतामयमपि गृहं यस्तु कुर्याद्विभावसोः । गोपतेः स प्रियसदः प्रगच्छेद्गोपतेर्वरम् ॥७९
इत्येवं सुरवरस्य तस्य भानोर्भूतानां स्थितिनिलयप्रसूतिहेतोः ।
श्रीभागी भवति नरो निकेतकारी कल्पानां वसति शतं स सूर्यलोके ॥८०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने सूर्यप्रतिष्ठावर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३६।

इस भाँति अपने द्वारा अथवा कहीं किसी दूसरे के द्वारा किये गये सूर्य की प्रतिमा के स्थापन-विधान को भक्ति पूर्वक जो देखता है, उसे स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है ।७०। क्योंकि दश अश्वमेध एवं सौ वाजपेय यज्ञों के फल, सूर्य (मूर्ति) की प्रतिष्ठा करने वाले पुरुष को प्राप्त होते हैं ।७१। हे यदुश्रेष्ठ ! सूर्य की प्रतिमा को उत्तम स्थान में स्थापित करने से उस पुण्य कीर्ति की जब तक स्थिति रहती है, तब तक वह प्राणी सूर्य लोक में पूजित होता रहता है ।७२। सूर्य के प्रतिमा स्थापन में लोक पूजित यही मंत्र कहना चाहिए 'आकाश, पृथिवी, तथा यह समस्त विश्व, ध्रुव (अटल) है, अतः यजमान के कल्याण के लिए आप भी ध्रुव होकर रहें ।७३। इस प्रकार भक्ति से आप्लावित होकर विधान पूर्वक सूर्य की प्रतिष्ठा करने से उस प्राणी को प्रत्येक मास में यज्ञफल की निश्चित प्राप्ति होती रहती है ।७४। हे वीर ! क्योंकि सूर्य के एक दिन की पूजा करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उन्हें मनुष्य इस भूतल में सैकड़ों यज्ञों द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता है ।७५। इसीलिए अत्यन्त महान् पाप करने के पश्चात् भी जो सूर्य की सेवा करता है, वह मनुष्य निष्पाप होकर सूर्य लोक में अवश्य जाता है ।७६। इस भाँति मन्दिर की ईंटे जब तक चूर-चूर होकर नष्ट नहीं हो जाती है उतने दिनों तक उसका कर्ता स्वर्ग में सम्मानित होता है ।७७। इसलिए टूटी, फूटी मूर्तियों के विधान पूर्वक उद्धार करने से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे फल, अन्य सहस्र यज्ञों द्वारा नहीं प्राप्त किये जा सकते ।७८। इस प्रकार बालुका का भी गृह सूर्य के लिए जिसने बनाया है या कोई बनाता है, उस पर भी सूर्य मुग्ध हुए हैं और होते रहते हैं तथा उसके बनाने वाले को उनके उत्तम लोक की प्राप्ति हुई है और होती रहेगी । इस भाँति उस भानु के लिए जो सुर तथा उत्पत्ति एवं विनाश के मूल कारण हैं, जो मंदिर का निर्माण करता है वह पुरुष श्री का भागी होता है और सूर्य लोक में सौ कल्पों तक निवास भी करता है ।७९-८०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में सूर्य प्रतिष्ठा वर्णन नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३६।

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

प्रतिष्ठापनविधिवर्णनम्

नारद उवाच

यः प्रासादं रचयति पुमान्देवतानां प्रयत्नात्तत्र प्रीत्या सपदि कुरुते स्थापनां भानुभक्तः।
दिव्यान्भोगाँल्लभति च सदा कामतश्चाप्रमेयांस्तान्भुक्त्वासौ पुनरपि भवेच्चक्रवर्ती पृथिव्याम् ॥१

ये मानवास्त्रिदशमूर्तिनिकेतनानि कुर्वन्ति साधुजनदृष्टिमनोहराणि।
तेषां मृतेऽप्यपरमार्थमये शरीरे लोके परिभ्रमति कीर्तिमयं शरीरम् ॥२

इति ते कथितमिदं देवपूज्यस्य सवितुः स्थापनामिवाधानम्।
साधारणं विधानं शृणु देवानां प्रतिष्ठापने वीर ॥३

स्नातो भुक्तो वस्त्रालङ्कृतकुसुमैर्गन्धैः प्रतिमाया आस्तीर्णायां शय्यायां स्थापनं कुर्यात्।
सुप्तायां तु स नृत्यगीतैर्जागरणैः सम्यगेवाधिवास्य दैवज्ञेन प्रतिदिष्टकाले संस्थापनं कुर्यात्।
अभ्यर्च्य कुसुमगन्धानुलेपनैः शङ्खतूर्यनिर्घोषैः प्रादक्षिण्येन नयेदायतनस्य प्रयत्नेन कृत्वा बलिं

अध्याय १३७

प्रतिष्ठापन विधि का वर्णन

नारद बोले—जो सूर्य भक्त पुरुष प्रयत्न पूर्वक विशाल देव मन्दिर का निर्माण करके उसमें शीघ्रातिशीघ्र प्रेमपूर्वक सूर्य देव की प्रतिमा का स्थापन करता है, उसे दिव्य उपभोगों एवं सदैव अप्रमेय कामनाओं की सफलता प्राप्त होती है और पुनः जन्म लेने पर इस भूतल में उसे चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है।१। इसलिए जिन मनुष्यों ने देवताओं की मूर्तियों के स्थापनार्थ इस भाँति के उत्तम देवालयों की रचना की है जिनके सौन्दर्य को देखकर साधु प्राणियों की आँखे विकसित हो जाती हैं रचना की है, उन लोगों के मरणोपरान्त भी इस परमार्थ हीन लोक रूप शरीर में उनकी कीर्तिमयी शरीर नित्य भ्रमण करती रहती है।२। हे वीर! इस प्रकार मैंने देव शक्ति सूर्य के स्थापन का विशाल विधान बता दिया। अब देवताओं की प्रतिष्ठा के लिए साधारण विधान बता रहा हूँ सुनो!।३। सर्वप्रथम प्रतिमा को स्नान, भोजन एवं वस्त्रों से अलंकृत करके पुनः सुगन्ध एवं पुष्पों से उसे सुसज्जित करें कुशास्तारण के ऊपर सजायी गई शय्या पर स्थापित करके शयन कराये। उसके अनन्तर नृत्य, गायन द्वारा जागरण करते हुए दैवज्ञ (ज्योतिषी) द्वारा बताये गये किसी शुभ मूहूर्त में उसकी स्थापना करे उस समय पुष्प एवं गन्धों का लेपन करके उस प्रतिमा को शंख तुरुही आदि वाद्यों के कोलाहल में प्रदक्षिणा करते हुए प्रयत्न पूर्वक उस मंदिर में जायें और वहाँ उनकी पूजा एवं (देवों के लिए) बलि, साधुओं तथा ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा देकर विधानपूर्वक उस मन्दिर में पिंडिका स्थापित करने के लिए वेदी या चौकी के अत्यन्त

प्रतिमामभ्यर्च्य ब्राह्मणांश्च साधून्दत्त्वा हिरण्यकलशं विधिना निक्षिपेत्पिण्डिकामध्ये शुभ्रश्वभ्रे
स्थापकदैवज्ञद्विजान्सम्यग्विशेषतोऽभ्यर्च्याकल्पान्तं भोगी भवतीह परत्र सुखी ॥४
विष्णोर्भागवता मताश्च सवितुः शम्भोः सभस्मद्विजा मातॄणामपि मातृमण्डलविदो विप्रा विदुर्ब्राह्मणाः।
सर्वे यस्य विमुक्तशुक्लवसना बुद्धस्य रक्ताम्बरा ये यं देवमुपाश्रिताः सुविधिना तैस्तस्य कार्या क्रिया ॥५
सामान्यमिदं देवानामधिवासनं भवति मया कथितम्। क्रियमाणमिदं दृष्ट्वा देवानां प्रतिष्ठापनम् ॥
नरो भक्त्या इह कामानवाप्य स्वर्गभाजनं भवति ॥६
इदं ते कथितं राजन्प्रतिष्ठापनमादितः । यत्कृत्वा सवितुः स्नानं नरो याति मनोगतिम् ॥७
इत्थं कुर्यान्नरो भक्त्या सवितुः स्थापनं बुधः । कारयेत्पुरतो भक्त्या सवितुः स्थापनं बुधः ॥८
इतिहासपुराणस्य श्रवणं पापनाशनम् । ताभ्यां हि श्रवणाद्वीर सान्निध्यं याति भास्करः ॥९
कृते त्वायतने तस्मिन्ये चान्ये चापि देवताः । तस्मात्कार्यं बुधैर्नित्यं धर्मश्रवणमादितः ॥१०
वाचकं पूजयित्वा तु ब्राह्मणानुपपूज्य च । कारयेद्वाचनं वीर पुस्तकस्याग्रतो रवेः ॥११
सर्वस्वं स्थापके दद्याद्यत्किञ्चिद्गृहमागतम् । गोदानमथवा दद्यात्तस्य चित्तं प्रसादयेत् ॥१२

स्वच्छ मध्य भाग में प्रतिष्ठित करे। क्योंकि ऐसे समय ज्योतिषी, एवं ब्राह्मणों की भली भाँति अर्चना करने वाला पुरुष, कल्प की समाप्ति पर्यंत सुखों का उपभोग यहाँ वहाँ (लोक परलोक में) सदैव करता रहता है।४। इस प्रकार विष्णु के भागवत (वैष्णव), सूर्य के भग (भोजक) शिव के भस्म भूषित ब्राह्मण, मातृकाओं (देवियों) के मातृमण्डल के विद्वान् और बुद्ध के शुक्ल वस्त्ररहित एवं रक्ताम्बरधारी, उपासक होते है, अतः उन्हें चाहिए कि जो जिस देव के उपासक हों, वे उस देव की प्रतिष्ठा करायें।५। इस प्रकार देवताओं के इस सामान्य अधिवासन विधान को मैने तुम्हें बता दिया। देवताओं के इस प्रतिष्ठा विधान को भक्तिपूर्वक देखने वाला मनुष्य भी इस लोक की समस्त कामनाएँ सफल कर पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति करता है।६। हे राजन् ! इस भाँति तुम्हें मैंने आदि से अंत तक सभी देवों की प्रतिष्ठा के उस विधान को भी बता दिया, जिसमें सूर्य के केवल स्नान कराने मात्र से मनुष्य के मनोरथ सफल होते हैं ऐसा बताया गया है। इसलिए विधान समेत उनकी पूजा समाप्ति करने वाले का कहना ही क्या है। इसलिए मनुष्य को भक्तिपूर्वक सूर्य की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।७-८। हे वीर ! इस भाँति इतिहास एवं पुराणों का सुनना पापनाशक बताया गया है, क्योंकि उसके श्रवण करने के ब्याज से ही सूर्य वहाँ (मूर्ति में) सदैव वर्तमान रहते है।९। और उस मंदिर में कथा के होने के नाते वहाँ के अन्य देव भी प्रसन्न होते हैं, इसलिए विद्वान् को वहाँ प्रारम्भ से ही कथा श्रवण करना चाहिए।१०। हे वीर ! इस भाँति वाचक तथा ब्राह्मणों की पूजा करके ही सूर्य के सामने पुस्तक वाचन (कथा पारायण) करना चाहिए।११। और प्रतिष्ठा कराने वाले (यजमान) को वहाँ अपने सर्वस्व का दान कर देना चाहिए, पुनः घर आने पर भी कुछ थोड़ा सा गोदान आदि जो अवशिष्ट हो, उसकी पूर्ति कर उसे (वाचक को)

इत्येष कथितो वीर प्रतिष्ठाकल्प आदितः। कृत्वा दृष्ट्वा च श्रुत्वा च यं नरोऽर्कमवाप्नुयात् ।।१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने
प्रतिष्ठापनविधिवर्णनम् नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३७।

अथाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ध्वजारोपणविधिवर्णनम्

नारद उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि ध्वजारोपणमुत्तमम् । यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वमृषभाधिपते पुरः ।।१
पुरा देवासुरे युद्धे यानि देवैर्जयेप्सुभिः । कृतान्युपरि चिह्नानि वाहनानि ध्वजानि तु ।।२
लक्ष्मचिह्नध्वजं केतुररिति पर्यायनामभिः । कीर्तितः स च तस्येह प्रमाणं गदतः शृणु ।।३
ध्वजो वंशस्य कर्तव्यस्त्वविद्ध ऋजुरव्रणः । प्रासादव्यास तुल्यस्य ध्वजवंशप्रमाणतः ।।४
देवागारस्य ये प्रोक्ता मञ्जरीकलशादयः । अथ वा तत्प्रमाणस्तु ध्वजदण्डः प्रकीर्तितः ।।५
अन्तर्गृहस्य या वेदी सूत्रतः परिकल्पिता । तस्या व्यासो भवेद्वंशः प्रसादस्य यदुत्तम ।।६
अथ वा मूलसूत्रेण यो व्यासोऽन्तर्गृहस्य तु । प्रासादव्यास इति ते प्रोक्तश्चेह न संशयः ।।७

प्रसन्न करना चाहिए ।१२। हे वीर ! इस प्रकार प्रतिष्ठा विधान प्रारम्भ से अन्त तक मैंने तुम्हें सुना दिया, जिसे करने या देखने से मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति करता है ।१३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में
प्रतिष्ठापन विधि वर्णन नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३७।

अध्याय १३८

ध्वजारोपण विधि वर्णन

नारद बोले—तुम्हारे लिए मैं उत्तम ध्वजारोपण का विधान कह रहा हूँ, जिसे पहले समय में ब्रह्मा ने ऋषभाधिपति से कहा था ।१। प्राचीन समय में देवों एवं असुरों के उस घोर संग्राम में विजय के इच्छुक देवों ने अपने-अपने रथों के ऊपर जिस प्रकार चिह्न बनाये थे वे ही भाग के नाग से कहे जाते हैं और जो वाहन के रूप में थे वे ही सदैव के लिए वाहन हो गये हैं ।२। इस प्रकार लक्षण, चिह्न, ध्वज एवं केतु, इतने नाम ध्वजा के हैं उसका प्रमाण भी मैं बता रहा हूँ सुनो ! ।३। ध्वजा के लिए सर्वप्रथम सीधा तथा छिद्र रहित और नीरोग बाँस होना चाहिए । पुनः भवन के व्यास के समान ध्वजा के लम्बे होने का प्रमाण बताया गया है ।४। अथवा देव-मन्दिरों में जो मञ्जरी या कलश आदि रहता है, उसके प्रमाण का लम्बा रहे ।५। हे यदूत्तम ! इसी प्रकार गृह गर्भ के भीतर की सूत्र से नापी गई वेदी तथा प्रसाद के व्यास के समान बाँस का व्यास (लम्बाई) होना उत्तम बताया गया है ।६। या मूलसूत्र के समान हो, क्योंकि गृह गर्भ का व्यास ही प्रासाद का व्यास बताया गया है, इसमें संशय नहीं ।७। इसलिए उत्तम बाँस का

केतुर्भवेद्वरो वंशो न निम्नो न ऋजुस्तथा । पत्रं ध्वजे युगं चैव नलिकापुरुषस्तथा ॥८
चतुर्हस्ता भवन्त्येते प्रशस्ताः कृष्णनन्दन । अष्टहस्तप्रमाणस्तु विशार्धस्य[1] प्रमाणतः ॥९
सामान्यो ध्वजदण्डस्तु सर्वसाधारणो मतः । दण्डपाणिध्वजो यस्तु स्मृतः षोडशहस्तवान् ॥१०
विंशद्धस्तात्परो दण्डो न कार्यः सर्वथा[2] रवेः । युग्महस्तस्तु कर्तव्यो ध्वजदण्डो मनीषिभिः ॥११
चतुरङ्गुलविस्तीर्णः सुवृत्तो द्व्यङ्गुलोपरि । नातिसूक्ष्मो न च स्थूलो न कार्यो नतपर्वकः ॥१२
सम्यपर्वा तु कर्तव्यः सुदृढः सूक्ष्म एव हि । वक्रः पुत्रविनाशाय सव्रणोऽर्थविनाशनः ॥१३
रोगदो युग्महस्तस्तु भिन्नो दुःखमनन्तकम् । करोति हानि धर्मस्यहीनो यस्तु प्रमाणतः ॥१४
वैषम्यमसमपर्वा दद्यात्कृच्छ्रमधोन्नतः । जयो जयन्तो जैत्रेयः[3] शत्रुहन्ता जयावहः ॥१५
नन्दोपनन्दनौ चैवेन्द्रोपेन्द्रौ गदितौ तथा । दशैते कीर्तिता भेदा ध्वजस्यानन्दसम्मिताः ॥१६
द्विजहस्तस्तु जयो दण्डो जयन्तो द्विगुणो मतः । द्वादशहस्तस्तु जैत्रेयः शत्रुहन्ता कलान्वितः ॥१७
जयावहस्तु विंशार्धो नन्द आदित्यसन्निभः । चतुर्दशोपनन्दस्तु इन्द्रः षोडश उच्यते ॥१८
उपेन्द्रोऽष्टादशः[5] प्रोक्तस्तथेन्द्रो विंशतिः स्मृतः । भिन्नो वक्रोऽसाधितश्च न कार्यो दण्ड एव हि ॥१९
मूलमन्त्रेण कर्तव्यो व्यासतोऽन्तर्गृहस्य तु । ध्वजदण्डो महाबाहो अथ वा वास्तुमानतः ॥२०

ध्वजदण्ड होना चाहिए, जो न नीचा हो, और न टेढ़ा । ध्वज में चार पत्र लगने चाहिए तथा नलिका पुरुष भी ।८। हे कृष्णनन्दन ! यद्यपि चार हाथ का (लम्बा) ध्वज दण्ड प्रशस्त बताया गया है । और आठ हाथ (लम्बे) प्रमाण का एवं दश हाथ के (लम्बे) प्रमाण का भी ध्वज-दण्ड होता है, पर ये सभी सामान्य ध्वज-दण्ड हैं, ऐसी सर्व साधारणों की सम्मति है । दण्डपाणि ध्वज, जिसे कहा जाता है, वह सोलह हाथ का (लम्बा) बताया गया है । सूर्य के लिए ध्वज-दण्ड (किसी भी दशा में) बीस हाथ से अधिक लम्बा कदापि न करना चाहिए । विद्वानो को चाहिए कि दो हाथ का ध्वज-दण्ड बनाये ।९-११। चार अंगुल का मोटा, तथा दो अंगुल के ऊपर से सुन्दर गोलाकार होना चाहिए, जो अत्यन्त पतला, अधिक मोटा, एवं झुकी हुई जिसकी गाठें न हों ।१२। इस प्रकार समान चार गाठ वाले, अत्यन्त दृढ़, तथा पतले बाँस का ही ध्वज दण्ड बनाना चाहिए । क्योंकि उसे टेढ़े होने से पुत्र नाश, व्रण (रोग) युक्त होने से अर्थ (धन) नाश, दो हाथ लम्बे होने से रोग, फटे रहने से अनंत दुःख तथा प्रमाण से छोटा होने पर धर्म की हानि होती है ।१३-१४। उसी भाँति विषम हाथ के लम्बे, असमान पोर (गाठें) एवं नीचे की ओर उन्नत (ऊपर) होने से दुखः की प्राप्ति होती है । इस प्रकार जय, जयंत, जैत्रेय, शत्रुहंता, जयावह, नंद, उपनंद, इन्द्र एवं उपेन्द्र, आनन्द, ये दश भेद ध्वज दण्ड के बताये गये हैं ।१५-१६। जिसमें दो दाथ के ध्वज दण्ड की जय, उसे दुगुने (चार हाथ) लम्बे ध्वज दण्ड की जयंत, बारह हाथ लम्बे ध्वज दण्ड की जैत्रेय, सोलह हाथ वाले की शत्रुहन्ता, दश हाथ वाले की जयावह, बारह हाथ वाले की नन्द, चौदह हाथ वाले की उपनन्द, सोलह हाथ वाले की इन्द्र, अठारह हाथ वाले की उपेन्द्र, एवं बीस हाथ वाले ध्वज-दण्ड की इन्द्र (आनन्द) संज्ञा है । इसलिए फटे, टेढ़े तथा प्रमाण हीन बाँस के ध्वज दण्ड नहीं बनाने चाहिए ।१७-१९। घर के भीतरी व्यास के समान जो मूल सूत्र से (माप) निश्चित रहते हैं, ध्वज दण्ड होने चाहिए,

---

१. दण्डं कृत्वा तु यत्नतः । २. इन्द्रकेतुनः । ३. रौद्रः । ४. राजेन्द्रः । ५. अष्टाधिकदशहस्त इत्यर्थः ।

मञ्जरीमानतो वापि तदर्धेनाथवा विभो । पताका वै शुभा कार्या ध्वजवंशादलम्बिनी ।।२१
देवागारस्य शिखरात्त्रिभागपरिमार्जनी । सा प्रोक्ता दशधा वीर मानतोमानतस्तथा ।।२२
अङ्कुरः पल्लवश्चैव स्कन्धः शाखा तथैव च । पताका कदली वीर केतुर्लक्ष्म जयस्तथा ।।२३
ध्वजश्च दशमः प्रोक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः । अङ्कुरो द्व्यंगुलः प्रोक्तः पल्लवश्चतुरङ्गुलः ।।२४
स्कन्धः षडङ्गुलः प्रोक्तः शाखा चाष्टाङ्गुलो मता । एकादशपताका तु कदली च चतुर्दश ।।२५
केतुस्तु षोडशः प्रोक्तो लक्ष्माष्टादशमुच्यते । जया विंशति वै प्रोक्ता एतावन्त्यङ्गुलानि तु ।।२६
देवागारस्य कुम्भस्य प्रसन्ना सा प्रमार्जनी । अङ्कुरेति पताका सा विज्ञेया यदुनन्दन ।।२७
पल्लवेति द्वितीयस्य मार्जनी परिकीर्तिता । त्रिभागमार्जनोस्कन्धः शाखा वै पञ्चमस्य तु ।।२८
षष्ठस्योक्ता पताका तु कदली सप्तमस्य तु । अष्टमस्य तथा केतुर्लक्ष्म च नवमस्य तु ।।२९
ततस्तु दशमः प्रोक्तो जयन्तो यदुनन्दन । वृषस्थानावमार्गी तु ध्वजस्तु परिकीर्तितः ।।३०
गजो मेषोऽथ महिषः कबन्धस्तु वृषस्तथा । हरिणोऽथ नरश्चैव नरश्च नरसत्तम ।।३१
स्थानान्येतानि भूमेोऽथ[1] प्रयुक्तस्य ध्वजस्य तु । दिशभागे तु पूर्वात्तु क्रमेण परिकल्पयेत् ।।३२
एवं दशविधा प्रोक्ता पताका तत्त्वदर्शिभिः । कर्तव्या सा यथापूर्वं तच्छृणु त्वं नराधिप ।।३३

अथवा वास्तु (गृह) मान के समान ।२०। हे विभो ! इस भाँति मंजरी, या उसके अर्ध भाग के समान भी ध्वज दण्ड बनाया जा सकता है । ध्वज दण्ड मे लटकने वाली पताका को भी कल्याण मूर्ति ही बनाना चाहिए ।२१। हे वीर ! देव मंदिर के शिखर के ऊपर तीन भाग को शुद्ध करने के लिए स्थित वह पताका मान अमान (नपी तथा विना नपी हुई) के भेद से दश प्रकार की होती है ।२२। हे वीर ! अंकुर, पल्लव, स्कन्ध, शाखा, पताका, कंदली, केतु, लक्ष्म जय एवं ध्वज, यही दश भेद उसके बताये गये हैं । इस प्रकार वह सर्वदेवमयी तथा अविनाशी होती है । उस विवरण में दो अंगुल की पताका, अंकुर, चार अंगुल वाली पल्लव, छः अंगुल वाली, स्कन्ध, आठ अंगुल वाली शाखा, ग्यारह अंगुल वाली, पताका, चौदह अंगुल वाली कदली, सोलह अंगुल वाली केतु, अठारह अंगुल वाली लक्ष्म, एवं बीस अंगुल वाली जया, तथा इतने ही अंगुल वाली (ध्वज) के नाम से बतायी गई है ।२३-२६। हे यदुनन्दन ! इस प्रकार देवमन्दिर के प्रथम कलश (शिखर) की प्रसन्नता पूर्ण (निरंतर फहराती हुई) शुद्धि करने वाली पताका अंकुरा के नाम से व्यवहृत होती है ।२७। उसी भाँति द्वितीय कलश की शुद्धि करने वाली पल्लवा, मन्दिर के तृतीय भाग तक की शुद्धि करने वाली स्कन्ध, पाँचवे भाग की शुद्धि करने वाली शाखा ।२८। छठें भाग की शुद्धि करने वाली पताका, सातवें भाग की शुद्धि करने वाली कदली, आठवें भाग की शुद्धि करने वाली केतु, नवें भाग की शुद्धि करने वाली लक्ष्म, उसके अनन्तर भाग की शुद्धि करने वाली जयंत (जया) और वृषस्थान की शुद्धि करने वाली (पताका) ध्वज के नाम से कही जाती है ।२९-३०। अतः गज, मेष महिष, कबन्ध, वृष, हरिण, वृक, एवं नग, इन आठों स्थानों में ध्वज लगाना चाहिए । इस प्रकार पूरब की ओर से आरम्भ कर सभी दिशाओं में क्रमशः ध्वजा स्थापित करने का विधान कहा गया है ।३१-३२। इस भाँति तत्त्व द्रष्टाओं ने दश प्रकार की पताकाओं का निर्माण करना बताया है । हे नराधिप ! उसका निर्माण

---

१. भूमौ तु ।

शुक्लवस्त्रमयी चित्रा सघण्टा सुमनोहरा । नानाचामरसम्पन्ना किङ्किणीजालमण्डिता ।।३४
ध्वजाग्रे चैव कर्तव्यो देवतालिङ्गसूचकः । काञ्चनो वाथ रौप्यो वा मणिरत्नमयोऽपि वा ।।३५
रङ्गकैर्लिख्यते वापि तद्वाहनसमाकृतिः । ध्वजदण्डोऽत्र विन्यस्तः कर्तव्यो यदुनन्दन ।।३६
गरुत्मान्विष्णोरीश्वरस्य ध्वजो वृषः । ब्रह्मणः पङ्कजं कार्यं रवेर्धर्मः स्मृतो ध्वजः ।।३७
हंसो[1] जलाधिपस्योक्तः सोमस्य तु नरो ध्वजः । बलदेवस्य कालस्तु कामस्य मकरध्वजः ।।३८
सिंहो ध्वजस्तु दुर्गायाः कीर्तितो यदुनन्दन । गोधा चापि उमादेव्या रैवतस्य हयः स्मृतः ।।३९
कच्छपो वरुणस्योक्तो वातस्य हरिणो मतः । पावकस्य तथा मेष आखुर्गणपतेर्मतः ।।४०
ब्रह्मर्षीणां कुशः प्रोक्त इत्येषा ध्वज कल्पना । यस्य यद्वाहनं प्रोक्तं तत्तस्य ध्वज उच्यते ।।४१
विष्णोर्ध्वजे तु सौवर्णं दण्डं कुर्याद्विचक्षणः । पताका चापि पीता स्याद्गरुडस्य समीपगा ।।४२
ईश्वरस्य ध्वजे दण्डो राजतो यदुनन्दनः । पताका चापि शुक्ला स्याद्वृषभस्य समीपगा ।।४३
पितामहध्वजे दण्डः स्मृतस्ताम्रमयो बुधैः । पद्मवर्णा पताका स्यात्पङ्कजस्य समीपगा ।।४४
आदित्यस्य च सौवर्णो ध्वजे दण्डः प्रकीर्तितः । पञ्चवर्णा पताका स्याद्धर्मस्याधोगता नृप ।।४५

किस प्रकार होना चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ।३३। सफेद वस्त्र की बनी हुई चित्र-विचित्र, घंटा समेत, अत्यन्त मनोरम, भाँति-भाँति के चामरों से सुशोभित एवं छोटी-छोटी घंटियों के समूहों से विभूषित पताका होनी चाहिए ।३४। और ध्वजा के अग्रभाग में देवता-सूचक (जिसे देवता के लिए बताया गया हो उसे सूचित करने वाला) चिह्न बना देना चाहिए । उसी भाँति सुवर्ण, चाँदी, मणि, एवं रत्नों में किसी के द्वारा अथवा रंग के द्वारा उस (देवता) के वाहन के समान आकृति निर्माण (चिह्न) भी बनाये । हे यदुनन्दन ! इसलिए ध्वज दण्ड, पूर्व की भाँति बताये गये के अनुसार ही रखना चाहिए ।३५-३६। जिस प्रकार विष्णु की ध्वजा में गरुड़, शिव की ध्वजा में वृष, ब्रह्मा की ध्वजा में कमल, सूर्य की ध्वजा में धर्म, जलाधिप की ध्वजा में हंस, सोम की ध्वजा में नर, बलदेव की ध्वजा में काल, काम की ध्वजा में मकर, और दुर्गा की ध्वजा में सिंह के आकार बनाये जाते हैं, उसी प्रकार उमा देवी के लिए गोधा (रेह) रैवत के लिए अश्व, वरुण के लिए कच्छप, वायु का हरिण, अग्नि का मेष, गणपति का चूहा एवं ब्रह्मर्षियों के लिए कुश का चिह्न निर्माण करना बताया गया है । इसी प्रकार की ध्वजा की कल्पना भी होनी चाहिए । क्योंकि जिस देवता का जो वाहन है, वही उसकी ध्वजा भी है ।३७-४१। इसलिए बुद्धिमान् को चाहिए कि विष्णु की ध्वजा में इस भाँति का सुवर्ण दंड लगाये जिसमें गरुड़की मूर्ति'-चिह्न के समेत पीत वर्ण की पताका भी भूषित हो ।४२। हे यदुनन्दन ! उसी भाँति शिव का ध्वज दण्ड चाँदी का होना चाहिए तथा श्वेत वस्त्र की पताका भी उनके वृष (बैल) के समीप स्थित करे ।४३। विद्वानों ने पितामह की ध्वजा में ताँबे का दण्ड होना चाहिए यह बताया है जिसमें कमल वर्ण की पताका पंकज के समीप स्थित की जाती है ।४४। आदित्य की ध्वजा में सुवर्ण-दण्ड का विधान बताया गया है, हे नृप ! उनकी पाँच रंग की पताका धर्म के नीचे स्थापित होनी चाहिए ।४५। जो छोटी-छोटी घंटियों के समूहों

---

१. सिंहो जलाधिपस्य ।

किङ्किणीजालसम्पन्ना नानबुद्बुदसंन्निभाः । पुष्पमालोपसम्पन्ना नानावादिभिरावृताः ॥४६
दण्ड इन्द्रध्वजस्योक्तः काञ्चनो यदुनन्दन । पताका बहुवर्णा स्यात्कुञ्जरस्य समीपगा ॥४७
आयसश्चापि दण्डोक्तो यमचिह्नं विचक्षणैः । पताका वर्णतः कृष्णा महिषस्य समीपगा ॥४८
जलाधिपध्वजो दण्डो राजतः परिकीर्तितः । पताका सर्वतः श्वेता विचित्रा सा च कथ्यते ॥४९
ध्वजे चापि कुबेरस्य दण्डो मणिमयः स्मृतः । पताका चापि रक्ता स्यान्नरपादसमीपगा ॥५०
बलदेवध्वजे दण्डो राजतो यदुनन्दन । पताका वर्णतः शुक्ला तालस्याधोगता स्मृता ॥५१
कामध्वजे त्रिलोहः स्याद्दण्डो यदुकुलोद्वह । पताका रोहिणी तत्र मकरस्य समीपगा ॥५२
मायूरं कार्त्तिकेयस्य चिह्नं लोकेषु गीयते । त्रिलोहदण्डमारूढं बहुरत्नविभूषितम् ॥५३
बहुवर्णकचित्रा तु पताका कथिता बुधैः । हस्तिदन्तभवं दण्डं कुर्याद्गणपतेर्नृप ॥५४
ताम्रदण्डं समारूढं संशुद्धं सम्प्रतिष्ठितम् । शुक्ला पताका कर्तव्या सुप्रमाणा महीपते ॥५५
मातॄणां चापि कर्तव्यो नैकरूपो ध्वजो बुधैः । पताकाभिरनेकाभिबर्हुरत्नाभिरन्वितः ॥५६
रेवतस्यापि कर्तव्यो ध्वजो वाजी नराधिप । रक्ता पताका तत्रापि कर्तव्या यदुनन्दन ॥५७
चामुण्डामन्दिरे कार्यः शिरोमालाकुलो ध्वजः । नीला पताका कर्तव्या दण्डो लोहमयस्तथा ॥५८
रतीमयश्च मातॄणां रेवतस्य च कारयेत् । गौर्या ध्वजस्ताम्रमयः पताका गोपसन्निभा ॥५९

से सुसम्पन्न, अनेकों फेन की भाँति सौन्दर्यपूर्ण, पुष्पों तथा मालाओं से आच्छन्न एवं अनेक बाजों को बजाने वाले अनेक मनुष्यों की मूर्तियों से आवृत हो ।४६। हे यदुनन्दन ! इन्द्र का ध्वज दण्ड सुवर्ण का बनाये, उनकी अनेकों रंग की पताका हाथी के समीप स्थित करे ।४७। बुद्धिमानों ने लोहे का दण्ड होना यम के चिह्न में बताया है । उनकी काले रंग की पताका महिष के समीप स्थापित होनी चाहिए ।४८। जलाधिप के लिए चाँदी का ध्वज दण्ड बताया गया है, उनकी सफेद वर्ण की एवं चित्र विचित्र पताका होनी चाहिए ।४९। कुबेर का ध्वज दण्ड मणिमय बताया गया है, उनकी लाल रंग की पताका नर के चरण के समीप स्थापित होनी चाहिए ।५०। हे यदुनन्दन ! बलदेव की ध्वजा में चाँदी का दण्ड बनाये, उनकी शुक्ल वर्ण की पताका ताल के नीचे स्थापित करे ।५१। हे यदुकुलश्रेष्ठ ! काम की ध्वजा में त्रिलोह का दण्ड होना चाहिए उनकी रोहिणी (लाल रंग की) पताका मकर के समीप में स्थापित होनी चाहिए ।५२। लोकों में कार्तिकेय का मयूर (मोर) का चिन्ह विख्यात है, उनकी ध्वजा में त्रिलोह का दंड तथा उस चिह्न को अनेकों भाँति के रत्नों से विभूषित होना चाहिए ।५३। विद्वानों ने उनकी भाँति-भाँति के रंगों की चित्र-विचित्र पताका बतायी है । हे नृप ! गणपति का ध्वज-दण्ड हाथी के दाँत का होना चाहिए ।५४। उसमें विशुद्ध तांबे का संमिश्रण रहे अथवा केवल ताँबे का ही दण्ड बनाया जा सकता है । हे महीपते ! प्रमाण पूर्ण उनकी शुक्ल वर्ण की पताका होनी चाहिए ।५५। विद्वानों को चाहिए कि मातृगणों के लिए अनेकों भाँति ध्वजाएँ बनाये, और अनेकों रत्नों से सुसम्पन्न भाँति-भाँति की पताकाएँ भी ।५६। हे नराधिप ! रैवत की ध्वजा में अश्व का चिह्न होना चाहिए, और हे यदुनंदन ! उनकी लाल रंग की पताका भी होनी चाहिए ।५७। चामुंडा देवी के मंदिर में मुण्ड-माला चिह्न से अंकित ध्वजा बनाये, उसका नील वर्ण एवं उसमें लोहे का दण्ड हो ।५८। मातृगणों एवं रैवत का ध्वज दण्ड पीतल का होना चाहिए । गौरी का ध्वज-दण्ड ताँबे का बनाये तथा इन्द्रगोप की भाँति (अत्यन्त लाल रंग की)

स्वर्णदण्डस्तु वीरस्य ध्वजो मेषसमन्वितः । पताका बहुरत्नाढ्या[1] कर्तव्या यदुनन्दन ॥६०
अश्मसारमयो दण्डो ध्वजो वातस्य उच्यते । पताका कृष्णवर्णा तु हरिणस्य समीपगा ॥६१
भगवत्या ध्वजो दण्डः सर्वरत्नमयः स्मृतः । पताका तु त्रिवर्णा स्यात्सिंहस्याधोगता नृप ॥६२
एवंविधमिमं कृत्वा ध्वजं लक्षणलक्षितम् । अधिवास्य ततो राजंस्तत आरोपयेद्बुधः ॥६३
ततः सर्वौषधीभिश्च स्नापयित्वा प्रयत्नतः । समालभ्य च बध्नीयान्मध्ये प्रतिसरान्नृप ॥६४
कारयित्वा शुभां वेदिं कलशैरुपशोभिताम् । तस्यां वेद्यां समारोप्य तां रात्रिमधिवासयेत् ॥६५
नानाकुसुमचित्रां च स्रजं तस्यानुलम्बयेत् । समभ्यर्च्य प्रयत्नेन धूपमस्य निवेदयेत् ॥६६
बलिकर्म ततः कृत्वा कृशरापूपकादिभिः । पललपूपिकाभिश्च दधिपायससूपकैः[2] ॥६७
उद्दिश्य लोकपालेभ्यो बलिं दद्याच्च वायसैः । ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्याथ कृत्वा पुण्याहमङ्गलम् ॥६८
वादित्रकृतनिर्घोषं जलं[3] संस्कारसंयुतम् । नानाबुद्बुदसंपन्नं वेष्टितं नववाससा ॥६९
शुभे लग्ने दिने ऋक्षे ध्वजं चारोपयेद्बुधः । विन्यस्य स्वर्णकलशं भ्रभ्रराजं ध्वजस्य तु ॥७०
एवमारोपयेद्यस्तु ध्वजं देवालयोपरि । स श्रिया वर्धते नित्यं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥७१
असुरा वासमिच्छन्ति ध्वजहीने सुरालये । तस्माद्देवालयं प्राज्ञो ध्वजहीनं न कारयेत् ॥७२

पताका बनाये ।५९। अग्नि का ध्वज दण्ड सुवर्ण निर्मित एवं मेष युक्त होना चाहिए, और हे यदुनन्दन ! अनेकों रत्नों या रंगों से सुशोभित उनकी पताका बनाये ।६०। वायु का ध्वजदण्ड लोहे का बताया गया है, उनकी काले रंग की पताका हरिण के समीप स्थापित होनी चाहिए ।६१। भगवती का ध्वजदण्ड समस्त रत्नों से निर्मित होना चाहिए, तथा हे नृप ! तीन रंग की उनकी पताका सिंह के नीचे स्थापित करे ।६२। हे राजन् ! इस प्रकार के लक्षणों से ध्वजाओं को विभूषित करके उसके पश्चात् राजन् ! अधिवासन पूर्वक विद्वानों को उसका आरोपण करना चाहिए ।६३। हे नृप ! तदुपरांत समस्तमिश्रित औषधियों द्वारा प्रयत्न पूर्वक स्नान कराकर मध्य भाग में आलम्भन पूर्वक बाँधकर सैन्य के पिछले भाग में स्थापित करे ।६४। कल्याणप्रद वेदी की रचना कर उसे कलशों से सुशोभित करके उसमें ध्वजा का आरोपण (खड़ा) कर उस रात उसका अधिवासन करना चाहिए ।६५। भाँति-भाँति के पुष्पों की मालाएँ लटकाने के पश्चात् प्रयत्नपूर्वक उसकी भली भाँति पूजा करके धूप प्रदान करे ।६६। और बलिकर्म करने के उपरांत कृशरान्न (मिश्रित अन्न) मालपूआ, दही, खीर, दाल, आदि पदार्थों को लोक पालों एवं कौवे के उद्देश्य से बलि रूप में अर्पित करे । उपरांत ब्राह्मण द्वारा स्वस्ति वाचन कराकर पुण्य एवं मांगलिक वाद्यों की ध्वनियों से पूर्ण, संस्कार सम्पन्न, अनेक भाँति की विधियों से सुशोभित तथा नये वस्त्र से परिवेष्टित उस ध्वजा का किसी शुभ लग्न, दिन एवं नक्षत्र में विद्वानों को आरोपण करना चाहिए। सुवर्ण के कलशों से उसका लगाव रखते हुए ध्वजा की अत्यन्त प्रदीप्त रेखाएँ होनी चाहिए।६९-७०। देवमन्दिर के ऊपर इस प्रकार की ध्वजा का आरोहण जो (पुरुष) करता है, उसकी नित्य वृद्धि होती है। और उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।७१। ध्वजा हीन देवालयों में असुरों का निवास हो जाता है, इसलिए

---

१. बहुवर्णा च । २. दधिपायसपूर्वकैः । ३. जनफूत्कारसंकुलम् ।

मन्त्रश्च स्थापने प्रोक्तो विधानज्ञैर्ध्वजस्य तु । एह्येहि भगवन्देव देववाहन वै खग ।।७३
श्रीकरः श्रीनिवासश्च जय जैत्रोपशोभित । व्योमरूप महारूप धर्मात्मंस्त्वं च वै गतेः ।।७४
सान्निध्यं कुरु दण्डेऽस्मिन्साक्षी च ध्रुवतां व्रज । कुरु वृद्धिं सदा कर्तुः प्रासादस्यार्कवल्लभ ।।७५
ॐ एह्येहि भगवन्नीश्वरविनिर्मित उपरिचरवायुमार्गानुसारिञ्छ्रीनिवास रिपुध्वंस
यक्षनिलय सर्वदेवप्रियं कुरु सान्निध्यं शान्ति स्वस्त्ययनं च मेभय सर्वविघ्ना व्यपसरन्तु ।।७६
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र शुभ्रे दण्डे निवेशयेत् । पताकां पूर्वमन्त्रेण स्थित्वा पूर्वमुखो नृप ।।७७
क्षिपेदूर्ध्वमथाकाशं प्रासादशिखराद्विभोः । यजमानस्ततः पश्येत्पताकां यदुनन्दन ।।७८
प्रासादपुरतोऽपि पताकां पातयेद्यदि । इन्द्रलोकं तदा कर्ता विशेद्वै यदुनन्दन ।।७९
आग्नेय्यामग्निलोकं तु याम्यां यमसदो भजेत् । नैर्ऋत्यां नैर्ऋतं लोकं वारुण्यः वारुणं व्रजेत् ।।८०
यस्य देवस्य यद्वेश्म कृतं यदुकुलोद्वह । तस्य लोकमवाप्नोति वृषस्थानगतो यदि ।।८१
वायव्ये वायुमाप्नोति सौम्यायां सोममाप्नुयात् । ऐशान्यामीशमाप्नोति कर्ता वै देववेश्मनः ।।८२
य एवं कारयेद्भक्त्या ध्वजस्यारोपणं रवेः । स हि भुक्त्वा परान्भोगान्सूर्यलोके महीयते ।।८३

बुद्धिमान् को चाहिए कि देवालय कभी ध्वजा शून्य न हो ।७२। विधान के विद्वानों ने ध्वजा स्थापन के लिए यह मंत्र बताये हैं—हे भगवन्, हे देव, हे देववाहन, हे आकाश में गमन करने वाले ! आप श्री उत्पन्न करने वाले तथा श्री के निवास रूप हैं। हे जप एवं जेत्र से सुशोभित, हे व्योमरूप, हे महारूप, हे धर्मात्मन् ! तुम्हीं गति रूप हो ! इस दंड में साक्षी के रूप में प्रविष्ट होकर आप अटल हो जाइये । हे अर्कवल्लभ ! उसके कर्ता एवं प्रासाद की सदैव वृद्धि कीजिए ।७३-७५। हे भगवन् ! हे ईश्वर विनिर्मित ऊपरी भाग में विचरण करने वाले वायु के मार्ग का अनुगमन करने वाले ! हे श्रीनिवास, हे शत्रु का नाश करने वाले, हे यक्षों के आवासस्थान रूप इस (ध्वजदण्ड) में सर्वदेव प्रवेश करके मुझे शान्ति, कल्याण, एवं अभय प्रदान कीजिए जिससे मेरे सभी विघ्न नष्ट हो जाँय ।७६। ओंकार पूर्वक इस मंत्र का उच्चारण करते हुए तथा हे नृप ! पूर्वाभिमुख स्थित होकर पूर्व बताये गये मंत्र के उच्चारण पूर्वक पताका उस शुभ्र (ध्वज-दण्ड) में लगाना चाहिए ।७७। पश्चात् हे यदुनन्दन ! उस विभु (नायक) देव के प्रसाद शिखर से ऊपर आकाश में उस पताका का देव के प्रासाद शिखर से ऊपर आकाश में फहराते हुए यजमान को उसका निरीक्षण करना चाहिए ।७८। हे वीर ! उस प्रासाद (विशाल भवन) के सामने यदि पताका लटके, तो हे यदुनन्दन ! उसके कर्ता को इन्द्र लोक की प्राप्ति होती है । आग्नेय दिशा में लटकने से अग्नि लोक, दक्षिण में यमपुरी, नैर्ऋत्य में नैर्ऋत्य लोक एवं पश्चिम में (लटकने से) वरुण लोक की प्राप्ति होती है ।७९-८०। हे यदुकुलश्रेष्ठ ! जिस देवता के लिए वह निवास स्थान (मंदिर) बनाया गया है, वृष स्थान में लटकने से उसे उसी देवलोक की प्राप्ति होती है ।८१। एवं वायव्य में वायुलोक, उत्तर में सोमलोक, तथा ऐशान्य में ईश्वर (शिव) लोक की प्राप्ति होती है ।८२। जो भक्तिपूर्वक सूर्य के लिए इस प्रकार की ध्वजा का आरोपण करता है, अम्बुज के समान तेज एवं कांति, द्विजाति (विप्र) के समान प्रभा पूर्ण और

तेजसाम्बुजसंकाशः कान्त्या चाम्बुजसन्निभः । द्विजातितुल्यः प्रभया विक्रमेण च गोपतेः ॥८४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने ध्वजारोपणविधिवर्णनं नामाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३८।

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकानयनवर्णनम्

साम्ब उवाच

त्वत्प्रसादान्मया प्राप्तं रूपमेतत्पुरातनम् । प्रत्यक्षदर्शनं चापि भास्करस्य महात्मनः ॥१
सर्वमेतत्तु सम्प्राप्य पुनश्चिन्ताकुलं मनः । देवस्य परिचर्यायाः पालनं कः करिष्यति ॥२
गुणयुक्तं द्विजं किञ्चित्समर्थं परिपालने । ममैवानुग्रहाद्ब्रह्मन्द्विजं व्याख्यातुमर्हसि ॥३
एवमुक्तस्तु साम्बेन नारदः प्रत्युवाच तम् । न द्विजाः परिगृह्णन्ति देवस्य स्वीकृतं धनम् ॥४
विद्यते हि धनं ह्यत्र गुणश्चायं प्रतिग्रहः । देवचर्यागतैर्द्रव्यैः क्रिया ब्राह्मी न विद्यते ॥५
अवज्ञया च कुर्वन्ति ये क्रिया लोभमोहिताः । अपाङ्क्तेया भवन्तीह ते वै देवलका द्विजाः ॥६
देवस्वं ब्राह्मणस्वं च यो लोभादुपजीवति । स पापात्मा नरो लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥

सूर्य के समान पराक्रम की प्राप्ति पूर्वक वह उत्तम भोगों का उपभोग करके सूर्य लोक में पूजित होता है।८३-८४

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में ध्वजारोपण विधि वर्णन नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।१३८।

अध्याय १३९

भोजकानयन की विधि का वर्णन

साम्ब ने कहा—आप की कृपा वश मैंने अपना पुराना रूप एवं महातमा भास्कर का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया है।१। इस सब कुछ की प्राप्ति हो जाने पर भी मेरे मन में फिर चिंता हो रही है कि सूर्य देव की सेवा (पूजा) कौन करेगा।२। हे ब्रह्मन्! मुझ पर अनुग्रह करके आप गुणी एवं सेवा करने के लिए उपयुक्त किसी ब्राह्मण को बतायें।३। इस प्रकार साम्ब के कहने पर नारद ने कहा—देवता के लिए स्वीकृत धन को कोई ब्राह्मण नहीं अपना सकता है क्योंकि यह धन यहाँ प्रतिग्रह (दान) के रूप में स्थित है। देवता की पूजा करने के द्वारा प्राप्त द्रव्य को अपनाने से ब्राह्मण की ब्राह्मी (ब्रह्म संबंधी योग आदि) क्रिया नष्ट हो जाती है।४-५। लोभवश कोई ब्राह्मण यदि उस क्रिया का अनादर करता है, वह अपांक्तेय (ब्राह्मण मण्डली में स्थानच्युत) हो जाता है, क्योंकि उस प्रकार के धन को अपनाने वाले ब्राह्मण 'देवलक' कहे जाते हैं।६। जो लोभवश देव धन या ब्राह्मण धन से अपनी जीविका निर्वाह करता है, वह मनुष्य लोक में पापी एवं गीधों का उच्छिष्ट (जूठा किये गये) खाकर जीवित रहता है। इसलिए

ततो न ब्राह्मणः कश्चिद्देवचर्यां करिष्यति ॥७
विधिज्ञं ज्ञानवन्तं च परिचर्याक्षमं तथा । देव एव तमाख्यातुं तस्मात्तं शरणं व्रज ॥८
अथवा यदुशार्दूल उग्रसेनपुरोहितम् । गत्वा[1] गौरमुखं पृच्छ स ते कामं विधास्यति ॥९
नारदेनैवमुक्तस्तु साम्बो जाम्बवतीसुतः । सुखासीनं गृहे वीर उग्रसेनपुरोहितम् ॥१०
कृतपूर्वाह्णिकं वीर विप्रं गौरमुखं नृप । विनयेनोपसङ्गम्य साम्बो वाक्यमथाब्रवीत् ॥११
मया भानोः प्रसादेन कारितं विपुलं गृहम् । सपत्नीकं ससैन्यं च पृथिव्यां सारवत्स्थितम् ॥१२
सर्वं तस्मिन्मया दत्तं कृतं मूर्तेश्च मण्डलम् । तस्मादिष्ट्वा विशिष्टेभ्यो देयं दानं मनोगतम् ॥१३
तत्सर्वं मम सम्प्रीत्या गृहाण त्वं महामुने । साम्बवाक्यमिदं श्रुत्वा प्रत्युवाच महामुनिः ॥१४

गौरमुख उवाच

ब्रवीम्यहमशेषेण यथावदनुपूर्वशः । अहं विप्रो भवान्राजा स च देवपरिग्रहः ॥
अपरस्परमेवं तु ग्रहणं मे विरुध्यते ॥१५
ब्रह्मविद्याप्रणीतानि स्वकर्माणि द्विजातयः । कुर्वाणा न प्रहीयन्ते अन्यथा भिन्नवृत्तयः ॥१६
क्षान्तिरध्यापनं[2] जापः सत्यं च यदुनन्दन । एतानि विप्रकर्माणि न देवार्थपरिग्रहः[3] ॥१७

कोई ब्राह्मण देव-मंदिर की पूजा स्वीकार नहीं कर सकता है ।७। विधान का ज्ञाता, ज्ञानी, सेवा करने के योग्य, ऐसे पुरुष को सूर्य देव ही बता सकेंगे, अतः इसके लिए उन्हीं की शरण जाओ ।८। अथवा हे यदुशार्दूल ! उग्रसेन के पुरोहित गौरमुख से इस बात की चर्चा करो । तो तुम्हारा कार्य अवश्य कर देंगे ।९। हे वीर ! नारद के इस प्रकार कहने पर जाम्बवती पुत्र साम्ब घर में सुख पूर्वक बैठे हुए उग्रसेन पुरोहित के समीप पहुँचे ।१०। हे वीर ! हे नृप ! पूर्वाह्न काल के धार्मिक कृत्यों को समाप्त कर बैठे हुए गौर मुख ब्राह्मण के समीप पहुँच कर साम्ब ने सविनय प्रार्थना की ।११। मैंने सूर्य की कृपावश उनके लिए एक विशाल भवन का निर्माण कराया है, उसमें उन्हें पत्नी एवं सेना समेत स्थापित किया है, जो पृथिवी में सार के रूप में स्थित (सर्वश्रेष्ठ) है । उस मन्दिर के निमित्त मैंने सभी कुछ दे दिया है, मूर्ति मण्डल की रचना कर उस यज्ञ में मैंनें अपनी अभिलषित वस्तुएँ प्रदान की है !१२-१३। मैं चाहता हूँ कि वह सब किसी विशिष्ट (व्यक्ति) को दे दी जाँय । हे महामुने इस मेरे ऊपर प्रसन्न होकर प्राप्त उन सब को ग्रहण करें । साम्ब की ऐसी बातें सुन कर उन महामुनि ने कहा ।१४

गौरमुख बोले—मैं निखिल बातों को जो जैसी है क्रमशः बता रहा हैं मैं ब्राह्मण हूँ, आप राजा हैं और वह सब धन जो देवता के लिऐ स्वीकृत है प्रतिग्रह के रूप में है । उससे कोई मेरा पारस्परिक संबंध नहीं है, अतः ऐसी वस्तुओं का अपनाना मेरे विरुद्ध है ।१५। (ब्रह्मविद्या) वेद के बताये हुए अपने कर्मों द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले ब्राह्मण कभी च्युत नहीं होते, उससे भिन्न कर्मों द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले (विप्र) च्युत हो जाते हैं।१६। हे यदुनन्दन ! क्षान्ति, अध्यापन, जप करना, सत्यबोलना, यही ब्राह्मणों के कर्म हैं न कि देवता के लिए स्वीकृत धन को प्रतिग्रह रूप में ग्रहण करना।१७। क्योंकि देवता

---

१. अथाहो यद्यसौ कुरुतेऽनघ । ततः स गत्वा साम्बस्तु प्रणिपत्य महामुनिम् । २. अध्ययनम् । ३. देवान्नपरिग्रहः ।

यदि देवार्थदानं[1] स्यात्ततो देवलका द्विजाः । देवद्रव्याभिलाषश्च ब्राह्मण्यं तु विमुञ्चति ॥१८
देवद्वारे च यद्दानं ब्राह्मणाय प्रयच्छति । द्वावेतौ पापकर्तारावात्मदोषेण मानदौ ॥१९
देवार्थदानं[2] वार्ष्णेय यद्गृहीत्वा च यो द्विजः । श्राद्धे वा यदि वा सत्रे तज्जुहोति ददाति वा ॥
भिन्न वृत्तो द्विजः पापो राक्षसः सोऽभिजायते ॥२०
द्विजो देवलको यत्र पङ्क्त्यां भुङ्क्ते महीपते । अन्नान्युपस्पृशेन्नीचा सा पङ्क्तिः पापमाहरेत् ॥२१
द्विजो देवलको यस्य संस्कारं तम्प्रयच्छति । सोऽधोमुखान्पितॄन्सर्वानाक्रम्य विनिपातयेत् ॥२२
आत्मानं पातयेद्यस्तु सोन्यानुद्धरते कथम् उद्धरिष्यति चात्मानमित्येषा कल्पनाधमा ॥२३
यो हठाच्च[3] भयाच्चैव कुरुते रविवेश्मनः । वृत्तिं विधत्ते विप्रत्वात्पतितस्स तु जायते ॥२४
सप्रतिग्रहमन्त्रेण द्विजोऽश्नाति परिग्रहम् । देवप्रतिग्रहार्थेषु वेदवाक्यं न विद्यते ॥२५
तस्माद्राजा न देवार्थं विप्रे दद्यात्कथञ्चन । ब्रह्मसूत्रमहं छित्त्वा गमिष्यामीति गम्यताम् ॥२६

साम्ब उवाच

अग्राह्यं चेद्द्विजातिभ्यः कस्मै देयमिदं मया । श्रुतं वा दृष्टपूर्वं वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२७

गौरमुख उवाच

मगाय सम्प्रयच्छ त्वं पुरमेतच्छुभं विभो । तस्याधिकारो देवान्ने देवतानां च पूजने ॥२८

के लिए दिये गये धन को स्वीकार करने वाले द्विजों को देवलक कहा जाता है । देव धन की अभिलाषा करने वाला ब्राह्मण ब्राह्मणत्व हीन हो जाता है ।१८। देव मन्दिर में ब्राह्मण के लिए जो दान देता है, ये दोनों देने लेने वाले मनुष्य अपने दोष के नाते पापी हो जाते हैं ।१९। हे वृष्णि कुलोत्पन्न ! जो ब्राह्मण देवधन को लेकर उससे श्राद्ध अथवा यज्ञ में हवन करता है या अन्य को देता है, वह अपने धर्म से भिन्न वृत्ति अपनाने वाला ब्राह्मण पापी एवं राक्षस हो जाता है ।२०। हे महीपते ! देवलक द्विज जिस पंक्ति में बैठकर भोजन करता है, अथवा भक्ष्य अन्नों का स्पर्श करता है, वह पंक्ति नीच (अधम), पाप कारिणी समझी जाती है ।२१। देवलक द्विज जिसका संस्कार कराता है वह अपने सभी पितरों पर आक्रमण कर उन्हें अधोमुख करके पतन कराता है ।२२। इसीलिए जो अपना पतन कराता है, वह दूसरे का उद्धार कैसे कर सकता है ? 'अपना उद्धार कर लेगा' यह तो निम्नकोटि की कल्पना मात्र है ।२३। जो कोई ब्राह्मण होकर हठ, लोभ, एवं भयवश सूर्य मन्दिर की (सेवा) वृत्ति स्वीकार कर लेते हैं, वे ब्राह्मण पतित हो जाते हैं ।२४। यद्यपि मंत्र पूर्वक प्रतिग्रह का ग्रहण कर ब्राह्मण उसका उपभोग करता है, पर, देवधन का प्रतिग्रह (दान) लेने के कोई वैदिक वाक्य नहीं हैं ।२५। इसलिए राजा उस देवधन को किसी ब्राह्मण को कभी न दे । ब्रह्म सूत्र (यज्ञोपवीत) तोड़कर ही मैं ऐसा कर सकूंगा, यदि ऐसा कहकर कोई करने को तैयार है तो वह भले ही करे ।२६

साम्ब ने कहा—यदि इसे द्विजाति लोग नहीं स्वीकार करेंगे, तो मैं यह किसे दूँ, आप इसके विषय में कुछ सुने हों या देखे हों तो मुझे बताने की कृपा करें ।२७

गौरमुख बोले—हे विभो ! तुम उस नगर को मग, के लिए प्रदान कर दो क्योंकि देवताओं के अन्न ग्रहण एवं पूजन करने का एकमात्र उन्हें ही अधिकार है ।२८

---

१. देवान्नदानम् । २. देवान्नदानम् । ३. लोभाच्च ।

साम्ब उवाच

कोऽयं मगेति ते प्रोक्ताः क्व वासौ वसते विभो । कस्य पुत्रो द्विजश्रेष्ठ किमाचारः किमाकृतिः ॥२९

गौरमुख उवाच

योऽयं मगेति वै प्रोक्तो मगो दिव्यो द्विजोत्तमः । निक्षुभायां[1] सुतो वीर आदित्यात्मज उच्यते ॥३०

साम्ब उवाच

कथं स निक्षुभापुत्रः कथं वीरसुतस्तथा । कथं चादित्यतनयो मगोऽसावुच्यतेनऽघ ॥३१

गौरमुख उवाच

मानुषत्वं गता देवी निक्षुभा किल यादव । गता शापमवाप्येह भास्कराल्लोकपूजिता ॥३२
गोत्रं मिहिरमित्याहुस्तस्मै ब्राह्मण्यमुत्तमम् । सुजिह्वा नाम धर्मात्मा ऋषिपुत्रः पुरानघ ॥३३
तस्यात्मजा समुत्पन्ना निक्षुभा सा वराङ्गना । रूपेणाप्रतिमा लोके हारलीला मता तु सा ॥३४
पितुर्नियोगात्सा कन्या विहरेज्जातवेदसि ॥३५
विहरन्ती यथान्यायं समिद्ध पावके तथा । अथ तां देवदेवेशो ह्यंशुमाली ददर्श ह ॥३६
रूपयौवनसम्पन्नां ततः कामवशं गतः । चिन्तयामास देवेशः कथं तां वै भजाम्यहम् ॥३७
अनयावहृतो योऽयं पावको देवपूजितः । वनमाविश्य तन्वङ्गीं भजेयं लोकपूजिताम् ॥३८

साम्ब ने कहा—हे विभो ! ये मग कौन हैं, कहाँ इनका निवास स्थान है, किसके पुत्र हैं, एवं हे द्विजश्रेष्ठ ! इनके आचार तथा आकृति कैसी होती है ।२९

गौरमुख बोले—जिस मग को मैंने तुम्हें बताया है, वे दिव्य एवं उत्तम द्विज होते हैं, निक्षुभा से उत्पन्न ये वीर सूर्य के पुत्र कहे जाते हैं ।३०

साम्ब ने कहा—हे अनघ ! ये मग निक्षुभा के पुत्र कैसे हुए, वीर सुत एवं आदित्य के तनय कैसे कहे जाते हैं ।३१

गौरमुख बोले—हे यादव ! लोकपूजित निक्षुभा देवी भास्कर के शाप देने के कारण मनुष्य रूप में उत्पन्न हुई थीं ।३२। पहले समय में मिहिर गोत्र में जिसमें उत्तम ब्राह्मणत्व का होना बताया गया है, हे अनघ ! सुजिह्वा नाम के धर्मात्मा ऋषिपुत्र उत्पन्न हुए ।३३। उनकी पुत्री होकर निक्षुभा उत्पन्न हुई, जो सुन्दर अंगों वाली एवं अनुपम सौन्दर्य पूर्ण थी उस समय लोक में वह हार लीला (उत्तम आभूषण) के समान विख्यात थी ।३४। पिता की आज्ञा प्राप्त कर वह अग्नि में एक साथ खेला करती थी ।३५। इस प्रकार प्रज्वलित अग्नि के साथ विहार करती हुई उसे एक बार देवाधिदेव सूर्य ने देखा ।३६। उस रूप यौवन संपन्न कुमारी को देखकर सूर्य कामपीड़ित हुए और सोचने लगे कि इसका उपभोग हमें कैसे प्राप्त होगा ।३७। उन्होंने सोचा कि इसने देव पूजित अग्नि को अपने वश में कर लिया है, इसलिए इस कृशाङ्गी एवं लोक की उत्तम रमणी को बन में ले जाकर मैं रमण करूँगा ।३८। हे वीर ! ऐसा निश्चय

---

[1]. निक्षुभाग्निसुतः ।

इति सञ्चिन्त्य देवेशः सहस्रांशुर्दिवस्पतिः । विवेश पावकं वीर तत्पुत्रश्चाभवत्तदा ॥३९
ततो विलासलावण्यरूपयौवनशालिनी । समिद्धं लङ्घयित्वाग्निं जगामायतलोचना ॥४०
क्रुद्धः स्वरूपमास्थाय दृष्ट्वा कन्यां स पीडितः । करं करेण सङ्गृह्य ततस्तां हव्यवाहनः ॥४१
उवाच यदुशार्दूल नोदितो भास्करेण तु । वेदोक्तं विधिमुत्सृज्य यथाहं लंघितस्त्वया ॥४२
तस्मान्मत्तः समुत्पन्नो न च पुत्रो भविष्यति । जरशब्द इति ख्यातो वंशकीर्तिविवर्धनः ॥४३
अग्निजात्या मगाः प्रोक्ताः सोमजात्या द्विजातयः । भोजकादित्यजात्या हि दिव्यास्ते परिकीर्तिताः ॥४४
तामेवमुक्त्वा भगवानादित्योऽन्तरतस्तदा । अथोत्पन्नां प्रजां ज्ञात्वा ध्यानयोगेन वै ऋषिः ॥४५
पतितः स्यान्महातेजा ऋग्जिह्वः सुमहामतिः । शापमुद्यम्य तेजस्वी ऋग्जिह्वो वाक्यमब्रवीत् ॥४६
आत्मापराधात्कामिन्या यथा गर्भो नलावृतः। सम्भूतस्ते महाभागे अपूज्योऽयं भविष्यति ॥४७
पुत्रशोकाभिसन्तप्ता बाला पर्याकुलेक्षणा । चिन्तयामास दुःखार्ता तमेकं ज्वलनाकृतिम् ॥४८
ततो देववरिष्ठस्य मम योनिसमुद्भवः । अयं दत्तो महाशापः पूज्यतां कर्तुमर्हसि ॥४९
भवेत्पूज्यो हि मे पुत्रो देवेश्वर तथा कुरु । एवं चिंतयमानस्तु भगवानर्यमा किल ॥५०
आग्नेयं रूपमाश्रित्य चेदं वचनमब्रवीत् । स्निग्धो गम्भीरनिर्घोषः शान्तो ज्वरविवर्जितः ॥५१

कर देवेश सहस्र किरण वाले सूर्य ने अग्नि में प्रवेश किया । और इसी लिए उससे पुत्र उत्पन्न हुआ ।३९। एकबार उस विलास सुन्दरी एवं विशाल नेत्रवाली रूप यौवन के मद से मत्त होकर प्रज्वलित अग्नि को लाँघकर चली गई ।४०। उस समय कामपीड़ित अग्नि प्रविष्ट सूर्य ने क्रुद्ध होकर अपने हाथ से उसका हाथ पकड़ कर कहा । हे यदुशार्दूल ! उस समय भास्कर उदय नहीं हुए थे । उन्होंने कहा वेद विधान का त्याग कर तूने मेरा उल्लंघन किया है इसलिए तुम्हारा पुत्र मेरे द्वारा उत्पन्न होने पर भी पुत्र न कहलायेगा प्रत्युत जर शब्द के नाम से उसकी ख्याति होगी ।४१-४३। इस प्रकार वह अपनी वंश कीर्ति को बढ़ायेगा अग्नि जाति वाले मग, सोम जाति वाले द्विजाति, आदित्य जाति वाले भोजक के नाम से (वे उत्पन्न होने वाले) दिव्य ख्याति प्राप्ति करेंगे ।४४। उससे इस प्रकार कहकर सूर्य देव अन्तर्हित हो गये । उस समय ऋषि ने भी अपने ध्यान योग द्वारा उन उत्पन्न हुई सन्तानों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया ।४५। उससे महाबुद्धिमान् एवं महातेजस्वी वे ऋग्जिह्व[1] नामक ऋषि मूर्छित से हो गये । इसीलिए उस तेजस्वी ऋग्जिह्व ने उसे शाप दिया कि तुमने स्वयं कामवश होकर अपने दोष से गर्भ को धारण किया है, अतः हे महाभागे ! तुमसे उत्पन्न यह पुत्र अपूज्य होगा ।४६-४७। (उनके ऐसा कहने पर) पुत्र शोक से संतप्त एवं आँखों में आँसू भरे उस स्त्री ने दुःखी होकर उसी एक प्रज्वलित आकृति वाले (अग्नि) का ध्यान किया ।४८। कि श्रेष्ठ देवद्वारा मेरे (गर्भ) से उत्पन्न इस सन्तान को उन्होंने अपूज्य होने का शाप दिया है, अतः इन्हें पूज्य बनाने की कृपा करें ।४९। हे देवेश्वर ! मेरे पुत्र जिस उपाय से पूज्य हो सकें आप वैसा ही करने की कृपा करें । इस प्रकार उसे चिन्तित देख कर भगवान् सूर्य ने अग्नि का रूप धारण कर उससे कहा—हे सुव्रत ! प्रिय ! गंभीर वाणी वाले शांत, क्रोधहीन एवं महातेजस्वी वे

ऋग्जिह्वः समुहातेजा धर्मं चरति सुव्रत । तेनोत्सृष्टं महाशापं नान्यथा कर्तुमुत्सहे ।।५२
किं तु कार्यगरीयस्त्वादात्मनो योग्यमुत्तमम् । तव पुत्रं विधास्यामि चापूज्यं वेदपारगम् ।।५३
वंशश्च सुमहांस्तस्य निवसिष्यति भूतले । ममाङ्गानि महात्मानो वशिष्ठा ब्रह्मवादिनः ।।५४
मद्गायना मद्यजना मद्भक्ता मत्परायणाः । मम शुश्रूषकाश्चैव मम च व्रतचारिणः ।।५५
त्वां च मां च यथान्यायं वेदं तत्त्वार्थदर्शिनः । पूजयिष्यन्ति निरताः सदा मद्भावभाविताः ।।५६
मत्कर्मणां मदङ्गानां मद्भावविनिवेशनात् । विरजा मत्प्रसादेन मामेवैष्यन्त्यसंशयम् ।।५७
जटाश्मश्रुधरा नित्यं सदा मयि परायणाः । पञ्चकालविधानज्ञा वीरकालस्य यज्विनः ।।५८
पूर्णेकदक्षिणे पाणौ वर्म वामेन धारयन् । पतिदानेन वदनं प्रच्छाद्य नियतः शुचिः ।।५९
प्राणं हि महतां कृत्वा ततो भुञ्जीत वाग्यतः । अयमाच्चाप्रसादाच्च व्याकुलेन्द्रियचेतसा ।।६०
विधिहीनं मंत्रहीनं ये वै यक्ष्यन्ति मामतः । तेऽपि स्वर्गाच्च्युताः क्लान्ता रमन्ते सूर्यसन्निधौ ।।६१
एवंविधास्तव सुता भविष्यन्ति महीतले । मगवंशे महात्मानो वेदवेदाङ्गपारगाः ।।६२
एवमाश्वास्य तां देवीं भास्करो वारितस्करः । अन्तदर्धे महातेजाः सा च हर्षमवाप ह ।।६३
एवमेते समुत्पन्ना भोजकाः कृष्णनन्दन । विष्णुभास्ते तथादित्या उत्पन्ना लोकपूजिताः ।।६४
तेषामेतत्पुरं देहि पर्याप्तास्ते प्रतिग्रहे । त्वदीयस्यास्य मे वीर तथा भास्करपूजने ।।६५

ऋग्जिह्व धर्म का आचरण कर रहे हैं, अतः उनके द्वारा दिये गये उस महाशाप की प्रतिक्रिया मैं करने में असमर्थ हूँ ।५०-५२। परन्तु उत्तम कार्य करने के नाते मैं तुम्हारे अयोग्य पुत्रों को उत्तम, योग्य, एवं वेद का पारगामी विद्वान् बनाऊँगा ।५३। इस भूतल पर उनकी महान वंश परम्परा निवास करेगी । वे सब मेरे अंग, महात्मा, वशिष्ठगोत्री, ब्रह्मवादी, मेरे ही गान, पूजन, भक्ति, परायण में मेरी सेवा एवं मेरे व्रत-विधानों का पालन करने वाले होंगे ।५४-५५। वेद-तत्व के निष्णात विद्वान् मेरे भावानुरक्त एवं तत्कालीन होकर मेरी और तुम्हारी अर्चना करेंगे ।५६। मेरे लिए कर्म करने के नाते मेरे अंग कहे जायँगे तथा मेरे भावानुरक्त एवं मेरी प्रसन्नता से विरक्त होकर वे मुझे निश्चित प्राप्त करेंगे ।५७। जटा एवं दाढ़ीको धारण कर सदैव मत्परायण होते हुए वे पाँचो कालविधान के ज्ञाता, तथा वीरकाल की नित्य पूजा करेंगे ।५८। दाहिने हाथ को पूर्ण रख और बाँये हाथ में वर्म रूप (केंचुल कवच) धारण कर पति दान द्वारा मुख ढाँक कर संयमी एवं पवित्र होते हुए महान लोगों की भाँति प्राप्त वायु के संयमपूर्वक ही भोजन करेंगे संयमहीन, अकरुण, एवं आकुल मन से विधान तथा मंत्र से हीन मेरे पूजन यज्ञ आदि भी करेंगे ।५९-६०। तो भी स्वर्ग की प्राप्ति तो न कर उससे दुःखी हो सकेंगे पर सूर्य के समीप प्रसन्नतापूर्वक आनन्द का अनुभव करेंगे ।६१। इस प्रकार के तुम्हारे पुत्र इस पृथ्वी तल पर मग वंश में उत्पन्न होकर महात्मा वेद वेदाङ्ग के पारगामी विद्वान् होंगे ।६२। जल के तस्कर तथा महातेजस्वी भास्कर इस प्रकार उस देवी को आश्वासन प्रदान कर अर्न्तहित हो गये और वह देवी भी अत्यन्त हर्षित हुई ।६३। हे कृष्णनंदन ! इस भाँति वे भोजक अग्नि एवं सूर्य द्वारा उत्पन्न होकर विष्णु और सूर्य के समान तेजस्वी हो होकर लोक में पूजित हुए ।६४। उन्हीं लोगों को इस नगर का दानकर इसका अधिकारी बनाओ क्योंकि वे ही इस प्रतिग्रह के लेने में समर्थ हैं ।६५। उन गौरमुख की ऐसी बातें सुनकर जाम्बवती के पुत्र साम्ब यादव ने

तस्य गौरमुखस्येदं वाक्यं श्रुत्वा स यादवः । साम्बो जाम्बवतीपुत्रः प्रणम्य शिरसोक्तवान् ॥६६
क्व वसन्ते महात्मान एते भास्करपुत्रकाः । भोजका द्विजशार्दूल येन तानानयाम्यहम् ॥६७

गौरमुख उवाच

नाहं जाने महाबाहो वसन्ते यत्र वै मगाः । जानीते तान्रविर्वीर तस्मात्तं शरणं व्रज ॥६८
ब्राह्मणेनैवमुक्तस्तु प्रणम्य शिरसा रविम् । जगाद भास्करं साम्बः कस्ते पूजां करिष्यति ॥६९
विज्ञप्तस्त्वेव साम्बेन प्रतिमा तमुवाच ह । न योग्याः परिचर्यायां जम्बूद्वीपे ममानघ ॥७०
मम पूजाकरं गत्वा शाकद्वीपादिहानय । लवणोदात्परे पारे क्षीरोदेन समावृतः ॥७१
जम्बूद्वीपात्परो यस्माच्छाकद्वीप इति स्मृतः । तत्र पुण्या जनपदाश्चतुर्वर्णसमन्विताः ॥७२
मगाश्च मगगाश्चैव गानगा[1] मन्दगास्तथा । मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मगगाः क्षत्रियाः स्मृताः ॥७३
वैश्यास्तु गानगा ज्ञेयाः शूद्रास्तेषां तु मन्दगाः । न तेषां सङ्करः कश्चिद्धर्माश्रयकृते क्वचित् ॥७४
धर्मस्यास्य विचारो वा ह्येकतः सुखिनः प्रजाः । तेजसस्ते मदीयस्य निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ ॥७५
तेभ्यो वेदास्तु चत्वारः सरहस्या मयोदिताः । वेदोक्तैर्विविधैः स्तोत्रैः परैर्गुह्यैर्मया कृतैः ॥७६
ते च ध्यायन्ति मामेव यजन्ते मां च नित्यशः । मन्मानसा मद्यजना मद्भक्ता मत्परायणाः ॥७७
मम शुश्रूषकाश्चैव मम च व्रतचारिणः । अव्यङ्गधारिणश्चैव विधिदृष्टेन कर्मणा ॥७८

उन्हें पुनः शिर से प्रणाम कर कहा—हे द्विजोत्तम ! ये भास्कर के पुत्र महात्मा भोजक लोग कहाँ रहते हैं, (आप बतायें) जिससे मैं उन्हें यहाँ ला सकूँ ।६६-६७

गौरमुख बोले—हे महाबाहो ! वे मग जहाँ रहते हैं, मुझे मालूम नहीं है ! हे वीर ! सूर्य ही इसे जानते हैं, अतः उन्हीं की शरण जाओ ।६८। ब्राह्मण के ऐसा कहने पर साम्ब ने नत मस्तक हो सूर्य को प्रणाम किया और उनसे कहा कि —'आप की पूजा कौन करेगा ।६९। साम्ब के इस प्रकार सूचित करने पर उस (सूर्य की) प्रतिमा ने कहा—हे अनघ ! इस जम्बूद्वीप में मेरी पूजा करने के योग्य कोई नहीं है ।७०। (अतः) मेरी पूजा करने के लिए शाकद्वीप से (किसी को) लाओ । क्षार (खार) समुद्र के उस पार के प्रदेश को जो जम्बू द्वीप से भी दूर हैं और क्षीर सागर से घिरा है वह शाकद्वीप कहा जाता है वहाँ पुण्यात्मक चारों वर्ण के मनुष्य रहते हैं—मग, मगग, गानग एवं मंदग उनके भेद हैं । श्रेष्ठ ब्राह्मण मग, क्षत्रिय मगग, वैश्य गानग, तथा शूद्र मंदग के नाम से वहाँ ख्यात हैं । उस धार्मिक नगर में कोई (वर्ण) संकर (जारज) नहीं है ।७१-७४। वहाँ सभी लोग धार्मिक चर्चा करते हैं, इसीलिए वहाँ की प्रजाएँ नित्य सुखानुभव करती हैं विश्वकर्मा ने मेरे ही तेज द्वारा उनका निर्माण किया है ।७५। उन लोगों के लिए मैंने सरहस्य चारों वेदों का प्रतिपादन किया है, और भाँति-भाँति के वेदोक्त एवं गुह्य स्तोत्रों का निर्माण भी ।७६। वे सब मेरा ही नित्य ध्यान तथा पूजन करते हैं, वे मेरे मानस पुत्र होकर, मेरे लिए पूजन, मेरे भक्त, मेरे लिए अनुरक्त होकर मेरी ही शुश्रूषा एवं मेरे ही व्रतों का पालन करते हैं और विधान पूर्वक अव्यंग्य भी धारण करते

---

१. मानसाः ।

कुर्वन्ति ते सदा भद्रां मम पूजां ममानुगाः । तथा देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ॥
विहरन्ते रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह ॥७९
जम्बूद्वीपे त्वहं विष्णुर्वेदवेदाङ्गपूजितः । शक्रोऽहं शाल्मलीद्वीपे क्रौञ्चद्वीपे ह्यहं भगः[1] ॥८०
प्लक्षद्वीपे त्वहं भानुः शाकद्वीपे दिवाकरः । पुष्करे च स्मृतो ब्रह्मा ततश्चाहं महेश्वरः ॥८१
तान्मगान्मम पूजार्थं शाकद्वीपादिहानय । आरुह्य गरुडं साम्ब शीघ्रं गत्वाविचारयन् ॥८२
तथेति गृह्य तामाज्ञां रवेर्जाम्बवतीसुतः । पुनर्द्वारवतीं गत्वा कान्त्यातीव समन्वितः ॥८३
आख्यातवान्पितुः सर्वं स्वकीयं देवदर्शनम् । तस्माच्च गरुडं लब्ध्वा ययौ साम्बोऽधिरुह्य तम् ॥८४
शाकद्वीपमनुप्राप्य सन्प्रहृष्टतनूरुहः । तत्रापश्यद्यथोद्दिष्टान्साम्बस्तेजस्विनो मगान् ॥८५
विवस्वन्तं पूजयन्तो धूपदीपादिभिः शुभैः । सोऽभिवाद्य च तान्पूर्वं कृत्वाप्येषां प्रदक्षिणाम् ॥८६
पृष्ट्वा चानामयं तेषां प्रशंसासामपूर्वकम् । यूयं हि पुण्यकर्माणो द्रष्टव्यार्थे शुभार्थिनः ॥
रता येऽर्कस्य पूजायां येषां चैव वरप्रदः ॥८७
तनयं वित्त मां विष्णोः साम्बं नाम्ना च विश्रुतम् । चन्द्रभागातटे चापि मया सूर्यो निवेशितः ॥८८
तेनाहं प्रेषितश्चात्र उत्तिष्ठध्वं व्रजामहे । ते तमूचुस्ततः साम्बमेवमेतन्न संशयः ॥८९
अस्माकमपि देवेन व्याख्यातां पूर्वमेव हि । अष्टादश कुलानीह मगानां वेदवादिनाम् ॥

हैं ।७७-७८। वे मेरे अनुयायी होकर सदैव मेरी उत्तम पूजा करते हैं, तथा देव, गन्धर्व, सिद्ध एवं चारणों के साथ विहार, रमण सभी कुछ करते हुए देखे जाते हैं ।७९। जम्बू द्वीप में मैं वेद एवं वेदाङ्ग द्वारा पूजित विष्णु, शाल्मली द्वीप में शक्र (इन्द्र) क्रौंच द्वीप में शिव, लक्षद्वीप में भानु, शाकद्वीप में दिवाकर, पुष्कर में ब्रह्मा, एवं (कुशद्वीप) में महेश्वर के रूप में स्थित हूँ ।८०-८१। अतः मेरी पूजा के लिए उन मगों को शाकद्वीप से यहाँ लाओ हे साम्ब ! गरुड़ पर बैठकर शीघ्र प्रस्थान करो, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।८२। जाम्बवती पुत्र साम्ब 'तथा' कहकर सूर्य की आज्ञा शिरोधार्य कर मनोरम सौन्दर्य पूर्ण हो पुनः द्वारवती (द्वारिका) के लिए अवस्थित हुआ ।८३। वहाँ अपने पिता से सूर्य दर्शन आदि सभी वृत्तान्त कह सुनाया पश्चात् उनसे गरुड़ लेकर उसी पर बैठकर साम्ब ने शाकद्वीप के लिए प्रस्थान किया ।८४। वहाँ पहुँचने पर जैसा कि सूर्य ने बताया था, जो धूप दीप द्वारा सूर्य की पूजा करते थे, तेजस्वी मगों को देखकर उसे इतनी प्रसन्नता हुई कि उसे रोमांच हो गया ।८५। उसने पहले उन लोगों की प्रदक्षिणा की पश्चात् उनका अभिवादन किया ।८६। शांति पूर्वक उनके (अनामय) कुशल पूछने के उपरांत उनकी प्रशंसा करने लगा कि आप लोग पुण्य कर्म एवं दृष्ट पदार्थों में श्रम कामना करने वाले है । जो सूर्य की पूजा में विशेष अनुरक्त रहता है, उसके लिए सूर्य वर प्रदान करते हैं ।८७। मैं विष्णु का पुत्र हूँ, मेरा नाम साम्ब है, चन्द्रभागा नदी के तट पर मैंने (एक विशाल भवन में) सूर्य की प्रतिष्ठा करायी है ।८८। उन्होंने ही मुझे यहाँ भेजा है इसलिए आप लोग उठें और मेरे साथ चलने की कृपा करे । उसके इस प्रकार कहने पर साम्ब से उन लोगों ने भी कहा यह (बात) ऐसी ही है, इसमें कोई संशय नही ।८९। क्योंकि हम लोगों को सूर्य देव ने पहले ही इसे सूचित किया , इसलिए उनके कथनानुसार वेदवादी मग के

---

१. शिवः इ०पा० ।

यास्यन्ति ये त्वया सार्धं यथा देवेन भाषितम् ॥९०
ततस्तानि दशाष्टौ च कुलानीह समन्ततः । आरोप्य गरुडे साम्बस्त्वरितः पुनरभ्यगात् ॥९१
सोऽल्पेनैव तु कालेन प्राप्तो मित्रवनं ततः । कृत्वाज्ञां तु रवेः साम्बः कृत्स्नं त्वेवं न्यवेदयत् ॥९२
रविः शोभनमित्युक्त्वा प्रसन्नः साम्बमब्रवीत् । मम पूजाकरा ह्येते प्रजानां शान्तिकारकाः ॥९३
मम पूजां करिष्यन्ति विधानोक्तां यदूत्तम । तत्कृते न पुनश्चिन्ता तव काचिद्भविष्यति ॥९४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकानयनं
नामैकोनचत्वारिंदधिकशततमोऽध्यायः ।१३९।

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकोत्पत्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एवं स आनयित्वा तु मगान्साम्बो महीपते । स महात्मा पुरा साम्बश्चन्द्रभागासरित्तटे ॥१
पुरं निवेशयामास स्थापयित्वा दिवाकरम् ।कृत्वा धनसमृद्धं तु भोजकानां समर्पयत् ॥२
तत्पुरं सवितुः पुण्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । सांबेन कारितं यस्मात्तस्मात्साम्बपुरं स्मृतम् ॥३
तस्मिन्प्रतिष्ठितो देवः पुरमध्ये दिवाकरः । सत्कृत्य स्थापिताः सर्वे आत्मनामाङ्किते पुरे ॥४

जो अठारह कुल हैं, वे सभी तुम्हारे साथ प्रस्थान करेंगे ।९०। उसके पश्चात् साम्ब उनके अठारहों कुलों को उसी गरुड़ पर बैठा कर पुनः शीघ्र वापस आया ।९१। थोड़े ही समय में वह सूर्य की आज्ञा का पालन कर उस मित्र वन में गया और सूर्य से सभी बातें कह सुनाया । सूर्य भी 'अति सुन्दर हुआ' कह कर प्रसन्न चित्त हो सांब से बोले—ये लोग मेरी पूजा एवं शांति करने वाले हैं ।९२-९३। हे यदुश्रेष्ठ ! ये विधान पूर्वक मेरी पूजा करेगें, उसके लिए तुम्हें फिर कभी चिंतित होना नहीं पड़ेगा ।९४
श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में भोजकानयन वर्णन नामक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३९।

अध्याय १४०

भोजकोत्पत्ति वर्णन

सुमन्तु बोले—हे महीपते ! इस प्रकार उस महात्मा साम्ब ने मगों को लाकर चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित अपने बसाये ऐसे उस समृद्ध नगर को जिसमें सूर्य की स्थापना हुई थी भोजकों के लिए समर्पित कर दिया ।१-२। सूर्य का वह पवित्र नगर तीनों लोकों में विख्यात है, जो साम्ब के द्वारा निर्माण कराये जाने के नाते साम्बपुर कहा जाता है ।३। उस नगर के मध्य भाग में सूर्य देव प्रतिष्ठित हैं और उसी अपने नाम वाले नगर में उसने उन लोगों को भी स्थित किया ।४। मगों का सदाचार, कुलाचार, एवं

मगानां तु सदाचारो दृष्टाचारकुलोचितः । देवशुश्रूषणं गीतं वेदप्रोक्तेन कर्मणा ॥५
कृतकृत्यस्तदा साम्बो वरं लब्ध्वा पुनर्युवा । आदिदेवं सुरज्येष्ठमादित्यं प्रणिपत्य सः ॥६
अनन्तरं मगान्सर्वान्प्रणिपत्याभिवाद्य च । प्रस्थितो निर्मलः साम्बः पुरीं द्वारवतीं तदा ॥७
मगानां कारणार्थेन प्रार्थिता भोजवंशजाः । वसुदेवस्य पौत्रेण गोत्रजेन महात्मना ॥८
कन्यादानं कृतं तेषां मगानां भोजकोत्तमैः । सर्वास्ताः सहिताः कन्याः प्रवालमणिभूषिताः ॥९
अर्चयित्वा तु ताःसर्वाः प्रेषिताः सवितुर्गृहम् । पुनर्गत्वा तु सांबेन पृष्टो देवो दिवाकरः ॥१०
मगानां ज्ञानमाख्याहि[1] वेदानव्यङ्गमेव च । साम्बस्य वचनं श्रुत्वा भास्करो वाक्यमब्रवीत् ॥११
पृच्छ त्वं नारदं गत्वा स ते सर्वं वदिष्यति । एवमुक्तोऽथ वै साम्बो गतवान्नारदं प्रति ॥१२
गत्वा कृत्स्नमिदं सर्वं तस्मै तेन निवेदितम् । स चाप्याह ततः साम्बं न जाने ज्ञानमुत्तमम् ॥१३
भोजकानां यदुश्रेष्ठ ज्ञानं व्यासो महामुनिः । तं गत्वा परिपृच्छ त्वं प्रणम्य शिरसा मुनिम् ॥१४
कृष्णानुरोधात्ते सर्वं स वक्ष्यति न संशयः । नारदेनैवमुक्तस्तु साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥१५
व्यासाश्रमं स गत्वा तु प्रणम्य शिरसा मुनिम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥१६
शाकद्वीपं मया गत्वा आनीता मगपुङ्गवाः । बाला यौवनसम्पन्नाः सन्निविष्टा मगोत्तमाः ॥१७
सत्कृत्य पूजयित्वा तु पुरं तेषां समर्पितम् । सम्प्राप्य तु पुरं ते वै ज्येष्ठमध्यकनीयसः ॥१८
भोजवंशसमुत्पन्नाः कन्यकाः समलङ्कृताः । वरयित्वा कृतं तेषां विप्रप्रणयनं शुभम् ॥१९

वेद-विधान पूर्वक उनके द्वारा की गई सूर्य की परिचर्या को देखकर साम्ब कृतकृत्य हो गया । पुनः अपने युवा होने का वरदान प्राप्त करके वह साम्ब देव श्रेष्ठ, एवं देवों के आदि सूर्य को प्रणाम एवं सभी मगों को नम्रतापूर्वक अभिवादन किया और विशुद्ध होकर पुनः द्वारका पुरी को लौट आया ।५-७। वसुदेव के पौत्र (नाती) उस महात्मा साम्ब ने मगों के (विवाह) के लिए भोज वंशजों से प्रार्थना की ।८। भोजको ने भी सहर्ष मगों के लिए कन्यादान किया सभी कन्यायों को प्रवाल एवं मणियों से अलंकृत एवं पूजित करके उन्हें सूर्य के मन्दिर में भेज दिया ।९-१०। (एक समय) साम्ब ने (कभी) उस मंदिर में जाकर सूर्य से पूछा कि मगों का ज्ञान एवं उनकी वेदों की अनव्यङ्गता (वैदिक ज्ञान की पूर्णता) आप बताने की कृपा करें । साम्ब की बातें सुन कर सूर्य ने कहा— ।११। नारद के पास जाकर उनसे पूछो, वे तुम्हें सब कुछ बतायेंगे इस प्रकार कहने पर साम्ब नारद के पास गया ।१२। वहाँ जाकर उसने उनसे उपरोक्त सभी बातें पूँछी । नारद ने कहा—हे साम्ब ! मैं भोजकों का ज्ञान नहीं जानता ।१३। हे यदुश्रेष्ठ ! इसे महामुनि व्यास जानते हैं, इसलिए वहाँ जाकर नतमस्तक प्रणाम पूर्वक उनसे पूँछो ।१४। कृष्ण के अनुरोध से वे सभी कुछ बतायेंगे, इसमें संशय नहीं । नारद के इस प्रकार कहने पर जाम्बवती पुत्र साम्ब ने व्यास के आश्रम में पहुँच कर नतमस्तक प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़कर कहा ।१५-१६। शाकद्वीप जाकर मैंने बाल एवं युवावस्था वाले उन उत्तम मगों को यहाँ लाकर सत्कार पूर्वक पूजन करके उस नगर को मैंने अर्पित कर दिया है। हे विप्र ! उस नगर के निवासी होकर वे सभी जो बड़े मध्यम, एवं छोटे हैं, भोजवंश की समलंकृत कन्याओं द्वारा वरण कर विवाहित हो चुके हैं ।१७-१९। आश्चर्य है कि सूर्य की

---

१. वेदसाध्यं हि ।

अहो सभाग्याः श्लाघ्याश्च कृतपुण्याश्च ते सदा । पूजायां ये रता भानोर्येषां चैव वरप्रदः ।।२०
पर्याप्तं सर्वमेतेषामिह चामुष्मिकं फलम् । अनित्ये सति मानुष्ये देवपूजारता हि ये ।।२१
किन्तु चिन्तयतः सूर्यं चिन्तयित्वा तु भोजकान् । ज्ञानं प्रति तथा चैषां हृदये संशयो मम ।।२२
कथं पूजाकरा ह्येते के मगाः के च भोजकाः । ज्ञानं किं परमं तेषां ज्ञेयस्तेषां क एव तु ।।२३
दिव्येति ते कथं प्रोक्ताः किमर्थं कूर्चधारणम् । सौरव्रतं किमर्थं तु वाचकास्ते कथं स्मृताः ।।२४
किमर्थं तेजसा वेदान्गायन्तश्चैव ते कथम् । अथाहिकञ्चुकस्याङ्गं किं प्रमाणं च कस्य वै ।।२५
कस्य वै का समाख्याता यदुत्पन्नं कथं स्मृतम् । कथं देवांश्च गायन्ति यज्ञं कुर्वन्ति ते कथम् ।।२६
अग्निहोत्रं च किं तेषां पञ्च कालाश्च काः स्मृताः । एतत्सर्वं समाख्याहि भोजकानां विचेष्टितम् ।।२७
साम्बस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनो मुनिः । कालीसुतो महातेजा उवाच परमं वचः ।।२८
साधुसाधु यदुश्रेष्ठ साधु पृष्टोऽस्मि सुव्रत । दुर्ज्ञेयचेष्टितं किञ्चिद्भोजकानां न संशयः ।।२९
भास्करस्य प्रसादेन ममापि स्मृतिमागतम् । यथाख्यातं वशिष्ठेन तथा ते वच्मि कृत्स्नशः ।।३०
मगानां चरितं श्रेष्ठं शृणु त्वं कृष्णनन्दन । ज्ञानवेदिन एवैते कर्मयोगं समाश्रिताः ।।३१
श्रूयन्ते ऋषयः सर्वे मौनेन नियमस्थिताः । भुञ्जते चापि मौनेन सर्वे वै परमर्षयः ।।३२
मुनिचर्याकृतस्तेऽपि शाकद्वीपनिवासिनः । तस्मान्मौनेन भोक्तव्यमगुणत्वमनिच्छता ।।३३

पूजा में मग्न रहने के नाते वे सदैव भाग्यवान्, श्लाघ्य एवं पुण्यकर्मा हैं क्योंकि जिनके लिए सूर्य सभी प्रकार से वरदायक रहते हैं ।२०। मनुष्य के शरीर आदि सभी अनित्य (नाशवान) हैं, ऐसा समझ कर ये लोग सदैव सूर्य देव की आराधना करते हैं । इसीलिए इन्हें लोक परलोक के पर्याप्त उत्तम फल प्राप्त हैं ।२१। सूर्य के विषय की चिंता करते हुए मुझे अधिक भोजकों के विषय की चिंता हो रही है कि इनकी उत्पत्ति आदि का ज्ञान किस प्रकार किया जाये ।२२। मुझे यह महान् संशय हो रहा है कि ये पूजा करने वाले मग एवं भोजक कौन हैं, क्या हैं, इनका उत्तम ज्ञान (जानकारी) तथा इनका ज्ञेय (जानने योग्य) क्या है ।२३। वे 'दिव्य' क्यों कहे जाते हैं, दाढ़ी क्यों रखते हैं, सूर्य का ही व्रत क्यों करते हैं, और वे वाचक कैसे कहे जाते हैं ।२४। अपने तेज से वेदों का ज्ञापन क्यों करते हैं, सूर्य का कवच क्यों धारण करते हैं, इनका क्या प्रमाण है ।२५। वे किससे उत्पन्न हैं इनकी जननी किसकी पुत्री हैं इन्हें यदु कुलोत्पन्न कैसे कहा जाता है, देवगायन एवं यज्ञों को किस प्रकार सुसम्पन्न करते हैं ।२६। इनका अग्निहोत्र क्या है, तथा इनके पाँचो काल (समय) कौन-कौन हैं ? कृपया भोजकों की इन सभी बातें को बताइये ।२७। इस प्रकार साम्ब की बातें सुनकर महातेजस्वी, काली पुत्र, मुनि कृष्णद्वैयायन (व्यास) ने उत्तम वाणी से कहा ।२८। हे यदुश्रेष्ठ ! तुम साधु हो एवं महान् साधु हो, हे सुव्रत ! तुमने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है भोजकों की ये सभी बातें अवश्य कठिनाई से जानी जा सकती हैं, इसमें संदेह नहीं ।२९। सूर्य की कृपा द्वारा मुझे भी स्मरण हो गया, वशिष्ठ ने जिस प्रकार बताया है, मैं उन सभी बातों को तुमसे बता रहा हूँ ।३०। हे कृष्णनन्दन ! मगों के उत्तम चरित जानने योग्य हैं सुनो ! ये ज्ञानी कर्मयोगी मौन होकर नियम पालन करते हैं तथा ये परमऋषि मौन होकर भोजन भी करते हैं ।३१-३२। शाकद्वीप में रहते हुए भी ये मुनियों की भाँति आचरण करते हैं । और इसीलिए मौन होकर भोजन करना चाहिए यह इनका सिद्धांत है,

वचः सूर्यसमाख्यातं कारणं च वरं तथा । अर्चायां ते च ते नित्यमर्चयन्तश्च ते स्मृताः ॥३४
भोजकन्यासुजातत्वाद्भोजकास्तेन ते स्मृताः । ब्राह्मणानां यथा प्रोक्तो वेदाश्चत्वार एव तु ॥३५
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदस्त्वथर्वणः । ब्रह्मणोक्तास्तथा वेदा मगानामपि सुव्रत ॥३६
त एव विपरीतास्तु तेषां वेदाः प्रकीर्तिताः । वेदो विश्वमदश्चैव विद्वद्वह्निरसस्तथा ॥३७
वेदा ह्येते मगानां तु पुरोवाच प्रजापतिः । मगा वेदमधीयन्ते वेदाङ्गास्तेन ते स्मृताः ॥३८
शेषो न हि महाभागः सर्वसत्त्वसुखावहः । ससूर्यरथमासाद्य रश्मिभिः सह वर्षति ॥३९
यस्तस्य तु पुनर्मोकः स रवेर्हि महानकः । वन्दिलश्चो मगानां तु अस्त्रमन्त्रेण नित्यशः ॥४०
यथा स्रजो द्विजानां तु पूजाकाले प्रमोयते । सर्वसंस्कारयज्ञेषु यथा दर्भा द्विजातिषु ॥४१
पवित्राः कीर्तितास्तेषां तथा धर्मो मगस्य तु । एभिर्जयन्ति भूयिष्ठं तस्मिन्द्वीपे मगाधिपाः ॥४२
विद्यावन्तः कुलश्रेष्ठाः शौचाचारसमन्विताः । यज्ञावसक्ता[1] नक्ताश्च जपन्तो मन्त्रमादितः ॥४३
प्रियास्तु यदुशार्दूल भोजका यदुनन्दन । अस्त्रमिव वै मन्त्रो वेदस्य परिपठ्यते ॥४४
सर्वेषां ब्राह्मणानां तु सावित्री परिकल्प्यते । अस्माकं तु यदुश्रेष्ठ महाव्याहृतिपूर्तिका ॥४५

अमोहकेनाथ विभाभुञ्जी मौनेन चैवापि यथा हि युक्तम् ।
न चापि किञ्चित्स्मृतिकं स्पृशेच्च तच्चापि नास्नैव च संस्पृशेद्धि ॥४६

गुणहीन नियम का पालन नहीं करते हैं ।३३। सूर्य की बतायी हुई बातें एवं वरदान ग्रहण किये हैं, इनके मूलकारण सूर्य हैं, ये सूर्य की ही नित्य पूजा करते हैं अतः इन्हें पूजक (देवलक) कहा जाता है ।३४। भोजक की कन्या में उत्पन्न होने के नाते ये भोजक कहे जाते हैं । ब्राह्मणों के लिए जिस प्रकार चारों वेदों (ऋग्यजु साम और अथर्व) की व्याख्या की गई है, उसी प्रकार हे सुव्रत ! मगों के लिए भी ब्रह्मा द्वारा वेदों का प्रतिपादन किया गया है ।३५-३६। उनसे भिन्न रीति द्वारा मगों के लिए वे ही वेद बताये गये हैं —वेद विश्वमद, विद्वद् एवं वह्निरस (अंगिरस), यही वेद हैं ऐसा मगों के लिए प्रजापति ने बताया है ।३७। मग लोग वेदाध्ययन करते हैं इसीलिए उन्हें वेदाङ्ग होना भी उन्होंने बताया है ।३८। भाग्यशाली शेष सभी के लिए सुख प्रदान करते हैं, सूर्य के साथ रथ में बैठकर उनके किरणों के साथ वर्षा करते हैं ।३९। उनकी केंचुल सूर्य के लिए महानक (कवच) है, जो अस्त्र मंत्र द्वारा मगों के लिए नित्य वंदनीय है ।४०। जिस भाँति द्विजों की पूजा के समय मालाएँ द्विजातियों के तथा सभी संस्कार रूपी यज्ञों में कुश पवित्र बताया गया है ।४१। उसी प्रकार मगों के लिए धर्म प्रतिपादित है । उस द्वीप में इसी धर्म द्वारा मगाधिनाथ विजयी होते हैं ।४२। वे सदैव विद्वान्, उत्तम कुलोत्पन्न पवित्र सदाचारी, यज्ञ करने में आसक्त एवं भक्त, होते हुए आदित्य मंत्र का जप करते हैं ।४३। हे यदुशार्दूल ! भोजक इसीलिए (सूर्य को) प्रिय हैं, हे यदुनंदन ! अस्त्र की भाँति इनके लिए वेदमंत्र है ।४४। इनका कहना है कि सभी ब्राह्मणों के लिए जिस तरह सावित्री की कल्पना की जाती है, उसी भाँति हम लोगों के लिए महाव्याहृति पूर्वक सूर्य मंत्र है । अमोहक (केंचुल की कवच) को साथ लिए मौन होकर भोजन करना (उनके लिए) नियम है किसी मृतक आदि अशुद्ध का स्पर्श इनसे न हो और ये लोग भी उसका स्पर्श स्वयं न करें ।४५-४६। जिस

---

१. भक्ता मंत्रं जपंते च आदितः पुरुषोत्तम ।

असन्त्यनिच्छंस्तु परिक्षिपेत्तु स्वाभीष्टसूर्दं तु नमेत्सदैव।
यथा यज्ञं हि मन्त्रेण वेदप्रोक्तेन कर्मणा ।।४७
तत्त्वमन्यन्मगानान्तु विधिमन्त्रपुरस्कृतम् । हविः सम्पद्यते यस्मात्तेन ते यज्विनः स्मृताः ।।४८
यथाग्निहोत्रं प्रथितं द्विजानां तथाध्वहोत्रं विहितं मगानाम्।
अच्छं न नामेति तदध्वरस्य मुनेर्वचो नात्र विचारणास्ति।।४९
पञ्चधूपाः प्रदातव्याः सिद्धिरस्येह सर्वदा । दण्डनायकवेले द्वे त्रिसन्ध्यं भास्करस्य तु ।।५०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकोत्पत्तिवर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४०।

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकजातिवर्णनम्

साम्ब उवाच

भोजकानां यत्त्वयोक्तमव्यङ्गो देहशोधकः । व्रतबन्धस्त्वसौ प्रोक्तस्तेषां जातिश्च का स्मृता ।।१

व्यास उवाच

ते पृष्टा भवता सर्वे भोजकानां कुमारकाः । किमाख्यातं ततस्तैस्तु तदेवाचक्ष्व कृत्स्नशः ।।२

प्रकार श्वास अनिच्छा पूर्वक भीतर बाहर आती जाती रहती है, उसी भाँति नित्य निरन्तर अपने इष्ट देव सूर्य का सदैव नमस्कार करते रहें। वेदोक्त विधान एवं मंत्र पूर्वक जिस प्रकार यज्ञ सुसम्पन्न किया जाता है, उसी भाँति मगों को प्रधान सूर्य मंत्र द्वारा विधान पूर्वक यज्ञों के लिए निष्पन्न करने को बताया गया है। इन्हीं कारणों से ये याज्ञिक कहे जाते हैं।४७-४८। ब्राह्मणों के लिए जिस प्रकार अग्निहोत्र प्रसिद्ध है, उसी भाँति मगों के लिए अध्वहोत्र बताया गया है। उनके यज्ञ का 'अच्छ' नाम मुनि ने बताया है, अतः उनकी बातों में विचार करने की आवश्यकता नहीं है।४९। पाँच बार धूप समर्पित करना सूर्य के लिए बताया गया है, इस प्रकार नियम करने वाले की सिद्धि सदैव उसके हस्तगत रहती है। दंडनायक के समय दोबार धूप देनी चाहिए। तथा तीनों संध्याओं में तीन बार।५०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में भोजकोत्पत्ति वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त।१४०।

अध्याय १४१

भोजकजाति का वर्णन

साम्ब ने कहा—आप भोजकों के लिए शरीर शुद्ध करने के हेतु अव्यंग एवं व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) धारण करना बता चुके हैं, अब, इनकी जाति क्या है, बताने की कृपा करें।१

व्यास बोले—तुम्हारे पूँछने पर उन भोजक के कुमारों ने क्या कहा था, उन सभी बातों को बताओ।२

साम्ब उवाच

सन्निवेषा मया प्रोक्ता भोजकानां समन्ततः । ममैव ब्रूत तत्त्वं तद्वर्णः कोऽत्र कथं स्थितः ॥३
ततस्तु भगवान्प्राह वाक्यं वाक्यविशारदः । ये त्वयोक्ताः श्रुताः साम्ब भोजकानां कुमारकाः ॥४
मनैवैते मगा ज्ञेया अष्टौ शूद्रा मदङ्गजाः । एतद्बुद्ध्वा तु वचनं प्रणम्य शिरसा रविम् ॥५
दत्ता भोजकुलोत्पन्ना दशभ्यो दशकन्यकाः । ततस्तु मन्दकेभ्योऽपि दत्ताश्चाष्टौ हि कन्यकाः ॥६
ततो निदेशितं तेषां मया साम्ब पुरं स्मर । दासकन्यास्तु याश्चाष्टौ भोजकन्याश्च या दश ॥७
एतास्तेषां कुमाराणां ज्ञेयास्ता दश चाष्ट च । तत्र ते भोजकन्यासु द्विजैरुत्पादिताः सुताः ॥८
भोजकास्तानाणान्प्राहुर्ब्राह्मणान्दिव्यसंज्ञितान् । दासकन्यासु ये जाता मन्दगैरन्त्यसंज्ञितैः ॥९
मदङ्गा नाम ते ज्ञेयाः सवितुः परिचारकाः । ते च विप्रपुरे तस्मिन्पुत्रदारशुभैर्वृताः ॥१०
स्वधर्मैर्यष्टुमारब्धैः शाकद्वीपेऽर्चितो रविः । नानाविधैर्वैदिकैस्तु मन्त्रैर्मुनिवरोत्तमाः ॥११
अव्यङ्गधारिणो मर्त्याः पूजयन्ते दिवस्पतिम् । दृष्ट्वा व्यङ्गं तु वै तेषां कौतूहलसमन्वितः ॥१२
साम्बः प्राह नमस्कृत्य भूयः सत्यवतीसुतम् । कथं वरोऽयमव्यङ्गः कथितो मुनिसत्तम ॥१३
कुत एष समुत्पन्नः कस्माच्च स शुचिः स्मृतः । बन्धनीयः कदा चायं किमर्थं चैव धार्यते ॥
किं प्रमाणं च भगवन्व्यङ्गश्चायं किमुच्यते ॥१४

साम्ब ने कहा—वहाँ भोजक कुमारों को प्रविष्ट कर उनसे मैंने कहा—मुझे बताइये कि किसकी कौन जाति एवं कहाँ स्थिति है ।३। उसके पश्चात् वाक्य निपुण भगवान् सूर्य बोले ! हे साम्ब ! जिन भोजक कुमारों को तुमने बताया है, उनमें मेरे अंग के दश भाग और आठ मेरे ही अंग से उत्पन्न शूद्र हैं । इसे जानकर मैंने नतमस्तक प्रणाम पूर्वक सूर्य से कहा—दश के लिए भोजककुल की उत्पन्न दश कन्याएँ, तथा उन मंदकों (शूद्रों) के लिए भी आठ कन्याएँ प्रदान की गई हैं ।४-६। इसके पश्चात् जिस नगर में उन्हें मैंने रहने के लिए स्थान दिया है, वह साम्ब पुर (नगर) के नाम से प्रख्यात है । आठ दास कन्याएँ और दश भोजकन्याएँ मिल कर अठारह की संख्या में उन कुमारों को स्त्री के रूप में प्रदान की गई है । वहाँ रहकर द्विजों ने उन भोजक कन्याओं के द्वारा पुत्रों की उत्पत्ति की । जिन्हें दिव्य (देव) संज्ञक भोजक ब्राह्मण कहा जाता है और उसी भाँति दास कन्याओं से उत्पन्न पुत्रों को अन्त्य (शूद्र) संज्ञक मंदग कहते हैं ।७-९। सूर्य की सेवा करने वाले परिचारक (सेवक) मंदग कहे जाते हैं । हे विप्र ! वे लोग भी कल्याण मूर्ति पुत्रों तथा स्त्रियों समेत उस शाकद्वीप के नगर में रहकर अपने अपने धर्मानुसार प्रारम्भ किये गये यज्ञों द्वारा सूर्य की अर्चना करते हैं । उसी भाँति मुनिवर्य लोग भाँति-भाँति के विधान द्वारा वैदिक मंत्रों के उच्चारण करते हुए सूर्य की पूजा करते हैं ।१०-११। वहाँ अव्यंग धारण कर के ही मनुष्य लोग सूर्य की पूजा करते हैं, इसलिए यहाँ उन लोगों के अव्यंग को देख कर साम्ब को महान् कुतूहल हुआ था । वही बात साम्ब ने फिर सत्यवती पुत्र (व्यास) से नमस्कार पूर्वक पूँछा—हे मुनिसत्तम ! यह अव्यंग उत्तम क्यों माना जाता है, यह कहाँ से उत्पन्न हुआ है, कैसे यह पवित्र कहा गया है, किस समय इसे बाँधना चाहिए, क्योंकि इसे लोग धारण करते हैं (पहनते हैं), और हे भगवन् ! इस अव्यंग का प्रमाण (लम्बाई-चौड़ाई) क्या है ? १२-१४

सुमन्तुरुवाच

श्रुत्वैवं वचनं व्यासो जाम्बवत्याः सुतस्य च ॥१५
उवाच कुरुशार्दूल साम्बं कालीसुतः स तु ॥

व्यास उवाच

एतच्च मे यथोक्तस्त्वं जातिरेषां न संशयः ॥१६
अव्यङ्गस्यापि ते वच्मि लक्षणं गदतः शृणु ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकजातिवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४१।

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

व्यङ्गोत्पत्तिनामवर्णनम्

व्यास उवाच

देवता ऋषयो नागा गन्धर्वाप्सरसां गणाः । यक्षरक्षांसि वै भानौ निवसन्ति ऋतुक्रमात् ॥१
तत्र तु वासुकिर्ह्यब्दमुद्यत्सूर्यरथं जवात् । स्वस्थानमाजगामाशु नमस्कृत्य दिवाकरम् ॥२
अव्यङ्गमेव सूर्याय प्रीत्यर्थं वै समर्पयत् । गाङ्गेयभूषितं दिव्यं नातिरक्तसितं शुभम् ॥३
बबन्ध तं च तत्प्रीत्यै मध्यभागे तमात्मनः । नागराजाङ्गसम्भूतो धृतो यस्माच्च भानुना ॥४

सुमन्तु बोले—जाम्बवती पुत्र (साम्ब) की ऐसी बातें सुनकर काली सुत व्यास ने उससे कहा।

व्यास ने कहा—हे कुरुशार्दूल ! इन लोगों की जाति तुम्हें मैंने भली भाँति बता दी है, अब अव्यंग का लक्षण भी बता रहा हूँ सुनो।१५-१७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में भोजक जाति वर्णन नामक एक सौ एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त।१४१।

अध्याय १४२

व्यंगोत्पत्ति विधि का वर्णन

व्यास ने कहा—ऋतुओं के क्रम से देवता, ऋषि, नाग, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, एवं राक्षस ये सभी सूर्य के साथ निवास करते हैं।१। उनमें वासुकि भी हैं सूर्य का रथ वेग से चलते हुए वर्ष की समाप्ति कर रहा था कि उसी समय वासुकिने सूर्य को नमस्कार कर अतिशीघ्र अपने स्थान पर आकर एक अव्यंग (केंचुल) उनके प्रसन्नार्थ समर्पित किया। उसे ही अव्यंग कहते हैं, स्वर्ण भूषित, दिव्य, न अधिक उज्ज्वल, एवं न अधिक रक्त वर्ण के शुभ उस केंचुल को सूर्य ने प्रसनन्ता प्रकट करते हुए अपने मध्य भाग में बाँध लिया। नागराज के अंग (शरीर) से उत्पन्न उसे सूर्य के धारण करने के नाते (सूर्य) के भक्त भी

ततस्माद्धार्यते सूर्यप्रीत्यै तद्भक्तिमिच्छता । विधानेन च तत्त्वेन शुचिर्भवति भोजकः ॥५
नित्यं च धारणात्तस्य भवेत्प्रीतो दिवाकरः । न धारयन्ति ये त्वेवं भोजकाः पूजकाः रवेः ॥६
सौरहीना न ते याज्या उच्छिष्टा नात्र संशयः । स्मृत्याचारे ते हि भग्ना रविं नार्हन्ति पूजितुम् ॥७
पूजयन्तो रविं ते हि नरकं यान्ति रौरवम् । न वै हसेन्न उत्तिष्ठेद्यावदर्चां लभन्ति ते ॥८
इत्थं ज्ञात्वा न सन्देहो ह्यव्यङ्गेन विना रविः । नागराजस्य संस्पृष्टो ह्यारसुस्तेन संस्मृतः ॥९
एकवर्णः स कर्तव्यः कार्यसिद्धिकरस्तथा । प्रमाणेनाङ्गुलानां तु शताद्धि शतमुत्तरम् ॥१०
उत्कृष्टोऽयं प्रमाणेन मध्यमो विंशदुत्तरः । शतमष्टोत्तरं ह्रस्वो न तु ह्रस्वतरस्ततः ॥११
तदाकृतिः कृतश्चैष निर्मितो विश्वकर्मणा । मध्यमे भोजकानां तु परः शत उदाहृतः ॥१२
संस्कृतोऽपि विना तेन शुचिर्नैव भवत्युत । तेनास्य धारणाद्वीर शुचिरेव तदा भवेत् ॥१३
हविर्होमादिकाः सर्वा भवन्त्यस्य क्रियाः शुभाः । अव्यङ्गः पतिताङ्गश्च अव्यङ्गोऽथ महीपते ॥१४
एष सारश्च सा रम्या वै ज्ञेया जयनामभिः । अहेरङ्गात्समुत्पन्नो ह्यव्यङ्गस्तु ततः स्मृतः ॥१५
यस्मादस्मादहेरङ्गमव्यङ्गस्तेन चोच्यते । अर्हेति पूजायां धातोः प्रत्ययो ण्वुलतः स्मृतः ॥१६
पूजितश्च पवित्रश्च यस्मात्तेनार्हकः स्मृतः । सारसार्तः स्मृतं रूपं प्रधानं सार उच्यते ॥१७

सूर्य की प्रसन्नता के लिए धारण करते हैं। विधान पूर्वक उसे धारण करने से भोजक पवित्र होते हैं।२-५। एवं उसे नित्य धारण करने से सूर्य भी प्रसन्न होते हैं। सूर्य की पूजा करने वाला भोजक विधान पूर्वक उसे धारण नहीं करता है, तो वह आदित्य भक्ति एवं उनके सभी कार्यों से वंचित होता है, तथा उच्छिष्ट होने के नाते पूजा के योग्य नहीं रहता है। वह सदाचार से भ्रष्ट हो जाता हैं अतः सूर्य की पूजा नहीं कर सकता है।६-७। यदि वह सूर्य का पूजन करता ही है, तो उसे रौरव नामक नरक की प्राप्ति होती है। उसके पूजन काल में सूर्य का प्रसन्न होना तो दूर रहा, वे (अपने स्थान से) उठते (चलते) तक नहीं।८। इस प्रकार जान बूझकर बिना अव्यंग धारण किये सूर्य की पूजा न करनी चाहिए। वासुकि के उस केंचुल की भाँति जिसे अव्यंग कहा जाता है, एक रंग का बनाना चाहिए, उससे कार्य की सफलता प्राप्त होती है, वह अंगुल के प्रमाण से दो सौ अंगुल का होता है।९-१०। यह सर्वोत्तम प्रमाण बताया गया है। एक सौ बीस अंगुल का मध्यम, और एक सौ आठ अंगुल का छोटा बनाया जाता है। इससे छोटा किसी भी दशा में होना चाहिए।११। उसकी आकृति वैसी ही होनी चाहिए जैसा कि विश्वकर्मा ने प्रथम निर्माण के समय किया था। भोजकों के लिए सौ अंगुल का भी मध्यम अव्यंग बताया गया है।१२

भोजकों के संस्कार किये जाने पर भी बिना उसे धारण किये वे पवित्र नहीं होते हैं। हे वीर! इसलिए पवित्र होने के लिए उन्हें उसे अवश्य धारण करना चाहिए।१३। हवि, हवन आदि सभी क्रियाएँ इसके धारण करने पर ही शुभ होती हैं।

हे महीपते! अव्यंग, पतितांग, अर्हक और सार यही जय करने वाले इस अव्यंग के नाम हैं। साँप के अंग से उत्पन्न एवं उनके अंग में लिपटे होने के नाते अव्यंग एवं पूजार्थक अर्ह धातु से णवुल् प्रत्यय के संयुक्त होने पूजित एवं पवित्र होने के कारण अर्हक, कहा गया है। इसी प्रकार सारसार (व्याकरण के) रूप से सार (प्रधान) शब्द निष्पन्न होता है।१४-१७

षण भक्तौ स्मृतौ धातुस्तस्मात्सारसनः स्मृतः । यस्मादर्चितमेवं तु सुवर्णमणिमौक्तिकैः ।।१८
स ज्ञेयः पतिताङ्गस्तु नित्ययज्ञैरुपाहृतः । इत्येते कथिता वीर अव्यङ्गा व्यङ्गभोजकाः ।।१९
ऋद्धिवृद्धिकरो नित्यं कायशुद्धिकरस्तथा । सर्ववेदमयश्चायं सर्वदेवमयस्तथा ।।२०
सर्वभूतमयः साम्ब सर्वलोकमयस्तथा । मध्येऽस्य संस्थितो ब्रह्मा मूले विष्णुर्महामते ।।२१
शशाङ्कमौलिरन्त्ये तु संस्थितो यदुनंदन । ऋग्वेदोऽस्य स्थितो मूले यजुर्वेदोऽस्य मध्यगः ।।२२
अग्रे स्थितः सामवेदो ग्रन्थिराङ्गिरसोऽनघ । पृथ्वी मूलमाश्रित्य स्थिता च यदुसत्तम ।।२३
मूलाशनास्त्वपः साम्ब मध्ये देवो विभावसुः । तासामनन्तरं वात आकाशोऽग्रे समास्थितः ।।२४
मूले स्थितस्तु भूर्लोको भुवर्लोकस्तु मध्यगः । स्वर्लोकश्चाग्रमाश्रित्य स्थितो व्यङ्गस्य यावतः ।।२५
एवं देवमयः सांब एवं लोकमयस्तथा । धारणीयो महाभक्त्या पूजकैः प्रीतये रवेः ।।२६
पूजयन्ति रविं ये वै विनानेन यदूत्तम । पूजाफलं न तेषां स्यान्नरकं च व्रजन्ति हि ।।२७
तथा तेषां भवेन्नित्यमव्यङ्गो भोजकः सदा । अन्यकाले यदुश्रेष्ठ इत्येतत्कथितं तव ।।२८
बन्धने कारणं वीर भूषणानि च सुव्रत ।।२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने व्यङ्गोत्पत्तिर्नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४२।

भक्ति अर्थ में प्रयुक्त षण धातु से सारसन (सार) शब्द की निष्पत्ति होती है । सुवर्ण, मणि, एवं मोतियों द्वारा पूजित (विभूषित) और नित्य यज्ञों द्वारा अपनाने के नाते उसे पतिताङ्ग कहा जाता है । हे वीर ! व्यंग (उससे शून्य) भोजकों के लिए यही अव्यंग बताया गया है ।१८-१९। यह ऋद्धि, वृद्धि एवं शरीर शुद्धि करने वाला, सर्व वेदमय तथा सर्वदेवमय हैं ।२०। और हे साम्ब ! इसे सर्वभूतमय एवं सर्वलोक भी जानना चाहिए । हे महामते ! इसके मध्य भाग में ब्रह्मा, मूल में विष्णु और हे यदुनन्दन अन्त में भालचन्द्र (शिव) स्थित हैं। इसके मूल भाग में 'ऋग्वेद' मध्य भाग में यजुर्वेद, अग्रभाग में सामवेद, तथा हे अनघ ! ग्रन्थियों (गाठों) में अथर्ववेद स्थित है । और हे यदुसत्तम ! पृथ्वी इसके मूल भाग में स्थित है ।२१-२३। हे साम्ब ! सूर्यदेव ने उसके मध्य भाग में जल की स्थिति की है, तथा उनलोगों के अनन्तर वायु एवं अग्रभाग में आकाश स्थित है ।२४। मूलभाग में भू-लोक, मध्यभाग में भुवर्लोक और अव्यंग के अग्र भाग में स्वर्ग लोक स्थित है ।२५। हे साम्ब ! इसी प्रकार यह देवमय एवं लोकमय कहा जाता है । इसीलिए सूर्य के प्रसन्नार्थ पूजा करने वाले उनके भक्तों को उसे धारण करने के लिए महान प्रयत्नशील रहना चाहिए ।२६। हे यदुश्रेष्ठ ! इसे धारण किये बिना जो लोग सूर्य की उपासना करते हैं, उन्हें पूजा फल की प्राप्ति तो होती नहीं प्रत्युत नरक होता है ।२७। इस प्रकार भोजकों को नित्य अव्यंग धारण करना चाहिए, केवल अशौच में नहीं । हे यदुश्रेष्ठ ! यह (अव्यंग माहात्म्य आदि) इस प्रकार तुम्हेंबता दिया गया । हे वीर ! जिस प्रकार अंगों के बाँधने में भूषण कारण होता है, हे सुव्रत ! उसी प्रकार यह भी कारण है । (अर्थात् शरीर के अंगों में आभूषण की भाँति यह भी धारण किया जाता है) ।२८-२९

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में अव्यंगोत्पत्ति वर्णन नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१४२।

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

धूपादिविविधविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

श्रुत्वैवमेव साम्बेन व्यासात्सत्यवतीसुतात् । अव्यङ्गस्य च उत्पत्तिं पुनरागान्महामतिः ।।१
अथागत्य महातेजाः साम्बो गत्वाश्रमं पुनः ।।२
नारदस्य महाबाहोर्नारदं वाक्यमब्रवीत् । कथमुत्क्षिप्य वै धूपं भोजकैः सवितुर्मुने ।।३
स्नानमाचमनं चैवमर्घ्यदानं महात्मने । साम्बस्य वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः ।।४
उवाच कुरुशार्दूल साम्बं जाम्बवतीसुतम् । हन्त ते कथयिष्यामि रवेर्धूपविधिक्रमम् ।।५
स्नानमाचमनं चैव स्वर्णदानं तथैव च । आचान्तस्त्रिस्ततः स्नात्वा वाससी निर्मले शुभे ।।६
अनार्द्रे संवसीतैव पवित्रे परिधाय च । उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वाप्याचामेच्च प्रयत्नतः ।।७
जले जलस्थो नाचामेज्जलादुत्तीर्य यत्नतः । अप्सु[१] सूर्यस्तथाग्निश्च माता देवी सरस्वती ।।८
तस्मादुत्तीर्य चाचामेन्नाचामेत्तु जलाशये । उपविश्य शुचौ देशे प्रयतः प्रागुदङ्मुखः ।।९
पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च अन्तर्जानुस्तथाचमेत् । प्रसन्नास्त्रिः पिबेत्त्वापः प्रयतः सुसमाहितः ।।१०
सम्मार्जनं तु द्विः कुर्यात्त्रिभिरभ्युक्षणं पुनः । मूर्धानं खानि चात्मानमुपस्पृश्यानु पूर्वशः ।।११

अध्याय १४३

धूपादि विविध विधियों का वर्णन

सुमन्तु बोले—इस प्रकार सत्यवती पुत्र व्यास के द्वारा अव्यंग की उत्पत्ति आदि सुनकर महाबुद्धिमान् साम्ब वहाँ से लौट आया ।१। तदुपरांत महातेजस्वी साम्ब ने पुनः महाबाहु वाले नारद के आश्रम में जाकर उनसे कहा—हे मुने ! भोजकों द्वारा सूर्य के लिए धूप, स्नान, आचमन, एवं उन महात्मा के लिए अर्घ्यदान कैसे समर्पित करना चाहिए । मुनिश्रेष्ठ नारद साम्ब की बातें सुनकर उस जाम्बवती पुत्र से बोले—हे कुरुशार्दूल ! सूर्य के लिए धूप विधान का क्रम, स्नान, आचमन और स्वर्णदान मैं तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! । प्रथम तीन बार आचमन कर निर्मल जल से स्नान करके सूखे वस्त्रों तथा हाथों में पवित्र धारण करे और उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख होकर सप्रयत्न आचमन करे ।२-७। जल में स्थित रहकर जल में आचमन न करना चाहिए । क्योंकि जल में सूर्य, अग्नि, एवं माता देवी सरस्वती सदैव सन्निहित रहती है ।८। इसलिए जलाशय के पार (उसके) बाहर ही आचमन करना चाहिए न कि किसी जलाशय के मध्य में । किसी पवित्र स्थान में पूर्व या उत्तराभिमुख बैठकर जिसमें हांथ, पैर, तथा घुटने का प्रक्षालन किया गया हो, प्रसन्नचित्त हो नियम ध्यान पूर्वक तीन बार आचमन करे ।९-१०। दो बार संमार्जन, अतः तीन बार अभ्युक्षण (सेवन), तथा शिर, कान, नाक, आँख और अपनी शरीर आदि का क्रमशः स्पर्श

---

१. जलमध्ये आचमननिषेधे हेतुमाह - 'अप्सु' इत्यादि ।

आचान्तोऽर्कं नमस्कृत्य शौचेषु शुचितामियात् । क्रियां यः कुरुते मोहादनाचम्येह नास्तिकः ॥१२
भवन्तीह क्रियाः सर्वा वृथा तस्य न संशयः । शुचिकामा हि वै देवा वेदैरेवमुदाहृताः ॥१३
इनोपासाकृतश्चैव सर्वे देवाः प्रयत्नतः । शौचमेव प्रशंसन्ति शौचाङ्गैर्हि विधीयते ॥१४
आचान्तो मौनमास्थाय देवागारं ततो व्रजेत् । श्वासरोधनिमित्तं तु प्राणमाच्छाद्य वाससा ॥१५
शिरः प्रावृत्य यत्नेन केशोदकनिवृत्तये । ततः पूजां रवेः कुर्यात्पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः ॥१६
गायत्रीं सशिरस्कां च यजमानः प्रयत्नतः । धूपं ततोऽग्रये दद्यात्प्रथमं गुग्गुलाहुतम् ॥१७
पुष्पाञ्जलिं ततो गृह्य तच्छिखायां प्रयत्नतः । रवेर्मूर्धनि तं दद्याद्देवमन्त्रमुदाहरन् ॥१८
ॐ व्रतेन यद्व्रतिनो वर्जयन्ति देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे । तस्यादित्यं प्रसरं च मनामहे यस्तेजसा प्रथमं नाविभाति ॥१९
धूपवेलाः स्मृताः पञ्च धूपेष्वेव तु पञ्चसु । हवनाद्याः क्रियाः पञ्च रक्षिष्येऽहं तथा पुनः ।२०
दण्डनायकवेला तु प्रत्यृक्षे ऋक्षदर्शनात् । नाज्ञावेला प्रदोषस्तु तत्त्वकार्यं विजानता ॥२१
त्रिकालं तु रवेः पूजा कर्तव्या सूर्यदर्शनात् । अर्धोदितस्तु पूर्वाह्णे ततोऽर्द्धस्तु रविर्विभुः ॥२२
हेलयेति च पूर्वाह्णे मध्याह्ने ज्वलनाय च । तथैव मण्डले देयं नीचाह्ने ज्वलनाय च ॥२३
चन्दनोदकमिश्राणि गन्धोदकयुतानि च । पद्मानि करवीराणि तथा रक्तोत्पलानि च ॥२४

करे ।११। पवित्र देश में आचमन के उपरांत सूर्य को नमस्कार करने से पवित्रता प्राप्त होती है । जो बिना आचमन किये इस क्रिया की (आरम्भ एवं समाप्ति) करता है वह नास्तिक कहा जाता है ।१२। एवं उसकी सभी क्रिया व्यर्थ हो जाती है, इसमें संशय नहीं । क्योंकि वेद में बताया गया है कि देवता पवित्रता के ही इच्छुक होते है ।१३। सूर्य की उपासना करने वाले सभी देव प्रयत्न पूर्वक शौच (पवित्रता) की ही प्रशंसा करते हैं और अपने अंगों को पवित्र करके ही क्रियाविधान प्रारम्भ करते हैं ।१४। आचमन के उपरांत मौन हो देवालयों में प्रवेश करें, वहाँ जाकर श्वास रोकने के लिए वस्त्र से आच्छन्न कर तथा केश के जल को रोकने के लिए शिर को भी वस्त्र से बाँधकर सुगन्धित, एवं भाँति-भाँति के पुष्पों द्वारा सूर्य की पूजा प्रारम्भ करें ।१५-१६। गायत्री मंत्र के उच्चारण पूर्वक शिखा बाँधकर यजमान प्रयत्न पूर्वक प्रथम धूप देने के लिए अग्नि में गुग्गुल की आहुति डाले ।१७। पश्चात् पुष्पांजलि लेकर सूर्य के 'ओं व्रतेन' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनके शिर की शिखा पर छोड़ दे । पुनः यह कहता भी रहे—व्रत रहने वाले देव, मनुष्य तथा सभी पितर लोग जहाँ नहीं जा सकते, वहाँ वह प्रकाशित सूर्य विस्तृत रूप में रहते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ, जो पहले, अत्यन्त तेज होने के नाते (स्पष्ट रूप से) दिखायी नहीं पड़ते ।१८-१९। पाँच प्रकार के धूप प्रदान करने के लिए पाँच समय बताये गये हैं, उसे तथा हवन आदि पाँचों क्रियाएँ भी मैं सुरक्षित रखूँगा ।२०। दण्डनायक वेला तथा सूर्य के रहते तीनों संध्याएँ यही (धूप देने के लिए) पाँचों समय बताया गया है । तत्त्व के जानने वाले विद्वानों को बताया गया है कि प्रदोष समय में धूप देने की आज्ञा नहीं है ।२१। सूर्य के दर्शन होते तीनों काल में पूजन करना चाहिए । अर्द्धोदय होने पर पूर्वाह्न काल में 'हेलि' नाम का उच्चारण कर, मध्याह्न में ज्वलन, उसी प्रकार सायंकाल में (अस्त के पहले) उसी ज्वलन नाम के उच्चारण पूर्वक अर्घ्य प्रदान करें ।२२-२३। चन्दनोदक मिश्रित गन्ध, कमल, करवीर, रक्तकमल, कुसुमोदक मिश्रित कुरुण्टक पुष्प, एवं उत्तम

कुसुमोदकमिश्राणि कुरुंटकुसुमं तथा । गन्धादीनि च दिव्यानि कृत्वा वै ताम्रभाजने ।।२५
धूपं दत्त्वाग्नये वीर प्रयत्नाद्गुग्गुलाहुतिम् । अर्घ्यपात्रं तदा गृह्य कुर्यादावाहनं रवेः ।।२६
एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते । अनुकम्पय मां देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर ।।२७
अनेनावाहनं कृत्वा जानुभ्यामवनीं गतः । रवेर्निवेदयेदर्घ्यमादित्यहृदये गतः ।।२८
ॐ नमोभगवते[1] आदित्याय विश्वाय खेशाय ब्रह्मणे लोककर्तृणे। ईशानाय पुराणाय सहस्राक्षाय ते नमः ।।२९
सोमाय ऋग्यजुरथर्वाद। ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ब्रह्मणे मुण्डे मध्ये पुरतः ।।
आदित्याय नमः ।।३०

नारद उवाच

सावित्र्याश्च परे तन्त्रे त्रैलोक्यत्राणकारिणे । परितः परिगृह्याथ धूपभाजनमुत्क्षिपेत् ।।३१
निवेदयेत्ततो धूपं वाचमेतामुदीरयेत् । त्वमेक एव रुद्राणां वसूनां च पुरातनः ।।३२
देवानां गीर्भिरभितः संस्तुतः शाश्वतो दिवि । पूर्वाह्णे च तथा तेन मध्याह्ने चापरेण तु ।।३३
ॐ नमो भगवते ज्ञानात्मने त्वां च । विष्णोस्तत्परमं पदं सदा पश्यति सूरयः ।।३४
दिवाकरस्तु सायाह्ने मन्त्रेणार्घ्यं निवेदयेत् । ॐ नमो वरुणाय शम्भवे ।।३५
ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ।।३६

गन्धादि ताँबें के पात्र में रख कर हे वीर ! प्रथम गुग्गुल की धूप अग्नि को अर्पित करे पश्चात् अर्घ्यपात्र हाथ में लेकर सूर्य का आवाहन करें ।२४-२६। हे सूर्य हे सहस्रांशो ! हे तेजोराशिवाले, एवं हे जगत्पते ! यहाँ आचमन करने की कृपा करते हुए हे दिवाकर ! इस अर्घ्य को ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत करें ।२७। इस मंत्र से आवाहन करने के पश्चात् घुटने के बल बैठकर हृदय में ध्यान करते हुए सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए ।२८। पुनः ओं कार उच्चारण पूर्वक भगवान् आदित्य, विश्वरूप, आकाशस्थित, लोक रचयिता ब्रह्मा, ईशान, प्राचीन, उस सहस्र आँख वाले को नमस्कार है ।२९। सोम, ऋग, यजु, अथर्व रूप, ओं, भूर्भुवः स्वः आदि ऐसा कहकर आदित्य के लिए नमस्कार है, ऐसा कहे ।३०

नारद ने कहा—सावित्री से परे (दूर) रहने वाले, त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले, आप हैं—ऐसा कहते हुए धूप वाले पात्र को लेकर उसे चारों ओर घुमाते हुए धूप दान करे और यह कहता रहे कि आप रुद्रों में प्रधान, वसुओं में पुरातन (श्रेष्ठ) आकाश (स्वर्ग) में देवताओं द्वारा नित्य स्तुति किये जाने वाले हैं इस प्रकार पूर्वाह्ण, मध्याह्न, एवं अपराह्न काल में उपरोक्त का कथन करते हुए अर्घ्य प्रदान करें ।३१-३३। पुनः सायं काल में इस मंत्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करें। ओंकार के उच्चारण पूर्वक, भगवन्, ज्ञानात्मन, तुम्हें नमस्कार है, जिसे ज्ञानी लोग विष्णु के उस परम पद को सदैव देखा करते हैं । उसके लिए 'दिवाकरस्तु सायाह्ने' यही मन्त्र है । वरुण, एवं शंभु रूप सूर्य को नमस्कार है, 'ओं आकृष्णेन रजसा' इस

---

१. ॐ नमो भगवते आदित्याय विश्वाय खेशाय ब्रह्मणे लोककर्तृणे ईशानाय पुराणाय सहस्राक्षाय ते नमः ॐ सोमाय ऋग्यजुरथर्वाय ।

अनेन विधिना दत्त्वा धूपं सूर्याय भोजकः। उत्क्षिपेच्चैव धूपेन विशेद्गर्भगृहं ततः ।।३७
ततः प्रविश्य धूपं तु प्रतिमायै निवेदयेत् । मन्त्रेण मिहिरायेति निक्षुभायेति नित्यशः ।।३८
ततो राज्ञै नमश्चेति निक्षुभायै ततो नमः । दण्डनायकसंज्ञाय पिङ्गलाय च वै नमः ।।३९
तथा राज्ञाय स्रौषाय तथेशाय गरुत्मते । ततः प्रदक्षिणं कुर्वन्दिग्देवेभ्यो निवेदयेत् ।।४०
दिण्डिने तु ततो दद्याद्धेमन्ताय यदूत्तम । महेश्वराय दद्यात्तु तथा व्योमाय यादव ।।४१
(विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । रुद्रेभ्यो नमः) । ॐ ब्रह्मणे मुण्डपतये आदित्याय पुरुषेश्वराय सूर्याय नमोनमः ।।४२

ॐ अनेककान्तये नत्वा शेषाय वासुकितक्षककर्कोटकाय पद्मशङ्खकुलिकेभ्यो नागराजेभ्यो नमः ।।४३
तलसुतलपातालातलवितलरसातलादिवासिभ्यो दैत्यदानवपिशाचेभ्यो नमः । ततः प्रदक्षिणं कुर्यान्मातृकाभ्यो नमोनमः (ॐ ग्रहेभ्यो नमः ।।४४ ॐ दण्डनायकाय नमः । ॐमार्तंडाय नमः । ॐ विनायकाय नमः।।४५)

एवमुद्दिश्य नामानि धूपं दत्त्वा वरानन । उत्क्षिप्तो यत्र वै धूपो मुक्त्वा तत्रैव तं पुनः ।।४६
सूर्यगुप्तैरभिष्टूय एवं विज्ञाय ते ततः । अर्चितस्त्वं यथा शक्त्या मया भक्त्या विभावसो ।।
ऐहिकामुष्मिकीं नाथ कार्यसिद्धिं ददस्व मे ।।४७
एवं त्रिषवणं स्नात्वा योऽर्चयेत्प्रणतो रविम् । विधिना तु यथोक्तेन सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।४८
यश्चैवं कुरुते नित्यं यथोक्तं धूपविस्तरम् । स पुत्रवानरोगी च मृतःसंलीयते रवौ ।।४९
विधिना तु यथोक्तेन क्रियमाणानि यत्नतः । सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति सफलानि भवन्ति च ।।५०

मंत्र के द्वारा सूर्य को धूप प्रदान कर भोजक मन्दिर के भीतर प्रविष्ट हो जाय वहाँ उस प्रतिमा के लिए इस मंत्र द्वारा धूप अर्पित करे मिहिर, निक्षुभा एवं राज्ञी को नित्यशः नमस्कार है, पश्चात् दंडनायक पिंगल, राज्ञ, स्रौष, ईश, गरुड़ का उच्चारण करते हुए प्रदक्षिणा पूर्वक दिग्देवताओं को धूप अर्पित करें।३४-४०। हे यदूत्तम ! पश्चात्, दिंडी, हेमन्त, महेश्वर, व्योम, को क्रमशः धूप प्रदान करके विश्वदेव तथा रुद्र के लिए नमस्कार है, ब्रह्म, मुण्डपति, आदित्य तथा पुरुषेश्वर, सूर्य के लिए नमस्कार है।४१-४२। पुनः अनेक भाँति की कांति वाले को नमस्कार करके शेष, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, शंख, एवं कुलिक नागराजों के लिए नमस्कार है ।४३। तल, सुतल, पाताल, अतल, वितल, रसातल, आदि लोकवासी दैत्य, दानव, एवं पिशाचों को नमस्कार है । उपरांत प्रदक्षिणा पूर्वक मातृकाओं को नमस्कार है, ग्रहों, दण्डनायक, मार्तण्ड एवं विनायक को नमस्कार है।४४-४५। जो उच्चमुख वाले हैं इस प्रकार कहते हुए सब लोगों को धूप प्रदान करे पश्चात् जहाँ से उसे उठाया था, वहीं वह धूप पात्र रख दे । तदनन्तर सूर्य की प्रार्थना करे कि—हे विभावसो ! मैंने अपनी शक्ति एवं भक्ति पूर्वक आप की पूजा की है हे नाथ ! अब मुझे लोक, परलोक की कार्य सफलता आप प्रदान करें।४६-४७। इस प्रकार जो त्रैकालिक स्नान करके विधान पूर्वक विनम्र हो सूर्य की पूजा करता है, उसे अश्वमेध फल की प्राप्ति होती है।४८। जो उक्त विधान के अनुसार विस्तारपूर्वक नित्य धूप प्रदान करता है, उसे पुत्र एवं आरोग्य के सुखानुभव के उपरांत सूर्य के सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है।४९। इस प्रकार उक्त विधान द्वारा यत्न पूर्वक पूजा करने पर सभी

पुष्पं श्रेष्ठं यदा न स्यात्पत्राणि समुपाहरेत् । पत्रं न स्यात्ततो धूपं धूपो न स्यात्ततो जलम् ।।५१
सर्वं न स्याद्यदा चैव प्रणिपातेन पूजयेत् । अशक्तः प्रणिपातस्य मनसा पूजयेद्रविम् ।।५२
असम्भवे तु द्रव्याणां विधिरेष प्रकीर्तितः । द्रव्याणां सम्भवे चैव सर्वमेवोपहारयेत् ।।५३
मन्त्रैः कर्मयुतो यस्तु मित्रे धूपं निवेदयेत् । उच्चारणाच्च वै तेषां धूपप्रीतो भवेद्रविः ।।५४
शिरो नासामुखं चैव भृशमावृत्य यत्नतः । पूजयेद्भास्करं वीर शिथिलं[1] तु न कारयेत् ।।५५
नलिनेन तु राजेन्द्र नरो याति दिवाकरम् । तस्माद्युक्तं सदा कार्यं पूज्यते च दिवाकरः ।।५६
तेऽश्वमेधफलं प्राप्य सूर्यलोकं व्रजन्ति हि । धूपेन पूज्यमानं तु नराः पश्यन्ति यादव ।।५७
यान्ति ते परमं स्थानं यत्र पश्यन्ति सूरयः । क्रियमाणं तथार्कं च भक्त्या पश्यन्ति ये नराः ।।
सर्वान्कामानिह प्राप्य ते यान्ति परमं पदम् ।।५८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने
धूपादिविविधवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४३।

कार्यों की सफलता प्राप्त होती है ।५०। यदि उत्तम पुष्पों का अभाव न हो तो यत्न द्वारा उसके अभाव में धूप और धूप के अभाव में केवल जल द्वारा पूजन करना चाहिए ।५१। सभी का अभाव हो तो, केवल विनम्र हो कर सूर्य की पूजा करे । अशक्त पुरुष नम्र होकर मन द्वारा (मानसिक) सूर्य की पूजा करे ।५२। द्रव्य न होने पर यह विधान बताया गया है, द्रव्य के रहते हुए सभी उपहारों समेत पूजन करने का विधान है ।५३। कर्म करने वाला जो कोई पुरुष मंत्रोच्चारण पूर्वक सूर्य को धूप प्रदान करता है, उसके ऊपर सूर्य अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं ।५४। शिर, नाक, एवं मुख ढाँक कर सूर्य की पूजा करनी चाहिए । हे वीर ! इसमें शिथिलता कभी न करे ।५५। हे राजेन्द्र ! सूर्य के लिए कमलिनी पुष्प अवश्य प्रदान करे, क्योंकि उससे मनुष्य को सायुज्य मोक्ष प्राप्त होता है । इसलिए पूजन के समय उन्हें कमलिनी युक्त सदैव करना चाहिए ।५६। जो ऐसा करते हैं, उन्हें अश्वमेध का फल प्राप्त होता है । हे यादव ! जो सूर्य के लिए धूप प्रदान करते हैं, उन्हें उस परम पद की प्राप्ति होती है, जिसे अन्य कोई ज्ञानी देख नहीं सकता है । जो लोग भक्तिपूर्वक (पूजनके) कार्यों द्वारा सूर्य का दर्शन करते हैं, उन्हें यहाँ समस्त कामनाएँ सफल होने के पश्चात् परम पद की प्राप्ति होती है ।५७-५८

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में धूपादि विविध वर्णन
नामक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१४३।

---

१. विवृतमिति पाठः ।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकस्योत्पत्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अथाजगाम भगवान्व्यासो द्वारवतीं पुरीम् । द्रष्टुं नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ।।१
तमागतमृषिं दृष्ट्वा वासुदेवो विशांपते । अभ्युत्थाय महातेजाः पूजयामास भारत ।।२
स्वयमेवासनं दत्त्वा पाद्यमर्घ्यं तथैव च । पप्रच्छ प्रयतो भूत्वा व्यासं सत्यवतीसुतम् ।।३
य एते भोजका विप्रा आनीता मत्सुतेन वै । शाकद्वीपमितो गत्वा ज्ञानिनो मोक्षगामिनः ।।४
तान्दृष्ट्वा रूपतो विप्र प्रवेशात्कर्मतस्तथा। कौतूहलं समुत्पन्नं हर्षश्च परमो मम ।।५
कथमेते क्षणमपि तिष्ठन्ते पृथिवीतले । येषां रविः सदा पूज्यस्तेषां मुक्तिः सदा वसेत् ।।६
नागत्वा भोजकत्वं हि मोक्षमाप्नोति कश्चन । इदं मे मनसो ब्रह्मन्सदा सम्प्रतिभाति वै ।।७

व्यास उवाच

एवमेव यथात्थ त्वं शङ्खचक्रगदाधर । धन्या एते महात्मानो भोजका नात्र संशयः ।।८
ये पूजयन्ति सततं भानुमन्तं दिवाकरम् । ज्ञानिनः कर्मनिष्ठाश्च सदा मोक्षगतिं गताः ।।९
यजन्ते सततं भानुं बलिपुष्पफलैस्तथा । अन्नेनौषधिभिश्चैव आज्यहोमैश्च कृत्स्नशः ।।१०

अध्याय १४४

भोजक की उत्पत्ति का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसके उपरांत भगवान् व्यास का शंख, चक्र, गदा धारण करने वाले नारायण देव का दर्शन करने के लिए द्वारवती पुरी में आगमन हुआ ।१। हे विशांपते ! हे भारत ! उन ऋषि को आये हुए देखकर महातेजस्वी कृष्ण ने उठ कर उनका स्वागत सत्कार किया ।२। उन्हें स्वयं आसन पर बैठाकर पाद्य, एवं अर्घ्य-जल प्रदान करने के उपरांत सत्यवती पुत्र व्यास से उन्होंने पूछा । मेरे पुत्र (साम्ब) द्वारा शाकद्वीप से जो ये भोजक ब्राह्मण गण यहाँ लाये गये हैं, हे विप्र ! उन मोक्षगामी ज्ञानियों के रूप तथा इस नगर में रहने और उनके कर्मों को देखकर मुझे परम हर्ष एवं कौतूहल हो रहा है ।३-५। कि ये लोग क्षणमात्र भी इस पृथ्वी तल पर कैसे ठहरे हुए हैं, क्योंकि जिनके पूज्य सूर्य हैं, उनकी सदैव के लिए मुक्ति हो जाती है । हे ब्रह्मन् ! मेरे मन में इस समय यही धारणा हो रही है कि बिना भोजकों के धर्म अपनाये कोई भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है ।६-७

व्यास बोले— हे शंख, चक्र, एवं गदा को धारण करने वाले ! आप जो कह रहे हैं, वह वैसा ही है । ये महात्मा भोजक गण धन्य हैं, इसमें संशय नहीं है ।८। जो लोग निरन्तर तेजस्वी सूर्य की पूजा करते हैं, वे कर्मनिष्ठ ज्ञानी सदैव मुक्त रहते हैं ।९। ये (भोजक) बलि, पुष्पों, फलों, अन्न, औषधि तथा घी के हवन द्वारा निरन्तर सूर्य की पूजा करते हैं ।१०। नित्य हवन के उपरांत होम भी करते हैं । क्योंकि पर

होनं च शाश्वतं कृत्वा परं होमं ततः श्रिताः । परहोमस्य करणात्पूतात्मानो ह्यकल्मषाः ।।११
विशन्ति परमां दिव्यां भास्करीं तैजसीं कलाम् । कर्मणः साधने चैका तत्र चाग्नौ प्रतिष्ठिता ।।१२
वायुमार्गस्थिता व्योम्नि द्वितीयान्तः प्रकाशिका । ततः परं तृतीया तु तत्स्मृतं सूर्यमण्डले ।।१३
मण्डलं तच्च सवितुर्दिव्यं ह्यजरमव्ययम् । तस्यासौ पुरुषो मध्ये योऽसौ सदसदात्मकः ।।१४
क्षराक्षरस्तु विज्ञेयो महासूर्यस्तथैव च । निष्कलः सकलश्चापि द्वौ च तस्य प्रकल्पितौ ।।१५
अक्षरः सकलश्चैव सर्वभूतेष्ववस्थितः । सतत्त्वः सकलः प्रोक्तस्तत्त्वहीनस्तु निष्कलः ।।१६
तृणगुल्मलतावृक्षवृकसिंहद्विजाधिपान् । सुरसिद्धमनुष्यांश्च स्थलजाञ्जलजान्हरेत् ।।१७
व्यवस्थितः स सर्वत्रः सर्वेष्वन्तरात्मनि । यदा कल्पात्मकश्चैव द्वितीयां तनुमाश्रितः ।।१८
निष्कलस्तु सदा ज्ञेयः संस्थितस्तैजसीं कलाम् । हिमं घर्मं च वर्षं च त्रैलोक्ये कुरुते सदा ।।१९
द्वितीया या तनुस्तस्य अक्षरं तत्परं पदम् । देवयानं तु पन्थानं कर्मयोगेन संस्थिता ।२०
आदित्यसिद्धान्तरिताः साङ्ख्ययोगविदश्च ये । तेऽभिगच्छन्ति तत्स्थानं स मोक्षः परिकीर्तितः ।।२१
निर्द्वन्द्वो निर्गमश्चैव तत्र गत्वा न शोचति । वेदेषु ब्रह्म वदन्ति ध्यायन्ते तत्त्ववेदिनः ।।२२
ॐकारं तत्त्वतश्चापि ध्यायन्ते पुरुषोत्तम । त्र्यक्षरं च तमोंकारं सार्धमात्रात्रये स्थितम् ।।२३
वदन्ति चार्धमात्रस्थं मकारं व्यञ्जनात्मकम्। ध्यायन्ति ये मकारीयं ज्ञानं ते हि सदात्मकम् ।।२४

होम के करने से ही पवित्र एवं पाप मुक्त होते हैं ।११। इसीलिए ये परम दिव्य सूर्य की तेजस्वी कला में प्रविष्ट (सायुज्य मुक्त) होते हैं । सूर्य की एक कला, कर्मों के साधन के लिए अग्नि में स्थित हैं ।१२। इसी प्रकार दूसरी अन्तः प्रकाशिका कला आकाश में वायु-मार्ग में स्थित है, उसके पश्चात् तीसरी कला सूर्य मण्डल में स्थित है ।१३। सूर्य का वह मण्डल दिव्य, अजर, एवं अव्यय (अविनाशी) है उसके मध्य भाग में जो यह सदसदात्मक, क्षर, अक्षर रूप दिखायी देता है, यही महा सूर्य है निष्कल और सकल भेद से उसकी दो भाँति की कल्पना की जाती है ।१४-१५। वह अक्षर (अविनाशी) कलारहित, एवं सभी प्राणियों में व्यवस्थित हैं । तत्वविशिष्ट (सूर्य) कला सहित होने के नाते सकल और कला हीन होने से निष्कल कहे जाते हैं ।१६। तृण, गुल्म, लता, वृक्ष, वृक (भोज्या), सिंह, द्विजाधि, सुर, सिद्ध, मनुष्य एवं स्थलों तथा जलों में उत्पन्न होने वाले सभी का ये अपहरण करते हैं ।१७। इस प्रकार यह सभी के अन्तरामा में सदैव व्यवस्थित रहते हैं । जब ये दूसरी कला को अपनाते हैं, उस समय इन्हें कलात्मक कहा जाता है ।१७-१८। अपनी तेजस्वी कला में स्थित रहने पर इन्हें सदैव निष्कल कहते हैं । शीत, धूप एवं वर्षा तीनों लोकों में सदा करते रहते हैं ।१९। इनकी दूसरी कला अक्षर (नाश हीन), तथा परं पद रूप है, देवमार्ग से होकर कर्मयोगी लोग उसे प्राप्त करते हैं ।२०। आदित्य सिद्धान्त वाले, एवं सांख्यवादी भी उस स्थान की प्राप्ति करते है क्योंकि वही मोक्ष रूप हैं ऐसा कहा गया है।२१। वहाँ पहुँच कर जीव निर्द्वन्द्व (शीतोष्ण दुःखादि से मुक्त) एवं निर्भय (जन्म मरण हीन) होकर चिंतित कभी नहीं होता है। उसे ही वेद में ब्रह्म, तथा तत्त्व ज्ञानी लोग उसी का ध्यान करते हैं।२२। हे पुरुषोत्तम! तत्त्व ज्ञान पूर्वक ही ओंकार का ध्यान किया जाता है। ओम् शब्द में तीन अक्षर एवं साढ़े तीन मात्रा स्थित है।२३। व्यंजनात्मक मकार की अर्धमात्रा बतायी गई है। मकारीय (मकार जन्य) ज्ञान का जो ध्यान करता है, वह

नकारो भगवान्देवो भास्करः परिकीर्तितः । मकारध्यानयोगाच्च मगा ह्येते प्रकीर्तिताः ॥२५
धूपमाल्यैर्युतश्चापि उपहारैस्तथैव च । भोजयन्ति सहस्रांशुं तेन ते भोजकाः स्मृताः ॥२६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकस्योत्पत्तिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४४।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकज्ञानवर्णनम्

वासुदेव उवाच

ज्ञानोपलब्धिं विप्रेन्द्र भोजकानां महामुने । ब्रूहि तत्त्वं द्विजश्रेष्ठ कौतुकं परमं मम ॥१

व्यास उवाच

इमां ज्ञानोपलब्धिं तु निबोध गदतो मम । अस्थिस्थूलं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ॥
चर्मावनद्धं दुर्गंधिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥२
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥३
कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता । समता सर्वभूतेषु एवं मुक्तस्य लक्षणम् ॥४

सदात्मक का ध्यान करता है ।२४। क्योंकि मकार रूप भगवान भास्कर देव बताये गये हैं, मकार के ही ध्यान करने से वे लोग मग कहलाते हैं ।२५। इस प्रकार धूप, माला, एवं उपहार प्रदान पूर्वक सूर्य को भोजन कराने के नाते वे भोजक कहे जाते हैं ।२६

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में भोजक की उत्पत्ति वर्णन नामक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१४४।

अध्याय १४५

भोजकज्ञान का वर्णन

वासुदेव ने कहा—हे विप्रेन्द्र, हे महामुने ! भोजकों की ज्ञानप्राप्ति कैसे हुई, उसको मार्मिक व्याख्या पूर्वक बताने की कृपा करें । हे द्विजश्रेष्ठ ! (उसके सुनने के लिए) मुझे महान् कौतूहल हो रहा है।१

व्यास बोले—मैं उनकी ज्ञान प्राप्ति बता रहा हूँ, (सावधान होकर) सुनिये ! यह शरीर, मोटी-मोटी अस्थियों (हड्डियों) से पूर्ण, स्नायु (वायुवाली नाडी) समेत, मांस और शोणित से लिप्त, चमड़े से बँधा, मल, मूत्र आदि दुर्गन्ध से भरा है ।२। इसमें जरा (बुढापा) और शोक का निश्चित स्थान है, अतः रोगमन्दिर, आतुर, रज से मलीन, अनित्य (नाशवान्) एवं प्राणी मात्र का आवास स्थान रूप इस शरीर का परित्याग कर देना चाहिए ।३। कपाल को भोजन पात्र बनाना वृक्ष के फूल फल भोजन करना, फटे-पुराने वस्त्र पहनना एवं किसी से सहायता न चाहना और सभी प्राणियों में समान दृष्टि

तिले तैलं गवि क्षीरं काष्ठे पावकसन्ततिः । उपायं चिन्तयेदस्य धिया धीरः समाहितः ॥५
प्रमाथि च प्रयत्नेन मनः संयम्य चञ्चलम् । बुद्धीन्द्रियाणि संयम्य शकुनानिव पञ्जरे ॥६
इन्द्रियैर्नियतैर्देही धाराभिरिव तृप्यते । सततममृतस्यैव जनार्दन महामते ॥७
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च[1] किल्बिषम् । प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥८
ध्यायमानस्य दह्यन्ते चान्ते दोषा यथाग्निना । तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात् ॥९
चित्तं चित्तेन संशोध्य भावं भावेन शोधयेत् । मनस्तु मनसा शोध्यं बुद्धिं बुद्ध्या तु शोधयेत् ॥१०
चित्तस्यातिप्रसादेन भाति कर्म शुभाशुभम् । शुभाशुभविनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥
निर्ममो निरहङ्कारस्ततो याति परां गतिम् ॥११
पर्वाह्णे लोहितं रूपं प्रथममृङ्ममयं स्मृतम् । यजुर्मयं द्वितीयं तु श्वेतं माध्याह्निकं स्मृतम् ॥१२
कृष्णं तृतीयं सार्याह्णि साम्नो रूपं तु तत्स्मृतम् । प्रथमं राजसं देव द्वितीयं सात्त्विकं स्मृतम् ॥१३
तृतीयं तामसं रूपं त्रैगुण्यं तस्य कल्पितम् । त्रयाणां व्यतिरेकेण चतुर्थं सूर्यमण्डलम् ॥१४
ज्योतिः प्रकाशकं सूक्ष्मं प्रोक्तं देवनिरञ्जनम् । चतुर्थं तु वेदविदः सूर्यसिद्धान्तवेदिनः ॥१५
ओँकारप्रणवैर्युक्ता ध्याननिर्धूतकल्मषाः । स्थिताः पद्मासने वीरा नाभिसंन्यस्तपाणयः ॥१६

रखना, ये सब मुक्तहोने के लक्षण हैं ।४। तिल में तेल, गाय में क्षीर, एवं काष्ठ में अग्नि के अदृष्ट रहने की भाँति सभी पदार्थों में अदृष्ट परमातमा की प्राप्ति रूप मोक्ष के लिए धीर समाधि निष्ठ पुरुष को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए कि वह किस उपाय द्वारा प्राप्त होगा ।५। (प्रथम) प्रयत्न पूर्वक मंथन करने वाले चंचल मन को अपने अधीन कर पिंजड़े में पक्षियों की भाँति बुद्धि इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों) को अपने अधिकार में रखकर हे जनार्दन, हे महामते ! अमृत धारा में प्राप्त होने की भाँति प्राणी वश में की हुई इन्द्रियों से प्राप्ति करता है ।६-७। प्राणायाम करने से सभी दोष, धारणा से पाप, प्रत्याहार (इन्द्रियों को विषयों से रोकने से) (विषयों के) संसर्ग (साथ) और ध्यान करने से संसारी गुणों की निवृत्ति होती है ।८। अग्नि द्वारा धातु जन्य दोष नाश होने की भाँति ध्यान करने वाले पुरुष के इन्द्रिय जन्य दोष प्राणायाम से नष्ट हो जाते हैं ।९। चित्त द्वारा चित्त भाव, मन से मन, बुद्धि से बुद्धि का संशोधन (शुद्ध) करना चाहिए ।१०। चित्र के अत्यन्त निर्मल होने पर शुभाशुभ कर्म का ज्ञान उत्पन्न होता है । अनन्तर शुभाशुभ (कर्म) से मुक्त होने पर निर्द्वन्द्व (शीतोष्ण आदि सुख दुःख से रहित), निष्परिग्रह (संसारी वस्तुओं का त्याग), निर्मम (ममत्व शून्य), एवं निरहंकार (अभिमान रहित) होकर उत्तम गति प्राप्त करता है ।११। पूर्वाह्ण काल में रक्त वर्ण रूप ऋग्वेद मय सूर्य का प्रथम, मध्याह्न काल में यजुर्मय श्वेत रूप दूसरा और सायंकाल में साममय कृष्ण वर्ण रूप (सूर्य का) तीसरा (रूप) बताया गया है । हे देव ! पहला राजस्, दूसरा सात्विक तथा तीसरा तामस् रूप है इस प्रकार तीनों गुण वाला रूप उसका (सूर्य) बताया जाता है । इन तीनों से पृथक चौथा सूर्य मण्डल रूप है ।१२-१४। ज्योतियों के प्रकाशक, सूक्ष्म, एवं निरज्जन, उस मण्डल् को सूर्य सिद्धान्त एवं वेद के निष्णात विद्वानों ने चौथा रूप बताया है ।१५। ओंकार रूप प्रणव से युक्त ध्यान द्वारा निष्पाप होकर पद्मासन पर स्थित हो और नाभि पर

---

१. वायुना चापि किल्बिषम् ।

सुषुम्नानाडिकामार्गं कुम्भरेचकपूरकैः । त्रिभिः संशोध्य तान्पञ्च मरुतो देहमध्यगान् ।।१७
पदाङ्गुष्ठान्वितः स्विन्नमूर्ध्वमुत्क्षेपयेत्क्रमात् । नाभिदेशे तु तं दृष्ट्वा देवमग्निमनामयम् ।।१८
सोमं च हृदये दृष्ट्वा मूर्ध्नि चाग्निशिखां ततः । वातरश्मिभिरासाद्य तं भित्त्वा मण्डलं परम् ।।१९
ततः परं तु यो गच्छेद्योगस्थः सूर्यमण्डलम् । यत्र गत्वा न शोचन्ति तत्सौरं परमं पदम् ।।२०
देवार्चनं महाबाहो कीर्तितः केशिसूदन । प्रथमं हृदयं स्थानं द्वितीयं चाग्निमाश्रितम् ।।२१
तृतीयं नाभिसंस्थं च चतुर्थं सूर्यमण्डलम् ।।२२

स्थानं परं वै परमात्मसंस्थं भानोः सुरेशस्य वदन्ति तज्ज्ञाः ।
ज्ञेयः स मोक्षश्च नृणां स एव संसारविच्छित्तिकरं पदं ततः ।।२३
इदममृतसमं परस्य वेद्यं किरणसहस्रभृतो हितं जनानाम् ।
ऋषिचरितमवेत्य तत्त्वसारं व्यपगतमोहधियः प्रयान्तिमोक्षम् ।।२४
इदं मगानां चरितं मया ते प्रख्यापितं यानवरेण युक्तम् ।
ज्ञात्वात्विमं मोक्षविदो वदन्ति सिद्धाश्च तत्स्थानमवाप्नुवन्ति ।।२५

यन्मयोक्तमिदं ज्ञानं देयं श्रद्धावतां नृणाम् । नास्तिकानामबुद्धीनां न देयं भूतिमिच्छता ।।२६

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्व्यासो भोजकज्ञानमुत्तमम् । नारायणं महाबाहो जगमायतनं हरेः ।।२७

हाँथ रखे।१६। उपरान्त कुंभक, रेचक, तथा पूरक रूप प्राणायाम द्वारा सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग का संशोधन करते हुए पैर के अंगूठे से लेकर समस्त शरीर में चलने वाले उन पाँचों वायुओं को क्रमशः उपर की ओर सप्रयत्न ले जाये। नाभि प्रदेश में देव के अग्नि एवं अनामय रूप, हृदय स्थल में सोमरूप, शिर में अग्निशिखा रूप के दर्शन करके उसके पश्चात् वात एवं रश्मि द्वारा उसे पुनः ध्यानाकृष्ट कर के उत्तम मण्डल का भेदन करे।१७-१९। पश्चात् योग में स्थित होकर सूर्य मण्डल की प्राप्ति करता है, और जहाँ पहुँचकर किसी प्रकार का शोक नहीं होता है, उसे परम सौर पद कहते हैं।२०। हे महाबाहो ! इस प्रकार मैंने देवार्चन बता दिया है। हे केशिसूदन ! प्रथम हृदय स्थान, दूसरे अग्नि स्थान, तीसरा नाभि स्थान चौथा सूर्य मण्डल स्थान (सूर्य के ध्यान के लिए) बताया जाता है।२१-२२। उस परम पद के विद्वान् उसी परम स्थान को जहाँ परमात्मा स्थित रहता है, देवेश भानु का परम स्थान कहते हैं। मनुष्यों के लिए वही ज्ञेय एवं मोक्षरूप है और वहीं स्थान उसके संसार का नाश करता है।२३। अमृत के समान यही स्थान, जो दूसरों के लिए जानने योग्य, सहस्र किरण रूप तथा भक्त एवं मनुष्यों का सदैव हितैषी है। इसी को अपना कर ऋषियों ने मोक्ष प्राप्त किया है, अतः उनके चरित के ज्ञान पूर्वक तत्व सार की प्राप्ति द्वारा मोह नष्ट कर शुद्धि बुद्धि वाले पुरुष मोक्ष प्राप्त करते है।२४ मगों के इस चरित को मैंने तुम्हें बता दिया। मोक्ष के ज्ञाता इसे ही मोक्ष कहते हैं, जो सुन्दर विमानों पर बैठ कर प्राप्त किया जाता है और इसे सिद्ध लोग भी उस स्थान पर की प्राप्ति करते रहते हैं।२५। इस मेरे बताये हुए ज्ञान को श्रद्धालु मनुष्यों को प्रदान करना चाहिए, अपना ऐश्वर्य चाहने वाला पुरुष कभी भी नास्तिक एवं मूर्ख पुरुष को इसे न प्रदान करे।२६

सुमन्तु बोले—इस प्रकार भगवान् व्यास ने नारायण को भोजकों का उत्तम ज्ञान बताकर हे

ख्यातो यस्त्रिषु लोकेषु गंगया परितोषितः । बदर्या मण्डितो वीर नरनारायणाश्रमः ।।२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे भोजकज्ञानवर्णनं
नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४५।

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकवर्णनम्

शतानीक उवाच

य एते भोजकाः प्रोक्ता देवदेवस्य पूजकाः । नान्यं भोज्यमथैतेषां ब्राह्मणैश्च कदाचन ।।१
भास्करस्य प्रिया ह्येते पूज्यत्वं च तथा गताः । दिव्याश्चैते स्मृता विप्रा आदित्याम्भःसमुद्भवाः ।।२
अभोज्यत्वं कथं याता भोजकास्तद्वदस्व मे । किं कुर्वाणास्तथा कर्म भोज्यतां यान्ति मे वद ।।३

सुमन्तुरुवाच

इममर्थं पुरा पृष्टो वासुदेवो महीपते । कृतवर्मणा पुरा राजंस्तथा साम्बो महाबलः ।।४
गतौ साम्बपुरीं वीर तथा नारदपर्वतौ । भुक्तवन्तो गृहे सर्वे भोजकस्य महात्मनः ।।५
आदित्यकर्मणो लोके देवान्नख्यातिमागताः । तेन ते पूजिताः सर्वे भक्त्या भोज्यैरनेकशः ।।६
आगतास्ते पुरीं वीर पुण्यां द्वारवतीं विभोः । तावृषी दिवमारूढौ राजन्नारदपर्वतौ ।।७

हे महाबाहो ! हे वीर ! विष्णु के उस लोक को प्रस्थान किया जो तीनों लोकों में ख्याति प्राप्त गंगा एवं बदरी से भूषित तथा नरनारायणाश्रम के नाम से प्रसिद्ध है ।२७-२८

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में भोजकज्ञान वर्णन
नामक एक सौ पैंतालसीवां अध्याय समाप्त ।१४५।

अध्याय १४६

भोजक वर्णन

शतानीक ने कहा—देवाधिदेव सूर्य की उपासना करने वाले जिन भोजकों को आप ने बताया है, ब्राह्मणों को चाहिए कि उन्हें ही भोजन करायें अन्य को नहीं ।१। क्योंकि ये लोग सूर्य प्रिय होने के नाते पूज्य हैं, ये ब्राह्मण दिव्य तथा आदित्य रूप जल द्वारा उत्पन्न हैं ।२। अब मुझे यह जानने की इच्छा है कि भोजक लोग अभोज्य (भोजन न करने योग्य) कैसे होते हैं और किस कर्म से भोजक भोजन कराने के योग्य होते हैं, कृपा करके बतायें ! ।१-३

सुमन्तु बोले—महीपते ! पहले समय में कृतवर्मा ने भगवान् वासुदेव से यही प्रश्न किया था, राजन् ! उसी प्रकार महाबली साम्ब से भी पूछा गया था ।४। वीर ! एक बार नारद और पर्वत साम्ब पुरी में पहुँच कर महात्मा भोजकों के यहाँ और लोगों के साथ भोजन किये । आदित्य के पूजनादि करने के नाते उनके अन्न 'देवान्न' के नाम से लोक प्रसिद्ध थे, भक्ति पूर्वक भोजक ने उसी भाँति-भाँति के भोज्य पदार्थों द्वारा लोगों को तृप्त किया । वीर ! तदनंतर वे लोग पुण्य द्वारवती में पहुँच कर नारद तथा पर्वत

वासुदेवं महातेजा हार्दिक्यो वाक्यमब्रवीत् । य एते भोजका विप्र पूजका भास्करस्य तु ॥८
अन्नमेषां कथं विप्रौ भुक्तवन्तौ जनार्दन । तादृशौ दिव्यमाख्यातौ यौ तौ नारदपर्वतौ ॥
अभोज्याः किल एते वै ब्राह्मणानां जनार्दन ॥९

वासुदेव उवाच

न ते भोज्या महाबाहो भोज्या भोजाश्च सर्वदा । अभिवाद्याः प्रयत्नेन यथादित्यो महामते ॥१०
आचरन्तश्च तत्कर्म भोज्यत्वं प्रव्रजन्ति ते । तच्छ्रूयतां यदुश्रेष्ठ यत्कार्यं चापि तैर्विभो ॥
यतमानैर्महाबाहो तदिहैकमनाः शृणु ॥११
वृषली यस्य वै भार्या यश्चाव्यङ्गं न धारयेत् । अभोज्यः स तु विज्ञेयो भोजको नात्र संशयः ॥१२
अस्नातः पूजयेद्यस्तु तथाव्यङ्गविवर्जितः । आदित्यं यदुशार्दूल तथा च विधिना विभो ॥१३
सेवको भोजको यस्तु शूद्रान्नं येन भुज्यते । कृषिं च कुरुते यस्तु देवार्चामपि वर्जयेत् ॥१४
जातकर्मादयो यस्य न संस्काराः कृता विभो । आरुणेयैश्च मन्त्रैश्च सावित्रीं न च वै पठेत् ॥
तस्य गेहे द्विजो भुक्त्वा कृच्छ्रपादेन शुध्यति ॥१५
पितृदेवमनुष्याणां भूतानां भास्करस्य तु । अकृत्वा विधिवत्पूजां यस्तु भुङ्क्ते स धर्महा ॥१६
अव्यङ्गेन विहीनो यः शंखहीनस्तथैव च । शिरसा धारयेत्केशान्स ज्ञेयो भोजकाधमः ॥१७
देवार्चनं तथा होमं स्नानं तर्पणमेव च । दानं ब्राह्मणपूजां च कुर्वतो भोजकस्य तु ॥
अव्यङ्गेन विहीनस्य सर्वं भवति निष्फलम् ॥१८

नामक दोनों महातेजस्वी ऋषि ने आकाश स्थित होकर वासुदेव से प्रिय वाणी द्वारा पूंछा—ये भोजक ब्राह्मण, सूर्य के पूजक हैं, अतः जनार्दन ! इनके अन्न का इन दोनों ब्राह्मणों ने कैसे भोजन किया जो नारद एवं पर्वत के नाम से दिव्यख्यातिप्राप्त एवं ऋषिकुल में उत्पन्न हैं । क्योंकि जनार्दन ! ब्राह्मणों के लिए ये भोजन कराने के योग्य नहीं होते हैं ।

वासुदेव ने कहा—महाबाहो ! भोजक ही भोजक कराने के योग्य होते हैं न कि अन्य ब्राह्मण महामते ! ये लोग प्रयत्न पूर्वक सूर्य के समान ही अभिवादन करने के योग्य हैं ।५-१०। सूर्य के लिए कर्मों का आचरण करने के नाते ये भोज्य हैं । विभो ! उनके कर्मों को जिसे प्रयत्नपूर्वक वे करते हैं महामते ! सावधान होकर सुनो ! वृषली अभोज्य है, इसमें संशय नहीं ।११-१२। यदुशार्दूल ! विना स्वयं स्नान किये, अव्यंग लगाये विधान पूर्वक सूर्य की पूजा करने वाला, भोजक से सेवा कराने वाला, शूद्रान्न भोजी, कृषि करने वाला, देव पूजन का त्यागी । विभो ! जिसके जातकर्म आदि संस्कार न हुए हों, सूर्य के मंत्रों द्वारा गायत्री मंत्र का उच्चारण न करने वाला, पुरुष निषिद्ध है ऐसे लोगों के यहाँ भोजन करने पर ब्राह्मण कृच्छ्रपाद नामक व्रत करने से शुद्ध होता है । पितृ, देव एवं मनुष्यों एवं सूर्य की विधान पूर्वक पूजा बिना किये भोजन करने वाला 'धर्महा' (धर्मघाती) कहा जाता है ।१३-१६। अव्यंग एवं शंख हीन तथा शिर में केश रखने वाला भोजक अधम कोटि का होता है ।१७। देवार्चन, हवन, स्नान, तर्पण, दान, एवं ब्राह्मण पूजा करने पर भी अव्यंग हीन होने से भोजक का वह सब निष्फल हो जाता है ।१८। यदुशार्दूल !

सर्वदेवमयो ह्येष सर्ववेदमयस्तथा । अव्यङ्गो यदुशार्दूल पवित्रः परमः स्मृतः ॥१९
भोजकानां यदुश्रेष्ठ तस्य मूले स्थितो हरिः । मध्ये ब्रह्मा महातेजा अग्रे गोश्रुतिभूषणः ॥२०
ऋग्वेदो यस्य मूलस्थो मध्ये सामानि कृत्स्नशः । यजुर्वेदस्तथा श्रेष्ठश्चाथर्वसहितः स्थितः ॥२१
त्रयोऽग्नयस्तथा राजंस्त्रयो लोकाः स्थिताः क्रमात् । एवमेष पवित्रस्तु अव्यङ्गो भोजकस्य तु ॥२२
यस्त्वनेन विहीनस्तु भोजको भोजकाधमः । अभोज्यः स तु विज्ञेयः सोऽशुचिर्नात्र संशयः ॥२३
निर्माल्यमथ नैवेद्यं कुङ्कुमं देवहेलिनाम् । ये प्रयच्छन्ति शूद्राणां विक्रीणन्ति च भोजकाः ॥
तेऽधमा भोजका ज्ञेया ये च देवस्वहारिणः ॥२४
न पूजयन्ति देवेशं देवस्वं क्षपयन्ति च । न ते देव प्रियास्तात विज्ञेया भोजकाधमाः ॥२५
यस्मिन्न भुक्ते नैवेद्यं भोजकोऽश्नातिमानद । तदन्नं भुञ्जतस्तस्य नरकाय न शान्तये ॥२६
नैवेद्यं भोजयेत्तस्माद्भास्करस्य नरः सदा । प्रथमं यदुशार्दूल तच्च देहविशोधनम् ॥२७
ब्राह्मणानां पुरोडाशो यथा कायविशोधनः । भोजकानां तथा वीर नैवेद्यं कायशोधनम् ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४६।

सर्वदेवमय एवं सर्ववेदमय होने केनाते अभ्यंग अत्यन्त पवित्र बताया गया है। यदुश्रेष्ठ ! भोजकों के उस अभ्यंग के मूलभाग में विष्णु, मध्य भाग में महातेजस्वी ब्रह्मा, अग्रभाग में कान में किरण रूपी कुण्डल धारण करने वाले (सूर्य) स्थित रहते हैं। जिसके मूल भाग में ऋग्वेद, मध्य में समस्त सामवेद तथा अथर्व सहित यजुर्वेद स्थित है, उसी प्रकार राजन् ! तीनों अग्नि एवं तीनों लोक क्रमशः (उसमें) स्थित हैं, इसी लिए भोजकों का यह अव्यंग पवित्र माना जाता है ।१९-२२। इससे हीन भोजक भोजकाधम है, अभोज्य एवं अपवित्र उन्हें जानना चाहिए इसमें संशय नहीं ।२३। सूर्य के निर्माल्य, नैवेद्य, एवं कुंकुम आदि जो भोजकों शूद्रों के देने पर बेंचते हैं उन्हें अधम एवं देवधन का अपहरण करने वाला जानना चाहिए। जो देवेश (सूर्य) की पूजा नहीं करते हैं प्रत्युत यों ही समय व्यर्थ व्यतीत करते हैं, तात ! वे देवप्रिय नहीं है, उन्हें भोजकाधम जानना चाहिए ।२४-२५। मानद ! सूर्य के लिए नैवेद्य बिना समर्पित किये भोजक यदि उसे खा लेता है, तो उसे खाने से उसे नरक होगा न कि शांति प्राप्ति ।२६। अतः सूर्य के लिए प्रथम निवेदन कर ही उस नैवेद्य का सदैव प्रथम भोजन करना चाहिए, क्योंकि यदुशार्दूल ! उससे देह शुद्ध होती है ।२७। वीर ! जिस प्रकार ब्राह्मणों के शरीर शुद्धि के लिए पुरोडाश का भक्षण करना बताया गया है, उसी प्रकार भोजकों की शरीर शुद्धि के लिए नैवेद्य है ।२८

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में भोजक वर्णन नामक एक सौ छियालिसवाँ अध्याय समाप्त ।१४६।

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकब्राह्मणवर्णनम्

वासुदेव उवाच

अथ पृष्टो यथा देवो भास्करो देवपूजितः । अरुणेन महाबाहो के प्रिया भोजकास्तथा ॥१
पूजायां तत्र के योग्याः के न योग्या भवन्ति च । इति पृष्टः स भगवानरुणेन दिवाकरः ॥
यदुवाच महाबाहो तदिहैकमनाः शृणु ॥२

भास्कर उवाच

परदारान्परद्रव्यं ये न हिंसन्ति भोजकाः । ते प्रिया मम वै नित्यं ये न निंदन्ति दैवतान् ॥३
वाणिज्यं कृषिसेवां तु वेदानां निन्दनं च ये । कुर्वन्ति भोजका ज्ञेयाः सर्वे ते मम वैरिणः ॥४
येषां भार्यासङ्ग्रहणं कर्षणं ये प्रकुर्वते । नृपसेवां खगश्रेष्ठ विज्ञेयाः पतितास्तु ते ॥
भुञ्जते ये च शूद्रान्नं ज्ञेयास्ते शत्रवो मम ॥५
पूजा कृता तु या तैस्तु तथार्घ्यं च खगोत्तम । पूजां तामथ चाप्यर्घ्यं नाहं गृह्णामि खेचर ॥६
य एते कथिता वीर ये च शङ्खविवर्जिताः । निर्माल्यं ये मदीयं तु नैवेद्यं कुङ्कुमं तथा ॥७
शूद्राय ये प्रयच्छन्ति विक्रीणन्ति च ये खग । यच्छन्ति ये च वैश्याय भोजका मे न ते प्रियाः ॥८
यजन्ते ये च सावित्रीं महाश्वेतां च गोपतेः । ये न जानन्ति मे मुद्रां किङ्कराणां च नामतः ॥९

अध्याय १४७

भोजक ब्राह्मण वर्णन

वासुदेव ने कहा—महाबाहो ! अरुण ने जिस प्रकार देवपूजित सूर्य देव से पूँछा कि कौन भोजक आपके प्रिय हैं। तथा पूजा करने के लिए कौन योग्य कौन अयोग्य हैं, इस प्रकार अरुण के पूँछने पर भगवान् दिवाकर ने जो कुछ कहा है, महाबाहो, उसे मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।१-२

भास्कर बोले—जो भोजक परस्त्री एवं परधन का अपहरण तथा देवों की निन्दा करते हों, वे भोजक मुझे सदैव प्रिय हैं। व्यापार, खेती, और वेदों की निन्दा करने वाले भोजक मेरे शत्रु के समान हैं ।३-४। आकाशचारियों में श्रेष्ठ जिसके कई स्त्रियाँ हों, खेती करने वाले, एवं राजा की सेवा करने वाले भोजक को पतित जानना चाहिए। शूद्र के अन्न का भक्षण करने वाले भोजक मेरे शत्रु के समान हैं ।५। उसके द्वारा की गई जो कुछ पूजा एवं जो अर्घ्य प्रदान होता है, आकाशगामिन् ! उसे मैं कभी स्वीकार नहीं करता हूँ ।६। वीर ! ये लोग, शंख हीन मेरे निर्माल्य, नैवेद्य एवं कुंकुम शूद्र को देने वाले या बेंचने वाले हैं वे तथा आकाश चारिन् ! वैश्य को इन चीजों को देने वाले भोजक मुझे प्रिय नहीं होते हैं ।७-८। सावित्री तथा सूर्य की महाश्वेता का पूजन करने वाला, एवं किंकरों के नाम से मेरी मुद्रा न

य एते[1] कथिता वीर भोजकास्ते मया खग । नैते पूजयितुं शक्ता ये प्रिया मम भोजकाः ॥
ताञ्छृणुष्व खगश्रेष्ठ भूत्वा चैकाग्रमानसः ॥१०
देवद्विजमनुष्याणां पितृणां चापि पूजकाः । ते प्रिया मम वै नित्यं शक्ताः पूजयितुं रविम् ॥११
येषां मुण्डं शिरो नित्यं ये चाभ्यङ्गसमन्विताः । वादयन्ति च ये शङ्खं दिव्यास्ते भोजका मताः ॥१२
त्रिकालं ये च मां नित्यं सुस्नाताः क्रोधवर्जिताः । पूजयन्ति खगश्रेष्ठ ते प्रिया मम भोजकाः ॥१३
वारे मदीये नक्तं तु षष्ठ्यां ये च प्रकुर्वते । सप्तम्यामुपवासं तु तथा सङ्क्रमणे मम ॥१४
दिव्यास्ते ब्राह्मणा ज्ञेया भोजका मम पूजकाः । पूजयन्ति च ये विप्रान्मद्भक्ता मत्परायणाः ॥
ते प्रियाः सततं मह्यं भोजका गरुडाग्रज ॥१५
मयि भक्तिं न कुर्वन्ति ब्राह्मणान्पूजयन्ति नो । न ते पूज्या न वन्द्याश्च ये द्विषन्ति च मां सदा ॥१६
ये कुर्वन्ति महायज्ञान्भोजका गरुडाग्रज ! पितृदेवमनुष्याणां पूजार्थं सन्ततं खग ॥१७
प्रियास्ते सततं वीर भोजकानां तथोत्तमाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पञ्चयज्ञान्प्रवर्तयेत् ॥१८
एकभक्तेन ये नित्यं वर्तन्ते कश्यपात्मज । भुञ्जते न च ये रात्रौ भोजकास्ते प्रिया मम ॥१९
मम वारे च ये वीर तथा षष्ठ्यां च केशव । न रात्रौ भुञ्जते प्राज्ञा मत्प्रियास्ते मगाः खग ॥२०
प्रतिसंवत्सरं ये तु भोजका गरुडाग्रज । न यच्छन्ति पितुर्मातुर्दिवसे तेन मे प्रियाः ॥२१
इत्थं भूता भोजका या माघमासे च सप्तमी । पुष्पाणां करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् ॥२२

जानने वाला, वीर ! ये सभी भोजक मेरी पूजा करने में असमर्थ होते हैं। मेरे प्रिय भोजकों को खगश्रेष्ठ ! सावधान होकर सुनो ।९-१०। देव, द्विज, एवं मनुष्यों की पूजा करने वाला भोजक मुझे सदैव प्रिय हैं, वे ही सूर्य की पूजा करने में समर्थ हैं ।११। जिनके शिर सदैव मुण्डित, अभ्यंग युक्त शेखर होकर शंख की ध्वनि करते हैं, वे मेरे संमति से दिव्य भोजक हैं ।१२। तीनों काल में स्नान पूर्वक क्रोधहीन हो जो मेरी नित्य पूजा करते हैं, खगश्रेष्ठ ! वे भोजक, मुझे प्रिय हैं। मेरे दिन षष्ठी में या संक्रान्ति के दिन नक्त व्रत तथा सप्तमी में उपवास करने वाले भोजक ब्राह्मणों को दिव्य एवं मेरा प्रिय समझना चाहिए। गरुड़ध्वज ! जो मेरे भक्त, मत्परायण होकर ब्राह्मणों की पूजा करते हैं, वे मुझे नित्य प्रिय हैं ।१३-१५। जो मुझ में भक्ति नहीं रखते ब्राह्मणों की पूजा नही करते एवं मुझसे सदैव द्वेष रखते हैं वे पूजा करने के अयोग्य तथा अवंदनीय हैं ।१६। गरुडाग्रज ! जो भोजक पितृ, देव, मनुष्यों की पूजा के लिए महान् यज्ञों का आरम्भ करते हैं, वीर वे मुझे सदैव प्रिय हैं, तथा वे उत्तम भोजक कहे जाते हैं। इसलिए पाँचों यज्ञों के आरम्भ के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए ।१७-१८। कश्यपात्मज ! एकाहारी, एवं रात में भोजन न करने वाला भोजक मुझे प्रिय है ।१९। वीर ! केशव ! मेरे दिन, एवं षष्ठी में रात को भोजन न करने वाला मग, मुझे प्रिय है ।२०। गरुड़ाग्रज ! जो भोजक प्रतिवर्ष, मातृ-पितृ के दिनों में उन्हें भक्ष्य आदि प्रदान नहीं करते हैं, वे मुझे प्रिय नहीं है ।२१। इस भाँति के भोजक जो माघ मास की सप्तमी तिथि में करवीर के पुष्प, रक्तचन्दन, ब्राह्मण द्वारा कथा श्रवण, नैवेद्य मोदक, घी की आहुति, गुग्गुल की धूप, क्षीर

---

१. ये वाभ्यंगविहीनास्तु ये च सत्यविवर्जिताः ।

वाचको ब्राह्मणानां तु नैवेद्यं मोदकास्तथा । घृताहुत्यो गुग्गुलश्च क्षीरेण स्नपनं तथा ॥२३
वाद्यानां शङ्खशब्दश्च नृत्यं नाट्यं मतं मम । पञ्चवर्णा पताकास्तु श्वेतं छत्रं च मे प्रियम् ॥२४
नान्यवर्णैः कृता पूजा तथा प्रीणाति मां खग । यथा कृता भोजकेन पूजा प्रीणाति मां सदा ॥
नान्यदेवप्रतिष्ठा तु कर्तव्या भोजकेन तु ॥२५

वासुदेव उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्देवश्चारुणाय पुरानघ । लक्षणं भोजकानां तु ततो मेरुमथाक्रमत् ॥२६
एवं भोज्या भोजकास्तु न चाभोज्याः कदाचन । अनुष्ठानविहीना ये न ते भोज्यास्तु भोजकाः ॥२७
भौमास्तु ब्राह्मणा ये तु अनुष्ठानविवर्जिताः । तेऽप्यभोज्या भवन्तीह विकर्मस्था विशेषतः ॥२८
नास्ति पूज्यतमं किञ्चिन्माङ्गल्यं पावनं तथा । चतुर्णामिह वर्णानां मुक्त्वा भोजकमुत्तमम् ॥
पूजिते भोजके वीर आदित्यः पूजितो भवेत् ॥२९
भुञ्जते यस्य वै गेहे भोजका यदुनंदन । तस्य भुङ्क्ते स्वयं भानुर्ब्रह्मा विष्णुस्तथा शिवः ॥३०
यथेह सर्वसत्त्वानां प्रधानत्वे स्थितो रविः । तथेह सर्वभूतानां भोजकः पूज्य उच्यते ॥३१
तीर्थानां तु कुरुक्षेत्रं सरसां सागरो यथा । तथा पूज्यतमो ज्ञेयः पूज्यानां भोजको विभो ॥३२
विशेषेण च सौराणां भोजकः पूज्य उच्यते । भर्ता पूज्यो यथा स्त्रीणां शिष्याणां च यथा गुरुः ॥
भोजकस्तु तथा पूज्यः सौराणां हृदिकात्मज ॥३३

का स्नान, वाद्यों तथा शंख की ध्वनि, नृत्य, गान पाँच रंग की पताका और आत्म प्रिय हैं श्वेत छत्र के प्रदान पूर्वक मेरी पूजा करने वाले हैं, मुझे अत्यन्त प्रिय है। आकाश गमन करने वाले! अन्य वर्ण के मनुष्यों द्वारा की गई पूजा से मुझे उतनी प्रसन्नता नहीं होती है, जितनी कि सदैव की गई भोजक की पूजा से। इसलिए भोजक को चाहिए कि किसी अन्य देव की प्रतिष्ठा न करें।२२-२५

वासुदेव ने कहा—अनघ ! भगवान् सूर्य देव इस प्रकार भोजकों के लक्षण अरुण से कहते हुए मेरु पर पहुँच गये।२६। इसी प्रकार के भोजकों को भोज्य (भोजन कराने योग्य) जानना चाहिए, इन्हें कभी भी उससे वंचित न रखे। अनुष्ठान हीन भोजकों को भोज्य न समझना चाहिए। भूमि निवासी ब्राह्मण यदि अनुष्ठान अपने (नियमित धार्मिक कार्य) न करता रहे तो वह भी अभोज्य है, यदि अपने कर्म के त्याग कर बुरे कर्म को करता है तो उसका विशेषकर त्याग करना चाहिए।२७-२८। चारों वर्णों के लिए एक मात्र उत्तम भोजन के अतिरिक्त अन्य कोई भी मांगलिक, पवित्र करने वाला एवं पूज्यतम (अत्यन्त पूजा करने के योग्य) किसी अंश में सम्भव नहीं है। वीर ! भोजक की पूजा करने पर सूर्य स्वयं पूजित हो जाते है।२९। यदुनन्दन ! जिसके घर में भोजक को भोजन कराया जाता है उसके यहाँ सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव स्वयं भोजन करते हैं। जिस प्रकार यहाँ सभी प्राणियों के प्रधान देव सूर्य हैं, उसी प्रकार यहाँ सभी जीवों के पूज्य भोजक बताये जाते हैं ३०-३१। तीर्थों में कुरुक्षेत्र एवं जलाशयों में सागर जिस प्रकार पूज्य है उसी भाँति विभो ! पूज्य लोगों में भोजक को अत्यन्त पूज्य समझना चाहिए।३२। विशेषकर सौर (सूर्य भक्त) के पूज्य भोजक कहे जाते हैं। जिस प्रकार स्त्रियों के पूज्य पति महादेव, और शिष्यों के गुरुवर्य पूज्य हैं उसी भाँति हृदिकात्मज ! सौर

यस्य भुङ्क्ते भोजकस्तु गन्धपुष्पादिनार्चितः। तस्य भुङ्क्ते स्वयं भानुः पितरो देवतास्तथा ॥३४
एवं पूज्यास्तथा भोज्या भोजका हृदिकात्मज। ये सौरा भोजकस्यान्नं भुङ्क्ते निर्विकल्पतः॥
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति सूर्यसलोकताम् ॥३५
कथितो यत्र यो भोज्यो यस्य भोज्य स वर्जितः। अथ किं बहुनोक्तेन श्रूयतां वचनं मम ॥३६
नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति गङ्गासमा सरित्। अश्वमेधसमं पुण्यं नास्ति पुत्रसमं सुखम् ॥३७
नास्ति भानुसमो देवो नास्ति मातृसमा गतिः। यथैतानि समस्तानि उत्तमानि यदूत्तम॥
तथोत्तमो भोजकस्तु सम्प्रोक्तो भास्करेण तु ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने भोजकलक्षणवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१४७।

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालचक्रवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अथ साम्बो महातेजा दृष्ट्वा चक्रं पितुः करे। ज्वालामालाकरालं तु महता तेजसान्वितम् ॥१
पप्रच्छ पितरं साम्बो भक्त्या श्रद्धासमन्वितः। कुतस्तात त्वया प्राप्तं चक्रमादित्यसन्निभम् ॥२

लोगों के पूज्य भोजक बताये गये हैं। जिसके यहाँ गन्ध एवं पुष्पादि से पूजित होकर भोजक भोजन करता है, उसके यहाँ सूर्य, पितृगण, एवं देवता लोग भोजन करते हैं।३३-३४। हृदिकात्मज (प्रियपुत्र) इस प्रकार के भोजक पूज्य एवं भोज्य हैं जो सौर लोग भोजकों के अन्न का स्वच्छन्द होकर भोजन करते हैं, पाप मुक्त होकर सूर्य लोक को जाते हैं। इस प्रकार जो भोज्य हैं, और भोजन कराने में जिसका त्याग करना चाहिए, सभी कुछ बता दिया गया। इस विषय में अधिक क्या कहूँ। मेरी बात सुनो वेद से परे शास्त्र, मंत्र के समान नदी, अश्वमेध के समान पुण्यकार्य, पुत्र प्राप्ति के समान सुख, सूर्य के समान देव, माता के समान गति, अन्य कोई नहीं है। यदूत्तम ! जिस प्रकार ये समस्त उत्तम बताये गये हैं उसी प्रकार भास्कर ने भोजकों को उत्तम बताया है।३५-३८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में भोजक लक्षण वर्णन नामक एक सौ सैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त।१४७।

अध्याय १४८

कालचक्र का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसके उपरांत महातेजस्वी साम्ब ने अपने पिता के हाथ में प्रज्वलित ज्वाला की भाँति किरणों से भीषण एवं अत्यन्त तेज से आच्छन्न उस चक्र को देखकर श्रद्धा भक्ति पूर्वक अपने पिता से पूँछा—हे तात ! सूर्य की भाँति इस चक्र को आपने कहाँ से प्राप्त किया है।१-२। हे देव ! दिव्य एवं ऐसे

किमर्थं वहते देव दिव्यनागुधमुत्तमम् । एतदाख्याहि मे सर्वं श्रोतुकामस्य[1] कौतुकात् ॥३

वासुदेव उवाच

साधुसाधु[2] महाबाहो साधु पृष्टोऽस्म्यहं त्वया । शृणुष्वैकमनाः पुत्र चक्रस्य विधिनिर्णयम् ॥४
दिव्यं वर्षसहस्रं तु भानुमाराध्य श्रद्धया । प्राप्तं चक्रं मया तस्माद्भास्कराल्लोकपूजितात् ॥५
नभोगः पञ्चकाल्ढः स्थितः साक्षाद्दिवाकरः । ग्रहाः सोमादयो यस्य संस्थिता नाभिमण्डले ॥६
आदित्या द्वादश समा अरेषु क्रमशस्तथा । प्रोक्तं पथिषु तन्त्वानि पृथिव्यादीनि यानि वै ॥७
एतैस्तत्त्वैः परिव्याप्तं चक्रं कालात्मकं परम् । संक्षेपात्ते मयाख्यातं दत्तं चक्रमिवापरम् ॥८

साम्ब उवाच

कथं कालमयं देव चक्रं कमलमुच्यते । इदं तावन्ममाचक्ष्व ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥९

वासुदेव उवाच

कमलं ह्यृतुभिः षड्भिः षड्दलं चाक्षयाश्रितम् । पुरुषाधिष्ठितं तद्धि तत्र साङ्गो रविः स्थितः ॥१०
यच्च कालत्रयं लोके तन्नाभित्रयमुच्यते । मासा अरा महाबाहो पक्षाश्च प्रधयः स्मृताः ॥११
नेमी चैव परे प्रोक्ते अयने दक्षिणोत्तरे । पथिनाभिषु योगे च योगाख्यास्तथनादिभिः ॥१२

उत्तम अस्त्र को आप क्यों धारण किये रहते हैं । इसे जानने के लिए मुझे महान् कौतूहल है, आप इन सभी बातों को बताने की कृपा करें ।३

वासुदेव बोले—महाबाहो ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, जो तुमने इस प्रकार का उत्तम प्रश्न मुझसे किया, पुत्र ! सावधान होकर चक्र की प्राप्ति सुनो ! सहस्र दिव्य वर्ष सूर्य की आराधना करने के पश्चात् मैंने लोक पूजित सूर्य से इस चक्र की प्राप्ति की है ।४-५। आकाश में स्थित होने पर इस पाँच अंग वाले (चक्र) को देखने पर यही होता है कि साक्षात् दिवाकर ही स्थित हैं । इसके नाभिमंडल (नाभि और नाभि के मध्य वाले भाग) में ग्रहगण, एवं सोम आदि स्थित हैं ।६। बारह आदित्य इसके अरों में क्रमशः स्थित हैं, पृथ्वी आदि (पाँचो) तत्त्व उसके मार्ग में स्थित हैं उन्हीं तत्वों से व्याप्त, काल रूप यह उत्तम चक्र है, संक्षेप से मैंने तुम्हें इसे बता दिया, मैंने तुम्हें एक अन्य चक्र ही प्रदान किया, ऐसा समझो ।

साम्ब ने कहा—हे देव ! यह कमल चक्र काल मय क्यों कहा जाता है, इसे मुझे बताइये, मैं इस तत्त्व को (विधानपूर्वक) जानना चाहता हूँ ।७-९

वासुदेव बोले—छहों ऋतुओं द्वारा अक्षय (अविनाशी) षट्दल में कमल आश्रित है, उस (कमलत्व) में पुरुष प्रतिष्ठित है, वह साङ्गोपांङ्ग सूर्य ही हैं ।१०। लोक प्रसिद्ध तीनों काल उसकी तीन नाभि हैं, महाबाहो ! बारह मास और (आरागज) (मास के) दोनों पक्ष प्रधि (पुत्रियां) बताई गई हैं ।११। दक्षिण एवं उत्तर दोनों अयन नेमि हैं । नक्षत्र, ग्रह, सदैव इसमें स्थित रहते हैं, यह चक्र स्थूल,

---

१. श्रोतुकामश्च ते मुखात् । २. वत्स । ३. अयनादि तथैव हि ।

नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव सदा चात्र स्थिताः स्मृताः । एतैर्व्याप्तमिदं चक्रं स्थूलसूक्ष्मप्रभेदतः ॥१३
अत्रोद्दिष्टेषु कालेषु ये नोद्दिष्टा मया तव । युगादिकल्पपर्यन्तास्तेऽपि चात्र स्थिताः क्रमात् ॥१४
यत्ते कालात्मकं चक्रमिदं संक्षेपतो मया । कथितं तद्विनिष्क्रान्तं प्रदीप्तात्सूर्यमण्डलात् ॥१५
असुराणां वधायेदं मया लब्धं दिवाकरात् । आराध्य तपसा सूर्यं पुरा कल्पे जगद्गुरुम् ॥
अतः सम्पूजयाम्येनं ग्रहैस्तत्त्वैर्वृतं सदा ॥१६
अर्कं भक्तो हि चक्रस्थं यः पूजयति भक्तिमान् । तेजसा रविसंकाशः पुष्पोत्तरपुरं व्रजेत् ॥१७
तस्मात्तं मत्कुलानन्दं मित्रं सम्पूजयाम्यहम् । ग्रहैस्तत्त्वैर्वृतं भक्त्या स्वमन्त्रैः सततं विभुम् ॥१८
सप्तम्यां चक्रमालिख्य ये यजन्ति दिवाकरम् । रक्तचन्दनचूर्णेन कुंकुमेन सुगंधिना ॥१९
पिष्टगन्धादिभिर्वापि रक्तवर्णकमिश्रकैः । रक्तैश्च कमलैः शुद्धैः करवीरैः सुगन्धिभिः ॥२०
अन्यैर्वा कुसुमैर्वन्यैः प्रत्यग्रैर्जन्तुवर्जितैः । अपर्युषितनिश्छिद्रैः शुभगन्धैर्दलैरपि ॥२१
फलैः पक्वैरोषधिभिस्तथा दूर्वाङ्कुरैः कुशैः । धूपैश्च विविधैर्गन्धैर्वस्त्रैश्च भूषणैः ॥२२
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च चोष्यैर्लेह्यैश्च शक्तितः । वितानकैश्च विमलैः पलाशैरुपशोभितैः ॥२३
छत्रचामरघण्टाभिर्भूषणैर्दर्पणादिभिः । नृत्यवाद्यैश्च गीतैश्च वेदैः पुण्यकथाध्वनैः ॥२४
सर्वत्र जयघोषैश्च सम्पूर्णं पूजयन्ति ये । सम्पूर्णान्निर्विघ्नान्कामान्निर्विघ्नान्प्राप्नुवन्ति ते ॥२५
स्वचक्रं चापि निर्विघ्नं वृद्धिमायाति सुव्रत । हन्यते परचक्रं च यत्रेदं पूज्यते सकृत् ॥२६

एवं सूक्ष्म रूप से इनसे व्याप्त है ।१३। इसमें जितने भाँति के काल बताये गये हैं, कुछ को मैंने तुम्हें नहीं बताया है, वे सभी युगारम्भ से होकर कल्प पर्यन्त क्रमशः इसमें स्थित रहते हैं ।१४। इस कालात्मक चक्र को जिसे मैंने तुम्हें संक्षेप में बताया था, प्रदीप्त सूर्य मण्डल से निकला हुआ है ऐसा मानो ।१५। राक्षसों के वध करने के लिए मैंने दिवाकर से इसे प्राप्त किया है (इसके लिए) पहले कल्प में मैंने जगद्गुरु सूर्य की आराधना की थी । ग्रहों एवं तत्त्वों से घिरे हुए इस चक्र की इसीलिए मैं पूजा करता हूँ ।१६। जो भक्त चक्रस्थित सूर्य की आराधना करता है, वह रवि के समान तेजस्वी होकर पुष्पोत्तरपुर की प्राप्ति करता है ।१७। अतः मेरे कुल के लिए आनन्द प्रदान करने वाले विभु मित्र (सूर्य) की, जो ग्रह, एवं तत्त्वों से आवृत हैं, भक्ति पूर्वक अपने मंत्र द्वारा निरंतर पूजा करता हूँ ।१८। सप्तमी तिथि में रक्तचन्दन, कुंकुम से इस चक्र का लेखन निर्माण करके जो दिवाकर की पूजा करता है, एवं लाल रंग मिश्रित सुगन्धित पूर्ण, रक्त कमल, सुगंधित कनेर पुष्प, अथवा जंगली पुष्पों, लाख (लाह) को छोड़कर नवीन, ताजे, सौन्दर्य पूर्ण, शुभ दलों, के पके फलों, औषधियों, दुर्वाएँ, कुशों, भाँति-भाँति की धूपों, वस्त्रों, आभूषणों, भक्षण पदार्थों, पीने, एवं स्वादिष्ट कडुवी तथा तिक्त वस्तुएँ, अपनी शक्ति के अनुसार उज्ज्वल शुभ वितान (चाँदनी), जो पलाशों से विभूषित हों, छत्र, चामर, घण्टा, भूषणों दर्पण, नृत्य, वाद्य, गायन, वेदध्वनि, पुण्य कथाओं, सर्वत्र जय जयकार के शब्दों से परिपूर्ण, इन सामग्रियों द्वारा जो उनकी पूजा करते हैं, वे अपनी समस्त कामनायें निर्विघ्न समाप्त करते हैं ।१९-२५। सुव्रत ! अपने चक्र की भी निर्विघ्न वृद्धि होती है । इसकी एक बार पूजा करने से ही व्यक्ति दूसरे के चक्र का नाश कर सकता है ।२६। साम्ब ! संक्रान्ति के दिन अथवा

सङ्क्रान्तौ ग्रहणे चापि लिखित्वा यो जपेदिदम् । भवन्ति नियताः साम्ब तस्य सानुग्रहा ग्रहाः ।।२७
सर्वरोगविहीनस्तु सर्वदुःखविवर्जितः । चिरं जीवति धर्मात्मा सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।।२८
एष वै कथितो वत्स चक्रयोगो मया तव । अर्कस्य सर्वयज्ञानां श्रेष्ठं सिद्धिप्रदो भृशम् ।।२९
पुण्यो धर्मस्तथा पुष्टिदः शत्रुघ्नश्च विशेषतः । श्वेतो रक्तोऽथ पीतश्च कृष्णश्चापि विभागशः ।।३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने कालचक्रवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४८।

अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यदीक्षावर्णनम्

साम्ब उवाच

किं प्रमाणं लिखेच्चक्रं तत्र पद्मं च किं भवेत् । नेमिप्रध्यारनाभीनां विभागः क्रियते कथम् ।।१

वासुदेव उवाच

चतुःषष्ट्यङ्गुलं चक्रं कृत्वा वृत्तं प्रमाणतः । अष्टाङ्गुला भवेन्नेमिः सेयं विभवतः सदा ।।२
नाभिक्षेत्रं तथैव स्यात्पद्मं तत्त्रिगुणं भवेत् । अरक्षेत्रं च पद्मस्य कर्णिकाकेसराणि च ।।३
केसरस्य च पादेन शेषपत्राणि कल्पयेत् । पत्रसन्धिश्च पादाङ्गं क्रमात्तत्रापि भिद्यते ।।४

ग्रहण काल में इसे (यन्त्र रूप में) लिखकर जो पूजन करता है, उसके सभी ग्रह अनुकूल रहते हैं ।२७। समस्त रोग से शून्य, एवं सभी दुःखों से हीन होकर वह धर्मात्मा समस्त ऐश्वर्यों समेत चिरकाल का जीवन प्राप्त करता है ।२८। वत्स ! मैंने तुम्हें इस चक्र रूप योग की व्याख्या बता दी सूर्य के सभी यज्ञों में श्रेष्ठ एवं अत्यन्त सिद्धि प्रद, पुण्य, धार्मिक, पुष्टि, विशेषकर शत्रुनाशक तथा श्वेत, रक्त, पीले एवं काले रंग का है ।२९-३०

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाख्यान में कालचक्र वर्णन नामक एक सौ अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त ।१४८।

अध्याय १४९

सूर्यदीक्षा का वर्णन

सांब ने कहा—कितने बड़े आकार का चक्र लिखना चाहिए, उसमें कमल कौन होगा, नेमि, प्रधि (अर (आरागज) और नाभि का विभाग क्रमशः कैसे किया जायगा ।१

वासुदेव बोले—चौसठ अंगुल के गोलाकार सूर्य चक्र की जिसमें आठ अंगुल की नेमि सदैव स्थित रहती है, रचना करनी चाहिए उसी भाँति नाभि का स्थान बनाये, उससे तिगुने आकार का पद्म होता है, कमल की कर्णिका (दलों) के केसर का स्थान अर का क्षेत्र बताया गया है, केसर के (पाद) द्वारा शेष पत्तों की रचना करे, पत्तों की संधियाँ, पादाङ्ग क्रमशः पृथक् पृथक् करके नाभि द्वारा कमल को

उन्नतं कमलं तत्तु कुर्यान्नाभ्यां न संशयः । आकीर्णाः संविभक्ताश्च कर्तव्याः प्रधयः क्रमात् ॥५
अङ्गुलस्थूलमूलं स्यादराग्रं त्रिगुणं ततः । भूमिः पीता बहिर्ज्ञेया कर्णिकाकेसराणि च ॥६
सितं नाभिस्थलं तत्र द्वाराणि परिकल्पयेत् । हस्तमात्रं भवेत्तस्य तन्मानं द्वारसन्निभम् ॥७
शेषं रक्तं समुद्दिष्टं संहताः पत्रसन्धयः । नाभिनेम्यन्तरे लेखाः सिताश्चाङ्गुलमानतः ॥८
सितरक्तसिताभिश्च समन्तादुपशोभितम् । कपोलं द्वारपद्मं च द्वारकोणे प्रकल्पयेत् ॥९
चतुर्द्वारं भवेदेवमैन्द्रद्वारं प्रकल्पयेत् । अपराह्णेऽथ पूर्वाह्णे वरुणमावाहयेत्सदा ॥१०
द्वाराण्येतानि संवर्त्य यथोक्तविधिना यजेत् । यथोक्ता देवताः सर्वाः स्वमन्त्रैरेव भक्तितः ॥११
चक्रमेवं समुद्दिष्टं यजनार्थं मया तव । यज्ञेनानेन सम्बद्धो दीक्षितश्चार्कमण्डले ॥
इत्थं मे भानुना पूर्वमिदमुक्तं वरानन ॥१२

साम्ब उवाच

के मन्त्राश्चक्रयज्ञेऽस्मिन्देवतानां प्रकीर्तिताः । यज्ञक्रमश्च कः प्रोक्तो रूपं किं च पृथक् पृथक् ॥१३

वासुदेव उवाच

खषोल्कं हृदयाध्यक्षं पूर्वोक्ते कमले यजेत् । कर्णिकायां दलेष्वेवमङ्गानि हृदयादि च ॥१४
नाममन्त्राश्चतुर्थ्यन्तास्तेषां पूर्वोक्तकोटयः । नमस्कारश्च सर्वत्र एष एव विधिः स्मृतः ॥१५

उन्नत करे, पुनः उसमें क्रमशः प्रधियाँ (पट्टियाँ) लगाये, जो पृथक्-पृथक् चारों ओर से घेर कर स्थित रहती हैं, अंजुल का स्थूल मूल भाग अर का क्षेत्र बताया गया है, जो उस तिगुने आकार का है, कर्णिका के केसर, उसकी पीले रंग की बाहरी भूमि है, श्वेत (कमल) नाभि स्थल है, वहाँ द्वार की कल्पना करनी चाहिए, एक हाथ का लम्बा चौड़ा द्वार बनवाना चाहिए, जो दरवाजे के समान होता है, शेष रक्त (कमल) द्वारा पत्तों की संधियाँ बनानी चाहिए, नाभि और नेमि के अन्तर की रेखा श्वेत वर्ण की एक अंगुल की होनी चाहिए। वह भी श्वेत, रक्त एवं काले कमलों द्वारा जो उसे चारों ओर से सौन्दर्य पूर्ण करे। कपोल और द्वारकमल को द्वार के कोने में कल्पित करे।१-९। इस प्रकार चार दरवाजे होते हैं, उसमें इन्द्र के दरवाजे की भी कल्पना करनी चाहिए। पूर्वाह्ण एवं अपराह्ण काल में सदैव वरुण का आवाहन करे।१०। इतने दरवाजों की कल्पना करके विधान पूर्वक उसकी पूजा करे, उसमें जितने देव स्थित हैं, भक्ति पूर्वक उन्ही के मंत्रों द्वारा (आवाहन पूजन) करे। मैंने तुम्हारे पूजन के लिए इस चक्र का निर्माण विधान बता दिया, जिससे इस यज्ञ द्वारा सूर्य मण्डल से तुम्हारा संबंध एवं तुम्हारी दीक्षा भी हो गई, वरानन ! इस प्रकार सूर्य ने मुझसे पहले (समय) में कहा था।११-१२

साम्ब ने कहा—इस चक्र रूपी यज्ञ में देवताओं के कौन-कौन मंत्र, यज्ञ का क्रम और उनके पृथक् पृथक् रूप क्या है ? ।१३

वासुदेव बोले—'खषोल्क हृदयाध्यक्षं' आदि मंत्र द्वारा जो पहले बता दिया गया है, कमल तथा कर्णिका में स्थित दलों में, अंग एवं हृदय आदि की पूजा करे। उनके नाम मंत्र का संस्कृत व्याकरण के अनुसार चतुर्थ्यन्त का क्रमशः प्रयोग करे। नमस्कार के लिए भी यही विधान सर्वत्र बताया गया है।१४-१५।

स्वाहान्ता होमकाले च कर्मस्वन्येषु ते पुनः । एषां कर्मावसानाश्च प्रयोक्तव्याः समासतः ॥१६
ॐ खषोल्काय विद्महे दिवाकराय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ॥१७
सावित्री च महाबाहो चतुर्विंशाक्षरा मता । सर्वतत्त्वमयी पुण्या ब्रह्मगोत्रार्कवल्लभा ॥१८
एवं मन्त्राः प्रयोक्तव्याः सर्वकर्मस्वतंद्रितैः । अन्यथा विफलं कर्म भवेदिह परत्र च ॥१९
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मन्त्राञ्ज्ञात्वा विधिं तथा । यथावत्कर्म तत्कृत्वा साधयेदीप्सितं फलम् ॥२०

साम्ब उवाच

आदित्यमण्डले दीक्षा कस्य कार्या कथं च सा । कदा केन किमर्थं च कथयेदं ममाखिलम् ॥२१

वासुदेव उवाच

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं कुलीनं शूद्रमेव च । पुरुषं वा स्त्रियं वापि दीक्षयेत्सूर्यमण्डले ॥२२
स्वयं भक्त्योपपन्नश्च प्रणिपत्य गुरुं तथा । गुरुस्तं दीक्षयेद्विप्रः कल्पज्ञः सत्यवाक्छुचिः ॥२३
षष्ठ्यामग्निं समाधाय पूर्वोक्तविधिना क्रमात् । सम्पूज्यार्कं तथा वह्नौ हुत्वा वै हविषा रविम् ॥२४
शिष्यं स्नातमथाचान्तं खषोल्काकृतिविग्रहम् । स्वाङ्गैरालभ्य चाङ्गेषु दर्भैर्वह्निस्तथाक्षतैः ॥२५
पुष्पैः सम्पूज्य चाङ्गानि देयः कार्यो बलिस्तथा । आदित्यो वरुणोऽर्कोऽग्निः साधितो हृदयेन च ॥२६
भवेद् घृतगुडक्षीरैस्तन्दुलैश्च[1] प्रमाणतः । त्रिभिरञ्जलिभिर्हुत्वा देवायाग्नौ हुतं पुनः ॥२७

हवन के समय चतुर्थ्यन्त नाम के अन्त में स्वाहा तथा अन्य कर्मों में स्वाहा छोड़कर वैसा ही प्रयोग करें। शीघ्र कर्मों की समाप्ति के लिए सब के नाम को एक साथ उच्चारण कर अन्त में चतुर्थ्यन्त उच्चारण करें। 'ओं खषोल्काय विद्महे दिवाकराय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्' यही मंत्र है।१६-१७। महाबाहो! सावित्री (गायत्री) चौबीस अक्षर की होती है, जो सर्वतत्त्वमय, पुण्यरूप, एवं ब्रह्म गोत्री सूर्य की अत्यन्त प्रिय है।१८। इस प्रकार सभी कर्मों में सावधान होकर मंत्रों का प्रयोग करना चाहिए, अन्यथा उसके लोक परलोक संबंधी सभी कर्म व्यर्थ हैं इसलिए प्रयत्न पूर्वक मंत्रों एवं विधानों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर यथोचित कर्म की समाप्ति करके अपनी अभिलाषा की पूर्ति करनी चाहिए।

साम्ब ने कहा—सूर्य मण्डल में किसकी दीक्षा होनी चाहिए, और किस प्रकार, कब, किसके द्वारा तथा किस लिए? मुझे इन सभी बातों को बताइये।१९-२१

वासुदेव बोले—सूर्य मण्डल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं कुलीन शूद्र तथा स्त्रियाँ दीक्षित होती हैं।२२। स्वयं भक्तिपूर्वक वहाँ पहुँच कर गुरु को नमस्कार करे, पश्चात् कल्प का ज्ञाता, सत्यवादी, पवित्र, वह ब्राह्मण गुरु उसे दीक्षा प्रदान करे।२३। षष्ठी में अग्नि के स्थापन पूर्वक क्रमशः पूर्वोक्त विधान द्वारा सूर्य की पूजा करनेके उपरांत अग्नि में सूर्य के उद्देश्य से घी की आहुति डाले।२४। स्नान एवं आचमन शिष्य को कराकर जिसकी आकृति खषोल्क के समान रहती है, अंगालम्भन कर पुनः उसके उपरांत कुश अक्षत, एवं पुष्पों द्वारा अंगों की पूजा करके बलि प्रदान करे। आदित्य, वरुण, एवं सूर्यरूपी अग्नि को हृदय से साधन संपन्न करके घी, गुड़, क्षीर, चावल, इन्हें प्रमाणानुसार एक में मिलाकर सूर्य के

---

१. दधिघृतक्षीरैः।

दत्त्वा शिष्टाय मुक्त्वैवं दत्त्वान्ते दन्तधावनम् । क्षीरं वृक्षोद्भवं तस्मै द्वादशाङ्गुलसन्निभम् ।।२८
दन्तभिघृष्टेऽपनीते च तेन प्राच्यां क्षिपेत्ततः । दन्तधावनमास्यं च तदा तस्योपरि क्षिपेत् ।।२९
मैत्रावारुणमीशानं वक्रं सौम्यसमाश्रितम् । प्रशस्तं दन्तकाष्ठस्य मुखमन्यत्र निन्दितम् ।।३०
यां दिशं दन्तकाष्ठस्य मुखं पश्यति तत्पतिम् । अर्चयेत्तेन शांतिः स्यादित्युक्तं भानुना स्वयम् ।।३१
पुनस्तद्वचनं श्रुत्वा अङ्गैरालभ्य न क्रमात् । सम्पूज्य लोचने तत्र सञ्चित्य परिजप्य च ।।३२
कामरहिता च सङ्कल्पं तथा चेन्द्रियसंयमम् । स्वापयेत स्वयं चापि वरं श्रुत्वा समाहितः ।।३३
आचम्य कृतरक्षस्तु कृतद्रव्याधिवासनः । हृदयेन नमेत्प्रातः स्नात्वा हुत्वा हुशानम् ।।३४
स्वप्नं पृच्छेद्यथा दृष्टं शुभं संभावयेच्च तम् । हृदयेनाशुभे दृष्टे शतहोमं समाचरेत् ।।३५
स्वप्ने पश्यति हर्म्याणि देवतानां हुताशनम् । नदीयानानि रम्याणि उद्यानोपवनानि च ।।३६
पत्रपुष्पफलाढ्यानि कमलानि च राजतम् । सम्पश्यति यदि स्वप्ने ब्राह्मणं वेदपारगम् ।।३७
राजानं शौर्यसम्पन्नं धनाढ्यं क्षत्रियोत्तमम् । शुश्रूषणपरं शूद्रं यदि तत्त्वार्थमादिशेत् ।।३८
प्रशस्तं भाषणं चैव यथासम्भवतो मतम् । एतैः स्पर्शनमेतेषां श्रेष्ठमारोहणं ततः ।।३९
वाहनानि प्रशस्तानि प्रासादं नावमेव च । पर्वतं च समारुह्य विपुलां भार्गवीं भजेत् ।।४०
पीत्वा सुरां समुद्रं च दध्याज्यं क्षीरमेव च । सोमं मांसं हविर्भुक्त्वा काश्यपीं लभते नरः ।।४१
लब्ध्वा वस्त्राणि रत्नानि विविधाभरणानि च । वाहनानि महीं गाश्च धान्योपकरणानि च ।।४२

उद्देश्य से तीन अंजलि पुनः अग्नि में डाले ।२५-२७। शिष्ट को इस विधान के उपरांत दंतधावन (दातून) करने के लिए मुक्त करे । उसे (दातून को) किसी क्षीर वाले वृक्ष की बारह अंगुल की होनी चाहिए । दाँतों को साफ कर उसे पूर्व की ओर त्याग दे दातून एवं सभी मुख से निकले अशुद्ध पदार्थों का उसी स्थान पर त्याग करना चाहिए ।२८-२९। मैत्रावरुण, ईशान-तथा सौम्य का चक्र (मुख) उत्तम बताया गया है, उसी दातून करने वाले का मुख प्रशस्त बताया गया है, उससे भिन्न वाले का मुख निंदित है ।३०। दंतधावन करने वाला जिस दिशा की ओर देखता है, तो उस दिशा के स्वामी पूजित होते हैं, उससे शांति प्राप्त होती है, इसे सूर्य ने स्वयं बताया है ।३१। पुनः गुरुवाणी सुनकर अंगों का आलम्भन करे, पश्चात् नेत्र की पूजा, एवं जप करके संकल्प पूर्वक इंद्रिय संयम के उपरांत स्वयं ध्यान मग्न हो शयन करे । प्रातः काल उठकर आचमन, एवं आत्मरक्षा पूर्वक सामग्री संचित करके स्नान-हवन करने के उपरांत हृदय से नमस्कार करे ।३२-३४। पूछने पर देखे हुए शुभ स्वप्न को बताये उसके संबंध में बात भी करे । यदि अशुभ स्वप्न देखे तो सौ आहुति हवन करे ।३५। स्वप्न में गृह, अग्नि, देव, नदी, नौका, सुन्दर वाटिका जिसमें पत्ते, पुष्प, एवं फूल भरे पड़े हों, सुशोभित कमल, स्वप्न में यदि वेद पारगामी विद्वान्, शूरता संपन्न राजा, जो धनी, एवं क्षत्रिय जाति का हो, सेवा करने वाले शूद्र को उपदेश करना, सुन्दर भाषण इनके स्पर्श, इनके ऊपर आरोहण करना, प्रशस्त यान (सवारी), प्रासाद, नौका, अथवा पर्वत पर चढ़ना, मद्यपान, समुद्र-पान, दही घी, क्षीर, सोम, मांस अथवा हवि के भक्षण, इन्हें स्वप्न में देखने से विपुल पृथिवी की प्राप्ति होती है ।३६-४१। तथा वस्त्रों, रत्नों भाँति-भाँति के आभूषणों अनेक वाहन, मही, गौ, अन्न, की प्राप्तिपूर्वक समृद्धिशाली होता है । ऐसे स्वप्नों को देखना शुभ होता है इस प्रकार शुभ

समृद्धिमाप्नुयात्किञ्चित्स्वप्नानां दर्शनं शुभम् । शुभकर्मानुगं यच्च तत्सर्वं शुभमुच्यते ।।४३
तस्मादन्यदनिष्टं स्यात्तस्माद्युक्ता प्रतिक्रिया । क्रमादालिख्य सप्तम्यां तत्र सम्पूज्य भास्करम् ।४४
तर्पयित्वा द्विजाञ्छिष्टान्प्रणम्य पूर्ववद्गुरुम् । सृष्टिक्रमेण भृत्यर्थं मुक्त्यर्थं नान्यथा भवेत् ।।४५
दिवाकरं समालभ्य पुरुषोऽथ यथाक्रमम् । सर्वग्रहेषु तत्त्वेषु यथावत्तन्नियोजयेत् ।।४६
विशुद्धेषु विशुद्धं तं ध्यात्वा [illegible] । [illegible] ततः प्रभृति सर्वशः ।।४७
आदित्यमण्डलं शुद्धं सर्वभुक्तं नियोजयेत् । एवं तु मनसा ध्यात्वा जुहुयाच्चैव तं शतम् ।।४८
सर्वैर्मन्त्रैः क्रमादेवं दीक्षा [illegible] । कृत्वैव पुष्पपातं तु तस्मिन्नादित्यमण्डले ।।४९
बद्धास्यमनञ्जलौ पुष्पं कृत्वा [illegible] । क्षिपेद्वै कुलशुद्ध्यर्थं नामार्थं च विशेषतः ।।५०
यत्र तत्पतितं पुष्पं तस्य तत्कुलमादिशेत् । नाम चादित्यसंयुक्तमित्युक्तं भानुना स्वयम् ।।५१
सम्पूज्य श्रावयेत्तत्र समयानर्कभाषितान् । प्रातः सायं च मध्याह्ने रवेरभिमुखः स्थितः ।।५२
उपस्थानं सदा कुर्यादर्चनं च [illegible] । [illegible] न भोक्तव्यं दिवा रात्रौ हुताशनम् ।।५३
दृष्ट्वा भोक्तव्यमर्काख्ये न भोक्तव्यं कदाचन । न च [illegible] स्पृशेत्तद्वन्नासनं परिवर्जयेत् ।।५४
न लङ्घ्या प्रतिमाच्छाया न लङ्घ्यास्तिथयः क्वचित् । नक्षत्राणि ग्रहा योगा मासा मासाधिपाश्च ये ।।५५
अयने ऋतवः पक्षास्तथैव दिवसादि च । कालः संवत्सरश्चापि यः कश्चित्काल उच्यते ।।५६

कर्म जिसमें हों वे सभी शुभ स्वप्न कहे जाते हैं ।४२-४३। उससे अन्य स्वप्न अनिष्ट फलदायक होते हैं, उसकी प्रतिक्रिया करनी आवश्यक होती है, इस प्रकार क्रमशः सप्तमी में लिखकर सूर्य की पूजा करके शिष्ट ब्राह्मणों की तृप्ति पूर्वक पहले की भाँति गुरु को प्रणाम करें : सृष्टि के क्रम से वह दूसरी भाँति भृत्य कार्य करने अथवा मुक्ति के योग्य नहीं हो सकता है ।४४-४५। पुरुष दिनाकर की प्राप्ति करके उन्हें क्रमशः ग्रहों एवं तत्त्वों में स्थापित करे ।४६। विशुद्धों में विशुद्ध सूर्य की भाँति ध्यान कर सभी को क्रमशः पृथिवी में नियुक्त करे, आदित्य मंडल शुद्ध स्वरूप है, उसमें सभी को नियुक्त करना चाहिए पश्चात् मानसिक ध्यान पूर्वक सौ, आहुति हवन करे । सभी मंत्रों द्वारा इस उत्तम दीक्षा को मैंने बता दिया, इस प्रकार (विधान पूर्वक) करके उस पुष्प को आदित्य मंडल में ऊपर डाल दे मुख बाँधकर अंजलि में पुष्प लेकर उसे अभिमंत्रित कर कुलशुद्धि के लिए विशेषकर नामोच्चारण पूर्वक छोड़ना चाहिए ।४७-५०। जहाँ वह पुष्प गिरे, उसे कुल वालों को आदेश दे कि आदित्य युक्त इसका नाम है । ऐसा स्वयं सूर्य ने कहा था ।५१। उसकी पूजा करके सूर्य के कथनानुसार सब लोगों को बताये कि प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायंकाल में सूर्य के सम्मुख स्थित होकर मनुष्य को सदैव अर्चन एवं उपस्थापन करने चाहिएं दिन में बिना सूर्य के दर्शन किये भोजन न करे, रात में अग्नि का दर्शन करके भोजन करना चाहिए । पर, रविवार में किसी भी दशा में भोजन न करे । उसी प्रकार शय्या का भी परित्याग करना चाहिए यहाँ तक कि पैर से भी उसका स्पर्श न होने पाये ।५२-५४। प्रतिमा (मूर्ति) की छाया का उल्लंघन न करना चाहिए और उसी भाँति तिथियों का भी उल्लंघन निषिद्ध है, नक्षत्र, ग्रह, योग, मास, मासाधिप, (दोनों) अयन, ऋतुएँ, पक्ष, दिन काल (वर्तमान आदि), वर्ष, एवं यहाँ तक कि काल शब्द से जिसका बोध (ज्ञान) कराया जाय, ये सभी वंदनीय, नमस्कार करने योग्य, तथा पूजनीय हैं । इसीलिए कालाधिप सूर्य स्वयं

अभिवन्द्यः स सर्वोऽपि नमस्यः पूज्य एव च । तस्मात्कालाधिपः सूर्यः स्वयं कालश्च पठ्यते ।।५७
ज्योतिर्गणस्य सर्वस्य स्थावरस्यापरस्य च । चेतनाचेतनस्यापि सर्वात्मा यः प्रकीर्तितः ।।५८
स्तुत्यो वन्द्यः सदा पूज्यस्त्वयायं सर्वथा नृप । मनसा कर्मणा वाचा देवनिन्दां परित्यजेत् ।।५९
अर्पयित्वा[1] च निर्माल्यं तदश्वेभ्यो निवेदयेत् । प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ।।६०
इत्येषा परमा दीक्षा तव संक्षेपतो मया । भुक्तिमुक्तिकरी चापि कथिता प्रविभागतः ।।६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने सूर्यदीक्षावर्णनं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४९।

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यपूजाविधिवर्णनम्

वासुदेव उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि यथा पूज्यो दिवाकरः । स्थण्डिले यदुशार्दूल निबोधैकाग्रमानसः ।।१
मण्डलैरष्टभिःकार्यं चक्रं कालात्मकं शुभम् । मध्ये पद्माकृतं चक्रमरैर्द्वादशभिर्युतम् ।।२
तन्मध्ये कमलं प्रोक्तं पत्राष्टकसमन्वितम् । सर्वात्मा सकलो देवः खषोल्कः किरणोज्ज्वलः ।।३

काल (समय) रूप कहे जाते हैं ।५५-५७। ज्योतिर्गण, सभी स्थावर तथा उससे भिन्न सृष्टि वाले, चेतन, एवं अचेतन सभी के आत्मा सूर्य बताये गये हैं ।५८। सूर्य तुम्हारे लिए सर्वथा स्तुति, वंदन, एवं पूजा, करने के योग्य हैं । मन, वाणी, एवं कर्म द्वारा दूसरे की निन्दा करना छोड़ देना चाहिए ? उनके निर्माल्य को उनके अश्वों के लिए निवेदित करे ; पश्चात् हाथ, पैर का प्रक्षालन पूर्वक सूर्य को नमस्कार करे । मैंने संक्षेप में तुम्हारे लिए इस उत्तम दीक्षा की व्याख्या की है, जो विभाग द्वारा (सभी भाँति के) उपभोगों एवं मुक्ति को प्रदान करती है ।५९-६१

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में सूर्य दीक्षा वर्णन नामक एक सौ अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त ।१४८।

अध्याय १५०

आदित्यपूजा विधि का वर्णन

वासुदेव ने कहा—यदुशार्दूल ! इसके उपरात स्थंडिल (भूमि) में सूर्य की पूजा किस भाँति करनी चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! ।१। एक कलात्मक, शुभ, चक्र का निर्माण करना चाहिए जिसमें आठ मण्डल मध्य में कमल की आकृति, और बारह अर पहिये की धुरी और व्यास को मिलाने वाली तीली के समान लकड़िया (आरगज) हों।२। उसके मध्य भाग में बताये गये कमल में आठ पत्ते की रचना होनी चाहिए। महाबाहो ! उसके मध्यभाग में सर्वात्मा, समस्त देवमय, खषोल्क, उज्ज्वल किरण वाले, एवं

---

१. लंघयित्वा च निर्माल्यं तदात्मानं निवेदयेत् ।

पूजनीयः सदा मध्ये सहस्रकिरणायुधः । प्रणवेन महाबाहो चतुर्बाहुसमन्वितः ॥४
अरुणं[1] पूजयेत्प्राज्ञः सदा देवाग्रजं[2] शुभम् । दक्षिणे पूजयेद्देवीं निक्षुभां भास्करस्य तु ॥५
रेवतं दक्षिणे पार्श्वे उत्तरे पिङ्गलं सदा । संज्ञां च यदुशार्दूल श्रेयसे सततं बुधः ॥६
आग्नेय्यां लेखकं वीर नैर्ऋत्यामश्विनौ तथा । वायव्यां पूजयेद्देवं मनुं वैवस्वतं विभुम् ॥७
ऐशान्यां पूजयेद्देवीं यमुनां लोकपावनीम् । द्वितीयावरणे वीर पूर्वतः पूजयेद्वियत् ॥८
दक्षिणे च ततो देवीं पश्चिमे गरुडं तथा । उत्तरे नागराजानं पुत्रमैरावतं शुभम् ॥९
आग्नेय्यां पूजयेद्धेलिं प्रहेलिं नैर्ऋते तथा । वायव्यामुर्वशीं देवीमीशाने विनतां तथा ॥१०
तृतीयावरणे पूर्वे पूजयेद्गुरुमादरात् । पश्चिमे त्वर्कपुत्रं तु उत्तरे धिषणं तथा ॥११
ऐशाने शशिपुत्रं तु सोममाग्नेयमण्डले । पूजयेद्दक्षिणे कोणे नैर्ऋते राहुमादरात् ॥१२
वायव्ये विकचं वीर पूजयेत्सततं बुधः । चतुर्थावरणे देवं पूजयेल्लेखमादरात् ॥१३
आग्नेये शाण्डिलीपुत्रं दक्षिणे दक्षिणाधिपम् । विरूपाक्षं नैर्ऋते देवं जलेशं पश्चिमे तथा ॥१४
वायुपुत्रं च वायव्यां सततं पूजयेन्नरः । ईशाने देवमीशानं पूजयेत्सततं बुधः ॥१५
उत्तरे यक्षराजानां कुबेरं पूजयेद्बुधः । पञ्चमे पूजयेद्वीर सदा स्वावरणे द्विजाः ॥१६
पूर्वतः परमां देवीं महाश्वेतां महामतिः । श्रियमृद्धिं विभूतिं च धृतिं चैवोन्नतिं तथा ॥१७

सहस्र किरण रूपी अस्त्र वाले उस सूर्य की, जिसके चार हाथ हों, प्रणव (ओंकार) पूर्वक पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए। विद्वानों को चाहिए कि जो शुभ मूर्ति एवं सदा देवों के अग्रज हैं, उस अरुण (वरुण) की भी पूजा सुसम्पन्न करें सूर्य के दक्षिण की ओर स्थित निक्षुभा देवी की पूजा करनी चाहिए।३-५। यदुशार्दूल! दक्षिण पार्श्व भाग में स्थित श्वेत, उत्तर पार्श्व में स्थित पिंगल की तथा बुद्धिमानो को चाहिए कि कल्याणार्थ संज्ञा देवी की भी निरंतर पूजा करते रहें।६। वीर! अग्नि कोण में स्थित लेखक, नैऋत्य में स्थित अश्विनी कुमार, वायव्य में विभु एवं वैवस्वत मनु देव और ऐशान्य में लोक को पावन करने वाली यमुना देवी की पूजा बताई गई है। वीर! द्वितीय आवरण (कक्ष) में पूरब की ओर से, पूजन पूर्वक आरम्भ करना बताया गया है।७-८। दक्षिण में देवी, पश्चिम में गरुड़, उत्तर में शुभ नागराज के पुत्र, ऐरावत, आग्नेय कोण में हेलि (सूर्य) नैऋत्य में प्रहेलि, वायव्य में उर्वशी और ईशान में विनता की पूजा होनी चाहिए।९-१०। तीसरे कक्ष में पूरब में सादर गुरु की पूजा पश्चिम में सूर्य पुत्र, उत्तर में धिषण (बृहस्पति), ईशान में चन्द्र पुत्र (बुध), आग्नेय में चन्द्र, नैऋत्य में सादर राहु, और वायव्य में वकच (केतु) की पूजा विद्वानों को करनी चाहिए।११-१२। चौथे कक्ष में सादर लेख देव (विश्वकर्मा) आग्नेय में शाण्डिली पुत्र (अग्नि), दक्षिण में दक्षिणाधिप (यम) नैऋत्य में विरूपाक्षदेव, पश्चिम में वरुण, वायव्य में वायुपुत्र तथा ईशान में ईशान (शिव) और उत्तर में यक्षराज कुबेर की पूजा पण्डितों को करनी चाहिए। वीर! पाँचवें कक्ष में ब्राह्मणों को चाहिए कि अपने आवरण रूप देवों की पूजा करें। बुद्धिमानों को पूरब की ओर से उत्तम महाश्वेता देवी, श्री, ऋद्धि, विभूति, धृति, उन्नति, पृथिवी, एवं यदुशार्दूल!

---

१. वरुणम्। २. सदा वेदानुगं शुभम्। ३. वासुदेवम्।

पृथिवीं यदुशार्दूल महाकीर्तिं तथैव च । इन्द्रं विष्णुं चार्यमणं भगं पर्जन्यमेव च ॥१८
दिवस्वन्तं तथार्कं च त्वष्टारं किरणोज्ज्वलम् । पूजयेद्वरुणं षष्ठे चैवमेतान्दिवाकरान् ॥१९
शिरो नेत्रे तथा वर्म अस्त्रं च यदुसत्तम । अरुणं सरथं वीर सप्तमे पूजयेद्बुधः ॥२०
तथाश्वान्यदुशार्दूल सदा चावरणे बुधः । यक्षरक्षांसि गन्धर्वान्मासान्पक्षानहानि तु ॥२१
संवत्सरं तथा पूर्वं ह्येतान्संपूजयेन्नृप । य एवं पूजयेद्देवं भास्करं सततं नरः ॥
स गच्छेत्परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥२२

(ॐ खषोल्काय नमः)

मूलमन्त्रेणेह चाङ्गानि परिचक्षते । अनेन विधिना यस्तु पूजयेत्सततं रविम् ॥२३
नित्यमुभयसप्तम्यां स गच्छेत्परमं पदम् । इत्युक्त्वा भगवान्देवो जगामाशु गृहं रविः ॥२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने आदित्यपूजाविधिवर्णनं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५०।

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सूत उवाच

अथ राजा महातेजाः शतानीको द्विजोत्तमम् । प्रणम्य शिरसा भक्त्या सुमन्तुं वाक्यमब्रवीत् ॥१

महाकीर्ति, इन्द्र, विष्णु अर्यमा, भग, पर्जन्य, विवस्वान्, उज्ज्वल किरण वाले सूर्य, और वरुण की पूजा करनी चाहिए। छठें कक्ष में भी इन्हीं दिवाकर रूप देवों की पूजा करके यदुसत्तम ! शिर, नेत्र, वर्म (कवच), अस्त्र, और रथ समेत अरुण की पूजा वीर ! सातवें कक्ष में विद्वानों को करनी चाहिए ।१३-२०। यदुशार्दूल ! पंडित को चाहिए कि कक्ष स्थित अश्वों की पूजा करें : पुनः यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, मास, पक्ष, दिन, संवत्सर (वर्ष) इन सबकी सर्वप्रथम पूजा होनी चाहिए। इस भाँति जो मनुष्य निरन्तर सूर्य की पूजा करता है, उसे उस स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ पहुँचने पर किसी प्रकार का शोक उत्पन्न नहीं होता है 'ओं खषोल्काय नमः' यही मूल मन्त्र है। इन्हीं द्वारा अंगन्यास आदि करना चाहिए इस विधान द्वारा जो मास की दोनों सप्तमी तिथि में सूर्य की अनवरत पूजा करता है, उसे परम पद की प्राप्ति होती है, ऐसा कह कर भगवान् सूर्य देव अपने घर के लिए शीघ्र प्रस्थित हुए ।२१-२४

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में आदित्य पूजा विधि वर्णन नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ।१५०।

अध्याय १५१

सौरधर्म का वर्णन

सूत बोले—इसके उपरान्त महातेजस्वी राजा शतानीक ने भक्ति पूर्वक ब्राह्मण श्रेष्ठ सुमन्तु को

अहो देवस्य माहात्म्यं भास्करस्यामितौजसः । कीर्तितं भवता मह्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२
तस्मान्नार्कसमं देवं लोके पश्यामि सुव्रत । न चाप्यस्य स्थिता विप्र गतिर्लोकेषु विद्यते ॥३
प्रवर्तते जगद्विप्र सर्गकाले दिवाकरात् । स्थितौ पाल्यते चापि कल्पान्ते संहरेत्पुनः ॥४
श्रुत्वैवं देवमाहात्म्यं भास्करस्यामितौजसः । कीर्तितं भवता मह्यमश्वमेधशताद्वरम् ॥५
किं तु मे संशयो ब्रह्मन्सुमहान्हृदि वर्तते । केनोपायेन विप्रेन्द्र मुच्यते सम्भवार्णवात् ॥६
दिवाकरप्रसादाद्वै सुप्रसादाद्वृषध्वजात् । कथं तुष्येत्सदा देवो धर्मेण कतरेण तु ॥७
श्रुता मे बहवो धर्माः श्रुतिस्मृत्युदितास्तथा । वैष्णवाः शैवधर्माश्च तथा पौराणिकाः श्रुताः ॥८
श्रोतुकामो ह्यहं विप्र सौरं धर्ममनौपमम् । भगवन्सर्वधन्यास्ते सौरधर्मपरायणाः ॥९
ब्रूहि मे देवदेवस्य भानोर्धर्ममनौपमम् । शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिरमृतस्यैवमेव च ॥१०
अश्वमेधादयो यज्ञा बहुसम्भारविस्तराः । न शक्यास्ते यतः कर्तुमल्पवित्तैर्द्विजातिभिः ॥११
सुखोपायमतो ब्रूहि धर्मकामार्थसाधकम् । हिताय सर्वमर्त्यानां सर्वपापभयापहम् ॥१२
सौरधर्मपरं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् । श्रुत्वा तु वचनं राज्ञो व्यासशिष्यो महामुनिः ॥
प्रणम्य शिरसा व्यासमिदं वचनमब्रवीत् ॥१३

शिर से नमस्कार करके उनसे कहा—अमित तेज वाले महात्मा सूर्य देव का माहात्म्य जो समस्त पापों का नाशक है, आपने मुझे बता दिया यह अत्यन्त हर्ष की बात है ।१-२। हे सुव्रत ! इसलिए सूर्य के समान कोई देव मुझे दिखाई नहीं दे रहा है, और विप्र ! लोकों में इनकी गति कहीं स्थित दिखायी नहीं दे रही है ।३। हे विप्र ! सृष्टि काल में यह जगत् सूर्य से उत्पन्न होता है, तथा इसे अपने में स्थित करके इसका पालन तथा कल्पान्त में संहरण (नाश) भी करते रहते हैं ।४। इस प्रकार अमित तेज वाले महात्मा सूर्य देव का माहात्म्य आपने मुझे बताया और मैंने भलीभाँति सुना भी, जो सौ अश्वमेध यज्ञों से भी उत्तम फलदायक है । परंतु हे ब्रह्मन्! इसे सुनकर भी मेरे हृदय में महान् संशय उत्पन्न हो गया है कि विप्रेन्द्र ! इस जन्म-मरण रूप समुद्र से किस प्रकार बचाव किया जाय ? यदि दिवाकर की प्रसन्नता से ही (बचाव करना) निश्चित है जिसे प्रसन्नता पूर्ण करते हुए वृष (धर्म) ध्वज प्रदान किया गया हो तो (सूर्य) देव किस धर्म के अनुष्ठान से प्रसन्न होते हैं ।५-७। मैंने अनेकों—श्रुति, स्मृति में बताये गये, वैष्णव, शैव एवं पौराणिक धर्मों को सुना है । विप्र ! अब मुझे अनुपम सौर (सूर्य के) धर्म सुनने की इच्छा हो रही है । भगवन् ! सौर धर्म के पारायण करने वाले वे सभी धन्य हैं । अतः देवाधिदेव (सूर्य) के अनुपम धर्म मुझे बताने की कृपा कीजिए ! उसे सुनते हुए मुझे अमृत की भाँति तृप्ति नहीं होती है । अश्वमेध आदि यज्ञ का बहुत बड़ा विस्तृत संभार करना पड़ता है, अतः उसे अल्प धन वाले द्विजाति लोग नहीं कर सकते हैं, अतः धर्म, अर्थ, एवं काम की सफलता के उद्देश्य से किसी सुख साध्य उपाय को बताने की कृपा कीजिए । जो सभी मनुष्यों के लिए हितकर तथा समस्त पाप एवं भय का अपहरण करने वाले हों ।८-१२। (मेरे मत में) सौर धर्म ही उत्तम, पुण्य, पवित्र, एवं पापनाशक है । इस प्रकार राजा की बात सुनकर व्यास के शिष्य महामुनि (सुमन्तु) ने व्यास को शिर से प्रणाम कर यह कहा— ।१३

सुमन्तुरुवाच

श्रूयतामभिधास्यामि सुखोपायं महाफलम् । परमं सर्वधर्माणां सर्वधर्ममनौपमम् ॥१४
रविणा कथितं पूर्वमरुणस्य विशांपते । कृष्णस्य ब्रह्मणो वीर शङ्करस्य न विद्यते ॥१५
संसारार्णवमग्नानां सर्वेषां प्राणिनामयम् । सौरधर्मस्ततः श्रीमान्हिताय जगतोदितः ॥१६
यैरयं शान्तहृदयैः सूर्यभक्तैर्भगार्थिभिः । संसेव्यते परो धर्मस्ते सौरा नात्र संशयः ॥१७
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव च । ये स्मरन्ति रविं भक्त्या सकृदेवापि भारत ॥
सर्वपापैर्विमुच्यन्ते सप्तजन्मकृतैरपि ॥१८
स्तुवन्ति ये सदा भानुं न ते प्रकृतिमानुषाः । स्वर्गलोकात्परिभ्रष्टास्ते ज्ञेया भास्करा भुवि ॥१९
नानर्कः स्मरतेऽर्कं वै नानर्कोऽर्कं समर्चयेत् । नानर्कः कीर्तयेदर्कं नानर्कोऽर्कमवाप्नुयात् ॥२०
सौरधर्मस्य सारोऽयं सूर्यभक्तिः सुनिश्चला । षोडशाङ्गा च सा प्रोक्ता रविणेह दिवौकसाम् ॥२१
प्रातः स्नानं जपो होमस्तथा देवार्चनं नृप । द्विजानां पूजनं भक्त्या पूजा गोऽश्वत्थयोस्तथा ॥२२
इतिहासपुराणेभ्यो भक्तिश्रद्धापुरस्कृतम् । श्रवणं राजशार्दूल वेदाभ्यासस्तथैव च ॥२३
मद्भक्त्या जनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम् । स्वयमभ्यर्चयेद्भक्त्या ममाग्रे वाचकं परम् ॥२४
पुस्तकस्य सदा श्रेष्ठ ममातीव प्रियं सुराः । मत्कथाश्रवणं नित्यं स्वरनेत्राङ्गविक्रिया ॥२५

सुमन्तु बोले—आप सुनें ! मैं सुखसाध्य, महाफलदायक, समस्त धर्मों में उत्तम, तथा सब से अनुपम, एवं विशांपते ! सूर्य ने अरुण के लिए जिसे पहले (समय में) कहा था, बता रहा हूँ । वीर ! जिस कर्म के समान कृष्ण, ब्रह्मा, एवं शिव का धर्म नहीं हैं । क्योंकि इस संसार सागर में निमग्न सभी प्राणियों के हित के लिए श्रीमान् इस सौर धर्म का जगत् में उदय हुआ ।१४-१६। जो शांत चित्त होकर सूर्य भक्त एक मात्र भग (सूर्य) के प्रसन्नार्थ इस उत्तम धर्म की सेवा करते है, वे ही सौर हैं, इसमें संदेह नहीं है ।१७। भारत ! एक दो या तीनों काल और प्रतिदिन जो भक्ति पूर्वक एकबार भी सूर्य का स्मरण करता है, वह सात जन्म के पापों से भी मुक्त हो जाता है ।१८। जो मनुष्य सदैव सूर्य की उपासना करता है, उसे प्रकृति से उत्पन्न मनुष्य न जानना चाहिए, प्रत्युत उसे स्वर्ग से भ्रष्ट होकर इस भूतल में आया हुआ भास्कर ही जानना चाहिए ।१९। सूर्य के आत्मीय हुए बिना उनका स्मरण, पूजन, तथा कीर्तन न करना चाहिए । क्योंकि उसे वैसे दशा में सूर्य की प्राप्ति न हो सकेगी ।२०। यह सौर धर्म का निष्कर्ष है कि 'सूर्य की भक्ति भली भाँति निश्चल होनी चाहिए' जिसके सोलह अंग हैं । इसे स्वयं सूर्य ने देवताओं को बताया है ।२१। प्रातः काल स्नान करके जप, हवन, तथा नृप ! देव की पूजा भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों की पूजा और आम एवं पीपल वृक्ष की पूजा करके इतिहास पुराणों की कथा भक्त एवं श्रद्धालु होकर सुनना चाहिए । राज शार्दूल ! उसी प्रकार वेदपाठ भी करना बताया गया है ।२२-२३। मेरी भक्ति करते हुए मनुष्यों में प्रेम, पूजा का अनुमोदन, एवं स्वयं मेरे सामने भक्ति पूर्वक उत्तम वाचक की पूजा करनी चाहिए ।२४। उस उत्तम पुस्तक की पूजा करते हुए देवों की भी पूजा करना बताया गया है क्योंकि देवगण भी मुझे अत्यन्त प्रिय हैं । मेरी कथाओं को नित्य श्रवण करते हुए उसमें यथावसर स्वर, नेत्र तथा अंगों के विकार भी होने चाहिए । कहीं करुणा आने पर कारुणिक स्वर, आँखों में आँसू आदि आने

ममानुस्मरणं नित्यं भक्त्या श्रद्धापुरस्कृतम् । षोडशाङ्गा भक्तिरियं यस्मिन्म्लेच्छेऽपि वर्तते ।।
विप्रेन्द्रः स मुनिः श्रीमान्सजात्यः स च पण्डितः ।।२६
न मे पृथक्चतुर्वेदा मद्भक्तः श्वपचोऽपि यः । तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ।।२७
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।२८
यो मां सर्वगतं पश्येत्सर्वं च मयि संस्थितम् । तस्याहमास्थितो नित्यं स च नित्यं मयि स्थितः ।।२९
अष्टादशार्गकक्षायाः परं चाष्टभिरुद्भवैः । रोधयित्वा महाबाहो तथा ज्ञानतरेण तु ।।३०
दुर्गपालं विजित्याशु भास्करार्थं तु दुर्जयम् । जित्वा च पुरराजानं महातेजमनौपमम् ।।३१
मनसाचलया भक्त्या यो मां ध्यायति मानवः । अहं तस्यैव चिंतामि आत्मवत्सततं नरम् ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मवर्णनं
नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५१।

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सूरधर्मेषु प्रश्नवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

सूरे च दुर्लभा भक्तिर्दुर्लभं सूरपूजनम् । सूराय दुर्लभं दानं सूरहोमश्च दुर्लभः ।।१

चाहिए ।२५। इस प्रकार भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक मेरा स्मरण प्रतिदिन करना बताया गया है । यही सोलह अंगों वाली भक्ति है । यदि किसी म्लेच्छ जाति का प्राणी इसे अपनाये तो विप्रेन्द्र मुनि, श्रीमान्, जातिश्रेष्ठ, एवं पंडित भी वह हो सकता है । मुझसे पृथक् चारों वेद नहीं है, अतः मेरा भक्त कोई श्वपच (चांडाल) भी हो जाये, तो उसे भी वेद प्रदान करना चाहिए क्योंकि वह मेरे समान ही ग्राह्य एवं पूज्य है ।२६-२७। जो भक्तिपूर्वक मुझे पत्र, पुष्प, फल अथवा जल प्रदान करते हैं, उनके लिए मैं कभी नष्ट नहीं होता तथा वे भी मुझे प्राप्त कर कभी नष्ट नहीं होते हैं ।२८। जो मुझे सर्वगत (सभी स्थानों में व्याप्त), और समस्त जगत् को मुझमें स्थित देखता है, उसके लिए मेरी नित्य आस्था बनी रहती है, और वह मुझमें नित्य स्थित होता है ।२९। नव कक्षा के महत्ता वाले दुर्ग को उत्पन्न आठों द्वारा रोक कर दुर्ग पाल को शीघ्र जीतकर नगराधिपति राजा को जिस प्रकार जीत लिया जाता है। उसी भाँति महाबाहो ! अपने उत्तम ज्ञान द्वारा दुर्जेय भास्कर पर अपना आधिपत्य स्थापित कर भक्ति पूर्वक जो मनुष्य अचल मन द्वारा मेरा ध्यान करता है, अपनी संतानों की भाँति मैं उसकी सदैव चिन्ता किया करता हूँ ।३०-३२

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन नामक
एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।१५१।

अध्याय १५२

सूरधर्म में प्रश्न का वर्णन

सुमन्तु बोले—सूर्य की भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है, उनका पूजन भी दुर्लभ है तथा उनके लिए दान, एवं

सुदुर्लभं रवेर्ज्ञानं तदभ्यासोऽपि दुर्लभः । सुदुर्लभतरं ज्ञेयं खषोल्कज्ञानमुत्तमम् ॥२
सुदुर्लभतरं ज्ञानं सदा वै भास्करस्य तु । प्रदक्षिणां चक्रतुर्वै पादौ भक्त्यार्कमन्दिरे ॥३
तौ करौ श्लाघ्यतां प्राप्तौ यौ पूजां चक्रतू रवेः । सैवैका रसना धन्या स्तोत्रं या कुरुते रवेः ॥४
तन्मनः पुण्यतां प्राप्तं यद्धित्वा विषयं नृप । निश्चला च रवेर्लीला निर्भीका क्रोधवर्जिता ॥५

शतानीक उवाच

सूर्यार्चनविधिं कुर्वञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ कौतूहलमतीव मे ॥६
यत्पुण्यं स्थापिते सूर्ये कृते सूर्यालये च यत् । सम्मार्जने च यत्पुण्यं यत्पुण्यमुपलेपने ॥७
स्थाने कृते च यत्पुण्यं तथा नीराजने कृते । नीलौषधिप्रदापेन नृत्यमङ्गलवादितैः ॥८
अर्घ्यदानेन यत्पुण्यं तोयस्नानेन यद्भवेत् । पञ्चामृतमयस्नाने दधिस्नाने च यत्फलम् ॥९
चक्राभ्यङ्गे च यत्प्रोक्तं वज्रस्नाने च यत्फलम् । मधुस्नाने पयःस्नाने स्नान इक्षुरसस्य तु ॥१०
उद्वर्तनं शुचिस्थाने कुशपुष्पोदकेन तु । सुवर्णरत्नतोयैश्च गन्धचन्दनवारिभिः ॥११
कर्पूरागुरुतोयेन स्वच्छतोयेन यत्फलम् । विलेपनैश्च गन्धाढ्यैर्विलेपनफलं लभेत् ॥१२
तालपत्रप्रदाने तु प्रदाने चामरस्य तु । रक्तपुष्पार्चने यच्च दामभिः पूजनेन च ॥१३
सुभगां मण्डपे यच्च पुष्पमालावलम्बनात् । पूजाभक्तिविशेषैश्च गृहमालावलम्बने ॥१४

हवन करना भी दुर्लभ है।१। सूर्य का ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है और उसका अभ्यास करना भी। जिस प्रकार खषोल्क ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है, उसी भाँति सदैव सूर्य का भी ज्ञान। भक्तिपूर्वक सूर्य के मंदिर में प्रदक्षिणा करने वाले वे चरण, तथा सूर्य की पूजा करने वाले वे हाथ, ये दोनों प्रशस्त बताये गये हैं, वही एक रसना (जिह्वा) धन्य है, जिसके द्वारा सदैव सूर्य के स्तोत्र पाठ होते रहते हैं। नृप ! वही मन पुण्यात्मक है, जिसने विषय वासना का त्याग कर निर्भीक एवं क्रोध के परित्याग पूर्वक सूर्य की निश्चल भक्ति अपना लिया है।२-५

शतानीक ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मैं रहस्य पूर्वक सूर्य की पूजा का विधान सुनना चाहता हूँ, क्योंकि इसके लिए मुझे अत्यन्त कौतूहल है। सूर्य के स्थापित करने, उनके लिए मंदिर का निर्माण कराने, मंदिर की (सफाई) तथा गोबर से लीपने, सूर्य के स्थापन का स्थान करने, नीराजन करने मंदिर में नील औषधियों के लगाने, सूर्य के सम्मुख नृत्य करने मंगलवाद्यों के बजाने, अर्घ्यदान तथा जल द्वारा स्नान कराने से जितने पुण्य की प्राप्ति होती हो उन्हें और पंचामृतस्नान, दधिस्नान, चक्र के अभ्यंग करने वज्रस्नान, मधुस्नान, दूध स्नान, ईख के रस द्वारा स्नान कराने से, और पवित्र स्थान में कुश के जल से उद्वर्तन (मूर्ति के लेपन) करने, जिसमें सुवर्ण तथा रत्न के जल और गन्ध चन्दन के जल मिश्रित हो कपूर, अगुर-तोय एवं स्वच्छ जल मिश्रित सुगन्धित लेपन करने तालपत्र (व्यजन), चामर के प्रदान करने से जो पुण्य एवं फल प्राप्त होते हैं उसकी व्याख्या समेत रक्त पुष्पों एवं दामों द्वारा पूजन करने, मंडप में सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला लटकाने, पूजा भक्ति की विशेषता वश उस गृह में मालाएँ लटकाने,

पुष्पदानविशेषेण धूपदीपैश्च यत्फलम् । वस्त्रालङ्कारदाने तु पुण्यश्रवणकीर्तने ॥१५
ब्रह्मश्रवस्य दाने तु अव्यङ्गस्य च गोपते । मगानां मत्प्रसादेन अभिवादनपूजने ॥१६
व्योमपूजाफलं यच्च वरुणस्य च पूजनम् । तथान्यदपि यत्प्रोक्तमज्ञानाद्ब्राह्मणोत्तम ॥१७
तत्सर्वं ब्रूहि मे ब्रह्मन्भक्तानामनुकम्पया ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सूरधर्मेषु प्रश्नवर्णनं नाम
द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५२।

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यतेजोवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

सुमतिश्च रवेर्भक्तः पाण्डवेय महामते । अतस्ते निखिलं वच्मि शृणुष्वैकमना नृप ॥१
कल्पादौ सृजतो वीर ब्रह्मणो विविधाः प्रजाः । अहंकारो महानासीन्नास्ति लोके मत्समः ॥२
तथा पालयतो वीर केशवस्य धरापते । तथा संहरतो जज्ञेऽहङ्कारस्त्र्यम्बकस्य च ॥३
चिंतयन्तोथ ते देवाः केशवश्च नराधिप । मिथस्ते स्पर्धया युक्ताः परस्परविरोधिनः ॥४
विवादस्तु महानासीत्कञ्जाच्युतगौकसाम् । परस्परं महाबाहो मनसाभिल्प्य केवलम् ॥५

पुष्प दान की विशेषता करने, धूप-दीप करने, वस्त्र एवं अलंकार प्रदान करने, पुण्य ब्रह्म घोष के सुनने, कीर्तन करने ; सूर्य के लिए अव्यंग प्रदान करने, मेरी प्रसन्नता के लिए मगों का अभिवादन एवं पूजा करने व्योम तथा वरुण की पूजा करने, और ब्राह्मणोत्तम ! अज्ञानवश मैं जिसे नहीं कह पाया उसके समेत इन सब के सुसम्पन्न करने से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, हे ब्रह्मन् ! आप मुझे बताने की कृपा करें ।६-१८

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सूरधर्म में प्रश्न वर्णन नामक
एक सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ।१५२।

अध्याय १५३

सूर्यतेज का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे महामते, पाण्डवेय ! तुम्हारी बुद्धि बहुत उत्तम है, तुम सूर्य के भक्त हो अतः नृप ! मैं तुम्हें इन सभी कुछ की व्याख्या समेत बताऊँगा, सावधान होकर सुनो ! ।१। वीर ! कल्प के आदि में भाँति-भाँति की प्रजाओं की सृष्टि करते हुए ब्रह्मा को अभिमान हुआ कि मेरे समान लोक में कोई नहीं है ।२। धरापते ! उसी प्रकार पूजा पालन करते हुए विष्णु, तथा उसका संहार करते हुए शिव को महान अभिमान उत्पन्न हुआ ।३। नराधिप ! उस गर्व से मतवाले होकर तीनों देवों में आपस में ईर्ष्या वश महान विरोध उत्पन्न किया ।४। महाबाहो ! केवल अपने मन से ही गर्वोक्ति की कल्पना करते हुए उन ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश्वर का अपने आप में महान विवाद (झगड़ा) उत्पन्न हुआ ।५। उस कलह के समय

अहं कर्ता विकर्ताऽहं पालकोऽहं जगत्प्रभुः । इत्याह भगवान्ब्रह्मा कृष्णभीमौ समर्चितौ ॥६
तथैत्य शंकरः क्रुद्धः कः शक्तो मदृते भुवि । संहर्तुं जगदेतद्धि स्रष्टुं पालयितुं तथा ॥७
नारायणोऽप्येवमेव मनाक् क्रोधसमन्वितः । न वा शक्तो जगत्स्रष्टुं संहर्तुं रक्षितुं तथा ॥८
एवं तेषां प्रवदतां क्रुद्धानां च परस्परम् । समाविशत्तदाऽज्ञानं तमो मोहात्मकं विभो ॥९
तेन भ्रान्तधियः सर्वे न पश्यन्ति परस्परम् । अत्यर्थं मोहमापन्ना न जानन्तीह किञ्चन ॥१०
अपश्यन्तो मिथस्ते तु निषण्णाः क्ष्मातले विभो । आरमन्ति हि ये चान्ये ते दिवाकरमास्थिताः ॥११
तमसा मोहिताः सर्वे निद्रावत्क्रान्तचेतसः । मनाग्ज्ञानेन चाक्रान्ताः किं कुर्यामेति मोहिताः ॥१२
अथ भूताधिपो देवो गोश्रुताभरणोज्ज्वलः । चन्द्रार्धकृतशोभस्तु शीतलांशुविशोधितः ॥१३
आर्तिमेत्य परां वीर मोहितस्तमसा विभो । अपश्यन्नब्रवीद्देवं माधवं भूधरं हरिम् ॥१४

महादेव उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो क्व गतस्त्वं महामते । ब्रह्मा च क्व गतो वीर नाहं पश्यामि वां क्वचित् ॥१५
मोहेन महताहं वै तमसा च विमोहितः । किं करोमि क्व गच्छामि क्वचाहमधुना स्थितः ॥१६
क्ष्माधरं पृथिवीं वृक्षान्देवगन्धर्वदानवान् । विपुलं सागरं सिन्धून्नाहं पश्यामि किञ्चन ॥१७

उस कलह के समय में ही इस जगत् का कर्ता, विकर्ता, (नाशक), एवं पालक हूँ, भगवान् ब्रह्मा कहने लगे। वहाँ पहुँच कर शंकर भी क्रुद्ध होकर कहने लगे कि इस भूतल में जगत् के सर्जन, पालन एवं नाश करने के लिए मेरे अतिरिक्त कौन समर्थ हो सकता है, इसी प्रकार नारायण भी क्रोध कर कहने लगे कि जगत् की सृष्टि, पालन एवं नाश करने के लिए मेरे अतिरिक्त कोई अन्य समर्थ नहीं है विभो ! इस प्रकार क्रुद्ध होकर उन लोगों के इस आपस के विवाद करते समय मोहात्मक अज्ञान रूपी अंधकार उनमें प्रविष्ट हो गया उससे उनकी बुद्धि नष्ट हो गई। अभिव्यक्ति मोह में आसक्त होने के कारण वे लोग आपस में किसी को देख नहीं सकते थे और न कुछ जानते ही थे।६-९। विभो ! उस महान्धकार में वे लोग एक दूसरे को न देख सकने के कारण पृथिवी तल में बैठ गये और सोचने लगे कि देखो ! ये अन्य लोग सूर्य के आश्रित होकर किस प्रकार का प्रसन्न जीवन व्यतीत कर रहे हैं एक हम सब हैं जो निद्रा की भाँति मोह से लिप्त हो कर सोये पड़े हैं। केवल थोड़ा सा ज्ञान शेष रह गया है, इससे अब क्या करूँ क्या न करूँ।१०-१२। इस प्रवाह में बहते हुए भूतों के नायक, कानों में उज्ज्वल कुण्डल धारण करने वाले एवं उस चन्द्रार्ध से सुशोभित जिसकी स्वच्छ तथा शीतल किरणें हैं शिव ने अज्ञान मुग्ध तथा दुःखी होकर वीर ! इस पृथिवी को धारण करने वाले उन कृष्ण को न देखकर इस भाँति कहना आरम्भ किया।१३-१४

महादेव ने कहा—महामते ! कृष्ण, कृष्ण, तुम कहाँ चले गये। और ब्रह्मा कहाँ चले गये। वीर तुम दोनों को कहीं नहीं देख पा रहा हूँ। हाय ! इस समय महान् मोहरूपी, अन्धकार से मैं लिप्त हूँ कहाँ जाऊँ, क्या करूँ इस समय मैं कहाँ स्थित हूँ। पर्वत, पृथिवी, वृक्षों, देव, गन्धर्व, दानवों, विपुल सागर तथा सिन्धु को कुछ भी नहीं देख पा रहा हूँ।१५-१७। देवशार्दूल ! स्थावर एवं जंगम रूपी जगत् को मैं किस

केनोपायेन पश्येयं जगत्स्थावरजङ्गमम् । ब्रूहि मे देवशार्दूल व्रीडा मेऽतीव जायते ॥१८
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा हरिर्वचनमब्रवीत् । शोकगद्गदया वाचा तमसा मोहितो नृप ॥१९

विष्णुरुवाच

भीम भीम न जानेऽहं क्व भवान्वर्ततेऽधुना । ममापि मोहितं चेतस्तमसातीव शङ्कर ॥२०
क्व गच्छामि क्व तिष्ठामि कथं तत्स्वस्थतां व्रजेत् । तमसा पूरितं सर्वं जगद्धि परमेश्वर ॥२१
यद्यसौ दृश्यते देवः सुरज्येष्ठोऽम्बुजोद्भवः । पृच्छावस्तं महात्मानं यदि ते रोचते हर ॥२२
हित्वा दर्पमहङ्कारं सममास्थाय केवलम् । पद्माननं पद्मयोनिं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥२३
इत्येवं गदतो वाक्यं विष्णोरमिततेजसः । श्रुत्वोवाच विभुर्ब्रह्मा गङ्गाधरमहीधरौ ॥२४
कृष्ण कृष्ण महाबाहो भीम भीम महामते । क्व भवन्तौ ब्रूत किं च किं युवामूचतुर्मिथः ॥२५
ममातीव मनोबुद्धी तमसा वशमागते । न शृणोमि न पश्यामि निद्रामोहवशं गतः ॥२६
अहो बत जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् । तमसा व्याप्टतं देवौ न जाने क्व गतं महः ॥२७
अथ तेषां प्रवदतां ब्रह्मादीनां दिवौकसाम् । दर्पक्रोधभयार्तानां तमसाक्रान्तचेतसाम् ॥२८
तेषां दर्पापहाराय प्रबोधार्थं च गोपतेः । तेजोरूपं समुद्भूतमष्टशृङ्गमनौपमम् ॥२९
अलक्ष्यं पापतमसा महद्व्योम नराधिप । ज्वालामालावृतं वीर बहुरूपं च भासते ॥३०

उपाय से देख सकूँगा, बताइये ! मुझे अत्यन्त लज्जा हो रही है ।१८। नृप ! इस प्रकार शंकर की बातें सुनकर अज्ञान से मोहित होकर विष्णु शोक प्रकट करते हुए गद्गद् वाणी से बोले ।१९

विष्णु बोले—भीम, भीम ! मुझे नहीं मालूम हो रहा है कि इस समय आप कहाँ हैं ! शंकर ! मेरा भी चित्त अत्यन्त अन्धकार से आवृत हो गया है ! कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँ, मेरा मन किस प्रकार से स्वस्थ (मोहमुक्त) हो सकेगा । परमेश्वर ! यह समस्त जगत् अन्धकार से ढँक गया है ।२०-२१। हर ! यदि तुम्हारी भी संमति हो और कहीं देव श्रेष्ठ एवं कमलयोनि, ब्रह्मा दिखाई पड़े तो उन्हीं महात्मा से जो कमल के समान मुख, कमल से उत्पन्न, एवं कमल पत्र के समान नेत्रवाले हैं हम दोनों दर्प पूर्ण अहंकार का यदि त्याग कर केवल ससम्मान भाव से पूछें इस प्रकार कहते हुए उस अमित तेजवाले विष्णु की बातें सुनकर विभु, ब्रह्म, शिव एवं विष्णु से बोले— ।२२-२४

ब्रह्मा बोले—कृष्ण, कृष्ण ! शिव, शिव ! महाबाहो ! महामते ! आप लोग कहाँ से बोल रहे हैं और आपस में कौन सी बातें कर रहे हैं ।२५ मेरा मन एवं बुद्धि ये दोनों अन्धकार से लिप्त है क्योंकि निद्रा द्वारा मोहित हो जाने की भाँति मैं न कुछ सुन रहा हूँ और न कुछ देख रहा हूँ ।२६। महान् आश्चर्य एवं दुःख की बात है देव, राक्षस एवं मनुष्यों समेत यह समस्त जगत् अन्धकार से घिर गया है, कृष्ण एवं शिव ये दोनों देव नहीं जानता कहाँ चले गये हैं ।२७। इसके पश्चात् अभिमान, क्रोध तथा भय से व्याकुल, मोहअन्धकार से ढँके चित्त वाले उन ब्रह्मा आदि देवताओं के इस प्रकार कहने पर उनके अभिमान के नाश करने एवं उन्हें सूर्य का ज्ञान कराने के लिए तेजोमय, आठ सींगो वाला, अनुपम, पाप रूप अन्धकार के लिए अनिरीक्ष्य तथा प्रज्वलित ज्वालाओं की माला से घिरा, नराधिप ! इस प्रकार एक महान् व्योमतेज दिखाई पड़ा । वीर ! वह इस भाँति दिखाई दे रहा था जैसे उसके अनेकों रूप

शतयोजनविस्तीर्ण गतमूर्ध्वं भ्रमत्तथा । गोमध्यतो महाराज कर्णिकेवाम्बुजस्य नु ॥३१
प्रकाशं तेजसा तस्य जगत्सर्वमिदं नृप । पुरेष्वन्तर्यथा वीर अम्बुजस्यार्चिभिः सदा ॥३२
दृष्ट्वा परस्परं सर्वे हुङ्कारादिविकारिणः । तेजसा मोहितास्तस्य जगत्सर्वमिदं नृप ॥३३
तेजसा मोहितं तस्य महद्व्योम नराधिप । ततो विस्मयमासीनः दृष्टगोपतयो नृप ॥३४
पश्यमाना महो व्योम्नि मिथो वचनमब्रुवन् ; अहो तेजः समुद्भूतमस्माकं श्रेयसे नृप ॥३५
प्रकाशाय च लोकानां सर्वे पश्याम किन्विदम् ! ज्ञानायोर्ध्वं गतो ब्रह्मा चाधस्तात्त्रिपुरान्तकः ॥३६
तिर्यग्जगाम देवेशश्चक्राम्बुजगदाधरः । अलब्ध्वा तस्य ते सर्वे प्रमाणं गैरिकाधिपाः ॥३७
विस्मयोत्फुल्लनयनाः समागम्य परस्परम् । सर्वे कञ्जादिका देवा इदं वचनमब्रुवन् ॥३८
कोऽयं किमात्मकश्चायं किमिदं तेजसां निधिः ! अहोऽस्य दर्शनात्सर्वे सञ्जाताः ज्ञानिनो वयम् ॥३९
तस्मात्सर्वे प्रणम्यैनं स्तुवीमोऽद्भूतदर्शनम् । कृताञ्जलिपुटाः सर्वे ह्यास्तुवंस्त्रिदिवौकसः ॥४०
स्तुवतामभ्यर्थतेषां सहस्रकिरणो रविः । आत्मानं दर्शयामास कृपया परया वृतः ॥४१
ज्ञात्वा भक्तिं महाबाहो ब्रह्मादीनां महोपमाम् । अथ ते व्योम्नि देवेशं ददृशुः परमेश्वरम् ॥४२
खषोल्कलोकनाथेशं सहस्रकिरणोज्ज्वलम् । कृत्तिकाभिरसंस्पृष्टं यद्वा तत्कार्तिकास्थितम् ॥४३

हों ।२८-३०। महराज ! वह सौ योजन में विस्तृत होकर पृथ्वी के मध्य ऊपर आकाश में कमल की कर्णिका की भाँति घूम रहा था ।३१। राजन् ! उसके तेज से सम्पूर्ण जगत् वीर ! बिजली द्वारा सदैव प्रकाशित नगर के भीतरी भाग की भाँति सहसा प्रकाशित हो गया । नृप ! उसके तेज से मोहित हुए उन लोगों ने जो अहंकार आदि विकार को अपनाये हुए थे आपस में एक दूसरे को देखते हुए देखा कि समस्त जगत् उसके तेज से आवृत है । नराधिप ! पश्चात् उस महान् व्योम तेज को देखकर वे देवगण, आश्चर्य चकित हो उस (तेजोमय) को देखते हुए आपस में कहने लगे कि नृप ! हमीं लोगों के हित के लिए यह तेजोराशि उदित हुई है । अथवा जब सभी लोकों के प्रकाशनार्थ यह आविर्भूत हुआ है, तब हमी लोग इसे क्यों न देखें । (इस प्रकार) कहकर उसकी जानकारी के लिए उसके ऊर्ध्व भाग की ओर ब्रह्मा, नीचे की ओर त्रिपुरांतक (शिव) और पार्श्व भाग की ओर शंख-गदाधारी देवेश विष्णु ने प्रस्थान किया । उस (तेजोमय) का प्रमाण (लम्बाई चौड़ाई आदि) न जानकर वे देवगण पुनः लौटकर इतने आश्चर्य चकित हुए कि उनकी आँखें कमल की भाँति विकसित हो गई अनन्तर वे ब्रह्मादि देव इस प्रकार कहने लगे कि 'यह क्या है कुछ समझ में नहीं आता है इसका आकार कैसा है, यह तेजोमय विधान है या वस्तु । महान् आश्चर्य की बात है कि इसे देखते ही हम लोगों को ज्ञान उत्पन्न हो गया ।३२-३९। इसलिए हमें चाहिए कि हम लोग प्रणाम पूर्वक इस अद्भुत दर्शन की स्तुति करें । ऐसा कहकर वे देवगण हाथ जोड़कर उसकी स्तुति करने लगे । इसके उपरांत उन लोगों के स्तुति करने पर सहस्र किरण वाले सूर्य ने अत्यन्त दयालु होकर उन्हें दर्शन दिया । महाबाहो ! जो उन ब्रह्मादि देवों की उस भक्ति द्वारा प्रसन्न हो गये थे तदनन्तर उन लोगों ने आकाश में स्थित परमेश्वर, एवं देवेश सूर्य को देखा जो खषोल्करूप, लोकनाथ, ईश, सहस्र किरणों से समुज्ज्वल, कृतिकाओं मे संस्पृष्ट हो, उस कार्तिक में स्थित थे ।४०-४३

दुर्जयं कृत्तिकानां तु तथैकेन विवर्जितम् । तथा हस्तविहीनं च सप्तर्षिरहितं तथा ॥४४
वर्षाब्दरहितं देवं सप्तस्वरविवर्जितम् । सकलं निष्कलं चैव सदैकाकाररूपिणम् ॥४५
तद्दृष्ट्वानेकशिरसमनेकचरणं तथा । अनेकोदरबाह्वंसमनेकाभरणान्वितम् ॥४६
अनेकाननमक्षीबं सहस्राक्षमनौपमम् । अनेकवर्णरूपं च अनेकमुकुटोज्ज्वलम् ॥४७
दृष्ट्वैवं देवदेवस्य रूपं भानोर्महात्मनः । विस्मयोत्फुल्लनयनास्तुष्टवुस्ते दिवाकरम् ॥४८
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ब्रह्मा स्तोतुं प्रचक्रमे । प्रणम्य शिरसा भानुमिदं वचनमब्रवीत् ॥४९

ब्रह्मोवाच

नमस्ते देवदेवेश सहस्रकिरणोज्ज्वल । लोकदीप नमस्तेऽस्तु नमस्ते कोणवल्लभ ॥५०
भास्कराय नमो नित्यं खषोल्काय नमोनमः । विष्णवे कालचक्राय सोमायामिततेजसे ॥५१
नमस्ते पञ्चकालाय इन्द्राय वसुरेतसे । खगाय लोकनाथाय एकचक्ररथाय च ॥५२
जगद्धिताय देवाय शिवायामिततेजसे । तमोघ्नाय सुरूपाय तेजसां निधये नमः ॥५३
अर्थाय कामरूपाय धर्मायामिततेजसे । मोक्षाय मोक्षरूपाय सूर्याय च नमोनमः ॥५४
क्रोधलोभविहीनाय लोकानां स्थितिहेतवे । शुभाय शुभरूपाय शुभदाय शुभात्मने ॥५५
शान्ताय शान्तरूपाय शान्तयेऽस्मासु वै नमः । नमस्ते ब्रह्मरूपाय ब्राह्मणाय नमोनमः ॥५६
ब्रह्मदेवाय ब्रह्मरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने । ब्रह्मणे च प्रसादं वै कुरु देव जगत्पते ॥५७
एवं स्तुत्वा रविं ब्रह्मा श्रद्धया परया विभो । तूष्णीमासीन्महाभाग प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥५८

कृतिकाओं के लिए अजेय, एक से शून्य, हस्त एवं सप्तर्षि से हीन, वर्ष, अब्द रहित, सप्तस्वर हीन, कला समेत, कलाहीन, सदैव एक रूप धारण करने वाले, अनेक शिर, चरण, उदर, भुजाएँ एवं स्कन्धों में भाँति-भाँति के आभूषणों से सुशोभित, अनेक कांति पूर्ण मुख, सहस्र आँखे, अनुपमेय, अनेक वर्ण एवं रूप वाले तथा अनेक उज्ज्वल मुकुटों से विभूषित थे।४४-४७। देवाधिदेव, एवं महात्मा सूर्य देव के इस प्रकार के रूप को देखकर आश्चर्य से चकित होने पर उनकी आँखे खिल उठी। तदुपरांत वे सूर्य की स्तुति करने लगे। हाथ जोड़ कर ब्रह्मा ने शिर से प्रणाम कर सूर्य की इस प्रकार स्तुति की।४८-४९

ब्रह्मा बोले—हे देवाधिदेव ! सहस्र किरणों से समुज्ज्वल होने वाले आप को नमस्कार है। लोक के दीपक ! आप को नमस्कार है कोण (त्रिशूल) प्रिय ! आप को नमस्कार है, भास्कर को नमस्कार है, खषोल्क को नित्य नमस्कार है, विष्णु रूप, कालचक्र, सोम, एवं अमित तेज वाले को नमस्कार है, पाँचों काल, इन्द्र, वसुरेतस, आकाशचारी, लोकनाथ एक चक्के के रथ वाले, जगत् के हितैषी देव, शिव, अमित तेजवाले, तमके नाशक, सौन्दर्यपूर्ण, एवं तेजो निधान आप को नमस्कार है।५०-५३ धर्म, अर्थ एवं काम रूप अनुपम तेजस्वी, मोक्ष तथा मोक्षरूप, सूर्य को नमस्कार है, क्रोध तथा लोभहीन, लोक की स्थिति के कारण, शुभ रूप, शुभदायक एवं कलात्मक, शांत तथा हम लोगों की शांति के लिए शांत रूप, तुम्हें नमस्कार है, ब्रह्मरूप, तुम्हारे लिए नमस्कार है, ब्राह्मण को नमस्कार है, ब्रह्मदेव, ब्रह्मरूप, ब्रह्म तथा परमात्मा को नमस्कार है। हे जगत्पते, देव ! ब्रह्मा के लिए कृपा कीजिए। विभो ! इस प्रकार अत्यन्त श्रद्धालु होकर ब्रह्मा सूर्य की स्तुति करके हे महाभाग ! प्रसन्न अन्तःकरण पूर्ण हो मौन हो गये।५४-५८

ब्रह्मणोऽनन्तरं रुद्रः स्तोत्रं चक्रे विभावसोः । त्रिपुरारिर्महातेजाः प्रणम्य शिरसा रविम् ।।५९

महादेव उवाच

जय भाव जयाजेय जय हंस दिवाकर । जय शम्भो महाबाहो खग गोचर भूधर ।।६०
जय लोकप्रदीपन जय भानो जगत्पते । जय काल जयानन्त संवत्सर शुभानन ।।६१
जय देवादितेः पुत्र कश्यपानन्दवर्धन । तमोघ्न जय सप्तेश जय सप्ताश्ववाहन ।।६२
ग्रहेश जय कान्तीश जय कालेश शङ्कर । अर्थकामेश धर्मेश जय मोक्षेश शर्मद ।।६३
जय वेदाङ्गरूपाय ग्रहरूपाय वै नमः । सत्याय सत्यरूपाय सुरूपाय शुभाय च ।।६४
क्रोधलोभविनाशाय कामनाशाय वै जय । कल्माषपक्षिरूपाय यतिरूपाय शम्भवे ।।६५
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्माय वै जय । जयोङ्कार वषट्कार स्वाहाकार स्वधामय ।।६६
जयाश्वमेधरूपाय चाग्निरूपार्यमाय च । संसारार्णवपीताय मोक्षद्वारप्रदाय च ।।६७
संसारार्णवमग्नस्य मम देव जगत्पते । हस्तावलम्बनो देव भव त्वं गोपतेऽद्भुत ।।६८
ईशोऽप्येवमहीनाङ्गं स्तुत्वा भानुं प्रयत्नतः । विरराम महाराज प्रणम्य शिरसा रविम् ।।६९
अथविष्णुर्महातेजाः कृताञ्जलिपुटो रविम् । उवाच राजशार्दूल भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ।।७०

विष्णुरुवाच

नमामि देवदेवेशं भूतभावनमव्ययम् । दिवाकरं रविं भानुं मार्तण्डं भास्करं भगम् ।।७१

ब्रह्मा के अनन्तर त्रिपुरारि एवं महातेजस्वी, रुद्र शंकर ने शिर से सूर्य को प्रणाम करके उन विभावसु (सूर्य) की स्तुति प्रारम्भ की ।५९

महादेव बोले—भाव (सनातन) की जय हो, अजेय की जय हो, हंस एवं दिवाकर की जय हो, शम्भु, महाबाहु, आकाशगामी, प्रत्यक्ष रूप एवं भूधर की जय हो, लोक के प्रकाशक की जय हो, जगत्पति भानु की जय हो, काल रूप की जय हो, अनंत की जय हो, संवत्सर एवं शुभानन की जय हो, अदिति के पुत्र, कश्यप के आनंद वर्धक देव की जय हो, तमनाशक की जय हो, सप्तेश तथा सात अश्व वाहन वाले की जय हो, ग्रहेश की जय हो, कांति के ईश की जय हो, काल के ईश, शंकर, अर्थ, काम एवं धर्म के ईश, मोक्ष के ईश, लज्जा रखने वाले की जय हो, वेदांग रूप, ग्रह रूप, सत्यरूप, सुरूप, एवं शुभरूप को नमस्कार है। क्रोध, लोभ, एवं काम के नाशक की जय हो, कल्माषपक्षिरूप, पतिरूप, शंभु, विश्व, विश्वरूप एवं विश्वकर्म वाले की जय हो, ओंकार, वषट्कार, स्वाहाकार एवं स्वधारूप की जय हो, अश्वमेध रूप, अग्नि रूप, अर्यमा, संसार सागर का पान करने वाले, तथा मोक्षद्वार प्रदान करने वाले की जय हो। हे जगत्पते! देव ! संसार रूपी समुद्र में निमग्न मुझे देव, गोपते ! आप हस्तावलम्बन (अपने हांथ का सहारा) प्रदान करें। शंकर भी इस प्रकार अंग पूर्ण भानु की प्रयत्न पूर्वक स्तुति तथा महाराज सूर्य को शिर से प्रणाम करके चुप हो गये ।६०-६९। इसके पश्चात् राजशार्दूल ! महातेजस्वी विष्णु ने हाथ जोड़कर भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक सूर्य से कहा— ।७०

विष्णु बोले—देवाधिदेव, जीवों को उत्पन्न करने वाले, अनश्वर, दिवाकर, भानु, मार्तंड, भास्कर

इन्द्रं विष्णुं हरिं हंसमर्कं लोकगुरुं विभुम् । त्रिनेत्रं त्र्यक्षरं त्र्यङ्गं त्रिमूर्तिं त्रिगतिं शुभम् ॥७२
षण्मुखाय नमो नित्यं त्रिनेत्राय नमोनमः । चतुर्विंशतिपादाय नमो द्वादशपाणये ॥७३
नमस्ते भूतपतये लोकानां पतये नमः । देवानां पतये नित्यं वर्णानां पतये नमः ॥७४
त्वं ब्रह्मा त्वं जगन्नाथो रुद्रस्त्वं च प्रजापतिः । त्वं सोमस्त्वं तथादित्यस्त्वमोंकारक एव हि ॥७५
बृहस्पतिर्बुधस्त्वं हि त्वं शुक्रस्त्वं विभावसुः । यमस्त्वं वरुणस्त्वं हि नमस्ते कश्यपात्मज ॥७६
त्वया ततमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । त्वत्त एव समुत्पन्नं सदेवासुरमानुषम् ॥७७
ब्रह्मा चाहं च रुद्रश्च समुत्पन्ना जगत्पते । कल्पादौ तु पुरा देव स्थितये जगतोऽनघ ॥७८
नमस्ते वेदरूपाय अहोरूपाय वै नमः । नमस्ते ज्ञानरूपाय यज्ञाय च नमोनमः ॥७९
प्रसीदास्मासु देवेश भूतेश किरणोज्ज्वल । संसारार्णवमग्नानां प्रसादं कुरु गोपते ॥
वेदान्ताय नमो नित्यं नमो यज्ञकलाय च ॥८०

सुमन्तुरुवाच

स्तुत्वैवं भास्करं भक्त्या विष्णुर्भरतसत्तम । प्रदध्यौ नृपशार्दूल रविं तद्गतमानसः ॥८१
एवं ते नरशार्दूल देवा ब्रह्मादयोऽनघ । स्तुवन्ति तं महात्मानं सहस्रकिरणं रविम् ॥८२
इत्येवं स्तुवतां तेषां रविं भक्त्या महात्मनाम् । अथ तुष्टो रविस्तेषां ब्रह्मादीनां जगत्पतिः ॥८३
विज्ञाय भक्तिं परमां श्रद्धां च परमां विभुः । उवाच स महातेजाः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥८४

भग, एवं रवि को नमस्कार है। इन्द्र, विष्णु, हरि, हंस, अर्क, लोक के गुरु, विभु (व्यापक), तीन नेत्र वाले, तीन अक्षर (ओम) वाले, तीन अंग वाले, तीन मूर्ति वाले, तीन जाति (गढ्ढे या छिद्र) वाले एवं छह मुख वाले को नमस्कार है, त्रिनेत्र को नित्य नमस्कार है, चौबीस चरण तत्व एवं बारह हाथ (मांस) वाले को नमस्कार है ।७१-७३। भूत पति को नमस्कार है, लोक के पति को नमस्कार है, देवों के पति एवं वर्णों के पति को नित्य नमस्कार है, तुम्हीं ब्रह्मा, जगन्नाथ, रुद्र, प्रजापति, सोम, आदित्य, तथा ओंकार हो। बृहस्पति, बुध, शुक्र, विभावसु, यम, और वरुण भी तुम्हीं हो। हे कश्यपात्मज! तुम्हें नमस्कार है। स्थावर जंगम रूप इस जगत् को तुम्हीं ने विस्तृत, एवं देव, असुर और मनुष्य तुम्हारे द्वारा उत्पन्न हुए हैं ।७४-७७। हे जगत्पते! ब्रह्मा, मैं तथा रुद्र भी तुम्हारे ही द्वारा कल्प के आदि काल में देव, अनघ! जगत् की स्थिति आदि के लिए उत्पन्न हुए हैं। वेदरूप आपको नमस्कार है, दिन रूप आप को नमस्कार है, ज्ञान रूप एवं यज्ञरूप आप को बार-बार नमस्कार है। हे देव, भूतेश किरणों से समुंज्ज्वल! आप हम लोगों पर प्रसन्न हों, हे गोपते! संसार-सागर में डूबते हुए हम लोगों पर आप कृपा प्रदान करें। वेदान्त तथा यज्ञ के कलारूप को नित्य नमस्कार है ।७८-८०

सुमन्तु बोले—भरत सत्तम! इस प्रकार भक्ति पूर्वक विष्णु ने भास्कर की स्तुति करके नृपशार्दूल! तन्मय होकर सूर्य का ध्यान किया। नरशार्दूल, अनघ ब्रह्मादिक देवताओं ने इस प्रकार सहस्र किरण वाले महात्मा सूर्य की स्तुति की। इस प्रकार भक्ति पूर्वक सूर्य की स्तुति करने वाले महात्मा ब्रह्मादि देवों पर जगत्पति सूर्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन लोगों की उत्तम भक्ति एवं अत्यन्त श्रद्धा पूर्ण भक्ति को देखकर अन्तः करण से प्रसन्न होकर महातेजस्वी सूर्य ने जो ग्रहेश, आकाश स्थित, अपने तेज से दिशाओं

ग्रहेशो व्योम चारूढस्तेजसा प्रज्वलन्दिशः । ब्रह्माणं विष्णुमीशानमामन्त्र्यैतान्विशांपते ।।८५
दृष्ट्वा तान्प्रणतान्सर्वाञ्छिरोभिरवनिं गतान् । तुष्टोऽस्मि ते सुरज्येष्ठ चतुर्मुख जगत्पते ।।
वरं वरय भद्रं ते मनसा त्वं यदिच्छसि ।।८६
श्रुत्वा तु वचनं भानोर्ब्रह्मा लोकगुरुर्नृप । जगाम शिरसा भूमावुवाच स कृताञ्जलिः ।।८७

ब्रह्मोवाच

कृतकृत्योऽस्मि देवेश पूतश्चास्मि खगाधिप । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि गतोऽस्मि परमां गतिम् ।।८८
सहस्रकिरणैर्यत्ते भवान्दर्शनमागतः ।।८९
अपश्यतश्च देवेश मूढमासीन्मनो मम । भगवन्सम्प्रसीद त्वं ममोपरि विभावसो ।।९०
प्रयच्छ त्वं बलं भक्तिमात्मनो मम गोपते । गत्वा शिरोभिरवनिमष्टाङ्गैः पतितस्य च ।।
भक्त्या विज्ञप्तिमाकर्ण्य प्रसादं कुरु गोपते ।।९१
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा पूषा देवो जगत्पतिः । तथेत्याह महाराज विरञ्चिं प्रश्रयान्वितम् ।।९२
ब्रह्मणे च वरं दत्त्वा राजन्देवो दिवाकरः । उवाच त्र्यम्बकं देवं शशाङ्ककृतशेखरम् ।।९३
वरं वरय भूतेश भूभृज्जादयितानघ । यमिच्छसि महादेव ददेऽहं तदशेषतः ।।९४
भास्करस्य वचः श्रुत्वा ईश्वरस्त्रिपुरान्तकः । गत्वा तु शिरसा भूमौ प्रगम्योवाच भास्करम् ।।९५

महादेव उवाच

पुण्योऽहं पुण्यकर्माहं नास्ति धन्यतरो मम । गतोऽहं परमां सिद्धिं गतश्च परमां गतिम् ।।९६

को प्रकाशित किये हैं, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव को बुलाकर विशांपते ! उन देवों को पृथ्वी में नतमस्तक हो प्रणाम करते देख कर उनसे कहा---सूरज्येष्ठ, चतुर्मुख, एवं जगत्पते मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, अपनी अभिलाषानुसार वर की याचना करो । नृप सूर्य की ऐसी बातें सुनकर लोक के गुरु ब्रह्मा ने नतमस्तक हो प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़कर कर कहा ।८१-८७

ब्रह्मा बोले—सहस्र किरणों समेत आपने मुझे दर्शन दिया है, अतः मैं कृतकृत्य हुआ तथा देवेश ! पवित्र हो गया । आकाशचारिन् ! धन्य तथा अनुग्रहीता होकर मुझे उत्तम गति प्राप्त हो गई । हे देवेश ! आपके दर्शन के बिना मेरा मन जड़ हो गया था, हे भगवन् ! हे विभावसो ! मेरे लिए आप प्रसन्न हों और गोपते ! मुझे अपनी भक्ति एवं बल प्रदान करें । अष्टांग समेत शिर से पृथिवी में मैं नमस्कार कर रहा हूँ, हे गोपते ! भक्ति पूर्वक इस विज्ञप्ति को सुनकर मुझे कृपा प्रदान करें । महाराज ! ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर जगत्पति सूर्य देव ने अपने आश्रित ब्रह्मा के लिए 'तथास्तु' शब्द का उच्चारण कर स्वीकृति प्रदान किया ।८८-९२ । हे राजन् ! सूर्य देव ने ब्रह्मा को वर प्रदान कर शशांक शेखर महादेव शिव मे कहा—भूतेश ! पार्वती प्रिय, अनघ ! अपने मनोनीत वर की याचना कीजिए महादेव ! आप की इच्छानुसार मैं सभी कुछ प्रदान करूँगा । भास्कर की बातें सुनकर त्रिपुरनाशक ईश्वर (शिव) ने भूमि में शिर टेककर भास्कर को प्रणाम करके उनसे कहा— ।९३-९५

महादेव बोले—मैं पुण्य रूप हूँ, पुण्य कर्मा हूँ, एवं मेरे समान कोई धन्यतर नहीं है । आज मुझे

नाप्राप्यमस्ति देवेश नासाध्यं मम किंचन । यस्य मे भगवान्देवः प्रसादप्रवणः स्थितः ॥९७
त्वया ततमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । त्वत्त एव समुत्पन्नं लयं च त्वयि यास्यति ॥९८
यदि तुष्टो मम विभो अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि । अचलां देहि मे भक्तिमात्मनश्चरणं नय ॥९९
व्योमकेशवचः श्रुत्वा पूषा देवो दिवाकरः । तथेत्याह हरं वीर ततो हरिमुवाच ॥१००
नारायण महाबाहो वरं वरय गोधर । परितुष्टोऽस्मि ते देव यमिच्छसि महाबल ॥१०१
श्रुत्वा तु भास्करवचः कीलालजनको हरिः । उवाच परया भक्त्या नत्वा च शिरसा रविम् ॥१०२

नारायण उवाच

जय देव जगन्नाथ जय देव गुरो रवे । प्रसीद मम देवेश भक्तिं यच्छात्मनो रवे ॥१०३
येनाहं सर्वदेवानामुत्तमः स्यां जगत्पते । अजेयश्च तथा देव दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१०४
त्वद्भक्त्या बृंहितबलस्तेजसा महतान्वितः । ततो मया महत्कर्म कर्तव्यं तव शासनात् ॥१०५
प्रजानां पालनं देव देवानां च ग्रहाधिप । वर्णानामाश्रमाणां च वर्णधर्मस्य वा विभो ॥१०६
दुष्टदैत्यविनाशाय लोकानां पालनाय च । सृष्टोऽहं भवता पूर्वं कल्पादौ च कृतोऽनघ ॥१०७
यस्य रुष्टो भवान्स्याद्वै कथञ्चित्पुरुषस्य तु । व्याधिर्दुःखं मनोरोगं दारिद्र्यं सन्ततिक्षयः ॥१०८
तस्यैतानि भवन्तीह आधयो विविधास्तथा । तस्मात्त्वं च ततो देव संस्तव्यः सततं बुधैः ॥१०९

उत्तम सिद्धि एवं उत्तम गति प्राप्ति हो गई । हे देवेश ! अब मेरे लिए कुछ भी अप्राप्य एवं असाध्य नहीं है क्योंकि प्रसन्नता पूर्ण भगवान् (सूर्य) देव (आप) मेरे सम्मुख स्थित हैं । स्थावर जंगम रूप इस जगत् को आपने ही विस्तृत किया है, और आप से उत्पन्न भी हैं, एवं इसका लय भी आप में ही होगा । विभो ! यदि आप प्रसन्न हैं, और मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहते हैं, तो अपनी निश्चल भक्ति एवं अपने चरण की सेवा प्रदान कीजिए । उपरांत व्योम केश (शिव) की बातें सुन कर सूर्य ने हर के लिए 'तथा' कहकर स्वीकृति प्रदान की और उसके पश्चात् विष्णु से कहा—नारायण, महाबाहो ! धराधर ! अब अपने इच्छानुसार वर की याचना कीजिए । देव, महावल ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ, भास्कर की ऐसी बातें सुनकर कीलाल जनक विष्णु ने अत्यन्त उत्तम भक्ति पूर्वक शिर से नमस्कार करते हुए रवि से कहा— ।९६-१०२

नारायण बोले—देव, जगन्नाथ की जय हो, गुरुदेव सूर्य की जय हो, देवेश ! आप मेरे लिए प्रसन्न हों । रवे ! आप मुझे अपनी भक्ति प्रदान कीजिए ।१०३। जगत्पते ! जिसके कारण मैं सभी देवों से श्रेष्ठ हो जाऊँ तथा देव ! दैत्य, दानव, एवं राक्षसों का अजेय भी क्योंकि आपकी भक्ति द्वारा अपने बल को बढ़ाकर तथा महान् तेज सम्पन्न होकर मुझे आप की आज्ञानुसार महान कार्य करना है । देव ! ग्रहाधिप एवं विभो ! प्रजाओं देवों, वर्ण, एवं आश्रमों का मुझे पालन करना है । हे अनघ ! दुष्टों एवं दैत्यों के विनाश, तथा लोकों के पालन करने के लिए ही आप ने कल्प के आदि में मेरी सृष्टि की है । आप जिस प्राणी पर रुष्ट हो जाते हैं, उसके व्याधि, दुःख रोग, दारिद्र्य, संतान-नाश, तथा भाँति-भाँति के मानसिक दुःखों की उत्पत्ति होती है । देव ! इसलिए विद्वान् को चाहिए कि निरंतर आप की स्तुति पूजन करता

एवं त्वां गोपते देव भक्त्या श्रद्धासमन्वितः। अहमर्चितुमिच्छामि तस्मान्मयि कृपां कुरु ।।११०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यतेजोवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।१५३।

अथ चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रयी-उपाख्यानवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

श्रुत्वा तु वचनं भानुर्विष्णोरमिततेजसः। उवाच कुरुशार्दूल आदित्यः कृपयान्वितः ।।१

आदित्य उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो शृणु मे परमं वचः। यदर्थं प्रार्थितः कृष्ण तत्सर्वं ते भविष्यति ।।२
देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। अजेयस्त्वं महाबाहो भविष्यसि न संशयः ।।३
जगत्पालयितुं सर्वं समर्थश्च भविष्यसि। अचला तव भक्तिश्च भविष्यति ममोपरि ।।४
ब्रह्मापि सततं शक्तो जगत्स्रष्टुं भविष्यति। संहर्तुं शङ्करश्चापि मत्प्रसादाद्भविष्यति ।।५
भवन्तो मत्प्रसादेन ज्ञानिनामुत्तमं पदम्। गमिष्यन्ति न सन्देहो मत्पूजाप्रसादतः ।।६
रवेर्वचनमाकर्ण्य गोश्रुताभरणो विभो। उवाच गोपतिर्गोगो गोपतिं गोवृषध्वजः ।।७

रहे इस प्रकार गोपते, देव ! भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक मैं आपकी पूजा करना चाहता हूँ, इसलिए मुझे कृपापात्र बनायें।१०४-११०

श्री भविष्य महापुराणमें ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में सूर्य तेजोवर्णन नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त।१५३।

अध्याय १५४

त्रयीउपाख्यान का वर्णन

सुमन्तु बोले—कुरुशार्दूल ! अपने तेज वाले विष्णु की ऐसी बातें सुनकर सूर्य ने कृपा करते हुए उनसे कहा—।१

आदित्य बोले—कृष्ण, कृष्ण ! महाबाहो ! मेरी बातें सुनो, जिसके लिए मेरी प्रार्थना की है। कृष्ण ! उन सब की सफलता प्राप्त होगी।२। महाबाहो ! देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व नाग, एवं राक्षसों के लिए तुम्हारे अजेय होने में संशय नहीं है।३। समस्त जगत् के पालन करने के लिए समर्थ होते हुए तुम में मेरी अचला भक्ति उत्पन्न होगी।४। मेरी प्रसन्नता वश ब्रह्मा जगत् की सृष्टि करने तथा शंकर भी जगत् के संहार के लिए समर्थ होंगे।५। मेरी पूजा करने से प्राप्त प्रसन्नता के कारण आप लोग सभी ज्ञानियों से उत्तम पद की प्राप्ति करेंगे इसमें संशय नहीं।६। विभो ! इस प्रकार सूर्य की बातें सुनकर कुण्डल विभूषित कान वाले, पृथिवी पति एवं गाय, वृष की मूर्ति संपन्न ध्वजा वाले विष्णु ने किरणपति

त्वामाराध्य भविष्यामो वयं सर्वे सुरोत्तमाः । कथमाराधयामो हि भवन्तं श्रद्धयान्विताः ॥
श्रेयसे सततं देव ब्रूहि नस्तत्त्वमात्मनः ॥८
भवतो हि न पश्यामो मूर्तिं परमपूजिताम् । पश्यामः केवलं तेजो ह्यब्धेस्तोयमिवोज्झितम् ॥९
ज्वालामालाकुलं सर्वमनेकाकृति चाद्भुतम् । न चाकारविहीनं तु चेतसो लम्बनं भवेत् ॥१०
आलम्बनादृते देव न चित्तरमणं क्वचित् । चेतसोऽरमणे भक्तिर्न पुंसां जायते क्वचित् ॥११
भक्तिं विना पूजयितुं न शक्यन्ते दिवौकसः । त्वत्पूजने हि प्राप्यन्ते देव धर्मादयो नरैः ॥१२
तस्माद्दर्शय तां मूर्तिमात्मनो या परा मता । येन त्वां पूजयित्वा तु वयं सिद्धा भवामहे ॥१३

सूर्य उवाच

साधु साधु महादेव साधु पृष्टोऽस्मि सुव्रत । शृणु चैकमनाः कृत्स्नं गदतो मम मानद ॥१४
चतुर्मूर्तिरहं देव जगद्व्याप्य व्यवस्थितः । श्रेयसे सर्वलोकानामादिमध्यान्तकृत्सदा ॥१५
एका मे राजसी मूर्तिर्ब्रह्मेति परिकीर्तिता । सृष्टिं करोति सा नित्यं कल्यादौ जगतां विभो ॥१६
द्वितीया सात्त्विकी प्रोक्ता या परा परिकीर्तिता । जगत्सा पालयेन्नित्यं दुष्टदैत्यविनाशिनी ॥१७
तृतीया तामसी ज्ञेया ईशेति परिकीर्तिता । त्रैलोक्यं संहरेत्सा तु कल्पान्ते शूलपाणिनी ॥१८
चतुर्थी तु गुणैर्हीना सत्यादिभिरनुत्तमा । सा चाशक्या क्वचिद्द्रष्टुं स्थिता सा चाभवत्सदा ॥१९

(सूर्य) से कहा—आप की आराधना करके हम लोग श्रेष्ठ देव हो जायेंगे, पर श्रद्धालु होकर हम लोग किस प्रकार आप की आराधना करें। हे देव ! निरन्तर हम लोगों के कल्याणार्थ अपनी (पूजा आदि की) मार्मिक बातें बताने की कृपा कीजिए।७-८। आपकी परम पूजनीय मूर्ति को हम लोग नहीं देख रहे हैं, समुद्र द्वारा त्यक्त जल की भाँति केवल आप के तेज का ही दर्शन कर रहे हैं।९। ज्वालारूपी मालाओं से परिवेष्टित, सम्पूर्ण अनेक आकृति युक्त, एवं अद्‌भुत होते हुए भी वह आकार हीन होने के नाते चित्त की स्थिति में होने का स्थान नहीं हो सकती है। हे देव! जब तक चित्त का कोई आलम्बन नहीं होता है, तब तक वह अनुरक्त नहीं होता है, तथा अनुराग हीन पुरुषों में भक्ति उत्पन्न नहीं होती है, और भक्ति से शून्य होकर कोई भी (सूर्य) देव की पूजा नहीं कर सकता है। हे देव ! मनुष्य लोग आप को ही पूजा करके धर्म और अर्थ आदि की प्राप्ति करते हैं। अतः आप अपनी उस उत्तम मूर्ति का दर्शन प्रदान करने की कृपा करें, जिससे आप की पूजा करके हम लोग सिद्धि प्राप्त कर सकें।१०-१३

सूर्य बोले—साधु, साधु, महादेव ! आपने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है, सुव्रत ! सावधान होकर सुनो ! मानद ! मैं सब कुछ बता रहा हूँ।१४। देव ! चार प्रकार की मूर्ति धारण कर मैं समस्त लोकों के कल्याणार्थ, एवं उसकी उत्पत्ति स्थिति तथा लय करने के लिए जगत् में व्याप्त होकर स्थित हूँ।१५। विभो ! एक मेरी राजसी रजोगुणमयी मूर्ति ब्रह्मा के नाम से विख्यात है, वह कल्प के आरम्भ काल में समस्त जगत् की सृष्टि का कार्य करती है।१६। दूसरी मेरी सात्विकी सतोगुणमयी, मूर्ति जो परा सबसे (उत्कृष्ट) के नाम से ख्याति प्राप्त किये हैं, दुष्टों एवं दैत्यों का विनाश करने वाली वह मूर्ति नित्य जगत् का पालन करती है।१७। तीसरी तामसी, (तमोगुण मयी) मूर्ति ईश के नाम से प्रख्यात है, वह कल्प के अंतकाल में शूल हाथ में लेकर तीनों लोकों का संहार करती है।१८। चौथी मेरी मूर्ति (सत्व आदि) गुणों से हीन, एवं सत्यादि से युक्त होकर सदैव स्थित रहती है, किन्तु, उसका दर्शन करने में सभी असमर्थ

तया ततमिदं सर्वं यच्चोद्गीयं तु मे गतिः । निष्कला सकला सा तु सुरूपा रूपवर्जिता ॥२०
अन्तर्गता च लोकानां न च कर्मफलं गता । तिष्ठमानाप्यलिप्ता सा पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥२१
अस्पृष्टा च सदा षड्भिः सप्तातीत्य व्यवस्थिता । चतुस्तना च सा षड्भ्यस्तुरीयाख्या सुपूजिता ॥२२
न सा स्प्रष्टुं त्वया शक्या हरिणा ब्रह्मणा न च । मामनाराध्य भूतेश व्योमरूपं कदाचन ॥२३
यदेतद्भवतां देव प्रबोधार्थमुपस्थितम् । अहंकारविमूढानां तमसा च त्रिलोचन ॥२४
प्रकाशाय च लोकानां ज्वालामालासमाकुलम् । कर्णिकेव स्थितं देवभूपद्मस्याखिलस्य च ॥२५
यस्य सन्दर्शनादेव यूयं सर्वे प्रबोधिताः । प्रकाशमभवद्यावि जत्सर्वभयार्चिभिः ॥२६
तस्मादाराधयस्वैनमस्पृष्टं गमनोपमम् । मन्मूर्ति येन तां दिव्यां द्रक्ष्यसि त्वं त्रिलोचन ॥२७
यत्त्वाद्यमीश्वरं जज्ञे तद्व्योम परिकीर्तितम् । कल्पान्ते ह्यत्र वै व्योम्नि लीयन्ते सर्वदवताः ॥२८
दक्षिणे लीयते ब्रह्मा वामे तस्य जनार्दनः । त्वं सदा कचदेशे तु लीयसे त्रिपुरान्तक ॥२९
गायत्री लीयते तस्य हृदये लोकमातरः । लीयन्ते मूर्ध्नि वै वेदः सषडङ्गपदक्रमः ॥३०
जठरे लीयते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । पुनरुत्पद्यते ह्यस्माद्ब्रह्माद्यं सचराचरम् ॥३१
आकाशं व्योम इत्याहुः पृथिवी निक्षुभा मता । भूतश्रेयोऽहमाकाशो निक्षुभा दयिता मम ॥३२
मया निक्षुभया सर्वं जगद्व्याप्तं त्रिलोचन । तस्मादाराधय व्योम त्वं ब्रह्मा केशवस्तथा ॥३३

हैं ।१९। उसी द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् विस्तृत हुआ है और सामवेद मे मेरी जाति की व्याख्या भी की गई है । वह कलाहीन, कलासमेत, सौन्दर्य पूर्ण एवं रूपहीन भी है ।२०। लोकों के अन्तः स्थल में स्थित रहते हुए भी वह कर्म फल की भागिनी नहीं होती है, एवं इन लोकों में जल में स्थित कमल पत्र की भाँति वह सदैव निर्लिप्त रहती है । इस प्रकार (ईर्ष्या आदि) इन छहों के स्पर्श से हीन तथा सातों (लोकों) को आक्रान्त कर वह स्थित है । इसके चार (वेद) स्तन हैं, छहों (शास्त्रों) से भली भाँति पूजित हैं, तथा 'तुरीय' (चौथी) के नाम से विश्वविख्यात हैं ।२१-२२। तुम, ब्रह्मा एवं विष्णु कोई भी उसका स्पर्श तक नहीं कर सकते हो भूतेश ! जब तक कि मेरे व्योम रूप की पूजा नहीं करोगे ।२३। देव ! अहंकार एवं अन्धकार से जड़ भाव प्राप्त आप लोगों के सम्मुख प्रबोधनार्य (ज्ञानार्थ) जो यह उपस्थित है, तथा ज्वाला रूपी मालाओं से घिरा, समस्त पृथिवी रूपी कमल की कर्णिका की भाँति लोकों के प्रकाशनार्थ स्थित, और जिसके केवल दर्शन मात्र से तुम्हें ज्ञान उत्पन्न हुआ, एवं उसकी किरणों द्वारा जगत् प्रकाशमय हो गया है, आकाश की भाँति (विस्तृत) एवं निर्लिप्त उस (तेजोमय) की आराधना करो, त्रिलोचन, जिससे मेरी उस दिव्य मूर्ति का दर्शन तुम्हें प्राप्त हो सके ।२४-२७। यह जो प्रथम एवं ईश्वर भाव से उत्पन्न है, इसे व्योम कहते हैं, इसी व्योम में समस्त देवगण लीन होते हैं ।२८। उसके दक्षिण में ब्रह्मा, वाम भाग में जनार्दन, एवं त्रिपुरांतक ! तुम सदैव कच (केश) स्थान में लीन होते हो ।२९। गायत्री तथा लोकमाताएँ उसके हृदय स्थान में, षडङ्ग (छहो शास्त्रों) तथा एवं क्रम समेत वेद उसके शिर स्थान में, लीन होता है, और जठर (उदर) प्रदेश में स्थावर-जंगम रूप इस समस्त जगत् का लय होता है तथा पुनः ब्रह्मा आदि सचराचर (जगत्) की इसी द्वारा उत्पत्ति भी होती है ।३०-३१। व्योम, आकाश, तथा निक्षुभा पृथिवी रूप है, प्राणियों के श्रेय (कल्याण) के लिए मैं आकाश हूँ, एवं निक्षुभा मेरी प्रिया है।३२। त्रिलोचन ! मैं तथा निक्षुभा मिलकर इस जगत् में व्याप्त हूँ। इसलिए तुम, ब्रह्मा एवं नारायण (तीनों)

तन्मे रूपं महद्व्योम पूजयित्वा त्रिलोचन । दिव्यं वर्षसहस्रं हि गिरौ त्वं गन्धमादने ।।
ततो यास्यसि संसिद्धिं षडङ्गां परमां शुभाम् ।।३४
कलापग्राममाश्रित्य शङ्खचक्रगदाधरः । आराधयतु मां भक्त्या व्योमरूपं जनार्दनः ।।३५
अन्तरिक्षगतं तीर्थं पुष्करं लोकपावनम् । तत्र गत्वा विरिञ्चो मे व्योमरूपं सदार्चतु ।।३६
एवं मां सततं यूयं समाराध्य जगत्पतिम् । समानां च सुदिव्यानां सहस्रत्रयमादरात् ।।३७
ततो द्रक्ष्यथ मे मूर्तिं परमां यां विदुर्बुधाः । कदम्बगोलकाकारां रश्मिमालाकुलां पराम् ।।३८
अथ नारायणो देवः प्रणम्य शिरसा रविम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ।।३९

विष्णुरुवाच

यदि ते परमं रूपं मतं व्योमह्यनौपमम् । तमाराध्य वयं सर्वे यास्यामः सिद्धिमुत्तमाम् ।।४०
कीदृग्व्योम त्वहं ब्रह्माहरश्च त्रिपुरान्तकः । आराधयामहे देव भक्त्या श्रेयोऽर्थमात्मनः ।।४१
येन सिद्धिं गमिष्यामस्तमाराध्य दिवाकरम् । तस्मान्नो लक्षणं ब्रूहि व्योम्नः परमपूजित ।।४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे त्रय्युपाख्याने
चतु:पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५४।

व्योम की आराधना करो ।३३। त्रिलोचन ! गंधमादन पर्वत पर मेरे महान् व्योम रूप की पूजा एक सहस्र दिव्य वर्ष तक करते हुए तुम लोग उत्तम एवं शुभ षडङ्ग समेत सिद्धि प्राप्त कर सकोगे ।३४। शंख, चक्र, एवं गदा धारण करने वाले जनार्दन कलाप (काञ्ची) नगर में स्थित होकर भक्ति पूर्वक मेरे व्योम रूप की आराधना करें ।३५। उसी प्रकार ब्रह्मा अंतरिक्ष में स्थित एवं लोक को पवित्र करने वाले उस प्रकार तीर्थ में प्राप्त होकर मेरे व्योम रूप की सदा आराधना करें। इस प्रकार तुम लोग मुझ जगत्पति की आराधना तीन सहस्र दिव्य वर्ष तक करने के पश्चात् कदंब की भाँति गोलाकार वाली एवं किरण रूपी मालाओं से व्याप्त, उस मेरी उत्तम मूर्ति के दर्शन करोगे, जिससे विद्वद्गण परिचित हैं ।३६-३८। इसके उपरांत विष्णु देव ने शिर से प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए सूर्य से यह कहा— ।३९

विष्णु बोले—यदि आपका व्योम रूप, परमोत्तम, एवं अनुपम हैं, और उसी की आराधना करके हम लोग उत्तम सिद्धि की प्राप्ति करेंगे, तो वह किस भाँति का है, अपने अपने कल्याणार्थ जिसकी आराधना में ब्रह्मा एवं त्रिपुरनाशक शिव करेंगे । हे परमपूजित ! जिसके द्वारा सूर्य की आराधना करके हम लोग सिद्ध हो जाँयगे, उस व्योम का लक्षण हमें बताने की कृपा करें ।४०-४२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौरपर्व में त्रयी-उपाख्यान वर्णन
नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।१५४।

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मनिरूपणम्

आदित्य उवाच

साधुसाधु सुरश्रेष्ठ साधु पृष्टोऽस्मि भूधर । शृणुष्वैकमना: कृष्ण गदतो निखिलं मम ।।१
आराधयत्वयं देवो मम रूपमनौपमम् । चतुष्कोणं परं व्योम अद्भुतं गैरिकोज्ज्वलम् ।।२
त्वामाराध्य च चक्राङ्कं शङ्करो वृत्तमादरात् । शब्दादौ सततं ब्रह्म सगरादौ त्रिलोचनः ।।३
मध्याह्ने त्वं सदा देव भक्त्या मामर्चयस्व वै । यथेष्टममृभवः सर्वे भक्त्या मां पूजयन्तु वै ।।४
ततो ब्रह्मादयो देवाः श्रुत्वा वाक्यं विभावसोः । प्रणम्य शिरसा सर्वे इदं वचनमब्रुवन् ।।५
धन्या देव वयं सर्वे कृतकृत्यस्तथैव च । अस्माभिर्भगवान्पृष्टस्तेजसा प्रज्वलन्ति च ।।६
सम्भूता ज्ञानिनः सर्वे भवतो दर्शनाद्वयम् । तमोमोहात्तथा तन्द्रा सर्वमेकपदे गतम् ।।७
वयं त्वन्मूर्तयः सर्वे तेजसा तव संवृताः । उत्पत्तिस्थितिनाशाय लोकानां तव शासनात् ।।८
स्थिताः सर्वे सुरज्येष्ठ लोकपालाश्च कृत्स्नशः । अधुना साधयामेह व्योम्नः पूजां व्रजामहे ।।९
इत्थं तेषां वचः श्रुत्वा भास्करो वारितस्करः । उवाच ब्रह्मविष्ण्वीशान्सामपूर्वमिदं वचः ।।१०

आदित्य उवाच

एवमेतन्न सन्देहो यदा वदथ सुव्रताः । यूयं मन्मूर्तयः सर्वे युष्माकमहमेव हि ।।११

अध्याय १५५

सौरधर्मनिरूपण वर्णन

आदित्य बोले—सुरश्रेष्ठ ! साधु ! साधु ! ! भूधर ! (तुमने) अत्युत्तम प्रश्न किया है, कृष्ण ! मैं उन सभी बातों को बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।१। चौकोर, उत्तम, अद्भुत एवं चाँदी की भाँति समुज्ज्वल, उस मेरे देव रूप की आराधना करो ।२। देव ! भक्ति पूर्वक मध्याह्न में मेरी पूजा करो और सभी देवगण भी मेरी पूजा इच्छानुसार करें ।३। पश्चात् ब्रह्मादि देवगण सूर्य की ऐसी बातें सुनकर शिर से उन्हें प्रणाम करते हुए यह कहने लगे कि देव ! गोलाकार (वृत्तरूप) आप की आदरपूर्वक आराधना करके सब कुछ निगल जाने वालों में (जहर तक पी जाने वालों में) कल्याणकारी शिव की तथा शब्द में ब्रह्म (ब्रह्मा) की आदि (प्रथम) स्थिति बनी । हम लोग धन्य हैं, तथा कृतकृत्य भी हो गये, क्योंकि हम लोगों ने आप से (सभी कुछ) प्रश्न किया, उसके परिणाम स्वरूप आप के दर्शन द्वारा तेज युक्त एवं ज्ञानी होते हुए हम लोगों का तम, तथा मोहवश उत्पन्न तंद्रा (आलस्य) आदि ये सभी (आपके द्वारा) एक शब्द के उच्चारण करते ही नष्ट हो गये ।४-७। हम लोग तेजोमय आप की मूर्ति के समान हो गये । हे सुरज्येष्ठ ! आपके शासनाधिकार में स्थित रहकर (जगत् की) उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश कार्य के नियम पालन के लिए दृढ़ होते हुए हम लोग अब भली भाँति लोक-पाल पद पर प्रतिष्ठित हो गये। अब इस समय व्योम की पूजा को साधन संपन्न करने के लिए हम लोग यहाँ से प्रस्थान कर रहे हैं।८-९। इस प्रकार उनकी बातें सुनकर जल चुराने वाले भास्कर ने ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर से शांतिपूर्वक यह कहा।१०

आदित्य बोले—सुव्रत ! आप जैसा कह रहे हैं वैसा ही है । इसमें संदेह नहीं । आप लोग मेरी ही मूर्ति

यदेतद्दर्शनं देवाः प्रमाणं च यदुत्तमम् । ज्वालामालाकुलं शुभ्रं शांडिलेयमिवोज्झितम् ॥१२
युष्माकं देवशार्दूलास्तन्निबोधत कारणम् । अहङ्कारविमूढानां मिथः कलहिनां तथा ॥१३
प्रबोधार्थं हि युष्माकं तमसो नाशनाय च । प्रवर्तनाय सर्वेषां कर्मणां च प्रदर्शितम् ॥१४
तस्मादेवं विदित्वा तु नाहङ्कारः कदाचन । कर्तव्यो भूतिमिच्छद्भिः सततं देवसत्तमाः ॥१५
मानं दर्पमहङ्कारं पूर्वं त्यक्त्वा सुदूरतः । आराधयत मां भक्त्या सततं श्रद्धयान्विताः ॥१६
ततो द्रक्ष्यथ मे रूपं सकलं निष्कलं च यत् । यस्य सन्दर्शनादेव सर्वे सिद्धिमवाप्स्यथ ॥१७
एवमुक्त्वा महाराज सहस्रकिरणो विभुः । जगामादर्शनं तेषां पश्यतामेव भारत ॥१८
अथ ते विस्मिताः सर्वे ब्रह्मविष्णुपिनाकिनः । तेजसा तस्य देवस्य भास्करस्य महौजसः ॥१९
परस्परमथोचुस्ते विस्मयेन तदा नृप । अहो महात्माऽयं देवोऽदितिपुत्रो दिवस्पतिः ॥२०
बृहद्भानुर्महातेजा लोकदीपो विभावसुः । येन सर्वे वयं त्राता निघ्नता विपुलं तमः ॥२१
आराधयामस्तं सर्वे गत्वा स्थानानि कृत्स्नशः । येन सर्वे वयं तस्य प्रसादात्सिद्धिमाप्नुमः ॥२२
तद्व्योम पूजयित्वा तु परया श्रद्धया विभोः । आमंत्र्य ते मिथः सर्वे गताः पूजार्थमादरात् ॥२३
जगाम पुष्करं ब्रह्मा शालग्रामं जनार्दनः । वृषभध्वजो गतो वीर पर्वतं गन्धमादनम् ॥२४
त्यक्त्वा मानमहङ्कारं कुर्वतस्तप उत्तमम् । आराधयन्ति तं देवं भास्करं वारितस्करम् ॥२५

हो और मैं भी तुम लोगों का ही हूँ । तुम लोगों को इस उत्तम रूप का दर्शन हुआ जो ज्वाला रूपी मालाओं से व्याप्त है, शुभ्र (स्वच्छ) एवं पृथक् रखी गयी प्रदीप्त अग्नि की भाँति है । उस (दर्शन) में आप ही लोग प्रमाण (साक्षी) हैं । तुम लोगों को ऐसे रूप का दर्शन कैसे प्राप्त हुआ इसका कारण भी सुनिये ! ।११-१२। अभिमानवश विशेष मूढ़ता (जड़भाव) प्राप्त होने के नाते आपस में कलह करने वाले तुम लोगों के अन्धकार नाश पूर्वक प्रबोधन के लिए एवं समस्त कर्मों के प्रवर्तनार्थ तुम्हें इस रूप के दर्शन हुए हैं ।१३-१४ इसलिए देवश्रेष्ठ तुम लोगों को चाहिए कि अपने ऐश्वर्य की इच्छा करते हुए तुम्हें कभी भी अहंकार न होने पाये । सर्वप्रथम दूर से ही मान, दर्प, अहंकार के त्याग करके भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक मेरी आराधना करो, जिससे कला समेत, तथा कलाहीन उस मेरे रूप के दर्शन हो सकें और उसके दर्शन से तुम लोगों को सिद्धि प्राप्त हो जाये । महाराज ! भारत ! इस प्रकार सहस्र किरण वाले विभु (सूर्य) उन लोगों के देखते-देखते अन्तर्निलीन हो गये ।१५-१८। इसके उपरांत वे सभी ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव देवगण महातेजस्वी भास्कर के उस तेज से अत्यन्त विस्मित हो गये ।१९। नृप ! विस्मित होकर आपस में कहने भी लगे कि यह महात्मा, अदितिपुत्र, दिनपति, बड़ी किरण वाले, महातेजस्वी, लोक के दीपक एवं विभावसु (सूर्य) देव हैं जिन्होंने अत्यन्त तम के नाश पूर्वक हमारी रक्षा की है ।२०-२१। हम लोग अपने निर्दिष्ट स्थानों पर पहुँच कर उनकी आराधना करें जिसमें हमें सिद्धि प्राप्त हो जाये । विभु सूर्य के उस व्योम रूप का अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पूजन करके आपस में एक दूसरे को बुलाते हुए वे देवगण सादर पूजार्थ अपने निश्चित स्थानो को चले गये ।२२-२३। ब्रह्मा पुष्कर तीर्थ जर्नादन शालग्राम, और वीर ! शंकर ने गंधमादन पर्वत के लिए प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर मान एवं अहंकार के त्याग पूर्वक जल तस्कर उस उत्तम सूर्य देव की आराधना करने लगे ।२४-२५। व्योम को चौकोर बनाकर ब्रह्मा, एवं

व्योम्नि कृत्वा चतुष्कोणं ब्रह्मा नित्यमपूजयत् । चक्राङ्कितं हरिर्नित्यं सम्यग्व्योम त्वपूजयत् ॥२६
हरोऽपि सततं वीर तेजसा वह्निसन्निभम् । अपूजयत्सदा वृत्तं व्योम भक्त्या समन्वितः ॥२७
दिव्यवर्षसहस्रान्ते पूजयन्तो दिवाकरम् । गन्धमाल्योपहारैस्तु नृत्यगीतप्रवादितैः ॥२८
अतोषयन्महात्मानं कुर्वाणास्तप उत्तमम् । भक्त्या चलेन मनसा विवस्वन्तमनुत्तमम् ॥२९
अथ तेषां महाराज प्रसन्नो भुवनाधिपः । दर्शयामास लोकात्मा युगपद्वै विभावसुः ॥३०
कृष्णात्मा च महातेजाश्चतुर्धा योगतोऽनघ । एकत्वेन सुरश्रेष्ठं सोऽब्रवीत्परां वचः ॥३१
अन्येन शङ्करं मन्ये अन्येन गरुडध्वजम् । स तत्त्वं तपसा तेन रथारूढो दिवं सदा ॥३२
एवं योगबलाद्भानुः कृतवान्महदद्भुतम् । उग्रे तपसि वर्तन्तं दृष्ट्वा देवं चतुर्मुखम् ॥३३
पूजयन्तं महद्व्योम भूगतैर्मुखपङ्कजैः । उवाच तं महाराज भास्करश्चतुराननम् ॥३४
पश्य पश्य सुरज्येष्ठ वरदं मामुपागतम् । श्रुत्वैवं वचनं भानोर्वैरिञ्चस्तमथैक्षत ॥३५
दृष्ट्वा जगाम प्रणतो ह्यवनिं मुखपङ्कजैः । हर्षादुत्फुल्लनयनः पुनरुत्थाय भास्करम् ॥
उवाच परमं वाक्यं कृताञ्जलिपुटः स्थितः ॥३६

ब्रह्मोवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते तिमिरापह । नमस्ते भूतभव्येश भूतादे भूतभावन ॥३७
प्रसादं कुरु मे देव प्रसन्नोऽथ दिवाकरः । गतिरन्या न मे देव विद्यते त्वदृते विभो ॥३८

विष्णु ने भी चक्र से अंकित कर उस व्योम की पूजा करना आरम्भ किया और वीर ! शङ्कर ने भी अग्नि के समान प्रकाशमान वृत्तस्वरूप उस व्योम की भक्ति पूर्वक पूजा प्रारम्भ की ।२६-२७। एक सहस्र दिव्य वर्ष गंध, माला आदि उपहार, नृत्य, गायन एवं कथा श्रवण द्वारा दिवाकर की पूजा करके भक्ति पूर्वक अपने निश्चय मन से किये गये उत्तम तपद्वारा उस अनुत्तम विवस्वान् महात्मा सूर्य को प्रसन्न किया । महाराज ने प्रसन्न होकर भुवनेश्वर लोक के आत्मा सूर्य ! उन्हें एक साथ ही दर्शन दिया । अनघ ! महातेजस्वी एवं कृष्णात्मा सूर्य ने योग द्वारा चार रूप धारण कर एकरूप से सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा से उत्तम वाणी कहा । इसी प्रकार शिव, एवं गरुडध्वज (विष्णु) के समीप अन्य अन्य रूप से वे प्राप्त हुए जो अपने चौथे रूप से रथ पर स्थित होकर आकाश में सदैव तप किया करते हैं ।२८-३२। इस प्रकार अपने योगबल द्वारा सूर्य महान् विस्मित करने वाले रूप को धारण किये । महाराज ब्रह्मा को उग्रतप करते देख कर जो अपने मुख रूपी कमलों को भूमि में स्पर्श कर उसके द्वारा उस महद्व्योम की पूजा कर रहे थे, सूर्य चर्तुमुख ब्रह्मा से बोले—सुरज्येष्ठ ! देखो, देखो ! वर प्रदान के लिए मैं आ गया हूँ । सूर्य की ऐसी बातें सुनकर ब्रह्मा ने उनकी ओर देखा ।३३-३५। देखते ही ब्रह्मा अपने मुख कमलों को पृथिवी में स्पर्श करने के द्वारा उन्हें प्रणाम करके पुनः हर्षातिरेक से विकसित नेत्र करते हुए एवं हाँथ जोड़ कर उत्तम वाणी द्वारा सूर्य से बोले— ।३६

ब्रह्मा बोले—देवाधिदेव ! तुम्हें नमस्कार है । तमनाशक को नमस्कार है । प्राणियों के भव्य ईश एवं भूत भावन को नमस्कार है, हे देव ! कृपा कीजिए, दिवाकर प्रसन्न हों, आप देव, विभो ! आपके अतिरिक्त मेरी दूसरी गति (प्राप्ति) नहीं है ।३७-३८

आदित्य उवाच

एवमेव यथात्थ त्वं नास्ति तत्र विचारणा । त्वं मे प्रथमजः पुत्रः सम्भूतः कारणात्पुरा ॥३९
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मि तवाग्रतः । यमिच्छसि सुरज्येष्ठ मा त्वं शङ्कां कुरु प्रभो ॥४०

ब्रह्मोवाच

यदि मे भगवांस्तुष्टो ददाति वरमुत्तमम् । कर्तुं शक्नोमि सृष्टिं च प्रसादात्तव गोपते ॥
कृताकृता हि मे देव सृष्टिर्नेह प्रसिध्यति ॥४१

आदित्य उवाच

न पुत्रत्वमहं प्राप्तस्तव देव चतुर्मुख । तवान्वये गमिष्यामि पुत्रत्वं हि मरीचये ॥४२
ततो यास्यति ते सिद्धिं कृत्स्ना सृष्टिश्चतुर्मुख । भवितैवं न सन्देहो मत्प्रसादाज्जगत्पते ॥४३
एवमुक्तो विरिञ्चिस्तु रविणा पृथिवीपते । तं दृष्ट्वा प्रोवाच विवस्वन्तं लोकनाथं जगत्पतिम् ॥४४
पुनराह सुरज्येष्ठः प्रणम्य शिरसा रविम् । क्व मे वासो जगन्नाथ भविष्यति दिवस्पते ॥४५

आदित्य उवाच

यन्मे रूपं महद्व्योम पृष्ठशृङ्गमनुत्तमम् । तत्र देवकदम्बैस्तु भवान्नित्यं निवत्स्यति ॥४६
इन्द्रः पूर्वदिशो भागे आग्नेय्यां शाण्डिलीसुतः । दक्षिणस्यां यमो नित्यं नैर्ऋत्यामथ निर्ऋतिः ॥४७
पश्चिमायां तु वरुणो वायव्यां तु सदागतिः । उत्तरे तु दिशो भागे निवसेद्धनदस्ततः ॥४८

आदित्य बोले—जैसा तुम कह रहे हो, ठीक है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है । तुम मेरे प्रथम पुत्र हो, कारणवश मैंने पहले ही तुम्हें उत्पन्न किया था । सुरज्येष्ठ ! वरदान देने के लिए मैं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ । इच्छानुसार कहो, इसमें शंका करने की आवश्यकता नहीं ।३९-४०

ब्रह्मा बोले—यदि भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न होकर उत्तम वरदान देना चाहते हैं तो गोपते ! आप की कृपा वश मैं सृष्टि कर सकूँ। देव ! मैं जो कुछ सृष्टि करता हूँ उससे कोई ख्याति प्राप्त नहीं होती है।४१

आदित्य बोले—देव चतुर्मुख ! मैं तुम्हारा अभिप्राय समझ गया किन्तु तुम्हारा पुत्र तो मैं नहीं हो सकता, हाँ, तुम्हारे कुल में मरीचि के यहाँ मैं पुत्र रूप से उत्पन्न हूँगा ।४२। चतुर्मुख ! उस समय तुम्हारी सृष्टि को ख्याति प्राप्त हो सकेगी । जगत्पते ! मेरी कृपा वश ऐसा ही होगा इसमें संदेह नहीं ।४३। पृथिवीपते ! इस प्रकार सूर्य के कहने पर ब्रह्मा ने विवस्वान् लोकनाथ, एवं जगत्पति सूर्य से नतमस्तक प्रणाम पूर्वक पुनः पूँछा—हे जगन्नाथ ! दिवस्पते ! मेरा निवास स्थान कहाँ होगा ।४४-४५

आदित्य बोले—मेरे महान् व्योम रूप के शिखर पर सभी देव गणों के साथ आप वहां निवास करना । पूरब दिशा में इन्द्र, आग्नेय में शांडिलीसुत (अग्नि), दक्षिण में यम, नैर्ऋत्य में निर्ऋति पश्चिम में वरुण, वायव्य में वायु, उत्तर की ओर कुबेर, ऐशान्य में शंकर, और मध्य भाग में विष्णु के साथ तुम्हारा निवास होगा । भानु की ऐसी बातें सुनकर प्रीतिपूर्वक ब्रह्मा ने कहा—नराधिप ! मैं अब अपने को कृतकृत्य मान रहा हूँ । इस प्रकार भास्कर के कथनानुसार उन्होंने समस्त कार्य संपन्न किया, वीर !

ऐशान्यां शंकरो देवो मध्ये त्वं विष्णुना सह । श्रुत्वैत्वं वचनं भानोर्वेधाः प्रीत्या तमब्रवीत् ॥४९
कृतकृत्य तथात्मानं मन्यते च नराधिप । चकार च तथा सर्वं भास्करोक्तमशेषतः ॥५०
स च सिद्धिं गतो वीर प्रसादाद्भास्करस्य तु । आदित्योऽपि वरं दत्त्वा ब्रह्मण्यो ब्रह्मणेऽनघ ॥५१
जगाम सह देवेन पर्वतं गन्धमादनम् । ददर्श तत्र भूतेशं तपस्तीव्रं समाश्रितम् ॥५२
कपर्दिनं शूलधरं चन्द्रार्ककृतशेखरम् । पूजयन्तं परं व्योम सुव्रतं तेजसान्वितम् ॥५३
गन्धमाल्योपहारैश्च नृत्यगीतप्रवादितैः । मुखवाद्यैश्च बहुभिः प्रणवस्तोत्रगीतिभिः ॥
सम्पूज्यैवं महद्व्योम जगाम शिरसा महीम्
दृष्ट्वैवं पूजयन्तं च भास्करस्त्रिपुरान्तकम् । तुष्टोवोचन्महातेजा गोश्रुताभरणं हरम् ॥५५
भीम तुष्टोऽस्मि ते वत्स वरं मत्तोवृणुष्व वै । तवान्तिकमहं प्राप्तो वरदं भूभृदालय ॥५६
श्रुत्वैवं वचनं भानोर्महादेवो महीपते । ददर्श लोकनाथं तं प्रज्वलन्तमनुत्तमम् ॥
उवाच प्रणतो भूत्वा अष्टाङ्गैर्भूतलं गतः ॥५७
नमो नमस्ते देवेश प्रभाकर दिवाकर । शुभालय शुभाधार विकर्तन शुभानन ॥५८
प्रसादं कुरु देवेश प्रसन्नस्त्वं विकर्तन । संसारार्णवमग्नस्य भव पोतो जगत्पते ॥५९
तवाङ्गसम्भवो देव पुत्रो हं वल्लभस्तव । यत्करोति महादेव पिता पुत्रस्य तत्कुरु ॥६०

आदित्य उवाच

एवमेतन्न सन्देहो यथा वदसि शङ्कर । ललाटात्त्वं समुत्पन्नः पुत्रः पुत्रवतां वर ॥६१

इसीलिए सूर्य की प्रसन्नता वश उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गयी । अनघ ! ब्रह्मण्य सूर्य भी ब्रह्मा को वर प्रदान कर देने के साथ गन्धमादन के लिए प्रस्थित हुए । वहाँ तीक्ष्ण तप करते हुए भूतेश, कपर्दी, शूलधारी एवं चन्द्रार्ध को अपने ललाट (भाग) में स्थापित करने वाले (शंकर) को उन्होंने देखा, जो सुव्रत, एवं तेजस्वी व्योम की पूजा कर रहे थे । गन्ध एवं मालारूपी उपहार तथा नृत्य, गायन, कथा श्रवण वाचन मुखवाद्यके एवं प्रणव पूर्वक स्तोत्रों के गान द्वारा उस महान् व्योम की पूजा करते हुए तदनन्तर शिर से प्रणाम करते हुए शंकर को महातेजस्वी सूर्य ने देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की और कान में कुण्डलों से विभूपित हर से उन्होंने कहा—भीम मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ । वत्स ! मुझसे मनइच्छित वर की याचना करो, पर्वत निवासिन् ! वर प्रदान के लिए मैं तुम्हारे समीप आया हूँ । महीपते ! भानु की ऐसी बातें सुनकर महादेव ने लोकनाथ, प्रदीप्त एवं अनुपम सूर्य के दर्शन करके अपने आठों अंगों से पृथ्वी में स्पर्श (साष्टांग दण्डवत्) द्वारा उन्हें प्रणाम करते हुए कहा ।४९-५७। देव ईश, प्रभा (प्रकाश) करने वाले, दिननायक, शुभ के विधान, आधार, विकर्तन एवं कल्याण मुख वाले आप को नमस्कार है, हे देवेश! आप कृपा प्रदान करे । विकर्तन ! आप प्रसन्न हों, हे जगत्पते ! संसार सागर में निमग्न मेरे लिए आप पोत (जहाज) की भाँति सहायक हों । देव ! मैं आप के ही अंगों से उत्पन्न, एवं आप का प्रिय पुत्र हूँ। महादेव ! पुत्र के निमित्त पिता जो कुछ करता है, वही आप भी मेरे लिए करने का कष्ट करें।५८-६०

आदित्य बोले—शंकर ! जैसा कह रहे हो, वैसा ही होगा, इसमें संदेह नहीं । पुत्रों में श्रेष्ठ ! मेरे भाल से उत्पन्न हुए हो । तुम्हारा कल्याण हो, अपनी अभिलाषानुसार वर की याचना करो, त्रिपुरान्तक

वरं वरय भद्रं ते मनसा यं यमिच्छसि । दुर्लभं चापि ते दास्ये त्रिपुरान्तक सुन्दर ॥६२

महादेव उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि । प्रयच्छ मे वरं भानो देहि भक्तिं समाचलाम् ॥६३
देवदानवगंधर्वयक्षरक्षोगणांस्तथा । निर्जित्याहं यथा देव युगान्ते संहरे प्रजाम् ॥६४
तथा प्रयच्छ मे देव स्थानं च परमं विभो । येनाहं हेतिसर्वं च जये देव जगत्प्रभो ॥६५

आदित्य उवाच

देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगान् । हनिष्यसि जगच्चापि युगान्ते त्रिपुरान्तक ॥६६
यदेतत्पूजितं नित्यं मद्रूपं व्योम चोत्तमम् । एतत्त्रिशूलं परमं तव शस्त्रं भविष्यति ॥
ईशाने च तथा भागे व्योम्नो वासो भविष्यति ॥६७

महादेव उवाच

एवं भवतु मे देव यः प्रसादस्त्वया कृतः । कृतकृत्योऽस्मि देवेश यन्मे देवो वरप्रदः ॥६८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मनिरूपणं
नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५५।

सुन्दर ! कठिन से कठिन वस्तु भी मैं तुम्हें प्रदान करूँगा ॥६१-६२

महादेव ने कहा—हे देव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है, तो भानो ! अपनी अचल भक्ति मुझे प्रदान कीजिए ।६३। हे देव ! दानव, गन्धर्व, यक्ष एवं राक्षसों, पर विजय प्राप्त कर युग के अन्त में प्रजा का संहार कर सकूँ ।६४। हे देव, विभो ! मुझे उत्तम स्थान भी प्रदान कीजिए, जगत्प्रभो ! जिससे मैं समस्त अस्त्रों पर विजय प्राप्त करूँ ।६५

आदित्य बोले—त्रिपुरान्तक ! युग के अन्तिम समय में देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस एवं नागों आदि समस्त जगत् का संहार करने में आप अवश्य समर्थ होंगे क्योंकि मेरे उत्तम रूप व्योम की तुमने पूजा की है । इससे यह त्रिशूल तुम्हारा परम शस्त्र होगा और व्योम के ईशान भाग में तुम्हारे निवास भी होंगे ।६६-६७

महादेव ने कहा—हे देव ! आप ने प्रसन्न होकर मेरे लिए जो कुछ वर (प्रसाद) रूप में प्रदान किया है, वह वैसा ही हो, देवेश ! मैं अब कृतकृत्य हो गया, क्योंकि आप ऐसे देव मेरे वरदायी हैं ।६८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म निरूपण नामक
एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।१५५।

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रैसुरोपाख्यानवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्थं दत्त्वा वरं भानुरीश्वराय विशाम्पते । शालग्रामं जगामाशु वरं दातुं हरेर्नृप ॥१
ददर्श स हरिं तत्र तपन्तं परमं तपः । कृष्टाजिनधरं शान्तं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥२
पूजयन्तं महद्व्योम चक्राकारमनौपमम् । गन्धमाल्योपहारैश्च नृत्यगीतप्रवादितैः ॥३
एवं सम्पूज्य तद्व्योम भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । जगाम शिरसा भूमिं हृदि ध्यायन्दिवाकरम् ॥४
विष्णुं तं प्रणतं दृष्ट्वा तुष्टो देवो विभावसुः । उवाच विष्णुमामन्त्र्य पश्य मामागतं हरे ॥५
तद्वाक्यं केशवः श्रुत्वा शिरसा च महीं गतः । नमस्ते सर्वदेवेश नमस्ते गगने चर ॥६
जगत्पते नमस्तेऽस्तु ग्रहाणां पतये नमः । दारिद्र्यव्याधिदुःखघ्न नमस्ते भवनाशन ॥७
आदित्यार्क रवे भानो भग पूर्ण दिवाकर । नमस्ते सर्वतत्त्वज्ञ सर्वपापविवर्जित ॥८
प्रसीद मे जगन्नाथ हंसानघ दिवस्पते । संसारार्णवमग्नानां त्राहि देव वृषध्वज ॥९
पुत्रोऽहं तव देवेश द्वितीयो ब्राह्मणोऽनघ । पितेव पुत्रस्य रवे देहि कामाञ्जगत्पते ॥१०
विष्णोर्वचनमाकर्ण्य हर्षं प्राप्य दिवाकरः । उवाच कुरुशार्दूल हर्षगद्गदया गिरा ॥११

अध्याय १५६

त्रैसुरोपाख्यान वर्णन

सुमन्तु बोले—विशांपते ! शिव के लिए इस प्रकार वर प्रदान करने के उपरांत सूर्य ने विष्णु के लिए वर प्रदान के निमित्त शालग्राम को प्रस्थान किया ।१। वहाँ परम तप करते हुए विष्णु को देखा, जो कालामृग चर्म धारण कर, शान्त एवं अपने तेज द्वारा प्रदीप्त हो रहे थे ।२। तथा जो नित्य गन्ध मालोपहार, नृत्य, गायन एवं कथाओं द्वारा चक्राकार, एवं अनुपम उस महान् व्योम की पूजा करते थे । इस प्रकार उस व्योम की पूजा भक्ति तथा श्रद्धा द्वारा सुसम्पन्न करके हृदय में सूर्य के ध्यान पूर्वक पृथिवी में नतमस्तक हो प्रणाम करते हुए विष्णु को सूर्य ने देखा ! देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने विष्णु को बुलाकर कहा भी कि—हरे ! मुझे देखो, मैं आ गया हूँ ।३-५। उनकी बातें सुनकर केशव पृथिवी में मस्तक रख उन्हें प्रणाम करने लगे । समस्त देवों के ईश को नमस्कार है, आकाशचारी को नमस्कार है, जगत्पति को नमस्कार है, ग्रहों के पति को नमस्कार है, दारिद्य, रोग, एवं दुःख के नाश पूर्वक संसार (जन्म मरण दुःख) के नाश करने वाले को नमस्कार है, आदित्य, अर्क, रवि, भानु, भग, पूर्ण, एवं दिवाकर नाम वाले, समस्त तत्त्वों के ज्ञाता तथा समस्त पापों से मुक्त को नमस्कार है ।६-८। हे जगन्नाथ, हंस, अनघ, एवं हे दिवस्पते ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों, हे वृषध्वज देव ! संसार सागर में डूबते हुए मेरी रक्षा करो ।९। हे देवेश, अनघ ! मैं तुम्हारा दूसरा ब्राह्मण पुत्र हूँ, हे रवे, हे जगत्पते, पुत्र के लिए पिता की भाँति सभी (सफल) कामनाएँ प्रदान कीजिए ।१०। कुरुशार्दूल ! इस भाँति विष्णु की बातें सुनकर सूर्य अत्यन्त हर्षित हुए, उन्होंने गद्गद वाणीसे कहा—कृष्ण, महाबाहो ! तुम्हारा कथन साधु (ठीक) है,

साधु कृष्ण महाबाहो तुष्टोऽहं तव केशव । निशाम्य ते परां भक्तिं श्रद्धां च पुरुषोत्तम ॥१२
वरं वरय तस्मात्त्वं वत्स यं मनसेच्छसि । वरदोऽहमनुप्राप्तो भक्त्याक्रान्तस्तवानघ ॥१३
निशम्य वचनं भानोर्विष्णुर्भक्त्या समन्वितः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥१४
कृतकृत्योऽस्मि देवेश नास्ति धन्यतरो मम । यस्य मे भगवंस्तुष्टो वरदस्त्वं गतः स्वयम् ॥१५
यदि तुष्टो मम विभुर्भक्त्या क्रीतो मया यदि । प्रयच्छ त्वचलां भक्तिं यथा शत्रुं जयाम्यहे ॥
तथा मम वरं देहि सर्वारातिविनाशनम् ॥१६
मम स्थानं च परमं सर्वलोकनमस्कृतम् । लोकानां पालने युक्तिं बलं वीर्यं यशः सुखम् ॥१७
एवमुक्तो रविर्भक्त्या विष्णुना वाक्यमुत्तमम् । उवाच कुरुशार्दूल गजन्नादयन्निव ॥१८
साधु साधु महाबाहो ब्रह्मणस्त्वं जघन्यजः । हरस्य अग्रजश्चापि सर्वदेवनमस्कृतः ॥१९
भक्तश्चापि ममात्यन्तं ब्रह्मण्यश्च सदानघ । तस्मात्तवाचला भक्तिर्भविष्यति ममोपरि ॥२०
एतदेव महद्व्योम चक्रं ते प्रभविष्यति । सर्वायुधवरं वीर सर्वारातिविनाशनम् ॥
तथा स्थानं च परमं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥२१
इत्थं भानोर्वरं प्राप्य हरिर्देवो जगत्पतिः । महाप्रसादमित्युक्त्वा जगाम शिरसा महीम् ॥२२
भास्करोऽपि वरं दत्त्वा केशवायामितौजसे । जगामाशु महाराज स्वपुरं विबुधाधिपः ॥२३
लोकानां पालने शक्तिं बलं वीर्यं यशः सुखम् । दत्त्वा कृष्णाय देवेशस्तथान्यदपि कांक्षितम् ॥२४

केशव ! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ । पुरुषोत्तम ! मैंने तुम्हारी श्रद्धापूर्ण उत्तम भक्ति देख ली ।११-१२। वत्स ! जो तुम्हारी इच्छा हो, वर की याचना करो, अनघ ! मैं तुम्हारी भक्ति से आक्रांत होकर वर दान देने लिए यहाँ आया हूँ ।१३। सूर्य की ऐसी बातें सुनकर भक्ति पूर्वक विष्णु ने हाथ जोड़कर यह कहा—देवेश ! मैं कृतकृत्य हो गया, मेरे समान कोई धन्यतर नहीं है, क्योंकि भगवन् ! मेरे लिए वर प्रदान करने के निमित्त आप स्वयं उपस्थित हुए हैं ।१४-१५। यदि आप विभु मुझसे प्रसन्न हैं तब मेरी भक्ति से क्रीत होने (खरीदने) के समान है, तो मुझे निश्चला भक्ति प्रदान कीजिए, जिससे मैं शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकूँ । हे समस्त शत्रु नाशक ! मुझे यही कहना चाहिए ।१६। मेरे लिए समस्त लोक के वन्दनीय उत्तम स्थान तथा लोकों के पालन के लिए युक्ति, बल, पराक्रम, यश एवं सुख भी प्रदान कीजिए ।१७। कुरुशार्दूल ! विष्णु के इस प्रकार कहने पर सूर्य ने अपनी गर्जना पूर्ण वाणी से जगत् को निनादित करते हुए कहा—महाबाहो ! साधु, साधु ! तुम ब्रह्मा से छोटे एवं शिव से सर्वदेव पूजित अग्रज (बड़े भ्राता) हो । अनघ ! तुम मेरे महान एवं ब्रह्मण्य भक्त हो, इसलिए मेरी निश्चला भक्ति तुम्हें प्राप्त होगी ।१८-२०। यही महान् व्योम रूप में चक्र तुम्हारा श्रेष्ठ शस्त्र होगा, वीर ! यही समस्त शत्रुओं का नाश करेगा और समस्तलोक वन्दनीय एवं उत्तम स्थान की प्राप्ति भी इसी से होगी ।२१। जगत्पति नारायण देव ने इस प्रकार सूर्य से वर की प्राप्ति कर उसे (वर को) 'महाप्रसाद' के रूप में स्वीकार कर के उन्हें नतमस्तक प्रणाम पूर्वक प्रस्थान किया । महाराज ! देव नायक सूर्य भी अजेय तेज वाले विष्णु को वर प्रदान कर अपने नगर के लिए प्रस्थित हो गये ।२२-२३। उन्होंने कृष्ण के लिए लोकों के पालन करने की शक्ति, बल, वीर्य, यश, एवं सुख के प्रदान पूर्वक उनके और मनोरथ की भी पूर्ति की । इस

एवं ब्रह्मादयो देवाः पूजयित्वा दिवाकरम् । शक्तिमन्तो बभूवुस्ते सर्गादीनां प्रवर्तने ॥२५
इति ते कथितं पुण्यमाख्यानं पापनाशनम् । त्रिदैवत्यमुपाख्यानं त्रैसुरं लोकपूजितम् ॥२६
स्तोत्रत्रयसमायुक्तं धर्मकामार्थसाधनम् । धर्म्यं स्वर्ग्यं तथा पुण्यमारोग्यधनधान्यदम् ॥२७
य इदं शृणुयान्नित्यं पठेत्स्तोत्रत्रयं च यः । सोऽग्नेयं यानमारूढो याति भानोः परं पदम् ॥२८
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमश्नुते । विद्यार्थी लभते विद्यां प्रसादाद्भास्करस्य तु ॥२९
तेजसा रविसंकाशः प्रभया पृश्निसंनिभः । मोदते सुचिरं कालं ज्ञानिनामुत्तमो भवेत् ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे त्रैसुरोपाख्यानवर्णनं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५६।

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यावतारकथाप्रस्ताववर्णनम्

शतानीक उवाच

एतन्मे कौतुकं ब्रह्मन्प्रचुरं ब्रह्मणे रविः । दत्तवांस्तव पुत्रत्वमन्वये कश्यपस्य तु ॥१
यास्यामि द्विजशार्दूल प्रपन्नतिमिरापहः । एतन्मे महदाश्चर्यं शंस भूमिं कथं व्रजेत् ॥२
देवादीनां प्रणेता यो यो भुवि प्रसवो विभुः । स कथं भूतले व्योम जन्मभाक् संभविष्यति ॥३
किमर्थं दिव्यमात्मानं जन्मने स नियोक्ष्यति । यश्चक्रं वर्तयत्येको ब्रह्मादीनां मनोरमम् ॥४

इस प्रकार ब्रह्मादि देवता सूर्य की पूजा करके सृष्टि आदि कार्यों के लिए सुशक्ति संपन्न हुए । इस भाँति मैंने तुम्हें इस पुण्य कथा को सुनाया जो पाप नाशक तीनों देव संबंधी कथाओं से युक्त तीनों देवों एवं लोकों द्वारा पूजित है । जो इस तीनों कथाओं समेत आख्यान को धर्म, अर्थ, एवं काम साधक, धार्मिक, स्वर्ग संबंधी, पुण्य, आरोग्य, धन एवं धान्य प्रदान करने वाला है, सुनता या पाठ करता है, वह आग्नेय विमान पर बैठकर सूर्य के उत्तम लोक की प्राप्ति करता है । सूर्य के कृपावश पुत्रहीन को पुत्र, निर्धन को धन, तथा विद्यार्थी को विद्या की प्राप्ति होती है । सूर्य के समान तेजस्वी एवं पृश्नि (सूर्य) के समान प्रभापूर्ण, तथा ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ होकर वह चिरकाल तक आनन्दका अनुभव करता है ।२४-३०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में त्रैसुरोपाख्यान वर्णन नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ।१५६।

अध्याय १५७

सूर्यावतारकथाप्रस्ताव वर्णन

शतानीक बोले—हे ब्रह्मन् ! सूर्य ने ब्रह्मा के लिए वरदान दिया कि कश्यप के कुल में पुत्र रूप से उत्पन्न हूँगा । द्विजशार्दूल ! यही सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है कि घोर अन्धकार नाशक सूर्य पृथिवी पर किस भाँति जायेंगे ।१-२। इस भूतल में जो देवों का प्रणेता तथा अन्यों का उत्पत्ति स्थान है वहीं विभु व्योम पृथिवी पर कैसे जन्म ग्रहण कर सकता है ।३। वह ब्रह्मादिक देवों के एक मनोहरचक्र के रूप में सदैव वर्तमान रहता है, अतः अपने दिव्य आत्मा को जन्म ग्रहण के लिए वह कैसे प्रेरित कर सकता है । हे

गार्हपत्येन विधिना तद्वद्धार्येण कर्मणा । अग्निमाहवनीं चैव वेदिं चैव कुशं स्रुचम् ॥
प्रोक्षणीयव्रतं चैव अवभृथं तथैव च ॥१९
सर्वानिमांश्च यश्चक्रे हव्यभागप्रदान्मुखे । हव्यादांश्च सुरान्यज्ञे कव्यादांश्च पितॄनपि ॥२०
भागार्थं मधुपानाय चक्रे यो यज्ञकर्मणि । पूषणं च सुतं सोमं पवित्रामरणीमपि ॥२१
यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञांश्चापि सऋत्विजः । सदस्यान्यजमानांश्च मेधाविनस्तथोत्तमान् ॥२२
विभेजे पुरा सर्वं पारमेष्ठ्येन कर्मणा । युगानुरूपो यः कृत्वा लोकाननुचरं क्रमात् ॥२३
क्षणान्कलाश्च काष्ठाश्च कालश्चैकल्यमेव च । मुहूर्तास्तिथयो मासाः पक्षाः संवत्सरास्तथा ॥२४
ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं नृषु । आयुः क्षेत्राण्यपचयोपचयाश्चैव योऽकरोत् ॥२५
सृष्टा लोकास्त्रयोऽनन्ता येन ज्ञानेन वर्त्मना । सर्वभूतगणाः सृष्टाः सर्वभूतात्मना सदा ॥२६
प्रणामत्रयपूर्वेण योगेन रमते च यः । यो गतागतिपोतेन त्राताऽस्ति जगदीश्वरः ॥२७
यो गतिर्धर्मयुक्तानां गतिर्योऽपापकर्मणाम् । चातुर्वर्ण्यप्रभावश्च वपुर्होत्रस्य रक्षिता ॥२८
धातुर्वैद्यस्य यो वेत्ता चतुराश्रमसंश्रयः । दिगम्बरानुभूतश्च वायुर्वायुविभावनः ॥२९
अग्नीषोमात्मकं ज्योतिर्योगीशः क्षणदान्तकः । यः परं श्रूयते ज्योतिर्यः परं श्रूयते तपः ॥३०
यं परं परमं प्राहुः परमात्मानमच्युतम् । ब्रह्मादिभिः स्तुतो देवो यश्च दैत्यान्तकृद्विभुः ॥३१
युगान्तेष्वन्तको यस्तु यश्च लोकान्तकोत्तमः । सेतुर्यो लोकसेतूनां मध्ये यो मध्यकर्मणाम् ॥३२

का नाश कर समस्त क्रियाओं को प्रारम्भ कराते हैं यज्ञ में दक्षिण की ओर स्थित रस्सी, ओखली तथा मूसल के दर्शन पूर्वक गार्हपत्य विधान द्वारा (यज्ञ) में आह्वनीय अग्नि वेदी, कुशाओं, स्रुच, प्रोक्षणीय व्रत, तथा अवभृथ, इन पदार्थों के निर्माण करके मुख में हव्य भाग को धारण किया है। यज्ञ में हव्य भक्षण करने के लिए देवताओं एवं (श्राद्ध) में कव्य भक्षण के लिए पितरों का निर्माण किया है। भाग समेत मधुपान के लिए यज्ञ में जिसने पूषा (सूर्य) सुत, सोम, पवित्र, अरणी, यज्ञीय द्रव्य, ऋत्विक समेत यज्ञ, सदस्य एवं उत्तम मेधावी यजमान की सृष्टि की है।१५-२२। ब्रह्म कर्म द्वारा जिसने सब का विभाग किया। युगों के अनुरूप छोटे बड़े लोकों का निर्माण, क्षण, कला, काष्ठ (दिशाएँ) किल, मुहूर्त, तिथि, मास, पक्ष, संवत्सर (वर्ष), तथा ऋतुओं के निर्माण कर इस भाँति मनुष्यों के लिए भाँति-भाँति के काल एवं योगों की प्रमाण रूप में रचना की है। आयु और शरीर की रचना कर शरीर की वृद्धि एवं ह्रास का निर्माण किया है।२३-२५। जिसने अपने ज्ञानयोग द्वारा अनंत बार तीनों लोकों की रचना की है और सर्व भूतात्मा होकर समस्त भूत (जीव) गणों की सृष्टि की है। जो तीन बार प्रणाम रूपी योग करने से प्रसन्न रहता है, तथा जो जगदीश्वर रूप होकर गतागत रूपी जहाज त्राण करता है। जो धार्मिकों एवं पापहीनों का गतिरूप है, तथा चारों वर्णों में प्रभाव उत्पन्न कर जिसकी शरीर (अग्नि) होत्र (यज्ञ) की रक्षा करती है।२६-२८। धातुओं एवं वैद्यों का वेत्ता, चारों आश्रमों में स्थित, दिगम्बर, अनुभूतवायु, वायु संचालक, अग्निषोमात्मक, ज्योति, योगीश, रात्रिनाशक, परम ज्योति, उत्तम तप तथा परमात्मा एवं अच्युत कहा जाता है, ब्रह्मादि देव जिसकी स्तुति करते हैं, जो दैत्यों का नाशक तथा विभु है, जो युग के अन्त में सृष्टि (नाशक), ऊपरी उत्तम लोक, लोक के सेतुओं में सेतु, मध्य भाग में मध्य कर्मों तथा वेद निष्णात विद्वानों

वेत्ता यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभविष्णुनाम् । सौम्यभूतस्तु सौम्यानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ।।३३
मानुषाणां मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् । विनयो नयवृत्तीनां तेजस्तेजस्विनामपि ।।३४
विग्रहो विग्रहाणां च गतिर्गतिमतामपि । आकाशप्रसवो वायुर्वायुः प्राणो हुताशनः ।।
देवाहुतिप्रदानोद्यत्प्राणाग्निस्तमनाशनः ।।३५
रसाद्धि शोणितं भवति शोणितान्मांसमुच्यते । मांसान्मज्जावसोर्जन्म मज्जनोस्थीनि जन्मतः ।।३६
अस्थिमज्ज्ञः समभवत्ततो वै शुक्रमादिशेत् । शुक्राद्गर्भः समभवद्रसमूलेन कर्मणा ।।
तत्रापः प्रथमो भागः स सौम्यो राशिरुच्यते ।।३७
ततःक्षमासम्भवो ज्ञेयो द्वितीयो राशिरुच्यते । शुक्रं सोमात्मकं विद्यादात्मरूपं यदात्मकम् ।।३८
भवो रसात्मकस्तेषां वीर्यं च शशिपावकम् । कफवर्गे भवेच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम् ।।३९
कफस्य पृथिवी स्थानं पित्तं नाभौ प्रतिष्ठितम् । देवस्य मध्यहृदयं स्थानं तु मनसः स्मृतम् ।।
नाभिकोष्ठान्तरस्थं तु तत्र देवो दिवाकरः ।।४०
मन प्रजापतिर्ज्ञेय कफ सोमो विनाव्यते । पित्तमग्नि स्मृतो यस्मादग्नीषोमात्मकं जगत् ।।४१
एवं प्रवर्तिते गर्भे वर्धितेऽम्बुदसन्निभे । वायु प्रवेशं सञ्चक्रे सङ्गत परमात्मना ।।४२
ततोऽङ्गानि विसृजते बिभर्ति परिवर्तयन् । प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।।४३
प्राणोऽस्य प्रथमं स्थानं वर्धयन्परिवर्तते । अपानं पश्चिमे काय उदानोर्ध्वं शरीरगः ।।
व्यानोऽस्य व्यापको देहे समानः सन्निवर्तते ।।४४

का ज्ञाता, प्रभावशालियों के प्रभु, सौम्यों के सौम्य, अग्नि तेज में अग्नि, मनुष्यों में मनु, तपस्वियों में तप विनीतवादियों में नम्रता, तेजस्वियों में तेज, शरीरधारियों में शरीर, गतिमानों में गति, वायु के उत्पत्तिस्थान, आकाश, प्राण, अग्नि, देवों के लिए आहुति प्रदान करने के लिए प्राणाग्नि एवं तमोनाशक है रस से शोणित, शोणित से मांस, मांस से मज्जा, मज्जा से अस्थियाँ, और उससे वीर्य की उत्पत्ति होती है। वीर्य से रसमूलात्मक कर्म द्वारा गर्भ होता है। उसमें प्रथम भाग जल होता है, जिसे सौम्य राशि कहा है।२९-३७। उससे क्षमा की उत्पत्ति होती है, जिसे दूसरी राशि कहते हैं। वीर्य, सोमात्मक कहा जाता है। यही अपना रूप है। वह वीर्य रसात्मक एवं शशि के समान धौत, पावक के समान तेज पूर्ण होता है। वही कफ वर्ग में शुक्र (वीर्य) और पित्त वर्ग में शोणित (रक्त) हो जाता है। कफ का स्थान पृथ्वी, पित्त का नाभिस्थान, मन (आत्मा) देव का मध्य हृदयस्थान बताया गया है। नाभि के बीच वाले कोष्ठ में सूर्य देव स्थित रहते हैं।३८-४०। मन, प्रजापति (ब्रह्मा), कफ सम, एवं पित्त अग्नि रूप है ऐसा अग्नीषोमात्मक जगत् की व्याख्या में बताया गया है। इस प्रकार बादल के समान बढे हुए गर्भ में परमात्मा से संगत होकर वायु प्रवेश करता है। पश्चात् अंगों की उत्पत्ति, पालन एवं परिवर्तन (वायुद्वारा) हुआ करता है। वह वायु प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान रूपात्मक होता है। प्रथम स्थान की वृद्धि एवं परिवर्तन प्राण वायु, शरीर के पश्चिमी (पृष्ठ) भाग को अपानवायु, ऊपरी भाग में उदान वायु, शरीर में व्यान तथा समस्त देह में समान भाव से व्यापक समान वायु रहता है। जीव के प्रविष्ट होने पर उस शरीर में इन्द्रियाँ प्रकट होती हैं—पृथिवी, वायु, आकाश, जल तथा ज्योति तेज रूप

भूतान्यपि ततस्तस्य जायन्तेऽव्यक्तयोनितः । पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिश्च पञ्चमः ॥४५
तस्येन्द्रियाणि पिष्टानि स्वं स्वं योगं प्रचक्रमुः । पार्थिवं देहमाहुस्तु प्राणात्मानं च मारुतम् ॥४६
निद्रा ह्याकाशयोनिश्च जलाख्ये प्रवर्तते । ज्योतिश्चक्षुषि तज्ज्ञेयं सर्वं तत्तामसं स्मृतः ॥४७
ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य नाव प्रवर्तितम् । एवं यः सृजते लोकान्स देवासुरमानवान् ॥४८
स कथं देवदेवेशो गर्भे वर्तति चांशुमान् । यथोदरमदित्यास्तु गर्भे स्वयं प्रविशत्पुरा ॥४९
एवं मे संशयो ब्रह्मन्नेव विस्मयो महान् । कथं रविर्ययौ गर्भभावं द्विजवरोत्तमे ॥५०
आश्चर्यं परमं पृच्छे त्वामहं भास्करस्य वै । भानोरुत्पत्तिराश्चर्यं हृदि मे परिवर्तते ॥५१
एतदाश्चर्यमाख्यानं कथयस्व महामुने । समाख्याहि बलं वीर्यं भानोरमिततेजसः ॥५२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यावतारकथाप्रस्ताववर्णनं
नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५७।

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मेषु सूर्योत्पत्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

प्रश्नभारो महांस्तात त्वयोक्तो रश्मिमालिनि । यथाशक्ति तु वक्ष्यामि शृणुतां भानवं यशः ॥१

में वे इन्द्रियाँ अपना-अपना संबंध स्थापित करती हैं। देह को पार्थिव एवं वायु को प्राण कहते हैं। आकाश से उत्पन्न निद्रा का जलाशय में वर्तमान रहना बताया गया है। ज्योति के कुछ अंश को नेत्रों में रखा जाता है, जिसे तामस भी कहा गया है। समस्त इन्द्रिय वर्ग एवं विषयों में जिसका पराक्रम व्याप्त है, और जिसने देव, असुर एवं मनुष्य के ऐसे लोकों की रचना की है, वह देवाधिदेव अंशुमान (सूर्य) गर्भ में कैसे प्रविष्ट होगा, जिसे कि अदिति के गर्भ में वह पहले प्रविष्ट हुआ था। ब्रह्मन् ! यही मुझमें महान् विस्मय उत्पन्न कर रहा है कि सूर्य किस प्रकार गर्भ में प्रविष्ट होंगे। मुझे सूर्य के बारे में महान् आश्चर्य हो रहा है। इसीलिए आपसे पूछ रहा हूँ क्योंकि सूर्य की उत्पत्ति मेरे हृदय में एक आश्चर्य उत्पन्न किये है। हे महामुने ! अजेय तेज वाले सूर्य का आश्चर्यकारी यह आख्यान तथा उनके बल, वीर्य का भी वर्णन कीजिए।४१-५२

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सूर्यावतारकथा प्रस्ताव वर्णन
नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त।१५७।

अध्याय १५८

सौर धर्मों में सूर्योत्पत्ति का वर्णन

सुमन्तु बोले—तात ! तुमने तो किरणमाला वाले सूर्य के बारे में प्रश्नों की झड़ी लगा दी, अस्तु, मैं यथाशक्ति भानु के यश का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! ।१

भानोः प्रभावश्रवणे यस्य ते मतिरुत्थिता । हन्त भानोः प्रवृत्तिं च शृणु दिव्यां मयेरिताम् ॥२
[1]सहस्रास्यं सहस्राक्षं सहस्रकिरणं च यम् । सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम् ॥३
सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम् । सहस्रदं सहस्रारिं सहस्रभुजमव्ययम् ॥४
स्रवनं मसनं चैव हव्यं होतारमेव च । पात्राणि समन्तोराणि वेदवेदी चरुं शुभम् ॥५
प्रोक्षिणीं यूपमुसलं प्रोक्षणं दक्षिणायनम् । अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं तथा ॥६
यूपं समित्स्रुवं दर्वीं ग्रावाणोलूखलानि च । प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं यजनं च यत् ॥७
रहस्यानि प्रमाणानि स्थावराणि चराणि च । प्रतिष्ठितानि यस्मिंश्च स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥८
मन्त्रयज्ञवहं वह्निं भार्गवस्य च । अग्रभुजां सोमभुजां मध्ये विद्धि तदुत्तमम् ॥९
आयुर्वेदविदो विप्रा यजन्ते सततं विभुम् । तस्य भानोः सुरेशस्य वीर चन्दनमालिनः ॥१०
जन्मान्यनेकसाहस्राणि समतीतान्यनेकशः । भूयश्चैव भविष्यन्ति विनश्यन्ति दिने दिने ॥११
यत्पृच्छसि महाराज पुण्यां दिव्यां कथां शुभाम् । यदर्थं भगवान्भानुः कश्यपस्य सुतोऽभवत् ॥१२
तामहं ते प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वां समासतः । हितार्थं सर्वमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च ॥१३
बहुधा सर्वभूतात्मा स्वयं सर्वत्र जायते । तथा समभवद्देवः कश्यपस्यादितेः सुतः ॥१४
तुष्टो दत्त्वा वरं वीर विरञ्चस्य महात्मनः । यं यं जनयते पुत्रमदितिः कश्यपाद्विभो ॥१५
स स याति विनाशं वै तत्क्षणादेव भारत । दृष्ट्वा सुतान्नश्यमानान्पुत्रशोकान्विताऽदितिः ॥१६

सूर्य के प्रभाव को सुनने के लिए तुम्हारी बुद्धि अग्रसर हुई है, अतः सूर्य की दिव्य प्रवृत्ति (कथा) मैं कह रहा हूँ, सुनो ! ।२। जिसके सहस्र मुख, सहस्रनेत्र, सहस्रकिरणें, सहस्र शीश, सहस्र हाथ, अव्यय, सहस्र जिह्वा एवं देदीप्यमान सहस्र मुकुट हैं तथा जो प्रभु, सहस्रदानी, सहस्रशत्रु जेता, सहस्र भुजाएँ अविनाशी, स्रवन, मसन, हव्य, होता, (यज्ञ) पात्र, वेद वेदी, शुभ चरु, प्रोक्षित, यूप, मूसल, प्रोक्षण, दक्षिणायन, आवर्यु, सामगविप्र, सदस्य, सदन, यूप (स्तम्भ), समिधा, स्रुवा, दर्वी, ओखली प्रथम वंश जय भूमि, होता एवं यजन रूप हैं और रहस्य, प्रमाण तथा स्थावर चर जिसमें सुव्यवस्थापूर्वक प्रतिष्ठित हैं, और भूमि, कुश, मंत्र, यज्ञ, अग्नि, भार्गव, अग्रभोजी, सोमभोजी, तीनों में प्रधान हैं, आयुर्वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणगण जिस विभु की निरन्तर पूजा करते हैं, वीर ! उस देवेश चन्दन माली सूर्य के अनेकोंबार सहस्रों जन्म हो चुके हैं और फिर भी दिन-प्रतिदिन उत्पन्न एवं नष्ट होते रहेंगे ।३-११। महाराज ! जिस दिव्य एवं पुण्यकथा की चर्चा आप कर रहे हैं, जिसमें भगवान् सूर्य कश्यप के पुत्र हुए, उसी कथा को विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ, सुनो ! मनुष्यों के कल्याणार्थ एवं लोकों के उत्पन्नार्थ सर्वभूतात्मा सूर्य जिस प्रकार स्वयं अनेकों बार अनेक रूप से उत्पन्न होते हैं, उसी भाँति (सूर्य) कश्यप द्वारा अदिति पुत्र भी हुए ।१२-१४। वीर ! प्रसन्न न होकर सूर्य ने महात्मा ब्रह्मा को यही वर प्रदान किया था । भारत ! कश्यप के संयोग से अदिति जिन पुत्रों को उत्पन्न करती थीं, वे उसी समय नष्ट हो जाते थे । इस प्रकार पुत्रों को नष्ट होते देखकर पुत्र शोक से दुःखी अदिति ने एक बार चिंतित एवं आँखों में आँसू भरे कश्यप की

---

१. देवा विरश्मीति क्षेपः ।

जगामाथ कश्यपस्याशे शोकव्याकुलितेक्षणा । साऽपश्यत्तं च मारीचं मुनिं दीप्तं तपोनिधिम् ॥१७
आद्यं देवगुरुं विप्रं दिव्यं त्रिषवणाम्बुभिः । तेजसा वह्निसंकाशं सौरं वृकसमप्रभम् ॥१८
न्यस्तदण्डश्रिया युक्तं बद्धकृष्णाजिनाम्बरम् । वल्कलाजिनसंवीतं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसम् ॥१९
हुताशमिव दीप्यन्तं तपन्तमिव भास्करम् । अथादितिश्च दृष्ट्वैवं भर्तारममितौजसम् ॥२०
शोकगद्गदया वाचा इदं वचनमब्रवीत् । किमर्थं भगवान्देवो निरुद्योगस्तु तिष्ठति ॥२१
जातो जातो हि मे पुत्रः सद्य एव विनश्यति । श्रुत्वा तु वचनं तस्याः कश्यपो मुनिसत्तमः ॥२२
चकार मानसे बुद्धिं ब्रह्मलोकं प्रति प्रभो । स गत्वा ब्रह्मभवनं नानाभावसमन्वितम् ॥२३
तद्वाक्यमुक्तं तं सर्वं यदुक्तं तस्य जायया । कश्यपस्य वचः श्रुत्वा कञ्जजो वाक्यमब्रवीत् ॥२४
पुत्र गच्छाम सदनं भानोः परमदुर्लभम् । इत्युक्त्वा यानमारुह्य आग्नेयं पद्मलोचनः ॥२५
वेधा जगाम भवनमादित्यस्य महात्मनः । अदितिः कश्यपो ब्रह्मा जग्मुर्विपुलमाश्रिताः ॥२६
ते मुहूर्तेन सम्प्राप्ताः सूर्यलोकं सुवर्चसम् । दिव्यकामगमैर्यानैर्यथार्हं कुरुनन्दन ॥२७
आदित्यं द्रष्टुमिच्छन्ति तेजसां राशिमुत्तमम् । गच्छन्तस्ते च विस्तीर्णामादित्यस्य परां सभाम् ॥२८
षट्पदोद्गीतनिनदां सामगैस्तु समीरिताम् । ऋतवो बह्वृचमुखाः प्रोक्ताः पुण्यवदक्षराः ॥२९
तुष्टुवुः पुरुषव्याघ्रं विततेषु च कर्मसु । यज्ञसन्धौ वेदविदां पदक्रमविदां तथा ॥३०

कुटिया के लिए प्रस्थान किया, वहाँ पहुँचकर उसने कश्यप को देखा, जो मरीच के पुत्र, मुनि, दीप्त, तपोनिधान, सबमें प्रथम, देवों के गुरु, विप्र, दिव्य, जलद्वारा त्रैकालिक स्नान करने वाले, अग्नि के समान तेजस्वी, सौर, वृक के समान कान्तिमान, त्याग किये गये दण्डकी श्री से सम्पन्न, काले मृगचर्म पहिने, वल्कल एवं (मृग) चर्म धारण किये, देदीप्यमान, ब्रह्मतेज संपन्न, अग्नि के समान दिव्य (सुशोभित) तथा भास्कर की भाँति तप रहे, ऐसे अमित तेज वाले अपने भर्ता को देखकर अदिति ने चिन्तित होने के नाते गद्‌गद वाणी द्वारा उनसे कहा—मेरे भगवान् पतिदेव (पुत्र के विषय में) उद्योगहीन होकर क्यों बैठे हैं। क्या आपको मालूम नहीं कि मेरे पुत्र उत्पन्न होते ही मर जाते हैं। प्रभो! मुनिश्रेष्ठ कश्यप ने अपनी पत्नी की बातें सुनकर ब्रह्मलोक जाने के लिए मन में निश्चय किया और गये भी। भाँति-भाँति की सृष्टि कला से युक्त उस ब्रह्मलोक में पहुँचकर उन्होंने अपनी स्त्री की सभी बातें ब्रह्मा से कह सुनायी। कश्यप की बातें सुनकर ब्रह्मा ने कहा—पुत्र! मैं सूर्य के उस अत्यन्त जन दुर्लभ भवन को जा रहा हूँ, तुम भी चलो। इस प्रकार कहकर कमल नेत्र ब्रह्मा ने आग्नेय विमान पर बैठकर महात्मा सूर्य के गृह को प्रस्थान किया। कश्यप और ब्रह्मा के साथ उस बड़े विमान पर अदिति भी बैठी थी।१५-२६। कुरुनन्दन! इस प्रकार दिव्य एवं मन इच्छित चलने वाले, उस योग्य विमान द्वारा वे सब क्षणमात्र में तेजपूर्ण सूर्य के लोक में पहुँच गये।२७। उनकी उस उत्तम सभा में पहुँच कर वे सब तेजोराशि एवं उत्तम सूर्य से अपनी दुःख कथा स्फुट की, जो सभा षट्पद नामक छन्दों की ध्वनियों से निनादित एवं सामवेदी ब्राह्मणों द्वारा मुखरित हो रही थी। उसी सभा में स्थित पुण्य तथा अविनाशी ऋतु उस विस्तृत कर्मों में पुरुष व्याघ्र (सूर्य) की स्तुति कर रहे थे, जो यज्ञ-सन्धि में पद-क्रम के वैदिक विद्वान् एवं श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा किये गये वेदपाठ को

घोषेण परमर्षीणां सर्वं तत्र निनादितम् । यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः ॥३१
अष्टादशपुराणज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः । मीमांसाहेतुवादज्ञैः सर्ववादविशारदैः ॥३२
लोकायतिकमुख्यैश्च तुष्टुवुः सूर्यमीरितम् । तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान् नियताञ्छंसितव्रतान् ॥३३
जपहोमपरान्योगान्ददृशुः कश्यपादयः । तस्यां सभायामास्ते स रश्मिमाली दिवाकरः ॥३४
सुरासुरगुरुः श्रीमाञ्छुशुभे वीर मायया । उपासते च तत्रैव प्रजानां पतिमीश्वरम् ॥३५
दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमः । भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा ॥३६
दिव्या आत्मान्तरिक्षं च वायुस्तेजो बलं मही । शब्दः स्पर्शः स्वरूपं च रसगन्धौ तथैव च ॥३७
प्रकृतिश्च विकाराश्च यच्चान्यत्कारणं महत् । साङ्गोपाङ्गाश्च चत्वारो वेदा लोकपते तथा ॥३८
लवाश्च ऋतवश्चैव सङ्कल्पप्रणवास्तथा । एते चान्ये च बहवो भानुमन्तमुपासते ॥३९
अर्थो धर्मश्च कामश्च मोक्षश्च सविशेषतः । द्वेषो हर्षश्च मोहश्च मत्सरो मान एव च ॥४०
वृको विष्णुसुतः पुत्रः पुष्पजो विश्वपस्तथा । माहेश्वरस्तथा सौरो विटपो विकचस्तथा ॥४१
मारुतो विश्वकर्मा च अश्विनावन्यवाहनौ । एवमुक्तः सुवचनैर्भानुना प्रभविष्णुना ॥४२
जगाम कश्यपो वीर सहादित्या स्वमाश्रमम् । अदितिर्देवमाता च तं गर्भं निदधे स्वयम् ॥४३
भूतात्मानं महात्मानं दिव्यं वर्षसहस्रकम् । पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रसूतो गर्भ उत्तमः ॥४४

ध्वनियों से सम्मिलित पाठ कर रहे थे। वहाँ यज्ञ-स्तुति करने वाले विद्वानों, शिक्षा के पूर्णज्ञान वाले ब्राह्मणों, अट्ठारहों पुराणों के ज्ञाता, सर्वविद्या निष्णात, मीमांसा, हेतुवाद के विद्वानों, समस्तवाद विशारदों तथा चार्वाक मत के प्रवर्तकगणों द्वारा इस भाँति सूर्य की स्तुति हो रही थी—जैसे सूर्य ही उन अनेक रूपों से बोल रहे हों। कश्यपादि आगन्तुकों ने वहाँ सभी स्थानों में नियम, संयम एवं व्रतपूर्वक जप-हवन करने वाले योग्य ब्राह्मणों का दर्शन किया। वीर ! उसी सभामण्डप में जहाँ किरणमाली सूर्य जो देव असुर के गुरु तथा शोभासम्पन्न थे, अपनी माया से सुशोभित हो रहे थे। उसी स्थान पर प्रजाओं के पति एवं ईश्वर (सूर्य) की उपासना हो रही थी—दक्ष, प्रचेता, पुलह, द्विजश्रेष्ठ, मरीचि, भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, गौतम, नारद, दिव्य आत्मा, अंतरिक्ष, वायु, तेज, बल, पृथिवी, शब्द, स्पर्श, स्वरूप, रस, गन्ध, प्रकृति, विकार, अल्प और भी जो महत्कारण हैं वे सांगोपांग चारों वेद, तथा लोकपते ! उसी भाँति लव, ऋतुएँ एवं कल्प प्रणव ये सभी किरणमाली सूर्य की उपासना कर रहे थे। २८-३९। विशेषकर अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, द्वेष, हर्ष, मोह, मत्सर, मान, वृक (अग्नि), विष्णुसुत (प्रद्युम्न), कामदेव, वृहस्पति, महेश्वर तथा सूर्य के पुत्र, विटप, विकच, मारुत, विश्वकर्मा, अश्विनी कुमार एवं अन्य वाहन भी उनकी उपासना कर रहे थे। तदनन्तर प्रभावशाली सूर्य ने कश्यप की बातें सुनकर उन्हें मधुर वाणी द्वारा आश्वासन प्रदान कर सन्तुष्ट किया। वीर ! इसके पश्चात् कश्यप, अदिति को साथ लेकर अपने आश्रम लौट आये। कुछ काल के उपरांत देवमाता अदिति ने स्वयं उस गर्भ को धारण किया, जिसमें भूतात्मा एवं महात्मा (सूर्य) एक सहस्र दिव्य वर्ष तक स्थित थे। सहस्र वर्ष की पूर्ण समाप्ति पर वह गर्भ, जो देवों का शरण भूत, और असुरों का विनाशक था, मुक्त हुआ। नराधिप ! गर्भ में स्थित रहने पर ही उन्होंने तीनों

सुराणां शरणं देवश्चासुराणां विनाशनः । गर्भस्थेन तु तेनैव परित्रातः सुतस्तथा ।।४५
आह्लादनस्तु तेजांसि त्रैलोक्यस्य नराधिप । तस्मिञ्जाते तु देवेशे त्रैलोक्यस्य सुखावहे ।।४६
प्रहृत्य दैत्यसङ्घांश्च सुराणां नादवर्धिनि । अभवत्परमानन्दः सर्वेषां तत्र तस्थुषाम् ।।४७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मपर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु
सूर्योत्पत्तिनामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५८।

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यावतारवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

दक्षः प्रजापतिश्चैव नमस्कारं चकार ह । विद्योतमानो वपुषा सर्वाभरणभूषितः ।।१
उपातिष्ठन्त देवेशं भानुं चर्षिगणैः सह । ततो गन्धर्वमुख्येषु प्रणदत्सु विहायसि ।।
बहुभिः सह गन्धर्वैः प्रागायन्त महीपते ।।२
एवं ते देवगन्धर्वा उपागायन्त भक्तितः । उत्पन्नं द्वादशात्मानं भास्करं वारितस्करम् ।।३
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च त्वष्टा च सविता तथा । भर्गोऽंशुमानर्यमार्कः पृश्निर्मार्तण्ड एव च ।।
इत्येकादश एवैते द्वादशो विष्णुरुच्यते ।।४
एवं द्वादशधा जातमंशुमन्तं महाद्भुतम् । स्तुवन्ति देवताः सर्वे गताश्च तरसा महीम् ।।५

लोकों के तेजों को अपनाते हुए रक्षा की। उस देव नायक के उत्पन्न होने पर, जो तीनों लोकों को सुख प्रदान करने वा , दैत्य समूहों के नाशक, तथा देवताओं के हर्ष ध्वनि को बढ़ाने वा थे, वहां स्थित रहने वा सभी को परम आनन्द की प्राप्ति हुई ।४०-४७

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में सूर्योत्पत्ति वर्णन नामक
एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ।१५८।

अध्याय १५९

सूर्य अवतार का वर्णन

सुमन्तु बोले—उस समय सभी अलंकारों से अलंकृत एवं शरीर से शोभासम्पन्न दक्षप्रजापति ने उन्हें (सूर्य को) नमस्कार किया। और ऋषिगण भी देवनायक सूर्य की उपासना करने लगे। महीपते ! प्रधान गन्धर्व ने अपने अनेक गन्धर्वों को साथ कर आकाश में गाने बजाने लगे।१-२। इस प्रकार देव गन्धर्व भक्तिपूर्वक अपनी कला द्वारा उन्हें प्रसन्न कर रहे थे, जो जल तस्कर सूर्य अपने बारह रूपों से उत्पन्न हुए थे। इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता, भर्ग, अंशुमान्, अर्यमा, अर्क, पृश्नि और मार्तण्ड, ये ग्यारह (सूर्य) बताये गये हैं और और बारहवें सूर्य विष्णु कहे जाते हैं।३-४। इस प्रकार बारहों रूपों द्वारा महान् आश्चर्य कारक सूर्य के उत्पन्न होने पर सभी देवगण शीघ्र पृथिवी पर जाकर उनकी स्तुति

मृगव्याधश्च शर्वश्च मृगाङ्काङ्को महायशाः । अजैकपादहिर्बुध्न्यः पीतः काथः परन्तपः ॥६
दमनश्चेश्वरश्चैव कपाली च विशांपते । स्थाणुर्भगश्च भगवान्रुद्रास्तेऽवतस्थिरे ॥७
अश्विनौ वसवश्चाष्टौ गरुडश्च महाबलः । विश्वेदेवाश्च साध्याश्च तस्थुः प्राञ्जलयो नृप ॥८
नागराजो महाराज वासुकिः प्राञ्जलिः स्थितः । अन्ये च बहवो नागा राक्षसाश्च महाबलाः ॥९
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः । अरुणश्चारुणिश्चैव तत्र प्राञ्जलयः स्थिताः ॥१०
पितामहश्च भगवान्स्वयमागम्य लोककृत् । प्राह देवगुरुः श्रीमान्सर्वैर्महर्षिभिः ॥११
यस्मात्प्रेक्षयते सर्वं प्रभविष्णुः सनातनः । तस्माल्लोकेश्वरः श्रीमान्विवस्वांश्च भविष्यति ॥१२
देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । यस्मादयमादिदेवस्तस्मादादित्य एव हि ॥१३
एवमुक्त्वा तु भगवान्सार्धं देवर्षिभिः प्रभुः । नमस्कृत्वा सुसम्पूज्य ययौ स्वसदनं प्रति ॥१४
या गतिर्यज्ञशीलानां या गतिः पुण्यकर्मिणाम् । या गतिः सिद्धयोगानां या गतिश्च महात्मनाम् ॥१५
यस्याष्टगुणमैश्वर्यं समभूद्देवसत्तमम् । यं प्राप्य शाश्वतं विप्रा नावर्तन्ते भवार्णवे ॥१६
वालखिल्यादयो ये च सर्वेऽप्याश्रमवासिनः । सेवन्ते यं व्रतात्मानो दुश्चरं संयतेन्द्रियाः ॥१७
योऽनन्त इव नागेषु यस्य तं सर्वयोगिनः । सहस्रमूर्धा रक्ताक्षः शेषादिभिरनुत्तमैः ॥१८
यो यज्ञ इति विप्रेन्द्रैरर्च्यते सुखमीप्सुभिः । सर्वे च यं महात्मानो ध्यायन्ति ब्रह्मरूपिणम् ॥१९
यं वेदविदो गायन्ति वेत्तारं यज्ञदायिनम् । तं पुत्रं द्वादशात्मानं कश्यपः प्राप सत्तमम् ॥२०

करने लगे ।५। मृगव्याध, शर्व, महायशस्वी, चन्द्रमा, अज, एकपाद, अहिर्बुध्न्य, पीत, काथ, परंतप, दमन, ईश्वर तथा विशांपते ! कपाली (शिव), स्थाणु, भग, भगवान रुद्र, ये सभी वहाँ उपस्थित हुए ।६-७। नृप ! अश्विनी कुमार, आठों वसु, महाबली गरुड, विश्वेदेव और साध्य भी वहाँ हाथ जोड़े खड़े थे ।८। महाराज ! नागराज वासुकी हाथ जोड़े तथा अन्य सभी नाग, महाबली राक्षस, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, महाबली गरुड़, अरुण और उनके पुत्र सभी हाथ जोड़े खड़े थे ।९-१०। लोकरचयिता भगवान् पितामह श्रीमान् देव गुरु (ब्रह्मा) ने स्वयं सभी देवों एवं महर्षियों के साथ वहाँ आकर यह कहा—अत्यन्त प्रभावशाली, तथा सनातन (नित्य) रूप, यह सभी को देख रहा है अतः लोकेश्वर, श्रीमान् और विवस्वान् तथा देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग एवं राक्षसों के आदि देव होने के कारण इसका आदित्य, नाम होगा ।११-१३। इस प्रकार भगवान् प्रभु ब्रह्मा देवर्षियों के साथ भली-भाँति उनकी पूजा एवं नमस्कार करके अपने घर च गये ।१४। जो यज्ञ करने के लिए प्रयत्नशील रहने वा , पुण्यकर्मा मनुष्यों, सिद्धयोगियों एवं महात्माओं की गति (प्राप्ति) रूप है, जिस देव श्रेष्ठ के साथ ही ऐश्वर्य समेत आठ गुण उत्पन्न हुए हैं। जिसकी निरंतर प्राप्ति करके ब्राह्मणगण संसार सागर में नहीं पड़ते हैं, बालखिल्य आदि जितने आश्रम निवासी हैं, इन्द्रिय संयमपूर्वक कठिन व्रत का पालन करते हुए जिसकी सेवा करते हैं। जो कामों में अनंत रूप है, जिसके लिए सभी योगधारण करते हैं तथा शेष आदि से भी उत्तम जिसके सहस्र शिर एवं रक्त नेत्र है, सुख इच्छुक ब्राह्मणगण, जिसे यज्ञ रूप मानकर पूजा करते हैं, सभी योगी जिसे ब्रह्म रूप मानकर ध्यान करते हैं, वेद के विद्वान् जिसका गान करते हैं, जो वेत्ता एवं यज्ञदायक हैं, उसी बारहों रूपों को धारण करने वा (सूर्य) को पुत्र के रूप में प्राप्त कर विभो ! कश्यप तथा अदिति ने अत्यन्त

मुदं लेभे सहाऽदित्या सुखं च परमं विभो । लोकश्च मुमुदे सर्वो राक्षसा भयमाप्नुवन् ॥२१
मधुपिङ्गलो महाबाहुः कम्बुग्रीवो हसन्निव । इङ्गुदीबद्धमुकुटो दिशः प्रज्वलयन्निव ॥२२
स उवाच महातेजाः कश्यपं चर्षिसत्तमम् । एषोऽहं तव पुत्रत्वं गतो गर्भस्य सिद्धये ॥२३
दत्त्वा वरं पुरा विप्र विरञ्चस्य महात्मनः । तस्मात्त्वमृषिशार्दूल कुरु सृष्टिमनौपमाम् ॥२४
एवमाराध्य देवेशं ब्रह्मा सृष्टिमवाप्तवान् । आराध्य कश्यपश्चापि भास्करं सुतमाप्तवान् ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे उभयसप्तमीमाहात्म्ये सूर्यावतारवर्णनं नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१५९।

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यावतारवर्णनम्

शतानीक उवाच

अहो देवस्य चरितं भास्करस्य त्वयोदितम् । ब्रह्मादयोऽपि यं नित्यं पूजयन्ति विधानतः ॥१
ब्रह्मा विष्णुः सुरा ब्रह्मंस्तमाराध्य दिवाकरम् । ददृशुस्तस्य किं भूतं रूपं यत्तन्महाद्भुतम् ॥२

आनन्द निमग्न होकर उत्तम सुख का अनुभव किया । सभी लोकों को प्रसन्नता हुई, परन्तु राक्षस गण भयभीत होने लगे ।१५-२१। मधु की भाँति पिंगल वर्ण, शंख के समान सौन्दर्यपूर्ण ग्रीवा महाबाहु एवं महातेजस्वी (सूर्य) ने, जो मन्द-मन्द हास करने के समान तथा मुकुट में इंगुदी के लगाने से दिशाओं को प्रकाशित करने की भाँति दिखाई दे रहे थे, ऋषिश्रेष्ठ कश्यप ने कहा—गर्भ की सिद्धि (सफलता) के लिए मैं यह तुम्हारा पुत्र हुआ । विप्र ! मैंने पह ही महात्मा ब्रह्मा को वर प्रदान किया था । इसलिए हे ऋषिशार्दूल ! तुम अनुपम सृष्टि की रचना करो ।२२-२४। इस प्रकार देवेशसूर्य की आराधना करके ब्रह्मा ने सृष्टि की सफलता प्राप्त की और उसी भाँति भास्कर की आराधना कर कश्यप ने पुत्र की प्राप्ति की ।२५

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के उभयसप्तमी माहात्म्य में सूर्यावतार वर्णन नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ।१५९।

अध्याय १६०

सूर्य अवतार का वर्णन

शतानीक ने कहा—सूर्यदेव का चरित, जिसका आपने वर्णन किया है, कितना आश्चर्यकारक है कि ब्रह्मादि देवता भी विधानपूर्वक उस (देव) की नित्य पूजा करते हैं ।१। हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा, विष्णु एवं देव गण उस सूर्य की आराधना करके उनके जिस रूप का दर्शन किया है, महान् अद्भुतकारक वह (रूप) किस प्रकार था ।२

सुमन्तुरुवाच

आराध्य देवमीशानं भास्करं सुचिवाचकम् । कविष्णू कुरुशार्दूल जग्मतुस्तौ हिमाचलम् ॥३
गोपतेरन्तिकं वीर प्रहृष्टौ विभुदर्शने । कुन्देन्दुसन्निभं द्रष्टुं कंजजश्चाच्युतश्च तौ ॥४
ददृशतुर्महात्मानं चन्द्रार्धकृतशेखरम् । पूजयन्तं शिवस्थानं भास्करं वीरसन्नृप ॥५
आचख्योचतुर्महात्मानं कविष्णू तं त्रिलोचनम् । भोभो भीम सुरज्येष्ठ पश्यावामिह आगतौ ॥६
श्रुत्वोवाच तयोर्वाक्यं कञ्जजस्याच्युतस्य च । प्रणम्य शिरसा भूमौ कृत्वा पूजां त्रिलोचनः ॥७
उवाच मधुरं वाक्यं शिक्षाक्षरसमन्वितम् । हर्षगद्गदया वाचा दिशः सन्नादयन्निव ॥८
किमाराध्य रविं प्राप्तौ सर्वदेववरं विभुम् । कथ्यतां निखिलं देवौ परमं कौतुकं मम ॥९
दृष्टवन्तौ परं किञ्चिद्रूपं देवस्य शङ्करम् । अव्ययस्याप्रमेयस्य भानोरमिततेजसः ॥१०
निशम्य वचनं वीर शङ्करस्य महात्मनः । ऊचतुस्तौ महात्मानौ कविष्णू देवसत्तमौ ॥११
न तत्पश्यावहे रूपं यत्तत्परमनद्भुतम् । आराधयितुमेवापि ह्यागतौ तेऽन्तिकं च शम्भु ॥१२
तस्मादाराधयामो हि एकीभूय विभावसुम् । गत्वोदयगिरिं पुण्यं पर्वतं कनकोज्ज्वलम् ॥१३
श्रुत्वा तु वचनं वीर कञ्जजाच्युतयोर्हरः । तथेत्याह महाबाहो हर्षादुत्फुल्ललोचनः ॥१४
अथ ते राजशार्दूल विविगोगतयो नृप । जग्मुस्तं पर्वतश्रेष्ठमुदयाचलमाशु वै ॥१५

सुमन्तु बोले—कुरुशार्दूल ! ईशान एवं उत्पत्ति की व्याख्या कराने वा भास्कर देव की आराधना करके ब्रह्मा और विष्णु अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए विभु (सूर्य) के दर्शनार्थ हिमालय के लिए प्रस्थित हुए, वीर ! जो सूर्य के समीप में ही स्थित था । नृप ! कुंद और इंदु की भाँति धवलमूर्ति (सूर्य) के दर्शन के लिए ब्रह्मा एवं विष्णु वहाँ पहुँचकर नृप ! चन्द्रखण्ड को अपने मस्तक में रखने वा महात्मा शंकर को देखे जो वीर की भाँति बैठकर सूर्य की आराधना कर रहे थे ।३-५। उन महात्मा त्रिलोचन (शिव) से उन दोनों ने कहा—भीम, भीम ! सुरज्येष्ठ ! देखो, हम लोग भी यहाँ आ गये हैं ।६। ब्रह्मा और विष्णु की ऐसी बातें सुनकर (घुटने) भूमि में शिर रख नमस्कारपूर्वक उनकी पूजा (आतिथ्यसत्कार) करके शिक्षा देने की भाँति मधुर वाणी द्वारा हर्ष से गद्गद होकर दिशाओं को मुखरित करते हुए शिव ने उन लोगों से कहा—समस्त देवों में श्रेष्ठ एवं विभु सूर्य की आराधना करके प्रसाद रूप में किस वस्तु की प्राप्ति हुई, मुझे इसकी जानकारी के लिए महान् कौतूहल है, आप लोग यह सभी बातें बताइये, और अजेय, अमेय एवं अमित तेजस्वी उस (सूर्य) देव के कल्याणकारी रूप का भी दर्शन हुआ । वीर ! महात्मा शंकर की ऐसी बातें सुनकर महात्मा एवं देवश्रेष्ठ ब्रह्मा और विष्णु ने कहा—उनके परम अद्भुत रूप का दर्शन हम लोगों को नहीं प्राप्त हुआ है । अतः दर्शनार्थ एवं उनकी आराधना के लिए ही हम आपके समीप आये हैं ।७-१२। पुष्प एवं कनक (धतूरा के फूल) के समान उज्ज्वल, उस उदयाचल पर हम लोग (और आप) अब एक साथ ही सूर्य की आराधना करेंगे ।१३। इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु की बातें सुनकर महाबाहो ! शिव ने 'तथा' कहकर उसे स्वीकार किया जिससे हर्षातिरेक से उनकी आँखें खिल गई थीं ।१४। राजशार्दूल ! इसके बाद वे (ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) तीनों नृप ! पर्वतश्रेष्ठ उस उदयाचल के लिए शीघ्र प्रस्थित

तमासाद्य नगं पुण्यं शृङ्गैस्त्रिभिरलङ्कृतम् । नानाधातुपिनद्धाङ्गं नानाधातुविभूषितम् ॥१६
आराधनाय विधिवद्यत्नं चक्रुर्विभावसोः । स्तुवन्तस्ते समर्चन्तो ध्यायन्तश्च विभावसुम् ॥१७
दिव्यवर्षसहस्रान्ते तपन्तः संस्थिता नगे । पद्मासनगतो ब्रह्मा ध्यायमानो दिवाकरम् ॥१८
स्थाणुवत्संस्थितो भूमावूर्ध्वबाहुस्त्रिलोचनः । पञ्चाग्निं भजमानस्तु स्थितो विष्णुरधःशिराः ॥१९
एवं वर्षसहस्रान्ते तपश्चक्रुः सुदारुणम् । आराधयन्तो विधिवद्गोपतिं पुष्कलिनम् ॥२०
अथ ब्रह्मेशविष्णूनां कुर्वतां तप उत्तमम् । तुतोष भगवान्भानुरुवाच च महीपते ॥२१
ब्रह्मञ्छम्भो हरे ब्रूत मत्तः किमभिवाञ्छथ । तुष्टोऽहं भवतां दातुमिहायातो वरं स्वयम् ॥२२

सुमन्तुरुवाच

निशम्य वचनं भानोः शान्तं हृद्यं मनोरमम् । प्रणम्य शिरसा देवा इदं वचनमब्रुवन् ॥२३
कृतकृत्या वयं सर्वे प्रसादात्तव गोपते । त्वामाराध्य पुरा देव त्वत्तः प्राप्य वरं शुभम् ॥२४
उत्पत्तिस्थितिनाशानां वयं सर्वे दिवाकर । कर्तुमीह समर्था वै त्वत्प्रसादान्न संशयः ॥२५
एकं वरं देवदेवेश यदभिकाङ्क्षामहे विभो । यत्ते परमकं रूपं दुर्लभं दुर्दृशं तथा ॥२६
तदस्माकं जगन्नाथ रूपं दर्शय तेऽच्युतम् । सर्वदेवमयं यत्ते प्रत्यक्षोक्तं पुरानघ ॥२७
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मविष्ण्वीशभाषितम् । दर्शयामास तद्रूपमद्भुतं लोकपूजितम् ॥२८

हुए । उस पर्वत पर पहुँचकर जो पुण्य, तीन शिखरों से अलंकृत, भाँति-भाँति के धातुओं द्वारा बँधे हुए अंग तथा भाँति-भाँति की धातुओं से विभूषित था, वे लोग सूर्य की आराधना के लिए विधानपूर्वक प्रयत्नशील हुए । सूर्य की स्तुति, पूजा एवं ध्यान करना आरंभ किया । इस प्रकार तप करते हुए उस पर्वत पर उन्हें दिव्य एक सहस्र वर्ष बीत गया । दिवाकर का ध्यान पद्मासन पर स्थित होकर ब्रह्मा, भूमि में स्थाणु की भाँति स्थित एवं ऊपर दोनों हाथ उठाकर शंकर, और नीचे शिर लटकाकर पंचाग्नि तापते हुए विष्णु ने सुसम्पन्न किया । पुत्र मण्डली (अनेक पुत्र वाले), एवं किरणपति सूर्य का इस प्रकार घोर तप करते हुए उन देवों का एक दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत हुआ ।१५-२०। महीपते ! इसके उपरान्त श्रेष्ठ तप करने वाले उन ब्रह्मादि देवों के ऊपर भगवान् सूर्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—ब्रह्मन्, शंभो एवं हरे ! मुझसे दया चाहते हो, प्रसन्न होकर मैं तुम्हें वर प्रदान के लिए स्वयं यहाँ आया हूँ ।२१-२२

सुमन्तु बोले—सूर्य की ऐसी शांत, प्रिय एवं मनोहर वाणी सुनकर शिर से प्रणाम करके उन लोगों ने कहा—हे गोपते ! आपकी कृपा से हम लोग कृतकृत्य हो गये हैं क्योंकि देव ! पहले ही आपकी आराधना कर उत्तम वरों की प्राप्ति हम लोगों ने कर ली है । दिवाकर ! जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं नाश करने रूप कार्य के लिए अब आपकी कृपा से हम लोग समर्थ भी हो जायँगे, इसमें संदेह नहीं ।२३-२५। देवाधिदेव विभो ! किन्तु एक और वर की हमें इच्छा है, वही कि आपके परम दुर्लभ एवं दुर्दर्श तथा अच्युत रूप का दर्शन करना चाहते हैं, इसलिए जगन्नाथ ! आप अपने उसी सर्वदेवमय रूप को दिखाइये, अनघ ! जिसे आपने पहले बताया था ।२६-२७। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की ऐसी बातें सुनकर (उन्होंने) अपने अद्‌भुत एवं लोकपूज्य रूप का दर्शन दिया ।२८। उसमें अनेक मुख, शिर, अनेक अद्‌भुत

**अनेकवक्त्रशिरसमनेकाद्भुतदर्शनम् । सर्वदेवमयं दिव्यं सर्वलोकमयं तथा ॥२९
भूः पादौ द्यौः शिरश्चापि तत्राग्नी लोचने मते । पादाङ्गुल्यः पिशाचाश्च हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः ॥३०
विश्वे देवाः स्मृतास्तस्य जङ्घासङ्घाः सुरोत्तमाः । यक्षाः कुक्षिषु संल्लीनाः केशाश्चाप्सरसां गणाः ॥३१
दृष्टिधृष्टयश्च विपुलाः केशा वीरांशवः स्मृताः । तारका रोमरूपाणि रोमाणि च महर्षयः ॥३२
बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे नराधिप । अश्विनौ श्रवणे चास्य नासा वायुर्महाबलः ॥३३
प्रसादश्च क्षमा चैव मनो धर्मस्तथैव च । सत्यमस्याभवद्वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ॥३४
ग्रीवादितिर्महादेवी तालू रुद्रश्च वीर्यवान् । द्वारं स्वर्गस्य नाभिर्वै मित्रस्त्वष्टा पिचण्डकः ॥३५
मुखं वैश्वानरश्चास्य वृषणौ च भगस्तथा । हृदयं भगवान्ब्रह्मा ह्युदरं कश्यपो मुनिः ॥३६
पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसन्धिषु । सर्वच्छन्दांसि दशना ज्योतींषि विमला प्रभा ॥३७
प्राणो रुद्रो महादेवः कुक्षौ चास्य महार्णवाः । उदरे चास्य गन्धर्वा भुजङ्गाश्च महाबलाः ॥३८
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वा विद्याश्च वै कटौ । ललाटमस्य परमं पदःस्थानं परात्मनः ॥३९
सर्वज्योतींषि जानीहि तपश्चक्रञ्च देवराट् । तदेतदादिदेवस्य तनौ ह्याहुर्महात्मनः ॥४०
स्तनौ कुक्षौ च वेदाश्च तेऽष्टौ चास्य मखाः स्मृताः । यष्टव्यपशुबन्धाश्च द्विजानां वेष्टितानि च ॥४१
सर्वदेवमयं दृष्ट्वा रूपमर्कस्य ते नृप । ब्रह्मा हरो हरिर्देवाः परं विस्मयमागताः ॥४२
प्रणम्य शिरसा देवं वेपमाना धरां गताः । भयगद्गदया वाचा इदं वचनमब्रुवन् ॥४३
समीक्ष्य रूपं ते देव भीमं ज्वालासमाकुलम् । अनेकमुखबाहूरुचरणं चकिता वयम् ॥४४**

दर्शन, सर्वदेवमय, दिव्य, सर्वलोकमय, पृथिवी दोनों चरण, आकाशशिर, अग्नि दोनों नेत्र विशाल पैर की अंगुलियाँ गुह्य हाथ की अंगुलियाँ गुह्य, सुरश्रेष्ठ विश्वेदेव जाँघों की सन्धियाँ, कुक्षि में यक्ष, केश में अप्सराएँ आँखों की धृष्टता एवं किरणें विपुलकेश, तारागण और महर्षिगण रोम, विदिशाएँ (क्षेत्र) बाहू, नराधिप! दिशाएँ कान, अश्विनी कुमार श्रवण, महाबली वायु नासिका, प्रसन्नता एवं क्षमाशीलता मन धर्म, सत्यवाणी, देवी सरस्वती जिह्वा, महादेवी अदिति ग्रीवा, पराक्रमी रुद्र तालु, स्वर्ग द्वारनाभि, मित्र, त्वष्टा तथा पिचण्डक, वैश्वानर (अग्नि) मुख, भग दोनों वृषण (अण्डकोष), भगवान् ब्रह्मा हृदय, कश्यप मुनि उदर, पीठ में वसुदेव, सभी संधियों में मरुत, समस्त छंद दशन (दाँत), ज्योतियाँ निर्मलप्रभा, रुद्र महादेव प्राण, कुक्षि में महासागर, उदर में गन्धर्व, महाबली भुजंग, लक्ष्मी, मेधा धृति, कांति एवं समस्त विद्याएँ कटि (कमर) में वर्तमान हैं और इस परमात्मा के ललाट में आयु, सभी ज्योतिर्गण, तथा चक्रतप रूप स्थित हैं, इस प्रकार इस देवराट की शरीर को जानना चाहिए। जिसकी उपरोक्त व्याख्या की गई है। इसी भाँति महात्माओं ने इस आदिदेव के शरीर की व्याख्या की है।२९-४०। दोनों स्तन, कुक्षि तथा चारों वेद मिलकर उसके यक्ष रूप हैं यही द्विजों के वेष्टन यज्ञ करने योग्य पशुबंधन है। नृप! सूर्य के ऐसे सर्व देवमय रूप को देखकर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर अत्यन्त विस्मित हुए। उस देव को शिर से प्रणाम कर काँपते हुए भयभीत होने के नाते गद्गद वाणी से उन लोगों ने यह कहा—हे देव! भीम (भीषण), ज्वालाओं की भाँति प्रदीप्त, अनेकों मुख, भुजा, उरु एवं चरण वाले आपके इस रूप को देखकर हम लोग

दिग्ज्ञानं हृतमस्माकं तत्प्रसीद जगत्पते । उपसंहर विश्वात्मन्द्रष्टुं शक्ता न ते वयम् ॥४५
इति तेषां वचः श्रुत्वा देवदेवो दिवाकरः । प्रसन्नो भगवानाह वचस्तान्प्रहसन्निदम् ॥४६

आदित्य उवाच

इति यदेतत्परमं पुण्यमद्भुतं लोकभावनम् । दृष्टं भवद्भिर्देवेन्द्रा मम सर्वजगन्मयम् ॥४७
एतन्मया प्रसन्नेन युष्माकं श्रेयसेऽनघाः । दर्शितं पूजितेनेह योगिनां यन्महालयम् ॥४८

ब्रह्मेशाच्युता ऊचुः

एवमेतन्न संदेहो यथात्थ त्वं दिवस्पते । योगिनामपि देवेश दर्शनं ह्यस्य दुर्लभम् ॥४९
त्वामाराध्य जगन्नाथं नाप्राप्यमिह विद्यते । तस्मात्पूज्यतमो लोके नान्यो देवेषु विद्यते ॥५०
एवमुक्त्वाऽदितेः पुत्रो जगामादर्शनं रविः । ब्रह्मादयोऽपि ते हर्षं प्रापुर्देवस्य दर्शनात् ॥५१
एवं ब्रह्मादयो देवाः पूजयित्वा दिवाकरम् । गतास्ते परमां सिद्धिं गन्धर्वा ऋषयस्तथा ॥५२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु ब्रह्मादीनां सूर्यरूपदर्शनवर्णनं नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६०।

चकित हो रहे हैं ।४१-४४। जगत्पते ! हमें दिशाओं का ज्ञान नहीं हो रहा है, इसलिए आप प्रसन्न हो जायें और विश्वात्मन् ! आप अपने इस रूप को त्याग दें क्योंकि हम लोग इसके दर्शन करने में असमर्थ हो रहे हैं ।४५। उनकी ऐसी बातें सुनकर देवाधिदेव सूर्य ने प्रसन्न होकर हँसते हुए यह कहा— ।४६

आदित्य बोले—देवेश्वर ! परमपुण्यदायक, आश्चर्यकारी, लोकसत्तात्मक एवं सर्वजगन्मय मेरे इस रूप को आप लोगों ने देखा है । अनघ ! आप लोगों ने मेरी पूजा की है, अतः प्रसन्न होकर मैंने आप लोगों के कल्याण के लिए इस रूप को दिखाया है, जो योगियों के महान् मन्दिर के रूप में है । तदनन्तर ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु ने कहा—हे दिवस्पते ! आप जैसा कह रहे हैं वह वैसा ही है इसमें संदेह नहीं । देवेश ! यह दर्शन योगियों के लिए भी दुर्लभ है ।४७-४९। आप जगन्नाथ की पूजा करने पर यहाँ हमें कुछ अप्राप्य (वस्तु) नहीं है, अतः देवों में आपके अतिरिक्त कोई अन्य आपकी भाँति पूज्यतम (अत्यन्त पूजनीय) नहीं है ।५०। अदिति-पुत्र, भगवान्, सूर्य अन्तर्हित हो गये और उनके उस रूप के दर्शन करने से ब्रह्मादि देवता भी अत्यन्त हर्षित हुए ।५१। इस भाँति ब्रह्मादि देवता, गन्धर्व एवं ऋषियों ने भी भास्कर की आराधना करके परमसिद्धि प्राप्त की है ।५२

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में ब्रह्मादिकों का सूर्य रूप दर्शन वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ।१६०।

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजाफलप्रश्नवर्णनम्

शतानीक उवाच

एवमेतद्यथात्थ त्वं भास्करो दैवतं परम् । नास्त्यादित्यसमो देवो नास्त्यादित्यसमा गतिः ॥१
आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः । भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥२
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रकेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवौकसाम् । द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्ना तेजो यत्सार्वलौकिकम् ॥३
सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः । सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ॥४
ततः सञ्जायते सर्वं तत्रैव प्रविलीयते । भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ॥५
जगज्ज्येष्ठो ग्रहो विप्र प्रदीप्तः प्रभवो रविः । तत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुनः पुनः ॥६
क्षणा मुहूर्ता दिवसा रात्रिपक्षाश्च कृत्स्नशः । मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च ॥७
स एष कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः । प्रभासयति विप्रेन्द्र त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८
तस्मादस्य द्विजश्रेष्ठ पूजने यत्फलं भवेत् । तन्मे ब्रूहि प्रयत्नेन प्रसादप्रवणो भव ॥९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे सप्तमीकल्पे ब्राह्मे पर्वणि सौरधर्मे सूर्यपूजाफलप्रश्नवर्णनं नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६१।

अध्याय १६१

सूर्यपूजा फल प्रश्न का वर्णन

शतानीक ने कहा—आपने जो बताया है कि सूर्य ही महादेव हैं, यह सर्वथा ठीक है । सूर्य के समान कोई देव नहीं है और उनके समान कोई गति (प्राप्ति) भी नहीं है ।१। इसमें संदेह नहीं कि निखिल त्रैलोक्य के मूल कारण आदित्य ही है । इन्हीं द्वारा देव, मनुष्य एवं राक्षसों समेत समस्त जगत् उत्पन्न होता है । विप्रेन्द्र ! शिव, इन्द्र एवं उपेन्द्र (विष्णु) इन केन्द्रस्थलवर्ती एवं आकाशपूर्ण देवों के समस्त तेज रूप सूर्य हैं, जिससे समस्तलोक प्रकाशमय है ।२-३। सर्वात्मा, समस्त लोकों के ईश, महादेव एवं प्रजापति सूर्य ही तीनों लोकों के (निर्माण में) प्रधान कारण है ।४। (समस्त लोक) उन्हीं द्वारा उत्पन्न होकर उन्हीं में लय हो जाता है, अतः सूर्य द्वारा लोकों की स्थिति और प्रलय पहले से ही निश्चित है ।५। विप्र ! जगत् के श्रेष्ठ ग्रह, प्रज्वलित एवं (उसके) उत्पत्ति स्थान सूर्य हैं, उन्हीं में उसका लय होता है, और बार-बार जन्म भी ।६। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, समस्तमास, वर्ष, ऋतुएँ, चारों युग, काल, आदि तथा बारह रूप धारण करने वाले प्रजापति यही हैं । विप्रेन्द्र ! चर एवं अचर रूप तीनों लोकों को इन्होंने प्रकाशपूर्ण बनाया है ।७-८। इसलिए द्विजश्रेष्ठ ! इस देव के पूजन करने के जितने फल प्राप्त होते हों मेरे ऊपर कृपा करते हुए आप प्रयत्नपूर्वक उन्हें बताइये ।९

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरगर्भ में सूर्य पूजा फलप्रश्न वर्णन नामक एक सौ एकसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६१।

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

भानुं प्रतिष्ठाप्य नरः सर्वदेवमयं विभुम् । प्राप्नोत्यमरतां वीर तेजसा रविसन्निभः ॥१
यो भानुं द्वेष्टि सम्मोहात्सर्वदेवनमस्कृतम् । नरो नरकगामी स्यात्तस्य सम्भाषणादपि ॥२
भानुमिष्टं प्रतिष्ठाप्य सर्वयत्नैर्विधानतः । यत्पुण्यफलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ॥३
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थदेवेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं स्थाप्य भानुं लभेन्नरः ॥४
यो भानुं स्थापयेद्भक्त्या विधिपूर्वं नराधिप । सर्वाङ्गमुदितं पुण्यं लभेत्कोटिगुणं नरः ॥५
मातृजान्पितृजांश्चैव यत्र चोद्वहते स्त्रियम् । कुलत्रयं समुद्धृत्य शक्रलोके महीयते ॥६
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगान्प्रलये समुपस्थिते । ज्ञानयोगं समासाद्य तत्रैव प्रविमुच्यते ॥७
अथ वा राज्यमाकांक्षेज्जायते सम्भवान्तरे । सप्तद्वीपसमुद्रायाः क्षितेरधिपतिर्भवेत् ॥८
यत्कृत्वा पार्थिवं व्योम्नि अर्चयेत्सर्वदेवकम् । समूलमखिलं तेन त्रैलोक्यं पूजितं भवेत् ॥९
इहैव धनवाञ्छ्रीमान्सोऽन्तेऽर्कत्वमवाप्नुयात् । त्रिसन्ध्यं कीर्तयेद्व्योम कृत्वा बिम्बेन पार्थिवम् ॥१०

अध्याय १६२

सौरधर्म का वर्णन

सुमन्तु बोले—वीर ! सर्वदेवमय एवं विभु सूर्य की प्रतिष्ठा करके मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी होकर अमरत्व प्राप्त करता है ।१। अत्यधिक मोहवश जो समस्त देव के वन्दनीय सूर्य से द्वेष करता है, उससे भाषण (बात-चीत) करने वाला मनुष्य नरकगामी होता है ।२। यत्नशील रहकर विधानपूर्वक अपने इष्टदेव सूर्य की प्रतिष्ठा करके मनुष्य जिस फल की प्राप्ति करता है, उसे सावधान होकर सुनो ।३। समस्त यज्ञ, तप, दान, तीर्थ एवं देवों के पूजन द्वारा जिस फल की प्राप्ति होती है, उसके कोटि करोड़, गुने फल की प्राप्ति मनुष्य को सूर्य की स्थापना करने से होती है ।४। नराधिप ! जो विधानपूर्वक सूर्य की प्रतिष्ठा करता है, उसे उसके सर्वाङ्ग उदयकारक एवं कोटि गुने पुण्य की प्राप्ति होती है ।५। यदि स्त्री प्रतिष्ठा करती है, तो मातृकुल, पितृकुल एवं पतिकुल, इन तीनों कुलों के उद्धारपूर्वक इन्द्रलोक में सम्मानित होती है ।६। इस प्रकार (प्राणी) समस्त भोगों का उपभोग करके प्रलय के समय ज्ञानयोग द्वारा उन्हीं में लीन हो जाता है। राज्य की इच्छा होने पर वह जन्मान्तर में सातों द्वीपों वाले समुद्रों से घिरी समस्त पृथिवी का अधिनायक होता है ।७-८। जो व्योम (आकाश) में सर्वदेवमय एवं प्रधान कारणभूत (सूर्य) के पार्थिव रूप का पूजन करता है, उसने तीनों लोकों की पूजा की इसमें संदेह नहीं ।९। विम्ब द्वारा (सूर्य के) पार्थिव रूप को बनाकर पूजा एवं तीनों समय व्योम के कीर्तन करने से मनुष्य यहाँ ही धनवान् एवं श्रीमान् होकर पश्चात् अन्त (समय) में सूर्य के सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति करता है ।१०। इस प्रकार एक

शतैकादशकं यावत्तस्य पुण्यफलं शृणु । अनेन सह देहेन भानुः सन्तिष्ठते क्षितौ ॥११
पापहा सर्वमर्त्यानां दर्शनात्स्पर्शनादपि । उद्धारयेच्च संस्थाप्य कुलानामेकविंशतिम् ॥१२
गीर्वाणैः सहितो नित्यं मोदते दिवि सूर्यवत् । योऽपि पिष्टमयं व्योम सर्वगन्धोपशोभितम् ॥१३
कुसुमैः सुसुगन्धैश्च फलैश्च विविधैर्नृप । भक्ष्यलेह्यरसैश्चैव घृतदीपैरलङ्कृतैः ॥१४
नानारत्नसमायुक्तं नानागन्धसमन्वितम् । तस्य दक्षिणपार्श्वे तु विन्यसेदगुरुं बुधः ॥१५
दद्याद्वै पश्चिमे भागे श्रीखण्डं चन्दनं शुभम् । उत्तरे चन्दनं दद्याद्रक्तं दद्याच्च पूर्वतः ॥१६
एवं वित्तानुसारेण कृत्वा विभवविस्तरम् । कृष्णपक्षे तु सप्तम्यां भास्करस्य निवेदयेत् ॥१७
सकृदेव तु यः कुर्याद्व्योम भरतसत्तम । यत्फलं हि भवेत्तस्य तन्मे निगदतः शृणु ॥१८
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः । निष्कलः सर्वगो भूत्वा प्रविशेत्परमव्ययम् ॥
तेजसा रविसंकाशः प्रभयार्कसमप्रभः ॥१९
पांसुना क्रीडमानो[1] यः कुर्याद्व्योम ह्यकार्यतः । स राजन्भवते राजा पर्वतेषु समन्ततः ॥२०
सर्वेषामेव पात्राणां परं पात्रं विभावसुः । एतत्सन्तारयेद्यस्मादतीव नरकार्णवात् ॥२१
तस्य पात्रस्य माहात्म्यं ध्रुवमक्षयमादिशेत् । तस्मात्तस्मै सदा देयमप्रमेयफलार्थिभिः ॥२२

सौ ग्यारह (उनके पार्थिव) रूपों के पूजन करने से जिस फल की प्राप्ति होती, उसे सुनो ! इसी शरीर से सूर्य पृथिवी पर स्थित रहते हैं, उनके दर्शन एवं स्पर्शन करने से सभी मनुष्यों के पाप नाश होते हैं, और उनकी प्रतिष्ठा करके इक्कीस कुलों का उद्धार होता है। ११-१२। पश्चात् अंत में वह व्यक्ति देवों के साथ सूर्य की भाँति स्वर्ग का आनन्दानुभव करता है। नृप ! पिष्ट (चूर्ण) मय तथा समस्त गंधों से सुशोभित व्योम की रचना करके सुगन्धित पुष्पों, भाँति-भाँति के फलों, भक्ष्य और स्वादिष्ट भोजन, घी के दीपकों से उसे अलंकृत कर विद्वानों को चाहिए कि उनके दाहिने पार्श्व भाग में भाँति-भाँति के रत्नों एवं गन्धों समेत अगुरु स्थित करें। उनके पश्चिम भाग को शुभ श्रीखंड चन्दन (मलयगिरि), उत्तर को चंदन और पूर्व की ओर रक्तचंदन से सौन्दर्यपूर्ण करना चाहिए। १३-१६। इस प्रकार अपनी धनशक्ति के अनुसार उसे ऐश्वर्यपूर्ण कर कृष्ण पक्ष की सप्तमी में भास्कर के लिए समर्पित करना बताया गया है। भरतसत्तम ! इस प्रकार के व्योम की एक बार भी रचना करने से जो फल प्राप्त होते हैं, उन्हें मैं बता रहा हूँ, सुनो ! १७-१८। वह समस्त पापों एवं समस्त दुःखों से मुक्त कलाहीन तथा सर्वगामी होकर सूर्य के समान तेज और प्रभापूर्ण हो परम अविनाशी (सूर्य) में सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति करता है। १९। राजन् ! जो धूलिकणों में खेलता हुआ बालक उसी धूलि द्वारा निष्प्रयोजन व्योम की रचना करता है, वह समस्त पर्वतों का राजा होता है। २०। सभी पात्रों में सूर्य उत्तम पात्र बताये गये हैं क्योंकि इन्हीं द्वारा (प्राणी) नरकसमुद्र से पार होता है। २१। उस पात्र का माहात्म्य ध्रुव एवं अक्षीण बताया गया है, इसलिए अतुल फल के इच्छुकों को चाहिए कि उनके लिए सदैव (यज्ञ रूप में) कुछ न कुछ देते ही रहें। २२। सूर्य के लिए

---

१. 'क्रीडोनुसम्परिभ्यश्च' इति सूत्रे 'आङो दोऽनास्यावहरण' इत्याङोनुवर्तनादात्मनेपदम् ।

रवौ दत्तं हुतं जप्तं बलिं पूजां निवेदयेत् । अनन्तफलमादिष्टं ब्रह्मादिसुरसत्तमैः ॥२३
भक्त्या वित्तानुसारेण यः कुर्यादालयं रवेः । सोऽग्नेयं यानमारुह्य मोदते सह भानुना ॥२४
महाविभवसारोऽपि यः कुर्याद्भक्तिवर्जितम् । अल्पे महति वा तुल्यं फलमाढ्यदरिद्रयोः ॥२५
वित्तशाठ्येन यः कुर्याद्वित्तवानपि मानवः । न स फलमवाप्नोति लोभाक्रान्तमानसः ॥२६
तस्मात्त्रिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत् । भागद्वयं च धर्मार्थे अनित्यं जीवितं यतः ॥२७
भक्त्या प्रचोदितं कुर्यादल्पवित्तोऽपि यो नरः । महाविभवसारोऽपि न कुर्याद्भक्तिवर्जितः ॥२८
सर्वस्वमपि यो दद्यादर्के भक्तिविवर्जितः । न तेन धर्मभागी स्याद्भक्तिरत्र कारणम् ॥२९
न तपोभिर्विभोरुग्रैर्न च सर्वैर्महामखैः । गच्छेदर्कं पुरं दिव्यमर्के भक्तियुतो नृप ॥३०
रुचिरं शुभशैलोत्थं कुर्याद्यस्तु रवेर्गृहम् । त्रिसप्तकुलसंयुक्तः सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥३१
यन्मया कोटिगुणितं कृतं स्यादिष्टकाम्यया । द्विपरार्धगुणं पुण्यं शैलजेऽपि विदुर्बुधाः ॥३२
मृच्छैलेन समं ज्ञेयं पुण्यमाढ्यदरिद्रयोः । यत्र तत्र गतः कुर्याद्भक्त्या पुण्यं भवालयम् ॥३३
शैलोत्थमिष्टकाभिर्वा दृढं दारुमयं शुभम् । स गच्छेत्परमं स्थानं भानोरमिततेजसः ॥
गैरिकं यानमारुह्य यः कुर्याद्धृतभूषणः ॥३४

दिये गये दान, हवन, जप, बलि एवं पूजन करने से अनंत फलों की प्राप्ति होती है, इसे ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवों ने बताया है।२३। अपने धन के अनुसार जो सूर्य के लिए मन्दिर निर्माण कराता है, वह आग्नेय विमान पर बैठकर सूर्य के साथ विहार करता है।२४। महाधनवान होते हुए भी भक्तिहीन होकर जिसने छोटे या बड़े उस मन्दिर की रचना की है, उसे (गृह न बनाने वाले के तुल्य फल की प्राप्ति होगी अर्थात् उसके और दरिद्र मनुष्य में कोई भेद नहीं होता है)।२५। धनवान होने पर भी जो मनुष्य शठतावश अधिक धन (सूर्य के लिए) व्यय न कर सका, तो उस लोभी को पुण्य फल की प्राप्ति नहीं होती है।२६। इसलिए धन का तीसरा भाग अपने जीवन के लिए संचित कर दो भागों को धर्मार्थ में व्यय करना चाहिए। क्योंकि जीवन नश्वर है।२७। अल्प धन के होते हुए भी भक्ति में निमग्न होकर ही (यह कार्य) करना चाहिए इसलिए कि महाधनवान् होने पर भक्तिहीन होकर यह कार्य करना निषिद्ध बताया गया है।२८। भक्तिहीन होकर जिसने अपने सर्वस्व का दान सूर्य के लिए कर दिया है, वह धर्म भागी कभी नहीं कहा जायगा क्योंकि धार्मिक होने में भक्ति ही कारण बतायी गयी है।२९। विभु (सूर्य) के लोक की प्राप्ति उग्रतप एवं समस्त यज्ञों द्वारा भी नहीं हो सकती है, नृप! उनके दिव्यलोक की प्राप्ति केवल भक्तिमान् ही कर सकता है।३०। जो शुभ शिला द्वारा सौन्दर्य पूर्ण सूर्य का मन्दिर बनाता है, वह अपने इक्कीस कुल (पीढ़ी) के समेत सूर्यलोक की प्राप्ति करता है।३१। जो मैंने बताया कि अपनी इष्ट कामनावश करने से कोटि गुने फल की प्राप्ति होती है, उसी भाँति विद्वानों को यह भी जानना चाहिए कि पत्थर के मन्दिर निर्माण कराने से परार्ध के दुगुने पुण्य की प्राप्ति होती है।३२। मिट्टी और पत्थर द्वारा मन्दिर के निर्माण कराने वाले धनवान् एवं दरिद्रों के पुण्य में कोई विशेषता नहीं होती है। इसलिए जहाँ कहीं भी हो सके भक्तिपूर्वक ही सूर्य के मन्दिर का निर्माण कराना चाहिए। इस प्रकार पत्थर, ईंटे अथवा काष्ठ द्वारा दृढ़ एवं शुभ मन्दिर की रचना अजेय तेज वाले सूर्य के लिए करानी चाहिए। जो ऐसा करता है उसे विमान

क्रीडमानोऽपि यः कुर्याद्बालभावेऽर्कमंदिरम् । सोऽर्कलोकमवाप्नोति विमानवरमास्थितः ॥३५
पुष्पमालाकुलं दिव्यं धूपगन्धादिवासितम् । अप्सरोगणसंकीर्णं सर्वकामसुखप्रदम् ॥३६
तत्र रूढो महाराज वत्सरं वृन्दमुत्तमम् । उषित्वा भास्करपुरे पूज्यमानस्तु दैवतैः ॥३७
कालादागत्य लोकेऽस्मिन्राजा भवति धार्मिकः । धर्मार्थकामसम्पन्नो यशसा च नराधिप ॥३८
पश्यन्परिहरञ्जन्तून्मार्जन्या मृदुसूक्ष्मया । शनैः सम्मार्जनं कुर्याच्चान्द्रायणफलं भवेत् ॥३९
पुत्रार्थं देहजीर्णाया वन्ध्यायाश्च विशेषतः । रोगार्तानां च भूतानामारोग्यार्थं प्रपूजयेत् ॥४०
गृहीत्वा गोमयं स्वच्छं स्थाने च पतितं शुभे । उपर्युपरि सन्त्यज्य मध्यग्रं जन्तुवर्जितम् ॥४१
वस्त्रपूतगोमयेन यः कुर्यादुपलेपनम् । पश्येत्तु सुखिताञ्जन्तूंश्चान्द्रायणशतं[1] लभेत् ॥४२
यः कुर्यात्सर्वकार्याणि वस्त्रपूतेन वारिणा । स मुनिः स महासाधुः स गच्छेत्परमां गतिम् ॥४३
क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः । अक्षरं तु महादानं सुखदं सर्वदेहिनाम् ॥४४
नैरन्तर्येण यः कुर्यात्पक्षं सम्मार्जनार्चनम् । वर्षमेकं शतं दिव्यं सुरलोके महीयते ॥४५
तस्यान्ते च चतुर्वेदसुरूपः प्रियदर्शनः । आद्यः सर्वगुणोपेतो राजा भवति धार्मिकः ॥४६
सम्पर्केणापि यः कुर्यान्नरः कर्म भगालये । सोऽपि सौमनसं गत्वा पुरं क्रीडति नित्यशः ॥४७

द्वारा उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है।३३-३४। बाल्यावस्था में खेलते हुए भी जो सूर्य मन्दिर बनाकर खेलता है, वह भी उत्तम विमान पर बैठकर सूर्य की प्राप्ति करता है।३५। महाराज ! पुष्पों की मालाओं से अलंकृत, दिव्य, धूप एवं गंधों से सुगन्धित, अप्सराओं से घिरे, समस्त कामनाएँ तथा सुख प्रदान करने वाले उस विमान द्वारा उस लोक में अनेकों वर्ष देवों से पूजित रहकर पुनः क्रम प्राप्त कर यहाँ आकर धार्मिक राजा होता है, नराधिप ! उसके धर्म, अर्थ, काम एवं यश सभी सुसम्पन्न होते रहते हैं। मन्दिर में जीवों को देखकर उनकी रक्षापूर्वक जो कोमल एवं सूक्ष्म मार्जनी (झाड़ू) द्वारा धीरे-धीरे सफाई करता है, उसे चान्द्रायण फल की प्राप्ति होती है।३६-३९। जिस प्रकार बन्ध्याओं को बूढ़ी हो जाने पर भी पुत्रार्थ उनकी पूजी करनी चाहिए उसी भाँति रोगी प्राणियों को सदैव अपने आरोग्य के लिए भी।४०। अच्छे स्थान से गोबर लाकर कपड़े से छानकर उनके मन्दिर के ऊपरी भाग को छोड़ केवल नीचे वाले भाग (भूमि) को जीवों (कीड़े-मकोड़े) को देखते हुए लीपने से सौ चान्द्रायण की पुण्य प्राप्ति होती है।४१-४२। जो वस्त्रपूत जल द्वारा सभी कार्य करता है, वह मुनि, तथा महान् साधु है, उसे परमगति की प्राप्ति होती है।४३। सभी प्रकार के दान, यज्ञ, हवन एव बलि की क्रियाएँ नश्वर बतायी गयी हैं, किन्तु समस्त प्राणियों के लिए केवल अक्षर अनश्वर और सुखदायी (वह सूर्य का) महादान ही है। एक पक्ष तक निरन्तर सम्मार्जन (सफाई) और पूजन जो करता है, वह दिव्य सौ वर्ष तक स्वर्ग लोक में सम्मानित होता है।४४-४५। तत्पश्चात् चारों वेद के स्वरूप (प्रखरविद्वान्) सर्व प्रिय, प्रथम एवं समस्त गुणों समेत धार्मिक राजा होता है।४६। जो किसी के साथ भी सूर्य के मन्दिर में कार्य करता है, वह भी देवलोक में जाकर प्रतिदिन

---

१. कृतशतवारचान्द्रायणजं फलमित्यर्थः।

तावद्भ्रमन्ति संसारे दुःखशोकपरिप्लुताः । न भजन्ति रविं भक्त्या यावत्सर्वेऽपि देहिनः ॥४८
समासक्तं तथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे । यद्यर्को न भवेद्देवः को मुच्येदेव बन्धनात् ॥४९
यः कुर्यात्कुट्टिमां भूमिं दर्पणोदरसन्निभाम् । नानावर्णविचित्रां च विचित्रकुसुमोज्ज्वलाम् ॥५०
क्वचित्कलशविन्यस्तां पङ्कजैरुपशोभिताम् । रम्यां मनोरमां सौम्यामर्कायतनसंसदि ॥५१
यावद्दण्डा भवेद्भूमिः समन्ताच्च सुशोभना । तावद्युगसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥५२
कारयेच्चित्रशास्त्रज्ञश्चित्रकर्मार्कमन्दिरे । विचित्रं यानमारुह्य चित्रभानोर्गृहं व्रजेत् ॥५३
यावत्स देवरूपाणि ग्रहरूपाणि लेखयेत् । तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥५४
भवेद्भूमिः समन्ताच्च यः कुर्यादर्कमन्दिरम् । आरामावसथादीनां लभेदामूल्यकं फलम् ॥५५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मवर्णनं नाम
द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६२॥

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मेषु पुष्पपूजावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

भास्करस्य महाबाहो भानोरमिततेजसः । स्नानकाले प्रकुर्वीत जयशब्दादिमङ्गलम् ॥१

क्रीड़ा करता है।४७। संसार में दुःख एवं शोक में निमग्न होकर समस्त प्राणी तभी तक घूमते रहते हैं, जब तक सूर्य की भक्तिपूर्वक आराधना नहीं करते।४८। प्राणियों के चित्त प्रत्येक क्षण विषयों में उन्हें देखकर आसक्त रहते हैं इसलिए ऐसी दशा में यदि सूर्य देव न हों तो उन्हें बन्धन मुक्त कौन कर सकता है।४९। जो दर्पण के समान चमकीला फर्श (मन्दिर के भीतर भूमि का ऊपरी भाग) बनाता है, भाँति-भाँति के रंग एवं भाँति-भाँति के पुष्पों से सुशोभित करता है, तथा कहीं कमलों से सुसज्जित कलशों के रखने के द्वारा उसे सौन्दर्यपूर्ण करता है, इस प्रकार सूर्य के मन्दिर की भूमि रमणीक एवं मनोहर बनाने वाला वह मनुष्य जितने दंडों के प्रमाण वह चौकोर भूमि रहती है, उतने सहस्रयुग सूर्य लोक में पूजित होता है।५०-५२। जो कुशल चित्रकार सूर्य के मन्दिर में चित्र बनाता है वह विचित्र विमान पर बैठकर चित्रगुप्त के लोक की प्राप्ति करता है।५३। ग्रह रूप में उन देव की जितनी मूर्ति (चित्र) वह बनाता है, उतने सहस्र युग सूर्य लोक में सम्मानित होता है। सूर्य के मन्दिर में चारों ओर इस भाँति लम्बी-चौड़ी भूमि होनी चाहिए, जिसमें भलीभाँति बगीचा एवं रहने के स्थान बने हों ऐसा निर्माण कराने वाले उस पुरुष को अमूल्य फल की प्राप्ति होती है।५४-५५

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म वर्णन नामक
एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त।१६२।

अध्याय १६३

सौरधर्म में पुष्पपूजा का वर्णन

सुमन्तु बोले—महाबाहो ! अमित तेज एवं किरण युक्त सूर्य के स्नान के समय 'जप' आदि मांगलिक

पद्मस्वस्तिकशङ्खं तु श्रीवत्सं द्विजसत्तम । हेमरूप्यादिपात्रेषु कल्पितं गोमयादिभिः ॥२
नानावर्णकसंयुक्तैरक्षतैस्तिलतन्दुलैः । स्वच्छैश्च दधिसम्मिश्रैर्यथाशोभं प्रपूरितैः ॥३
द्रव्यपीठप्रदीपाश्च भूताश्वत्थादिपल्लवैः । औषधीभिश्च मेध्याभिः सर्वबीजैर्यवादिभिः ॥४
सप्तम्यादिषु सर्वेषु षष्ठ्यादिषु विशेषतः । शङ्खभेर्यादिभिः कुर्याद्वाद्यघोषं सुशोभनम् ॥५
त्रिसन्ध्यं वेदनिर्घोषं कुर्वीत फलमुत्तमम् । कुर्यान्नीराजनं चैव शङ्खवादित्रमङ्गलैः ॥६
यावन्नीराजनं कुर्यात्पर्वाणि विधिवद्रवौ । तावद्युगसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥७
कपिला पञ्चगव्येन कुशवारियुतेन वै । स्नापयेन्मन्त्रपूतेन ब्रह्मस्नानं हि तत्स्मृतम् ॥८
प्रत्यब्दमेकमपि यः सर्वेऽब्दे ब्रह्मस्नानं प्रयच्छति । स मुक्तः सर्वपापैस्तु सूर्यलोके महीयते ॥९
कपिलापञ्चगव्येन [1]दधिक्षीरयुतेन च । स्नानं दशगुणं ज्ञेयं महत्पुण्यं नराधिप ॥१०
ऋभवो धीरमुद्दिश्य देहशुद्धिं च शाश्वतीम् । कपिलामाहरेन्नित्यं मुनिदेवाग्निनिर्मिताम् ॥११
कापिलं यः पिबेच्छूद्रो देवकार्यार्थनिर्मितम् । स पच्यते महाघोरे सुचिरं नरकार्णवे ॥१२
वर्षकोटिसहस्रेण यत्पापं समुपार्जितम् । घृताभ्यङ्गेन सूर्यस्य दहेत्सर्वं न संशयः ॥१३
कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम् । वज्रस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥१४
सप्तम्यां च कृतस्नानो यजेत्सूर्यं सकृन्नरः । कुलान्युद्धृत्य सप्तेह सूर्यलोके महीयते ॥

शब्दों का उच्चारण करना चाहिए।१। सुवर्ण और चाँदी के पात्रों में गोबर आदि द्वारा कमल, स्वास्तिक, शंख एवं श्रीवत्स रूपी अंकों को बनाये, पुनः भाँति-भाँति के मिश्रित अक्षत, तिल, चावल स्वच्छ दही आदि मिलाकर उसी द्वारा सौन्दर्यपूर्ण उत्तम आसन दीपक, पीपल आदि के पल्लव, औषधियों, जवा आदि समस्त बीजों के अंकुरों से सुसम्पन्न करके सभी सप्तमी या षष्ठी में शंख भेरी आदि वाद्यों समेत मनमोहक वाद्यों (बाजों को बजाये)।२-५। तीनों संध्यायों में वेदपाठ करना चाहिए, उससे (महान्) फल प्राप्त होते हैं, शंख आदि मांगलिक वाद्यों समेत पर्वतिथियों में सूर्य का जितने बार नीराजन किया जाता है, उतने सहस्र युग वह सूर्य लोक में पूजित होता है।६-७। कपिला गाय के पञ्च गव्य से कुश जल द्वारा मंत्र से पवित्र स्नान कराना चाहिए, क्योंकि यही 'ब्रह्म स्नान' बताया गया है।८। जो प्रत्येक वर्ष में एक बार भी सूर्य का ब्रह्मस्नान कराता है, वह समस्त पातकों से मुक्त होकर सूर्यलोक में सम्मानित होता है।९। नराधिप ! कपिलागाय के पञ्चगव्य अथवा अन्य गाय के दही, क्षीर मिश्रित जल से स्नान कराने से दशगुने पुण्य की प्राप्ति होती है।१०। देवों को चाहिए कि सूर्य के उद्देश्य से अपनी शरीर शुद्धि के निमित्त मुनि, देव एवं अग्नि के लिए उत्पन्न की गई कपिला गाय का नित्य पालन करें।११। देव-कार्य के लिए विनिर्मित कपिलागाय के दूध का पान जो शूद्र करता है, वह अत्यन्त दुःखदायी नरक सागर में पड़कर चिरकाल तक दुःखों का अनुभव करता रहता है।१२। सूर्य के लिए घी का अभ्यंग प्रदान करने से सहस्र कोटि (करोड़ों) वर्षों के अर्जित पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं।१३। वज्र स्नान कराने से अग्नि द्वारा ईंधन की भाँति सहस्र कोटिकल्पों के किये हुए समस्त पाप जल जाते हैं।१४। सप्तमी में स्नान करके एक बार भी सूर्य

---

१. कपिलेतरगवामिति शेषः।

वसुमेहादियुक्तं च क्षीरस्नानस्य तत्समम् ॥१५
सकृदाढकेन पयसा यो भानुं स्नापयेन्नरः । राजतेन विमानेन सोऽर्कलोके महीयते ॥१६
स्नाप्य दध्ना सकृद्भानुं स त्रिलोके महीयते । मधुना स्नपयित्वा तं शुक्रलोके महीयते ॥१७
उद्वृत्य शालिपिष्टेन वायुलोकेषु पूज्यते । स्नानमिक्षुरसेनेह यः सूर्ये सकृदाचरेत् ॥
स गोपतिपुरं गच्छेत्सर्वकामसमन्वितः ॥१८
फलोदकेन यो भानुं सकृत्स्नापयते नरः । उत्सृज्य पापकलिलं पितृलोके महीयते ॥१९
श्रीखण्डवारिणा स्नाप्य सकृद्भानुं नराधिप । चन्द्रांशुनिर्मलः श्रीमांश्चरेदाश्रेयमन्दिरे ॥२०
वस्त्रपूतेन तोयेन यद्यर्कं स्नापयेत्सकृत् । स सर्वकामतृप्तात्मा राकाधिपपुरं व्रजेत् ॥२१
आपो हिष्ठेति जप्येन गङ्गातोयेन भारत । गैरिकेण विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥२२
कर्पूरागुरुतोयेन योऽर्कं स्नापयते सकृत् । स्नाप्य भानुं सकृन्मन्त्रैः सप्तम्यां समुपोषितः ॥
स कुलानेकविंशतिमुत्तार्य रविमाव्रजेत् ॥२३
पितॄनुद्दिश्य यो भानुं स्नापयेच्छीतवारिणा । तृप्ताः स्वर्गं व्रजन्त्याशु पितरो नरकादपि ॥२४
भानुं शान्ताम्बुनास्नाप्य धारोष्णपयसा सह । स्नाप्य पश्चाद्व्रतेनेशमग्निलोके महीयते ॥२५
एतत्स्नानत्रयं कृत्वा पूजयित्वा तु भारत । अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥२६

के पूजन करने से मनुष्य अपने सात पीढ़ियों के उद्धारपूर्वक सूर्य लोक में सम्मानित होता है। क्षीर से स्नान कराने वाला पुरुष रत्न एवं सुवर्णयुक्त होकर उसके समान ही फलभागी होता है।१५। एक सेर दूध द्वारा एक बार भी सूर्य को स्नान कराने वाला पुरुष चाँदी के विमान पर स्थित होकर सूर्य लोक में पूजित होता है।१६। दही द्वारा एक बार भी (सूर्य को) स्नान कराने वाला मनुष्य तीनों लोकों में सम्मानित होता है। शहद द्वारा स्नान कराने वाला शुक्रलोक में पूजित होता है।१७। चावल के चूर्ण (आटे) द्वारा स्नान कराने से यह वायुलोक में पूजित होता है, ईख के रस द्वारा जो एक बार भी सूर्य को स्नान कराता है, वह समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति करता है।१८। फल से रस द्वारा एक बार भी सूर्य को स्नान कराने वाला मनुष्य पाप समूह से मुक्त होकर पितृलोक में पूजित होता है।१९। नराधिप! श्रीखंड (चन्दन) के जल से भी एक बार सूर्य को स्नान कराने के चन्द्र किरण की भाँति निर्मल एवं श्रीसम्पन्न होकर वह चन्द्रलोक में विचरण करता है यदि वस्त्रपूत (कपड़े से दानकर) जल द्वारा एक बार भी सूर्य का स्नान कराया जाय, तो समस्त कामनाओं की तृप्तिपूर्वक मनुलोक की प्राप्ति होती है।२०-२१। भारत! गंगाजल द्वारा 'आपोहिष्टे' ति मंत्र से सूर्य के मार्जन-स्नान कराने से वह सुवर्ण मयविमान पर बैठकर ब्रह्म लोक में सम्मानित होता है।२२। जो मनुष्य सप्तमी में उपवास कर कपूर एवं अगुरु के जल द्वारा एक बार मंत्रपूर्वक सूर्य को स्नान कराता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियों के उद्धार करके सूर्यलोक की प्राप्ति करता है।२३। जो अपने पितरों के उद्देश्य से शीतल जल द्वारा सूर्य को स्नान कराता है, उसके पितरलोग नृप होकर नरक से शीघ्र स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर देते हैं।२४। धारोष्ण (तुरन्त के दुहे हुए) दूध के साथ शीतल जल द्वारा सूर्य को स्नान कराकर व्रत पालन करे तो, वह अग्नि लोक में सम्मानित होता है।२५। भारत! इस प्रकार तीन भाँति के स्नान एवं पूजन करके मनुष्य सहस्र अश्वमेध

मृत्कुम्भात्ताम्रकुम्भैस्तु स्नानं शतगुणं मतम् । रौप्यैः पादोत्तरं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं परम् ॥
स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नानमतः परम् ॥२७
इहामुत्र कृतं पापं घृतस्नानेन नश्यति । सप्तजन्मकृतं पापं पुराणश्रवणेन तु ॥२८
दशापराधांस्तोयेन क्षीरेण तु शतं क्षमेत् । सहस्रं क्षमते दध्ना घृतेनाप्ययुतं क्षमेत् ॥२९
नैरन्तर्येण यो मासं घृतस्नानं समाचरेत् । दशैकादश कुलानीह नयेत्सूर्यस्य मन्दिरम् ॥३०
स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गः पञ्चविंशतिः । पलानां द्विसहस्रेण महास्नानमिति श्रुतिः ॥३१
घृताभ्यङ्गं घृतस्नानं भानोः कुर्याद्द्विजोत्तम । पञ्च गोधूमचूर्णैस्तु कषायैर्दर्भसंमितैः ॥३२
दशधेनुसहस्राणि यद्दत्वा लभते फलम् । तत्फलं लभते सर्वमर्कस्योद्वर्तने कृते ॥३३
अर्घ्यं पुष्पफलोपेतं यस्त्वर्काय निवेदयेत् । स पूज्यः सर्वलोकेषु अर्कवन्मोदते दिवि ॥३४
गन्धतोयेन सन्मिश्रमुदकाद्द्वादशोत्तरम् । पञ्चगव्यसमायुक्तमर्घ्यं शतगुणं नृप ॥३५
योऽष्टाङ्गगर्भमापूर्य भानोर्मूर्ध्नि निवेदयेत् । दशवर्षसहस्राणि रमते चार्कमन्दिरे ॥३६
आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं दधि तथा मधु । रक्तानि करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् ॥३७
अष्टाङ्ग एष अर्घो वै ब्रह्मणा परिकीर्तितः । सततं प्रीतिजननो भास्करस्य नराधिप ॥३८
दातुर्वैणवपात्रेण दत्तेऽर्घ्ये यत्फलं भवेत् । तस्माच्छतगुणं पुण्यं मृत्पात्रेण नराधिप ॥३९

के फल की प्राप्ति करता है।२६। मिट्टी के कलशों और ताँबे के घड़ों द्वारा स्नान कराने से सौ गुने एवं चाँदी के कलशों से चौथाई और अधिक प्राप्ति होती है। दर्शन से स्पर्श करना श्रेष्ठ होता है, स्पर्शन से पूजन श्रेष्ठ तथा उसमें भी घी द्वारा स्नान कराना परमोत्तम दताया गया है।२७। लोक-परलोक के सभी पाप घी स्नान से नष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार सात जन्म का पाप पुराण श्रवण से नष्ट होना बताया गया है।२८। जल द्वारा स्नान कराने से दश अपराधों की क्षमा प्राप्त होती है, क्षीर द्वारा सौ अपराधों, दही से सहस्र अपराधों एवं घी द्वारा दश सहस्र अपराधों की क्षमा प्राप्त होती है।२९। एक मास तक निरंतर जो सूर्य को घृत स्नान कराता है, वह अपने इक्कीस पीढ़ी के परिवारों को सूर्यलोक की प्राप्ति कराता है।३०। सौ पल का स्नान विधान बताया गया है (अर्थात् स्नान की वस्तु सौपल के परिमाण से कम न हो) उसी प्रकार पच्चीस पल का अभ्यंग, एवं दो सहस्र पल का महास्नान बताया गया है।३१। अतः द्विजोत्तम ! सूर्य को घी का अभ्यंग एवं स्नान कराना चाहिए। जो एक पीतमिश्रित वर्णवाले कुशों की भाँति गेहूँ के चूर्ण (आटे) द्वारा सूर्य का उद्वर्तन (मूर्ति की रूप सफाई) करता है, उसे दशसहस्र धेनु-दान के समान फल की प्राप्ति होती है।३२-३३। पुण्य एवं फल समेत अर्घ्य जो सूर्य के लिए अर्पित करता है, वह समस्त लोकों का पूज्य होकर सूर्य के समान स्वर्ग में आनन्दानुभव प्राप्त करता है।३४। नृप ! सुगन्धित जल मिश्रित जल द्वारा दिया गया अर्घ्य बारह गुने एवं पंचगव्य मिश्रित अर्घ्य प्रदान करने से सौ गुने फल की प्राप्ति होती है।३५। जो अष्टांग समेत अर्घ्य सूर्य के शिर पर अर्पित करता है, सूर्य के मन्दिर में वह दशसहस्र वर्ष विहार करता है।३६। जल, क्षीर, कुशाग्र भाग, घी, दही, शहद, रक्त करवीर (कनेर), और रक्तचन्दन, ब्रह्मा ने इसे ही अष्टांग अर्घ्य बताया है। नराधिप ! यह भास्कर के लिए निरन्तरप्रिय है।३७-३८। बाँस के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उससे सौगुना पुण्य

ताम्रार्घ्यपात्रदानेन पुण्यं शतगुणं मतम् । पालाशपद्मपत्राभ्यां ताम्रपात्रे फलं लभेत् ।।४०
रौप्यपात्रेण विज्ञेयं लक्षार्घ्यं नात्र संशयः । सुवर्णपात्रविन्यस्तमर्घ्यं कोटिगुणं भवेत् ।।४१
एवं स्नानार्घ्यनैवेद्यबलिधूपादिषु क्रमात् । पात्रान्तरविशेषेण तत्फलं तूत्तरोत्तरम् ।।४२
रौप्यपात्रप्रदानेन यत्पुण्यं वेदपारगे । ताम्रपात्रप्रदानेन तस्माच्छतगुणं रवौ ।।४३
फलं कोटिसुवर्णस्य यो दद्याद्वेदपारगे । सूर्याय रूप्यपात्रे तु भवेत्पुण्यं ततोऽधिकम् ।।४४
सुवर्णपात्रं यो दद्याद्भास्कराय महीपते । न शक्यं तस्य तद्वक्तुं पुण्यं पात्रविशेषतः ।।४५
तुल्यमेव फलं प्रोक्तं सर्वमाढ्यदरिद्रयोः । तयोरभ्यधिकं तस्य यस्त्वर्के भावनाधिकः ।।४६
विभवे सति यो मोहान्न कुर्याद्विधिविस्तरम् । नैव तत्फलमाप्नोति प्रलोभाक्रान्तमानसः ।।४७
तस्मान्मन्त्रैः फलैस्तोयैश्चन्दनाद्यैश्च यत्नतः । तदनन्तफलं ज्ञेयं भक्तिरेवात्र कारणम् ।।४८
वर्षकोटिशतं दिव्यं सूर्यलोके महीयते । गन्धानुलेपनं पुण्यं द्विगुणं चन्दनस्य तु ।।४९
गन्धाच्चतुर्गुणं ज्ञेयं पुष्पमष्टगुणं नृप । कृष्णागुरु विशेषेण द्विगुणं फलमादिशेत् ।।
तस्माच्छतगुणं पुण्यं कुङ्कुमस्य विधीयते ।।५०
चन्दनागुरुकर्पूरैः श्लक्ष्णपिष्टैः सकुङ्कुमैः । भानुं पर्याप्तमालिप्य कल्पकोटिं वसेद्दिवि ।।५१

मिट्टी के पात्र द्वारा प्रदान करने से होता है।३९। ताँबे के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने से सौ गुना पुण्य होता है, पलाश एवं कमल पत्र द्वारा ताँबे के पात्र के समान ही फल प्राप्त होता है।४०। चाँदी के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने से लक्ष गुने अधिक पुण्य होता है इसमें संदेह नहीं। सुवर्ण पात्र द्वारा दिया गया अर्घ्य कोटि गुने फल प्रदान करता है।४१। इस प्रकार स्नान, अर्घ्य, नैवेद्य, बलि एवं धूप आदि प्रदान करने में पात्रों की विशेषता वश उत्तरोत्तर अधिक फल प्राप्त होता है।४२। वेद पारगामी (सूर्य) के लिए चाँदी के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, ताँबे के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान से उससे सौ गुने फल की प्राप्ति होती है।४३। वेदनिष्णात (सूर्य) के लिए जो सुवर्ण पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करता है, उसे कोटिफल की प्राप्ति होती है। चाँदी के पात्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने से उससे भी अधिक पुण्य प्राप्त होत है।४४। महीपते! सूर्य के लिए सुवर्णपात्र जो अर्पित करता है, पात्र विशेष होने के कारण उसका पुण्य-परिमाण इतना विस्तृत रहता है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती।४५। इस प्रकार धनवान् और दरिद्र पुरुषों के फल की समानता बतायी गई है। उन दोनों से भी अधिक पुण्य उसे प्राप्त होती है, जिसकी भावना (प्रेम) सूर्य के लिए उत्तरोत्तर अधिक होती रहती है।४६। धन के रहते हुए जो मोहवश विस्तार रूप में विधान की समाप्ति नहीं करता है, उस लोभी पुरुष को उसका कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता है।४७। इसलिए भक्तिपूर्वक ही मन्त्र, फल, जल एवं चन्दन आदि प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। उसका अनन्त फल होता है, क्योंकि आराधना में भक्ति ही एक मुख्य कारण बतायी गया है। उसे सुसम्पन्न करनेवाला पुरुष सौ करोड़ वर्ष तक सूर्य लोक में पूजित होता है। गंध के उपलेपन से चन्दन के लेप करने में न दुगुना पुण्य, गंध से चौगुना पुण्य से आठगुना तथा नृप! काले अगुरु से विशेषकर दुगुने फल की प्राप्ति होती है और उससे सौगुना पुण्य कुंकुम द्वारा प्राप्त होता है।४८-५०। चन्दन, अगुरु तथा कपूर को भली-भाँति पीसकर उसमें कुंकुम डालकर सूर्य के शरीर में भली-भाँति लेपन

स दीव्येत्सुरवृन्देन पुण्यगन्धैः प्रलेपितः । दशवर्षसहस्राणि वीर मित्रपुरे वसेत् ॥५२
भक्त्या निवेद्य अर्काय तालवृन्तं नराधिप । दशवर्षसहस्राणि वीरलोके महीयते ॥५३
मायूरं व्यजनं दत्त्वा सूर्यायातीव शोभनम् । वर्षकोटिशतं पूर्णं प्रभञ्जनपुरे वसेत् ॥५४
पुष्पैररण्यसम्भूतैः पत्रैर्वा गिरिसम्भवैः । अपर्युषितनिश्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः ॥५५
आत्मारामभवैश्चैव पुष्पैः सम्पूजयेद्रविम् । पुष्पजातिविशेषेण भवेत्पुण्यं ततोऽधिकम् ॥५६
तपःशीलगुणोपेत इतिहासविदि द्विजे । दत्त्वा दश सुवर्णस्य निष्कान्यल्लभते फलम् ॥५७
करवीरस्य कुसुममर्काय विनिवेदयेत् । लभते तत्फलं वीर यथाह भगवान्रविः ॥
एवं पुष्पविशेषेण फलं तदधिकं भवेत् । ज्ञेयं पुण्यं रसज्ञेन यथा स्यात्तन्निबोध मे ॥५८
सदा पुष्पसहस्रेभ्यः करवीरं विशिष्यते । बिल्वपत्रसहस्रेभ्यः पद्ममेकं नराधिप ॥५९
पद्मपुष्पसहस्रेभ्यो बकपुष्पं विशिष्यते । बकपुष्पसहस्रेभ्यो मुद्गरं परमुच्यते ॥६०
कुशपुष्पसहस्रेभ्यः शमीपत्रं विशिष्यते । शमीपुष्पसहस्रेभ्यो नृप नीलोत्पलं परम् ॥
सर्वासां पुष्पजातीनां प्रवरं नीलमुत्पलम् ॥६१
रक्तोत्पलसहस्रेण नीलोत्पलशतेन च । रक्तैश्च करवीरैश्च यस्तु पूजयते रविम् ॥६२
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । वसेदर्कपुरे श्रीमान्सूर्यतुल्यपराक्रमः ॥६३
शेषाणां पुष्पजातीनां यत्फलं परिकीर्तितम् । तत्फलस्यानुसारेण सूर्यलोके महीयते ॥६४

करे तो, कोटिकल्प तक स्वर्ग में निवास रहता है ।५१। वीर ! पुण्य मेघों के उपलेप करने से वह पुरुष देव समूहों के साथ क्रीडा करता है, पश्चात् सूर्य लोक में दश सहस्र वर्ष का निवास उसे प्राप्त होता है ।५२। नराधिप ! भक्तिपूर्वक ताड़फल के गुच्छे को सूर्य के लिए समर्पित करने से (मनुष्य) दश सहस्र वर्ष सूर्य लोक में पूजित होता है ।५३। मोरपुच्छ का व्यंजन (पंखा) अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण बनाकर सूर्य के लिए समर्पित करने से सौ कोटिवर्ष सूर्यलोक में निवास प्राप्त होता है ।५४। पहाड़ी प्रदेश के जंगलों के पुष्पों एवं पत्तों द्वारा जो बासी एवं फटे-कटे आदि न हों, जन्तुहीन हों। अथवा अपने बगीचे के पुष्प हों, सूर्य की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि पुष्प-जाति की विशेषता वश पुण्य भी उत्तरोत्तर अधिक होता है ।५५-५६। तपस्वी गुणयुक्त एवं इतिहासज्ञ ब्राह्मण को दश निष्क सुवर्ण प्रदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वीर ! सूर्य के लिए कनेर के पुष्प प्रदान करने से उसी फल की प्राप्ति होती है, भगवान् सूर्य ने बताया है । इस भाँति पुण्य की विशेषता वश उससे अधिक पुण्य प्राप्त होता है, जिसे रासायनिक लोग जानते हैं । उसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! अन्य एक सहस्र पुष्पों से अधिक कनेर के पुष्प की विशेषता रहती है, नराधिप ! सहस्र विल्वपत्रों से कमल, सहस्र कमलों से वकपुष्प, एवं सहस्र वक पुष्प से मुद्‌गर की विशेषता अधिक बतायी गयी है ।५७-६०। सहस्र कुश पुष्प से शमीपत्र की विशेषता अधिक है, नृप ! सहस्र शमीपत्र से अधिक लीलाकमल की विशेषता है, तथा पुष्पजातियों में नीलकमल उत्तम बताया गया है ।६१। सहस्र रक्तकमल, सौ नील कमल एवं रक्त कनेर के पुष्प द्वारा जो सूर्य की पूजा करता है, वह श्रीमान् सूर्य के समान पराक्रमशाली होकर सहस्र कोटि एवं सौ कोटि कल्प वर्ष की संख्या पर्यन्त सूर्य लोक में निवास करता है ।६२-६३। शेष पुष्पजातियों के जितने फल बताये गये हैं, उसी के अनुसार वह सूर्य लोक में पूजित

शमीपुष्पं बृहत्याश्च कुसुमं तुल्यमुच्यते । करवीरसमा ज्ञेया जातीविजयपाटला ॥६५
श्वेतमन्दारकुसुमं सितपुष्पं च तत्समम् । नागचम्पकपुन्नागमुद्गराणां समाः स्मृताः ॥६६
गन्धवन्त्यपवित्राणि कुसुमानि विवर्जयेत् । गन्धहीनमपि ग्राह्यं पवित्रं यत्कुशादिकम् ॥६७
सात्त्विकं तद्धि कुसुममपवित्रं च तामसम् । मुद्गराणि कदम्बानि रात्रौ देयानि सूरये ॥६८
दिवाशेषाणि पुष्पाणि त्यजेदुपहतानि च । मुकुलैर्नार्चयेद्भानुमपक्वं न निवेदयेत् ॥६९
फलं क्वथितविद्धं च यत्नात्पक्वमपि त्यजेत् । अलाभे बत पुष्पाणां पत्राण्यपि निवेदयेत् ॥७०
पत्राणामप्यलाभे तु फलान्यपि निवेदयेत् । फलानामप्यलाभेन तृणगुल्मौषधीरपि ॥७१
औषधीनामभावे तु भक्त्या भवति पूजितः । प्रत्येकं मुक्तपुष्पेण दशसौवर्णिकं फलम् ॥७२
यः सुगन्धैर्मुक्तपुष्पैः सम्यग्भानुं प्रपूजयेत् । माघासितेऽपि सुमनाः सोऽनन्तफलमश्नुते ॥७३
करवीरैर्महाराज संयतो भानुमर्चयेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥७४
अगस्त्यकुसुमैर्भक्त्या यः सकृद्भानुमर्चयेत् ।गवां प्रयुतदानस्य फलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ॥७५
मल्लिकोत्पलपद्मैश्च जातीपुन्नागचम्पकैः । अशोकश्वेतमंदारकर्णिकारान्धुकैस्तथा ॥७६
करवीरार्ककह्लारशमीतगरकेशरैः । अगस्तिबकपुष्पैस्तु शतपत्रैर्नराधिप ॥७७
पुष्पैरेतैर्यथालाभं यो नरः पूजयेद्रविम् । स तत्फलमवाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ॥७८

होता है।६४। शमी पुष्प और वृहती पुष्प समान हैं और करवीर के समान चमेली, विजय एवं पाटल पुष्प बताया गया है।६५। श्वेतमंदार (मदार) के पुष्प सितपुष्प के समान हैं, नाग, चंपक, पुन्नाग एव मुद्गर आपस में समान हैं।६६। सुगन्धित होते हुए भी अपवित्र पुष्प का सर्वथा त्याग करना चाहिए। गंधहीनों में केवल कुश और दिशाओं का ही ग्रहण किया जाता है।६७। पवित्र पुष्प सात्त्विक और अपवित्र पुष्प तामस बताया गया है। मुद्गर एवं कदम्ब पुष्प को रात में भी सूर्य के लिए समर्पित करना चाहिए। दिन के शेष सभी उपहत (कुम्हलाने आदि द्वारा नष्ट प्राय) पुष्प का त्याग करना बताया गया है। मुकुल (अविकसित) सूर्य के लिए अर्पित न करनी चाहिए। उसी प्रकार बिना पके फल भी अर्पित करना निषिद्ध है। कथित फल तथा यत्न द्वारा पकाया गया फल निषिद्ध है। पुष्पों के अभाव में पत्र का अर्पण करना चाहिए।६८-७०। पत्तों के अभाव में फल, फलों के अभाव में तृण गुल्म एवं औषधि और उसके अभाव में केवल भक्ति द्वारा ही पूजन करना श्रेयस्कर कहा गया है। अपने आप गिरे हुए प्रत्येक पुष्पों द्वारा (पूजन करने से) दश निष्क सुवर्ण प्रदान करने के समान फल प्राप्त होता है।७१-७२। माघ मास के कृष्ण पक्ष में प्रसन्न चित्त होकर जो सुगन्धित एवं स्वयं पालित पुष्पों द्वारा सूर्य की भली भाँति पूजा करता है, उसे अनन्त फल की प्राप्ति होती है।७३। महाराज ! संयमपूर्वक कनेर के पुष्पों से सूर्य की पूजा करने पर समस्त पापों से मुक्त होकर वह सूर्य लोक में सम्मानित होता है।७४। जो भक्तिपूर्वक अगस्त्य पुष्प द्वारा एक बार भी सूर्य की पूजा करता है, उसे दशसहस्र गोदान के फल की प्राप्ति होती है।७५। मल्लिका, कमल, चमेली, पुन्नाग, चम्पा, अशोक, श्वेतमंदार, कर्णिकार, अन्धुक, कनेर, अर्ककह्लार, शमी, तगर, केशर, अगस्त्य, बक एवं शतपत्र (कमल) नराधिप ! इन पुष्पों द्वारा जो मन इच्छित सूर्य की पूजा करता है, उसे जिन फलों की प्राप्ति होती है, सावधान होकर सुनो ! कोटि सूर्य के समान प्रकाशपूर्ण तथा समस्त मनोरथ प्रदान करने वाले, विमानों पर बैठकर जो चारों ओर से पुष्पमाला से सुशोभित और गायन एवं

सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामिभिः । पुष्पमालापरिक्षिप्तैर्गीतवादित्रनादितैः ॥७९
तन्त्रीमधुरवाद्यैश्च स्वच्छन्दगमनैर्नृप । सूर्यकन्यासमाकीर्णैर्देवानां च सुदुर्लभैः ॥८०
दोधूयमानश्चमरैः स्तूयमानः सुरासुरैः । गच्छेदर्कपुरीं दिव्यां तत्र सम्पूजितो भवेत् ॥८१
यैस्तैश्च वापि कुसुमैर्जलजैः स्थलजैर्नृप । सम्पूज्य श्रद्धया भानुमर्कलोके महीयते ॥८२
सूर्यस्योपरि यः कुर्याच्छोभनं पुष्पमण्डलम् । शोभितं पुष्पस्रग्दामैरापीठान्त प्रलम्बितैः ॥८३
अत्याश्चर्यमहायानैर्दिव्यपुष्पोपशोभितैः । सर्वेषामुपरिष्टाच्च वसेदर्कपुरे सुखी ॥८४
अनेकरागविन्यस्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्गृहम् । यः कुर्यात्पर्वकाले तु विचित्रकुसुमोज्ज्वलम् ॥८५
स पुष्पकविमानेन पुष्पमालाकुलेन तु । पुष्पेतरपुरं दिव्यं श्रयते नात्र संशयः ॥८६
अक्षयं मोदते कालमतिरस्कृतशासनः । सौरादिसर्वलोकेषु यत्रेष्टं तत्र याति सः ॥८७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु पुष्पपूजावर्णनं
नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६३।

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यषष्ठीव्रतवर्णनम्

शतानीक उवाच

पुनस्त्वं देवदेवस्य भास्करस्य महौजसः । पूजने यत्फलं प्रोक्तं तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम ॥१

वाद्यों से निनादित हो रहे तंत्री, मधुर वाद्यों को बजाती हुई, स्वतंत्र विचरण करने वाली एवं देव-दुर्लभ सूर्य की कन्याओं से घिरकर उनकी धवल चामरों की सेवा ग्रहणपूर्वक सुर एवं असुरों की स्तुतियों से पूजित होते हुए दिव्य सूर्यलोक की प्राप्ति करता है, और वहाँ पहुँचकर भली भाँति सम्मानित किया जाता है ।७९-८१। नृप ! स्थल या जल में उत्पन्न किसी पुष्पों द्वारा सूर्य की पूजा श्रद्धापूर्वक सुसम्पन्न करने पर वह सूर्य लोक में पूजित होता है ।८२। मन्दिर में सूर्य के ऊपर जो सौन्दर्यपूर्ण पुष्प-मण्डल की रचना करता है, जिसमें पुष्पों की मालाएँ रस्सियों द्वारा पीठासन तक लटकती हों । वह दिव्य पुष्पों से सुशोभित होकर आश्चर्यचकित करने वाले यान विमान पर बैठकर वह सभी के ऊपर सूर्यलोक में सुखपूर्वक निवास करता है । जो अनेक रंग के सुगन्धित पुष्पों द्वारा (सूर्य के) मन्दिर को पर्व के समय में विचित्र एवं सौन्दर्यपूर्ण करता है, वह पुष्पमाला से विभूषित होकर पुष्पक विमान पर स्थित दिव्य पुष्पपुर का निवासी होता है, इसमें संदेह नहीं और शासनपूर्वक अक्षयकाल तक आनन्द का अनुभव तथा सूर्य आदि सभी लोकों में मनइच्छित विचरण करता है ।८३-८७

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म में पुष्पपूजा वर्णन नामक
एक सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६३।

अध्याय १६४

सूर्यषष्ठी व्रत का वर्णन

शतानीक ने कहा—द्विजोत्तम ! महातेजस्वी देवाधिदेव सूर्य के पूजन करने से प्राप्त होने वाले जिन फलों को आपने बताये हैं, उन्हें पुनः कहने की कृपा करें ।१

सुमन्तुरुवाच

शृणु त्वं हि महाराज सर्वदं लोकपूजितम् । ब्रह्मेशोपेन्द्रदेवानां त्रयाणामपि भारत ।।२
सुखासीनं सुरज्येष्ठं मनोवत्यां चतुर्मुखम् । प्रणम्य शिरसा भूमौ विष्ण्वीशौ वाक्यमूचतुः ।।३
य एष भगवान्देवः सहस्रकिरणो रविः । अस्य यत्पूजने पुण्यं प्राप्यते तद्वदस्व नौ ।।४

ब्रह्मोवाच

साधु साधु जगन्नाथ साधु पृष्टोऽस्मि वामिह । तस्माच्छृणुतमेकाग्रौ गदतो निखिलं मम ।।५
स्वयमुत्पाद्य पुष्पाणि यः सूर्यं पूजयेत्स्वयम् । तानि साक्षात्प्रगृह्णाति तद्भक्त्या सततं रविः ।।६
यस्त्वारामं रवेः कुर्यादाम्रबिल्वादिशोभितम् । जातीविजयराजार्ककरवीरैः सकुङ्कुमैः ।।७
पुन्नागनागबकुलैरशोकतिलचम्पकैः । अगस्तिकदलीखण्डैस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।।८
यावद्धि पत्रं कुसुमं बीजं सुतफलानि च। तावद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ।।९
सघृतं गुग्गुलं दद्याद्राजन्वा कुन्दुरुं तथा । चतुर्वेदिगृहे जन्म प्राप्नोति सततं सुखी ।।१०
कृष्णागुरुं च कर्पूरधूपं दद्याद्दिवाकरे । नैरन्तर्येण यस्तस्य राजन्पुण्यफलं शृणु ।।११
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । भुक्त्वा सूर्यपुरे भोगांस्तस्यान्ते क्ष्माधिपो भवेत् ।।१२
गुग्गुलं घृतसंयुक्तं यक्षो गृह्णाति शब्दकृत् । यक्षाद्वयस्य दानेन तस्य लोके महीयते ।।१३
कृष्णांशौ कृष्ण सप्तम्यां यः साज्यं गुग्गुलं दहेत् । स चासौ सौरमासाद्य वर्षाणां च दशार्बुदम् ।।१४

सुमन्तु बोले—महाराज ! सब कुछ देने वाली, तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर और लोक से पूजित उस कथा को मैं कह रहा हूँ, सुनो ! २। भारत ! एक बार मनोवती तट पर सुखपूर्वक बैठे हुए देवश्रेष्ठ उन चतुर्मुख (ब्रह्मा) से भूमि में शिर स्पर्श प्रणामपूर्वक विष्णु तथा महेश्वर ने कहा—यह जो सहस्र किरण वाले भगवान् सूर्य दिखायी पड़ते हैं, इनके पूजन करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, हमें बताइये।३-४।

ब्रह्मा बोले—साधु, साधु, ! जगन्नाथ ! तुम दोनों ने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है, मैं सब कह रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो ।५। अपने द्वारा उत्पन्न किये गये पुष्पों से जो सूर्य की स्वयं पूजा करता है, उसकी भक्तिवश होकर सूर्य साक्षात् स्वयं उसे स्वीकार करते हैं । जो सूर्य के लिए इस प्रकार के उपवन (बगीचे) बनाता है, जिसमें आम, बेल आदि सुशोभित हों और चमेली, विजय राज, अर्क (मंदार) कनेर, कुंकुम, पुन्नाग, नाग, वकुल, अशोक, तिल, चम्पा, अगस्त्य एव केले के वृक्षों से सौन्दर्य भरा पड़ा हो, उसके पुण्य फल को सुनो ।६-८। जितने दिन उसके पत्ते, बीज, पुष्प तथा फलों की उत्पत्ति, आदि होती रहती है, उतने सहस्र वर्ष सूर्यलोक में वह पुरूष सम्भानित होता है ।९। राजन् ! घी समेत गुग्गुल और कुंदरु, जो उन्हें अर्पित करता है, उसका जन्म चतुर्वेदी के घर में होता है, तथा वह निरन्तर सुखी रहता है । काले अगुरु, कपूर एवं धूप को जो नित्य सूर्य के लिए अर्पित करता है, राजन् ! उसके पुण्य फल को सुनो ! सहस्रकोटि एवं सौ कोटि कल्प के समान दिन तक सूर्य लोक में भोगों का उपभोग कर अंत समय में वह पृथिवीपति होता है।१०-१२। घी मिश्रित गुग्गुल को समर्पित करने पर उसे ध्वनि करते हुए यक्ष ग्रहण करता है एवं इसके दान से उसके लोक में वह पूजित होता है।१३। कृष्ण सप्तमी के दिन सूर्य के लिए घी समेत गुग्गुल की धूप

देवदारुं नमेरुं च श्रीवासं कुन्दुरुं तथा । श्रीफलं चाज्यसंयुक्तं दग्ध्वाश्रयमवाप्नुयात् ॥१५
एवं सौगंधिकं रूपं षट्सहस्रगुणोत्तरम् । अगुरुं दशसाहस्रं सघृतं द्विगुणं भवेत् ॥१६
अनन्तफलदं दैवं सदा कुन्दरुकामुकम् । द्विसहस्रपलानां तु महिषाक्षस्य गुग्गुलोः ॥१७
दग्ध्वार्धमविमिश्रस्य सूर्यतुल्यः प्रजायते । शोधयेत्पापसंयुक्तं पुरुषं नात्र संशयः ॥१८
कृष्णागुरुभवं धूपं तुषाग्निरिव काञ्चनम् । योन्तःपुरगृहं गन्धैः सुगन्धैः प्रविलेपयेत् ॥१९
कपाटद्वारकुड्यादितिर्यगूर्ध्वं सवेदिकम् । वासयेत्पुष्पमालाभिर्धूपैश्चापि सुगन्धिभिः ॥२०
तस्य पुण्यं यथावत्तु युवयोर्वच्मि कृत्स्नशः । आपूरयन्दिशः सर्वा नानागन्धसमन्वितैः ॥२१
कल्पकोटिशतं दिव्यं तेजसा वह्निसन्निभः । शक्रवत्प्रज्वलन्देवः सूर्यलोके महीयते ॥२२
तस्यान्ते धर्मशेषेण त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत् । शतावृतं तु यः कुर्यादेवं गन्धैर्भगालयम् ॥२३
स सर्वशर्मसंयुक्तः सूर्यतुल्यपराक्रमः । सूर्यलोके वसेद्देवो युवाभ्यां सम्प्रपूजितः ॥२४
तद्वच्छुक्लैश्च संवीतं पट्टसूत्रैर्विनिर्मितम् । दत्त्वोपवीतं सूर्याय भवेद्वेदाङ्गपारगः ॥२५
वासांसि सुविचित्राणि सूरलोके महीयते । त्रुटिमात्रं तु यो दद्यादूर्णावस्त्रं सपङ्कजम् ॥२६
भास्करस्योत्तमाङ्गेषु तस्य पुण्यं ब्रवीम्यहम् । इन्द्रस्यार्धासने तिष्ठेद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥२७
एवं वित्तानुसारेण सर्वं ज्ञेयं समासतः । सर्वेषां हेमपात्राणां मुकुटानां च सर्वशः ॥२८

जो अर्पित करता है वह सूर्यलोक में पहुँचकर दश अर्बुद वर्ष निवास करता है ।१४। देवदारु, नमेरु, श्रीवास, कुंदुरु, श्रीफल, उन्हें घी समेत जलाकर धूप देने से सूर्यलोक की प्राप्ति करता है ।१५। इस प्रकार सामान्य सुगंध से सहस्र अगुरु से दश सहस्र एवं घी मिश्रित होने से उससे दुगुने फल प्राप्त होते हैं ।१६। और कुंदरु प्रिय सूर्य उसे अनन्त फल प्रदान करते हैं, महिषाक्ष तथा गुग्गुल के दो सहस्र परिमाण को जलाने से सूर्य के समान वह सुशोभित होता है वह पापी पुरुषों का संशोधक है, इसमें संदेह नहीं ।१७-१८। जो काले अगुरु की धूप द्वारा मन्दिर के भीतरी समस्त भाग को भूसी डाली गई अग्नि के समान गन्ध के धुएँ से पूर्ण कर देता है, तथा किंवाड़े, दरवाजे एवं कुण्डी आदि सभी ऊपर नीचे एवं वेदिसमेत सभी भाग को पुष्पमालाओं एवं सुगन्धित धूपों से सुगन्धित करता है, उसके पुण्य को मैं तुम्हें विस्तारपूर्वक बता रहा हूँ । भाँति-भाँति के गंधों से दिशाओं को सुगन्धित करते हुए अग्नि के समान दिव्य तेज प्राप्त कर वह इन्द्र की भाँति सौन्दर्य सम्पन्न होकर सौ कोटि कल्प तक सूर्य लोक में पूजित होता है ।१९-२२। उसके पश्चात् धर्म शेष रहने के नाते तीनों लोकों का अधिनायक होता है । इस प्रकार जो सौ बार सूर्य के मन्दिर को सुगन्धिपूर्ण करता है, समस्त कल्याण युक्त एवं सूर्य के समान पराक्रमी होकर सूर्यलोक में निवास करते हुए वह आप (विष्णु, शिव) दोनों से पूजित होता है ।२३-२४। उसी प्रकार शुक्र वर्ण के सूत्रों से निर्मित यज्ञोपवीत सूर्य के लिएं प्रदान करने से वेदनिष्णात विद्वान् होता है ।२५। और चित्र-विचित्र वस्त्र प्रदान करने से सूर्यलोक में सम्मान प्राप्त करता है । उनके वस्त्र चाहे वे फटे पुरने भी हों, जो कमल के साथ उन्हें उनके अंगों में सादर समर्पित करता है, उसके पुण्य फल को बता रहा हूँ । जब तक चौदहों इन्द्र वर्तमान रहेंगे तब तक इन्द्र के आधे आसन का अधिकारी रहता है ।२६-२७। इस प्रकार अपने धनानुसार सुवर्ण के पात्र एवं मुकुट प्रदान करना चाहिए । मदार के पत्ते की दोनियों में चूर्ण, शहद, एवं पत्ते समेत

अर्कपत्रपुटं चूर्णं मधुपर्णसमन्वितम् । यो निवेदतेऽर्काय सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥२९
शालितण्डुलप्रस्थस्य कुर्यादन्नं सुसंस्कृतम् । सूर्याय च चरुं दत्त्वा सप्तम्यां तु विशेषतः ॥३०
संयावं कृशरं पूपं पायसं यावकं तथा । दध्योदनरसालान्नमोदकान्गुडपूपकान् ॥३१
यावन्तस्तण्डुलास्तस्मिन्नैवेद्ये परिसङ्ख्यया । तावद्वर्षसहस्राणि सूरलोके महीयते ॥३२
गुडखण्डकृतानां च भक्ष्याणां विनिवेदने । घृतेन प्लावितानां च फलं शतगुणं लभेत् ॥३३
रसालखाद्यकाद्यानां भक्ष्याणां फलमिष्यते । तदर्धं सलिलस्यापि वासितस्य निवेदयेत् ॥३४
यथाकालोपलब्धानि भक्ष्याणि विविधानि च । निवेद्यार्काय परमं स्थानं प्राप्नोति पूजनात् ॥३५
प्रज्वाल्य घृतदीपं तु भास्करस्यालये शुभम् । आग्नेयं यानमारुह्य गच्छेत्सौमनसं पुरम् ॥३६
यः कुर्यात्कार्तिके मासि शोभनां दीपमालिकाम् । सप्तम्यामथ षष्ठ्यां वामास्यायामथापि वा ॥३७
भास्करायुतसंकाशस्तेजसा भासयन्दिशः । दिव्याभरणसम्पन्नः कुलमुद्धृत्य सर्वशः ॥३८
यावत्प्रदीपसङ्ख्यानं घृतेनापूर्य बोधितम् । तावद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥३९
दीपवृक्षमथोद्बोध्य पर्वस्वायतनेषु वै । पूर्वस्माद्द्विगुणं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥४०
दीपवृक्षं समुद्बोध्य भास्करायतनेषु भोः । सर्वलोहमयं वीर रविलोके महीयते ॥४१
शिरसा धारयेद्दीपं भास्करस्याग्रतो निशि । ललाटे चैव हस्ताभ्यां समुद्युक्तस्तथोरसि ॥४२

रखकर जो सूर्य के लिए निवेदित करता है, उसे अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।२८-२९। एक सेर साठी चावल की स्वादिष्ट खीर बनाकर विशेषकर सप्तमी तिथि में सूर्य को अर्पित करना बताया गया है, लपसी, कृशर (खिचड़ी), मालपूआ, जौ की खीर, दही, भात, आम, लड्डू एवं गुड़ के मालपुए को भी उसी भाँति अर्पित करने से उस नैवेद्य में जितने चावल रहते हैं, उतने सहस्र वर्ष वह सूर्यलोक में सम्मानित होता है ।३०-३२। खाँड़ और घी के भली-भाँति बने हुए भक्ष्य पदार्थ को सूर्य के लिए अर्पित करने से सौ गुने फल की प्राप्ति होती है ।३३। आम के फल अर्पित करने से । भक्ष्य पदार्थों के समान ही फल प्राप्त होता है, और सुगन्धित जल प्रदान करने से उसके आधे फल की प्राप्ति होती है ।३४। समयानुसार भाँति-भाँति के भक्ष्य पदार्थ सूर्य के लिए समर्पित करने तथा पूजन करने से उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।३५। सूर्य के मन्दिर में शुद्ध घी के दीपक जलाने से आग्नेय विमान पर बैठकर देवलोक की प्राप्ति होती है ।३६। कार्तिक मास की सप्तमी, षष्ठी या अमावस्या के दिन जो सौन्दर्यपूर्ण दीपमालिका प्रदान करता है, वह सूर्य के समान तेज प्राप्त कर उसके द्वारा दिशाओं को प्रकाशपूर्ण करते हुए दिव्य आभूषणों से सुशोभित होकर वह अपने कुल के उद्धारपूर्वक घी से पूर्ण भरे उन दीपकों की संख्या के समान उतने सहस्र वर्ष सूर्यलोक में पूजित होता है । पर्व तिथियों में मन्दिरों में दीपवृक्ष को (दीपों द्वारा) प्रकाशित करने पर उससे दुगुने पुण्य फल की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं ।३७-४०। वीर ! सूर्य के मन्दिर में वृक्ष के आकार-प्रकार-स्कन्ध, शाखा, डाली, टहनी, एवं पत्तियों के समान लोहे के वृक्ष बनाकर उसके सभी स्थान में दीपक जलाने से सूर्य लोक में वह पूजित होता है ।४१। इसमें सूर्य के समान (उस दीपवृक्ष के) शिर, मस्तक, हाथों एवं हृदय पर दीपक धारण करने से दशसहस्र भास्कर के समान तेजस्वी होकर सूर्य के

भास्करायुतसंकाशो विमानैरर्कसन्निभैः । कल्पायुतशतं चैव सूर्यलोके महीयते ।।४३
अन्नदाता तु यो वीर वीरलोके महीयते । भास्करस्याग्रतो दत्त्वा दर्पणं निर्मलं शुभम् ।।४४
पर्यङ्के शोभितं कृत्वा श्वेतमाल्यैः सचन्दनैः। वृकार्कनिर्मलः श्रीमान्दिव्याभरणरूपधृक् ।।
कल्पायुतसहस्राणि सूरलोके महीयते ।।४५
कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या श्रद्दधानो रवेर्नरः । अश्वमेधसहस्रस्य सुखेन लभते फलम् ।।४६
कृत्वा प्रदक्षिणं यस्तु नमस्कारं प्रयोजयेत् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां सकलं विन्दते फलम् ।।४७
नमस्कारः स्मृतो यज्ञः सर्वयज्ञोत्तमोत्तमः । नमस्कृत्वा सहस्रांशुमश्वमेधफलं लभेत् ।।४८
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् । स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ।।४९
सर्वयज्ञोपवासेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । अभिज्ञाप्योपहारेण पूजया फलमश्नुते ।।५०
श्वेतं महाध्वजं कृत्वा कृत्वा चापं च रङ्गकम् । किङ्किणीजालनिर्घोषं मयूरच्छत्रभूषितम् ।।
यस्त्वर्यम्णे नरो दद्याच्छ्रद्धया परयान्वितः ।।५१
स शतेन विमानानां सर्वदेवनमस्कृतः । मन्वन्तरशतं देव मोदते दिवि देववत् ।।५२
ध्वजमालाकुलं कुर्याद्यः प्रान्तेषु भगालयम् । महाध्वजाष्टकं चापि दिग्विदिक्षु निवेदयेत् ।।५३
स विमानसहस्रेण ध्वजमालाकुलेन तु । कल्पायुतशतं दिव्यं मोदते दिवि सूरवत् ।।५४
शतचन्द्रांशुविमलं मुक्तादामोपशोभितम् । मणिदण्डमयं छत्रं दद्याद्वा काञ्चनादिकम् ।।५५

समान प्रकाशमय विमानों पर बैठकर वह सौ सहस्र कल्प सूर्यलोक में सम्मानित होता है ।४२-४३। वीर ! अन्न दान करने वाला सूर्य लोक में प्रतिष्ठित होता है । सूर्य के सामने शुभ, निर्मल, दर्पण श्वेत वर्ण की मालाओं एवं चन्दनों से सुशोभित शय्या (पलंग) रखकर उन्हें समर्पित करने से वृक्ष (अग्नि) तथा सूर्य के समान निर्मल, श्रीसम्पन्न, दिव्याभूषणों से सुसज्जित होकर वह दश सहस्र वर्ष सूर्य के लोक में सम्मानित होता है ।४४-४५। भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक जो मनुष्य सूर्य की प्रदक्षिणा करता है, उसे सुखपूर्वक सहस्र अवश्वमेध के फल प्राप्त होते हैं ।४६। प्रदक्षिणा करके जो उन्हें नमस्कार करता है, उसे राजसूय एवं अश्वमेध के समस्त फल प्राप्त होते हैं ।४७। क्योंकि समस्त यज्ञों से उत्तम नमस्कार रूपी यज्ञ बताया गया है, अतः सूर्य को नमस्कार करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होनी बतायी गयी है ।४८। भूमि में दण्डे की भाँति पड़ने (साक्षात् दण्डवत् करने) के द्वारा जो उनकी पूजा करता है, उसे उस गति की प्राप्ति होती है, जिसे सौ यज्ञ करने वाले भी प्राप्त नहीं कर सकते ।४९। समस्त यज्ञ, उपवास, एवं समस्त तीर्थों द्वारा जितने फलों की प्राप्ति होती है, सूर्य के विधानपूर्वक केवल पूजोपहार द्वारा उतने फल प्राप्त होते है ।५०। जो मनुष्य अत्यन्त श्रद्धालु होकर सूर्य के लिए श्वेत महाध्वज और रक्तरञ्जित धनुष प्रदान करता है, जिनमें छोटी-छोटी घंटियाँ जाल के समान लगी हुई ध्वनि करती हों तथा मोर पंख से विभूषित हो, वह समस्त देवों का वन्दनीय होकर सैकड़ों विमानों समेत स्वर्ग में सौ मन्वन्तर के समान वर्षों तक देवता की भाँति आनन्द का अनुभव करता है ।५१-५२। जो सूर्य के मन्दिर के कोने-कोने को अधिकसंख्या में ध्वज एवं मालाओं से सुशोभित तथा दिशाओं एवं विदिशाओं को आठ महाध्वजाओं द्वारा शोभा सम्पन्न करता है, वह ध्वज और मालाओं से पूर्ण सहस्र विमानों को अपने अधीन करते हुए दिव्य सौ सहस्र कल्प तक स्वर्ग में सूर्य की भाँति आनन्द प्राप्त करता है ।५३-५४। सौ चन्द्रमा की भाँति निर्मल, मोतियों की रस्सियों से

स धार्यमाणच्छत्रेण हेमदण्डोपशोभिना । मोदते सूर्यलोके तु विमानवरमास्थितः ।।५६
ततस्तमाच्च्युतो लोकात्सिसर्गाद्भुवमागतः । भुङ्क्ते समुद्रपर्यन्तामेकच्छत्रां वसुन्धराम् ।।५७
यः शृङ्खलासमायुक्तां महाघण्टां महास्वनाम् । कांस्यलोहमयीं वापि निबन्धीयाद्भगालये ।।५८
शोभनः स्यान्नरः श्रीमान्भगस्यातीव वल्लभः । सूर्यतुल्यबलो भूत्वा सूर्यलोके महीयते ।।५९
भेरीमृदङ्गपटहझर्झरीमर्दलादिकम् । वंशकांस्यादिवाद्यं यो भगाय निवेदयेत् ।।६०
स विमानैर्महाभागैर्वंशवीणारुतस्वनैः । युगान्तकशतं दिव्यं भगलोके महीयते ।।६१
सुसङ्गीतकदानेन सवाद्येन विशेषतः । यथेष्टं भास्करे लोके मोदते कालमक्षयम् ।।६२
महामहास्वनं दत्त्वा शङ्खयुग्मं भगालये । युगकोटिशतं दिव्यं भगलोके महीयते ।।६३
विमानं बहुवर्णानं मध्ये पङ्कजभूषितम् । विचित्रमेकवर्णं वासनवस्त्रोपकल्पितम् ।।६४
किङ्किणीजालसम्पन्नं वर्णकैश्चोपशोभितम् । पुष्पमालाप्रभं वापि घण्टाचामरभूषितम् ।।६५
भगस्योपरि यो दद्यात्सर्वरत्नोपशोभितम् । दुकूलपट्टदेवाङ्गैर्वस्त्रैर्वा वर्णकान्वितैः ।।६६
पट्टादिवस्त्रतन्तूनां परिसङ्ख्या तु या भवेत् । तावद्युगसहस्राणि सूरलोके महीयते ।।६७
भगाहुत्या जगत्सर्वं सृष्टिद्वारेण धार्यते। अग्निवर्त्मा वचस्युक्तो ह्यग्निस्यात्मजः सदा ।।६८

सुशोभित एवं मणि के दण्ड से विभूषित, अथवा सुवर्ण के दण्ड वाले उस छत्र को जो उन्हें प्रदान करता है, तो सूर्य के सुवर्ण दण्ड से विभूषित उस छत्र के धारण करने से वह उत्तम विमान पर स्थित होकर सूर्यलोक में सदैव प्रसन्नतापूर्वक रहता है। पश्चात् उस लोक से च्युत होने पर सृष्टि के क्रम से इस भूतल पर जन्म ग्रहण कर समुद्र पर्वत पृथ्वी का एक छत्र उपभोग करने वाला राजा होता है। जो सूर्य मन्दिर में जंजीर लगे काँसे या लोहे का बड़ा घंटा बाँधता है, जिसकी अत्यन्त गम्भीर ध्वनि हो, वह मनुष्य सौन्दर्यपूर्ण, श्रीसम्पन्न, सूर्य का अति प्रिय एवं सूर्य के समान पराक्रमशाली होकर सूर्य लोक में सम्मानित होता है ।५५-५९। जो सूर्य के लिए भेरी, मृदङ्ग, पटह, झर्झरी (झाँझ), मर्दल (मृदङ्ग की भाँति एक वाद्य) आदि काँसे के वाद्य अर्पित करता है, वह बाँस की वीणा ध्वनि से निनादित उस अत्यन्त भाग्यशाली (उत्तम) विमान पर बैठकर दिव्य सौ युग पर्यंत भग (सूर्य) लोक में सम्मान प्राप्त करता है ।६०-६१। विशेषकर वाद्य समेत उत्तम संगीत कराने वाला पुरुष भास्कर के लोक में अक्षय काल तक मन इच्छित आनन्द का अनुभव प्राप्त करता है ।६२। सूर्य मन्दिर में अत्यन्त गम्भीर ध्वनिपूर्ण दो शंखों को उन्हें समर्पित करने से दिव्य सौ कोटि युग पर्यंत सूर्य लोक की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ।६३। अनेक रंगों से सुशोभित मध्य भाग कमल से विभूषित, एक रंग के चित्र-विचित्र वस्त्रों से सुसज्जित आसन, जाल की भाँति छुद्र घंटिकाओं से सुसज्जित, रंगरञ्जित, पुष्पमालाओं, घंटा और चामर से सुसम्पन्न एवं समस्त दलों से सुसज्जित तथा देवों के चित्र-विचित्र दुपट्टे आदि रंगीन वस्त्रों समेत ऐसे विमान को जो उन्हें अर्पित करता है, तो वह उस दुपट्टे आदि वस्त्रों के सूत की संख्या के समान उतने सहस्र युग पर्यंत सूर्य लोक में पूजित होता है।६४-६७। सूर्य में आहुति की भाँति नष्ट यह समस्त जगत् सृष्टि द्वारा पुनः उनसे उत्पन्न एवं स्थित होता है। उन्हें अग्नि वर्त्मा भी कहा गया है, क्योंकि अग्नि उनके सदैव आत्मज हैं ।६८।

यस्त्वग्निकार्य विधिवत्कुर्यान्नित्यं भगालये । भगमुद्दिश्य राजेन्द्र स याति परमां गतिम् ॥६९
सर्वान्नं यावकोपेतं यस्तु नित्यविधिं हरेत् । पुष्पधूपजलोपेतं काले काले विशेषतः ॥७०
महाश्वेतादिमातॄणां त्रिकल्पानां च सर्वशः । यः कृत्वा सकृदप्येवं सर्वदिक्षु बलिं हरेत् ॥
स नरश्च सहस्राणि शाण्डिलेयपुरे वसेत् ॥७१
सौरसन्ध्याबलिं कृत्वा दिनान्ते सततं रवेः । वर्षायुतशतं साग्रं भगलोके महीयते ॥७२
दध्योदनपयोभिर्यः पूरितं पात्रमावृतम् । पुष्पधूपार्चितं चैव वितानोपरि शोभितम् ॥७३
शिरसा धारयेत्पात्रं शनैर्गच्छेत्प्रदक्षिणम् । रव्यायतनपर्यन्ते शङ्खवीणादिनिस्वनैः ॥७४
दर्पणैर्धूपमालाभिर्गेयनृत्यादिशोभितम् । भानोर्हि स्मृतिशीलश्च तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७५
दिव्यं वर्षसहस्रं तु दिव्यं वर्षशतं तथा । तपस्तप्तं महत्तेन भवेदेवं न संशयः ॥७६
भगभक्तिप्रसन्नात्मा यद्यपि स्यात्स पापकृत् । भगलोके वसेन्नित्यं भगानुचरतां गतः ॥७७
कृष्णां तु षष्ठीं नक्तेन यश्च कृष्णां च सप्तमीम् । इह भोगानवाप्नोति परत्र च शुभां गतिम् ॥७८
योऽब्दमेकं तु कुर्वीत नक्तं भगदिने नरः । ब्रह्मचारी जितक्रोधो भगार्चनपरो नरः ॥
अयाचितात्परं नक्तं तस्माद्यत्नेन वर्तयेत् ॥७९
देवैस्तु भुक्तं मध्याह्ने पूर्वाह्ने ऋषिभिस्तथा । अपराह्ने तु पितृभिः सन्ध्यायां गुह्यकादिभिः ॥८०

राजेन्द्र ! जो सूर्य मन्दिर में उनके उद्देश्य से विधानपूर्वक नित्य अग्नि स्थापन करते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है ।६९। नित्य विधान पूर्वक जो यावक (लप्सी) समेत समस्त अन्न के भक्ष्य एवं जलयुक्त पुष्प-धूप समय-समय पर महाश्वेता आदि मातृकाओं तथा त्रिकल्पों के लिए समर्पित करता रहता है, उसे इस भाँति एक बार के भी करने एवं समस्त दिशाओं में बलि प्रदान करने पर सहस्र वर्ष तक अग्निलोक का निवास प्राप्त होता है ।७०-७१। दिन के अन्तिम समय में सूर्य के लिए सौर संध्या एवं बलि प्रदान करने से सौ सहस्र वर्ष सूर्य लोक में उत्तम सम्मान प्राप्त होता है ।७२। दही, चावल एवं दूध के पात्र पूर्ण तथा ढँककर पुष्प-धूप से उनकी पूजा करके वितान के ऊपर रख दे, पश्चात् उसे शिर पर रख धीरे-धीरे सूर्य मन्दिर तक प्रदक्षिणा की भाँति जाये जिसमें शंख, वेणु आदि की ध्वनि होती हो तथा दर्पण, धूप, माला एवं गान, नृत्य आदि से सुसम्पन्न हो, और वह निरन्तर सूर्य का स्मरण करता रहे, तो उसके पुण्य फलों को सुनो ! उसके प्राप्त फलों के अनुसार दिव्य सहस्र वर्ष तथा दिव्य सौ वर्ष तक उसने महान् तप किया इसमें संदेह नहीं, ऐसा वह कहा जायगा ।७३-७६। क्योंकि पापी ही क्यों न हो, पर सूर्य की भक्ति से उसे अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हो, तो उस सूर्य सेवक का भी सूर्यलोक में नित्य निवास होता है ।७७। जो कृष्ण पक्ष की षष्ठी में नक्तव्रत तथा कृष्ण पक्ष की सप्तमी में पूजन करता है, उसे यहाँ भाँति-भाँति के उपयोग की प्राप्ति पूर्वक परलोक में शुभ फल की प्राप्ति होती है ।७८। इसलिए वर्ष पर्यन्त सूर्य के दिन ब्रह्मचारी एवं क्रोधहीन होकर नक्तव्रतपूर्वक सूर्य का पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए। अयाचित अन्न से नक्तव्रत करना उत्तम बताया गया है, इसलिए नक्त व्रत अवश्य करें। मध्याह्न में देवगण, पूर्वाह्न में ऋषि, अपराह्न में पितरलोग संध्या में गुह्यक आदि भोजन करते हैं। अतः इसके अतिरिक्त समय में सूर्य भक्तों को भोजन करना उत्तम बताया

सर्वा देवा ह्यतिक्रम्य सौराणां भोजनं परम् । भुञ्जानो नक्तकाले तु सूर्यभक्तिपरायणः ॥८१
भगलोकमवाप्नोति सुमनाः सुमनोव्रतः । भुक्त्वा सौमनसाँल्लोकान्राजा भवति भूतले ॥८२
हविष्यभोजनं स्नानमाहारस्य च लाघवम् । अग्निकार्यमधःशय्यां नक्तभोजी समाचरेत् ॥८३
कृष्णषष्ठयां प्रयत्नेन कृत्वा नक्तं विधानतः । नरो मार्गशिरे मासि अंशुमानिति पूजयेत् ॥८४
विधिवत्प्राश्य गोमूत्रमनाहारो निशि स्वपेत् । अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः ॥८५
पुष्येऽप्येवं सहस्रांशुं भानुमन्तमुशन्ति च । वाजपेयफलं प्राप्य घृतं प्राश्य लभेन्नरः ॥८६
माघे दिवाकरं[1] नाम कृष्णषष्ठ्यां नरोत्तम । निशि पीत्वा तु गोक्षीरं गोमेधफलमाप्नुयात् ॥८७
मार्तण्डं फाल्गुने मासि पूजयित्वा गवां पयः । पिबेत्ततः सूर्यलोके मोदते सोऽयुतायुतम् ॥८८
चैत्रे मासि विवस्वन्तं पूजयित्वा सुभक्तिमान् । हविष्याशी सूर्यलोकेऽप्सरोभिः सह मोदते ॥८९
वैशाखे चण्डकिरणं पूजयेच्च पयोव्रतः । वर्षाणामयुतं साग्रं मोदते सूर्यसन्निधौ ॥९०
ज्येष्ठे दिवस्पतिं पूज्य गवां भृङ्गोदकं पिबेत् । गवां कोटिप्रदानस्य निखिलं फलमाप्नुयात् ॥९१
आषाढे त्वर्कनामानमिष्ट्वा प्राश्य च गोमयम् । प्रयात्यर्कसलोकं तु वर्षाणां च शतं शतम् ॥९२
श्रावणेऽर्यमनामानं पूजयित्वा पयः पिबेत् । वर्षाणामयुतं साग्रं मोदते भास्करालये ॥९३

गया है। जो सूर्य की भक्ति का पारायण करने वाला मनुष्य नक्त समय में भोजन करता है, देवता की भाँति वह देवव्रती होकर सूर्य लोक में पहुँचता है। पश्चात् देवलोकों के विहार करने के उपरांत इस भूतल में राजा होता है।७९-८२। हविष्य भोजन, स्नान, अल्पाहार, अग्नि स्थापन एवं भूमिशयन नक्त भोजी के लिए आवश्यक बताया गया है।८३। मार्गशीर्ष (अगहन) मास में कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन प्रयत्नपूर्वक नक्त, विधान सुसम्पन्न कर मनुष्य को 'अंशुमान' नामक सूर्य को पूजा करनी चाहिए।८४। उसमें विधान पूर्वक गोमूत्र का प्राशन करके रात में शयन करे, तो मनुष्य को अतिरात्र नामक यज्ञ का फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार पुष्य में 'सहस्रांशु' नामक सूर्य की पूजा करके घी का प्राशन करे तो मनुष्य को वाजपेय यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है।८५-८६। नरोत्तम ! माघ मास में कृष्ण पक्ष षष्ठी के दिन 'दिवाकर' नामक सूर्य की पूजा करके रात में गो दुग्धपान (प्राशन) करने से गोमेध फल की प्राप्ति होती है। फाल्गुन मास में 'मार्तण्ड' नामक सूर्य की पूजा करके जो दुग्ध का प्राशन करता है वह सूर्यलोक में दश अयुत वर्ष तक आनन्दानुभव करता है। भक्तिमान् पुरुष को चैत्रमास में 'विवस्वान्' नामक सूर्य की पूजा और हविष्य का प्राशन करने से अप्सराओं के साथ सूर्यलोक का विहार प्राप्त होता है।८७-८९। वैशाख मास में 'चण्डकिरण' नामक सूर्य की पूजा एवं गो दुग्ध का प्राशन करने से सूर्य के समीप दशसहस्र वर्ष उत्तम आनन्द प्राप्त होता है।९०। ज्येष्ठमास में 'दिवस्पति' नामक सूर्य की पूजा और शृंगोदक (सींगद्वारापूत जल) का पान करने से कोटि गोदान का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है।९१। आषाढ़ मास में 'अर्क' नामक सूर्य की पूजा तथा गोमय (गोबर) का प्राशन करने से दश सहस्र वर्ष तक निवास सूर्य लोक में प्राप्त होता है।९२। सावनमास में 'अर्यमा' नामक सूर्य की पूजा एवं पयपान करने से सूर्यलोक में दश सहस्र वर्ष तक

---

१. पूजयित्वेति शेषः।

मासि भाद्रपदे षष्ठयां भास्करं नाम पूजयेत् । भास्करं पञ्चगव्यस्य सर्वमेधफलं लभेत् ।।९४
मासि चाश्वयुजे षष्ठयां भगाख्यं नाम पूजयेत् । पलगोमूत्रभुक्त्वैव अश्वमेधफलं लभेत् ।।९५
मासे तु कार्तिके षष्ठयां शक्राख्यं नाम पूजयेत् । दूर्वाङ्कुरं सकृत्प्राश्य राजसूयफलं लभेत् ।।९६
वर्षांते भोजयेद्विप्रान्सूर्यभक्तिपरायणान् । पायसं मधुसंयुक्तं व्रजेण च परिप्लुतम् ।।९७
शक्त्या हिरण्यवासांसि भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् । निवेदयेच्च सूर्याय कृष्णां गां च पयस्विनीम् ।।९८
वर्षमेकं च देवे वै नैरन्तर्येण यो नयेत् । कृष्णषष्ठीव्रतं भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ।।९९
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वकामसमन्वितः । मोदते सूर्यलोके तु स नरः शाश्वतीः समाः ।।१००
पुण्येष्वहःसु सर्वेषु विषुवद्ग्रहणादिषु । दानोपवासहोमाद्यैरक्षयं खग जायते ।।१०१

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्तवान्पुरा भानुररुणाय विशांपते । कृष्णषष्ठीव्रतं पुण्यं सर्वपापभयापहम् ।।१०२
कृत्वेदं पुरुषो भक्त्या भास्करस्य महात्मनः । प्रयाति परमं स्थानं भानोरमिततेजसः ।।१०३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यषष्ठीव्रतवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६४।

आनन्दानुभव प्राप्त होता है ।९३। भादों मास में 'भास्कर' नामक सूर्य की पूजा करके पचगव्य का प्राशन करने से सर्वमेध फल की प्राप्ति होती है ।९४। आश्विन मास को षष्ठी में 'भग' नामक सूर्य की पूजा तथा गोमूत्र का प्राशन करे तो उसे अश्वमेध के फल प्राप्त हों ।९५। कार्तिक मास की षष्ठी में 'शक्र' नामक सूर्य की पूजा और एक बार दूर्वा के अंकुर का प्राशन करने से राजसूय के फल प्राप्त होते हैं ।९६। वर्ष की समाप्ति में सूर्य भक्त ब्राह्मणों को भोजन में खीर, शहद एवं वज्र तथा भक्तिपूर्वक अपनी इच्छानुसार सुवर्ण तथा वस्त्र उन्हें प्रदान करे और सूर्य के लिए एक दूध देने वाली कृष्णा गाय का दान भी । इस प्रकार जो पूर्ण वर्ष की समाप्ति तक सूर्य के लिए कृष्ण षष्ठी व्रत करता है, उसके पुण्य फल को सुनो ।९७-९९। समस्त पापों से मुक्त होकर समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक वह मनुष्य सूर्यलोक में निरंतर अनेकों वर्ष का आनंदानुभव प्राप्त करता है ।१००। आकाशचरिन् ! सभी पुण्य दिनों में विषुवत् ग्रहण आदि के समय दान, उपवास एवं हवन आदि के करने से अक्षय लोक की प्राप्ति होती है ।१०१

सुमन्तु बोले—विशांपते ! इस प्रकार सूर्य ने पहले समय में अरुण से कहा था, समस्त पापनाशक इस कृष्ण षष्ठी व्रत की विधानपूर्वक समाप्ति करने से वह भक्त पुरुष अजेय तेजवाले महात्मा सूर्य के परमस्थान की प्राप्ति करता है ।१०२-१०३

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्यषष्ठी व्रत वर्णन नामक एक सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६४।

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

उभयसप्तमीवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अहं ते सम्प्रवक्ष्यामि सूर्यस्य व्रतमुत्तमम् । धर्मकामार्थमोक्षाणां प्रतिपादनमुत्तमम् ॥१
पौषमासे तु सम्प्राप्ते यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । जितेन्द्रियः सत्यवादी शालिगोधूमगोरसैः ॥२
पक्षयोः सप्तमीं यत्नादुपवासेन यापयेत् । त्रिसन्ध्यमर्चयेद्भानुं शाण्डिलेयं च सुव्रत ॥३
अधःशायी भवेन्नित्यं सर्वभोगविवर्जितः । मासि पूर्णे तु सप्तम्यां घृतादिभिररिन्दम ॥४
कृत्वा स्नानं महापूजां सूर्यदेवस्य भारत । नैवेद्यं मोदकप्रस्थं क्षीरं सिद्धं निवेदयेत् ॥५
भोजयेच्च द्विजानष्टौ भगार्चां शुभलक्षणाम् । गां च दत्त्वा महाराज कपिलां भास्कराय तु ॥६
य एवं कुरुते पुण्यं सूर्यस्य व्रतमुत्तमम् । तस्य पुण्यफलं वच्मि सर्वकामसमन्वितम् ॥७
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः । अप्सरोगणसङ्कीर्णैर्महाविभवसंयुतैः ॥८
सङ्गीतनृत्यवाद्याद्यैर्गन्धर्वगणशोभितैः । दोधूयमानश्चमरैः स्तूयमानः सुरासुरैः ॥९
सहस्रकिरणाभासः सौरैः सूर्यसमन्वितैः । स याति परमं स्थानं यत्रास्ते रविरंशुमान् ॥१०
रोमसङ्ख्या तु या तस्यास्तत्प्रसूतिः कुलेषु च । तावद्युगसहस्राणि सूरलोके महीयते ॥११

अध्याय १६५

उभयसप्तमी नामक वर्णन

सुमन्तु बोले—मैं तुम्हें सूर्य के उत्तम व्रत का विधान बता रहा हूँ जिसमें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की भली भाँति व्याख्या की गयी है ।१। सुव्रत ! पौष मास में जो इन्द्रिय संयमी सत्यवादी पुरुष साठी चावल, गेहूँ और मट्ठे द्वारा नक्त भोजन करते हुए इसी प्रकार दोनों पक्ष की सप्तमी में उपवास रहकर तीनों काल में सूर्य एवं अग्नि का पूजन, भूमि में शयन और सभी भोगों के त्याग पूर्वक मास की समाप्ति वाली सप्तमी में स्नान करके सूर्य देव की महापूजा करता है, जिसमें भारत ! एक सेर मोदक का नैवेद्य तथा भली भाँति पका हुआ दूध उन्हें अर्पित किया गया हो तथा पश्चात् आठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर सूर्य के लिए शुभलक्षण संपन्न पूजनीय कपिला गाय का दूध भी दिया गया हो महाराज ! उसके इस प्रकार सूर्य के पुण्य एवं उत्तम व्रत के विधान द्वारा जिन फलों की प्राप्ति करती है, समस्त कामना प्रदायक उन पुण्यफलों को मैं कह रहा हूँ सूनो ! कोटि सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण, मनोरथ सिद्ध करने वाले अप्सराओं से आच्छन्न तथा महासम्पत्तिशाली उस विमान पर बैठकर संगीत, नृत्य करते हुए गन्धर्व गणों से सुशोभित चामर डुलाते हुए देव एवं राक्षसों द्वारा की गयी स्तुति सम्पन्न तथा सहस्र किरण की भाँति तेजस्वी होकर वह सूर्य भक्तों को साथ ले अंशुमान सूर्य के उत्तम निजी स्थान की प्राप्ति करता है, उस गाय के रोम संख्या के समान उसके कुल की संतान वृद्धि तथा उतने सहस्र युग तक सूर्य लोक की प्रतिष्ठा भी उसे प्राप्त होती है।२-११।

त्रिःसप्तकुलजैः सार्धं भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् । ज्ञानयोगं समासाद्य पुनरेव प्रमुच्यते ।।१२
योगाद्दुःखान्तमाप्नोति ज्ञानयोगं प्रवर्तते । सौरधर्माद्भवेज्ज्ञानं सौरधर्मो भगार्चनात् ।।१३
इत्येवं ते समाख्यातं भवार्णवव्यपोहनम् । सौरमोक्षक्रमोपायं सूराश्रयनिषेवणम् ।।१४
माघमासे तु सम्प्राप्ते यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । पिण्याकं घृतसंयुक्तं भुञ्जानः स जितेन्द्रियः ।।१५
सोपवासश्च सप्तम्यां भवेदुभयपक्षयोः । घृताभिषेकमष्टम्यां कुर्याद्भानोर्नराधिप ।।
गां च दद्याद्दिनेशाय तरुणीं नीलसन्निभाम् ।।१६
इन्द्रनीलप्रतीकाशैर्विमानैः शिखिसंयुतैः । गत्वादित्यपुरं रम्यं भोगान्भुङ्क्ते यथेप्सितान् ।।१७
राजेन्द्र फाल्गुने मासि यःकुर्यान्नक्तभोजनम् । श्यामाक्षीरनीवारैर्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।।१८
षष्ठ्यां वाप्यथ सप्तम्यामुपवासपरो नरः । अष्टम्यां तु महास्नानं पञ्चगव्यघृतादिभिः ।।१९
वल्मीकजादिमृद्भिश्च गोमूत्रशकृदादिभिः । त्वग्भिश्च क्षीरवृक्षाणां स्नापयित्वा प्रमार्जयेत् ।।२०
सौरभेयीं ततो दद्याद्रक्ताभां रक्तमालिने । पद्मरागप्रतीकाशैर्विमानैर्हस्तिसंयुतैः ।।
गत्वादित्यपुरं रम्यं मोदते शाश्वतीः समाः ।।२१
मासि चैत्रे तु सम्प्राप्ते यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । शाल्यन्नं पायसैर्युक्तं भुञ्जानश्च जितेन्द्रियः ।।
भानवे पाटलां दद्याद्वैष्णवीं तरुणीं नृप ।।२२
पुष्परागप्रभैर्यानैर्नानाहंसादियायिभिः । गच्छेत्सूर्यपुरं रम्यं मोदते शाश्वतीः समाः ।।२३

अपनी इक्कीस पीढ़ी के परिवारों के साथ मन इच्छित उपभोग करके ज्ञान भोग की प्राप्ति कर पुनः मुक्त हो जाता है ।१२। इस प्रकार प्रथम योग द्वारा दुःखों का नाश होता है, पश्चात् ज्ञानयोग का उदय सौर धर्माचरण द्वारा ही ज्ञान उत्पन्न होता है और सूर्य के अर्चन द्वारा सौर धर्म की प्राप्ति । इस प्रकार मैंने उस व्रत की व्याख्या समाप्त की, जो भवसागर का नाश करती है, क्रमशः सौर मोक्ष का उपाय उनके आश्रित रहकर उनकी एकमात्र सेवा करना ही बताया गया है ।१३-१४। नराधिप ! माघ मास में नक्त भोजन घी समेत पिण्याक का प्राशन इन्द्रिय संयम पूर्वक दोनों पक्ष की सप्तमी में उपवास रहकर जो अष्टमी में घीका अभिषेक तथा सूर्य के लिए युवती नीलगाय, प्रदान करता है उसे इन्द्रनील की भाँति विमानों द्वारा जिसमें मयूर की रक्षा की गयी हो उत्तम सूर्य लोक में पहुँचने पर मनइच्छित भोगों का उपभोग प्राप्त होता है ।१५-१७। राजेन्द्र ! फाल्गुन मास में जो नक्त भोजन करता है कृष्णा गाय के दूध मिश्रित नीवार का भोजन क्रोधहीन एवं इंद्रिय संयम पूर्वक षष्ठी और सप्तमी में उपवास रहकर अष्टमी में पञ्चगव्य तथा घी द्वारा सूर्य का महास्नान, जिसमें बल्मीक की मिट्टी, गोमूत्र, तथा क्षीरवाले वृक्षों की ऊपरी छाल पड़ी हो और उसी से मार्जन भी करते हैं पश्चात् रक्तमाली (सूर्य) के लिए रक्तवर्ण वाली गाय का दान भी करे तो पद्मराग मणि के समान विमानों द्वारा जो हांथी युक्त हों वह सूर्य के उत्तम लोक में जाकर अनन्त वर्ष आनन्दानुभव करता है ।१८-२१। चैत्र मास में जो नक्त भोजन करता है—जितेन्द्रिय होकर साठी चावल की खीर खाकर पाटलवर्ण की युवती वैष्णवी गाय प्रदान करता है तो वह पुष्पराग मणि की भाँति प्रभापूर्ण विमानों द्वारा जिसमें अनेक हंस जुते हों, सूर्य लोक की प्राप्ति कर अनन्त वर्ष आनन्दमग्न रहता है।२२-२३। वीर ! वैशाख में जो नक्त भोजन संपन्न

वैशाखे वीर मासे तु यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । सूर्ये खण्डाज्य सम्मिश्रं सकृद्दद्यान्निवेदनम् ॥२४
गां च दद्यान्महाराज भास्कराय शुभानन । सामान्यं च विधिं कुर्यात्प्रयुक्तो यो मया तव ॥२५
शुद्धस्फटिकसंकाशैर्यानैर्बर्हिणवाहनैः । अणिमादिगुणैर्युक्तः सूर्यवद्विचरेद्दिवि ॥२६
सम्प्राप्ते श्रावणे मासि यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । क्षीरपौष्टिकभक्तेन सर्वसत्त्वहिते रतः ॥२७
पीतवर्णां च गां दद्याद्भास्कराय महात्मने । सामान्यमखिलं कुर्याद्विधानं यत्प्रकीर्तितम् ॥२८
स विचित्रैर्महायानैर्हंससारसगामिभिः । गत्वादित्यपुरं श्रीमान्पूर्वोक्तं लभते फलम् ॥२९
वीर भाद्रपदे मासि यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । हुतशेषहविष्याशी वृक्षमूलमुपाश्रितः ॥३०
स्वप्यादायतने रात्रौ सर्वभूतानुकम्पकः । दद्याद्गां रोहिणीं श्रेष्ठां भास्कराय महात्मने ॥३१
निशाकरकरप्रख्यैर्वज्रवैदूर्यसन्निभैः । चक्रवाकसमायुक्तैर्विमानैः सार्वकामिकैः ॥३२
गत्वादित्यपुरं रम्यं सुरासुरसुवन्दितम् । मोदते स महाभागो यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३३
श्रीमानाश्वयुजे मासि यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । मिताशनं प्रभुञ्जानो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥३४
दद्याद्गां पद्मवर्णाभां भानवेऽमिततेजसे । दिव्याभरणसम्पन्नां तरुणीं च पयस्विनीम् ॥३५
स्वस्तिभक्तिकसंकाशैरिन्द्रनीलोपशोभितैः । जीवो जीवकसयुक्तविमानैः सार्वकामिकैः ॥
गच्छेद्भानुसलोकत्वं भुञ्जानः स जितेन्द्रियः ॥३६

करता है—सूर्य के लिए खांड़ घी मिलाकर निवेदन करने के उपरांत महाराज उन्हें गाय भी प्रदान करता है तो शुद्ध स्फटिक के समान विमानों द्वारा जिनमें मयूर जुते हों, अणिमादि गुणों समेत सूर्यलोक में पहुंच कर वह स्वर्ग में सूर्य की भाँति विचरण करता है। इसमें सामान्य विधान का प्रयोग करना चाहिए जैसा कि मैंने तुम्हें बताया है।२४-२६। सावन के मास में जो नक्त भोजन करता है क्षीर का पौष्टिक भोजन करके सभी प्राणियों के उपकार मे मग्न होकर महात्मा सूर्य के लिए पीले रंग की गाय एवं बताये गये सामान्य विधान समस्त कार्य द्वारा समाप्त करता है, विचित्र विमानों द्वारा जिसमें सारस जुते हों उस विमान से सूर्य लोक में पहुँचने पर उसे पूर्वोक्त सभी फल प्राप्त होते हैं।२७-२९। वीर ! भादों के मास में जो नक्त भोजन तथा हवन करने से शेष हवि का प्राशन करके वृक्ष के मूल (जड़) पर स्थित रहकर रात में मन्दिरमें शयन पूर्वक सभी प्राणियों पर दया करते हुए महात्मा भास्कर के लिए श्रेष्ठ रोहिणी (लाल रंग की) गाय प्रदान करता है तो वह चन्द्रमा, वज्र, एवं वैदूर्य मणि की भाँति धवल तथा समस्त कामना प्रदान करने वाले उन विमानों द्वारा जिसमें चकोर जुंते हों उत्तम सूर्य लोक में पहुँचकर देवों एवं राक्षसों से पूजित होता है तथा प्रलय होने तक आनन्द का अनुभव करता है।३०-३२। जो श्रीमान् आश्विन मास में नक्त भोजन करते हैं—अल्पाहार करके क्रोधहीन एवं इन्द्रिय संयम रखते हैं, तथा अजेय तेज वाले सूर्य के लिए कमल के समान सौन्दर्य पूर्ण ऐसी गाय प्रदान करते हैं जो दिव्य आभूषणों से सुसज्जित तरुणी, एवं निरन्तर दूध देती है। वे मोती एवं इन्द्रनील से सुशोभित तथा जीवक मुक्त विमानों द्वारा मन इच्छित आनन्द लेते हुए सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं। कार्तिक मास में नक्त भोजन पूर्वोक्त विधान पूर्वक जितेन्द्रिय रहकर सम्पन्न कर प्रज्वलित सूर्य के समान गोदान उनके लिए प्रदान करे। इसमें पूर्वोक्त विधान द्वारा सभी सम्पन्न करना चाहिए ऐसा करने से सूर्य के तुल्य होता है। तथा काली अग्नि शिखा के

दिवाकराय गां दद्याज्ज्वलनार्कसमप्रभाम् । पूर्वोक्तं च विधिं कुर्यात्सूर्यतुल्यो भवेन्नरः ॥३७
कालानलशिखप्रख्यैर्महायानैर्नगोपमैः । महासिंहकृतारोपैः सूर्यवन्मोदते सुखी ॥३८
मार्गशीर्षे शुभे मासि यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । यच्चान्नं पयसा युक्तं भुञ्जानः स जितेन्द्रियः ॥३९
प्रयच्छेद्गां तथा रक्तां नानालङ्कारभूषिताम् । सूर्याय कुरुशार्दूल विधिं चापि समाचरेत् ॥४०
सितपद्मनिभैर्यानैः श्वेताश्वरथसंयुतैः । गत्वा तत्र पुरे रम्ये प्रभया परयान्वितः ॥४१
अहिंसासत्यवचनमस्तेयं क्षान्तिरार्जवम् । त्रिषवणाग्निहवनं भूशय्या नक्तभोजनम् ॥४२
पक्षयोरुभयोर्मार्गे सप्तम्यां कुरुनन्दन । एतान्गुणान्समाश्रित्य कुर्वाणो व्रतमुत्तमम् ॥४३
सप्तम्योभयविख्यातं सर्वपापभयापहम् । सर्वरोगप्रशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥४४
इत्येवमादीन्नियमांश्चरेत्सूर्यव्रती सदा । य इच्छेद्विपुलं स्थानं भानोरमिततेजसः ॥४५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे उभयसप्तमीवर्णनं
नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६५।

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मे निक्षुभाव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

सूर्यभक्ता तु या नारी ध्रुवं सा पुरुषो भवेत् । स्त्री पुत्रमुत्तमं सा चेत्कांक्षते शृणु तद्व्रतम् ॥१

समान और पर्वतों की भाँति उन विधानों द्वारा जिसमें भीषण सिंह जुते हों, सूर्य के समीप पहुँचकर उनके समान सुखी एवं आनन्द का अनुभव करता है ।३४-३८। मार्गशीर्ष में जो नक्त भोजन सम्पन्न करता है—जितेन्द्रिय होकर खीर के भोजन तथा कुरुशार्दूल ! सूर्य के लिए रक्तवर्ण और भाँति-भाँति के आभूषणों से सुशोभित गाय विधान पूर्वक प्रदान करता है तो वह श्वेत कमल की भाँति सौन्दर्य पूर्ण विमानों द्वारा जिसमें श्वेत वर्ण के अश्व एवं रथ हों सूर्य की उस उत्तम पुरी में पहुँचकर उत्तम कान्ति से सुशोभित होता है ।३९-४१। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, क्षमा, सरलता तीनों काल स्नान, हवन, और भूमि शयन नक्त भोजन में आवश्यक बताये गये हैं । कुरुनंदन ! इस प्रकार मार्गशीर्ष की दोनों सप्तमियों में इन गुणों समेत उत्तम व्रत का विधान करना चाहिए । इस प्रकार समस्त पाप नाशिनी, समस्त रोग नाश करने वाली, तथा समस्त कामना प्रदान करने वाली दोनों सप्तमीकी व्याख्या बतायी गई है । अमित तेज वाले सूर्य के उस विपुल स्थान के इच्छुक जो सूर्य के व्रत करने वाले मनुष्य हैं इन्हीं नियमों द्वारा सदैव व्रत समाप्ति करें ।४२-४५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के उभय सप्तमी वर्णन नामक
एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६५।

अध्याय १६६

सौरधर्म में निक्षुभाव्रत का वर्णन

सुमन्तु बोले—सूर्य की भक्ति करने वाली स्त्री (अगले जन्म में) निश्चित पुरुष होती है । यदि वह उत्तम पुत्र की ही कामना प्रकट करती है तो उसमें भी सफलता प्राप्त होती है मैं उसे बता रहा हूँ सुनो ! १।

निक्षुभार्काख्यमाख्यातं सदा प्रीतिविवर्धनम् । अवियोगकरं वीर धर्मकामार्थसाधकम् ।।२
सप्तम्यामथ षष्ठ्यां वा सङ्क्रान्तौ च रवेर्दिने । हविषा हविर्होमं तु सोपवासः समाचरेत् ।।३
निक्षुभां कांस्यनिष्पन्नां कृत्वा स्वर्णमयीं शुभाम् । राजतीं वाथ वा वर्षं स्नापयेच्च घृतादिभिः ।।४
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य वस्त्रयुग्मैश्च शोभनैः। भक्ष्यभोज्यैरशेषैश्च वितानध्वजचामरैः ।।५
भोजयेत्सूर्यभक्तांश्च शुक्लवस्त्रावगुण्ठितान् । कृत्वायतनमध्ये तु प्रतिमामुपकल्पयेत् ।।६
कृत्वा शिरसि तत्पात्रं वितानच्छत्रशोभितम् । ध्वजशङ्खादिविभवैर्भगस्यायतनं नयेत् ।।७
निक्षुभार्कदिनेशस्य व्रतमेतन्निवेदयेत् । तत्पिण्डयां स्थापयेत्पात्रमुपशोभासमन्वितम् ।।८
प्रदक्षिणीकृत्य रविं प्रणिपत्य क्षमापयेत् । समाप्य तद्व्रतं पुण्यं शृणु यात्फलमश्नुते ।।९
द्वादशादित्यसंकाशैर्महायानैर्नगोपमैः । यथेष्टं भानवे लोके सौरैः सार्धं प्रमोदते ।।१०
वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च । नन्दतेऽसौ महाभाग विष्णुलोके महीयते ।।११
ततः कर्मविशेषेण सर्वकामसमन्वितम् । ब्रह्मलोकं समासाद्य परं सुखमवाप्नुयात् ।।१२
ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः श्रीमान्सुरसुपूजितः । प्रजापतित्वमाप्नोति सुरासुरनमस्कृतः ।।१३
लोकानिह चिरं भुक्त्वा सोमलोके महीयते । सोमादैन्द्रं पुनर्लोकमासाद्येन्द्रपतिर्भवेत् ।।१४
इन्द्रलोकाच्च गन्धर्वलोकं प्राप्य स मोदते । ततस्तद्धर्मशेषेण भवत्यादित्यभावितः ।।१५

वीर ! 'निक्षुभार्क' उस व्रत का नाम है, वह सदैव प्रीति वर्द्धक, वियोग नाशक और धर्म, तथा काम की सफलता प्रदान करता है ।२। सप्तमी, षष्ठी, एवं संक्रान्ति वाले सूर्य के दिन उपवास रहकर घी का हवन करना चाहिए । कांस्य, सुवर्ण, अथवा चाँदी द्वारा शुभ-प्रतिमा (मूर्ति) निक्षुभा की बनावे पश्चात् घी आदि से स्नान कराकर दो वस्त्र, गंध एवं मालाओं से अलंकृत करके पुनः वितान (चाँदनी) ध्वज तथा चामर से सुसज्जित करने के उपरांत भाँति-भाँति के भक्ष्य पदार्थों को उन्हें अर्पित करते हुए सूर्य भक्तों को भोजन कराये । पुनः मन्दिर के मध्य भाग में शुक्ल वस्त्रों में लिपटी उस प्रतिमा को स्थित करके वितान एवं छत्र से सुशोभित उस पात्र को सिर पर रख ध्वज, शंख आदि वस्तुओं समेत उसे सूर्य मन्दिर में ले जाये ।३-७। निक्षुभार्क नामक इस व्रत को उन्हें निवेदित करके सामग्रियों से सुशोभित उस पात्र को उनकी पिंडी पर स्थापित करने के पश्चात् सूर्य की प्रदक्षिणा करके नमस्कार पूर्वक (अपने अपराधों को) क्षमा कराये । इस प्रकार उस व्रत की समाप्ति करने से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, सुनो ! बारहों सूर्यों के समान प्रकाश पूर्ण एवं पर्वत के समान विशाल काय वाले उन विमानों पर बैठकर सूर्य लोक में सूर्य के अनुयायियों के साथ उसे मनइच्छित आनन्दानुभव प्राप्त होता है ।८-१०। महाभाग ! सहस्र कोटि एवं सौ कोटि वर्ष विष्णु लोक में वह पूजित होता है ।११। पश्चात् (उत्तम) कर्म की विशेषतावश समस्त कामनाओं को सम्पन्न कर ब्रह्मलोक में पहुँचकर उत्तम सुख की प्राप्ति करता है ।१२। पुनः कदाचित् ब्रह्मलोक से च्युत होकर देव वन्दित वह श्रीमान् प्रजापति होता है, देव एवं असुरों से नमस्कृत होते हुए चिरकाल तक उस लोक के सुखानुभव प्राप्त करने के उपरांत सोम लोक में पहुँचता है, और सोम लोक से फिर इन्द्र लोक में जाकर इन्द्रपति होता है ।१३-१४। एवं इन्द्रलोक से गन्धर्व लोक पहुँचकर आनन्दानुभव करता है । इसके उपरांत भी उस धर्म के शेष रहने के कारण सूर्य में सायुज्य मोक्ष

स्वकर्मभावनोद्योगात्पुनः प्रारभते शुभम् । शुभाच्च पुनरेत्येह स यात्यतिसहस्रशः ॥१६
यावन्नाप्नोति मरणं तावद्भ्रमति कर्मणा । सुनिर्वेदात्सुवैराग्यं वैराग्याज्ज्ञानसम्भवः ॥१७
ज्ञानात्प्रवर्तते योगो योगाद्दुःखान्तमाप्नुयात् ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे निक्षुभाव्रतवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६६।

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

निक्षुभार्कव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

षष्ठ्यां चाप्यथ सप्तम्यां नियता ब्रह्मचारिणी । वर्षमेकं न भुङ्क्ते या महाभागजिगीषया ॥१
वर्षांते प्रतिमां कृत्वा निक्षुभाङ्केति विश्रुताम् । स्नानाद्यं च विधिं कृत्वा पूर्वोक्तं लभते गुणम् ॥२
जाम्बूनदमयैर्यानैश्चतुर्द्वारैरलङ्कृते । गत्वादित्यपुरे रम्ये अशेषं विन्दते फलम् ॥३
सौरादिसर्वलोकेषु भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्राजानं पतिमाप्नुयात् ॥४
या नार्युपवसेदेवं कृष्णामेकां तु सप्तमीम् । सा गच्छेत्परमं स्थानं भानोरमिततेजसः ॥५

प्राप्त करता है ।१५। इस प्रकार अपने कर्म की भावना वश पुनः उसका शुभ (कर्म) प्रारम्भ होता है और उसी शुभ कर्म द्वारा इस लोक में अनेकों बार जन्म ग्रहण करता रहता है ।१६। इस भाँति जब तक मरण धर्म प्राप्त नहीं होता तब तक कर्मवश भ्रमण करता है । इस प्रकार अत्यन्त दुःख होने से उत्तम वैराग्य उत्पन्न होता है, वैराग्य से ज्ञान, ज्ञान से योग, और योग द्वारा दुःख का अत्यन्त नाश बताया गया है ।१७-१८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में निक्षुभाव्रत वर्णन नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।१६६।

अध्याय १६७

निक्षुभार्कव्रत का वर्णन

सुमन्तु बोले—षष्ठी और सप्तमी में संयमपूर्वक ब्रह्मचारिणी रहकर जो पुरुष (सूर्य) लोक की यात्रा करने की कामनावश पूरे एक वर्ष तक भोजन नहीं करती है, तथा वर्ष की समाप्ति में निक्षुभा की सौन्दर्यमयी प्रतिमा बनवाकर विधानपूर्वक स्नान आदि कर्म की समाप्ति करती है, तो उसे पूर्वोक्त सभी गुण प्राप्त होते हैं ।१-२। सुवर्ण के विमान पर बैठकर सौन्दर्यपूर्ण चारों दरवाजे से सुशोभित उस उत्तम सूर्य लोक में पहुँचकर अशेष (सम्पूर्ण) फलों का उपभोग करती है ।३। सूर्य के सभी लोकों में मनइच्छित भोगों का उपभोग करके क्रम प्राप्त इस लोक में राजा को पति रूप में वरण करती है अर्थात् (राजरानी) होती है ।४। इस प्रकार जो स्त्री एक ही कृष्ण पक्ष की सप्तमी में पूर्वोक्त नियमानुसार उपवास करती है, उसे अजेय तेज वाले सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।५। वर्ष के अन्त में साठी चावल के चूर्ण

वर्षान्ते प्रतिमां कृत्वा शालिपिष्टमयीं शुभाम् । पीतानुलेपनैर्माल्यैः पीतवस्त्रैश्च पूजयेत् ।।
पूर्वोक्तमखिलं कृत्वा भास्कराय निवेदयेत् ।।६
सप्तभीमैर्महायानैर्दन्तिचामीकरप्रभैः । वर्षकोटिशतं साग्रं सूर्यलोके महीयते ।।७
सौरलोकादिलोकेषु भुक्त्वा भोगान्नराधिप । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्यथेष्टं विन्दते पतिम् ।।
सर्वलक्षणसम्पन्नं धनधान्यसमन्वितम् ।।८
कृष्णपक्षे तु सप्तम्यां या नारी नु दृढव्रता । वर्षमेकमुपवसेत्सर्वभोगविवर्जिता ।।९
वर्षान्ते सर्वगन्धाढ्यं निक्षुभार्कं निवेदयेत् । सुवर्णमणिमुक्ताभ्यां भोजयित्वा मगाङ्गनाम् ।।१०
सुविचित्रैर्महायानैर्दिव्यगन्धर्वशोभितैः । सा वै युगसहस्राणि सूर्यलोके नराधिप ।।११
यथेष्टं भानवे लोके भोगान्भुक्त्वा तु कृत्स्नशः । क्रमादागत्य लोकेस्मिन् राजानं विन्दते पतिम् ।।१२
एवं या कुरुते राजन्व्रतं पापभयापहम् । निक्षुभार्कमिदं पुण्यं सा याति परमं पदम् ।।१३
वर्षमेकं महाबाहो श्रद्धया परयान्वितः । वर्षांते वै भोजयेद्वीर दाम्पत्यं भोजकेषु वै ।।१४
भोजयित्वा तु दाम्पत्यं भोगकानां महाबलैः । पूजयेद्गन्धमाल्यैस्तु वासोभिः कुरुनन्दन ।।१५
कृत्वा ताम्रमये पात्रे वज्रपूर्णैरलङ्कृतम् । निक्षुभार्कं तु सौवर्णं दत्त्वा ताभ्यां तु शक्तितः ।।१६
निक्षुभा भोजिका ज्ञेया भोजकोऽर्कः प्रकीर्तितः । तस्मात्तौ पूजयेत्सौरीश्वरवच्छ्रद्धयान्वितः ।।१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु निक्षुभार्कव्रतं नाम
सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६७।

(आटे) की सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा बनाकर पीले अनुलेपन, मालाओं एवं पीत वस्त्रों से अलंकृत करके पूर्वोक्त सभी कर्मों की समाप्ति करती हुई उसे सूर्य के लिए अर्पित करती है तो विशाल कायवाले सात विमानों पर जो गजदन्त एवं सुवर्ण की भाँति प्रभापूर्ण हों, बैठकर सौ कोटि वर्ष सूर्य लोक के उत्तम स्थान में आनन्द का अनुभव प्राप्त करती है।६-७। नराधिप ! सूर्य लोक आदि सभी लोको में भोग करने के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में जन्म ग्रहण कर समस्त लक्षण सम्पन्न एवं धन धान्य पूर्ण मनोनुकूल पति की प्राप्ति करती है ।८। जो स्त्री कृष्ण पक्ष की सप्तमी में दृढ़ता पूर्वक व्रत रह कर उसी प्रकार समस्त भोगों के त्याग पूर्वक एक वर्ष का उपवास रहकर समय व्यतीत करती है, और वर्ष की समाप्ति में निक्षुभा की प्रतिमा को गन्ध आदि सुवर्ण मणि तथा मोतियों से अलंकृत करके मग की स्त्रियों को भोजन कराने के उपरांत उसे सूर्य को समर्पित करती है, तो वह चित्रविचित्र एवं दिव्य गंधर्व सुशोभित महाविमान पर बैठकर सूर्य लोक में जाती है और सहस्र युग पर्यन्त उन लोकों से सभी भोगों के उपभोग करने के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में उत्पन्न होकर राजरानी होती है।९-१२। राजन् ! इस प्रकार जो सभी पापनाशक इस निक्षुभार्क नामक व्रत का विधान पालन करती है, उसे परम पद की प्राप्ति होती है।१३। अतः महाबाहो ! अत्यन्त श्रद्धासम्पन्न हो एक वर्ष तक उसका विधान पालन करे, और वीर ! वर्ष के अंत में दम्पति (स्त्री पुरुष) भोजक को भोजन करावे, पश्चात् कुरुनन्दन ! गन्ध, मालाओं, एवं वस्त्रों द्वारा अलंकृत करके तांबे के पात्र में वज्र समेत उस निक्षुभाकी प्रतिमा को रखकर उसे सूर्य को निवेदित कर दोनों को शक्त्यनुसार सुवर्ण दान करे।१४-१६। निक्षुभा भोजिका और सूर्य भोजक बताये गये हैं। इसलिए इन दोनों की पूजा ईश्वर की भाँति अत्यन्त श्रद्धालु होकर करनी चाहिए।१७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में निक्षुभार्क व्रत वर्णन
नामक एक सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त।१६७।

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कामप्रदस्त्रीव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एकभक्तेन या नारी कार्त्तिकं क्षपयेन्नृप । क्षमाहिंसादिनियमैः संयता ब्रह्मचारिणी ॥१
गुडाज्यमिश्रं शाल्यन्नं भास्कराय निवेदयेत् । पक्षयोरुभयोस्तात श्रद्धया परयान्विता ॥२
पुष्पाणां करवीराणां गुग्गुलं साज्यमादिशेत् । सप्तम्यां तात षष्ठ्यां वै उपवासरतिर्भवेत् ॥३
इन्द्रनीलप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः । वर्षायुतशतं साग्रं सूरलोके महीयते ॥४
तथा च सर्वलोकेषु भोगमासाद्य यत्नतः । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्यथेष्टं विन्दते पतिम् ॥५
इत्येवं सर्वयज्ञेषु दिधिस्तुल्यः प्रकीर्तितः । एकभक्तोपवासस्य फलं च सदृशं भवेत् ॥६
क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । सूर्यपूजाग्निहवनं सन्तोषः स्तेयवर्जनम् ॥७
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः । निःशेषमहं वक्ष्यामि मासान्मासव्रतं प्रति ॥८
मार्गशीर्षे शुभे मासि व्योमपृष्ठे विनिर्मितम् । गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य शुभाननमनौपमम् ॥९
ताम्रपात्रादिकैश्चैवाप्यप्सरोगणसेवितैः । समेरो दशसाहस्रे सूर्यलोके महीयते ॥१०
सर्वदेवकदम्बेषु सम्प्राप्य विमलां श्रियम् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्राजानं पतिमाप्नुयात् ॥

अध्याय १६८

कामदासप्तमी व्रत का वर्णन

सुमन्तु बोले—नृप कार्तिक मास में जो स्त्री क्षमा एवं अहिंसा आदि नियमों के पालन समेत संयम पूर्वक ब्रह्मचारिणी रहकर एकाहार से समय व्यतीत करती हुई, तथा तात ! उत्तम श्रद्धापूर्वक दोनों पक्षों में सूर्य के लिए गुड़, तथा घी मिश्रित साठी चावल के भात, कनेर के पुष्प एवं घी समेत गुग्गुल प्रदान कर तात ! षष्ठी और सप्तमी में उपवास करती है ? तो वह इन्द्रनील की भाँति विमानों पर बैठकर जो समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं, सूर्य लोक में जाकर सौ अयुत वर्ष उस लोक के उत्तम स्थान में सम्मानित होती रहती है । उसके उपरांत समस्त लोकों के उपभोगों के सुखानुभव करके क्रम प्राप्त इस लोक में पुनः जन्म ग्रहण कर मनोनीत पति प्राप्त करती है ।१-५। समस्त यज्ञों में इसी प्रकार का समान विधान बताया गया है । और एकाहार एवं उपवास रहने के फल भी समान ही होते हैं ।६। यह भी बता दिया गया है क्षमा, सत्य, दया, दान, पवित्रता, इन्द्रियसंयम, सूर्य, पूजा, अग्निहवन, संतोष, और स्तेय (चोरी) के त्याग, यही दश प्रकार के सामान्य धर्म सभी व्रतों में बताये गये हैं । सभी मासों के समस्त धर्म क्रमशः मैं बता रहा हूँ ।७-८। मार्गशीर्ष (अगहन) के शुभमास में व्योम के पीठ पर सौन्दर्यपूर्ण एवं अनुपम मुख-मूर्ति की रचना करके गन्ध-माला से सुशोभित कर ताँबें आदि के पात्र में स्थापित करे तो उसे अप्सराओं के साथ सूर्यलोक में दशसहस्र वर्ष सम्मान पूर्वक आनन्द का उपभोग प्राप्त होता है ।९-१०। पुनः समस्त देव समूहों से उत्तम श्री सम्पन्न होकर क्रम प्राप्त इस लोक में जन्म ग्रहण करके राजरानी

पुष्पैरसुमलङ्कृत्य भानवे विनिवेदयेत् ॥११
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य शुभाननमतोपमम् । ताम्रपात्रादिकांस्यं वा कृत्वा तत्र निवेदयेत् ॥१२
महापुष्पकयानेन दिव्यगन्धप्रवाहिना । सुमेरौ दशसाहस्रं सूर्यलोके महीयते ॥१३
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्सर्वलोकेषु भारत । सम्प्राप्यैतं क्रमाल्लोकं यथेष्टं विन्दते पतिम् ॥१४
माघे रथमश्वयुजं दीपमाल्यविभूषितम् । पिष्टसानुसमायुक्तं कृत्वायतनमानयेत् ॥१५
महारथोपमैर्यानैः श्वेताश्ववरसंयुतैः । वर्षायुतशतं साग्रं सूर्यलोके महीयते ॥१६
सर्वामराणां लोकेषु प्राप्य भोगान्यथेप्सितान् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्यथेष्टं पतिमाप्नुयात् ॥१७
प्रतिमां फाल्गुने मासि कृत्वा पिष्टमयीं रवेः । गंधमाल्यैरलङ्कृत्य स्थापयेद्भास्करालये ॥१८
यानैरप्रतिमैर्दिव्यैर्गीतनादसमाकुलैः । सुमेरौ दशसाहस्रं सूर्यलोके महीयते ॥१९
सर्वाभिमतलोकेऽस्मिन्प्राप्य भोगान्यथेप्सितान् । पुनरेत्य इमं लोकं यथेष्टं विन्दते पतिम् ॥२०
कृत्वारुणं तथा चैत्रे गन्धमाल्योपशोभितम् । स्थाप्य पात्रे यथोक्ते तु भास्कराय निवेदयेत् ॥२१
शरदिन्दुप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः । वर्षायुतशतं साग्रं सूर्यलोके महीयते ॥२२
कर्मक्षयादिहागत्य पुत्रपौत्रसमन्वितम् । अभीष्टं पतिमासाद्य लभेद्भोगान्सुदुर्लभान् ॥२३
तण्डुलाढकपिष्टेन कृत्वा वै मेरुपर्वतम् । निक्षुभार्कसमायुक्तं सर्वधातुविभूषितम् ॥२४
नानालङ्कारसम्पन्नं नानामाल्यविभूषितम् । सर्वरत्नसमायुक्तं स्थापयेद्भास्करालये ॥२५

होती है। एवं पौष मास में जो स्त्री उस प्रतिमा को पुष्पों से सुशोभित करके सूर्य के लिए अर्पित कर उस सौन्दर्य पूर्ण मुख वाली मूर्ति को गन्ध मालाओं द्वारा अलंकृत करके कांसे आदि किसी पात्र में स्थापित करके उन्हें निवेदित करती है।११-१२। उसे दिव्य गंध से विभूषित महापुष्पक विमान द्वारा उस सुन्दर शिखर वाले सूर्य लोक में पहुँचने पर दश सहस्र वर्ष सम्मान तथा भारत! इस प्रकार सभी लोकों के विपुल भोगों के उपभोग करने के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में आने पर मन इच्छित पति प्राप्त होता है। माघमास में अश्व समेत रथ की रचना कर जो दीपमाला से विभूषित हो तथा चूर्ण के शिखर जहाँ बनाये गये हों, सूर्य मन्दिर में लाये तो श्वेत वर्ण के अश्व जुते महारथ की प्राप्ति होती है वीर सभी देवों के मनइच्छित भोगों के उपभोग करके क्रम प्राप्त इस लोक मे आने पर मनोनीत पति की भी प्राप्ति होती है।१३-१७। फाल्गुन मास में चूर्ण (आटे) की सूर्य की प्रतिमा बनाकर गंध एवं मालाओं द्वारा अलंकृत करके सूर्य मन्दिर में स्थापित करे तो दिव्य, एवं अनुपम विमान द्वारा गायनवाद्यों समेत उस उत्तम शिखर वाले सूर्य लोक में दशसहस्र वर्ष सम्मानित रहकर समस्त मनोनीत उपभोगों के सुखानुभव पूर्वक पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में जल ग्रहण करने पर मनोनुकूल पति की प्राप्ति होती है।१८-२०। चैत्रमास में रक्तवर्ण की प्रतिमा बनाकर गन्ध माला से सुशोभित करके उक्त पात्र में स्थापित कर सूर्य को अर्पित करे तो शरदकालीन चन्द्र की भाँति एवं समस्त कामनाप्रदायक विमानों द्वारा सूर्य लोक में पहुंच कर उसके उत्तम स्थान में सौ सहस्र वर्ष आनन्द मग्न रह कर पश्चात् कर्मक्षीण होने के कारण यहाँ आने पर उसे मनोनीत पति, पुत्र तथा पौत्र की प्राप्ति पूर्वक समस्त दुर्लभ भोगों का उपभोग प्राप्त होता है।२१-२३। वैशाख मास में आधे पसेरी चूर्ण (आटे) के मेरु पर्वत समेत निक्षुभा की मूर्ति बनाकर समस्त धातुओं से विभूषित भाँति-भाँति के आभूषण, एवं भाँति-भाँति की मालाओं, तथा समस्त रत्नों से सुसम्पन्न करके सूर्य मन्दिर में स्थापित करे।२४-२५।

महद्व्योमव्रतं ह्येतद्वै शाखे यः समाचरेत् । नानाविधैश्च यानैस्तु सूर्यलोके महीयते ।।२६
सौरादिसर्वलोकेषु भुक्त्वा भोगानशेषतः । क्रमादागत्यलोकेऽस्मिन्राजानं पतिमाप्नुयात् ।।२७
द्वितीयं च तथा पद्ममाषाढे पिष्टमुत्तमम् । सर्वबीजरसैः पूर्णं कृत्वा तु शुभलक्षणम् ।।
नानाकेसरगन्धाढ्यं सर्वरत्नविभूषितम् ।।२८
एतैर्वा हैमभिर्यानैः[1] सर्वभोगान्वितैर्नृप । वर्षकोटिशतं साग्रं सूर्यलोके महीयते ।।२९
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्सर्वलोकेष्वनुक्रमात् । प्राप्ता[2] तु सर्वभोगाढ्यं तरुणं विन्दते पतिम् ।।३०
सर्वधातुसमाकीर्णं विचित्रध्वजशोभितम् । निवेदयेत् सूर्याय श्रावणे तिलपर्वतम् ।।३१
स्वच्छन्दगामिभिर्यानैर्नानावर्णविभूषितैः । वर्षकोटिशतं साग्रं सूर्यलोके महीयते ।।३२
सम्प्राप्य विविधान्भोगान्बह्वाश्चर्यसमन्वितान् । क्रमाल्लोकमिमं प्राप्य राजानं विन्दते पतिम् ।।३३
कृत्वा भाद्रपदे मासि व्योम शालिमयं नृप । वितानध्वजच्छत्राढ्यं नानामालादिभूषितम् ।।३४
तरुणार्ककरप्रख्यैर्महायानैः सुशोभनैः । वर्षकोटिसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ।।३५
सम्प्राप्य विविधान्भोगान्सर्वान्निमिषसम्भवान् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्राजानं विन्दते पतिम् ।।३६
कृत्वा चाश्वयुजे मासि विपुलं धान्यपर्वतम् । सुवर्णवस्त्रगन्धाढ्यं भास्कराय निवेदयेत् ।।३७

इस प्रकार के महाव्योम वाले इस व्रत का विधान समाप्त करने से उसे अनेक भाँति की सवारियों द्वारा सूर्य लोक के सम्मान समेत सूर्य आदि समस्त लोकों के निखिल भोगों के सुखानुभव के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में आने पर राजा के रूप में पति प्राप्त होता है।२६-२७। आषाढ मास में चूर्ण (आटे) द्वारा द्वितीय (निक्षुभा) और पद्म (सूर्य) कल्याण की मूर्ति बनाकर समस्त बीजों के रसों से पूर्ण कर भाँति-भाँति के केसर गंध एवं समस्त रत्नों से सुसज्जित करे तो, नृप ! सुवर्ण के विमानों पर बैठकर जिसमें समस्त उपभोग की सामग्रियाँ परिपूर्ण हों, सूर्य लोक में पहुँच कर उत्तम स्थान में सौ करोड़ वर्ष का सम्मान प्राप्त होता है और समस्त लोकों के विपुल भोगों के क्रमशः उपभोग करने के पश्चात् (इस लोक में) समस्त उपभोग की सामग्रियाँ समेत युवा पति भी प्राप्त होता है।२८-३०। सावन मास में समस्त धातु एवं चित्रविचित्र ध्वजों से सुशोभित तिल-पर्वत सूर्य के लिए समर्पित करना चाहिए। उससे उस स्त्री को भाँति-भाँति के वर्णों (रंगों) से सुसज्जित उस स्वच्छन्द गामी विमानों द्वारा सूर्य लोक के उत्तम स्थान में सौ कोटि वर्ष का सम्मान प्राप्त होता है। और इस प्रकार आश्चर्य जनक अनेक भोगों की प्राप्ति पूर्वक कभी क्रमशः इस लोक में आने पर भी वह राजरानी होती है। नृप ! भादों के मास में साठी चावल के चूर्ण (आटे) का व्योम बनाकर उसे वितान, ध्वज, दल एवं भाँति-भाँति की मालाओं से सौन्दर्य पूर्ण करे तो तरुण सूर्य की किरणों के समान प्रखर तेजस्वी महाविमान पर बैठकर जिसमें उत्तम भोग की व्यवस्था निश्चित है, सूर्य लोक में पहुँच कर सौ कोटि वर्ष का सम्मान प्राप्त होता है।३१-३५। समस्त भोगों के उपभोग करके जो प्रत्येक क्षणों के लिए निश्चित हैं, क्रमशः इस लोक में आकर राजा रूप में पति प्राप्त होता है।३६। आश्विन मास में विपुल धान्य के पर्वत बनाकर उसे सुवर्ण, वस्त्र एवं गन्धों से सुसज्जित

---

१. ऐसभावश्छान्दसः । २. इह लोक इति शेषः ।

सावित्रैश्च महायानैर्वरभोगसमन्वितैः । वर्षकोटिसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ।।३८
सूर्यलोकादिलोकेषु भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् । अस्मिंल्लोके च सम्प्राप्ता राजानं विन्दते पतिम् ।।
चन्द्राग्निभास्कराणां तु कान्तितेजः प्रभान्वितम् ।।३९
यं यं कामं समुद्दिश्य नरनारीनपुंसकाः । पूजयन्ति रविं भक्त्या तत्सर्वं प्राप्नुवन्ति हि ।।४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु कामप्रदस्त्रीव्रतवर्णनं नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६८।

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

मृण्मयं दारुजं शैलं पक्वेष्टकमथापि वा । कृत्वा मठं गृहं वापि यथा विभवसम्भवात् ।।१
सर्वोपकरणोपेतं सर्वधान्यसमन्वितम् । सूर्यायेत्थं गृहं दद्यात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।२
कृत्वैकभक्तं हेमन्ते माघमासमतन्द्रितः । मासान्तेन रथं कुर्याच्चित्रवस्त्रोपशोभितम् ।।३
श्वेतैश्चतुर्भिः संयुक्तं तुरङ्गैः समलङ्कृतम् । श्वेतध्वजपताकाभिश्छत्रचामरदर्पणैः ।।४
तण्डुलाढकपिष्टेन कृत्वा भानुं नराधिप । विन्यस्य तं रथोपस्थे संज्ञया सह भूपते ।।५

कर भास्कर के लिए समर्पित करे तो, उत्तम भोग साधन पूर्ण सूर्य के उस महाविमान, द्वारा उनके लोक में पहुँच कर सहस्र कोटि वर्ष का सम्मान प्राप्त होता है । पुनः सूर्य आदि लोकों के समस्त मनोनीत भोगों के उपभोग करने के उपरांत इस लोक में इसी भाँति का राजा पति रूप में प्राप्त होता है, जो चंद्र के समान कांति अग्नि के समान तेज एवं सूर्य के समान प्रभा पूर्ण रहता है । इस प्रकार नर, नारी तथा नपुसंक जिन उद्देश्यों से सूर्य की भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं उन्हें वे अवश्य प्राप्त होते हैं ।३७-४०

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म मे कामप्रद स्त्री व्रत वर्णन नामक एक सौ असरठवाँ अध्याय समाप्त ।१६८।

अध्याय १६९

सूर्यव्रत का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—मिट्टी, काष्ठ, पत्थर अथवा पके ईंट का मठ या मन्दिर अपने शक्त्यनुसार निर्माण कराकर सभी साधन, धन-धान्य से पूर्ण कर उसे सूर्य के लिए समर्पित करने से समस्त कामनाएँ सफल होती हैं ।१-२। हेमन्त (अगहन पौष) तथा माघ के मास में आलस्यहीन एवं एकाहारी होकर मास की समाप्ति में चित्रविचित्र वस्त्रों से सुशोभित ऐसे उत्तम स्थान का निर्माण कराये जिसमें श्वेत वर्ण के एवं सौन्दर्य पूर्ण आभूषणों से अलंकृत चार घोड़े जुते हों उसे श्वेत ध्वज, पताका, पत्र, चामर एवं दर्पणों से विभूषित करने के पश्चात् नराधिप ! आधेपसेरी चावल के साथ उस रथ पर प्रतिष्ठित करे।

तं रात्रौ राजमार्गेण शङ्खभेर्यादिनिस्वनैः भ्रमयित्वा शनैः पश्चात्सूर्यायतनमाविशेत् ॥६
तत्र जागरपूजाभिः प्रदीपावलिशोभितैः । प्रेक्षणीयैः प्रदानैश्च क्षपयित्वा शनैः क्षपाम् ॥७
प्रभाते स्नपनं कृत्वा मधुक्षीरघृतेन च । दीनान्धकृपणेभ्योऽन्नं यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ॥८
रथं संवाहनोपेतं भास्कराय निवेदयेत् । भुक्त्वा च बान्धवैः सार्धं प्रणम्यार्कगृहं व्रजेत् ॥९
सर्वव्रतानां प्रवरं मन्त्रधर्मान्वितः सदा । व्रतं सूर्यव्रतं नाम सर्वकामार्थसिद्धये ॥१०
सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । सर्वं सूर्यरथेनेह तत्पुण्यं लभते नृप ॥११
सूर्यायुतप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः । त्रिसप्तकुलजैः सार्धं सूर्यलोके महीयते ॥१२
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्सर्वलोकेष्वनुक्रमात् । कल्पायुतशतं साग्रं ततो राजा भवेत्क्षितौ ॥१३
पञ्चबलिसमायुक्तं मृदुषड्वास्तुकल्पितम् । सर्वोपकरणोपेतं सूर्यं संज्ञां प्रकल्पयेत् ॥१४
संज्ञादेवीसमायुक्तं पैष्टांशाढ्यं निवेदयेत् । सौरज्ञानार्थतत्त्वज्ञमाचार्यमुदयान्वितम् ॥१५
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्वस्त्रालङ्कारचामरैः । भक्ष्यभोज्यैरशेषैश्च ततः शय्यां निवेदयेत् ॥१६
तदूर्णातूलवस्त्राणां परिसङ्ख्या तु यावती । तावद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥१७
सुरादिसर्वलोकेषु भुक्त्वा भोगानशेषतः । कामादागत्य लोकेऽस्मिन्राजा भवति धार्मिकः ॥१८
दश गोभिः सह वृषं ता वृषैकादशाः स्मृताः । सूर्याय विनिवेद्येह यत्फलं लभते शृणु ॥१९

भूपते ! पुनः रात्रि में राजमार्ग द्वारा शंख भेरी बजाते हुए धीरे-धीरे परिभ्रमण करते उन्हें सूर्य मन्दिर में पहुँचाये वहाँ उस रात में जागरण करके पूजा, सुन्दर प्रदीपवाले, इस प्रकार के दर्शनीय वस्तुएँ प्रदान करके रात व्यतीत करें। ३-७। पुनः प्रातः काल शहद, क्षीर, एव घी से स्नान कराकर यथाशक्ति दान, अंधे तथा कृपणों को अन्न दक्षिणा प्रदान पूर्वक घोड़ों समेत उस रथ को सूर्य के लिए समर्पित करें। पश्चात् बंधुओं के साथ भोजन करके सूर्य को प्रणाम कर घर जायें। सदा व्रतों में श्रेष्ठ एवं मंत्र-धर्म युक्त इस व्रत को सूर्य व्रत कहते है, यह समस्त कामनाओं को सफल करता है। नृप ! समस्त व्रत, तथा समस्त यज्ञ के करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, इस सूर्यव्रत द्वारा वे सभी पुण्य फल होते हैं।८-११। पुनः दशसहस्र सूर्य के समान प्रकाशित तथा समस्त कामना वाले उस विमान पर बैठकर अपनी इक्कीस, पीढ़ी परिवार के समेत वह सूर्य लोक के प्रतिष्ठित होता है इस प्रकार सौ सहस्र कल्प सभी लोकों के क्रमशः समस्त विपुल लोगों के उपभोग करने के पश्चात् पृथिवी का राजा होता है।१२-१३। सूर्य और संज्ञा की मूर्ति निर्माण करके उन्हें पाँच बलि, छह गृह जो सभी साधनों से सम्पन्न हो प्रदान करे। संज्ञा के समेत पिष्ट (आटे) से बने हुए उसको सूर्य को निवेदित करके सूर्य सम्बन्धी तत्त्व के ज्ञानार्थ आचार्य की पूजा करे गंध, पुष्प आदि वस्त्र चामर, आभूषण, तथा अधिक भक्ष्य पदार्थों समेत शय्या उन्हें अर्पित करें तो ऊनी एवं सूती वस्त्रों की सूत की संख्या के समान उतने सहस्र वर्ष सूर्य लोक की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ।१४-१७। देवलोकों के सुखानुभव के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में वह धार्मिक राजा होता है । दशगायों के साथ एकवृष के रखने एवं इन्हीं के दान करने से इसे वृषैकादश (ग्यारह) के नाम से बताया गया है। सूर्य को इस का निवेदन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे सुनो ! राजन् बारहों सूर्यों के समान तेजस्वी एवं अणिमादि

द्वादशादित्यतुल्यात्मा अणिमादिगुणैर्युतः । सर्वत्र मोदते राजन्सूर्यस्यानुचरो भवेत् ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यव्रतवर्णनं
नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६९।

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोदानवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

सवृषं गोशतं दत्त्वा भास्कराय नराधिप । त्रिःसप्तकुलजैः सार्धं शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥१
वरकोटिप्रतीकाशैः सर्वकामसमन्वितैः । महायानैरसङ्ख्येयैरमरासुरपूजितैः ॥२
द्वादशादित्यसंकाशो दिवाकर इवापरः । गत्वादित्यपुरं रम्यं क्रीडते सूर्यमण्डपे ॥३
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्प्रलये सर्वदेहिनाम् । मोहकञ्चुकमुत्सृज्य विशत्यादित्यमण्डले ॥४
सर्वज्ञः सूरपरमः शुद्धः स्वात्मन्यवस्थितः । सर्वगः परिपूर्णत्वात्सूर्यवद्दीप्तिमान्भवेत् ॥५
यो दद्यादुभयमुखीं सौरभेयीं दिवाकरे । सप्तद्वीपां महीं दत्त्वा यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥
पादद्वयं शिरोऽर्धं च सशैलवनकानना ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
गोदानवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७०।

(ऋद्धियों) गुणों से संयुक्त तथा सर्वत्र सूर्य का अनुचर होकर आनन्दानुभव करता रहता है।१८-२०

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमीकल्प में सूर्य व्रत वर्णन नामक
एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१६९।

अध्याय १७०

गोदान वर्णन

सुमन्तु बोले—नराधिप ! वृष समेत सौ गोदान सूर्य के लिए प्रदान करने से इक्कीस पीढ़ी समेत जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, सुनो ! करोड़ों सूर्य के समान, समस्त कामना प्रदायक महाविमान पर बैठकर जिसकी पूजा अनेक देव एवं असुर गण करते हों, बारहों सूर्यों के समान तेज प्राप्त करके द्वितीय (सूर्य) की भाँति उत्तम सूर्य लोक में पहुँच कर सूर्य मन्दिर में क्रीड़ा करता है तथा विपुल भोगों के उपभोग के पश्चात् प्राणियो के प्रलय के समय मोहरूपी आवरण के त्याग पूर्वक सूर्य मंडल में प्रविष्ट हो जाता है ।१-४। एवं सर्वज्ञ, उत्तम सूर्य की भाँति शुद्ध, अध्यात्मज्ञानी, सर्वत्र गमन की शक्ति युक्त इस प्रकार परिपूर्ण होकर सूर्य के समान तेजस्वी होता है । जो सूर्य के लिए उभय मुख वाली सुरभी (गाय) प्रदान करता है, उसे दो पैर, आधा शीश, पर्वत एवं मण्डलों से युक्त पृथिवी के दान के समान (उसी रूप में) फल प्राप्त होता है ।५-६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प का गोदान वर्णन नामक
एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७०।

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भोजकभोजनानुष्ठानवर्णनम्

शतानीक उवाच

मगानां ब्रूहि मे धर्मं समासव्यासयोगतः । फलं च किं भवेद्ब्रह्मन्मगधर्मनिषेवणात् ॥१

सुमन्तुरुवाच

स एष धर्मः सूर्येति तवाख्यातो मयानघ । मगधर्मः स एवोक्तः सर्वपापभयापहः ॥२
सर्वेषामेव वर्णानां मगधर्मनिषेवणम् । मगधर्मश्च सम्प्रोक्त एतेषां भवमुक्तये ॥३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्री शूद्रो वा मगाश्रमी । यः पूजयति मार्तण्डं स याति परमां गतिम् ॥४
त्रिसन्ध्यमर्चयेद्भानुमग्निकार्यं च शक्तितः । कुर्यान्मगो महाबाहो मुखमावृत्य यत्नतः ॥५
त्रिसन्ध्यमेककालं वा पूजयेच्छ्रद्धया रविम् । असम्पूज्य रविं मोहान्न भुञ्जीत कदाचन ॥६
एष धर्मः परो ज्ञेयः शेषो भवति मानवः । अपूजयित्वा भुञ्जानो विष्ठां भुङ्क्ते च वै मगः ॥७
देवं समाश्रितैः पूजा कर्तव्येयं त्रिभिः सदा । मनसा पूजयेद्योगी पुष्पैश्चारण्यसम्भवैः ॥८
देवार्थपुष्पहिंसायां न भवेत्तस्य हिंसकः । यद्यल्पमपि चात्मार्थं निहन्याद्धिंसकस्तदा ॥९
मगश्चाग्निपरो नित्यं तद्भक्तोऽतिथिपूजकः । मगी मैथुनवर्ज्यः स्याच्छ्रीमान्गृहमगाश्रमी ॥१०

अध्याय १७१

भोजकभोजनानुष्ठानवर्णनम्

शतानीक बोले—हे ब्रह्मन् ! विस्तृत व्याख्या पूर्वक मगों के धर्म बताने की कृपा कीजिए । और यह भी मग के धर्माचरण करने से किस फल की प्राप्ति होती है ।१

सुमन्तु बोले—अनघ ! जिस सूर्य नामक धर्म को मैंने तुम्हें बताया है, समस्त पाप नाशक वही मग धर्म कहा जाता है ।२। इसीलिए सभी जाति वालों को मगधर्म का अनुसरण करना चाहिए ।३। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री अथवा शूद्र कोई भी, मगधर्म अपनाकर सूर्य की पूजा करता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।४। महाबाहो ! मगों को चाहिए कि प्रयत्न पूर्वक मुखाच्छन्न कर शक्त्यनुसार तीनों संध्याओं में सूर्य की पूजा एवं अग्निकार्य सम्पन्न करते रहें ।५। कारण वश तीनों समय में न हो सके तो वह एक ही काल में श्रद्धालु होकर अवश्य सूर्य की पूजा करें और सूर्य की पूजा बिना किये मोहवश कभी भोजन न करें ।६। इसे ही उत्तम धर्म समझें, क्योंकि इसका आचरण करने वाला 'मग' और शेष धर्म का पालन करने वाला 'मनुष्य' बताया गया है । सूर्य की पूजा बिना किये ही भोजन करने वाले मग को 'विष्ठा भोजन' करना बताया गया है ।७। अतः देव की यह पूजा तीनों काल में सदैव करनी चाहिए । योगी को चाहिए कि अत्यन्त मन लगाकर वन पुष्पों द्वारा उनकी पूजा करें ।८। देवता के लिए पुष्प संचय करने में वह उसका हिंसक नहीं कहा जा सकता है, यदि अपने लिए पुष्प के अंग को कुछ भी बिगाड़े तो वह निश्चित हिंसक कहा जायेगा ।९। मग को नित्य अग्नि होत्र करना चाहिए और उसके भक्तों को अतिथि

**देवाग्निस्वतिथौ भक्तं पचन्ते चात्मकारणात् । आत्मार्थे यः पचेन्मोहात्स मगो नरकं व्रजेत् ।।११
देवार्थे पचनं येषां सन्तानार्थं तु मैथुनम् । अर्थो दानार्थ उद्दिष्टो नरकं हि विपर्ययात् ।।१२
जीवतृतीयभागेऽपि न प्रकुर्वीत वार्चनम् । वित्तार्जने तदर्धेन यतो नित्यं हि जीवितम् ।।१३
न्यायोपार्जितवित्तः स्यादन्यायं परिवर्जयेत् । अन्यायार्जितवित्तैस्तु कुर्वन्नरकमाप्नुयात् ।।१४
वाचोऽर्थे ब्रह्मचारी यः सूर्यपूजाग्नितत्परः । भवेज्जितेन्द्रियः शान्तो नैष्ठिको भौतिकोऽपि वा ।।१५
सर्वगन्धविनिर्मुक्तः कन्दमूलफलाशनः । मम वैखानसो ज्ञेयः सूर्यपूजाग्नितत्परः ।।१६
निवृत्तः सङ्गमेभ्यस्तु सूर्यध्यानरतः सदा । ज्ञेयः सौरयतीन्द्राय पूजानिष्ठो जितेन्द्रियः ।।१७
मुण्डोपनयनो व्यङ्गी शुक्लवासः समन्वितः । ज्ञेयं तदर्चनस्थानमेतत्कार्यं प्रयत्नतः ।।१८
अथाव्यङ्गो महाराज धारयेद्यस्तु भोजकः । अगम्यं सर्वसत्त्वानां सूर्यलोकं स गच्छति ।।१९
ध्वंसनं सर्वदुष्टानां सर्वपापभयापहम् । भावशुद्धेन सततमर्चनीयो दिवाकरः ।।२०
गन्धलेपविहीनोऽपि भावशुद्धो न दुष्यति । भावेषु च चरेच्छौचं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।।२१
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं सत्यपूतं वचो वदेत् । सौरध्यानरताः शान्ताः सौरधर्मपरायणाः ।।२२
सर्व एवाश्रमा ज्ञेया भास्कराङ्गसमुद्भवाः । भोजकाष्टव्रतं धार्यं रविणोक्तमनौपमम् ।।२३**

पूजा । मग धर्मी को मैथुन वर्जित किया गया है श्रीमान् मगाश्रमी गृहस्थ, देव, अग्नि एवं अभ्यागत के निमित्त पाक बनाते हैं । जो मग केवल अपने लिए ही पाक बनाये, उसे नरक जाना पड़ता है ।१०-११। देवता के निमित्त पाक, संतानार्थ मैथुन औरदान करने के लिए जो अर्थसंचय करता है, उसी का कर्म प्रशस्त माना गया है । इसके विपरीत उक्त बातें करने से नरक गामी होना पड़ता है ।१२। अपनी आय के तिहाई भाग से जीविका निर्वाह करना चाहिए न कि उसमें देवार्चन भी । धनोपार्जन के समय उसके आधे भाग से भी जीविका निर्वाह करना अनुचित नहीं होता है क्योंकि जीवन तो नित्य का ही रहता है ।१३। न्यायोचित रीति से धनोपार्जन करना चाहिए तथा, अनुचित रीति का त्याग । क्योंकि अन्याय पूर्ण ढंग से धनोपार्जन करने पर नरक की प्राप्ति होती है ।१४। विधान प्राप्ति के लिए जो ब्रह्मचारी रहकर सूर्य की पूजा एवं अग्नि होत्र करता है वह जितेन्द्रिय, शांत, नैष्ठिक, भौतिक होते हुए उस समस्त गंधों का त्याग और कन्दमूल फल भोजन करे, तो उसे मेरा 'वैरवानस' समझना चाहिए ।१५-१६। संगम से निवृत्ति पूर्वक सदैव सूर्य के ध्यान करने वाले को सूर्य पूजा निष्ठ एवं जितेन्द्रिय जानना चाहिए ।१७। मुंडन कराकर यज्ञोपवीत व्यंग, तथा शुक्लवस्त्र धारण करने वाला ही पूजा के योग्य होता है इसलिए उसे प्रयत्न पूर्वक उपर्युक्त आचरण करना चाहिए ।१८। महाराज ! इसके पश्चात् जो भोजक अव्यंग धारण करता है, वह सभी प्राणियों के लिए अगम्य उस सूर्य लोक की प्राप्ति करता है जो सभी दुष्टों एवं समस्त पापों का नाशक हैं। अतः शुद्ध भावना से निरन्तर सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।१९-२०। गंध तथा लेपन के न रहने पर भी शुद्ध भाव से की गई पूजा दूषित नहीं कही जा सकती है। क्योंकि यह बताया जाता है कि भाव की पवित्रता, वस्त्रपूत जल का पान, दृष्टिपूत (पवित्र दृष्टि) (आँख से भली भाँति देखकर) पैर रखना (चलना) और सत्य पूत वाणी बोलना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। सूर्य का तन्मय ध्यान करते हुए शांत एवं सौर धर्म परायण होना चाहिए क्योंकि सभी आश्रम भास्कर के अंग से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा निश्चित समझा जाता है भोजकों को 'अष्टव्रत' धारण करना चाहिए, इसलिये कि उस अनुपम धर्म को

सर्वव्रतानां परमं धर्मालयमनुत्तमम् । सौरभक्ते सदा क्षान्तिरहिंसा सर्वदा शमः ॥२४
सन्तोषः सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं तथाष्टमम् । यथासम्भवपूजाभिः कर्मणा मनसा गिरा ॥२५
सौरभक्तिः सदा कार्या भोजकेषु विशेषतः । स्वदेहान्निर्विशेषं हि भोजकान्पालयेद्बुधः ॥२६
भयदारिद्र्यरोगेभ्यस्तेषां कुर्यात्प्रियाणि वै । सूर्यस्य परिपूर्णस्य किं नाम क्रियते नरैः ॥२७
यत्कृतं भोजकानां वै तत्कृतं स्याद्रवेर्नृप । सुदूरमपि गन्तव्यं मगानां यत्र वै गणः ॥२८
स च प्रयत्नाद्द्रष्टव्यस्तत्र सन्निहितो रविः । भोजकस्य तु भक्तस्य सूर्यपूजारतस्य च ॥२९
आज्ञां कृत्वा यथान्यायमश्वमेधफलं लभेत् । देवाश्रमगतो भक्त्या देवार्चां पूजयेन्नृप ॥३०
स्वागतासनपाद्यार्घ्यमधुपर्काद्यनुक्रमात् । भोजयित्वा यथान्यायं सूर्यलोके महीयते ॥३१
प्रतिश्रयप्रदानेन राजा भवति भारत । दत्त्वा स्थानं तथा शौचं वारुणं लोकमाप्नुयात् ॥३२
श्वेतबिन्दुपरीताङ्गं ध्यानश्रमविकर्शितम् । संवीज्य तालवृन्तेन वायुलोके महीयते ॥३३
क्षुत्पिपासातुरं श्रान्तं मलिनं रोगिणं तथा । पालयित्वा यथा शक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥३४
पतिताशस्तसङ्कीर्णचण्डालादीनां पक्षिणाम् । कारुण्यात्सर्वभूतानां देयमन्नं स्वशक्तितः ॥३५
अत्यल्पमपि कारुण्याद्दत्तं भवति चाक्षयम् । तस्मात्सर्वेषु भूतेषु देव कारुण्यमुच्यते ॥३६

स्वयं सूर्य ने ही बताया है ।२१-२३। यह (व्रत) सभी व्रतों से उत्तम, श्रेष्ठ तथा धर्मालय बताया गया है । सूर्य भक्त को सदैव क्षमता, अहिंसा, शान्ति, संतोष, सत्य, असत्य, व्रह्मचर्य आदि इन्हें अपनाते हुए मनसा, वाचा, तथा कर्मणा यथा शक्ति सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।२४-२५। सदैव सौर भक्ति करनी चाहिए, विशेषकर बुद्धिमानों को चाहिए कि अपनी शरीर के समान ही भोजकों का पालन पोषण करे ।२६। भयभीत, दरिद्र, एवं रोगी होते हुए भी उनके प्रिय कार्यों को सम्पन्न करते रहे क्योंकि सूर्य तो सभी भाँति परिपूर्ण हैं और उनके लिए मनुष्य कर ही क्या सकता है ।२७। नृप ! भोजक के लिए जो कुछ किया जाय उसे सूर्य के लिए ही किया गया समझना चाहिए यदि मगों का गण अत्यन्त दूरी पर रहता है तो भी वहाँ जाना चाहिए ।२८। प्रयत्न पूर्वक उनके दर्शन करना चाहिए क्योंकि वहाँ सूर्य सदैव सन्निहित रहते हैं ऐसा बताया गया है अतः भक्त एवं सूर्य पूजा में निमग्न भोजक की आज्ञा का पालन करने से अश्वमेध के फल प्राप्त होते हैं । इसलिए नृप देवता के आश्रम में जाकर भक्ति पूर्वक देव-पूजा करनी चाहिए ।२९-३०। (भोजन के लिए) सुस्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, और मधुपर्क आदि क्रमशः प्रदान करते हुए भोजन करायें तो उसकी सूर्य लोक में प्रतिष्ठा होती है ।३१। भारत ! उन्हें आश्रय प्रदान करने वाला राजा होता है, तथा उसी भाँति पवित्र स्थान प्रदान करने से वरुण लोक की प्राप्ति भी होती है श्रम पूर्वक ध्यान करने पर शरीर के समस्त अंगों से जल (पसीने) की बूँद झरने लगती है, उस समय ताड़ के व्यंजन (पंखे) झलने से वायुलोक का सम्मान प्राप्त होता है ।३२-३३। भूख-प्यास से आकुल, शांत, दीन-हीन, एवं रोगी का यथाशक्ति पालन करने से सभी मनोरथ सफल होते हैं। पतित, अधम, धन-हीन, एवं चांडाल आदि या पक्षी, कोई भी हो, करुण भाव से सभी प्राणियों को शक्त्यनुसार अन्न प्रदान करना चाहिए।३४-३५। कारुणिक होकर थोड़ा भी प्रदान करना अक्षय होता है, इसलिए देव ! सभी प्राणियों के लिए अपने में दया का संचार करना आवश्यक होता है।३६। उसके अभाव में सर्वथा तृण, भूमि, अन्न,

अभावे तृणभूम्यन्नं पत्रं धनफलानि च । दत्त्वाऽऽगताय प्रणतः स्वर्गं याति प्रियेण वा ॥३७
न हीदृक्स्वर्गयानाय यथा लोके प्रियं वचः । इहामुत्र सुखं तेषां वाग्येषां मधुरा भवेत् ॥३८
अमृतस्यन्दिनीं वाचं चन्दनस्पर्शशीतलाम् । धर्माविरोधिनीमुक्त्वा सुखमक्षय्यमाप्नुयात् ॥३९
अलं दानेन राजेंद्र पूजयाध्यापनेन वा । इदंस्वर्गस्य सोपानमचलं यत्प्रियं वचः ॥४०
पूजाभिभाषणं दृष्टिः प्रत्येकं स्वर्गहेतवः । सम्पृच्छेदागतं भक्त्या कुशलं प्रश्नमादरात् ॥४१
गमने तस्य वक्तव्य पन्थानः सन्तु ते शिवाः । सुखं भवतु ते नित्यं सर्वकार्यकरं भृशम् ॥४२
आशीर्वादमिदं वाक्यं सर्वकालेषु सर्वदा । नमस्कारादिवाक्येषु स्वस्ति मङ्गलवादने ॥४३
शिवं भवतु ते नित्यं त ब्रूयात्सर्वकर्मसु । एवमादि च वाचारमनुष्ठाय सदाश्रमी ॥४४
अशेषपापनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते । सूर्यभक्ते तु या भक्तिः सद्भक्तैः क्रियते नरैः ॥
सूर्ये भक्तिसमा नित्यं भक्ते भक्तिरनुष्ठिता ॥४५
आक्रुष्टे ताडिते वापि यो नाक्रोशेन्न ताडयेत् । वाक्यादधिकृतः स्वस्थः स दुःखात्परिमुच्यते ॥४६
सर्वेषामेव तीर्थानां क्षान्तिः परमपूजिता । तस्मात्पूर्वं प्रयत्नेन क्षान्तिः कार्या क्रियासु त्रै ॥४७
ज्ञानयोगतपो यस्य यज्ञादानानि सत्क्रिया । क्रोधनस्य वृथा यस्मात्तस्मात्क्रोधं विवर्जयेत् ॥४८

पत्ते, धन, और फलों को प्रदान करना चाहिए क्योंकि असहाय के लिए नम्रता पूर्वक इन वस्तुओं के प्रदान करने एवं मधुर बोलने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।३७। लोक में स्वर्ग यात्रा के लिए कोई ऐसी दूसरी सवारी नहीं है जैसी कि मधुरवाणी । क्योंकि जिसकी वाणी मधुर होती है, उन्हें लोक परलोक के सभी स्थानों में सुख प्राप्त होता है ।३८। अमृत की बूँद झरने वाली एवं चन्दन स्पर्श की भाँति शीतल करने वाली उस धर्मानुकूल वाणी बोलने से अक्षय सुख की प्राप्ति होती है ।३९। अतः राजेन्द्र ! दान, पूजा एवं अध्यापन करना व्यर्थ है क्योंकि स्वर्ग गमन के लिए प्रिय वाणी बोलना ही निश्चल सोपान (सीढ़ी) है । पूजा में मधुर बोलना और मनमोहन देखना ये प्रत्येक स्वर्ग के हेतु बताये गये हैं अपने यहाँ (अतिथि आदि किसी के) आगमन पर भक्ति पूर्वक सादर कुशल प्रश्न और (उसके) जाते समय तुम्हारा मार्ग कल्याण प्रद हो तुम्हें नित्य सुखानुभव होता रहे एवं सभी कार्यों की भली भाँति सफलता हो इस भाँति कहे इसी प्रकार सभी समय नमस्कार आदि करने पर आशीर्वाद देना चाहिए । मांगलिक कार्य में 'स्वस्ति' तथा सभी कार्यों में नित्य कल्याण प्राप्ति होती रहे, इस प्रकार की बातें अनुष्ठान करने वाले के लिए आश्रम वालों को सदैव कहनी चाहिए ।४०-४४। इससे वह निखिल पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक में सम्मानित होता है । सद्भक्त पुरुषों को चाहिए कि सूर्य-भक्त की भक्ति करे क्योंकि भक्त में भक्ति भावना करने से वह सूर्य में भक्ति करने के समान माना जाता है ।४५। जो निन्दा करने पर निन्दा, और ताडना करने (मारने) पर मारता नहीं, है किन्तु (मधुर) वाणी द्वारा अपनी निर्भीकता प्रकट करता है, उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं हो सकता है ।४६। सभी तीर्थों की क्षमता आदरणीय वस्तु है, इसलिए सभी क्रियाओं में क्षमता के लिए प्रयत्न शील रहना चाहिए । ज्ञान योग रूपी तप एवं यज्ञदान रूप सत्क्रिया करते हुए यदि वह क्रुद्ध होता है तो उसके ये सभी व्यर्थ हो जाते हैं अतः क्रोध का त्याग करना अत्यन्त आवश्यक होता है । कठोर वाणी, मर्मस्थल, अस्थि, प्राण एवं हृदय में दाह उत्पन्न करती है,

मर्मास्थिप्राणहृदयं निर्दहेदप्रियं वचः । न वक्तो ह्यप्रियं तस्माद्भोजकेषु विशेषतः ॥४९
क्षमा दानं त्विषः सत्यं क्षमाहिंसार्कसम्भवाः । न शक्या विस्तराद्वक्तुमपि वर्षशतैरपि ॥५०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे भोजकभोजनानुष्ठानवर्णनं
नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७१।

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

पुनः शृणु महाराज धर्ममादित्यसम्मतम् । सौरं प्रियं सदा सौरं पवित्रं पापनाशनम् ॥१
क्वचिद्गच्छन्यदा पश्येत्सूर्याचार्सम्प्रपूजनम् । यत्र पूजा ततो गच्छन्स सूर्यो नात्र संशयः ॥२
स्नाननैवेद्यवस्त्रैश्च नानालङ्कारभूषणैः । यथाविभवमाश्रित्य नमस्कारादिसंस्तवैः ॥३
दृष्ट्वायतनमाक्रम्य नमस्कृत्य रविं व्रजेत् । क्वचित्पथि नदीं शैलं गच्छमानं च भोजकम् ॥४
उपश्रुत्यावानिं गत्वा भोजकं पूजयेद्बुधः । रथाश्वगजयानेभ्यो ह्यवतीर्य मगान्नृप ॥
मगानां भोजनं भक्त्या शक्त्या दानं प्रकल्पयेत् ॥५
दशपूर्वान्दश परानात्मना सह भारत । समादाय व्रजेत्स्थानं रवेरमिततेजसः ॥६

इसलिए कठोर वाणी कभी न बोलना चाहिए विशेष कर भोजकों के सम्मान में । क्षमा, दान, कान्ति, सत्य एवं अहिंसा ये सभी सूर्य लोक से ही उत्पन्न हैं । बस ! यथाशक्ति इसकी व्याख्या कर चुका और इसका वर्णन मैं सैकड़ों वर्षों में भी नहीं कर सकता ।४७-५०

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में भोजक भोजनानुष्ठान वर्णन नामक एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७१।

अध्याय १७२

सौरधर्म वर्णन

सुमन्तु बोले—महाराज ! सूर्य सम्मत, सदैव सूर्य भक्तप्रिय, सौर, पवित्र, एवं पापनाशक उस धर्म को पुनः सुनो । यात्रा करते हुए कहीं सूर्य की पूजा होती हुई दिखाई पड़े तो वहाँ अवश्य जाना चाहिए क्योंकि वह सूर्य रूप है इसमें संदेह नहीं ।१-२। वहाँ मन्दिर में जाकर स्नान, नैवेद्य, वस्त्र, भाँति-भाँति के सौन्दर्यपूर्ण आभूषण, अपनी शक्ति के अनुसार इन सामग्रियों द्वारा उनकी पूजा, नमस्कार एवं स्तुति पाठ पूर्वक नमस्कार करके ही अन्यत्र आये । कहीं मार्ग में नदी, अथवा पर्वत की यात्रा करते हुए किसी भोजक को सुनकर बुद्धिमान् को चाहिए कि वहाँ जाकर दण्डवत् प्रणाम पूर्वक उसकी पूजा करें । नृप ! रथ, अश्व अथवा हाथी पर बैठकर मग प्रदेशों में जाकर भक्ति पूर्वक शक्त्यनुसार वहाँ दान करना चाहिए । भारत ! ऐसा करने से दश पूर्व और दश पर की पीढ़ियों के साथ उन्हें अमित तेजवाले सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।३-६। दैवपर्व, उत्सव, श्राद्ध अथवा किसी भी पुण्य दिन में विधानपूर्वक भानु

दैवपर्वोत्सवे श्राद्धे पुण्येषु दिवसेषु च । भानुं सम्पूज्य विधिवद्भोजकान्भोजयेत्ततः ॥७
पितरः सर्वदेवानां सूर्यमाश्रित्य संस्थिताः । प्रीते सूर्ये तु ते सर्वे प्रीताः स्युर्नात्र संशयः ॥८
यदा च श्रद्धया युक्तं प्रसक्तं रविपूजनम् । भोजयेद्भोजकं भक्त्या श्राद्धेषु विधिवन्नृप ॥९
भोजकस्य महाराज दिवसेनापि यत्फलम् । न तच्छक्यमिदं तेन प्राप्तुं वर्षशतैरपि ॥१०
यः पश्यति प्रसन्नात्मा यो न द्वेष्टि न कांक्षति । शब्दादीनां तु सम्भोगं स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥११
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः सूर्यभक्त्या समन्वितः । पाखण्डयोगमुक्तश्च स वै भोजक उच्यते ॥१२
सूर्यधर्माद्भवेज्ज्ञानं ज्ञानाद्वैराग्यसम्भवः । ज्ञानवैराग्ययुक्तस्य सूर्ययोगः प्रवर्तते ॥१३
सूर्ययोगाच्च सर्वज्ञः परिपूर्णः सुनिर्वृतः । आत्मन्यवस्थितः शुद्धः सूर्यवद्दिवि मोदते ॥१४
सर्वेषामेव भूतानामुत्तमः पुरुषः स्मृतः । पुरुषेभ्यो द्विजः श्रेष्ठो द्विजेभ्यो ग्रन्थपारगः ॥१५
ग्रन्थिभ्यो वेदविद्वांसस्तेभ्यस्तत्त्वार्थचिन्तकाः । अर्थविद्भ्यश्च ज्ञानार्थप्रतिबुद्धो विशिष्यते ॥१६
ज्ञानार्थकोटिकोटिभ्यो वरिष्ठा योगिनो मताः । योगिनां कोटिकोटिभ्यो भोजकश्चोत्तमो भवेत् ॥१७
योगज्ञा योगनिष्ठाश्च पितरो योगसम्भवाः । भोजिते भोजके सर्वे प्रीताः स्युस्ते न संशयः ॥१८
सर्वज्ञानतपोदानैः कृतैर्दत्तैश्च यत्फलम् । तत्फलं लभते सर्वं विधिवद्भोज्य भोजकम् ॥१९
यश्च द्रव्यकलापात्मा दक्षिणा हविर्ऋत्विजः । ऋग्यजुः सामयोगैश्च देवयज्ञः प्रकीर्तितः ॥२०
ब्रह्मचर्यं तपो मौनं क्षान्तिराहारलाघवम् । इत्येतत्तपसां रूपं सुधीरं पञ्चलक्षणम् ॥२१

की पूजा करके पश्चात् भोजकों को भोजन कराये । क्योंकि पितृगण तथा समस्त देवगण सूर्य के ही आश्रित रहते हैं, अतः सूर्य के प्रसन्न होने पर वे सभी प्रसन्न होते हैं इसमें संदेह नहीं ।७-८। नृप ! श्रद्धालु होकर सूर्य पूजन में अनुरक्त भोजक को श्राद्ध में भक्ति पूर्वक भोजन कराये तो महाराज ! उस भोजक के भोजन करने से उसे उस दिन जितने फल की प्राप्ति होती है, वे फल अन्य द्वारा उसे सैकड़ों वर्षों में भी नहीं प्राप्त हो सकते ।९-१०। जो प्रसन्न रहकर देखता सुनता है, न द्वेष करता है और न विषयों की अभिलाषा ही करता है वही जितेन्द्रिय है । ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न होकर सूर्य भक्ति करने वाला यदि पाखंडी न हो तो उसे भोजक कहा जाता है ।११-१२। सूर्य धर्मानुष्ठान करने से ज्ञान उत्पन्न होता है, ज्ञान से वैराग्य और ज्ञान वैराग्य से युक्त होने पर वह सूर्य योग (संयुक्त) कहा जाता है । पुनः सूर्य योग से सर्वज्ञ, परिपूर्ण, भलीभाँति निर्वृत एवं आत्मा में अवस्थित होकर वह शुद्ध सूर्य की भाँति स्वर्ग में आनन्द का उपभोग करता है ।१३-१४। सभी प्राणियों में पुरुष उत्तम बताये गये हैं, पुरुषों में द्विज श्रेष्ठ, द्विजों में शास्त्रनिष्णात, शास्त्रियों में वेदविद् उनसे तत्त्व की चिंता करने वाले और उनसे उद्बोधक ज्ञानी विशिष्ट होते हैं । करोड़ों ज्ञानियों से योगी, और करोड़ों योगियों से भोजक उत्तम होते हैं । ऐसा कहा गया है ।१५-१७। योग-ज्ञानी, तथा योगनिष्ठ पितर योग से ही उत्पन्न होते हैं और भोजक के भोजन कराने पर प्रसन्न होते हैं इसमें संदेह नहीं ।१८। समस्त ज्ञान, एवं तप करने अथवा देने से जिस फल की प्राप्ति होती है,वह समस्त फल विधिवत् भोजक को भोजन कराने से प्राप्त होता है ।१९। जिसमें यज्ञ, अनेक उपायों द्वारा द्रव्य, व्यय, दक्षिणा, हवि, ऋत्विक, ऋग, यजु एवं सामवेदों के संबध स्थापित हों वह देवयज्ञ कहा जाता है। ब्रह्मचर्य, तप, मौन, शान्ति, अल्पाहार, तप का यही धीर गम्भीर पाँच लक्षण बताया गया

यच्च द्विष्टं विशिष्टं च न्यायप्राप्तं च यद्भवेत् । तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ।।२२
विवर्धनीं सहस्राणां सर्वसस्यप्ररोहिणीम् । दद्याद्भूमिं जलोपेतां भूमिदानं तदुच्यते ।।२३
एकच्छत्रां महींकृत्वा द्विजेभ्यः प्रतिपादयेत् । सम्पूर्णां पर्वतारण्यैर्भूमिदानं तदुच्यते ।।२४
कन्यामलङ्कृतां दद्यादधनाय नराधिप । द्विजाय वेदविदुषे कन्यादानं तदुच्यते ।।२५
सर्वदोषविनिर्मुक्तां कुलयोग्यामलङ्कृताम् । मध्यमोत्तमवस्त्राणां यो दद्यादहतानि च ।।२६
एतत्समासतो ज्ञेयं वस्त्रदानस्य लक्षणम् । ब्रह्मविष्णुसमाधिक्यकान्तिशीलपरायणः ।।
अहोरात्रं न भुञ्जीत ह्युपवासस्य लक्षणम् ।।२७
चत्वारिंशत्समायुक्तं पिण्डानां हि शतद्वयम् । मासे ह्यद्याद्यथाकाममिदं चान्द्रायणं स्मृतम् ।।२८
ऋषिभिः सर्वशास्त्रज्ञैस्तपोनिष्ठैर्जितेन्द्रियैः । देवैश्च सेवितं तोयं क्षितौ तत्तीर्थमुच्यते ।।२९
सूर्यावान्तरस्थानानि पुण्यक्षेत्राणि निर्दिशेत् । मृतानां तेषु सूर्यत्वं सौरक्षेत्रेषु देहिनाम् ।।३०
दानान्यावसथं कुर्यादुद्यानं देवतागृहम् । तीर्थेष्वेतानि यः कुर्यात्सोऽक्षयं लभते फलम् ।।३१
क्षान्तिः स्पृहा तथा सत्यं दानं शीलं तपः श्रुतम् । एतदष्टाङ्गमुद्दिष्टं परं पात्रस्य लक्षणम् ।।३२
यज्ञोपवासदानानि तपस्तीर्थफलानि च । सम्पूर्णं लभते भक्त्या भोजयित्वा तु भोजकान् ।।३३
सूरे भक्तिः क्षमा सत्यं दशेन्द्रियविनिग्रहः । सुखितेषु च मैत्री च सूर्यधर्मस्य लक्षणम् ।।३४
सूर्यभक्तं द्विजं भक्त्या यः श्राद्धेषु च भोजयेत् । कुलसप्तकमुद्धृत्य सूर्यलोके महीयते ।।३५

है ।२०-२१। जिसके लिए जो समय निश्चित हो, जिसका जो विशिष्ट ज्ञाता हो और जो समय न्याय प्राप्त हो, उसी समय उसी विद्वान् को वही वस्तु प्रदान करनी चाहिए, यही दान का लक्षण है । सहस्रों को भोजन द्वारा बढ़ाने वाली, सभी प्रकार अन्न पैदा करने वाली और जलयुक्त भूमि का दान करना 'भूमिदान' कहलाता है ।२२-२३। तथा पर्वत, जंगल आदि समस्त पृथ्वी को एक छत्र करके द्विजों को प्रदान करना भूमि दान बताया गया है । नराधिप ! आभूषणों एवं वस्त्रों से अलंकृत हुई कन्या को वेदविद्वान् किसी निर्धन ब्राह्मण को देना चाहिए क्योंकि इसे ही कन्यादान बताया गया है । कन्या भी, सभी दोषों से मुक्त अपने कुल के योग्य और अलंकृत होनी चाहिए । किसी भाँति का मध्यम एवं उत्तम वस्त्र नवीन होने से दान के योग्य होता है, यही दान वस्त्र दान कहा गया है । दिन-रात भोजन न करने पर भी ब्रह्मा, तथा विष्णु से भी अधिक कांति पूर्ण रहे तो वही उपवास का लक्षण बताया गया है ।२४-२७। दो सौ चालीस पिंड दान मास में इच्छानुसार भक्षण करे, इसे चान्द्रायण व्रत कहते हैं । समस्त शास्त्र ज्ञाता, तपोनिष्ठ, जितेन्द्रिय, इस प्रकार के ऋषियों और देवों से संसेवित पृथिवी के जल को तीर्थ बताया गया है ।२८-२९। सूर्य के अवान्तर स्थान को पुण्य क्षेत्र बताया गया है । उस सौर क्षेत्र में मरण प्राप्त होने से उसे सूर्य सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है ।३०। गृह बनाकर उसमें देव प्रतिष्ठा करके बगीचे समेत उस तीर्थ में जो दान देता है, उसमें अक्षय फल की प्राप्ति होती है ।३१। शान्ति, स्पृष्टा (इच्छा), सत्य, दान, शील, तप, अध्ययन यही अष्टांग युक्त उत्तम पात्र होने का लक्षण है । यज्ञ, उपवास, दान, तप तथा तीर्थ के फल ये सभी फल भक्ति पूर्वक भोजक को भोजन कराने से प्राप्त होते हैं ।३२-३३। सूर्य भक्ति, क्षमा, सत्य, दशों इन्द्रियों का संयम, सुखी लोगों में मित्रता, यही सूर्य धर्म का लक्षण है । जो श्राद्धों भक्ति पूर्वक सूर्य भक्त को भोजन

बहुनात्र किमुक्तेन सूर्यभक्तं तु भोजयेत् । सूर्यभक्तेन यद्भुक्तं भानुनाभ्याश्रयं नृप ॥३६
न वेदविदुषां कोटचा लभ्यते चेह तत्फलम् । तत्फलं लभते राजन्भोजं भोज्य विधानतः ॥३७
तस्माच्छ्राद्धे विशेषेण पुण्येषु दिवसेषु च । सूर्यमुद्दिश्य विप्रेन्द्र भोज लभोजयेन्नृप ॥३८
असंयतः संयतो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यश्चासौ रविभक्तः स्यात्सूर्यवत्पूज्य एव हि ॥३९
संसर्गादपि वा लोभाद्भोजकं यस्तु भोजयेत् । सोऽपि यां गतिमाप्नोति न तां यज्ञशतैरपि ॥४०
तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च रक्षणीयश्च सर्वदा । भोजकः कुरुशार्दूल सौरेण गतिमिच्छता ॥४१
नाममात्रप्रयत्नोऽपि यदि स्याद्भोजको रवेः । सूर्यवत्स हि द्रष्टव्यः पूजनीयश्च भारत ॥४२
गृहे श्राद्धस्य यत्पुण्यमरण्ये तच्छताधिकम् । सौराश्रमेषु विज्ञेयं तत्पुण्यमयुताधिकम् ॥४३
दत्त्वा तु भोजके सौम्यं ह्यासनं सपरिच्छदम् । धातुदन्तमयं चापि राजा भवति भूतले ॥४४
विमले वाससी दत्त्वा भोजकाय महीपते । उद्धृत्य शतसाहस्रं सूर्यलोके महीयते ॥४५
दत्त्वा तु लोमशां राजन्भोजकाय शुभां बृहत् । रोम्णि रोम्णि सुवर्णस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ॥४६
शङ्खं ददाति यो भक्त्या तथा दिव्ये च पादुके । सूर्यलोकमवाप्नोति तेजसा रविसन्निभः ॥४७
लिखापयति यो भक्त्या पुराणेन तु पुस्तकम् । युगकोटिशतं दिव्यं सूर्यलोके महीयते ॥४८
भवेदिहागतः श्रीमान्सुखाढ्यो वेदपारगः । यः करोति गृहं भानोस्तत्स्थानं चोत्तमं भवेत् ॥४९

कराते हैं, वे अपने सात पीढ़ी के परिवार समेत सूर्य लोक में सम्मान प्राप्त करते हैं ।३४-३५। नृप ! अधिक क्या कहा जाय सूर्य भक्त जो कुछ भोजन करता है, वही सूर्य का आश्रय होता है ।३६। राजन् ! करोड़ों पूज्य विद्वानों से उस फल की प्राप्ति नहीं होती है जिसकी प्राप्ति विधान पूर्वक भोजक को भोजन कराने से होती है ।३७। दिप्रेन्द्र ! इसलिए श्राद्धों पर विशेष पुण्य दिनों में सूर्य के उद्देश्य से भोजक को भोजन कराना चाहिए ।३८। वह संयमी असंयमी किसी भी दशा में क्यों न हो, सूर्य भक्त होने से वह सूर्य के समान ही पूज्य है ।३९। संसर्ग या लोभवश जो भोजक को भोजन कराता है, उसे जिस गति की प्राप्ति होती है, वह उसे सैकड़ों यज्ञों द्वारा दुर्लभ है । कुरुशार्दूल ! इस लिए उसके लिए मान्य, पूज्य, एवं सदैव रक्षणीय, भोजक हैं, जो सूर्य से अपने उत्तम गति प्राप्त करने का इच्छुक है । भारत ! नाम मात्र का प्रयत्न करने वाला भी यदि भोजक है तो वह सूर्य के समान आदरणीय एवं पूज्य हैं । घर में श्राद्ध करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उससे अधिक अरण्य में और सौर के आश्रमों में भक्ति करने से वे ही पुण्य दश सहस्र गुने अधिक हो जाता है । भोजक के लिए धातु या गजदन्त की शय्या सभी साधनों समेत देने से वह इस भूतल में राजा होता है ।४०-४४। महीपते ! उत्तम युगल वस्त्र भोजक को प्रदान करने से सौ सहस्र कुल के उद्धार पूर्वक वह सूर्य लोक की प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ।४५। राजन् ! भोजक के लिए लम्बे चौड़े ऊनी (कम्बल आदि) वस्त्र प्रदान करने से उसके प्रत्येक लोम से सुवर्ण दान के फल प्राप्त होते हैं ।४६। जो उन्हें भक्ति पूर्वक शंख, तथा दिव्य पादुका प्रदान करता है, सूर्य के समान तेज पूर्ण होकर वह सूर्य लोक प्राप्त करता है ।४७। जो भक्तिपूर्वक पुराणों द्वारा पुस्तक लेखन कराता है, सौ करोड़ युग पर्यंत वह सूर्य लोक में सम्मानित होता है ।४८। जो सूर्य के लिए उत्तम स्थान (गृह) की कल्पना करता है, वह यहाँ आकर श्रीमान् सुखी और वेद निष्णात विद्वान् होता है । भोजक सूर्य है और सूर्य ही भोजक हैं,

तत्सूर्यो भोजकः सोऽत्र भोजकः सूर्य एव हि । तेन भोजकविप्रेषु दानमक्षय्यमित्यपि ।।५०
यद्यद्यस्योपयुज्येत देयं तत्तस्य यत्नतः । उपयोगपरो नित्यं सूर्यस्तदुभयोरपि ।।५१
व्याख्याने सौरधर्मस्य कृत्वा आमलकं महत् । शोभितं पुष्पपत्राद्यैर्न्यसेत्तत्रासने सुराः ।।५२
शोभित माल्यगन्धैस्तु सूर्यस्य साधन महत् । पुरस्तात्तस्य संस्थाप्य आचार्यं पूजयेत्सदा ।।
सूर्यस्य सौरधर्मे च तुल्यमेतद्द्वयं वचः ।।५३
य एवं न्यायतो वक्ति सौरधर्मं शृणोति च । आयुर्विद्यां यशः कीर्तिमुपलभ्य रविं नयेत् ।।
वदन्त्यन्ये पिबन्त्यन्ये सर्वे ते फलभागिनः ।।५४
तस्मादेवं विधो धर्मो वाचकश्च विदुर्बुधाः । तस्यान्ते पूजयेद्भक्त्या य इच्छेद्विपुलं यशः ।।५५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे
द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७२।

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

शतानीक उवाच

पुनर्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र सौरं धर्ममनुत्तमम् । समासात्कथितं ब्रह्मन्विस्तरेण प्रकीर्तय ।।१

इसलिए भोजक ब्राह्मण में दिया गया दान अक्षय होता है ।४९-५०। जिस-जिस की आवश्यकता होती है, उसे अवश्य देना चाहिए, क्योंकि सूर्य दोनों ओर नित्य सहायक रहते हैं । सौर धर्म की व्याख्या होते समय पुष्प एवं पत्रों से सुशोभित तथा सौन्दर्य पूर्व दर्पण उस आसन पर रखना चाहिए ।५१-५२। सूर्य के महान साधन रूप आचार्य को उनके सामने आसनासीन कर गंधमालाओं द्वारा उन्हें सुशोभित करते हुए सदैव उनकी पूजा करे। सूर्य के समान सौर धर्म में भी दोनों बातों का समान रूप से पालन करना चाहिए ।५३। इस प्रकार जो न्यायपूर्वक वाणी-व्यवहार से सौर धर्म का श्रवण करता है, उसे आयु, विद्या, यश, तथा (कीर्ति की प्राप्ति पूर्वक सूर्य की साक्षात् प्राप्ति होती है । जो केवल सत्य का ही पालन करते हैं, अथवा सौर धर्म का अमृत पान ही करते हैं, उन सभी को वे फल प्राप्त होते है । अतः इस प्रकार के धर्म वाचकों द्वारा बुद्धिमानों को (ये सभी बातें) जान लेना परमावश्यक होता है । विपुल यश की कामना वाले को चाहिए कि उनकी पूजा के अन्त में आचार्य वाचक, की पूजा अवश्य करें ।५४-५५

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन नामक
एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७२।

अध्याय १७३

सौरधर्म वर्णन

शतानीक बोले—विप्रेन्द्र ! आप पुनः उस सौर धर्म का वर्णन कीजिए, क्योंकि आप ने उसकी व्याख्या संक्षेप में की है, अतः मैं अब उसे विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ ।१

सुमन्तुरुवाच

साधु साधु महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि भारत । त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन्सौरः पार्थिवसत्तम ॥२
कीर्तयाम्यद्य तं पुण्यं संवादं पापनाशनम् । गरुडारुणयो राजन्पुरावृत्तं नराधिप ॥३
सुखासीनं पुरा राजन्नरुणं सूर्यसारथिम् । उपगम्य महाबाहो गरुडो वाक्यमब्रवीत् ॥४
धर्माणामुत्तमं धर्मं सर्वपापप्रणाशनम् । सौरधर्मं खगश्रेष्ठ ब्रूहि मे कृत्स्नशोऽनघ ॥५

अरुण उवाच

साधु वत्स महात्मासि धन्यस्त्वं पापवर्जितः । श्रोतुकामोऽसि यत्पुत्र सौरधर्ममनुत्तमम् ॥६
शृणु त्वं कीर्तयाम्येष सुखोपायं महत्फलम् । परमं सर्वधर्माणां सौरधर्ममनुत्तमम् ॥७
अज्ञानार्णवमग्नानां सर्वेषां प्राणिनामयम् । सौरधर्मो ह्ययं श्रीमान्परतीरप्रदो यतः ॥८
ये स्मरन्ति रविं भक्त्या कीर्तयन्ति च ये खग । पूजयन्ति च ये नित्यं ते गताः परमं पदम् ॥९
आत्मद्रोहः कृतस्तेन जातेनेह खगाधिप । नार्चितो येन देवेशः सहस्रकिरणो रविः ॥१०
सुचिरं सम्भ्रमत्यस्मिन्दुःखदे च भवार्णवे । जराभूतमहाग्राहे तृष्णावेलाकुलाम्परे ॥११
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य येऽर्चयन्ति दिवाकरम् । तेषां हि सफलं जन्म कृतार्थास्ते नरोत्तमाः ॥१२
सूर्यभक्तिपरा ये च ये च तद्गतमानसाः । ये स्मरन्ति सदा सूर्यं न ते दुःखस्य भागिनः ॥१३

सुमन्तु बोले—महाबाहो ! साधु, साधु ! भारत ! आपने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है, अतः पार्थिव सत्तम ! इस लोक में तुम्हारे समान कोई सूर्य भक्त नहीं है ।२। राजन् ! प्राचीन काल में गरुड़ और अरुण के किये गये पुण्य एवं पाप नाशक संवाद को मैं बता रहा हूँ । ! नराधिप ! पहले समय में एक बार सूर्य के सारथी अरुण सुख पूर्वक बैठे हुए थे, महाबाहो ! वहाँ आकर गरुड़ ने यह कहा हे खगश्रेष्ठ, अनघ ! सभी धर्मों में उत्तम तथा समस्त पाप के नाश करने वाले उस सौर धर्म का विस्तार पूर्वक वर्णन (मुझसे) कीजिए ।३-५

अरुण बोले—वत्स, साधु (बहुत उत्तम) तू महात्मा है, धन्य है, तथा पाप मुक्त है । क्योंकि पुत्र ! उत्तम सौर धर्म के सुनने की तुम्हारी इच्छा है ।६। यह (सौर धर्म) सुख साध्य, एवं महान् फल दायक है अतः सभी धर्मों में परमोत्तम इस सौर धर्म को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! अज्ञान रूपी समुद्रों में डूबने वाले सभी प्राणियों को उस पार पहुँचाने वाला यही श्रीमान् सौर धर्म ही है ।७-८। खग ! भक्ति पूर्वक जो नित्य सूर्य का ध्यान पूजा एवं कीर्तन करते हैं, उन्हें परम पद की प्राप्ति होती है ।९। खगाधिप ! जिसने देवनायक, तथा सहस्र किरण वाले सूर्य का अर्चन नहीं किया, इस लोक में जन्म ग्रहण कर उसने मानों अपने आत्मा का हनन किया है ।१०। जरा (बुढ़ाई) रूप महाग्राह (मगर), तृष्णा एवं आकुलता रूप तट वाले इस दुःख दायी संसार सागर में चिरकाल से डूबते उतराते हुए इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर जो सूर्य की पूजा करते हैं, उन्हीं का जन्म सफल माना जाता है, क्योंकि वे ही श्रेष्ठ पुरुष कृतार्थ होते हैं ।११-१२। सूर्य की भक्ति में निमग्न होकर जो सदैव सूर्य का ध्यान एवं पूजा करते हैं वे कभी भी दुःख का अनुभव नहीं करते हैं ।१३। अनेक भाँति के आभूषणों से अलंकृत जो भाँति-भाँति की मनमोहक रूप रंग

विविधानि मनोज्ञानि विविधाभरणाः स्त्रियः । धनं वा दृष्टपर्यन्तं सूर्यपूजाविधेः फलम् ॥१४
ये वाञ्छन्ति महाभोगान्राज्यं वा त्रिदशालये । सौभाग्यं कान्तिनतुलां भोगं त्यागं यशः श्रियम् ॥१५
सौन्दर्यं जगतः ख्यातिः कीर्तिर्धर्मादयः स्मृताः । फलान्येतानि वै पुत्र सूर्यभक्तिविधेर्बुध ॥१६
तस्मात्सम्पूजयेत्सूर्यं सर्वदेवगणार्चितम् । दुर्लभा भास्करे भक्तिर्दुर्लभं च तदर्चनम् ॥१७
दानं च दुर्लभं तस्मै तद्धोमश्च सुदुर्लभः । दुर्लभं तस्य विज्ञानं तदभ्यासोऽपि दुर्लभः ॥१८
सुदुर्लभतरं ज्ञेयं तदाराधनमुत्तमम् । लाभस्तेषां मनुष्याणां ये रविं शरणं गताः ॥१९
येषामिहेश्वरे भानौ नित्यं सूर्ये गतं मनः । नमस्कारादिसंयुक्तं रविरित्यक्षरद्वयम् ॥२०
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम् । य एवं पूजयेद्भानुं श्रद्धया परयान्वितः ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स नरो नात्र संशयः ॥२१
डाकिन्यो विविधाकारा राक्षसाः सपिशाचकाः । न तस्य पीडां कुर्वंति तथान्याश्च विभीषणाः ॥२२
शत्रवो नाशमायान्ति सङ्ग्रामे जयमाप्नुयात् । न रोगैः पीड्यते वीर आपदो न स्पृशन्ति तम् ॥२३
धनमायुर्यशो विद्या प्रभवोह्यतुलं तथा । शुभेनोपचयं यान्ति नित्यं पूर्णमनोरथाः ॥२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे गरुडसंवादे सौरधर्मवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७३।

वाली स्त्रियाँ और महत्वपूर्ण धन संसार में दिखायी देते हैं, ये सभी विधान पूर्वक की गई सूर्य पूजा के दृष्टफल हैं ।१४। जो लोक देवलोक के महान् भोगों के उपभोग, राज्य, सौभाग्य, असाधारण शोभा, भोग, त्याग, यश, श्री, सौन्दर्य, विश्व की ख्याति कीर्ति, एवं धर्म आदि की अभिलाषा करते हैं, ज्ञानी पुत्र ये सभी विधान पूर्वक की हुई भक्ति के फल हैं ।१५-१६। इसलिए समस्त देवगणों के पूज्य सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए क्योंकि सूर्य की भक्ति एवं उनकी पूजा अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है ।१७। उनके लिए दान करना भी दुर्लभ है, तथा उनके लिए हवन करना तो और भी दुर्लभ है और उनका विज्ञान एवं अभ्यास भी दुर्लभ है ।१८। उनकी उत्तम आराधना तो अत्यन्त दुर्लभ है जिसने मनुष्यों को सूर्य की शरण प्राप्त है, वही उन लोगों का लाभ है ।१९। जिन लोगों के मन नमस्कारादि पूर्वक किरण वाले, उस ईश्वर सूर्य में लीन है, और जिह्वा के अग्रभाग पर सदैव रवि यह दो अक्षर वर्तमान रहता है, उन्हीं का जीवन सफल है । इस प्रकार जो अत्यन्त श्रद्धालु होकर सूर्य की पूजा करता है, वह मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । इसमें संदेह नहीं डाकिनी, भाँति-भाँति के आकार वाले राक्षस तथा पिशाच गण उसे पीड़ा नहीं पहुँचा सकते हैं । एवं अन्य भीषण शरीर वाले भी पीड़ा नहीं कर पाते संग्राम में शत्रुओं के नाश पूर्वक विजय प्राप्त होती है, वीर ! रोग की पीड़ा एवं आपत्तियाँ उसका स्पर्श तक नहीं कर सकती हैं । और धन, आयु, यश, विद्या, असाधारण प्रभाव ये सभी उस शुभ कर्म द्वारा प्राप्त होते हैं तथा नित्य मनोरथों की सफलता भी प्राप्त होती है ।२०-२४

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के गरुडारुण संवाद में सौर धर्म वर्णन नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७३।

अथ चतु:सप्तत्याधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यस्तुतिवर्णनम्

अरुण उवाच

पूजयित्वा रविं भक्त्या ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः । विष्णुत्वं चापि देवेशो विष्णुराप तदर्चनात् ॥१
शङ्करोऽपि जगन्नाथः पूजयित्वा दिवाकरम् । महादेवत्वमगमत्तत्प्रसादात्खगाधिप ॥२
सहस्राक्षोऽपि देवेश इन्द्रो भानुं तमोऽपहम् । इन्द्रत्वमगमद्देवं पूजयित्वा दिवाकरम् ॥३
मातरो देवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः । पूजयन्ति सदा भानुमीशानं सुरनायकम् ॥४
सर्वमेतज्जगन्नित्यं भानौ देवे प्रतिष्ठितम् । तस्मात्सम्पूजयेद्भानुं य इच्छेत्स्वर्गमक्षयम् ॥५
यो न पूजयते सूर्यं भास्करं तमसूदनम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां न नरो भाजनं भवेत् ॥६
तस्मात्कार्यं हि तद्ध्यानं यावज्जीवं प्रतिज्ञया । अर्चयेत सदा भानुमापन्नोऽपि सदा खग ॥७
यस्तु सन्तिष्ठते नित्यं विना सूर्यस्य पूजनात् । वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाथ च्छेदनम् ॥८
सूर्यं सम्पूज्य भुञ्जीत त्रिदशेशं दिवाकरम् । इत्थं निर्वहते यस्य यावज्जीवं तदर्चनम् ॥
मनुष्यचर्मणा नद्धः स रविर्नात्र संशयः ॥९
न हि अर्कार्चनादन्यत्पुण्यमप्यधिकं भवेत् । इति विज्ञाय यत्नेन पूजयस्व दिवाकरम् ॥१०

अध्याय १७४

सूर्यस्तुति वर्णन

अरुण बोले—सूर्य की पूजा करके ब्रह्मा ब्रह्मत्व, तथा देव नायक विष्णु ने विष्णुत्व धर्म की प्राप्ति की है ।१। खगाधिप ! जगत् के स्वामी शंकर ने सूर्य कीही पूजा करके उनकी प्रसन्नता वश महादेवत्व धर्म की प्राप्ति की है ।२। तथा सहस्र आँख वाले देवेश इन्द्र ने भी अन्धकार के नाशक सूर्य की पूजा करके इन्द्रत्व की प्राप्ति की है । इस प्रकार मातृकाएँ, देव, गन्धर्व, पिशाच, नाग, एवं राक्षस लोग ईशान तथा सुराधिपति सूर्य की सदैव पूजा करते हैं ।३-४। यह समस्त विश्व सूर्य देव में नित्य स्थित हैं, अतः स्वर्ग के इच्छुकों को चाहिए की सूर्य की पूजा अवश्य करें ।५। जो तमनाशक भास्कर सूर्य की पूजा नहीं करता है, वह पुरुष धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का अधिकारी कभी नहीं हो सकता ।६। खग ! इसलिए समस्त जीवन में प्रतिज्ञाबद्ध होकर उनका ध्यान करना चाहिए तथा आपत्तिकाल में भी सदैव उनकी पूजा करें ।७। जो सूर्य की पूजा बिना किये समय व्यतीत करता है शिर काटने के द्वारा अथवा यों ही प्राण त्याग करना उससे कहीं अच्छा है।८। देवेश दिवाकर की पूजा करके जो भोजन करता है और इसी प्रकार उनकी पूजा में यदि समस्त जीवन निभाता है तो मनुष्य नहीं प्रत्युत मनुष्य के चमड़े से बंधा हुआ सूर्य है, इसमें संदेह नहीं।९। सूर्य की पूजा करने के अतिरिक्त किसी भी द्वारा अधिक पुण्य प्राप्त नही हो सकता है, ऐसा समझकर सूर्य की पूजा अवश्य करो। नित्य सूर्य की पूजा करने वाले एवं संयमी सूर्य भक्त के आने पर धर्म सम्पन्न होते हैं क्योंकि धर्म आदि को वे ही सिद्ध करते हैं।१०-११। सभी प्रकार के द्वन्द्व दुःखों का सहन करने वाले,

सूर्यभक्तागमाश्चैव सूर्यार्चनपरायणाः । संयता धर्मसम्पन्ना धर्मादीन्साधयन्ति ते ।।११
सर्वद्वन्द्वसहा वीरा नीतिविध्युक्तचेतसः । परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रताः ।।१२
अमानिनो बुद्धिमन्तोऽव्यक्तस्पर्धा गतस्पृहाः । शान्ता स्वान्तगताः भद्रा नित्यं स्वागतवादिनः ।।१३
स्वल्पवाचः सुमनसः शूराः शास्त्रविशारदाः । शौचाचारसुसम्पन्ना दयादाक्षिण्यगोचराः ।।१४
दम्भमत्सरनिर्मुक्तास्तृष्णालोभविवर्जिताः । संविभागपराः प्रोक्ता न शठाश्चाप्यकुत्सिताः ।।१५
विषयेष्वपि निर्लेपाः पद्मपत्रमिवाम्भसा । न दीना मानिनश्चैव न च रोगवशानुगाः ।।१६
भवन्ति भावितात्मानः सुस्निग्धाः साधुसेविताः । न पाणिपादवाक्चक्षुः श्रोत्रशिश्नोदरे रताः ।।१७
चपलानि न कुर्वन्ति सर्वव्यासङ्गवर्जिताः । सूर्यासनरताः शान्ताः षडक्षरमनोगताः ।।१८
इत्याचारसमायुक्ता भवन्ति भुवि मानवाः । एकान्तभक्तिमास्थाय धर्मकामार्थसिद्धये ।।१९
पूजनीयो रविर्नित्यं गुणेष्वेतेषु वर्तते । सर्वेषामेव पात्राणामतिपात्रं दिवाकरः ।।
पतन्तं त्रायते यस्मादतीव नरकार्णवात् ।।२०
तस्य पात्रातिपात्रस्य माहात्म्यं दानमण्वपि । अनेन फलमादिष्टमिहलोके परत्र च ।।२१
द्रव्येणापि हि यः कुर्यान्नरः कर्म तदालये । सोऽपि देहक्षये ज्ञानं प्राप्य शान्तिमवाप्नुयात् ।।२२
सर्वद्विजकदम्बेषु कश्चिज्ज्ञानमवाप्नुयात् । कश्चिदेतत्तु मे दिव्यं लब्ध्वा ज्ञानं विमुञ्चति ।।२३
तावद्भ्रमन्ति संसारे दुःखशोकपरिप्लुताः । न भवन्ति रवेर्भक्ता यावत्सर्वेऽपि देहिनः ।।२४

वीर,नीतिविधान के अनुसरण करने वाले, परोपकारी, गुरु की सेवा करने वाले, मान हीन, बुद्धिमान् कोध काम के अतिरिक्त किसी से भी स्पर्धा न करने वाले, शान्ति, आत्मा में रमण करने वाले, कल्याण मूर्ति, नित्य सुस्वागत कहने वाले, सत्यवादी, शुद्धचित्तवाले, शूर शास्त्र कुशल, पवित्रता एवं प्रचार से सुसम्पन्न, दया, दाक्षिण्य (चातुर्य) पूर्ण, दंभ मत्सर हीन, तृष्णा लोभ के त्यागी, शठता हीन अनिन्दित, जल में कमल पत्र की भाँति विषयों से निर्लिप्त, दीन एवं मान रहित, और आरोग्य एवं साधुओं के संसर्ग में रहकर कोमल चित्त एवं उदार प्रकृति के वे हो जाते हैं। पुनः कभी भी हाथ, पैर, वाणी, आँखें, कानों, तथा शिश्न एवं पेट के लिए अनुरक्त नहीं होते हैं।१२-१७। इतर सभी लोगों के संपर्क से दूर रहते हैं एवं चंचलता नहीं करते किन्तु सूर्य के आसन में अनुरक्त रहकर शांत तथा षडक्षर का जप किया करते हैं।१८। धर्म, अर्थ एवं काम की सफलता के लिए सूर्य की एकांत भक्ति करने वाले इस प्रकार के आचार सम्पन्न मनुष्य इस भूतल में होते रहते हैं।१९। पूज्य सूर्य में ये सभी गुण सदैव वर्तमान रहते हैं क्योंकि सभी पात्रों से सूर्य उत्तम पात्र बताये गये हैं। गिरे हुए नरक सागर से जो भली भाँति निकाल कर बचा ले वही अतिपात्र कहा जाता है। उस अतिपात्र सूर्य के माहात्म्य का दान लेश मात्र भी किया जाये तो उसी द्वारा ये समस्त फल लोक परलोक में प्राप्त होते रहते है। जो उनके मन्दिर में द्रव्य द्वारा कर्म करता रहता है, उसे मरणानन्तर ज्ञान एवं शांति प्राप्त होती है।२०-२२। सभी द्विज समूहों में किसी को ज्ञान की प्राप्ति होती है, और कोई मेरे दिव्य ज्ञान की प्राप्ति करके इस (संसार) का त्याग करता है।२३। सभी प्राणी जब तक सूर्य की भक्ति अपनाते नहीं तब तक इस संसार में दुःख शोक में लिप्त होकर घूमते रहते

सूर्यस्यालेपनं पुण्यं द्विगुणं चन्दनस्य तु । चन्दनादगुरौ ज्ञेयं पुण्यमष्टगुणोत्तरम् ।।२५
कृष्णागुरौ विशेषेण द्विगुणं फलमिष्यते । तस्माच्छतगुणं पुण्यं कुङ्कुमस्य विधीयते ।।२६
सूर्ययज्ञोपकरणं कृत्वाल्पं यदि वा बहु । भावाद्वित्तानुसारेण सूर्यलोके महीयते ।।२७
यदपीष्टमनिष्टं च न्यायेनोभयनागतम् । तत्सूर्याय निवेद्यं सद्भक्त्यानन्तफलार्थिना ।।२८
कर्मशाठ्येन यः कुर्याद्दुःखेनापि तदर्चनम् । सोऽपि द्विजो दिवं याति कर्मणा पापवर्जितः ।।२९
सर्वमन्यत्परित्यज्य सूर्ये चैकमनाः सदा । सूर्यपूजाविधिं कुर्याद्धि इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।।३०
त्वरितं जीवितं याति त्वरितं यौवनं तथा । त्वरितं व्याधिरप्येति तस्मान्नित्यं रविं व्रजेत् ।।३१
यावन्नास्येति मरणं यावन्नाक्रमते जरा । यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावदर्चेद्दिवाकरम् ।।३२
न सूर्यार्चनतुल्योऽपि न धर्मोऽन्यो जगत्त्रये । इत्थं विज्ञाय देवेशं पूजयस्व दिवाकरम् ।।३३
ये भक्त्या देवदेवेशं सूर्यं[1] शान्तमजं प्रभुम् । इह लोके सुखं प्राप्य ते गताः परमं पदम् ।।३४
गोपतिं पूजयित्वा तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा पुरा ब्रह्मा ब्रवीदिदम् ।।३५

ब्रह्मोवाच

भगवन्तं भगकरं शान्तचित्तमनुत्तमम् । देवमार्गप्रणेतारं प्रणतोऽस्मि रविं सदा ।।३६

हैं ।२४। सूर्य का लेपन करना पुण्यकारक होता है, चन्दन के लेप से उससे दुगुना पुण्य, और चन्दन से अगुरु द्वारा उससे आठ गुना पुण्य प्राप्त होता है ।२५। विशेषकर काले अगुरु से दुगुने फल प्राप्त होते हैं, और उससे सौगुने फल कुंकुम द्वारा प्राप्त होते हैं ।२६। सूर्य-यज्ञ के लिए अपने भाव एवं धन के अनुसार विस्तृत अथवा अल्प ही संभार करने से सूर्य लोक में सम्मान प्राप्त होता है ।२७। न्याय पूर्वक प्रिय क्षत्रिय ! जिस किसी (वस्तु) की प्राप्ति हो जाय, अनन्त फल के इच्छुक को चाहिए कि उसे सद्‌भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए समर्पित करे ।२८। कर्म की शठता वश यदि कोई दुःखी अवस्था में भी उनकी पूजा करता है, उसी कर्म द्वारा वह द्विज पापमुक्त होकर स्वर्ग की प्राप्ति करता है ।२९। अपने हित की कामना वाले को सभी कुछ के परित्याग पूर्वक एकाग्रचित्त होकर विधान द्वारा सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।३०। यह मनुष्य जीवन शीघ्र समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार युवावस्था भी शीघ्र चली जाती है। व्याधि भी इसी शरीर में शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए अपने सूर्य सन्निधान के लिए नित्य तैयार रहना चाहिए ।३१। जब तक मरण धर्म बुढापे का आक्रमण एवं इन्द्रियों की विफलता न प्राप्त हो तब तक दिवाकर की पूजा करनी चाहिए ।३२। तीनों लोकों में सूर्य पूजा के समान कोई अन्य धर्म नहीं है, ऐसा समझकर देवनायक सूर्य की पूजा करो ।३३। जो देवाधिदेव, शांत, अजन्मा, एवं प्रभु सूर्य की पूजा करता है, उसे इस संसार के समस्त सुख की प्राप्ति पूर्वक उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।३४। प्राचीन समय में ब्रह्मा ने हर्षातिरेक प्राप्त कर सूर्य की पूजा समाप्ति के अनन्तर हाथ जोड़कर इसे स्तुति रूप में कहा था— ।३५

ब्रह्मा बोले—भग, शांत चित्त वाले सर्वश्रेष्ठ, एवं देवमार्ग के प्रणेता उस सूर्य को मैं सदैव नमस्कार

---

१. अर्चयन्त इति शेषः ।

शाश्वतं शोभनं शुद्धं चित्रभानुं दिवस्पतिम् । देवदेवेशमीशेशं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥३७
सर्वदुःखहरं देवं सर्वदुःखहरं रविम् । वराननं वराङ्गं च वरस्थानं वरप्रदम् ॥३८
वरेण्यं वरदं नित्यं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् । अर्कमर्यमणं चेन्द्रं विष्णुमीशं दिवाकरम् ॥३९
देवेश्वरं देवरतं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् । य इदं शृणुयान्नित्यं ब्रह्मणोक्तं स्तवं परम् ॥
स हि कीर्ति परां प्राप्य पुनः सूर्यपुरं व्रजेत् ॥४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे गरुडारुणसंवादे सूर्यस्तुतिर्नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७४।

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्याग्निकर्मवर्णनम्

गरुड उवाच

सर्वरोगहता ये तु आधिव्याधिसमन्विताः । ग्रहोपघातैर्विविधैरर्दिता ये च मानवाः ॥१
अरिभिः पीडिता ये च विनायकहताश्च ये । कर्तव्यं किं भवत्तेषामात्मनः श्रेयसेऽनघ ॥२

अरुण उवाच

नानारोगहतानां तु अर्दितानां तथारिभिः । आदित्याराधनं मुक्त्वा नान्यच्छ्रेयस्करं परम् ॥३

करता हूँ । शाश्वत, सौन्दर्यपूर्ण, शुद्ध, चित्रभानु, दिवस्पति, देवाधिदेव और ईश के ईश उस दिवाकर को मैं प्रणाम करता हूँ ।३६-३७। समस्त दुःखनाशक, देव, सर्वदुःख का अपहरण करने वाले, सूर्य, सौन्दर्यपूर्ण मुख उत्तम अंग, उत्तम स्थान, वर प्रदायक, वरेण्य, तथा वरदानी, विभावसु को प्रणाम है । अर्क, अर्यमा, इन्द्र, विष्णु, ईश, दिवाकर, देवेश्वर एवं देवानुरक्त उस विभावसु को प्रणाम है । जो कोई ब्रह्मा द्वारा की गई इस प्रकार की उत्तम स्तुति का पाठ नित्य करता एवं सुनता है उसे उत्तम यश की प्राप्ति पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।३८-४०

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के गरुडागरुण संवाद में सूर्य स्तुति वर्णन नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७४।

अध्याय १७५

सूर्याग्निकर्म का वर्णन

गरुड़ बोले—हे अनघ ! जो मनुष्य शारीरिक-मानसिक व्याधियों से ग्रस्त होने के नाते समस्त रोगों द्वारा नष्ट प्राय अरिष्ट ग्रहों द्वारा भाँति-भाँति के उपघातों से पीड़ित, शत्रुओं से दुर्दशाग्रस्त, एवं विघ्नविनायक द्वारा मरणासन्न हो रहे हैं, उन्हें अपने कल्याणार्थ किस कर्तव्य का पालन करना चाहिए आप इसे बताने की कृपा करें ।१-२

अरुण बोले—भाँति-भाँति के रोगों एवं शत्रुओं से पीड़ित मनुष्यों के लिए सूर्य की आराधना के

तस्मादाराधयेन्नित्यं सर्वरोगविनाशनम् । ग्रहोपघातहन्तारं राजोपद्रवनाशनम् ।।४

गरुड उवाच

सर्वपत्रविहीनं मे सर्वरोगविवर्जितम् । शापेन ब्रह्मवादिन्याः पश्याङ्गं द्विजसत्तम ।।५
एवं मतस्य मे तात किं कार्यमवशिष्यते । येनाहं कर्मणा कल्पो भवेयं पत्रवान्पुनः ।।६
तन्मे ब्रूहि खगश्रेष्ठ प्रपन्नस्य खगाधिप । यत्कृत्वा कल्पतां प्राप्य पूजयामि दिवाकरम् ।।७

अरुण उवाच

पूजयस्व जगन्नाथं भास्करं तिमिरापहम् । सूर्याग्निकार्यं सततं शुद्धचित्तः समाचर ।।८
महाशान्तिकरं ख्यातं सर्वोपद्रवनाशनम् । ग्रहोपघातहन्तारं शुभकार्यकरं परम् ।।९

गरुड उवाच

नाहं शक्तोऽस्मि वै कर्तुं पूजां दिनकरस्य च । न चाग्निकार्यं शक्नोमि कर्तुं विकलतां गतः ।।१०
तस्मान्मे कुरु शान्त्यर्थमग्निकार्यं खगाधिप । महाशान्तिरिति ख्यातं शान्तये मम सुव्रत ।।११

अरुण उवाच

एवमेव यथात्थ त्वं वैनतेय खगाधिप । अकल्पस्त्वं न शक्नोषि महाव्याधिप्रपीडितः ।।१२
अहं करोमि ते पुत्र शान्तये पावकार्चनम् । यत्कृतं मम चार्केण पुरा शान्तिदमादरात् ।।१३

अतिरिक्त अन्य कोई उपाय उत्तम कल्याणप्रद नहीं है ।३। इसलिए समस्त रोगों के नाशक, ग्रहों के उपघातों एवं राजा जनित उपद्रवों के विनाशक उस सूर्य की नित्य आराधना करनी चाहिए ।४।

गरुड ने कहा—हे द्विजसत्तम ! मेरे अंग को देखो ब्रह्मवादिनी के शाप से मेरे सभी पत्र (पंख) नष्ट हो गये हैं, इसीलिए मैं सर्वरोगहीन भी हूँ । तात ! मुझ ऐसे मतवाले के लिए कुछ करना क्या अब भी अवशिष्ट हैं ? खगश्रेष्ठ ! कोई ऐसा उपाय बताने की कृपा करें जिससे मैं पहले की भाँति पुनः पंखों आदि से परिपूर्ण हो जाऊँ और पूर्व की भाँति अंग सम्पन्न होकर दिवाकर की पूजा कर सकूँ । खगाधिप ! मैं आप की शरण आया हूँ ।५-७

अरुण बोले—जगन्नाथ, अन्धकार नाशक भास्कर की पूजा करो । शुद्धचित्त होकर सूर्य पूजन एवं अग्नि स्थापन आदि कार्य निरन्तर किया करो जो महाशान्तिकारक, ख्यात, समस्त उपद्रवनाशक, ग्रहों के उपघातों के हन्ता, तथा उत्तम शुभकार्य करने वाले हैं ।८-९

गरुड़ ने कहा—मैं दिनकर की पूजा करने में असमर्थ हूँ, और विकल होने के नाते अग्नि कार्य भी सम्पन्न नहीं कर सकता । अतः खगाधिप ! मेरी शांति के लिए अग्नि कार्य एवं सुव्रत ! उस विख्यात महाशांति का अनुष्ठान भी आप सुसम्पन्न करें ।१०-११

अरुण बोले—खगाधिप, वैनेतय ! तुम्हारा कहना सर्वथा उचित हैं क्योंकि अंगहीन एवं महान रोग ग्रस्त होने के कारण तुमसे उस कार्य का होना सर्वथा असम्भव है ।१२। अतः पुत्र ! तुम्हारी शांति के निमित्त मैं ही वह अग्नि पूजन करने जा रहा हूँ, जिसे प्राचीन समय में सूर्य ने सादर मुझे बताया था, वह

सर्वपापहरं पुण्यं महाविघ्नविनाशनम् । महोदयं शान्तिकरं लक्षहोमविधि[1] स्मृतम् ॥१४
अपमृत्युहरं वीर सर्वव्याधिहरं परम् । परचक्रप्रमथनं सदा विजयवर्धन ॥१५
तृप्तिदं सर्वदेवानां भास्करप्रियमुत्तमम् । आग्नेय्यां दिशि लिप्याथ स्थण्डिलं गोमयेन तु ॥१६
देवालयस्य विधिवत्कुर्यावह्निप्रबोधनम् । महाव्याहृतिभिर्वीर लक्षहोमं समाचरेत् ॥१७
भूर्भुवः स्वरितिस्वाहा प्रणवेन समन्वितम् । आरक्तदेहरूपाय रक्ताक्षाय महात्मने ॥१८
धराधराय शान्ताय सहस्राक्षिशिराय च ॥१९
अधोमुखाय श्वेताय स्वाहा पूर्वाहुति सृजेत । चतुर्मुखाय शान्ताय पद्मासनगताय च ॥२०
पद्मवर्णाय देहाय कमण्डलुधराय च । द्वितीयोर्ध्वमुखायेह स्वाहाकाराहुति सृजेत ॥२१
हेमवर्णाय देहाय ऐरावतगताय च । सहस्राक्षशरीराय पूर्वदिश्युन्मुखाय च ॥२२
देवाधिपाय चेन्द्राय विहस्ताय शुभाय च । स्वाहाकारं चोत्सृजेदेव तृतीयवदनाय च ॥२३
दीप्ताय व्यक्तदेहाय ज्वालामालाकुलाय च । इन्द्रनीलाभदेहाय सर्वारोग्यकराय च ॥२४
यमाय धर्मराजाय दक्षिणाशामुखाय च । कृष्णाम्बरधरायेह स्वाहाहुतिमनुत्सृजेत् ॥२५
नीलजीमूतवर्णाय रक्ताम्बरधराय च । मुक्ताफलशरीराय पिंगाक्षाय महात्मने ॥२६
शुक्लवस्त्राय पीताय दिव्यपाशधराय च । स्वाहाकाराय च तथा पश्चिमाभिमुखाय च ॥२७

वही शांति प्रदायक, समस्त पापों का अपहरण करने वाला, पुण्य, महाविघ्नविनाशक, महान् अभ्युदयकारक, तथा शांतकारी है, उस कार्य के निमित्त लक्ष आहुति डालने का विधान बताया गया है । वीर ! अपमृत्यु एवं समस्त व्याधियों का नाशक, शत्रु के चक्र का मन्थन करने वाला, सदैव विजय वर्धक सभी देवों के तृप्ति कारक वह भास्कर को अत्यन्त प्रिय हैं । मंदिर के आग्नेय दिशा में ऊँची वेदी को गोबर से लीप कर उसमें विधान पूर्वक अग्नि स्थापन करके वीर ! महाव्याहृतियों द्वारा उसमें लक्ष आहुति डालनी चाहिए ।१३-१७। पूर्वाभिमुख होकर, 'ओं भू र्भुवः स्वाहा' इस आहुति के पश्चात् सर्वाङ्ग रक्तवर्ण वाले, रक्तनेत्र, महात्मा, धराधर, शान्त, सहस्र आँख एवं शिर वाले, अधोमुख, एवं श्वेत वर्ण के लिए यह आहुति है, चतुर्मुख, शांत, पद्मासन पर स्थित, कमल वर्ण, कमण्डलु धारण करने वाले एवं द्वितीय ऊर्ध्व मुख वाले ब्रह्मा के लिए यह आहुति है, कनक वर्ण, देह, ऐरावत पर स्थित, सहस्र आँख की शरीर वाले, पूर्व दिशा की ओर उन्मुख रहने वाले देवनायक, विहस्त तथा शुभ, ऐसे इन्द्र के लिए यह आहुति है । देव ! तृतीय मुख वाले, दीप्त, व्यक्त देह, ज्वालारूपी माला से घिरे, इन्द्रनील, के समान आभा पूर्ण देह वाले, सभी भाँति आरोग्य करने वाले, दक्षिण दिशा की ओर मुख वाले, एवं कृष्ण वस्त्र धारण किये यम तथा धर्मराज के लिए यह आहुति है, नील मेघ के समान रंग वाले, रक्ताम्बर धारी, मोती के समान शरीर वाले, पिंगाक्ष, महात्मा, शुक्ल वस्त्र, पीत, दिव्यास्त्र पाश धारण करने वाले एवं पश्चिमाभिमुख वाले के लिए यह आहुति है, कृष्ण एवं पिंगल नेत्र, वायाव्याभिमुख, नीलध्वज, वीर, इन्द्र, वेध तथा पवन के लिए

---

[1] लक्षसंख्यापरिच्छिन्नो होमविधिर्यत्र तत्पावकार्चनमहं करोमीति त्रयोदशचतुर्दशपञ्चदशषोडश-श्लोकानामेकत्रान्वयः ।

कृष्णपिङ्गलनेत्राय वायव्याभिमुखाय च । नीलध्वजाय वीराय तथा चेन्द्राय वेधसे ॥२८
स्वाहेति पवनायेह आहुतिं चोत्सृजेद्बुधः । गदाहस्ताय सूर्याय चित्रस्रग्भूषणाय च ॥२९
महोदराय शान्ताय स्वाहाधिपतये तथा । उत्तराभिमुखायेह महादेवप्रियाय च ॥३०
श्वेताय श्वेतवर्णाय चित्राक्षाय महात्मने । शान्ताय शान्तरूपाय पिनाकवरधारिणे ॥३१
ईशानाभिमुखायेह दद्यादीशाय चाहुतिम् । विसृजेत्खगशार्दूल विधिवच्छ्रेयसेऽनघ ॥३२
एवं देवं महात्मानं पावकं विधिवत्खग । अर्चेदिति तु यत्कार्यं तत्सौरं खगसत्तम ॥३३
लक्षहोमं च विधिवत्कृत्वा शान्तिकमाचरेत् । भूर्भुवःस्वरिति स्वाहा लक्षहोमविधिः स्मृतः ॥३४
महाहोमे च वै सौर एष एव विधिः परः । कृत्वैवमग्निकार्यं तु भोजको भास्कराय वै ॥३५
शान्त्यर्थं सर्व लोकानां ततः शान्तिकमाचरेत् । सिन्दूरासनरक्ताभः रक्तपद्माभलोचनः ॥३६
सहस्रकिरणो देवः सप्ताश्वरथवाहनः । गभस्तिमाली भगवान्सर्वदेवनमस्कृतः ॥३७
करोतु ते महाशान्तिं ग्रहपीडानिवारिणीम् । त्रिचक्ररथमारुढ अपां सारमयं तु यः ॥३८
दशाश्ववाहनो देव आत्रेयश्चामृतस्रवः । शीतांशुरमृतात्मा च क्षयवृद्धिसमन्वितः ॥
सोमः सौम्येन भावेन ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥३९
पद्मरागनिभो भौमो मधुपिङ्गललोचनः । अङ्गारकोऽग्निसदृशो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥४०
पुष्परागनिभेनेह देहेन परिपिङ्गलः । पीतमाल्याम्बरधरो बुधः पीडां व्यपोहतु ॥४१

यह, आहुति है, गदाहस्त, सूर्य, चित्रविचित्र की मालाओं से सुसज्जित शांत महोदर, स्वाहाधिपति, उत्तराभिमुख, महादेव प्रिय, श्वेत, श्वेतवर्ण, चित्राक्ष, महात्मा, शांत, शांतरूप, उत्तम पिनाक धारी, और ईशानाभिमुख उस ईश के लिए यह आहुति है, इस प्रकार प्रत्येक नाम के अंत में 'स्वाहा' पद के उच्चारण पूर्वक आहुति डालता जाये। खगशार्दूल ! विधानपूर्वक इन आहुतियों के त्यागने से उसका कल्याण निश्चित होता है।१८-३२। अनघ, खग, ! इस प्रकार महात्मा पावक देव का विधान पूर्वक किया गया अर्चना रूपी कार्य सौ कार्य कहलाता है, खगसत्तम ! विधान पूर्वक इस लक्ष आहुति वाले हवन को सुसम्पन्न करके शांति कार्य आरम्भ होना चाहिए। 'भूर्भुवः स्वरिति स्वाहा' इसी से लक्ष आहुति वाले हवन का विधान सम्पन्न करना बताया गया है।३३-३४। इस प्रकार के सौर महाहवन में यही विधान उत्तम कहा गया है। भोजक इस भाँति सूर्य के लिए अग्नि कार्य सुसम्पन्न करके समस्त लोकों के शांति की लिए शांति कर्म का आरम्भ करे—सिन्दूर के आसन की भाँति रक्त वर्ण की आभा, रक्तकमल के समान नेत्र, सहस्र किरण वाले, सात अश्व जुते हुए रथ, किरण रूपी माला धारी, एवं समस्त देवों द्वारा नमस्कृत। इस प्रकार के भगवान् (सूर्य) तुम्हें ग्रहपीड़ा से मुक्ति कर महाशांति प्रदान करें। तीन चक्के वाले रथ पर स्थित, जल के तात्त्विक रूप, दश अश्व वाहने, देव आत्रेय, अमृतस्रवण करने वाले, शीत किरण, अमृतमय, तथा क्षय एवं वृद्धि युक्त, ऐसे सोम (चन्द्र) देव ! सौम्य भाव से तुम्हारी ग्रहपीड़ा निवारण करें।३५-३९। पद्मरागमणि के समान वर्ण वाले, भौम, मधु की भाँति पिंगल नेत्र, अंगारक, अग्नि सदृश, ऐसे मंगल देव ग्रहपीड़ा का अपहरण करें।४०। पुष्पराग के समान देह के कारण आपाद पिंगल, और पीत माला एवं पीत वस्त्र धारण करने वाले बुध तुम्हारी पीड़ा शांत करें।४१।

तप्तगैरिकसंकाशः सर्वशास्त्रविशारदः । सर्वदेवगुरुर्विप्रो ह्यथर्वणवरो मुनिः ॥४२
बृहस्पतिरिति ख्यात अर्थशास्त्रपरश्च यः । शान्तेन चेतसा सोऽपि परेण सुसमाहितः ॥४३
ग्रहपीडां विनिर्जित्य करोतु तव शान्तिकम् । सूर्यार्चनपरो नित्यं प्रसादाद्भास्करस्य तु ॥४४
हिमकुन्देन्दुवर्णाभो दैत्यदानवपूजितः । महेश्वरस्ततो धीमान्महासौरो महामतिः ॥४५
सूर्यार्चनपरो नित्यं शुक्रः शुक्लनिभस्तदा । नीतिशास्त्रपरो नित्यं ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥४६
नानारूपधरोऽव्यक्त अविज्ञातगतिश्च यः । नोत्पत्तिर्जायते यस्य नोदयपीडितैरपि ॥४७
एकचूलो द्विचूलश्च त्रिशिखः पञ्चचूलकः । सहस्रशिररूपस्तु चन्द्रकेतुरिव स्थितः ॥४८
सूर्यपुत्रोऽग्निपुत्रस्तु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अनेकशिखरः केतुः स ते पीडां व्यपोहतु ॥४९
एते ग्रहा महात्मानः सूर्यार्चनपराः सदा । शान्तिं कुर्वन्तु ते हृष्टाः सदाकालं हितेक्षणाः ॥५०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु
सूर्याग्निकर्मणि पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७५।

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

पद्मासनः पद्मवर्णः पद्मपत्रनिभेक्षणः । कमण्डलुधरः श्रीमान्देवगन्धर्वपूजितः ॥१

तप्त सुवर्ण के समान वर्ण, समस्त शास्त्र कुशल, समस्त देवों के गुरु, ब्राह्मण, उत्तम अथर्वण गोत्री, मुनि, बृहस्पति नाम से विख्यात, अर्थशास्त्र निष्णात, ऐसे गुरुदेव अति शांत चित्त एवं समाधिस्थ होकर नित्य सूर्य की पूजा करते हैं, अतः भास्कर की प्रसन्नता वश तुम्हारी ग्रह पीड़ा दूर कर शांति प्रदान करें ।४२-४४। बर्फ कुन्दपुष्प एवं चन्द्र की भाँति वर्ण, दैत्य तथा दानव द्वारा पूजित, महेश्वर, धीमान, महान् सूर्यभक्त, महाबुद्धिमान्, शुक्लवर्ण, नीतिशास्त्र कुशली, एवं नित्य सूर्य की पूजा करने वाले शुक्रदेव नित्यग्रहपीड़ा का अपहरण करें। भाँति-भाँति के रूप धारण करने वाले, व्यक्त, अविज्ञात गति वाले, उत्पन्न कालीन पीड़ा से पीड़ित होने पर भी अनुत्पन्न ही रहने वाले, एक चूडा, दो चूड़ा, तीन शिखाएँ एवं पाँच चूड़ा वाले, सहस्रशिर रूप वाले, चन्द्र केतु की भाँति स्थित होने वाले, सूर्य पुत्र, अग्नि पुत्र, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव रूप वाले, एवं अनेक शिखर वाले, ऐसे केतु (देव) तुम्हारी पीड़ा दूर करें ।४५-४९। ये सभी ग्रह महान् आत्मा वाले सदेव सूर्य-पूजन करते रहते हैं अतः प्रसन्न होकर सर्वथा हित की कामना से कारुणिक नेत्रों से देखते हुए सूर्य तुम्हें शांति प्रदान करें ।५०

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में सूर्यपीड़ित कर्म (वर्णन)
नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७५।

अध्याय १७६

सौरधर्म वर्णन

सुमन्तु बोले—कमल का आसन, कमल वर्ण, कमल पत्र के समान नेत्र, कमण्डलु धारी, श्रीसम्पन्न,

चतुर्मुखो देवपतिः सूर्यार्चनपरः सदा । सुरज्येष्ठो महातेजाः सर्वलोकप्रजापतिः ॥
ब्रह्मशब्देन दिव्येन ब्रह्मा शान्तिं करोतु ते ॥२
पीताम्बरधरो देव आत्रेयीदयितः सदा । शङ्खचक्रगदापाणिः श्यामवर्णश्चतुर्भुजः ॥३
यज्ञदेहः क्रमो देव आत्रेयीदयितः सदा । शङ्खचक्रगदापाणिर्माधवो मधुसूदनः ॥४
सूर्यभक्त्यान्वितो नित्यं विगतिर्विगतत्रयः । सूर्यध्यानपरो नित्यं विष्णुः शान्तिं करोतु ते ॥५
शशिकुन्देन्दुसंकाशो विभूताभरणैरिह । चतुर्भुजो महातेजाः पुष्पार्धकृतशेखरः ॥६
चतुर्मुखो भस्मधरः श्मशाननिलयः सदा । गोत्रारिर्विश्वनिलयस्तथा च क्रतुदूषणः ॥७
वरो वरेण्यो वरदो देवदेवो महेश्वरः । आदित्यदेहसंभूतः स ते शान्तिं करोतु वै ॥८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु
षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७६।

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अग्निकार्यविधिवर्णनम्

अरुण उवाच

पद्मरागप्रभा देवी चतुर्वदनपङ्कजा । अक्षमालार्पितकरा कमण्डलुधरा शुभा ॥१
ब्रह्माणी सौम्यवदना आदित्याराधने रता । शान्तिं करोतु सुप्रीता आशीर्वादपरा खग ॥२

देवों एवं गन्धर्वों द्वारा पूजित, चर्तुमुख, देवनायक, सदैव सूर्य पूजक, देवों में ज्येष्ठ, महातेजस्वी, समस्त लोकों के प्रजापति, एवं दिव्य ब्रह्म शब्द से विख्यात, ऐसे ब्रह्मा तुम्हें शांति प्रदान करें । पीताम्बर धारी, देव, आत्रेयी वल्लभ, शंख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले, श्यामवर्ण, चतुर्भुज, यज्ञरूपी देह, क्रम रूप, सदैव आत्रेयी प्रिय, शंख, चक्र गदाधारी, माधव, मधुसूदन, सूर्यभक्त, गति हीन एवं तीनों से शून्य, इस प्रकार के सूर्य ध्यान परायण विष्णु तुम्हें नित्य शांति प्रदान करें ।१-५। चन्द्र, कुन्द, एवं इन्दु के समान कान्ति, कर्ण कुण्डल विभूषित, चतुर्भुज, महातेजस्वी, पुष्पों से शिर के अर्ध भाग को अलङ्कृत करने वाले, चतुर्मुख, भस्मांगभूषित, श्मशान रूप गृह में सदैव रहने वाले, पर्वत शत्रु, विश्वनिलय, क्रतुदूषण, उत्तम, वरेण्य, वरद तथा आदित्य से उत्पन्न, ऐसे देवाधिदेव महेश्वर तुम्हें शांति प्रदान करें ।६-८

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन नामक
एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७६।

अध्याय १७७

अग्निकार्यविधि का वर्णन

अरुण बोले—खग ! पद्मरागमणि की भाँति प्रभा पूर्ण, देवी, कमल की भाँति चार मुख वाली, हाथ में अक्षमाला लिए, कमण्डलु धारिणी शुभात्मक, प्रसन्नचित्त होकर आदित्य की आराधना में निमग्न रहने वाली, अत्यन्त प्रसन्न मूर्ति, एवं आशीर्वाद परायण ब्रह्माणी तुम्हें शांत करें ।१-२ महाश्वेता नाम से ख्याति

महाश्वेतेति विख्याता आदित्यदयिता सदा । हिमकुन्देन्दुसदृशा महावृषभवाहिनी ॥३
त्रिशूलहस्तावरणा विश्रुताभरणा सती । चतुर्भुजा चतुर्वक्त्रा त्रिनेत्रा पापनाशिनी ॥
वृषध्वजार्चनरता रुद्राणी शान्तिदा भवेत् ॥४
मयूरवाहना देवी सिन्दूरारुणविग्रहा । शक्तिहस्ता महाकाया सर्वालङ्कारभूषिता ॥५
सूर्यभक्ता महावीर्या सूर्यार्चनरता सदा । कौमारी वरदा देवी शान्तिमाशु करोतु ते ॥६
गदाचक्रधरा श्यामा पीताम्बरधरा खग । चतुर्भुजा हि सा देवी वैष्णवी सुरपूजिता ॥७
सूर्यार्चनपरा नित्यं सूर्यैकगतमानसा । शान्तिं करोतु ते नित्यं सर्वासुरविमर्दिनी ॥८
ऐरावतगजारूढा वज्रहस्ता महाबला । सर्वत्रलोचना देवी वर्णतः कर्बुरारुणा ॥९
सिद्धगन्धर्वनमिता सर्वालङ्कारभूषिता । इन्द्राणी ते सदा देवी शान्तिमाशु करोतु वै ॥१०
वराहघोणा विकटा वराहवरवाहिनी । श्यामावदाता या देवी शङ्खचक्रगदाधरा ॥११
तेजयन्ती निमिषान्पूजयन्ति सदा रविम् । वाराही वरदा देवी तव शान्तिं करोतु वै ॥१२
अर्धकोशा कटीक्षामा निर्मांसा स्नायुबन्धनात् । करालवदना घोरा खड्गघण्टोद्गता सती ॥१३
कपालमालिनी क्रूरा खट्वाङ्गवरधारिणी । आरक्ता पिङ्गनयना गजचर्मावगुण्ठिता ॥१४
गोश्रुताभरणा देवी प्रेतस्थाननिवासिनी । शिवारूपेण घोरेण शिवरूपभयङ्करी ॥
चामुण्डा चण्डरूपेण सदा शान्तिं करोतु ते ॥१५

प्राप्त, सदैव आदित्य की प्रिया, हिम, कुंद तथा इंदु के समान रूपरंग, महावृषभ वाहिनी, हाथों में त्रिशूल लिए, कान में कुंडलों से विभूषित, चार भुजाएँ, चार मुख एवं तीन नेत्रों वाली, पापनाशिनी, महावृषभ-ध्वज के अर्चन करने में सदैव मग्न, इस प्रकार की रुद्राणी तुम्हें शांति प्रदान करे।३-४। मयूर वाहन वाली देवी, सिंदूर की भाँति रक्त वर्ण वाली, हाथ में शक्ति लिए, विशाल देह, समस्त अलंकारों से विभूषित, सूर्य भक्त, महापराक्रम शालिनी, सदैव सूर्य पूजा में अनुरक्त, ऐसी वरदायिनी कौमारी (देवी), तुम्हें शीघ्र शांति प्रदान करें।५-६। खग ! गदा एवं चक्र धारण करने वाली, श्यामा, पीताम्बरधारिणी, चारभुजा वाली देवी वैष्णवी, जो देवपूजित सूर्य में ध्यान मग्न हो कर उनकी पूजा करने वाली, जो समस्त असुरों का मर्दन करती है, तुम्हें नित्य शांति प्रदान करें।७-८। ऐरावत हाथी पर स्थित, हाथ में वज्र लिए, महाबलशालिनी, चारों आँख वाली, चित्र एवं रक्त वर्ण वाली, सिद्ध, तथा गन्धर्वों से वन्दित, सर्वाभरण भूषित, ऐसी इन्द्राणी देवी सदैव तुम्हें शीघ्र शांति प्रदान करती रहें।९-१०। वराह की भाँति नासिका, भाषण, उत्तम वराह रूप वाहन वाली, शुद्ध श्याम वर्ण, शंख, चक्र एवं गदा धारण करने वाली, निमिषों को तेजस्वी करने वाली, सदैव सूर्य पूजा में अनुरक्त रहने वाली, एवं वरदायिनी ऐसी वाराही देवी तुम्हारी शांति करें।११-१२। अर्ध कोश एवं क्षीण कटि वाली, केवल स्नायु से बंधे हुए के नाते मांसहीन, तलवारों को लिए, घोर, खड्ग तथा घंटा युक्त, कपाल की माला पहने, क्रूर, उत्तम खट्वांग धारण करने वाली रक्त वर्ण, पिंगल नेत्र वाली, हाथी के चमड़े मे अवगुण्ठित, कर्ण कुण्डल भूषित, प्रेतस्थान की निवासिनी, तथा घोर शिवारूप और भयंकर शिवरूप धारिणी, ऐसी चामुण्डा देवी चंड रूप होकर सदैव

चण्डमुण्डकरा देवी मुण्डदेहगता सती । कपालमालिनी क्रूरा खट्वाङ्गवरधारिणी ॥१६
आकाशमातरो देव्यस्तथान्या लोकमातरः । भूतानां मातरः सर्वास्तथान्याः पितृमातरः ॥१७
वृद्धिश्राद्धेषु पूज्यन्ते यास्तु देव्यो मनीषिभिः । मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे इति मातृमुखास्तथा ॥१८
पितामही तु तन्माता वृद्धा या च पितामही । इत्येतास्तु पितामह्यः शान्तिं ते पितृमातरः ॥१९
सर्वा मातृमहादेव्यः स्वायुधाग्रप्रपाणयः । जगद्व्याप्य प्रतिष्ठन्त्यो बलिकामा महोदयाः ॥२०
शान्तिं कुर्वन्तु ता नित्यमादित्याराधने रताः । शान्तेन चेतसा शान्त्यः शान्तये तव शान्तिदाः ॥२१
सर्वावयवमुख्येन गात्रेण च सुमध्यमा । पीतश्यामातिसौम्येन स्निग्धवर्णेन शोभना ॥२२
ललाटतिलकोपेता चन्द्ररेखार्धधारिणी । चित्राम्बरधरा देवी सर्वाभरणभूषिता ॥२३
वरा स्त्रीमयरूपाणां शोभा गुणसुसम्पदा । भावनामात्रसन्तुष्टा उमा देवी वरप्रदा ॥२४
साक्षादागत्य रूपेण शान्तेनामिततेजसा । शान्तिं करोतु ते प्रीता आदित्याराधने रता ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे दशमुखे अग्निकार्यविधौ
सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७७।

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

अरुण उवाच

अबलो बालरूपेण खट्वाङ्गशिखिवाहनः । पूर्वेण वदनः श्रीमांस्त्रिशिखः शक्तिसंयुतः ॥१

तुम्हें शांति प्रदान करें ।१३-१५। जो चंड, मुंड को हाथ में लिए एवं मुण्ड के देह में व्याप्त हैं । आकाश मातृकाएँ अन्य लोक मातृकाएँ, भूतमातृकाएँ, पितृमातृकाएँ, वृद्धि श्राद्ध में मनीजियों द्वारा पूजित होने वाली माता, प्रमाता, एवं वृद्धप्रमाता रूप प्रधान मातृकाएँ, पितामही, प्रपितामही, तथा वृद्धप्रपितामही ये पितृ मातृकाएँ तुम्हें शांति प्रदान करें ।१६-१९। समस्त मातृ महादेवियाँ हांथों से अपने तीक्षण अस्त्रों को लिए बलिग्रहण एवं महान् अभ्युदय करने के लिए जगत् में व्याप्त होकर प्रतिष्ठित हैं ।२०। आदित्य की आराधना में अनुरक्त रहने वाली, एवं शांति स्वरूप वे देवियाँ शांत चित्त से तुम्हें शांतिदायक हों ।२१। समस्त उत्तम अंगों एवं सौन्दर्य पूर्ण मध्यम भाग (कटि) वाले, पीत, श्यामल एवं अति सौम्य मनमोहन रूप रंग के कारण सौन्दर्य पूर्ण, भाल में तिलक एवं चन्द्रार्ध की रेखा को धारण किये, चित्र विचित्र के वस्त्र तथा समस्त आभरणों से सुशोभित, स्त्रियों में परम सुन्दरी, शोभासम्पन्न, गुणपूर्ण, भावना मात्र से संतुष्ट होने वाली आदित्य की आरधना में रत ऐसी वरप्रदायिनी उमादेवी साक्षात् आकर अपने अजेय तेज एवं शांतिरूप से प्रसन्न होकर तुम्हें शांति प्रदान करें ।२२-२५

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में दशमुख अग्नि कार्य विधान वर्णन
नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७७।

अध्याय १७८

सौरधर्म का वर्णन

अरुण बोले—बालरूप से बलहीन, खट्वांग एवं मयूर वाहन वाले पूर्वाभिमुख, धीमान्, तीन शिखा

कृत्तिकायाश्च रुद्रस्य चाङ्गोद्भूतः सुरार्चितः । कार्तिकेयो महातेजा आदित्यवरदर्पितः ॥
शान्तिं करोतु ते नित्यं बलं सौख्यं च तेजसा ॥२
आत्रेयीबलवान्देव आरोग्यं च खगाधिप । श्वेतवस्त्रपरीधानस्त्र्यक्षः कनकसुप्रभः ॥३
शूलहस्तो महाप्राज्ञो नन्दीशो रविभावितः । शान्तिं करोतु ते शान्तो धर्मे च मतिमुत्तमाम् ॥४
धर्मेतरावुभौ नित्यमचलः सम्प्रयच्छतु । महोदरो महाकायः स्निग्धाञ्जनसमप्रभः ॥५
एकदंष्ट्रोत्कटो देवो गजवक्त्रो महाबलः । नागयज्ञोपवीतेन नानाभरणभूषितः ॥६
सर्वार्थसम्पदोद्धारो गणाध्यक्षो वरप्रदः । भीमस्य तनयो देवो नायकोऽस्य विनायकः ॥
करोतु ते महाशान्तिं भास्करार्चनतत्परः ॥७
इन्द्रनीलनिभस्त्र्यक्षो दीप्तशूलायुधोद्यतः । रक्ताम्बरधरः श्रीमान्कृष्णाङ्गो नागभूषणः ॥८
पापापनोदमतुलमलक्ष्यो मलनाशनः । करोतु ते महाशान्तिं प्रीतः प्रीतेन चेतसा ॥९
वराम्बरधरा कन्या नानालङ्कारभूषिता । त्रिदशानां च जननी पुण्या लोकनमस्कृता ॥१०
सर्वसिद्धिकरा देवी प्रसादपरमास्पदा । शान्तिं करोतु ते माता भुवनस्य खगाधिप ॥११
स्निग्धश्यामेन वर्णेन महामहिषमर्दनी । धनुश्चक्रप्रहरणा खड्गपट्टिशधारिणी ॥१२
आतर्जन्यायतकरा सर्वोपद्रवनाशिनी । शान्तिं करोतु ते दुर्गा भवानी च शिवा तथा ॥१३
अतिसूक्ष्मो ह्यतिक्रोधस्त्र्यक्षो भृङ्गिरिटिर्महान् । सूर्यात्मको महावीरः सूर्यैकगतमानसः ॥

शक्ति सम्पन्न, कृत्तिकाओं और रुद्र द्वारा उत्पन्न, देव-चरित्र तथा आदित्य के वर प्रदान से मानपूर्ण, ऐसे महान्तेजस्वी कार्तिकेय अपने तेज द्वारा नित्य सौख्य एवं बल प्रदान करते हुए तुम्हें शांति प्रदान करें।१-२। खगाधिप ! आत्रेयी (अत्रि के पुत्र), बलवान्, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले, त्र्यम्बक, कनक की भाँति कांतिपूर्ण, हाथ में शूल लिए, महाप्राज्ञ, नंदीश, तथा रविप्रिय, ऐसे शान्त स्वरूप शिव, उत्तम धार्मिक बुद्धि, आरोग्य, एवं शांति प्रदान करें। तथा धर्म के अतिरिक्त आरोग्य एवं शांति तो अचल होकर नित्य किया करें। महान उदर वाले, विशालकाय, मनोरम अंजन के समान कांतियुक्त, एक दाँत वाले, उत्कट, गजमुख, महाबली, नागयज्ञ के उपवीत (यज्ञोपवीत), एवं भाँति-भाँति के आभरणों से सुसज्जित, समस्त अर्थ संपत्तियों के उद्धारक, गणों के अध्यक्ष, वरदायक एवं शिव के पुत्र देवनायक विनायक देव भास्कर की पूजा में तत्पर रहते हुए तुम्हे महाशांति प्रदान करें। इन्द्रनील की भाँति प्रभापूर्ण, तीन नेत्र वाले, प्रदीप्त शूल अस्त्र लिए रक्ताम्बरधारी, श्रीमान्, कृष्णांग, नागभूषण भूषित, अतुलपापों के नाशक, अदृश्य, मलनाशक, ऐसे देव प्रसन्नता पूर्ण चित्त से तुम्हें महाशांति प्रदान करें।३-९। सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित कन्या, भाँति-भाँति के अलंकारों से अलंकृत, देवों को उत्पन्न करने वाली, पुण्यस्वरूप, लोकों की वन्दनीया, सर्वसिद्धिदायिनी, लोकमाता, प्रसन्नतारूप उत्तमस्थान स्थित ऐसी देवी तुम्हें शांति प्रदान करें।१०-११। मनमोहक श्यामल वर्ण वाली, महामहिष का मर्दन करने वाली, धनुष, चक्र, खड्ग एवं पट्टिश अस्त्र धारण करने वाली तर्जनी तक हांथ फैलाकर समस्त उपद्रवों के नाश करने वाली दुर्गा एवं शिवा भवानी तुम्हें शांति प्रदानकरें।१२-१३। अतिसूक्ष्म, अतिक्रुद्ध, तीन नेत्र वाले, सूर्यात्मक,, महावीर, सूर्य ध्याननिमग्न , सूर्य की भक्ति करने वाले

सूर्यभक्तिकरो नित्यं शिवं ते सम्प्रयच्छतु ॥१४
प्रचण्डगणसैन्येशो महाघण्टाक्षधारकः । अक्षमालार्पितकरश्चाक्षचण्डेश्वरो वरः ॥१५
चण्डपापहरो नित्यं ब्रह्महत्याविनाशनः । शान्तिं करोतु ते नित्यमादित्याराधने रतः ॥
करोति च महायोगी कल्याणानां परम्पराम् ॥१६
आकाशमातरो दिव्यास्तथान्या देवमातरः । सूर्यार्पणपरा देव्यो जगद्व्याप्य व्यवस्थिताः ॥
शान्तिं कुर्वन्तु मे नित्यं मातरः सुरपूजिताः ॥१७
ये रुद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः । मातरो रुद्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥१८
विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः । सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्तु मे बलिम् ॥
सिद्धिं कुर्वन्तु ते नित्यं भयेभ्यः पान्तु सर्वतः ॥१९
ऐन्द्रादयो गणा ये च वज्रहस्ता महाबलाः । हिमकुन्देन्दुसदृशा नीलकृष्णाङ्गलोहिताः ॥२०
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च पातालतलवासिनः । ऐन्द्राः शान्तिं प्रकुर्वन्तु भद्राणि च पुनः पुनः ॥२१
आग्नेय्यां ये भूताः सर्वे ध्रुवहत्यानुषङ्गिणः । सूर्यानुरक्ता रक्ताभा जपासुमनिभास्तथा ॥२२
विरक्तलोहिता दिव्या आग्नेय्यां भास्करादयः । आदित्याराधनपरा आदित्यगतमानसाः ॥२३
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं प्रयच्छन्तुच बलिं मम । भयाऽऽदित्यसमा[1] ये तु सततं दण्डपाणयः ॥
आदित्याराधनपराः क प्रयच्छन्तु ते सदा ॥२४

ऐसे महान् देव नन्दिकेश्वर, तुम्हारा नित्य कल्याण करें।१४। प्रचण्ड गणों वाली सेनाओं के अधिनायक, महान् घंटा एवं अक्षमाला धारण करने वाले, हाथ में अक्षमाला लिए ऐसे अक्ष चण्डेश्वर जो प्रचण्ड पापों एवं ब्रह्म हत्या का नित्य विनाश करते हैं, सूर्य की आराधना करते हुए तुम्हें शांन्ति एवं महायोगी कल्याणों की अनवरत परम्परा प्रदान करें।१५-१६। आकाश माताएँ, देवमाताएँ, एवं सूर्य परायण ये देवियाँ जगत् में व्याप्त होकर स्थित हैं, इन्हें देवगण पूजते हैं। ये दयालु हों मुझे शांति प्रदान करें।१७। रुद्ररूप, भीषण कर्म करने वाले, भीषण स्थान के निवासी, एवं माताएँ, गणनायक, तथा विघ्नस्वरूप होकर जो दिशाओं एवं विदिशाओं में स्थित हैं, वे सभी प्रसन्न चित्त होकर इस मेरी बलि को स्वीकार करें और मुझे सिद्धि प्रदान करते हुए नित्य भय से मेरी रक्षा करें।१८-१९। हाथ में वज्र लिए महाबली इन्द्र के गण जो हिम, कुन्द, एवं इन्दु की भाँति कांति वाले, नील कृष्ण, एवं रक्तवर्ण, तथा दिव्य अंतरिक्ष, भूमि एवं पाताल तल में निवास करते हैं, शांति प्रदान करते हुए बार बार कल्याण प्रदान करें। आग्येन दिशा के निवासी ध्रुव की आकस्मिक हत्या की चेष्टा करने वाले, सूर्य में सानुरक्त, रक्त वर्ण, प्रभापूर्ण, जपापुष्प एवं रक्त के समान वर्ण वाले लोहित वर्ण, दिव्य, आग्नेय दिशा में भास्करादि, आदित्य में लीन होकर उनकी पूजा करने वाले, ये सभी देव बलि प्रदान पूर्वक तुम्हें शांति प्रदान करें। आदित्य के समान प्रभापूर्ण एवं हाथ में दण्ड लेकर निरन्तर सूर्य की आराधना करते हुए सदैव तुम्हें सुख प्रदान करें।२०-२४।

---

१. प्रभयेत्यर्थः।

ऐशान्यां संस्थिता ये तु प्रशान्ताः शूलपाणयः। भस्मोद्धूलितदेहाश्च नीलकण्ठा विलोहिताः ॥२५
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च पातालतलवासिनः। सूर्यपूजाकरा नित्यं पूजयित्वांशुमालिनम् ॥२६
ततः सुप्रीतमनसो लोकपालैः समन्विताः। शान्तिं कुर्वन्तु मे नित्यं कं प्रयच्छन्तु पूजिताः ॥२७
अमरावती पुरी नाम पूर्वभागे व्यवस्थिता। विद्याधरगणाकीर्णा सिद्धगन्धर्वसेविता ॥२८
रत्नप्राकाररुचिरा महारत्नोपशोभिता। तत्र देवपतिः श्रीमान्वज्रपाणिर्महाबलः ॥
गोपतिर्गोसहस्रेण शोभमानेन शोभते ॥२९
ऐरावतगजारूढो गैरिकाभो महाद्युतिः। देवेन्द्रः सततं हृष्ट आदित्याराधने रतः ॥३०
सूर्यज्ञानैकपरमः सूर्यभक्तिसमन्वितः। सूर्यप्रणामः परमां शान्तिं तेऽद्य प्रयच्छतु ॥३१
आग्नेयदिग्विभागे तु पुरी तेजस्वती शुभा। नानादेवगणाकीर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥३२
तत्र ज्वाला समाकीर्णो दीप्ताङ्गारसमद्युतिः। पुरगो वह्नो देवो ज्वलनः पापनाशनः ॥३३
आदित्याराधनरत आदित्यगतमानसः। शान्तिं करोतु ते देवस्तथा पापपरिक्षयम् ॥३४
वैवस्वती पुरी रम्या दक्षिणेन महात्मनः। सुरासुरशताकीर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥३५
तत्र कुन्देन्दुसंकाशो हरिपिङ्गललोचनः। महामहिषमारूढः कृष्णस्रग्वस्त्रभूषणः ॥३६
अन्तकोऽथ महातेजाः सूर्यधर्मपरायणः। आदित्याराधनपरः क्षेमारोग्ये ददातु ते ॥३७

ऐशान्य में स्थित होकर अत्यन्त शांत, हाथ में शूल लिए, भस्म भूषित देह, नीलकण्ठ, लोहित वर्ण, दिव्य, अंतरिक्ष, भूमि तथा पाताल तल वासी, सूर्य के पूजक, जो नित्य सूर्य की पूजा करते हैं, लोकपालों के समेत वे सभी देव पूजित होने पर शांति-सुख प्रदान करे।२५-२७। पूर्व भाग में अमरावती नामक पुरी स्थित है उसमें विद्याधरों के गण एवं सिद्ध तथा गन्धर्वों के गण निवास करते हैं। उनके रत्नों से प्राकार सुसज्जित है एवं वह महारत्नों से सुशोभित है, वहाँ हाथ में वज्र लिये महाबली ब्रह्म अपने सहस्र किरणों समेत देवनायक श्रीमान् सूर्य देव सुशोभित हैं। ऐरावत हांथी पर बैठ कर जिसकी सुवर्ण की भाँति कान्ति तथा महान् प्रकाश पूर्ण होकर देवेन्द्र, प्रसन्नतापूर्वक चित्त से निरन्तर सूर्य की आराधना में अनुरक्त रहते हैं उनका सूर्य ज्ञान ही एक परमोत्तम ज्ञान है वे सूर्य की भक्ति अपनाकर सूर्य को प्रणाम करते हुए आज तुम्हें शांति प्रदान करें।२८-३१। आग्नेय दिशा में शुभ तेजस्वती नामक पुरी वर्तमान है, उसमें भाँति-भाँति के देव गणों का आवास स्थान है, एवं पुरी भी अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित है। उस पुरी में ज्वालाओं से आच्छन्न एवं प्रदीप्त अंगार के समान प्रभापूर्ण अग्नि देव अधिष्ठित हैं, जो ज्वलनात्मक, पापनाशक सूर्य की आराधना में तन्मय आदित्य के ध्यान में निमग्न रहते हैं, वे देव शांति प्रदान करते हुए तुम्हारे समस्त पापों का उन्मूलन करें।३२-३४। दक्षिण दिशा में महात्मा (यम) की रमणीक वैवस्वती नामक पुरी है, उसमें सैकड़ों देव-राक्षस निवास करते हैं, और वह स्वयं अनेक रत्नों से विभूषित हैं। उसमें कुंद एवं इंदु के समान कांति बन्दरों की भाँति पिंगलनेत्र, महान् महिष वाहन पर स्थित, काले वस्त्र एवं मालाओं से सुसज्जित। महातेजस्वी, सूर्य धर्म का पारायण करने वाले तथा उनकी पूजा में निमग्न होने वाले अन्तक (यमराज) देव अधिष्ठित हैं, ये तुम्हारे लिए कुशल एवं आरोग्य प्रदान करें।३५-३७। नैर्ऋत्य दिशा में कृष्णा नामक पुरी स्थित है, उसमें मोहात्मक राक्षसगण,

नैर्ऋते दिग्विभागे तु पुरी कृष्णेति विश्रुता । मोहरक्षोगणाशौचपिशाचप्रेतसङ्कुला ॥३८
तत्र कुन्दनिभो देवो रक्तस्रग्वस्त्रभूषणः । खड्गपाणिर्महातेजाः करालवदनोज्ज्वलः ॥३९
रक्षेन्द्रो वसते नित्यमादित्याराधने रतः । करोतु मे सदा शान्तिं धनं धान्यं प्रयच्छतु ॥४०
पश्चिमे तु दिशो भागे पुरी शुद्धवती सदा । नानाभोगिसमाकीर्णा नानाकिन्नरसेविता ॥४१
तत्र कुन्देन्दुसंकाशो हरिपिङ्गललोचनः । शान्तिं करोतु मे प्रीतः शान्तः शान्तेन चेतसा ॥४२
यशोवती पुरी रम्या ऐशानीं दिशमाश्रिता । नानागणसमाकीर्णा नानकृतशुभालया ॥
तेजःप्रकारपर्यन्ता अनौपम्या सदोज्ज्वला ॥४३
तत्र कुन्देन्दुसंकाशश्चाम्बुजाक्षो विभूषितः । त्रिनेत्रः शान्तरूपात्मा अक्षमाला धराधरः ॥
ईशानः परमो देवः सदा शान्तिं प्रयच्छतु ॥४४
भूलोके तु भुवर्लोके निवसन्ति च ये सदा । देवादेवाः शुभायुक्ताः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४५
महर्लोके जनोलोके परलोके गताश्च ये । ते सर्वे मुदिता देवाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४६
सरस्वती सूर्यभक्ता शान्तिवा विदधातु मे । चारुचामीकरस्था[१] या सरोजकरपल्लवा ॥
सूर्यभक्त्याश्रिता देवी विभूतिं ते प्रयच्छतु ॥४७
हरेण सुविचित्रेण भास्वत्कनकमेखला । अपराजिता सूर्यभक्ता करोतु विजयं तव ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे सौरधर्मवर्णनं नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७८।

अशौच पिशाच एवं प्रेतों के समूह भरे पड़े हैं । उसके अधीश्वर रक्षेन्द्र देव वहाँ निवास करते है, जो कुन्द के समान प्रभा पूर्ण, रक्तवर्ण की माला एवं वस्त्रों से विभूषित, हाथ में खड्ग लिए, महातेजसम्पन्न, कराल (भीषण) मुख एवं उज्ज्वल वर्ण के हैं । वे नित्य आदित्याराधन में अनुरक्त रहते हैं, मुझे भी सदैव शांति, धन, एवं धान्य प्रदान करने की कृपा करें ।३८-४०। पश्चिम दिशा में शुद्धवती नामक पुरी सुशोभित है, उसमें सदैव अनेक प्रकार के भोगी (नाग) एवं अनेक किन्नर गण विहार करते हैं । उसके अधिनायक जो कुन्द एवं इन्दु के समान कांति, बन्दरों की भाँति पिंगल नेत्र वाले हैं, प्रसन्नतापूर्ण तथा शांतचित्त होकर मुझे शांति प्रदान करें ।४१-४२। ऐशान्य दिशा में सौन्दर्य पूर्ण यज्ञोपवीत नामक नामक पुरी स्थित है, जिसमें भाँति-भाँति के गण, अनेक प्रकार के शुभ गृह हैं तथा जो स्वयं तेजपूर्ण आकार-प्राकार, अनुपम, एवं सदैव उज्ज्वल वर्ण की है । उसमें अधिष्ठित परमोत्तम ईशान देव, जो कुन्द तथा इन्दु की भाँति कान्ति, कमल के समान नेत्र, सौन्दर्यपूर्ण, तीन नेत्र, शांतरूप, अक्ष (रुद्र या स्फटिक) की माला धारण किये हैं, सर्वदा शांति प्रदान करें ।४३-४४। भूलोक एवं भुवर्लोक में सदैव निवास करने वाले देव तथा उससे इतर लोग सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें ।४५। महर्लोक, जनलोक एवं परलोक में स्थित वे देवगण प्रसन्नता पूर्ण तुम्हें सदैव शांति प्रदान करते रहें ।४६। सूर्य भक्त एवं शांतिदायिनी सरस्वती देवी मेरे लिए कल्याण प्रदान करें । और ऐश्वर्य भी । जो सौन्दर्यपूर्ण सुवर्ण के सिंहासन में आसीन, कमल की भाँति करपल्लव (हाथ) से भूषित और सूर्य भक्ति के आश्रित हैं ।४७। चित्र विचित्र हार एवं प्रदीप्त सुवर्ण की मेखला (करधनी) पहने सूर्य भक्त अपराजिता नामक देवी तुम्हें विजय प्रदान करें ।४८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म वर्णन नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७८।

अथैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

अरुण उवाच

कृत्तिका परमा देवी रोहिणी च वरानना । श्रीमन्मृगशिरो भद्रा आर्द्रा चाप्यपरोज्ज्वला ।।१
पुनर्वसुस्तथा पुष्य आश्लेषा च तथाधिप । सूर्यार्चनरता नित्यं सूर्यभावानुभाविताः ।।२
अर्चयन्ति सदा देवमादित्यं सुरते सदा । नक्षत्रमातरो ह्येताः प्रभामालाविभूषिताः ।।३
मघा सर्वगुणोपेता पूर्वा चैव तु फाल्गुनी । स्वाती विशाखा वरदा दक्षिणां दिशमाश्रिताः ।।४
अर्चयन्ति सदा देवमादित्यं सुरपूजितम् । तवापि शान्तिकं द्योतं कुर्वन्तु गगनोदिताः ।।५
अनुराधा तथा ज्येष्ठा मूलं सूर्यपुरःसराः । पूर्वाषाढा महावीर्या आषाढा चोत्तरा तथा ।।६
अभिजिन्नाम नक्षत्रं श्रवणं च बहुश्रुतम् । एताः पश्चिमतो दीप्ता राजन्ते चानुमूर्तयः ।।७
भास्करं पूजयन्त्येताः सर्वकालं सुभाविताः । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिं च महर्द्धिकाम् ।।८
धनिष्ठा शतभिषा तु पूर्वभाद्रपदा तथा ।।९
उत्तरा भाद्ररेवत्यौ चाश्विनी च महामते । भरणी च महादेवी नित्यमुत्तरतः स्थिताः ।।१०
सूर्यार्चनरता नित्यमादित्यगतमानसाः । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिं च महर्द्धिकाम् ।।११
मेषो मृगाधिपः सिंहो धनुर्दीप्तिमतां वरः । पूर्वेण भासयन्त्येते सूर्ययोगपराः शुभाः ।।

अध्याय १७९

सौरधर्म का वर्णन

अरुण बोले—अधिप ! उत्तम कृत्तिका देवी, सौन्दर्य पूर्ण मुख वाली रोहिणी, श्रीमान्, मृगशिरा, भद्र आकृति वाली उज्ज्वल वर्ण की आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा, ये सभी नित्य सूर्यपूजा में अनुरक्त एवं सूर्य की ही भावना (प्रेम) में ओतप्रोत रहकर सदैव सूर्य की आराधना किया करते हैं तथा वे नक्षत्र मातृकाएँ भी प्रभा रूपी मालाओं से विभूषित हैं । समस्त गुणसम्पन्न मघा, पूर्वा, फाल्गुनी, स्वाती, एवं वरदायिनी विशाखा दक्षिण दिशा में स्थित रहकर सुरपूज्य सूर्य देव की सदैव पूजा करते हैं । आकाश में उदय होने वाले ये सभी नक्षत्र-देव तुम्हें शांति समेत प्रकाश पूर्ण करें ।१-५। अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, सूर्य प्रधान पूर्वाषाढ तथा महापराक्रमशालिनी उत्तराषाढ़ा, अभिजित् नामक नक्षत्र, एवं प्रख्यात श्रवण, ये सभी देव जो क्रमशः पश्चिम की ओर से प्रकाश पूर्ण तथा सुशोभित होकर उत्तम भावना रखते हुए सभी समय में सूर्य की पूजा करते रहते हैं, तुम्हारे लिए नित्य शांति एवं महान् ऐश्वर्य प्रदान करें ।६-८। धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद, अश्विनी, तथा महामते ! भरणी महादेवी ये सभी जो नित्य उत्तर की ओर स्थित रहकर सूर्य की पूजा में तन्मय होकर रहती हैं तुम्हें नित्य शांति उत्तम बुद्धि सम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान करें ।९-११। मेष, मृगाधिनायक सिंह तथा तेजस्वियों का उत्तम धनु जो सूर्य के साथ योग करने के लिए तत्पर रहते हैं ये सभी जो पूरब की ओर प्रभापूर्ण भासित

शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं भक्त्या सूर्यपदाम्बुजे ॥१२
वृषः कन्या च परमा मकरश्चापि बुद्धिमान् । एते दक्षिणभागे तु पूजयन्ति रविं सदा ॥
भक्त्या परमया नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥१३
मिथुनं च तुला कुम्भः पश्चिमे च व्यवस्थिताः । जपन्त्येते सदाकालमादित्यं ग्रहनायकम् ॥१४
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं खखोल्काज्ञानतत्पराः । सतपोदत्तपुष्पाभ्यां ये स्मृता सततं बुधैः ॥१५
ऋषयः सप्त विख्याता ध्रुवान्ताः परमोज्ज्वलाः । भानुप्रसादात्सम्पन्नाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥१६
कश्यपो गालवो गार्ग्यो विश्वामित्रो महामुनिः । मुनिर्दक्षो वशिष्ठश्च मार्कण्डः पुलहः क्रतुः ॥१७
नारदो भृगुरात्रेयो भारद्वाजश्च वै मुनिः । वाल्मीकि. कौशिको वात्स्यः शाकल्योऽथ पुनर्वसुः ॥१८
शालङ्कायन इत्येते ऋषयोऽथ महातपाः । सूर्यध्यानैकपरमाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥१९
मुनिकन्या महाभागा ऋषिकन्याः कुमारिकाः । सूर्यार्चनरता नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥२०
सिद्धाः समृद्धतपसो ये चान्ये वै महातपाः । विद्याधरा महात्मानो गरुडश्च त्वया सह ॥२१
आदित्यपरमा ह्येते आदित्याराधने रताः । सिद्धिं ते सम्प्रयच्छन्तु आशीर्वादपरायणाः ॥२२
नमुचिर्दैत्यराजेन्द्रः शङ्कुकर्णो महाबलः । महानाथोऽथ विख्यातो दैत्यः परमवीर्यवान् ॥२३
ग्रहाधिपस्य देवस्य नित्यं पूजापरायणाः । बलं वीर्यं च ते ऋद्धिमारोग्यं च बुवन्तु ते ॥२४
महाढ्यो यो हयग्रीवः प्रह्लादः प्रभयान्वितः । तानैकाग्निमुखो दैत्यः कालनेमिर्महाबलः ॥२५
एते दैत्या महात्मानःसूर्यभावेन भाविताः । तुष्टिं बलं तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छन्तु सुरारयः ॥२६

होते हैं और नित्य सूर्य के चरण कमल की भक्ति अपनाते रहते है, तुम्हें शांति प्रदान करें । वृष, उत्तम कन्या, बुद्धिमान् मकर, ये सब दक्षिण की ओर स्थित रहकर उत्तम भक्ति पूर्वक सदैव सूर्य की पूजा करते हैं, तुम्हें नित्य शांति प्रदान करें ।१२-१३। मिथुन, तुला, और कुंभ पश्चिम की ओर स्थित होकर सदैव ग्रहाधीश्वर सूर्य की आराधना करते हैं, तुम्हें शाति प्रदान करें, खखोल्क ज्ञान के लिए तत्पर जिन्हें तप पूर्वक दिये गये दो पुष्पों द्वारा बुधजन स्मरण करते हैं ।१४-१५। विख्यात सातों ऋषि, जो ध्रुव के समीप अत्यन्त उज्ज्वल वर्ण होकर स्थित हैं तथा सूर्य की कृपावश सुसम्पन्न हैं, सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें कश्यप, गालव, गार्ग्य, महामुनि विश्वामित्र, दक्ष मुनि, वशिष्ठ, मार्कण्डेय, पुलह, क्रतु, नारद, भृगु, आत्रेय, भारद्वाज मुनि, वाल्मीकि, कौशिक, वात्स्य, शाकल्य, पुनर्वसु और शाकलायन, ये महातपस्वी ऋषिगण, परमोत्तम एक सूर्य का ही ध्यान करते रहते हैं ये सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें ।१६-१९। पुण्य स्वरूप मुनि की कन्याएं ऋषि की कन्याएँ, कुमारियाँ, नित्य सूर्य की उपासना में जो अनुरक्त रहती हैं, सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें ।२०। तप से समृद्ध सिद्ध, अन्य महातपस्वी, महात्मा विद्याधर, तुम्हारे साथ गरुड़ ये सर्पप्रिय आदित्य की आराधना में सदा अनुरक्त एवं आशीर्वाद प्रदान करते हुए तुम्हें सिद्धि प्रदान करें ।२१-२२। दैत्य राज नमुचि, महाबली शंकुकर्ण, और महानाथ, से उत्तम पराक्रम संपन्न तथा ख्याति प्राप्त दैत्य हैं जो ग्रहाधीश्वर सूर्य देव की नित्यपूजा करते है, ये सभी, तुम्हें बल वीर्य, ऋद्धि एवं आरोग्य प्रदान करें । महान्, हयग्रीव, प्रभापूर्ण प्रह्लाद, अग्निमुख दैत्य, महाबली कालनेमि, ये सभी महात्मा दैत्य गण सूर्य की भावना से मुग्ध रहते हैं, तुम्हें तुष्टि, बल, एवं आरोग्य प्रदान करें ।२३-२६।

वैरोचनो हिरण्याक्षस्तुर्वसुश्च सुलोचनः । मुचकुन्दो मुकुन्दश्च दैत्यो रैवतकस्तथा ॥२७
भावेन परमेणेमं यजन्ते सततं रविम् । सततं च शुभात्मानः पुष्टिं कुर्वन्तु ते सदा ॥२८
दैत्यपत्न्यो महाभागा दैत्यानां कन्यकाः शुभाः । कुमारा ये च दैत्यानां शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥२९
आरक्तेन शरीरेण रक्तान्तायतलोचनाः । महाभागाः कृताटोपाः शङ्खाद्याः कृतलक्षणाः ॥३०
अनन्तो नागराजेन्द्र आदित्याराधने रतः । महापापविषं हत्वा शान्तिमाशु करोतु ते ॥३१
अतिपीतेन देहेन विस्फुरद्भोगसम्पदा । तेजसा चातिदीप्तेन कृतस्वस्तिकलाञ्छनः ॥३२
नागराट् तक्षकः श्रीमान्नामकोटया समन्वितः । करोतु ते महाशान्तिं सर्वदोषविषापहाम् ॥३३
अतिकृष्णेन वर्णेन स्फुटाधिकटमस्तकः । कण्ठरेखात्रयोपेतो घोरदंष्ट्रायुधोद्यतः ॥३४
कर्कोटको महानागो विष दर्पबलान्वितः । विषशस्त्राग्निसन्तापं हत्वा शान्तिं करोतु ते ॥३५
पद्मवर्णः पद्मकान्तिः फुल्लपद्मायतेक्षणः । ख्यातः पद्मो महानागो नित्यं भास्करपूजकः ॥३६
स ते शांतिं शुभं शीघ्रमचलं सम्प्रयच्छतु । श्यामेन देहभारेण श्रीमत्कमललोचनः ॥३७
विषदर्पबलोन्मत्तो ग्रीवायां रेखयान्वितः । शङ्खपालश्रिया दीप्तः सूर्यपादाब्जपूजकः ॥३८
महाविषं गरश्रेष्ठं हत्वा शांतिं करोतु ते । अतिगौरेण देहेन चंद्रार्धकृतशेखरः ॥३९
दीपभागे कृताटोपशुभलक्षणलक्षितः । कुलिको नाम नागेन्द्रो नित्यं सूर्यपरायणः ॥
अपहृत्य विषं घोरं करोतु तव शान्तिकम् ॥४०

वैरोचन, हिरण्याक्ष, तुर्वसु, सुलोचन, मुचकुन्द, मुकुन्द, दैत्य रैवतक, ये सभी अत्यन्त प्रेम पूर्ण हो कर निरन्तर सूर्य की पूजा करते हैं और स्वयं निरन्तर कल्याण मूर्ति भी हैं, सदैव तुम्हारी पुष्टि करते रहें।२७-२८। पुण्य स्वरूपा दैत्य की पत्नियाँ, उनकी शोभा पूर्ण कन्याएँ एवं कुमारगण सदैव तुम्हें शांति प्रदान करते रहें।२९। रक्त वर्ण की समस्त शरीर, रक्तवर्ण के विशाल नेत्र, महान् पुण्यात्मा, शंख आदि लक्षण सम्पन्न नागराजेन्द्र अनन्त जो आदित्य की आराधना में तल्लीन रहते हैं, महापाप रूपी विष के त्याग पूर्वक तुम्हारी शांति करें।३०-३१। जिसकी अत्यन्त पीत वर्ण की देह द्वारा भोग की सम्पत्ति स्फुरित होती रहती है, उस प्रदीप्त तेज से सम्पन्न मांगलिक अंकों से विभूषित सार्थक नाम वाले ऐसे श्रीमान् तक्षक नागराज, समस्त दोष वाले विष का अपहरण करने वाली महाशान्ति तुम्हें प्रदान करें।३२-३३। अत्यन्त कृष्ण वर्ण के होने के नाते जिसकी कटि और मस्तक स्फुट (साफ) दिखायी नहीं देता है, कण्ठ में तीन रेखाओं से अलंकृत, घोर दंष्ट्रा (दाढ के दाँत) रूप आयुध सम्पन्न विष के अभिमान से मत्त इस प्रकार के महानाग कर्कोटक विषजनित अग्नि संताप के त्याग पूर्वक तुम्हारी शांति करे।३४-३५। कमल वर्ण, कमल की कान्ति, खिले कमल की भाँति विशाल नेत्र, विख्यात, एवं भास्कर के आराधन करने वाले महानग पद्म तुम्हें शुभ एवं अचल संगीत शीघ्र प्रदान करें। श्यामल रंग की देह से सुशोभित, श्रीमान्, कमल लोचन, विषाभिमान से उन्मत्त रेखा युक्त ग्रीवा, सूर्य के कमल चरण के उपासक, ऐसे श्री सम्पन्न शंखपाल उस प्रखर महाविष के नाश पूर्वक तुम्हें शांति प्रदान करें। अत्यन्त गौरवर्ण की है, मस्तक में चन्द्रार्ध से शोभित, दीप भाग में विस्तृत शुभ लक्षणों से विभूषित, एवं नित्य सूर्य के पारायण करने वाले ऐसे कुलिक नामक नागेन्द्र घोर विष के अपहरण पूर्वक तुम्हारी शांति करें। जो अन्तरिक्ष में

अन्तरिक्षे च ये नागा ये नागाः स्वर्गसंस्थिताः । गिरिकन्दरदुर्गेषु ये नागा भुवि संस्थिताः ॥४१
पाताले ये स्थिता नागाः सर्वे यत्र समाहिताः । सूर्यपादार्चनासक्ताः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४२
नागिन्यो नागकन्याश्च तथा नागकुमारकाः । सूर्यभक्ताः सुमनसः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४३
य इदं नामसंस्थानं कीर्तयेच्छृणुयात्तथा । न तं सर्पा विहिंसन्ति न विषं क्रमते सदा ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मवर्णनं
नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७९।

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

शान्तिकवर्णनम्

गङ्गा पुण्या महादेवी यमुना नर्मदा नदी । गौतमी चापि कावेरी वरुणा देविका तथा ॥१
सर्वग्रहपतिं देवं लोकेशं लोकनायकम् । पूजयन्ति सदा नद्यः सूर्यसद्भावभाविताः ॥
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं सूर्यध्यानैकमानसाः ॥२
निरञ्जना नाम नदी शोणश्चापि महानदः । मन्दाकिनी च परमा तथा सन्निहिता शुभा ॥३
एताश्चान्याश्च बहवो भुवि दिव्यन्तरिक्षके । सूर्यार्चनरता नद्यः कुर्वन्तु तव शान्तिकम् ॥४
महावैश्रवणो देवो यक्षराजो महर्षिकः । यक्षकोटिपरीवारो यक्षसङ्ख्येयसंयुतः ॥५

रहने वाले, स्वर्ग में स्थित, पर्वतों के दुर्गम कंदराओं पृथिवी एवं पाताल में रहने वाले सभी नाग ध्यान मग्न होकर सूर्य की आराधना में अनुरक्त रहते है वे तुम्हें सदैव शांति प्रदान करते रहे।३६-४२। नागपत्नियाँ, नागकन्याएँ एवं उनके कुमार गण शांतचित्त होकर वे सभी सूर्य के भक्त गण सदैव शांति प्रदान करते रहें। जो कोई इस नाम के आख्यान का कीर्तन या श्रवण करते रहते हैं सर्पगण उनकी हिंसा नहीं करते, और उनके विष का संक्रमण भी कभी नहीं होता है।४३-४४

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म वर्णन नामक
एक सौ उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त।१८९।

अध्याय १८०

शांति का वर्णन

पुण्यरूपा गंगा, महादेवी, यमुना, नर्मदा, गौतमी, कावेरी, वरुणा, देविका ये सभी नदियाँ समस्त ग्रहों के अधीश्वर, देव, लोकपति, लोकनायक सूर्य की आराधना उनके प्रेम में मुग्ध होकर करती रहती हैं और सदैव सूर्य के ध्यान में ही निमग्न रहती हैं वे शांति करें।१-२। निरंजना नामक नदी, महानदशोण, उत्तम मन्दाकिनी तथा शुभ एवं सन्निहित रहने वाली अन्य और बहुत सी नदियाँ जो स्वर्ग और अंतरिक्ष में रहकर सूर्य की उपासना में अनुरक्त रहती हैं, तुम्हें शान्ति प्रदान करें।३-४। यक्षराज महावैश्रवण (कुबेर) देव जो महर्षिपुत्र, यक्ष के कोटि परिवारों समेत, महान् ऐश्वर्यशाली, सूर्य के चरण की सेवा में

महाविभवसम्पन्नः सूर्यपादार्चने रतः । सूर्यध्यानैकपरमः सूर्यभावेन भावितः ॥६
शान्तिं करोतु ते प्रीतः पद्मपत्रायतेक्षणः । मणिभद्रो महायक्षो मणिरत्नविभूषितः ॥७
मनोहरेण हारेण कण्ठलग्नेन राजते । यक्षिणीयक्षकन्याभिः परिवारितविग्रहः ॥
सूर्यार्चनसमासक्तः करोतु तव शान्तिकम् ॥८
सुचिरो नाम यक्षेन्द्रो मणिकुण्डलभूषितः । ललाटे हेमपटलप्रबद्धेन विराजते ॥९
बहुयक्षसमाकीर्णो यक्षैर्नमितविग्रहः । सूर्यपूजापरो युक्तः करोतु तव शान्तिकम् ॥१०
पाञ्चिको नाम यक्षेन्द्रः कण्ठाभरणभूषितः । कुक्कुटेन विचित्रेण बहुरत्नान्वितेन तु ॥११
यक्षवृन्दसमाकीर्णो यक्षकोटिसमन्वितः । सूर्यार्चनकरः श्रीमान्करोतु तव शान्तिकम् ॥१२
धृतराष्ट्रो महातेजा नानायक्षाधिपः खग । दिव्यपट्टः शुक्लच्छत्रो मणिकाञ्चनभूषितः ॥१३
सूर्यभक्तः सूर्यरतः सूर्यपूजापरायणः । सूर्यप्रसादसम्पन्नः करोतु तव शान्तिकम् ॥१४
विरूपाक्षश्च यक्षेन्द्रः श्वेतवासा महाद्युतिः । नानाकाञ्चनमालाभिरुपशोभितकन्धरः ॥१५
सूर्यपूजापरो भक्तः कञ्जाक्षः कञ्जसन्निभः । तेजसादित्यसंकाशः करोतु तव शान्तिकम् ॥१६
अन्तरिक्षगता यक्षा ये यक्षाः स्वर्गगामिनः । नानरूपधरा यक्षाः सूर्यभक्ता दृढव्रताः ॥१७
तद्भक्तास्तद्गमनसः सूर्यपूजासमुत्सुकाः । शान्तिं कुर्वंतु ते हृष्टाः शांताः शांतिपरायणाः ॥१८
यक्षिण्यो विविधाकारास्तथा यक्षकुमारकाः । यक्षकन्या महाभागाः सूर्याराधनतत्पराः ॥१९

अनुरक्त, एक सूर्य के उत्तम ध्यान में निमग्न एवं सूर्य की भावना में ओत-प्रोत हैं प्रसन्न होकर तुम्हें शांति प्रदान करें। कमल पत्र की भाँति विशाल नेत्र, मणिरत्नों से विभूषित महायक्ष मणिभद्र, जो कण्ठ में मनोहर हार से सुशोभित, तथा यक्ष की पत्नी, एवं कन्याओं समेत पविार की भाँति उन्हें साथ लेकर सूर्य की पूजा में आसक्त हैं, तुम्हारी शान्ति करें।५-८। जो मणि कुण्डलों से विभूषित, भाल में सुवर्ण पटल धारण किये अनेक यक्षों से घिरे, यक्षों द्वारा किये गये प्रणाम को स्वीकार करने के लिए नत मस्तक एवं सूर्य की पूजा में दत्तचित्त हैं ऐसे सुचिर नामक यक्षेन्द्र तुम्हें शांति प्रदान करें।९-१०। कण्ठाभरण से अलंकृत जिसमें चित्र विचित्र रत्नों द्वारा मुर्गे बनाये गये हों और स्वयं वह अनेक प्रकार के रत्नों से संयुक्त हो, करोड़ों यक्ष व्यूहों से आच्छन्न, एवं अनेकों यक्षों समेत सूर्य-पूजा में निमग्न रहते हैं, ऐसे श्रीमान् पांचिक नामक यक्षेन्द्र तुम्हें शांति प्रदान करें।११-१२। खग ! महातेजा, अनेक यक्षों के अधिनायक, दिव्य (वस्त्र) एवं मणि तथा सुवर्ण से विभूषित शुक्लछत्र को धारण करने वाले, सूर्य भक्त, सूर्य में अनुरक्त, सूर्य पूजा परायण, एवं सूर्य की कृपा के पात्र, ऐसे धृतराष्ट्र नामक यक्ष तुम्हें शांति प्रदान करें।१३-१४। विरूपाक्ष नामक यक्षेन्द्र, जो श्वेत वस्त्र, महान् प्रकाश पूर्ण, भाँति-भाँति की काञ्चन-मालाओं से अलंकृत। कन्ध प्रदेश, सूर्यपूजा परायण, भक्त, कमलनेत्र, कमल सौन्दर्यपूर्ण और आदित्य के समान तेजस्वी हैं, तुम्हें शान्ति प्रदान करें।१५-१६। अन्तरिक्ष में स्थित यक्ष, स्वर्गगामी, अनेक रूप धारण करने वाले, सूर्य के भक्त, दृढ़ व्रती, सूर्य में भक्ति पूर्वक एकाग्र चित्त वाले, और सूर्य की पूजा के लिए सदैव समुत्सुक रहने वाले, ये सभी यक्ष, हर्ष पूर्ण, शांत, एवं शान्ति परायण होकर तुम्हें शांति प्रदाने करें।१७-१८। अनेक प्रकार के आकार वाली उनकी पत्नियाँ, उनके कुमार, एवं उनकी पुण्य स्वरूप

शान्तिं स्वस्त्ययनं क्षेमं बलं कल्याणमुत्तमम् । सिद्धिं चाशु प्रयच्छन्तु नित्यं च सुसमाहिताः ।।२०
पर्वताः सर्वतः सर्वे वृक्षाश्चैव महर्द्धिकाः । सूर्यभक्ताः सदा सर्वे शान्ति कुर्वन्तु ते सदा ।।२१
सागराः सर्वतः सर्वे गृहारण्यानि कृत्स्नशः । सूर्यस्याराधनपराः कुर्वन्तु तव शान्तिकम् ।।२२
राक्षसाः सर्वतः सर्वे घोररूपा महाबलाः । स्थलजा राक्षसा ये तु अन्तरिक्षगताश्च ये ।२३
पाताले राक्षसा ये तु नित्यं सूर्यार्चने रताः । शान्तिं कुर्वन्तु ते सर्वे तेजसा नित्यदीपिताः ।।२४
प्रेताः प्रेतगणाः सर्वे ये प्रेताः सर्वतोमुखाः । अतिदीप्ताश्च ये प्रेता ये प्रेता रुधिराशनाः ।।२५
अन्तरिक्षे च ये प्रेतास्तथा ये स्वर्गवासिनः । पाताले भूतले चापि ये प्रेताः कामरूपिणः ।।२६
एकचक्रो रथो यस्य यस्तु देवो वृषध्वजः । तेजसा तस्य देवस्य शान्ति कुर्वन्तु ते सदा ।।२७
ये पिशाचा महावीर्या वृद्धिमन्तो महाबलाः । नानारूपधराः सर्वे सर्वे च गुणवत्तराः ।।२८
अन्तरिक्षे पिशाचा ये स्वर्गे ये च महाबलाः पाताले भूतले ये च बहुरूपा मनोजवाः ।।२९
यस्याहं सारथिर्वीर यस्य त्वं तुरगः सदा । तेजसा तस्य देवस्य शान्ति कुर्वन्तु तेऽञ्जसा ।।३०
अपस्मारग्रहाः सर्वे सर्वे चापि ज्वरग्रहाः । ये च स्वर्गस्थिताः सर्वे भूमिगा ये ग्रहोत्तमाः ।।३१
पाताले तु ग्रहा ये च ये ग्रहाः सर्वतो गताः । दक्षिणे किरणे यस्य सूर्यस्य च स्थितो हरिः ।।३२
हरो यस्य सदा वामे ललाटे कञ्जजः स्थितः । तेजसा तस्य देवस्य शान्ति कुर्वन्तु ते सदा ।।३३
इति देवादयः सर्वे सूर्ययज्ञविधायिनः । कुर्वन्तु जगतः शान्तिं सूर्यभक्तेषु सर्वदा ।।३४

कन्याएँ, जो सूर्य की आराधना में सदैव तत्पर रहती हैं, ध्यानावस्थित होकर, शांति, स्वस्तयन (मंगल), क्षेम, बल, उत्तम कल्याण, तथा आशु (शीघ्र) सिद्धि नित्य प्रदान किया करें।१९-२०। साङ्गोपाङ्ग पर्वत, एवं महान् ऋद्धि संपन्न सभी वृक्ष, सूर्य भक्त होते हुए सदैव शांति प्रदान करें। सभी समुद्र, सम्पूर्ण गृह एवं अरण्य, सूर्य की आराधना में अनुरक्त होने के नाते तुम्हें शांति प्रदान करें।२१-२२। भीषण रूप एवं महान् बल शाली राक्षस गण, जो भूमि, अन्तरिक्ष एवं पाताल के निवासी हैं, नित्य सूर्य की अर्चना में अनुरक्त रहने के नाते उनके तेज द्वारा प्रदीप्त रहते हैं तुम्हें शांति प्रदान करें।२३-२४। प्रेत एवं सभी प्रेतगण, जो सर्वतोमुख (चारों ओर मुख वाले), अति प्रदीप्त, रक्तभोजी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, भूतल तथा पाताल में निवास करते हैं, स्वेच्छा रूप धारण करते रहते हैं, एक चक्के के रथ वाले और प्रधान वृषध्वज उस (सूर्य) देव की उपासना करते हैं, उस देव के तेज द्वारा तुम्हें शांति प्रदान करें।२५-२७। महापराक्रमी, वृद्धिसम्पन्न, महाबली, भाँति-भाँति के रूप धारण करने वाले, उत्तम गुणों से युक्त अंतरिक्ष, स्वर्ग, पाताल एवं पृथिवी में अनेक रूप धारण करके मन की भाँति द्रुतगामी होने वाले ऐसे पिशाच गण उस देव के तेज द्वारा वीर ! मैं जिसका सारथी और तू तुरग (घोड़े की भाँति वाहन) है, तुम्हें शीघ्र शांति प्रदान करें।२८-३०। अपस्मार (मृगी) के ग्रह, समस्त ज्वर के ग्रह, स्वर्ग और भूमि में रहने वाले उत्तम ग्रह, पाताल स्थायी ग्रह, तथा सर्वत्र प्राप्त होने वाले ग्रह, ऐसे ग्रहगण उस देव के तेज द्वारा, जिस सूर्य के दक्षिण किरण में हरि, बायें हर एवं ललाट में ब्रह्मा स्थित हैं, सदैव तुम्हें शांति प्रदान् करें।३१-३३। इस प्रकार सूर्य-यज्ञ के विधान के आरम्भ करने वाले समस्त देव आदि गण, जगत् एवं सूर्य भक्तों की सदैव

जयःसूर्याय देवाय तमोहन्त्रे विवस्वते । जयप्रदाय सूर्याय भास्कराय नमोस्तु ते ।।३५
ग्रहोत्तमाय देवाय जयः कल्याणकारिणे । जयः पद्मविकाशाय बुधरूपाय ते नमः।।३६
जयः दीप्तिविधानाय जयः शान्तिविधायिने । तमोघ्नाय जयायैव अजिताय नमोनमः ।।३७
जयार्क जयदीप्तीश सहस्रकिरणोज्ज्वल । जय निर्मितलोकस्त्वमजिताय नमोनमः ।।३८
गायत्रीदेहरूपाय सावित्रीदयिताय च । धराधराय सूर्याय मार्तण्डाय नमोनमः ।।३९

सुमन्तुरुवाच

एवं हि कुर्वतः शान्तिमरुणस्य महीपते । श्रेयसे वैनतेयस्य गरुडस्य महात्मनः ।।४०
एतस्मिन्नेव काले तु सुपर्णः पत्रवानभूत् । तेजसा बुधसंकाशो बलेन हरिणा समः ।।४१
सम्पूर्णावयवो राजन्यथापूर्वं तथाभवत् । प्रसादाद्देवदेवस्य भास्करस्य महात्मनः ।।४२
एवमन्येऽपि राजेन्द्र मानवा ये च रोगिणः । अस्मिन्कृतेऽग्निकार्ये तु विरुजास्ते भवन्ति हि ।।
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यमग्निकार्यं विधानतः ।।४३
करणीयं च राजेन्द्र मानवैश्च प्ररोगिभिः । अस्मिन्कृते अग्निकार्ये विरूजास्ते भवन्ति हि ।।४४
ग्रहोपघाते दुर्भिक्ष उत्पातेषु च कृत्स्नशः । अवर्षमाणे पर्जन्ये लक्षहोमसमन्वितः ।।४५
पूजयित्वा प्रसूक्तं तु ध्यात्वा वीरं प्रयत्नतः । वारुणैश्च तथा सूक्तैर्होमं कुर्याद्विचक्षणः ।।४६
चेतसा सुप्रसन्नेन सर्पिषा मधुना सह । तिलैर्यवैश्च सहितैः पायसं मधुना तथा ।।४७
इदं च शान्तिकं कुर्याद्बलिं दद्यात्प्रयत्नतः। एवं कृते श्रियं देवा वर्षन्ते कामना नृणाम् ।।४८

शाति करें ।३४। तमनाशक, विवस्वान् सूर्य देव की जय हो, जय प्रदायक सूर्य भास्कर के लिए नमस्कार है ।३५। उत्तम गृह, कल्याण करने वाले (सूर्य) देव की जय हो, कमल को विकसित करने की जय हो, बुधरूप तुम्हें नमस्कार है। प्रकाश करने वाले की जय हो, शांति स्थापन करने वाले की जय हो, तमनाशक, जयरूप, एवं अजेय को नमस्कार है।३६-३७। अर्क, प्रकाश के ईश, तथा सहस्र किरणों द्वारा उज्ज्वल वर्ण वाले की जय हो, लोक निर्माता की जय हो, अजेय को बार बार नमस्कार है ।३८। गायत्री के शरीर रूप, सावित्री के प्रिय, पृथिवी को धारण करने वाले, सूर्य एवं मार्तण्ड को बार-बार नमस्कार है।३९

सुमन्तु बोले—महीपते ! इस प्रकार विनतापुत्र महात्मा गरुड़ के कल्याणार्थ अरुण के शान्ति-अनुष्ठान करते हुए उसी समय गरुड़ के पंख निकल आये । उससे बुध के समान तेज और विष्णु के समान बल भी उन्हें प्राप्त हुए ।४०-४१। इस प्रकार राजन् उनकी शरीर के समस्त अंग देवाधिदेव महात्मा सूर्य की प्रसन्नतावश पूर्व की भाँति सुसम्पन्न हो गये । राजेन्द्र ! अन्ध रोगी मनुष्य भी इस भाँति अग्नि कार्य के सम्पन्न करने पर नीरोग हो जाते हैं ।४२-४४। अरिष्ट ग्रहों के उपघातों, दुर्भिक्ष, सम्पूर्ण उत्पातों के समय एवं मेघ के वृष्टि न करने पर लक्ष आहुति का विधान प्रारम्भ करना चाहिए ।४५। सूक्त द्वारा उन वीर (सूर्य) की पूजा, प्रयत्न पूर्वक ध्यान एवं वरुण सूक्त द्वारा हवन बुद्धिमान् को करना चाहिए । प्रसन्न चित्त होकर घी, शहद, तिल, जवा एवं मधुमिश्रित खीर से हवन करना बताया गया है । इस प्रकार शांति कर्मानुष्ठान आरम्भ करके प्रयत्न पूर्वक बलि प्रदान करें । उसके सुसम्पन्न होने पर भी श्री की प्राप्ति, मेघों द्वारा वृष्टि, और मनुष्यों की कामनाएँ सफल होती हैं ।४५-४८। जो इस

इत्येवं शान्तिकाध्यायं यः पठेच्छृणुयादपि । विधिना सर्वलोकस्तु ध्यायमानो दिवाकरम् ॥४९
स विजित्य रणे शत्रुं मानं च परमं लभेत् । अक्षयं मोदते कालमतिरस्कृतशासनः ॥५०
व्याधिभिर्नाभिभूयेत पुत्रपौत्रप्रतिष्ठितः । भवेदादित्यसदृशस्तेजसा प्रभया तथा ॥५१
यानुद्दिश्य पठेद्वीर वाचको मानवो भुवि । पीड्यते न च तैः रोगैर्वातपित्तकफात्मकैः ॥५२
नाकाले मरणं तस्य न सर्पैश्चापि दश्यते । न विषं क्रमते देहे न जडान्ध्यं न मूकता ॥५३
न चोत्पत्तिभयं तस्य नाभिचारकजं भवेत् । ये रोगा ये महोत्पाता येऽहयश्च महाविषाः ॥
ते सर्वे प्रशमं यान्ति श्रवणादस्य भारत ॥५४
यत्पुण्यं सर्वतीर्थानां गङ्गादीनां विशेषतः । तत्पुण्यं कोटिगुणितं प्राप्नोति श्रवणादिभिः ॥५५
दशानां राजसूयानामन्येषां च विशेषतः । जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वव्याधिविवर्जितः ॥५६
गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः । शरणागतदीनार्तमित्रविश्रम्भघातकः ॥५७
दुष्टः पापसमाचारः पितृहा मातृहा तथा । श्रवणादस्य पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥५८
इतिहासमिमं पुण्यमग्निकार्यमनुत्तमम् । न दद्यात्कस्यचिद्वीर मूर्खस्य कलुषात्मनः ॥५९
सूर्यभक्ते सदा देयं सूर्येण कथितं पुरा । अरुणस्य महाबाहो गरुडस्यारुणेन च ॥६०
गरुडेन पुरा प्रोक्तं भोजकानां महात्मनाम् । सूर्यशर्मसुखादीनां शाकद्वीपे महीपते ॥६१

शांतिक अध्याय का पाठ या श्रवण अथवा विधिपूर्वक दिवाकर का ध्यान करते हैं वह रण स्थल में शत्रु पर विजय प्राप्ति पूर्वक अत्यन्त मान प्राप्त करता है, पुनः अलंघित शासन प्राप्त कर अक्षय काल तक आनन्दानुभव, व्याधिहीन, पुत्रों एवं पौत्रों समेत आदित्य के समान तेज तथा कांति पूर्ण होकर प्रतिष्ठित होता है ।४९-५१। वीर ! इस पृथ्वीतल में जिस उद्देश्य से मनुष्य इसका पाठ करता है, (वे निर्विघ्न सफल होते हैं) और वे वात, पित्त एवं कफात्मक किसी रोगों से पीड़ित नहीं होते हैं, अकाल में मरण नहीं होता, कोई साँप नहीं काटता, उसके शरीर में विष संक्रमण नहीं होता, न जड़ता रूपी अंधकार से आच्छन्न होता है, और न कभी मूक भाव (गूंगा) होता है । भारत ! इसके श्रवण करने से जन्म मरण भय, शस्त्राघात या अनुष्ठान (पुनश्चरण) द्वारा मरण का भय कभी नहीं होता है, समस्त रोग, महोत्पात, महाविषधर, सर्प, शांत हो जाते हैं ।५२-५४। समस्त तीर्थों विशेषकर गंगादि तीर्थों तथा दश राजसूय विशेषकर अन्य और यज्ञों द्वारा जो पुण्य होता है, उससे कोटि गुने पुण्य इसके श्रवणादि करने से प्राप्त होते हैं ।५५। समस्त रोग मुक्त होकर सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है । जो हत्या करने वाला, कृतघ्नी, ब्रह्महत्या करने वाला, गुरु पत्नी गामी, शरण प्राप्त हीन-दुखी एवं मित्र के साथ विश्वास घात करने वाला, दुष्ट, पापी तथा माता-पिता का बध करने वाले, ये सभी इसके श्रवण करने से पापमुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं ।५६-५८। वीर ! किसी अज्ञानी मूर्ख के लिए उस उत्तम पुण्योपाख्यान का उपदेश कभी न करें । सदैव सूर्य के भक्त को ही इसे प्रदान करना चाहिए, ऐसा सूर्य ने पहले ही अरुण को बताया गया था । महाबाहो ! अरुण ने गरुड को तथा महीपते ! शाकद्वीप में गरुड ने भोजकों को बताया था ।५९-६०। जो सूर्य के कल्याण एवं सुख रूप तथा महात्मा हैं, और उन्होंने मुनि एवं पंडित व्यास जी से तथा व्यास ने भी

तैश्चापि कथितं पुण्यं मुनेर्व्यासस्य धीमतः । तेनापि कथितं पुण्यं सर्वपापभयापहम् ।।६२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे गरुडारुणसंवादे शान्तिकवर्णनं नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८०।

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

स्मृतिभेदवर्णनम्

शतानीक उवाच

पञ्चप्रकारं धर्मं मे वद स्मार्तं यथाक्रमम् । कौतुकं[1] पृच्छ ते ब्रह्मन्समासव्यासयोगतः ।।१

सुमन्तुरुवाच

पञ्चधा वर्णितं धर्मं शृणु राजन्समासतः । यथोक्तं भास्करेणेह अरुणस्य महात्मनः ।।२
सहस्रकिरणं भानुमुदयस्थं दिवाकरम् । प्रणम्य शिरसा देवमुवाच गरुडाग्रजः ।।३
भगवन्देवदेवेश सहस्रकिरणोज्ज्वल । स्मृतिधर्मान्यथातत्त्वं वक्तुमर्हसि पृच्छतः ।।४
एवं पृष्टस्तु भगवानरुणेन खगाधिपः[2] । उवाच परया प्रीत्या पूजयित्वा महीपते ।।५

समस्त पाप एवं भय नाशक इस पुण्योपाख्यान का वर्णन किया है ।६१-६२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमीकल्प के गरुडारुण संवाद में शांतिक वर्णन नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ।१८०।

अध्याय १८१

स्मृतिभेद का वर्णन

शतानीक ने कहा—ब्रह्मन् ! स्मार्त धर्म का वर्णन, जिसकी पाँच प्रकार से व्याख्या की गई है, संक्षेप एवं विस्तार से संमिश्रण पूर्वक क्रमशः मुझे सुनाने की कृपा कीजिये, इसके सुनने के लिए मुझे महान् कौतूहल हो रहा है ।१

सुमन्तु बोले—राजन् ! पाँच प्रकार से वर्णित उस स्मार्त धर्म का वर्णन महात्माअरुणके लिए सूर्य ने जिस प्रकार किया था, विस्तार पूर्वक मैं वही बता रहा हूँ, सुनो ! एक बार अरुण ने सहस्र किरण वाले उस दिवाकर सूर्य से उनके उदय होते समय प्रणाम करके यह कहा——भगवन्, देवाधिदेव, एवं सहस्र किरणोज्ज्वल ! मुझे स्मृति (स्मार्त) धर्म जानने की इच्छा है, आप उसके तत्त्व को यथोचित ढंग से बताने की कृपा करें । ! महीपते ! परम प्रसन्न अरुण द्वारा पूजित होने के उपरांत इस प्रकार पूँछने पर आकाशचारियों के अधिनायक सूर्य ने कहा ।२-५

---

१. कौतुकं पृच्छते मह्यं संक्षेपविस्तारयोगात्कथयेत्यर्थः । पृच्छते इति चतुर्थ्येकवचनान्तम् । २. ग्रहेशः इत्यर्थः ।

भास्कर उवाच

स्मृतिधर्मं वेदमूलं शृणु त्वं गरुडाग्रज । पूर्वानुभूतं यद्ध्यानमथ तत्स्मरणं स्मृतिः ।।६
धर्मः क्रियात्मा निर्दिष्टः श्रेयोऽभ्युदयलक्षणः । स च पञ्चविधः प्रोक्तो वेदमूलः सनातनः ।।७
अस्य शब्दस्यानुष्ठानात्स्वर्गो[१] मोक्षश्च जायते । इह लोके सुखैश्वर्यमतुलं यच्च खगाधिप ।।८

अनूरुरुवाच

कथं पञ्चविधो ह्येष प्रोक्तो धर्मः सनातनः । कस्य भेदास्तु ते पञ्च ब्रूहि मे देवसत्तम ।।९

भास्कर उवाच

वेदधर्मः स्मृतस्त्वेक आश्रमाणां स तत्परः । वर्णाश्रमस्तृतीयस्तु गुणनैमित्तिको यथा ।।१०
वर्णत्वमेकमाश्रित्य अधिकारे प्रवर्तते । सवर्णाश्रमदण्डस्तु भिक्षा दण्डादिको यथा ।।११
वर्णाश्रमाश्रमत्वं च योऽधिकृत्य प्रवर्तते । स वर्णाश्रमधर्मस्तु दण्डाद्या मेखला यथा ।१२
यो गुणेन प्रवर्तेत स गुणो धर्म उच्यते । यथा मूर्धाभिषिक्तस्य प्रजानां पालनं परम् ।१३
निमित्तमेकमाश्रित्य यो धर्मः सम्प्रवर्तते । नैमित्तिकः स विज्ञेयो जातिद्रव्यगुणाश्रयः ।।१४
एष तु द्विविधः प्रोक्तः समासादविशेषतः । नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा ।।१५

भास्कर बोले—गरुडाग्रज ! वेदमूलक स्मृति धर्म को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ध्यान में निमग्न होकर पहले जिसका अनुभव किया जाता है, पुनः उसी के स्मरण करने का नाम स्मृति है धर्म का स्वरूप क्रियात्मक है, श्रेय और अभ्युदय उसके लक्षण हैं, वह पाँच प्रकार से बताया गया है तथा वह वेदमूलक है, और सनातन अविनाशी भी ! खगाधिप ! इस धर्म के अनुष्ठान करने से स्वर्ग, मोक्ष, तथा इस लोक के समस्त सुख ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ।६-८

अनूरु (अरुण) ने कहा—हे देवश्रेष्ठ ! इस सनातन धर्म के पाँच भेद कैसे हुए और वे पाँच भेद कौन से हैं, मुझसे बताने की कृपा कीजिये ! ।९

भास्कर बोले—एक ही वेदधर्म है, उसी का स्मरण किया गया है और चारों आश्रमों में कार्य रूप में वहीं परिणत किया गया है, जैसे वर्णाश्रम में तीसरे गुण नैमित्तक धर्म का प्रविष्ट होना बताया गया है । उसमें जाति की कल्पना करके ही अधिकार में प्रवृत्त होना कहा गया है इसीलिए वर्णाश्रमों में ब्राह्मण जाति से लेकर वैश्य वर्ण तक के उपनीत होते समय भिक्षा याचना एवं दण्डग्रहण का विधान समान ही बताया गया है वर्णाश्रम एवं आश्रमों के अधिकार वश जिस धर्म का प्रयोग (आचरण) किया जाता है, वही वर्णाश्रम धर्म है, जैसे दण्ड आदि और मेखला का धारण ब्रह्मचारियों एवं संन्यासियों में समान होता है, गुण की प्रधानतावश जिस धर्म का प्रयोग किया जाये, वह गुण धर्म कहा जाता है, जैसे तिलकधारी राजाओं के लिए प्रजाओं का पालन करना ही उत्तम धर्म बताया जाता है ।१०-१३। किसी निमित्त को अपनाकर जिस धर्म का प्रयोग होता है, उसे नैमित्तिक धर्म जानना चाहिए, वह सर्वत्र जाति, द्रव्य अथवा गुण को निमित्त मान कर प्रयुक्त होता है । इस भाँति दो प्रकार मूलधर्म से इसकी विस्तृत व्याख्या की

---

१. धर्मशब्दवाच्यस्येत्यर्थः ।

स चतुर्धा निरूप्यस्तु स्वरूपफलसाधनैः । प्रमाणतस्तु प्रत्येकं समस्तैश्च यथाक्रमम् ॥१६
श्रुत्या सह विरोधे तु बाध्यते विषयं विना । व्यवस्थया विरोधेन कार्यो यत्नः परीक्ष्यते ॥१७
स्मृत्या सह विरोधेन चार्थशास्त्रस्य साधनम् । परस्परविरोधे तु अर्थशास्त्रस्य साधनम् ॥१८
अदृष्टार्थे विकल्पस्तु व्यवस्थासम्भवे सति । स्मृतिशास्त्रविकल्पस्तु आकांक्षापूरणे सति ॥१९
वेदमूले स्थितं त्वेतदनुष्ठानं क्रिया सती । एवं शक्यविधानं तु न्यायो ह्येवं व्यवस्थितः ॥२०
निषेधविधिरूपं तु द्विधा शास्त्रं खगाधिप । एकरूपं वदन्त्यन्ये बहुरूपमथापरे ॥२१
पञ्चप्रकाराः स्मृतय एवं शिष्यव्यवस्थिताः । त्रिधा चतुर्धा द्वेधा वा एकधा बहुधा खग ॥२२
दृष्टार्था तु स्मृतिः काचिददृष्टार्था तथापरा । अनुवादस्मृतिस्त्वन्या दृष्टादृष्टा तु पञ्चमी ॥
सर्वा एता वेदमूलाः स्मृता वै ऋषिभिः स्वयम् ॥२३

अरुण उवाच

या एता भवता प्रोक्ताः स्मृतयः पर्वगोपने । एतासां लक्षणं ब्रूहि समासादेव सत्तम ॥२४
दृष्टार्था का मता देव अदृष्टार्था च का भवेत् । दृष्टादृष्टस्वरूपा का न्यायमूला च का भवेत् ॥
अनुवादस्मृतिः का स्याद्दृष्टादृष्टा तु का भवेत् ॥२५
एवमुक्तो महातेजा भास्करो वारितस्करः । उवाच तं खगं वीरं प्रणतं विनयान्वितम् ॥२६

गयी है, पर इन दोनों के विभिन्न होने में कोई महत्त्वपूर्ण विशेषता नहीं है । जैसे किसी भी प्रायश्चित्त धर्म का अनुष्ठान करना नैमित्तिक धर्म कहा जाता है । स्वरूप, फल एवं साधनों द्वारा वह (धर्म) चार प्रकार का बताया गया है—उनमें से क्रमशः प्रत्येक धर्म का प्रमाण एवं स्वरूपादि द्वारा विस्तृत व्याख्यान किया गया है ।१४-१६। श्रुति के साथ विरोध होने पर यह बिना विषय के बाधित होता है । व्यवस्था एवं विरोध के द्वारा करणीय यत्न की परीक्षा होती है । स्मृति के साथ विरोध होने पर यह (धर्म) अर्थशास्त्र का साधन होता है । परस्पर विरोध में तो यह अर्थशास्त्र का साधन बनता ही है । व्यवस्था सम्भव होने पर कल्पित अर्थ में विकल्प होता है । स्मृतिशास्त्र विषयक विकल्प तो आकांक्षा की पूर्ति होने पर ही होता है । क्रियात्मक यह अनुष्ठान वेद के मूल में अधिष्ठित है । इसी प्रकार समस्त समर्थ विधान एवं न्याय व्यवस्थित है । हे पक्षिराज ! निषेध एवं विधिरूप दो प्रकार के शास्त्र होते हैं । कुछ लोग इसे एकरूप कहते हैं तथा कुछ लोग इसे अनेकरूप कहते हैं । हे खग ! एक प्रकार, दो प्रकार, तीन प्रकार, चार प्रकार एवं अनेक प्रकार के स्वरूपों वाली ये स्मृतियाँ इस तरह पाँच प्रकार से शिष्यों के लिए व्यवस्थित हैं । कोई स्मृति अर्थ वाली तथा कोई अदृष्ट अर्थ वाली है । कोई अनुवाद स्मृति है तो कोई दृष्टादृष्ट उभय रूप है । ये समस्त स्मृतियाँ ऋषियों द्वारा वेद मूलक कहीं गयी है ।१७-२३

अरुण ने कहा—हे सत्तम ! पर्व (तिथियों) के रक्षार्थ इन स्मृतियों को आप ने बताया है, इनके लक्षणों को भी विस्तार पूर्वक मुझे बताने की कृपा कीजिये ! मैं इसे जानना चाहता हूँ, देव ! दृष्टार्थ प्रतिपादन करने वाली, अदृष्टार्थ प्रतिपादन करने वाली, दृष्टादृष्ट स्वरूप वाली, न्यायमूलक और अनुवाद मात्र प्रतिपादन करने वाली इन स्मृतियों को आप बताने की कृपा कीजिए । इस प्रकार (अरुण के) पूछने पर महातेजा तथा जलतस्कर भास्कर ने वीर, एवं नतमस्तक बैठे हुए नम्रतापूर्वक उस अरुण पक्षी से कहा २४-२६

आदित्य उवाच

षड्गुणस्य स्वरूपं तु प्रयोगात्कार्यगौरवात् । समयानामुपायानां योगो व्याससमासतः ॥२७
अध्यक्षाणां च निक्षेपः करणानां निरूपणम् । दृष्टार्थेयं स्मृतिः प्रोक्ता ऋषिभिर्गरुडाग्रज ॥२८
सन्ध्योपास्तिस्तथा कार्या शुको मांसं न भक्षयेत् । अदृष्टार्था स्मृतिः प्रोक्ता मनुना विनतात्मज ॥२९
पालाशं धारयेद्दण्डमुभयार्थां विदुर्बुधाः । विरोधे तु विकल्पः स्याद्यागो होमस्ततो यथा ॥३०
श्रुतौ दृष्टं यथा कार्यं स्मृतौ तत्तादृशं यदि । उक्तानुवादिनी सा तु पारिव्राज्यं तथा गृहात् ॥३१
उक्तो धर्मश्च संक्षेपात्परिभाषा च तद्गता । तत्साधनं च देशादि इत्यमित्यब्रवीद्रविः ॥३२
ब्रह्मावर्तः परो देश ऋषिदेशस्तस्त्वनन्तरः । मध्यदेशस्ततोऽप्यन्य आर्यावर्तस्त्वनन्तरः ॥३३
कृष्णसारस्तु विचरेन्मृगो यत्र स्वभावतः । यज्ञियः स तु देशः स्यान्म्लेच्छदेशस्ततः परः ॥३४
ब्रह्मादीनां च देवानां ब्राह्मणादेस्तथैव च । भूतग्रामस्य कृत्स्नस्य त्रयं कृत्स्नस्य खेचर ॥३५
साधनत्वं मनुः प्राह वेदमूलं सनातनम् । प्रकाशयज्ञसंसिद्ध्यै यदशब्दस्य एव तु ॥३६
उपलभ्य यथातत्त्वं स च दर्शितवानृषिः । सम्यक्संसाधनं धर्मः कर्तव्यस्त्वधिकारिणा ॥३७
निष्कामेन सदा वीर काम्यं रूपान्वितेन च । आचारयुक्तः श्रद्धालुर्वेदज्ञोऽध्यात्मचिन्तकः ॥
कर्मणां फलमाप्नोति न्यायार्जितधनश्च यः ॥३८

आदित्य बोले—इस स्मार्त धर्म के स्वरूप, प्रयोग कार्य की गौरवता समय तथा उपायों के संक्षिप्त एवं विस्तृत योग द्वारा छः प्रकार के बताये गये हैं ।२७। गरुडाग्रज ! अध्यक्षों के निक्षेप तथा करणों के निरूपण करने वाली स्मृति, दृष्टार्थ स्मृति बतायी गई है ।२८। विनतात्मजो ! (तीनों काल) संध्या की उपासना करनी चाहिए और कुत्ते का मांस भक्षण कभी न करना चाहिए, इसे बतलाने वाली को मनु ने अदृष्टार्थ स्मृति बताया है ।२९। पलाश का ही दण्ड धारण करना चाहिए, ऐसा कहने वाली को 'दृष्टादृष्टार्थ स्मृति' कहा जाता है, ऐसा विद्वानों ने बताया है । यदि किसी स्मृति द्वारा विरोध संभव हो तो, प्राप्त याग एवं हवन के त्याग का ग्रहण करने की भाँति विकल्प करना चाहिए ।३०। जो श्रुति में दृष्ट है, वही यदि स्मृति में भी आनुपूर्वी वर्णित है, तो उस श्रुति में दृष्ट विषय को स्मृति में बतलाना अनुवाद कहलाता है और ऐसा कहने वाली यह स्मृति अनुवाद मात्र स्मृति कही जाती है, जैसे घर से निकलकर संन्यास ले लेना । इस प्रकार संक्षेप में धर्म की व्याख्या बताई गई एवं उसकी अन्वर्थ परिभाषा भी बताई गयी । उसके साधन देश-काल हैं, ऐसा सूर्य ने कहा था ।३१-३२। ऋषियों का प्रशस्त देश 'उत्तम ब्रह्मावर्त देश है' उसके अनन्तर 'मध्यदेश' और उसके अनन्तर 'आर्यावर्त' नामक देश कहा जाता है ।३३। जिस प्रदेश में कृष्ण सार 'मृग' स्वभावानुसार इधर उधर विचरण करते हैं, वह 'यज्ञिय' यज्ञ करने के लिए प्रशस्त प्रदेश कहलाता है, और उसके पश्चात् वाला म्लेच्छों का देश कहा गया है ।३४। आकाशगामिन् ! ब्रह्मादि देवता, ब्राह्मणादि वर्ण एवं समस्त जीव समूह इन तीनों का साधन वही (धर्म) है, और मनु ने उसे वेद मूलक तथा सनातन (अविनाशी) बताया है, जो ब्रह्मा की वेदवाणी में प्रकाश रूप में यज्ञों की सिद्धि के लिए निहित हैं । ऋषि ने ध्यानयोग द्वारा उसके तत्त्व को भली भाँति जानकर लोक हितार्थ प्रकाशित किया है, अतः अधिकारी वर्ग को चाहिए कि उस धर्म का भलीभाँति साधन पूर्वक पालन करें ।३५-३७। वीर ! 'निष्काम और सकाम' उसके दो रूप बताये गये हैं । आचार समेत श्रद्धालु पुरुष जो वेद-मर्मज्ञ एवं अध्यात्मचिंतन करता है, कर्मों के फल को अवश्य प्राप्त करता है, तथा न्यायोचित रीति से धनोपार्जन करने वाला भी उसे प्राप्त करता है ।३८

अरुण उवाच

ब्रह्मावर्तादिदेशानां समस्तानां विभावसो । विभागं ब्रूहि देवेन्द्र सम्मानय ग्रहाधिप ।।३९

आदित्य उवाच

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ।।४०

हिमवद्विन्ध्यधरयोर्यदन्तरमुदाहृतम् । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ।।

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।।४१

तयोरेवान्तरं गिर्यारार्यावर्तं विदुर्बुधाः । एतान्विज्ञाय सद्देशान्संश्रयेत प्रयत्नतः ।।४२

शूद्रस्तु यस्मिंस्तस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः । एषः धर्मस्य वै ज्योतिः समासात्कथिता तव ।।४३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे सौरधर्मेषु अरुणादित्यसंवादे
स्मृतिभेदवर्णनं नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८१।

अथ द्वयशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

विवाहविधिवर्णनम्

आदित्य उवाच

उक्तं धर्मस्य रूपं तु साधिकारं सनातनम् । अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्ममाश्रमिणां खग ।।१

अरुण ने कहा—हे विभावसो ! ब्रह्मावर्त आदि समस्त देशों के विभाग, मुझसे बतायें, हे देवेन्द्र, ग्रहाधिनायक ! मेरी इस अर्चना को अवश्य स्वीकार करने की कृपा करें ।३९

आदित्य बोले—सरस्वती और दृषद्वती इन दोनों नदियों के आन्तरिक प्रदेश को जिसका निर्माण देवताओं ने किया था, ब्रह्मावर्त कहते हैं ।४०। हिमालय और विन्ध्य पर्वत के आन्तरिक प्रदेश को, जो प्रयाग से पश्चिम दिशा में है, 'मध्य देश' बताया गया है, एवं पूर्व समुद्री तट से लेकर पश्चिम समुद्र तट के मध्य भू भाग को विद्वानों ने 'आर्यावर्त' प्रदेश बताया है, ऐसा समझकर इस उत्तम देश के निवास करने के लिए सर्वथा प्रयत्न शील रहना चाहिए । क्योंकि शूद्र अपनी जीविकाके लिए जिस किसी देश में रह सकता है । इस प्रकार धर्म का पूर्ण प्रकाश तुम्हें दिखा दिया गया ।४१-४३

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में
अरुणादित्य संवाद रूप स्मृति भेद वर्णन नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८१।

अध्याय १८२

विवाहविधि का वर्णन

आदित्य बोले—तुम्हें धर्म का अधिकार पूर्वक सनातन रूप बता दिया गया, खग ! अब मैं आश्रमों के धर्म बता रहा हूँ, सुनो ! ।१। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ (वानप्रस्थ) तथा भिक्षु (सन्यासी) ये चार

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वनस्थो भिक्षुरेव च । चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः एक एव चतुर्विधः ॥२
गायत्री ब्रह्मचारी तु प्राजापत्यो द्वितीयकः । देवव्रतस्तृतीयस्तु नैष्ठिकस्तु चतुर्थकः ॥३
चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः सवेदाः समधर्मकाः । अतःपरं प्रवक्ष्यामि संस्कारं धर्मसिद्धये ॥४
गर्भाधानमृतौ कार्यं हृष्टयोस्तु समन्त्रकम् । कार्यं पुंसवनं मातुस्तृतीये मासि संयुतैः ॥५
सीमन्तः सप्तमे गर्भे षष्ठे वा सप्तमेऽपि वा । पात्रसंस्कारका इष्टा गर्भाधानादयस्त्रयः ॥६
जातकर्मादयः सर्वे संस्काराः पुरुषस्य तु । जातस्य प्राशनं यत्र स्वर्णादीनां समन्त्रकम् ॥७
जातकर्मेति तत्प्रोक्तं गुह्यं नाम तदैव तु । प्रकाशो नाम कर्तव्यं दिने त्वेकादशेऽर्थवत् ॥८
धर्मशास्त्रादिसंयुक्तं षष्ठेऽन्नप्राशनं खग । प्रथमेऽब्दे तृतीये वा चूडाकर्म विधीयते ॥९
अष्टमे दशमे वापि ब्राह्मणस्योपनायनम् । पुरुषस्य तथा चान्यजातीयानां विशेषतः ॥१०
एकादशे द्वादशे वा कार्यं क्षत्रियवैश्ययोः । वेदसंस्कारकं वच्मि मन्यते त्वौपनायनम् ॥११
पुरुषस्य तथा चान्य उभयोश्च ब्रवीम्यहम् । सावित्रं वैदिकं चैव महानाम्नीमहाव्रतम् ॥१२
तथौपनिषदं चाब्दं गोदानं च सुवर्णकम् । व्रतानि ग्रहणार्थानि वेदस्येति मनोर्मतम् ॥१३
वेदैकदेशपाठस्य उक्तं गृह्ये प्रपञ्चकम् । उक्ता गुरोस्तु शुश्रूषा दृष्टादृष्टार्थसाधनम् ॥१४

आश्रमी बताये गये हैं, यह एक ही (आश्रम) चार प्रकार से ख्यात हैं।२। मुख्य गायत्री का उपासक ब्रह्मचारी, प्राजापत्य धर्मानुष्ठान करने वाला दूसरा (गृहस्थ), देव व्रती (तीसरा), और नैष्ठिक (निष्ठा पूर्वक उसका अनुष्ठान करने वाला) चौथा आश्रम कहा जाता है। वेदों समेत इन समान धर्म वाले चारों आश्रमों को बता दिया गया, इसके उपरांत धर्म-सिद्धि के लिए मैं संस्कारों को बता रहा हूँ (सुनो)! स्त्री-पुरुष दोनों को प्रसन्न चित्त होकर ऋतु काल के पश्चात् मन्त्र पूर्ण गर्भाधान करना चाहिए, तीन मास के गर्भ हो जाने पर माता का 'पुसवन' (संस्कार) कार्य सम्पन्न होना चाहिए। सातवें मास में या छठें मास में 'सीमन्तोन्यन' संस्कार करे। इन तीनों गर्भाधानादि संस्कार के सुसम्पन्न होने से पात्र संस्कृत (शुद्ध) हो जाते हैं। इसीलिए ये सभी के लिए आवश्यक बताये गये हैं। जात कर्मादि सभी संस्कार पुरुष (पुरुष रूप में उत्पन्न बालक) के होते हैं। मंत्र पूर्वक सुवर्ण (शलाका) द्वारा उत्पन्न बालक का प्राशन करना 'जातकर्म' कहलाता है, उसमें उसका नाम (गुहा) रहता है। नाम का प्रकाश (नाम का उच्चारण) ग्यारहवें दिन करना चाहिए।३-८। खग! धर्मशास्त्रों के अनुसार छठें मास में उसका 'अन्नप्राशन' होना चाहिए। प्रथम अथवा तीसरे वर्ष में चूड़ा कर्म (मुंडन) का विधान बताया गया है। आठवें या दशवें वर्ष में ब्राह्मण का 'उपनयन' (यज्ञोपवीत) संस्कार करना आवश्यक होता है, तथा विशेषकर अन्यजाति के पुरुष का भी। क्षत्रिय एवं वैश्यों के वैदिक उपनयन संस्कार ग्यारहवें या बारहवें वर्ष में सम्पन्न होने चाहिए। ऐसा लोगों का सम्मत है।९-११। ब्राह्मण एवं अन्य जाति वाले पुरुषों के इन दोनों के सावित्र एवं वैदिक धर्म जो महानामी महाव्रत के नाम से ख्यात हैं, बता रहा हूँ, (सुनो)! उपनिषद् सम्बन्धी वार्षिक विधान, सुवर्ण के गोदान, ग्रहण करने योग्य व्रत, ये भी वैदिक धर्म हैं ऐसा मनुजी का सम्मत है।१२-१३। वेद का आंशिक पाठ, जिसकी गृह्यसूत्र में विस्तार पूर्वक व्याख्या की गयी है, गुरु की शूश्रूषा, ये दृष्टादृष्टार्थ के साधन हैं। गुरुद्वारा न्यायोचित ढंग से कहे गये वाक्यों का आनुपूर्वी

उभयोर्वा तथा चान्यायथान्यायं यथाश्रुतम् । गुरोरप्येव तं विद्यात्तद्ध्यानं त्रिविधं स्मृतम् ॥१५
तोषः परस्परस्येति एतावान्धर्मसङ्ग्रहः । कृत्स्नो वेदोऽधिगन्तव्यः स्वधर्ममनुतिष्ठता ॥१६
ज्ञात्वा वेदं ब्रह्मचारी ग्रन्थार्थान्यान्यथाविधि । नैष्ठिकश्च विधानं तु यावत्क्लीबं विधीयते ॥
विद्यान्तेऽभीष्टदानं च अनुज्ञातो गृही भवेत् ॥१७
निष्कासनं गुरुगृहाद्गृहस्थस्य यथाभवेत् । नैष्ठिकश्च तथा स्नानं कुर्यात्सम्यग्यथाविधि ॥१८
उद्वहेद्वै ततो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् । अविप्लुतब्रह्मचर्यश्चाधिकारी खगोत्तम ॥१९
स्वतन्त्रमन्ये चेच्छन्ति ह्यधिकारं द्विजोत्तमाः । सप्तमीं पञ्चमीं चैव कन्यकां पितृमातृतः ॥२०
उद्वहेत द्विजो भार्यामसमानार्षगोत्रजाम् । सङ्ख्याविधिविवाहेषु गोत्रार्थं विधिवर्जितम् ॥२१
विकल्पेनैव मन्तव्यमृषीणां विविधा श्रुतिः । अष्टौ विवाहा वर्णानां संस्काराख्या इति श्रुतिः ॥२२
यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति । तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥२३
पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । पतन्ति पितरस्तस्य कन्या च वृषली भवेत् ॥२४
यस्तु तां वरयेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । अश्राद्धेयमपाङ्क्तेयं तं विद्याद्वृषलीपतिम् ॥२५
सर्वदोषान्हि विख्याप्य स्त्रिया वा पुरुषस्य वा । उभयोरपि विख्याप्य ततः सम्बन्धमाचरेत् ॥२६

उच्चारण करना अत्यन्त आवश्यक होता है। अतः उसका ध्यान भी तीन प्रकार के होते हैं। आपस में सन्तुष्ट रहना तो बहुत ही आवश्यक होता है प्रत्युत धर्म संग्रह करने का यही इतना फल बताया गया है। अपने धर्म का यथावत् पालन करते हुए समस्त वेद का अध्ययन करना चाहिए, ब्रह्मचारी को उचित है कि विधान पूर्वक वेदाध्ययन के अनन्तर अन्यान्य ग्रंथों (शास्त्रों) के तत्त्व को भली भाँति जानने के लिए भी प्रयत्नशील रहें। नैष्ठिक (संन्यस्त) विधान तो इन्द्रियों के शिथिल होने पर ही संभव होता है। विद्याध्ययन समाप्ति के उपरांत गुरु के लिए अभीष्ट दान देकर तथा उसकी आज्ञा प्राप्त कर गृहस्थ होना चाहिए।१४-१७। गुरु के गृह से गृहस्थ होने के लिए पात्र का जिस प्रकार निष्कासन होता है, उसी भाँति नैष्ठिक का विधान पूर्वक स्नान बताया गया है।१८। खगाधिप! उस अखण्ड ब्रह्मचारी अधिकारी को उसके पश्चात् घर आने पर सौन्दर्य पूर्ण एवं लक्षणों से भूषित कन्या का विग्रहण भार्या होने के लिए करना चाहिए अन्य श्रेष्ठ द्विज भी स्वतंत्र अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करते रहते हैं अपने मातृ-पितृ कुल सातवीं अथवा पाँचवी पीढ़ी की कन्या को जिसके ऋषि, एवं गोत्र समान न हों, द्विज को चाहिए कि भार्या बनायें। संख्या वाले वैधानिक विवाहों में अपने गोत्रार्थ (विवाह) में विधान अपनाया नहीं जाता। श्रुतियाँ भाँति-भाँति की हैं, इससे ऋषियों में विकल्प भी होता है। श्रुतियों में बताया गया है कि सभी वर्णों के आठ प्रकार के विवाह संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं।१९-२२। जिस किसी ने अपनी दोषपूर्ण कन्या का पाणिग्रहण बिना दोष बताये ही किसी के साथ सुसम्पन्न करा दिया है, तो राजा को चाहिए कि उस दाता से दंड रूप में छानवे पण प्राप्त करे। पिता के घर में स्थित कन्या अविवाहित अवस्था में ही रजस्वला हो जाती है, तो, उस पिता के पितर लोगों का (नरक में) पतन होता है, और वह कन्या वृषली (शूद्रा) कहलाती है।२३-२४। जो ज्ञान दुर्बल (अल्पज्ञ) ब्राह्मण उसका पाणिग्रहण करता है, उसे श्राद्ध कर्तव्यहीन, पंक्ति से पृथक् वृषली पति रूप में जानना चाहिए।२५। स्त्री हो या पुरुष दोनों के दोषों को प्रकट करके ही दोनों का सम्बन्ध स्थापित करे। (कन्याओं में) गौरी कन्या प्रधान, कन्या

गौरी कन्या प्रधाना है मध्यमा कन्यका स्मृता । रोहिणी तत्समा ज्ञेया अधमा तु रजस्वला ॥२७

अनूरुरुवाच

गौरी तु का स्मृता कन्या रोहिणी च जगत्पते । रजस्वला नग्निका च देवकन्या च का भवेत् ॥२८

भास्कर उवाच

असम्प्राप्तरजा गौरी प्राप्ते रजसि रोहिणी । अव्यञ्जनयुता कन्या कुचहीना च नग्निका ॥२९
सप्तवर्षा भवेद्गौरी दशवर्षा तु नग्निका । द्वादशे तु भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥३०
व्यञ्जनेन समोपेतां सोमो भुङ्क्ते हि कन्यकाम् । पयोधरेषु गन्धर्वा रजस्यग्निः प्रकीर्तितः ॥३१
हिनस्ति व्यञ्जनैः पुत्रान्कुलं हन्यात्पयोधरैः । गतिमिष्टां तथा लोकान्हन्यात्तु रजसा पितुः ॥३२
तस्मादव्यञ्जनोपेतामरजस्कपयोधराम् । नान्योपभुक्तां सोमाद्यैर्दद्याद्दुहितरं पिता ॥३३
अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथा पाको हि स स्मृतः । वृथा पाकस्य भुक्त्वान्नं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३४
प्राणायामं त्रिरभ्यस्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति । विवाहयेदेकगोत्रां समानप्रवरां खग ॥
कृत्वा तस्यां समुत्सर्गमतिकृच्छ्रो विशोधनम् ॥३५
उद्वाहयेत्सगोत्रां च तनयां मातुलस्य च । ऋषिभिश्चैव तुल्यो यो द्विजश्चान्द्रायणं तरेत् ॥३६

नाम वाली मध्यम, रोहिणी उसी के समान और रजोवती कन्या अधम बतायी गयी है ।२६-२७

अनूरु ने कहा—हे जगत्पते ! गौरी, कन्या नाम वाली, रोहिणी, रजस्वला, नग्निका, एवं देव कन्या किसे कहते हैं ? २८

भास्कर बोले—ऋतुमती न होने वाली कन्या को गौरी, रजस्वला को रोहिणी व्यञ्जन (चिन्ह) हीन को कन्या, एवं कुल हीना को नग्निका, कन्या बताया गया है । सात वर्ष वाली कन्या को गौरी, दशवर्ष वाली को नग्निका, बारहवर्ष वाली को कन्या, तथा इससे अधिक आयु वालीको ऋतुमती बताया गया है ।२९-३०। व्यञ्जन सुन्दर कन्या का उपभोग सोम, पयोधरों का उपभोग गन्धर्व करते हैं और रज में अग्नि की स्थित बतायी जाती है ।३१। अविवाहिता कन्या के व्यञ्जन (चिह्न-मुखलोम आदि) दिखायी देने से उस पिता के पुत्र-नाश, पयोधरों से कुल-नाश, ऋतुमती होने पर उसे अभीष्ट गति एवं उत्तम लोक प्राप्ति से वंचित होना पड़ता है ।३२। इसलिए पिता को चाहिए कि व्यञ्जन, रज, एवं पयोधर के निकलने के पूर्व ऐसी कन्या को जो सोमादिकों से अनुपभुक्त रहती है, प्रदान करे। जिसकी कन्या उपरोक्त कथनानुसार न हो, उसके अन्न का भोजन न करना चाहिए क्योंकि उसके यहाँ का सिद्ध प्रक्वान्न व्यर्थ बताया गया है और व्यर्थ अन्नभोजन करने से प्रायश्चित्त करने का भागी होना पड़ता है ।३३-३४। उसके भोजन करने से तीन बार प्राणायाम और घी का प्राशन रूप प्रायश्चित्त करे। खग ! यदि एक गोत्र, एवं समान प्रवर वाले की कन्या का पाणिग्रहण करके उसमें वीर्य निक्षेप करे तो उस अशुद्ध शरीर के शोधनार्थ अति कृच्छ्र नामक व्रत विधान बताया गया है।३५। सगोत्र की, एवं मातुल (मामा) की कन्या के साथ जिसके ऋषि भी समान हों, विवाह करने पर उस द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।३६।

असपिण्डा तु या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥३७

अरुण उवाच

दारकर्म किमुक्तं वै यदुक्तं भवता इदम् । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥३८

आदित्य उवाच

अग्निहोत्रादि यत्कर्म वैदिकं विनतात्मज । तदुक्तं दारकर्मेति द्वाभ्यां योगात्तु मैथुने ॥३९
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् । नालोमिकां नातिलोमां न चाकूटां न पिङ्गलाम् ॥४०
ऋक्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न यक्षाहिप्रेष्यनाम्नीं नातिभीषणनामिकाम् ॥४१
यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वै पिता । नोपगच्छेद्धि तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥४२
हंसस्वरानेकवर्णां मधुपिङ्गललोचनाम् । तादृशीं वरयेत्कन्यां गृहार्थी खगसत्तम ॥४३
दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥४४
परिवित्तिः परिवेत्ता च यया स परिविद्यते । सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥४५
क्लीबे देशान्तरस्थे वा पतिते व्रजिते तथा । योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥४६
खञ्जवामनकुब्जेषु गद्गदेषु जडेषु च । जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥४७

माता के सपिण्ड से पृथक् और पिता की असगोत्री कन्याएँ द्विजातियों के लिए विवाह तथा उपभोग के लिए प्रशस्त बतायी गई हैं ।३७

अरुण ने कहा—आप ने द्विजातियों के लिए दार कर्म एवं मैथुन के लिए उसी कन्या को प्रशस्त बताया है, ठीक है, पर, वह दार-कर्म क्या वस्तु है ।३८

आदित्य बोले—विनतात्मज ! वैदिक अग्निहोत्रादि कर्म ही दार-कर्म कहलाता है, इसके लिए पाणिग्रहीत स्त्री का होना अत्यन्त आवश्यक है, और मैथुन के लिए भी । क्योंकि दो व्यक्ति (स्त्री पुरुष) के इन्द्रिय संयोग के कर्म को ही मैथुन कहते हैं ।३९। कपिल वर्ण वाली, अधिकांगी, रोगिणी, लोमहीना, अधिक लोम वाली, कपट करने वाली, पिङ्गल वर्ण की तथा नक्षत्र, वृक्ष, नदी, पर्वत, यक्ष, नाग, दूत, एवं अतिभीषण नाम वाली कन्याओं का पाणिग्रहण न करना चाहिए । जिसके भ्राता न हों, और पिता निश्चित न हो, बुद्धिमान को चाहिए कि ऐसी कन्या के साथ विवाह सम्बन्ध न स्थापित करें, क्योंकि कदाचित् अपने ही कुल की उसे पुत्री होने से धर्म के नाश होने की संभावना रहती है ।४०-४२। खगाधिप ! गृहस्थ होने के लिए, हंस के समान स्वर, समान रूप रंग, मधु एवं पिंङ्गल वर्ण के समान नेत्र वाली कन्याओं के पाणिग्रहण करने चाहिए ।४३। अपने ज्येष्ठ भ्राता के पहले ही जो स्त्री-विवाह एवं अग्नि होत्र कर्म करता है, उसे परिवेत्ता कहा जाता है, और उसके पूर्वज को परिवित्ति । परिवित्ति, परिवेत्ता, उसकी स्त्री, कन्या पिता एवं यज्ञ (विवाह में हवन) करने वाले ब्राह्मण इन सभी को नरक की प्राप्ति होती है ।४४-४५। यदि ज्येष्ठ भ्राता में कोई रोग हो—नपुंसक, विदेश का निवासी, पतित, संन्यासी एवं योगी हो गया हो—तो उसे (छोटे भाई को) अपनी स्त्री के साथ कर्म करने में दोष का भागी नहीं बनना पड़ता । बड़े भाई लंगड़, वामन, कूबड़े साफ न बोलने वाले जड़, जन्मान्ध, बहिरा, और गूंगे होने पर भी छोटे भ्राता को अपनी स्त्री के साथ रहन-सहन में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है । जिस

न श्राद्धं तु कनिष्ठस्य विकुलाय च कन्यका । वरश्च कुलशीलाभ्यां न शुद्ध्येत कदाचन ।।
न मन्त्राः कारणं तत्र न च कन्या वृता भवेत् ।।४८
उद्वाहिता तु या कन्या न च प्राप्ता तु मैथुनम् । पुनरभ्येति भर्तारं यथा कन्या तथैव सा ।।४९
समाक्षिप्य मतां कन्यां पिता त्वक्षतयोनिकाम् । कुलशीलवते दद्यान्न स्याद्दोषः खगाधिप ।।५०

अनूरुरुवाच

एतेऽष्टौ प्रभवाः प्रोक्ता विवाहा ये जगत्पते । लक्षणं ब्रूहि चैतेषां समासात्तिमिरापह ।।५१

आदित्य उवाच

शुभां लक्षणसम्पन्नां कुलशीलगुणान्विताम् । अलङ्कृत्यार्हते दानं विवाहो ब्राह्म उच्यते ।।५२
सहधर्मक्रियाहेतोर्दानं समयबन्धनात् । अलङ्कृत्यैव कन्यायाः प्राजापत्यः स उच्यते ।।५३
प्रदानं यत्र कन्यायाः सहगोमिथुनेन तु । सवर्णायाः सगोत्रायास्तमार्षमृषयो विदुः ।।५४
अन्तर्वेद्यां समानीय कन्यां कनकमण्डिताम् । ऋत्विजे चैव यद्दानं विवाहो दैवसंज्ञकः ।।५५
एते विवाहाश्चत्वारो धर्मकामार्थदायकाः । अशुल्का ब्रह्मणा प्रोक्तास्तारयन्ति कुलद्वयम् ।५६
चतुर्ष्वेतेषु दत्तायामुत्पन्नो यः सुतः स्त्रियाम् । दातुः प्रतिग्रहीतुश्च पुनात्यासप्तमान्पितॄन् ।।५७
विविक्ते स्वयमन्योऽन्यं स्त्रीपुंसोर्यः समागमः । प्रीतिहेतुःस गान्धर्वो विवाहः पञ्चमो मतः ।।५८

प्रकार कनिष्ठ (छोटे) का श्राद्ध नहीं होता है उसी प्रकार कुलहीन को कन्या प्रदान न करना चाहिए, क्योंकि कुल-शील-हीन होने पर उस वर की कभी शुद्धि नहीं हो सकती है । उसमें न मंत्र कारण होते हैं और न कन्या का वरण ही किया जाता है ।४६-४८। जिस कन्या का केवल विवाह संबंध हो चुका हो न कि मैथुन भी, वह किसी दूसरे को अपना पति बना सकती है, क्योंकि वह कन्या के समान ही होती है ।४९। खगाधिप ! पिता को चाहिए अपनी उस अक्षता कन्या को अलंकृत करके किसी कुल-शील वाले वर को प्रदान करे, इससे उसे दोष भागी नहीं होना पड़ता ।५०

अनूरु ने कहा—हे जगत्पते ! आप ने इन आठ प्रकार के विवाह को बता दिया जो सृष्टि के लिए उपयुक्त होते हैं, हे अन्धकारनाशक ! उनके विस्तृत लक्षण भी बताने की कृपा करें ।५१

आदित्य बोले—शुभ, लक्षणों से युक्त, कुल-शील एवं गुण सम्पन्न कन्या को अलंकारों से अलंकृत करके किसी योग्य व्यक्ति को विवाह द्वारा देना ब्राह्म कहलाता है ।५२। धार्मिक क्रियाओं के सम्पन्न होने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध दान आभरण भूषित कन्याओं का परिणय करना 'प्राजापत्य' विवाह कहा जाता है ।५३। जिस विवाह में दोगायों के साथ ऐसी कन्या का जो समान जाति एवं समान गोत्र की हो, दान किया जाता है, उसे ऋषिगण, 'आर्ष' (विवाह) कहते हैं । सुवर्णों से भूषित करके वेदी के मध्य में लाई गयी कन्या का ऋत्विज् के लिए दान करना 'दैव' विवाह कहलाता है।५४-५५। इन चार प्रकार के विवाहों द्वारा धर्म, अर्थ, एवं काम के सफलता पूर्वक दोनों कुलों का उद्धार होता है, और इसमें शुल्क के आदान प्रदान की व्यवस्था नहीं होती है, ऐसा ब्रह्मा ने बताया है ।५६। इन चारों विवाहों द्वारा स्त्री में उत्पन्न किये गये पुत्र, दाता, प्रतिग्रहीता एवं अपने सात पीढ़ी के परिवार का उद्धार करता है ।५७। जब स्वयं स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे की पूर्ण विवेचना कर प्रेमवश आपस में स्त्री पुरुष का संबंध स्थापित करते हैं, वह

हत्वा च्छित्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्। प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसोद्वाह उच्यते ॥५९
शुल्कं प्रदाय कन्याया हरणं व्यसनादपि । प्रसाद हेतुरुक्तोयमासुरः सप्तमस्तथा ॥६०
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति। स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥६१
एतान्सशुल्कान्सामान्यान्विवाहांश्चतुरो विदुः। केवलं क्षत्रियस्यैव वीर्यं छित्वा हि राक्षसः ॥६२
प्राप्ते पूर्वविवाहे तु विधिर्वैवाहिकः शिवः । कर्तव्यस्तु त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकः ॥६३
दोषवत्याः प्रदाने तु दातुः षण्णवतिर्दमः । स्यात्तु शुल्कप्रदाने च कन्यायाश्चापवर्जने ॥६४
मोक्षोपवर्तनं द्वेषः स्त्रीधनस्य निवर्तनम् । आकांक्षा तीर्थसंरोधस्त्यागहेतुश्च वक्ष्यते ॥६५
परस्परस्य सम्बन्धान्मोक्षः स्त्रीपुंसयोः स्मृतः। न स्यादन्यतरः प्रीतो रोषात्साम्प्रतिकादपि ॥६६
बाधते चेत्पतिर्भार्यां स तु द्वेष इति स्मृतः । वृत्तिराभरणं शुल्कं लाभश्च स्त्रीधनं भवेत् ॥६७
भोक्तुस्तु स्वयमेवेदं प्रतिज्ञाहननं भवेत् । वृथा मोक्षेण भोगेन स्त्रियै दद्यात्सवृद्धिकम् ॥६८
आपत्तिसमये जाते स्त्रीधनं भोक्तुमर्हति । आकांक्षेताष्टवर्षाणि भर्तापि प्रसवं स्त्रियाः ॥६९
जायन्ते यदि नो पुत्रास्तस्यां यत्ने महत्यपि। ततो विन्देत पुत्रार्थी धर्मतः कुलजां स्त्रियम् ॥७०

पाँचवा 'गान्धर्व' विवाह कहलाता है ।५८। मार-काट मचाकर रोती, बिलखती हुई कन्या का बलात् अपहरण करने को छठाँ 'राक्षस' विवाह बताया गया है ।५९। व्यसनी होने के नाते अपने प्रसन्नार्थ शुल्क प्रदान कर किसी कन्या का हरण करना सातवाँ 'असुर' विवाह कहा गया है ।६०। अत्यन्त निद्रा में निमग्न मत्त एवं अधिक मदोन्मत्त कन्या का एकान्त में उपभोग करना यह पापी, आठवाँ 'पैशाच' विवाह के नाम से ख्यात है ।६१। ये चारों विवाह सशुल्क होने के कारण सामान्य विवाह बताये गये हैं, और राक्षस विवाह में केवल क्षत्रियों के पराक्रम के नाशपूर्वक उन्हीं की कन्याओं का अपहरण होना बताया गया है। प्रथम बताये गये चार प्रकार के विवाह का विधान कल्याणात्मक कहा गया है, अतः तीनों वर्णों को चाहिए कि विधानपूर्वक प्रतिज्ञा बद्ध अग्नि को साक्षी बनाकर उन्हीं विवाहों को सुसम्पन्न करें ।६२-६३। किसी दोषपूर्ण कन्या के प्रदान करने वाले से छानवे पण दंड के रूप में ले लेना चाहिए। शुल्क प्रदान करने एवं कन्या विवाह के रोकने वाले से भी इतना ही दंड के रूप में लेना चाहिए स्वयं मोक्ष की चेष्टा करना, द्वेष, स्त्री धन का व्यय करना, आकांक्षा, एवं तीर्थ-वास ये सभी आपस में एक दूसरे के त्याग के हेतु बताये गये हैं, मैं इन्हें क्रमशः विस्तृत रूप में बता रहा हूँ ! स्त्री पुरुष के पारस्परिक संबंध स्थापित होने से मोक्ष होना निश्चित बताया गया है, और वही उपयुक्त भी है, न कि उनमें किसी एक का प्रसन्नता या तात्कालिक रोष वश उसका त्यागकर मोक्ष की चेष्टा करना ।६४-६६। पति स्त्री को कष्ट पहुँचा रहा हो, वही द्वेष लाभ होना, ये सभी स्त्री के धन बताये गये हैं। भोक्ता के स्वयं इसके उपभोग करने से उसकी प्रतिज्ञा का हनन हो जाता है। एकाकी मोक्ष के लिए चेष्टा करना व्यर्थ होने की भाँति स्वयं उसका उपभोग भी व्यर्थ है अतः अपनी वृद्धि के लिए उसे स्त्री को प्रदान करना ही श्रेयस्कर होता है। आपत्ति काल में स्त्री धन का उपभोग करना अनुचित नहीं होता है। पति को चाहिए कि प्रसव के लिए स्त्री की आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करता रहे, यदि उस बीच में महान् प्रयत्नशील रहने पर भी उससे पुत्रोत्पन्न नहीं हुआ तो उसके पश्चात् पुत्र के लिए किसी प्रशस्त कुल की कन्या का पाणिग्रहण धार्मिक विधान पूर्वक सुसम्पन्न करे। क्योंकि इस लोक में प्रसवार्थियों के लिए पुत्र लाभ से उत्तम कोई अन्य वस्तु नहीं है। यदि शुल्क प्रदान कर किसी

पुत्रलाभात्परं लोके नास्ति हि प्रसवार्थिनः। एतां शुल्कस्य तां मुक्त्वा अन्यां लब्धुं यदीच्छति ।।
समस्तास्तोषयित्वार्थैः सूर्योढां परमां वरेत् ।।७१
एका शूद्रस्य वैश्यस्य द्वे तिस्रः क्षत्रियस्य तु । चतस्रो ब्राह्मणस्य स्युर्भार्या राज्ञो यथेष्टतः ।।७२
अतीर्थगमनात्पुंसस्तीर्थे संग्रहनात्स्त्रियाः । उभयोर्धर्मलोपः स्यात्स्वेष्वेव[1] तु विशेषतः ।।७३
यौगपद्ये तु तीर्थानां विवाहक्रमशो व्रजेत् । तत्साम्यं जीवपुत्रा दः ग्रहणक्रमशोऽपि वा ।।७४
ब्राह्मादिभिर्विवाहैस्तु संस्कृतौ तौ खगाधिप ! अष्टौ विवाहा वर्णानां वैनतेय उशंति वै ।।७५
ब्राह्मो दैवस्तथार्षश्च प्राजापत्यः खगाधिप । गान्धर्वश्चासुरो रक्षः पैशाचस्त्वष्टमोऽधमः ।।७६
प्रशस्ताः क्षत्रियादीनां विप्रादीनां तु मानताः । प्रतिग्रहादयो बद्धा[2] विवाहा ब्राह्मणस्य तु ।।७७
क्षत्रियस्यापि देया तु प्रतिग्रहविवर्जिता । प्रवृत्ति केचिदिच्छन्ति दानमित्यपरे स्त्रियाः ।।
पावनं पुरुषाणां तु विवाहं परिचक्षते ।।७८

इतिश्रीभविष्ये महापुराणे सप्तमीकल्पे ब्राह्मे पर्वणि सूर्यारुणसंवादे विवाहविधिवर्णनं नाम द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८२।

अन्य स्त्री को उपभोगार्थ रखना चाहता है, तो उस धन द्वारा सभी भाँति के संतोषार्थ किसी सूर्योढा स्त्री का वरण करे। क्योंकि शूद्र के लिए एक स्त्री वैश्य के लिए दो, क्षत्रिय के लिए तीन एवं श्रीसम्पन्न ब्राह्मण के लिए चार स्त्रियों के रखने का यथेच्छ नियम है। पुरुष के तीर्थ यात्रा न करने और स्त्री के तीर्थ सेवन करने से दोनों के धर्म का लोप होना बताया गया है, विशेषकर द्रव्य वाले के लिए ।६७-७३। स्त्री पुरुष दोनों तीर्थ यात्रा करना चाहते हैं तो विवाह का क्रम लेना चाहिए अर्थात् प्रथम विवाहिता रहते दूसरी आदि स्त्री के साथ यात्रा न करे। यदि किसी के पुत्र हो, तो उसे साथ ले जाने में क्रम की अपेक्षा नहीं की जाती है। क्योंकि खगाधिप ! ब्राह्म आदि विवाहों द्वारा वे दोनों दम्पति सुसंस्कृत हो जाते हैं। इस प्रकार वैनतेय ! जातिवालों के लिए आठ प्रकार के विवाह बताये गये हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गांधर्व, आसुर, राक्षस, एवं पैशाच ये ही आठ प्रकार के विवाह हैं। क्षत्रियों के लिए क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र इन तीनों वर्णों के साथ, ब्राह्मणों के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों वाली कन्याओं के साथ मान पूर्वक विवाह करना प्रशस्त बताया गया है। मन्त्र पूर्वक प्रतिग्रह आदि के ग्रहण स्वरूप ब्राह्मणों के विवाह होने चाहिए। क्षत्रियों को प्रतिग्रह स्वरूप कन्यादान न लेना चाहिए। कुछ लोगों ने प्रवृत्ति द्वारा और कुछ लोगों के दान के रूप में स्त्रियों का ग्रहण करना बताया गया है। इस प्रकार पुरुषों के पावन विवाह की व्याख्या कर दी गई है ।७४-७८

श्रीभविष्यमहापुराण के ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सूर्यारुण संवाद में विवाह विधि वर्णन नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८२।

---

१. द्रव्येषु सत्स्वेवेत्यर्थः । २। मन्त्रबद्धा इत्यर्थः ।

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्याय:

श्राद्धविधिकथावर्णनम्

भास्कर उवाच

कुर्यात्पञ्चमहायज्ञानधिकारो द्विजस्य स: । भूतपितृमरब्रह्ममनुष्याणां यथाविधि ॥१
सदा सदानकृत्यानां फलार्थमपरे स्थिता: । नित्यानित्यमिति प्राहुरनुषङ्गात्फलं परे ॥२
अतिथे: परितोषाय परिचर्या विधीयते । अदृष्टनियमादृष्टमारोग्यान्तं न वर्जनम् ॥३
त्रिस्रोष्टकास्तु कर्तव्या मध्यावता चतुर्थिका । शाकपायसपूपैस्तु मांसेन तु चतुर्थिका ॥४
प्रतिपदि क्रियते यत्तु चतुष्पार्वणमुच्यते । स्वगृह्योक्तविधानेन तत्तु पक्षादि कीर्त्यते ॥५
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनम् । पार्वणं चेति विज्ञेयं गोष्ठशुद्ध्यर्थमुत्तमम् ॥
कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं वैदिकं दशमं स्मृतम् ॥६

अनूरुरुवाच

यदेतद्भवता प्रोक्तं श्राद्धं द्वादशधा विभो । तस्य सर्वस्य मां ब्रूहि लक्षणं वै पृथक्पृथक् ॥७
नित्यं किमुच्यते श्राद्धं किं वा नैमित्तिकं भवेत् । काम्यादि देवदेवेश एतेषां लक्षणं वद ॥८

अध्याय १८३

श्राद्धविधि कथा-वर्णन

भास्कर बोले—विधान पूर्वक, भूत, पितृ, देव, ब्रह्म एवं मनुष्यों के उद्देश्य से पाँच महायज्ञों का अनुष्ठान करना द्विजों के लिए आवश्यक होता, क्योंकि यह उसकी अधिकारपूर्ण चेष्टा है ।१। किसी का सम्मत है कि धन समेत इन कृत्यों को फलार्थ करना चाहिए, कोई इस कर्म को नित्य और अनित्य बतलाते हैं और कोई इसे आनुषांगिक फलार्थ करने को कहते हैं ।२। अतिथि के भली भाँति संतोष के लिए परिचर्या (सेवा) करनी आवश्यक होती है । अदृष्ट नियमों के पालन स्वस्थ्य रहने पर ही संभव होता है, अत: अस्वस्थ होने पर उसका त्याग करना अनुचित नहीं है ।३। शाक, खीर, एवं मालपूए द्वारा तीन अदृष्ट (पितृदेव के उद्देश्य से क्रियाएँ) और मांस द्वारा मध्यवर्ती चतुर्थिका नामक क्रियाएँ सम्पन्न करना चाहिए । प्रतिपदा तिथि में जो क्रिया सुसम्पन्न होती है, उसे चतुष्पार्वण कहा जाता है । अपने गृह्यसूत्रोक्त विधान द्वारा सम्पन्न किये गये कर्म को 'पक्षादि' कहते हैं ।४-५। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध, सपिण्डन पार्वण, उत्तमगोष्ठ (गौवों के आवासस्थान) के शुद्धिनिमित्तक कर्माङ्ग तथा दशवाँ वैदिक कर्म, 'इन्हें सुसम्पन्न करना मनुष्यों के लिए नितान्त आवश्यक हैं।६

अनूरु ने कहा—विभो ! आप ने इन बारह प्रकार के श्राद्ध कर्म करने के लिए आवश्यक बताये हैं । पर इनके लक्षणों को बिना जाने कैसे संभव हो सकता है, अत: इनके पृथक्, पृथक, लक्षण भी बताने की कृपा करें ।७। देवाधिदेव ! नित्य, नैमित्तिक, एवं काम्यादि श्राद्धों के लक्षण क्या हैं ? आप मुझे बताने की कृपा करें ।८

आदित्य उवाच

अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यं खग कीर्तितम् । वैश्वदेवविहीनं तु अशक्तावुदकेन तु ॥९
एकोद्दिष्टं तु यच्छाद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते । तत्सदैव प्रकर्तव्यमयुग्मान्भोजयेद्द्विजान् ॥१०
कामयुक्तं हि तत्काम्यमभिप्रेतार्थसिद्धये । पार्वणेन विधानेन तदप्युक्तं खगाधिप ॥११
वृद्धौ यत्क्रियते श्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते । सर्वं प्रदक्षिणं कार्यं पूर्वाह्णे तूपवीतिना ॥१२
गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् । अर्घार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रमोचयेत् ॥१३
ये समाना इति द्वाभ्यामेतज्ज्ञेयं सपिण्डनम् । नित्येन तुल्यं शेषं स्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥१४
दर्शे वै क्रियते यत्तु तत्पार्वणमुदाहृतम् । पर्वणि क्रियते यच्च तत्पार्वणमिति स्थितिः ॥
गोभ्यश्च क्रियते श्राद्धं तद् गोष्ठश्राद्धमुच्यते ॥१५
बहूनां विदुषां सम्पत्सुखार्थं पितृतृप्तये । क्रियते शुद्धये यद्वै ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥
शुद्ध्यर्थमिति तत्प्रोक्तं वैनतेय मनीषिभिः ॥१६
निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं तच्च कर्माङ्गमेव च ॥१७
क्रियते देवमुद्दिश्य सप्तम्यादिषु यत्नतः । गच्छेद्देशान्तरे यस्तु श्राद्धं कुर्यात्तु सर्पिषा ॥
तद्यत्नार्थमिति प्रोक्तं प्रदिशेच्च न संशयः ॥१८

आदित्य बोले—खग ! प्रतिदिन किये जाने वाले श्राद्ध को 'नित्य श्राद्ध' कहा जाता है। बलि वैश्वदेव कर्म अन्नादि द्वारा सुसम्पन्न करने में असमर्थ होने पर केवल उदक (जल) से ही सम्पन्न करना चाहिए।९। एकोद्दिष्ट श्राद्ध को 'नैमित्तिक श्राद्ध' कहते हैं, उसे सदैव करते रहना चाहिए और उसमें विषमसंख्या वाले ब्राह्मणों का भोजन भी कराना चाहिए।१०। कामना वश (किसी मनोरथ की सफलता के लिए) किये गये कर्म को 'काम्य' कहा जाता है, खगाधिप ! उसे पार्वण के विधान द्वारा समाप्त करना चाहिए।११। वृद्धि के लिए किये गये श्राद्धों को 'वृद्धिश्राद्ध' बताया गया है। यज्ञोपवीतधारी को आवश्यक है कि इन बताये गये कर्मों को पूर्वाह्न काल में प्रदक्षिणापूर्वक सुसम्पन्न करें।१२। गंध (चन्दन आदि) जल तथा तिल मिश्रित चार पात्रों की स्थापना अर्घ्य के निमित्त करके पितृ के पात्रों में प्रेत पात्र के अर्घ्य जल का संमिश्रण 'ये समाना' आदि मंत्र के उच्चारण पूर्वक करें इसी का नाम 'सपिंडन कर्म है। शेष कर्म नित्य कर्म की भाँति होते हैं, स्त्रियों के उद्देश्य से भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जाता है। अमावस्या के दिन किये गये श्राद्ध को भी पार्वण कहा जाता है और पर्व की तिथियों में किये जाने वाले को पार्वण कहते ही हैं। गौओंके उद्देश्य से किये जाने वाले को 'गोष्ठ श्राद्ध' कहा जाता है। पितरों की तृप्ति के लिए एवं इसी व्याज से विद्वान ब्राह्मणों की कुछ सेवा भी हो जायेगी, इस विचार से किये गये श्राद्ध कर्म को 'सम्पत्सुखार्थ' कहा जाता है और वैनेतेय ! बुद्धि-शुद्धि के निमत्त जिस कर्म में ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है, उसे मनीषियों (विद्वानों) ने 'शुद्ध्यर्थ' बताया है।१३-१६। गर्भाधान के समय चन्द्र शुद्धि में, सीमंतोंन्नयन, तथा पुंसवन में किये जाने वाले श्राद्ध को 'कर्माङ्ग' कहते हैं।१७। देवताओं के उद्देश्य से विदेश यात्रा के समय सप्तमी आदि तिथियों में घी द्वारा जो श्राद्ध किया जाता है उसे 'यत्नर्थक' कहा जाता है और उसके सुसम्पन्न करने पर वह उस यात्रा में सफल होता है, इसमें संदेह नहीं।१८। शरीर के

शरीरोपचये श्राद्धमश्ववृद्ध्यर्थमेव च । पुष्ट्यर्थमेतद्विज्ञेयमौपचारिकमुच्यते ॥१९
सर्वेषामेव श्राद्धानां श्रेष्ठं सांवत्सरं मतम् । क्रियते यत्खगश्रेष्ट मृतेऽहनि बुधैः सह ॥२०
मृतेऽहनि पुनर्यस्तु न कुर्याच्छ्राद्धमादरात् । मातुश्च खगशार्दूल वत्सरान्ते मृतेऽहनि ॥२१
नाहं तस्य खगश्रेष्ठ पूजां गृह्णामि नो हरिः । न ब्रह्मा न च वै रुद्रो न चान्ये देवतागणाः ॥२२
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं वर्षे वर्षे मृतेऽहनि । नरेण खगशार्दूल भोजकेन विशेषतः ॥२३
भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति खगाधिप । मातापितृभ्यां सततं वर्षे वर्षे मृतेऽहनि ॥२४
स याति नरकं घोरं तामिस्रं नाम नामतः । ततो भवति दुष्टात्मा नगरे सूकरः खग ॥२५

अनूरुरुवाच

न जानाति दिनं यस्तु न मासं विबुधाधिप । मृतौ यत्र महाप्राज्ञ पितरौ स कथं नरः ॥
श्राद्धं करोतु वै ताभ्यां विधिवद्वत्सरात्मकम् ॥२६

आदित्य उवाच

न जानाति नरो यस्तु मृतानां विनतात्मज । मासं दिनं मृतानां तु पितॄणां खगसत्तम ॥२७
यथा कुर्यात्खगश्रेष्ठ शृणु कृत्स्नं समासतः । मृताहं यो न जानाति मानवो विनतात्मज ॥२८
तेन कार्यममायां च श्राद्धं सांवत्सरं खग । मासे मार्गशिरे वीर माघे वा विधिवत्खग ॥२९
विशेषतो भोजनेन यो मां पूजयते सदा । प्रीतये मम वै तेन सम्पूज्याः पितरः सदा ॥३०

अव्ययों के उपचयार्थ, अश्वों के वृद्ध्यर्थ, और पुष्टि के लिए किये गये श्राद्ध को 'औपचारिक' कहा जाता है ।१९। खगश्रेष्ठ ! सभी श्राद्धों में 'वार्षिक श्राद्ध' श्रेष्ठ बताया जाता गया है जो (वर्ष के अंत में) मृत प्राणी के मरण मास-तिथि में विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा सुसम्पन्न किया जाता है ।२०। खगशार्दूल ! मृतप्राणी के वार्षिक दिन में तथा माता के वर्ष की समाप्ति में मरण दिन पर जो सादर श्राद्ध नहीं करते, तो खगश्रेष्ठ उनके द्वारा की गई पूजा को मैं हरि (विष्णु), ब्रह्मा, रुद्र, एवं अन्य देवगण, कोई भी नहीं स्वीकार करता है । अतः खगशार्दूल ! मनुष्य को उचित है कि मृत प्राणी के प्रत्येक वर्ष की समाप्ति में श्राद्ध अवश्य करे, विशेषकर भोजकों के लिए ।२१-२३। खगाधिप ! जो भोजक अपने माता-पिता के लिए उनके प्रत्येक वर्ष की समाप्ति में मरण दिन में निरन्तर श्राद्ध नहीं करता है, उसे 'तामिस्र' नामक घोर नरक की प्राप्ति होती है, उसके अनन्तर खग ! वह दुष्टात्मा नागरिक सूकर होता है ।२४-२५

अरुण ने कहा—हे विबुधाधिनायक ! जो अपने माता पिता के मरण दिन (तिथि) एवं मास नहीं जानता है, वह उनके निमित्त विधान पूर्वक वार्षिक श्राद्ध कैसे सुसम्पन्न करे ? ।२६

आदित्य बोले—विनतात्मज ! खगसत्तम ! जो मृतप्राणी के तथा मृत अपने माता-पिता के मास एवं तिथि को नहीं जानता है, तो खगश्रेष्ठ ! जिस प्रकार उसे करना चाहिए, वह सब कुछ मैं बता रहा हूँ, सुनो ! विनतात्मज ! जो मनुष्य मृत प्राणी के दिन को न जानता हो, तो अमावस्या के दिन उसे उस मृत प्राणी के निमित्त वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए । खग ! मार्गशीर्ष (अगहन) अथवा माघ के मास में विशेषकर भोजन द्वारा जो मेरी प्रसन्नता के लिए सदैव मेरी पूजा करते हैं, उनके पितर गण भी

ममेष्टाः पितरो नित्यं गावो विप्राश्च सुव्रत । तस्माच्च ते सदा पूज्या मद्भक्तेन विशेषतः ॥३१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे श्राद्धविधिकथनं नाम त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८३।

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्राह्मणधर्मविधिवर्णनम्

प्रख्याते प्रत्यये नैव प्रश्नपूर्वं प्रतिग्रहः । यजनेऽध्यापने वादे षड्विधो वेदविक्रयः ॥१
वेदविक्रयनिर्दिष्टं स्त्रिया चार्वाजतं धनम् । न देयं पितृदेवेभ्यो यच्च क्लीबात्खगाधिप ॥२
अनुयोगेन यो दद्याद्ब्राह्मणाय प्रतिग्रहम् । स पूर्वं नरकं याति ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥३
वेदाक्षराणि यावन्ति नियुज्यन्तेऽर्थकारणात् । तावत्यो भ्रूणहत्या वै वेदविक्रयमाप्नुयात् ॥४
वैश्वदेवेन यो हीन आदित्यस्य च कर्मणः । सर्वे ते वृषला ज्ञेयाः प्राप्तवेदाश्च ब्राह्मणाः ॥५
येषामध्ययनं नास्ति ये च केचिदनग्नयः । कुलं चाऽश्रोत्रियं येषां सर्वे ते शूद्रधर्मिणः ॥६
अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुङ्क्ते सोऽबुधः खग । वृथा तेनान्नपाकेन यमयोनिं व्रजेत्तु सः ॥७

सदैव पूजित होते हैं। सुव्रत! पितर, गायें, एवं ब्राह्मण लोग मुझे नित्य अत्यन्त प्रिय हैं, अतः मेरा भक्त विशेषकर इनकी पूजा सदैव करता रहे, क्योंकि ये उसके पूज्य हैं।२७-३१

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में श्राद्धविधिकथा वर्णन नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त।१८३।

अध्याय १८४

ब्राह्मणधर्म का वर्णन

अपने को विख्यात करने, विश्वास पात्र बनने के लिए, परिचित लोगों के यहाँ आग्रह न करने पर भी प्रतिग्रह लेने, यज्ञ कराने, अध्यापन करने एवं वाद-विवाद (व्याख्यान) के द्वारा छः प्रकार से वेद का विक्रय होना बताया गया है।१। खगाधिप! पितृ तथा देव के उद्देश्य से वेद-विक्रय द्वारा प्राप्त धन, एवं स्त्री धन का व्यय न करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने वाला पुरुष नपुंसक कहलाता है।२। जो कोई किसी ब्राह्मण को किसी अनुयोग द्वारा प्रतिग्रह प्रदान करता है, तो पहले देने वाला नरक गामी होता है ओर पश्चात् लेने वाला ब्राह्मण भी।३। द्रव्योपार्जन के लिए जितने वेदाक्षरों को (प्रमाण रूप में) एकत्र किया जाता है, उस वेद के विक्रय द्वारा उतनी भ्रूण हत्या का भागी वह होता है।४। वेद ज्ञाता ब्राह्मण भी वैश्वदेव एवं सूर्य की उपासना से वंचित रहने पर 'वृषल' (शूद्र) कहलाते हैं।५। जिनके कुल में अध्ययन, अग्नि कार्य (अग्नि होत्र), एवं वेदपाठ नहीं होता है, उन्हें शूद्र धर्म का समझना चाहिए। खग! वैश्वदेव किये बिना जो भोजन करता है, वह अज्ञानी है एवं उसका पाक बनाना व्यर्थ है, क्योंकि उसे नरक गामी होना ही पड़ेगा।६-७। वैश्वदेव के समय प्रिय, द्वेषी,

प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव च। वैश्वदेवे तु सम्प्राप्ते सोऽतिथिः स्वर्गसङ्क्रमः ॥८
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रसङ्गतिकं तथा । अचिन्त्योऽभ्यागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥९
अचिन्त्यः स तु वै नाम्ना वैश्वदेव उपागतः । अतिथिं तं विजानीयान्न पुनः पूर्वमागतः ॥१०
यावच्च प्राप्नुयादन्नं कृताशीः स्नातको द्विजः । तस्यान्नस्य चतुर्भागं हन्तकारं विदुः खग ॥११
ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षा चतुष्कालं चतुर्गुणम् । पुष्कलानि च चत्वारि हन्तकारो विधीयते ॥१२
आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते पुनः । चांद्रायणं चरेन्मासमिति विद्धि खगाधिप ॥१३
आरूढपतितापत्या ब्राह्मणो वृषलेन च । द्वावेतौ विद्धि चाण्डालौ देविश्चाद्यश्च जायते ॥१४
ब्राह्मणी कुलटा नित्यं स्वकं त्यक्त्वा पतिं खग । अन्यस्य विशते गेहे ब्राह्मणस्य खगाधिप ॥१५
उत्पद्यते तु यस्तस्या ब्राह्मणेन महामते । स चांडालो महान्प्रोक्तो महाचाण्डाल इत्युत ॥१६
यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवति मैथुनम् । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥
पञ्चगव्येन शुद्धिः स्यादित्याह मम देहकृत् ॥१७
अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन निमन्त्रितम् । तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन निमन्त्रितम् ॥१८
ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो ददत् । उभावेतावभोज्यान्नौ भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१९

मूर्ख, अथवा पंडित कोई भी आ जाये वह 'अतिथि' कहलाता है, और उसकी सेवा से स्वर्ग की प्राप्ति संभव बतायी गयी है ।८। जो एक ही गाँव में न रहे, आने के लिए कोई तिथि निश्चित न हो ब्राह्मणों की भाँति सदाचारी हो, एवं जिसके विषय में कभी कोई कल्पना न की गई हो, इस प्रकार के आये हुए पुरुष को अतिथि कहा जाता है ।९। उस अकाल्पनिक पुरुष के आने पर समझना चाहिए कि उसी नाम एवं रूप द्वारा वैश्वदेव का समागम हुआ है । उसे ही अतिथि जाने, न कि पहले से उपस्थित को ।१०। खग ! स्नातक ब्राह्मण भोजन के निमित्त प्राप्त अपने अन्न के चौथाई भाग को हंतकार (अतिथि के देने के लिए) समझे ॥११ भिक्षा, जो एकग्रास मात्र की होती है, चतुष्काल, चौगुने, एवं पुष्कल ये चार के हंतकार (अतिथि के लिए प्रदेय भोजन) होते हैं ।१२। खगाधिप ! किसी नैष्ठिक धर्म का पालन करते हुए कभी उससे च्युत हो जाये, तो उसे एक मास का चांद्रायण व्रत करना चाहिए ।१३। किसी धर्मानुष्ठान में पतित होने वाले ब्राह्मण की संतान एवं वृषल ब्राह्मण, इन दोनों को ही चांडाल जानना चाहिए ।१४। खग ! जो कुलटा (व्यभिचारिणी) ब्राह्मणी नित्य अपने पति का त्याग कर किसी अन्य ब्राह्मण के घर में जाती है, हे खगाधिप, महामते ! उसमें उस ब्राह्मण द्वारा जो सन्तान उत्पन्न होते हैं वे 'चांडाल' एवं 'महाचांडाल' बताये गये हैं ।१५-१६। जो संन्यस्त होकर पुनः मैथुन कर्म करता है, वह साठ सहस्र वर्षों तक विष्टा (मल) में कीड़ा होकर उत्पन्न होता रहता है । एकमात्र पंचगव्य से ही उसकी शुद्धि संभव होती है, ऐसा मेरी शरीर के रचयिता (विश्वकर्मा) ने बताया है ।१७। किसी वृषल ब्राह्मण द्वारा निमंत्रित ब्राह्मण का अन्न अभोज्य हो जाता है, उसी प्रकार वृषल के अन्न ब्राह्मण द्वारा निमन्त्रित होने पर । कहीं भी किसी भोज में ब्राह्मण के यहाँ शूद्र भोजन देने वाला एवं शूद्रके यहाँ ब्राह्मण भोजन देने (परसने) वाला हो, तो उन दोनों के अन्न अभोज्य बताये गये हैं उनके अन्न भोजन कर लेने पर चान्द्रायण व्रत का विधान करना बताया गया है ।१८-१९। यद्यपि किसी शूद्र के यहाँ उसके अन्न की सभी प्रकार की

उपनिक्षेपधर्मेण शूद्रान्नं च पचेद्द्विजः । अभोज्यं तद्भवेदन्नं स च विप्रः पुरोहितः ॥२०
शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कं शूद्रेण सह वासनम् । शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥२१
शूद्रान्नोपहता विप्रा विह्वला रतिलालसाः । कुपिताः किं करिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगाः ॥२२
हस्तदत्तास्तु ये स्नेहाल्लवणव्यञ्जनादयः । दातारं नाधितिष्ठन्ति भोक्ता भुङ्क्ते तु किल्बिषम् ॥२३
आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते । भोक्ता विष्ठाशनं भुङ्क्ते दाता तु नरकं व्रजेत् ॥२४
अङ्गुल्या दन्तकाष्ठां यत्प्रत्यक्षलवणं च यत् । मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणैः ॥२५
मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो द्विजः । तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥२६
पुष्पालङ्कारवस्त्राणि गन्धमाल्यानुलेपनम् । उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ॥२७
गृहान्ते वसते मूर्खो दूरे चास्य गुणान्वितः । गुणान्विते च दातव्यं नास्ति मूर्खव्यतिक्रमः ॥२८
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥२९
सन्निकृष्टमधीयानां ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् । भोजनेनैव दानेन दहत्यासप्तमं कुलम् ॥३०

अनूरुरुवाच

एवमेव जगन्नाथ देवदेव जगत्पते । किं तु यत्ते पुरा देव श्रुतं वाक्यं महात्मनः ॥३१

सुरक्षा ब्राह्मण द्वारा ही सुसम्पन्न होती हो, और वही ब्राह्मण पाक भी बनाता हो, किन्तु फिर भी उसका अन्न अभोज्य ही होता है और वह ब्राह्मण उसका पुरोहित कहा जायेगा।२०। शूद्र के अन्न, शूद्र के साथ संपर्क रखना शूद्र के साथ निवास एवं शूद्र द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करना ये सभी अग्नि के समान प्रज्वलित ब्राह्मण का भी अधः पतन करा देता है।२१। शूद्रान्न के भक्षण करने से हत तेज एवं रति करने के लिए आकुल, कोई ब्राह्मण, क्रुद्ध होने पर विषहीन सर्प की भाँति (किसी की प्रतिक्रिया के रूप में) कुछ भी करने में असमर्थ रहता है।२२। स्नेह वश शूद्र ने यदि लवण एवं व्यंजन किसी ब्राह्मण के हाथ में दे दिया तो देने वाले को किसी फल की प्राप्ति नहीं होती, प्रत्युत भोक्ता के लिए वह पापरूप हो जाता है।२३। लोहे के पात्र द्वारा अन्न प्रदान करने से भोक्ता के लिए वह अन्न विष्ठा (मल) स्वरूप होता है और उससे देने वाले को नरक की प्राप्ति होती है।२४। अंङ्गुली से दंतधावन (दातून) करना, प्रत्यक्ष लवण का भोजन, एवं मिट्टी भक्षण करना, ये तीनों गोमांस भक्षण के समान हैं।२५। सवेरे प्रातः काल उठने पर मुख प्रतिदिन प्रर्युषित (वासी) हो जाता है, उससे ब्राह्मण किसी भी कर्म के करने में असमर्थ रहता है, इसलिए प्रथम सूखी या हरी दातून से भली भाँति मुखशुद्धि करना आवश्यक होता है।२६। उपवास में पुष्प, अलंकार, वस्त्र, गंध, माला, उबटन और दंतधावन एवं अंजन दूषित नहीं होते हैं।२७। मूर्ख घर में ही रह सकता है, और गुणी पुरुष उससे बहुत दूर, इसलिए जो कुछ प्रदेय वस्तु हो गुणी पुरुष को ही देना चाहिए, मूर्ख को कभी नहीं। वेदाध्ययन हीन ब्राह्मण का भी अतिक्रमण (त्याग) न होना चाहिए क्योंकि आहुति प्रज्वलित अग्नि में ही डाली जाती है, भस्म (राख) के ढेर में नहीं। जो अपने समीप रहने वाले विद्वान् ब्राह्मण की सेवा भोजनादि दान द्वारा नहीं करता है, अपितु अन्य दूर वालों की करता है, वह उससे अपने सातपीढ़ियों का दहन करता है।२८-३०

अनूरु ने कहा—हे जगन्नाथ, देवाधिदेव ! एवं जगत्पते ! आप ने जैसा कहा, सभी सत्य है, किंतु

गदतो नारदस्यैव शृणु त्वं विबुधाधिप । गदतो मे सुरश्रेष्ठ धर्म्यमर्थं सुखावहम् ॥३२
सत्यनिष्ठं द्विजं यस्तु शुक्लजातिं प्रियंवदम् । मूर्खं पाखण्डिनं वापि वृत्तिहीनमथापि वा ॥३३
अतिक्रम्य नरो घोरं नरकं पातयेत्खग । सप्त परान्सप्त पूर्वान्पुरुषानात्मना सह ॥३४
तस्मान्नातिक्रमेद्राजा ब्राह्मणं प्रातिवेशिकम् । सम्बन्धतस्तथासन्नं दौहित्रं विद्यते तथा ॥३५
भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धुं ग्रहाधिप । नातिक्रमेन्नरस्त्वेतान्सुमूर्खानपि गोपते ॥
अतिक्रम्य महद्रौद्रं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३६

आदित्य उवाच

एवमेतन्न सन्देहो यथा वदसि खेचर । ममात्यवगतं वीर ब्राह्मणं न परीक्षयेत् ॥३७
सर्वदेवमयं विप्रं सर्वलोकमयं तथा । तस्मात्सम्पूजयेदेनं न गुणांस्तस्य चिन्तयेत् ॥३८
केवलं चिन्तयेज्जातिं न गुणान्विनतात्मज । तस्मादामन्त्रयेत्पूर्वमासन्नं ब्राह्मणं बुधः ॥३९
यस्त्वासन्नमतिक्रम्य ब्राह्मणं पतितादृते । दूरस्थान्पूजयेन्मूढो गुणाढ्यान्नरकं व्रजेत् ॥४०
देवकर्मविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च । देवद्रव्यं द्विजान्नं च ब्रह्मस्वं ब्राह्मणार्जितम् ॥
वियोन्यां क्षिपते यस्तु वियोनिमधिगच्छति ॥४१
मा ददस्वेति यो ब्रूयाद्गवाग्निब्राह्मणेषु वै । तिर्यग्योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥४२

विबुधाधिप ! पहले समय में महात्मा नारद देव के मुख से इस विषय में मैने जो कुछ सुना है, सुरश्रेष्ठ ! धार्मिक एवं सुख प्रदान करने वाली उन बातों को मैं आपसे कह रहा हूँ, कृपया, सुन लें । समीप रहने वाले सत्यवादी, जाति (गौरवर्ण) शुक्ल प्रियंवद, मूर्ख, पाखण्डी एवं वृत्तिहीन ब्राह्मण के त्यागपूर्वक किसी दूरस्थ ब्राह्मण को जो दान द्वारा सम्मानित करता है, वह अपने पूर्व की सातपीढ़ी तथा होने वाली सात पीढ़ियों समेत नरक की प्राप्ति करता है ।३१-३४। अतः राजा को चाहिए कि अपने समीप वाले (पड़ोसी) ब्राह्मणों का त्याग कभी न करें । यदि उस पड़ोसी से दौहित्र (कन्या, पुत्र) भागिनेय (भाञ्जा) अथवा बंधु का संबंध हो तो ग्रहाधिप ! वे कितने बड़े मूर्ख क्यों न हों, उनका त्याग कभी न करे । गोपते ! उनके त्याग करने पर उसे 'महारौरव' नामक नरक की प्राप्ति होती है ।३५-३६

आदित्य बोले—आकाशचारिन् ! तुम जैसा कह रहे हो, उसमें संदेह नहीं है । वीर ! मैंने भी यही निश्चय किया है यही जाना है कि ब्राह्मण की परीक्षा कभी न करनी चाहिए ।३७। ब्राह्मण, सर्वदेवमय एवं सर्वलोकमय रूप हैं इस लिए गुण की बिना परीक्षा किये ही उनकी पूजा अवश्य करे ।३८। विनतात्मज ! केवल उनकी जाति का ज्ञान कर लेना चाहिए, न कि गुण का । इसलिए बुद्धिमानों को चाहिए कि समीप रहने वाले ब्राह्मण का सम्मान पहले करें ।३९। केवल पतित को छोड़कर अन्य पड़ोसी ब्राह्मणों को त्याग कर अन्य दूरस्थ ब्राह्मण विद्वान् का जो सम्मान करता है, उसे नरक की प्राप्ति होती है ।४०। देवताओं के उद्देश्य से किये जाने वाले कर्म के विनाश, ब्राह्मण धन का अपहरण, देव द्रव्य, एवं ब्राह्मण के अन्न का अपहरण, जिसे ब्राह्मण ने स्वयं उपार्जित किया है । नपुसंक स्त्री में वीर्य निक्षेप करने वाले एवं उसके साथ सम्भोग करने वाले , गो, अग्नि, एवं ब्राह्मण के निमित्त दान करने वाले को मना करने वाले ये सभी सैकड़ों बार पक्षी की योनि में उत्पन्न हो कर पश्चात् चांडाल के यहाँ उत्पन्न होते

यत्तु वाचा प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् । तदृणं धर्मसंयुक्तमिह लोके परत्र च ।।४३
वेदविद्याव्रतस्नाते श्रोत्रिये गृहमागते । क्रीडन्त्योषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ।।४४
मधु मांसं सुरां सामं लाक्षाद्यं लवणं तथा । विक्रीयान्यतमं तेषां द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ।।४५
गुडं तिलं तथा नीलं केशान्गोधूमकान्यवान् । विक्रीय ब्राह्मणो गां च कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।।४६
औष्ट्रमाविकदुग्धं च अन्नं मृतकसूतके । चौरस्यान्नं मृतश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।४७
गवां शृङ्गोदके स्नातो महानद्याश्च संगमे । समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ।।४८
वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजः खग । हिरण्योदकमिश्रं तु घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ।।४९
तिष्ठन्वाप्यथ वा गच्छञ्छुना दष्टो द्विजः खग । घृतं प्राश्य शुचिः स्याद्वै यथाह भगवान्मनुः ।।५०
व्रतिनश्चापि दष्टस्य त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । सघृतं च ततो भुक्त्वा व्रतशेषं समाचरेत् ।।५१
ब्राह्मणी तु शुना दष्टा सोमे दृष्टे[1] समाचरेत् । यदा न दृश्यते[2] सोमः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।५२
यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशं चावलोकयेत् । सोममार्गेण सा पूर्वा पञ्चपूतेन शुध्यति ।।५३
ब्राह्मणस्य ब्रह्मद्वारे पूयशोणितसम्भवे । क्रिमिभिर्दश्यते यश्च निष्कृतिं तस्य वच्मि ते ।।५४
गवां तत्र पुरीषेण त्रिकालं स्नानमाचरेत् । दधि क्षीरं घृतं पीत्वा कृमिदष्टो विशुध्यति ।।५५

हैं ।४१-४२। जो वाणी द्वारा कहकर उसे कार्यरूप में परिणत नहीं किया उसे लोक-परलोक में उस धार्मिक ऋण का भागी होना पड़ेगा ।४३। वेदज्ञाता, व्रती, स्नातक, एवं श्रोत्रिय ब्राह्मण के आने पर घर की सभी औषधियाँ क्रीडा करने लगती हैं कि मुझे पहले उत्तम गति प्राप्त होगी ।४४। मधु, मांस, सुरा, सोमरस, लाक्षा (लाह) आदि, तथा लवण इनमें किसी की बिक्री करने वाला ब्राह्मण चान्द्रायण करने पर शुद्ध होते है ।४५। गुड़, तिल, नील, केश, गेहूँ या जवा के आटे एवं गाय, इनमें से किसी के विक्रय करने वाला ब्राह्मण 'सांतपन' नामक व्रत विधान से शुद्ध होता है ।४६। उंटिनी तथा भेंड़ी के दूध, मरणाशौच के या सूतक के अन्न, चोरी के अन्न, और मृतकश्राद्ध (तेरही) में भोजन करने पर ब्राह्मण को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।४७। कुत्ते के काट लेने पर गौओं के सीगों द्वारा पवित्र जल वाले जलाशय, तथा महानदियों के संगम में स्नान एवं समुद्र दर्शन से शुद्ध होना बताया गया है ।४८। खग ! वेदविद्याध्यायी व्रती एवं स्नातक ब्राह्मण को कुत्ते के काटने पर सुवर्ण पात्र में जल मिश्रित घी के प्राशन से शुद्धि होती है ।४९। खग ! बैठे रहने पर अथवा आते-जाते ब्राह्मण को कुत्ते के काटने पर वज्र के प्राशन से उसकी शुद्धि भगवान् मनु ने बताया है ।५०। किसी व्रती को काटने पर उसे तीन रात तक केवल घी का प्राशन करके उसके पश्चात् शेष व्रत विधान की समाप्ति करना चाहिए ।५१। किसी ब्राह्मणी को कुत्ता के काट लेने पर चन्द्र दर्शन से उसकी शुद्धि हो जाती है । यदि चन्द्र दर्शन सम्भव न हो तो, जिस जिस दिशा में चन्द्र की यात्रा हो उस दिशा का दर्शन करे, चन्द्र मार्ग से उसकी शुद्धि निश्चित हो जाती है । किसी ब्राह्मण के घर ब्राह्मण के पूप (पीव) और शोणित से उत्पन्न कीड़े किसी ब्राह्मण को काट लेते हैं तो उसकी जो निष्कृति (शुद्धि) होगी, मैं तुम्हें बता रहा हूँ । गौओंके पुरीष से उत्पन्न (गोबर) से स्नान, दही, दूध, एवं घी का

---

१. दर्शनमित्यर्थः, भावे निष्ठाविधानात् । २. तयेति शेषः ।

अथ नाभ्याः प्रदष्टस्य आपादाद्विनतात्मज । एतद्विनिर्दिशेत्प्राज्ञः प्रायश्चित्तं खगाधिप ।।५६
नाभिकण्ठान्तरे वीर यदा चोत्पद्यते कृमिः । षड्रात्रं तदा प्रोक्तं प्रायश्चित्तं मनीषिभिः ।।५७
यदा दशन्ति शिरसि कृमयो विनतात्मज । कृच्छ्रं तदा चरेत्प्राज्ञः शुद्धये कश्यपात्मज ।।५८
मृतान्नं मधु मांसं च यस्तु भुञ्जीत ब्राह्मणः । स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ।।५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पेऽनूर्वादित्यसंवादे ब्राह्मणधर्मवर्णनं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८४।

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

मातृश्राद्धविधिवर्णनम्

आदित्य उवाच

रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा । सन्ध्ययोरुभयोर्वीर सूर्ये चैव तिरोहिते ।।१
अकृत्वा मातृयज्ञं तु यः श्राद्धं परिवेषयेत् । तातस्य क्रोधसंयुक्ता हिंसामिच्छन्ति दारुणाम् ।।२

अनूरुरुवाच

मातृश्राद्धं कथं कार्यं काश्च ता मातरः स्मृताः । नान्दीमुखाश्च पितरः कथं पूजामवाप्नुयुः ।।३

पान करने से उसकी शुद्धि बतायी गयी है ।५२-५५। विनतात्मज ! पैर से लेकर नाभि तक के स्थान में कहीं कीड़े द्वारा काटने पर उपरोक्त प्रायश्चित को विद्वानों ने बताया है ।५६। वीर ! नाभि और कण्ठ के मध्यम में यदि कीड़े उत्पन्न हो जाँये तो मनीषियों ने उसका छह रात्रि तक प्रायशित करना बताया है ।५७। विनतात्मज ! यदि सिर में कीड़े उत्पन्न हो कर काटें तो कश्यपात्मज ! उसे 'कृच्छ्र' नामक व्रत बताया गया है । मृतप्राणी के अन्न, मधु, एवं मांस का जो ब्राह्मण भक्षण करता है, उसे तीन दिन निर्जल और एकदिन सजल उपवास करना चाहिए ।५८-५९

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के अनूर्वादित्य संवाद में ब्राह्मण धर्मवर्णन नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८४।

अध्याय १८५

मातृश्राद्धविधि का वर्णन

आदित्य बोले—रात में श्राद्ध न करना चाहिए, क्योंकि वह रात राक्षसी बतायी गई है । तथा वीर ! दोनों संध्याओं एवं सूर्य के अस्त समय में भी श्राद्ध नहीं करें ।१। मातृ यज्ञ बिना किये जो पिता श्राद्ध का परिवेषण (सूर्य मण्डल में निक्षिप्त करना) करता है, वह क्रोधपूर्ण एवं दारुण हिंसा करता है।२

अनूरु ने कहा—मातृश्राद्ध किस भाँति सम्पन्न करना चाहिए, वे माताएँ कौन हैं और नांदी मुख पितृगण, उस पूजा की प्राप्ति कैसे करते हैं ।३

आदित्य उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि मातृश्राद्धविधिं खग : शृणु त्वं खगशार्दूल गदतो मम कृत्स्नशः ।।४
पूर्वाह्णे भोजयेद्विप्रानष्टौ सर्वान्प्रदक्षिणान् । तथान्यं नवमं विप्रं चतुरश्च खगाधिप ।।५
ऋजून्वै कुतपान्दत्त्वा सत्येन विधिवत्खग । कृत्वा यवैस्तिलार्थं तु दधिमिश्रं क्रमेण च ।।६
गन्धपुष्पादिकं सर्वं कुर्याद्विप्रप्रदक्षिणम् । ब्राह्मणेभ्यस्ततो दद्यान्मधुरं भोजनं खग ।।७
गुडमिश्रं खगश्रेष्ठ सवस्त्रमोदनं परम् । रसानां मोदकांश्चैव न च नान्कटुकांस्तथा ।।८
एवं भुक्तेषु विप्रेषु दद्यात्पिण्डान्समाहितः । दध्यक्षतविनिश्रांस्तु बदरैश्च खगाधिप ।।९
कृत्वा तु मण्डपं वीर चतुरस्रं प्रदक्षिणम् । पूर्वाग्रांश्च कुशान्दत्त्वा पुष्पाणां प्रकरं तथा ।।१०
सव्येन पाणिना वीर विधिवत्खगसत्तम । मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे निर्वपेत्पूर्वतोमुखः ।।११
पितुर्मात्रे तु तन्मात्रे निर्वपेद्विधिवत्खग । वृद्धायै प्रपितामह्यै तथान्यं निर्वपेद्बुधः ।।१२
एवमुद्दिश्य वै मातुः षड् पिण्डान्निर्वपेत्खग । अष्टाशयेद्द्विजान्वीर मातृश्राद्धे खगाधिप ।।
नवमं सर्वदैवत्यं भोजयेद्विधिवत्खग ।।१३
नान्दीमुखांस्तानुद्दिश्य पितॄन्पञ्च द्विजोत्तमान् । भोजयेद्विधिवच्छ्राद्धे वृद्धिश्राद्धे प्रदक्षिणम् ।।१४
इत्थं श्राद्धद्वयं कुर्याद्वृद्धौ कश्यपनन्दन । तथान्यमपि ते वच्मि परं श्राद्धविधिं तव ।।१५
अथैवं भोजयेच्छ्राद्धे तत्पूर्वं तु प्रवर्तयेत् । अन्यथा तत्र लुम्पन्ति सदेवासुरमानुषाः ।।१६

आदित्य बोले—खग ! मैं तुम्हें मातृ श्राद्ध के विधान बता रहा हूँ, खगशार्दूल ! मैं विस्तार पूर्वक कह रहा हूँ सुनो ।४। खगाधिप ! पूर्वाह्ण के समय आठ ब्राह्मणों को प्रदक्षिणा पूर्वक भोजन कराये, तथा अन्य नवाँ ब्राह्मण का भी । खग ! कुतप (दिन के पन्द्रह मुहुर्त में आठवें मुर्हूत) के समय चार ऋजु (कुशाओं) को रख कर उनमें से क्रमशः प्रत्येक का यव, दधिमिश्रित तिल से आवाहन, गन्ध एवं पुष्पादि द्वारा पूजन प्रदक्षिणा पूर्वक सुसम्पन्न करके पश्चात् ब्राह्मणों के लिए मधुर भोजन प्रदान करें——भोजन में उत्तम गुडमिश्रित भात, उत्तम रस वाले मोहक (लड्डू) देना चाहिए, जिसमें कडुवापन का लेश मात्र भी न हो, खगाधिप ! इस प्रकार ब्राह्मण भोजन के उपरांत सावधान होकर दही, अक्षत मिश्रित बैर के फलों द्वारा पिंड दान का कार्य सपन्न करे ।५-९। वीर ! प्रथम चौकोर मण्डप का निर्माण करके उसके मध्य में बनी हुई बेदी पर पूर्व की ओर अग्रभाग कर कुशाओं को रखे । पुष्पों के समूहों से उन्हें भूषित भी करे । खगसत्तम ! विधानपूर्वक इन कर्मों को सव्य होकर दाहिने हाथ से करना चाहिए । उसके उपरांत खग ! माता, मातामही, पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह, एवं वृद्ध प्रमातामह के उद्देश्य से पिंडदान करे । खग ! इस प्रकार माताओं के उद्देश्य से छः पिण्ड प्रदान करना चाहिए और मातृश्राद्ध में आठ ब्राह्मण का भोजन कराना चाहिए तथा एक और ब्राह्मण का भोजन कराना चाहिए । सर्व दैवत्य (विश्वदेव) के नाम परा नांदी मुख पितरों के उद्देय से पाँच श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन करायें । यही वृद्धि श्राद्ध का भी नियम है। कश्यपनंदन ! इस प्रकार वृद्धि श्राद्ध में दो प्रकार से श्राद्ध होते हैं। इसके अनन्तर तुम्हें अन्य श्राद्धों के विधान भी बता रहा हूँ।१०-१५। इसी प्रकार अन्य श्राद्धों में भी ब्राह्मण भोजन आवश्यक है, क्योंकि उनके भोजनान्तर श्राद्ध विधान प्रारम्भ होता है। न करने से देव, असुर, एवं मनुष्य

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् । यो ह्यग्निः स द्विजो वीन्द्र[1] मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥१७
पूर्वं पात्रे यदन्नं च यच्चान्नमुपकल्पितम् । तेनैव सह भोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते ॥१८
द्वौ दैवेऽथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखावुपवेशयेत् । पित्र्ये त्रीनुदगास्यांश्च वृद्धौ चाध्वर्युसङ्गमान् ॥१९
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपास्तिलाः । त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वरम् ॥२०
दौहित्रं खण्डमित्युक्तं ललाटाय प्रजापते । तस्य शृङ्गस्य यत्पात्रं तद्दौहित्रमिति स्मृतम् ॥२१
सव्यादंसात्परिभ्रष्टं नाभिदेशे व्यवस्थितम् । एकवस्त्रं तु तं विद्याद्दैवे पित्र्ये च वर्जयेत् ॥२२
पितृदेवमनुष्याणां पूजनं भोजनं तथा । नोत्तरीयं विना कार्यं कृतं स्यान्निष्फलं यतः ॥२३
परिधानकृते स्कन्धे गृहस्थो योऽर्चयेत्पितॄन् । न स तत्फलमाप्नोति यथा योगपटावृतः ॥२४
वनस्थानां खगश्रेष्ठ यतीनां च महामते । सिद्धये कर्मणां वीर योगपट्टकमुच्यते ॥२५
हस्तौ प्रक्षाल्य गण्डूषं यः पिबेदविचक्षणः । स तु दैवं च पित्र्यं च आत्मनं चोपघातयेत् ॥२६
भोजनेष्वेव तिष्ठन्ति स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥२७

निमित्तक किये गये कर्म लुप्त हो जाते हैं ।१६। अग्नि के अभाव में ब्राह्मण के हाथ में प्रदान करना चाहिए मन्त्रविदों का कहना है कि अग्नि एवं ब्राह्मण भिन्न वस्तु नहीं है । पात्र में प्रथम जो अन्न रखा जाये अथवा जो प्राप्त हो सके, उसके साथ ही भोजन करना चाहिए न कि पृथक्-पृथक् ।१७-१८। देव कर्म में दो वैदिक ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख, पितृ कार्य में तीन ब्राह्मणों को उत्तराभिमुख, एवं वृद्धि श्राद्ध में वेदपाठी ब्राह्मणों को (भोजनार्थ) बैठाना चाहिए । श्राद्धों में कन्यापुत्र, कुतप (दिन का आठवाँ मुहूर्त), और तिल ये तीन पवित्र माने गये हैं । शौच (पवित्रता), अक्रोध (शान्ति), तथा शीघ्रता न करना ये तीनों श्राद्ध में प्रशस्त बताये गये हैं ।१९-२०। प्रजापते ! दौहित्र शिरोभूषण कहा जाता है; एवं भृंग के पात्र का नाम दौहित्र है । देव एवं पितृकर्मों में एक वस्त्र धारण करना निषिद्ध बताया गया है, इसलिए कि एक ही वस्त्र पहन कर उसका एक भाग कंधे पर रखने से गिर कर कटि प्रदेश में ही स्थित रह सकता है । पितृ, देव, एवं मनुष्यों के पूजन तथा भोजन में एक उत्तरीय वस्त्र का होना आवश्यक है क्योंकि उसके न रहने से किये गये कर्म निष्फल हो जाते हैं । पहिने हुए वस्त्र के दूसरे भाग को कंधे पर किसी प्रकार स्थित कर जो गृहस्थ पितृ कर्म करता है, उसे उस कर्म के फल नहीं प्राप्त होते हैं, जैसा कि योगियों को उनके पट्ट-सूत्र द्वारा ।२१-२४। खगश्रेष्ठ ! वनस्थ योगियों के कर्मसिद्धि के लिए यह वस्त्र धारण का विधान बताया गया है ।२५। जो कोई हाथ धोकर शेष जल को गंडूष (कुल्ला करने) के द्वारा पान करता है, वह अज्ञानी देव, पितृ निमित्तक कर्म एवं स्वयं का नाश करता है ।२६। जो ब्राह्मण भोजन के समय बैठकर 'स्वस्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं, वह श्राद्ध उसके द्वारा आसुर हो जाने के कारण पितरों को उपलब्ध नहीं होता

---

१. पक्षिराजत्वं न केवलं गरुडस्यैव, अरुणस्याप्यस्ति । अत एव 'एतद्विनिर्दिशेत्प्राज्ञः प्रायश्चित्तं खगाधिप, इति चतुरशीत्यधिकशततमेऽध्याये चतुष्पञ्चाशत्तमे श्लोके उक्तं संगच्छते । तेन गरुड एव पक्षिराज इति न भ्रमितव्यम् ।

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे अरुणादित्यसंवादे मातृश्राद्धविधिवर्णनं नाम पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८५।

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

शुद्धिप्रकरणवर्णनम्

भास्कर उवाच

श्रावण्यां तु बलिः कार्यः सर्पाणां मन्त्रपूर्वकः । शयनारोहणे चैव कार्या सुखमभीप्सता ॥१

कार्यः प्रत्यवरोहस्तु मार्गशीर्ष्यां न संशयः । फलं बिना त्वनुष्ठानं नित्यानामिष्यते स्फुटम् ॥२

काम्यानां सफलार्थं तु दोषप्राप्त्यर्थमेव च । नैमित्तिकानां करणं त्रिविधं कर्मणां फलम् ॥३

फलं केचिदुपात्तस्य दुरितस्य प्रचक्षते । अनुत्पत्तिं तथा चान्ये प्रत्येत्याम्युपमन्त्र्य च ॥४

है ।२७। प्रत्युत उन्हें ऐसा मेरे कुल में दाताओं की वृद्धि हो, वेदाध्ययन एवं वैदिक कर्मों के वृद्धि हो, सन्तानों की वृद्धि हो, हम में श्रद्धा की कमी न हो, और मेरे यहाँ दान के लिए अधिक सम्पत्तियाँ हो, कहना चाहिए ।२८

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में अरुणादित्य संवाद में मातृश्राद्ध विधि वर्णन नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८५।

अध्याय १८६

शुद्धिप्रकरण-वर्णन

भास्कर बोले—श्रावणी (श्रावण की पूर्णिमा के दिन) मंत्र पूर्वक सर्पों के लिए बलि प्रदान, एवं सुखेच्छुक को शयन तथा आरोहण ये दोनों कार्य भी सम्पन्न करना चाहिए ।१। उसी भाँति मार्गशीर्ष (अगहन) की पूर्णिमा के दिन प्रत्यवरोह का कार्य निष्पन्न करना चाहिए । नित्य कर्मों के अनुष्ठान में फल की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए एवं कामनाओं की सिद्धि के लिए तथा उसके दोष की प्राप्ति के लिए भी काम्य कर्म का आरम्भ होता है । नैमित्तिक कर्म के करने में तीन प्रकार के फलों की अपेक्षा बतायी गई है किसी का सम्मत है कि प्राप्त पाप-फलों का नाश तथा कुछ लोगों ने (पाप) विघ्न बाधा के उपस्थित होने पर भी उसके नाश पूर्वक नित्य क्रिया के सम्पन्न हो जाने को फल बताया गया है । और किसी ने श्रुति के आधार पर आनुषंगिक (आकस्मिक) फल को भी। वैदिक (मंत्र पूर्वक) अग्न्यापन, दर्श (अमावास्या) तथा पूर्णिमा के दिन यज्ञ-विधान, चार्तुमास्य व्रत विधान, अग्निहोत्र, पशुबंध एवं [1]सौत्रामणी नामक यज्ञ, हवि द्वारा सुसम्पन्न करने के लिए श्रुतियों में बताया गया है । इस भाँति

---

१. इस यज्ञ में ब्राह्मणों के सुराधान का विधान बताया गया है ।

नित्यक्रियं तथा चान्ये अनुषङ्गात्फलं श्रुतिः । अग्न्याधेयं तथा दर्शं पौर्णमासं द्वितीयकम् ॥५
चातुर्मास्यमग्निहोत्रं पशुबन्धो निरूढकाः । सौत्रामणी च संस्थाः स्युर्हविषः श्रुतिनोदिताः ॥६
अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः सषोडशी तथा । वाजपेयातिरात्रश्च आप्तोर्यामः श्रुतौ श्रुतः ॥७
दया स्यात्सर्वभूतेषु अनसूयाथ मङ्गलम् । क्षान्तिर्दया त्वनायासः शौचमस्पृहता व्रतम् ॥८
सम्यगुक्तास्तु संस्कारा ब्रह्मप्राप्तिनिमित्तकाः । अनन्तरं प्रवक्ष्यामि विप्राणां वृत्तयः शुभाः ॥९
ऋतामृते च विप्राणामृतं प्रमृतमेव च । प्रतिग्रहवणिज्यादि श्रेयसी नोत्तरोत्तरा ॥१०
आजीविकावृत्तयस्तु इत्याद्याः सम्प्रकीर्तिताः । तासां कयापि जीवेत्तु अनुतिष्ठेद्यथाविधि ॥११
नित्यं शुचिः सुगन्धश्च स्नानशीलः प्रियंवदः । पूज्यश्च पूजयेद्देवान्कार्याणि स्वयमाचरेत् ॥१२
नेक्षेतार्कं न नग्नां स्त्रीं न च सपृष्टमैथुनम् । नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा नाशुची रात्रितारकाः ॥१३
शास्त्रोक्ता यन्त्रणा या तु नानुक्तानि व्रतानि च । स्वर्गार्थं साधयेत्तैश्च शक्तिमान्मनसा तथा ॥१४
नित्यानि केचिदिच्छन्ति काम्यानि च तथापरे । काम्याप्रवृत्तौ सङ्गे च प्रायश्चित्तं विधीयते ॥१५
व्रतानि मनसा त्विष्टसङ्कल्प इति मानसः । अन्तरानुफलं यत्तदृषिवादाः प्रकीर्तिताः ॥१६
अनध्यायं स्वयं सम्यग्वर्जयेत्फलसाधनम् । आत्माशुद्धस्तथा देशो ह्यसुहारः प्रजापदः ॥१७
अशुभानि निमित्तानि उत्पातो विकृतं तथा । पर्वाणि मनसोऽशुद्धिरनध्याय इति स्मृतः ॥१८

अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्त एवं याम के विधान को श्रुतियों में बताया गया है । इन्हें सुसम्पन्न करते हुए मनुष्यों को सभी प्राणियों के प्रति दया, प्रशंसा तथा मंगल की कामना करनी चाहिए । स्वभावतः शान्ति, दया, पवित्रता एवं अस्पृहता (विराग) व्रत में आवश्यक होते हैं ।२-८। ब्रह्म प्राप्ति के उद्देश्य से इन सभी संस्कारों की व्याख्या की गयी है इसके उपरांत ब्राह्मणों को शुभ मूर्ति वृत्तियाँ (आजीविका) बता रहा हूँ । यद्यपि ऋत (उच्छवृत्ति-एक-एक दाने को खेतों से एकत्र करने) अमृत (आयाचित अन्न) प्रतिग्रह (दान) एवं वाणिज्यादि कर्म द्वारा ब्राह्मणों को जीवन निर्वाह करना बताया गया है पर इनमें प्रथम श्रेयस्कर और अन्य अप्रशस्त कहे गये हैं किन्तु (परिस्थिति के अनुसार) किसी भी जीविका द्वारा जीवन-निर्वाह करते हुए विधान पूर्वक कर्मों के अनुष्ठान अवश्य करने चाहिए । अनुष्ठान करने वाले को नित्य पवित्रता, सुगन्धलेपन स्नान, एवं मधुर भाषण करने के द्वारा पूज्य होकर देवों की पूजा एवं कर्मों को स्वयं करना चाहिए ।९-१२। उन्हें चाहिए कि सूर्य (उदय और अस्त समय में) नग्न स्त्री, मैथुन, जल में मूत्र एवं पुरीषोत्सर्ग, अपवित्रता, रात्रि में अस्तकालीन ताराएँ न देखें । शक्तिमान् पुरुष को शास्त्रोक्त नियमों के पालनपूर्वक दृढ प्रतिज्ञ होकर व्रतों द्वारा स्वर्ग प्राप्ति की सफलता करनी चाहिए ।१३-१४। कुछ लोग नित्य कर्मों के ही अनुष्ठान करते हैं तथा कुछ लोग काम्य कर्मों के भी । काम्य कर्मों के न करने अथवा उसी में आसक्त रहने पर प्रायश्चित का विधान बताया गया है ।१५। व्रतों के लिए मनद्वारा इष्ट संकल्प करना 'मानसिक' संकल्प और कर्म के मध्य में आकस्मिक फलानुसार मानसिक प्रतिज्ञा बद्ध होना 'ऋषिवाद' कहा जाता है।१६। सभी प्रकार के अनध्यायों का त्याग करना चाहिए स्वयं अशुद्ध एवं देश के अशुद्ध होने के समय जब कि राजा का प्राणोत्सर्ग हुआ हो अशुभ निमित्त, उत्पात, विकार, पर्वदिन, तथा मन की अशुद्धि ये सब अनध्याय बताये गये हैं । दृष्ट, एवं

अनध्यायाश्च दृष्टार्था अदृष्टार्थास्तथापरे । वेदाध्ययनमेवेति त्रिधा मद्ध्यानदर्शनम् ।।१९
अभक्ष्यं सर्ववर्णानां शावाशौचं खगाधिप । द्रव्यशुद्धिस्तथैव स्यादन्यथा त्वसमञ्जसम् ।।२०
जातिदुष्टं क्रियादुष्टं कालदुष्टं विभूषितम् । संसर्गाश्रयदुष्टं च सहृल्लेखं स्वभावतः ।।२१
लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।। वार्ताकं नालिकेरं तु मूलकं जातिदुष्टकम् ।।२२
नो भुञ्जीत क्रियादुष्टं दुष्टं च पतितैः पृथक् । कालदुष्टं तु विज्ञेयं हानिदं चिरसंस्थितम् ।।२३
दधिभक्ष्यविकाराश्च मधुवर्ज्यास्तदिष्यते ।।२४
सुरालशुनसंस्पृष्टं पेयूषादिसमन्वितम् । संसर्गदुष्टमेतद्धि शुनोच्छिष्टं खगेश्वर ।।२५
शूद्रसक्तं खण्डसक्तं ज्ञेयमाश्रयदूषितम् । विचिकित्सा तु हृदये भक्ष्ये यस्मिन्प्रजायते ।।२६
सहृल्लेखं तु तज्ज्ञेयं पुरीषं तु स्वभावतः । रसदुष्टे विकारोऽपि रसस्येति प्रदर्शितः ।।२७
पायसं क्षीरपाकादि तस्मिन्नेव दिने तथा । यथाशास्त्रं खगश्रेष्ठ भक्ष्याभक्ष्ये निरूपयेत् ।।२८
प्राणात्यये प्रोक्षितं च श्राद्धे न द्विजकाम्यया । पितृन्देवांश्चार्पयित्वा भुञ्जन्मांसं न दोषभाक् ।।२९
प्रेतशुद्धिः सपिण्डानां तस्मिन्नेव मृते सति । दशाहं द्वादशाहं वा पक्षं मासं त्वशुद्धता ।।३०
दशाहादर्वाक्के भागे वर्णशो न भवन्ति हि । दशाहेन तु भोज्याः स्युः सूतकाशौचयोस्तथा ।।३१
ऊर्ध्वं दशाहादेकाहश्रवणे सति जायते । संवत्सरे व्यतीते तु स्नानादेव विशुध्यति ।।३२

अदृष्ट अनध्याय, और वेदाध्ययन, यह तीन प्रकार के मेरे ध्यान दर्शन कहे गये हैं ।१७-१९। खगाधिप ! सभी वर्णों के लिए अभक्ष्य एवं शावाशौच (मरणाशौच) के विशेष ध्यान रखना आवश्यक है । क्योंकि पदार्थों की शुद्धि तभी संभव है अन्यथा नहीं ।२०। जाति, क्रिया, काल, संसर्ग, एवं आश्रय दूषित तथा स्वभावतः सहस्रलेख का विशेष ध्यान होना चाहिए । लहसुन, गाजर, प्याज, कुकुरमुत्ता, भाँटा, एवं मूली ये जाति दूषित होने के नाते त्याज्य हैं ।२१-२२। इसी भाँति क्रिया दूषित तथा पतितों द्वारा दूषित पदार्थ अभक्ष्य है, और चिरकाल तक रखे हुए पदार्थ काल दूषित होने के कारण अभक्ष्य बताये गये हैं क्योंकि उनसे विशेष हानियाँ सम्भव हैं जैसे दही द्वारा बने हुए भक्ष पदार्थ के विकृत होने से मधु (शहद) भी त्याज्य हैं । मदिरा और लहसुन मिश्रित पान करने की वस्तु संसर्ग दूषित होने के कारण त्याज्य होती है । तथा खगेश्वर ! उसी प्रकार कुत्तों के द्वारा उच्छिष्ट (दूषित) वस्तु भी । खण्डों में विभाजित जो शूद्रों से स्पृष्ट की गयी है, वह वस्तु आश्रय दूषित होने के नाते त्याज्य है जिस भक्ष्य के विषय में हृदय में जानकारी की विशेष भावना उत्पन्न हो, उसे सहृल्लेख, कहते हैं, जैसे स्वभावतः पुरीष (मन्त्र) कभी भी गृहीत नहीं होता है । इसके दूषित होने पर उससे बने विकृत पदार्थ भी दूषित होते हैं ।२३-२७। जैसे खीर अथवा क्षीर पाकादि उसी दिन का अच्छा होता है। खगश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैंने शास्त्रोक्त भक्ष्याभक्ष्य का निरूपण कर दिया ।२८। भूख से व्याकुल होकर प्राण के निकलते समय, यज्ञ निमित्तक, और श्राद्ध में देव एवं पितृ-तर्पण के उपरांत मांस भोजन करना दूषित नहीं बताया गया है ।२९। किसी के मरने पर उसके सपिण्ड के लोगों को मरणाशौच, दश, बारह, पन्द्रह और मास का वर्णों का क्रमशः होता है । दशाह का सभी वर्णों का अशौच नहीं रह जाता, अतः दशाह के उपरांत जननाशौच और मरणाशौच दोनों प्रकार के अशौच ब्राह्मण भोजन होना चाहिए । दशाह के उपरांत अशौच सुनने पर एक दिन अशौच होता है एवं वर्ष के बीत जाने पर सुनने से स्नान मात्र से शुद्धि बतायी गई है।३०-३२। (कुल में) जल

समानोदकता प्रोक्ता जन्मनाम्नोरपर्यये । सपिण्डाः सप्तपुरुषाः श्रुतावेतन्निदर्शनम् ॥३३
आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैष्ठिकी स्मृता । त्रिरात्रमाव्रतादेशात्सपिण्डेषु मृतेषु च ॥३४
तेषामपि तदेकं स्याद्वयोऽवस्थाप्यपेक्ष्यते । समानोदकात्त्रिरात्रेण शुध्येद्वै मृत्युजन्मनोः ॥३५
गर्भस्रावे त्रिरात्रेण उदक्या शुध्यते तथा । अनन्तजन्ममरणे तच्छेषेण विशुध्यति ॥३६
द्विजानां त्वेवमेव स्यात्पित्रर्थं मातुरेव वा । अग्निहोत्रार्थं विज्ञेयं सद्यः शौचमिति स्थितिः ॥३७
असपिण्डे तु निर्हारात्त्रिरात्रमपि मानवः । तस्यैवानुगतौ ज्ञेयं सद्यः शौचं खगाधिप ॥३८
शुध्येद्द्विजो दशाहेन जन्महानौ द्वियोनिषु । षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥३९
उक्तशौचं यथान्यायं शारीरं तत्त्वदर्शिभिः । द्रव्यशुद्धिविधानं तु यथावदभिधीयते ॥४०
तैजसी मार्तिकी वीर वारिशुद्धिः स्मृता तथा । निर्लेपक्षालने नैव स्पर्शो तु प्रोक्षणेन वै ॥४१
अशुद्धं नैव किञ्चिद्धि द्रव्यमस्तीति खेचर । वचनाच्छुद्ध्यशुद्धी तु द्रव्याणामिह खेचर ॥४२
स्नानं शौचं च कर्तव्यं द्रव्यशौचादनन्तरम् । प्रातः स्नानं तु नित्यं स्याद्ग्रहणे काम्यमेव च ॥४३
नैमित्तिकं क्षुराशौचं तेन पापाद्विशुध्यति । उक्तं तु शौचं विज्ञेयं दोषक्षयकरं खग ॥४४
कर्माङ्गं चेति विज्ञेयं षट्प्रकाराः समासतः । एवमाचमनं विद्याद्विशिष्टं तु द्विजन्मनाम् ॥४५
तदा मृतानां तद्वत्स्यादन्येषां तु यथासुखम् । कन्यानिवृत्ति पुत्रैस्तु यथान्यायं समाचरेत् ॥४६

और नाम दोनों से समानोदकता बतायी गयी है और सातवीं पीढ़ी तक सपिण्ड कहा जाता है, ऐसा श्रुति (वेद) में बताया गया है। सपिण्ड में दाँत निकलने के पूर्व, मरणाशौच में स्नान से शुद्धि, तथा प्रथमवर्ष चूड़ाकर्म होने के उपरांत उपनयन के पूर्वतक तीन रात का अशौच प्राप्त होता है। समानोदक के जनन अथवा मरणाशौच में तीन रात का अशौच प्राप्त होता है।३३-३५। गर्भ के स्राव में माँ को तीन रात के अशौच होने के उपरांत उदक (जल) द्वारा शुद्धि होती है कई व्यक्तियों के जन्म एवं मरण में (पूर्व पुरुष के अशौच के शेष दिन के साथ) वह भी शुद्ध हो जाता है।३६। मातृ-पितृ निमित्तक यह अशौच द्विजों के लिए बताया गया है। अग्नि होत्र वाले की उसी समय स्नान से शुद्धि हो जाती है। सपिण्ड में किसी के मरण में तीन रात तक के अशौच के अनन्तर उसकी शीघ्र शुद्धि हो जाती है।३७-३८। खगाधिप! जननाशौच एवं मरणाशौच में ब्राह्मण दशवें दिन शुद्ध होता है, बारहवें दिन क्षत्रिय, पन्द्रहवें दिन वैश्य, मास में शूद्र की शुद्धि होती है।३९। इस प्रकार तत्त्वदर्शियों ने न्यायपूर्ण शरीर सम्बन्धी पवित्रता का वर्णन किया है, पूर्व द्रव्य शुद्धि का विधान बताया जा रहा है। वीर! तेजपूर्ण एवं मृत्तिका से बनी मूर्ति, जल द्वारा शुद्ध होती है, उसमें जल से धोना नहीं चाहिए प्रत्युत कुशादिक से सेचन करना आवश्यक होता है। आकाशचारिन्! यों ही कोई द्रव्य (पदार्थ) अशुद्ध है ही नहीं, केवल वाक्य द्वारा द्रव्यों की शुद्धि एवं अशुद्धि होती है! द्रव्य शुद्धि के उपरांत भी स्नान तथा पवित्रता आवश्यक होती है। काम्य आदि सभी कर्म में नित्य स्नान होना ही चाहिए। नैमित्तिक केवल क्षुराशौच होता है, खग! इस प्रकार मैंने दोष नाशक शौच निर्णय बता दिया छः प्रकार के कर्मांग होते हैं, इसी प्रकार आचमन भी बताया गया है विशेषकर द्विजन्मों के लिए। मरण में वैसा ही करना होगा और अन्य कार्यों में यथेष्ट नियम हैं। पुत्रों को न्याय पूर्वक कन्याओं की निवृत्ति करनी चाहिए। स्त्रियों को कला, शिल्प आदि सभी कार्य सीखने

कलाशिल्पानि सर्वाणि गृह्णीयात्परितुष्टये ॥४७
शुश्रूषेत पतिं भार्या परितोषं यथा व्रजेत् । गुरूणां परितोषश्च धर्मः स्त्रीणां सनातनः ॥४८
वृद्धाऽपुत्रा यदि मृता तदभावे नृपस्य तु । मृतापत्याप्यगर्भा च वृद्धापत्या पतिव्रता ॥४९
कुर्यादनिर्वृतं भर्तुर्गते सन्निहितेऽपि सा । एतां धर्मसमां निष्ठां भर्तृलोकमवाप्नुयात् ॥५०
स्त्री धर्मचारिणी साध्वी मृता दाह्या तदग्निभिः । विपरीताऽप्यदाह्या तु पुनर्दारक्रिया तथा ॥५१
स्त्रीणां नियोगो विहितो मरणाद्ब्रह्मचारकम् । प्राप्तव्यश्च यथाधर्मो दृष्टादृष्टफलप्रदः ॥५२
तस्माद्धर्मं सदा कुर्यात्कुर्वती स्वर्गमाप्नुयात् ॥५३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु शुद्धिप्रकरणवर्णनं नाम षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८६।

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मे धेनुमाहात्म्यवर्णनम्

अनूरुरुवाच

कानि पुण्यानि कृत्वेह स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः । मनुष्यलोके सम्भूताः स्वर्लोके गामिनः परम् ॥१
कर्मयज्ञस्तपोयज्ञः स्वाध्यायो ध्याननिर्मितः । ज्ञानयज्ञश्च पञ्चैते महायज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥२

चाहिए तथा पति की इच्छानुसार उनकी शुश्रूषा अत्यन्त आवश्यक है। (स्त्रियों के लिए पति गुरु रूप है) अतः गुरुओं को भली भाँति प्रसन्न रखना स्त्रियों का सनातन धर्म है। पुत्रहीन विधवा का मरण होजाये तो अच्छा है, अन्यथा उसे राजा की सेवा करनी चाहिए, उसी प्रकार जिसके मृत बालक उत्पन्न होते हों, गर्भहीना हो, अथवा वृद्ध की भाँति संतान होते हों, ऐसी पतिव्रता स्त्री को चाहिए कि पति समीप रहे या न रहे, इन दोषों का निराकरण करे। क्योंकि धार्मिक निष्ठा (प्रेम) हीने से उसे पतिलोक प्राप्त होते हैं। धर्माचरण करने वाली सती स्त्री के मरण में अग्निदाह करना चाहिए, किन्तु इसके विपरीत हो तो दाह अनावश्यक है। स्त्री के लिए मरने अथवा ब्रह्मचारी रहने से नियोग करना कहीं अच्छा है। क्योंकि उससे दृष्ट एवं अदृष्ट फल प्राप्त होते हैं, अतः स्त्री को सदैव धर्म करना चाहिए जिससे उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो सके।४०-५३

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में शुद्धिकरण वर्णन नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त।१८६।

अध्याय १८७

सौर धर्म में धेनुमाहात्म्य का वर्णन

अनूरु ने कहा—इस मनुष्यलोक में उत्पन्न मनुष्य लोग, जो स्वर्गलोक के गामी हैं, किन पुण्यकर्मों द्वारा स्वर्गलोक की प्राप्ति करते हैं। कर्मयज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ध्यानयज्ञ एवं ज्ञानयज्ञ—ये पाँच

एतेषमेव यज्ञानामुत्तमः कतमः स्मृतः । एतद्यज्ञफलानां च किं फलं का गतिर्भवेत् ।।३
धर्माधर्मप्रभेदाश्च कियन्तः परिकीर्तिताः । तत्साधनानि कतिधा गतयश्च यथा वद ।।४
खग नारकिणां पुंसामागतानां पुनः क्षितौ । कानि चिह्नानि जायन्ते भुक्तशेषेण कर्मणा ।।५
महाभवार्णवाद्घोराद्धर्माधर्माभिसङ्कुलात् । गर्भादिदुःखफेनाढ्यान्मुच्यन्ते देहिनः कथम् ।।६
इत्युक्तो भगवान्भानुः सर्वप्रश्नार्थमादरात् । प्रत्युवाच महातेजाः समासव्यासयोगतः ।।७

आदित्य उवाच

स्वर्गापवर्गफलदं नरकार्णवतारणम् । धर्मं पापहरं पुण्यं शृणु शूर प्रभाषतः ।।८
श्रद्धापूर्वः सदा धर्मः श्रद्धामध्यान्तसहस्थितः । श्रद्धानिष्ठप्रतिष्ठश्च धर्मः श्रद्धा प्रकीर्तिता ।।९
श्रुतिमन्त्ररसाः सूक्ष्माः प्रधानपुरुषेश्वरः । श्रद्धामात्रेण गृह्यन्ते न परेण च चक्षुषा ।।१०
कायक्लेशैर्न बहुभिर्न चैवार्थस्य राशिभिः । धर्मः सम्प्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाहीनैः सुरैरपि ।।११
श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा यज्ञाहुतं तपः । श्रद्धा मोक्षश्च स्वर्गश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत् ।।१२
सर्वस्वं जीवितं वापि दद्यादश्रद्धया च यः । नाप्नुयात्स फलं किञ्चित्तस्माच्छ्रद्धापरो भवेत् ।।१३
एवं श्रद्धामयाः सर्वे मम धर्माः प्रकीर्तिताः । पूज्यस्तु श्रद्धया पुंसा ध्येयः पूज्यश्च श्रद्धया ।।१४

महायज्ञ के नाम से विख्यात हैं, इनमें कौन यज्ञ श्रेष्ठ बताया गया है और इनके द्वारा किस फल की एवं किस गति की प्राप्ति होती है ? तथा धर्माधर्म के कितने भेद बताये गये हैं कितने प्रकार के उनके साधन हैं एवंम् कितने प्रकार की गति प्राप्ति होती है, और खग ! नारकीय पुरुषों के, जो नरक की यातनाओं के अनुभव के पश्चात् पुनः इस पृथ्वी तल पर जन्म ग्रहण किये हैं उन्हें शेष भोग्य कर्मद्वारा किन लक्षणों की उपलब्धि होती है, एवं इस घोर संसार महासागर से जिसमें धर्माधर्मसमूह से प्राप्त गर्भादिदुःख, फेनसंकुल के समान हैं, यह प्राणी कैसे मुक्त होता है ? इस प्रकार सादर विनम्रभाव से पूछने पर महा तेजशाली भगवान् भास्कर ने संक्षेप तथा विस्तृत के सम्मिश्रण द्वारा सभी प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कहना आरम्भ किया ।१-७

आदित्य बोले—शूर ! मैं उस धर्म की चर्चा कर रहा हूँ, जिसके द्वारा स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति, नरकसागर से उद्धार, पाप का नाश तथा पुण्य की प्राप्ति होती है, सुनो ! ८। धर्म के पूर्व, मध्य एवं अंत में श्रद्धा स्थित है, क्योंकि श्रद्धानिष्ठ एवं उसी में प्रतिष्ठित धर्म का नामान्तर (दूसरा नाम) ही श्रद्धा है।९। सूक्ष्म श्रुतियों के मंत्र-रस तथा प्रधान पुरुषेश्वर केवल श्रद्धामात्र से गृहीत होते हैं, न कि सूक्ष्म (अन्य) नेत्रों द्वारा।१०। श्रद्धाहीन देवगण भी शारीरिक कष्ट एवं अतुल धनराशि द्वारा सूक्ष्म धर्म की प्राप्ति कभी नहीं कर सकते।११। श्रद्धा ही सूक्ष्म एवं उत्तम धर्म, यज्ञ में आहुति, तप, मोक्ष तथा स्वर्ग रूप है इस प्रकार जगत् श्रद्धामय है। श्रद्धाविहीन कोई भी अपना सर्वस्व अथवा जीवनदान ही क्यों न प्रदान करे उससे उसे कुछ भी फल प्राप्त नहीं हो सकता है, इसलिए सदैव श्रद्धासम्पन्न होने की चेष्टा करनी चाहिए ।१२-१३। मेरे सभी धर्म श्रद्धामय बताये गये हैं, अतः पुरुष को श्रद्धायुक्त होकर धर्म की (मेरी) पूजा एवं ध्यान अवश्य करना चाहिए।१४। मेरी ये सभी बातें जो तुम्हें अज्ञ के कहने की भाँति एवं संदिग्ध मालूम

अधिकारस्य प्राप्त्यर्थं महासारविमुक्तदम् । अज्ञावुक्तं ससंदिग्धं वाक्यमेतन्ममाद्भुतम् ॥१५
नानासिद्धिकरं दिव्यं लोकचित्तानुरञ्जनम् । सुनिश्चितार्थगम्भीरं वाक्यं मम मनोरमम् ॥१६
मन्मानससमुद्रो हि द्विपदोऽयं विदुर्बुधाः । स खषोल्केति विख्यातः सशिवं मण्डलं खग ॥१७
देवत्रयगुणातीतः सर्वज्ञः सर्ववित्प्रभुः । ओमित्येकाक्षरे मन्त्रे स्थितः स परमो मम ॥१८
यथानादिप्रवृत्तोयं घोरः संसारसागरः । खषोल्कोऽपि तथानादिः संसारार्णवशोधनः ॥१९
व्याधीनां भेषजं यद्वत्प्रतिपक्षस्वभावतः । मोक्षिणां मुक्तिहेतुश्च सिद्धः सर्वार्थसाधकः ॥२०
ममाभिधानमन्त्रोऽयमभिधेयः सदा स्मृतः । अभिधानाभिधेयोऽहं मन्त्रसिद्धोऽस्मि खेचर ॥२१
वेदो मनोगमे चात्र षडक्षरमन्त्रसंस्थितः । यद्वा मुक्तोऽक्षरैकेन लोके पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥२२
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः । यस्यों नमः खषोल्केति मन्त्रोऽयं हृदि संस्थितः ॥२३
तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् । येनों नमः खषोल्केति मम वाक्यं षडक्षरम् ॥२४
विधिवाक्यमिदं सर्वं नार्थवादं वचो मम । एतत्ते वक्ष्यतेऽशेषं मम वाक्यार्थमुत्तमम् ॥
पृच्छस्वेमं प्रणम्याशु वैनतेय महामते ॥२५

सुमन्तुरुवाच

श्रुत्वा तु वचनं भानोर्वैनतेयो महाबलः । सप्ताश्वतिलकं भक्त्या प्रणम्योवाच भारत ॥२६

होती हैं, अधिकार की प्राप्ति और महासार मोक्ष को प्रदान करने वाली हैं ।१५। भाँति-भाँति की सफलता, दिव्य लोक के चित्त को मुग्ध करने एवं निश्चित किन्तु अर्थगम्भीर वाले ये सुन्दर वाक्य मेरे हैं ।१६। खग ! वह खषोल्क नामक मेरा कल्याणात्मक मंडल, मेरे मानससमुद्र का (संतरण करने वाला) द्विपद देव रूप है, ऐसा विद्वानों का कहना है ।१७। वह मेरा परमोत्तम देव, जो त्रिगुणरहित, सर्वज्ञ, सब कुछ जानने वाला एवं प्रभु रूप है, 'ओम्' इस एकाक्षर वाले मंत्र में सदैव स्थित रहता है ।१८। इस घोर संसारसागर के अनादिकाल से प्रवृत्त होने की भाँति संसारसागर के समुद्धारक खषोल्क भी अनादि हैं ।१९। यह रोगों की औषधि की भाँति प्रबल संक्रामक तथा मोक्षार्थियों के लिए मुक्तिप्रदायक, सिद्ध एवं समस्त कामनाओं का साधन भी है ।२०। आकाशाचारिन् ! मेरे नाम का यह मन्त्र सभी के लिए सदैव ध्यान करने के योग्य है, तथा मैं ही नाम, ध्येय एवं मन्त्रसिद्धि हूँ ।२१। मन के द्वारा जानने योग्य इस षडक्षर मंत्र में समस्त वेद स्थित हैं, इस लोक में मनुष्य एक ही अक्षर से मुक्त हो जाता है, इस मंत्र में तो पाँच अक्षर 'ओं खषोल्क हैं ।२२। जिसके हृदय में भली भाँति 'ओं नमः खषोल्काय' इस मंत्र की स्थिति दृढ़ हो गई है, उसे अनेक मंत्रों एवं अति विस्तृत शास्त्रों की आवश्यकता क्या है ? (अर्थात् कुछ नहीं) ।२३। 'ओं नमः खषोल्क', इस षडक्षर वाले मेरे वाक्य को जिसने अपना लिया है, उसी ने सब कुछ अध्ययन एवं सभी उत्तम कर्मों का अनुष्ठान सम्पन्न किया है ।२४। वैनेतेय, महामते ! यह मेरा कहना विधि वाक्य है, न कि अर्थवाद (प्रशंसा) रूप । तुम शीघ्र इनसे सादरप्रणामपूर्वक पूछो, ये मेरी सभी बातें तुम्हें बतायेंगे ।२५

सुमन्तु बोले—भारत ! इस प्रकार भानु की बातें सुनकर महाबली वैनतेय (अरुण) ने सप्ताश्वतिलक से भक्ति एवं प्रणामपूर्वक पूँछा— ।२६

अनूरुरुवाच

ब्रूहि मा देवशार्दूल यत्पृच्छामि महामते । कीदृग्वाक्यमिदं भानोर्वैनतेयो महाबलः ॥२७

सप्ताश्वतिलक उवाच

विमुक्ताशेषदोषेण सर्वज्ञेन भगेन यत् । प्रणीतममलं वाक्यं तत्प्रमाणं न संशयः ॥२८
यस्मान्मार्तण्डनामासौ कथ्यते च मनीषिभिः । यथार्थं पुण्यमाप्नोति पतत्यश्रद्धया त्वधः ॥२९
सौरवाक्यप्रवक्तारं सूरवत्पूजयेद्गुरुम् । संसारार्णवनिर्मग्नं यः समुद्धरते जनम् ॥३०
सौरधर्माम्बुहस्तेन कस्तेन सदृशो गुरुः । अज्ञानवह्निसन्तप्तं निर्वापयति यः शनैः ॥
ज्ञानामृतेन वै भक्तान्कस्तं न प्रतिपूजयेत् ॥३१
नैव राज्येन महता न चैवार्थस्य राशिभिः । प्राप्तमज्ञानशमनं परलोके सुखावहम् ॥३२
स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थं भाषितं यत्तु शोभनम् । वाक्यं ते देवदेवेन तद्विज्ञेयं सुभाषितम् ॥३३
रागद्वेषाक्षमाक्रोधकामतृष्णानुसारिणाम् । वाक्यं निरयहेतुत्वात्तद्दुर्भाषितमुच्यते ॥३४
संस्कृतेनापि किं तेन मृदुलालित्यसङ्गिना । अविद्यारामवाक्येन संसारक्लेशहेतुना ॥३५
यच्छ्रुत्वा जायते पुण्यं रागादीनां च संक्षयः । विरूपमपि तद्वाक्यं विज्ञेयमतिशोभनम् ॥३६
स्मृतयो भारतं वेदाः शास्त्राणि सुमहान्ति च । स्वायुषः क्षपणायैव धर्मोऽर्थसमग्रन्थितः ॥३७
पुत्रदारादिसंसारे नराणां मूढचेतसाम् । संसारविदुषां शास्त्रमनादिमुखनिर्गतम् ॥३८

अनूरू ने कहा—हे देवशार्दूल, महामते ! मैं जो कुछ पूँछूँ, उसे आप बताने की कृपा करें हे प्रभो ! सूर्य के वे वाक्य कैसे हैं, उनके अर्थ बतायें।२७

सप्ताश्वतिलक बोले—समस्त दोषरहित एवं सर्वज्ञ सूर्य ने जिन वाक्यों के प्रयोग किये हैं, वे शुद्ध एवं प्रमाणरूप हैं, इसमें संदेह नहीं।२८। जिसके द्वारा श्रद्धा सम्पन्न होकर मनीषी लोग मार्तण्ड नाम का उच्चारण करते हैं, उन्हें ही वास्तविक पुण्य की प्राप्ति होती है, और उसी भाँति श्रद्धाहीन वालों का अधःपतन होता है।२९। सूर्य के वाक्यों के प्रयोग करने वाले गुरु की पूजा सूर्य की भाँति ही करनी चाहिए, क्योंकि संसारसागर में निमग्नप्राणी का उद्धार उन्हीं द्वारा सुलभ होना बताया गया है।३०। सौर धर्म रूपी जल के करस्थ होने पर उसके समान अन्य कौन गुरु हो सकता है, जिसने धीरे-धीरे अज्ञान रूपी प्रज्वलित अग्नि का और ज्ञान रूपी अमृतपान से भक्तों को तृप्त कर दिया है। अतः उसे सम्मानित कौन नहीं करेगा ? ।३१। इस प्रकार महान् राज्यप्राप्ति अथवा असंख्य धनराशि द्वारा परलोक में सुखप्रदान करने वाले उस अज्ञान-नाशक की प्राप्ति नहीं हो सकती है।३२। देवाधिदेव (सूर्य) ने जिन सुन्दर वाक्यों के प्रयोग किये हैं, वे सौन्दर्यपूर्ण स्वर्ग और मुक्तिप्रदायक हैं।३३। अनुराग, द्वेष, अक्षमा, क्रोध, काम एवं तृष्णायुक्त प्राणियों के वाक्य नरक की प्राप्ति कराते हैं, अतः वे दुर्भाषित कहे जाते हैं।३४। उस सुसंस्कृत वाणी के प्रयोग से, जो कोमल स्वरपूर्ण होते हुए भी अविद्या रूपी उपवन में विचरण करने वाली एवं संसार के क्लेशों की प्रदायिका हैं, क्या लाभ हो सकता है।३५। जिसके सुनने से पुण्य एवं रागादि दोषों के नाश होते है, उसे विरूप होते हुए भी उसी वाणी को अत्यन्त सुन्दर समझना चाहिए।३६। अतः स्मृतियाँ, महाभारत, वेद, तथा बड़े-बड़े दुरूह शास्त्र, ये सभी अर्थ की ग्रन्थियों द्वारा निबद्ध होकर धर्म के नाम पर आयु को केवल क्षीण करने के लिए ही हैं।३७। पुत्र-स्त्री रूप संसार में मूढ़ चित्त वाले मनुष्यों के, जो संसारी विद्वान् कहे जाते हैं, मुख से निकले हुए ये शास्त्र अनादि कहे जाते हैं यद्यपि यह श्रेष्ठ है, एवं यह तुम्हें

इदं श्रेष्ठमिदं ज्ञेयं सर्वं त्वं ज्ञातुमिच्छसि । अपि वर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नाधिगच्छति ।।३९
विज्ञायाक्षरतन्मात्रं जीवितं चातिवञ्चनम् । विहाय सर्वशास्त्राणि परलोकं समाचरेत् ।।४०
पण्डितेनापि किं तेन समर्थेन च देहिनाम् । यः पुण्यभारमुद्वोढुमशक्तः पारलौकिकम् ।।४१
पण्डितोऽपि स मूर्खः स्याच्छक्तियुक्तोऽप्यशक्तिकः । यः सौरज्ञानमाहात्म्यमुच्चारयितुमक्षमः ।।४२
तस्मात्स पण्डितः शक्तः स तपस्वी जितेन्द्रियः । यः सौरज्ञानसद्भावमालोचयितुमुद्यतः ।।४३
यः प्रदद्यान्नृपः कृत्स्नां क्ष्मां धनं काञ्चनं तथा । सर्वमन्यायतः पृच्छेन्न तस्योपदिशेद् गुरुः ।।४४
यः शृणोति रवेर्धर्मं न्यायतः स च वक्ति च । ततो गच्छति सुस्थानं नरकं तद्विपर्यये ।।४५
दत्तगोदोहसम्भूतः षडक्षरविधानतः । रविसम्पूजितः शीघ्रं नराणां तुल्यता भृशम् ।।४६
सुरासुरैर्मथ्यमानात्क्षीरोदात्सागरात्पुरा । पञ्च गावः समुत्पन्नाः सर्वलोकस्य मातरः ।।४७
नन्दा सुभद्रा सुरभी सुमना शोभनावती । गावः सूर्यसमा भासा उत्पन्नाः कृतिमागताः ।।४८
सर्वलोकोपकारार्थं देवानां तर्पणाय च । मामाश्रित्य स्थिता गावः स्नानार्थं भास्करस्य तु ।।४९
तासामङ्गानि पुण्यानि षड्रसाः खगसत्तम । खगादिषु च सर्वेषु स्थिराणीत्युपधारय ।।५०
गोमयं रोचनं मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम् । षडङ्गानि पवित्राणि सर्वसिद्धिकराणि च ।।५१
गोमयादुत्थितः श्रीमान्बिल्ववृक्षोऽर्कवल्लभः । तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीर्वृक्षस्तेन च स स्मृतः ।।५२

जानना नितान्त आवश्यक है, ऐसा करते हुए सहस्रों वर्ष की आयु नष्ट हो जाती है, तथापि वह शास्त्र का निष्णात विद्वान् नहीं होता है।३८-३९। (शास्त्र को) केवल अक्षरमात्र उसके अध्ययन से व्यर्थ जीवन नष्ट करना है, ऐसा समझकर शास्त्रों के त्यागपूर्वक (किसी अन्य द्वारा) परलोक की प्राप्ति के लिए उद्योग करना चाहिए। उस पण्डित के द्वारा, जो समर्थ होते हुए प्राणियों के पारलौकिक पुण्यभार के वहन करने में अशक्त है, क्या लाभ हो सकता है।४०-४१। पण्डित होते हुए वह मूर्ख है, जो समर्थ होकर इस प्रकार की अपनी दुर्बलता प्रकट करता है—मैं सौर-ज्ञान के माहात्म्य के उच्चारण करने में असमर्थ हूँ।४२। इसलिए वही पण्डित, समर्थ, तपस्वी एवं जितेन्द्रिय है, जो सौर ज्ञान की सद्भावनापूर्ण विवेचना करने को सदैव कटिबद्ध रहता है।४३। गुरु को भी चाहिए कि उस राजा को, जो अपनी समस्त पृथ्वी, धन एवं सुवर्ण के प्रदानपूर्वक अन्यायपूर्ण प्रश्न करे, उपदेश न प्रदान करे। जो सूर्य धर्म का श्रवण और न्यायपूर्ण वाणी का व्यवहार करता है, उसे ही अच्छे स्थान (स्वर्ग) की प्राप्ति होती है तथा उसके प्रतिकूल आचरण वाले को नरक की।४४-४५। षडक्षर के विधानपूर्वक दूध द्वारा सूर्य की पूजा करने से वह मनुष्य भी सूर्य के समान हो जाता है।४६। पहले समय में देव और राक्षसों ने मिलकर क्षीर सागर का मंथन किया था, उसी से पाँच गाएँ, जो समस्त लोकों की माताएँ हैं, उत्पन्न हुई हैं।४७। नंदा, सुभद्रा, सुरभी, सुमना तथा शोभनावती, इन नाम की पाँच गायों ने सूर्य के समान तेजस्वी रूप धारण किया।४८। समस्त लोकों के उपकारार्थ, एवं देवों की तृप्ति तथा भास्कर के स्नान करने के लिए ये गायें मेरे आश्रित स्थित हुईं।४९। खगसत्तम! उनके अंगों एवं छः रसो, पक्षी आदि सभी प्राणी में स्थित हैं, ऐसा समझना चाहिए।५०। गोबर, गोरोचन, मूत्र, दूध, दही तथा घी गौओं के यही छहों अंग पवित्र एवं सर्वसिद्धिकारक हैं।५१। गोमय द्वारा विल्व वृक्ष का उत्थान हुआ है, जो श्रीसम्पन्न एवं सूर्यप्रिय है, उसी वृक्ष पर पद्महस्ता

पङ्कान्युत्पलपद्मानि पुनर्जातानि गोमयात् । गोरोचनं च माङ्गल्यं पवित्रं सर्वकामदम् ।।५३
गोमूत्राद्गुग्गुलुर्जातः सुगन्धिः प्रियदर्शनः । आहारः सर्वदेवानां भास्करस्य विशेषतः ।।५४
यद्बीजं जगतः किञ्च चित्तज्ज्ञेयं क्षीरसम्भवम् । दध्नः सर्वाणि जातानि माङ्गल्यान्यर्थसिद्धये ।।५५
घृतादमृतमुत्पन्नममराणामतिप्रियम् । तस्माद्घृतेन पयसा दध्ना यः स्नापयेद्रविम् ।।५६
तदन्ते चोष्णतोयेन कषायैश्च निस्नापयेत् । स्नाप्य शीताम्बुना पश्चाद्भानुं रोचनया लभेत् ।।५७
पूजयेद्बिल्वपत्रैश्च पद्मैर्नीलोत्पलैस्तथा । अर्घ्यं दद्यात्ततः पश्चात्सवज्रं गुग्गुलं खग ।।५८
पायसं दधिभक्तं च वज्रं च मधुना सह । निवेदयेच्च सद्भक्त्या भक्ष्याणि विविधानि च ।।५९
कृत्वा प्रदक्षिणं पश्चात्प्रणिपत्य क्षमापयेत् । अनेन विधिना भानुं षडङ्गेन दिवस्पतिम् ।।६०
इह लोके परे चैव सर्वान्कामान्स गच्छति । षडङ्गविधिना तं चापूज्यैवं सुमना रविम् ।।६१
स्वर्गं नयेत्सधीमांस्तु कुलानामेकविंशतिम् । स्वर्गे स्थाप्य स्वयं गच्छेज्ज्यौतिषं नाम तत्पदम् ।।६२
अंशेन भोजका वीर देवकार्ये नियोजिताः । प्रयान्ति स्वामिना सार्धं श्रीमद्भानुं परं महः ।।६३
भुक्त्वा भोगांस्तु विपुलान्भोजको भोगसंमितः । कालात्पुनरिहायातः पृथिव्यामेकराड्भवेत् ।।६४
पुष्पं पत्रं फलं तोयं यद्गतं भास्करार्चने । सौरा गावश्च गच्छन्ति सूर्यलोकं न संशयः ।।६५
यः पिबेद्भोजने धेनोरदत्ताभानवे पयः । स गच्छेन्नरकं घोरमकुर्वंस्तर्पणं रवेः ।।६६

श्री, निवास करती है, इसीलिए उस वृक्ष का स्मरण किया जाता है ।५२। पुनः उसी गोमय द्वारा पंक में उत्पन्न (नीले कमल) तथा लाल कमल की उत्पत्ति हुई है, और मांगलिक, पवित्र एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले गोरोचन की भी ।५३। गो-मूत्र द्वारा गुग्गुल की भी उत्पत्ति हुई है, जो सुगंधित एवं मनमोहक होता है । तथा समस्त देवों एवं विशेषकर भास्कर का भक्ष्य पदार्थ है ।५४। इस भूतल में जो कुछ बीज के रूप में है, वह क्षीर से उत्पन्न हुआ है । अर्थसिद्धि के लिए दही से सभी मांगलिक वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है ।५५। घी द्वारा अमृत की उत्पत्ति हुई है, जो देवों को अतिप्रिय है, इसलिए घी, दूध एवं दही से प्रथम सूर्य को स्नान कराकर पश्चात् गर्म जल तथा कषायों द्वारा स्नान कराने के उपरांन्त शीतजल से स्नान कराकर सूर्य के शरीर में गोरोचन का लेपन करना चाहिए ।५६-५७। इसके उपरान्त विल्वपत्र, कमल, नीलकमल द्वारा उन्हें अर्घ्य प्रदान कर वज्र समेत गुग्गुल प्रदान करे । खग ! इस प्रकार दूध एवं दही द्वारा बने हुए उत्तम भक्ष्यपदार्थ, जिसमें शहद मिलाया गया हो, भक्तिपूर्वक ऐसे विविध व्यंजनों को वज्र समेत उन्हें अर्पित करे ।५८-५९। पश्चात् प्रदक्षिणा पूर्वक प्रणाम करके षडङ्ग द्वारा विधानपूर्वक पूजित सूर्य से क्षमा प्रार्थना करे । इस भाँति करने वाले के लोक-परलोक की सभी कामनाएँ सफल होती हैं। प्रसन्नचित्त होकर षडङ्गविधानपूर्वक सूर्य की पूजा करने से वह बुद्धमान् अपने इक्कीस पीढ़ी के लोगों को स्वर्ग पहुँचा कर स्वयं 'ज्यौतिष' नामक स्थान की प्राप्ति करता है ।६०-६२। वीर ! इस प्रकार भोजक भी जो उनके अंशमात्र से समुत्पन्न तथा देवकार्य के लिए नियुक्त किये गये हैं, स्वामी के साथ उत्तम एवं पूजनीय लोक में विचरण करते हैं ।६३। वहाँ भोजक विभिन्न भोगों के उपभोग करने के पश्चात् कालचक्रवश इस भूतल में पुनः जन्म ग्रहण किया, तो पृथ्वी का एकच्छत्र राजा होता है ।६४। सूर्य की पूजा में पुष्प, पत्र, फल जल एवं सौर गायें ये जो कुछ सहायता प्रदान करने के लिए उत्पन्न किये गये हैं, वे सभी निस्संदेह सूर्यलोक की प्राप्ति कराते हैं ।६५। जो सूर्य को बिना दिये हुए भोजन में दुग्ध-पान करता है, उसे

एककालं पिबेत्क्षीरं धेनूनां भास्करस्य तु । अनेन स्नापयेद्देवं क्षीरेण खगसत्तम ॥६७
प्रत्यूषे यद्भवेत्क्षीरं धेनूनां भास्करस्य तु । स्नापयेत्तेन वै भानुं कृत्स्नेन गरुडाग्रज ॥६८
यस्तु लोको भजेत्सर्वं न देवाय निवेदयेत् । यावन्तो रोमकूपाश्च गवां देहे खगाधिप ॥
तावद्वर्षसहस्राणि नरके पच्यते खग ॥६९
पूजितं पूज्यमानं वा यः कश्चिच्छृणुयाद्द्विज । श्रुत्वानुमोदते यस्तु स यज्ञफलमश्नुते ॥७०
भास्करं पूजितं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । हर्षात्प्रणम्य वै भानुं तस्य लोके महीयते ॥७१
पूज्यमानं रविं भक्त्या यः पश्येन्मानवः खग । सोऽपि यज्ञफलं कृत्स्नं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥७२
श्रुत्वानुमोदते यस्तु पूज्यमानं दिवाकरम् । तत्सर्वं फलमाप्नोति प्रसादाद्भास्करस्य तु ॥७३
एकजन्मानुगं दानं भक्त्या यच्च निवेदितम् । जपयज्ञादियुक्तेभ्यः सहस्रभविकं स्मृतम् ॥
आभूतसम्प्लवस्थायिप्रदानं जपजीविनाम् ॥७४
अत्यल्पमपि यद्दत्तं वाचकाय खगाधिप । तन्महाप्रलयं यावद्दातुर्भोगाय कल्पते ॥७५
न दानमल्पं बहुधा किञ्चिदस्ति विजानताम् । देशकालविधिश्रद्धापात्रयुक्तं तदक्षयम् ॥७६
पात्रे देशे च काले च विधिना श्रद्धया च यत् । दत्तं हुतं कृतं चैव तदनन्तफलं भवेत् ॥७७
तिलार्धमपि यद्वीर दीयते श्रद्धया द्विज । सत्पात्रे विधिवद्भक्त्या तद्भवेत्सर्वकामिकम् ॥७८

घोर नरक की प्राप्ति होती है, क्योंकि उससे सूर्य को उसने तृप्त नहीं किया।६६। खगसत्तम ! उन सौर गायों के दूध का पान एक समय करना चाहिए और उसी दूध से (सूर्य) देव का स्नान भी कराना चाहिए।६७। गरुडाग्रज ! प्रातःकाल उन सौर गायों के दूध से सूर्य को भली-भाँति स्नान कराकर उसका पान करे।६८। जो उन्हें अर्पित किये बिना स्वयं पी जाता है, खगाधिप ! गाय के शरीर में जितने रोमकूप हैं, उतने सहस्र वर्ष के दिन उसे नरक में रहना पड़ता है। सूर्य की की गई पूजा अथवा की जाने वाली पूजा को सुनकर जो उसका अनुमोदन करता है, उसे यज्ञफल की प्राप्ति होती है।६९-७०। पूजा के उपरान्त सूर्य के दर्शन करने से समस्त पाप से मुक्ति प्राप्ति होती है, एवं हर्षपूर्ण उन्हें प्रणाम करने पर वह उनके लोक में सम्मानित होता है।७१। खग ! भक्तिपूर्वक सूर्य के दर्शन करने से भी समस्त यज्ञ-फल की प्राप्ति होती है—इसमें संदेह नहीं।७२। जो पूज्यमान सूर्य को सुनकर उसका अनुमोदन करते हैं, उन्हें भी भास्कर की प्रसन्नतावश समस्त फलों की प्राप्ति होती है।७३। भक्तिपूर्वक उन्हें दान प्रदान करने से एक जन्म में उसकी फल प्राप्ति होती रहती है, जो जप यज्ञ विहीन होकर भी भक्तिपूर्वक उसी काम को करते रहते हैं, उन्हें सहस्र जन्म तक तथा जप यज्ञ समेत प्रदान करने वाले को महाप्रलय तक उसके फल प्राप्त होते रहते हैं।७४। खगाधिप! वाचक के लिए दिया गया अल्प दान भी उस दाता के भोग के लिए महाप्रलय तक अक्षय रहता है।७५। बुद्धिमानों के लिए अन्य या विविध प्रकार के दान नहीं बताये गये हैं, प्रत्युत देश, काल, विधान, श्रद्धा एवं पात्र द्वारा प्राप्त वह अत्यल्प दान भी उसके लिए अक्षय होता है यह कहा गया है।७६। पात्र, देश और काल में विधान एवं श्रद्धापूर्वक दिया गया दान देने वाले के लिए अनन्त फल प्रदान करता है।७७। वीर ! द्विज ! श्रद्धापूर्वक सत्पात्र में विधान एवं भक्ति द्वारा तिलार्धभाग के समान भी दिया गया दान

यत्स्नातं ज्ञानसलिलैः शीलभस्मप्रमार्जितम् । तत्पात्रं सर्वपात्रेभ्य उत्तमं परिकीर्तितम् ॥७९
जपो दमो यमः पुंसां त्राता संसारसागरात् । अज्ञानां पापनेत्राणां तत्पात्रं परमं स्मृतम् ॥८०
ज्ञानप्लवेन चोपेत शास्त्रं पापमहार्णवात् । अज्ञान्सन्तारयेन्नूनं किं शिला तारयेच्छिलाम् ॥८१
द्विजानां वेदविदुषां कटिसम्भोगि यत्फलम् । हन्तकारप्रदानेन तत्फलं जपजीविने ॥८२
जीवो यस्यैत्य गृहे च भुङ्क्ते तत्कृतिमत्कृतः । कुलमुत्तारयेत्तस्य नरकार्णवसंस्थितम् ॥८३
यज्ञाग्निहोमतीर्थेषु यत्फलं परिकीर्तितम् । जपिनामन्नदानेन तत्समग्रं फलं लभेत् ॥८४
भोजिने शान्तिचित्ताय परिध्यानरताय च । श्रद्धयान्नं सकृद्दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥८५
जपकाञ्छान्तिसंयुक्तानादित्यार्पितचेतसः । भोजयित्वा सकृद्भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥८६
ध्यायमानो रवेः सूक्तं भोजयेत्सततं च यः । ततः साक्षाद्दनेनैव तद्भुक्तमशनं भवेत् ॥८७
पितॄनुद्दिश्य यः श्राद्धे भोजयेद्भोजकं नरः । तत्स्थानं समवाप्नोति भानवीयमसंशयः ॥८८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे धेनुमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८७।

उसकी समस्त कामनाएँ सफल करता है ।७८। ज्ञानरूपी जल से स्नान तथा शीलरूपी भस्म से मार्जन (शुद्धि) करने वाला सभी पात्रों में उत्तम बताया गया है ।७९। जप, दम (इन्द्रिय दमन) और संयम, यही संसारसागर से मनुष्यों की रक्षा करता है, अतः अज्ञानी एवं पापी नेत्र वाले के लिए वही (उपरोक्त नियमपालक ही) सत्पात्र बताया गया है ।८०। ज्ञाप रूपी नौका समेत शास्त्र ही अज्ञानियों को पाप महासागर से रक्षित रखने में समर्थ होता है, न कि शिला द्वारा शिला का संतरण कहीं कभी संभव हुआ है ।८१। वैदिक विद्वान् के लिए परिधान वस्त्र (धोती) प्रदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, जप यज्ञ करने वाले के लिए हंतकार प्रदान करने से भी उसी फल की ।८२। प्राणी जिसके घर में पहुँचकर सम्मानपूर्वक भोजन करता है, तो वह गृहस्थ नरकसागर में निमग्न अपने सभी कुटुम्ब का उद्धार करता है ।८३। यज्ञ, अग्नि-हवन तीर्थों में जिन फलों की प्राप्ति होती है, वही समस्त फल केवल जप यज्ञ करने वाले को अन्न प्रदान द्वारा प्राप्त होता है ।८४। शांतचित्त एवं ध्यान में निमग्न रहने वाले ऐसे भोजक को श्रद्धालु होकर एक बार भी अन्न प्रदान करने से समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।८५। शांत तथा आदित्य के लिए अर्पित चित्त वाले ऐसे जापक को एक बार भी भोजन दान करने से समस्त कामनाएँ सफल हो जाती हैं ।८६। सूक्तपूर्वक सूर्य के निरन्तर ध्यान मग्न रहने वाले को जो सदैव भोजन कराता है, उसके उस रूप में सूर्य ही भोजन करते हैं ।८७। जो अपने पितरों के उद्देश्य से श्राद्ध में भोजकों को भोजन कराता है, वह निःसन्देह सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति करता है ।८८

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में धेनुमाहात्म्य वर्णन नामक एक सौ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८७।

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

भोजकसत्कारवर्णनम्

सप्ताश्व उवाच

सूर्याय सर्वपाकान्नं निवेद्याग्नौ च होमयेत् । हुत्वाग्नौ प्रक्षिपेद्वीर बलिं दिक्षु समन्ततः ॥१
सूर्याग्निगुरुविप्राणां सर्वपाकान्नमन्वहम् । योऽनिवेद्यात्मना[1] भुङ्क्ते स भुङ्क्ते किल्बिषं नरः ॥२
कृषिपाल्ये च वाणिज्ये क्रोधतत्यक्षयादिभिः । पुंसां पापानि वर्धन्ते सूनादोषैश्च पञ्चभिः ॥३
कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भः प्रमार्जनी । पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति ॥४
सूर्याग्निगुरुपूजाभिः पापैरेतैर्न लिप्यते । अन्यैश्च पातकैर्घोरैस्तस्मात्सम्पूजयेत्सदा ॥५
सूर्याग्निगुरुनैवेद्यं यावत्स्यादन्नसङ्ख्यया । तावद्वर्षसहस्राणि दाता सूर्यपुरे वसेत् ॥६
घृतपूपयुतैः सिक्तैः पुण्यं दशगुणोत्तरम् । अवदंशगुणैर्युक्तं पुण्यं शतगुणं खग ॥७
षाष्टकौदननैवेद्यं सहस्रगुणितं फलम् । सुगन्धशालिनैवेद्यं विज्ञेयमयुतोत्तरम् ॥८
भक्ष्यान्नपानदानानि तत्फलानि तथा तथा । यद्वा तद्वा सदा देयं सूर्याग्निगुरुसाधुषु ॥
भक्ष्यं निवेद्य पूर्वोक्तमक्षयं लभते फलम् ॥९

अध्याय १८८

भोजकों के सत्कार का वर्णन

सप्ताश्व बोले—वीर ! सभी भाँति के बने हुए पक्वान्न प्रथम सूर्य को निवेदित कर, अग्नि में हवन करे, पश्चात् दिशाओं में बलि के रूप में रखे।१। सूर्य, अग्नि, गुरु एवं ब्राह्मणों के निवेदन किये बिना जो पकवान का भक्षण करता है, वह मनुष्य अन्न का नहीं प्रत्युत पाप का भोजन करता है।२। कृषि, वाणिज्य, क्रोध, असत् तथा पाँच प्रकार के हिंसा दोष के द्वारा मनुष्यों के पाप की वृद्धि होती है।३। कंडनी (ओखली में मूसल द्वारा धानादि की भूसी निकालने), पेषणी (जांता चक्की), चुल्ली (चूल्हा पोतने), उदकुंभ (जलघट रखने) एव मार्जनी (झाड़ू) द्वारा यही पाँच प्रकार के हिंसा दोष होते हैं, इसी से गृहस्थ स्वर्ग की प्राप्ति नहीं कर सकता है।४। सूर्य, अग्नि एवं गुरु की पूजा करने से ये पाँचों दोषों तथा अन्य घोर पातकों से मुक्ति हो जाती है, अतः इनकी सदैव पूजा करनी चाहिए।५। सूर्य, गुरु, एवं अग्नि को निवेदित किये गये अन्न की जितनी संख्या होती है, उतने सहस्र वर्ष वह प्रदाता सूर्य के लोक में निवास करता है।६। घी एवं मालपूए समेत भोजन द्वारा दश गुने अधिक एवं अवदंश (नशीली) वस्तु समेत प्रदान करने से सौ गुने पुण्य प्राप्त होता है, तथा खग ! साठी चावल के भात प्रदान करने से सहस्र गुने एवं उसे सुगंधपूर्ण प्रदान करने से उससे अधिक गुने पुण्य की प्राप्ति होती है।७-८। सूर्य, अग्नि, गुरु एवं साधुओं को सदैव भक्ष्य अन्न-पान उन-उन फलों के निमित्त प्रदान करते रहना चाहिए। क्योंकि उसके निवेदन करने से

---

१. नञ्पूर्वकाल्ल्यवार्षः।

एवं यः कुरुते भक्तिं देवदेवे दिवाकरे । स पितॄन्सर्वपापेभ्यः समुद्धृत्य दिवं नयेत् ॥१०
गङ्गास्नानमिदं पुण्यं दर्शनात्प्राप्नुयाद्रवेः । सर्वतीर्थाभिषेकं च प्रणामाद्विन्दते खग ॥११
मुच्यते सर्वपापेभ्यः प्रणम्य शिरसा रविम् । शुश्रूषेत च सन्ध्यायां सूर्यलोके महीयते ॥१२
युगपत्पूजितास्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । पितरः सर्वदेवाश्च भवेयुः पूजिता रवौ ॥१३
तुष्यन्ति पितरस्तस्य सुकृष्टेनेव कर्षुकाः । यः श्राद्धे भोजयेद्भक्त्या ब्राह्मणं जपजीविनम् ॥१४
अपि नः स कुले कश्चिदुद्धरेत्किं खगेश्वर । यः सम्पूज्य रविं श्राद्धे भोजयेज्जपजीविनम् ॥१५
तृप्यन्ति पितरस्तस्य गायन्ति च पितामहाः । अद्य नः स कुले प्राज्ञो वाचकं भोजयिष्यति ॥१६
पुराणविदमायान्तं दृष्ट्वैव सह संस्थिताः । क्रीडन्त्योषधयः सर्वा यास्यामः स्वर्गमक्षयम् ॥१७
अनुग्रहाय लोकानां श्रद्धायाश्च परीक्षणे । चरंत्यतिथिरूपेण पितरो देवतास्तथा ॥१८
तस्मादतिथिमायान्तमग्रे गच्छेत्कृताञ्जलिः । स्वागतासनपाद्यार्घ्यस्नानान्नशयनादिभिः ॥१९
रूपान्वितं विरूपं वा मलिनं मलिनाम्बरम् । वेलायामतिथिं प्राप्तं पण्डितो न विचारयेत् ॥२०
भोजकानां शरीरेषु नित्यं सन्निहितो रविः । ये भोजकास्त्यजन्त्यन्ये सर्वपापेष्ववस्थिताः ॥
अधोमुखोर्ध्वपादास्ते पतन्ति नरकाग्निषु ॥२१

पूर्वोक्त अक्षय फल की प्राप्ति होती है।९। इस प्रकार की भक्ति जो देवाधिदेव की करता है, उसके समस्त-पाप की निवृत्ति एवं उसके पितरगण स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं।१०। खग ! सूर्य के दर्शन से गंगास्नान के फल एवं उनके प्रणाम करने से समस्त तीर्थों के अभिषेक के फल प्राप्त होते हैं।११। सूर्य को शिर से प्रणाम करने से समस्त पाप-मुक्ति तथा संध्या समय उनकी सेवा करने से सूर्य लोक का सम्मान प्राप्त होता है।१२। सूर्य की स्तुति करने से युगपत् (साथ ही साथ) ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पितृगण तथा समस्त देवगण पूजित होते हैं।१३। जो श्राद्ध में भक्तिपूर्वक जापक ब्राह्मण को भोजन प्रदान करता है, अच्छी जुताई द्वारा सस्य सम्पन्न भूमि की भाँति उसके पितृगण प्रसन्न होते हैं। खगेश्वर ! जो श्राद्ध में सूर्य की पूजा के उपरान्त जापक ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसने क्या हमारे कुल में किसी का उद्धार नहीं किया ? (अर्थात् समस्त कुल का उद्धार कर दिया)।१४-१५। उसके पितर तृप्त हो जाते हैं और पितामह यह गायन करते हैं कि आज हमारे कुल में उत्पन्न वह बुद्धिमान् वाचक (ब्राह्मण) को भोजन करायेगा।१६। अपने घर किसी पौराणिक विद्वान् के आते ही समस्त औषधियाँ हर्षातिरेक से क्रीड़ा करने लगती हैं कि—अब मुझे अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होगी।१७। लोगों के ऊपर अनुग्रह (कृपा) करने एवं उसकी श्रद्धा की परीक्षा करने के लिए पितर तथा देवगण अतिथि के रूप में विचरण करते रहते हैं।१८। इसलिए किसी अतिथि को आते हुए देखकर उसके सामने हाथ जोड़ कर पहुँच जाये और सादर उसे घर लाकर आसन, पाद्य (पैर धोने के जल), अर्घ्य जल, स्नान, अन्न भोजन एवं शयन आदि की सुविधा प्रदान द्वारा उसका स्वागत करे।१९। सुरूप, विरूप, मलिन, दीन तथा मैले-कुचैले वस्त्र वाला, किसी प्रकार का अतिथि घर पर समयानुसार आ जाये तो पंडितों को उसके विषय में किसी प्रकार के विचार नहीं करना चाहिए।२०। भोजकों के शरीर में सूर्य सदैव सन्निहित रहते हैं, अतः जो कोई भोजकों को त्याग करते हैं, वे समस्त पाप कर्म के भागी होते हुए नरक की अग्नि में अधोमुख तथा ऊर्ध्वपाद होकर गिरते हैं।२१। कीड़े लोग उनकी

कृमिभिर्भिन्नवदनास्तप्यमानाश्च वह्निना । पीड्यन्ते चायुधैर्घोरैर्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।।२२
ये चापवादं शृण्वन्ति विमूढा ब्राह्मणेषु वै । ते विशेषेण पच्यन्ते नरकेषु मदिच्छया ।।२३
सर्वेषामेव पात्राणां सत्पात्रं जापकः परः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेत्सुसमाहितः ।।२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे सौरधर्मेषु भोजकसत्कारवर्णनं नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८८।

अथैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मेषु सप्ताश्वसंवादः

सप्ताश्वतिलक उवाच

आमपात्ररसः यद्वन्नश्यंते नश्यभाजने । जपोपेक्षे तथा दानं सह पात्रेण नश्यति ।।
सद्बीजमूषरे यद्वत्समुप्तं निष्फलं भवेत् ।।१
भस्मनीव हुतं हव्यं यथा होतुश्च निष्फलम् । जपेन रहिते विप्रे तथा दानं निरर्थकम् ।।२
यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला । ब्राह्मणस्य तथा जन्म जपहीनस्य निष्फलम् ।।३
लोहोडुपेन प्रतरन्निमज्जत्युदके यथा । दाता दाता ग्रहीता च पतत्यन्धे तमस्यथ ।।४

शरीर को विदीर्ण कर देते हैं, एवं उस अग्नि में संतप्त होते हुए वे घोर अस्त्रों द्वारा चौदहों इन्द्रों के वर्तमान समय तक पीड़ित होते रहते हैं ।२२। जो मूढ़ ब्राह्मणों की निन्दाएँ सुनते हैं, वे विशेषकर मेरी इच्छा से नरक कुण्ड में सदैव पका करते हैं ।२३। सभी पात्रों में जापक सत्पात्र बताया गया है । अतः विधानपूर्वक उसकी पूजा करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए ।२४

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में भोजक सत्कार वर्णन नामक एक सौ अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८८।

अध्याय १८९

सौरधर्म में सताश्वसंवाद

सप्ताश्वतिलक बोले—किसी दूषितपात्र में कच्चे घड़े के रस को रखने से उसके नष्ट होने की भाँति जापक को त्याग कर अन्य पात्र में दिया गया दान उस पात्र के समेत नष्ट हो जाता है तथा ऊषर भूमि में बोये हुए अच्छे बीज की भाँति वह निष्फल भी ।१। किसी होता द्वारा भस्म (राख) की ढेर में हवन करने की भाँति जप-हीन ब्राह्मण को दान देना व्यर्थ है ।२। स्त्रियों के लिए षण्ढ (नंपुसक) गौओं में नंपुसक बैल के निष्फल होने की भाँति जपहीन ब्राह्मण का जन्म व्यर्थ है ।३। लोहे के उड्डुप (घनई) द्वारा जल के संतरण करने एवं कराने वाले (दोनों) के डूब जाने की भाँति जपहीन ब्राह्मण को दान देने एवं लेने वाले (वे) दोनों घोर अंधकार में गिरते हैं ।४। खग ! श्रद्धालु होकर करुणावश सभी प्राणियों में जो कुछ दान

कारुण्यात्सर्वभूतेषु श्रद्धया यत्प्रदीयते । दानं तद्वै खग ज्ञेयं सार्वकामिकमुत्तमम् ॥५
दीनान्धकृपणानां च बालवृद्धातुरेषु च । यद्दीयते खगश्रेष्ठ तस्यानन्तफलं भवेत् ॥६
न हि स्वार्थं समुद्दिश्य प्रतिगृह्णन्ति साधवः । दातुरेवोपकाराय जगृहुः श्रावणादयः ॥७
दातुरेवोपकाराय वदत्यर्थी ददस्व मे । यस्माद्दाता प्रयात्यूर्ध्वमधस्तिष्ठेत्प्रतिग्रही ॥८
देहीति सुवदन्नर्थी धनं बोधयतीव सः । यन्मया कृतमर्थित्वं प्रागेऽदानफलं हि तत् ॥९
बोधयन्ति न याचन्ते देहीति कृपणा जनाः । अवस्थेयमदानस्य यद्याचामो गृहेगृहे ॥१०
आयात्यर्थी गृहं यस्तु कस्तं न प्रतिपूजयेत् । कोऽयमर्थी न पूज्यः स्याद्याचमानो दिनेदिने ॥११
यद्बलादप्यनिच्छन्तं योजयन्ति नराश्रयान् । अहन्यहनि याचन्ते दातुस्ते नर्शयन्ति हि ॥१२
एकस्तिष्ठति चाधस्तादन्यश्चोपरि तिष्ठति । दातृयाचकयोर्भेदः कराभ्यामेव सूचितः ॥१३
यः प्राप्तायार्थिने दानं त्यक्त्वा पात्रमुदीक्षते । सर्वकर्मसु युक्तत्वान्न दाता पारमार्थिकः ॥१४
यद्यर्थिनो नरा न स्युर्दानधर्मः कथं भवेत् । तदर्थिषु भवेद्दानं स्वागतं स्वागतं प्रियम् ॥१५
पादोदकमनुव्रज्यात्स्वर्गसोपानसप्तकम् । चिन्ताचिन्तानुरूपेण कदा कस्य विनश्यति ॥१६

दिया जाता है, वही दान श्रेष्ठ एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाला होता है।५। खगश्रेष्ठ ! दीन, अंधे, कृपण, बाल, वृद्ध एवं आतुर आदि किसी में जो कुछ दान रूप में दिया जाता है, उससे अनन्त फल प्राप्त होते हैं।६। साधुगण अपने स्वार्थ के लिए किसी के द्वारा दी गई वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते हैं, प्रत्युत देने वाले के उपकारार्थ उस (श्रावणी आदि) का ग्रहण करते हैं।७। दाता के उपकार के लिए ही उनके घर पहुँच कर वे लोग कहते हैं कि—'मुझे दीजिए' इससे यह होता है कि दाता को स्वर्गादिलोक की प्राप्ति और प्रतिग्राही (उसके लेने वाले) का अधःपतन होता है।८। अर्थी (याचक) दरवाजे पर पहुँचकर 'मुझे दीजिये' इस प्रकार की मधुरवाणी द्वारा किसी वस्तु की याचना नहीं करते, प्रत्युत धन के प्रति स्मरण दिलाते हैं कि मैंने जन्मान्तर में दान नहीं किया था इसीलिए इस याचनावृत्ति को अपनाना पड़ा।९। कृपण लोग 'दीजिये' इस शब्दोच्चारण के द्वारा याचना नहीं करते प्रत्युत स्मरण कराते हैं कि मेरी यह अवस्था—जो घर-घर माँगता फिरता हूँ—दान न देने के उपलक्ष में प्राप्त हुई है।१०। घर-घर आये हुए अर्थी (याचक) की पूजा कौन नहीं करता है, क्योंकि प्रतिदिन याचना करने वाले अर्थी (याचक) किसके पूज्य नहीं हैं।११। जो याचक किसी अनिच्छुक व्यक्ति को बलात् उस कर्म (देने) के लिए प्रेरित कर कुछ न कुछ ले ही लेते हैं, वे अपनी प्रतिदिन की याचना द्वारा उस दाता को दाता और याचक के भेद दिखा देते हैं।१२। क्योंकि एक का हाथ नीचे रहता है और दूसरे का उसके ऊपर, इससे दाता और याचक के भेद से ही स्पष्ट सूचित हो जाता है।१३। जो घर पर आये हुए अभ्यागत के लिए दान का त्याग कर पात्र के विचार में लीन हो जाते हैं, समस्त कर्म के सुसंपन्न करने पर भी उस दाता को परमार्थ के फल की प्राप्ति नहीं होती हैं।१४। याचक यदि न हो तो दान धर्म कैसे सम्पन्न हो सकता है, क्योंकि याचकों को दिये गये दान का स्वागत उस अभ्यागत का प्रिय स्वागत करना है।१५। अभ्यागत के पादोदक का सम्मान (शिरोधार्य) करना चाहिए क्योंकि वही स्वर्ग जाने के लिए सातों सीढ़ियाँ हैं और तो यों ही (संसार की) चिन्ताएँ घेरे ही रहती हैं, कभी कोई निश्चिन्त नहीं हुआ है।१६। दाता को

ग्रासादर्धमपि ग्रासं युक्तं दातुं सदार्थिनाम् । दानं प्रियविनिर्मुक्तं नष्टमाहुर्मनीषिणः ॥१७
तस्मात्सत्कृत्य दातव्यमनन्तफलमिच्छता । प्रेत्याख्यानमपि श्रेयः प्रियानुनयपेशलम् ॥१८
न तद्दानमसत्कारपारुष्यमलिनीकृतम् । वरं न दत्तमर्थिभ्यः सङ्कुद्धेनान्तरात्मना ॥१९
न तद्धनं न च प्रीतिर्न धर्मः प्रियवर्जितः । दानप्रदाननियमयज्ञध्यानं हुतं तपः ॥
यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधोऽस्य निष्फलं खग ॥२०
यः श्रद्धयार्चितं दद्यात्प्रतिगृह्णाति चार्चितम् । तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तद्विपर्ययात् ॥२१
औदार्यं स्वागतं मैत्री ह्यनुकम्पा च मत्सरः । पञ्चभिस्तु गुरौ दानं बानुदाने महाफलम् ॥२२
वाराणसी कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्कराणि च । गङ्गातटं समुद्रश्च नैमिषारण्यमेव च ॥२३
मूलस्थानं महापुण्यं पुण्डीरस्वामिकं तथा । कालप्रियं खगश्रेष्ठ क्षीरिकावास एव च ॥२४
इत्येते कीर्तिता देशाः सुरसिद्धनिषेविताः । सर्वे सूर्याश्रमाः पुण्याः सर्वा नद्यः सपर्वताः ॥
गोसिद्धमुनिवासाश्च देशाः पुण्याः प्रकीर्तिताः ॥२५
सूर्यायतनसंस्थानां यद्यदल्पं तु दीयते । तदनन्तफलं ज्ञेयं दत्तः क्षेत्रानुभावतः ॥२६
ग्रहणं चन्द्रसूर्याभ्यामुत्तरायणमुत्तमम् । विषुवं सव्यतीपात षडशीतिमुखं तथा ॥२७
दिनच्छिद्राणि सङ्क्रान्तिः पुण्यं विषुपदं खग । इति कालः समाख्यातः पुंसां पुण्यविवर्धनः ॥२८

अपने ग्रासार्ध के अर्धभाग भी याचक के लिए सदैव देना उचित है, अन्यथा ऐसे प्रिय (याचक) को त्याग कर अन्य में दान करना मनीषियों ने व्यर्थ बताया है।१७। इसलिए अनन्तफल के इच्छुक को आवश्यक है कि उन्हें सत्कारपूर्वक दान दें। उनके समीप बैठकर बात-चीत भी करना श्रेयस्कर होता है, क्योंकि प्रियजन के अनुनय-विनय करना सभी भाँति से सुन्दर ही बताया गया है।१८। अविनय एवं आत्मक्रोध द्वारा दिया गया दान प्रशस्त नहीं होता है, क्योंकि क्रुद्ध होकर याचक के लिए दान न देना ही उत्तम बताया गया है।१९। वह धन, प्रीति एवं धर्म व्यर्थ हैं, जो अपने प्रिय (याचक) के लिए उपयुक्त न हो सके। खग ! दान-प्रदान, नियमपालन, यज्ञ, ध्यान, हवन एवं तप सभी प्रयत्नपूर्वक सुसम्पन्न करने पर भी क्रोध द्वारा निष्फल हो जाते हैं।२०। जो श्रद्धापूर्ण होकर उत्तम वस्तुओं (दान) का आदान-प्रदान करता है, उन दोनों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, और उससे प्रतिकूल आचरण वाले को नरक की।२१। उदारता, स्वागत करना, मैत्री, अनुकम्पा एवं मत्सरहीनता, इन पाँचों गुणों द्वारा जो अभ्यागत को दान प्रदान करता है, उसके दान का महान् फल बताया गया है।२२। खगश्रेष्ठ ! बनारस, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गंगातट, समुद्र, नैमिषारण्य, महापुण्य मूलस्थान, पुंडीरस्वामिक, कालप्रिय तथा क्षीरसागर, इन प्रदेशों में देव एवं सिद्ध गण निवास करते हैं। सूर्य के सभी आश्रम, पर्वतों समेत सभी नदियाँ, तथा गौ, सिद्ध और मुनियों के आवास प्रदेश पुण्य रूप बताये गये हैं।२३-२५। सूर्य के मन्दिर में रहने वालों को यदि अल्प भी प्रदान किया जाये, तो उसका अनन्त फल बताया गया है, ऐसा सिद्ध पुरुषों का कथन है। खग ! सूर्य-चन्द्र के ग्रहण समय, सूर्य के उत्तरायण, विषुव, व्यतीपात, षडशीतिमुख (तुला, वृश्चिक संक्रांति एवं धन की संक्रान्ति के दिन), न्यूनदिन वाली संक्रान्ति, तथा विषुव यही मनुष्यों के पुण्यवर्धक समय बताये

भक्तिभावः परा प्रीतिर्धर्मो धर्मैकभावनः । प्रतिपत्तिरिति ज्ञेयं श्रद्धापर्यायपञ्चकम् ॥२९
श्रद्धया विधिवत्पात्रे प्रतिपादितमुत्तमम् । तस्माच्छ्रद्धां समास्थाय देयमक्षयमिच्छता ॥३०
यद्दानं श्रद्धया पात्रे विधिवत्प्रतिपादितम् । तदनन्तफलं ज्ञेयमपि वा भारमात्रकम् ॥३१

आर्तेषु दीनेषु गुणान्वितेषु यः श्रद्धया स्वल्पमपि प्रदद्यात् ।
स सर्वकामान्समुपैति लोकाञ्छ्रद्धैव दानं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥३२

श्रद्धा दानं परं ज्ञेयं श्रद्धा एव तपः परम् । श्रद्धां यज्ञमुशन्तीह श्रद्धा परमुपोषितम् ॥३३
अथाहिंसा क्षमा सत्यं ह्रीः श्रद्धेन्द्रियसंयमः । दानमिष्टं तपो ध्यानं दशकं धर्मसाधनम् ॥३४
हन्त व्यस्तैः समस्तैर्वा सूर्यधर्मैरनुष्ठितैः । सूर्यौकसां च सम्प्राप्तेर्गतिरेका प्रकीर्तिता ॥३५
यथा भूः सर्वभूतानां शान्तेरतिशयः स्मृतः । कुर्यात्पुण्यं महत्तस्मान्मम लोकेप्सया सुधीः ॥३६
परस्त्रीद्रव्यसङ्कल्पं यः सापेक्षं करोति च । गुरुमार्तमशक्तं वा विदेशे प्रस्थितं तथा ॥
अरिभिः परिभूतं च सन्त्यजेच्चैव पापकृत् ॥३७
तद्भार्यामित्रपुत्रेषु यश्चावज्ञां करोति च । इत्येतत्पातकं ज्ञेयं गुरुनिन्दासमं भवेत् ॥३८
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः ॥३९
क्रोधाद्द्वेषाद्भयाल्लोभाद्ब्राह्मणस्य वदेत यः । प्राणान्तिकं महादोषं ब्रह्महा स उदाहृतः ॥४०

गये हैं।२६-२८। भक्तिभाव, उत्तमप्रीति, धर्म, धार्मिक भावना और प्रतिपत्ति (कर्तव्य ज्ञान) यही श्रद्धा के पाँच नामान्तर (दूसरे नाम) कहे गये हैं।२९। श्रद्धालु होकर ही विधानपूर्वक सत्पात्र में दान देना उत्तम बताया गया है, इसलिए अक्षय फल के इच्छुक को चाहिए कि श्रद्धा पूर्ण ही दान करें।३०। श्रद्धा समेत विधानपूर्वक पात्र में दान देना इसलिए उत्तम बताया गया है कि उससे अनन्त फल की प्राप्ति होती है, तथा उसके अतिरिक्त भारस्वरूप होते हैं।३१। दुःखी, दीन अथवा गुणी पुरुषों को जो श्रद्धापूर्वक अत्यल्प भी दान करता है, वही समस्त कामनाओं के सफलतापूर्ण लोकों की प्राप्ति करता है, क्योंकि दानविचक्षणों का कहना है कि श्रद्धा ही दानस्वरूप है।३२। श्रद्धा ही, उत्तम दान, उत्तम तप, यज्ञ, तथा उत्तम उपवास वाला व्रत रूप है।३३। अहिंसा, क्षमा, सत्य, (लज्जा), श्रद्धा, इन्द्रियसंयम, दान, यज्ञ, तप और ध्यान यही दश धर्म के साधन बताये गये हैं।३४। इन समस्त के समेत या किसी एक ही को अपनाकर सूर्य धर्म के अनुष्ठान करने पर सूर्य के लोकों की प्राप्ति होती है, क्योंकि उनके लोकों की प्राप्ति के लिए यही एक प्रशस्त उपाय है।३५। सभी प्राणियों की शांति के लिए जिस प्रकार पृथ्वी की प्रशंसा की गई है, उसी भाँति मेरे लोकों के इच्छुक विद्वानों को उचित है कि महान् पुण्य कार्य सम्पन्न करें।३६। जो किसी पर स्त्री के देने के लिए संकल्पित द्रव्य को अपना लेता है, तथा उस गुरु का, जो, अति, अशक्त, विदेश के लिए प्रस्थित एवं शत्रुओं द्वारा अपमानित हो रहा है, त्याग करता है, वह पापी कहा जाता है।३७। उसकी स्त्री मित्र पुत्रों का अनादर करना, गुरुनिंदा के समान पातक बताया गया है।३८। ब्रह्महत्या करने वाले, मद्यपान करने वाले, चोर, गुरु स्त्री को उपभोग और इन चारों के साथ सभी प्रकार के व्यवहार रखने वाले, ये पाँचों महापातकी कहे गये हैं।३९। क्रोध, द्वेष, भय एवं लोभवश जो ब्राह्मण के लिए प्राण निकलने के समान दुःखदायी वाणी का प्रयोग करता है, वही महादोष करने वाला 'ब्रह्मघाती' कहा गया

ब्राह्मणं च समाहूय याचमानमकिञ्चनम् । यन्नास्तीति च यो ब्रूयात्स चाण्डाल उदाहृतः ॥४१
देवद्विजगवां भूमिं पूर्वदत्तां हरेत यः । प्रनष्टामपि[1] काले तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥४२
अधीत्य यो रवेर्ज्ञानं परित्यजति मन्दधीः । सुरापेन समं ज्ञेयं तस्य पापं च सुव्रत ॥४३
अग्निहोत्रपरित्यागः पञ्चयज्ञियकर्मणाम्[2] । मातापितृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ॥४४
अप्रियं सूर्यभक्तानामभक्ष्यस्य च भक्षणम् । एवं निरपराधानां प्राणिनां च प्रमारणम् ॥४५
सर्वाधिपत्यमेतेषां नास्ति देवपुरोत्तमे । आत्मलोकाधिपत्यं तु यच्छेत्सर्वजगत्पतिः ॥४६
केचिदत्रैव मुच्यन्ते ज्ञानयोगपरा नराः । आवर्तन्ते पुनश्चान्ये संसारे भोगतत्पराः ॥४७
तस्माद्विमोक्षमन्विच्छन्भोगासक्तिं विवर्जयेत् । विरक्तः शान्तचित्तात्मा सौरलोकमवाप्नुयात् ॥४८
यच्चाप्यसक्तहृदये जपन्तीमं प्रसङ्गतः । तेषामपि वदत्येकः स्वानुभावानुरूपतः ॥४९
तन्नार्चयन्ति ये भानुं सकृदुच्छिष्टदेहिनः । तेषां पिशाचलोके तु भोगान्भानुः प्रयच्छति ॥५०
द्विर्जपन्ति च ये भानुं क्रूराः सङ्क्रुद्धलोचनाः । रक्षोलोके रविस्तेषां महाभाग्यं प्रयच्छति ॥५१
त्रिरर्चयन्ति ये भानुं मद्यमांसरता नराः । ऋषिलोके रविस्तेषां भोगान्दिव्यान्प्रयच्छति ॥५२
ये नृत्यगीतं कुर्वन्ति त्रिश्चतुर्धा यदृच्छया । सूर्यस्याग्रे तु ते यान्ति गन्धर्वभवनं खग ॥५३

है ।४०। याचना करने वाले किसी अकिंचन ब्राह्मण को बुलाकर जो 'नहीं है' कह देता है, उसे चाण्डाल कहते हैं ।४१। देव, ब्राह्मण एवं गाय के लिए प्रदत्त भूमि का अपहरण जो करता है, चाहे वह कितनी खराब क्यों न हो, उसे ब्रह्मघाती बताया गया है ।४२। सुव्रत ! जो कोई सूर्य के ज्ञान की प्राप्ति कर पुनः उसका त्याग कर देता है, वही मूर्ख एवं उसका पाप मद्यपान करने वाले के समान कहा गया है ।४३। अग्निहोत्र के त्याग, पाँचों यज्ञ-कर्मों के त्याग, माता-पिता के त्याग, कपटपूर्ण साक्षी (गवाही) देना, मित्र-वध, सूर्यभक्तों के लिए अप्रिय (कठोर) वाणी बोलना, अभक्ष्य के भक्षण और निरपराध प्राणियों के वध करने वाले प्राणी कभी देवलोक के सर्वाधिपत्य प्राप्त नहीं कर सकते हैं, किन्तु समस्त जगत् के नायक (सूर्य) (कभी प्रसन्न होने) अपने लोक का आधिपत्य उसे प्रदान कर सकते हैं ।४४-४६। इस संसार में कोई मनुष्य ज्ञान योग द्वारा मुक्त हो रहा है, और कोई भोगों के उपभोगार्थ यहाँ आकर जन्म ग्रहण कर रहा है ।४७। अतः मुक्ति के इच्छुक को चाहिए कि उपभोग की आसक्ति (अधिकता) का त्याग करे, क्योंकि विरक्त तथा शांत पुरुष को ही सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।४८। भोगों में जिनकी अनुरक्ति नहीं है, और प्रसंगवश सूर्य नाम का ही जप करते हैं, ऐसे लोगों के लिए भी उनके स्वभावानुरूप एक सूर्य ही आधार हैं ।४९। अतः मनुष्य शरीर प्राप्त कर एक बार भी जो सूर्य की आराधना नहीं करते हैं, उन्हें सूर्य पिशाचलोक के भोग प्रदान करते हैं ।५०। राक्षस लोक में रहते हुए भी जो क्रूर एवं क्रुद्ध होकर रक्त नेत्र करने वाले प्राणी दो बार भी सूर्य के नाम का जप करते हैं, उन्हें भानु महाभाग्यशाली बना देते हैं ।५१। मद्य-मांस में अनुरक्त रहने वाले जो प्राणी तीन बार सूर्य की पूजा करते हैं, उन्हें सूर्य ऋषिलोक के दिव्य भोग प्रदान करते हैं ।५२। खग ! सूर्य के सामने जो मनइच्छित तीन या चार प्रकार से नृत्य एवं गायन

---

१. 'नशेः षान्तस्य' इति णत्वनिषेधः । २. 'यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ' इति घः ।

लोकाः ख्यातिं समुद्दिश्य पूजयन्ति च गोपतिम् । तेषां शक्रालये भानुः कामान्सर्वान्प्रयच्छति ।।५४
कामासक्तेन चित्तेन यः षडर्चयते रविम् । प्राजापत्ये रविस्तस्य लोके भोगान्प्रयच्छति ।।५५
नवकृत्वोर्चयेद्यस्तु चित्रभानुं खगाधिप । स याति विष्णुसालोक्यं विष्णुना सह मोदते ।।५६
तस्मादपि परं स्थानं यद्भूतानां मनोहरम् । अप्रमेयगुणैर्दिव्यैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।।५७
असंख्यैर्वस्तुभिर्व्याप्तं गैरिकै रक्तचित्रकैः । नानागृहसमाकीर्णैः सूर्यकोटिसमप्रभम् ।।५८
तत्स्थानं ते प्रगच्छन्ति अर्चयन्ति च ये द्विजान् । तत्र लोके खगश्रेष्ठ वसन्ति विहरन्ति च ।।
तस्मादपि परं स्थानं ज्योतिष्कं सौरमुच्यते ।।५९
एवं सूर्यानुभावेन निकृष्टेनापि कर्मणा । नरैः स्थानान्यवाप्यन्ते श्रद्धाभावानुरूपतः ।।६०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु सप्ताश्वानूरुसंवादो नाम एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८९।

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मेषु सूर्यानूरुसंवादवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

तारारूपविमानानामिमाः सन्ति च कोटयः । यः कुर्यात्तु नमस्कारं तस्यैव च फलं भवेत् ।।१

करता है, उसे गन्धर्व भवन की प्राप्ति होती है ।५३। जो अपनी ख्याति के लिए सूर्य की उपासना करते हैं, भानु उन्हें इन्द्रलोक की समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं ।५४। काम में अनासक्त रहकर जो छः बार सूर्य की पूजा करता है, सूर्य उसे प्राजापत्य लोक के भोग प्रदान करते हैं ।५५। खगाधिप ! जो नव बार चित्रभानु नामक सूर्य की उपासना करता है, वह विष्णु के स्वर्गलोक मोक्ष की प्राप्तिपूर्वक उनके साथ आनन्दानुभव प्राप्त करता है ।५६। उससे भी उत्तम स्थान, जो प्राणियों के लिए मनोरम तथा कोटिसूर्य के समान प्रभापूर्ण है, एवं अप्रेमय गुणों समेत दिव्य विमानों द्वारा, जो समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाली, असंख्य वस्तुओं से पूर्ण एवं सुवर्ण के चित्र-विचित्र भाँति-भाँति के घरों में व्याप्त हैं, वे प्राणी प्राप्त करते हैं जो द्विजों की पूजा करते हैं। खगश्रेष्ठ ! वे उस लोक में रहते और विहार करते हैं। उससे भी उत्तम 'ज्योतिष्क' नामक सूर्य का स्थान है। इस प्रकार मनुष्य लोग सूर्य में अनुरक्त रहने के कारण छोटे-छोटे कर्मों द्वारा भी अपनी श्रद्धा के अनुकूल लोकों की प्राप्ति किया करते हैं ।५७-६०

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में सप्ताश्वानूरुसम्वाद नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८९।

अध्याय १९०

सौर धर्म में सूर्यानूरुसंवाद वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—करोड़ों की संख्या में वर्तमान ये तारा रूप विमान, उसे ही प्राप्त होते हैं,

इत्येता गतयः प्रोक्ता महत्त्वः सौरधर्मिणाम् । तस्मात्सौरः सदा धर्मः कर्तव्यः सुखमिच्छता ॥२
इदानीं पापनिचयाः स्थूला नरकहेतवः । ते समासेन कथ्यन्ते मनोवाक्कायसाधनैः ॥३
गवां मार्गे वने चाग्नेः पुरे ग्रामे समर्पणम् । इत्येतानीह पापानि सुरापानसमानि च ॥४
वने सर्वस्य हरणं नरस्त्रीगजवाजिनाम् । गोभूसमीपजातानामोषधीनां च खेचर ॥५
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम् । हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥६
कन्यानां वरयोग्यानामाकर्षणमसङ्गताः । पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च ॥७
कुमारीसाहसं घोरमन्त्यजस्त्रीनिषेवणम् । सवर्णायाश्च गमनं गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥८
महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु । तानि पातकसञ्ज्ञानि ब्रूमहे चोपपातकम् ॥९
द्विजायार्थं परिश्रुत्य न प्रयच्छति यो द्विज[1] । सद्भार्याणां च संत्यागः साधुबन्धुतपस्विनाम् ॥१०
गोभूहिरण्यवस्त्राणामपहारः प्रयत्नतः । ईश्वरार्पितबुद्धीनां पीडनं सुमहत्कृतम् ॥११
यः पीडामाश्रमं स्थाने आचरेदल्पिकामपि । तद्भृत्युपरिभूतस्य पशुधान्यधनस्य च ॥१२
कूपधान्यपशुस्तेयमयाज्यानां च याजनम् । यज्ञारामतडागानां दारापत्यस्य विक्रयः ॥१३
तीर्थयात्रोपवासानां व्रते च जपकर्मणि । स्त्रीधनान्युपकर्षंति ये जनाः पापकर्मणा ॥१४
अरक्षणं च नारीणां मद्यपस्त्रीनिषेवणम् । ऋषीणामप्रदानं च धान्यवृद्ध्युपसेवनम् ॥१५

जो सूर्य को नमस्कार करता है।१। सौर धर्म के अपनाने वाले के लिए यही गतिरूप है, अतः सुखेच्छुक को सदैव सौरधर्म का पालन करना चाहिए।२। इस समय मैं तुम्हें वे स्थूल पाप समूह, जो नरक के कारण हैं, तथा मन, वाणी एवं शरीर द्वारा उसे लोग उत्पन्न करते हैं, विस्तारपूर्वक बता रहा हूँ।३। गौओं के पथ, जंगल, नगर एवं गाँव को अग्नि द्वारा प्रज्वलित कर नष्ट करना, ये सब पाप मद्यपान के समान बताये गये हैं।४। जंगल में मनुष्य, स्त्री, हाथी एवं घोड़े के रहने वाले स्थान, गाय के समीप उत्पन्न औषधि के अपहरण तथा आकाशगामिन्! चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, पद वस्त्र (दुपट्टा), और हाथ की दी हुई धरोहर, इनके अपहरण करना ये सब सुवर्ण की चोरी करने के समान हैं।५-६। वर के योग्य कन्या का अनायास अपहरण, पुत्र अथवा मित्र की पत्नी के तथा भागिनी के साथ उपभोग करने, कुमारी के साथ बलात्कार, किसी घोर शूद्र स्त्री के भोग तथा अपनी जाति की स्त्री के साथ गमन, ये गुरु पत्नी गमन के समान दोष हैं।७-८। ये सभी पातक, जो बताये गये हैं, महापातक के समान हैं। अब तुम्हें उपपातक बता रहा हूँ।९। द्विज! जो ब्राह्मण के लिए किसी वस्तु की प्रतिज्ञा कर पूरी नहीं करते हैं और सती स्त्री का त्याग, साधु, बन्धु, एवं तपस्वियों के गाय, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्रों के प्रयत्नपूर्वक अपहरण, ईश्वर में अनुराग करने वाले को पीड़ित करके, आश्रमों में किसी प्रकार के अल्प भी कष्ट देने, उसके ऐश्वर्य-पशु, धन-धान्य, कुएँ, धान्य एवं पशुओं की चोरी करने, यज्ञ के अयोग्य को यज्ञ कराने, यज्ञ के बगीचे, तालाब एवं स्त्री पुत्र के विक्रय करने, तीर्थयात्रा, उपवास के व्रतों में जप करते हुए जनों के, सभी धनके अपहरण करने, स्त्री की रक्षा न करने, मद्यपान करने वाली स्त्री के भोग, ऋषियों को कुछ न देकर स्वयं उस धान्यवृद्धि के

---

१. हेखगेत्यर्थः। २. षष्ठ्यर्थे द्वितीया, माण्डलिकनृपाणामित्यर्थः।

देवाग्निसाधुसाध्वीनां निन्दा गोब्राह्मणस्य च । प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राजमाण्डलिकानपि[१] ॥१६
उत्सन्नपितृदेवाश्च स्वकर्मत्यागिनश्च ये । दुःशीला नास्तिकाः पापाः सदसच्छून्यवादिनः ॥१७
एवं कामे प्रवृत्ते तु वियोनौ पशुयोनिषु । रजस्वलास्वयोनौ[२] तु मैथुनं यः समाचरेत् ॥१८
स्त्रीपुत्रमित्रसम्प्रीतेरारामोच्छेदकाश्च ये । जनस्याप्रियवक्तारो जनाभिप्रायभेदिनः ॥१९
भेत्ता तडागवप्राणां सङ्क्रमाणां रसस्य च । एकपङ्क्तिस्थितानां च पङ्क्तिभेदं करोति यः ॥२०
इत्येतैस्तु नराः पापैरुपपातकिनः स्मृताः ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु सूर्यानूरुसंवादे
नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९०।

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्ताश्वतिलकारुणसंवादम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

ये गोब्राह्मणसस्यानां साधूनां तु तपस्विनाम् । दूषकाश्चैव वर्तन्ते नरा नरकगामिनः ॥१
परिश्रमेण तप्यन्ते येऽपरे तस्य सूचकाः । परदाररतानां च कन्याया दूषकाश्च ये ॥२

सेवन, देव, अग्नि, सज्जन, सती, गो, ब्राह्मण एवं परोक्ष या प्रत्यक्ष राजाओं की निन्दा करने, पितृगण, देवों के त्याग, अपने कर्म के त्याग, दुःशील, नास्तिक, पापी, सत् असत् अथवा शून्यवादी कामुक होकर नपुंसक नारी, या पशुओं के संभोग करने, अथवा रजस्वला के साथ मैथुन, स्त्री, मित्र एवं पुत्र की प्रीति के नाश एवं बगीचे का नाश करने वाले, सभी से कठोर भाषण करने, किसी के अभिप्राय को दूसरे से बताने, तालाब, बावली, एव संक्रामक रस के नाश करने, और एक पंक्ति में बैठे हुए लोगों में भेद उत्पन्न करने वाले, ये सभी उपपातकी बताये गये हैं।१०-२१

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में सूर्यानूरुसंवाद वर्णन
नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।१९०।

अध्याय १९१

सप्ताश्वतिलक एवं अरुण का संवाद

सप्ताश्व बोले—गौ, ब्राह्मण, सस्य (धान्य), एवं तपस्वी साधुओं को कष्ट प्रदान करने वाले ऐसे नारकीय मनुष्यों की इस भूतल में कमी नहीं है, उसी भाँति परिश्रमपूर्ण किसी के तप करने की सूचना अन्य को देने वाले की भी। परस्त्रीगामी, एवं कन्या निन्दक, गोशाला, अग्निस्थान, जलाशय, पर्वतों के

---

१. षष्ठ्यर्थे द्वितीया, माण्डलिकनृपाणामत्यर्थः । ३. स्वेतरस्यां वा योनीतरदेशे वा पुरुषसमागमाक्षमयोनौ ।

गोष्ठाग्निजलरम्यासु सवच्छायानगेषु च । त्यजन्ति ये पुरीषाणि आरामायतनेषु च ।।३
मद्यपानरता नित्यं गीतवाद्यरता नराः । कामक्रोधमदाविष्टा रन्ध्रान्वेषणतत्पराः ।।४
पाखण्डमतसंयुक्ता वृथा संलापकौतुकाः । ये मार्गानुपरुन्धन्ति परसीमां हरन्ति च ।।५
कूटशासनकर्तारः कूटकर्मकृतो नराः । धनुषः शिल्पिशस्त्राणां यः कर्ता यश्च विक्रयी ।।६
निर्दयोऽतीवभृत्येषु पशूनां दमकश्च यः । मिथ्या प्रवदतो वाचमाकर्णयति यः शनैः ।।
स्वामिमित्रगुरुद्रोही मायावी चपलः शठः ।।७
ये भार्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान् । भृत्यानतिथिबन्धूंश्च त्यजन्ति च बुभुक्षितान् ।।८
यः स्वयं पक्वमश्नाति विप्रायाऽन्नं न यच्छति । वृथा पाकः स विज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः ।।९
नियमं स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः । प्रव्रज्यावसिता ये च रहस्यानां तु भेदकाः ।।१०
ये ताडयन्ति गां मूढास्त्रासयन्ति मुहुर्मुहुः । दुर्बलं न च पुष्णन्ति प्रनष्टान्नान्विषन्ति च ।।११
पीडयन्त्यतिभारेण अक्षमं वाहयन्ति च । वृषाणां वृषणानन्ये पापिष्ठा गालयन्ति हि ।।
वाहयन्ति च गां वन्ध्यां ते पापिष्ठा नराधमाः ।।१२
अर्थविकलं हीने बालवृद्धकृशानुगम् । नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते यान्ति नरकं नराः ।।१३
अजाविका माहिषिकाः सविश्रीवृषलीपतिः । क्षत्रविट्शूद्रवृद्धाश्च स्वधर्मविहताः सदा ।।१४
शिल्पिनः कारुका वेश्याः क्षेमकारनृपध्वजाः । नर्तक्यो ज्योतिषि हताः सर्वे नरकगामिनः ।।१५

वृक्षों की छाया, बगीचे एवं (जीर्ण-शीर्ण) मन्दिरों में या उसके निकट पुरीषोत्सर्ग (पाखाना-पेशाब) करने वाले, नित्य मद्यपान करने वाले, गाने-बजाने वाले, कामी, क्रुद्ध, मदांध, रन्ध्रान्वेषी, पाखंडी, व्यर्थ की बातें करके प्रसन्न होने वाले, पथ को काँटे आदि से अवरुद्ध करने वाले, दूसरे की सीमा का अपहरण करने वाले, कूट-नीतिपूर्ण शासन करने वाले, कूटनीति करने वाले, धनुष एवं शस्त्रों के निर्माता, तथा उनके विक्रय करने वाले, सेवकों के लिए निर्दयी होने वाले, पशुओं के दमन करने वाले, किसी की मिथ्या बातों को धीरे-धीरे सुनने वाले, तथा स्वामी, मित्र, एवं गुरु के द्रोही, मायावी, चंचल, शठ, भूख-प्यास से दुखी स्त्री, पुत्र, मित्र, बाल, वृद्ध, रोगी, सेवक, अतिथि एवं बन्धुगण, के त्याग करने वाले, ये सभी पातकी कहे गये हैं।१-८। जो स्वयं पक्वान्न को ब्राह्मण को बिना दिये भक्षण करता है, उसका पाक व्यर्थ है एवं ब्रह्मवादियों में वह निन्दित पुरुष समझा जाता है।९। इसी प्रकार नियमों का यथावत् पालन न करने वाले, असंयमी, संन्यासी होकर पुनः गृहस्थ होने वाले, रहस्यों को प्रकट करने वाले, गौओं एवं दुर्बलों को बार-बार पीड़ित करने वाले, अन्नों को नष्ट करने वाले, बैलों को अत्यन्त भार से पीड़ित कर निरन्तर बोझा ढोने वाले और उनके अण्डकोषों के मर्दन कर उन्हें पुंस्त्वहीन करने वाले, तथा बंध्या गायों द्वारा बोझा का वहन कराने वाले ये सभी पापी तथा नराधम कहे गये हैं।१०-१२। धनहीन, व्याकुलेन्द्रिय, हीन, बाल, वृद्ध एवं रोगी, के लिए कृपा न करने वाले मूढ़ मनुष्य नरक गामी होते हैं।१३। भेंड़-बकरी एवं भैंसे पालने वाले, सावित्री तथा वृषली पति (शूद्र) और स्वधर्महीन क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वृद्धा, शिल्पी (दीवाल पर चित्र बनाने वाले), राजगीर, वेश्याएँ, क्षेमकार नृपध्वज नर्तकियाँ, अग्नि एवं विद्युत द्वारा प्राण त्याग करने वाले ये सभी नरकगामी होते हैं।१४-१५। घी, तैल, अथवा इनके पक्वान्न, शहद, मांस, रस,

घृततैलानुपानानि मधुमांसरसासवम् । गुडेक्षुक्षीरशाकान्हि दधिमूलफलानि च ॥१६
तृणानि काष्ठं पुष्पाणि बीजौषधिमनुत्तमाम् । उपानच्छत्रशकटमासनं शयनं मृदः ॥१७
ताम्रं सीसं त्रपुं कांस्यं शङ्खाद्यं च जलोद्भवम् । वार्क्षं वा वैणवं वापि गृहोपकरणानि च ॥१८
और्णकार्पासकौशेयभङ्गपट्टोद्भवानि च । स्थूलसूक्ष्माणि सम्मूढा ये च लोका हरन्ति वै ॥१९
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च । नरकेषु ध्रुवं गच्छेद्यो हरेत पुनर्बलात् ॥२०
यद्वा तद्वा तु पारोक्ष्यमपि सर्षपमात्रकम् । अपहृत्य नरो याति नरकं नात्र संशयः ॥२१
एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रान्तेः समनन्तरम् । शरीरयातनार्थं तत्पूर्वकालमवाप्नुयात् ॥२२
यमलोके व्रजदेवं शरीरेण यमाज्ञया । यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानः सुदुःखितः ॥२३
देवमानुषजीवानामधर्मनिरतात्मनाम् । धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ॥२४
विनयाभावयुक्तानां प्रमादात्स्वलितात्मनाम् । प्रायश्चित्तैर्बहुविधैः पातकं नष्टतामियात् ॥२५
पारदारिकचोराणामन्यायव्यवहारिणाम् । शास्ता क्षितिपतिः प्रोक्तः प्रच्छन्नानां च धर्मराट् ॥२६
तस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् । नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥२७
यः करोति शुभं कर्म कारयेदनुमोदयेत् । कायेन मनसा वाचा स विन्देतोत्तमं सुखम् ॥२८

आसव, गुड़, ऊख, क्षीर, शाक, दही, मूलकन्द आदि फल तृण, काष्ठ, पुष्प, बीज, औषधि, उपानह (जूते), छत्र (छाता), गाड़ी (बैलगाड़ी आदि), आसन, शयन (पलंग बिछौने आदि), मिट्टी, ताँबा, शीशा, रांगा, कांसा, जल से उत्पन्न शंख आदि, भेंड़े, बांस के फल, घर बनाने के सामान, (ऊनी, सूती एवं रेशमी वस्त्र, भांग, पत्थर की मोटी-पतली चक्कियाँ आदि के अपहरण करने वाले मूर्ख लोग, एवं इसी प्रकार भाँति-भाँति के अन्य द्रव्यों के अपहर्त्ता मनुष्य बलात् नरकों में डाले जाते हैं ।१६-२०। किसी की किसी प्रकार की कोई भी वस्तु, चाहे वह राई के बराबर की क्यों न हो, परोक्ष में ले लेने से वह पुरुष नरकगामी होगा इसमें संदेह नहीं ।२१। ऐसे अनेक पापों द्वारा मनुष्य प्राण त्याग करने के साथ ही शारीरिक यातनाएँ भोगने के लिए पूर्व की भाँति ही शरीर प्राप्त करता है ।२२। और उसी शरीर से दुःखों का अनुभव करता हुआ वह यमलोक में वहाँ भीषण एवं घोर रूप वाले यमदूतों द्वारा ले जाया जाता है ।२३। अधर्म करने वाले देव एवं मनुष्य जीवों के भाँति-भाँति के भयानक बध करने के द्वारा धर्मराज अपनी पुरी में उन जीवों पर अपना शासन करते हैं ।२४। नम्रताहीन, प्रमादी एव स्खलित आत्मा वालों के पातक अनेक प्रकार के प्रायश्चितों द्वारा नष्ट होते हैं ।२५। क्योंकि परस्त्री के चोर एवं अन्याय पूर्ण व्यवहार करने वाले मनुष्यों के ऊपर शासक (नियंत्रण करने वाला) राजा होता है, और प्रच्छन्न (गुप्त) पापियों के ऊपर नियंत्रण करने वाले धर्मराज होते हैं। अतः किये हुए पाप का प्रायश्चित करना आवश्यक है, क्योंकि अन्यथा सैकड़ों करोड़ कल्प प्रयत्न करने पर भी बिना भोगे उस पाप का नाश सम्भव नहीं होता है ।२६-२७। जो मन, वाणी एवं कर्म द्वारा शुभ कर्म करता-कराता या अनुमोदन करता है, उसे उत्तम सुख की

इति संक्षेपतः प्रोक्ता पापभेदात्त्रिधा गतिः । तथान्या गतयश्चित्राः कथ्यन्ते कर्मभेदतः ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सप्ताश्वातलकारुणसंवाद-नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९१।

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्ताश्वातिलकानूरुसंवादवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

सन्त्रासजननं घोरं पापानां पापकारिणाम् । गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः ॥१
स्त्रीपुंनपुंसकैर्वृद्धैर्गन्तव्यं सर्वजन्तुषु । शुभाशुभफलं तत्र भोक्तव्यं देहिभिस्तथा ॥२
चित्रगुप्तादिभिः सर्वैर्धर्मस्थैः सत्यवादिभिः । प्रोक्तं वै धर्मराजस्य निकटे यच्छुभाशुभम् ॥
अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचारितम् ॥३
तत्र ये शुभकर्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः । ते नरा यान्ति सौम्येन यथा यमनिकेतनम् ॥४
यः प्रदद्याद् द्विजेन्द्राणामुपानत्काष्ठछत्रकम् । स च धर्मेण महता सुखं याति यमालयम् ॥५
सोपानत्को नरो यस्तु देवायतनमाविशेत् । विशेषतो गर्भगृहं स सन्त्रासमुपाश्नुते ॥६

जो मन वाणी एवं कर्म द्वारा शुभ कर्म करता कराता या अनुमोदित करता है उसे उस सुख की प्राप्ति होती है ।२८। इस प्रकार संक्षेप में पाप भेद की तीन गति बतायी गई है और उसकी आश्चर्यकारी गतियाँ जो कर्मभेद वश प्राप्त होती हैं, कह रहा हूँ ।२९

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में सप्ताश्वतिलकारुण संवाद वर्णन नामक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९१।

अध्याय १९२

सप्ताश्वतिलाकानूरुसंवाद का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—पापी प्राणियों को अपने पापों के परिणामस्वरूप घोर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, चाहे वे बाल, तरुण, मध्यम, स्त्री, पुरुष, नपुंसक एवं वृद्ध क्यों न हों। उन्हें गर्भस्थ या उत्पन्न होकर सभी छोटे-बड़े शरीर धारण करके उसी शरीर द्वारा अपने किये कर्मों के शुभ-अशुभ फल भोगने पड़ते हैं ।१-२। चित्रगुप्त आदि सभी धार्मिक एवं सत्यवादियों द्वारा, जो धर्मराज के निकट सम्पर्क में स्थित रहते है, जो कुछ शुभ-अशुभ कर्मों के निर्णय हो जाते हैं, उन्हें अवश्य प्राणियों को भोगने पड़ते हैं।३। उनमें जो शुभ-कर्म करने वाले प्राणी हैं, जो सौम्य चित्त एवं दयालु होते हैं, वे जिस प्रकार सुखपूर्वक यमपुरी को प्रस्थान करते हैं (बता रहा हूँ) । जो ब्राह्मणों को उपानह (जूते आदि), काठ के डंडे वाले छत्ते दान रूप में प्रदान करता है, वह धार्मिक होने के कारण अत्यन्त सुखपूर्वक यमराज के यहाँ पहुँचता है ।४-५। पादत्राण पहने हुए जो कोई देवालयों में विशेषकर मंदिर के भीतर प्रवेश करता है, उसे दंडरूप में यातना

सोपानत्कानि दानानि तथान्नं तु विशेषतः । एवं दानविशेषेण धर्मराजपुरं नरः ।।
यस्माद्याति सुखेनैव तस्माद्धर्मं समाचरेत् ।।७
ये पुनः क्रूरकर्माणो नराः पापरताः खग ! ते घोरेण तथा यान्ति दक्षिणेन यमालयम् ।।८
षडशीतिसहस्राणि योजनानामशीति च । वैवस्वतपुरं ज्ञेयं नानारूपमिति स्थितम् ।।९
समीपस्थमिवाभाति नराणां शुभचारिणाम् । पापानामतिदूरस्थं तथा रौद्रेण गच्छताम् ।।१०
तीक्ष्णकण्टकयुक्तेन शर्करानिचितेन च । क्षुरधारातिनिस्त्रिंशैः पाषाणैश्चिन्तितेन च ।।११
क्वचित्पङ्केण महता दुरन्तैश्चैव खातकैः । लोहशङ्कुभिरत्युच्चैर्न्नास्तथा खड्गैः समन्विताः ।।१२
ततः पतद्भिर्विमलैः पर्वतैर्वृक्षसङ्कुलैः । प्रेतप्राकारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखिताः ।।१३
क्वचिद्विषमगर्ताभिः क्वचिल्लोष्ठैः सपिच्छलैः । सुतप्तवालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शङ्कुभिः ।।१४
अनेकशाखारचितैर्व्याप्तैर्वंशवनैः क्वचित् । कष्टेन तमसः मार्गे अनालम्बे सुदारुणि ।।१५
अथ भृङ्गाटकैर्व्याप्तैः क्वचिद्दावाग्निना पुनः । क्वचित्तप्तशिलाभिश्च क्वचिद् व्याप्तं हिमेन तु ।।१६
क्वचिद्वालुकया व्याप्तमाकण्ठान्तं प्रवेशयेत् । क्वचिद्दुष्टाम्बुना व्याप्तं क्वचिज्च करिषाग्निना[1] ।।१७
क्वचित्सिंहैः क्वचिद्व्याघ्रैर्दंशैः कीटैश्च दारुणैः । क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिद्वाजगरैः पुनः ।।१८

का अनुभव करना पड़ता है ।६। पादत्राण समेत दान एवं विशेषकर अन्न दान करने वाला पुरुष उसी दान विशेष द्वारा पुनः सुखपूर्वक धर्मराज के नगर को प्रस्थान करता है, अतः धर्माचरण करना सभी के लिए आवश्यक है ।७। खग ! जो मनुष्य क्रूर कर्म करने वाले एवं पाप में आसक्त रहने वाले हैं, वे उस दक्षिण के दुर्गम पथ द्वारा यम की पुरी में प्रविष्ट कराये जाते हैं ।८। छियासी सहस्र योजन की दूरी पर यमराज के वे भाँति-भाँति के नगर स्थित हैं ।९। वे नगर शुभ कर्म करने वाले के लिए अत्यन्त सन्निकट की भाँति प्रतीत होते हैं, और पापियों के लिए, जिनकी अत्यन्त दूरस्थ दुःखपूर्ण यात्रा होती है ।१०। (पापियों के मार्ग) तीक्ष्ण काँटे एवं पत्थर की कंकड़ियों द्वारा संकीर्णता प्राप्त, क्षुरा (नाई के छुरे) की धार की भाँति तीक्ष्ण बड़े-बड़े पत्थरों से व्याप्त होते हैं ।११। कहीं सूर्य द्वारा भीषण गर्मी के अनुभव, अगाध खाइयाँ, लोह के कीलों से आच्छन्न एवं खड्डों से युक्त, सघन वृक्ष समूहों वाले पर्वतीय प्रदेशों में गिरते-पड़ते गमन करना, इस प्रकार उसे दुःखी होकर प्रेत मार्ग से जाना पड़ता है ।१२-१३। कहीं विषम (ऊँचे-नीचे) गड्डे को पार करना, कहीं दल-दल एवं फिसलने वाली भूमि मार्ग का अनुसरण करना, अत्यन्त तप्त बालुकाओं, तीक्ष्ण कीलों एवं अनेक शाखा वाले बाँस के दुर्गम जंगलों के भीषण मार्ग को घोर अन्धकार में निःसहाय होकर पार करना पड़ता है ।१४-१५। कहीं मार्ग काँटेदार वृक्षों से अवरुद्ध है, कहीं दावाग्नि लगी है । कहीं अत्यन्त जलती हुई पत्थर की शिलाएँ पड़ती हैं, पुनः कहीं बर्फ के ढेर लगे हैं ।१६। कहीं इतनी बालुकाएँ पड़ी हैं, जहाँ पहुँचने पर कण्ठ तक समस्त शरीर उसमें घस जाता है । कहीं दूषित जल भरा पड़ा है, कहीं उपलों की भीषण अग्नि व्याप्त है, कहीं सिंह, कहीं बाघ, कहीं मच्छर, कहीं भयानक कीड़े, कहीं भीषण आकार की जोकें, कहीं अजगर वृन्द, रक्तशोषक मक्खियाँ, कहीं भीषण विषैले साँप, कहीं अत्यन्त बलवान एवं

---

१. ईकारह्रस्व आर्षः ।

मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्बणैः । महागजेन्द्रयूथैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः ॥१९
पन्थानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्महावृषैः । महाशृङ्गैश्च महिषैरुष्ट्रैर्मत्तैर्मदातुरैः ॥२०
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः । व्याधिभिश्च महाघोरैः पीड्यमाना व्रजन्ति हि ॥२१
महापांशुविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना । महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः ॥२२
क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दीर्यमाणा व्रजन्ति हि । पतद्भिर्वज्रसङ्घातैरुल्कापातैश्च दारुणैः ॥२३
प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमाना व्रजन्ति हि । महान्धकारशुक्रेण पीड्यमाना व्रजन्ति हि ॥२४
महामेघरवैर्घोरैर्वित्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः । तीक्ष्णपाषाणयुक्तेन पूर्यमाणाः समन्ततः ॥२५
महाक्षुराम्बुधाराभिः सेव्यमाना व्रजन्ति हि । महामेघरवैर्घोरैर्वित्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः ॥२६
भृशं शीतेन तीक्ष्णेन रूक्षेण मारुतेन च । इत्थं मार्गेण रौद्रेण पाथेयरहितेन च ॥२७
निरालम्बेन दुर्गेण निर्जनेन समन्ततः । अविश्रामेण महता विगतापायवुर्धरैः ॥२८
नीयन्ते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकारिणः । इति ज्ञात्वा नरः कुर्यात्पुण्यं पापं च वर्जयेत् ॥
पुण्येन याति देवत्वं पापेन नरकं व्रजेत् ॥२९
यैर्मनागपि देवेशो मनसा पूजितो रविः । ते कदापि न पश्यन्ति यमस्य वदनं खग ॥३०
किन्तु पापैर्महाघोरैः किञ्चित्कालं तवाज्ञया । भवन्ति प्रेतराजानस्ततो यान्ति रवेः पुरम् ॥३१
ये पुनः सर्वभावेन भजन्ते भुवि भास्करम् । न ते लिम्पन्ति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥३२

मदोन्मत्त होने के कारण बलात् मंथन करने वाले विशालकाय गजेन्द्र, कहीं तीक्ष्ण सींग वाले बड़े-बड़े बैल एवं महान सींग वाले भैंसे मार्ग को सीमा द्वारा उथल पुथल मचाकर अवरुद्ध किये हैं, कहीं मदान्ध ऊँटों के वृन्द भरे पड़े हैं, कहीं भीषण डाकिनियाँ, एवं विकराल राक्षसों के दल खड़े हैं। इस प्रकार अत्यन्त घोर पापियों से पीड़ित होते हुए इन्हीं दुर्गम मार्गों से यमलोक जाना पड़ता है।१७-२१। महान् पाशों में बँधकर प्रचण्ड वायु के झोंके एवं बड़े-बड़े पत्थर खंडों की वर्षा के आघातों को सहन करते हुए अकेले उस मार्ग से, जहाँ कहीं-कहीं बिजलियों के गिरने से शहर विदीर्ण हो जाता हैं, जान पड़ता है।२२-२४। (कहीं मार्ग में) मेघगण अपने भीषण गड़गड़ाहट द्वारा बार-बार त्रास दिखा रहे हैं, कहीं चारों ओर तीक्ष्ण पत्थर भरे पड़े हैं, कहीं क्षुर के धार के समान तीक्ष्ण जलधाराएँ गिर रही हैं। इस भाँति जहाँ भी मेघ अपने भयानक शब्दों द्वारा बार-बार त्रस्त करने की चेष्टा करते रहते हैं, उन्हीं मार्गों द्वारा जाना पड़ता है।२५-२६। कहीं अत्यन्त ठंडी है, कहीं तीक्ष्ण एवं रूखे वायु के झोंके हैं, ऐसे भयानक मार्ग से जो दुर्गम एवं निर्जन पाथेय (सम्बल) रहित होकर निराधार, अविश्राम गति से जिसमें कहीं भी रुकावट, विघ्नबाधा के द्वारा होती ही नहीं, सभी पाप करने वाले मूर्ख प्राणी ले जाये जाते हैं। ऐसा समझकर मनुष्य को पुण्य करना चाहिए न कि पाप। क्योंकि पुण्य कर्म करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और पाप द्वारा नरक की प्राप्ति होती है।२७-२९। खग ! जो चित्त लगाकर कभी देवेश (सूर्य) का थोड़ा भी पूजन किया है, उसे कदापि नहीं यमराज का मुख देखना पड़ता है।३०। किन्तु महाघोर पापियों को भी (आपके पूजन करने पर) आपके आदेशानुसार कुछ दिन प्रेम के अधिनायकत्व को स्वीकार करके पश्चात् सूर्यलोक की प्राप्ति हो जाती है।३१। जो फिर समस्त भावनाओं द्वारा उस भूतल में भास्कर की उपासना करता है, जल में स्थित

तस्मात्प्रकुर्याद्भक्तिं वै भास्करे सततं नरः । श्रद्धया पूजयेद्भानुं य इच्छेद्विपुलं धनम् ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सप्ताश्वतिलकानूरुसंवादे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९२।

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

दन्तकाष्ठविधिवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

अयने विषुवे वारे सङ्क्रान्तौ ग्रहणे तथा पूजयेत्सततं भानुं सप्तम्यां तु विशेषतः ॥१
वैनतेय निबोध त्वं विधानं सप्तमीव्रते । एतद्धि परमं गुह्यं रवेराराधनं परम् ॥२
सिद्धार्थकैस्तु प्रथमा द्वितीया चार्कसम्पुटैः । तृतीया मरिचैः कार्या चतुर्थी तिलसप्तमी ॥३
सप्तमी [1]चौदनैर्वीर सप्तमी परिकीर्तिता । इत्येताः सप्त सप्तम्यः कर्तव्या भूतिमिच्छता ॥४
तथा चानुक्रमे तासां लक्षणं कथयाम्यहम् । माघे वा मार्गशीर्षे वा कार्या शुक्ला तु सप्तमी ॥५
आर्तस्य तु न नियमः पक्षमासकृतो भवेत् । अर्धप्रहरशेषे तु कुर्याद्वै दन्तधावनम् ॥६

कमलपत्र की भाँति पाप उसका स्पर्श तक नहीं करता है ।३२। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि भगवान् भास्कर की निरन्तर पूजा करें और विपुल धन के इच्छुक भी श्रद्धालु होकर भानु की आराधना करें ।३३

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सप्ताश्वतिलकानूरुसंवाद वर्णन नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९२।

अध्याय १९३

दन्तकाष्ठविधि का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—अयन (दक्षिणायन एवं उत्तरायण) विषुव दिन, संक्रान्ति, ग्रहण और विशेषकर सप्तमी के दिन भानु की निरन्तर पूजा करनी चाहिए ।१। वैनतेय ! सप्तमीव्रत के विधान को, जो परमगुप्त एवं जिसमें सूर्य की उत्तम आराधना बतायी गयी है, (बता रहा हूँ) सुनो ! २। वीर ! पहली सप्तमी का व्रत श्वेत राई, दूसरी में अर्क सम्पुट तीसरी में मरिच, चौथी में तिल एवं सातवीं में भात के पारण द्वारा व्रत की समाप्ति होती है, इस प्रकार ऐश्वर्य इच्छुक को सातों सप्तमी की समाप्ति करनी चाहिए ।३-४। क्रमशः उन व्रतों के विधान-लक्षण भी बता रहा हूँ । माघ अथवा मार्गशीर्ष (अगहन) की शुक्ल सप्तमी में उसे करना चाहिए । आर्त प्राणी के लिए पक्ष एवं मास का कोई नियम नहीं है । अतः प्रहरार्ध भाग दिन के अवशिष्ट रहने पर दंत धावन करना कहा गया है । पंचमी में कामना सफल करने

---

१. अत्रत्यः पाठः पञ्चमीषष्ठयोः सप्तम्योः पारणानुक्तेस्त्रुटित इति प्रतिभाति ।

एश्वम्यां तत्र ये वृक्षाः कामितास्तान्वदाम्यहम् । मधूके पुत्रलाभः स्याद्दुःखहा नार्कवो भवेत् ।।७
बदर्या च बृहत्या च क्षिप्रं रोगात्प्रमुच्यते । ऐश्वर्यं च भवेद्बिल्वैः खदिरेण च सञ्चयः ।।८
शत्रुक्षयः कदम्बेषु अर्थलाभोतिमुक्तके । गुरुतां याति सर्वत्र आटरूषकसम्भवैः ।।९
ज्ञातिप्रधानतां याति अश्वत्थो यच्छते यशः । करवीरात्परिज्ञानमचलं स्यान्न संशयः १०
श्रियं प्राप्नोति विपुलां शिरीषस्य निषेवने । प्रियङ्गुं सेव्यमानस्य सौभाग्यं परमं भवेत् ।।११
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं सुखासीनोऽथ वाग्यतः । कामं यथेष्टं हृदये कृत्वा समभिमन्त्र्य च ।।
मन्त्रेणानेन मतिमानश्नीयाद्दन्तधावनम् ।।१२
वरं दत्त्वाभिजानासि कामदं च वनस्पते । सिद्धिं प्रयच्छ मे नित्यं दन्तकाष्ठ नमोऽस्तु ते ।।१३
त्रीन्वारान्परिजप्यैवं भक्षयेद्दन्तधावनम् । पश्चात्प्रक्षाल्य काष्ठं तु शुचौ देशे विनिक्षिपेत् ।।१४
ऊर्ध्वे निपातिते सिद्धिस्तथा चाभिमुखस्थिते । अतोऽन्यथा तु पतिते आनीय पुनरुत्सृजेत् ।।१५
पराङ्मुखं यदि भवेत्त्रीन्वारान्दन्तधावनम् । असिद्धां तु विजानीयान्न ग्राह्या सा तु सप्तमी ।।१६
ब्रह्मचारी तु तां रात्रिं स्वप्यान्मङ्गलसेवया । बिभ्रद्वासोनुपहतं शुचिराचारसंयुतः ।।१७
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय वै खग । प्रक्षालयेन्मुखं धीमानश्नीयाद्दन्तधावनम् ।।१८
उपविश्य शुचिर्भूत्वा प्रणम्य शिरसा रविम् । जपं यथेष्टं कृत्वा तु जुहुयाच्च हुताशने ।।१९
ततोऽपराह्णसमये स्नात्वा मृद्गोमयाम्बुभिः । विधिवन्नियमं कृत्वा मौनी शुक्लाम्बरः शुचिः ।।२०

वाले उन वृक्षों को बता रहा हूँ। महुवे के सेवन करने से पुत्र लाभ, भृङ्गराज (भंगैरया) से दुःखनाश, बेर और वृहती से शीघ्र रोगमुक्ति, बेल से ऐश्वर्य, खदिर (खैर) से धनसंचय, कदम्ब से शत्रु-क्षय, अतिमुक्तक (तेंदू एवं ताल) के वृक्ष से अर्थ लाभ, आटरूषकोत्पन्न वृक्ष से सर्वत्र गुरुता, पीपल से जाति प्राधान्य एवं यश की प्राप्ति, करवीर (कनेर) से निश्चल एवं विस्तृत ज्ञान होता है, इसमें संदेह नहीं। शिरीष के सेवन से विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति और प्रियंगु के सेवन से उत्तम सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।५-११। अपने मनोरथ सिद्ध्यर्थ सुखपूर्वक बैठकर वाक्संयमपूर्वक अपने हृदय में अपनी कामना का स्मरण करते हुए उस कष्ट के दंतधावन को इस मंत्र द्वारा—हे वनस्पते ! मेरे मनोरथ को आप जानते हैं, अतः उसकी पूर्ति के लिए वर प्रदान कीजिए, हे दंतकाष्ठ ! मुझे सिद्धि प्रदान कीजिए, आप को नित्य नमस्कार है। इस प्रकार तीन बार उसे अभिमंत्रित कर पश्चात् दाँतों को साफ़ करे। तदनंतर उसे धोकर पवित्र स्थान पर फेंक दे। उर्ध्व मुख या अधोमुख होकर उसके गिरने से सिद्धि प्राप्त होती है, अतः अन्यथा गिरने पर पुनः उसे उठाकर फेंक दे। यदि पहले की भाँति तीन बार तक वह दंतधावन पराङ्मुखी होती जाये तो उस सप्तमी का त्यागकर अन्य सप्तमी से व्रत प्रारम्भ करे। ब्रह्मचारी को तो मंगल के लिए उस रात्रि उत्तम नवीन वस्त्र धारण कर आचार संयमपूर्वक शयन करना चाहिए। खग ! उस रात के व्यतीत हो जाने पर प्रातःकाल उठकर हाथ मुख धोकर दंत धावन करे। पुनः पवित्र होकर शिर से सूर्य को प्रणाम पूर्वक यथेष्ट जप करके हवन करे, पश्चात्, अपराह्न समय में मिट्टी एवं गोबर से स्नान कर जल से शुद्ध हो शुक्लाम्बर

पूजयित्वा विधिं भक्त्या देवदेवं दिवाकरम् । स्वप्याद्देवस्य पुरतो गायत्रीजपतत्परः ।।२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे दन्तकाष्ठविधिवर्णनं नाम त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९३।

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यारुणसंवादे स्वप्नवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि यैर्यैर्यत्फलमश्नुते । स्वप्ने दृष्टे तु सप्तम्यां पुरुषो नियतव्रतः ।।१
समाप्य विधिवत्सर्वां जपहोमादिकां क्रियाम् । भूमौ शय्यां समास्थाय देवदेवं विचिन्तयेत् ।।२
हन्त सुप्तो यदि नरः पश्येत्स्वप्ने दिवाकरम् । शक्रध्वजं वा चन्द्रं वा तस्य सर्वाः समृद्धयः ।।३
भृङ्गारचमरादर्शकनकाभरणानि च । रुधिरस्य स्रुतिः केशपात ऐश्वर्यकारकः ।।
स्वप्ने वृक्षाधिरोहे तु क्षिप्रमैश्वर्यमाहवे ।।४
दोहनं महिषीसिंहीगोधेनूनां करे स्वके । बन्धश्चासां राज्यलाभो नाभेः स्पर्शो तु दुर्मतिः ।।५
अविं हत्वा स्वयं खादेत्सिंहमम्बुजमेव च । स्वाङ्गमस्थि हुताशं च सुरापानं खगाधिप ६।।

को धारण करे और देवाधिदेव सूर्य की विधानपूर्वक पूजा के उपरान्त गायत्री जप करते हुए उनके सामने शयन कर जाये ।१२-२१

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में दंतकाष्ठ विधिवर्णन नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९३।

अध्याय १९४

सूर्यारुणसंवाद का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—इसके उपरान्त संयमपूर्वक सप्तमीव्रत का पालन करने वाला ब्रह्मचारी पुरुष स्वप्न को देखकर जिन-जिन फलों को प्राप्त करता है, मैं उन्हें बता रहा हूँ ।१। जप होम आदि सभी क्रियाओं को विधानपूर्वक सुसम्पन्न करके भूमि में शयनासन पर बैठकर देवाधिदेव (सूर्य) का चिन्तन करे ।२। उस समय स्वप्न में मनुष्य यदि सूर्य, इन्द्र की ध्वजा अथवा चन्द्र दर्शन करता है, तो उसे समस्त समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।३। भृङ्गार (झारी), चामर, दर्पण, सुवर्ण के आभूषण, रक्तपात एवं केशों का पतन देखने से ऐश्वर्य और वृक्षारोहण करने से शुद्ध स्थल में शीघ्र ऐश्वर्य, प्राप्ति होती है ।४। भैसे, सिंहनी, गौ एवं धेनु के दूध अपने हाथ में दोहन करने अथवा इन्हें बाँधने से राज्यलाभ, तथा उनके नाभि स्पर्श करने से दुष्टबुद्धि होती है ।५। खगाधिप ! भेड़ अथवा सिंह का शिकार कर स्वयं भक्षण करे उसी प्रकार अम्बुज, अपने अंग, हड्डियाँ एवं अग्नि के भक्षण,

हैमे वा राजते वापि यो भुंक्ते पायसे नरः । पात्रे तु पद्मपत्रे वा तस्यैश्वर्यं समं भवेत् ॥७
द्यूते च वाथवा युद्धे विजयो हि सुखावहः । गात्रस्य स्वस्य ज्वलनं शिरोबन्धश्च भूतये ॥८
[1]माल्यांबराणां शुक्लानां हयानां पशुपक्षिणाम् । सदा लाभं प्रशंसंति विष्ठानां चानुलेपनम् ॥९
हययाने भवेत्क्षिप्रं रथयाने प्रजागमः । नानाशिरोबाहुता च गृहस्थां कुरुते श्रियम् १०
अगम्यागमनं धन्यं वेदाध्ययनमुत्तमम् । देवद्विजश्रेष्ठवीरगुरुवृद्धतपस्विनः ॥११
यद्वदन्ति नरं स्वप्ने सत्यमेवेति तद्विदुः । प्रशस्तं दर्शनं चैषामाशीर्वादः खगाधिप ॥१२
राज्यं स्यात्स्वशिरश्छेदे धनं बहुवधे भवेत् । रुदिते भक्ष्यसम्प्राप्ती राज्यं निगडबन्धने ॥१३
पर्वतं तुरगं सिंहं वृषभं गजमेव हि । महदैश्वर्यमाप्नोति यो विक्रम्याधिरोहति ॥१४
आगृह्णानो ग्रहांस्तारा मरीचिं परिवर्तयन् । उन्मूलयति पर्वतांश्च राजा भवति भूतले ॥१५
देहान्निष्कान्तिरन्त्राणां सर्वेषां च खगाधिप । पानं समुद्रसरितामैश्वर्यसुखकारकम् ॥१६
बलं चाम्बुनिधिं वापि तीर्थपारं प्रयाति यः । तस्यापत्यं भवेद्वीर अचलं च खगाधिप ॥१७
भवत्यर्थागमः शीघ्रं कृमिर्वा यदि भक्षयेत् । अंगानां च सुरूपाणां लाभो दर्शनमेव च ॥
संयोगश्चैव माङ्गल्यैरारोग्यं धनमेव च ॥१८
ऐश्वर्यं राज्यलाभश्च यस्मिन्स्वप्न उदाहृतः । सप्त स्यान्नात्र संदेहश्चतुर्भिः श्रुत उत्तमः ॥१९

मद्यपान करने सुवर्ण या चाँदी के पात्र अथवा कमल पत्र के पात्र में खीर खाने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।६-७। द्यूत क्रीडा (जूए) या युद्ध में विजय प्राप्त होने से अत्यन्त सुख, अपने शरीर के जलने अथवा शिरोबन्धन से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।८। शुक्लवर्ण के वस्त्र एवं मालाओं से सुसज्जित अश्व के दर्शन, अथवा पशु-पक्षियों के मल के अनुलेपन करने से सदैव लाभ होना बताया गया है ।९। अश्ववाहन पर बैठने से शीघ्र एवं रथारोहण करने से संतानोत्पत्ति होती है, और भाँति-भाँति के शिर एवं भुजाओं के होने से श्री (लक्ष्मी) प्राप्त होती हैं ।१०। अगम्या के उपभोग करने से प्रतिष्ठा तथा वेदाध्ययन से उत्तम फल की प्राप्ति होती है । वीर ! देव, द्विज, गुरु, वृद्ध एवं तपस्वी इनमें से कोई भी स्वप्न में मनुष्य के लिए जो कुछ कहते हैं, उसे सत्य जानना चाहिए । खगाधिप ! इनके दर्शन तथा आशीर्वाद प्रशस्त बताये गये हैं ।११-१२। अपना शिरच्छेदन करने से राज्य लाभ और अनेक प्रकार से छेदन करने से धन की प्राप्ति, रुदन करने से भक्ष्य पदार्थ की प्राप्ति, शृंखला (वेणी) बन्धन से राज्य, पर्वत, अश्व, सिंह, वृषभ, तथा गजराज पर तीव्रता से आरोहण करने से महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।१३-१४। ग्रहों एवं ताराओं के ग्रहण करने, मरीचि महर्षि के परिवर्तन करने तथा पर्वतों के उन्मूलन करने से इस भूतल में राजा होता है ।१५। खगाधिप ! देह से सभी अंतड़ियों के निकलने तथा समुद्र-सरिताओं के पान करने से ऐश्वर्य-सुख की प्राप्ति होती है ।१६। खगाधिप ! जो सेनाओं, एवं समुद्र का अवगाहन तथा तीर्थ-पार की यात्रा करता है, उसे वीर तथा निश्चल सन्तान की प्राप्ति होती है ।१७। यदि कीड़े काटें, तो शीघ्र धनागम, सौन्दर्यपूर्ण अंगों के दर्शन से लाभ, मांगलिक दर्शन से उत्तम संयोग, आरोग्य एवं धन की प्राप्ति होती है ।१८। जिस स्वप्न में ऐश्वर्य एवं राज्य लाभ बताया गया है, उसमें सात अवश्य है, इसमें संदेह नहीं । चार से उत्तम श्रवण,

---

१. दर्शन इति शेषः ।

पञ्चभिः [1]पुत्रबाहुल्यं षड्भिरायुः सुतान्धनम् । सप्तभिर्विविधान्कामानष्टभिर्विविधं यशः ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यारुणसंवादे स्वप्नवर्णनं नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९४।

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यारुणसंवादे स्वप्नवर्णनम्

अनूरुरुवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि सप्तमीनां परं विधिम् । सर्वासामनुरूपाणां कथयस्व महामुने ॥१

सप्ताश्वतिलक उवाच

शृणु वीर खगश्रेष्ठ सप्तमीनां परं विधिम् । कीर्तयिष्यामि ते सर्वं यथावत्परिपृच्छते ॥२
तुल्यं किल खगश्रेष्ठ यथाख्यातं दिवस्वता । शुक्लपक्षे रविदिने प्रवृते चोत्तरायणे ॥३
पुत्रदारधनक्षेत्रे गृह्णीयात्सप्तमीव्रतम् । ऋषिभिर्ज्ञानसम्पन्नैः सर्वकामफलप्रदैः ॥४
सप्तम्यः सप्त आख्यातास्तासां नामानि मे शृणु । अर्कसम्पुटकैरेका द्वितीया मरिचैस्तथा ॥५

पाँच से पुत्र की अधिकता छः से आयु, पुत्रों एवं धन की प्राप्ति, सात से भाँति-भाँति की कामनाओं की सफलता और आठ से अनेक प्रकार के यश की प्राप्ति होती है ।१९-२०

श्री भविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमीकल्प के सूर्यारुणसंवाद में स्वप्न वर्णन नामक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९४।

अध्याय १९५

सूर्यारुण संवाद में स्वप्न वर्णन

अनूरु ने कहा—हे भगवन्, महामुने ! सभी सप्तमियों के उत्तम विधान जानने की इच्छा है, आप उसे क्रमशः सुनाने की कृपा करें ।१

सप्ताश्वतिलक बोले—वीर, खगश्रेष्ठ ! तुम्हारे पूँछने पर सभी सप्तमियों के उत्तम विधान का यथावत् वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ।२। खगश्रेष्ठ ! यह वर्णन वैसा ही होगा, जैसा कि सूर्य ने पहले बताया था । सूर्य के उत्तरायण होने पर शुक्ल पक्ष के रविवार के दिन जो पुत्र, स्त्री अथवा धन के क्षेत्र (राशि) के दिन भी हो, सप्तमी व्रत का अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए । ज्ञान सम्पन्न एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले ऋषियों ने सात सप्तमियों का वर्णन किया है, उनके नामों को सुनो ! अर्क संपुटक वाली पहली, मरिचवाली दूसरी, निंबपत्र वाली तीसरी, चौथी फल सप्तमी और सातवीं कामिका नामक

---

१. लभेतेति शेषः, एवमायुरादीनि कर्मणि लाभक्रियायामन्वितानीत्यपि बो

तृतीयः निम्बपत्रैश्च चतुर्थी फलसप्तमी । सप्तमी कानिका नाम्ना विधिमासां निबोध मे ॥६
पञ्चम्यामेकभक्तं तु कुर्यान्नियतमानसः । अल्पाहारं न कुर्वीत मैथुनं दूरतस्त्यजेत् ॥७
वर्जयेन्मधु मांसं च अत्यम्लं च खगाधिप । प्रभाते चैव षष्ठ्यां तु एकैकपर्णसम्पुटे ॥८
घृतशाल्योदनं कृत्वा भक्षयेत्तु विधानतः । अन्यदन्नमभुञ्जानः सप्तम्यां भोजनं भवेत्॥९
एकैकवृद्धाभियुक्तैर्यो वसेत्तु खगेश्वर । अन्यत्र मरिचं भक्षेन्निम्बपत्राण्यतः परम् ॥१०
एवं लब्धफलानीह पक्षयोरुभयोरपि । अन्नाद्यै रहितो यत्नादनोदन इति स्मृतः ॥११
आचरेद्विधिवद्भक्त्या पूजयित्वा विभावसुम् । अहोरात्रं वायुभक्षः कुर्याद्विजयसप्तमीम् ॥१२
एकैकं सप्त सप्तमीरत्रैव विधिवच्चरेत् । प्रालेख्य तासां नामानि पत्रकेषु पृथक्पृथक् ॥१३
तानि सर्वाणि नामानि विलेख्य सुसमाहितः । श्वेतचन्दनदिग्धाङ्गे माल्यदामोपशोभिते ॥१४
सप्तधान्यहिरण्याढ्ये शशिकुन्देन्दुसन्निभे । अश्वत्था शोकपत्राढ्ये दध्योदनसमन्विते ॥१५
तदर्थं पूजयेद्भक्त्या तैस्तैर्दृष्टैर्न संशयः । दृष्ट्वा तु शोभनं स्वप्नं न भूयः शयनं स्वपेत् ॥१६
प्रातश्च कीर्तयेत्स्वप्नं यथादृष्टं खगाधिप । प्राज्ञभोजकविप्रेभ्यः सुहृद्भ्यश्च खगाधिप ॥१७
ततो मध्याह्नसमये स्नातः प्रयतमानसः । तं चैव देवं विधिवत्पूजयित्वा दिवाकरम् ॥१८

सप्तमी बतायी गई है। इनके विधानों को मैं बता रहा हूँ, सुनो। संयमपूर्वक एकाग्रचित्त होकर पञ्चमी में एक भक्त करे उसमें अल्पाहार होना चाहिए और मैथुन का तो दूर से ही त्याग करना बताया गया है। खगाधिप ! शहद, मांस, अत्यन्त दुखी वस्तु का सर्वथा त्याग करना चाहिए। प्रातःकाल षष्ठी में एक-एक पत्ते की दोनियाँ बनाकर उसमें प्रत्येक में घी मिश्रित साठी चावल के भात रखकर विधान समेत भक्षण करे, अन्य किसी अन्न का नहीं, पश्चात् सप्तमी में भोजन-विधान बताया गया है।३-९। खगेश्वर ! एक-एक की वृद्धि पूर्वक उसे सम्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार दूसरी को मरिच (मिर्च), तथा तीसरी में निंबपत्र का पारण बताया गया है। इस प्रकार दोनों पक्षों के सप्तमी-व्रतानुष्ठान से फलों की प्राप्ति बतायी गयी है। चौथी सप्तमी को फल द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए, इसीलिए अन्नादि रहित होने के नाते उसे 'अनोदन' भी कहा जाता है।१०-११। विजयासप्तमी में विधानपूर्वक सूर्य की आराधना करते हुए दिन रात वायु भक्षण करके ही व्रत की समाप्ति होनी चाहिए। प्रत्येक सप्तमी के व्रतानुष्ठान को विधानपूर्वक सुसम्पन्न होना आवश्यक बताया गया है। पर्चों में उनके नामों को पृथक्-पृथक् लिखकर उस (सूर्य) मूर्ति की सन्निधि में, जिसके अंग श्वेतचन्दन से चर्चित, मालाओं से विभूषित, सप्तधान्य एवं हिरण्य में स्थित, चन्द्र, कुन्द, इन्दु के समान वर्ण, पीपल तथा अशोक के पत्तों की ढेरियों समेत और दही मिश्रित भात युक्त सुशोभित हो, स्थापित कर भक्तिपूर्वक तदर्थ पूजन करने से वे (स्वप्न में) अवश्य दिखायी पड़ते हैं, इसमें संदेह नहीं। सुन्दर स्वप्न देखकर पुनः निहित शयन न करना (सोना नहीं चाहिए) चाहिए। खगाधिप ! प्रातःकाल उठकर देखने के अनुसार स्वप्न का वर्णन करें, खगाधिप ! विद्वान् भोजक, ब्राह्मण अथवा मित्रों के ही सामने उसकी चर्चा करनी चाहिए।१२-१७। पश्चात् मध्याह्नकाल में संयमपूर्वक स्नानकर विधानपूर्वक सूर्य देव की पूजा करे।१८। मौन धारण कर भली-भाँति जपपूर्वक मनुष्य को हवन

सम्यक्कृतजपो मौनी नरो हुतहुताशनः । निष्क्रम्य देवायतनाद्भोजकाय निवेदयेत् ।।१९
भवेदलाभो यदि भोजकानां विप्रास्तमर्हन्ति पुराणविज्ञाः ।
ये मन्त्रवेदावयवेषु निश्चिता विभुं समभ्यर्च्य दिवं व्रजेयुः ।।२०
कृत्वैवं सप्तमीः सप्त नरो भक्तिसमन्वितः । श्रद्दधानोऽपि सूर्यस्य स कथं नाप्नुयात्फलम् ।।२१
दशानामश्वमेधानां कृतानां यत्फलं भवेत् । तत्फलं सप्तमी सप्त कृत्वा भक्त्या लभेत ना ।।२२
दुष्पापं नास्ति तद्वीर सप्तम्यां यन्न दह्यते । न च रोगोऽस्त्यसौ लोके य एताभिर्न शाम्यति ।।२३
कुष्ठानि यानि रौद्राणि दुश्छेद्यानि भिषग्जनैः । नीयन्ते तानि सर्वाणि गरुडेनेव पन्नगाः ।।२४
सकलविबुधमान्यं स्वप्रकाशं जनानामभिमतफलदाने दीक्षितं तं सुपूज्यम् ।
सुतधनकुलभोगैः सौख्यपुण्यैरुपेतो व्रजति च सुतनुं कां शाश्वतीं तिग्मरश्मेः ।।२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यारुणसंवादे स्वप्नवर्णनं नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९५।

कर्म समाप्त करना चाहिए, पश्चात् देवालय से निकल कर किसी भोजक से उसका निवेदन करे। भोजक अप्राप्य होने पर किसी पुराणवेत्ता ब्राह्मण से जो मंत्र एवं वेद के प्रत्येक अंग का निश्चित मर्मज्ञ हों, तथा सूर्य की उपासना में रत रहकर स्वर्ग प्राप्ति के इच्छुक हों, उनसे उस स्वप्न की चर्चा करें। इस प्रकार मनुष्य भक्ति एवं श्रद्धा सम्पन्न होकर सातों सप्तमी के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करे, तो उसे वे फल प्राप्त क्यों नहीं होंगे ? दश अश्वमेध यज्ञ के सुसम्पन्न करने पर जिन फलों की प्राप्ति बतायी गयी है, वे फल भक्तिपूर्वक सातों सप्तमी के सम्पन्न करने पर मनुष्य को प्राप्त होते हैं। वीर ! कोई भी इस प्रकार का दुष्पाप नहीं है, जो सप्तमी में दग्ध न हो जाये, कोई रोग ऐसे नहीं, जिनका शमन इन सप्तमियों द्वारा न हो सके। भीषण कुष्ठ के रोग जितने बताये गये हैं, जो वैद्यों द्वारा दुर्भेद्य हैं, वे सभी गरुड़ द्वारा साँप की भाँति इस अनुष्ठान के प्रारम्भ करने से विलीन हो जाते हैं। समस्त देवों के सर्वमान्य, स्वप्रकाशित, मनुष्यों के अभीष्ट फल-प्रदायक उस दीक्षित सूर्य की विधानपूर्वक आराधना सुसम्पन्न करने से पुत्र, धन, उत्तम कुल के उपभोगपूर्वक पुण्ययुक्त सौख्यों की प्राप्ति होती है, और पश्चात् उनके शरीर की प्राप्ति कर उत्तम लोक की प्राप्ति भी ।१९-२५

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म के सूर्यारुण संवाद में स्वप्न वर्णन नामक एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९५।

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नामपूजाविधिवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

अतीत्य भुक्तं पुरुषः सप्तम्यां गरुडाग्रज । मैत्रीं विदध्यात्सर्वत्र जीवहिंसां विवर्जयेत् ॥१
सप्तम्यां न स्पृशेत्तैलं नीलं वस्त्रं न धारयेत् । न शयीत स्त्रिया सार्धं न सेवेत दुरोदरम् ॥२
न रुद्यादश्रुपातेन न वा ध्यायेत्पिशाचकान् । नाकृषेच्छिरसो यूका न वृथावादमाचरेत् ॥
परस्यानिष्टकथनमतिवादं च वर्जयेत् ॥३
न कञ्चित्ताडयेज्जन्तुं न विशेत[1] कदाचन । ब्रह्महत्यामवाप्नोति विशमानो रवेर्गृहम् ॥४
इत्येते समयाः प्रोक्ताः सौराणां गरुडाग्रज । भोजकानां विशेषेण पुरा मे भानुनानघ ॥५
भोजकः खगशार्दूल यो लोभाद्द्रव्यमुत्सृजेत् । वृद्ध्यर्थं तु सततं वीर स गच्छेन्नरकं ध्रुवम् ॥६
विशेषे चाल्पकशते कामयाने खगाधिप । प्रयुज्यमानो भोजकस्तु पञ्चकेन शतेन वै ॥७
प्रायश्चित्ती भवेद्वीर न चार्हः पूजने रवेः । कृत्वा सान्तपनं कृच्छ्रं ततः सम्पूजयेद्रविम् ॥८
नान्यदेवप्रतिष्ठा तु कर्तव्या भोजकेन तु । कृत्वा तु तां खगश्रेष्ठ प्रायश्चित्तीयते नरः ॥९

अध्याय १९६

नामपूजा विधि का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—गरुडाग्रज ! पुरुष को सप्तमी में भोजन करके सर्वत्र मैत्री स्थापन पूर्वक जीव हिंसा का त्याग करना चाहिए।१। सप्तमी में तेल का स्पर्श नील वस्त्र का धारण, स्त्री के साथ शयन, दुष्ट का साथ, अश्रुपात समेत रुदन, पिशाचों के ध्यान, सिर से खींचकर जूयें निकालना, और निरर्थक वाद ये सभी कर्म वर्जित हैं उसी प्रकार दूसरे का अनिष्ट कहने एवं अत्यन्त वाद-विवाद का भी परित्याग करना आवश्यक है।२-३। इस समय किसी भी जीव को आघात न पहुँचाये और सूर्य मन्दिर में कदापि न प्रवेश करे, क्योंकि सूर्य गृह में प्रविष्ट होने पर उसे ब्रह्महत्या का पातक प्राप्त होता है।४। गरुडाग्रज ! सूर्य भक्तों के लिए इन प्रतिज्ञाओं के पालन करने आवश्यक हैं। विशेषकर भोजकों को अनघ ! इसे सूर्य ने मुझे पहले ही बताया था। खगशार्दूल ! जो भोजक लोभवश वृद्धि (ब्याज) के लिए धन को बाँटता है, वीर ! उसे निश्चित नरक की प्राप्ति होती है।५-६। खगाधिप ! जो भोजक शताधिक या उससे अल्प ब्याज की इच्छा से पाँच सौ तक द्रव्य के देन-लेन करता है, वह बिना प्रायश्चित के सूर्य-पूजा के योग्य नहीं होता है, उसे 'सांतपन नामक कृच्छ्र' व्रत सम्पन्न करने के उपरांत सूर्य पूजन करना बताया गया है।७-८। खगश्रेष्ठ ! भोजक को कभी किसी अन्य देवता की प्रतिष्ठा न करनी चाहिए क्योंकि उसे वैसा करने पर प्रायश्चित करना आवश्यक हो जाता है।९। खगसत्तम ! इसलिए भोजक को चाहिए कि

---

१. रवेर्गृहमिति शेषः अत एवाग्रिमे—'ब्रह्महत्यामवाप्नोति' इत्याद्युक्तं संगच्छते।

तस्मात्तां न कुर्याद्वै भोजकः खगसत्तम । मुक्त्वा तु भास्करं देवं नान्यं देवं निवेदयेत् ॥१०
कृत्वाधिवेशं देवानां ब्रह्मादीनां खगाधिप । भोजको न स्पृशेद्भानुं कुर्यात्कृच्छ्रं च शुद्धये ॥११
कृत्वा तु कृच्छ्रं विधिवच्छुद्धेर्हेतुं खगाधिप । ततः पूजयितुं भानुमधिकारी भवेन्नरः ॥१२
न दिग्जातं प्रदातव्यं न म्लानं न च दूषितम् । न च पर्युषितं माल्यं दातव्यमृद्धिमिच्छता ॥१३
देवमुल्लोचयेद्यस्तु स खलः पुष्पलोभतः । पुष्पाणि च सुगंधीनि भोजको नेतराणि च ॥१४
ब्रह्महत्यामवाप्नोति भोजको लोभमोहितः । महारौरवमासाद्य पच्यते शाश्वतीः समाः ॥१५
हन्त ते कीर्तयिष्यामि धूपदानविधिं परम् । प्रदाने देवदेवस्य येन धूपेन यत्फलम् ॥१६
सदा चन्दनधूपेन सान्निध्यं कुरुते रविः । प्रदद्यान्मानसे चैव यद्यदिच्छति मानवः ॥१७
तथैवागुरुधूपेन वरं दद्यादभीप्सितम् । आरोग्यं वा स्त्रियं प्रेप्सुर्नित्यदा गुग्गुलं दहेत् ॥१८
मङ्गलं धूपदानेन सदा यच्छति भानुमान् । आरोग्यं च स्त्रियं दद्यात्सौख्यं च परमं भवेत् ॥१९
सदा कुङ्कुमधूपेन सौभाग्यं लभते नरः । श्रीवासकस्य धूपेन वाणिज्यं सफलं भवेत् ॥२०
रसं सर्वरसोपेतं ददतोऽर्थागमो ध्रुवम् । देवदारुं च दहतो भवत्यन्नं तथाक्षयम् ॥२१
विलेपनं कुङ्कुमेन सर्वकामफलप्रदम् । इह लोके सुखी भूत्वा दाता स्वर्गमवाप्नुयात् ॥२२
चन्दनस्य प्रदानेन श्रियमायुश्च विन्दति । रक्तचन्दनदानेन सर्वं दद्याद्दिवाकरः ॥२३

भास्कर देव के अतिरिक्त किसी देवता से कभी निवेदन न करे ।१०। खगाधिप ! भोजक ब्रह्मादि देवताओं के पूजन करके सूर्य स्पर्श का अधिकारी नहीं रह जाता है, प्रत्युत आत्मशुद्धि के लिए उसे 'कृच्छ्र' व्रत करना आवश्यक हो जाता है ।११। खगाधिप ! आत्मशुद्धि के लिए विधानपूर्वक कृच्छ्र व्रत की समाप्ति के अनन्तर वह पुरुष सूर्य-पूजन का अधिकारी होता है ।१२। समृद्धि के इच्छुक को चाहिए कि अनिश्चित, म्लान, दूषित, एवं पर्युषित (वासी) माला सूर्य के लिए अर्पित न करें ।१३। पुष्प के लोभवश जो सूर्य देव का वितान बना लेता है, उसे दुष्ट समझना चाहिए । भोजकों को सुगन्धित पुष्पों के वितान बनाने चाहिए, अन्य के नहीं । अन्यथा लोभ-मुग्ध भोजक को ब्रह्महत्या का भागी होना पड़ता है, जिसके परिणाम स्वरूप महारौरव नामक नरक में अनेकों वर्ष रह कर 'पकना' आवश्यक होता है ।१४-१५। अब मैं तुम्हें धूप-दान का उत्तम विधान जिसमें देवाधिदेव (सूर्य) को किस प्रकार की धूप देने से किस फल की प्राप्ति होती है, (विवेचन पूर्वक) कथित हैं, बता रहा हूँ ।१६। चंदन की धूप प्रदान करने से सूर्य उस मनुष्य के मानसिक कामनाओं की पूर्ति सदैव करते रहते हैं ।१७। उसी भाँति अगुरु की धूप देने से अभीत्सित वस्तु की प्राप्ति, गुग्गुल की धूप प्रदान करने से आरोग्य और प्रेयसी की प्राप्ति होती है इस भाँति धूपदान से सदैव सूर्य कल्याण करते रहते हैं, तथा आरोग्य, स्त्री, एवं उत्तम सौख्य की भी प्राप्ति होती है ।१८-१९। कुंकुम की धूप से सौभाग्य श्री वासक धूप द्वारा वाणिज्य (व्यापार) की सफलता, समस्त रसों समेत रस प्रदान करने से निश्चित धनागम, एवं देवदारु की धूप प्रदान करने से अक्षय अन्न की प्राप्ति होती है ।२०-२१। कुंकुम का लेप समस्त कामनाओं को सफल करने वाला बताया गया है इससे इस लोक में सुखानुभव के पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।२२। चन्दन के लेप प्रदान करने से भी, और आयु तथा रक्त चन्दन के लेप से सूर्य सभी कुछ प्रदान करते हैं ।२३। एवं सैकड़ों रोगों से ग्रस्त होने पर भी

अपि रोगशतैर्ग्रस्तैः क्षिप्रारोग्यमवाप्नुयात् । दत्तिगन्धैश्च सौगन्ध्यं परमं विन्दते नरः ॥२४
कस्तूरिकालेपनकैरैश्वर्यमतुलं लभेत् । कर्पूरसंयुतैर्गन्धैः क्ष्माधिपाधिपतिर्भवेत् ॥२५
चतुः समेन गन्धेन किं तुल्यं प्राप्नुयान्नरः । देवागारं तु तन्मन्ये भक्त्या य उपलेपयेत् ॥२६
स रोगान्मुच्यते क्षिप्रं पुरुषो भोगवान्भवेत् । अष्टादशेह कुष्ठानि ये चान्ये व्याधयो नृणाम् ॥
प्रलयं यान्ति ते सर्वे मृदा यद्युपलेपयेत् ॥२७
प्रलेपनानां सर्वेषां रक्तचन्दनमुत्तमम् । नातः परतरं किञ्चिद्भानोस्तुष्टिकरं परम् ॥२८
किं तस्य न भवेल्लोके यो ह्यनेन प्रलेपयेत् । सर्वकामसमृद्धोऽसौ सूर्यलोके महीयते ॥२९
उपलिप्य रवेर्गेहं कुर्याद्वै मण्डलं पुनः । एकेनाथ समाप्नोति भाग्यमारोग्यमुत्तमम् ॥३०
त्रिभिः सप्तभिरच्छिन्नं बालो ह्यन्योऽपि यो नरः । तेन प्रदापयेद्देवान्कुर्यात्तान्न निवारयेत् ॥
अनेन विधिना कुर्याद्यावतीः सप्त सप्तमीः ॥३१
एता वै सप्त सप्तम्यो यथाप्रोक्ता विवस्वता । कुर्वीत यो नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३२
अर्कसम्पुटकैर्वित्तं मरिचैः प्रियसङ्गमम् । निम्बपत्रैः रोगनाशं फलैः पुत्रान्यथेप्सितान् ॥
धनं धान्यं सुवर्णं च ततो दद्याद्विवस्वते ॥३३
जयं प्राप्नोति विपुलं कृत्वा सर्वत्र खेचर । सर्वान्कामान्कामिकस्तु प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥३४

(वह पुरुष) शीघ्र आरोग्य हो जाता है। बत्ती के गंध प्रदान करने से मनुष्य को उत्तम सुगन्धि की प्राप्ति होती है।२४। कस्तूरी के लेप से असाधारण ऐश्वर्य की प्राप्ति कपूरमिश्रित सुगंध के लेप से वह 'महाराजा' (राजाओं के राजा) होता है।२५। चारो गंधों के लेप करने से मनुष्य को जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे असाधारण हैं (अर्थात् उनकी उपमा नहीं की जा सकती) किन्तु वह देवलोक के रूप में है, भक्तिपूर्वक जो मनुष्य उसका लेप करता है, मानो वह एक देवालय की रचना कर सूर्य को प्रदान करता है।२६। उससे वह पुरुष शीघ्र रोगमुक्त होकर भोगों के उपभोग प्राप्त करता है। मनुष्यों के अट्ठारह भाँति के कुष्ठ और अन्यव्याधियाँ भी शान्ति हो जाती हैं, यदि वह मिट्टी के उपलेपन प्रदान करता है।२७। सभी उपलेपों में रक्त चन्दन का उपलेप अत्यन्त प्रशस्त बताया गया है, यहाँ तक कि सूर्य को प्रसन्न करने के लिए इसके समान दूसरा कोई लेप है ही नहीं।२८। इसके उपलेप प्रदान करने वाले पुरुष के यहाँ किस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती ? अर्थात् सभी वस्तुएँ सदैव वर्तमान रहती हैं, इस लोक में समस्त कामनाओं को सफल कर वह सूर्य लोक में सम्मानित होता है।२९। उसी एक ही वस्तु से सूर्य के गृह के लेप तथा उनके लिए मण्डल बनाने से भाग्य और उत्तम आरोग्य, दोनों की प्राप्ति होती है।३०। उपरोक्त सभी धूपों अथवा किसी एक ही धूप का प्रदान कोई बालक या अन्य पुरुष करे तो करने से इस प्रकार इस विधान द्वारा सातों सप्तमी का व्रत समाप्त करना चाहिए। सूर्य की बतायी हुई इन सातों सप्तमियों का व्रत विधान द्वारा जो मनुष्य भक्ति पूर्वक समाप्त करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।३१-३२। अर्क संपुट वाली (सप्तमी) से धन, मरिचवाली से प्रिय का साथ, निम्बपत्र वाली से रोगनाश, और फूल वाली सप्तमी के व्रत से मनोनुकूल पुत्रों की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् यथा शक्ति धन धान्य, एवं सुवर्ण सूर्य के लिए प्रदान करना चाहिए।३३। आकाशगामिन् ! इस भाँति उसे सुसम्पन्न करने से सर्वत्र जय की प्राप्ति तथा उस कामना वाले की समस्त कामना सफल होती है, इसमें

नरो वा यदि वा नारी यथोक्तं सप्तमीव्रतम् । यः करोति खगश्रेष्ठ स याति परमं पदम् ॥३५
न तेषां त्रिषु लोकेषु किञ्चिदस्तीति दुर्लभम् । ये भक्त्या लोकनाथस्य व्रतिनः संयतेन्द्रियाः ॥३६
सर्वयज्ञफलं तेषां यथा वेदोदितं भवेत् । ब्रह्मेन्द्रविष्णवस्तेन पूजिता नात्र संशयः ॥३७
नान्धो न कुष्ठी न क्लीबो न व्यङ्गो न च निर्धनः । कदापि च भवेत्कश्चिद्यश्चरेत्सप्तमीव्रतम् ॥३८
पुत्रार्थी श्रुतिसम्पन्नाल्लभेत्पुत्रांश्चिरायुषः । न तेषां त्रिषु लोकेषु किञ्चिदस्तीति दुर्लभम् ॥
भोगार्थी लभते भोगान्व्रतेनानेन सुव्रत ॥३९
क्रोधात्प्रमादाल्लोभाच्च व्रतभङ्गो यदा भवेत् । प्रायश्चित्तमिदं कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् ॥४०
सप्तैव यास्तस्तम्यः सम्प्राप्ताः गुरुणा खग । तासु भास्करमभ्यर्च्य माल्यधूपादिभिर्नरः ॥
भोजयित्वा द्विजाञ्छक्त्या प्राप्नुयात्स्वर्गमक्षयम् ॥४१
सप्तम्यां विप्रमुख्येभ्यो योऽन्नं दद्यात्खगेश्वर । तदक्षयं भवेत्तस्य स च सूर्यगृहं व्रजेत् ॥४२
इति ते कीर्तितं वीर सप्तमीव्रतमुत्तमम् । भूय एवाभिधास्यामि शृणु मे वदतोऽनघ ॥४३
येन व्रतप्रभावेण कामिकं फलमश्नुते । सप्तमीं खगशार्दूल शुक्लां द्वादशनाम्निकाम् ॥४४
गोमूत्रगोमयाहारः षड्वृताहार एव च । अथ वा यावकाहारः शीर्णपर्णाशनोऽपि वा ॥४५
क्षीराशी चैव भक्तं वा सिक्थाहारोऽथवा पुनः । जलाहारोथ वा विद्वान्पूजयेत दिवाकरम् ॥४६

सन्देह नहीं। खगश्रेष्ठ ! इस प्रकार विधान पूर्वक सप्तमी व्रत की समाप्ति पुरुष स्त्री कोई भी करे तो उसे परम पद की प्राप्ति होती है।३४-३५। और लोकनाथ (सूर्य) की भक्ति एवं संयम पूर्वक व्रतानुष्ठान करने वालों के लिए तीनों लोकों में कोई वस्तु अप्राप्य भी नहीं रहती है।३६। समस्त यज्ञों के फल जो वेदों में बताये गये हैं इससे उसे सभी फल प्राप्त होते हैं और ब्रह्मा, इन्द्र, एवं विष्णु सभी उससे पूजित हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं।३७। सप्तमी व्रतानुष्ठान करने वाला कोई भी हो वह अंधा, कुष्ठी, नपुंसक, व्यंग तथा निर्धन कभी भी नहीं होता है।३८। पुत्र की कामना वाले प्राणी वैदिक विद्वान्, एवं चिरायु पुत्रों की प्राप्ति करते हैं। उन्हें भी तीनों लोकों में कोई अप्राप्य वस्तु नहीं रहती है। सुव्रत ! इस व्रत के प्रभाव से भोगी सभी उपभोगों को प्राप्त करते हैं।३९। क्रोध, प्रमाद, अथवा लोभ वश कभी व्रत भंग हो जाने पर प्रायश्चित्त करके पुनः व्रती होना चाहिए।४०। खग ! गुरुओं द्वारा बतायी गयी सातों सप्तमी के उपस्थित होने पर मनुष्य को माला धूप आदि द्वारा भास्कर की अर्चना करने के उपरांत यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए उससे उसे अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है।४१। खगेश्वर ! सप्तमी में प्रधान ब्राह्मणों को अन्न प्रदान करने से वह उसके लिए अक्षय होता है, और पश्चात् उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।४२। वीर ! इस प्रकार मैंने सातों सप्तमी का व्रत विधान तुम्हें बता दिया। अनघ ! मैं पुनः उसी बात को बता रहा हूँ सुनो ! ।४३। खगशार्दूल ! जिस व्रत के प्रभाव से सकाम पुरुषों की कामनाएँ सफल होती हैं, उन द्वादश नाम वाली शुक्ल सप्तमी को भी बता रहा हूँ।४४। गोमूत्र, गोबर, षडवृत, यावक (लप्सी), विशीर्ण (फटे पुराने सूखे पत्ते), क्षीर, भात, सिक्थ (मधु मक्खियों से अवशिष्ट शहद), एवं जल, इन्हीं वस्तुओं के आहार करके भास्कर की उपासना करनी चाहिए।४५-४६। द्विजश्रेष्ठ ! भाँति

पुष्पोपहारैर्विविधैः पद्मसौगन्धिकोत्पलैः । नानाप्रकारैर्गन्धैश्च धूपैर्गुग्गुलुचन्दनैः ॥४७
कृशरैः पायसान्नैर्वा विविधैश्च विभूषणैः । अर्चयित्वा द्विजश्रेष्ठ भक्ष्यवस्त्रादिभूषणैः ॥४८
सर्वपक्षफलं प्राप्य सूर्यलोकं ततो व्रजेत् । तपसोऽन्ते ततो वीर कुले महति जायते ॥४९
यथाक्रमं प्रयत्नेन नामानि परिकीर्तयेत् । माघे च फाल्गुने मासि चैत्रे च गरुडाग्रज ॥५०
वैशाखे त्वथ ज्येष्ठे तु आषाढे श्रावणे तथा । मासि भाद्रपदे वीर तथा चाश्वयुजे खग ॥५१
मार्गशीर्षे तथा पौषे पूजयेत्सततं रविम् । विभावसुं विवस्वन्तं भास्करं पक्षिसत्तम ॥५२
विकर्तनं पतङ्गं च सहस्रांशुं खगाधिप । एतानि देवनामानि मासेष्वेतेषु खेचर ॥५३
पूजयेद्देवदेवेशं देवानामपि दुर्लभम् । एवं क्रमेण तीक्ष्णांशुं नामभिः परिपूजयेत् ॥५४
इत्येवं ते समाख्यातं मया गुह्यमिदं खग । अभक्ताय न दातव्यं नाशिष्याय कथञ्चन ॥५५
न च पापकृते वीर दातव्यं विनतात्मज । व्याधेस्तु नाशनार्थाय देयं विप्राय सुव्रत ॥५६
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति श्रुत्वा च विधिवत्खग ॥५७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सौरधर्मे सप्तमीकल्पे नामपूजाविधिवर्णनं
नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९६।

भाँति के पुष्पोपहार, रक्तकमल, नीलकमल, अनेक प्रकार की गंध, धूप, गुग्गुल, चन्दन, कृशरान्न (खिचड़ी), खीर, अनेक भाँति के आभूषण, भक्ष्य एवं वस्त्रादि वस्तुओं द्वारा सूर्य की पूजा करने पर समस्त पक्ष के फलों की प्राप्ति पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । वीर ! पश्चात् वह प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न होता है ।४७-४९। क्रमशः उनके नाम भी बता रहा हूँ । गरुडाग्रज ! माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ श्रावण, भाद्रपद, आश्विन (कार्तिक) मार्गशीर्ष और पौष इन मासों में निरन्तर सूर्य की पूजा करनी चाहिए । पक्षिसत्तम ! विभावसु, विवस्वान्, भास्कर, विकर्तन, पतंग, एवं सहस्रांशु, इन मासों में सूर्य के इन्हीं नामों की पूजा होती है ।५०-५३। आकाशगामिन् ! देवाधिदेव (सूर्य) के तीक्ष्णांशु आदि नाम से क्रमशः उनकी पूजा जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ हैं, करनी चाहिए ।५४। खग ! इस प्रकार तुम्हें इन बातों को बता दिया गया, इसे अभक्त तथा अशिष्य को कभी न प्रदान करना चाहिए ।५५। वीर, विनतात्मज, किसी पापी को भी इसे न देना चाहिए । सुव्रत ! रोग-मुक्त होने के लिए ब्राह्मण को बता देना अनुचित नहीं है । खग ! इसके प्रदान या विधान पूर्वक श्रवण करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।५६-५७

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सौर धर्म के सप्तमी कल्प में नाम पूजाविधि वर्णन
नामक एक सौ छियानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९६।

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वराटिकावर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पुष्पधूपानिकामिकम् । येन येन तु दानेन तत्तत्फलमवाप्नुयात् ॥१
मालतीकुसुमैः पूजा भवेत्सान्निध्यकारिका । आरोग्यं करवीरैस्तु भवत्यर्थश्च शाश्वतः ॥२
ऐश्वर्यमतुलं चैव यशश्च विपुलं तथा । मल्लिकायाश्च कुसुमैर्भगवत्सम्मुखो भवेत् ॥३
सौभाग्यं पुण्डरीकैस्तु परमैश्वर्यमाप्नुयात् । कमलोत्पलकुन्दैस्तु यशो विद्या बलं भवेत ॥४
नानाविधैः सुकुसुमैः क्षिप्रं रोगात्प्रमुच्यते । भवत्यक्षयमन्नं च नित्यमर्चयतो रविम् ॥५
मन्दारकुसुमैः पूजा सर्वकुष्ठनिवारिणी । बिल्वस्य पत्रकुसुमैर्महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥६
अर्कस्रजा भवत्यर्कः सर्वदा वरदः प्रभुः । प्रदद्याद्रूपिणीं कन्यामर्चितो बकुलस्रजा ॥७
किंशुकैः पूजितो देवो न पीडयति भास्करः । अगस्त्यकुसुमैः सिद्धिं सानुकूल्यं प्रयच्छति ॥८
स्वयं रूपवतीं दद्यात्पूजितश्चम्पकस्रजा । निरुद्वेगो भवेन्नित्यं पूजितः पुष्पमालया ॥९
अशोककुसुमैर्देवमर्चयेद्यो दिवाकरम् । आम्रातकस्य कुसुमं निर्माल्यमिव दृश्यते ॥१०

अध्याय १९७

वराटिका का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—इसके उपरांत मैं कामना सफल करने वाले उन पुष्प एवं धूपों को जिसमें यह बताया गया है कि किसके प्रदान करने से किन फलों की प्राप्ति होती है बता रहा हूँ ।१। मालती पुष्प से पूजा करने पर सूर्य का सान्निध्य, करवीर (कनेर) द्वारा पूजा करने पर निरन्तर अर्थागम, असाधारण ऐश्वर्य, तथा विपुल यश की प्राप्ति होती है । मल्लिका (मालती) पुष्पों द्वारा अर्चना करने पर भगवान् सूर्य की विशेष कृपा, पुण्डरीक से सौभाग्य, उत्तम ऐश्वर्य, रक्तकमल, नीलकमल एवं कुंद पुष्पों द्वारा यश, विद्या, एवं बल की प्राप्ति होती है ।२-४। अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्पों द्वारा शीघ्र रोग मुक्ति, सूर्य की नित्य उपासना करने से अक्षय अन्न, मंदार पुष्पों द्वारा सभी भाँति के कुष्ठों के नाश, विल्पपत्र एवं कुसमों द्वारा महान् श्री, प्राप्त होती है ।५-६। मंदार की माला अर्पित करने से सूर्य सदैव वर प्रदान करते रहते हैं । वकुलपुष्पों की माला द्वारा उपासना करने पर सूर्य रूपसौन्दर्यपूर्ण कन्या प्रदान करते हैं ।७। किंशुक द्वारा पूजा करने पर (सूर्य) देव पीडित नहीं करते हैं, और अगस्त्य पुष्पों द्वारा पूजा करने पर मनोनुकूल सिद्धि प्रदान करते हैं ।८। चंपे की माला प्रदान करने से रूपवती कन्या, पुष्पमाला अर्पित करने से नित्य निरुद्वेग (शांति) प्राप्त होता है ।९। अशोक पुष्प से भी पूजन करने वाला सुखी रहता है । आम्रातक (आमले) का पुष्प भी निर्माल्य की भाँति पवित्र बताया गया है ।१०। किन्तु उसका भीतरी

अप्रत्यग्नं बहिर्यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । नवभिस्त्वचलां कीर्तिं दशभिः सुखमुत्तमम् ॥११
भोगानेकादशेनेह प्राप्नुयान्नात्र संशयः । द्वादशेनाचलं राज्यं द्वादशाख्यमवाप्नुयात् ॥१२
प्रथमं पूजयेद्भक्त्या भूरूपं प्रणमेत्सदा । भुवर्नमो द्वितीयं च तृतीयं स्वर्नमेन्नरः ॥१३
महर्नमश्चतुर्थं तु पञ्चमं तु जनोनमः । तपो नमस्तथा षष्ठं नमः सत्यं तु सप्तमम् ॥१४
अष्टमं भूर्भुवश्चेति नवमं स्वेति खगसत्तम । दशमं अडतो वीर नमोल्काय तथा परम् ॥१५
द्वादशं तु खषोल्केति ॐ नमः पूजयेत्खग । एवं मण्डलकारी तु क्रमादेवं फलं लभेत् ॥१६
घृतदीपप्रदानेन चक्षुष्मान्जायते नरः । कटुतैलस्य दीपेन शत्रूणां संक्षयो भवेत् ॥
मधूकानां तु तैलेन सौभाग्यं परमं लभेत् ॥१७
सम्पूज्य विधिवद्देवं पुष्पधूपादिभिर्नरः । यथाशक्त्या ततः पश्चान्नैवेद्यं तु प्रकल्पयेत् ॥१८
पुष्पाणां प्रवरा जाती धूपानां चैव चन्दनम् । गन्धानङ्कुङ्कुमं श्रेष्ठं मोदकाश्च निवेदने ॥१९
एतैस्तुष्यति देवेशः सान्निध्यं चाधिगच्छति । ददाति प्रवरानिष्टान्दातुश्च स्वर्गीत तथा ॥२०
एवं सम्पूज्य विधिवत्कृत्वा चापि प्रदक्षिणाम् । प्रणम्य शिरसा देवं भास्करं तिमिरापहम् ॥
आरुह्य सुविमानं स याति भानोः सलोकताम् ॥२१
पुनः संपूज्य देवेशं जपं कुर्याद्यथेष्टकम् । हुताशने च जुहुयाद्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥
एवमेकैकशः कार्या सप्तम्यः सप्त सर्वदा ॥२२

भाग वहिर्याग में स्थित होने की भाँति दिखायी देता है, इसीलिए वह त्याज्य है । नव (प्रकार) के पुष्पों द्वारा निश्चल ख्याति, दश से उत्तम सुख, और एकादश (ग्यारह) से उपभोग प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं । बारह से अचल राज्य प्राप्त होता है, क्योंकि उसकी 'द्वादशाख्य' से प्रसिद्धि है ।११-१२। प्रथम भूरूप (सूर्य) का सदैव प्रणाम पूर्वक पूजन करे, दूसरे भुवरूप, तीसरे स्वर रूप, चौथे महः रूप, पाँचवें जन रूप, छठें तप रूप, सातवें सत्यरूप, आठवें भूरूप, नवें भुवरूप, दशवें भू से तप तक के रूप, ग्यारहवें उल्क और बारहवें खषोल्क की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार मंडल बनाकर क्रमशः पूजन करने वाला फलों की प्राप्ति करता है ।१३-१६। घी के दीपक प्रदान करने वाले पुरुष चक्षुष्मान् होते हैं, कड़वे तेल के दीपक द्वारा शत्रुनाश एवं महुवे के तेल से परम सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।१७। इस भाँति विधान पूर्वक सूर्य की पूजा के अनन्तर मनुष्य उन्हें नैवेद्य अर्पित करें ।१८। पुष्पों में श्रेष्ठ चमेली, धूपों में चन्दन, गंधों में कुंकुम, एवं नैवेद्यों में भोजन उत्तम बताया गया है ।१९। इन्हीं के अर्पण करने से देवेश सूर्य प्रसन्न होकर उसे अपना सानिध्य प्रदान करते हैं, तथा उसे मनोरथों की सफलता पूर्वक स्वर्ग भी प्राप्त होता है ।२०। इस प्रकार विधान पूर्वक उनकी पूजा, प्रदक्षिणा एवं शिर से प्रणाम करने पर अन्धकार नाशक सूर्य देव, उसे सौन्दर्य पूर्ण विमान द्वारा अपने उत्तम लोक में निवास प्रदान करते हैं ।२१। पूजा के उपरांत सूर्य देव का मन इच्छित जप भी करे, तथा विधान पूर्वक हवन भी । इस प्रकार सदैव एक-एक के क्रम से सातों सप्तमी के व्रतानुष्ठान करना चाहिए । आधी अंजलि जल का पान कर जिस सप्तमी के व्रत की समाप्ति की जाती है, वह सुख प्रदान करती हैं, तथा उसकी उदक सप्तमी के नाम से ख्याति है ।२२। वह सुख

उदकप्रसृति पीत्वा क्रियते या तु सप्तमी । सा ज्ञेया सुखदा वीर सदैवोदकसप्तमी ।।२३
या काचित्सप्तमी नोक्ता तां ते वक्ष्यामि सर्वदा । वराटिका क्रमेणाप्तं यत्किञ्चित्प्रतिभक्षयेत् ।।२४
अनेन देयमूल्येन यल्लब्धं तत्प्रभक्षयेत् । अभक्ष्यं चापि भक्ष्यं वा नात्र कार्या विचारणा ।।२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु वराटिकावर्णनं
नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९७।

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्यासभीष्मसंवादवर्णनम्

शतानीक उवाच

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् । स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ।।१
को धर्मः सर्वधर्माणां कश्च पूज्यो मतस्तव । ब्रह्मादयः कमर्चन्ति कश्चादिस्त्रिदिवौकसाम् ।।२

सुमन्तुरुवाच

अत्राहं ते प्रवक्ष्यामि संवादं पापनाशनम् । भीष्मस्य नरशार्दूल व्यासस्य च महात्मनः ।।३
सुखासीनं महाव्यासं गङ्गाकूले द्विजोत्तम । तं दृष्ट्वा सुमहातेजा ज्वलन्तमिव पावकम् ।।४
साक्षान्नारायणं देवं तेजसादित्यसन्निभम् । प्रणम्य शिरसा वीर सर्वशास्त्रालयं परम् ।।५

प्रदान करती है, तथा उसकी उदक सप्तमी के नाम से ख्याति है ।२३। जिस किसी सप्तमी या उसके विधान को मैंने तुम्हें नहीं बताया है, उसे बता रहा हूँ । वराटिका (कौड़ी) के देने से जो कुछ मिल जाये उसी का भक्षण कर व्रत की समाप्ति करे, उस मूल्य द्वारा जो कुछ प्राप्त हो सके वही भक्ष्य है, उसमें भक्ष्याभक्ष्य का विचार अनावश्यक है ऐसा बताया गया है ।२४-२५

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में वराटिका वर्णन
नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९७।

अध्याय १९८

व्यासभीष्म संवाद-वर्णन

शतानीक ने कहा—इस लोक में सर्वश्रेष्ठ देवता एक कौन है, किस एक का पारायण किया जाता है, किस की स्तुति पूजन करते हुए मनुष्य कल्याण प्राप्त करते हैं, समस्त धर्मों में कौन उत्तम धर्म एवं तुम्हारे सम्मत में पूज्य कौन है, ब्रह्मादि देव किसकी उपासना करते हैं, तथा देवों में आदि (प्रथम) कौन हैं।१-२

सुमन्तु बोले—नरशार्दूल ! इस विषय में मैं तुम्हें भीष्म और महात्मा व्यास के पाप नाशक संवाद को बता रहा हूँ ।३। द्विजोत्तम ! एक समय गंगा के तट पर सुखपूर्वक बैठे हुए महाव्यास को, जो प्रज्वलित पावक, साक्षात्, नारायण देव, सूर्य के समान तेजस्वी तथा समस्त शास्त्रों के उत्तमालय की भाँति दिखायी दे रहे थे महाभारत के रचयिता, परमर्षि, एवं राजर्षियों के आचार्य, मेरे कुरुवंश के

महाभारतकर्तारं देवार्थनिकषं परम् । आचार्यं परमर्षीणां राजर्षीणां च भारत ॥६
कर्तारं कुरुवंशस्य दैवतं परमं मम । पप्रच्छ कुरुशार्दूलो द्विजभक्त्या समन्वितः ॥७
देव देवस्य माहात्म्यं चित्तस्थं भास्करस्य तु । स महात्मा महातेजा भीष्मः पूर्वं मुनिं तथा ॥८

भीष्म उवाच

भगवन्द्विजशार्दूल पाराशर्य महामते । समाख्यातं त्वया सर्वं वाङ्मयं सचराचरम् ॥९
भास्करस्य मुनिश्रेष्ठ संशयोऽद्यापि वर्तते । आदौ तस्य नमस्कारमन्येषां तदनन्तरम् ॥१०
ब्रह्मादीनां तु रुद्राद्यैर्ब्रूहि तत्त्वेन हेतुना । क एष भास्करो ब्रह्मन् कुतो जातः क उच्यते ॥११
कीर्तयस्व यथान्यायं कौतुकं हि परं मम । कुशलो हि भवाँल्लोके तस्मात्त्वं वक्तुमर्हसि ॥१२

व्यास उवाच

अहो तव महत्कष्टं प्रमूढोऽसि न संशयः । स्तुवन्तश्च तमर्चाभिः सिद्धाः ब्रह्मादयः सुराः ॥१३
सर्वेषामेव देवानामादिरादित्य उच्यते । स हन्ति तिमिरं सर्वं दिग्विदिक्षु व्यवस्थितम् ॥१४
स धर्मः सर्वधर्माणां स च पूज्यतमो मतः । ब्रह्मादयस्तमर्चन्ति स चादिस्त्रिदिवौकसाम् ॥१५
अदितिः कश्यपसती आदित्यस्तेन चोच्यते । आदिकर्ताथ वा यस्मात्तस्मादादित्य उच्यते ॥१६
तस्मादेतज्जगत्सर्वमादित्यात्सम्प्रवर्तते । सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ॥१७
रुद्रोपेन्द्रौ तथेन्द्रश्च ब्रह्मादक्षोऽथ कश्यपः । आदित्यदेवताः सर्वे तथान्ये देवदानवाः ॥१८

निर्माता तथा उत्तम देव को ब्राह्मण भक्ति वश प्रणाम करके महात्मा, महातेजस्वी, भीष्म ने देवाधिदेव भास्कर के माहात्म्य को मन में स्थित कर उन पूर्व मुनि (व्यास) से पूछा— ।४-८

भीष्म ने कहा—हे भगवन् ! द्विजशार्दूल, पाराशर्य, महामते ! आप ने इस चराचर वाङ्मय (शास्त्रों) को मुझे बता दिया है, किन्तु, इन भास्कर के विषय में मुझे आज भी संदेह हो रहा है कि मुनिश्रेष्ठ ! प्रथम इन्हें नमस्कार करके पश्चात् अन्य देवताओं को नमस्कार किया जाता है— हे ब्रह्मन् ! किस तात्त्विक हेतु द्वारा सूर्य रुद्रादि देवों के पहले वन्दनीय है, ये भास्कर कौन हैं, और कहाँ उत्पन्न हुए हैं ? इन बातों के जानने के लिए मुझे महान् कौतुक हो रहा है, और आप भी इस लोक में एक ही कुशल वक्ता हैं, अतः न्यायोचित ढंग से मुझे बताने की कृपा करें ।९-१२

व्यास बोले—इन बातों में तुम्हें महान् कष्ट है, यह एक आश्चर्य की बात है इसलिए तुम्हारे मूढ़होने में संदेह नहीं ब्रह्मादिक देव गण उन्हीं (सूर्य) की उपासना करके सिद्ध हुए हैं । सभी देवों में आदि (ज्येष्ठ) आदित्य हैं । दिशाओं-विदिशाओं में व्याप्त अन्धकार उन्हीं द्वारा नष्ट होता है । समस्त धर्मों में वहीं प्रधान धर्म हैं अतः मेरे सम्मत से पूज्यतम भी वहीं हैं । ब्रह्मादि देव उन की उपासना करते हैं, वही देवों के आदि हैं, कश्यप तथा उनकी सती स्त्री अदिति द्वारा जल ग्रहण करने तथा आदिकर्ता होने के नाते इन्हें 'आदित्य' कहा जाता है ।१३-१६। इसी लिए आदित्य द्वारा इस समस्त जगत् की सृष्टि हुई है जिसमें देव, असुर, राक्षस, गन्धर्व एवं यक्ष लोग हैं तथा रुद्र, उपेन्द्र, इन्द्र, ब्रह्मा, दक्ष, कश्यप, आदित्य देवता एवं अन्य देव-दानव भी। उनके मुख द्वारा ब्रह्मा, वक्षस्थल द्वारा रुद्र, दाहिने हाथ

मुखादभूतो विरिञ्चिस्तु रुद्रो वक्षस्थलात्ततः । उपेन्द्रो दक्षिणाद्धस्ताद्धाता वामकरात्तथा ॥१९
वामपादतलाद्दक्षो दक्षिणात्कश्यपस्तथा । इत्युत्पन्नास्तथा चान्ये देवासुरनराः खगाः ॥
तेनासौ देव आदित्यः सर्वदेवेषु पूजितः ॥२०

भीष्म उवाच

यदीत्थं गीयते वीर दिग्विदिक्षु स भास्करः । यदि तस्य प्रभावोऽयं पाराशर्य जगत्पतेः ॥२१
स किमर्थं त्रिसन्ध्यं तु राक्षसैः परिभूयते । द्विजैः संरक्ष्यते भूयश्चक्रवद्भ्रमते पुनः ॥
राहुणा गृह्यतेऽत्याहृस्तात्किमर्थं द्विजोत्तम ॥२२

व्यास उवाच

पिशाचोरगरक्षांसि डाकिनीदानवांस्तथा । दक्षिणाग्निर्दहेत्क्रोधात्तमाक्रामति भास्करः ॥२३
त्रिसन्ध्यं तु त्रयो देवाः सान्निध्यं रविमण्डले । मुहूर्तस्य प्रभावोऽयमसाध्ये दृष्टके तथा ॥२४
तमेकमेवमुद्दिश्य लोके धर्मः प्रवर्तते । नमस्कृते स्तुते तस्मिन्सर्वे देवा नमस्कृताः ॥२५
त्रिसन्ध्यं वसुधादेवैर्भास्करस्त्रिः प्रणम्यते । राहुरादित्यबिम्बस्य स्थितोऽधस्तान्न संशयः ॥२६
अमृतार्थी विमानस्थो यावत्संस्रवतेऽमृतम् । विमानान्तरितं बिम्बमादिशेद्ग्रहणं ततः ॥२७

द्वारा उपेन्द्र (विष्णु) बायें हाथ द्वारा धाता, बायें पादतल द्वारा दक्ष, दाहिने पाद तत्व द्वारा कश्यप तथा अन्य देव, असुर मनुष्य एवं पक्षियों आदि की सृष्टि हुई है। इसीलिए आदित्य देव सभी देवों के पूज्य हैं।१७-२०

भीष्म ने कहा—हे वीर ! यदि भास्कर का इस प्रकार दिशाओं तथा विदिशाओं में गुणगान गाया जाता है, और हे पाराशर्य ! उन्हीं जगदीश्वर का ही यह प्रभाव है, तो तीनों संध्याओं में राक्षसों द्वारा उनका पराभव क्यों होता रहता है, जिसमें द्विजों द्वारा उनकी रक्षा होती है, वे पुनः चक्र की भाँति भ्रमण किया करते हैं तथा हे द्विजोत्तम ! राहु उन्हें ग्रहण करने क्यों दौड़ता है।२१-२२

व्यास बोले—पिशाच, नाग, राक्षस, डाकिनी, एवं दानवों को दक्षिणाग्नि दहन करता है, क्रुद्ध होकर भास्कर उस पर आक्रमण करते हैं। तीनों संध्याओं में तीनों देव सूर्य मंडल के सान्निधि में स्थित रहते हैं। यह मुहूर्त का प्रभाव है, तथा प्रत्यक्ष दीखते हुए भी असाध्य है, और उन्हीं एक सूर्य देव का ही उद्देश्य मानकर समस्त लोक धर्म में प्रवृत्त होता है, एवं उन्हें नमस्कार तथा स्तुति करने पर समस्त देव गण नमस्कृत होते हैं।२३-२५। तीनों संध्याओं में समस्त भू देव वृन्द भास्कर को तीन बार प्रणाम करते हैं। हाँ अमृत के लिए राहु भी उनके बिम्ब के नीचे अवश्य स्थित होता है इसमें संदेह नहीं है वह विमान पर बैठकर जितने समय तक अमृत का स्राव होता है उतने समय तक विमन्तनांतरित होकर वह उनके लिए विम्ब का आलम्बन किये रहता है, वही ग्रहण के नाम से ख्यात है।२६-२७। दहन करने के लिए

न कश्चिद्धर्षितुं शक्त आदित्यो वहते ध्रुवम् । दिवारात्रिमुहूर्तानां ज्ञानायाक्रमते रविः ॥२८
नादित्येन बिना रात्रिर्न दिनं न च तर्पणम् । नाधर्म्मो नाथवा धर्म्मस्तेन दृष्टं चराचरम् ॥२९
आदित्यः पाति वै सर्वमादित्यः सृजते सदा । एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं भवता मम ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे
व्यासभीष्मसंवादेऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९८।

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीष्मव्याससंवादवर्णनम्

भीष्म उवाच

स आदित्यो भवेद्येन अचिरात्तु वरप्रदः । तदहं श्रोतुमिच्छामि विप्र मां ब्रूहि तत्त्वतः ॥१

व्यास उवाच

पूजया जपहोमेन ध्यानधारणया सह । सकलं मण्डलं कृत्वा तद्दीक्षां समयं तथा ॥२
लब्ध्वाराधयते यस्तु भक्त्या तद्गतमानसः । तस्य भानुर्भवेद्वीर अचिरात्तु वरप्रदः ॥३
बलसिद्धिं महद्वीर्यं प्रतापं च स्वकायनम् । धनं धान्यं सुवर्णं च रूपं सौभाग्यसम्पदम् ॥४
आरोग्यमायुः कीर्तिं च यशः पुत्रांश्च मानद । ददते नात्र सन्देहो यस्य तुष्टो दिवाकरः ॥५

निश्चित शक्ति आदित्य में ही है, उन पर आक्रमण के लिए कोई भी समर्थ नहीं हो सकता है । दिन, रात एवं मूहूर्तों के ज्ञानार्थ सब के ऊपर सूर्य का आक्रमण (उदय) होता है ।२८। बिना भास्कर के रात, दिन, तर्पण, धर्म, एवं अधर्म की प्रगति चर चराचर किसी में भी सम्भव नहीं होती है ! समस्त जगत् का पालन, एवं सर्जन आदित्य ही करते हैं । जो आपने पूछा था, मैंने उन सभी बातों को बता दिया ।२९-३०

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में व्यास भीष्म संवाद वर्णन
नामक एक सौ अठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९८।

अध्याय १९९

भीष्म संवाद-वर्णन

भीष्म ने कहा—हे विप्र ! वह आदित्य जिस प्रकार शीघ्र वर प्रदान करते हैं, उस विधान को मुझे जानने की इच्छा है, आप विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें ।१

व्यास बोले—वीर ! समस्त मण्डल की रचना कर दीक्षाग्रहण पूर्वक नियम पालन करते हुए जो कोई पूजा, जप, हवन, एवं ध्यान-धारणा के साथ भक्ति पूर्वक तन्मय होकर उनकी आराधना करता है, उसी के लिए सूर्य शीघ्र वर दायक होते हैं ।२-३। बल की सिद्धि, महान् पराक्रम, प्रताप, निजी (गृह) धन, धान्य, सुवर्ण, रूपसौन्दर्य, सौभाग्य-सम्पत्ति, आरोग्य, कीर्ति, यश, एवं पुत्र, ये सभी वस्तुएँ जिस पर सूर्य प्रसन्न होते हैं, उसे प्रदान करते हैं, इसमें संदेह नहीं । प्रसन्न होने पर

धर्ममर्थं तथा कामं विद्यां मोक्षश्रियं तथा ! ददते भास्करस्तुष्टो नराणां नात्र संशयः ॥६
सौरेण विधिना तात पूजयित्वा दिवाकरम् । सर्वान्कामानवाप्नोति तथादित्यालयं नृप ॥७

भीष्म उवाच

सौरस्नानविधिं ब्रूहि सरहस्यं महामते । ये न स्नातोऽमलो याति नरः पूजयितुं रविम् ॥८

व्यास उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि स्नानं पापप्रणाशनम् । शुचौ मनोरमे स्थाने सङ्गृह्यास्त्रेण मृत्तिकाम् ॥९
सन्धिसन्धो हकारस्तु टरेफोफसमन्विते । अनेनास्त्रेण सङ्गृह्य ततः स्नानं समाचरेत् ॥१०
मलस्नानं ततः पश्चाच्छेषार्धेन तु कारयेत् । भागत्रयं तु सार्धं तु तृणपाषाणवर्जितम् ॥११
एकमस्त्रेण चालम्भ्य तथान्यं भास्करेण तु । अङ्गं चैव तृतीयेन अभिमन्त्र्य सकृत्सकृत् ॥१२
जप्त्वास्त्रेण क्षिपेद्दिक्षु निर्विघ्नं तु जलं भवेत् । सूर्यतीर्थे द्वितीयेन अभिमन्त्र्य सकृत्सकृत् ॥१३
गुण्डयित्वा ततः स्नायादिति तीर्थेषु मानवः । तूर्यशङ्खनिनादेन ध्यात्वा देवं दिवाकरम् ॥१४
स्नात्वा राजोपचारेण पुनराचम्य यत्नतः । स्नानं कृत्वा ततो भीष्म मन्त्रराजेन संयुतम् ॥१५
हरेफौ बिन्दुयुक्तश्च तथान्यो दीर्घया सह । मात्रया रेफसंयुक्तो हकारो बिन्दुना सह ॥१६
सकारः सविसर्गस्तु मन्त्रराजो यमुच्यते । ततस्तु तर्पयेन्मन्त्रान्सर्वांस्तास्तु कराग्रजैः ॥१७

भास्कर मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम, विद्या एवं मोक्ष भी अवश्य प्रदान करते हैं इसमें संदेह नहीं । नृप ! विधानपूर्वक सूर्य की उपासना करके समस्त कामनाओं की सफलता एवं आदित्य लोक की प्राप्ति होती है ।४-७

भीष्म ने कहा—हे महामते ! उस सौर स्नान के विधान को जिसके द्वारा स्नान कर मनुष्य स्वच्छ होकर सूर्य पूजन के योग्य होता है, रहस्य समेत बताने की कृपा करें ।८

व्यास बोले—मैं तुम्हें उस पाप नाशक स्नान-विधान को बता रहा हूँ (सुनो) किसी पवित्र एवं रमणीक स्थान की मिट्टी मंत्र (मंत्रोंच्चारण) पूर्वक ग्रहण करे । मन्त्राक्षर के ह, ट, र, फ, यही वर्ण हैं इसी अस्त्र द्वारा उस मृत्तिका का ग्रहण पश्चात् स्नान करना चाहिए ।९-१०। उपरांत अवशिष्ट अर्ध भाग से मलस्नान करके पूर्व अर्धभाग में तीन भाग बनाये, उसमें तृण-कंकड़ आदि न रहे । एक का अस्त्र द्वारा और दूसरे का भास्कर के नामोच्चारण द्वारा ग्रहण करना चाहिए तीसरे भाग द्वारा प्रत्येक अंगों को एक-एक बार अभिमन्त्रित कर अस्त्र के जप पूर्वक उसे सभी दिशाओं में फेंक दे जिससे स्नान जल निर्विघ्न समाप्त हो जाये । दूसरे भाग द्वारा सूर्य तीर्थ को चारों ओर से (घेरे के रूप में) एक-एक बार अभिमंत्रित कर पश्चात् उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करे । स्नान के समय दिवाकर के ध्यान पूर्वक तुरुही एवं शंख की ध्वनि होनी चाहिए । भीष्म ! इस प्रकार राजोपचार पूर्वक स्नान करने के उपरांत पुनः आचमन करके मंत्रराज के उच्चारण पूर्वक स्नान करें । बिन्दु युक्त ह और र दीर्घमाला, बिन्दु के समेत, र और ह, तथा विसर्ग समेत स, यही ह्रं ह्रां सः, मन्त्रराज के नाम से ख्यात हैं ।११-१६। पश्चात् अंगुलियों द्वारा सभी मंत्रों के उच्चारण पूर्वक तर्पण करे । अंगुलियों के पर्व (गाँठ) के ऊपरी भाग द्वारा देवों के सव्य होकर

पर्वणामूर्ध्वतो देवाः सव्येन मुनयस्तथा । पितरश्चापसव्येन तद्बीजेन प्रतर्पयेत् ॥१८
यद्गीतं प्रवरं लोके अक्षराणां मनीषिभिः । तद्विन्दुसहितं प्रोक्तं तद्बीजं नात्र संशयः ॥१९
कृत्वा वामकरे हस्तादृत्वात्वा प्राज्ञो विधानवित् । एवं स्नात्वा विधानेन सन्ध्यां वन्देद्विधानतः ॥२०
ततो विद्वान्क्षिपेत्पश्चाद्भास्करायोदकाञ्जलिम् । जपेच्च त्र्यक्षरं मन्त्रं षण्मुखं वा यदिच्छया ॥२१
मन्त्रराजेति यः पूर्वं तवाख्यातो मया नृप । पश्चात्तीर्थे तु मन्त्रांस्तु संहृत्य हृदयं न्यसेत् ॥२२
मन्त्रैरात्मानमेकत्र कृत्वा ह्यर्घ्यं प्रदापयेत् । रक्तचन्दनगन्धैस्तु शुचिस्नातो महीतले ॥२३
कृत्वा मण्डलकं चित्तमेकचित्तो व्यवस्थितः । गृहीत्वा करवीराणि संस्थाप्य ताम्रभाजने ॥२४
तिलतण्डुलसंयुक्तं कुशगन्धोदकेन तु । रक्तचन्दनधूपेन युक्तमर्घ्यं प्रसाध्य तत् ॥२५
कृत्वा शिरसि तत्पात्रं जानुभ्यामवनिं गतः । पूर्वमन्त्रेण संयुक्तमर्घ्यं दद्यात्तु भानवे ॥२६
मुच्यते सर्वपापैस्तु यो ह्येवं विनिवेदयेत् । सहस्रयुगादिसहस्रेण व्यतीपातशतेन च ॥२७
अयनानां सहस्रेण चन्द्रस्य ग्रहणे तथा । गवां शतसहस्रेण यत्फलं ज्येष्ठपुष्करे ॥
दत्ते कुरुकुलश्रेष्ठ तदर्घ्येण फलं लभेत् ॥२८
दीक्षामन्त्रविहीनोऽपि भक्त्या संवत्सरेण तु । फलमर्घ्येण वै वीर लभते नात्र संशयः ॥२९
यः पुनर्दीक्षितो विद्वान्विधिनार्घ्यं निवेदयेत् । नासावुत्पद्यते भूमौ स लयं याति भास्करे ॥३०
इह जन्मनि सौभाग्यमायुरारोग्यसम्पदाम् । अचिराद्भवते वीर स भार्यासुखभाजनम् ॥३१

मुनिगण, और अपसव्य होकर पितरों के तर्पण करने का विधान बताया गया है । मनीषियों ने जिस वर्ण को, अक्षरों में श्रेष्ठ बताया है, बिंदु समेत वहीं वर्ण 'हृद्‌बीज' है ।१७-१९। विधानवेत्ता विद्वान् को चाहिए कि दाहिने हाथ द्वारा बायें हाथ में उसे स्थित कर विधान पूर्वक स्नान एवं संध्या-वन्दन करे ।२०। उसके उपरांत भास्कर के लिए 'जलाञ्जलि' प्रदान करें। नृप ! अक्षर या षडक्षर के जपपूर्वक मंत्रराज का जप करें, जिसे मैंने तुम्हें बताया है । पश्चात् तीर्थ में मंत्रों के संहार पूर्वक हृदय में धारण कर मंत्रमय होकर अर्घ्य प्रदान करें । इस भूतल में रक्त चन्दन अति पवित्र बताया गया है, उसके गंध द्वारा पवित्र स्नान पूर्वक सावधान हो मंडल बनाकर करवीर (कनेर) के पुष्प ताँबें के पात्र में रखे । तिल, तंडुल, कुश, गन्ध, एवं रक्तचन्दन की धूप समेत उस ताँबें के अर्घ्य पात्र में सभी वस्तुएँ रख कर घुटने के बल बैठकर उस पात्र को सिर से स्पर्श किये हुए पूर्वोक्त मंत्र द्वारा भानु के लिए अर्घ्य प्रदान करे ।२१-२६। इस भाँति अर्घ्य प्रदान करने से समस्त पापों से मुक्ति प्राप्ति होती है । सहस्रयुगादि (कृतयुग), सौ व्यतीपात, सहस्र अयन, चन्द्र ग्रहण एवं सौ सहस्र गोदान श्रेष्ठ पुष्कर तीर्थ में प्रदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, कुरुकुल श्रेष्ठ ! वह समस्त फल ऐसे अर्घ्य प्रदान द्वारा प्राप्त होता है।२७-२८। वीर ! दीक्षा, एवं मंत्र विहीन होने पर भी भक्ति पूर्वक पूर्ण वर्ष तक इस प्रकार अर्घ्य प्रदान करने से उस समस्त फल की प्राप्ति होती है, इसमे संदेह नहीं ।२९। और जो पुनः दीक्षित होकर कोई विद्वान् विधान पूर्वक अर्घ्य प्रदान करते है, उसे इस भूतल पर जलग्रहण नहीं करना पड़ता तथा भास्कर में उसका सायुज्य मोक्ष भी हो जाता है । इस जन्म में सौभाग्य, आयु, आरोग्य उसे शीघ्र प्राप्त होते हैं तथा वीर ! वह स्त्रीसुख का एक मात्र पात्र

एष स्नानविधिः प्रोक्तो मया संक्षेपतस्तव । हिताय मानवेन्द्राणां सर्वपापप्रणाशनः ।।३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु
भीष्मव्याससंवादो नाम नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९९।

अथ द्विशततमोऽध्यायः

सौरधर्मे वर्णनम्

भीष्म उवाच

कथितस्ते स्नानविधिर्ब्रह्मन्वै पापहारकः । सम्यग्भूयार्चनविधिं पूजयिष्यामि येन वै।।१

व्यास उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विधिमादित्यपूजने । विविक्ते विजयस्थाने सुप्रसन्ने सुशोभने ।।२
पूजयेद्भास्करं मन्त्री सरलीकृतविग्रहः । भद्रासनसमारूढः प्राङ्मुखः साधकोत्तमः ।।३
अस्त्रबीजेन मन्त्रेण नरः स्वाङ्गानि विन्यसेत् । अङ्गुष्ठमादितः कृत्वा कनिष्ठान्तं सुविन्यसेत् ।।४
हृदयादीन्फडन्तास्तान्विन्यसेत्क्रमतः सदा । नेत्रपाणितले वीर न्यस्य अर्घ्यादि मन्त्रवित् ।।५
यवर्गे यचतुर्थे तु कर्णबिन्दुसमन्वितम् । नेत्रबीजमिति प्रोक्तं ज्योतीरूपं न संशयः ।।६

ही होता है । मैंने संक्षेप में तुम्हें इस स्नान विधान को बता दिया, जिसमें सभी मनुष्यों के समस्त पापनाश पूर्वक सभी प्रकार के हित निहित हैं ।३०-३२

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में भीष्म व्यास संवाद
वर्णन नामक एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९९!

अध्याय २००

सौरधर्म का वर्णन

भीष्म ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप ने पापनाशक उस स्नान विधान को बता दिया, परन्तु मैं उनके अर्चन विधान को भी जानना चाहता हूँ, इसलिए कि मुझे उसके पूजन की इच्छा हो रही है, अतः आप उसे भी बतायें ।१

व्यास बोले—मैं तुम्हें आदित्य पूजन का विधान बता रहा हूँ ! किसी सौन्दर्य सम्पन्न एवं प्रसन्नचित्त होने वाले विजय स्थान में मन्त्र द्वारा अपने शरीर को अभिमंत्रित कर भद्रासन पर पूर्वाभिमुख स्थित हो साधक को भास्कर की पूजा करनी चाहिए ।२-३। अस्त्रबीज के मंत्र से मनुष्य को प्रथम अंगन्यास करना चाहिए जिसमें हाँथ के अंगूठे से प्रारम्भ कर उसकी कनिष्ठिका अंगुली तक स्पर्श करना 'करंन्यास' कहलाता है । उसी प्रकार हृदय आदि से प्रारम्भ कर 'अस्त्रायफट्' तक क्रमशः विन्यास करना चाहिए । वीर ! मंत्रवेत्ता नेत्र तथा हथेली का न्यास करें । यवर्ग में चौथे अक्षर (व) पर बिंदु लगाने से (वृ) उसे ज्योतिरूप नेत्रबीज बताया गया है ।४-६। वीर ! पश्चात् सूर्य के कवच रूप तीनों अक्षरों के

पश्चात् त्र्यक्षरं सूर्यं कवचं विन्यसेद्बुधः। कथितं तन्मदे वीर मन्त्रराजेति पृच्छतः ॥७
प्राणायामं ततः कुर्यात्प्रथमं बीजमुद्गिरन् । शेषक्रमेण हुत्वायं विरजे भीष्मशक्तितः ॥८
त्रिभिरेव ततो घोरैरात्मशुद्धिः कृता भवेत् । इति संशोध्य चात्मानं सूर्ये सर्वान्तिकं न्यसेत् ॥९
हृदये हृदयं न्यस्य शिरः शिरसि विन्यसेत् । एकविंशतिमातृकाया अक्षरं यत्प्रकीर्तितम् ॥१०
हृद्बीजमिति विख्यातं ब्रह्मस्थानमनौपमम् । शिरसार्कस्य पूजा तु लोकेऽर्कः प्रतिकथ्यते ॥११
शिखायां तु शिखां न्यस्येच्छरीरे कवचं न्यसेत् । नेत्रयोर्विन्यसेन्नेत्रं करयोरस्त्रमेव च ॥१२
महाव्याहृतयो राजंस्तथारज्वालिनी शिखा । हकारश्च रकारश्च कुकारो बिन्दुना सह ॥१३
एतेषां समदाश्चैव कवचं परिकथ्यते । नेत्रयोर्विन्यसेन्नेत्रं करयोरस्त्रमेव च ॥१४
एवमङ्गानि विन्यस्य नासौ केनापि बाध्यते । शत्रवो मित्रतां यान्ति अलाभे लाभमाप्नुयात् ॥१५
आत्मानं भास्करं ज्ञात्वा यथोक्तं तत्त्वदर्शिभिः । ततस्तु पूजयेद्भानुं स्थण्डिले विधिवत्पुनः ॥१६
कृत्वा तु दक्षिणे पार्श्वे दिव्यपुष्पकरंडकम् । कृत्वा सुशोभिते वामे ताम्रपूर्णेन वारिणा ॥१७
अस्त्रेण क्षालितां पूर्णां शेषं मन्त्रैर्जलैस्तथा । अभिमन्त्र्य ततः स्थाप्य कवचेनावगुण्ठिताम् ॥१८
स्थण्डिले चैव द्रव्याणि पूजार्थं कल्पितानि तु । सर्वाणि प्रोक्षयेद्विद्वानर्घ्यपात्रं जलेन तु ॥
ततो मन्त्रं जपेत्पश्चादेकचित्तेन मन्त्रवित् ॥१९

भीष्म उवाच

पुराणसहितैर्मन्त्रैर्यो विधिः कथितो बुधैः ॥२०

न्यास करे, यही मंत्र का रहस्य है उसे मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ ।७। पुनः प्रथमबीज के उच्चारण पूर्वक प्राणायाम करके हवन करे । भीष्म ! इस प्रकार इस भीषण के तीनबार उपक्रम करने से आत्म शुद्धि होती है । इस भांति शुद्ध होकर अपने को सूर्य के लिए अर्पित करे । हृदय में हृदय एवं शिर में शिर के न्यास पूर्वक, इस हृद्बीज का प्रयोग करे, जिसमें इक्कीस मातृकाओं के अक्षर को हृद्बीज बताया गया है, वही अनुपम ब्रह्मस्थान है । लोक में सूर्य का शिरसा पूजन सूर्य के ही लिए बताया गया है । शिखा में शिखा, शरीर में कवच, नेत्र में नेत्र, एवं हाथों में अस्त्र के न्यास का विधान बताया गया है ।८-१२। राजन् ! र को ज्वाला वाली शिखा रूप बताया गया है, अतः हकार, रकार तथा कुकार विन्दु समेत महाव्याहृतियाँ हैं । इन्हीं के समय को कवच कहते हैं। कवच के धारण में नेत्र में नेत्र, हाथों में अस्त्र का न्यास कियाजाता है। इस प्रकार अंगों के न्यास करने से किसी प्रकार की बाधा का सम्भव नहीं होता है—शत्रु मित्र हो जाते हैं, अलाभ में लाभ की सम्भावना होती है—तत्वदर्शियों के कथनानुसार अपने को भास्कर समझकर भूमि में विधान पूर्वक सूर्य की आराधना करे।१३-१६। दाहिनी ओर पुष्प करंडक (पुष्प रखने का वंश-पात्र) को और बाँयें ओर जल पूर्ण ताँबें के अर्घ्यपात्र में रख कर अस्त्र (मंत्र) द्वारा उसे भूमि की शुद्धि करके शेष मंत्र एवं जल से अभिमंत्रित किए कवच द्वारा एक रेखांकित वृत्त बनाकर उस भूमि में रखी हुई पूजन-सामग्री को उस अर्घ्य पात्र के जल से प्रक्षालन (शुद्ध) करके पश्चात् वह मंत्र वेत्ता तन्मय होकर जप प्रारम्भ करें।१७-१९

भीष्म ने कहा—पुराण समेत मंत्रों द्वारा उस विधान को जिन विद्वानों ने बताया था, मैं ब्राह्मण

स मया विदितः कृत्स्नः कथितो नैकशो द्विजैः । वेदोक्तैर्विविधैर्मन्त्रैर्यथा सम्पूज्यते रविः ॥२१
तथा मे ब्रूहि सकलं वैदिकं विधिसत्तमम् ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
सौरधर्मे द्विशततमोऽध्यायः ।२००।

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यमण्डलदेवतार्चनविधिवर्णनम्

व्यास उवाच

अथ त्वां कथयिष्येऽहं संवादं धर्मवर्द्धनम् । सुरज्येष्ठस्य देवस्य केशवस्य च भारत ॥१
मनोवत्यां सुरज्येष्ठं सुखासीनं चतुर्मुखम् । प्रणम्य शिरसा विष्णुरिदं वचनमब्रवीत् ॥२

विष्णुरुवाच

भगवन्देवदेवेश सुरज्येष्ठ चतुर्मुख । आराधनविधिं ब्रूहि भास्करस्य महात्मनः ॥३
कमाराधयेद्भानुं मण्डलस्थं दिवस्पतिम् । ब्रूहि मेऽत्र गणं देवं येनाहं पूजये विभुम् ॥४
साधु साधु महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि भूधर । शृणु चैकमना देव भास्कराराधने विधिम् ॥५
खषोल्कं निर्मलं देवं पूजयित्वा विभावसुम् । पूर्वे मध्ये तथाग्नेय्यां विरूपाक्षे प्रभञ्जने ॥६

विद्वानों से उसे कई बार सुन चुका हूँ । अब वेदोक्त मंत्रों द्वारा जिस प्रकार सूर्य की पूजा की जाती है उस वैदिक उत्तम विधान को मुझे बताने की कृपा करें ।२०-२२

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन
नामक दो सौवाँ अध्याय समाप्त ।२००।

अध्याय २०१

सूर्यमण्डलदेवतार्चन विधि का वर्णन

व्यास बोले—भारत ! मैं तुम्हें (इस विषय का) एक धार्मिक संवाद, जिसे देवश्रेष्ठ भगवान् केशव देव एवं ब्रह्मा के संबंध का बताया जाता है, सुना रहा हूँ । एक समय मनोवती में सुखासीन एवं देवश्रेष्ठ ब्रह्मा से विष्णु ने शिर से प्रणाम करते हुए यह कहा— ।१-२

विष्णु ने कहा—भगवान्, देवाधिदेव, देवश्रेष्ठ तथा चर्तुमुख ! (आप) महात्मा भास्कर के आराधन-विधान को बताने की कृपा करें ।३। मण्डल स्थायी एवं दिनाधिनाथ सूर्य की आराधना किस भाँति की जाती है, तथा गणदेव का भी वर्णन कीजिए, क्योंकि मैं उस विभु की पूजा करना चाहता हूँ ।४। महाबाहो ! साधु-साधु ! धरणिधर ! आप ने बहुत उत्तम प्रश्न किया है । देव ! मैं भास्कर की आराधना का विधान बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।५। खषोल्क एवं निर्मल भास्कर देव की अर्चना के उपरांत पूर्व, मध्य, आग्नेय, पश्चिम, एवं वायव्य दिशाओं में क्रमशः ईशान तक तथा हृदय में बीज मंत्र का न्यास

क्रमेण यावदीशानीं हृदि बीजेन विन्यसेत् । खषोल्कासनमेतत्तु विन्यस्तं मानवोत्तमैः ॥७
ततस्तयोपरिष्टात्तु हृदयेन तु कञ्चुकम् । सप्तावरणसंयुक्तमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥८
केसरालम्बदेवत्वं पञ्चवर्णं महाद्भुतम् । परीक्षाभूमिविधिवच्छास्त्रोक्तविधिना कृतम् ॥९
दीप्तादिपूर्वादारभ्य यावदीशानगोचरम् । न्यसेच्छक्त्यष्टकं मन्त्री मध्यतः सर्वतोमुखीम् ॥१०
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा । अमोघा विश्रुता चैव नवमी सर्वतोमुखी ॥११
तत आवाहयेद्भानुं स्थापयेत्कर्णिकोपरि । उपस्थानं तु वै कृत्वा मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥१२
उदुत्यं जातवेदसमिति मन्त्रः प्रकीर्तितः । अग्निं दूतेन मन्त्रेण अनेन विश्वसुव्रत ॥१३
आकृष्णेन रजसा मन्त्रेणानेन चार्चयेत् । हंसः शुचिषदिति च मन्त्रेणार्कं प्रपूजयेत् ॥१४
अतप्तं तारकं देवी दीप्तानेन प्रपूजयेत् । अदृश्रमस्यकेतवः सूक्ष्मां देवीं समर्चयेत् ॥१५
तरणिर्विश्वदर्शेति अनेन सततं जयम् । प्रत्यङ्देवानां विशेति भद्रां देवीं समर्चयेत् ॥१६
विभूतिमर्चयेन्नित्यं येनापावकचक्षसा । विद्यामेषीति मन्त्रेण ह्यनेन विमलां सदा ॥१७
अमोघां पूजयेन्नित्यं मन्त्रेणानेन सुव्रत । नवमीं पूजयेद्देवीं सततं सर्वतोमुखीम् ॥१८
मन्त्रणानेन कृष्णस्य उद्वयन्तमितीह च । उद्यनद्यमित्रहोमं प्रथममक्षरं व्रजेत् ॥१९
द्वितीयं पूजयेत्कृष्णं शुक्लेषु हरिमाहवे । उदगादयमादित्यो अनेनापि तृतीयकम् ॥२०
तत्सवितुर्वरेण्येति चतुर्थं परिकीर्तितम् । महितोमहितोयेति पञ्चमं परिकीर्तयेत् ॥२१

करे। उत्तम मनुष्यों द्वारा किये गये विन्यस्त अंग खषोल्क देव (सूर्य) के आसन बताये गयें हैं।६-७। पश्चात् उनके आसन पर सात आवरण समेत अष्टदल (कमल) जिसमें कर्णिका सौन्दर्य पूर्ण बनी हो, शास्त्रोक्त विधान द्वारा परीक्षा की हुई भूमि में पाँच रंग के बने हुये उस महान् एवं अद्भुत स्थान पर स्थापित करके उसके केसर भाग में देव का अधिष्ठान बनाये। पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर ईशान पर्वत क्रमशः दीप्त आदि सूर्य शक्ति के नाम एवं रूपान्तर की स्थापना उस अष्टदल में करके उसके मध्य में उस मंत्रवेत्ता को चाहिए कि सर्वतोमुखी का स्थापन करे। दीक्षा, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विश्रुता एवं सर्वतोमुखी के आवाहन के उपरांत उस कर्णिका के ऊपर सूर्य का आवाहन एवं पूजन करके सुव्रत ! 'उदुत्यं जातवेदसम्' इस मंत्र से उनका उपस्थापन करें। विश्व सुव्रत ! 'अग्नि' दूतेन, और 'आकृष्णेन रजसा' इन मंत्रों से उनकी अर्चना तथा 'हंस शुचिषदिति' मंत्र से उनका पूजन करके 'अतप्तं तारकं देवी' इस मंत्र से दीक्षा देवी, 'अदृश्रमस्य केतवः' इस मंत्र से सूक्ष्मा देवी, 'तरणिर्विश्व दर्शेति' मंत्र से जया देवी, 'प्रत्यङ् देवानां विशेति' से भद्रा देवी, 'सना पावक चक्षुसा' इस मंत्र से विभूति देवी, 'विद्यामेषीति' मंत्र द्वारा विमला देवी, तथा सुव्रत ! इसी मंत्र द्वारा अमोघा एवं नवीं सर्वतोमुखी देवी का आवाहन पूजन करे।८-१८। उपरांत 'कृष्णस्य उद्वयंतमितीह च' तथा 'उद्यनद्यमित्र होमं' इस मंत्र द्वारा प्रथम आवरण, 'कृष्णं शुक्लेषु हरिमाहवे' इस मंत्र द्वारा दूसरे आवरण, 'उदगादयमादित्यः' इस मंत्र द्वारा तीसरे आवरण, 'तत्सवितुर्वरेण्यं' इस मंत्र द्वारा चौथे आवरण, 'महितो महितोये' ति इस मंत्र द्वारा पाँचवें आवरण, 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' इस मंत्र द्वारा छठें आवरण, एवं देवसत्तम ! 'सविता

हिरण्यगर्भः समवर्तता षष्ठं बीजं प्रकीर्तितम् । सविता पश्चात्पुरस्तात्सप्तमं देवसत्तम ॥२२
एवं बीजानि विन्यस्य आदित्यं स्थापयेद्द्विजः । आदित्यं स्थापयेद्ध्याने सर्वेषां पूजयेद्बुधः ॥२३
बाह्यतो देवशार्दूल इन्द्रादीनां समन्ततः । रक्तवर्णं महातेजं सितपद्मोपरि स्थितम् ॥२४
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् । द्विभुजं चैकचक्रं च सौम्यं पद्मधनुष्करम् ॥२५
वर्तुलं तेन बिम्बेन मध्यस्थमतितेजसम् । आदित्यस्य त्विदं रूपं सर्वलोकेषु पूजितम् ॥२६
ध्यात्वा तम्पूजयेन्नित्यं स्थण्डिलं मण्डलाश्रितम् ॥२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु सूर्यमण्डलदेवतार्चनविधिवर्णनं नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०१।

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

आदित्यपूजाविधिवर्णनम्

विष्णुरुवाच

मण्डलस्थं सुरश्रेष्ठ विधिना येन भास्करम् । पूजयेन्मानवो भक्त्या स विधिः कथ्यतां मम ॥१
पूजयेद्विधिना येन भास्करं पद्मसम्भवम् । मूर्तिस्थं सर्वगं देवं पूजितं ससुरासुरैः ॥२

ब्रह्मोवाच

साधु कृष्ण महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि सुव्रत । शृणु चैकमनाः पूर्वं मूर्तिस्थं येन पूजयेत् ॥३

पश्चात्पुरस्तात्' मंत्र द्वारा सातवें आवरण की पूजा करें। इस भाँति बीज मंत्र के न्यास पूर्वक ब्राह्मण आदित्य की स्थापना करे। विद्वान् को चाहिए कि सभी देवताओं के ध्यान-पूजन में आदित्य का स्थापन पूजन अवश्य करें।१९-२३। देवशार्दूल ! बाह्य भाग में चारों ओर इन्द्रादि देवताओं का आवाहन पूजन करना चाहिए। रक्त वर्ण, महातेजस्वी, उज्ज्वल कमल पर स्थित, समस्त लक्षणों समेत, एवं समस्त अलंकारों से अलंकृत उस आदित्य के रूप का, जिसमें दो भुजाएँ, एक चक्र हो तथा, सौम्याकृति, कमल-धनुष लिए, वर्तुलाकार (गोलाकार) बिम्ब के मध्य में स्थित हो, ध्यान एवं पूजन नित्य भूमि में मण्डल बनाकर करना चाहिए। क्योंकि भास्कर का यही रूप सर्व लोकों में पूजित होता है।२४-२७

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सूर्य मण्डल देवतार्चन विधि वर्णन नामक दो सौ एक अध्याय समाप्त।२०१।

अध्याय २०२

आदित्यपूजा की विधि का वर्णन

विष्णु बोले—हे सुरश्रेष्ठ ! भक्तिपूर्वक मण्डलस्थित भास्कर की पूजा जिस विधान द्वारा मनुष्य करते हैं, वह मुझे बताने की कृपा करें।१। और जिस विधान द्वारा कमलोद्भूत भास्कर की पूजा, जो मूर्ति में स्थित, एवं सर्वगामी देव हैं, सुर असुर करते हैं, उसे भी बताने की कृपा करें।२

ब्रह्मा बोले—कृष्ण, महाबाहो ! साधु, सुव्रत ! तुमने अत्युत्तम प्रश्न किया है, जिस विधान द्वारा

इषे त्वेति च मन्त्रेण उत्तमाङ्गं तवार्चयेत् । अग्निमीळेति मन्त्रेण पूजयेद्दक्षिणे करे ॥४
अग्र आयाहि मन्त्रेण पादौ देवस्य पूजयेत् । आजिघ्रेति च मन्त्रेण पूजयेत्पुष्पमालया ॥५
योगयोगेति मन्त्रेण मुक्तपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् । समुद्रं गच्छ यत्प्रोक्तमनेन स्नापयेद्रविम् ॥६
इमं मे गङ्गेति यत्प्रोक्तमनेनापि च भूधर । समुद्रज्येति मन्त्रेण कषायैः परिरूषयेत् ॥७
स्नापयेत्पयसा कृष्ण आप्यायस्वेति मन्त्रतः । दधिक्राव्णेति वै दध्ना स्नापयेद्दिवि वद्रविम् ॥८
तेजोऽसि शुक्रमिति च घृतेन स्नपनं परम् । या औषधीति मन्त्रेण स्नानमोषधिभिः स्मृतम् ॥९
उद्वर्तयेत्ततो भानुं द्विपदाभिः सुराधिप । मानस्तोकेति मन्त्रेण युगपत्स्नानमाचरेत् ॥१०
विष्णोरराटमन्त्रेण स्नापयेद्गन्धवारिणा । सौवर्णेन तु मन्त्रेण अर्घ्यं पाद्यं निवेदयेत् ॥११
इदं विष्णुर्विचक्रमे मन्त्रेणार्घ्यं प्रदापयेत् । वेदोऽसीति हि मन्त्रेण उपवीतं प्रदापयेत् ॥१२
बृहस्पतेति मन्त्रेण दद्याद्वस्त्राणि भानवे । येन श्रियं प्रकुर्वाणां पुष्पमालां प्रयोजयेत् ॥१३
धूरसीति च मन्त्रेण धूपं दद्यात्सगुग्गुलम् । समिद्धोऽञ्जनमन्त्रेण अञ्जनं तु प्रयच्छति ॥१४
युञ्जानीति च मन्त्रेण भानुं रोचनयार्चयेत् । आरक्तकं च वै कुर्याद्दीर्घायुष्ट्वाय वै बुधः ॥१५
सहस्रशीर्षा पुरुषो रविं शिरसि पूजयेत् । सम्भावयेतिमन्त्रेण पद्मनेत्रे परामृशेत् ॥१६
विश्वतश्चक्षुरित्येवं भानोर्देहं समालभेत् । श्रीश्च ते लक्ष्मीश्चेति मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे
आदित्यपूजाविधिवर्णनं नाम द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०२।

मूर्तिस्थ (सूर्य) की पूजा होती है, मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! 'इषे त्वे' ति मंत्र द्वारा (सूर्य) के उत्तमांगों की पूजा सदैव करें, उसी भाँति 'अग्नि मीळेऽति मंत्र द्वारा दाहिने हाथ, एवं 'अग्रआयाहि' मंत्र द्वारा सूर्य के चरण की पूजा करके 'आजिघ्रेति मंत्र द्वारा पुष्प माला अर्पित करे ।३-५। 'योग योगे ति' मंत्र द्वारा मुक्त पुष्पांजलि प्रदान पूर्वक 'समुद्रं गच्छ यत्प्रोक्तमि ति मंत्र द्वारा सूर्य के स्नान कराये तथा भूधर ! 'इमं मे गङ्गे' इसे भी उच्चारण करता रहे। 'समुद्रज्ये' ति मंत्र द्वारा कषाय लेप करके पुनः कृष्ण ! 'आप्यायस्वेति मंत्र द्वारा पयस्नान, 'दीर्घ क्राव्णे, ति मंत्र द्वारा दही, 'तेजोऽसि शुक्रमि ति' मंत्र द्वारा घी, तथा 'या औषधी' ति मंत्र द्वारा सूर्य को औषधि स्नान कराये ।६-९। सुराधिप ! 'द्विपदाभि' इस मंत्र से सूर्य का उद्वर्तन (अंगों को मलना) करने के अनन्तर 'मानस्तोके' ति मंत्र द्वारा सर्वमिश्रित स्नान कराये । पश्चात् 'विष्णोरराटे' ति मंत्र द्वारा गन्ध मिश्रित जल से स्नान कराकर 'सौवर्णेने' ति मंत्र द्वारा उन्हें अर्घ्य पाद्य निवेदित करे ।१०-११। 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इस मंत्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने के उपरांत 'वेदोऽसी' ति मंत्र द्वारा यज्ञोपवीत प्रदान पूर्वक 'वृहस्पते' ति मंत्र द्वारा उन्हें वस्त्र समर्पित करे । 'येनश्रिय' प्रकुर्वाणे' ति मंत्र मंत्र द्वारा पुष्प'-माला, 'धूरसी' ति मंत्र द्वारा गुग्गुल की धूप, 'समिद्धोंजम' ति मंत्र द्वारा अंजन, 'युज्जानी' ति मंत्र और रोचन द्वारा उनके तिलक लगाये । विद्वान् को चाहिए कि शिर से पैर तक उन्हें रक्तवर्णमय सौन्दर्यपूर्ण करें क्योंकि इससे दीर्घजीवन प्राप्त होता है।१२-१५। 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इस मंत्र द्वारा उनके शिर स्पर्श पूजन, 'संभावये' ति मंत्र द्वारा कमल नेत्र स्पर्श, तथा 'विश्वतश्चक्षुरि' ति मंत्र द्वारा भानु का देहालम्भन करके श्रीश्चते लक्ष्मीश्चे' ति मंत्र द्वारा पूजन करें।१६-१७

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में आदित्य पूजा विधि वर्णन
नामक दो सौ दो अध्याय समाप्त ।२०२।

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

भास्कराराधनविधिवर्णनम्

विष्णुरुवाच

व्योमपूजाविधिं ब्रूहि समासाच्चतुरानन । अष्टशृङ्गं कथं व्योम पूजयेद्भास्करस्य तु ॥१

ब्रह्मोवाच

व्योमपूजाविधिं कृष्ण निबोध गदतो मम । अष्टभृङ्गं यथा व्योम पूजयन्ति मनीषिणः ॥२
सौवर्णं राजतं ताम्रं कृत्वा चाश्ममयं तथा । अष्टभृङ्गं महाबाहो अनेन विधिनार्चयेत् ॥३
प्रथमं पूजयेद्भानुं मध्ये मन्त्रेण सुव्रत । महिषा दो महायेति नानापुष्पकदम्बकैः ॥४
त्रातारमिन्द्रं मन्त्रेण सर्वभृङ्गं सदार्चयेत् । उदीरतामवर इत्यथवानेन पूजयेत् ॥५
आयं गौरिति मन्त्रेण नैऋतं भृङ्गमर्चयेत् । रक्षोहणं वाजिनं वा पूजयेदसुरान्तकम् ॥६
इन्द्रसोमान्तपतये ह्यथ वानेन पूजयेत् । अभित्वा शूर नो नुम ऐशानं भृङ्गमर्चयेत् ॥७
एवं भानुं च परितः पूजयन्ति सदाच्युत । येनेदं भूतमिति वै अथवानेन प्रपूजयेत् ॥८
नमोऽस्तु सर्वपापेभ्यो व्योमपीठं सदार्चयेत् । ते नराः सततं कामान्प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥९
त्वमेको रुद्राणां वसूनां पूर्वाह्णे तेन पूजयेत् । तद्विष्णोः परमं पदं हंसः शुचिषदिति वै अपराह्णे सदार्चयेत् ॥१०

अध्याय २०३

सूर्याराधन विधि का वर्णन

विष्णु ने कहा—हे चतुरानन ! भास्कर के अष्टभृंग वाले व्योम की पूजा किस विधान द्वारा होती है, उसे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करे ।१

ब्रह्मा बोले—कृष्ण ! मैं तुम्हें व्योम-पूजा विधान जिस विधान द्वारा मनीषी गण अष्टभृंग वाले व्योम की पूजा करते हैं, बता रहा हूँ, सुनो ! ।२। महाबाहो ! सुवर्ण, चाँदी, ताँबे अथवा पत्थर के द्वारा अष्टभृंग वाले उस व्योम की रचना करके प्रथम उसके मध्य भाग में सूर्य की पूजा करे । पश्चात् 'महिषा दो महाय' एवं 'त्रातारमिन्द्र' इन मंत्रों द्वारा सब शृंगों की सदैव अर्चना करे अथवा उस समय 'उदीरतामवर' इस मंत्र का उच्चारण करता रहे । पुनः 'आयंगौरि' ति मंत्र द्वारा नैऋत्य वाले शृंग, 'रक्षोहणं वाजिनं' या इन्द्र सोमांत पतये इस मंत्र द्वारा असुरांतक की पूजा के उपरांत 'अभित्वा शूर नो नुम' इस मंत्र द्वारा ऐशान भृंग की पूजा करें ।३-७। अच्युत ! इस प्रकार चारों ओर से 'येनेदं भूतमि' ति मंत्र द्वारा सूर्य की पूजा के अनन्तर 'नमोऽस्तु सर्वपापेभ्यः मंत्र द्वारा व्योमपीठ की सदैव अर्चना करनी चाहिए क्योंकि इस भाँति करने वाले मनुष्यों की कामनाएँ निरन्तर सफल होती रहती हैं इसमें संदेह नहीं ।८-९। 'त्वमेको रुद्राणां वसूनां' इस मंत्र द्वारा पूर्वाह्न और 'तद्विष्णोः परमं पदं हंसः शुचिषदिति' इस मंत्र द्वारा अपराह्ण में सदैव उनकी पूजा करे ।१०। सदस्पते ! इस प्रकार ग्रहों के साथ सूर्य की पूजा करने वाले मनुष्यों की

एवं भानुं ग्रहैः सार्धं पूजयन्ति सदस्पते । ते सर्वान्विविधान्कामान्प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥११
विमले वाससी दत्त्वा गुरवे सपवित्रके । उपानहौ तथा कृष्ण सौवर्णमङ्गुलीयकम् ॥१२
गन्धपुष्पाणि चित्राणि भक्ष्यभोज्यान्यनेकशः । अनेन विधिना यस्तु सोपवासोर्चयेद्रविम् ॥
बहुपुत्रो बहुधनः स नरो भव्यवान्भवेत् ॥१३
उत्तरे चायने यस्तु सोपवासोऽर्चयेद्रविम् । सोऽश्वमेधफलं विन्द्याद्बहुपुत्रश्च जायते ॥१४
कृत्वोपवासं विषुवे यस्तु पूजयते रविम् । बहुपुत्रो बहुधनो कीर्तिमांश्चापि जायते ॥१५
कृत्वोपवासं ग्रहणे विधिवच्चन्द्रसूर्ययोः । पूजयेद्भास्करं भक्त्या ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥१६
इति ते कथितो विष्णो भास्कराराधने विधिः । यं श्रुत्वा पुरुषो भक्त्या मम लोके महीयते ॥१७
पुनरेत्य महीं कृष्ण राजा भवति भूतले । बहुपुत्रो बहुधनः समरेष्वपराजितः ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे भास्कराराधनविधिवर्णनं नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०३।

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्योमार्चनविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि विधिं परमपूजितम् । रत्नव्योमप्रतिष्ठायां यथा भानुं प्रपूजयेत् ॥१

सभी कामनाएँ सफल होती हैं इसमें संदेह नहीं ।११। कृष्ण ! निर्मल एवं पवित्र दो वस्त्रों के प्रदान पूर्वक उन्हें उपानह (जूते) सुवर्ण की अंगूठी, गन्ध पुष्प एनं भाँति-भाँति के अनेक भक्ष्य पदार्थ प्रदान करने चाहिए । इस विधान द्वारा जो उपवास रह कर सूर्य की पूजा करता है, उसे बहुपुत्र एवं बहुधन की प्राप्ति पूर्वक सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।१२-१३। उत्तरायण सूर्य में उपवास रहकर जो इस विधान द्वारा उनकी पूजा करता है, उसे अश्वमेध के फल समेत अनके पुत्रों की प्राप्ति होती है ।१४। विषुव काल में जो उपवास रह कर सूर्य की आराधना करता है, उसे बहुत पुत्र, अनके प्रकार के धन, एवं कीर्ति की प्राप्ति होती है ।१५। चन्द्र-सूर्य के ग्रहण काल में उपवास रहकर भक्ति तथा विधान पूर्वक पूजा करने वाला ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है ।१६। कृष्ण ! मैंने इस प्रकार तुम्हें विष्णु के लिए बताये गये आराधना-विधान को बता दिया, जिसके भक्तिपूर्वक श्रवण करने से मनुष्य मेरे लोक की प्राप्ति करते हैं और पुनः कभी इस भूतल पर जन्म ग्रहण करने पर बहुत पुत्र, धन की प्राप्ति पूर्वक संग्राम में अजेय राजा होते है।१७-१८

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में भास्कराराधन विधि वर्णन नामक दो सौ तीन अध्याय समाप्त ।२०३।

अध्याय २०४

व्योमार्चन विधि वर्णन

सुमन्तु बोले—इसके उपरांत मैं तुम्हें व्योम की प्रतिष्ठा में, जिस विधान द्वारा सूर्य की पूजा की

अर्चयित्वा तु प्रकृतिं गन्धपुष्पाक्षतैर्विभो । सहोदकेनाञ्जलिना सहपुष्पाक्षतेन वा ॥२
आवाहयेन्महादेवं खषोल्कं भास्करं विभुम् । मन्त्रेण कुरुशार्दूल प्रत्यक्षीकरणाय वै ॥३
ॐ खषोल्कमावाहयामि ॐ भूर्भुवः स्वरों आदित्याराधने मन्त्रः ॥४
अभिमन्त्र्य भुवे मात्रं सावित्र्या च ऋचा विभो । आपो हिष्ठेति या प्रोक्ता पृथा सूर्यस्य सर्वदा ॥५
यथान्यायं तु संक्षाल्य पूरयेच्चान्यतो यतः । हिरण्यगर्भः समवर्ततेत्यनया क्षालयेद् बुधः ॥६
सविता पश्चातात्सविता ह्यनया पूरयेद्बुधः । इत्येवं पूरयित्वा तु वारिपुष्पाक्षतैर्बुधः ॥७
पात्रमौदुम्बरं गृह्य कृत्स्नं सूर्यस्य दर्शयेत् । उदुत्यं जातवेदसमनया व्योम्नि निक्षिपेत् ॥८
हंसः शुचिषदिति पाद्यं दद्याद्विचक्षणः । निर्वापयेच्च पयसा खषोल्कं स्नापयेत्ततः ॥९
अग्निस्तु सप्तभिर्वीर कीर्तितास्ताश्च कृत्स्नशः । आपो हिष्ठेति च क्रमात्तिसृभिः कुरुनन्दन ॥१०
हिरण्यवर्णेति क्रमाच्चतुर्भिश्च[१] नराधिप । अभिमन्त्र्योदकमृग्भिस्तिसृभिर्निक्षिपेन्नृप ॥११
भानोः प्रदक्षिणं कृत्वा कृणुष्वपाज इत्यपि । इत्यभूषु वाजिनं गिरः प्रथमा परिकीर्तिता ॥१२
पतिमिन्द्रस्तवाचाम द्वितीया परिकीर्तिता । पतिमिन्द्रस्तु शुद्धो न आगहि तृतीया परिकीर्तिता ॥१३
सिध्ये वृत्राणि जिघ्रे शगन्धैर्भानुं प्रपूजयेत् । अस्य वामस्येत्यनया अक्षतैः पूजयेद्रविम् ॥१४
सप्त युञ्जन्ति रथमनया पूजयेद्रविम् । पुष्पैर्भरतशार्दूल सततं तमनाशनम् ॥१५

जाती है, उस परम पूजित विधान को बता रहा हूँ। (सुनो) ।१। विभो ! गंध, पुष्प और अक्षतों द्वारा प्रतिमा की पूजा करके पुष्पाक्षत समेत उदकांजलि प्रदान करें।२। कुरुशार्दूल ! पुनः उन्हें प्रत्यक्ष करने वाले के लिए मंत्र द्वारा खषोल्क, विभु एवं महादेव भास्कर का आबाहन करें।३। ओं खषोल्क मावाह्यामि ओं भुभुवः स्वरों, यही मंत्र आदित्य की आराधना एवं आवाहन के लिए निश्चित है।४। विभो ! सावित्री ऋचा द्वारा 'भू' तथा 'आपोहिष्ठेति' मंत्र द्वारा सूर्य का सर्वदा आवाहन पूजन करना चाहिए।५। यथोचित इनकी शुद्धि एवं पूर्ति करके 'हिरण्यगर्भः समर्वताग्रे' इस मंत्र द्वारा प्रक्षालन करें।६। 'सविता पश्चातात्सविता' इस मंत्र द्वारा पुष्प, अक्षत समेत औदुम्बर (गूलर) के पात्र में जल रख करके सूर्य के सामने दर्शनार्थ रखे।७। और पुनः 'उदुत्यं जात वेदसम्' इस मंत्र द्वारा उस व्योम के ऊपर उस जल को डाल दे। 'हंसः शुचिवदि' ति मंत्र द्वारा पाद्य जल प्रदान करके पश्चात् खषोल्क को प्रथम दूध से तदनन्तर जल द्वारा स्नान कराये।८-९। वीर ! 'अग्निस्तु सप्तभिः' तथा कुरुनन्दन ! 'आपोहिष्टे' ति मंत्रों, एवं नराधिप ! 'हिरण्यवर्णे' ति आदि चार मंत्रों तथा तीनों ऋचाओं द्वारा उस जल को अभिमंत्रित कर पश्चात् उसे (व्योम पर) डाल देना चाहिए।१०-११। 'कृणुष्वपाजं' 'इत्यभूष वाजिनं गिरः इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक पहली प्रदक्षिणा 'पतिमिन्द्रस्तवाचाम, से दूसरी, 'प्रतिमिन्द्रस्तु शुद्धो न आगहि' से तीसरी प्रदक्षिणा संपन्न करे।१२-१३। 'सिध्ये वृत्राणि जिघ्हने' इस से गंध, 'अस्यवामस्ये' ति मंत्र द्वारा अक्षत सूर्य के लिए प्रदान करे। 'सप्त युंजंति रथम्' इससे उनका पूजन करना बताया गया है। भरतशार्दूल ! तमनाशक सूर्य की आराधना पुष्पों द्वारा करनी चाहिए

---

१. चतस्रादेशामावश्छान्दसः।

को ददर्श प्रथममनया धूपमाविशेत् । पाकः पृच्छाम्यनया चन्दनं प्रतिपादयेत् ॥१६
उद्दीप्यस्येत्यनया दीपं दद्याद्विभावसोः । अर्चित्वा कुङ्कुमं चैव शीर्षे क्षीरं तु मण्डलम् ॥१७
युक्ता मातासीत्यनया नैवेद्यं प्रतिपादयेत् । गौरीर्मिमायेति दद्यात्तया शुक्ले च वाससी ॥१८
तस्याः समुद्रेत्यनया उपवीतं निवेदयेत् । इति सम्पूज्य देवेशं ततः कुर्यात्परां स्तुतिम् ॥१९
ऋग्भिर्वै पञ्चभिस्तात शृणु चैकमनावृतः । उक्षाणं पृश्निरिति च प्रथमा परिकीर्तिता ॥२०
चत्वारि वागिति भवेद्द्वितीया परिकीर्तिता । इन्द्रं मित्रं तृतीया तु वराधिक्ये प्रकीर्तिता ॥२१
कृष्णं नियानं हि तथा चतुर्थी परिकीर्तिता । यो रत्नवाहीत्यनया किरीटं योजयेद्रवौ ॥२२
गतेहनामित्यनया अव्यङ्गं भास्करं न्यसेत् । इयमददाद्रभसमृणच्युतमिति ऋगादितः ॥२३
कृत्वा पूजां ततश्चर्ग्भिरष्टाभिरिति चाच्युत । देवस्य शक्तयोऽष्टौ च पूजयेद्विधिवत्क्रमात् ॥२४
इत्येष ते मयाख्यातः प्रतिमापूजने विधिः । य पुरोक्तो महाबाहो ब्रह्मणा विष्णवे तथा ॥२५
अनेन विधिना यस्तु सततं पूजयेद्रविम् । स प्राप्नोत्यखिलान्कामानिह लोके परत्र च ॥२६
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धनार्थी लभते धनम् । कन्यार्थी लभते कन्यां वेदार्थी वेदविद्भवेत् ॥२७
निष्कामः पूजयेद्यस्तु स मोक्षं प्राप्नुयान्नरः । अनेन विधिनापूज्य गतः सिद्धिं स वैष्णवः ॥२८
ब्रह्मादयास्तथा देवं पूजयित्वा विभावसुम् । अनेन विधिना पूज्य सन्तः सिद्धिं परां गताः ॥२९

इतिश्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे व्योमार्चनविधिवर्णनं
नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०४।

।१४-१५। 'को ददर्श प्रथमं इससे धूप, 'पाकः पृच्छामि' से चंदन, 'उद्दीप्यस्य, से दीप, सूर्य को प्रदान कर कुंकुम से उनके शिर को भूषित करके क्षीर का मण्डल करे । पुनः 'युक्ता मातासी' ति मंत्र द्वारा नैवेद्य, गौरी मि 'माये' ति मंत्र द्वारा दो शुभ्र वस्त्र 'तस्याः समुद्र' से यज्ञोपवीत अर्पितकर उनकी उत्तम स्तुति करें । तात् ! वह स्तुति पांच ऋचाओं द्वारा की जाती है—उक्षाणं पृश्निः' पहली, 'चत्वारिवागिति, दूसरी, 'इदं मित्रं' तीसरी, 'कृष्णंनियानं', चौथी, 'यो रत्न वाही' ति पांचवी ऋचा के उच्चारण पूर्वक उन्हें किरीट से भूषित करे ।१६-२२। 'गते हनामि इति मंत्र द्वारा उन्हें अव्यंग प्रदान करें । 'इयमददा द्रभमसृणच्युतमि, ति आदि आठ ऋचाओं द्वारा सूर्य की आठों शक्तियों का क्रमशः विधान पूर्वक पूजन करना चाहिए । महाबाहो ! प्रतिमापूजन के विधान, जिसे ब्रह्मा ने विष्णु के लिए कहा था, तुम्हें बता दिया गया । इस विधान द्वारा जो निरंतर सूर्य की पूजा करता है, उसकी लोक-परलोक संबंधी सभी कामनाएँ सफल होती रहती है और पुत्रार्थी 'पुत्र, धनार्थी धन, कन्यार्थी कन्या, एवं ज्ञानार्थी, वेदज्ञान की प्राप्ति करते हैं । निष्काम पूजन करने वाले मनुष्य मोक्ष प्राप्ति करते हैं । इसी विधान द्वारा पूजन कर वैष्णव ने सिद्धि प्राप्त किया है तथा इसी विधान द्वारा ब्रह्मादि देवों ने भी सूर्य की पूजा कर उत्तम सिद्धि की प्राप्ति की है ।२३-२९

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में व्योमार्चन विधिवर्णन
नामक दो सौ चौथा अध्याय समाप्त ।२०४।

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

महादेवार्चनविधिवर्णनम्

व्यास उवाच

पुनर्निबोध मे भीष्म गदतः परमं विधिम् । येन पूजयते नित्यं महादेवं दिवाकरम् ॥१
प्रभूतं निर्मलं तेज आराध्य परमं सुखम् । पूर्वमन्तस्तथाग्नेय्यां नैर्ऋत्यां पवनालये ॥२
क्रमेण यावदीशानं हृदि बीजं च विन्यसेत् । भास्करासनमेतत्तु न्यस्तव्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥३
उपरिष्टात्ततस्तस्य हृदयेन तु पंकजम् । अष्टपत्रं केशरालं पंचवर्णं सकेशरम् ॥४
दीप्तादिपूर्वमारभ्य आमहादेवगोचरम् । शक्त्यष्टकं न्यसेन्मन्त्रैरादितः सर्वतोमुखीम् ॥५
अबीजैः केसराग्रेषु क्रमेणैव च पूजयेत् । ततस्त्वावाहयेद्भानुं स्थापयेत्कर्णिकोपरि ॥६
तस्योपहृत्य तं चान्यं वेदितव्यं खपुष्करम् । तेनैवावाहनं चार्घ्यं स्थापनं चार्घमेव च ॥७
पाद्यमाचमनं स्नानं वस्त्रगन्धादिभूषणम् । विधिना वीरपुष्पाणि नैवेद्यं धूपमेव च ॥८
कर्तव्यं श्रद्धया भक्त्या एवं तुष्यति भास्करः । महापातकिनोऽप्याशु लभन्ते चिन्तितं फलम् ॥९
आदित्यं पूजयित्वा तु पश्चादंगानि पूजयेत् । दीप्तायां हृदयं न्यस्य भवान्यां शिरसो न्यसेत् ॥१०

अध्याय २०५

महादेव की पूजा विधि

व्यास बोले—भीष्म ! उस परमोत्तम विधान को जिसके द्वारा देवश्रेष्ठ भास्कर देव की पूजा होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! ।१। उस प्रचण्ड एवं निर्मल तेजपुञ्ज की आराधना करने से अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है । पूर्व, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य इस भाँति क्रमशः ईशान पर्यंत बीज मंत्र द्वारा हृदयन्यास करे । क्योंकि तत्त्वदर्शियों ने इसी न्यास को भास्कर का आसन बताया है ।२-३। उसके ऊपर अष्टदल वाला कमल केशर समेत पाँच रंग की रेखाओं से सुशोभित भूमि पर स्थापित करके उसमें पूर्व की ओर से दीप्त आदि से आरम्भ कर सूर्य तक की सभी देव शक्तियों के आवाहन और पूजन करे । उसमें सर्वतोमुखी नामक देवी मध्य में प्रवाहित होती है । बीज मंत्र से पृथक् मंत्र द्वारा केशर कर्णिकाओं में क्रमशः इनके आवाहन पूजन के अनन्तर उसी कर्णिका के ऊपर सूर्य को स्थापित करे ।४-६। उनके आवाहन, पूजन, एवं अर्घ्य प्रदान खषोल्क मंत्र द्वारा करना बताया गया है । उसी प्रकार भक्तिपूर्वक पाद्य (पैर शुद्धि के जल), आचमन, स्नान, वस्त्र, गंध, भूषण, पुष्प, नैवेद्य, धूप इन्हें विधान द्वारा श्रद्धालु होकर प्रदान करने से भास्कर प्रसन्न होते हैं, और इसके पूजन द्वारा महापातक करने वाले की भी सभी कामनाएँ शीघ्र सफल होती है ।७-९। पहले सूर्य की पूजा करके पश्चात् उनके अगों की पूजा करे जिसमें दीप्ता आदि के लिए हृदयन्यास और भवानी के लिए शिरोन्यास करना चाहिए ।१०। दिशाओं में अस्त्र

दिग्विदिक्षु न्यसेदस्त्रमिन्द्रादि दिशोत्तरांतिकम् । कर्णिकायां न्यसेन्नेत्रं स्वबीजेन तु वार्चयेत् ॥११
पुष्पैर्गन्धैश्च धूपैश्च हृदयानि क्रमेण तु । पूजयित्वा तु विधिवद्गर्भं पश्चात्तु मन्त्रवित् ॥१२
बाह्यतः पूर्वतो मन्दं दक्षिणेन बुधं तथा । विषाणां पश्चिमे पूज्य उत्तरेण तु भार्गवम् ॥१३
आग्नेय्यां च कुजं पूज्य नैर्ऋत्यां भानुदेहजम् । वायव्यां पूजयेत्कृष्णमैशान्यां विकचं नृप ॥१४
इन्द्रादिलोकपालांश्च ततोऽष्टौ पूजयेद्बुधः । सुगन्धैर्विविधैः पुष्पैर्धूपैश्चैव मनोरमैः ॥१५
क्रमेण पूजयेद्भानु लोकपालैर्ग्रहैः सह । मन्त्रैः कुरुकुलश्रेष्ठ य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥१६
अनेन विधिना यत्र देवः सम्पूज्यते रविः । न चौराग्निभयं तत्र न चापि नरकाद्भयम् ॥१७
वर्षोपलविषादिभ्यो भयं तत्र न विद्यते । सुखमारोग्यमानन्दं सुभिक्षमचलां श्रियम् ॥१८
तेजोबिम्बांतमध्यस्थ आदित्यः परमार्थतः । यष्टव्यः साधकैर्नित्यं न रथो न च वाजिनः ॥१९
इत्येष विधिराख्यातो मया भीष्म तवाखिलः । येन पूजयते नित्यं महादेवो दिवाकरम् ॥२०
इत्थं पूज्य विवस्वन्तं हृद्बीजेन विसर्जयेत् । य एवं पूजयेद्भानुं स याति परमां गतिम् ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे भीष्मव्याससंवादे
महादेवार्चनविधिवर्णनं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०५।

एवं विदिशाओं में इन्द्रादि की स्थापना करके कर्णिका में बीजमंत्र द्वारा नेत्र की पूजा करे ।११। पश्चात् क्रमशः पुष्प, गंध, एवं पुष्पों द्वारा हृदय की पूजा करे इस प्रकार मंत्रवेत्ता विधान पूर्वक गर्भस्थित देवों कीपूजा करने के उपरांत वाह्य भोगों में स्थित देवों की पूजा करें—नृप ! पूरब की ओर शनि, दक्षिण की ओर बुध, पश्चिम में विषाण (गणेश), उत्तर में शुक्र, आग्नेय में आठों इन्द्रादि लोकपाल की पूजा विद्वानों को करनी चाहिए । कुरुकुलश्रेष्ठ ! अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्पों, एवं मनोरम धूपों द्वारा लोकपाल, एवं ग्रहों समेत सूर्य की पूजा अपने कल्याणार्थ अवश्य करनी चाहिए ।१२-१६। जिस प्रदेश में इस विधान द्वारा सूर्य की पूजा होती है, वहाँ चोरी, अग्नि एवं नरक का भय नहीं रहता है, तथा उसी भाँति वर्षा, बर्फ, (पत्थर) और विष आदि के भय भी नहीं होते हैं । प्रत्युत सुख, आरोग्य, आनन्द, सुभिक्ष, एवं अचल श्री (लक्ष्मी) प्राप्त होती है ।१७-१८। साधक को सदैव तेजबिम्ब के मध्य में आदित्य की ही परमार्थ के लिए नित्य पूजा करनी चाहिए, न रथ की और न घोड़े की ।१९। भीष्म ! मैंने तुम्हें वह समस्त विधान, जिसके द्वारा महादेव दिवाकर की नित्य पूजा होती है, बता दिया । इस प्रकार विवस्वान् (भानु) की पूजा के उपरांत हृद्बीज द्वारा विसर्जन करे । इस भाँति भानु की आराधना करने वाले उत्तम गति प्राप्त करें ।२०-२१

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में भीष्म व्यास संवाद में
महादेवार्चनविधि वर्णन नामक दो सौ पाँचवा अध्याय समाप्त ।२०५।

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजामाहात्म्यवर्णनम्

भीष्म उवाच

मन्त्रोद्धारं परं ब्रूहि मुद्राशक्तिसमन्वितम् । रूपवर्णसमं चैव पौराणिकमनुत्तमम् ॥१

व्यास उवाच

शृणु भीष्म महाबाहो यथा वक्ष्यामि तेऽनघ । पौराणिकानां मन्त्राणामुद्धारं वैदिकादृते ॥२
वर्णरेफसमायुक्तं विद्रुमेनैव भूषितम् । अन्तस्थानां हि अन्त्यं वै ब्रह्मदैवत्यमुच्यते ॥३
बिन्दुरेफसमायुक्तं दीर्घया मात्रया तथा । दीक्षाक्षरं समुद्दिष्टं द्वितीयं विष्णुदैवतम् ॥४
तृतीयं तु तथा प्रोक्तं सुविसर्गं जनाधिप । स तृतीयो बुधैः प्रोक्तो रुद्रदैवत एव हि ॥५
भास्करोऽयं महान्साक्षान्मन्त्रमूर्तिस्त्रिरक्षरः । दुर्लभः परमो गुह्यस्त्रिदेवो देवपूजितः ॥६
यस्त्वेवं जपते भक्त्या स याति परमां गतिम् । ततश्च मुद्रां वक्ष्यामि सान्निध्यकारणं परम् ॥७
पद्माकारौ करौ कृत्वा मध्ये श्लिष्टे तु मध्यमे । अङ्गुलिं क्षारयेत्तस्मिन्विनुद्रेति च सोच्यते ॥८
अनया बद्धया राजन्भास्करस्य प्रियो भवेत् । महाभयेषु सर्वेषु मातृवत्परिरक्षति ॥९
हृदयं तस्य विज्ञेयं यदक्षरवरं स्मृतम् । विद्रुमोपरि सञ्छन्नं हृद्गतं तद्गतं सदा ॥१०

अध्याय २०६

सूर्यपूजामाहात्म्यवर्णन

भीष्म ने कहा--मुद्रा शक्ति समेत उत्तम पौराणिक मन्त्रों के उद्धार जो उनके रूप वर्ण के अनुसार बताया गया है, मुझे बताने की कृपा करें।१

व्यास बोले--महाबाहो, भीष्म ! मैं तुम्हें पौराणिक मन्त्रों के उद्धार उचित ढंग से बता रहा हूँ उसमें वैदिक का कोई सम्बन्ध नहीं है, सुनो ! ।२। विद्रुम से विभूषित रेफ (र) वर्ण, अन्तस्थ (वर्णों) के सन्निकट रहने वाला ब्रह्म देव है, ऐसा बताया गया है।३। बिन्दु तथा दीर्घमात्रा के समेत (रां) वर्ण, यह दूसरा, विष्णु देव प्रधान दीक्षा का अक्षर कहा गया है। जनाधिप ! विसर्ग समेत (रः) तीसरा, जो रुद्रदेव प्रधान है विद्वानों द्वारा बताया गया है।४-५। इसी तीन (र रां रः) अक्षर रूपी शरीर वाले महात्मा भास्कर, जो दुर्लभ, परम गुह्य, त्रिदेव मय, एवं देवपूजित हैं, साक्षात् मंत्र मूर्ति है।६। जो भक्ति पूर्वक इस का जप करता है, उसे उत्तम गति की प्रप्ति होती है। अब तुम्हें सूर्य का सान्निध्य प्राप्त कराने वाली उत्तम मुद्राएँ बता रहा हूँ।७। कमल की भाँति दोनों हांथ की अंगुलियों को एकत्र कर मध्य भाग में दोनों मध्यमा अंगुली को संयुक्त करने और अंगुलियों को उसमें पृथक्-पृथक कर स्थित रखने, को विशिष्ट मुद्रा बताया गया है।८। राजन् ! इस मुद्रा से आबद्ध होने पर वह, सूर्य प्रिय हो जाता है, समस्त महाभय के उपस्थित होने पर वे माता की भाँति उसकी रक्षा करते हैं।९। उस श्रेष्ठ अक्षर को उनका हृदय जानना चाहिए। भारत ! विद्रुम के ऊपर संच्छन्न एवं उनके हृदयस्थल में स्थित उसे देवाधिदेव

शिरस्यर्कमिति प्रोक्तं देवदेवस्य भारत । महाव्याहृतयस्तिस्रस्तथारज्वालिनी शिखा ॥११
अष्टाक्षरा तु विद्येयमादित्यस्य महात्मनः । यः स्मरेत्साधकस्त्वेनं नासौ केनापि बाध्यते ॥१२
अकारेण समायुक्तं बिन्दुरेफसमन्वितम् । हकारमग्निदैवत्वं कवचं भास्करप्रियम् ॥१३
एकाक्षरमिदं प्रोक्तमभेद्यं यः स्मरेदिदम् । दुष्टानां चैव विघ्नानां नाशनं नात्र संशयः ॥१४
सविसर्गो रेफ इति अस्त्रमेकाक्षरं स्मृतम् । नाशयेद्दुष्टकर्माणि साधकस्य न संशयः ॥१५
सम्मुखौ तौ करौ कृत्वा श्लिष्टौ तु ग्रथिताङ्गुली । कनिष्ठानामिके योज्ये तर्जन्यौ मध्यमे तथा ॥१६
हृच्छिरः सशिखा चर्म मुद्रेयं व्योमसंज्ञिता । मुष्टिबद्धोच्छ्रितं कुर्यात्सव्यहस्तस्य तर्जनीम् ॥१७
मालशब्दकृतादिस्तु मुद्रा ह्यस्त्रस्य कीर्तिता । त्रासनी नाम विख्याता सर्वविघ्नक्षयङ्करी ॥१८
कर्णबिन्दुसमायुक्तं यं चतुर्थं महामते । भास्करस्य त्विदं नेत्रमग्निदैवतमुच्यते ॥१९
स्मरः स्यात्साधकेन्द्राणां दुरन्तो नाशने ध्रुवम् । मध्यमा तर्जनी चैव सव्यहस्तस्य चोच्छ्रितम् ॥२०
कनिष्ठानामिके कुञ्च्य अङ्गुष्ठेन ततः क्रमेत् । नेत्राभ्यां स्पर्शयेदेनां नेत्रमुद्रा प्रकीर्तिता ॥२१
गोवृषा नाम विख्याता दर्शयेद्दिव्यगोचरम् । रां दीप्तिरिं ततः सूक्ष्मारीं जया भीष्म उच्यते ॥२२
उमाह्वारूं विभूतिश्च विमला रैं प्रकीर्तिता । अघहा च महाबाहो विद्युता रौं प्रकीर्तिता ॥२३
गोवृषा नाम रं सर्ववीरभद्रकरी तथा । इत्येता बीजरूपास्तु कथिताश्चैव शक्तयः ॥२४
उत्तानौ तु करौ कृत्वा सव्याकुञ्च्य ततोऽङ्गुलीः । कुर्यादुपरि चांगुष्ठौ चालयेत पुनः पुनः ॥२५

(सूर्य) का 'शिरस्यर्क' बताया गया है उनकी ज्वालिनी शिखारूप 'र' आदि तीन महाव्याहृतियाँ एवं उन महात्मा आदित्य की 'अष्टाक्षरा' विद्या बतायी गयी है, जिसके स्मरण मात्र से साधक को किसी भाँति के कष्ट का अनुभव नहीं करना पड़ता है ।१०-१२। अकार, बिंदु-युक्त रेफ समेत हकार के प्रधान देव अग्नि हैं, यही (हूं) सूर्य के प्रिय कवच के नाम से ख्यात है ।१३। यह एकाक्षर सूर्य का अभेद्य कवच है, इसके स्मरण से दुष्टों एवं विघ्नों के नाश होते हैं, इसमें संदेह नहीं ।१४। विसर्ग समेत रेफ (रः) यही एकाक्षर अस्त्र के नाम से बताया गया है, यह साधक के दुष्टकर्मों का नाश करता है, इसमें संदेह नहीं ।१५। दोनों हाथों को अपने सम्मुख एक में संयुक्त कर उनकी अंगुलियों को जिसमें कनिष्ठा के साथ दोनों अनामिका, तर्जनी, मध्यमा मिली हों, आबद्ध करे, इस प्रकार शिरहीन, तथा शिखा समेत इस मुद्रा की व्योम संज्ञा प्रदान की गयी है । टेढ़ी मुट्ठी बाँधकर उसमें दाहिने हाथ की तर्जनी को उन्नत रखने से अस्त्र की मालमुद्रा बतायी गयी है और समस्त विघ्नों के नाश करने के कारण इसे त्रासनी भी कहते हैं ।१६-१८। महामते ! कर्ण बिन्दु समेत वह सूर्य का चौथा नेत्र कहा गया है, उसके अग्नि प्रधान देव हैं ।१९। जिस मुद्रा में यह दाहिने हाथ की तर्जनी एवं मध्यमा अंगुलियाँ उन्नत रहती हैं, उसे भी मुद्रा कहते हैं, जो साधकों के अरिष्ट नाश के लिए दुरोपगम है । जिसमें कनिष्ठा, अनामिका को आकुंचित कर केवल अंगुष्ठ मात्र से दोनों नेत्रों के स्पर्श किये जाते हैं, उसे 'नेत्र मुद्रा' बताया गया है ।२०-२१। रं का नाम गोवृषा है, उसके द्वारा देव दर्शन प्राप्त होते हैं । भीष्म ! रां दीक्षा, रिं सूक्ष्मा, रीं जया, रूं विभूति, रै विमला, तथा महाबाहो ! रौं अमोघा एवं विद्युता के रूप हैं ।२२-२३। इस प्रकार इन बीजरूप शक्तियों को बता दिया गया ।२४। दोनों हाथों को उत्तान कर दाहिने हाथ की अंगुलियों को आकुंचित कर पुनः ऊपर से दोनों अंगुष्ठों का

सर्वासां चैव शक्तीनामेता मुद्राः प्रदर्शयेत् । नाम्ना च विद्युता चैव नदन्ती सर्वतोमुखी ॥२६
नामान्येतानि शक्तीनां समासात्कथितानि तु । सबीजानि महाबाहो मया स्नेहेन भारत ॥२७
ग्रहाणां शृणु बीजानि रूपं च गदतो मम । सर्वत्र भं तथा खं च कञ्जकूतुहलोद्वह ॥२८
ॐकारा दीपिताः सर्वे नमस्कारान्तयोजिताः । पूजाकाले प्रयोक्तव्या जपकाले तथैव च ॥२९
होमकाले तु स्वाहान्तं मन्त्रं षट्कारसंयुतम् । सर्वे बिन्दुयुता भीष्म शिखा बिन्दुविभूषिताः ॥३०
सोमाद्याः केतुपर्यन्ता ग्रहा ह्येवं प्रकीर्तिताः । एता मुद्रा प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रदायिकाः ॥३१
सुमुखौ तु करौ कृत्वा श्लिष्टौ चैव प्रसारितौ । इयं मुद्रा नमस्कारे ग्रहसान्निध्यकारिका ॥३२
मन्त्रोद्धारस्तदाख्यातो रहस्यो दुर्लभो नृप । शृणुष्व रूपं देवानां ध्यानकाले ह्युपस्थिते ॥३३
जपावर्णं महातेजं श्वेतपद्मोपरिस्थितम् । सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वाभरणभूषितम् ॥३४
तथैकवक्त्रं द्विभुजं सोमपङ्कजकन्धरम् । मण्डलेन च रूपं तु मध्यस्थं रक्तवाससम् ॥३५
मार्तण्डस्य इदं रूपं शुचिः स्नातो जितेन्द्रियः । त्रिकालं यः स्मरेद्भीम एकचित्तो व्यवस्थितः ॥३६
सोऽचिराद्भवते लोके वित्तेन धनदोपम । मुच्यते सर्वभोगैस्तु तेजस्वी बलवान्भवेत् ॥३७
हृदयं चोत्तमाङ्गं च शिखा वै वक्रमेव च । रक्तवर्णा इमे श्यामाः सर्वाभरणभूषिताः ॥३८
वरदाऽभयहस्ताश्च ध्यातव्याः साधकेन तु । तडित्पुञ्जनिभं शस्त्रं रौद्रं चन्द्रकरालिनम् ॥३९

बार-बार संचालन करे यही मुद्रा समस्त शक्तियों के लिए प्रदर्शित करना चाहिए । भारत ! महाबाहो ! इस प्रकार मैंने समस्त शक्तियों को, जिनके दीप्ता आदि नाम पहले कहे गये हैं बीजों समेत स्नेह पूर्वक तुम्हें बता दिया ।२५-२७। अब ग्रहों के बीजों बता रहा हूँ सुनो ! ब्रह्मकुतूहलोद्वह ! ग्रहों के बीज में सर्वत्र भं, और खं को ओकार पूर्वक उच्चारण कर अन्त में नमः शब्द का प्रयोग करता रहे, चाहे वह पूजा समय हो या जपकाल । हवन के समय में अंत में स्वाहा शब्द समेत मंत्रोच्चारण करे । भीष्म ! इस प्रकार चन्द्र आदि केतु पर्यंत सभी ग्रह, बिन्दु विभूषित शिखा वाले एवं बिन्दुयुक्त हैं ।२८-३०। इनके वर्णन के उपरांत समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली इनकी समस्त मुद्राओं को बता रहा हूँ । प्रथम दोनों हाथों की अंगुलियों द्वारा सुमुख मुद्रा बना कर पश्चात् वैसी मिली हुई अंगुलियों को विस्तृत करे, इस मुद्रा द्वारा ग्रहों का सान्निध्य प्राप्त होता है, तथा नमस्कार में भी इनका प्रयोग किया जाता है ।३१-३२। नृप ! इस प्रकार इस दुर्लभ मंत्रोंद्धार को रहस्य समेत तुम्हें बता दिया, अब ध्यान के समय उपस्थित देवताओं के रूपों को सुनों ! जपा पुष्प के समान वर्ण, महातेजस्वी, श्वेत कमल पर स्थित, समस्त लक्षणों समेत, सभी अलंकारों से अलंकृत, एक मुख, दो भुजाएँ, चन्द्र कमल की भाँति ग्रीवा, मण्डल के मध्य में स्थित एवं रक्त वर्ण के वस्त्रों से सुसज्जित, ऐसा ही मार्तण्ड का शोभनरूप ध्यान के समय देखना चाहिए । भीम ! संयम पूर्वक स्नान कर पवित्रता पूर्ण व्यवस्थित होकर तन्मयता से जो उनके इस रूप का ध्यान करता है, वह शीघ्र इस लोक में कुबेर की भाँति धनवान् होकर समस्त कष्टों से मुक्त, तेजस्वी, एवं बलशाली होता है ।३३-३७। साधक को उनके हृदय, उत्तमांग (शिर), शिखा, मुख, रक्तवर्ण तथा समस्त आभूषणों से विभूषित श्यामल वरद एवं अभय प्रदायक हाथों का ध्यान करना चाहिए । उसी भाँति विद्युत-पुंज की भाँति रौद्र, तलवार आदि शस्त्र का भी ।३८-३९। इस स्वाभाविक तथा अपने

विशेषः कथितो ह्येष कामरूपः स्वभावतः । दीप्ता दीप्तशिखाकारा ध्यातव्या मम शक्तयः ॥४०
श्वेतवर्णं स्मरेत्सोमं रक्तवर्णं कुजं स्मरेत् । सौम्यमष्टापदाभं च गुरुं च पीतिवर्णकम् ॥४१
शङ्खक्षीरनिभं श्वेतं काणं वाञ्जनसन्निभम् । रजावर्तनिभं राहुं धूम्रं च विकचं स्मरेत् ॥४२
वामहस्तौ कटिन्यस्तौ दक्षिणौ चाभयप्रदौ । रक्तभ्रूरक्तनेत्रास्य अर्धकायकृताञ्जलिः ॥४३
इति भानुं ग्रहैः सार्धं ये ध्यायन्ति नृपोत्तम । लभन्ते ते महासिद्धिमचिरान्नात्र संशयः ॥४४
तवाख्यातमिदं चक्रं ग्रहाणां भीष्म कृत्स्नशः । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यन्ते भुवि मानवाः ॥४५
अनेन विधिना भीष्म सदा देवं दिवाकरम् । त्रिकालं पूजयेद्भक्त्या वीर श्रद्धासमन्वितः ॥४६
इत्थं पूजयमानस्तु सर्वदेवं दिवाकरम् । ब्रह्महत्याविनिर्मुक्तो महादेवत्वमाप्नुयात् ॥४७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु सूर्यपूजामाहात्म्यवर्णनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०६।

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

आदित्यपूजाविधिवर्णनम्

भीष्म उवाच

अहो देवस्य माहात्म्यं भास्करस्य त्वयोदितम् । पूजयन्ति सदा ह्येनं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥१

काम रूप (इच्छारूप) का भी विशेषतया वर्णन कर दिया । प्रदीप्त शिखा के समान आकार वाली दीप्ता आदि मेरी शक्तियों का ध्यान सदैव करना चाहिए ।४०। श्वेत वर्ण के चन्द्रमा, रक्तवर्ण के मंगल, हरिद्वर्ण के बुध, पीले वर्ण के बृहस्पति, शंख एवं क्षीर की भाँति श्वेत वर्ण के शुक्र, अंजन की भाँति काले वर्ण के शनि, रज की भाँति धूमिल वर्ण के राहु और धूएँ के समान केतु का रूप बताया गया है । नृपोत्तम ! इस प्रकार जो ग्रहों समेत सूर्य का ध्यान-पूजन करता है, जिसके बाये दोनों हाथ कटि में हो दाहिने दोनों हाथ अभय प्रदान करते हों, तथा रक्त नेत्र, रक्त भौहें, मुख, एवं अंजली की भाँति अर्ध शरीर स्थित हो, उसे शीघ्र महासिद्धि की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं । भीष्म ! मैंने तुम्हें समस्त ग्रहों के मुख का विस्तृत वर्णन बता दिया, जिसके सुनने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं । भीष्म ! इस प्रकार इस विधान द्वारा भास्कर देव की तीनों काल में भक्ति पूर्वक आराधना करनी चाहिए। इस भाँति समस्त देवमय सूर्य की आराधना करने वाले मनुष्य ब्रह्म हत्या से मुक्त होकर महादेवत्व की प्राप्ति करते हैं।४१-४७

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सूर्यपूजा-माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ छठवाँ अध्याय समाप्त ।२०६।

अध्याय २०७

आदित्यपूजा की विधि का वर्णन

भीष्म ने कहा—भास्कर देव का माहात्म्य, जिसे आप ने सविधि बता दिया है, कितना आश्चर्य-जनक है कि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवादि देव उन्हीं की पूजा करते हैं ।१

व्यास उवाच

एवमेतन्न संदेहो यथा वदसि भारत । नास्ति सूर्यसमो देवो नास्ति सूर्यसमा गतिः ॥२
नास्ति सूर्यसमं ब्रह्म नास्ति सूर्यसमं हुतम् । नास्ति सूर्यसमो धर्मो नास्ति सूर्यसमं धनम् ॥३
नास्ति सूर्यादृते कामो नास्ति सूर्यादृते पदम् । नास्ति सूर्यसमो बन्धुर्नास्ति सूर्यसमः सुहृत् ॥४
नास्ति सूर्यसमा माता नास्ति सूर्यसमो गुरुः । नास्ति सूर्यसमं तीर्थं न पवित्रं ततः परम् ॥५
तमेकं दैवतं विद्यान्नैवाप्यर्कपरायणम् । लोकानां देवतानां च पितॄणां चापि भारत ॥६
तमर्चन्तः स्तुवन्तश्च प्राप्नुवन्ति परां गतिम् । ते प्रपन्नास्तु ये भक्त्या मुक्तास्ते भवसागरात् ॥७
राजा चोरा ग्रहाः सर्पा दारिद्र्यं दुःखसम्पदः । नैते पीडयितुं शक्ताः प्रसन्ने भास्करे सति ॥८

व्यास उवाच

एवं तात महाबाहो देवो भास्करतत्परः । स पूज्यः स नमस्कार्यः स हि ध्यातव्य एव च ॥९
प्रत्यक्षदेवता ह्येषा देवदेवोऽयमादरात् । अथ किं बहुनोक्तेन यद्वक्ष्यामि निबोध मे ॥१०
पूजयेत्तनयः पापी तथादित्यदिनैरपि । पूजयन्ति नरा ये वै ते यान्ति परमां गतिम् ॥११
प्राप्ते सूर्यदिने भक्त्या भानुं सम्पूज्य श्रद्धया । नक्तं करोति पुरुषः स यात्यमरलोकताम् ॥१२
यस्तु पूर्वं रवेर्भक्त्या पञ्चरत्नसमन्वितम् । निवेदयति मंत्रेण स यात्यमरलोकताम् ॥१३
मार्तण्डप्रीतये यस्तु कुर्याच्छ्राद्धं विधानतः । संक्रान्तावयने वीर सूर्यलोकं स गच्छति ॥१४

व्यास बोले—भारत ! जैसा तुम कह रहे हो, वह वैसा ही है, इसमें संदेह नहीं । सूर्य के समान देव और सूर्य के समान कोई गति (प्राप्य) नहीं है ।२। सूर्य के समान ब्रह्म, अग्नि, धर्म, एवं धन आदि कुछ भी नहीं है ।३। बिना सूर्य के कोई कामना या कोई पद है ही नहीं । सूर्य के समान कोई बन्धु तथा कोई मित्र नहीं है ।४। सूर्य के समान माता, गुरु, एवं पवित्र तीर्थ कोई नहीं है ।५। भारत ! लोक, देवता तथा पितरों के प्रधान देव एकमात्र वहीं हैं तथा सूर्य-पारायण के समान किसी का पारायण नहीं है ।६। उनकी पूजा एवं स्तुति करने वाले उत्तम गति प्राप्त करते हैं, भक्ति पूर्वक उनकी शरण प्राप्त मनुष्य संसार सागर (जन्म मरण बन्धन) से मुक्त होते हैं ।७। सूर्य के प्रसन्न होने पर राजा, चोर, ग्रह, सर्प, दारिद्र्य, दुख के साधन ये कभी पीड़ित नहीं करते ।८

व्यास बोले—तात, महाबाहो ! भास्कर देव की आराधना में कटिबद्ध पुरुष देव, पूजन, नमस्कार, एवं ध्यान करने के योग्य होता है ।९। यही प्रत्यक्ष देवता, तथा आदरणीय देवाधिदेव हैं, और अधिक क्या कहूँ, बस, जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनो ।१०। रविवार के दिनों में सूर्य पूजन सभी के लिए परमावश्यक है, चाहे (पूजक) महान् पापी ही क्यों न हो, क्योंकि जो उनकी पूजा करता है, उन्हें परम गति प्राप्त होती है ।११। रविवार के दिन आने पर भक्ति एवं श्रद्धा समेत सूर्य की पूजा के उपरांत जो पुरुष नक्त व्रत करता है, उसे अमरलोक (स्पर्श) की प्राप्ति होती है ।१२। भक्तिपूर्वक जो सर्वप्रथम पञ्चरत्न (उपहार) मंत्र द्वारा उन्हें प्रदान करता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।१३। वीर ! संक्रान्ति अथवा अयन के दिन उनके प्रसन्नार्थ जो विधान पूर्वक श्राद्ध कर्म सुसम्पन्न करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति

कृत्वोपवासं षष्ठ्यां तु सप्तम्यां यस्तु मानवः । करोति विधिवच्छ्राद्धं भास्करः प्रीयतामिति ॥१५
सर्वदोषविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते । मानवो यस्तु सप्तम्यां योषिद्वापि दिवाकरम् ॥१६
प्रपूज्य विधिवद्भानुं सर्वान्कामानवाप्नुयात् । विशेषतस्तस्य दिने ग्रहणे च नराधिप ॥१७
इति भीष्म विजानीहि न देवो भास्करात्प्रियः । आदित्यमेकं परमं देवदेवेषु पूजितम् ॥१८
रत्नपर्वतमारुह्य यथा भुवि नराधिपाः । सत्वानुरूपं गच्छन्ति रत्नभागानशेषतः ॥१९
तथा भानुं समाराध्य प्राप्नुवन्ति नराः फलम् । धनार्थी प्राप्नुयाद्वित्तं पुत्रार्थी प्राप्नुयात्सुतम् ॥२०
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति चाथ वाऽमरतां व्रजेत् । अथ किं बहुनोक्तेन शृणु त्वं वचनं मम ॥२१
ब्रह्मादयो देवगणा भानुमाराध्य भारत । मनोहराणि दिव्यानि दिवि स्थानान्यथाप्नुवन् ॥२२
अचलानि महाभागाः सर्वपापहराणि च ॥२३

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्व्यासस्तत्रैवान्तरधीयत । भीष्मोऽपि पूजयामास भक्त्या भानुं विधानतः ॥२४
तथा त्वमपि राजेन्द्र पूजयेमं दिवाकरम् । पूजयित्वा रविं भक्त्या स्थानं यास्यसि शाश्वतम् ॥२५
यथा गतः स भगवान्व्यासो भीष्मश्च मानद । सकृत्प्रपूज्य सप्तम्यां भक्त्या देवं दिवाकरम् ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे व्यासभीष्मसंवादे आदित्यपूजाविधिवर्णनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०७।

होती है ।१४। षष्ठी के दिन उपवास रहकर सप्तमी में विधान पूर्वक जो श्राद्ध करता है, उससे भास्कर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ।१५। और वह समस्त दोषों से मुक्त होकर सूर्य लोक का सम्मान प्राप्त करता है । नराधिप ! स्त्री अथवा पुरुष के सूर्य की विधान पूर्वक विशेषकर ग्रहण या उनके दिन उपासना करने पर उनकी समस्त कामनाएँ सफल होती हैं ।१६-१७। भीष्म ! इतना ही जानें कि सूर्य से बढ़कर प्रिय कोई अन्य देव नहीं है, क्योंकि अधिनायक देवों द्वारा भी यही एक आदित्य ही पूजित होते हैं ।१८। जिस प्रकार इस भूतल में राजा गण रत्नों के पहाड़ पर पहुँचकर अपने सत्वानुरूप शक्ति के अनुसार निखिल रत्नों की प्राप्ति करते हैं, उसी भाँति मनुष्य गण भास्कर की आराधना द्वारा समस्त फलों की प्राप्ति करते हैं । धनेच्छुक को धन, पुत्रेच्छुक को पुत्र, एवं मोक्षार्थी को मोक्ष तथा अमरत्व की प्राप्ति होती है । भारत ! मैं इनके विषयं में अधिक क्या कहूँ, इतना ही जाने कि ब्रह्मा आदि देवगण सूर्य देव की आराधना करके ही स्वर्ग के दिव्य स्थानों की प्राप्ति किये हैं । जो अचल एवं समस्त पापों के अपहर्ता तथा स्वयं महान् सौभाग्य सम्पन्न हैं ।१९-२३

सुमन्तु बोले—इतना कहकर भगवान् ! व्यास उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और भीष्म ने भी भक्ति पूर्वक विधान द्वारा सूर्य की पूजा सुसम्पन्न किया ।२४। राजेन्द्र ! उसी भाँति आप भी भक्ति पूर्वक दिवाकर की पूजा करके उस अविनाशी स्थान की प्राप्ति करेंगें । हे मानद ! जिस प्रकार भगवान् व्यास और भीष्म ने सप्तमी में भक्ति पूर्वक दिवाकर देव की एक ही बार पूजा कर के उसी स्थान की प्राप्ति की है ।२५-२६

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के व्यास भीष्म संवाद में आदित्य पूजा माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ।२०७।

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सप्तमीव्रतवर्णनम्

शतानीक उवाच

पुनर्मे ब्रूहि सप्तम्याः प्रीतये भास्करस्य तु । उपोषितो भवतीह नरो यस्तु द्विजोत्तम ॥१

सुमन्तुरुवाच

कथिताः सप्त सप्तम्यः पुनरस्मिन्महामते । बह्वः कुरुशार्दूल भूयस्त्वेताः शृणुष्व मे ॥२
स्वयं याः कथिताः पूर्वमादित्येन खगाधिप । अरुणस्य महाबाहो सप्तम्यः सप्तपूजिताः ॥३
अर्कसम्पुटकैरेका द्वितीया मरिचैस्तथा । तृतीया निम्बपत्रैश्च चतुर्थी फलसप्तमी ॥४
अनोदना पञ्चमी स्यात्षष्ठी विजयसप्तमी । सप्तमी कामिका ज्ञेया विधिं तासां निबोध मे ॥५
शुक्लपक्षे रविदिने दक्षिणे चोत्तरायणे । ग्रहणे सूर्यनक्षत्रे गृह्णीयात्सप्तसप्तमीः ॥६
स तां तु ब्रह्मचारी स्याच्छौचयुक्तो जितेन्द्रियः । सूर्यार्चनरतो दान्तो जपहोमपरस्तथा ॥७
पञ्चम्यामेव पुरुषः कुर्यान्नित्यमनात्मकम् । षष्ठ्यां न मैथुनं गच्छेन्मधुमांसं च वर्जयेत् ॥८
अर्कसम्पुटकैरेकां तथान्यां मरिचैर्नयेत् । तथापरां निम्बपत्रैः फलाख्यायो फलं चरेत् ॥९
अनोदनामन्नरहित उपासीत यथाविधि । अहोरात्रं वायुभक्षः कुर्याद्विजयसप्तमीम् ॥१०

अध्याय २०८

सप्तमीव्रत विधि वर्णन

शतानीक ने कहा—हे द्विजोत्तम ! भास्कर के प्रसन्नार्थ उस सप्तमी व्रत विधान को, जिसमें मनुष्यों को उपवास करना पड़ता है, पुनः मुझे बताने की कृपा कीजिए ।१

सुमन्तु बोले—महामते ! यद्यपि सातों सप्तमी के विधान को मैंने पहले बता दिया है, तथापि कुरुशार्दूल ! उनका वर्णन मैं पुनः कर रहा हूँ, खगाधीश, महाबाहो ! जिन सातों सप्तमी विधान के वर्णन सूर्य ने अरुण से पहले किया था, सुनो ।२-३। अर्क संपुट का विधान पहली सप्तमी में बताया गया है उसी प्रकार दूसरी सप्तमी में मिर्च का पारण, तीसरी में निम्बका, चौथी में फल, पाँचवी में भात के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु, छठीं विजयसप्तमी और कामिका नामक सातवीं सप्तमी बतायी गई है, इनके विधानों को मैं बता रहा हूँ, शुक्ल पक्ष के रविवार के दिन, सूर्य के दक्षिणायन एवं उत्तरायण होने के दिन, ग्रहण और सूर्यनक्षत्र (संक्रान्ति) के दिनों में सातों सप्तमी के विधानारम्भ करने चाहिए । संयम- पूर्वक पवित्रतापूर्ण ब्रह्मचारी शुद्ध होकर सूर्य की अर्चना, जप, एवं हवन करे ४-७। पुरुष को चाहिए कि सर्वप्रथम पञ्चमी में अनात्मक करके षष्ठी में मैथुन, मधु एवं मांस का भी त्याग करे ! इसके उपरांत प्रथम सप्तमी का अर्कसंपुट द्वारा दूसरी को मिर्च द्वारा तीसरी को नीम के पत्तों द्वारा, चौथी को फल द्वारा, तथा अन्नरहित होकर अनोदना (भातहीन) नामक पाँचवी सप्तमी और दिन रात वायु भक्षण कर छठीं विजय सप्तमी को विधान पूर्वक सुसम्पन्न करे ।८-१०। इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष एक सप्तमी के व्रत विधान

तथैकां सप्तमीं कृत्वा प्रतिमासं विचक्षणः । कुर्याद्यथाविधि मुदा ततः कुर्वीत कामिकाम् ॥११
आसां लिखित्वा नामानि पत्रकेषु पृथक्पृथक् । तानि सर्वाणि पत्राणि क्षिपेदभिनवे घटे ॥१२
तदर्थं यो न जानाति लोकबाह्योऽपि वा नरः । तेन ह्युद्धारयेदेकं न कुर्याच्च विचारणम् ॥१३
तेनैव विधिना यस्तु प्रतिमासं च तत्तपः । सप्तैव यावत्सप्तम्यो विज्ञेया सा तु कामिका ॥१४
इत्येताः सप्तसप्तम्यः स्वयं प्रोक्ता विवस्वता । कुर्वीत यो नरो भक्त्या स यात्यर्कसवो नृप ॥१५
अर्कसम्पुटकैर्वित्तमचलं सप्तपौरुषम् । मरिचैः सङ्गमः स्याद्वै प्रियैः पुत्रादिभिः सदा ॥१६
सर्वरोगाः प्रणश्यन्ति निम्बपत्रैर्न संशयः । फलैस्तु पुत्रपौत्रश्च दौहित्रश्चापि पुष्कलः ॥१७
अतो धनं धनं धान्यं सुवर्णं रजतं तथा । तथा पशुर्हिरण्यं च आरोग्यं सततं नृप ॥१८
उपोष्य विजयां शत्रून्राजञ्जयति नित्यशः । साधयेत्कामदा कामान्विधिवत्समुपासिता ॥१९
पुत्रकामो लभेत्पुत्रमर्थकामोऽर्थमक्षयम् । विद्याकामो लभेद्विद्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥
कृत्स्नान्कामान्ददात्येषा कामदा कुरुनन्दन ॥२०
नरो वा यदि वा नारी यथोक्तं सप्तमीव्रतम् । करोति नियतात्मा वै स याति परमां गतिम् ॥२१
न तेषां त्रिषु लोकेषु किञ्चिदस्तीति दुर्लभम् । ये भक्त्या लोकनाथस्य व्रतिनः संशितव्रताः ॥२२
व्रतैस्तु विविधैर्वीर तपोभिर्वा सुदुष्करैः । न तत्फलमवाप्नोति यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः ॥२३

को सुसम्पन्न करने के उपरांत प्रसन्नतापूर्ण हो प्रतिमास की सप्तमी के व्रत-विधान की समाप्ति करे और पश्चात् कामिका नामक सातवीं सप्तमी के विधान को पूरा करे ।११। पृथक्-पृथक् पत्रों पर इनके नाम लिख कर उसे नवीन कलश में रखने चाहिए ।१२। उसके अर्थ को जो मनुष्य न जानता हो, चाहे वह चार्वाक् मतावलम्बी क्यों न हो वह एक ही का समुद्धार करे, उसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।१३। उसी प्रकार प्रतिमास की सप्तमी व्रत-विधान के समाप्ति के अनंतर सातवीं कामिका नामक सप्तमी की समाप्ति करे । इसी प्रकार सातों सप्तमी के व्रत विधान की समाप्ति होनी चाहिए, जिसे स्वयं सूर्य ने बतायाथा । नृप ! भक्ति पूर्वक जो इस की समाप्ति करते हैं, उन्हें सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ।१४-१५। अर्क सम्पुट-वाली सप्तमी के व्रत पालन करने से निश्चय धन, एवं सातों पौरुष और मिरचवाली सप्तमी द्वारा प्रिय पुत्रादिकों की सदैव प्राप्ति होती है । निम्बपत्र द्वारा समस्त रोगों के नाश होते हैं, इसमें संदेह नहीं । इसी प्रकार फलों (फलवाली सप्तमी) द्वारा पुत्र, पौत्र, एवं दौहित्र (पुत्री के पुत्र) की निश्चित प्राप्ति होती है ।१६-१७। नृप ! धन, धान्य, सुवर्ण, चाँदी, पशु, हिरण्य, एवं निरन्तर आरोग्यता की भी प्राप्ति होती है ।१८। राजन् ! उसी भाँति विजया सप्तमी (छठीं) की उपासना द्वारा शत्रुओं पर विजय तथा कामदा नामक सातवीं सप्तमी की विधान पूर्वक उपासना द्वारा सभी कामनाएँ सफल होती हैं ।१९। पुत्रेच्छुक को पुत्र, धनेच्छुकों को अक्षय धन, विद्यार्थी को विद्या राज्य की कामना वाले को राज्य प्राप्त होता है तथा कुरुनन्दन ! कामदा नामक सातवीं सप्तमी समस्त कामनाएँ सफल करती हैं।२०। स्त्री पुरुष किसी के भी संयमपूर्वक विधान द्वारा सप्तमी की समाप्ति करने से परम गति की प्राप्ति होती है।२१। लोकाधिनायक (सूर्य) के व्रतों के भक्तिपूर्वक नियमित पालन करने से उसके लिए तीनों लोकों में कोई अप्राप्य वस्तु नहीं रहती है।२२। वीर पार्थिव श्रेष्ठ ! अनेक भाँति के व्रतविधानों, अत्यन्त कठोर तप, बहु

तीर्थाभिषेचनैर्वापि दानहोमार्चनैस्तथा । यत्फलं च पूजयितुं सप्तम्यां प्राप्य मोक्षदम् ।।
मोक्षार्थी पार्थिवश्रेष्ठ यथाह भगवान्रविः ।।२४
कृत्वादित्यदिने नक्तं भक्त्या सम्पूजयेद्रविम् । अचलं स्थानमाप्नोति मानवः श्रद्धयान्वितः ।।
सूर्यलोके च नियतं तस्य वासो न संशयः ।।२५
यस्तु पूजयते भक्त्या सप्तम्यां भास्करं नरः । ब्रह्मेन्द्ररुद्रलोकेषु तस्याप्रतिहता गतिः ।।२६
नान्धो न कुष्ठी न क्लीबो न व्यङ्गो न च निर्धनः । कुले तस्य भवेद्वीर यश्चरेत्सप्तमीव्रतम् ।।२७
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी धनमाप्नुयात् । भार्यार्थी रूपसम्पन्नां स्त्रियं पुत्रांश्च भारत ।।२८
लोभात्प्रमादान्मोहाच्च व्रतभङ्गो यदा भवेत् । तदा त्रिरात्रं नाश्नीयात्कुर्याद्वा केशमुण्डनम् ।।२९
प्रायश्चित्तमिदं कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् । सप्तैव यावत्सप्तम्यो भवन्ति च खगेश्वर ।।३०
अभ्यर्च्य सूर्यसप्तम्यां माल्यधूपादिभिर्नरः । भोजयित्वा द्विजाञ्छक्त्या प्राप्नुयात्स्वर्गमक्षयम् ।।३१
सप्तम्यां विप्रमुख्येभ्यो हिरण्यं यः प्रयच्छति । स तदक्षय्यमाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति ।।३२
इतीदं कीर्तितं वीर सप्तमीव्रतमुत्तमम् । भूय एवाभिधास्यामि शृणुष्वैकमना नृप ।।३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यसंवादे सप्तसप्तमीव्रतवर्णनं नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०८।

दक्षिणा वाले यज्ञ, तीर्थों के अभिषेचन, दान, हवन, एवं उपासना द्वारा उस मोक्षदायक फल की प्राप्ति नहीं होती है जिसे मोक्षार्थी सप्तमी व्रत विधान द्वारा प्राप्त करता है। ऐसा सूर्य भगवान् ने बताया है।२३-२४। श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नक्त व्रत करके रविवार के दिन जो सूर्य की आराधना करता है, उस मनुष्य को अचल स्थान की प्राप्ति एवं सूर्य लोक में नियतनिवास प्राप्त होता है।२५। भक्ति पूर्वक सप्तमी के दिन जो सूर्य की अर्चना करता है, ब्रह्मा, इन्द्र एवं रुद्र के लोकों में वह अप्रतिहत गति द्वारा पहुँचकर विचार करता है।२६। वीर ! जो पुरुष सप्तमी व्रत विधान का यथावत् पालन करता रहता है, उसके कुल में कोई व्यक्ति अंधा, कुष्ठी, नपुंसक, व्यंग, एवं निर्धन नहीं होता है।२७। भारत ! विद्यार्थी विद्या, धनेच्छुक धन तथा स्त्री के अभिलाषी रूप सौन्दर्य पूर्ण स्त्री और पुत्रों की प्राप्ति करता है।२८। लोभ, मोह, अथवा प्रमाद वश यदि व्रत भंग हो जाये तो तीन रात का अनशन या केश मुंडन रूप प्रायश्चित सुसम्पन्न करके पुनः व्रत के योग्य हो जाता है। खगेश्वर ! वह सातों सप्तमी के व्रत-विधान को सुसम्पन्न करने की योग्यता प्राप्त करता है।२९-३०। सप्तमी के दिन मनुष्य माला-धूपादि द्वारा सूर्य की अर्चना, एवं ब्राह्मण भोजन कराके अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति करता है।३१। सप्तमी के दिन जो उत्तम ब्राह्मणों को हिरण्य दान देता है, उसे अक्षय सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।३२। वीर ! इस प्रकार तुम्हें मैंने सप्तमी व्रत का विधान सुना दिया। नृप ! उसी विषय को मैं पुनः तुम्हें सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो।३३

श्रीभविष्यपुराण के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सूर्यारुणसंवाद में सप्तमी व्रत वर्णन नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त।२०८।

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सप्तमीव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

यः क्षिपेद्गोमयाहारः शुक्ला द्वादश सप्तमीः । अथवा यावकाहारः शीर्णपर्णाशनोऽपि वा ॥१
क्षीराशी चैकभक्तो वा मिताहारोऽथ वा पुनः । जलाहारोऽपि वा विद्वान् पूजयित्वा दिवाकरम् ॥२
पुष्पोपहारैर्विविधैः पद्मसौगन्धिकोत्पलैः । नानाप्रकारैर्गन्धैश्च धूपैर्गुग्गुलचन्दनैः ॥३
कृष्णगन्धपायसाद्यैर्विचित्रैः सुविभूषणैः । अर्चयित्वा द्विजाञ्छ्रेष्ठान्हिरण्यान्नादिभिर्नरः ॥४
स तत्फलमवाप्नोति क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः । यदेह तप्यते वीर प्राप्यते केवलं रवेः ॥५
विमानवरमारूढः सूर्यलोके महीयते । ततः पुण्यक्षयाद्राजन्कुले महति जायते ॥६
एवं भक्त्या विवस्वंतं प्रतिमासं समाहितः । पूजयेद्विधिवद्भक्त्या नामानि परिकीर्तयेत् ॥७
चैत्रिके मासि विष्णुश्च माधवे ह्यर्यमेति वै । शुक्रे विवस्वान्मासे तु शुचौ मासे दिवाकरः ॥८
पर्जन्यः श्रावणे मासि नभस्ये वरुणस्तथा । मार्तण्डेति च विज्ञेयः कार्तिके भार्गवः पुनः ॥९
मार्गशीर्षेऽपि मित्रस्तु कीर्तितः सततं बुधैः । पूषा पौषे तु वै मासे पूजनीयः प्रयत्नतः ॥१०
माघे भगेति विज्ञेयस्त्वष्टा चैवायं फाल्गुने । एवं क्रमेण नामानि कीर्तयेत्प्रीतये रवेः ॥११
धूपार्चनविधिमिमं सप्तम्यां सुसमाहितः । यः करोति नरो भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥१२

अध्याय २०९

सप्तमीव्रत का वर्णन

सुमन्तु **बोले**—बारहों मास के शुक्ल पक्ष की बारहों सप्तमी के व्रतानुष्ठान के पश्चात् गोमय (गोबर), यावक जीर्ण शीर्ण पत्ते, क्षीर, एकभक्त, मिताहार, तथा जलाहार के पारायण का विधान बताया गया है। विद्वान् पुरुष को चाहिए कि भाँति-भाँति के पुष्पोपहार, कमल, नील कमल, भाँति-भाँति के गंध, धूप, गुग्गुल एवं चन्दन, कृष्ण गंध, पायस आदि तथा अनेक प्रकार के आभूषणों द्वारा भास्कर की उपासना सुसम्पन्न कर सुवर्ण और अन्न भक्ष्य-भोज्य द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणों की सेवा करे, तो उसे उन फलों की प्राप्ति होती है, जो अत्यन्त दक्षिणा वाले यज्ञों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। वीर ! जो केवल सूर्य के प्रसन्नार्थ तप करता है, वह विमान द्वारा सूर्य लोक में पहुँच कर सम्मानित होता है, और राजन् ! पुण्यक्षय होने के उपरांत वह किसी उत्तम कुल में जन्म-ग्रहण करता है।१-६। इस प्रकार प्रतिमास में विवस्वान् (सूर्य) की भक्ति पूर्वक आराधना करनी चाहिए तथा उनके नामों का कीर्तन भी। चैत्र मास के विष्णु, वैशाख मास के अर्यमा, ज्येष्ठ के विवस्वान्, आषाढ़ मास के दिवाकर, श्रावण मास के पर्जन्य, भादों मास के वरुण, आश्विन मास के मार्तण्ड, कार्तिक मास के भार्गव, मार्गशीर्ष (अगहन) मास के मित्र पौष मास के पूषा, माघमास के भग, और फाल्गुन मास के त्वष्टा नामक सूर्य की क्रमशः अर्चना एवं प्रीति पूर्वक कीर्तन करे।७-११। इस प्रकार जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्य के धूपार्चन विधान को सुसम्पन्न करता

ततस्ते सर्वमाख्यातं यथगुह्यतमं विभोः । नैव देयमशिष्याय नाभक्ताय कदाचन ॥१३
न च पापकृते देयं न देयं नास्तिकाय वा । कृतघ्ने नास्तिके वीर न देयं क्रूरकर्मणि ॥१४
य इदं शृणुयान्नित्यं सप्तमीव्रतमुत्तमम् । पठेद्यश्चापि नियतः श्रद्धया परयान्वितः ॥१५
इह लोके सुखं प्राप्य सूर्यलोके महीयते । पुण्यक्षयादिहागत्य राजा भवति भूतले ॥१६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मेपर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यारुणसंवादे प्रतिमाससप्तमीव्रतवर्णनं
नाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०९।

अथ दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्येष सप्तमीकल्पः समासात्कथितस्तव । विस्तरात्ते पुनर्वच्मि शृणु चैकमना विभो ॥१
फाल्गुनामलपक्षस्य षष्ठ्यां च समुपोषितः । पूजयेद्भास्करं स्नात्वा गन्धपुष्पविलेपनैः ॥२
अर्कपुष्पैर्महाबाहो गुग्गुलेन सुगन्धिना । श्वेतेन करवीरेण चन्दनेन दिवाकरम् ॥३
गुडोदकेन नैवेद्यं निवेद्यं प्रीतये रवेः । एवं पूज्य दिवा भानुं रात्रौ तस्याग्रतः स्वपेत् ॥
जपन्भौमं परं जाप्यं विनिद्रः सततं बुधः ॥४

है, उसे उत्तम गति प्राप्त होती है ।१२। इस भाँति मैंने तुम्हें विभु (सूर्य) के अत्यन्त गुह्य आख्यान सुना दिये जो किसी अशिष्य एवं भक्ति हीन को कभी नहीं दिया जा सकता है ।१३। वीर ! किसी पापी, नास्तिक, कृतघ्न, एवं क्रूरकर्मा को कभी नहीं (सूर्योपाख्यान का उपदेश) देना चाहिए ।१४। जो इस सप्तमी व्रत-विधान का श्रवण अथवा अत्यन्त श्रद्धालु होकर पाठ करता है, उसे इस भूतल के समस्त सुखों की प्राप्ति पूर्वक सूर्य-लोक के सम्मान प्राप्त होते हैं और पुण्य क्षय के पश्चात् वह इस भूतल का राजा होता है ।१५-१६
श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सूर्यारुणसंवाद में सप्तमी व्रत वर्णन
नामक दो सौ नौवाँ अध्याय समाप्त ।२०९।

अध्याय २१०

सूर्यपूजा का वर्णन

सुमन्तु बोले—विभो ! मैंने तुम्हें इस सप्तमी कल्प को विवेचन पूर्वक सुना दिया, किन्तु, पुनः उसी का विस्तृत रूप में वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! ।१। फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि के दिन उपवास रहकर स्नान, गंध, पुष्प, एवं लेपों द्वारा भास्कर की आराधना करनी चाहिए ।२। महाबाहो ! अर्क (मदार) के पुष्प, गुग्गुल की सुगंधित धूप, श्वेत कनेर के पुष्प, एवं चन्दन द्वारा दिवाकर की अर्चना करके प्रीति पूर्वक उन्हें गुड़-जल द्वारा बनाये गये नैवेद्य को अर्पित करे । इस भाँति दिन में उनकी पूजा सुसम्पन्न करके रात में उन्ही के सामने शयन कर विद्वानों को चाहिए कि जब तक निद्रित अवस्था न आये, उनके उत्तम मंत्र का जप करते रहें ।३-४

शतानीक उवाच

किं तत्परं भगवतः प्रियं जाप्यमनुत्तमम् ॥५
जप्तव्यो यत्परैर्भक्त्या भानुस्तस्याग्रतो नरैः । तन्मे ब्रूहि तथा मन्त्रान्धूपदीपान्विशेषतः ॥
येनाहं तं जपञ्जप्यं पूजयामि दिवाकरम् ॥६

सुमन्तुरुवाच

वक्ष्ये ते भरतश्रेष्ठ समासान्न तु विस्तरात् ॥७
षडक्षरेण मन्त्रेण कुर्यात्सर्वं समाहितः । जपं होमं तथा पूजां शतजप्तेनसर्वदा ॥८
सावित्र्या च जपं पूर्वं कृत्वा शतसहस्रशः । पश्चात्सर्वं प्रकुर्वीत जपादिकमनाकुलम् ॥९
ॐ भोः सावित्रि भास्कराय सहस्ररश्मिं धीमहि । तेन सूर्यः प्रचोदयात् ॥१०
जप एष परः प्रोक्तः सप्तम्यां भानुना स्वयम् । जप्त्वा सकृद्भवेत्पूतो मानवो नात्र संशयः ॥११
प्रभाते त्वथ सप्तम्यां जपन्नियतमानसः । पूजयेद्भास्करं भक्त्या पूर्वोक्तविधिना नृप ॥१२
श्रद्धया भोजयेच्चापि ब्राह्मणाञ्छक्तितो नृप । दिव्यान्भोगांश्च विधिवद्भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ॥१३
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत भोजकांश्च प्रभोजयेत् । न भोजयेत्तथाऽसौरान्सौरान्यत्नेन भोजयेत् ॥१४

शतानीक उवाच

के भोज्या के न वा भोज्या ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तम । केषु चित्तेषु सप्तम्यां देवदेवो दिवाकरः ॥१५

शतानीक बोले—भगवान् भास्कर को किस उत्तम मंत्र का जप प्रिय है, जिसे भक्ति पूर्वक मनुष्य उनके सामने शयन-काल में जपता रहे ! उनके मंत्र तथा विशेषकर धूप-दीप बताने की कृपा करें क्योंकि मैं दिवाकर की आराधना तथा उस मंत्र का जप करना चाहता हूँ ।५-६

सुमन्तु बोले—भरत श्रेष्ठ ! मैं तुम्हें संक्षेप में उसे बता रहा हूँ, सुनो । क्योंकि विस्तृत वर्णन करने का समय नहीं है । ध्यान लगाकर उनके षडक्षर मंत्र का जप करना चाहिए तथा जप, हवन, एवं पूजन काल में सदैव उस मंत्र की एक सौ संख्या का जप करना आवश्यक रहता है ।७-८। सर्वप्रथम सावित्री मंत्र की एक लक्ष संख्या का जप करके पश्चात् सावधान होकर इसका जप आदि प्रारम्भ करे ।९। 'ओं भोः सावित्रि भास्कराय सहस्ररश्मिं धीमहि, तेन सूर्यः प्रचोदयात्, सप्तमी के दिन इसी उत्तम मंत्र का जप-विधान सुसम्पन्न करना बताया गया है क्योंकि इसे सूर्य ने स्वयं कहा है । इसके एक बार के जप करने से मानव अवश्य पवित्र हो जाता है इसमें संदेह नहीं ।१०-११। नृप ! सप्तमी के दिन प्रातः काल पवित्र होकर संयम पूर्वक इस का जप करते हुए पूर्वोक्त विधान द्वारा भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना करनी चाहिए तथा श्रद्धा समेत अपनी इच्छानुसार दिव्यभोग एवं अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्यों द्वारा ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करे ।१२-१३। उसमें अपने धन का मोह न कर भोजकों को भोजन कराये और (सूर्य-भक्तिहीन) ब्राह्मण के त्याग और प्रयत्न पूर्वक सौर (सूर्य-भक्त) ब्राह्मणों के भोजन पर विशेष ध्यान रखने चाहिए ।१४

शतानीक ने कहा—हे ब्रह्मवित्तम ! किस ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए, और किसे नहीं तथा देवाधिदेव दिवाकर सप्तमी के दिन किन ब्राह्मणों के चित्त में अधिष्ठित रहते हैं ।१५

सुमन्तुरुवाच

घटीभोज्यो भवेद्विप्रः सप्तमीं कुरुते च यः। सौरभिन्नेष्वभोज्यो यो यश्च भुक्तो दिवाकरे ॥१६
एते भोज्या द्विजा राजन्नादित्येन समासतः। प्रोक्ताः कुरुकुलश्रेष्ठ तथाऽभोज्यान्शृणुष्व वै ॥१७
सभार्यः सपतिर्यस्तु कुष्ठरोगैर्हतश्च यः। यश्चान्यदेवताभक्तस्तथा नक्षत्रसूचकः ॥१८
परापवादनिरतो यश्च देवलकस्तथा। एतेऽभोज्याः तथिमा तु स्वयं देवेन चिन्तिताः ॥१९

शतानीक उवाच

ये भोज्या ब्राह्मणाः प्रोक्ता ये आभोज्या द्विजोत्तमाः। एतेषां लक्षणं ब्रूहि सर्वेषां वै समाहितः ॥२०

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र कीर्तयिष्येष कृत्स्नशः। पठतां तु त्रयीं विद्यां ब्राह्मणानां कदम्बकः ॥२१
घटेत्युक्ता तु सा राजन्स्वयं देवेन भानुना। सा घटा विद्यते यस्य स घटीत्युच्यते द्विजः ॥२२
ब्रह्मक्षत्रविशां वीर शूद्राणां च कदम्बकः। शृण्वतां विधिवत्पुण्यं भक्त्या पुस्तकवाचनम् ॥२३
इति मासे निबद्धस्य होमस्येति च भानुना। कथितं कुरुशार्दूल स्वयमाकाशगामिना ॥२४
यस्याः कर्ता भवेद्यस्तु मम स्यात्करको मतः। स विप्रो राजशार्दूल सदेष्टो भास्करस्य तु ॥२५
जयोपजीवी व्यासश्च समः स्याज्जीवकस्तथा। यान्येतानि पुराणानि सेतिहासानि भारत ॥

सुमन्तु बोले—सप्तमी व्रतानुष्ठान को सम्पन्न करने वाला ब्राह्मण बार-बार भोजन कराने योग्य होता है किन्तु वह जो दिवाकर की आराधना में किसी असौर (सूर्य भक्तिहीन) के यहाँ भोजन न करने वाला, एवं दिवाकर की आराधना में भोजन करने वाला, ब्राह्मण सदैव क्षण-क्षण पर भोजन कराने योग्य होता है। राजन्! इन्हीं ब्राह्मणों को सूर्य ने स्वयं भोज्य (भोजन करने के योग्य) बताया है। कुरुकुल श्रेष्ठ! उन अभोज्य ब्राह्मणों को, जिन्हें कभी भोजन न कराना चाहिए, बता रहा हूँ, सुनो! स्त्री के समेत रहने वाला, सेवक का कार्य करने वाला, कुष्ठी, रोगी अन्य देवता के उपासक, नक्षत्र की सूचना देने वाले (ज्योतिषी), निंदक तथा देवलक, इन्हीं ब्राह्मणों को स्वयं सूर्य अभोज्य भोजन कराने के अयोग्य बताया है।१६-१९

शतानीक ने कहा—देव! जो ब्राह्मण भोज्य हैं तथा जो अभोज्य हैं, उनके लक्षण बताने की कृपा करें।२०

सुमन्तु बोले—राजेन्द्र! आप ने साधु प्रश्न किया है अतः मैं सम्पूर्ण लक्षण बता रहा हूँ सुनो! वेदत्रयी (तीनों वेदों) के अध्ययन करने वाले ब्राह्मणों के समूह को 'घटा' कहा गया है, स्वयं सूर्य देव ने ऐसा बताया है। उसी 'घटा' वाले ब्राह्मण को 'घटी ब्राह्मण' कहा जाता है।२१-२२। वीर! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्रों के समूह, भक्तिपूर्वक पुस्तक पारायण को सुनकर अधिक पुण्य प्राप्त करते हैं। इन्ही उपरोक्त ब्राह्मणों को मास सप्तमी के दिन भोजन एवं उन्हीं द्वारा हवन सुसम्पन्न करना चाहिए। कुरुशार्दूल! इसे स्वयं आकाशचारी सूर्य ने बताया है।२३-२४। सप्तमी व्रत के अनुष्ठान को जो सुसम्पन्न करता है, वह मेरी सम्मति से 'करक' है, राजशार्दूल! वह ब्राह्मण भास्कर को सदैव प्रिय है। उसी प्रकार उन्हें जयोपजीवी, व्यास, और जीवक भी कहा जाता है। भारत! इतिहास (महाभारत)

जयेति कथितानीह स्वयं देवेन भास्वता ॥२६
एकं निवासयन्यस्तु ब्राह्मणं तूपजीवति । जयोपजीवी स ज्ञेयो वाचकश्च तथा नृप ॥२७
आग्नेयादिशास्त्राणि सप्ताश्वतिलकं तथा । यश्च जानाति सौराणि विप्रः सौरस्स तत्त्ववित् ॥२८
पूजयेत्सततं यस्तु भास्करं नृपसत्तम । भोजकाश्च तथा राजन्यथा देवं दिवाकरम् ॥२९
स ज्ञेयो भास्करे भक्तो भोजनीयः प्रयत्नतः । भोज्यानां लक्षणं ह्येतदभोज्यानां शृणुष्व मे ॥३०
वृषली यस्य वै भार्या ब्राह्मणस्य विशेषतः । परभार्यापतिरसौ ब्राह्मणो ब्राह्मणाधमः ॥३१
दैवेन निहतः कुष्ठी ब्राह्मणो ब्रह्मघातकः । भोजको विन्दते यस्तु न च तं पूजयेत्तथा ॥३२
ज्ञेयोऽन्यदेवभक्तोऽसौ स द्विजः कुरुनंदन । आदित्यं भोजकं विद्याद्धानोर्देहसमुद्भवम् ॥३३
नादित्यं पूजयेद्यस्तु स भोज्यो न कदाचन । मुण्डो व्यङ्गधरो गौरः शङ्खपुष्पधरस्तथा ॥३४
यस्य याति गृहे राजन्भोजको मानवस्य तु । तस्य यांति गृहे देवाः पितरो भास्करस्य तु ॥३५
रक्षोभूतपिशाचाश्च योगिन्योऽपि पलायिताः । सकृद्भुङ्क्ते गृहे यस्य भोजको गृहधर्मिणः ॥३६
सप्तसंवत्सरं यावत्तृप्तो भवति भास्करः । तस्मात्तान्भोजयेद्दिव्यान्भोजकान्सततं बुधः ॥
यस्तु तान्निन्दते विप्रः स न भोज्यः कदाचन ॥३७
निजं भर्तारमुत्सृज्य स्वैरं यान्यत्र गच्छति । स्वैरिणी सा तु वै प्रोक्ता पापिष्ठा कुलदूषिणी ॥३८

समेत समस्त पुराणों की 'जय' संज्ञा बतायी गयी है, इसे स्वयं सूर्य देव ने बताया है। उसके विशिष्ट विद्वान् किसी एक ब्राह्मण को अपने यहाँ रखकर उसके पालन पोषण करने वाले ब्राह्मण को जयोपजीविन् एवं वाचक कहते हैं। तथा नृप ! सूर्य के समस्त शास्त्र, एवं सप्ताश्व तिलक का परिज्ञाता ब्राह्मण, जो सौर (सूर्य) शास्त्र के तत्त्व को जानता है वह तत्त्ववित् बताया गया है।२५-२८। नृपसत्तम ! भास्कर देव की निरन्तर उपासना करने वाले तथा राजन् ! दिवाकर देव की भाँति भोजक ब्राह्मण के उपासक ब्राह्मणों को भास्कर के पूजन में भोजन करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। भोज्यों ब्राह्मणों के लक्षण मैंने बता दिये हैं, अब अभोज्य ब्राह्मणों के लक्षण बता रहा हूँ सुनो ! जिस ब्राह्मण की स्त्री वृषली (कोई शूद्र जाति की स्त्री) हो, तथा वह दूसरे स्त्री का उपभोक्ता हो उसे ब्राह्मणाधम बताया गया है।२९-३१। दैव (भाग्य) द्वारा कुष्ठ का रोगी और ब्रह्मघाती ब्राह्मण, यदि भोजक हो तो उसे कभी भी पूज्य न बनाये।३२। कुरुनन्दन ! अन्य देव के उपासक ब्राह्मण भी अभोज्य हैं। भोजक ब्राह्मण तो आदित्य का ही रूप है, क्योंकि वह उनके शरीर द्वारा उत्पन्न हुआ है।३३। उसी प्रकार आदित्य की उपासना न करने वाला, मुण्डी, व्यंग धारण करने वाला गौर वर्ण, शंख एवं पुष्प धारण करने वाला ब्राह्मण सर्वदा अभोज्य है।३४। राजन् ! जिस मनुष्य के घर भोजक पहुँच जाता है, उसके यहाँ भास्कर सम्बन्धी समस्त देव, पितर पहुँचते हैं।३५। जिस गृहस्थ के घर भोजक को एक बार भी भोजन कराया जाये उसके गृह से राक्षस, भूत, पिशाच, एवं योगिनियाँ पलायन कर जाती है।३६। दिव्य भोजकों को एक बार भोजन कराने से भगवान् भास्कर सात वर्ष तक तृप्त रहते है, अतः विद्वान् को चाहिए कि वह भोजकों को निरन्तर भोजन कराये। इनकी निंदा करने वाले ब्राह्मण को भी कभी भोजन न कराये।३७। जो स्वेच्छा पूर्वक अपने पति को त्याग कर स्वतंत्रता से घूमती फिरती हैं अर्थात् (खुला व्यभिचार करती हैं),

प्रच्छन्नं रोदते राजन्या नारी भवद्दोषतः । प्रोक्ता सा स्वैरिणी राजन्कुले नश्यति कामिनी ॥३९
योऽस्यां रतो भवेद्विप्रः स ज्ञेयः स्वैरिणीरतः । रङ्गोपजीवी कथको यश्च प्राकृतनर्तकः ॥४०
रङ्गोपजीवी राजेन्द्र तथा च बहुयाचकः । द्वे एते नामनी राजन्कथकस्य प्रकीर्तिते ॥
छलेनानेन [illegible] उद्भूतः कुरुनन्दन ॥४१
[illegible]स्तुतिं गायते विप्रः प्रोच्चैस्तु जनसंसदि । रंगोपजीवी प्रोक्तोऽयं द्वितीयः परिकीर्तितः ॥४२
सूचनं कथनं प्रोक्तं सर्वशास्त्रेषु भारत । सूचयँस्तु [illegible] स वै [illegible] ॥४३

शतानीक उवाच

अहो बत महत्कष्टं भवतो यद्विद्वदश्रुतिः । वेदाङ्गं ज्योतिःशास्त्रं तु षष्ठं प्रोक्तं मनीषिभिः ॥४४
षडङ्गो न भवेत्तेन रहितेन द्विजेन च । अभोज्यं पठनात्तस्य यद्बहुत्वाद्ब्राह्मणो द्विज ॥४५
भोज्योऽखण्डं यथो विप्रोऽनर्थकेन त्वनर्थकम् । विमृश्य कथ्यतां विप्र अत्र मे संशयो महान् ॥४६

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि भवता श्रूयतामत्र निर्णयः । यस्य जीव्यमिदं ज्ञेयमङ्गं विप्रस्य [illegible] ॥४७
सांवत्सरेण ज्योतिषं ज्ञानं नक्षत्रसूचकः । न स भोज्यो भवेद्राजन्यस्येयं जीविका [illegible] ॥४८
निष्कारणं पराणां च परोक्षं दोषकीर्तनम् । गुणानां च तथा गुप्तिः परिवादस्तु [illegible] ॥४९

उसी कुल कलंकिनी एवं पापिनी को 'स्वैरिणी' बताया गया है ।३८। राजन् ! जन्म-दोष वश प्रच्छन्न व्यभिचार रूप पाप करने वाली स्त्री को भी 'स्वैरिणी' कहा गया है राजन् ! वह भी कुल का नाश करती है ।३९। ऐसी स्त्रियों के साथ रमण करने वाले ब्राह्मण, तथा रंगोपजीवी, कत्थक (नृत्य करने वाले पुरुष), जो प्राकृत (स्वभावतः) नर्तक हैं, (भोजन कराने के अयोग्य हैं) राजेन्द्र ! कत्थकों के, रंगोपजीवी, एवं बहुयाचक दो प्रकार के नाम बताये गये हैं । कुरुनन्दन ! जो ब्राह्मण किसी सभा आदि जन समूहों में उच्च स्वर से गायन करता है, उसे 'रंगोपजीवी' कहते हैं । उसी प्रकार भारत ! जो नक्षत्रों की सूचना देते फिरते हैं, उन्हें 'नक्षत्र सूचक' कहा जाता है । (ये सभी अभोज्य हैं) ।४०-४३

शतानीक ने कहा—मुझे ब्राह्मणों के विषय में ऐसी बातें सुनकर महान् कष्ट हो रहा है, क्योंकि विद्वानों ने ज्योतिषशास्त्रों को छठाँ वेदांग बताया है ।४४। अतः बिना उसके अध्ययन किये ब्राह्मण 'षडंग पाठी' नहीं कहा जा सकता है किन्तु उसके अध्ययन करने वाले ब्राह्मण अभोज्य हैं (महान दुःख की बात है) हे द्विज ! इस विषय में मुझे महान् संदेह उत्पन्न हो गया है, भोज्य अखंड हो, तथा ब्राह्मण अनर्थ की प्राप्ति न करे, इसलिए इस विषय को पुनः विवेचनपूर्ण कहने की कृपा कीजिए ।४५-४६

सुमन्तु बोले—आप ने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, मैं इस विषय के निर्णय को कह रहा हूँ सुनो ! जिस ब्राह्मण का यह अंग (ज्योतिष शास्त्र) जीविका है, उसी के लिए निषेध किया गया है—राजन् ! जो ज्योतिषी ज्योतिष् शास्त्र का अध्ययन करके जनता को नक्षत्र आदि की सूचना (जीविका के नाते) देते हैं, वहीं अभोज्य बताये गये हैं ।४७-४८। जो अकारण परोक्ष में किसी के दोष का वर्णन एवं गुण का छिपाव करते हैं, उन्हें 'निन्दक' कहा जाता है । राजेन्द्र ! जो ब्राह्मण जीविका के नाते देवालय में देवताओं के

ब्राह्मणो यस्तु राजेन्द्र वृत्या कर्म करोति वै । देवतायतने चैव देवानां पूजनं तथा ॥५०
आधिपत्यं भक्षणं च नैवेद्यस्य परन्तप । स ज्ञेयो देवलो राजन्ब्राह्मणो ब्राह्मणाधमः ॥५१
नाधिकारस्तु विप्राणां भौमानां देवपूजने । वृत्त्या भरतशार्दूल आधिपत्ये विशेषतः ॥५२
यस्तु पूजयते देवीं ब्राह्मणो द्रव्यलोभतः । वृत्यै कुरुकुलश्रेष्ठ स याति नरकं ध्रुवम् ॥५३
देवालयेषु सर्वेषु अग्निकार्यं च सुव्रत । यः कुर्याद्द्रव्यलोभेन अधोगतिमवाप्नुयात् ॥५४
देवालयेषु सर्वेषु वर्जयित्वा शिवालयम् । देवानां पूजनं राजन्नग्निकार्येषु वा विभो ॥५५
अधिकारः स्मृतो राजन्भोजकानां न संशयः । पूजयन्तस्तु ते देवान्प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥५६
नैवेद्यं भुञ्जते यस्माद्भोजयन्ति च भास्करम् । पूजयन्ति च देवानां[1] दिव्यतन्त्रेण ते गताः ॥५७
पूजयित्वा तु वै देवान्नैवेद्यं भक्ष्य च प्रभोः । यान्ति ते परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥५८
ब्राह्मणश्चापि तं ब्रूयात्तीव्रे सति महामते । एवं करिष्ये श्रेयोऽर्थं नात्मनस्तव वा विभो ॥५९
इत्यामन्त्र्य ततो गच्छेत्स्वगृहं कुरुनन्दन । तथा परेऽह्नि सम्पूज्य देवं भक्त्या दिवाकरम् ॥६०
कृत्वा च पावकं राजन्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः । शाल्योदनं तथा मुद्गं सुगन्धं मुद्गमेव हि ॥६१
अपूपान्गुडपूपांश्च पयो दधि तथा नृप । एतैस्तु तृप्तिमायाति भास्करो नरसत्तम ॥६२
वर्ज्यानि भरतश्रेष्ठ शृणु त्वं गदतो मम । कुलत्थकान्मसूरांश्च निष्पावादींस्तथैव च ॥६३

पूजन आदि कार्य करते हैं तथा वहाँ के अधिपत्य स्वीकार कर देवता के लिए समर्पित किये गये नैवेद्य के भक्षण भी करते हैं वे भी अभोज्य हैं। परंतप ! राजन् ! वे ब्राह्मणाधम 'देवलक ब्राह्मण' कहे जाते हैं।४९-५१। भरतशार्दूल ! इस भूतल के ब्राह्मणों को सूर्य देव की मूर्ति पूजा करने का अधिकार नहीं है, विशेषकर उनके मंदिर के आधिपत्य स्वीकार करने वाले को।५२। कुरुकुलश्रेष्ठ ! जो ब्राह्मण द्रव्य के लोभवश देवी का पूजन करता है, उसे निश्चित नरक की प्राप्ति होती है।५३। सुव्रत ! सभी मंदिरों में जो द्रव्य के लोभवश हवन (यज्ञ) करता है, उसकी अधोगति होती है।५४। एक शिवालय के अतिरिक्त और सभी मन्दिरों में देव पूजन एवं कर्म करने का अधिकार भोजकों को दिया गया है इसमें संदेह नहीं। वे ही देवों की पूजा करते हुए उत्तम गति प्राप्त करते हैं।५५-५६। भास्कर के भोजन कराने एवं उनके नैवेद्य के भक्षण करने और देवों की पूजा करने से दिव्यधिकार द्वारा उन्हें उत्तम लोक प्राप्त होते हैं। सूर्य की पूजा एवं उनके लिए अर्पित किये गये नैवेद्य के भक्षण करने से उसे देव के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है।५७-५८। महामते! उनके (भोजक के) उग्र होने पर ब्राह्मण उनसे कहे कि 'विभो' मैं अपने अथवा आप के लिए नहीं प्रत्युत सर्वदा कल्याणार्थ यों ही करता आया हूँ, इसलिए ऐसा ही करूँगा कुरुनन्दन ! इस प्रकार उसे आमंत्रित कर अपने घर को प्रस्थान करे। पश्चात् दूसरे दिन भक्ति पूर्वक सूर्य देव की आराधना करके हवन के उपरांत ब्राह्मण भोजन कराये। नृप ! साठी चावल के भात, सुगंधित मूंग, मालपूआ, गुडमिश्रित माल पूआ, दूध और नृपसत्तम ! इन्हीं भक्ष्य पदार्थों द्वारा भास्कर देव अत्यन्त तृप्त होते हैं।५९-६२। भरत श्रेष्ठ ! किन पदार्थों का त्याग करना चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! कुलथी (मोथी), मसूर, निष्पाव आदि (मान्य

---

१. कर्मणः शेषत्वविवक्षया षष्ठी।

सिक्षुकं च तथान्यच्च राजमाषांस्तथैव च । नैतानि भास्करे दद्याद इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥६४
दुर्गन्धं यच्च कटुकमत्यल्पं भास्करस्य तु । विमिश्रांस्तंडुलांश्चापि न दद्याद्भास्कराय वै ॥६५
इत्थं भोज्य द्विजं राजन्प्राशयेदर्कसम्पुटम् । प्रणम्य शिरसा देवमुदकेन समन्वितम् ॥६६
गृहीत्वा केतनं यस्तु भजतेऽन्यत्र लोकतः । नाश्नन्ति पितरस्तस्य न देवा न च मानवाः ॥६७
निष्क्रम्य नगराद्राजन्गत्वा पूर्वोत्तरां दिशम् । नात्युच्चे नातिनीचे च शुचौ देशेऽर्कमुत्तमम् ॥६८
जातं वृष्ट्वा महाबाहो पूजयित्वा खगोत्तम : पूर्वोत्तरगताश्चैव यस्य शाखा विशन्नृप ॥६९
शाखाया अग्रतः पार्श्वे सुसूक्ष्मे पल्लवाश्रिते । सुश्लिष्टे न पृथग्भूते सम्पूज्य गृहमाव्रजेत् ॥७०
स्नातः पूज्य विवस्वन्तमर्कपुष्पैः खगोत्तम । ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु अर्को मे प्रीयतामिति ॥७१
प्राश्य मन्त्रेणार्कपुटं ततो भुञ्जीत वाग्यतः । देवस्य पुरतो वीर त्वस्पृशन्दशनैः पुटम् ॥७२
ॐ अर्कसम्पुट भद्रं ते भद्रं तेऽस्तु सदास्तु वै । ममापि कुरु भद्रं च प्रायश्चित्तप्रदो भव ॥७३
इमं मन्त्रं जपन्राजन्स्मरन्नर्कं महामते । स्थित्वा पूर्वमुखो ब्रह्म वारिणा सहितं नृप ॥७४
प्राश्य भुङ्क्ते च यो राजन्स याति परमां गतिम् । दन्तैरस्पृश्य हे वीर तत्पुटं चार्कसंज्ञितम् ॥७५
अनेन विधिना भक्त्या कर्तव्या सप्तमी सदा । यावद्वर्षं महाबाहो प्रीतयेऽर्कस्य श्रद्धया ॥७६
यश्चेमां सप्तमीं कुर्याद्भास्करं प्रीणयन्नरः । तस्याक्षयं भवेद्वित्तमचलं साप्तपौरुषम् ॥७७

विशेष), सिक्षुक, और राजमाष कल्याणेच्छुक को चाहिए कि ये सभी वस्तुएँ सूर्य के लिए समर्पित न करें। उसी प्रकार दुर्गंधवाली वस्तु, कड़वी वस्तु, चाहे उसमें कडवापन अत्यन्त ही क्यों न हो, और मिश्रित चावल (खिचड़ी) सूर्य के लिए कभी समर्पण न करना चाहिए ।६३-६५। राजन् ! इस प्रकार ब्राह्मण भोजन के उपरांत अर्कसंपुट का प्राशन करे। सर्वप्रथम जल समेत सूर्य देव को शिर से प्रणाम करना चाहिए। जो लोगों से पृथक् होकर केवल उनके केतन (चिह्न) रूप को ग्रहण कर उसकी पूजा आदि करते हैं, उनके घर पितर, देव, और मनुष्य कोई भी भोजन नहीं करते हैं ।६६-६७। राजन् ! नगर या गाँव से निकल कर पूर्व दिशा की ओर जाकर किसी पवित्र स्थान में उत्पन्न हुए उत्तमाक्षर के जो अत्यन्त ऊँचे या नीचे न हो, वृक्ष की पूजा सुसम्पन्न कर महाबाहो, खगोत्तम ! उसके उस शाखा के जो पूर्व और उत्तर की ओर गयी हो, अग्रभाग में स्थित किसी पल्लव के किसी पत्ते की, जो उनमें मिला हो पृथक् न हो, पूजा कर अपने घर लौट आयें ।६८-७०। खगोत्तम ! स्वयं स्नान कर अर्क पुष्पों द्वारा सूर्य की अर्चना एवं ब्राह्मण भोजन के उपरांत प्रार्थना करे 'सूर्य मेरे ऊपर प्रसन्न हों,' इस प्रकार उसे (अर्क पुष्पों) से अभिमंत्रित कर और मौन होकर सूर्य के सामने, दाँतों से उस का स्पर्श न होने पाये, भक्षण करे ।७१-७२। राजन्, महामते ! जो अर्क संपुट, इत्यादि मंत्र के जप करके पूर्वाभिमुख स्थित हो, जो जल समेत अभिमंत्रित कर उसके भक्षण करते हैं, पर, वीर ! उस अर्कपुट का दाँतों से स्पर्श न होने पाये, तो उसे उत्तम गति प्राप्त होती है ।७३-७५। महाबाहो ! श्रद्धा समेत वर्ष की समाप्ति तक प्रत्येक सप्तमी व्रत इसी तत्त्वविधान द्वारा समाप्त करना चाहिए इससे सूर्य प्रसन्न होते हैं। भास्कर के प्रसन्नार्थ जो पुरुष इस प्रकार सप्तमी व्रत के अनुष्ठान करते हैं, उसकी सात पीढ़ी तक अक्षय एवं निश्चल सम्पत्ति प्राप्त होती

सुवर्णं रजतं ताम्रं हिरण्यं च तथा क्षयम् । कृत्वेनां सिद्धिमायातः कौथुमिः सहसा गतः ।।७८
कुष्ठरोगाच्च वै मुक्तो जयस्तोमो महीपतिः । बृहद्वलध्वजः कोपि याज्ञवल्क्योऽथ कृष्णजः ।।७९
अर्कं चैव समाराध्य ततोऽगुस्तेऽर्कसाम्यताम् । इयं धन्यतमा पुण्या सप्तमी पापनाशिनी ।।८०
पठतां शृण्वतां राजन्कुर्वतां च विशेषतः । तस्मादेषा सदा कार्या विधिवच्छ्रेयसेऽनघ ।।८१

शतानीक उवाच

जनकादयो यथा सिद्धिं गता भानुं प्रपूज्य च । श्रुतं मया तु बहुशो न श्रुतं कौथुमिर्यथा ।।८२
सिद्धिं गतोऽर्कमाराध्य कुष्ठान्मुक्तश्च सुव्रत । कश्चासौ कौथुमिर्विप्रः कथं कुष्ठमवाप्तवान् ।।८३
कथमाराधयामास भानुं देवपतिं द्विज । एतन्मे विप्र निखिलं कीर्तयस्व समासतः ।।८४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु सूर्यपूजादिवर्णनं
नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१०।

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अर्कसम्पुटिकावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र शृणुष्व गदतो मम । आसीत्पुरा महाविद्वान्ब्राह्मणः स्थानगोतमः ।।१

है ।७६-७७। और स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, एवं हिरण्य की अक्षय निधि प्राप्त होती है, इसी सप्तमी व्रतानुष्ठान द्वारा कौथुमि ने शीघ्र सिद्धि प्राप्ति की है ।७८। एवं इसी के आचरण द्वारा वे कुष्ठ रोग से मुक्त हुए हैं और उसी प्रकार जयस्तोम राजा वृहद्वलध्वज, कोपी, याज्ञवल्क्य तथा कृष्ण पुत्र इस सप्तमी द्वारा सूर्य की उपासना करके सूर्य के समान हो गये हैं, इसलिए यह सप्तमी धन्यतम, पुण्य रूप, एवं पापनाशिनी है ।७९-८०। राजन् ! इसके पढ़ने, सुनने अथवा विशेष (सप्तमी व्रत का अनुष्ठान) करने से समस्त पापों के नाश होते हैं, अतः अनघ ! कल्याणार्थ इसके अनुष्ठान, विधान पूर्वक सदैव सुसम्पन्न करना चाहिए ।८१

शतानीक ने कहा—जनकादि ने जिस प्रकार सूर्य की आराधना द्वारा सिद्धि प्राप्ति की है, मैंने अनेकों बार सुना है, किन्तु, सुव्रत ! कौथुमि ब्राह्मण ने किस प्रकार सूर्य की आराधना करके सिद्धि प्राप्त की और कुष्ठ रोग से मुक्त हुए हैं, मैनें कभी नहीं सुना, तथा द्विज ! यह कौथुमि नामक ब्राह्मण कौन है, कैसे कुष्ठ रोगग्रस्त हुआ और उसने देवपति सूर्य की आराधना कैसे की, हे विप्र ! ये सभी बातें बताने की कृपा कीजिए ।८२-८४

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में सूर्य पूजादि वर्णन
नामक दो सौ दशवाँ अध्याय समाप्त ।२१०।

अध्याय २११

अर्कसम्पुटिकावर्णन

सुमन्तु बोले—राजेन्द्र ! आप ने अत्युत्तम प्रश्न किया है, मैं उसका उत्तर दे रहा हू, सुनो ! पहले

स गतः पुत्रसहितो जनकस्याश्रमं द्विजः । तत्र वादोऽभवत्तेषां विप्रैरन्यैर्नृपोत्तम ॥२
क्रोधाविष्टेन वै तत्र हतः कौथुमिना द्विजः । ते दृष्ट्वा हतं विप्रं त्यक्तः पित्रा स कौथुमिः ॥३
भ्रातृभिश्च महाबाहो तथा शिष्टैश्च कृत्स्नशः । प्रत्युक्तः स च सर्वैस्तु शोकदुःखसमन्वितः ॥४
तीर्थानि स जगामाथ दिव्यान्यायतनानि च । न च मुक्तस्त्वसौ विप्रः सहसा ब्रह्महत्यया ॥५
अनुक्तेऽथ तया विप्रे परो व्याधिरजायत । कर्णनासाविहीनस्तु पूयशोणितविस्रवः ॥६
पृथिवीं पर्यटन्सर्वां पुनरागात्पितुर्गृहम् । दुःखोपहतचित्तस्तु पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥७
पितर्गतस्तु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । मुक्तोऽस्मि नानया तात क्रूरया ब्रह्महत्यया ॥८
कृतेऽपि हि परे तात प्रायश्चित्ते तु मेऽनघ । किं करोमि क्व गच्छामि तातातीव रुजो मम ॥९
कृतेन कर्मणा येन अल्पायासेन मे विभो । नश्येत्तु ब्रह्महत्येयं व्याधिश्चायं परन्तप ॥१०
कथ्यतां मा चिरं तात कुरु निःश्रेयसं मम । हिरण्यनाभो विप्रस्तु श्रुत्वा वाक्यं सुतस्य तु ॥
शोकदुःखाभिभूतस्तु वाक्यं पुत्रमुवाच ह ॥११

हिरण्यनाभ उवाच

ज्ञातः पुत्र तव क्लेशः प्राप्तो यस्त्वटता महीम् ॥१२
तीर्थानि च त्वया वत्स प्रायश्चित्तानि कुर्वता । न चापि ब्रह्महत्या त्वां मुञ्चते मत्कुलोद्वह ॥१३

समय में एक उत्तम ब्राह्मण था, महान् विद्वान् उसने अपने पुत्र को साथ लेकर राजा जनक के यहाँ प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर जनक जी के प्रतिष्ठित विद्वानों के साथ उसके पुत्र से वाद-विवाद हो गया। १-२। नृपोत्तम ! क्रोध के आवेश में आकर उसके पुत्र कौथुमि ने किसी एक ब्राह्मण की हत्या कर डाली। ब्राह्मण की हत्या देखकर उसके पिता ने कौथुमि का त्याग कर दिया। महाबाहो ! उसी भाँति उसके भाई बन्धु एवं शिष्ट मण्डल आदि सभी के द्वारा त्याग किये जाने पर दुःखी एवं चिंतित होकर उसने तीर्थ यात्रा तथा दिव्य देवालयों में दर्शनार्थ आना-जाना आरम्भ किया। पर वह ब्राह्मण ब्रह्म हत्या से सहसा मुक्त न हो सका। ब्रह्म हत्या से बिना मुक्त हुए ही उसे एक दूसरी व्याधि (कुष्ठ) भी उत्पन्न हो गई। उसके द्वारा उसके नाक-कान गलित होकर गिर गये और प्रत्येक अंगों से (पीब) तथा रक्तस्राव होने लगा। उसने समस्त पृथ्वी का भ्रमण करने पर भी किसी भाँति उससे अपने को मुक्त होते न देख पुनः घर आकर दुःखपूर्ण वाणी द्वारा अपने पिता से कहा—हे पिता ! मैंने समस्त पुण्यतीर्थों तथा देवालयों की यात्रा की, किन्तु, इस क्रूर ब्रह्म हत्या से मुक्त न हो सका। तात ! मैंने इसके लिए उत्तम प्रायश्चित भी किये, पर, सफलता न मिली। हे अनघ ! यह महान् रोग मुझे अत्यन्त कष्ट दे रहा है, मैं क्या करूँ, और कहाँ जाऊँ। हे विभो ! कोई ऐसा छोटा उपाय बताने की कृपा कीजिए जिसके द्वारा थोड़े ही प्रयत्न करने पर इस ब्रह्म हत्या तथा रोग का शमन हो जाय, परंतप तात ! शीघ्र बताइये, देर न कीजिए तात ! मेरा कल्याण आप से ही हो सकेगा। ब्राह्मण हिरण्यनाभ ने अपने पुत्र की ऐसी बातें सुनकर चिंतित एवं दुःखी होकर उससे कहा—३-११

हिरण्यनाभ बोले—पुत्र ! पृथिवी के भ्रमण करते हुए तुम्हें जिन कष्टों का सामना करना पड़ा है, मुझे अच्छी तरह मालूम है। वत्स ! तुमने तीर्थयात्रा तथा प्रायश्चित्त किये, पर इस ब्रह्म हत्या से मुक्त न

उपायमेकं वक्ष्यामि येन त्वं मोक्षमाप्स्यसि । अल्पायासेन वै पुत्र शृणुष्व गदतो मम ॥१४

कौथुमिरुवाच

आराधयामि कं देवं ब्रह्मादीनां कथं विभो । शरीरेण विहीनोऽस्मि हेतुना सर्वकर्मणाम् ॥१५

हिरण्यनाभ उवाच

सिद्धिसन्ततियुक्तेन कर्मणा तुष्टिमाप्नुयुः । देवैरपि सुपूज्योऽयमुपलेपनमार्जनैः ॥१६
भानुरेको द्विजश्रेष्ठ ऊचुरेवं मनीषिणः । ब्रह्मा विष्णुर्महादेवो जलेशो धनदस्तथा ॥१७
भानुमाश्रित्य सर्वे ते मोदन्ते दिवि पुत्रक । तस्माद्भानोः समं देवं नाहं पश्यामि कञ्चन ॥१८
एवं भानुं सर्वमान्यमधुनाखिलकामदम् । पितरं मातरं तात नराणां नात्र संशयः ॥१९
तमाराधय वै भक्त्या जपन्मन्त्रमनुत्तमम् । इतिहासपुराणानि शृणु श्रद्धासमन्वितः ॥२०
आरधयन्रविं भक्त्या जपन्साम महामते । पुराणानि ततो लोके मोक्षं प्राप्स्यसि पुत्रक ॥२१

कौथुमिरुवाच

दिश सामानि वै तात प्रवराणि महामते । ॐकारप्रवरोद्गीथं प्रस्थानं च चतुष्टयम् ॥२२
पञ्चमः परिहारोऽत्र षष्ठमाहुस्तमद्भुतम् । निधनं सप्तमं साम्नां साप्तविध्यमिति स्मृतम् ॥२३
साप्तविध्यमिति प्रोक्तं हिङ्कारप्रणवेषु च । अष्टमं च तव शाठ्यं नवमं वामदेविकम् ॥२४

हो सके । मत्कुलकमल ! एक उपाय जिसके द्वारा तुम्हें इस कष्ट से मुक्ति प्राप्त हो जायेगी, पुत्र ! वह अल्प प्रयत्न साध्य है, मैं बता रहा हूँ सुनो ! ।१२-१४

कौथुमि ने कहा—विभो ! किस देव की आराधना करूँ, ब्रह्म आदि देवों की आराधना इस शरीर से कैसे की जा सकती है, क्योंकि महान् रोगग्रस्त होने के नाते मैं अपने को शरीर हीन समझता हूँ और सभी कर्म शरीर द्वारा ही सुसम्पन्न किये जा सकते हैं ।१५

हिरण्यनाभ बोले—(सूर्य) जिस कर्म द्वारा प्रसन्न होते हैं, उसके पग-पग में सिद्धियाँ निहित हैं, उपलेपन एवं मार्जन द्वारा समस्त देव उनकी पूजा करते हैं क्योंकि वे उनके पूज्य हैं ।१। मनीषियों ने बताया भी था कि द्विजश्रेष्ठ ! 'एक सूर्य ही पूज्य हैं' ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, वरुण, और कुबेर ये सभी सूर्य देव के आश्रित रहकर स्वर्ग में आनन्दानुभव करते हैं, इसलिए पुत्र ! सूर्य के समान कोई अन्य देव दिखायी नहीं दे रहा है ।१६-१८। तात ! सभी मनुष्यों के सूर्य मात्र निखिल कामनाओं के सफल करने वाले, एवं माता पिता हैं, इसमें संदेह नहीं है ।।१९। अतः भक्ति पूर्वक उनके मंत्र के जप करते हुए उनकी आराधना और श्रद्धा समेत इतिहास पुराणों का श्रवण करो ।२०। महामते ! भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना, शान्ति समेत (साम के) जप एवं पुराण श्रवण करने से तुम्हें इसी लोक में मोक्ष प्राप्त हो जायेगा ।२१

कौथुमि ने कहा—तात ! महामते ! उस उत्तम साम तथा ओंकार प्रवरोद्गीथ के जिसमें चार प्रस्थान बताये गये हैं, पाँचवाँ परिहार, छठाँ अद्भुत, सातवाँ निधन, इस प्रकार साम के सात भेद हैं ।२२-२३। इस प्रकार इस सात प्रकार के साम और हिंकार प्रणव वाले में भी सात विध्य हैं, आठवाँ शाठ्य, नवाँ वामदेविक (वामदेव वाला), दशवाँ ज्येष्ठसाम, जो ब्रह्मा को अत्यन्त प्रिय है, तात ! इन्हीं

ज्येष्ठं तु दशमं साम वेधसे प्रियमुत्तमम् । एतेषां तात साम्नां वै कण्ठे जाप्यं परं मतम् ॥
जपित्वा तु अहं शक्त्या गच्छामि परमं पदम् ॥२५

हिरण्यनाभ उवाच

साधु पुत्रं कुलं पूतं त्वत्पुत्रेण समेन च ॥२६
एवं गतस्यापि हि ते जाता पुत्र विधेः स्मृतिः । एवं तात न सन्देहः सामान्येतानि पुत्रक ॥२७
प्रवराणि हि साम्ना वै ब्रह्मणा कथितानि ह । एषामपि परं प्रोक्तं सामद्वयमनुत्तमम् ॥
तस्मादेकं परं जाप्यं सर्वपापभयापहम् ॥२८

कौथुमिरुवाच

कथ्यतां तात तच्छीघ्रं यत्तु सामद्वयं परम् । एतेषां तात साम्नां तु नान्यज्जाप्यं च यद्भवेत् ॥२९

हिरण्यनाभ उवाच

ज्येष्ठसामपरं पूर्वं द्वितीयं गदतः शृणु ॥३०
ततः श्राव्यं तृतीयं तु जप्तव्यं मुक्तिमिच्छता । ततश्च परमं प्रोक्तं स्वयं देवेन भानुना ॥३१
स्वयं दैवतमादिष्टं छन्दसामुत्तमं व्रतम् । प्रियं हिरण्यगर्भस्य प्रियं सूर्यस्य सर्वदा ॥३२
जपश्च विनियोगोऽपि लक्षणं च निबोध मे । सत्येन स्वरलीनस्तु शूकरादि स्मृतं बुधैः ॥३३
ऋतुर्भावस्तथा धर्मो विधर्मः सत्यकृत्तथा । धर्माधर्मौ तथा कार्यौ धर्मवेदनमेव च ॥३४
यदेभिर्गीयते शब्दै रुचिरं समयैर्द्विजैः । जाप्यं तत्परमं प्रोक्तं स्वयं देवेन भानुना ॥३५

सामों को कण्ठस्थ जपकर, (क्योंकि यही (कण्ठस्थ) जप उत्तम बताया गया है) मैं परम पद की प्राप्ति में समर्थ हो जाऊँगा ।२४-२५

हिरण्यनाभ बोले—पुत्र ! अच्छा कहा । तुम्हारे ही समान पुत्रों से कुल पवित्र होता है, क्योंकि इस विपन्नावस्था में भी तुम्हें विधान का स्मरण हो रहा है । पुत्र ! साम के इन सामान्य प्रवरों को स्वयं ब्रह्मा ने कहा है, इसमें संदेह नहीं । इनसे भी उत्तम दो साम बताये गये हैं और उनमें एक का जप अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि यह उत्तम और समस्त पाप नाशक हैं ।२६-२८

कौथुमि ने कहा—तात ! उसे शीघ्र बताने की कृपा कीजिए, जिन देवों को आप उत्तम बता रहे हैं क्योंकि उसके सामने किसी अन्य का जप अनावश्यक होगा ।२९

हिरण्यनाभ बोले—प्रथम ज्येष्ठ साम उत्तम बताया गया है, अब दूसरे को बता रहा हूँ सुनो ! ।३०। पश्चात् तीसरे को बताऊँगा, जो श्राव्य एवं मुक्ति के इच्छुकों के जप करने के अत्यन्त योग्य हैं, और जिसे सूर्य देव ने बताया है ।३१। वेद के इस व्रत विधान को देवों के हितार्थ स्वयं सूर्य ने बताया था, जो हिरण्य गर्भ (ब्रह्मा) तथा सूर्य को सदैव अत्यन्त प्रिय है ।३२। उनके जप, विनियोग, एवं लक्षणों को बता रहा हूँ, सुनो ! उसके स्वर विलीन होने पर पाठक को शूकरादि होना विद्वानों ने बताया है ।३३। ऋतु, भाव, धर्म, विधर्म, सत्यकृत्, धर्म-अधर्म, तथा धर्म वेदन, इनके गायन रुचिर शब्दों द्वारा ब्राह्मणों को करना चाहिए । क्योंकि उत्तम, जप को स्वयं सूर्य देव ने बताया है ।३४-३५। इसका जप करने वाला

एतद्वै जपमानस्तु पुनरावर्तते न तु । सर्वरोगविनिर्मुक्तो मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥३६
एतज्जाप्यं तु सञ्जप्य आराधय दिवाकरम् । गायन्साम तव प्रोक्तं शृणु पौराणिकं सुत ॥३७
ज्येष्ठसाम्नोऽपि ते पुत्र लक्षणं कथयामि हि । आद्यायादाज्यदोहेति ज्येष्ठसाम्नोऽपि लक्षणम् ॥३८
तव श्राव्यं जपं पुत्रज्येष्ठगार्थे रविः सदा । समाराधय शृण्वन्वै पुराणानिव पुत्रक ॥
एवमाराध्य देवेशं ततो दुःखं प्रहास्यसि ॥३९

सुमन्तुरुवाच

ततः श्रुत्वा पितुर्वाक्यं सामगः कौथुमिस्तथा ॥४०
आराधयामास रविं भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । ततः श्राव्यं जपन्राजंस्त्रिकाले पुरतो रवेः ॥४१
शृण्वतस्तु पुराणानि ब्रह्महत्या गता सदा । व्याधिश्च कुरुशार्दूल फलमेतच्छ्रुतस्य वै ॥४२
जपता यत्फलं तेन देवं पूजयता नृप । सोऽपि प्राप्तो रविं राजञ्छृणुष्वैकमना नृप ॥४३
स गतो मूर्तिमान्विप्रः प्रसादाद्भास्करस्य तु । प्रविश्य मण्डलं भानोः पदं यत्परमं विभोः ॥४४
आवर्तते न चाद्यापि गतोऽसौ परमं पदम् । इति ते कथितं राजन्नतः सिद्धिं महाद्विजः ॥४५
उपोष्येमां भवेद्वीर सप्तमीं याति भास्करम् । कौथुमिर्नरशार्दूल प्रसादाद्भास्करस्य तु ॥४६
जपमानस्तु वै सोऽपि पुराणश्रवणस्तथा । इत्येषा कथिता राजन्प्रथमा सप्तमी तथा ॥४७

पुनर्जन्मा नहीं होता है, समस्त रोगों की मुक्ति पूर्वक वह ब्रह्म हत्या से भी छुटकारा पा जाता है ।३६। इसी के जपपूर्वक तुम सूर्य की आराधना करो । तुम्हें इस प्रकार साम गायन का वर्णन बता दिया गया, सुत ! पर्व पौराणिक का लक्षण बताया जा रहा है, सुनो ! पुत्र ! ज्येष्ठ साम के लक्षण भी तुम्हें बता रहा हूँ । 'आद्यायादाज्य दोहेति' यही ज्येष्ठ साम का लक्षण है, पुत्र ! यही तुम्हारे लिए श्राव्य है तथा इसी के गायन द्वारा सूर्य की आराधना करो । पुत्र इसी प्रकार सूर्य की आराधना करने पर तुम्हारे कष्ट के शमन होंगे ।३७-३९

सुमन्तु बोले—सामगायन करने वाले कौथुमि ने अपने पिता की ऐसी बातें सुनकर श्रद्धा-भक्ति समेत सूर्य की आराधना प्रारम्भ की । राजन् ! सूर्य के सामने तीनों संध्याओं में वह उस का जप करने लगा । कुरुशार्दूल ! इसी भाँति (सूर्य) पूजन एवं पुराणों के श्रवण करने से उसकी ब्रह्महत्या तथा (कुष्ठ की) व्याधि नष्ट हो गई । यह उसके श्रवण का फल है । नृप ! जप करते हुए उसने सूर्य की आराधना द्वारा जिस फल की प्राप्ति की है, राजन् ! सावधान होकर सुनो ! मैं बता रहा हूँ । नृप ! भास्कर की कृपावश उस ब्राह्मण ने मूर्तिमान् (शरीर धारण कर) होकर विभु सूर्य के मण्डल में प्रवेश करके उनके उत्तम पद की प्राप्ति की है ।४०-४४। उसने ऐसे उत्तम पद की प्राप्ति की है, जिसके कारण आज भी उसे जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ा है । राजन् ! इस प्रकार तुम्हें इस उत्तम बाह्मण की सिद्धि की कथा बता दी गयी । वीर उपवास रहकर सप्तमी के व्रतानुष्ठान द्वारा उस कौथुमि ने भास्कर में सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति की है । यह भास्कर की कृपा है । राजन् ! इस प्रकार प्रथम सप्तमी तथा अर्क पुटवाली

अर्कस्य पुटिका पुण्या वित्तदा या प्रिया रवेः ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेऽर्कसम्पुटिकानामसप्तमीव्रतवर्णनं नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२११।

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सौरार्चनविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्येषा कथिता वीर अर्कसम्पुटिका तव । द्वितीया मरिचैर्या तु शृणुष्व गदतो मम ॥१
शुक्लपक्षे तु चैत्रस्य षष्ठ्यां सम्यगुपोषितः । पूजयेद्भास्करं भक्त्या सौरधर्मविधानतः ॥२

शतानीक उवाच

ब्रूहि सर्वान्मम ब्रह्मन्मन्त्रान्पुण्यान्विशेषतः । सूर्यादिहृदयं चापि शिरोन्यासयुतांस्तथा ॥३

सुमन्तुरुवाच

अहं ते कथयिष्यामि रहस्यं परमं विभो । यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं भक्त्या भानोर्महात्मनः ॥४
सर्वपापक्षयार्थाय तच्छृणुष्व महामते । सर्वपापहरं पुण्यमादित्यं लोकपूजितम् ॥५
शिखादामसमायुक्तं वकारामृतमुत्तमम् । ॐ वं फट् । ॐ एष सूर्यः स्वयं तात मन्त्रमूर्तिर्महाबलः ॥६

सप्तमी, जो पुण्य, एवं धन प्रदान करने वाली होती है, और सूर्य को अत्यन्त प्रिय है, बता दी गई।४५-४८
श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में अर्कसंपुटिका सप्तमी व्रत-वर्णन नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।२११।

अध्याय २१२

सौरार्चन विधि वर्णन

सुमन्तु ने कहा—वीर ! अर्कसंपुट वाली प्रथम सप्तमी की व्याख्या तुम्हें बता दी गयी अब मिर्च धारण वाली दूसरी सप्तमी की व्याख्या बता रहा हूँ, सुनो ! ।१। चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन उपवास करते हुए सौर धर्म के विधान द्वारा भक्ति पूर्वक सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।२

शतानीक बोले—हे ब्रह्मन् ! सभी पुण्यस्वरूप वेद मंत्र तथा विशेषकर आदित्य हृदय, जिसमें शिरोन्यास बताया गया है, ये सभी बातें मुझे बताने की कृपा कीजिए ।३

सुमन्तु बोले—विभो ! रहस्य समेत उस उत्तम विधान को, जिसे महात्मा सूर्य के विशेष भक्त होने के कारण ब्रह्मा ने स्वयं कहा था बता रहा हूँ सुनो ! ।४। महामते ! उस विधान पूर्ण आराधना को करने से समस्त पापों के नाश होते हैं । सभी पापों के अपहरण करने वाला, पुण्य, आदित्यरूप, एवं लोकपूजित उस उत्तम वकार को जिसमें शिखा लगायी गयी हो (ओं वं फट्) मंत्र रूप जाने । तात ! ओंसमेत

अस्यानुस्मरणान्मन्त्री नित्यं मधुरभोजनः । संवत्सरेण देवेशं साक्षाद्द्रानं प्रपश्यति ॥७
व्याधिमृत्व्योश्च निर्मुक्तः सूर्यलोकं स गच्छति । सततं जपमानस्तु राजन्मन्त्रविदां वरः ॥८
मनसा कर्मणा वाचा शापानुग्रहतोऽपि वा । क्षीराशी मौनमाश्रित्य विविक्ते नियतेन्द्रियः ॥९
जपित्वा द्वादशलक्षं सशरीरो दिवं व्रजेत् । त्रैलोक्यं चरते राजश्चिन्तामणिरिवेच्छया ॥१०
अथेदं परमं वाज्यं सूर्यस्य हृदयं शृणु । स्मर्तव्यं शुचिना नित्यं सर्वपापभयापहम् ॥११
वियुक्तं चन्द्रसंपुटम्मृकारेण च भारत । ॐकारदीपितं चैव हृदयं परिकीर्तितम् ॥१२
यकारबिन्दुसंयुक्तं वैशाखः कथितो बुधैः । यकारश्च वकारश्च मात्रा बिन्दुस्तथा नृप ॥१३
इष्टं कवचमादिष्टमस्त्रं वक्ष्ये निबोध मे । प्रणवादिं दुकारं च सानुस्वारं कटस्तथा ॥१४
इदमस्त्रं स्मृतं राजन्नमृतं च निबोध मे । बिन्दुचन्द्रसमायुक्तं वकारममृतं स्मृतम् ॥१५
ॐ ब्रह्मन्नस्त्रममृतं गायत्री चापि तेरतोरां धेनुर्दं परिकीर्तितम् । यकारश्च वकारश्च रिरोवेत्रमादिशेत् ॥१६
व्यनेत्र एतान्यङ्गानि सूर्यस्यामिततेजसः । आदित्यं मूर्ध्नि विन्यस्य हृदये हृदयं न्यसेत् ॥१७
सावित्री कण्ठदेशे तु अशेषं मूर्ध्नि चिन्तयेत् । अर्कन्यासो मयाख्यातो विद्वान्न्यासं प्रकल्पयेत् ॥१८
एकाक्षरस्य सूर्यस्य शृण्वर्चनविधिं परम् । प्रथमं किंकिणीमुद्रां बध्द्वा तु हृदये नृप ॥१९
प्राणायामे च तथा परिवीरसमन्वितम् । एकाक्षरं समावेत्ति आत्मशुद्ध्यर्थमादरात् ॥२०

यह मंत्र मूर्तरूप, महाबली, एवं स्वयं सूर्य रूप है, इसका अनुष्ठान करने वाला, इस मंत्र के स्मरण मात्र से मधुर भोजन प्राप्त करता है। इस प्रकार एक वर्ष तक इसके अनुष्ठान करने से सूर्य के साक्षात् दर्शन भी प्राप्त होते हैं।५-७। राजन्! वह मंत्र वेत्ता निरन्तर जप करके व्याधि एवं मृत्यु से मुक्त होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है। मन, वाणी, एवं शरीर द्वारा अनुष्ठान के पालन पूर्ण करते हुए क्षीर भोजी मौन, तथा विवेचन पूर्वक संयमी रहकर उस मंत्र की बारह लक्ष संख्या के जप करने से वह पुरुष इस शरीर से स्वर्ग प्राप्त करता है, चाहे वह प्रथम शापित ही क्यों न रहा हो, तथा राजन्! वह चिंतामणि (सूर्य) की भाँति तीनों लोकों में यथेच्छ विचरण करता है।८-१०। इसके पश्चात् सूर्य का हृदय, जो पवित्रता पूर्ण स्मरण करने योग्य एवं समस्त पापों के नाश करता है, बता रहा हूँ, सुनो! भारत! चन्द्राकार (मात्रा) समेत ऋकार, ओंकार समेत होने पर वह उनका हृदय बताया गया है।११-१२। नृप! बिंदु समेत यकार को विद्वानों ने 'वैशाख'[1] बताया है, और मात्रा बिन्दु समेत यकार तथा वकार को इष्ट 'कवच' बताया गया है अतः अस्त्र को मैं बता रहा हूँ सुनो! प्रणव (ओं) समेत दुकार, अनुस्वार समेत कट को अस्त्र बताया गया है। राजन्! इस अमृतास्त्र को मैं बता रहा हूँ, सुनो! चन्द्र बिन्दु समेत वकार (वं) को अमृतास्त्र कहा गया है।१३-१५। ब्रह्मन्! ओं समेत इस अमृतास्त्र तथा 'तेरोरां धेनुः' गायत्री, यकार, वकार, रिरोवेत्र, एवं व्यनेत्र, अमित तेज वाले सूर्य के यहीं अंग बताये गये हैं। शिर से आदित्य के न्यास पूर्वक हृदय में हृद के न्यास करें। कंठप्रदेश में गायत्री और सभी के न्यास शिर में होने चाहिए। इस प्रकार सूर्य के न्यास, जिसे विद्वानों ने बताया है, तुम्हें सुना दिया। अब एकाक्षरात्मक सूर्य के उत्तम अर्चन विधान को सुनो! बता रहा हूँ सुनो! नृप! प्रथम हृदय में किंकणी मुंद्रा से बाँधकर आत्म शुद्धि के लिए उस एकाक्षर का स्मरण चिन्तन करे प्राणायाम में भी यह मुद्रा आवश्यक है।१६-२०। पुनः उसी वकार

पुनस्त्वामेव बध्यं तु वकारेणात्मना लभेत् ॥२१
एतत्कृत्वादित्यसमो भवतीति न संशयः । कृत्वा च मुद्रां प्रासादे अस्त्रं योज्य महीपते ॥२२
प्रासादशोभनं स्याद्धि कृत्वा तद्भरतर्षभ । कवचेनार्कवाञ्छत्रुं क्षालयेद्वर्धनक्रियाम् ॥२३
ततोऽर्घ्यपात्रं पुष्पैश्च पूजयेद्विधिवन्नृप । हृदि ना स्नापयेद्देवं ततः पूजां समाचरेत् ॥२४
पद्ममुद्रा पुष्पगर्भा देवं शिरसि विन्यसेत् । आवाहितो भवेदेवं देवदेवो दिवाकरः ॥२५
हृदयेनार्घ्यसंयुक्तां पूजां बध्नीत भारत । हृदयेन च नैवेद्यं दातव्यं शक्तितो विभोः ॥२६
यथाशक्ति जपं कुर्यात्सुव्रती वाग्यतेन्द्रियः । अनेन विधिना राजन्सर्वकार्याणि साधयेत् ॥२७
न क्वचित्प्रतिघातः स्यान्न चापि दुरितं भवेत् । ततो मुद्रां परं बध्द्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥२८
देवं विसर्जयेत्पश्चाद्धृदयेन महीपते ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सौरार्चनविधिवर्णनं नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१२।

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सौरार्चनविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

दृष्ट्वा तु पावकं देवं पावकस्थं दिवाकरम् । अध्यात्तु सपरीवारं घुकारं परिकीर्तयेत् ॥१

द्वारा आत्मालम्भन करे। महीपते! इस प्रकार प्रासाद पर मुद्रा की रचना कर एवं अस्त्र समेत उसे सुसम्पन्न करने पर वह सूर्य के समान हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। भरतर्षभ! ऐसा करने से प्रासाद सुशोभित होता है। कवच के धारण करने से वह सूर्य के समान होकर वर्धन क्रिया द्वारा शत्रु का प्रक्षालन (सफाया) करता है।२१-२३। नृप! इसके उपरांत पुष्पों से अर्घ्यपात्र को अलंकृत कर उसी द्वारा हृदय में सूर्य के ध्यान करते हुए उन्हें स्नान कराना चाहिए।२४। पुष्प गर्भित पद्म मुद्रा का न्यास सूर्य देव के शिर स्थान में करना चाहिए। इस भाँति देवाधिदेव दिवाकर का आवाहन बताया गया है।२५। भारत! अर्घ्य समेत उनकी अर्चना सुसम्पन्न करके उन्हें हृदय से आबद्ध करे और उसी विभु (सूर्य) के लिए यथाशक्ति हृदय द्वारा ही (ध्यानमग्न) ही नैवेद्य समर्पित करना चाहिए।२६। इस व्रत के अनुष्ठापक का वाणी तथा इन्द्रियों के संयम पूर्वक यथाशक्ति जप करना चाहिए। राजन्! इसी विधान द्वारा इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर उसके सभी कार्यों की सिद्धि होती है।२७। कहीं पर भी उसके ऊपर आघात प्रतिघात एवं पाप-परिणाम दुःख के उदय नहीं होते हैं। महीपते! उस उत्तम मुद्रा द्वारा आबद्ध एवं प्रदक्षिणा की पूर्ति करके ही हृदय द्वारा सूर्य देव की विसर्जन क्रिया सुसम्पन्न करनी चाहिए।२८-२९

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में सौरार्चन विधि वर्णन नामक दो सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त।२१२।

अध्याय २१३

सौरार्चनविधिवर्णन

सुमन्तु ने कहा—पावकस्थ पावक रूप दिवाकर देव को देखकर उनके साङ्गोपांग घुकार रूप का

एवं कृते शोधनं स्यात्पावकस्य न संशयः । पद्मगर्भे ततो वायं हृदयाग्नौ समाक्षिपेत् ।।२
आवाहितो भवेद्देवदेवः साक्षान्न संशयः । ओंकारेणाहुतिशतं नेत्राञ्जनसमाधिना ।।३
पश्चाहुतीस्ततो दद्यादङ्गानां प्रीतये नृप । विसर्जनं ततः कुर्याद्धृदयेन विचक्षणः ।।४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरार्चनविधिवर्णनं
नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१३।

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मरिचसप्तमीव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

पद्मिनी च तथान्या तु मध्यमानामनी तथा । अर्किणी ज्वालिनी चैव तेजनी च गभस्तिनी ।।१
शङ्खमुद्रा च दशमी सूर्य वक्त्रा तथापरा । सहस्रकिरणा चैव मुद्रा द्वादश कीर्तिताः ।।२
दद्यादर्घ्यं तु पद्मिन्या व्योम बद्ध्वा जपेद्बुधः । उदयाश्रयः समाकर्षे मध्यमा व्याधिनाशिनी ।।३
अर्किण्या पश्यते सूर्यं विधिस्थस्तु भवेद्यदि । ज्वालिनीमुपसङ्गन्तुं बद्ध्वा सूर्यमुखो जपेत् ।।४
सप्ताहाद्वीक्षते सूर्यं सिध्यते च ततः स्वयम् । अवतीर्य पद्मखण्डं सूर्यादभिमुखो नरः ।।५

स्मरण करना चाहिए, जो सदैव रक्षक के रूप में रहता है । ऐसा करने से पावक का संशोधन हो जाता है, इसमें संदेह नहीं । पद्मगर्भित उस हृदय रूपी अग्नि में उस (प्रकार) का आक्षेप करना चाहिए । इसी भाँति देवाधिदेव सूर्य के आवाहन सुसम्पन्न होता है, इसमें संदेह नहीं । समाधिस्थ होकर ओंकार के उच्चारण पूर्वक का आहुति प्रदान करनी चाहिए । नृप ! इसके उपरांत बुद्धिमान् पुरुष को हृदय में ध्यान करते हुए उनका विसर्जन करना चाहिए ।१-४

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौरार्चन विधि वर्णन
नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।२१३।

अध्याय २१४

मरिचसप्तमीव्रत विधि वर्णन

सुमन्तु ने कहा—पद्मिनी, व्योम, मध्यमा, अर्किणी, ज्वालिनी, तेजनी, गभस्तिनी, शंखमुद्रा, सूर्यवक्त्रा, सहस्रकिरणा, आदि बारह मुद्राएँ बतायी गयी हैं ।१-२। पद्मिनी मुद्रा द्वारा (सूर्य के लिए) अर्घ्य प्रदान तथा व्योम मुद्रा द्वारा जप करना विद्वानों ने बताया है । किसी के आकर्षण में उदयाश्रय मुद्रा, तथा व्याधियुक्त होने के लिए मध्यमा मुद्रा का प्रयोग करने चाहिए ।३। विधानपूर्वक यदि अर्किणी मुद्रा का प्रयोग किया जाये, तो सूर्य के साक्षात् दर्शन प्राप्त होते हैं । सूर्याभिमुख होकर ज्वालिनी मुद्रा का प्रयोग करके जप करना चाहिए ।४। इस प्रकार जप करने से एक सप्ताह के भीतर सूर्य के दर्शन एवं सिद्धि प्राप्त हो जाती है । पद्मखण्ड में (कमलों के मध्य) पहुंचकर सौ सहस्र (एक लक्ष) संख्या के

जपञ्छतसहस्रं हि अक्षयं लभते निधिम् । शङ्खमुद्रादिभिरिमं सूर्यचक्रविधिं शृणु ॥६
अहोरात्रोषितो भूत्वा बद्ध्वा सूर्यमुखो नरः । स्थितः पद्मासने राजञ्जपंश्चाप्ययुतं मनुम् ।७
पश्यते तु त्र्यहात्सूर्यं भवेत्सिद्धिश्च मानसी । सहस्रकिरणं बद्ध्वा नाभिमात्रजले स्थितः ॥८
जपेदयुतमात्रं तु भवेत्तद्गतमानसः । सहस्रकिरणं देवं परं रश्मिभिरावृतम् ॥९
स पश्यति परं धाम भवेत्सिद्धिश्च पुष्कला । शापानुग्रहकर्तासौ सर्वेषां प्राणिनां भवेत् ॥१०
सर्वतः कञ्चुकं मुक्त्वा भवेद्ध विगतज्वरः ॥११
परौ गुल्फौ करौ कृत्वा संलग्नौ च परस्परम् । वामानामिकयाक्रम्य दक्षिणां तु कनीयसीम् ॥१२
वामा दक्षिणया चैव दक्षिणा वामया तथा । मुद्रैषा हि महापुण्या व्योममुद्रा प्रकीर्तिता ॥१३
बद्धया चानया सद्यो हीयन्ते व्याधयो नृणाम् । नान्यया रहितः कश्चित्सिद्धिं प्राप्नोति साधकः ॥१४
सर्वत्रैवोत्तमा ह्येषा मन्त्रतुष्टिरिति स्मृता । सूर्यस्य हृदयं सेयमर्कमुद्रेति विश्रुता ॥१५
बध्नीयात्सततं मन्त्रैरायुरारोग्यवृद्धये । सूर्यमण्डल अभ्यग्रे मन्त्री सूर्योदये स्थितः ॥१६
स सूर्याभिमुखो भूत्वा जपेन्मन्त्रं तु साधकः । दिनत्रयेण वीक्षेत ध्यानी जपपरायणः ॥१७
तं दृष्ट्वा नाश्नुते मृत्युं दुःखी न च न संशयः । प्राप्नोति च परं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥१८
उत्तानौ तु करौ कृत्वा पृष्ठलग्नौ परस्परम् । बद्ध्वा त्वङ्गुलयः सर्वाः सुप्रकीर्णा न संशयः ॥१९
आक्रम्य चाङ्गुलीमूलमङ्गुष्ठाभ्यां यथाक्रमम् । उदया नाम मुद्रैषा बध्नीयादुदये रवेः ॥२०

जप करने से मनुष्य को अक्षय निधि की प्राप्ति होती है । अब शंखमुद्रादि द्वारा किये जाने वाले उस दिन रात के विधान बता रहा हूँ । सुनो ।५-६। राजन् दिन रात के उपवास रह कर सूर्याभिमुख पद्मासन पर स्थित होकर दश सहस्र जप करने से मनुष्य को तीन दिन के भीतर सूर्य के दर्शन एवं मानसी सिद्धि प्राप्त होती है । नाभि तक जल में स्थित होकर 'सहस्रकिरण' मुद्रा के प्रयोग कर ध्यानमग्नावस्था में केवल दशसहस्र मंत्र के जप करने से सहस्र किरण (सूर्य) देव के, जो किरणों से आच्छन्न, उत्तम देव, तथा उत्तम धाम स्वरूप हैं, दर्शन एवं आत्यन्तिक सिद्धि प्राप्त होती है, और वही सभी प्राणियों के शापनाशानुग्रह करने से समर्थ भी होता है ।७-१०। सभी प्रकार के कञ्चुक के त्याग करने से ही शांति प्राप्त होती है ।११। हाथ एवं गुल्फ को परस्पर संलग्न करके बाँये हाथ की अनामिका को दाहिने हाथ की कनिष्ठिका पर रखना तथा दाहिने हाथ की अनामिका को बाँये हाथ की कनिष्ठिका पर रखना ही व्योम मुद्रा कही जाती है ।१२-१३। इस महापुण्य स्वरूप मुद्रा को व्योम मुद्रा बताया गया है, इसी से क्रमबद्ध होने पर मनुष्यों की व्याधियाँ शीघ्र नष्ट हो जाती हैं, एवं कोई भी साधक इसके बिना सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है ।१४। यही स्त्री में उत्तम एवं मंत्र तुष्टि के नाम से विख्यात है, और सूर्य के हृदय स्वरूप इसी मुद्रा को अर्क मुद्रा बताया गया है ।१५। इसी मंत्र के वेत्ता को चाहिए कि सूर्योदय समय में उनके मण्डल के सामने स्थित होकर आयु एवं आरोग्य वृद्धि के लिए मंत्र समेत उस मुद्रा द्वारा निरन्तर आबद्ध होवे ।१६। उस साधक को चाहिए कि सूर्याभिमुख होकर मंत्र का जप करे क्योंकि उससे ध्यान एवं जप करने वाला पुरुष, तीन दिन के भीतर सूर्य का दर्शन प्राप्त करता है, और उसे देख कर मृत्यु उसका भक्षण नहीं करती है, न वह किसी भाँति दुःखी रह सकता है, इसमें संदेह नहीं । इसके पश्चात् उसे उस स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ सूर्य देव स्वयं निवास करते हैं ।१७-१८। दोनों हाथों के पृष्ठ भाग को एक में मिलाकर अंगुलियों को एक दूसरे से आबद्ध करके दोनों अंगूठों से उन (अंगुलियों) के मूल भाग को क्रमशः पकड़े इसे उदय मुद्रा कहा गया है ।१९-२०। इस मुद्रा के प्रयोग

द्वादशाद्वीक्षते सूर्यं दिनान्तं हि न संशयः । सर्वपापहरा चैव सर्वपापविनाशिनी ॥२१
उदया च विना कामं मध्यतश्चैव तं क्षिपेत् । मध्यमा नाम विख्याता मध्यसूर्ये तु चिन्तयेत् ॥२२
मध्यमा विधिना तेन बद्ध्वा मुद्रां तु साधकः । अङ्गुल्योः परमङ्गुष्ठौ विधिना तावुभौ ग्रथेत् ॥२३
मुद्रा सास्तमनी ह्येषा सर्वतन्त्रेश्वरी शुभा । सूर्यस्यास्तमने मुद्रां बद्ध्वा जप्तं समारभेत् ॥२४
सहस्रं हि शतं वापि मुद्रां बद्ध्वा जपेद्बुधः । सर्वपातकसंमुक्तः सप्ताहादनुशोभनम् ॥२५
करौ परस्परं लग्नावङ्गुष्ठौ चोर्ध्वसंस्थितौ । उभौ चाङ्गुष्ठकौ चोर्ध्वौ संलग्नौ मूर्ध्नि संस्थितौ ॥२६
मुद्रा न मालिनी चैव निर्दहेत्पापपञ्जरम् । ब्रह्महत्यादि यत्पापं योजिता सा तु मूर्धनि ॥२७
विदर्भ्याङ्गुलयः सर्वा इषन्मध्यस्तथाग्रतः । ऊर्ध्वस्थितौ तथाङ्गुष्ठौ मुद्रेयं तर्जनी स्मृता ॥२८
सर्वव्याधिहरा देवी सर्वशत्रुविनाशिनी । एतां बद्ध्वा महापुण्यां सर्वान्स्तम्भयते रिपून् ॥२९
उभौ प्रसार्य वै हस्तौ मध्ये सार्धेन संस्थितौ । शेषानाम्ना ततश्चैव अङ्गुष्ठाग्रं तथा क्रमात् ॥३०
मुद्रा गभस्तिनी नाम सूर्यस्य हृदयं परम् । मृत्युं नाशयते ह्येषा बद्ध्वा सूर्योदये शुभा ॥३१
अर्घ्यकाले तु बध्नीयादर्चयाग्निं प्रपूजयेत् । जपकाले च बध्नीयान्मन्त्राणां नात्र संशयः ॥३२
विदक्षिणकनिष्ठिभ्यां तर्जनीभ्यां तथा भवेत् । तर्जनीभ्यां तथाङ्गुष्ठौ संलग्नौ तु परस्परम् ॥
जपं यः कुरुते नित्यं त्रिभिर्मासैर्विशुद्ध्यति ॥३३

करने से बारह दिन के भीतर सूर्य के दर्शन प्राप्त होते हैं, इसमें संदेह नहीं और यही समस्त पापोंके नाश करती है ।२१। उदया मुद्रा किसी भी प्रकार की हीनता से रहित है । मध्यकाल से जिसे सूर्य के प्रति प्रयुक्त किया जाता है वह मध्यमा नाम से प्रसिद्ध है । सूर्य के मध्याह्न का लीन होने पर उसका चिन्तन करना चाहिए । विधिपूर्वक मध्यमा मुद्रा को धारण करके साधक अपने दोनों अँगूठों को अंगुलियों के साथ गूँथे । ऐसी स्थिति में समस्त तन्त्रों में श्रेष्ठ कल्याणकारिणी वह अस्तमनी मुद्रा हो जाती है । सूर्य के अस्तमन में (अस्त होते समय) यह मुद्रा बाँधकर जप का आरम्भ करना चाहिए । इस मुद्रा को बाँधकर जो एक लाख बार सूर्य के मन्त्र का जप करता है, वह बुद्धिमान् प्राणी एक सप्ताह बाद ही समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । हाथ परस्पर मिले हुए हों तथा अँगूठे ऊपर की ओर स्थित हो, तथा सिर तक पहुँचे उसे मालिनी नामक मुद्रा कहते हैं, यह समस्त पाप के पिंजड़ों को जला डालती है । ब्रह्महत्या तक के पापों को नष्ट कर देती है । अंगुलियों को फैला कर थोड़ा मध्य भाग में तथा थोड़ा सामने की ओर ऊपर करके अँगूठों को ऊपर स्थापित करना तर्जनी नामक मुद्रा है । यह समस्त रोगों का नाश करने वाली तथा समस्त शत्रुओं की विनाशिनी है । इस महापुण्यमयी को बाँधकर समस्त शत्रुओं को स्तम्भित (वशीभूत) किया जा सकता है । दोनों हाथों को फैलाकर मध्य आधे भाग में स्थापित कर अँगूठों के अग्र भाग को चलाना सूर्य की परम हृदय गभस्तिनी नामक मुद्रा कही गयी है । सूर्य के उदय होते समय बाँधी गयी यह मुद्रा मृत्यु का भी नाश कर देती है । अर्घ्य देते समय इसको बाँधना चाहिए । और अग्नि की पूजा एवं अर्चना करनी चाहिए । इससे जप करने वाला व्यक्ति निःसन्देह मन्त्रों को बाँध लेता है । दाहिने हाथ की कनिष्ठिका पर दोनों हाथों की तर्जनियों को संलग्न करना तथा फिर अँगूठों को भी संलग्न करना, इस क्रिया के द्वारा जो जप करता है वह तीन महीने में शुद्ध हो जाता है ।२२-३३।

करौ तु सम्पुटौ कृत्वा तर्जन्यौ द्वे च कुञ्चयेत् ॥३४
सहस्रकिरणा ह्येषा सर्वमुद्रेश्वरेश्वरी । त्रिसन्ध्यमेतां बध्नीयात्साधको मन्त्रमूर्धनि ॥
नाशयेत्सर्वपापानि तमोराशिमिवांशुमान् ॥३५
मुद्रा मुद्रककुम्भेति बद्ध्वा पश्चाच्च मन्त्रयेत् । मासेन नाशयेत्कुष्ठं त्रिभिर्मासैर्न संशयः ॥
इति मुद्राङ्गसहितं सूर्यं पूजयते तु यः ॥३६
अनेन विधिना राजन्ब्रह्मा पूजयते रविम् । तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र पूजयानेन भास्करम् ॥३७
ततः सूर्यमवाप्येह सूर्यलोकं स गच्छति । अनेन विधिना यस्तु पूजयेत्सततं रविम् ॥३८
स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः । इत्थं पूज्य च देवेशमनेन विधिना नृप ॥३९
भोजयित्वा यथाशक्ति ब्राह्मणांश्च विधानतः । सप्तम्यां प्राशयेद्वापि मरिचं मन्त्रतस्तथा ॥४०
एकं गृहीत्वा मरिचमव्रणं च दृढं परम् । सजलं प्राशयेद्राजन्मन्त्रेणानेन वा स्मृतम् ॥४१
यथोक्तेन विधानेन पूजयित्वा दिवाकरम् । इति सम्प्राप्य मरिचं ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥४२
प्रियसङ्गमवाप्नोति तत्क्षणादेव नान्यथा । इतीयं सप्तमी पुण्या प्रियसङ्गमदायिनी ॥४३
कुर्यादेकेन मासांस्तु वत्सरेण स गच्छति । पुत्रादिभिर्नरश्रेष्ठ पुनः सङ्गममृच्छति ॥४४
कुरु तस्मान्महाबाहो त्वमेव प्रियदायिनीम् । उपोष्य इन्द्रो विधिवत्सुरामरिचसप्तमीम् ॥४५
संयोगं कृतवान्वीर सह शच्या विधानतः । उपोष्यैनां नलश्चापि दमयन्त्या महाबलः ॥४६

दोनों हाथों के संपुटित करके दोनों तर्जनियों को आकुञ्चित (टेढी) करने से 'सहस्र किरण' नामक मुद्रा होती है जो समस्त मुद्राओं में प्रधान मुद्रा बतायी जाती है तीनों संध्या समय उस मुद्रा के प्रयोग करने से साधक के समस्त पाप सूर्य द्वारा तमोराशि की भाँति नष्ट हो जाते हैं ।३४-३५। मुद्रककुंभा नामक मुद्रा के प्रयोग करने से तीन मास के भीतर कुष्ट के रोग नष्ट हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं । इस प्रकार मुद्राओं समेत सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।३६। राजन् ! इसी विधान द्वारा ब्रह्मा सूर्य की पूजा करते है अतः तुम भी ऐसा ही करो जिससे सूर्य तथा उनके लोक की प्राप्ति हो जाये । इस विधान द्वारा सूर्य की आराधना करने वाले उस उत्तम स्थान की प्राप्ति करते हैं, जहाँ सूर्य देव स्वयं निवास करते हैं । नृप ! इस प्रकार इस विधान द्वारा देवेश (सूर्य) की अर्चा करके यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करे तथा सप्तमी के दिन मिर्च को अभिमंत्रित करके उसका प्राशन (पारण) करे ।३७-४०। राजन् ! एक दृढ़ एवं व्रणरहित मिर्च का प्राशन जल समेत इसी मंत्र के उच्चारण पूर्वक करना चाहिए ।४१। उत्तम विधान-पूर्वक दिवाकर देव की पूजा के उपरांत मिर्च के प्राशन और मौन होकर भोजन करे ।४२। इससे उसी क्षण उसे अपने प्रिय के संगम की उपलब्धि होगी । इसीलिए इस पुण्य स्वरूप सप्तमी को प्रियसंगम दायिनी बताया गया है ।४३। अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए कोई इसका अनुष्ठान पूर्ण वर्ष तक करे तो नरश्रेष्ठ ! उसे पुनः उसके पुत्रादि का साथ प्राप्त हो ।४४। महाबाहो ! इसलिए तुम भी उस व्रतविधान को अवश्य करो, क्योंकि उपवास पूर्वक इसी मिर्च वाली सप्तमी के अनुष्ठान द्वारा इन्द्र ने शची का संयोग प्राप्त किया है । तथा महाबली नल ने उपवास रहकर इसी द्वारा दमयन्ती के संयोग और

रामोऽप्यासीतया सार्धमुपोष्यैनां नराधिप ॥४७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे मरिचसप्तमीव्रतवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१४।

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यमन्त्रोद्धारवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

तृतीयां सप्तमीं वीर शृणुष्व गदतो मम । निम्बपत्रैः स्मृता या तु परमा रोगनाशिनी ॥१

यथार्चनविधिर्वान्यो येन पूज्यते रविम् । देवदेवः शार्ङ्गपाणिः शङ्खचक्रगदाधरः ॥२

अथार्चनविधिं वच्मि मन्त्रोद्धारं निबोध मे ॥३

ॐ खषोल्काय नमः । मूलमन्त्रः । ॐ विटि २ शिरः । ॐ सहस्ररश्मये अस्त्रम् । ॐ सहस्रकिरणाय २०० ऊर्ध्वबन्धः । ॐ घनाय भूतमाथिने नमः इति भूतबन्धः । ॐ ज्वल २ प्रज्वल २ अग्निप्रकर ॥४

ॐ आदित्याय विद्महे विश्वभागाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ॥५

॥ गायत्रीसङ्कलीकरणमिदम् ॥ ॐ धर्मात्मने नमः ऐशान्याम् । ॐ दक्षिणाय नमः आग्नेय्याम् । ॐ वज्रपाणयेऽनन्ताय नमः उत्तरतः । ॐ श्यामपिङ्गलाय नमः ऐशान्याम् । ॐ अमृताय नमः आग्नेय्याम् । ॐ बुधाय सोमसुताय नमो दक्षिणतः । ॐ वागीश्वर सर्वविद्याधिपतये नैर्ऋत्याम् । ॐ शुक्राय

नराधिप ! राम ने भी इसी के उपवास आदि द्वारा सीता के साथ प्राप्त किये हैं ।४५-४७

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में मरिचसप्तमी व्रत वर्णन नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।२१४।

अध्याय २१५

सूर्यमंत्र के उद्धार का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—वीर ! मैं उस तीसरी सप्तमी के व्रत-विधान जिसमें नीम के पत्ते का पारण बताया गया है, बता रहा हूँ, सुनो ! नीम के पत्ते वाली यह सप्तमी परम रोग के नाश करने वाली बतायी गयी है ।१। इस अर्चन-विधान जिसके द्वारा देवाधिदेव, शार्ङ्गपाणि, शंख चक्र गदा के धारण करने वाले सूर्य की उपासना की जाती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ।२-३। 'ओं खषोल्काय नमः' यही मूलमंत्र है । 'ओं विटि' से दो बार शिर का स्पर्श करे, 'ओं सहस्र रश्मये' से अस्त्र 'ओं सहस्र किरणाय' से ऊर्ध्व बंधन' 'ओं घनाय ' आदि से भूतबंधन, ओं ज्वल, इत्यादि से गायत्री मिश्रित उच्चारण करे । ईशान में धर्म के, आग्नेय में दक्षिण के, उत्तर में वज्र पाणि के, ईशान में श्याम पिंगल के, आग्नेय में अमृत के, दक्षिण में सोमसुत बुध के, उत्तर में समस्त विद्याधिपति वागीश्वर के, पश्चिम में महर्षि शुक्र के, वायव्य में सूर्यात्मा

महर्षये भूताय पश्चिमतः । ॐ ईश्वराय सूर्यात्मने वायव्याम् । ॐ कृतवते नमः उत्तरतः । ॐ राहवे नमः ऐशान्याम् । ॐ अन्तराय सूर्यात्मने नमः पूर्वतः । ॐ ध्रुवाय नमः ऐशान्याम् । ॐ अन्तराय सूर्यात्मने नमः पूर्वतः । ॐ ध्रुवाय नमः ऐशान्याम् । ॐ भगवते पूषन्मालिन्सकलजगत्पते सप्ताश्ववाहन भूभुज परमसिद्धिशिरसि गतं गतं गृह्ण तेजोऽग्ररूप अनंतज्वाल २ ।

आवाहनमन्त्रः

ॐ नमो भगवते आदित्याय सहस्रकिरणाय यथासुखं पुनरागमनाय इति ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यमन्त्रोद्धारवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१५।

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुराणश्रवणविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वर्चाविधिं राजन्मन्त्रपूतेन वारिणा । प्रोक्षणीयं प्रयत्नेन किमर्थं सुसमाहितः ॥१
हृदयादिष्वथाङ्गेषु मन्त्रं विन्यस्य मन्त्रवित् । आत्मानं भास्करं ध्यात्वा परिचारसमन्वितः ॥२
कुर्यात्सम्मार्जनीं मुद्रां दिशां च प्रतिबोधनम् । पाताले भूशोधनं चैव नभसश्च तथा मतम् ॥३
अर्चनस्य प्रकारोऽयं सर्वेषामीप्सितप्रदः । सर्वैरपि बुधैर्वीर पद्यमेतत्प्रकीर्तितम् ॥४

ईश्वर, के उत्तर में कृतवान् के, ईशान में राहु के, पूर्व में अन्तरात्मा सूर्य के, ईशान में ध्रुव के, तथा ओं भगवान् आदित्य, सकल जगत् के पति, सप्ताश्ववाहन वाले, नृप, उत्तम सिद्धि स्वरूप, तेजस्वी एवं उग्ररूप, और अंनत ज्वाला वाले यहाँ उत्तम स्थान में आकर इसे स्वीकार करो । तथा ओं नमः भगवन् ! आदित्य, सहस्र किरण, यथासुख, पुनः यहाँ आगमन के लिए कृपा कीजिएगा । इस प्रकार सूर्य के आवाहन एवं विसर्जन करना चाहिए ।४-६

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में सूर्यमन्त्रोद्धार वर्णन नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।२१५।

अध्याय २१६

पुराण के श्रवणविधान का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—राजन् ! उस अर्चन-विधान को, जिसमें सावधान होकर मंत्र पूत (अभिमंत्रित) जल से प्रोक्षण क्यों किया जाता है, बता रहा हूँ, सुनो ! मंत्रवेत्ता प्रथम हृदयादि अंगों में मंत्र के न्यास पूर्वक साङ्गोपाङ्ग भास्कर रूप में स्वयं का ध्यान करके सम्मार्जनी मुद्रा के प्रयोग, दिशाओं के प्रति बोधन (ज्ञान) एवं पाताल तथा आकाश तल के संशोधन करना, यही सभी कामनाओं के सफल करने वाले अर्चन का प्रकार बताया गया (स्वरूप) है । समस्त विद्वद्गण इसे ही 'पद्य कहा करते हैं ।१-४। किसी

अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं शुचौ देशे सकर्णिकम् । आवाहनीं ततो बद्ध्वा मुद्रामावाहयेद्रविम् ।।५
खषोल्कं स्नापयेत्तत्र स्वरूपं लोभदायकम् । स्थापयेत्स्नापयेच्चैव मन्त्रैर्मन्त्रशरीरिणम् ।।६
आग्नेय्यां दिशि देवस्य हृदयं स्थापयेन्नरः । ऐशान्यां तु शिरः स्थाप्य नैर्ऋत्यां विन्यसेच्छिखाम् ।।७
पौरन्दर्यां न्यसेन्नेत्रे एकाग्रहृदयस्तु सः । आवाह्य चैकं कवचं वारुण्यामस्त्रमेव ।।८
ऐशान्यां स्थापयेत्सोमं पौरन्दर्यां तु लोहितम् । आग्नेय्यां सोमतपनं याम्यां चैव बृहस्पतिम् ।।९
नैर्ऋत्यां [1]दानवं शुक्रं वारुण्याञ्च शनैश्चरम् । वायव्यां तथा केतुं कौबेर्यां राहुमेव च ।।१०
द्वितीयायां तु कक्षायां देवतेजः समुद्भवान् । स्थापयेद्द्वादशादित्यान्काश्यपेयान्महाबलान् ।।११
भगः सूर्योऽर्यमा चैव मित्रो वरुण एव च । सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महाबलः ।।१२
त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते । पूर्वे चेन्द्राय दक्षिणे यमाय पश्चिमे वरुणाय उत्तरे
कुबेराय ऐशान्यामीश्वराय आग्नेय्याग्निदेवतायै नैर्ऋत्यां पितृदेवेभ्यो वायव्यां वायवे ।।
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता । शेषश्च वासुकिश्चैव रेवती च विनायकः ।।
महाश्वेता महादेवी राज्ञी चैव सुवर्चला ।।१३
तथान्यो वापि देवानां समूहस्तत्र तत्र ह । तथान्यो लोकविख्यातो योगः प्रोक्तश्च दक्षिणे ।।१४
पुरस्ताद्भासुरस्थाने स्थापनीया विजानता । सिद्धिर्वृद्धिः स्मृतिर्देवी श्रीश्चैवोत्पलमालिनी ।।१५
स्थाप्या स्वदक्षिणे पार्श्वे लोकपूज्या समन्ततः । प्रज्ञावती क्षुधा वीर हारीता बुद्धिरेव च ।।१६

पवित्र प्रदेश में अष्टदल कमल की रचना करे जिसमें सौन्दर्य कर्णिका निर्मित की गई हो । पश्चात् उसमें आवाहनीय मुद्रा के प्रयोग द्वारा सूर्य का आवाहन करना चाहिए । सूर्य के खषोल्क स्वरूप का जिसमें अधिक लोभ-लाभ निहित है, मंत्र रूपी सम्पन्न शरीर का मंत्र पूर्वक स्थापन एवं स्नान सुसम्पन्न करे ।५-६। मनुष्य को एकाग्रचित्त होकर आग्नेय दिशा में सूर्य देव के हृदय ईशान में शिर, नैर्ऋत्य में शिखा, पूर्व में नेत्र की कल्पना करके उनके आवाहन एवं पश्चिम दिशा में कवच तथा शस्त्र तथा अस्त्र की कल्पना करनी चाहिए ।७-८। इसी प्रकार ईशान में सोम, पूर्व में भौम, आग्नेय में बुध, दक्षिणा में बृहस्पति, नैर्ऋत्य में दानव श्रेष्ठ शुक्र, पश्चिम में शनैश्चर, वायव्य में केतु, उत्तर में राहु की स्थापना करनी चाहिए ।९-१०। दूसरी कक्षा में सूर्य देव के तेज द्वारा उत्पन्न एवं महाबली बारह आदित्यों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, चन्द्र, एवं विष्णु यही बारह सूर्यों के नाम हैं । पूरब में इन्द्र, दक्षिण में यम, पश्चिम में वरुण, उत्तर में कुबेर, ईशान में ईश्वर (शिव), आग्नेय में अग्नि देवता, नैर्ऋत्य में पितृ देव, वायव्य में वायु, एवं जया, विजया, जयंती, अपराजिता, शेष, वासुकि, रेवती, विनायक, महाश्वेता, महादेवी (सूर्य पत्नी) राज्ञी देवों के अन्य समूह, तथा लोक विख्यात योग की प्रतिष्ठा दक्षिण दिशा में करनी चाहिए । भास्कर के सामने उत्तम स्थान में सिद्धि, वृद्धि, स्मृति एवं कमल की मालाओं से सुशोभित श्री की स्थापना होनी चाहिए, वीर ! उनके दक्षिण पार्श्व में लोक पूज्य, प्रज्ञावती, क्षुधा, हारीता, तथा बुद्धि की प्रतिष्ठा भास्कर की श्री के इच्छुकों को

---

१. दानवास्मन्त्यस्येति दानवः, अर्शआद्यच ।

स्थाप्य बुद्धिमती नित्यं श्रोंकार्मैर्वा विवस्वतः। ऋद्धिश्चैव दिसृष्टिश्च पौर्णमासी विभावरी ।।
स्थाप्याश्च स्वोत्तरे पार्श्वे इत्येता देवशक्तयः ।।१७
दीपश्चान्नमलङ्कारो वासः पुष्पाणि मन्त्रतः । देयानि देवदेवाय सानुगाय समूर्तये ।।१८
विधिनानेन सततं सदा योऽर्चयति भास्करम् । सम्प्राप्य परमान्कामान्ततो भानुसदो व्रजेत् ।।१९
अनेन विधिना यस्तु भोजयेद्भास्करं नृप । त्वं निम्बकटुकात्मासि आदित्यनिलयस्तथा ।।
सर्वरोगहरः शान्तो भव मे प्राशनं सदा ।।२०
इत्थं प्राश्य जपेद् भूमौ देवस्य पुरतो नृप । ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु शक्त्या दत्त्वा तु दक्षिणाम् ।।२१
भुञ्जीत वाग्यतः पश्चान्मधुरं क्षारवर्जितम् । इत्येषा वर्षपर्यन्तं कर्तव्या चैव सप्तमी ।।२२
कुर्वाणः सप्तमीमेतां सर्वरोगैः प्रमुच्यते । सर्वरोगविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं स गच्छति ।।२३

सुमन्तुरुवाच

अथ भाद्रपदे मासि सिते पक्षे महीपते । कृत्वोपवासं सप्तम्यां विधिवत्पूजयेद्रविम् ।।२४
माहेश्वरेण विधिना पूजयेदत्र भास्करम् । अष्टम्यां तु पुनः स्नातः पूजयित्वा दिवाकरम् ।।२५
दद्यात्फलानि विप्रेभ्यो मार्तण्डः प्रीयतामिति । खर्जूरं नारिकेलं च मातुलिङ्गफलानि च ।।२६
देवस्य पुरतो दत्त्वा तथा चाम्रफलानि च । इति ते कथितं राजन्सप्तमीफलमादितः ।।२७
महातपो महाश्रेष्टं भास्करस्य विशाम्पते । यच्छ्रुत्वा मानवो राजन्मुच्यते ब्रह्महत्यया ।२८

नित्य करनी चाहिए । ऋद्धि, विसृष्टि, पौर्णमासी, विभावरी, इन देव शक्तियों की प्रतिष्ठा उनके उत्तर पार्श्व में करनी चाहिए।११-१७। मंत्रोच्चारण पूर्वक दीप, अन्न, आभूषण, वस्त्र, और पुष्पों को देवाधिदेव सूर्य तथा मूर्त रूप उनके गणों को प्रदान करना बताया गया है।१८। इस भाँति विधान पूर्वक जो भास्कर की अर्चा निरन्तर करता है, उसे सभी कामनाओं की सफलता पूर्वक भानु लोक की प्राप्ति होती है।१९। नृप ! इसी विधान द्वारा भास्कर को भोजन कराये—हे नीम तू कड़वी होती हुई सूर्य का आवास स्थान (घर) रूप है, इसलिए 'मेरा यह प्राशन सर्व रोग नाशक एवं शांत' हो । नृप ! इस प्रकार सूर्य के सामने भूमि में इसके प्राशन पूर्वक जप करें । पुनः इसके उपरांत ब्राह्मणों को भोजन कराकर शक्त्यनुसार दक्षिणा उन्हें प्रदान कर मौन होकर क्षार (नामक) के त्याग पूर्वक मधुर भोजन करे इसी प्रकार पूर्ण वर्ष की सभी सप्तमी के व्रतानुष्ठान सुसम्पन्न करना चाहिए इसमें समस्त रोगों की शान्ति होती है, और सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।२०-२३

सुमन्तु बोले—महीपते ! भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन उपवास कर माहेश्वर विधान समेत सूर्य की पूजा करनी चाहिए।२४। पुनः अष्टमी में स्नान करके सूर्य की पूजा सुसम्पन्न करने के उपरांत 'सूर्य प्रसन्न हों' ऐसी भावना रख खजूर, नारियल, एवं विजौरानीबू, इन फलों को ब्राह्मण के लिए प्रदान करे। सर्वप्रथम आम समेत इन फलों को सूर्य देव के सामने रख उन्हें निवेदित करे पश्चात् ब्राह्मण को अर्पित करे। राजन् ! इस भाँति फल सप्तमी की व्याख्या तुम्हें मैंने सुना दी। विशाम्पते ! भास्कर का यह अत्युत्तम व्रत है, राजन् ! इसके श्रवण मात्र से मनुष्य ब्रह्म हत्या के दोष से मुक्त हो जाता है।२५-२८।

तवेदं परमं पर्व कथितं ब्रह्मसंज्ञितम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यन्ते मानवा नृप ॥२९
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । सर्वतीर्थाभिगमने वेदाभ्यासे च यत्फलम् ॥
यत्फलं पृथिवीदाने तत्सर्वं प्राप्नुयान्नरः ॥३०
राजसूयसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । सहस्रशतदानस्य फलं विन्दति मानवः ॥३१
लेशत्वं ब्राह्मणो गच्छेत्क्षत्रियो विप्रतां व्रजेत् । वैश्योऽपि क्षत्रतां याति शूद्रो वैश्यत्वमेव च ॥३२
सूतमागधबन्द्याद्या ये चान्ये सङ्करोद्भवाः । तेऽपि यान्त्युत्तमं स्थानं पुराणश्रवणाद्विभो ॥३३
इतिहासपुराणाभ्यां नत्वन्यत्पावनं नृणाम् । येषां श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥३४
विधिना राजशार्दूल शृण्वतां यत्फलं किल । यथोक्तं नात्र सन्देहः पठनात् च विशांपते ॥३५

शतानीक उवाच

भगवन्केन विधिना श्रोतव्यं भारतं नरैः । चरितं रामभद्रस्य पुराणानि विशेषतः ॥३६
कथं तु वैष्णवा धर्माः शिवधर्मा अशेषतः । सौराणां चापि विप्रेन्द्र उच्यतां श्रवणे विधिः ॥३७
वाचनीयं कथं चापि वाचको द्विजसत्तम । लक्षणं चास्य मे ब्रूहि वाचकस्य महात्मनः ॥३८
स्वरूपं चैव मे ब्रूहि खषोल्कस्य महात्मनः । फलं च पूजिते किं स्याद्वाचके विधिवद्द्विज ॥३९
पारणेपारणे पूज्यो वाचकः श्रावकैः कथम् । समाप्ते भगवन्किंकिं देयं पर्वणि वाचके ॥
न च किं कार्यसिद्धं यत्सिद्धं पर्वणि पर्वणि ॥४०

नृप ! इस प्रकार के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । सहस्र अश्वमेध, सौ वाजपेय, समस्त तीर्थों की यात्रा, वेदाध्ययन, पृथिवी दान, सहस्र राजसूय, सौ वाजपेय, सौ सहस्र के दान, इनके समस्त फलों की प्राप्ति मनुष्य को पुराण श्रवण मात्र से होती है, तथा विभो ! उसके सुनने मात्र से ही ब्राह्मण देवत्व, क्षत्रिय ब्राह्मणत्व, वैश्य, क्षत्रियत्व, और शूद्र वैश्यत्व की प्राप्ति करते हैं, एवं सूत, मागध, बन्दी आदि अन्य सभी वर्ण संकर वाले उत्तम स्थान की प्राप्ति करते हैं ।२९-३३। मनुष्यों के लिए इतिहास एवं पुराण से अन्य कोई पवित्रता की वस्तु नहीं है, क्योंकि जिसके श्रवणमात्र से ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ।३४। राजशार्दूल ! विधान पूर्वक इसके श्रवण, एवं विशाम्पते ! पठनमात्र से भी जिन फलों की प्राप्ति बतायी गयी है, वे सत्य हैं इसमें संदेह नहीं ।३५

शतानीक ने कहा—हे भगवन् ! मनुष्यों को किस विधान द्वारा महाभारत का श्रवण करना चाहिए तथा रामभद्र के चरित्र (रामायण) एवं विशेषकर पुराण, के भी कैसे श्रवण हों ।३६। हे विप्रेन्द्र वैष्णवधर्म तथा सम्पूर्ण शिव धर्म और सूर्य धर्म के श्रवण विधान भी बताने की कृपा कीजिए ।३७। द्विजसत्तम ! किस भाँति के वाचकों द्वारा पुराणों के पारायण कराना चाहिए, अतः वाचक महात्मा के लक्षण, एवं खषोल्क माहात्म्य के स्वरूप को बताने की कृपा कीजिए । द्विज ! वाचक की विधान पूर्वक पूजा करने से किस फल की प्राप्ति होती है, प्रत्येक पारण में श्रोताओं द्वारा वाचक की किस भाँति पूजा होनी चाहिए, तथा भगवन् ! पर्व की समाप्ति में वाचक के लिए क्या-क्या देना चाहिए, एवं प्रत्येक पर्व में जिस कार्य की सिद्धि होती है पृथक् उनकी सिद्धि संभव नहीं है क्या ३८-४० ?

सुमन्तुरुवाच

सम्यक्पृष्टोऽस्मि राजेन्द्र इतिहासपुराणयोः ॥४१
श्रवणे तु महाबाहो श्रूयतां यन्मया पुरा । पृष्टो वोचन्महातेजा विरिञ्चो भगवान्गुरुः ॥४२
हन्त ते कथयाम्येष पुराणश्रवणे विधिम् । इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या विशेषतः ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्यादिभिर्विभो ॥४३
सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः । तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शङ्करस्तथा ॥४४
प्रत्यूषे भगवान्ब्रह्मा दिनान्ते तुष्यते हरिः । महादेवस्तथा रात्रौ शृण्वतां तुष्यते विभुः ॥
पारणानि दशाहेषु एके कुर्वन्ति तानि भोः ॥४५
भवेद्वै राजशार्दूल शृणु तेषां च यत्फलम् । विधानं वाचकस्येह शृण्वतां च विशांपते ॥४६
शुद्धवासा गृहादेत्य स्थानं यत्समदान्वितम् । प्रदक्षिणं ततो गत्वा यस्तस्मिन्देव एव हि ॥४७
नात्युच्चं नातिनीचं च ह्यासनं भजते ततः । आसनं तस्य वै राजन्बोधकस्य सदा भवेत् ॥४८
वन्दनीयं प्रपूज्यं च श्रोतृभिः कुरुनन्दन । व्यासपीठं तु तत्प्रोक्तं गुरोरासनमादिशेत् ॥४९
न स्थेयं श्रावकैस्तस्माद्वाचकस्यासने नृप । राजासने यथा भृत्यैर्यथा पुत्रैः पितुर्नृप ॥५०
यथा शिशुर्गुरोर्वीर स तेषां हि गुरुर्मतः । देवार्चानग्रतः कृत्वा ब्राह्मणार्चां विशेषतः ॥५१
उपविश्य ततः पश्चाच्छ्रावकः शृणुयान्नृप । समस्तानागतान्कृत्वा ततः पुस्तकमाददेत् ॥५२

सुमन्तु बोले—राजेन्द्र ! आप ने अत्युत्तम प्रश्न किया है, महाबाहो ! पहले समय में इतिहास एवं पुराण के सुनने के विषय में पूँछने पर महातेजस्वी भगवान् गुरु ब्रह्मा ने जो कुछ बताया था, मैं उसी पुराण- श्रवण के विधान को बता रहा हूँ, (सुनो) ! विभो ! भक्ति पूर्वक इतिहास एवं पुराणों के श्रवण करने से ब्रह्म हत्या आदि सभी पापों के नाश होते है ।४१-४३। सायंकाल, प्रातः काल एवं रात्रि में पवित्रता पूर्ण होकर उसके श्रवण करने पर उस श्रोता के ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ।४४। प्रत्यूष (प्रातः) काल में सुनने पर भगवान् ब्रह्मा, सायंकाल में विष्णु, तथा रात्रि में विभु महादेव उस श्रोता के ऊपर अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं । उनके दश दिन का पारायण करने का विधान बताया गया है ।४५। राजशार्दूल ! उनके पारायण करने के फल, तथा विशांपते ! सुनने एवं सुनाने के विधान को बता रहा हूँ, सुनो ! शुद्ध वस्त्र धारण कर घर से उस स्थान पर जाय, जो पुराण पारायण कराने के लिए निश्चित किया गया हो । उसी (सूर्य) देव के मन्दिर में सर्वप्रथम प्रदक्षिणा करके वाचक के लिए ऐसे आसन का निर्माण कराये, जो अत्यन्त ऊंचा या नीचा न हो । राजन् ! वाचक का सदैव वैसा ही आसन होना चाहिए ।४६-४८। कुरुनन्दन ! श्रोताओं द्वारा उस वाचक की महत्त्व पूर्ण अर्चा होनी चाहिए । क्योंकि यह व्यास आसन एवं गुरु का आसन कहा जाता है ।४९। हे नृप ! उसी भाँति वाचक के आसन पर किसी श्रावक (श्रोता) को न बैठना चाहिए, जिस प्रकार राजा के आसन पर सेवकों को तथा पिता के आसन पर पुत्रों को न बैठने का नियम कहा गया है ।५०। वीर ! शिशुओं को गुरु (अध्यापक) के आसन पर न बैठना चाहिए, क्योंकि वह महान् पुरुष, उन बच्चों का गुरु है । नृप ! पहले देवता की अर्चा सुसम्पन्न कर विशेष कर ब्राह्मण की पूजा के उपरांत बैठकर श्रोता को उसका श्रवण करना चाहिए । विशांपते ! वाचक को चाहिए कि समस्त आगन्तुकों की ओर प्रसन्नतासूचक दृष्टिपात करके पश्चात् पुस्तक को ग्रहण करे । पुस्तक-ग्रहण में सर्व प्रथम उसे शिर से प्रणाम करने का विधान

प्रणम्य[1] शिरसा तस्य पुस्तकस्य विशांपते । ग्रन्थिं च शिथिलां कुर्याद्वाचकः कुरुनन्दन ।।
पुनर्बध्नीत तत्सूत्रं तन्मुक्त्वा वाचयेत्क्वचित् ।।५३
त्रिविधं पुस्तकं विद्यात्सूत्रं वासुकिरुच्यते । पत्राणि भगवान्ब्रह्मा अक्षराणि जनार्दनः ।।५४
शङ्करश्च तथा सूत्रं पङ्क्तयः सर्वदेवताः । पावकश्च तथा सूत्रे मध्ये भानुः समाश्रितः ।।५५
अग्रे स्थिता ग्रहाः सर्वे दिशो वापि तथा विभो । स्मृतः मेरुः सदा शङ्कुश्छिद्रमाकाशमुच्यते ।।५६
यंत्रद्वयं काष्ठमयमधोर्ध्वं यदुदाहृतम् । द्यावापृथिव्योश्च शङ्खस्तथा चन्द्र उदाहृतः ।।५७
इत्थं वेदमयं ह्येतत्पुस्तकं वेदपूजितम् । नमस्यं पूजनीयञ्च गृहे स्थाप्यं विभूतये ।।५८
योऽस्य सूत्रं बृहत्कृत्वा प्रयच्छति नरोत्तमः । स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ।।५९
निरूप्य पात्रं राजेन्द्र कराभ्यां गृह्य वाचकः । प्रणम्य शिरसा सर्वान्ब्रह्मादीन्व्यासमेव च ।।
वाल्मीकिं च तथा राजन्विरिञ्चिं विष्णुं शिवं रविम् ।।६०
नमस्कारमथैषां तु पठित्वा कुरुनन्दन । ततोऽसौ व्याहरेद्विप्रान्वाचकः[2] श्रद्धयान्वितः ।।६१
अलम्बितमतस्तब्धमद्भुतं वीरमूर्जितम् । असंसक्ताक्षरपदं रसभावसमन्वितम् ।।६२
सप्तस्वरसमायुक्तं कालाकाले विशांपते । प्रदर्शयन्रसान्सर्वान्वाचको व्याहरेन्नृप ।।६३

बताया गया है। तदुपरांत कुरुनन्दन ! उसके बंधनों को शिथिल कर उसे बन्धन मुक्त कर शेष जिस अध्याय के आराधन उस दिन न करना हो, उन्हें उन्हीं बंधनों से बाँधकर सुप्रतिष्ठित कर दे, क्योंकि उसके पारायण उस दिन न होकर दूसरे दिन होंगे।५१-५३। पुस्तकों का तीन प्रकार का स्वरूप बताया गया है बन्धन वासुकी, उसके पत्र (पन्ने) भगवान् ब्रह्मा, एवं अक्षरगण जनार्दन देव के रूप हैं—सूर्य शंकर, पंक्तियाँ समस्त देवता, सूत्र में पावक एवं मध्य में सूर्य प्रतिष्ठित हैं।५४-५५। विभो ! (उनके) अग्रभाग में समस्त ग्रह, दिशाएँ, शंकु मेरुपर्वत, काठ की दोनों पटरियों पर (रेहल), जो नीचे-ऊपर स्थित रहती है, आकाश एवं पृथिवी, एवं शंख चक्र देव के रूप में बताये गये हैं।५६-५७। इस प्रकार देवमय देवपूजित उस पुस्तक को, जो नित्य नमस्कार करने एवं पूजन के योग्य हैं, अर्चना, कर ऐश्वर्य वृद्धि के लिए गृह में स्थापित करना चाहिए।५८। जो पुस्तक बन्धनार्थ लम्बा-चौड़ा सूत्र प्रदान करता है, उस नरश्रेष्ठ को उस उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ दिवाकर देव स्वयं निवास करते है।५९। राजेन्द्र ! वाचक को सर्वप्रथम कथाविषयक पात्रों के निरूपण करने के पश्चात् पुस्तक पन्ने को हाथों में लेकर राजन् ! ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं, व्यास, बाल्मीकि, ब्रह्मा विष्णु, शिव, एवं रवि को शिर से नमस्कार करके पुस्तक-पारायण (कथा) प्रारम्भ करना चाहिए। कुरुनन्दन ! तदुपरांत वाचक श्रद्धा सम्पन्न होकर ब्राह्मणों को उसे सुनाये।६०-६१। विशांपते ! धीरे-धीरे शब्दों एवं अर्थों के पृथक्-पृथक् विवेचन करते हुए, सन्देह रहित, अद्भुत, वीर, तथा तेज पूर्ण उनके अक्षरों एवं वेदों को इस भाँति उच्चारण करे, जिसमें रस तथा भावों के संचार माधुर्य पूर्ण प्रवाहित होते रहें। समय-समय पर सातों स्वरों का प्रयोग भी करना चाहिए। नृप ! इस भाँति वाचक को समस्त रसों के प्रदर्शन पूर्वक उनके

---

१. शिरसा पुस्तकं प्रणम्य तदा पुस्तकमादद्यादित्यर्थः। इहेत्थं पदद्वयं पूर्वान्वयि। २. व्याङ्पूर्वस्य हरतेरिहान्यत्र च वचनमेवार्थः, अत्र प्रमाणममर एव तथा 'व्याहारउक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः' इति।

ईदृशाद्वाचकाद्विप्राच्छ्रुत्वा श्रद्धासमन्वितः । इतिहासपुराणानि रामस्य चरितं तथा ॥६४
नियमस्थः शुचिः श्रोता शृणुयात्फलमश्नुते । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चापि विशेषतः ॥६५
अश्वमेधमवाप्नोति सर्वान्कामानवाप्नुते । रोगैश्च मुच्यते सर्वैर्महत्पुण्यं च विन्दति ॥
गच्छेद्रवेः परं स्थानं देवस्याद्भुतमुत्तमम् ॥६६
स्नातैर्गृहं समागम्य श्रोतृभिर्वाचकस्य तु । प्रणम्य शिरसा विप्रं वाचकं श्रद्धया नृप ॥६७
आसनं च समाश्रित्य स्थातव्यं[1] वाचकस्य तु । सम्मुखं राजशार्दूल वाग्यतैः समाहितैः ॥६८
वाचकेन नमस्कारे कृते व्यासस्य भूपते । न वक्तव्यं महाबाहो श्रावकैः संशयादृते ॥६९
संशये सति प्रष्टव्यो वाचकः सम्प्रसाद्य तु । यतश्च स गुरुस्तेषां धर्मतो बन्धुरुच्यते ॥७०
वाचकेनापि वक्तव्यं यत्स्यात्तेषां निबोधनम् । अनुग्रहाय सर्वेषामशेषा गुरवो नृप ॥७१
नमस्कारादयः श्राव्याः शिष्यास्त्विति वोद्यतैः । वाग्यतैर्नृपशार्दूल वर्णैः सर्वैर्महीपते ॥७२
शूद्राणां पुरतो वैश्या वैश्यानां क्षत्रिणस्तथा । मध्यस्थितोऽथ सर्वेषां वाचको व्याहरेन्नृप ॥
ये च सङ्करजा राजन्नरास्ते शूद्रपृष्ठतः ॥७३
ब्राह्मणं वाचकं विद्यान्नान्यवर्णजमादरेत् । श्रुत्वान्यवर्णजाद्वाचं वाचकान्नरकं व्रजेत् ॥७४
इत्थं हि शृण्वतां तेषां वर्णानामनुपूर्वशः । मासि मासि भवेद्राजन्पारणं कुरुनन्दन ॥७५

पारायण या कथा कहनी चाहिए ।६२-६३। श्रद्धा सम्पन्न होकर ऐसे वाचक ब्राह्मणों द्वारा इतिहास, पुराण एवं रामचरित के श्रवण करने से उस पवित्रतापूर्ण एवं नियम पालक श्रोता को फल की प्राप्ति होती है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, विशेषकर शूद्र को अश्वमेध के फल, समस्त कामनाओं की सफलता, समस्त रोगों से मुक्ति एवं महान् पुण्य की प्राप्ति पूर्वक सूर्य देव के उस अद्भुत एवं उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है ।६४-६६। नृप ! श्रोता को चाहिए कि घर में स्नान करके कथा में आकर श्रध्दा समेत ब्राह्मण वाचक के सम्मुख आसन पर बैठे । भूपते ! महाबाहो, जिस समय वाचक, व्यास को नमस्कार कर स्थिर हो जाये, उस समय श्रोताओं को केवल सन्देह विषय के अतिरिक्त अन्य विषय की बातें न करनी चाहिए ।६७-६९। यदि कहीं श्रोता को संदेह उत्पन्न हो जाये, तो वाचक को प्रसन्न करके उसे पूँछना चाहिए, क्योंकि वाचक वहाँ के उपस्थित लोगों का गुरु एवं धर्मतः बन्धु रूप बताया गया है ।७०। नृप ! वाचक को भी श्रोताओं के ऊपर कृपा कर इस प्रकार की सरल भाषा एवं प्रिय वाणी का उपयोग करना चाहिए, जिससे उन्हें निर्भ्रान्त अर्थ का ज्ञान हो क्योंकि वह सब भाँति उनके गुरु रूप हैं ।७१। नृपशार्दूल ! शूद्र वर्ण के श्रोताओं के सामने वैश्य, तथा वैश्यों के सामने क्षत्रिय एवं सभी के मध्य में वाचक को बैठकर कथा सुननी चाहिए । राजन् ! वर्ण शंकर वालों को शूद्र के पीछे बैठना चाहिए । ब्राह्मण के अतिरक्ति किसी अन्य वर्ण वाले को वाचक न बनाना चाहिए, क्योंकि अन्यवर्ण के वाचक द्वारा पुराणादि सुनने पर नरक की प्राप्ति होती है ।७२-७४। राजन् ! कुरुनन्दन ! इस प्रकार श्रोताओं को प्रत्येक मास में पुराणों की समस्त पंक्तियों के श्रवण विधान को सुसम्पन्न करके पारण करना बताया गया है ।७५। राजन् !

---

१. इदं पूर्वान्वयि ।

श्रेयोऽर्थमात्मनो राजन्पूजयेद्वाचकं बुधः । मासि पूर्णे द्विजश्रेष्ठे दातव्यं स्वर्णमाषकम् ॥७६
ब्राह्मणेन महाबाहो द्वे देये क्षत्रियस्य तु । वाचकाय द्विजश्रेष्ठ वैश्येनापि त्रयं तथा ॥७७
शूद्रेणैव च चत्वारो दातव्याः स्वर्णमाषकाः । मासि मासि द्विजश्रेष्ठ श्रद्धया वाचकाय तु ॥७८
प्रथमे पारणे राजन्वाचकं पूज्य शक्तितः । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं विन्दति मानवः ॥७९
कार्तिकादीन्समारभ्य यावत्कार्त्तिकमच्युत[1] । अग्निष्टोमं गोसवं च ज्योतिष्टोमं तथा नृप ॥८०
सौत्रामणिं वाजपेयं वैष्णवं च तथा विभो । माहेश्वरं तथा ब्राह्मं पुण्डरीकं यजेत यः ॥८१
आदित्ययज्ञस्य तथा राजसूयाश्वमेधयोः । फलं प्राप्नोति राजेन्द्र मासैर्द्वादशभिः क्रमात् ।
इत्थं यज्ञफलं प्राप्य याति लोकांस्तथोत्तमान् ॥८२
वज्रवेदिकसम्पन्नं मणिरत्नविभूषितम् । विमानमास्थितो राजन्मोदते शक्रमन्दिरे ॥८३
ततश्चन्द्रस्य भवने वारुणे भवने ततः । शोचिष्केशगृहे गत्वा गच्छेच्चैलबिले गृहे ॥८४
धिषणस्य गृहं गत्वा ततश्चित्रशिखण्डिनः । वृद्धश्रवसमासाद्य गच्छेत्कञ्जजमन्दिरे ॥
एवमेव नृपश्रेष्ठ नात्र कार्या विचारणा ॥८५
फलमेतत्समुद्दिष्टं शृण्वतां सततं नृणाम् । एतत्फलं वत्सरेण शृण्वतो विधितो नृप ॥८६
एतानि परिमाणानि वत्सरेण भवन्ति वै । शृण्वतां नृपशार्दूल वदतां वाचकाय वै ॥८७

विद्वान् को चाहिए कि आत्म कल्याणार्थ वाचक की पूजा करें। और महाबाहो ! मास की समाप्ति में उस ब्राह्मण श्रेष्ठ (वाचक) को ब्राह्मणों द्वारा एक माशा, क्षत्रियों द्वारा दो, वैश्यों द्वारा तीन एवं द्विजश्रेष्ठ ! शूद्रों द्वारा चार माशे सुवर्ण प्राप्त होने चाहिए। द्विजश्रेष्ठ ! श्रद्धा सम्पन्न होकर प्रत्येक मास में चारों वर्णों को ऐसी ही दक्षिणा वाचक के लिए प्रदान करनी चाहिए।७६-७८। राजन् ! प्रथम पारण में वाचक का यथाशक्ति पूजन करने पर मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं।७९। नृप ! कार्तिक मास से आरम्भ कर बारहों मासों में अग्निष्टोम, गोसव, ज्योतिष्टोम, सौत्रामणि, वाजपेय, वैष्णव, माहेश्वर, ब्राह्म, पुण्डरीक, आदित्य यज्ञ तथा राजेन्द्र ! राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञ के फल क्रमशः बारहों मासों में सूर्य के व्रतानुष्ठान द्वारा प्राप्त होते हैं। इस प्रकार वह समस्त यज्ञ के फलों की प्राप्ति पूर्वक उत्तम लोक की प्राप्ति करता है।८०-८२। राजन् ! वज्र की वेदियों एवं मणिरत्नों से विभूषित विमान पर स्थित होकर वह इन्द्र के भवन में आनन्दानुभव प्राप्त करता है।८३। पुनः उसे चन्द्र-भवन, वरुण-भवन, अग्नि-भवन, एवं कुबेर के गृह, पहुँचकर ग्रहों के आनन्दानुभव के उपरांत चित्र शिखंडी (अग्नि) इन्द्र तथा ब्रह्मा के मन्दिर की प्राप्ति होती है। नृपश्रेष्ठ ! इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं।८४-८५। नृप ! पुराण श्रवण करने वाले मनुष्यों को जो निरन्तर पूर्ण वर्ष तक विधान पूर्वक श्रवण करते रहते हैं, इन फलों की प्राप्ति होती है, ऐसा बताया गया है। नृप शार्दूल ! पूरे वर्ष भर कथा श्रवण करते हुए वाचक की सेवा में दक्षिणा प्रदान करने पर श्रोताओं को इन फलों की प्राप्ति होती है।८६-८७। विशांपते ! ब्राह्मणादि वर्णों को क्रमशः वाचक के लिए एक दो, तीन, एवं चार माशे सुवर्ण

---

१. श्लोकद्वयमेकान्वयि।

एकं च द्वे तथा त्रीणि चत्वारि च विशांपते । देयानि वाचकायेह मासि मासि नराधिप ॥८८
ब्राह्मणाद्यैर्नृपश्रेष्ठ सर्ववर्णविभागशः । समाप्ते पर्वणि तथा वाचकं पूजयेत्पुनः ॥८९
वाचकं ब्राह्मणं चैव सर्वकामैः प्रपूजयेत् । गन्धमाल्यादिभिर्दिव्यैर्वासोभिर्विविधैरपि ॥९०
वाचकाय प्रदत्त्वा तु ततो विप्रान्प्रपूजयेत् । हिरण्यं रजतं रुक्मं गाश्च कांस्योपदोहनाः ॥९१
दत्त्वा च वाचकायेह श्रुतस्य प्राप्यते फलम् । यथा सदक्षिणं चान्नं श्राद्धकाले प्रकीर्तितम् ॥
तथा श्रुतं नृपश्रेष्ठा सदक्षिणमुदाहृतम् ॥९२
वाचकं पूजयेद्यस्मात्पश्चाल्लेखकपूजनम् । समाप्ते पर्वणि विभो विशेषेणैव चार्चयेत् ॥९३
वाचकः पूजितो येन पूजितास्तेन देवताः । वाचके परितुष्टे न मम प्रीतिरनुत्तमा ॥९४
इति वेधाः सदा प्राह देवानां पुरतः पुरा । तस्मिंस्तुष्टे जगत्सर्वं तुष्टं भवति नित्यशः ॥९५
तस्मात्प्रपूजयेद्विप्रं वाचकं नृपसत्तम । न तुल्यं वाचकेनेह पात्रं दानस्य विद्यते ॥९६
तिष्ठंति यस्य शस्त्राणि जिह्वाग्रे पृथिवीपते । दृष्टश्च गोचरस्तात कस्तेन सदृशो द्विजः ॥९७
न तुल्यं विद्यते तेन भुवि पात्रं नरेषु वै । तस्मादन्नं सदा पूर्वं तस्मै देयं विदुर्बुधाः ॥
श्राद्धे यस्य द्विजो भुङ्क्ते वाचकः श्रद्धयान्वितः । भवन्ति पितरस्तस्य तृप्ता वर्षशतं नृप ॥९८

प्रदान करने चाहिए । नराधिप ! प्रत्येक मास में वाचक के लिए श्रोताओं को ऐसा ही करने का विधान बताया गया है ।८८। नृपश्रेष्ठ ! ब्राह्मणादि सभी वर्ण को क्रमशः पर्व की समाप्ति में भी पुनः उसी भाँति वाचक की पूजा करनी चाहिए ।८९। समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिए दिव्य एवं गन्ध मालाओं आदि द्वारा अनेक भाँति से वाचक ब्राह्मण की पूर्व भाँति ही पूजा करना बताया गया है ।९०। वाचक की पूजा एवं दक्षिणा दान के उपरांत ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए और सुवर्ण चाँदी, रक्म तथा कांसे की दोहनी पात्र समेत अलंकृत गायें वाचक को देनी चाहिए । इस प्रकार वाचको को इन वस्तुओं के प्रदान पूर्वक उनसे (पुराण) श्रवण करने पर उपरोक्त फलों की प्राप्ति होती है । नृपश्रेष्ठ ! जिस प्रकार श्राद्ध के समय दक्षिणा समेत भोजन प्रदान करना बताया गया है, उसी भाँति दक्षिणा समेत श्रवण का विधान भी जानना चाहिए ।९१-९२। विभो ! वाचक की अर्चा के उपरांत लेख की पूजा आवश्यक बतायी गयी है, विशेषकर पर्व की समाप्ति में ।९३। जिसने वाचक की पूजा सुसम्पन्न किया, उसने समस्त देवों की पूजा की क्योंकि वाचक के भली भाँति प्रसन्न होने पर मेरा वह अनुपम प्रीति भाजन होता है ।९४। इस प्रकार ब्रह्मा ने पहले समय में समस्त देवों के समक्ष भाषण किया था । वाचक के प्रसन्न होने पर उसके ऊपर समस्त जगत् (श्रोता के) नित्य प्रसन्न रहता है ।९५। नृपसत्तम ! इसलिए ब्राह्मण वाचक की अत्युत्तम अर्चा करनी चाहिए। क्योंकि वाचक के समान अन्य कोई दान का पात्र नहीं होता है ।९६। पृथिवीपते ! समस्त शास्त्र जिसके जिह्वाग्रभाग पर स्थित एवं दृष्टिगोचर रहता है, तात ! उसकी समानता कौन दूसरा ब्राह्मण कर सकता है ।९७। इस भूतल पर मनुष्यों में उसके समान अन्य वाचक न होने के कारण विद्वानों ने सदैव सर्वप्रथम उन्हें अन्न प्रदान करने के लिए बताया है । नृप ! जिसके यहाँ

---

१. पुष्पस्य भवने ततः । ३. ततो विष्णुगृहं व्रजेत् ।

यथेह सर्वदेवानां भास्करः प्रवरः स्मृतः । विस्पष्टमद्भुतं शान्तं स्पष्टाक्षरपदं तथा ॥
कलस्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ॥९९
बुध्यमानः सदात्यर्थं ग्रन्थार्थं कृत्स्नशः नृप ! ब्राह्मणादिषु वर्णेषु ग्रन्थार्थं वाचयेन्नृप ॥१००
स एवं वाचयेद्राजन्स विप्रो व्यास उच्यते । अतोऽन्यथा कथयिता ज्ञेयोऽसौ वक्तृनामकः ॥१०१
इत्थंभूतो वसेद्यस्मिन्वाचको व्याससन्निभः । देशेऽथ पत्तने राजन्स देशः प्रवरः स्मृतः ॥१०२
ते धन्यास्ते महात्मानस्ते कृतार्था न संशयः । वसन्ति यत्नतो यस्मिन्स देशः प्रवरः स्मृतः ॥१०३
न शोभते पुरं वीर व्यासहीनं कदाचन । यथार्कहीनं हि दिनं चन्द्रहीना यथा निशा ॥१०४
न राजते सरो यद्वत्पद्मिनी रहितं नृप । तथा व्यासविहीनं तु राजते न पुरं क्वचित् ॥१०५
प्रणम्य वाचकं भक्त्या यत्फलं प्राप्यते नरैः । न तत्क्रतुसहस्रेण प्राप्यते कुरुनन्दन ॥१०६
यथैकतो ग्रहाः सर्वे एकतस्तु दिवाकरः । तथैकतो द्विजाः सर्वे एकतस्तु स वाचकः ॥१०७
यथा वेदसमो नास्ति आगमो भुवि कश्चन । तथा व्याससमो नास्ति ब्राह्मणो भुवि कश्चन ॥१०८
कुरुक्षेत्रसमं तीर्थं न द्वितीयं प्रचक्षते । न नदी गङ्गया तुल्या न देवो भास्करात्परः ॥१०९
नाश्वमेधसमं पुण्यं न पापं ब्रह्महत्यया । पुत्रजन्मसुखैस्तुल्यं न सुखं विद्यते यथा ॥११०

श्राद्ध के दिन श्रद्धालु होकर कोई वाचक ब्राह्मण भोजन करता है, उसी समय उसके पितर लोग सौ वर्ष के लिए तृप्त हो जाते हैं ।९८। जिस प्रकार समस्त देवताओं में भास्कर सर्वश्रेष्ठ बताये गये हैं, उसी भाँति ब्राह्मण वाचक जो अत्यन्त स्पष्ट, अद्भुत, शांत, स्पष्ट अक्षर एवं कलस्वर का स्पष्ट उच्चारण करने वाले, मधुर स्वर तथा इस भावपूर्ण उस ग्रंथ के विशद अर्थों को सदैव ही भली भाँति समझता है, सर्वप्रधान कहा गया है। नृप ! ब्राह्मण आदि सभी वर्णों को उस ग्रन्थ के अर्थों को उससे सुनना चाहिए ।९९-१००। राजन् ! जो इस प्रकार से ग्रन्थों के पारायण करता है, उसे 'व्यास' कहा जाता है, और इससे अन्य प्रकार के पारायण करने वाले को 'वक्ता' ।१०१। राजन् ! जिस देश या गाँव में इस प्रकार व्यास के समान वाचक रहता है, वह देश-गाँव सर्वश्रेष्ठ बताया गया है ।१०२। इसलिए वे (वाचक) धन्य हैं, महात्मा हैं, एवं कृतार्थ हैं अतः जिस देश में ऐसे वाचक-दल निवास करते हैं, वह देश सर्वश्रेष्ठ बताया गया है ।१०३। वीर ! सूर्यहीन दिवस, एवं चन्द्रप्रभाहीन रात्रि की भाँति व्यासहीन ग्राम की कभी भी शोभा नहीं होती है ।१०४। नृप ! कमलिनी विहीन तालाब जिस प्रकार सुशोभित नहीं होता है, उसी भाँति व्यास हीन गांव भी कभी सुशोभित नहीं होता है ।१०५। कुरुनन्दन ! भक्ति पूर्वक वाचक को प्रणाम करके मनुष्य जिन फलों की प्राप्ति करता है, वे फल सहस्र यज्ञों द्वारा भी प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं ।१०६। एक ओर सभी ग्रह और एक ओर सूर्य स्थापित करने पर भी जिस भाँति वे ग्रह समस्त सूर्य की तुलना नहीं कर सकते, उसी भाँति एक ओर समस्त द्विज एवं एक ओर वाचक के स्थित रहने पर समस्त द्विज उस वाचक की तुलना करने में असमर्थ हैं ।१०७। पृथिवी में जिस प्रकार वेद के समान कोई आगम (शास्त्र) नहीं है, उसी प्रकार इस भूतल में व्यास के समान कोई दूसरा तीर्थ एवं गंगा के समान अन्य नदी नहीं है, उसी प्रकार भास्कर से श्रेष्ठ कोई अन्य देव नहीं है ।१०८-१०९। नृप ! जिस प्रकार अश्वमेध के समान पुण्य, ब्रह्म हत्या के समान पाप, एवं पुत्र जन्म के समान सुख अन्य कोई नहीं है, उसी प्रकार व्यास के समान अन्य ब्राह्मण

तथा व्याससमो विप्रो न क्वचित्प्राप्यते नृप । दैवकर्मणि पित्र्ये च पावनः परमो नृणाम् ॥१११

नास्ति व्याससमः श्रेष्ठ इतीयं वैदिकी श्रुतिः । अथ विप्रसहस्राणां विप्रोऽयं श्रेष्ठ ईरितः ॥
उपविष्टो यदा भुङ्क्ते व्यासो वै विप्रमण्डले ॥११२

श्राद्धे तात पवित्राणि कथितानि पुरा मम । ब्रह्मणा राजशार्दूल शृणु तानि यथाविधि ॥११३

मधु पायसं कालशाकस्तिलाश्च कुतपस्तथा । राजतं चापि पात्रेषु ब्राह्मणेष्वपि वाचकः ॥११४

दैवकर्मणि पित्र्ये च स ज्ञेयः पङ्क्तिपावनः । वाचकश्च यतिर्वेद तथा [illegible] षडंगवित् ॥११५

एते सर्वे नृपश्रेष्ठ विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः । नामनी वाचकस्यैते शृणुष्वार्थमथैनयोः ॥११६

इतिहासपुराणानि जयेति विदितानि वै । उपजीवति यस्मात्तै वाचकानो द्विजो नृप ॥
जयोपजीवो तेनासौ गतः ख्याति तु वाचकः ॥११७

विस्पष्टमद्रुतं शान्तं स्पष्टाक्षरमिदं तथा । कलस्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ॥११८

बुध्यमानोथवात्यर्थं ग्रन्थार्थं कृत्स्नशो नृप । ब्राह्मणादिषु वर्णेषु ग्रन्थार्थं चार्पयेत्तथा ॥११९

य एवं च वाचयेद्राजन्स विप्रो व्यास उच्यते । अतोऽन्यथा वाचयिता न गच्छेद्व्यासतां क्वचित् ॥१२०

त्रिविधं वाचकं विद्यात्सदा गुणविभेदतः । श्रावकं च महाबाहो त्रिविधं गुणभेदतः ॥१२१

द्वावेतौ कथ्यमानौ तु निबोध गदतो मम । अभिद्रुतं तथास्पष्टं विस्तरं स्वरवर्जितम् ॥१२२

अप्राप्य है। देव तथा पितृकर्मों में उनके समान पवित्र अन्य कोई मनुष्य नहीं होता है, क्योंकि यह परम्परागत प्रसिद्धि एवं वैदिक जनश्रुति है कि व्यास के समान अन्य कोई मनुष्य श्रेष्ठ नहीं है। सहस्रों ब्राह्मणों में यह (व्यास) ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। तात ! श्राद्ध के दिन ब्राह्मण या मंडली के मध्य में बैठकर जिस समय वह व्यास (वाचक) भोजन करता है, उस समय सब कुछ पवित्र हो जाता है। राजशार्दूल ! पहले समय में ब्रह्मा ने ही उसे बताया था, मैं उसे विधान पूर्वक बता रहा हूँ, सुनो ! मधु (शहद) पायस, कालशाक (श्राद्धीय साग), तिल, एवं कुतप (मृगचर्म और दिन का आठवाँ भाग), की भाँति पात्रों में चाँदी के पात्र और ब्राह्मणों में वाचक उत्तम होते हैं। ११०-११४। देव तथा पितरों के कर्मों में उन्हें पवित्र श्रेणी के समझना चाहिए। नृपश्रेष्ठ ! वाचक, यति, षडंगो का वेत्ता, ये सभी पंक्तिपावन (उत्तम श्रेणी के) हैं। वाचक के वाचक और व्यास, ये दोनों नाम हैं, अतः इनके अर्थ बता रहा हूँ, सुनो ! नृप ! इतिहास एवं पुराणों के जिनके 'जय' यह नाम ख्याति प्राप्त है, पारायण द्वारा जो ब्राह्मण अपनी जीविका निर्वाह करता है, उसका ख्याति प्राप्त नाम जपोपजीवी वाचक होता है, और अत्यन्त स्पष्ट, अद्भुत, शांत, स्पष्ट अक्षर एवं पद मधुर स्वर, रस तथा भावपूर्ण उस ग्रन्थ के समस्त विशद ग्रंथों के ज्ञान प्राप्त कर ब्राह्मण आदि वर्णों के मध्य बैठकर उसके श्रवण कराने वाले ब्राह्मण वाचकों को 'व्यास' कहा गया है। ११५-१२०। महाबाहो ! गुण के भेद होने से जिस प्रकार वाचक के तीन भेद बताये गये हैं, उसी प्रकार गुण के भेद से श्रोता भी तीन भाँति के होते हैं। १२१। शेष दोनों प्रकार के वाचकों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! क्ष्माधिपेश्वर ! शीघ्रता से, स्पष्ट, विस्तृत, स्वरहीन,

पदच्छेदविहीनं च तथा भावविवर्जितम् ! अबुध्यमानो ग्रन्थार्थमभीष्टोत्साहवर्जितः ।।१२३
ईदृशं वाचयेद्यस्तु वाचकः क्ष्माधिपेश्वर । क्रोधनोऽप्रियवादी च अज्ञानाद्ग्रन्थदूषकः ।।१२४
बुध्यते न च कष्टाच्च स ज्ञेयो वाचकाधमः । विस्पष्टमद्भुतं शांतं रसभावसमन्वितम् ।।१२५
अबुध्यमानो ग्रन्थार्थं वाचयेद्यस्तु वाचकः ! स ज्ञेयो राजसो राजन्निदानीं सात्त्विकं शृणु ।।१२६
विस्पष्टमद्भुतं शान्तं स्पष्टाक्षरपदं तथा । कलस्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ।।१२७
अत्यर्थं बुध्यमानस्तु ग्रन्थार्थं कृत्स्नशः नृप । ब्राह्मणादिषु वर्णेषु आचार्यो विधिवन्नृप ।।१२८
य एवं वाचयेद्राजन्स ज्ञेयः सात्त्विको बुधैः ! श्रद्धाभक्तिविहीनो यो लोभिष्ठः कटुको यथा ।।१२९
हेतुवादपरो राजंस्तथासूयासमन्वितः । नित्यां नैमित्तिकां काम्यामाददद्दक्षिणां नृप ।।१३०
वाचको यो महाबाहो शृणुयाद्यस्तु मानवः । स ज्ञेयस्तामसो राजञ्छ्रावको मानवोऽपि सः ।।१३१
न तस्य पुरतो वीर वाचयेत्प्राज्ञ एव हि । प्रसङ्गाच्छृणुयाद्यस्तु श्रद्धाभक्तिविवर्जितः ।।१३२
राजन्कौतुक पात्रं स ज्ञेयो राजसो भवेत् । संत्यज्य सर्वकार्याणि भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ।।१३३
सततं पूजयेद्यस्तु वाचकं श्रद्धया मुदा । नित्ये नैमित्तिके काम्ये गुरून्वै देवतास्तथा ।।१३४
य एवं शृणुयाद्वीर स ज्ञेयः सात्त्विको बुधैः । व्यासः पूज्यः श्रावकाणां यथा व्यासवचो नृप ।।१३५
तस्मात्पूज्यतमो नान्यः श्रावकाणां नृपोत्तम । यतः स वै गुरुस्तेषां ज्ञानदाता सदा नृप ।।१३६

पदच्छेद तथा भावहीन उच्चारण करने वाला ग्रन्थ के अर्थों को भली भाँति न जानने वाला, एवं उत्साह हीन, पारायण करने वाले को 'वाचक' कहा गया है, तथा क्रुद्ध स्वभाव, कठोर वाणी, अज्ञानता वश ग्रंथ को दूषित करने वाले एवं परिश्रमपूर्ण कष्ट के अनुभव करनेपर भी अर्थों को न जानने वाले को 'वाचकाधम' बताया गया है। राजन् ! स्पष्ट वाणी, आश्चर्य शांत, स्पष्ट अक्षर एवं पदों के उच्चारण, माधुर्य पूर्ण स्वर, रस एवं भाव समेत समस्त ग्रन्थों के अर्थों का अज्ञानतावश विस्तृत व्याख्यान करने वाले को 'राजस्' बताया गया है, अब सात्त्विक की व्याख्या कह रहा हूँ सुनो ! अत्यन्त स्पष्ट, आश्चर्यजनक, शांत स्पष्ट, अक्षर एवं पदों के उच्चारण मधुर स्वर, रस एवं भावों समेत सम्पूर्ण ग्रन्थों के अर्थों की विशद व्याख्या करने में कुशल व्यक्ति को ब्राह्मण आदि वर्णों का आचार्य बताया गया है। राजन् ! इस प्रकार के पारायण करने वाले को विद्वानों ने 'सात्त्विक वाचक' कहा है, राजन् ! उसी भाँति श्रद्धा भक्तिहीन, लोभी, मदार वृक्ष की भाँति कडुवा (कठोर) अकारण वाद विवाद करने वाला, निंदित, नित्य नैमित्तिक क्रियाओं की पूर्ति के लिए निश्चित दक्षिणाओं के ग्रहण करने वाले पुरुष, महाबाहो ! तामस वाचक बताये गये हैं तथा राजन् ! उसके सभी श्रोतागण मनुष्य भी तामस कहे गये है।१२३-१३१। वीर ! ऐसे श्रोताओं के सामने विद्वान् वाचकों को पारायण न करना चाहिए। राजन् श्रद्धा भक्तिहीन पुरुष प्रसङ्ग वश यदि कथा का श्रवण करता है, उसे कौतुक (मनोरंजन) पात्र होने के नाते 'राजस श्रोता' बताया गया है। भक्ति पूर्वक जो श्रद्धालु पुरुष सभी कार्यों को त्याग कर अत्यन्त प्रसन्नता से निरन्तर वाचक की पूजा करता है, उसी प्रकार नित्य-नैमित्तिक एवं काम्य कर्मों से गुरुवर्य्यों तथा देवताओं की आराधना करता है, वीर ! इस प्रकार के श्रोता को विद्वानों ने 'सात्त्विक श्रोता' कहा है। नृप ! व्यास के वचनानुसार व्यास श्रोताओं के परम पूज्य हैं, इसलिए नृपोत्तम ! उनसे बढ़कर श्रोताओं के पूज्यतम अन्य कोई नहीं है, क्योंकि वह उनके सदैव ज्ञान प्रदान करने के नाते गुरु रूप है।१३२-१३६। नृपश्रेष्ठ ! वेद

चतुर्णामिह वर्णानां नान्यो बन्धुः प्रचक्ष्यते । व्यासादृते नृपश्रेष्ठ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥१३७
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेद्वाचकं सदा । स गुरुः स पिता माता स बन्धुः स सुहृत्तथा ॥१३८
वाचको नृपशार्दूल विप्रादीनामशेषतः । इत्थं व्यासो गुरुर्ज्ञेयः पूज्यो मान्यो द्विजातिभिः ॥१३९
शृण्वन्ति ये नरा राजन्स्तेषां गुरुरुच्यते । पूजार्थं तस्य समयः श्रावकाणामुदाहृतः ॥१४०
ये शृण्वन्ति नृपश्रेष्ठ मासि मासि ददन्ति ते । स्वर्णमाषकमेकस्मै वाचकाय पृथक्पृथक् ॥१४१
द्वादश्यां चामावस्यायामथ वा रवि सङ्क्रमे । सा नित्या दक्षिणा तस्यां या च श्रेयोऽर्थमात्मनः ॥१४२
अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा । प्राप्ते वापरपक्षे च दानं तस्मै स्वशक्तितः ॥१४३
देयं स्याच्छ्रावकैस्तात तं मुक्त्वा नान्यतो नृप । प्रथमं तस्य दातव्यं श्रेयोऽर्थं श्रावकैः सदा ॥१४४
अदत्वा तस्य येऽन्यस्मै सम्प्रयच्छन्ति श्रावकाः । अवमानः कृतस्तैस्तु वाचकस्य भवेन्नृप ॥१४५
कृत्वावमानमस्य तैः प्राप्यते यत्फलं नृप । ब्राह्मणाद्यैः समस्तैश्च तच्छृणुष्व वरानन ॥१४६
शूद्रत्वं ब्राह्मणो याति क्षत्रियो याति काकताम् । जायते च तथा वैश्यः शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥१४७
तस्मात्पूज्यो नृपश्रेष्ठ प्रथमं वाचको बुधैः । आपत्काले च वृद्धौ च यतश्चासौ गुरुः स्मृतः ॥१४८
वैशाख्यामयने वीर तृतीयायां च सुव्रत । कार्त्तिक्यामथ माग्यां च सम्पूज्यः प्रथमं भवेत् ॥१४९

की श्रुतियों का यह कहना है कि चारों वर्णों के व्यास का अतिरिक्त कोई बन्धु नहीं होता है ।१३७। इसलिए सभी भाँति प्रयत्नशील रहकर वाचक की सैदव पूजा करनी चाहिए, क्योंकि वहीं गुरु, पिता, माता, बंधु एवं मित्र है ।१३८। नृपशार्दूल ! निखिल ब्राह्मणों के लिए भी वाचक उसी भाँति पूज्य बताया गया है । पुनः इस प्रकार के व्यास को गुरु जानना चाहिए और द्विजातियों के लिए वही पूज्य एवं मान्य है ।१३९। राजन् ! जितने लोग कथा श्रवण करते हैं, उन सभी के वह गुरु कहलाता है । उसकी पूजा करने के लिए श्रोताओं को समय बताया गया है ।१४०। नृपश्रेष्ठ ! जो लोग प्रत्येक मास के कथापारायण के श्रवण करते हैं वे सब पृथक्-पृथक् रूप से एक एक माशे सुवर्ण वाचक के लिए प्रदान करते हैं द्वादशी, अमावस्या एवं सूर्य संक्रान्ति के दिन भी कथा सुनने पर वाचक की वही नियत दक्षिणा होती है । क्योंकि देने वाला अपने कल्याणार्थ प्रदान करता है ।१४१-१४२। दोनों अयन, बिषुव, चन्द्र सूर्य के ग्रहण के समय, अपनी भक्त्यनुसार उन्हें दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए ।१४३। नृप ! तात ! उससे अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु वाचक को श्रोता न प्रदान करे । अन्य वस्तु के प्रदान में अपने कल्याणार्थ प्रथम उसी (एक माशे सुवर्ण) को प्रदान कर पश्चात् अन्य वस्तुएं दे ।१४४। नृप ! सर्व प्रथम बिना उसे प्रदान किये अन्य वस्तु के देने से श्रोताओं द्वारा किया गया वाचक का अपमान समझना चाहिए ।१४५। नृप ! अपमान करने पर भी सभी वर्णों को जिन फलों की प्राप्ति होती है, वरानन ! मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो ! ।१४६। ब्राह्मण, शूद्रत्व की प्राप्ति करता है, क्षत्रिय कौवे होते हैं और इसी भाँति वैश्य एवं शूद्र चाण्डाल के यहाँ जन्म ग्रहण करते हैं ।१४७। अतः नृपश्रेष्ठ ! विद्वानों को चाहिए कि वाचक की सर्वप्रथम पूजा करें, क्योंकि आपत्तियों के समय वृद्धि काल में भी वह उनका गुरु बताया गया है ।१४८। वीर ! वैशाख मास की पूर्णिमा, अयन, तृतीया तथा सुव्रत ! उसी भाँति कार्तिक एवं मागशीर्ष की पूर्णिमा में सर्वप्रथम वाचक की पूजा होनी चाहिए ।१४९। विभो ! उसी भाँति अन्य पर्व तिथियों में भी उनकी

पर्वस्वन्येषु च विभो सम्पूज्यो धर्मतः स्मृतः । हिरण्यं च सुवर्णं च धनं धान्यं तथैव च ॥१५०
अन्नं चापि तथा पक्वं मांसं च कुरुनन्दन । दातव्यं प्रथमं तस्मै श्रावकैर्नृपसत्तम ॥१५१
वाचकस्तु यथा नित्यं सुखमास्ते नराधिप । न पीडयते यथा द्वन्द्वैस्तथा कार्यं वरानन ॥१५२
हेमन्ते लोमशा देयाश्छत्रं प्रावृषि सत्तम । उपानहौ कालयोग्ये काले चैवानुलोमशः ॥१५३
इत्थं द्वन्द्वविनिर्मुक्तः स येषां वाचको नृप । ते धन्याः श्रावका लोके ते गताः परमं पदम् ॥१५४
आत्मना तु कथं वीर सुखमिच्छेद्विचक्षणः । विषमस्थे गुरौ राजन्यतश्च स गुरुः स्मृतः ॥१५५
वाचकश्रावकाणां च तस्माद्द्वन्द्वं विघातयेत् । यत्नः कार्यः श्रावकैश्च वाचकस्य जनाधिप ॥१५६
इत्थं पूज्यः सदा व्यासः श्रेयोऽर्थं प्रथमं नृप । भर्ता पूज्यो यथा स्त्रीणां सर्वासां वै महीपते ॥१५७
श्रावकाणां तथा राजन्वाचकः पूज्य उच्यते । उपाध्यायस्तु शिष्याणां यथा भागवतो हरिः ॥१५८
सौराणां च यथा भानुः शैवानां शङ्करो यथा । वाचकस्तु तथा पूज्यः श्रावकाणां नराधिप ॥१५९
दक्षिणां ददता नित्यं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता । पूर्वोक्तमाषकं तस्मै वाचकाय जनाधिप ॥१६०
यदा दातुं न शक्नोति माषकं काञ्चनस्य तु । रजतस्य तदा देयं माषकं श्रेयसे नृप ॥१६१
तदभावे हिरण्यं च वित्तशाठ्यविवर्जितः । मृत्तिकापि हि दातव्या प्राप्नोति सत्फलं शुभम् ॥१६२
इत्येषा दक्षिणा नित्या मासि मासि भवेन्नृप । नैमित्तिका भवेद्राजन्ग्रहणादिषु पर्वसु ॥१६३

धार्मिक पूजा के उपरांत हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य एवं अन्न समेत कुरुनन्दन ! पके मांस भी श्रोताओं को चाहिए उन्हें प्रदान करें।१५०-१५१। नराधिप ! वाचक को जिस किसी उपाय द्वारा दुःख द्वन्द्व की मुक्ति पूर्वक नित्य सुख प्राप्ति हो, वही श्रोताओं को करना चाहिए।१५२। हेमन्त ऋतु के समय कम्बल वर्षा के समय छत्ते, तथा शीत और गर्मी के समय पादत्राण (जूते) प्रदान करने चाहिए।१५३। नृप ! इस प्रकार जिन श्रोताओं द्वारा वाचक दुःख द्वन्द्व की मुक्ति प्राप्त करता है, लोक में श्रोता लोग धन्य हैं, एवं उन्हें परम पद की प्राप्ति होती है।१५४। वीर ! गुरु की विषम परिस्थिति देखकर कौन बुद्धिमान् अपने सुख को आकांक्षा करेगा, क्योंकि यह गुरु बताया गया है।१५५। जनाधिप ! इसलिए वाचक श्रोताओं के द्वन्द्व दुःख का हनन करे और श्रोता लोग वाचकों के ।१५६। नृप ! इस प्रकार व्यास की सदैव सर्वप्रथम पूजा होनी चाहिए। महीपते ! जिस प्रकार सभी स्त्रियों के पूज्य उनके पति होते हैं और राजन् ! जिस प्रकार शिष्यों के उपाध्याय एवं वैष्णवों के विष्णु पूज्य हैं, उसी भाँति वाचक श्रोताओं के पूज्य बताये गये हैं। नराधिप ! सौर (सूर्य भक्तों) के सूर्य तथा शैवों के शिव, जिस प्रकार पूज्य हैं, उसी प्रकार श्रोताओं के पूज्य वाचक होते हैं।१५७-१५९। जनाधिप ! अपने ऐश्वर्य की कामना वश पूर्वोक्त कथनानुसार एक माशे सुवर्ण की दक्षिणा नित्य प्रदान करते हुए नित्य कथा श्रवण करनी चाहिए।१६०। नृप ! यदि श्रोता एक माशा सुवर्ण की दक्षिणा को देने में असमर्थ हो तो कल्याणार्थ उतनी चाँदी की ही दक्षिणा प्रदान करे।१६१। देने में धन की शठता न करे प्रत्युत उसके अभाव में हिरण्य (सामान्यद्रव्य) ताँबे आदि ही प्रदान करे। उसका भी अभाव हो तो मृत्तिका (मिट्टी) ही प्रदान करनी चाहिए। उससे भी उत्तम फल की प्राप्ति होती है।१६२। नृप ! प्रत्येक मास तथा राजन् ! ग्रहण आदि की पर्व तिथियों को भी यही नियमित दक्षिणा वाचक को नित्य प्रदान करने के लिए बताया गया है।१६३। राजन् !

अमले वाससी राजन्गन्धमाल्यविभूषणे । समाप्ते पर्वणि विभो दातव्ये भूतिमिच्छता ॥१६४
ज्ञात्वा सर्वसमाप्तिं तु पूजयेच्छ्रावको ध्रुवम् । आत्मानमपि विक्रीय य इच्छेत्तत्फलं श्रुतम् ॥१६५
नैमित्तिकां च नित्यां च दक्षिणामप्रदाय च । शृणोति च सदा यस्तु तस्य तन्निष्फलं श्रुतम् ॥१६६
यथा च दक्षिणाहीनाद्यज्ञान्न फलमश्नुते । तथा श्रुतं च राजेन्द्र दक्षिणारहितं स्मृतम् ॥१६७
चतुर्गुणा भवेद्राजन्या नित्या दक्षिणा विभो । समाप्ते पर्वणि विभो इत्याह भगवाञ्छिवः ॥१६८
इत्येष कथितो राजन्पुराणश्रवणे विधिः । यतश्च विधिहीनं तु न कर्मफलमुच्यते ॥१६९
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवाभिपूजनम् । विधिपूर्वं स्मृतं ज्ञेयं यथेह कुरुनन्दन ॥१७०
फलदं नृपशार्दूल पुराणश्रवणं तथा । यथार्थं कथितं तुभ्यं विधिना श्रवणं मया ॥१७१
यथोक्तं तु यथा जीवं यथोक्तं ब्रह्मवादिना । स ब्राह्मणो महाराज सर्वलोकेषु पूजितः ॥१७२
यथाश्रुतं महाबाहो तथेदं कथितं तव । भास्करस्य तु माहात्म्यं माहात्म्यं वाचकस्य तु ॥१७३
तथा च सप्तमीकल्पः सर्वपापभयापहः । अनेन विधिना यस्तु पूजयेत्सततं नरः ॥१७४
भगलोकं समासाद्य त्रिषु लोकेषु गीयते । ततोऽर्कलोकमासाद्य गच्छेच्चित्रशिखण्डिनः ॥१७५
तस्मादपि महाबाहो गच्छेल्लोकं दिवाकरम् । अर्कलोके ततो यातस्ततो गोलोकमश्नुते ॥१७६

विभो ! पर्व की समाप्ति में अपने ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए स्वच्छ दो वस्त्र, गंध, माल्य, एवं आभूषण प्रदान करने चाहिए । सब की समाप्ति में अपने कथा सुनने को सफल बनाने के लिए श्रोता को चाहिए कि अपने आप का विक्रय कर वाचक की निश्चित पूजा करे ।१६४-१६५। नैमित्तिक या नित्य के (पूजन विधान में) जो बिना दक्षिणा प्रदान किये ही कथा श्रवण करता है, उसका सुनना निष्फल हो जाता है ।१६६। राजेन्द्र ! जिस प्रकार दक्षिणा हीन यज्ञ के फल की प्राप्ति नहीं होती है, उसी भाँति कथा श्रवण भी दक्षिणा हीन होने पर फलप्रदायक नहीं होता है ।१६७। राजन् ! जो दक्षिणा नित्य प्रदान की जाती है, विभो ! पर्व की समाप्ति में वहीं चौगुनी हो जाती है ।१६८। राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें पुराण श्रवण के विधान बता दिया जिससे विधान हीन कर्म-फल के लिए उद्योग न किया जाये ।१६९। कुरुनन्दन ! स्नान, दान, जप, होम, पितृ तथा देव पूजन विधान पूर्वक करना चाहिए ।१७०। नृपशार्दूल ! पुराण सुनने का यथार्थ विधान, जो फल दायक होता है, मैंने तुम्हें बता दिया ।१७१। महाराज ! जिस प्रकार ब्रह्मवादियों ने जीव की व्याख्या की है, उसी भाँति समस्त लोकों में वह ब्राह्मण पूजनीय है ।१७२। महाबाहो ! भास्कर एवं वाचक के माहात्म्य जिस प्रकार मैंने सुना था, तुम्हें सुना दिया ।१७३। उसी भाँति समस्त पाप नाशक इस सप्तमी कल्प की व्याख्या भी कर दी । इस विधान द्वारा जो मनुष्य निरन्तर सूर्य की अर्चा करते हैं, भग लोक की प्राप्ति पूर्वक तीनों लोकों में उसके गुणगान किये जाते हैं । पश्चात् अर्क, चित्र शिखंडी (अग्नि), तथा महाबाहो ! दिवाकर सूर्य के उपरांत उसे गो लोक की प्राप्ति

ऋतस्य च ततो गच्छेत्कञ्जजस्य ततः परम् । दशानां राजसूयानामग्निष्टोमशतस्य च ।।१७७
श्रवणात्फलमाप्नोति पितामहवचो यथा ।।१७८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे आदित्यमाहात्म्यवाचकमाहात्म्य-
पुराणश्रवणविधिवर्णनं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१६।
पूर्वार्धः समाप्तोऽयम् ।।ॐ।। ।।श्रीनारायणार्पणमस्तु ।।

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रथमं ब्राह्मपर्व समाप्तम् ।१।

होती है । उपरांत सत्य एवं ब्रह्मा के लोक की प्राप्ति पूर्वक उसे दश राजसूय और सौ अग्निष्टोम यज्ञ के फलों की प्राप्ति भी ब्रह्मा के वचनानुसार श्रवण करने से होती है ।१७४-१७८

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में आदित्य माहात्म्य वाचक—
माहात्म्यपुराणश्रवणविधानवर्णननामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।२१६।

।। भविष्यमहापुराणान्तर्गत प्रथम ब्राह्म-पर्व समाप्त ।।